सस्ती ग्रन्थमाला नया मन्दिर धर्मपुरा का आठवाँ पुष्प

श्री रविषेणाचार्य विरचित

पद्मपुराण

(श्री राम-चरित्र)

हिन्दी भाषाकार

स्व० पं० दौलतराम जी

सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,

नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली—६

प्रकाशक :
सस्ती ग्रन्थमाला कमेटी,
नया मन्दिर, धर्मपुरा, देहली-६

वीर निर्वाण सं० २५००
माघ सुदी पूर्णमासी, सं० २०३०
६ फरवरी, सन् १९७४

प्रथमबार ५०००
द्वितीयबार १८००
तृतीयबार २२००

मूल्य : १६ रुपये

मुद्रक :
कुमार फाइन आर्ट प्रेस,
११४३, चाह रहट, दिल्ली-६

प्रस्तावना

इस अवसर्पिणी काल में उत्पन्न हुए तिरेसठ शलाकापुरुषों में तीर्थंकरो के समान ही राम का नाम अति विख्यात है। राम का नाम इतना अधिक प्रसिद्ध क्यो हुआ? लोग बात-बात मे राम की दुहाई क्यों देते हैं और अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ राम-राज्य का स्मरण क्यों किया जाता है? इन प्रश्नों पर जब हम गहराई के साथ विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि राम के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं घटी हैं, जिनसे उनका नाम प्रत्येक भारतीयकी रग-रग में समा गया है, उनका पवित्र चरित्र लोगो के हृदय में अंकित हो गया है और यही कारण है कि वे इतने अधिक लोकप्रिय महापुरुष सिद्ध हुए हैं।

राम के गुणो की गाथा उनके जीवन काल में ही लोगो के द्वारा गाई जाने लगी थी। कहा जाता है कि भारतवर्ष का आदि काव्य बाल्मीकि-रामायण उनके जीवन-काल में ही रचा गया था और महर्षि बाल्मीकि ने उसे लव और अंकुश को पढ़ाया था। जो कुछ हो पर इतना निश्चित है कि राम के चरित्र-चित्रण करने वाले ग्रन्थो में बाल्मीकि-रामायण आदि ग्रन्थ हैं। जिसका सबसे बड़ा प्रमाण स्वयं इसी पद्मपुराण की वह भूमिका है जहाँ पर राजा श्रेणिकने भगवान् महावीर से प्रश्न किया है कि :—

श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादयः। वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिणः ॥*

अर्थात्—लौकिक ग्रन्थ में सुना जाता है कि रावणादिक राक्षस थे और वे मास वसा आदिका भक्षण और रक्त का पान करते थे।

विदित हो कि यहाँ लौकिक ग्रन्थ से अभिप्राय बाल्मीकि-रामायण से ही है। इससे भी अधिक पुष्ट प्रमाण इससे आगे के वे श्लोक हैं जहाँ पद्मपुराणकार ने बडा दुःख प्रगट करते हुए कहा है कि :—

अहो कुकविभिर्मूर्खै विद्याधरकुमारकम्। अभ्याख्यानमिदं नीतो दुःकृतग्रन्थकच्छकैः ॥
एवंविधंकिल ग्रन्थं रामायणमुदाहृतम्। शृण्वतां सकलं पापंक्षयमायाति तत्क्षणात् ॥+

अर्थात्—आश्चर्य है कि मूर्ख कवियोने श्रेष्ठ विद्याधरो के पवित्र चरित्र को इस प्रकार विरूप चित्रित किया। इस प्रकार यह ग्रन्थ रामायण नामसे प्रसिद्ध है जिसके सुनने से सुननेवालों के सर्व पाप क्षण भर में क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि भगवान् महावीर के समय में भी बाल्मीकि-रामायण का खूब प्रचार था और लोग उसे सुनने से अपने पापो का क्षय होना मानते थे।

पद्मपुराणकी रचनाका आधार

पद्मपुराणकी रचनाका आधार विद्वान् लोग 'पउमचरिउ' को मानते हैं जो कि भ०महावीर के निर्वाणके लगभग ४५० वर्ष बाद रचा गया है, उसमें भी इसी प्रकार का उल्लेख है जिससे भी यही सिद्ध होता है कि उस समय बाल्मीकि रामायण जन-साधारण में अत्यन्त प्रसिद्ध थी और उसमें चित्रण किया गया राम रावण का चरित्र ही लोग यथार्थ मानते थे। राम और रावण के चरित्र-विषयक भ्रान्ति के दूर करने के लिए 'पउमचरिउ' और प्रस्तुत पद्मचरित की रचना हुई है।

---

*पद्म० प० २, श्लो० २३०   +पद्म० प० २, श्लो० २३६-२३७

पद्मपुराण का रचना-काल

संस्कृत पद्मचरितकी रचना भ० महावीर के निर्वाण से १२०३ वर्ष बाद हुई है*। यदि वीरनि० से ४७० वर्ष बाद विक्रम संवत्का प्रारम्भ माना जाय तो पद्मपुराण का रचनाकाल विक्रम सं० ७३४ में समझना चाहिए।

दिगम्बर सम्प्रदाय में उपलब्ध कथा-साहित्य में २-१ ग्रन्थोंको छोड़कर यह ग्रन्थ सबसे प्राचीन है। यदि प्राकृत 'पउमचरिउ' भी दिगम्बर ग्रन्थ सिद्ध हो जाता है (जिसका कि अभी अन्तरंग-परीक्षण नहीं हुआ है) तो कहना पड़ेगा कि दिगम्बर कथा-ग्रन्थों में यह सर्वप्रथम है।

राम चरित्र का चित्रण

राम का चरित्र चित्रण करने वाले ग्रन्थों में स्पष्टतः दो प्रकार पाये जाते हैं, एक पद्मपुराण का प्रकार और दूसरा उत्तरपुराण का प्रकार। जहाँ तक पद्मपुराण की कथा का सम्बन्ध है, वह प्रायः रामायण का अनुसरण करती है पर उत्तरपुराण में राम का चरित्र एक नवीन ही ढंग से चित्रित किया गया है। दोनों में कौन कथानक सत्य है या सत्य के अधिक समीप है—इस बात के निर्णय करने की न कोई सामग्री उपलब्ध है और न हम में उसके निर्णय करने की शक्ति और योग्यता ही है। हम केवल धवलाकार वीरसेनाचार्य के शब्दों में इतना ही कह सकते हैं कि दोनों ही प्रमाणीक आचार्य हुए हैं और हमें दोनों ही प्रकारों का संग्रह करना चाहिए, यथार्थ स्वरूप तो केवलज्ञानगम्य ही है।

पद्मपुराण के रचयिता आचार्य रविषेण

संस्कृत पद्मपुराण के रचयिता आचार्य रविषेण हैं। उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है:—

ज्ञाताशेषकृतान्तसन्मुनिमनः सोपानपर्वावली, पारंपर्यसमाश्रितं सुवचनं सारार्थमत्यद्भुतम्।
आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयति शिष्योऽस्य चार्हन्मुनिस्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम्॥+

अर्थात—भ० महावीर के पश्चात् अशेष आगम के जानने वाली आचार्य-परम्परा में इन्द्रगुरु हुए, उनके शिष्य दिवाकरयति हुए, उनके शिष्य अर्हन्मुनि और उनके शिष्य लक्ष्मणसेन हुए। उनके शिष्य रविषेण हुए जिन्होंने यह पद्म मुनिका पवित्र चरित्र बनाया।

रविषेणाचार्य की गुरु-परम्परा के आचार्यों ने किन किन ग्रन्थों की रचना की है, इसका अद्यावधि कुछ पता नहीं लग सका पर रविषेणाचार्य के उक्त शब्दों से इतना निश्चित है कि वे सर्व आगमके ज्ञाता थे। अतः गुरु पर्वक्रमसे रविषेणाचार्य को भी आगम ज्ञान प्राप्त था। प्रस्तुत पद्मपुराण का स्वाध्याय करने पर पता चलता है कि रविषेणाचार्य को प्रथमानुयोगसम्बन्धी कथा-साहित्यका कितना विशाल ज्ञान था। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में सहस्त्रों उपकथाएं निबद्ध की हैं। इसके अतिरिक्त चरणानुयोग, करुणानुयोग और द्रव्यानुयोग-सम्बन्धी ज्ञान भी अत्यन्त बढ़ाचढ़ा था, जिसका पता हमें उनके कथानकोंके बीच-बीच दिए गए स्वर्ग-नरकादिके वर्णन, द्वीप-समुद्रों के चित्रण, आर्य-अनार्यों के आचार-विचार, रात्रि-भोजनादि और पुण्य-पाप के फलाफल से चलता है। शांत और करुण रस का तो इतना सुन्दर चित्रण शायद ही अन्यत्र देखने को मिलेगा। सीता के हरे जाने के पश्चात् रामकी दयनीय दशाका, लंका के उपवनमें और देश-निष्कासन के पश्चात् वनमें छोड दिये जाने पर तथा अग्निकुंड की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद के वर्णन तो अलौकिक चमत्कारपूर्ण हैं। उन्हें पढ़ते हुए एक बार आंखोंसे आंसुओं की धार बहने लगती है और जब हम लक्ष्मण के दिवंगत होनेपर राम की दशाको देखते हैं, उनके अकृत्रिम और लोकोत्तर भ्रातृप्रेम को पढ़ते हैं तो उस समयका वर्णन करना हमारे लिए असंभवसा हो जाता है। संक्षेप में कहा जाय तो इस पद्मपुराण में हमें सभी रसों का यथास्थान सन्निवेश मिलेगा पर इसमें प्रधानता करुण और शान्त रसकी ही है।

---

*द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते। जिनभास्करवर्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम्॥ पद्म० प० १२३, श्लो० १८१

+पद्म० प० १२३, श्लो० १६७

मूलग्रन्थ का प्रमाण लगभग १८००० श्लोक है जोकि श्री माणिकचन्द्र दि० जैनग्रन्थमाला बम्बई से तीन भागों में मुद्रित हो चुका है। स्वाध्याय-प्रेमियों से मेरी प्रेरणा है कि वे एक बार मूलग्रंथ का अवश्य ही स्वाध्याय करें।

रामका व्यक्तित्व

यद्यपि पद्मचरित्र या पद्मपुराण नाम होने से इसमें मुख्यतः श्री रामका चरित्र चित्रण है पर उनकी जीवन-सहचरी होनेके नाते सारे राम-चरित्र में सीता सर्वत्र व्याप्त है। सीताके पिताकी सहायता करने के कारण ही राम सर्व प्रथम सिंह-तनय या वीर-पुत्रके रूपमें लोगो के सामने आए। सीताके स्वयंवर द्वारा राम के पराक्रम का यश सर्वत्र फैला। रावणपर विजय पानेके कारण वे जगतप्रसिद्ध महापुरुषके रूप में विख्यात हुए। इसके बाद लोकापवाद के कारण सीताका परित्याग करनेसे तो वे इतने अधिक प्रकाश में आए कि आज हजारों वर्षों के बाद भी लोग राम-राज्यकी याद करते हैं। जब लोकापवादकी चर्चा रामके सामने आई तो वे विचारते हैं कि :—

अपश्यन् क्षणमात्रं यां भवामि विरहाकुलः। अनुरक्तां त्याजाम्येतां दयितामधुना कथम्॥
चक्षुर्मानसयोर्वासं कृत्वा याऽवस्थिता मम। गुणधानीमदोषां तां कथं मुंचामि जानकीम्॥[1]

अर्थात्— जिस सीताको क्षणमात्र भी देखे बिना मैं विरहसे आकुल-व्याकुल हो जाता हूं उस अनुरक्त प्राण-प्यारी सीता का कैसे परित्याग करूं? जो मेरे नयन और मानस पर सदा अवस्थित है, गुणो की राजधानी है, सर्वथा निर्दोष है, उस प्यारी जानकीको मैं कैसे तजूं?

एक ओर लोकापवाद सामने खड़ा है और एक ओर निर्दोष प्राण-प्रियाका दुःसह वियोग? कितनी विकट स्थिति है, राम अत्यन्त असमंजसमें पड़ जाते हैं, कुछ समयके लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़से हो जाते हैं। उस समय की मानसिक दशाका चित्रण करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं :—

इतो जनपरीवादश्चेतः स्नेहः सुदुस्त्यजः। ग्राहोऽस्मि भय-रागाभ्यां प्रक्षिप्तो गहनान्तरे॥
श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवौकोयोषितामपि। कथं त्यजामि तां साध्वीं प्रीत्या यातामिवैकताम्॥[2]

अर्थात्— एक ओर जन-अपवाद और एक ओर दुस्त्यज स्नेह। अहो! मैं दोनोंकी दुविधामें पड़ा हुआ गहन वनके मध्य फेंक दिया गया हूं। जो सीता देवांगनाओं से भी सर्व प्रकार श्रेष्ठ है, सती साध्वी है, मेरे प्राणों के साथ एकत्वको प्राप्त हो रही है, उस सीताको मैं कैसे तजूं?

फिर राम विचारते हैं :—

एतां यदि न मुंचामि साक्षाद् दुःकीर्त्तिमुद्गताम्। कृपणो मत्समो मह्यां वदैतस्यां न विद्यते॥[3]

अर्थात्— यदि इस सीताका परित्याग नहीं करता हूं तो इस महीपर मेरे समान और कोई कृपण न होगा।

यहांपर कृपण शब्द खास तौरसे विचारणीय है। जो दान नहीं देता वह कंजूस कहलाता है, उसके लिए संसार में कृपण शब्द का व्यवहार होता है। दानके लक्षणमें कहा है कि :—

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्। तत्वार्थ० अ० ७, सूत्र ३८.

अर्थात् जो पर अनुग्रहके लिए अपनी वस्तुका त्याग किया जाता है उसे दान कहते हैं। लोगों में फैले हुए अपवाद को दूर करने के लिये अपनी प्राणोंसे भी प्यारी वस्तु सीताका यदि मैं परित्याग नहीं कर सकता तो मेरे से बड़ा और कौन कृपण होगा। कितना यथार्थ चित्रण है रामकी मानसिक दशा का।

अन्तमें ग्रन्थकार स्वयं लिखते हैं कि :—

---

[1] पद्म० प० ९६, श्लो० ५९-६० [2] पद्म० प० ९६ श्लो० ६९-७० [3] पद्म प० ९६ श्लो० ७१

स्नेहापवादभयसंगतमानसस्य व्यामिश्रतीव्ररसवेगवशीकृतस्य ।
रामस्य गाढपरितापसमाकुलस्य कालस्तदा निरुपमः स बभूव कृच्छ्रः ॥[१]

अर्थात्—एक और जिनका चित्तगाढ़ स्नेहसे वशीकृत है और दूसरी ओर लोकापवाद से जिनका हृदय व्याकुल है, ऐसे स्नेह और अपवाद से व्याप्त चित्त रामका वह समय अत्यन्त कष्टप्रद था जिसकी उपमा अन्यत्र मिल नहीं सकती।

इस स्थितिमें सीताका परित्याग रामके लिए सचमुच महान त्याग का आदर्श उपस्थित करता है। यह एक ऐसी घटना है कि जिससे राम सच्चे राम बने और कल्पान्त-स्थायी उनका यश आज भी दिग्दिगन्त व्यापी है। यदि उनके जीवनमें यह घटना न घटती तो लोग राम-राज्य की याद भी इस प्रकार न करते।

सीता का आदर्श

सीताके परित्यागसे रामका नाम ही अमर नहीं हुआ बल्कि सीता भी अमर हो गई। यदि रामके कथानकमेंसे सीताका कथानक निकाल दिया जाय तो सारा कथानक निष्प्राण रह जायगा। सीताके प्रत्येक कार्य ने भारतीय ही नहीं अपितु संसारभर की स्त्रियों के सामने अनेक महान् आदर्श उपस्थित किए हैं। पतिकी विपत्तियों के समय सदा साथ रहना, दुर्जनोंके बीचमें पड़ जाने पर भी अपने पतिव्रत्यको सुरक्षित रखना, राम के द्वारा परित्याग किये जानेपर भी रामके प्रति जरा सा भी अन्यथा भाव मन में न लाना कितना बड़ा आदर्श है। जब राम का सेनापति सीताको भयंकर वनमें छोड़कर जाने लगता है तब सीता सेनापति से कहती है कि :—

सेनापते त्वया वाच्यो रामो मद्वचनादिदम्। यथा मत्त्यागजः कार्यो न विषादस्त्वया प्रभो ॥[२]

अर्थ—हे सेनापते ! तुम राम से कहना कि वे मेरे त्याग करनेका कोई विषाद न करें।

इनके बाद भी सीता रामके लिये संदेश देती है :—

अवलम्ब्य परं धैर्यं महापुरुष सर्वथा। सदा रक्ष प्रजां सम्यक् पितेव न्यायवत्सलः ॥[३]

अर्थात्—हे महापुरुष ! मेरे वियोगसे दुःखी न होकर और परम धैर्यका अवलम्बन कर सदा न्यायवत्सल हो कर पिताके समान प्रजाकी भले प्रकार रक्षा करना।

अहो धन्य सीते ! तुझे आगे आनेवाली अपनी विपत्तियोंका जरा भी ध्यान नहीं और प्रजाकी रक्षाका इतना ध्यान। इससे दो बातें बिल्कुल स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि राम के द्वारा अपने निर्वासित किये जाने से सीताको रामके प्रति जरा सा भी क्षोभ नहीं था। वे अच्छी तरह जानती थीं कि रामका मेरे प्रति अगाध स्नेह है और पूर्ण विश्वास पर प्रजाका ध्यान रखकर उन्हें मेरे परित्यागके लिए विवश होना पड़ा है। धन्य, पतिव्रते धन्य ! जो रामके द्वारा एक गर्भिणी अबला को संकटों से भरे हुए विकट वन में छोड़ दिये जाने पर भी तुझे पति के ऊपर जरा सा भी क्षोभ नहीं हुआ। और तेरा प्रजा-प्रेम भी रामसे कहीं बढ़कर है जो इस अपनी दारुण दशाके समय भी प्रजाका हित-चिंतन करते हुए रामको वात्सल्यसे भरे हुए उसकी रक्षा का संदेश दे रही है।

इससे आगे सीता सेनापतिको और भी संदेश देती है :—

संसाराद् दुःखनिर्घोरान्मुच्यन्ते येन देहिनः। भव्यास्तद्दर्शनं सम्यगाराधयितुमर्हसि ॥
साम्राज्यादपि पद्माभ तदेव बहु मन्यते। नश्यत्येव पुनाराज्यं दर्शनं स्थिरसौख्यदम् ॥[४]

---

[१]पद्म पर्व ९६, श्लो० ७२. [२]पर्व ९६, श्लो० ११७. [३]पर्व ९६, श्लो० ११८. [४]पर्व ९७, श्लो० १२०-१२२.

अर्थात् —जिस सम्यग्दर्शन के प्रभाव से भव्य जीव घोर संसार-सागर से पार उतरते हैं, हे राम ! तुम उस सम्यग्दर्शनकी भलीभांति आराधना करना । हे पद्मनाभ-पद्म ! वह सम्यग्दर्शन साम्राज्यसे भी बढ़कर है । राज्य तो नष्ट हो जाता है पर वह सम्यग्दर्शन स्थायी अविनश्वर सुख को देता है । सो हे पुरुषोत्तम राम ! ऐसे सम्यग्दर्शनको तुम किसी अभव्य पुरुष के द्वारा निन्दा किये जाने पर मत छोड़ देना जैसा कि लोकापवाद के भयसे मुझे छोड़ दिया है ।

कितना मार्मिक सन्देश है ।धन्य सीते धन्य ! जो तू इतनी बड़ी विपत्ति में पड़ने पर भी अपने प्रियका इतना दिव्य सन्देश दे रही है । सचमुच में तू सती-शिरोमणि और पतिव्रताओं में अग्रणी है ।

इसके बाद हम सीता के अतुल धैर्यको उस समय देखते हैं जब भामंडल आदि आकर पुंडरीक नगर से सीता को अयोध्या लाते हैं, सीता राम के पास भरी सभा में सामने जाती है, चिर-वियोगके बाद पति-मिलन की आशाएं हृदय में हिलोरें भर रही हैं, ऐसे समय में राम कहते हैं :—

ततोऽभ्यधायि रामेण सीते तिष्ठसि किं पुरः । अपसर्प न शक्तोऽस्मि भवतीमभिवीक्षितुम् ।।[1]

सीते सामने क्यों खड़ी है, यहां से हट जा, मैं तुझे नहीं देखना चाहता ।

सैंकड़ों वर्षोंके बाद और प्रियजनों के द्वारा अत्यन्त स्नेहपूर्ण आग्रह के साथ लाई जानेपर भी सीता ने जब रामके ये वचन सुने होंगे तो पाठक स्वयं ही सोचें कि उसकी उस समय क्या दशा हुई होगी ?

अन्तमें अपने को संभालकर और किसी प्रकार शक्ति बटोरकर सीताने रामसे कहा—राम, यदि तुम्हें छोड़ना ही था तो आर्यिकाओं के पास क्यों नहीं छुड़वा दिया । दोहलोंके पूरा करने का बहाना क्यों किया । क्या मेरे साथ भी तुम्हें यह मायाचार करना चाहिये था ? तब राम निरुत्तर हो जाते हैं और कहते हैं :—

रामो जनद जानामि देवि शील तवानघम् । मदनुव्रततां चोच्चैर्भावस्य च विशुद्धताम् ।।
परिवादमिमं किन्तु प्राप्ताऽसि प्रकटं परम् । स्वभावकुटिलस्वान्तामेतां प्रत्ययाय प्रजाम् ।।[2]

हे देवी ! मैं तेरे निर्दोष शीलव्रतको भले प्रकार जानता हूं, तुम्हारे भावों की विशुद्धता और तेरे अनुकूल पतिव्रत्यको भी खूब जानता हूं पर क्या करूं । तुम लोकापवाद को प्राप्त हुई, प्रजा स्वभाव से ही कुटिल चित्त होती है, उसे विश्वास पैदा करने के लिए ऐसा करना पड़ा है ।

अन्तमें सीता कहती है कि लोकमें सत्यकी परीक्षाके जितने प्रकार हैं मैं उन्हें करनेके लिए तैयार हूं । आप कहें तो मैं कालकूट विषका पान करूं, आप कहें तो मैं आशीविष सर्पके मुख में हाथ डालूं और यदि आप कहें तो प्रज्वलित अग्निकी ज्वाला में प्रवेश करूं । आप हर प्रकार से मेरे शीलकी परीक्षा कर सकते हैं पर इस प्रकार मेरा परित्याग समुचित नहीं । तब राम क्षण-एक चुप रहकर कहते हैं कि तू अग्निकुंड में प्रवेशकर अपने शीलकी परीक्षा दे । तब सीता अति हर्षित होकर अपनी स्वीकृति देती है । रामकी आज्ञानुसार तीन सौ हाथ लम्बा चौड़ा चौकोर अग्निकुंड तैयार किया गया और चारों ओरसे उसमें अग्नि लगा दी गई । सहस्रों नर-नारी सीता का सत्य देखने के लिए एकत्रित हुए । अग्निकुंड के चारों ओरसे प्रज्वलित हो जाने पर सीता अपने शीलकी परीक्षा देने के लिये उद्यत हुई । लोगों में हाहाकार मच गया । नाना मुखोंसे नाना प्रकारकी बातें होने लगीं । उस समय सीता परमेश्वर का ध्यान करके कहती है :—

कर्मणा मनसा वाचा रामं मुक्त्वा परं नरम् । समुद्वहामि न स्वप्नेऽप्यन्यं सत्यमिदं मम ।।
यद्येतदनृतं वच्मि तदा मामेष पावकः । भस्मसाद्भावमप्राप्तामपि प्रापयतु क्षणात् ।।[3]

इसी को एक दूसरे कविने कहा है :—

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह शरीरं पावके मामकीनं सुकृत-विकृत नीते देव साक्षी त्वमेव ।।

---

[1]पर्व १०४, श्लो० ६३. [2]पर्व १०४, श्लो० ७२-७३. [3]पर्व १०५, श्लो० २५-२६.

अर्थात्—यदि मैंने मन वचन कायसे जागते हुए या स्वप्नमें भी रामचन्द्रको छोड़कर अन्य पुरुषका चिन्तवन भी किया हो तो यह अग्नि मेरे शरीरको क्षण भर में भस्म कर डाले। हे देव! मेरे भले-बुरे कार्योंके विषयमें तुम्हीं साक्षी हो।

ऐसा कहकर सीताने अग्निकुंडमें प्रवेश किया। उसके बाद जो कुछ हुआ सो सर्व विदित है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध शीलके धारक हैं उन्हें संसारका कोई बड़े से बड़ा भी भय विचलित नहीं कर सकता।

लोग कहते हैं कि कथा ग्रंथों और पुराणोंमें क्या रक्खा है, उसके पढ़ने से क्या लाभ है? ऐसे लोगोंसे मैं कहना चाहता हूं कि सांसारिक प्रलोभनोंमें लुभानेवाली कथाओंके सुननेसे भले ही कोई लाभ न हो पर उन महापुरुषोंकी कथाएं हृदय पर अपना अमिट प्रभाव डाले बिना नहीं रहतीं। जिनके जीवनमें एकसे बढ़कर एक हिलनेवाली अनेक घटनाएं घटी हैं, नाना संकट आए हैं पर जो अपने प्रबल और अदमनीय उत्साह और पराक्रम द्वारा उनपर विजय प्राप्त करते हुए निरन्तर आगे उन्नति करते रहे और अन्त में महापुरुष बनकर संसारके सामने एक पवित्र आदर्श उपस्थित कर गए। स्वयं रामका जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है। उनके पवित्र चरित्रसे प्रभावित होकर रावण जैसे उनके प्रबल प्रतिपक्षी तकको अनेको वार उनकी प्रशंसा करनी पड़ी है।

इसके अतिरिक्त जब हम अनेको कथानकोंमें पुण्य-पापका फल प्रत्यक्ष देखते हैं तो उसका ऐसा गहरा प्रभाव हृदयपर पड़ता है कि आत्मा सांसारिक-जंजालोंसे उद्विग्न होकर उनसे मुक्ति पानेके लिए तिलमिला उठती है और हृदय में ये भाव निरन्तर प्रवाहित होने लगते हैं कि उपार्जित कर्मोंने जब महापुरुषों तकको नहीं छोड़ा तब हम कौन गिनती में हैं। ये ही वे भाव हैं जिनके द्वारा मनुष्य आत्म-कल्याणकी ओर प्रवृत्त होता है। अतः संसार स्थिति का यथार्थ चित्रण करनेवाले, पुण्य-पापका फल प्रत्यक्ष दर्शानेवाले, महर्षियों द्वारा रचे गए महापुरुषोंके चरित्रोंका अवश्य अध्ययन करना चाहिये।

दीर्घसूत्री मनुष्य

दीर्घसूत्री मनुष्य किस प्रकार पड़ा-पड़ा नाना प्रकार के विकल्प किया करता है, इसका बहुत सुन्दर चित्रण ग्रन्थकार ने भामडलकी मनोवृत्तिको लक्ष्य करके किया है। भाषाकारके शब्दोंमें जरा उसकी बानगी देखिए—

मैं यह प्राप्त सुलसूं पाले हैं, इसलिये कैयक दिन राज्यके सुख भोग कल्याणका कारण जो तप सो करूंगा। ये काम-भोग दुर्निवार हैं, जो इन कर पाप उपजेगा सो ध्यानरूप अग्निकर क्षणमात्रविषै भस्म करूंगा। × × × इत्यादि मनोरथ करता हुवा भामंडल सैंकड़ों वर्ष एक मुहूर्त ज्याईं व्यतीत करता भया। यह किया, यह करूं; यह करूंगा, ऐसा चिंतवन करता आयु का अन्त न जानता भया। एक दिन सतखणे महल के ऊपर सुन्दर सेज पर पौढ़ा हुता सो बिजुरी पड़ी अर तत्काल कालकूं प्राप्त भया।

दीर्घसूत्री मनुष्य अनेक विकल्प करै परन्तु आत्माके उद्धारका उपाय न करै। तृष्णाकरि हता क्षणमात्र हू साता न पावै। मृत्यु सिर पर फिरै ताकी सुधि नाहीं। क्षणभंगुर सुखके निमित्त दुर्बुद्धि आत्महित न करै। विषय वासनाकर लुब्ध भया अनेक भांति विकल्प करता रहै सो विकल्प कर्म-बन्धके कारण हैं। धन, यौवन, जीतव्य सब अस्थिर हैं। जो इनकूं अस्थिर जान सर्व परिग्रह त्याग कर आत्मकल्याण करै सो भवसागरमें न डूबै। अर विषयाभिलाषी जीव भवविषै कष्ट सहै। हजारों शास्त्र पढ़े अर शान्तता न उपजी तो क्या? अर एक ही पद कर शान्त दशा होय तो प्रशंसा योग्य है। × × × जो घने प्रमादी हैं अर नाना प्रकार के अशुभ उद्यम कर व्याकुल हैं उनकी आयु वृथा जाय है जैसे हथेली में आया रत्न जाता रहै। ऐसा जान समस्त लौकिक कार्यकूं निरर्थक मान दुःखरूप इन्द्रियों के सुख तिनकूं तज कर परलोक सुधारबेके अर्थ जिनशासनविषै श्रद्धा करहु। (देखो पृ० ६८१)

कितना मार्मिक चित्रण है और ग्रंथकार भामंडल के बहाने सर्व संसारी लोगों को मानो पुकारपुकार कर कह रहे हैं कि :—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब। पल में परलय होयगा, बहुरि करेगा कब॥

हिन्दीपद्मपुराण

उक्त संस्कृत पद्मचरित्रका हिन्दी अनुवाद 'पद्मपुराण' नामसे ही प्रसिद्ध है। जिस प्रकार हिन्दी संसार में तुलसी रामायण अत्यधिक प्रसिद्ध और घर-घर में प्रचलित है, उसी प्रकार जैनियोंके यहाँ और खासकर दिगम्बरों के यहाँ इस पद्मपुराण का अत्यधिक प्रचार है। दि० जैनियों का शायद ही ऐसा कोई मन्दिर हो जहाँ पद्मपुराण की १-२ हस्तलिखित प्रतियां न हों।

पद्मपुराण की हिन्दी वचनिका पं० दौलतरामजी ने विक्रम सं० १८२३ में की है। वे जयपुरके निवासी थे। उनकी जाति खंडेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। जयपुर में उनके एक परम मित्र श्री रायमल्लजी रहते थे, उनके अत्यन्त स्नेह और प्रेरणा से पं० दौलतराम जी ने यह भाषा टीका बनाई। वे स्वयं अपने शब्दों में लिखते हैं।

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट में स्व-परविवेक। दयावन्त गुणवन्त सुजान, पर-उपकारी परम निधान॥
दौलतरामसु ताको मित्र, तासों भाष्यो वचन पवित्र। पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ, तामें लोक शिखरको पंथ॥
भाषारूप होय जो येह, बहु जन बांच करें अति नेह। ताके वचन हियमें धार, भाषा कीनी मति-अनुसार॥

हिन्दीपद्मपुराण की भाषा

हिन्दी पद्मपुराण की भाषा ढुंढारी या राजस्थानी है। आज से १०० वर्ष पहिले जितने भी प्रसिद्ध दिगम्बर जैन विद्वान् हुए हैं, वे प्रायः जयपुर या उसके आस पास ही हुए हैं और उन्होंने अपने यहाँ जन-साधारण में प्रचलित राजस्थानी भाषा में ही अपने मौलिक या अनुवादित ग्रन्थ रचे हैं। फिर भी यह ढुंढारी भाषा इतनी श्रुति-मधुर और जन-प्रिय हुई है कि भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों के निवासी सभी दिगम्बर जैन उसे भलीभांति समझ लेते हैं।

प्रस्तुत संस्करण

इस हिन्दी भाषा वचनिका के कई संस्करण इससे पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं पर आज उसकी प्राप्ति असंभव सी हो रही थी। इसी बात को ध्यानमें रख कर श्री १०५ क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराज की प्रेरणानुसार सस्ती ग्रन्थमाला के संचालकों ने इसे प्रकाशित करने का निश्चय किया।

कितने ही लोगों की इच्छा थी कि भाषा को आज की हिन्दी के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय पर ऐसा न किया जा सका। इसके दो कारण रहे— एक तो यह कि प्राचीन लोगों को उक्त ढुंढारी भाषा ही अत्यन्त-प्रिय प्रतीत होती थी, दूसरा कारण यह कि उसका वर्तमान रूप परिवर्तित करना बहु समय-साध्य था। मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे पूज्य गुरु स्व० पं० घनश्यामदास जी न्यायतीर्थ ने ३५ वर्ष श्री० स्व० पं० उदयलालजी काशलीवाल की प्रेरणा से विशुद्ध हिन्दी में पद्मपुराण का अनुवाद किया था और जो प्रकाशनार्थ पं० उदयलालजी के पास बम्बई भेजा भी जा चुका था। असमय में दोनों विद्वानों के दिवंगत हो जाने से यह पता नहीं कि वह अनुवाद किसके पास है। यदि स्व० पं० उदयलालजी के उत्तराधिकारियों के पास वह अनुवाद सुरक्षित हो तो वे सस्ती ग्रन्थमाला को देने की कृपा करें जिससे आगामी संस्करण में उसे प्रकाशित किया जा सके।

प्रस्तुत संस्करण भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता से मुद्रित पद्मपुराण की कापी परसे छपाया गया है पर उसमें दि० जैन मन्दिर धर्मपुरा, देहली शास्त्र भंडार की हस्तलिखित प्रति से और मूल संस्कृत ग्रन्थ से मिलान कर यथास्थान आवश्यक संशोधन कर दिये गए हैं। कथानकों के मध्य आये हुए देश ग्राम और व्यक्तियों के जो अशुद्ध नाम अभी तक मुद्रित होते आ रहे थे, उन्हें शुद्ध कर दिया गया है।

—हीरालाल जैन

श्री शीतलप्रसाद जी (सोनीपत) ने अपना बहुमूल्य समय देकर इस ग्रंथ का संशोधन किया है। अतएव सस्ती ग्रंथ माला कमेटी उन की अत्यन्त आभारी है। फिर भी यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो उसे पाठकगण शुद्ध कर पढ़ने का प्रयत्न करेंगे और साथ ही ग्रन्थ माला को सूचित करदें जिससे कि आगामी संस्करण में उन्हें सुधारा जा सके।

पन्नालाल जैन

मन्त्री, सस्ती ग्रन्थ माला कमेटी, देहली।

विषयानुक्रमणिका

पर्व सं०	विषय	पृष्ठ सं०	पर्व सं०	विषय	पृष्ठ सं०

ॐ

॥ श्री सर्वज्ञजिनवाणी नमस्तस्यै ॥

शास्त्र--स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ओ३म्नमः सिद्धेभ्यः, ओ३म् जय जय जय, नमोस्तु ! नमोस्तु ! ! नमोस्तु ! ! !

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः ॥१॥

अविरल शब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का ।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥३॥

॥ श्री परमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं धर्मसम्बन्धकं, भव्य जीवमनः प्रतिबोधकारकं पुण्य प्रकाशकं, पाप प्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री पद्मपुराण नामधेयं, अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्रीसर्वज्ञ देवास्तदुत्तर ग्रंथकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री रविषेणाचार्य देव विरचितं । श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु ।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलम् ॥१॥
सर्व मङ्गलमांगल्यं, सर्व कल्याणकारकं ।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ॥२॥

पद्म-पुराण-भाषा

भाषाकार—स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी

प्रथम पर्व

—०—

॥ मगलाचरण ॥

दोहा—चिदानद चैतन्य के, गुण अनन्त उरधार।
भाषा पद्मपुराण की, भाषू श्रुति अनुसार ॥१॥
पंच परमपद पद प्रणमि, प्रणमि जिनेश्वर वानि।
नमि जिन प्रतिमा जिनभवन, जिन मारग उर आनि ॥२॥
ऋषभ अजित सभव प्रणमि, नमि अभिनन्दनदेव।
सुमति जु पद्म सुपार्श्व नमि, करि चन्द्राप्रभु सेव ॥३॥
पुष्पदत शीतल प्रणमि, श्री श्रेयांस को ध्याय।
वासुपूज्य विमलेश नमि, नमि अनतके पाय ॥४॥
धर्म शाति जिन कुन्थु नमि, और मल्लि यश गाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि नमि, नमि पारसके पाय ॥५॥
वर्द्धमान वरवीर नमि, सुरगुरुवर मुनि बद।
सकल जिनद मुनिद नमि, जैनधर्म अभिनन्द ॥६॥
निर्वाणादि अतीत जिन, नमो नाथ चौबीस।
महापद्म परमुख प्रभू, चौबीसो जगदीश ॥७॥

होंगे तिनको वंदिकर, द्वादशांग उरलाय।
सीमंधर आदिक नमूं, दश दूने जिन राय ॥८॥
विरहमान भगवान ये, क्षेत्र विदेह मझारि।
पूजैं जिनको सुरपती, नागपती निरधार ॥९॥
द्वीप अढाईके विषैं, भये जिनेन्द्र अनंत।
होंगे केवलज्ञानमय, नाथ अनन्तानन्त ॥१०॥
सबको वंदन कर सदा, गणधर मुनिवर ध्याय।
केवलि श्रुतिकेवलि नमूं, आचारज उवझाय ॥११॥
वंदू शुद्ध स्वभावको, धर सिद्धनको ध्यान।
संतनको परणामकर, नमि दृग व्रत निज ज्ञान ॥१२॥
शिवपुर दायक सुगुरु नमि, सिद्धलोक यश गाय।
केवलदर्शन ज्ञानको पूजूं, मन वच काय ॥१३॥
यथाख्यात चारित्र अरु, क्षपकश्रेणि गुण ध्याय।
धर्म शुक्ल निज ध्यान को, वंदू भाव लगाय ॥१४॥
उपशम वेदक क्षायिका, सम्यग्दर्शन सार।
कर वंदन समभावको, पूजूं पंचाचार ॥१५॥
मूलोत्तर गुण मुनिनके, पंच महाव्रत आदि।
पंच समिति और गुप्तत्रय, ये शिवमूल अनादि ॥१६॥
अनित्य आदिक भावना, सेऊं चित्त लगाय।
अध्यातम आगम नमूं, शान्ति भाव उरलाय ॥१७॥
अनुप्रेक्षा द्वादश महा, चितवें श्रीजिनराय।
तिनकी स्तुति करि भावसों, षोडश कारण ध्याय ॥१८॥
दशलक्षणमय धर्मकी, धर सरधा मन मांहि।
जीवदया सत शील तप, जिनकर पाप नसाहिं ॥१९॥
तीर्थंकर भगवान के, पूजूं पंच कल्याण।
और केवलिको नमूं, केवल अरु निर्वाण ॥२०॥
श्रीजिन तीरथ क्षेत्र नमि, प्रणमि उभय विधि धर्म।
श्रुतिकर चहुं विधि संघको, तजकर मिथ्याभर्म ॥२१॥

वंदूं गौतम स्वामिके, चरण कमल सुखदाय।
वंदूं धर्म मुनीन्द्रको, जम्बूकेवलि ध्याय ॥२२॥
भद्रबाहुको कर प्रणमि, भद्रभाव उरलाय।
वंदि समाधि सुतंत्रको, ज्ञानतने गुण गाय ॥२३॥
महा धवल अरु जयधवल, तथा धवल जिनग्रन्थ।
वंदूं तन मन वचन कर, जे शिवपुरके पंथ ॥२४॥
षट्पाहुड नाटक जु त्रय, तत्वारथ सूत्रादि।
तिनको वंदूं भाव कर, हरें दोष रागादि ॥२५॥
गोमटसार अगाधि श्रुत, लब्धिसार जगसार।
क्षपणसार भवतार है, योगसार रस धार ॥२६॥
ज्ञानार्णव है ज्ञानमय, नमूं ध्यान का मूल।
पद्मनंदि पच्चीसिका, करे कर्म उन्मूल ॥२७॥
यत्नाचार विचार नमि, नमूं श्रावकाचार।
द्रव्यसंग्रह नयचक्र फुनि, नमूं शांति रसधार ॥२८॥
आदिपुराणादिक सबै, जैन पुराण बखान।
वंदूं मन वच काय कर, दायक पद निर्वाण ॥२९॥
तत्वसार आराधना, सार महारस धार।
परमातम परकाशको, पूजूं बारम्बार ॥३०॥
वंदूं विशाखाचार्यवर, अनुभव के गुण गाय।
कुन्दकुन्द पद धोक दे, कहूँ कथा सुखदाय ॥३१॥
कुमुदचंद्र अकलंक नमि, नेमिचंद्र गुण ध्याय।
पात्रकेशरीको प्रणमि, समंतभद्र यशगाय ॥३२॥
अमृतचंद्र यतिचंद्र को, उमास्वामि को वंद।
पूज्यपादको कर प्रणमि, पूजादिक अभिनंद ॥३३॥
ब्रह्मचर्यव्रत वंदिके, दानादिक उर लाय।
श्रीयोगीन्द्र मुनीन्द्रको, वंदूं मन वच काय ॥३४॥
वंदूं मुनि शुभचंद्र को, देवसेनको पूज।
करि वंदन जिनसेन को, जिनके सम नहिं दूज ॥३५॥

पद्मपुराण निधान को, हाथ जोड़ि सिरनाय।
ताकी भाषा बचनिका, भाषूं सब सुखदाय ॥३६॥
पद्म नाम बलभद्रका, रामचन्द्र बलभद्र।
भये आठवें धार नर, धारक श्री जिनमुद्र ॥३७॥
ता पीछे मुनिसुव्रतके, प्रगटे अति गुणधाम।
सुरनरवंदित धर्ममय, दशरथ के सुत राम ॥३८॥
शिवगामी नामी महा, ज्ञानी करुणावंत।
न्यायवंत बलवंत अति, कर्म हरण जयवंत ॥३९॥
जिनके लक्ष्मण वीर हरि, महाबली गुणवंत।
भ्रातभक्त अनुरक्त अति, जैनधर्म यशवंत ॥४०॥
चन्द्र सूर्य से वीर ये, हरैं सदा परपीर।
कथा तिनोंकी शुभ महा, भाषी गौतम धीर ॥४१॥
सुनी सबै श्रेणिक नृपति, धर सरधा मन मांहि।
सो भाषी रविषेणने, यामें संशय नांहि ॥४२॥
महा सती सीता शुभा, रामचंद्र की नारि।
भरत शत्रुघ्न अनुज हैं, यही बात उर धारि ॥४३॥
तद्भव शिवगामी भरत, अरु लव अंकुश पूत।
मुक्त भये मुनिवरत धरि, नमैं तिने पुरहूत ॥४४॥
रामचन्द्रको करि प्रणमि, नमि रविषेण ऋषीश।
रामकथा भाषूं यथा, नमि जिन श्रुति मुनिईश ॥४५॥

[मूलग्रन्थकारका मंगलाचरण]

सिद्धं सम्पूर्णभव्यार्थसिद्धेःकारणमुत्तमम्।
प्रशस्य-दर्शन-ज्ञान-चारित्रप्रतिपादनम् ॥१॥
सुरेन्द्रमुकुटाश्लिष्ट-पादपद्मांशु-केसरम्।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥२॥

अर्थ—सिद्ध कहिए कृतकृत्य हैं और सम्पूर्ण भए हैं सर्व सुन्दर अर्थ जिनके अथवा जो भव्य जीवोंके सर्व अर्थ पूर्ण करै हैं, आप उत्तम अर्थात् मुक्त है अर औरोंको मुक्तिके कारण हैं प्रशंसा योग्य दर्शन ज्ञान और चारित्रके प्रकाशनहार हैं। बहुरि सुरेन्द्रके मुकटकर

पूज्य हैं, किरणरूप केसर ताको धरें चरणकमल जिनके, ऐसे भगवान् महावीर, जो तीन लोक के प्राणियोंको मंगलरूप हैं, तिनको नमस्कार करूं हूं।

भावार्थ–सिद्ध कहिए मुक्ति अर्थात् सर्व बाधा रहित उपमा रहित अनुपम अविनाशी जो सुख ताकी प्राप्तिके कारण श्रीमहावीर स्वामी जो काम, क्रोध, मान, मद, माया, मत्सर, लोभ, अहंकार, पाखण्ड, दुर्जनता, क्षुधा, तृषा, व्याधि, वेदना, जरा, भय, रोग, शोक, हर्ष, जन्म, मरणादि रहित हैं। शिव कहिए अविनश्वर हैं। द्रव्यार्थिकनय से जिनकी आदि भी नाहीं और अन्त भी नाहीं; अछेद्य, अभेद्य, क्लेशरहित, शोकरहित, सर्वव्यापी, सर्वसम्मुख, सर्वविद्याके ईश्वर हैं। यह उपमा औरों को नाहीं बने है। जो मीमांसक, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, बौद्धादिक मत हैं तिनके कर्ता जैमिनि, कपिल, काणभिक्ष, अक्षपाद, कणाद अर बुद्ध हैं वे मुक्तिके कारण नाहीं। जटा, मृगछाला, वस्त्र, अस्त्र, शस्त्र, स्त्री, रुद्राक्ष अर कपालमालाके धारक हैं और जीवोंके दहन घातक छेदनविषैं प्रवृत्त हैं। विरुद्ध अर्थ कथन करनेवाले हैं। मीमांसक तो धर्मका अहिंसा लक्षण बताय हिंसाविषैं प्रवर्त्तें हैं और सांख्य जो हैं सो आत्माको अकर्ता और निर्गुण भोक्ता मानैं हैं और प्रकृतिकर्ता मानै हैं। नैयायिक वैशेषिक आत्मा को ज्ञान रहित जड़ मानैं हैं और जगतकर्ता ईश्वर मानै हैं। बौद्ध क्षण-भंगुर मानें हैं। शून्यवादी शून्य मानैं हैं और वेदान्तवादी एक ही आत्मा त्रैलोक्यव्यापी नर नारक देव तिर्यंच मोक्ष सुख दुःखादि अवस्था विषैं मानैं हैं इसलिए ये सर्व ही मुक्तिके कारण नाहीं। मोक्ष का कारण एक जिन शासन ही है जो सर्व जीवमात्रका मित्र है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का प्रगट करने वाला है ऐसे जिन शासनको श्रीवीतरागदेव प्रगटकर दिखावैं हैं। कैसे हैं श्रीवर्द्धमान वीतरागदेव व सिद्ध कहिये जीवनमुक्त हैं और सर्व अर्थकरि पूर्ण हैं, मुक्तिके कारण हैं, सर्वोत्तम हैं और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रके प्रकाशनहारे हैं। बहुरि कैसे हैं, इन्द्रनिके मुकटनिकरि स्पर्शे गये हैं चरणारविंद जिनके ऐसे श्रीमहावीर वर्द्धमान, सन्मतिनाथ अन्तिम तीर्थंकर तिनकूं नमस्कार करूं हूं। तीनलोकके सर्वप्राणियोंको महामंगलरूप हैं, महायोगीश्वर हैं, मोह मल्लके जीतनहारे हैं, अनंत बलके धारक हैं, संसार समुद्रविषैं डूब रहे जे प्राणी तिनके उद्धार करनहारे हैं। शिव, विष्णु, दामोदर, त्र्यम्बक, चतुर्मुख, बुद्ध, ब्रह्मा, हरि, शंकर, रुद्र, नारायण, हरि, भास्कर, परममूर्ति इत्यादि जिनके अनेक नामहैं तिनकों शास्त्रकी आदि विषैं महा मंगल के अर्थि सर्व विघ्नके विनाशवे निमित्त मन वचन कायकरि नमस्कार करूं हूं।

इस अवसर्पिणी काल में प्रथम ही भगवान श्रीऋषभदेव भए; सर्व योगीश्वरोंकेनाथ, सर्व विद्याके निधान स्वयम्भू तिनको हमारा नमस्कार होहु। जिनके प्रसाद कर अनेक भव्य जीव भव सागरसे तिरे। बहुरि दूजे श्री अजितनाथ स्वामी, जीते हैं बाह्य अभ्यंतर

शत्रु जिन्होंने, हमको रागादि रहित करहु। अर तीजे संभवनाथ, जिनकरि जीवनको सुख होय और चौथे श्रीअभिनंदन स्वामी आनन्दके करनहारे हैं। पांचवें सुमति के देनहारे सुमतिनाथ मिथ्यात्व के नाशक हैं और छठे श्रीपद्मप्रभु, ऊगते सूर्यकी किरणोंकरि प्रफुल्लित कमल के समान है प्रभा जिनकी। सातवें श्रीसुपार्श्वनाथ स्वामी सर्वके वेत्ता सर्वज्ञ सबके निकटवर्त्ती ही हैं। शरद की पूर्णमासीके चन्द्रमा समान है प्रभा जिनकी ऐसे आठवें श्रीचन्द्रप्रभु ते हमारे भवताप हरो। प्रफुल्लित कुन्दके पुष्प समान उज्ज्वल हैं दंत जिनके ऐसे नवमे श्रीपुष्पदंत जगतके कंत हैं। दशवें श्रीशीतलनाथ शुक्ल ध्यानके दाता परम इष्ट ते हमारे क्रोधादिक अनिष्ट हरो। जीवोंको सकल कल्याणके कर्ता धर्मके उपदेशक ग्यारहवे श्रेयाँसनाथ स्वामी ते हमको परम आनन्द करो। देवों कर पूज्य संतों के ईश्वर कर्म शत्रुओंके जीतनेहारे बारहवें श्रीवासुपूज्य स्वामी ते हमको निज वास देवो। संसारके मूल जो रागादि मल तिनसे अत्यन्त दूर ऐसे तेरहवें श्री विमलनाथ देव ते हमारे कर्मकलंक हरो। अनन्त ज्ञानके धारनहारे, सुन्दर है दर्शन जिनका ऐसे चौदहवें श्रीअनंतनाथ देवाधिदेव हमको अनंत ज्ञानकी प्राप्ति करो। धर्मकी धुराके धारक पंद्रहवें श्रीधर्मनाथ स्वामी हमारे अधर्मको हरकर परम धर्मकी प्राप्ति करो। जीते हैं ज्ञानावरणादिक शत्रु जिन्होंने ऐसे श्रीशांतिनाथ परम शांत हमको शांतभावकी प्राप्ति करो। कुन्थु आदि सर्व जीवों के हितकारी सतरहवें श्रीकुन्थुनाथ स्वामी हमको भ्रमरहित करो। समस्तक्लेशसे रहित मोक्षके मूल अनंत सुखके भण्डार अठारहवें श्रीअरनाथ स्वामी कर्मरज रहित करो। संसारके तारक मोह मल्लके जीतनहारे बाह्याभ्यन्तर मलरहित ऐसे उन्नीसवे श्रीमल्लिनाथ स्वामी ते अनंतवीर्यकी प्राप्ति करो। भले व्रतोंके उपदेशक अर समस्त दोषोंके विदारक बीसवें श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनके तीर्थविषैं श्रीरामचन्द्र का शुभचरित्र प्रगट भया ते हमारे अव्रत मेट महाव्रत की प्राप्ति करो। नम्रीभूत भये हैं सुर नर असुरों के इन्द्र जिनको ऐसे इक्कीसवें श्रीनमिनाथ प्रभु ते हमको निर्वाणकी प्राप्ति करो। समस्त अशुभ कर्म तेई भये अरिष्ट तिनके काटवेकूं चक्रकी धारा समान। बाइसवें श्रीअरिष्ट नेमि भगवान् हरिवंश के तिलक श्रीनेमिनाथ स्वामी ते हमको यम नियमादि अष्टांग योग की सिद्धि करो। तेइसवें श्री पार्श्वनाथ देवाधिदेव इन्द्र नागेन्द्र चन्द्र सूर्यादिक कर पूजित हमारे भव संताप हरो। चौबीसवे श्रीमहावीर स्वामी जो चतुर्थकालके अन्तमें भये हैं ते हमारे महा मंगल करो। जो और भी गणधरादिक महामुनि तिनकों मन, वचन, काय कर बारम्बार नमस्कार कर श्रीरामचन्द्र के चरित्रका व्याख्यान करूँ हूँ।

कैसे हैं श्रीराम, लक्ष्मी-कर आलिंगित है हृदय जिनका और प्रफुल्लित है मुखरूपी कमल जिनका, महा पुण्याधिकारी हैं, महाबुद्धिमान् हैं, गुणनके मंदिर, उदार है चरित्र

जिनका, जिनका चरित्र केवलज्ञानके ही गम्य है ऐसे जो श्री रामचन्द्र उनका चरित्र श्रीगणधरदेव ही किंचित् मात्र कहने को समर्थ हैं। यह बड़ा आश्चर्य है कि जो हम सारिखे अल्प बुद्धि पुरुष भी उनके चरित्रको कहैं हैं। यद्यपि हम सारिखे इस चरित्र की कहनेको समर्थ नाहीं तथापि परंपरा से महामुनि जिस प्रकार कहते आये हैं उनके कहे अनुसार कुछ इक संक्षेपता कर कहैं हैं। जैसे जिस मार्गविषैं मदमाते हाथी चालैं तिस मार्ग विषैं मृग भी गमन करैं हैं और जैसे युद्धविषैं महा सुभट आगे होय कर शस्त्रपात करैं हैं तिनके पीछैं और भी पुरुष रणविषैं जाय हैं अर सूर्य करि प्रकाशित जे पदार्थ तिनकूं नेत्रवारे लोक सुखसूं देखै हैं अर जैसैं वज्रसूची के मुख करि भेदी जो मणि उस विषैं सूत्र भी प्रवेश करैं हैं तैसे ज्ञानीनकी पंकतिकर भाषा हुआ चला आया जो राम सम्बन्धी चरित्र ताके कहने को भक्ति कर प्रेरी जो हमारी अल्प बुद्धि सो भी उद्यमवती भई है। बड़े पुरुषके चितवन कर उपजा जो पुण्य ताके प्रसाद कर हमारी शक्ति प्रकट भई है। महापुरुषनके यशकीर्तनसे बुद्धिकी वृद्धि होय है और यश अत्यन्त निर्मल होय है और पाप दूर जाय हैं। यह प्राणनका शरीर अनेक रोगोंकर भरा है। इसकी स्थिति अल्पकाल है और सत्पुरुषनकी कथाकर उपजाया जो यश सो जबतक चांद सूर्य्य हैं तब तक रहै है। इसलिये जो आत्मवेदी पुरुष हैं वे सर्व यत्नकर महापुरुषनिके यश कीर्त्तनसे अपना यश स्थित करैं हैं। जिसने सज्जनों को आनन्दकी देनहारी जो सत्पुरुषनकी रमणीक कथा उसका आरम्भ किया उसने दोनों लोक का फल लिया।

जो कान सत्पुरुषनकी कथा श्रवण विषैं प्रवर्त्तैं हैं वे ही कान उत्तम हैं और जे कु-कथाके सुननहारे कान हैं वे कान नाहीं, वृथा आकार धरैं हैं और जे मस्तक सत्पुरुषनकी चेष्टाके वर्णन विषैं घूमे हैं ते ही मस्तक धन्य हैं और जे शेष मस्तक हैं वे थोथे नारियल समान जानने। सत्पुरुषनके यश कीर्तन विषैं प्रवृत्त जे होठ ते ही श्रेष्ठ हैं और जे शेष होठ हैं ते जोंककी पीठ समान विफल जानने। जे पुरुष सत्पुरुषनकी कथा के प्रसंग विषैं अनुरागको प्राप्त भये उनहीका जन्म सफल है। मुख वे ही हैं जो मुख्य पुरुषनिकी कथा विषैं रत भये, शेष मुख दांतरूपी कीडानका भरा हुआ बिल समान हैं और जे सत्पुरुषनिकी कथाके वक्ता हैं अथवा श्रोता हैं सो ही पुरुष प्रशंसा योग्य हैं और शेष पुरुष चित्राम समान जानने। गुण और दोषनिके संग्रहविषैं जे उत्तम पुरुष हैं ते गुणनहीकों ग्रहण करै हैं जैसे दुग्ध और पानीके मिलापविषैं हंस दुग्धहीकों ग्रहण करै है और गुण-दोषनिके मिलाप विषैं जे नीच पुरुष हैं ते दोषहीकों ग्रहण करै हैं जैसे गजके मस्तकविषैं मोती मांस दोऊ हैं तिनविषैं काग मोतीकों तज मांस ही कों ग्रहण करै हैं। जो दुष्ट हैं ते निर्दोष

रचनाकों भी दोष रूप देखें हैं जैसे उल्लू सूर्यके बिम्बकौं तमालवृक्ष के पत्र समान श्याम देखें हैं। जे दुर्जन हैं ते सरोवरमें जल आनेकी जाली समान हैं जैसे जाली जलको तज तृण पत्रादि कंटकादिकको ग्रहण करै है तैसे दुर्जन गुणकौं तज दोषनहीकौं धारैं हैं। इसलिये सज्जन और दुर्जन का ऐसा स्वभाव जानकर जो साधु पुरुष हैं वे अपने कल्याण निमित्त सत्पुरुषनकी कथा के प्रबन्ध विषैंही प्रवृत्तैं हैं। सत्पुरुषनकी कथाके श्रवणसे मनुष्योंको परम सुख होय है। जे विवेकी पुरुष हैं उनको धर्मकथा पुण्यके उपजावने का कारण है सो जैसा कथन श्री वर्द्धमान जिनेन्द्रकी दिव्यध्वनिमें खिरा तिसका अर्थ गौतम गणधर धारते भये और गौतमसे सुधर्माचार्य धारते भए ता पीछे जम्बू स्वामी प्रकाशते भये। जम्बूस्वामीके पीछे पांच श्रुत केवली और भये, वे भी उसी भांति कथन करते भए। इसी प्रकार महापुरुषनकी परम्परा कथन चला आया, उसके अनुसार रविषेणाचार्य व्याख्यान करते भए। यह सर्व रामचन्द्र का चरित्र सज्जन पुरुष सावधान होकर सुनो। यह चरित्र सिद्ध पदरूप मंदिरकी प्राप्तिका कारण है और सर्वप्रकारके सुखका देनेहारा है। और जे मनुष्य श्रीरामचन्द्रको आदि दे जे महापुरुष तिनको चिंतवन करैं हैं वे अतिषयकर भावनके समूहकर नम्रीभूत होय प्रमोद कों धरै हैं, तिनका अनेक जन्मो का संचित किया जो पाप सो नाश को प्राप्त होय है और जे सम्पूर्ण पुराणका श्रवण करैं तिनका पाप दूर अवश्य ही होय, यामें सन्देह नाहीं। कैसा है पुराण ? चन्द्रमा समान उज्ज्वल है इसलिये जे विवेकी चतुर पुरुष हैं ते इस चरित्र का सेवन करैं। यह चरित्र बड़े पुरुषनिकर सेवने योग्य है।

इस ग्रन्थविषैं छह महा अधिकार हैं तिन विषैं अवांतर अधिकार बहुत हैं। मूल अधिकारनिके नाम कहे हैं। प्रथम ही १ लोकस्थिति, बहुरि २ वंशनिकी उत्पत्ति, पीछे ३ वन. विहार अर संग्राम तथा ४ लवणांकुश की उत्पत्ति, बहुरि ५ भव निरूपण अर ६ रामचन्द्र का निर्वाण। श्रीवर्धमान देवाधिदेव सर्व कथन के वक्ता हैं, जिनको अतिवीर कहिये वा महावीर कहिये हैं। रामचरित्रके कारण श्रीमहावीर स्वामी हैं तातैं प्रथम ही तिनका कथन कीजिये है। विपुलाचल पर्वतके शिखिर पर समोसरणविषैं श्रीवर्द्धमान स्वामी विराजे। तहां श्रेणिक राजा गौतम स्वामीसों प्रश्न करते भए। कैसे हैं गौतम स्वामी, भगवान के मुख्य गणधर महा महंत हैं जिनका इन्द्रभूत भी नाम है। आगे श्रीगौतम स्वामी कहे हैं तहां प्रश्नविषै प्रथम ही युगनिका कथन है। बहुरि कुलकरनिकी उत्पत्ति, अकस्मात् चन्द्र सूर्यके अवलोकनतैं जुगलियानिकू भय का उपजना सो प्रथम कुलकर प्रतिश्रुतके उपदेशतैं भयका दूर होना, बहुरि नाभिराजा अन्तके कुलकर तिनके घर श्रीऋषभदेवका जन्म, सुमेरु पर्वत विषैं इन्द्रादिक देवनिकरि जन्माभिषेक, बहुरि

बाललीला अर राज्याभिषेक, कल्पवृक्षनिके वियोग करि उपज्या प्रजानिकूं दु:ख सो कर्मभूमिकी विधिके बतावने करि दूर होना, बहुरि भगवान का वैराग्य, केवलोत्पत्ति, समोसरन की रचना, जीवनकूं धर्मोपदेश बहुरि भगवान का निर्वाणगमन, भरत चक्रवर्ती अर बाहुबलि के परस्पर युद्ध बहुरि विप्रनिकी उत्पत्ति, इक्ष्वाकुग्रादि वंशनिका कथन, विद्याधरनिका वर्णन, तिनके वंश विषैं राजा विद्युद्दंष्ट्रका जन्म, संजयंत स्वामीकूं विद्युद्दंष्ट्र ने उपसर्ग किया सो उपसर्ग सह करि अंतकृत केवली होइ करि निर्वाण गए, विद्युद्दंष्ट्र ने उपसर्ग किया यह जानि धरणेन्द्रने तासूं कोप किया, ताकी विद्या छेद करी, बहुरि श्रीअजितनाथ स्वामीका जन्म, पूर्णमेघ विद्याधर भगवान् के शरणै आया। राक्षसद्वीप का स्वामी व्यन्तरदेव, ताने प्रसन्न होय पूर्णमेघकूं राक्षस द्वीप दिया। बहुरि सगर चक्रवर्तीकी उत्पत्तिका कथन, पुत्रनिके दु:खकरि दीक्षा ग्रहण अर मोक्ष प्राप्ति, पूर्णमेघके वंशविषैं महारक्षका जन्म, अर वानरवंशी विद्याधरनिकी उत्पत्ति कथन, बहुरि विद्युत्केश विद्याधरका चरित्र, बहुरि उदधिविक्रम अर अमरविक्रम विद्याधरका कथन, वानरवंशीनिकैं किष्किधापुर का निवास अर अन्धक विद्याधर का कथन, श्रीमाला विद्याधरी का संयम, विजयसंघके मरणतैं अशनिवेगके क्रोधका उपजना और सुकेशीके पुत्रनिका लंका आवनेका निरूपण, निर्धात विद्याधरके वधतैं माली नाम विद्याधर-रावणके दादेका बड़ा भाई, ताके सम्पदाकी प्राप्तिका कथन, विजयार्ध की दक्षिणकी श्रेणी विषैं रथनूपुर नगर में इन्द्रनामा विद्याधरका जन्म, इन्द्र सर्व विद्याधरनिका अधिपति है ताका वर्णन। इन्द्रके अर मालीके युद्धविषैं मालीका मरण, लंकाविषैं इन्द्रका राज्य, वैश्रवण नामा विद्याधरका थाणै रहना, सुमालीके पुत्र रत्नश्रवाका पुष्पांतक नामा नगर बसावना, केकसीका परणना, केकसी के शुभस्वप्नका अवलोकन, रावणका जन्म अर विद्यानि का साधन, विद्यानिके साधनविषैं अनावृत देव आय विघ्न किया, तहां रावणका अचल रहना बहुरि विद्या सिद्ध होना अर अनावृत देव का वश होना, अपने नगर आय माता पितासूं मिलना, बहुरि अपने पिताका पिता जो सुमाली, ताकूं बहुत आदरसों बुलावना, बहुरि मंदोदरी का रावण सों विवाह और बहुत राजानिकी कन्याका व्याहना, कुम्भकरण का चरित्र, वैश्रवणका कोप, यक्ष राक्षस कहावैं ऐसे विद्याधर तिनका बड़ा संग्राम, वैश्रवण का भागना बहुरि तप धरणा अर रावणका लंकामें कुटुम्ब सहित आवना अर सर्व राक्षसनिकूं धीरज वंधावना अर ठौर-ठौर जिनमन्दिरका निर्मापण करना अर जिनधर्म का उद्योत करना और श्रीहरिषेण चक्रवर्ती का चरित्र राजा सुमाली ने रावणकूं कह्या, सो भाव सहित सुनना। कैसा है हरिषेण चक्रवर्ती का चरित्र-पापनिका नाश करणहारा, बहुरि त्रिलोकमण्डन हाथीका वश करना अर राजा इन्द्रका लोकपाल यमनामा विद्याधर,

ताने वानरवंशी के राजा सूर्यरजकूं पकरि बंदीखाने डार्या सो रावण सम्मेदशिखर की यात्राकरि डेरा आये थे सो सूर्यरजके समाचार सुनि ताही समै गमन करना अर जाय यमकूं जीतना। यमके थाने उठावना अर याका भाजना, राजा सूर्यरजकूं बंदीतें छुड़ावना अर किहकंधापुरका राज्य देना। बहुरि रावणकी बहिन सूर्पनखा, ताकूं खरदूषण हरि ले गया सो वाहीकूं परिणाय देना अर ताहि पाताल लंकाका राज देना, सो खरदूषण का पाताल लंका जाना, चन्द्रोदरकौं युद्धविषैं हनना, चंद्रोदरकी रानी अनुराधाकूं पतिके वियोगतैं महादुःखका होना, चन्द्रोदरके पुत्र बिराधित का राज्यभ्रष्ट होय कहूं का कहू रहना, बाल्य का वैराग्य होना, सुग्रीवकूं राज्यकी प्राप्ति, कैलाम पर्वतविषै बाल्यका विराजना, रावणका बाल्यसूं कोपकरि कैलास उठावना, चैत्यालयनि की भक्ति निमित्त बाल्यने पगका अंगुष्ठ दाब्या तब रावणका दाबकर रोवना, अर रानीनिकी विनतीतें बाली का अंगुष्ठ का ढीला करना।

अर बाल्य के भाई सुग्रीव का सुतारासूं विवाह, अर साहसगति विद्याधरक सुतारा की अभिलाषा हुती सो अलाभतें संताप का होना, राजा अनारण्य अर सहस्त्ररश्मि का वैराग्य होना, अर रावण ने यज्ञ नाश किया ताका वर्णन, अर राजा मधुके पूर्वभवका व्याख्यान, अर रावण की पुत्री उपरम्भाका मधुसों विवाह अर रावणका इन्द्रपर जाना, इन्द्र विद्याधर कों युद्धकरि जीतना, पकरिकर लंकामें ल्यावना बहुरि छोड़ना, ताका वैराग्य लेय निर्वाण होना, रावणका प्रताप, अर सुमेरु पर्वत पर गमन, बहुरि पाछा आवना, अर अनन्तवीर्य मुनिकूं केवलज्ञान की प्राप्ति, रावणका नेम ग्रहण—जो परस्त्री मोहि न अभिलाषै ताहि मैं न सेऊं, बहुरि हनुमान की उत्पत्ति, कैसे हैं हनुमान ? बानरवन्शीनिविषैं महात्मा हैं, कैलाश पर्वतविषैं अंजनी का पिता जो राजा महेन्द्र ताने पवनंजय का पिता जो राजा प्रह्लाद तासौं सम्भाषण किया—जो हमारी पुत्री का तुम्हारे पुत्र सूं सम्बन्ध करहु। सो राजा प्रह्लाद ने प्रमाण किया। अंजनी का पवनजयसूं विवाह बहुरि पवनंजय का अंजनीसौं कोप, अर चकवा चकवी के वियोगका वृत्तांत देखि अंजनीसूं प्रसन्न होना, अंजनीके गर्भ रहना अर हनुमान के पूर्व जन्म वन में अंजनीकूं मुनिने कहे। अर हनुमान का गिरिकी गुफा विषै जन्म, बहुरि अनुरुद्ध द्वीप में वृद्धि, प्रतिसूर्य मामा ने अंजनी कूं बहुत आदरसों राखी, बहुरि पवनंजयका भूताटवी विषैं प्रवेश अर पवनंजयके हाथीकूं देखि प्रतिसूर्यका तहां आवना, पवनंजयकूं अंजनी के मिलाप का परम उत्साह होना, पुत्र का मिलाप होना, पवनंजय का रावण के निकट जाना। रावणकी आज्ञातैं वरुणसूं युद्ध करि ताहि जीतना। रावणके बड़े राज्यका वर्णन, तीर्थंकरों की आयुकाय

अन्तरालका वर्णन। बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, चक्रवर्तीनिके सकल चारित्रका वर्णन। राजा दशरथ की उत्पत्ति, केकईकूं वरदान का देना अर राम, लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न का जन्म, सीताकी उत्पत्ति, भामण्डलका हरणा अर ताकी माताकूं शोक का होना। अर नारद ने सीता का चरित्र चित्रपट भामण्डलकूं दिखाया सो देखकर मोहित होना। बहुरि जनकके स्वयंवर मंडप का वृत्तांत अर धनुष रतनका स्वयंवर मंडपमें धरना, श्रीरामचन्द्रका आवना, धनुषका चढ़ावना अर सीताकूं विवाहना अर सर्वभूत शरण्य मुनिके निकट दशरथका दीक्षा लेना, अर भामण्डलको पूर्व जन्मका ज्ञान होना अर सीता का दर्शन। बहुरि केकयीके वरतैं भरतका राज्य, अर राम लक्ष्मण सीताका दक्षिण दिशाकूं गमन करना। वज्रकरण का चरित्र, लक्ष्मणकूं कल्याणमालाका लाभ, अर रुद्रभूतकौं वशमें करना अर बालखिल्यका छुड़ावना, अर अरुण ग्रामविषें श्रीराम आए, तहां वन में देवतानि ने नगर बसाए तहां चौमासे रहना। लक्ष्मणके वनमाला का संगम, अतिवीर्यका वैराग्य, बहुरि लक्ष्मण के जितपद्माकी प्राप्ति, अर कुलभूषण देशभूषण मुनि का चरित्र, श्रीराम ने वंशस्थल पर्वतविषें भगवान के मन्दिर निर्माण कराए तिनका वर्णन, अर जटायु पक्षीकूं व्रत प्राप्ति, पात्रदानके फल की महिमा, संबूकका मरण, सूर्पनखाका विलाप, खरदूषणसूं लक्ष्मण का युद्ध, सीताका हरण, सीताकूं रामके वियोग का अत्यन्त शोक, अर रामकूं सीताके वियोग का अत्यन्त शोक, बहुरि विराधित विद्याधर का आगमन, अर खरदूषण का मरण, अर रतनजटीकैं रावण करि विद्या का छेद, अर सुग्रीवका रामके निकट आवना। बहुरि सुग्रीव के कारण श्रीराम ने साहसगति कों मारा अर सीता का वृत्तांत रतनजटी ने श्रीराम सों कह्या, श्रीरामका लंका ऊपरि गमन, राम रावण कें युद्ध। राम लक्ष्मणकूं सिंहवाहिनी गरुड़वाहिनी विद्याकी प्राप्ति। लक्ष्मणके रावण की शक्ति का लगना अर विशल्याके प्रसादतें शक्ति दूर होना, रावणका शांतिनाथ के मन्दिर विषें बहुरूपिणी विद्या का साधना, अर राम के कटककें विद्याधर कुमारनिका लंका विषें प्रवेश, अर रावणके चित्त के डिगावने का उपाय, पूर्णभद्र मणिभद्र के प्रभावतें विद्याधर कुमारनिका पाछें कटक में आवना। रावणकूं विद्याकी सिद्धि, बहुरि रावणके युद्ध, रावणका चक्र लक्ष्मणके हाथ आवना, रावणका परलोक गमन, रावण की स्त्रीनिका विलाप। बहुरि केवली का लंका के वन विषें आगमन। इन्द्रजीत कुम्भकरणादिका दीक्षा ग्रहण, अर रावणकी स्त्रीनि का दीक्षा ग्रहण, अर श्रीराम का सीतासूं मिलाप, विभीषण के भोजन, कैइक दिन लंकाविषें निवास, बहुरि नारदका राम कें निकट आवना। राम का अयोध्या गमन, भरत के अर त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्व भवका वर्णन। भरत का वैराग्य, राम लक्ष्मणका राज्य, अर रणविषें मधुका अर लवण

का मरण। मथुराविषें शत्रुघ्न का राज्य, मथुराविषें अर सकल देशविषें धरणेंद्र के कोपतें रोगनिकी उत्पत्ति। बहुरि सप्तऋषीनिके प्रभावतें रोगनिकी निवृत्ति। अर लोकापवादतें सीताका वनविषें त्यजन, अर वज्रजंघ राजा का वनविषें आगमन, सीताकूं बहुत आदरतें ले जाना तहां लवणांकुश का जन्म अर लवणांकुश बड़े होइ अनेक राजानिकूं जीति वज्रजंघके राज्य का विस्तार करना। बहुरि अयोध्या जाय श्रीरामसूं युद्ध किया अर सर्वभूषण मुनिकूं केवल ज्ञानकी प्राप्ति, देवनिका आगमन। सीता के शीलतें अग्निकुण्डका शीतल होना अर विभीषण के पूर्व भव का वर्णन, कृतांतवक्र का तप लेना। स्वयंवर मण्डपविषें रामके पुत्रनितें लक्ष्मण के पुत्रनिका विरोध। बहुरि लक्ष्मणके पुत्रनिका वैराग्य अर विद्युत्पाततें भामण्डल का मरण। हनुमान का वैराग्य, लक्ष्मण की मृत्यु, रामके पुत्रनिका तप, श्रीरामकूं लक्ष्मणके वियोगतें अत्यन्त शोक अर देवतानिके प्रतिबोधतें मुनिव्रतका अंगीकार, केवलज्ञान की प्राप्ति अर निर्वाण गमन।

यह सब रामचन्द्रका चरित्र सज्जन पुरुष मनकूं सावधान करि दे सुनहु। यह चरित्र सिद्धपदरूप मंदिर की प्राप्तिका सिवाण है अर सर्व प्रकार सुखनिका दायक है। श्रीरामचन्द्र कौं आदि दे जे महामुनि तिनका जे मनुष्य चिंतवन करें हैं, अतिशयपणे करि भावनिके समूहकरि नम्रीभूत होइ प्रमोदकूं धरैं हैं तिनका अनेक जन्मनिका संचित जो पाप सो नाश होय है। सम्पूर्ण पुराणका जे श्रवण करैं तिनका पाप दूर होय ही होय, यामें सन्देह कहा है? कैसा है पुराण? चन्द्रमा समान उज्ज्वल है। तातें जो विवेकी चतुर पुरुष हैं ते या चरित्रका सेवन करहू? कैसा है चरित्र? बड़े पुरुषनिकरि सेइवे योग्य है। जैसे सूर्यकरि प्रकाश्या जो मार्ग तानिविषें भले नेत्रनिके धारक पुरुष काहेको डिगें?

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थकी भाषा वचनिका विषै पीठबंध विधान नामा प्रथम पर्व पूर्ण भया ॥१॥

अथ लोकस्थिति महा अधिकार

(द्वितीय पर्व)

[विपुलगिरि पर भगवान् महावीर का समवसरण और राजा श्रेणिक द्वारा रामकथा का प्रश्न]

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मगध देश अति सुन्दर है, जहां पुण्याधिकारी बसें हैं अर इन्द्रके लोक समान सदा भोगोपभोग करैं हैं, जहां योग्य व्यवहारसे लोकपूर्ण मर्यादा.

रूप प्रवर्ते हैं और जहां सरोवर में कमल फूल रहे हैं और भूमि में अमृत समान मीठे सांठेनिके बाड़े शोभायमान हैं और जहां नाना प्रकार के अन्नों के समूह के पर्वत समान ढेर होय रहे हैं, अरहट की घड़ी से सींचे जीरानिके अर धाणके खेत हरित होय रहे हैं, जहां भूमि अत्यन्त श्रेष्ठ है, सर्व वस्तु निपजै है। चावलों के खेत शोभायमान और मूंग मोठ ठौर ठौर फल रहे हैं, गेहूं आदि सर्व अन्न को कोइ भांति विघ्न नाहीं और जहां भैंस की पीठ पर चढ़े ग्वाला गावैं हैं, गऊओंके समूह अनेक वर्णके हैं, जिनके गले में घण्टा बाजे हैं और दुग्ध झरती अत्यन्त शोभै है, जहां दूधमयी धरती होय रही है, अत्यन्त स्वाद रसके भरे तृण तिनको चर कर गाय भैंस पुष्ट होय रही हैं और श्याम सुन्दर हिरण हजारों विचरैं हैं मानो इन्द्रके हजारों नेत्र ही हैं, जहां जीवन को कोई बाधा नाहीं, जिनधर्मियोंका राज्य है और वनके प्रदेश केतकीकी धूलिकरि धूसरति होय रहे है। गंगाके पुलिन समान उज्ज्वल बहुत शोभायमान है और जहां केसर की क्यारं अति मनोहर है और जहां ठौर ठौर नारियलके वृक्ष है और अनेक प्रकारके शाक पत्रसे खेत हरित हो रहे हैं और वनपाल नारियल आदि मेवानिका आस्वादन करें हैं, और जहां दाडिम के बहुत वृक्ष हैं, जहां सूवादि अनेक पक्षी बहुत प्रकारके फल भक्षण करें हैं, जहां बन्दर अनेक प्रकार किलोल करें हैं, बिजौराके वृक्ष फल रहे हैं बहुत स्वादरूप अनेक जातिके फल तिनका रस पीकर पक्षी सुखसौं सोय रहे हैं और दाखके मण्डप छाय रहे हैं, जहां वन विषै देव विहार करै हैं, जहां खजूर कौं पथिक भक्षण करें हैं, केलाके वन फल रहे हैं, ऊंचे-ऊंचे अर्जुन वृक्षोंके वन सोहै हैं और नदी के तट गोकुल के शब्द से रमणीक है, नदियों में मच्छीनिके समूह कलोल करैं हैं, तरंग के समूह उठैं हैं मानो नदी नृत्य ही करै है और हंसनिके मधुर शब्दों करि मानो नदी गान ही करै है, जहां सरोवर के तीर पर सारस क्रीड़ा करै हैं और वस्त्र आभरण सुगन्धादि सहित मनुष्यों के समूह तिष्ठै हैं, कमलोंके समूह फूल रहे हैं और अनेक जीव क्रीड़ा करें हैं, जहां हंसों के समूह उत्तम मनुष्यों के गुणों समान उज्ज्वल सुन्दर शब्द सुन्दर चाल वाले तिनकर वन धवल होय रहा है। जहां कोकिलानिके रमणीक शब्द और भंवरोंका गुंजार, मोरों के मनोहर शब्द संगीत की ध्वनि, वीन मृदंगों का बाजना,,इनकरि दसों दिशा रमणीक होय रही हैं और वह देश गुणवन्त पुरुषों से भरा है, जहां दयावान् क्षमावान् शीलवान् उदारचित्त तपस्वी त्यागी विवेकी आचारी लोग बसै हैं, मुनि विचरैं हैं, आर्यिका विहार करै हैं, उत्तम श्रावक श्राविका बसै हैं, शरद की पूर्णमासी के चन्द्रमाके समान है चित्तकी वृत्ति जिनकी, मुक्ताफल समान उज्ज्वल हैं, आनन्द के देनहारे हैं, और वह

देश बड़े-बड़े गृहस्थीनि करि मनोहर है, कैसे हैं गृहस्थी-कल्पवृक्ष समान हैं, तृप्त किये हैं अनेक पथिक जिन्होंने, जहाँ अनेक शुभ ग्राम हैं, जिनमें भले भले किसान बसै हैं और उस देश विषैं कस्तूरी कपूरादि सुगन्ध द्रव्य बहुत हैं और भाँति भाँति के वस्त्र आभूषणों-करि मण्डित नर नारी विचरै हैं मानों देव देवी ही हैं, जहां जैन वचन रूपी अंजन (सुरमा) से मिथ्यात्व रूपी दृष्टि विकार दूर होवै है और महा मुनियोंके तपरूपी अग्निसे पापरूपी वन भस्म होय है ऐसा धर्मरूपी महा मनोहर मगध देश बसै है।

मगधदेशमें राजगृह नामा नगर महा मनोहर पुष्पों की वासकर महा सुगन्धित अनेक सम्पदा कर भर्या है मानो तीन भवनका यौवन ही है और वह नगर इन्द्रके नगर समान मनका मोहनेवाला है। इन्द्रके नगरमें तो इन्द्राणी कुंकुम कर लिप्त शरीर विचरै है और इस नगरमें राजाकी रानी सुगन्धकर लिप्त शरीर विचरै है। महिषी ऐसा नाम रानीका है और भैंस का भी है सो जहां भैंस भी केशरकी क्यारी में लोटकर केसरसौं लिप्त भई फिरै हैं और सुन्दर उज्ज्वल घरोंकी पंक्ति और टांचीनके घड़े सफेद पाषाण तिनकी शिलानि करि मंदिर बने हैं मानों चन्द्रकाँति मणिका नगर बना है। मुनियोंको तो वह नगर तपोवन भासै है, वेश्या को काम मन्दिर, नृत्यकारिणीनिकों नृत्यका मन्दिर और वैरीनिकौं यमपुर है, सुभटनिकौं वीरनिका स्थान, याचकनिकौं चिंतामणि, विद्यार्थीनिकौ गुरुगृह, गीत शास्त्रके पाठीनि कौं गंधर्व नगर, चतुरनिकौं सर्व कला (चतुराई) सीखने का स्थान और ठगनिकों धूर्त्तनिका मन्दिर भासै है। संतन कौं साधुओं का सगम, व्यापारी-निकौं लाभ भूमि, शरणागतनिकौं वज्रपिंजर, नीतिके वेत्ताकौं नीतिका मन्दिर, कौतुकीनि (खिलारियों) को कौतुकका निवास, कामिनीकों अप्सराओंका नगर, सुखियों को आनन्द का निवास भासै है। जहाँ गजगामिनी शीलवंती व्रतवंती रूपवंती अनेक स्त्री हैं जिनके शरीर की पद्मरागमणिकीसी प्रभा है और चन्द्रकांतिमणि जैसा वदन है, सुकुमार अंग है, पतिव्रता हैं, व्यभिचारीनिकौं अगम्य है, महा सौन्दर्य युक्त हैं, मिष्ट वचनकी बोलनेहारी हैं और सदा हर्षरूप मनोहर हैं मुख कमल जिनके और प्रमादरहित है चेष्टा जिनकी, सामायिक प्रोषध प्रतिक्रमणकी करनेहारी है, व्रत नेमादिविषै सावधान हैं, अन्नका शोधन, जलका छानना, पात्रनिकू भक्तिसे दान देना और दुखित भुखित जीवनिकौं दयाकर दान देना इत्यादि शुभ क्रियाविषैं सावधान हैं, जहां महामनोहर जिनमन्दिर हैं, जिनेश्वरकी भक्ति और सिद्धांतकी चरचा ठौर-ठौर है। ऐसा राजगृह नगर बसा है जिसकी उपमा कथन में न आवै, स्वर्गलोक तो केवल भोग ही का विलास है और यह नगर भोग और योग दोनों ही का निवास है, जहाँ पर्वत समान तो ऊंचा कोट है और महागम्भीर खाई

है जिसमें वैरी प्रवेश नाही कर सकै, ऐसा देवलोक समान शोभायमान राजगृह नगर बसे है।

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करे है जो इन्द्र समान विख्यात है। बड़ा योद्धा, कल्याण रूप है प्रकृति जिसकी, कल्याण ऐसा नाम स्वर्ण का और मंगलका भी है, सुमेरु तो सुवर्ण रूप है और राजा कल्याणरूप है, वह राजा समुद्र समान गम्भीरहै, मर्य्यादा उलंघन का है भय जिसको कलाके ग्रहणमें चन्द्रमाके समान है, प्रतापमें सूर्य समानहै, धन सम्पदामें कुबेरके समान है, शूरवीरपने में प्रसिद्ध है, लोकका रक्षक है, महा न्यायवन्त है, लक्ष्मी करिपूर्ण है, गर्व से दूषित नाही, सर्व शत्रुओं को विजय कर बैठा है तथापि शस्त्र (हथियार) का अभ्यास रखता है और जे आपसे नम्रीभूत भये हैं तिनके मानका बढ़ावनहारा है, जे आपते कठोर हैं तिनके मानका छेदनहारा है और आपदा विषं उद्वेग चित्त नाहीं सम्पदा विषं मदोन्मत्त नाही जिसकी निर्मल साधुओं में रत्न बुद्धि है और रत्नके विषे पाषाणबुद्धि है। जो दान युक्त क्रिया में बड़ा सावधान है और ऐसा सामन्त है कि मदोन्मत्त हाथी को कीट समान जानै है और दीन पर दयालु है, जिसकी जिनशासन में परम प्रीति है, धन और जीतव्य में जीर्ण तृण समान बुद्धि है, दसों दिशा वश करी हैं, प्रजा के प्रतिपालन में सावधान है और स्त्रियोंको चर्मकी पुतलीके समान देखै है, धन को रज समान गिनै है, गुणनिकरि नम्रीभूत जो धनुष ताहीको अपना सहाई जानै है, चतुरंग सेना को केवल शोभारूप मानै है।

भावार्थ—अपने बल पराक्रम से राज करै है, जिसके राज में पवन भी वस्त्रादिक का हरण नाही करै तो ठग चोरों की क्या बात, जिसके राज में क्रूर पशु भी हिंसा न करैं तो मनुष्य हिंसा कैसे करें, यद्यपि राजा श्रेणिक से वासुदेव बड़े होते हैं परन्तु उन्होंने वृष कहिए वृषासुर का पराभव किया है और यह राजा श्रेणिक वृष कहिये धर्म ताका प्रतिपालक है, इसलिए उनसे श्रेष्ठ है और पिनाकी अर्थात् शंकर उसने राजा दक्ष के गर्व को आताप किया और यह राजा श्रेणिक दक्ष अर्थात् चतुर पुरुषोंको आनन्दकारी है, इसलिए शंकर से भी अधिक है और इन्द्र के वंश नाही, यह वंश कर विस्तीर्ण है और दक्षिण दिशा का दिग्पाल जो यम सो कठोर है यह राजा कोमल चित्त है और पश्चिम दिशा का दिग्पाल जो वरुण सो दुष्ट जलचरों का अधिपति है इसके दुष्टोंका अधिकार ही नाहीं और उत्तर दिशाका अधिपति जो कुबेर वह धन का रक्षक है, यह धन का त्यागी है और बौद्ध के समान क्षणिकमती नाहीं, चन्द्रमा की न्याईं कलंकी नाहीं। यह राजा श्रेणिक सर्वोत्कृष्ट है, जिसके त्यागका अर्थी पार न पावै, जिसकी बुद्धिका पार पण्डित न

पावते भये, शूरवीर जिसके साहस का पार न पावते भये, जिसकी कीर्ति दसों दिशा में विस्तरी है जिसके गुणनकी संख्या नाहीं, सम्पदा का क्षय नाहीं, सेना बहुत, बड़े बड़े सामन्त सेवा करै हैं, हाथी घोड़े रथ पयादे सबही राजा का ठाठ सबसे अधिक है। पृथ्वी विषै प्राणी का चित्त जिससे अति अनुरागी होता भया जिसके प्रताप का शत्रु पार न पावते भये, सर्व कलाविषै प्रवीण है, इसलिये हम सारखे पुरुष वाके गुण कैसे गा सकैं, जिसके क्षायिक सम्यक्त्व की महिमा इन्द्र अपनी सभा विषैं सदा ही करै है, वह राजा मुनिराजके समूहमें बेतकी लताके समान नम्रीभूत है और उद्धत वैरीनिको वज्रदण्ड से वश करने वाला है, जिसने अपनी भुजाओं से पृथ्वीकी रक्षा करी है, कोट खाई तो नगर की शोभामात्र हैं। जिनचैत्यालयनिका करानेवाला, जिनपूजाका करने वाला, जिसके चेलना नामा रानी महा पतिव्रता शीलवंती गुणवंती रूपवंती कुलवंती शुद्ध सम्यग्दर्शन की धरने वाली श्राविका के व्रत पालनेवाली, सर्व कला में निपुण, उसका वर्णन कहा लग कहैं, ऐसा उपमा कर रहित गुणोंका समूह राजा श्रेणिक राजगृह नगर में राज करै है।

[अन्तिम तीर्थंकर महावीर के समवसरणका आगमन और राजा श्रेणिक का हर्ष-प्रकाश]

एक समय राजगृह नगर के समीप विपुलाचल पर्वतके ऊपर भगवान महावीर अन्तिम तीर्थंकर समोसरण सहित आय विराजे तब भगवानके आगमन का वृत्तांत वन-पालने आनकर राजा से कहा और छहों ऋतुओंके फल फूल लाकर आगे धरे तब राजाने सिंहासन से उठकर सात पैड पर्वत के सम्मुख जाय भगवान को अष्टांग नमस्कार किया और वनपाल को अपने सब आभरण उतार कर पारितोषिक में देकर और भगवानके दर्शनों को चलनेकी तयारी करता भया।

श्री वर्द्धमान भगवान के चरण कमल सुर नर असुरों से नमस्कार करने योग्य हैं। गर्भकल्याणकविषै छप्पन कुमारियोंने शोधा जो माता का उदर, उसमें तीन ज्ञान संयुक्त अच्युत स्वर्ग से आय विराजे हैं और इन्द्र के आदेश से धनपति ने गर्भ में आवने से छह मास पहिले से रत्नवृष्टि करके जिनके पिताका घर पूरा है और जन्मकल्याणक में सुमेरु पर्वत के मस्तक पर इन्द्रादि देवों ने क्षीरसागरके जलकर जिनका जन्माभिषेक किया है और धरा है महावीर नाम जिनका और बाल अवस्था में इन्द्रने जो देवकुमार रखे तिन सहित जिन्होंने क्रीडा करी है और जिनके जन्म में माता पिताकूं तथा अन्य समस्त परिवार कूं और प्रजाकूं और तीन लोक के जीवनिकूं परम आनन्द हुवा,

नारकियोंका भी त्रास एक मुहूरतके वास्ते मिट गया। जिनके प्रभाव से पिताके बहुत दिनों के विरोधी जो राजा थे वे स्वयमेव ही आय नम्रीभूत भये और हाथी घोड़े रथ रत्नादिक अनेक प्रकारके भेंट किये और छत्र चमर वाहनादिक तज दीन होय हाथ जोड़ आय पायनि पड़े और नाना देशों की प्रजा आयकर निवास करती भई। जिन भगवान का चित्त भोगोंमें रत न हुआ, जैसे सरोवरमें कमल जलसैं निर्लेप रहैं तैसे भगवान जगतकी माया से अलिप्त रहे, भगवान स्वयंबुद्ध बिजली के चमत्कारवत् जगतकी मायाको चंचल जान वैरागी भये, और किया है लौकान्तिक देवोंने स्तवन जिनका, मुनिव्रतको धारणकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका आराधनकर, घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञानको प्राप्त भये। वह केवलज्ञान समस्त लोकालोक का प्रकाशक है, ऐसे केवलज्ञान के धारक भगवान ने जगतके भव्य जीवों के निमित्त धर्मतीर्थ प्रगट किया, वह श्रीभगवान मलरहित पसेवसे रहित हैं, जिनका रुधिर क्षीर (दूध) समान है और सुगन्धित शरीर, शुभ लक्षण, अतुलबल, मिष्ट वचन, महा सुन्दर स्वरूप, समचतुरस्रसंस्थान वज्रवृषभनाराच संहननके धारक हैं, जिनके विहार में चारों ही दिशाओं में दुर्भिक्ष नाहीं, सकल ईति भीति का अभाव रहै है और सर्व विद्याके परमेश्वर, जिनका शरीर निर्मल स्फटिक समान है अर आंखोंकी पलक नाहीं लागैं अर नख केश बढ़ैं नाहीं, समस्त जीवोंमें मैत्री भाव रहै है और शीतल मन्द सुगन्ध पवन पीछे लगी आवै है, छह ऋतु के फल फूल फलैं हैं और धरती दर्पण समान निर्मल हो जाय है और पवनकुमार देव एक योजन पर्यन्त भूमि तृण पाषाण कण्टकादि रहित करैं हैं और मेघकुमारदेव गंधोदककी सुवृष्टि महा उत्साहसे करैं हैं और प्रभुके विहार में देव चरण कमलके तलै स्वर्णमयी कमल रचें हैं, चरणोंको भूमि का स्पर्श नाहीं, आकाश में ही गमन करैं हैं, धरती पर छह ऋतुके सब धान्य फलैं है, शरदके सरोवरके समान आकाश निर्मल होय है और दसों दिशा धूम्रादिरहित निर्मल होय हैं, सूर्यकी कान्तिको हरनेवाला सहस्र आरोंसे युक्त धर्मचक्र भगवानके आगे २ चलै है, इस भांति आर्यखण्डमें विहार कर श्रीमहावीर स्वामी विपुलाचल पर्वत ऊपर आय विराजे हैं, उस पर्वतपर नाना प्रकारके जलके निरझरने झरैं हैं, उनका शब्द मनका हरणहारा है, जहां बेलि और वृक्ष शोभायमान हैं और जहां जाति विरोधी जीवों ने भी वैर को छोड़ दिया है, पक्षी बोल रहे हैं, शब्दों से मानो पहाड़ गुंजार ही करैं हैं और भ्रमरों के नादसे मानो पहाड़ गान ही कर रहा है, सघन वृक्षों के तलै हाथियों के समूह बैठे हैं, गुफाओं के मध्य सिंह तिष्ठैं हैं, जैसैं कैलास पर्वत पर भगवान ऋषभदेव विराजे थे तैसैं विपुलाचल पर श्री वर्द्धमान स्वामी विराजें हैं।

जब श्रीभगवान समोसरण में केवलज्ञान संयुक्त विराजमान भये तब इन्द्र का आसन कम्पायमान भया, तब इन्द्र ने जाना कि भगवान केवलज्ञान संयुक्त विराजें हैं, मैं जायकर वंदना करूँ सो इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर आए। वह हाथी शरदके बादल समान उज्ज्वल है मानो कैलाश पर्वत सुवर्णकी साकलनिसे संयुक्त है, जिसका कुम्भस्थल भ्रमरोंकी पंक्ति करि मंडित है, जिसने दसों दिशा सुगंधसे व्याप्त करी हैं, महामदोन्मत्त है, जिसके नख सचिक्कण हैं, जिसके रोम कठोर हैं, जिसका मस्तक भले शिष्यके समान बहुत विनयवान् और कोमल है, जिसका अंग दृढ़ है और दीर्घ काय है, जिसका स्कंध छोटा है, मद झरै है और नारद समान कलहप्रिय है। जैसें गरुड़ नागको जीतै, तैसें यह नाग अर्थात् हाथियोंको जीतै है। जैसें रात्रि नक्षत्रोंकी माला कहिये पंकति ताकरि शोभै है, तैसें यह नक्षत्रमाला जो आभरण तासों शोभै है। सिन्दूर कर अरुण (लाल) ऊँचा जो कुम्भस्थल उससे देव मनुष्योंके मनको हरै है ऐसे ऐरावत गजपर चढ़कर सुरपति आए अर और भी देव अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर इन्द्र के संग आए। जिनके मुख कमल जिनेन्द्रके दर्शनके उत्साहसे फूल रहे हैं, ऐसे सोलह ही स्वर्गोंके समस्त देव और भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी सर्व हो आये और कमलायुध आदि अखिल विद्याधर अपनी स्त्रियों सहित आए, वे विद्याधर रूप और विभव में देवों के समान हैं।

तहां समोसरणविषैं इन्द्र भगवान की ऐसे स्तुति करते भये। हे नाथ ! महामोहरूपी निद्रामें सोता यह जगत् तुमने ज्ञानरूप सूर्य के उदय से जगाया। हे सर्वज्ञ वीतराग ! तुमको नमस्कार होहु, तुम परमात्मा पुरुषोत्तम हो। संसार समुद्र के पार तिष्ठो हो, तुम बड़े सार्थवाही हो, भव्य जीव चेतनरूपी धन के व्यापारी तुम्हारे संग निर्वाणद्वीप को जायेंगे तो मार्ग में दोषरूपी चारों से नाहीं लुटेंगे, तुमने मोक्षाभिलाषियों को निर्मल मोक्ष का पंथ दिखाया और ध्यानरूपी अग्नि करि कर्म ईंधन को भस्म किया है। जिनके कोई बांधव नाहीं, नाथ नाहीं, दुःखरूपी अग्नि के ताप करि संतापित जगत के प्राणी तिनके तुम भाई हो और नाथ हो, परम प्रतापरूप प्रगट भए हो, हम तुम्हारे गुण कैसें वर्णन कर सकें। तुम्हारे गुण उपमारहित अनन्त हैं सो केवलज्ञान गोचर हैं, इस भाँति इन्द्र भगवान् की स्तुति कर अष्टांग नमस्कार करते भए। समोसरण की विभूति देख बहुत आश्चर्य को प्राप्त भये, सो संक्षेप करि वर्णन करिये हैं:—

वह समोशरण नाना वर्णके अनेक महारत्न और स्वर्णसे रचा हुवा है जिसमें प्रथम ही रत्न की धूलिका धूलिसाल कोट है और उसके ऊपर तीन कोट हैं। एक एक कोटके चार चार द्वार हैं। द्वारे द्वारे अष्ट मंगल द्रव्य हैं और जहां रमणीक वापी हैं, सरोवर हैं

अर धुजा अद्‌भुत शोभा धरै है। तहाँ स्फटिक मणिकी भीति (दिवार) करि बारह कोठे प्रदक्षिणारूप बने हैं। एक कोठेमें मुनिराज हैं, दूसरे में कल्पवासी देवों की देवांगना हैं, तीसरेमें आर्यिका हैं, चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवी हैं पाँचवें में व्यन्तर देवी हैं, छठेमें भवनवासिनी देवी हैं, सातवेंमें ज्योतिषी देव हैं, आठवेंमें व्यन्तर देव हैं, नवमें में भवनवासी देव, दसवेंमें कल्पवासी देव, ग्यारहवेंमें मनुष्य, बारहवेंमें तिर्यंच। ये सर्व जीव परस्पर वैरभाव रहित तिष्ठै हैं। भगवान अशोक वृक्ष के समीप सिंहासन पर विराजें हैं। वह अशोक वृक्ष प्राणियों के शोकको दूर करै है और सिंहासन नाना प्रकार के रत्नों के उद्योत से इन्द्रधनुष के समान अनेक रंगोंको धरै है, इन्द्रके मुकुटमें जो रत्न लगे हैं, उनकी कांति समूहको जीतै है। तीन लोक की ईश्वरताके चिन्ह जो तीन छत्र उनसे श्रीभगवान शोभायमान हैं और देव पुष्पोंकी वर्षा करैं हैं. चौसठ चमर सिर पर ढुरैं हैं, दुन्दुभी बाजे बाजैं हैं, उनकी अत्यन्त सुन्दर ध्वनि होय रही है।

राजगृह नगर से राजा श्रेणिक आवते भये। अपना मन्त्री तथा परिवार और नगरवासियों सहित समवशरणके पास पहुँच समोशरणको देख दूरही से छत्र चमर वाहनादिक तजकर स्तुति पूर्वक नमस्कार करते भये। पीछैं आय कर मनुष्यों के कोठे में बैठे अर कुंवर वारिषेण, अभयकुमार, विजयबाहु इत्यादिक राजपुत्र भी स्तुति कर हाथ जोड़ नमस्कार कर यथास्थान आय बैठे। जहाँ भगवानकी दिव्यध्वनि खिरै है, देव मनुष्य तिर्यंच सब ही अपनी अपनी भाषा में समझै हैं। वह ध्वनि मेघके शब्दको जीतै है, देव और सूर्यकी कांति को जीतने वाला भामण्डल शोभै है, सिंहासन पर जो कमल है उस पर आप अलिप्त विराजैं। गणधर प्रश्न करै हैं और दिव्यध्वनि विषै सर्व का उत्तर होय है।

गणधर देवने प्रश्न किया कि हे प्रभो! तत्वके स्वरूप का व्याख्यान करो। तब भगवान तत्वनिका निरूपण करते भये। तत्व दो प्रकार के हैं—एक जीव, दूसरा अजीव। जीवों के दो भेद हैं—सिद्ध और संसारी। संसारी के दो भेद हैं—एक भव्य, दूसरा अभव्य। मुक्त होने योग्यको भव्य कहिये और कोरडू (कुडकू) मूंग समान जो कभी भी न सीझै तिसको अभव्य कहिये। भगवान के भाषे तत्वों का श्रद्धान भव्य जीवोंके ही होय, अभव्य को न होय। संसारी जीवों के एकेन्द्रिय आदि भेद और गति, काय आदि चौदह मार्गणाओं का स्वरूप कह्या और उपशम श्रेणी, क्षपकश्रेणी दोनोंका स्वरूप कहा और संसारी जीव दुःखरूप कहे, सो मूढ़ों को दुःखरूप अवस्था सुखरूप भासै है, चारों ही गति दुःखरूप हैं। नारकियोंको तो आँखके पलक मात्र भी सुख नाही, मारण, ताड़न, छेदन, भेदन, शूलारोपणादिक अनेक प्रकार के दुःख निरन्तर रहैं हैं अर तिर्यंचों को ताड़न,

मारण, लादन, शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदि के अनेक दुःख हैं और मनुष्यों को इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग आदिके अनेक दुःख हैं और देवों को बड़े देवों की विभूति देखकर सन्ताप उपजै है और दूसरे देवों का मरण देख बहुत दुःख उपजे है तथा अपनी देवांगनाओं का मरण देख वियोग उपजे है और जब अपना मरण निकट आवै तब अत्यन्त विलाप करि झुरै हैं, इसी भाँति महा दुःख कर संयुक्त चतुर्गति में जीव भ्रमण करै है। कर्मभूमि में जो मनुष्य जन्म पाकर सुकृत (पुण्य) नाहीं करै हैं, उनके हस्त में प्राप्त हुआ अमृत जाता रहै है। संसार में अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ यह जीव अनन्त कालमें कभी ही मनुष्य जन्म पावै है, तब भीलादिक नीच कुल में उपजा तो क्या हुआ अर म्लेच्छखण्डों में उपजा तो क्या हुआ और कदाचित् आर्यखण्डमें उत्तमकुल में उपज्या और अंगहीन हुआ तो क्या और सुन्दर रूप हुआ और रोग संयुक्त हुआ तो क्या और सबही सामग्री योग्य भी मिली परन्तु विषयाभिलाषी होकर धर्म में अनुरागी न भया तो कुछ भी नाहीं, इसलिये धर्मकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। कई एक तो पराये किंकर होय कर अत्यन्त दुःख से पेट भरें हैं, कई एक संग्राम में प्रवेश करें हैं। संग्राम शस्त्र के पात से भयानक है और रुधिर के कर्दम (कीचड़) से महा ग्लानिरूप है और कई एक किसान वृत्तिकर क्लेश से कुटुम्ब का भरण पोषण करें हैं, जिसमें अनेक जीवों की हिंसा करनी पड़ती है। इस भाँति अनेक उद्यम प्राणी करै हैं, उनमें दुःख क्लेश ही भोगै हैं। संसारी जीव विषय सुख के अत्यन्त अभिलाषी हैं। कई एक तो दरिद्रता से महादुःखी है, कई एक धन पायकर चोर वा अग्नि वा जल वा राजादिके भय से सदा आकुलतारूप रहै हैं और कई एक द्रव्य को भोगते हैं परन्तु तृष्णारूप अग्निके बढने से जलें हैं, कई एकको धर्मकी रुचि उपजी है परन्तु उनको दुष्ट जीव संसारहीके मार्गमें डारें हैं, परिग्रहधारियोंके चित्त को निर्मलता कहाँ से होय, और चित्तकी निर्मलता बिना धर्मका सेवन कैसें होय ? जब तक परिग्रहकी आसक्ता है तब तक जीव हिंसाविषें प्रवर्त्तै है और हिंसा से नरक निगोद आदि कुयोनिमें महादुःख भोगै है। संसार भ्रमणका मूल हिंसा ही है अर जीवदया मोक्षका मूल है। परिग्रहके संयोगसे रागद्वेष उपजै हैं सो रागद्वेष ही संसारके दुःखके कारण हैं। कई एक जीव दर्शनमोहके अभावसे सम्यग्दर्शनको भी पावै हैं परन्तु चारित्रमोह के उदयसे चारित्रको नाहीं धारि सकै हैं और कई एक चारित्र को भी धार करि बाईस परीषहों से पीड़ित होयकरि चारित्रसें भ्रष्ट होय हैं, कई एक अणुव्रत ही धारै हैं और कई एक अणुव्रत भी धार नाहीं सकें हैं, केवल अव्रत सम्यक्ती ही होय हैं अर संसार के अनन्तजीव सम्यक्त से रहित मिथ्यादृष्टि ही हैं। जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे बार बार जन्म मरण करै हैं,

दुःखरूप अग्नि से तप्तायमान भवसंकट में पड़े हैं, मिथ्यादृष्टि जीव जीभ के लोलुपी हैं और कामकलंक से मलीन हैं, क्रोध मान माया लोभमें प्रवृत्तें हैं और जो पुण्याधिकारी जीव संसार शरीर भोगनितें विरक्त होय करि शीघ्र ही चारित्रको धारे हैं और निवाहै हैं और संयम में प्रवर्त्तें हैं, वे महाधीर परम समाधिसे शरीरको छोड़कर स्वर्गमें बड़े देव होकर अद्भुत सुख भोगै हैं, वहां से चयकर उत्तम मनुष्य होकर मोक्ष पावें हैं। कई एक मुनि तपकर अनुत्तर विमानमें अहमिन्द्र तें चयकरि तीर्थङ्कर पद पावै हैं, कई एक चक्रवर्ती बलदेव कामदेव पद पावै हैं, कई एक मुनि महातप कर निदान बांध स्वर्ग में जाय वहाँ से चयकरि वासुदेव होय हैं, वे भोगको नाही तज सकै हैं। इस प्रकार श्रीवर्द्धमान स्वामी के मुख से धर्मोपदेश श्रवण करि देव मनुष्य तिर्यंच अनेक जीव ज्ञान कौं प्राप्त भये, कई एक उत्तम पुरुष मुनि भए, कई एक श्रावक भए, कई एक तिर्यंच भी श्रावक भए। देव व्रत नाहीं धारण करि सके हैं तातै अव्रत सम्यक्त को ही प्राप्त भए, अपनी अपनी शक्ति अनुसार अनेक जीव धर्म में प्रवर्त्तभये, पापकर्म के उपार्जन से विरक्त भए, धर्म श्रवण करि भगवानको नमस्कार करि अपने अपने स्थान गए। श्रेणिक महाराज भी जिन वचन श्रवण करि हर्षित होय अपने नगर को गए।

अथानन्तर सन्ध्या समय सूर्य अस्त होने को सम्मुख भया, अस्ताचल के निकट आया, अत्यन्त आरक्तता (सुरखी) को प्राप्त भया, किरण मन्द भई सो यह बात उचित ही है जब सूर्य का अस्त होय तब किरण मंद होय ही होय। जैसें अपने स्वामी को आपदा परै तब किसके तेज की वृद्धि रहै। चकवीनके अश्रुपात सहित जे नेत्र तिनको देख मानो दयाकरि सूर्य अस्त भया। भगवान के समवसरण विषें तो सदा प्रकाश ही रहे है, रात्रि दिनका विचार नाहीं। अर सब पृथ्वी विषें रात्रि पड़ी, सन्ध्या समय दिशा लाल भई सो मानो धर्म श्रवण करि प्राणियों के चित्त से नष्ट भया जो राग सो सन्ध्या के छलकरि दसों दिशानि में प्रवेश करता भया।

भावार्थ—राग का स्वरूप भी लाल होय है अर दिशा विषें भी ललाई भई अर सूर्य के अस्त होने से लोगों के नेत्र देखने से रहित भए, क्योंकि सूर्य के उदय से जो देखने की शक्ति प्रगट भई थी सो अस्त होने से नष्ट भई। अर कमल संकुचित भए जैसें बड़े राजाओं के अस्त भए चोरादिक दुर्जन जग विषें परधन हरणादिक कुचेष्टा करें तैसें सूर्यके अस्त होने से पृथ्वी विषें अन्धकार फैल गया। रात्रि समय घर घर चम्पेकी कलीके समान जो दीपक तिनका प्रकाश भया, वह दीपक मानो रात्रिरूप स्त्री के आभूषण ही हैं। कमल के रस से तृप्त होय करि राजहंस शयन करते भए अर रात्रिसम्बन्धी शीतल मन्द सुगन्ध पवन चलती भई मानों निशा (रात) का स्वास ही है। अर भ्रमरों के समूह कमलों

में विश्राम करते भए अर जैसें भगवान के वचनों करि तीन लोक के प्राणी धर्मका साधन कर शोभायमान होय हैं, तैसें मनोज्ञ तारों के समूह से आकाश शोभायमान भया। अर जैसें जिनेन्द्र के उपदेश से एकान्तवादियों का संशय विलाय जाय तैसें चन्द्रमा की किरणों से अन्धकार विलाय गया। लोगों के नेत्रों को आनन्द का करनहारा चन्द्रमा उद्योत समय कम्पायमान भया मानो अन्धकार पर अत्यन्त कोप भया।

भावार्थ—क्रोधके समय प्राणी कम्पायमान होय हैं। अन्धकारकरि जे लोक खेदको प्राप्त भए थे, वे चन्द्रमा के उद्योतकरि हर्ष कौं प्राप्त भए अर चन्द्रमाकी किरणकौं स्पर्श करि कुमुद प्रफुल्लित भए। इस भाँति रात्रिका समय लोकोंको विश्रामका देनहारा प्रगट भया। राजा श्रेणिकको सन्ध्या समय सामायिक पाठ अर जिनेन्द्रकी कथा करते करते घनी रात्रि गई, तब वह सोनेको उद्यमी भया। कैसा है रात्रिका समय, जिसमें स्त्री पुरुषों के हितकी वृद्धि होय है। राजाके शयनका महल गंगा के पुलिन (किनारों) समान उज्ज्वल है अर रत्नोंकी ज्योतिसे अति उद्योत रूप है अर फूलों की सुगन्धि जहां झरोखोंके द्वारा आवै है अर महलके समीप सुन्दर स्त्री मनोहर गीत गाय रही है, सेज पर अति कोमल बिछौने बिछ रहे हैं। वह राजा भगवान के पवित्र चरण अपने मस्तक पर धारे है अर स्वप्न में भी बारम्बार भगवान हीका दर्शन करै है अर स्वप्न में गणधरदेव से भी प्रश्न करै है। इस भांति सुखसें रात्रि पूर्ण भई। पीछे मेघ की ध्वनिके समान प्रातः के वादित्र बाजते भए। उनके नाद से राजा निद्रा से रहित भया।

प्रभात समय देह क्रिया करि राजा श्रेणिक अपने मनमें विचार करता भया कि भगवान की दिव्यध्वनि में तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिक के जो चरित्र कहे गए वे मैंने सावधान होकर सुने। अब श्रीरामचन्द्र के चरित्र सुनने में मेरी अभिलाषा है, लौकिक ग्रन्थों में रावणादिक को मांसभक्षी राक्षस कहा है परन्तु वे विद्याधर महाकुलवंत कैसें मद्य मांस रुधिरादिक का भक्षण करें। अर रावण के भाई कुम्भकरणको कहै हैं कि वह छह महीनेकी निद्रा लेता था अर उसके ऊपर हाथी फेरते, ताते तेल से कान पूरते, तो भी छह महीनासे पहले नहीं जागता, जागतेही ऐसी भूख प्यास लगती कि अनेक हस्ती महिषा (भैंसा) आदि तिर्यंच अर मनुष्यों को भक्षण कर जाता था अर राधि रुधिर का पान करता तौ भी तृप्ति नहीं होती थी। अर सुग्रीव हनुमानादिक को वानर कहै हैं परन्तु वे तो बड़े राजा विद्याधर थे, बड़े पुरुष को विपरीत कहने में महा पाप का बन्ध होय है। जैसें अग्निके संयोगसे शीतलता न होय अर तुषार (बर्फ) के संयोग से उष्णता (गरमी) न होय, जल के मंथनसे घी की प्राप्ति न होय अर बालू रेतके पेलने से तेलकी प्राप्ति न होय, तैसें

महापुरुषों के चरित्र विरुद्ध सुनने से पुण्य न होय। अर लोक ऐसा कहै हैं कि देवों के स्वामी इन्द्र को रावण ने जीता परन्तु यह बात न बनै। कहां वह देवों का इन्द्र अर कहां यह मनुष्य, जो इन्द्र के कोपमात्र से ही भस्म हो जाय। जाके ऐरावत हस्ती, बज्रसा आयुध, जिसकी ऐसी सामर्थ कि सर्व पृथ्वी को वश करले, सो ऐसे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र को यह अल्प शक्ति का धनी मनुष्य विद्याधर कैसे लाकर बंदी में डारै, मृगसे सिंह को कैसें बाधा होय ? तिलसे शिला को पीसना अर गिंडोले से सांपका मारना अर श्वानसे गजेन्द्रका हनना कैसें होय ? अर लोक कहै हैं कि रामचन्द्र मृगादिक की हिंसा करते थे सो यह बात न बनें, वे व्रती विवेकी दयावान महापुरुष कैसें जीवोंकी हिंसा करें, सो यह बात न संभवै है। अर कैसें अभक्ष्य का भक्षण करें अर सुग्रीवका बड़ा भाई बालीको बतावैं हैं अर कहै हैं कि उसने सुग्रीवकी स्त्री अंगीकार करी, सो बड़ा भाई जो बाप समान है, कैसें छोटे भाई की स्त्रीकूं अंगीकार करै, सो यह सर्व बात संभवै नाहीं। इसलिए गणधर देव को पूछकर श्रीरामचन्द्रकी यथार्थ कथा श्रवण-धारण करूं, ऐसा चिंतवन श्रेणिक महाराजने किया। बहुरि मनमें विचारै है कि नित्य गुरुनिके दर्शन करि अर धर्मके प्रश्न करि तत्व निश्चय करिये तौ परम सुख होय है। ये आनन्द के कारण हैं ऐसा विचार करि राजा सेज से उठे अर रानी अपने स्थान गई। कैसी है रानी जिसकी कांति लक्ष्मी समान है, महा पतिव्रता अर पतिकी बहुत विनयवान है अर कैसा है राजा जिसका चित्त अत्यन्त धर्मानुराग में निष्कम्प है। दोनों प्रभात क्रिया का साधन करते भये अर जैसें सूर्य शरद के बादलों से बाहिर आवै तैसें राजा सफेद कमल के समान उज्ज्वल सुगन्ध महलसे बाहिर आवते भए, उस सुगंध महलमें भंवर गुंजार करै है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महा पद्मपुराण की भाषाटीका विषें श्रेणिक ने रामचन्द्र रावण के चरित्र सुनने के अर्थि प्रश्न करने का विचार किया ऐसा द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ।।२।।

—:o:—

(तृतीय पर्व)

[विद्याधर लोक का वर्णन]

आगें राजा सभामें आय सर्व आभरण सहित विराजै ताकी शोभा कहिये हैं। प्रभात ही बड़े बड़े सामन्त आये, उनको द्वारपाल ने राजा का दर्शन कराया, सामन्तों के

वस्त्र आभूषण सुन्दर हैं। उन समेत राजा हाथी पर चढ़कर नगर से समोशरणकों चाले। आगें बन्दीजन विरद बखानते जाय हैं। राजा समोशरणके पास पहुँचे। कैसा है समोशरण—जहां अनन्त महिमाके निवास महावीर स्वामी विराजै हैं तिनके समीप गौतम गणधर तिष्ठै हैं। तत्वों के व्याख्यान में तत्पर अर कांतिमें चन्द्रमा के तुल्य, प्रकाश में सूर्य के समान जिनके चरण वा नेत्ररूपी कमल अशोक वृक्षके पल्लव समान लाल हैं अर अपनी शांतताकरि जगत को शांत करै है, मुनियों के समूह के स्वामी हैं। राजा दूर से ही समोशरण को देख करि हाथी से उतर समोशरण गए, हर्ष करि फूल रहे हैं मुखकमल जिनके सो भगवान की प्रदक्षिणा दे हाथ जोड़ नमस्कार कर मनुष्यों की सभामें बैठे।

प्रथम ही राजा श्रेणिकने श्रीगणधरदेव को 'नमोस्तु' कहकर समाधान (कुशल) पूछकर प्रश्न किया—भगवन्! मैं रामचरित्र सुननेकी इच्छा करूँ हूँ। यह कथा जगत में लोगों ने और भांति प्ररूपी है, इसलिए हे प्रभो! कृपाकर संदेहरूप कीचड़तें जीवनिको काढ़ो।

राजा श्रेणिक का प्रश्न सुन श्रीगणधरदेव अपने दांतों की किरण से जगत को उज्ज्वल करते गंभीर मेघ की ध्वनि समान भगवान की दिव्यध्वनि के अनुसार व्याख्यान करते भए। हे राजा तू सुन, मैं जिन आज्ञा प्रमाण कहूं हूँ, कैसे हैं जिन वचन, तत्व के कथनमें तत्पर हैं, तू यह निश्चय करि कि रावण राक्षस नाही, मनुष्य है, मांस का आहारी नाहीं, विद्याधरों का अधिपति है, राजा विनमि के वंशमें उपज्या है। अर सुग्रीवादिक बन्दर नाहीं, ये बड़े राजा मनुष्य है, विद्याधर हैं। जैसें नींव बिना मंदिर का मांडण न होय तैसें जिन-वचनरूपी मूल बिना कथा की प्रमाणिता न होय है। इसलिए प्रथम ही क्षेत्र कालादिक का वर्णन सुनि अर फिर महापुरुषों का चरित्र जो पापनिका विनाशनहारा है सो सुन।

[लोकालोक कालचक्र कुलकर नाभिराजा और श्री ऋषभदेव और भरत का वर्णन]

गौतम स्वामी कहै हैं कि हे राजा श्रेणिक! अनन्त प्रदेशी जो अलोकाकाश, ता मध्य तीन वातवलयतैं वेष्टित तीन लोक तिष्ठै है। तीन लोकनिके मध्य यह मध्य लोक है। इसमें असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं। तिनके बीच लवणसमुद्रकरि वेढ्या लक्ष योजन प्रमाण यह जंबूद्वीप है, उसके मध्य सुमेरु पर्वत है। वह मूलमें वज्रमणिमयी है अर ऊपर समस्त स्वर्णमयी है। बहुरि अनेक रत्नों से संयुक्त है, सन्ध्या समय रक्तता को धारैं जे मेघों के समूह तिनके समान स्वर्ग पर्यंत ऊँचा शिखर है। शिखर के और सौधर्म्म स्वर्ग के बीचमे एक बालकी अणीका अन्तर है। सुमेरु पर्वत निन्याणवे हजार योजन ऊँचा है।

अर एक हजार योजन स्कंद है अर पृथ्वीविषें तो दश हजार योजन चौड़ा है अर शिखर पर एक हजार योजन चौड़ा है। मानों मध्य लोकके मापने का दंड ही है। जम्बू द्वीप में एक देवकुरु एक उत्तरकुरु भोगभूमि है अर भरत आदि सप्तक्षेत्र हैं, षट कुलाचलों से जिनका विभाग है। जम्बू अर शाल्मली यह दोय वृक्ष हैं। जम्बूद्वीप मे चौंतीस विजयार्ध पर्वत हैं। एक एक विजयार्ध में एक सौ दश दश विद्याधरोंकी नगरी है। एक एक नगरी कूं कोटि कोटि ग्राम लागे हैं। अर जम्बूद्वीप मे बत्तीस विदेह, एक भरत, एक ऐरावत ऐसें चौंतीस क्षेत्र हैं। एक एकक्षेत्र में एक एक राजधानी है अर जम्बूद्वीप में गंगा आदिक १४ महा नदी हैं अर छह भोगभूमि हैं। एक एक विजयार्ध पर्वत में दोय दोय गुफा हैं सो चौंतीस विजयार्ध के अड़सठ गुफा हैं। षट्कुलाचलोंमें अर विजयार्ध पर्वतोंमें तथा वक्षारपर्वतों में सर्वत्र भगवान के अकृत्रिम चैत्यालय हैं अर जम्बूद्वीप अर शाल्मली वृक्षमे भगवानके अकृत्रिम चैत्यालय हैं जो रत्नोंकी ज्योति से शोभायमान हैं। जम्बूद्वीपकी दक्षिण दिशाकी ओर राक्षसद्वीप है अर ऐरावत क्षेत्रकी उत्तर दिशामे गन्धर्व नामा द्वीप है अर पूर्व विदेहकी पूर्व दिशा में वरुण द्वीप है अर पश्चिम विदेहका पश्चिम दिशा में किन्नरद्वीप है, वे चारों ही द्वीप जिन मन्दिरों से मण्डित हैं।

जैसें एक मास में शुक्ल पक्ष अर कृष्ण पक्ष यह दोय पक्ष होय हैं तैसें ही एक कल्प में अवसर्पिणी अर उत्सर्पिणी दोनों काल प्रवर्त्तें हैं। अवसर्पिणी काल में प्रथम ही सुखमासुखमा कालकी प्रवृत्ति होय है, फिर दूसरा सुखमा, तीसरा सुखमादुखमा, चौथा दुखमासुखमा, पांचवां दुखमा अर छठा दुखमादुखमा प्रवर्त्ते है, तिनके पीछे उत्सर्पिणी काल प्रवर्त्ते है, उसकी आदि में प्रथम ही छठा काल दुखमादुखमा प्रवर्त्ते है, फिर पांचवा दुखमा, फिर चौथा दुखमासुखमा, फिर तीसरा सुखमादुखमा, फिर दूसरा सुखमा, फिर पहला सुखमासुखमा। इस प्रकार अरहटकी घड़ी समान अवसर्पिणी के पीछे उत्सर्पिणी अर उत्सर्पिणी के पीछे अवसर्पिणी है, सदा यह कालचक्र इसी प्रकार फिरता रहता है परन्तु इस कालका पलटना केवल भरत अर ऐरावत क्षेत्र में है तातैं इनमें ही आयु कायादिक की हानि होय है अर महाविदेह क्षेत्रादि में तथा स्वर्ग पाताल में अर भोगभूमि आदिक में तथा सर्व द्वीप समुद्रादिक में कालचक्र नाही फिरता इसलिए उनमें रीति पलट नाहीं, एक ही रीति रहै है। देवलोक विषैं तो सुखमा-सुखमा जो पहला काल है सदा उसकी ही रीति रहै है। अर उत्कृष्ट भोगभूमि में भी सुखमा-सुखमा कालकी रीति रहै है। अर मध्य भोगभूमि में सुखमा अर्थात् दूजे काल की रीति रहै है अर जघन्य भोगभूमि में सुखमा-दुखमा जो तीसरा काल है उसकी रीति रहै है। अर महाविदेह क्षेत्रों में दुखमा-सुखमा जो चौथा काल है उसकी रीति रहै है। अर अढ़ाई द्वीप के पर अन्त के आधे

स्वयंभूरमण द्वीप पर्यंत बीच के असंख्यात द्वीप समुद्र में जघन्य भोगभूमिविषै सदा तीजे कालकी रीति है। अर अन्तके आधे द्वीपविषैं तथा अन्तमें स्वयंभूरमणसमुद्र विषै तथा चारों कोण में दुखमा अर्थात् पंचम काल की रीति सदा रहै है अर नरकमें दुखमादुखमा जो छठा काल उसकी रीति रहै है अर भरत ऐरावत क्षेत्रों में छहों ही काल प्रवर्त्तै हैं। जब पहला सुखमासुखमा काल प्रवर्त्तै है तब यहां देवकुरु उत्तर कुरु भोगभूमिकी रचना होय है, कल्पवृक्षों से मण्डित भूमि सुखमयी शोभै है अर मनुष्यनिके शरीर तीन कोस ऊंचे अर तीन पल्य की आयु सब ही मनुष्य तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंचनि के होय है अर ऊगते सूर्य समान मनुष्यनिकी कांति होय है। सब लक्षणपूर्णलोक शोभै है, स्त्रीपुरुष युगल ही उपजैं हैं अर साथ ही मरै हैं, स्त्रीपुरुषों में अत्यन्त प्रीति होय है, मरकर देवगति पावै हैं, भूमिकाल के प्रभाव से रत्न सुवर्णमयी है अर कल्पवृक्ष दश जाति के सर्व ही मनवांछित पूर्ण करै है, जहां चार चार अंगुल के महासुगन्ध महामिष्ट अत्यन्त कोमल तृणों से भूमि आच्छादित है, सर्व ऋतु के फल फूलों से वृक्ष शोभैं हैं अर जहां हाथी घोड़े गाय भैंस आदि अनेक जाति के पशु सुख से रहै हैं। अर मनुष्य कल्पवृक्षकरि उत्पन्न महामनोहर आहार करै हैं। जहां सिंहादिक भी हिंसक नाहीं, मांसका आहार नाहीं, योग्य आहार करैं हैं अर जहां वापी सुवर्ण अर रत्ननिके सिवाण तिनकरि संयुक्त कमलनिकरि शोभित दुग्धदही घी मिष्टान्न की भरी अत्यन्त शोभा को धरै है अर पहाड़ अत्यन्त ऊंचे नाना प्रकार रत्ननिकी किरणों से मनोज्ञ सर्व प्राणियोंको सुखके देनहारें पांच प्रकार के वर्णको धरैं विराजैं हैं अर जहां नदी जलचरादि जन्तुरहित महारमणीक (दूध) घी मिष्टान्न जलकी भरी अत्यन्त स्वाद संयुक्त प्रवाहरूप बहै है, जिनके तट रत्ननिकी ज्योति से शोभायमान हैं। जहां बेइन्द्री, तेइन्द्री, चौइन्द्री, असैनी पंचेन्द्री तथा जलचरादि पंचेन्द्रिय जीव नाहीं। जहां थलचर, नभचर, गर्भज तिर्यंचहैं सो तिर्यंचभी युगल ही उपजैं हैं, वहां शीतउष्ण वर्षा नाहीं, तीव्रपवन नाहीं, शीतल मंद सुगन्ध पवन चलै है अर काहू प्रकार का भय नाहीं, सदा अद्भुत उछाह ही प्रवर्त्तै है अर ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षनि की ज्योति कर चांद सूर्य नजर नहीं आवैं हैं अर दस ही जाति के कल्पवृक्ष सर्वही इन्द्रियनिके सुखास्वाद के देनहारे शोभै हैं, जहां खाना, पीना, सोना, बैठना, वस्त्र, आभूषण, सुगन्धादिक सर्व ही कल्पवृक्षों से उपजै हैं अर भाजन तथा वादित्रादि महामनोहर सर्वही कल्पवृक्षनि करि उपजैं हैं। ये कल्पवृक्ष वनस्पतिकाय नाहीं अर देवाधिष्ठित भी नाहीं, केवल पृथ्वीकायरूप सार वस्तु हैं। तहां मनुष्यों के युगल ऐसें रमैं हैं जैसें स्वर्गलोक में देव। या भांति गणधरदेव ने भोगभूमि का वर्णन किया।

आगैं राजा श्रेणिक भोगभूमि में उपजने का कारण पूछते भये तो गणधर देव कहै हैं। जे सरलचित्त साधूनकूं आहारादिक दानके देनहारे ते भोगभूमि विषैं मनुष्य होय हैं। जैसें अच्छे खेत में बोया बीज बहुत गुणा होकर फलै है अर इक्षु (सांठे) में प्राप्त हुआ जल मिष्ट होय है अर गाय ने पीया जो जल सो दूध होय परिणमै है तैसे व्रतनिकरि मंडित परिग्रहरहित मुनिको दिया जो दान सो महाफलकूं फलै है अर जैसें नीरस क्षेत्र में बोया बीज अल्प फल को प्राप्त होय अर नींब में गया जल कटुक होय है तैसे ही भोग-तृष्णा से जे कुदान करें हैं ते भोगभूमि में पशु-जन्म पावै हैं।

भावार्थ–दान चार प्रकार का है–एक आहार दान, दूजा औषधदान, तीजा शास्त्र-दान, चौथा अभयदान। तिसमें मुनि, आर्यिका, उत्कृष्ट श्रावकों को भक्ति कर देना पात्र-दान है अर गुणों कर आपसमान साधर्मी जनों को देना समदान है अर दुखित जीव को दयाभाव कर देना करुणादान है अर सर्व त्याग करके मुनिव्रत लेना सकल दान है। ये दान के भेद कहे। आगे कालचक्र की रीति कहै हैं–

जैसें एक मास विषैं शुक्ल पक्ष अर कृष्ण पक्ष दोय होय हैं तैसें एक कल्प विषैं अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी दो काल प्रवर्त्तै हैं, अवसर्पिणी काल विषैं प्रथम ही सुखमासुखमा काल प्रवर्त्या। बहुरि दूजा सुखमा, तीजा सुखमादुखमा। जब तीजे कालमें पल्य का आठवां भाग बाकी रहा तब कुलकर उपजे, तिनका वर्णन हे राजा श्रेणिक, तुम सुनहु। प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति भये तिनके वचन सुनकर लोक आनन्द को प्राप्त भये। वे कुल-कर अपने तीन जन्म को जानै हैं अर उनकी चेष्टा सुन्दर है अर वह कर्मभूमिमें व्यवहार के उपदेशक हैं अर तिनके पीछे सहस्र कोटि असंख्यात वर्ष गये दूजा कुलकर सन्मति भया, तिनके पीछे तीसरा कुलकर क्षेमंकर, चौथा क्षेमंधर, पांचवाँ सीमंकर, छटा सीमंधर, सातवां विमलवाहन, आठवां चक्षुष्मान्, नवां यशस्वी दशवां अभिचन्द्र, ग्यारहवाँ चन्द्राभ, बारहवां मरुदेव, तेरहवां प्रसेनजित, चौदहवां नाभिराज, ये चौदह कुलकर प्रजा-निके पिता समान महा बुद्धिमान् भले शुभ कर्मनिकरि उत्पन्न भये। जब ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों की ज्योति मंद भई अर चांद सूर्य नजर आए तिनको देखकरि लोग भयभीत भये। कुलकरको पूछतें भये–हे नाथ! यह आकाश में कहा दीखै है। तब कुलकर कही, अब भोगभूमि निवृत्त भई, कर्मभूमिका आगमन है। ज्योतिरांग जाति के कल्पवृक्षों की ज्योति मंद भई है तातें चांद-सूर्य नजर आये हैं। देव चार प्रकार के हैं–कल्पवासी, भव-नवासी व्यन्तर अर ज्योतिषी। तिनमें चाँद सूर्य ज्योतिषियों के इन्द्र प्रतीन्द्र हैं, चन्द्रमा तो शीतकिरण है अर सूर्य उष्णकिरण है। जब सूर्य अस्त होय हैं तब चन्द्रमा कांति को

धरै है अर आकाश विषैं नक्षत्रनिके समूह प्रगट होय हैं, सूर्यकी कांति करि नक्षत्रादि नाहीं भासे हैं तैसैं कल्पवृक्षनि की ज्योतिकरि चन्द्र सूर्यादिक नाहीं भासते थे, अब कल्पवृक्षनि की ज्योति मंद भई तातैं भासै हैं। ऐसा काल का स्वभाव जान करि तुम भयकूं तजो, ऐसा कुलकरका वचन सुनिकर तिनका भय निवृत्त भया।

अथानंतर चौदहवें कुलकर श्रीनाभिराज जगतपूज्य तिनके समय में सबही कल्पवृक्षों का अभाव भया अर युगल उत्पत्ति मिटी। ते अकेले ही उत्पन्न भये, तिनके मरुदेवी राणी मन को हरणहारी उत्तम पतिव्रता जैसें चन्द्रमा के रोहिणी, समुद्र के गंगा, राजहंस के हंसिनी तैसें यह नाभिराजाके होती भई। कैसी है राणी, सदा राजाके मन विषैं बसै है, जाकी हंसनीकी सी चाल अर कोयल कैसे वचन हैं। जैसे चकवीकी चकवेसों प्रीति होय है तैसी राणीकी राजासों प्रीति होती भई। राणीकूं कहा उपमा दीजिये, वे राणी से न्यून दीखै हैं। सर्व लोकपूज्य मरुदेवी जैसें धर्म के दया होय तैसे त्रिलोक पूज्य जो नाभिराजा उसके परमप्रिय होती भई, मानो यह राणी आतापकी हरणहारी चन्द्रकलानि ही कर निरमापी (बनाई) है, आत्मस्वरूपकी जाननहारी सिद्धपद का है ध्यान जिसको, त्रैलोक्यकी माता महा पुण्याधिकारणी मानो जिनवाणी ही है अर अमृत का स्वरूप, तृष्णा की हरणहारी मानो रत्नवृष्टि ही है। सखियों को आनन्दकी उपजावनहारी महा रूपवती कामकी स्त्री जो रति उससे भी अति सुन्दरी है, महा आनन्दरूप माता जिसका शरीर ही सर्व आभूषण का आभूषण है, जिसके नेत्रोंके समान नीलकमल नाहीं, अर जाके केश भ्रमरहूतें अधिक श्याम, सो केशही ललाट के शृंगार हैं। यद्यपि इनको आभूषणों की अभिलाष नाहीं तथापि पतिकी आज्ञा प्रमाण कर कर्णफूलादि आभूषण पहिरे हैं। जिनके मुखका हास्य ही सुगन्धित चूर्ण है, उन समान कपूर की रज कहा अर जिनकी वाणी बीणाके स्वर को जीते है, उनके शरीर के रंग के आगे स्वर्ण कुंकुमादिका रंग कहा? जिनके चरणारबिन्दनि पर भ्रमर गुंजार करै हैं, ऐसी नाभिराजा करि सहित मरुदेवी राणी के यशका वर्णन सैकड़ों ग्रन्थों मे भी न हो सकै तो थोडे से श्लोकों में कैसे होय?

जब मरुदेवी के गर्भविषैं भगवानके आवनेके छह महीना बाकी रहे तब इन्द्रकी आज्ञा से छप्पन कुमारिका हर्षित भई थकी माताकी सेवा करती भई। अर १ श्री, २ ह्री, ३ धृति, ४ कीर्ति, ५ बुद्धि, ६ लक्ष्मी यह षट् (६) कुमारिका स्तुति करती भई कि हे मात! तुम आनन्दरूप हो, हमको आज्ञा करहु, तुम्हारी आयु दीर्घ होऊ, या भांति मनोहर शब्द कहती भई अर नाना प्रकारकी सेवा करती भई। कईएक बीण बजाय महा सुन्दर गान कर माताको रिझावती भई अर कई एक आसन बिछावती भई अर कई एक

कोमल हाथों से माता के पाँव पलोटती भई, कई एक देवी माता को तांबूल (पान) देती भई, कई एक खड्ग हाथ में धारणकर माता की चौकी देती भई कई एक बाहरले द्वार में सुवर्ण आसे लिए खड़ी होती भई अर कई एक चमर ढोरती भई, कई एक आभूषण पहरावती भई, कई एक सेज बिछावती भई, कई एक स्नान करावती भई, कईएक आँगन बुहारती भई, कई एक फूलों के हार गूंथती, कई एक सुगन्ध लगावती भई, कई एक खाने पीनेकी विधिमें सावधान होती भई, कई एक जिसको बुलावे उसको बुलावती भई। या भाँति सर्व कार्य देवी करती भई, माताकूं काहु प्रकार क चिन्ता न रहती भई।

एक दिन माता कोमल सेज पर शयन करती हुती, उसने रात्रि के पिछले पहर अत्यन्त कल्याणकारी सोलह स्वप्ने देखे। १ पहले स्वप्नमें ऐसा चन्द्रसमान उज्ज्वल मद झरता गाजता हाथी देखा जिस पर भ्रमर गुंजार करें हैं। २ दूजे स्वप्न में शरद के मेघ समान उज्ज्वल धवल दहाड़ता हुआ बैल देखा जिसके बड़ा भारी कन्धा है। ३ तीसरे स्वप्न में चन्द्रमा की किरण समान सफेद केशावली विराजमान सिंह देखा। ४ चौथे स्वप्न में लक्ष्मी को हाथी सुवर्णके कलशों से स्नान करावता देखा, वह लक्ष्मी प्रफुल्लित कमल पर निश्चल तिष्ठै है। ५ पाँचवें स्वप्न में दो पुष्पोंकी माला आकाश में लटकती हुई देखी जिनपर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। ६ छठे स्वप्न में उदयाचल पर्वत के शिखर पर तिमिर के हरणहारे मेघपटलरहित सूर्यकूं देख्या। ७ सातवें स्वप्नमें कुमुदिनीको प्रफुल्लित करणहारा रात्रिका आभूषण जिसने किरणों से दशों दिशा उज्ज्वल करी हैं ऐसा तारों का पति चन्द्रमा देख्या। ८ आठवं स्वप्न में निर्मल जल में कलोल करते अत्यन्त प्रेम के भरे हुवे महामनोहर मीन युगल (दो मच्छ) देखे। ९ नवमें स्वप्न में जिनके गले में मोतियों के हार अर पुष्पों की माला शोभायमान है ऐसे पंच प्रकार के रत्नोंकर पूर्ण स्वर्ण के कलश देखे अर १० दसवें स्वप्न में नाना प्रकार के पक्षियों से संयुक्त कमलों कर मंडित सुन्दर सिवाण (पैंडी) कर शोभित निर्मल जलकर भर्या महा सागर देख्या। ११ ग्यारहवें स्वप्नमें आकाशके तुल्य निर्मल समुद्र देख्या जिसमें अनेक प्रकार के जलचर केलि करें हैं अर उतंग लहरें उठे है। १२ बारहवे स्वप्नमें अत्यन्त ऊंचा नाना प्रकार के रत्नोंकरि जड़ित स्वर्ण का सिंहासन देख्या। १३ तेरहवें स्वप्नमें देवताओं के विमान आवते देखे जो सुमेरु के शिखर समान अर रत्ननिकरि मंडित चामरादिकरि शोभित देखे। अर १४ चौदवें स्वप्न में धरणीद्रका भवन देख्या। कैसा है भवन ? जाके अनेक खण (मंजिल) हैं अर मोतियों की मालाकर मंडित रत्नों की ज्योतिकरि उद्योतित मानो कल्पवृक्षकर शोभित हैं। १५ पंद्रहवें स्वप्न में पंच वर्ण के महारत्ननिकी राशि अत्यन्त

ऊंची देखी, जहां परस्पर रत्नों की किरणों के उद्योत से इन्द्र धनुष चढ़ रहा है। १६ सोलहवें स्वप्नमें निर्धूम अग्नि ज्वाला के समूह करि प्रज्वलित देखी। अथानन्तर सुन्दर है दर्शन जिनिका ऐसे सोलह स्वप्न देखकर मंगल शब्दनिके श्रवणकरि माता प्रबोधकूं प्राप्त भई। आगें तिन मंगल शब्दनिका कथन सुनहु।

सखी जन कहै है–हे देवी! तेरे मुखरूप चन्द्रमा की कांतितें लज्जावान हुआ जो वह निशाकर (चंद्रमा) सो मानो कांतिकरि रहित हुआ है। अर उदयाचल पर्वत के मस्तक पर सूर्य उदय होनेको सन्मुख भया है मानो मंगल के अर्थि सिंदूर से लिप्त स्वर्णका कलश ही है। अर तुम्हारे मुखकी ज्योति से अर शरीरकी प्रभा से तिमिर का क्षय होयगा सो अपना उद्योत वृथा जान दीपक मंद ज्योति भये हैं अर पक्षियों के समूह मनोहर शब्द करै हैं सो मानो तिहारे अर्थ मंगल ही पढ़ै हैं। अर जो यह मंदिर में बाग है ताके वृक्षों के पत्र प्रभात की शीतल मंद सुगन्ध पवनतें हालै हैं अर मंदिरकी वापिकामें सूर्य के बिम्ब के विलोकन से चकवी हर्षित भई मिष्ट शब्द करती संती चकवे को बुलावै है अर ये हंस तिहारी चाल देखिकरि, करी है अति अभिलाषा जिन्होंने सो हर्षित होय महामनोहर शब्द करै हैं अर सारसनि के समूहनि करि सुन्दर शब्द होय रहे हैं। तातें हे देवी! अब रात्रि पूर्ण भई, तुम निद्रा को तजो। यह शब्द सुनकर माता सेज से उठी। कैसी है सेज? बिखर रहे हैं कल्पवृक्षन के फूल अर मोती जा विषें, मानो तारानिकरि संयुक्त आकाश ही है।

मरुदेवी माता सुगन्ध महल से बाहिर आई अर सकल प्रभात की क्रियाकर जैसें सूर्य की प्रभा सूर्य के समीप जाय तैसें यह रानी नाभिराजा के समीप गई। राजा देखकर सिंहासनतें उठे, रानी बरावर आय बैठी अर हाथ जोड़कर स्वप्ननि के समाचार कहे। तब राजा ने कहा–हे कल्याणरूपिणी! तेरे त्रैलोक्यका नाथ श्रीआदीश्वर स्वामी प्रगट होइगा। यह शब्द सुनकर वह कमल नयनी चंद्रवदनी परम हर्षको प्राप्त भई। अर इन्द्र की आज्ञासे कुबेर पंद्रह महीना तक रत्नों की वर्षा करते भए। जिनके गर्भ में आए छह मास पहिले से ही रत्नों की वर्षा भई इसलिए इन्द्रादिक देव इनका हिरण्यगर्भ ऐसा नाम कहि स्तुति करते भए। अर तीन ज्ञानकर संयुक्त भगवान माता के गर्भ में आय विराजे, माताकूं काहू प्रकार की पीड़ा न भई।

जैसें निर्मल स्फटिक के महलसे बाहिर निकसिए तैसे नवमें महीने ऋषभदेव स्वामी गर्भ से बाहिर आए तब नाभिराजा ने पुत्रके जन्मका महान उत्सव किया। त्रैलोक्य के प्राणी अति हर्षित भए। इन्द्रनि के आसन कंपायमान भए अर भवनवासी देवनिके यहाँ

बिना बजाये शंख बाजे अर व्यन्तरनिके स्वयमेव ही ढोल बाजे अर ज्योतिषीनि देवों के अकस्मात् सिंहनाद बाजे अर कल्पवासीनके बिना बजाये घन्टा बाजे, या भांति शुभ चेष्टा-निकरि तीर्थंकर देव का जन्म जान इन्द्रादिक देवता नाभिराजा के घर आये। कैसे हैं इन्द्र, ऐरावत हाथी पर चढ़े हैं अर नाना प्रकार के आभूषण पहरे हैं, अनेक प्रकार के देव नृत्य करते भए, देवनिके शब्द करि दशों दिशा गुंजार करतो भई। फिर अयोध्या-पुरी की तीन प्रदक्षिणा देय करि राजाके आंगन में आए। कैसी है अयोध्या! धनपतिने रची है, पर्वत समान ऊंचे कोट से मंडित है, जिसकी गंभीर खाई है अर जहाँ नाना प्रकार के रत्नों के उद्योतसे घर ज्योतिरूप होय रहे हैं। तब इन्द्राणीकूं भगवान के लावने को माताके पास भेजा, इन्द्राणी जाय नमस्कार करि मायामयी बालककूं माता के निकट राखि भगवान को लाय इन्द्रके हाथ में दिया। कैसे हैं भगवान, त्रैलोक्य के रूपको जीतै ऐसा है रूप जिनका, सो इन्द्र हजार नेत्रनिकरि भगवान का रूप देखता तृप्त न भया। बहुरि भगवानकूं सौधर्म इन्द्र गोद में लेय हस्ती पर चढ़े, ईशान इन्द्रने छत्र धरे अर सनत्कुमार माहेन्द्र चमर ढोरते भये, अन्य सकल इन्द्र अर देव जय जयकार शब्द उच्चारते भए। फिर सुमेरु पर्वतके शिखर पर पांडुक शिलापर सिंहासन ऊपर पधराये अर अनेक बाजों का शब्द होता भया जैसा समुद्र गरजे अर यक्ष किन्नर गन्धर्व तुम्बरु नारद अपनी स्त्रियों सहित गान करते भये। कैसा है वह गान! मन अर श्रोत्र (कान) का हरण-हारा है, जहाँ बीन आदि अनेक वादित्र बाजते भए, अप्सरा हाव भावकर नृत्य करती भईं अर इन्द्र स्नान के अर्थ क्षीरसागर के जलतें स्वर्ण कलश भर अभिषेक करने को उद्यमी भए। कैसे हैं कलश, जिनका मुख एक योजन का है अर चार योजन का उदर है, आठ योजन ऊंडे अर कमल तथा पल्लवनिकरि ढके हैं मुख जिनके, ऐसे एक हजार आठ कलशोंसे इन्द्रने अभिषेक कराया। विक्रिया ऋद्धि की सामर्थ्य से इन्द्र ने अपने अनेक रूप किए अर इन्द्रोंके लोकपाल, सोम, वरुण, यम, कुबेर सर्व ही अभिषेक करावते भए, इन्द्राणी आदि देवी अपने हाथों से भगवान के शरीर पर सुगंधका लेपन करती भईं। कैसी है इन्द्राणी, पल्लव (पत्र) समान हैं कर जाके अर महागिरि समान जो भगवान तिनको मेघ समान कलशनितें अभिषेक कराया, गहना पहरावने का उद्यम किया, चांद सूर्य समान दोय कुण्डल कानों में पहराये अर पद्मरागमणिके आभूषण मस्तक बिषैं पहराए, जिनकी कांति दसों दिशाविषैं प्रगट होती भई। अर अर्द्धचन्द्राकार ललाटविषैं चंदन का तिलक किया अर दोनों भुजानविषैं रत्नों के बाजूबंद पहराए अर श्रीवत्स लक्षणकरि युक्त जो हृदय उसपर नक्षत्रमाला समान मोतियों का सत्ताईस लड़ीका हार पहराया अर अनेक

लक्षण के धारक भगवानको महामणिमई कड़े पहराए। अर रत्नमयी कटिसूत्र से नितंब शोभायमान भया जैसे पहाड़ का तट सांझ की बिजली कर शोभै अर सर्व अंगुरियों विषैं रत्नजडित मुद्रिका पहराईं।

इस भांति भक्ति करि देवियो ने सर्व आभूषण पहराए सो त्रैलोक्य के आभूषण जो श्रीभगवान तिनके शरीर की ज्योतितें आभूषण अत्यन्त ज्योति को धारते भए, आभूषणों करि आपके शरीर की कहा शोभा होय। अर कल्पवृक्ष के फूलों से युक्त जो उत्तरासन सो भी दिया जैसें तारानितैं आकाश शोभै है तैसें पुष्पनि कर यह उत्तरासन शोभै है। बहुरि पारिजात, सन्तानकादिक जे कल्पवृक्ष तिनके पुष्पनिकरि सेहरा रच्या, सिर पर पधराया जापर भ्रमर गुंजार करैं हैं। या भांति त्रैलोक्यभूषणको आभूषण पहराये। इन्द्रादिक देव स्तुति करते भए, हे देव ! काल के प्रभावकरि नष्ट होगया है धर्म जाविषैं ऐसा यह जगत महान अज्ञान अन्धकारकरि भर्या है, ताविषे भ्रमण करते भव्य जीव तेई भए कमल तिनको प्रफुल्लित करने को अर मोह तिमिरके हरणको तुम सूर्य उगे हो। हे जिनचन्द्र तुम्हारे वचनरूप किरणों से भव्य जीवरूपी कुमुदनी की पंक्ति प्रफुल्लित होगी, भव्यों का तत्व दिखावनेके अर्थि इस जगत्रूप घर में तुम केवलज्ञानमयी दीपक प्रगट भए हो अर पापरूप शत्रुओं के नाशने के अर्थि मानो तुम तीक्ष्ण बाण ही हो अर तुम ध्यानाग्नि करि भवअटवी को भस्म करने वाले हो अर दुष्ट इन्द्रियरूप जो सर्प तिनके वशि करवेके अर्थि तुम गरुडरूप ही हो अर संदेहरूप जे मेघ तिनके उडावने को प्रबल पवन ही हो। हे नाथ भव्यजीवरूपी पपैए तिहारे धर्मामृतरूप वचन के तिसाए तुमहीको महामेघ जानकरि सन्मुख भए देखें हैं, तुम्हारी अत्यन्त निर्मल कीर्ति तीन लोक में गाई जाती है, तुम्हारे ताईं नमस्कार होहु। अर तुम कल्पवृक्ष हो, गुणरूप पुष्पनिकरि मण्डित मनवांछित फलके देनेहारे हो, कर्मरूप काष्ठके काटने को तीक्ष्ण धारके धरणहारे महा कुठाररूप हो, तातैं हे भगवान ! तुम्हारे अर्थि हमारा बारंबार नमस्कार होहु। अर मोहरूप पर्वतके भंजिवेको महावज्ररूप ही हो अर दुःखरूप अग्निके बुझावने को तुम जलरूपही हो, या अर्थि तुमको बारंबार नमस्कारकरूं हूं। हे निर्मलस्वरूप तुम कर्मरूप रजके समूह से रहित केवल आकाशरूप ही हो, या भांति इन्द्रादिक देव भगवानकी स्तुति करि बारंबार नमस्कार करि ऐरावत गज पर चढ़ाय अयोध्या में लावने को सन्मुख भए अर अयोध्या आए। इन्द्र माता की गोदविषैं भगवान को पधराय कर परम आनन्दित हो तांडव नृत्य करते भए। या भांति जन्मोत्सव कर देव अपने-अपने स्थानक को गए। माता पिता भगवान को देखकर बहुत हर्षित भए। कैसे हैं श्री भगवान् ? अद्भुत आभूषणनितैं विभूषित हैं। बहुरिपरम सुगंध के

लेपतें चरचित हैं अर सुन्दर चारित्र है जिनके। अपने शरीर की कांति से दसों दिशा प्रकाशित हो रही हैं, महा कोमल शरीर है। माता भगवान को देख करि महा हर्ष को प्राप्त भई अर कहने में न आवै सुख जिसका ऐसे परमानन्द सागर में मग्न भई। वह माता भगवान को गोद में लिये ऐसी शोभती भई जैसें ऊगते सूर्यतें पूर्व दिशा शोभै। अर त्रैलोक्यके ईश्वरको देख नाभिराजा आपको कृतार्थ मानते भए, पुत्रके गात्रको स्पर्श कर नेत्र हर्षित भए, मन आनन्दित भया। समस्त जगतविषैं मुख्य ऐसे जे जिनराज तिनका ऋषभ नाम धर माता पिता सेवा करते भए। हाथको अंगुष्ठमें इन्द्रने अमृत रस मेल्या, उसको पानकर शरीर वृद्धि को प्राप्त भया। बहुरि प्रभु की वय (उमर) प्रमाण इन्द्र ने देवकुमार राखे तिन सहित निःपाप क्रीड़ा (खेल) करते भये, कैसी है वह क्रीड़ा ! माता पिता को अति सुख देनहारी है।

अथानन्तर भगवान के आसन शयन सवारी वस्त्र आभूषण अशन पान सुगंधादि विलेपन गीत नृत्य वादित्रादि सब सामग्री देवोपुनीत होती भई। थोड़े ही काल में अनेक गुणनिकी वृद्धि होती भई। उनका रूप अत्यंत सुन्दर जो वर्णनमें न आवै, मन अर नेत्र-निका तृप्त करनहारा, मेरु की भीति समान महा उन्नत, महा दृढ़ वक्षस्थल शोभता भया अर दिग्गजनिके थंभ समान बाहु होती भई, कैसी है वह बाहु, जगत के अर्थ पूर्ण करने को कल्पवृक्ष ही है। बहुरि दोऊ जंघा त्रैलोक्य रूप घरके थांभवेको थंभ हो हैं अर मुख महा-सुन्दर मनोहर जिसने अपनी कांतितैं चंद्रमाको जीता है अर दीप्तिकरि जीता है सूर्य जिसने अर दोऊ हाथ कोमलहूते अति कोमल अर लाल हैं हथेलियां जिनकी अर केश महा सुन्दर सघन दीर्घ वक्र पतले चीकने श्याम हैं मानों सुमेरु के शिखर पर नीलाचल ही विराजै हैं अर रूप महा अद्भुत अनुपम सर्वलोकके लोचनको प्रिय जिस पर अनेक काम-देव वारि नाखिये, ऐसे सर्व उपमा को उलंघे, सब का मन अर नेत्र हरै, या भांति भगवान कुमार अवस्था में भी जगत को सुखदायक होते भए। उस समय कल्पवृक्ष सर्वथा नष्ट भए अर बिना बोये धान आपतें आप ऊगे, तिनतें पृथ्वी शोभती भई अर लोक निपट भोले, षट् कर्मतें अनजान, उन्होंने प्रथम इक्षु रसका आहार किया। वह आहार कांति अर वीर्यादिक के करने को समर्थ है। केएक दिन पीछे लोगोंको क्षुधा बढ़ी, जब इक्षु रसतें तृप्ति न भई तब सर्व लोक नाभिराजा के निकट आए अर नमस्कार करि विनती करते भए कि हे नाथ ! कल्पवृक्ष समस्त क्षय हो गए अर हम क्षुधा तृषाकरि पीडित हैं, तुम्हारे शरण आए हैं, तुम रक्षा करो, यह कितनेक फलयुक्त वृक्ष पृथिवीपर प्रगट भए हैं, इनकी विधि हम जानते नहीं हैं, इनमें कौन भक्ष्य हैं, कौन अभक्ष्य हैं अर गाय भैंसके

थनों से कुछ झरै है पर वह क्या है ? अर यह व्याघ्र सिंहादिक पहले सरल थे, अब वक्रतारूप दीखै हैं अर ये महामनोहर स्थल पर अर जल में पुष्प दीखें हैंसो कहा है, हे प्रभु! तुम्हारे प्रसाद कर आजीविकाका उपाय जानें तो हम सुखसों जीवें। यह वचन प्रजा के सुनकरि नाभिराजाको दया उपजी, नाभिराजा महाधीर तिनसों कहते भए कि या संसारविषें ऋषभदेव समान और कोई भी नाहीं जिनकी उत्पत्ति में रत्नों की वृष्टि अर इन्द्रादिक देवोंका आगमन भया, लोकनिको हर्ष उपज्या, वह भगवान महा अतिशय संयुक्त हैं तिनके निकट जायकर हम तुम आजीवकाका उपाय पूछें, भगवानका ज्ञान मोह तिमिरके अन्त तिष्ठ्या है। तिस प्रजा सहित नाभिराजा भगवान के समीप गए अर समस्त प्रजा नमस्कार कर भगवान की स्तुति करती भई। हे देव ! तुम्हारा शरीर सब लोकनि को उलंघ कर तेजोमय भासै है। सर्व लक्षण सम्पूर्ण महा शोभायमान है अर तुम्हारे अत्यन्त निर्मल गुण सब जगत में व्याप रहे हैं, वे गुण चन्द्रमाकी किरण समान उज्ज्वल महा आनंद के करण हारे हैं। हे प्रभु ! हम या कार्यके अर्थ तुम्हारे पिताके पास आए थे सो ये तुम्हारे निकट लाए हैं। तुम महापुरुष, महा विद्वान्, महाअतिशयकर मंडित हो, जो ऐसे बड़े पुरुष भी तुमको सेवें हैं, तातैं तुम दयालु हो, हमारी रक्षा करो। क्षुधा, तृषा हरने का उपाय कहो। अर जाकरि सिंहादिक क्रूर जीवनिका भी भय मिटे सो उपाय बताओ। तब भगवान कृपानिधि कोमल है हृदय जिनका, इन्द्र को कर्मभूमिकी रीति प्रगट करने की आज्ञा करते भए। प्रथम नगर ग्राम ग्रहादिककी रचना भई अर जे मनुष्य शूरवीर जाने, तिनको क्षत्री वर्ण ठहराए अर उनको यह आज्ञा भई कि तुम दीन अनाथनिकी रक्षा करो। कैएकन को वाणिज्यादिक कर्म बताकर वैश्य ठहराये अर जो सेवादिक अनेक कर्मके करनहारे थे, उनको शूद्र ठहराये। या भांति भगवान ने कहा जो यह कर्मरूप युग, उसको प्रजा कृतयुग (सत्ययुग) कहते भये अर परम हर्षको प्राप्त भये। श्री ऋषभदेव के सुनन्दा अर नंदा यह दो राणी भईं, बड़ी राणी के भरतादिक सौ पुत्र और एक ब्राह्मी पुत्री भई अर दूसरी राणी के बाहुबलि एक पुत्र अर सुन्दरी एक पुत्री भई। ऐसें भगवान ने त्रेसठ लाख पूर्वकाल तक राज किया अर पहले बीस लाख पूर्व कुमार रहे, या भांति तिरासी लाख पूर्व गृह में रहे।

एक दिन नीलांजना अप्सरा भगवान के निकट नृत्य करती विलाय (मर) गई, ताको देखकर भगवान की बुद्धि वैराग्य में तत्पर भई। वह विचारने लगे कि ये संसारके प्राणी वृथा ही इन्द्रियों को रिझाकर उन्मत्त चारित्रनिकी विडंबना करे हैं, अपने शरीर को खेदका कारण जो जगत की चेष्टा, ताको जगत के जीव सुख मानें हैं। इस जगत में

कई एक तो पराधीन चाकर होय रहे हैं, कई एक आपको स्वामी मान तिन पर आज्ञा करै हैं जिनके वचन गर्वतैं भरे हैं। धिक्कार है या संसार को, जामें जीव दुःख ही भोगें हैं अर दुःख ही को सुख मान रहे हैं तातैं मैं जगतके विषय-सुखोंको तजकर तप-संयमादि शुभ चेष्टा कर मोक्ष सुखकी प्राप्ति के अर्थि यत्न करूं। ये विषय सुख क्षणभंगुर हैं अर कर्मके उदय से उपजे हैं, इसलिए कृत्रिम (बनावटी) हैं। या भांति श्री ऋषभदेव का मन वैराग्य चितवन में प्रवर्त्या। तब लौकान्तिक देव आय स्तुति करते भये कि—हे नाथ! तुमने भली विचारी। त्रैलोक्य में कल्याणका कारण यह ही है। भरत क्षेत्र में मोक्षका मार्ग विच्छेद भया था सो आपके प्रसादतैं अब प्रवर्त्तेगा, ये जीव तुम्हारे दिखाये मार्ग से लोकशिखर अर्थात् निर्वाणको प्राप्त होंगे, या भांति लौकान्तिक देव स्तुति कर अपने धाम गये अर इन्द्रादिक देव आय कर तपकल्याणक का समय साधते भये। रत्नजड़ित सुदर्शना नामा पालकी में भगवान को चढ़ाया। कैसी है वह पालकी—कल्पवृक्षनिके फूलों की मालातैं महा सुगंधित है अर मोतिनके हारों से शोभायमान है, भगवान तिस पालकी पर चढ़कर घरतैं वनको चाले। नानाप्रकारके वादित्रोंके शब्द अर देवोंके नृत्यसे दसों दिशा शब्दरूप भई अर महा विभूति संयुक्त तिलकनामा उद्यान में गए। माता पितादिक सर्व कुटुम्बतैं क्षमाभाव कराकर अर सिद्धों को नमस्कारकर मुनिपद अंगीकार किया। समस्त वस्त्र आभूषण तजे अर केशों का लौंच किया। वे केश इन्द्रने रत्नों के पिटारे में रखकर क्षीरसागर में डारे। भगवान जब मुनिराज भए तबि च्यार हजार राजा मुनिपद को न जानते हुवे केवल स्वामी की भक्ति के कारण तिनके साथ नग्नरूप भए। भगवान ने छः महीने पर्यन्त निश्चल कायोत्सर्ग धर्‌या अर्थात् सुमेरु पर्वत समान निश्चल होय तिष्ठे अर मन वा इन्द्रियनिका निरोध किया।

अथानंतर कच्छ महाकच्छादि जो चार हजार राजा नग्नरूप धारण करि दीक्षित भए हुते, ते सर्व ही क्षुधा तृषादि परीषहनिकरि चलायमान भए। कई एक तो परीषह-रूप पवन के मारे भूमि पर गिरि पड़े, कई एक जो महा बलवान हुते, वे भूमिपर तो न पड़े परन्तु बैठ गये, कईएक कायोत्सर्गको तज क्षुधा तृषातैं पीडित होय फलादिक आहार करते भए अर कईएक गरमीतैं तप्तायमान होय कर शीतल जल में प्रवेश करते भए, तिनकी यह चेष्टा देखकर आकाश में देववाणी भई कि 'मुनिरूप धार करि तुम ऐसा काम मत करो, यह रूप धार करि तुमको ऐसा कार्य करना नरकादि दुःखनिका कारण है' तब वे नग्न मुद्रा तजकर वक्कल पत्र धारते भए, कईएक चरमादि धारते (पहनते) भए, कई एक दर्भ (कुशादिक) धारते भए अर फलादिकतै क्षुधा को अर शीतल जलतैं तृषाको

निवारते भए। या प्रकार वे लोग चारित्र भ्रष्ट होय कर अर स्वेच्छाचारी बनकर भगवानके मत से पराङ्‌मुख होय शरीर का पोषण करते भए। किसी ने पूछा कि तुम यह कार्य भगवानकी आज्ञा तें करो हो या मन ही ते करो हो ? तब उन्होंने कहा कि भगवान तो मौनरूप हैं, कुछ कहते नाहीं। हम क्षुधा तृषा शीत उष्ण से पीड़ित होय कर यह कार्य करें हैं, बहुरि कईएक परस्पर (आपस में) कहते भए कि आवो गृहमें जाकर पुत्र दारादिकका अवलोकन करें। तब उनमेंसे किसी ने कहा जो हम घरमें जावेंगे तो भरत घरमेंतें निकास देइंगे अर तीव्र दंड देगे इसलिए घर नहीं जाना। तब बन ही में रहे। इन सबमें महामानी मारीच भरत का पुत्र भगवान का पोता भगवें वस्त्र पहनकर परिव्राजिक (संन्यासी) का मार्ग प्रगट करता भया।

अथानंतर कच्छ महाकच्छ के पुत्र नमि विनमि आयकर भगवान के चरणों में पड़े अर कहने लगे कि हे प्रभु ! तुमने सबको राज दिया, हमको भी दीजिये, या भांति याचना करते भए। तब धरणींद्र का आसन कम्पायमान भया। धरणींद्र ने आयकर इनको विजयार्द्ध का राज दिया। कैसा है वह विजयार्द्ध पर्वत भोगभूमि के समान है। पृथ्वी तल से पच्चीस योजन ऊँचा है अर सवा छै योजनका कन्द है अर भूमि पर पचास योजन चौड़ा है अर भूमितै दस योजन ऊँचे उठिये तहां दस दस योजन की दोय श्रेणी हैं, एक दक्षिण श्रेणी अर एक उत्तर श्रेणी। इन दोनों श्रेणियोंमें विद्याधर बसैं हैं। दक्षिण श्रेणीकी नगरी पचास अर उत्तर श्रेणीकी साठ, एक एक नगरो को कोटि कोटि ग्राम लागे हैं अर दस योजन से बहुरि ऊपर दस योजन जाइये तहाँ गंधर्व, किन्नरादिक देवों के निवास हैं अर पाँच योजन ऊपर जाइये तहाँ नव शिखर हैं। उनमें प्रथम सिद्धकूट उसमें भगवानके अकृत्रिम चैत्यालय हैं अर औरनिविषै देवों के स्थान हैं। सिद्धकूट पर चारण मुनि आयकर ध्यान धरें हैं। विद्याधरोंकी दक्षिण श्रेणी की जो पचास नगरी हैं उनमें रथनूपुर मुख्य है अर उत्तर नगरी की जो साठ नगरी हैं उनमें अलकावती नगरी मुख्य है। कैसा है वह विद्याधरनि का लोकस्वर्ग लोक, समान है सुख जहां, सदा उत्साह ही प्रवर्त्ते है, नगरी के बड़े-बड़े दरवाजे अर कपाटयुगल अर सुवर्ण के कोट, गम्भीर खाई अर वन-उपवन वापी कूप सरोवरादिसे महा शोभायमान हैं। जहां सब ऋतु के धान अर सर्व ऋतु के फल-फूल सदा पाइए हैं, जहां सर्व औषधि सदा पाइये हैं, जहां सर्व काम का साधन है, सरोवर कमलों से भरे जिनमें हंस क्रीडा करै हैं अर जहां दधि दुग्ध घृत मिष्टान्नके सदश जलके नीझरने बहैं हैं। कैसी हैं वापी जिनके मणि सुवर्णके सिवान (पैंडी) हैं अर कमल के मकरंदों से शोभायमान हैं। जहां कामधेनुसमान गाय हैं अर

पर्वत समान अनाज के ढेर हैं अर मार्ग धूल-कंटकादि रहित हैं, माटे वृक्षोंकी छाया है अर महा मनोहर जलके स्थान हैं। चौमासे में मेघ मनवांछित बरसै हैं अर मेघोंकी आनन्दकारी ध्वनि होय है, शीतकाल में शीतकी विशेष बाधा नाहीं अर ग्रीष्मऋतु में विशेष आताप नाहीं। जहाँ छै ऋतु के विलास हैं, जहां स्त्री सर्व आभूषण मंडित कोमल अंगवाली हैं अर सर्वकलानिमें प्रवीण षट्कुमारिका समान प्रभावाली हैं। कैसी हैं वह विद्याधरी, कईएक तो कमलके गर्भ समान प्रभाको धरै हैं, कईएक श्यामसुन्दर नीलकमल की प्रभा को धारै हैं, कईएक सिहभना के फूल समान रंगकू धरै हैं, कईएक विद्युत समान ज्योतिको धरै हैं, ये विद्याधरी महासुगन्धित शरीर वाली हैं मानो नंदन वन की पवन ही से बनाई हैं, सुन्दर फूलोंके गहने पहरे हैं सो मानों बसंत की पुत्री ही हैं अर चन्द्रमा समान कांति है मानो अपनी ज्योतिरूप सरोवर में तिरै ही हैं। अर श्याम श्वेत सुरंग तीन वर्णके नेत्रनिकी शोभाको धरणहारी, मृगसमान हैं नेत्र जिनके, हंसनी समान है चाल जिनकी, वे विद्याधरी देवांगना समान शोभै हैं। अर पुरुष विद्याधर महासुन्दर शूरवीर सिंहसमान पराक्रमी हैं। महाबाहु महापराक्रमी आकाश-गमनविषैं समर्थ, भले लक्षण, भली क्रिया के धरणहारे, न्यायमार्गी, देवों के समान है प्रभा जिनकी, ऐसी अपनी स्त्रियों सहित विमान में बैठि अढ़ाई द्वीपमें जहां इच्छा होय तहां ही गमन करै हैं। या भांति दोनों श्रेणियों में विद्याधर देव-तुल्य इष्ट भोगनिको भोगते महाविद्याओं को धरै हैं, कामदेव समान है रूप जिनका अर चन्द्रमा समान है वदन जिनका। धर्म के प्रसाद से प्राणी सुख संपति पावै हैं तातैं एक धर्म ही विषैं यत्न करो अर ज्ञानरूप सूर्य से अज्ञान तिमिर को हरो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महा पद्मपुराण की भाषाटीका विषैं विद्याधर लोक का कथन जा विषै है ऐसा तृतीय अधिकार सम्पूर्ण भया॥ ३॥

—:o:—

(चौथा पर्व)

[भगवान ऋषभदेवका आहार निमित्त विहार वर्णन]

अथानंतर वे भगवान् ऋषभदेव महाध्यानी सुवर्ण समान प्रभा के धरणहारे प्रभु जगत के हित करने निमित्त छह मास पीछैं आहार लेने को प्रवृत्ते। लोक मुनिनके आहार

की विधि जानै नाहीं। अनेक नगर ग्रामविषें विहार किया, मानो अद्भुत सूर्य ही विहार करै है। जिन्होंने अपने देहकी कांति से पृथ्वीमंडल पर प्रकाश कर दिया है। जिनके कांधे सुमेरु के शिखर समान देदीप्यमान हैं अर परम समाधानरूप अधोदृष्टि देखते, जीव दया पालते विहार करै हैं। पुर ग्रामादिमें अज्ञानी लोक नाना प्रकार के वस्त्र, रत्न, हाथी, घोड़े, रथ, कन्यादिक भेंट करते सो प्रभुके कुछ भी प्रयोजन नाहीं। या कारण प्रभु फिर बन को चले जांय हैं। या भांति छै महीने तक विधिपूर्वक आहारकी प्राप्ति न भई अर्थात् दीक्षा समय से एक वर्ष बिना आहार बीता। पीछें विहार करते हुए हस्तिनापुर आये, तब सर्व ही लोक पुरुषोत्तम भगवान को देखकर आश्चर्य को प्राप्त भये। राजा सोमप्रभ अर तिनके लघु भ्राता श्रेयांस ये दोनों ही भाई उठकर सन्मुख चाले। श्रेयांस को भगवान के देखनेतें ही पूर्वभव का स्मरण भया अर मुनिनके आहार की विधि जानी। वह नृप भगवान की प्रदक्षिणा देते ऐसे शोभै हैं मानो सुमेरुकी प्रदक्षिणा सूर्य ही दे रहा है अर बारंबार नमस्कार कर रत्न पात्रतें अर्घ देय चरणारविन्द धोये अर अपने शिर के केशनितें पोंछे तब आनन्दके अश्रुपात आये अर गद-गद वाणी भई। श्रेयास ने जिसका चित्त भगवान के गुणनिमें अनुरागी भया है, महा पवित्र रत्ननि के कलशों में रखे हुए रहा शीतल मिष्ट इक्षुरसका आहार दिया। परम श्रद्धा अर नवधा भक्ति से दान दिया। वर्षोपवास पारणा भई ताके अतिशयतै देव हर्षित होय पाँच आश्चर्य करते भए। प्रथम ही रत्ननि की वर्षा भई। बहुरि कल्पवृक्षोंके पंच प्रकारके पुष्प बरसे। शीतल मंद सुगंध पवन चाली अर अनेक प्रकार दुन्दुभी बाजे बाजे अर यह देववाणी भई कि धन्य यह पात्र अर धन्य यह दान अर धन्य दानका देनहारा श्रेयांस। ऐसे शब्द देवताओं के आकाश में भए। श्रेयाँस की कीर्ति देखकर दानकी रीति प्रगट भई। देवतानिकर श्रेयांस प्रशंसा योग्य भए अर भरत ने अयोध्यातें आयकर श्रेयांस की बहुत स्तुति करी, अति प्रीति जनाई। भगवान आहार लेयकर वन में गये।

अथानन्तर भगवानने एक हजार वर्ष पर्यंत महातप किया अर शुक्लध्यानतें मोह का नाशकर केवल ज्ञान उपजाया। कैसा है वह केवलज्ञान ? लोकालोक का अवलोकन है जाविषै। जब भगवान केवलज्ञान को प्राप्त भए तब अष्ट प्रतिहार्य प्रगटे। प्रथम तो आपके शरीर की कांतिका ऐसा मंडल हुआ जातैं चन्द्र सूर्यादिक का प्रकाश मंद नजर आवै, रात्रि दिवसका भेद नजर न आवै अर अशोकवृक्ष रत्नमई पुष्पों से शोभित रक्त हैं पल्लव जाके। अर आकाशतें देवों ने फूलों की वर्षा करी, जिनकी सुगंधसे भ्रमर गुंजार करै हैं। महा दुंदुभी बाजों की ध्वनि होती भई जो समुद्रके शब्दनितें भी अधिक देवों ने

बाजे बजाए, कैसे हैं देव, जिनका शरीर मायामई करि दीखता नाहीं। अर चन्द्रमा की किरणतैं भी अधिक उज्ज्वल चमर इन्द्रादिक ढोरते भए। अर सुमेरु के शिखर तुल्य पृथ्वीका मुकुट सिंहासन आपके विराजनेको प्रगट भया, कैसा है सिंहासन? अपनी ज्योतिकर जीती है सूर्यादिककी ज्योति जाने। अर तीन लोककी प्रभुता के चिन्ह मोतियों की झालर से शोभायमान तीन छत्र अति शोभैं हैं मानो भगवानके निर्मल यश ही हैं। अर समोशरण में भगवान सिंहासन पर विराजे सो समोशरणकी शोभा कहनेकूं केवली ही समर्थ हैं, और नाहीं। चतुरनिकायके देव सब ही बंदना करने को आए, भगवान के मुख्य गणधर वृषभसेन भये, आपके द्वितीय पुत्र अर अन्य भी बहुत जे मुनि भए थे, वे महा वैराग्यके धारणहारे मुनि आदि बारह सभाके प्राणी अपने अपने स्थानकविषैं बैठे। तदनंतर भगवानकी दिव्यध्वनि होती भई जो अपने नादकर दुन्दुभी बाजोंकी ध्वनिको जीतै है। भगवान जीवों के कल्याणनिमित्त तत्वार्थका कथन करते भए कि तीन लोक में जीवों को धर्म ही परम शरण है, याहीतैं परम सुख होय है, सुख के अर्थि सभी चेष्टा करैं हैं अर सुख धर्मके निमित्तसे ही होय है, ऐसा जानकर धर्म का यत्न करहु। जैसें मेघ बिना वर्षा नाहीं, बीज बिना धान्य नाहीं, तैसें जीवनिके धर्म बिना सुख नाहीं। अर जैसें कोई पंगु (लंगड़ा) पुरुष चलनेकी इच्छा करै अर गूंगा बोलने की इच्छा करै अर अन्धा देखने की इच्छा करै, तैसै मूढ़ प्राणी धर्म बिना सुख की इच्छा करै है। जैसें परमाणुतैं और कोई अल्प (सूक्ष्म) नाहीं अर आकाशतैं कोई महान् (बड़ा) नाहीं तैसैं धर्म समान जीवोंका अन्य कोई मित्र नाहीं अर दया समान कोई धर्म नाहीं। मनुष्यके भोग अर स्वर्ग के भोग अर सिद्धनिके परम सुख धर्महीतैं होय हैं तातैं धर्म बिना और उद्यमकरि कहा? जे पंडित जीवदयाकर निर्मल धर्मको सेवैं हैं तिनहीका ऊर्ध्व गमन है, दूसरें अधोगति जाय हैं। यद्यपि द्रव्यलिंगी मुनि तप की शक्तितें स्वर्ग लोक में जाय हैं तथापि बड़े देवोंके किंकर होयकर तिनकी सेवा करैं हैं। देवलोकमें नीच देव होना देव-दुर्गति है सो देव दुर्गति के दुःख को भोगकर तिर्यंचगतिके दुःखको भोगै है। अर जे सम्यकदृष्टि जिनशासनके अभ्यासी, तप-संयम के धारणहारे देवलोकमें जाय हैं, ते इन्द्रादिक बड़े देव होयकर बहुत काल सुख भोगकर देवलोकतैं चय मनुष्य होय मोक्ष पावै हैं। सो धर्म दोय प्रकार का है—एक यतिधर्म दूसरा श्रावकधर्म। तीजा धर्म जो मानै हैं वे मोह-अग्निसे दग्ध हैं। पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत अर चार शिक्षाव्रत, यह श्रावक का धर्म है। श्रावक मरण समय सर्व आरम्भ तज शरीरतें भी निर्ममत्व होय समाधिमरण करि उत्तम गतिको जाय हैं। अर यतीनका धर्म पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार का चारित्र

है। दसों दिशा ही यति के वस्त्र हैं। जो पुरुष यति का धर्म धारै हैं, वे शुद्धोपयोग के प्रसाद करि निर्वाण पावैं हैं अर जिनके शुभोपयोग का अंश रहै है ते स्वर्ग पावैं हैं, परम्पराय मोक्ष जाय हैं। अर जे भावों से मुनियोंकी स्तुति करें हैं ते हू धर्म को प्राप्त होय हैं। कैसे हैं मुनि, परम ब्रह्मचर्य्यके धारणहारे हे। यह प्राणी धर्मके प्रभावतैं सर्व पापों से छुटै है अर ज्ञानकूं पावै है, इत्यादिक धर्म का कथन देवाधिदेवने किया सो सुनकर सर्व पापनितैं निवृत्त भए। अर देव मनुष्य सर्व ही परम हर्षकूं प्राप्त भए। कईएक तो सम्यक्त को धारण करते भए, कई एक सम्यक्त सहित श्रावक के व्रतकूं धारते भए, कईएक मुनिव्रत धारते भए। बहुरि सुर-असुर मनुष्य धर्म श्रवण कर अपने अपने धाम गए। भगवान ने जिन जिन देशों में गमन किया उन उन देशों में धर्मका उद्योत भया। आप जहां जहाँ विराजे तहाँ तहां सौ सौ योजन तक दुर्भिक्षादिक सर्व बाधा मिटी। प्रभु के चौरासी गणधर भए अर चौरासी हजार साधु भए, इन करि मंडित सर्व उत्तम देशनिविषै विहार किया।

अथानन्तर भरत चक्रवर्तीपदकूं प्राप्त भए। अर भरत के भाई सबही मुनि व्रत धार परमपद कों प्राप्त भए। भरत ने कुछ काल छै खंडका राज्य किया, अयोध्या राजधानी, नवनिधि अर चौदह रत्न, प्रत्येककी हजार हजार देव सेवा करै। तीन कोटि गाय, एक कोटि हल, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, अठारह कोटि घोड़े, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा अर इतने ही देश महासंपदा के भरे, छियानवे हजार रानी देवांगना समान, इत्यादिक चक्रवर्त्ती के विभवका कहाँ तक वर्णन करिए। पोदनपुर में दूसरी माता का पुत्र बाहुबली, सो भरत की आज्ञा न मानते भए अर कह्या कि हम भी ऋषभदेव के पुत्र हैं, किसकी आज्ञा मानें। तब भरत बाहुबली पर चढ़े, सेना का युद्ध न ठहरा। दोऊ भाई परस्पर युद्ध करें, यह ठहरा। तीन युद्ध थापे। १ दृष्टि युद्ध, २ जल-युद्ध, अर ३ मल्लयुद्ध। तीनों ही युद्धों में बाहुबली जीते अर भरत हारे, तब भरत ने बाहुबलीपर चक्र चलाया, वह उनके चरम शरीर पर घात न कर सका, लौटकर भरत के हाथ पर आया। भरत लज्जित भए, बाहुबली सर्व भाग त्यागकरि वैरागी भए, एक वर्ष पर्यन्त कायोत्सर्ग धरि निश्चल तिष्ठे, शरीर बेलों से वेष्टित भया, सांपों ने बिल किये, एक वर्ष पीछे केवल ज्ञान उपज्या, भरत चक्रवर्तीने आयकर केवली की पूजा करी, बाहुबली केवली कुछ काल में निर्वाणको प्राप्त भए। अवसर्पिणी कालमें प्रथम मोक्षको गमन किया। भरत चक्रवर्ती ने निष्कंटक छै खण्डका राज्य किया। जिसके राज्यमें विद्याधरोंके समान सर्व सम्पदा के भरे अर देवलोक समान महा विभूति कर मंडित है,

जिनमें देवों समान मनुष्य नानाप्रकारके वस्त्राभरण करि शोभायमान अनेक प्रकारकी शुभ चेष्टा करि रमते हैं. लोक भोगभूमि समान सुखी अर लोकपाल समान राजा अर मदनके निवासकी भूमि, अप्सरा समान नारियां, जैसें स्वर्गविषें इन्द्र राज करै तैसें भरत ने एकछत्र पृथ्वीविषें राज किया। भरत के सुभद्रा राणी इन्द्राणी समान भई, जिसकी हजार देव सेवा करैं। चक्री के अनेक पुत्र भये तिनकों पृथ्वी का राज दिया। इस प्रकार गौतम स्वामी ने भरत का चरित्र श्रेणिक राजा से कहा।

[विप्रोत्पत्ति वर्णन]

अथानंतर श्रेणिक ने पूछा—हे प्रभो ! तीन वर्णकी उत्पत्ति तुमने कही सो मैंने सुनी, अब विप्रोंकी उत्पत्ति सुना चाहूं हूँ सो कृपाकर कहो। गणधर देव जिनका हृदय जीव दया करि कोमल है अर मद-मत्सरकरि रहित है, वे कहते भये कि एक दिन भरत ने अयोध्या के समीप भगवान का आगमन जान समोशरण में जाय वंदनाकर मुनिके आहार की विधि पूछी। तब भगवान की आज्ञा भई कि मुनि तृष्णाकर रहित जितेन्द्री अनेक मासोपवास करैं, पराये घर निर्दोष आहार लेय अन्तराय पड़ें तो भोजन न करैं, प्राण-रक्षा-निमित्त निर्दोष आहार करैं अर धर्म के हेतु प्राणको राखैं अर मोक्षके हेतु उस धर्म को आचरैं जिसमें किसी भी प्राणी को बाधा नाहीं। यह मुनिका धर्म सुन कर चक्रवर्ती विचारै है—अहो ! यह जैनका व्रत महा दुर्धर है, मुनि शरीर से भी निःस्पृह (निर्ममत्व) तिष्ठै हैं तो अन्य वस्तुमें उनकी वांछा कैसे होय ? मुनि महा निर्ग्रन्थ निर्लोभी सर्व जीवों की दयाविषें तत्पर हैं। मेरे विभूति बहुत है, मैं अणुव्रती श्रावक कौं भक्ति कर दूं अर दीन लोकनिको दया कर दूं, ये श्रावक भी मुनि के लघु भ्राता हैं, ऐसा विचारकर लोक-निकों भोजन के अर्थि बुलाए। अर व्रतियों की परीक्षा निमित्त आंगणमें जो शालि धान उर्द मूंगादि बोए थे, तिनके अंकुर ऊगे, सो अविवेकी लोग तो हरितकाय को खूंदते आए अर जे विवेकी थे, वे अंकुर जान खड़े होय रहे, तिनको भरत अंकुर रहित जो मार्ग उस पर से बुलाया अर व्रती जान बहुत आदर किया अर यज्ञोपवीत (जनेऊ) कंठ में डाला, आदर से भोजन कराया, वस्त्राभरण दिये अर मनवांछित दान दिये अर जे अंकुरको दल-मलते आए थे, तिनकों अव्रती जान उनका आदर नहीं किया। अर व्रतियों को ब्राह्मण ठहराए। चक्रवर्ती के मानने से कैएक तो गर्व को प्राप्त भए अर कैएक लोभ की अधि-कता से धनवान लोकनिको देखकर याचना को प्रवर्ते।

तब मतिसमुद्र मंत्रीने भरत से कहा कि—समोशरण में मैंने भगवान के मुखसे

ऐसा सुना है कि जो तुमने विप्र धर्माधिकारी जानकर माने हैं, ते पंचमकाल में महा मदोन्मत होंयगे अर हिंसा में धर्म जानकर जीवों को हनेंगे अर महा कषायसंयुक्त सदा पापक्रिया में प्रवर्त्तेंगे अर हिंसा के प्ररूपक ग्रंथों को अकृत्रिम मानकर समस्त प्रजा को लोभ उपजावेंगे। महा आरम्भ विषैं आसक्त, परिग्रह में तत्पर, जिन भाषित जो मार्ग ताकी सदा निंदा करेंगे। निर्ग्रन्थ मुनि को देखि महा क्रोध करेंगे, ए वचन सुन भरत इन पर क्रोधायमान भए, तब ये भगवान के शरण गए। भगवान ने भरत को कहा—हे भरत! जो कलिकालविषैं ऐसाही होना है, तुम कषाय मत करो। इस भांति विप्रों की प्रवृत्ति भई अर जो भगवान के साथ वैराग्य को निकले ते चारित्रभ्रष्ट भये। तिनमेंतैं कच्छादिक कैएक तो सुलटे अर मारीचादिक नहीं सुलटे। तिनके शिष्य-प्रतिशिष्यादिक सांख्य योग में प्रवर्ते, कोपीन (लंगोटी) पहरी, बक्कलादि धारे। यह विप्रनिकी अर परिव्राजक कहिये दंडीनिकी प्रवृत्ति कही।

अथानन्तर अनेक जीवनिकों भवसागरसे तारकर भगवान ऋषभ कैलाश के शिखर से लोक शिखर जो निर्वाण उसको प्राप्त भये। अर भरत भी कुछ काल राज्य कर जीर्ण तृणवत् राज्य को छोड़कर वैराग्य को प्राप्त भए, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान उपज्या। पीछैं आयु पूर्णकर निर्वाण को प्राप्त भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महा पद्मपुराण की भाषाटीका विषैं श्रीऋषभदेव का कथन जा विषैं है ऐसा चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया।

—:०:—

अथ वंशोत्पत्ति नामा महाधिकार

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से वंशों की उत्पत्ति कहते भए कि हे श्रेणिक, इस जगत विषैं महावंश जो चार तिनके अनेक भेद हैं। १ प्रथम इक्ष्वाकु वंश, यह लोक का आभूषण है, इसमें से सूर्य वंश प्रवर्त्या है। २ दूसरा सोम (चन्द्र) वंश चन्द्रमा की किरण समान निर्मल है। ३ तीसरा विद्याधरों का वंश अत्यन्त मनोहर है। ४ चौथा हरिवंश जगत विषैं प्रसिद्ध है। अब इनका भिन्न-भिन्न विस्तार कहै हैं—

इक्ष्वाकुवंश में भगवान ऋषभदेव उपजे तिनके पुत्र भरत भए। भरतके पुत्र अर्ककीर्ति भए। राजा अर्ककीर्ति महा तेजस्वी राजा हुए। इनके नामतैं सूर्यवंश प्रवर्त्या है।

अर्क नाम सूर्य का है इसलिये अर्ककीर्ति का वंश सूर्य वंश कहलाता है। इस सूर्य वंश में राजा अर्ककीर्ति के सतयश नामा पुत्र भये, इनके बलाक, तिनके सुबल तिनके रवितेज, तिनके महाबल, महाबल के अतिबल, तिनके अमृत, अमृत के सुभद्र, तिनके सागर, तिनके भद्र तिनके रवितेज, तिनके शशी, तिनके प्रभूततेज, तिनके तेजस्वी, तिनके तपबल महाप्रतापी, तिनके अतिवीर्य, तिनके सुवीर्य, तिनके उदितपराक्रम, सूर्य, तिनके इन्द्रद्युमणि, तिनके महेन्द्रजित, तिनके प्रभून, तिनके विभु, तिनके अविध्वंस, तिनके वीतभी, तिनके वृषभध्वज, तिनके गरुडांक, तिनके मृगांक, इस भांति सूर्यवंशविषें अनेक राजा भए, ते संसारके भ्रमणतें भयभीत पुत्रोंको राज देय मुनिव्रत के धारक भए, महानिर्ग्रन्थ शरीर से भी निस्पृही। यह सूर्यवंश की उत्पत्ति तुझे कही।

अब सोमवंश की उत्पत्ति तुझे कहिये हैं सो सुन। ऋषभदेव की दूसरी राणी के पुत्र बाहुबली, तिनके सोमयश, तिनके सौम्य, तिनके महाबल, तिनके सुबल, तिनके भुजबली इत्यादि अनेक राजा भये, निर्मल है चेष्टा जिनकी मुनिव्रत धारि परम धाम को प्राप्त भए। कईएक देव होय मनुष्य जन्म लेकर सिद्ध भए। यह सोमवंश की उत्पत्ति कही।

अब विद्याधरनिके वंश की उत्पत्ति सुनहु। नमि, रत्नमाली, तिनके रत्नरथ, तिनके रत्नचित्र, तिनके चन्द्ररथ, तिनके वज्रजंघ, तिनके वज्रसेन, तिनके वज्रदंष्ट्र, तिनके वज्रध्वज, तिनके वज्रायुध, तिनके वज्र, तिनके सुवज्र, तिनके वज्रभृत, तिनके वज्राभ, तिनके वज्रबाहु, तिनके वज्रांक, तिनके वज्रसुन्दर, तिनके वज्रपाणि, तिनके वज्रभानु, तिनके वज्रवान, तिनके विद्युन्मुख, तिनके सुवक्र, तिनके विद्युद्दंष्ट्र, अर उनके पुत्र विद्युत् अर विद्युदाभ अर विद्युद्वेग अर वैद्युत इत्यादि विद्याधरोंके वंश में अनेक राजा भए। अपने-अपने पुत्रनिको राज देय जिन दीक्षा धरि, रागद्वेषका नाशकरि सिद्धपद को प्राप्त भए। कईएक देवलोक गए। जे मोहपाशसे बंधे हुते ते राज्य विषें ही मर करि कुगति को गये।

[संजयंत मुनिके उपसर्ग का कारण]

अब संजयंत मुनि के उपसर्ग का कारण कहे हैं कि—विद्युद्दंष्ट्र नामा राजा, दोऊ श्रेणी का अधिपति, विद्या बलसे उद्धत विमान में बैठा विदेहक्षेत्र में गया, तहां संजयंतस्वामी को ध्यानारूढ़ देख्या, जिनका शरीर पर्वत समान निश्चल है, उस पापी ने मुनिको देखकर पूर्व जन्म के विरोध से उनको उठाकर पंचगिरि पर्वतपर धरे अर लोकोंको कहा कि इसे मारो। पापी जीवों ने यष्टि मुष्टि पाषाणादि अनेक प्रकार से उनको मार्‌या, मुनि

को सम भाव के प्रसादसे रंचमात्र भी क्लेश न उपज्या, दुस्सह उपसर्ग को जीत लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान उपज्या, सर्व देव वंदना को आए, धरणेन्द्र भी आए, वह धरणेन्द्र पूर्वभव में मुनि के भाई थे, इसलिए क्रोधकर सर्व विद्याधरनिको नागफांस से बांधे तब सबनिने विनती करी कि यह अपराध विद्युद्दंष्ट्र का है तब और तो छोड़े अर विद्युद्दंष्ट्र को न छोड़्या, मारने को उद्यमी भये। तब देवों ने प्रार्थना करके छुड़ाया, सो छोड़्या परन्तु विद्या हर ली। तब याने प्रार्थना करी कि हे प्रभो! मुझे विद्या कैसें सिद्ध होयगी. धरणेन्द्र ने कहा कि संजयंतस्वामी की प्रतिमा के समीप तप क्लेश करने से तुमको विद्या सिद्ध होयगी परन्तु चैत्यालय उलंघन से तथा मुनियों के उल्लंघन से विद्या का नाश होवेगा, इसलिए तुमको तिनकी बंदना करके आगें गमन करना योग्य है। तब धरणेन्द्र ने संजयंतस्वामी को पूछ्या कि हे प्रभो! विद्युद्दंष्ट्र ने आपको उपसर्ग क्यों किया? भगवान् संजयंतस्वामीने कहा कि मैं चतुर्गतिविषै भ्रमण करता शकटनामा ग्राम में दयावान प्रियवादी हितकर नामा महाजन भया, निष्कपटस्वभाव साधुसेवा में तत्पर, सो समाधिमरण कर कुमुदावती नगरीमें न्यायमार्गी श्रीवर्धन नामा राजा हुवा। उस ग्राम में ब्राह्मण जो अज्ञान तपकर कुदेव हुआ था तहांसे चयकर राजा श्रीवर्धनके वन्हिशिख नामा पुरोहित भया, वह महादुष्ट छार्णे (गुप्तरूपसे) अकार्यका करणहारा आपको सत्यघोष कहावै परन्तु महा झूठा, परद्रव्यका हरणहारा, उसके कुकर्मको कोई न जानै, जगतमें सत्यवादी कहावै। एक नेमिदत्तसेठ के रत्नहरे, राणी रामदत्ता ने जूवामें पुरोहितकी अंगूठी जीती अर दासी हाथ पुरोहितके घर भेजकर रत्न मंगाये अर सेठ को दिए, राजाने पुरोहितको तीव्र दण्ड दिया। वह पुरोहित मरकर एक भवके पश्चात् यह विद्याधरोंका अधिपति भया अर राजा मुनिव्रत धारकर देव भए। कईएक भवके पश्चात् यह हम संजयंत भए सो इसने पूर्व भव के प्रसंग से हमको उपसर्ग किया। यह कथा सुनि नागेन्द्र अपने स्थानको गए।

अथानन्तर उस विद्याधर के दृढ़रथ भए, ताके अश्वधर्मा पुत्र भए, उसके अश्वायु, उसके अश्वध्वज, उसके पद्मनाभि, उसके पद्ममाली, उसके पद्मरथ, उसके सिंहयान, उसके मृगेद्धर्मा, उसके मेघास्त्र, उसके सिंहप्रभ, उसके सिंहकेतु, उसके शशांक, उसके चंद्राह्व, उसके चन्द्रशेखर, उसके इन्द्ररथ, ताके चन्द्ररथ, ताके चक्रधर्मा, उसके चक्रायुध, उसके चक्रध्वज, उसके मणिग्रीव, उसके मण्यंक, उसके मणिभासुर, उसके मणिरथ, मण्यास, उसके बिम्बोष्ठ उसके लंबिताधर, उसके रक्तोष्ठ, उसके हरिचन्द्र, उसके पूर्णचन्द्र, उसके बालेन्द्र, उसके चन्द्रमा, उसके चूड़, उसके व्योमचन्द्र, उसके उड़पानन, उसके एकचूड़,

उसके द्विचूड़, उसके त्रिचूड़, उसके वज्रचूड़, उसके भूरिचूड़, उसके अर्कचूड, उसके वन्हिजटी, उसके वन्हितेज, या भाँति अनेक राजा भए। तिनमें कईएक पुत्रनिको राज देय मुनि होय मोक्ष गए। कईएक स्वर्ग गए, कईएक भोगासक्त होय वैरागी न भए सो नरक तिर्यंचगतिको प्राप्त भए, या भांति विद्याधरनिका वंश कह्या।

[द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथकी उत्पत्ति और जीवनादि परिचय, सगर चक्रवर्ती का वृत्तान्त]

आगैं द्वितीय तीर्थंकर श्रीअजितनाथ स्वामी उनकी उत्पत्ति कहै हैं। जब ऋषभदेव को मुक्ति गए पचास लाख कोटिसागर भए, चतुर्थ काल आधा व्यतीत भया, जीवनि की आयु, काय, पराक्रम घटते गए। जगत में काम लोभादिक की प्रवृत्ति बढ़ती गई। अथानन्तर इक्ष्वाकु कुल में ऋषभदेव ही के वंश में अयोध्या नगर में राजा धरणीधर भए। तिनके पुत्र त्रिदश जय, देवों के जीतनेहारे, तिनके इन्द्ररेखा रानी, ताके जितशत्रु पुत्र भया, सो पोदनापुर के राजा भव्यानन्द, तिनके अंमोदमाला राणी, ताकी पुत्री विजया जितशत्रु ने परणी। जितशत्रु को राज देयकरि राजा त्रिदशजय कैलाश पर्वतपर निर्वाण को प्राप्त भए। अथानंतर राजा जितशत्रु की रानी विजयादेवी के अजितनाथ तीर्थङ्कर भए। तिनका जन्माभिषेकादिक का वर्णन ऋषभदेववत् जानना। जिनके जन्म होते ही राजा जितशत्रु ने सर्व राजा जीते तातैं भगवान का अजित नाम धरया। अजितनाथके सुनया, नन्दा आदि अनेक रानी भईं, जिनके रूपकी समानता इन्द्राणी भी न कर सकै। एक दिन भगवान अजितनाथ राजलोक सहित प्रभात समय में ही वनक्रीडाको गए सो कमलोंका वन फूला हुआ देख्या अर सूर्यास्त समय उसही वन को संकुचा हुआ देख्या, सो लक्ष्मी की अनित्यता मानकर परम वैराग्यको प्राप्त भए। माता पितादि सर्व कुटुम्बतैं क्षमाभाव कराय ऋषभदेवकी भाँति दीक्षा धरी। दस हजार राजा साथ निकसे। भगवान ने बेला पारणा अंगीकार किया। ब्रह्मदत्त राजा के घर आहार लिया। चौदह वर्ष तप करके केवल ज्ञान उपजाया। चौंतीस अतिशय तथा आठ प्रातिहार्य प्रगट भए। भगवान के नब्बे गणधर भए अर एक लाख मुनि भये।

अजितनाथ के काका विजयसागर जिनकी ज्योति सूर्यसमान है तिनकी रानी सुमंगला तिनके पुत्र सगर द्वितीय चक्रवर्ती भए। सो नव निधि चौदह रत्न आदि इनकी विभूत भरत चक्रवर्ती के समान जाननी। तिनके समय में एक वृत्तान्त भया सो हे श्रेणिक ! तुम सुनहु। भरतक्षेत्रके विजयार्ध कीदक्षिणश्रेणी में चक्रवाल नगर तहाँ राजा पूर्णधन विद्याधरनिके अधिपति महाप्रभाव-मंडित विद्या बलकरि अधिक तिनने विहायतिलक नगर के राजा सुलोचनकी कन्या उत्पलमती याची। राजा सुलोचन ने निमित्त

ज्ञानी के कहनेतें ताकूं न दीनी अर सगर चक्रवर्तीकूं देनी विचारी। तब पूर्णघन सुलोचन अर चढ़ि आए, सुलोचन के पुत्र सहस्रनयन अपनी बहिन को लेकर भागे, सो बन में छिप रहे। पूर्णघनने युद्धमें सुलोचन को मार नगर में जाय कन्या ढूंढी परन्तु न पाई। तब अपने नगर को चले गये। सहस्रनयन निर्बल सो बापका वध सुन पूर्णमेघ पर क्रोधायमान भये परन्तु कछु कर नाहीं सकै, छिद्र हेरैं गहरे बन में घुसा रहै। कैसा है वह बन, सिंह व्याघ्र अष्टापदादिकनिकर भरया है। पश्चात चक्रवर्ती को एक मायामई अश्वलेय उडया, सो जिस बनमें सहस्रनयन हुते, तहाँ आये। उत्पलमती ने चक्रवर्तीको देखकर भाई को कह्या कि चक्रवर्ती आप ही यहां पधारे हैं। तब भाई प्रसन्न होय कर चक्रवर्ती को बहिन परणाई। सो यह उत्पलमती चक्रवर्ती की पटराणी स्त्रीरत्न भई। अर चक्रवर्ती ने कृपा-करि सहस्रनयन को दोनों श्रेणी का अधिपति किया। सो सहस्रनयन ने पूर्णघन पर चढ़-कर युद्ध में पूर्णघन को मारा अर बापका वैर लिया। चक्रवर्ती छह खण्ड पृथ्वी का राज करै अर सहस्रनयन चक्रवर्ती का साला विद्याधरनिकी दोऊ श्रेणी का राज करै। अर पूर्ण-मेघ का बेटा मेघवाहन भयकर भाग्या, सहस्रनयन के योधा मारने को लारें (पीछे) दौड़े सो मेघवाहन समोशरण में श्रीअजितनाथ की शरण आया। इन्द्र ने भय का कारण पूछा, तब मेघवाहन ने कहा—'हमारे बाप ने सुलोचन को मारा था सो सुलोचन के पुत्र सहस्र-नयन ने चक्रवर्ती का बल पाय हमारे पिता को मारा अर हमारे बन्धु क्षय किये अर मेरे मारने के उद्यम में है सो मैं मंदिरतें हंसोंके साथ उड़कर श्रीभगवानकी शरण आया हूँ'। ऐसा कहिकर मनुष्यनिके कोठेमें बैठ्या अर सहस्रनयनके योधा याके मारने को आये हुते ते इसको समोशरण में आया जान पाछे गए अर सहस्रनयन को सकल वृत्तान्त कह्या तब वह भी समोशरण में आया। भगवान के चरणारविंद के प्रसादतें दोनों निर्वैर होय तिष्ठे। तब गणधर ने भगवानकूं इनके पिता का चरित्र पूछा। भगवान कहै हैं कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषें सद्गति नामा नगर तहाँ भावन नामा वणिक, ताके आतकी नामा स्त्री अर हरिदास नामा पुत्र, सो भावन चार कोटि द्रव्यका धनी हुता तो भी लोभ करि व्यापार निमित्त देशांतर को चाल्या। सो चलते समय पुत्रको सर्व धन सौंप्या अर द्यूतादि व्यसन न सेवने की शिक्षा दीनी। हे पुत्र, यह द्यूतादि कुव्यसन सब दोषनिका कारण है, इनको सर्वथा तजने, इत्यादि शिक्षा देकर आप धनतृष्णाके कारण जहाजके द्वारा द्वीपांतर को गया। पिताके गए पीछे पुत्र ने सर्व धन वेश्या, जुआ अर सुरापान इत्यादिक कुव्यसन करि खोया। जब सर्व धन जाता रह्या अर जुआरीनका देनदार होयगया तब द्रव्य के अर्थि सुरंग लगाय राजा के महल में चोरी को गया। सो राजा के महलतें द्रव्य लावै

अर कुव्यसन सेवै। कईएक दिनोंमें भावन परदेशतैं आया अर घर में पुत्र को न देख्या। तब स्त्री को पूछ्या, स्त्री ने कही कि इस सुरंग में होयकर राजाके महल में चोरी को गया है। तब यह पिता पुत्र के मरण की आशंका करि ताके लावनेको सुरंग में पैठ्या। सो यह तो जावै था अर पुत्र आवै था सो पुत्रने जान्या कि यह कोई बैरी आवै है सो उसने बैरी जानि खड्ग से मार्‌या। पीछे स्पर्शकर जान्या कि यह तो मेरा बाप है, तब महादु:खी होय डरकर भाग्या अर अनेक देश भ्रमणकरि मर्‌या। सो पिता पुत्र दानों श्वान (कुत्ते) भए, फिर गीदड़, फिर मार्जार भए, फिर रीछ भये, फिर न्योला भए, फिर भैंसे भये, फिर बलध भए, सो इतने जन्मों में परस्पर घात करि मरे। फिर विदेहक्षेत्र विषैं पुष्कलवती देशमें मनुष्य भये। उग्र तप करि एकादश स्वर्ग में उत्तर अनुत्तर नामा देव भए, तहांतैं आयकर जो भावन नामा पिता हुता वह तो पूर्णमेघ विद्याधर भया अर हरिदास नामा पुत्र हुता सो सुलोचन नामा विद्याधर भया। या ही बैरतैं पूर्णमेघ ने सुलोचन को मार्‌या।

गणधरदेव ने सहस्रनयन को अर मेघवाहनको कह्या कि तुम अपने पिताओं का या भांति चरित्र जान संसारका बैर तजकर समताभावकूं धरो। अर सगर चक्रवर्ती ने गणधरदेव को पूछ्या कि हे महाराज! मेघवाहन अर सहस्रनयन का वैर क्यों भया? तब भगवानकी दिव्यध्वनि में आया कि जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रविषैं पद्मक नामा नगर है तहां आरम्भ नामा गणित शास्त्र का पाठी महाधनवंत ताके दोय शिष्य एक चन्द्र एक आवली भए। इन दोनों में मित्रता हुती अर दोनों धनवान, गुणवान विख्यात हुए। इनके गुरु आरम्भने जो अनेक नयचक्र में अति विचक्षण हुता, मनमें विचारी कि कदाचित यह दोनों मेरा पदभंग करें। ऐसा जानकर इन दोनों के चित्त जुदे कर डारें। एक दिन चंद्र गाय बेचवेकूं गोपाल के घर गया सो गाय बेचकर वह तो घर आवता हुता अर आवली उसी गायको गोपालतैं खरीदकर लावता देख्या, इस कारण मार्ग में चन्द्रने आवली को मार्‌या सो म्लेच्छ भया अर चंद्र मरकर बलध भया सो म्लेच्छने बलधको भख्यो। म्लेच्छ नरक तिर्यंच योनिमें भ्रमणकरि मूसा भया अर चंद्र का जीव मार्जार भया। मार्जार ने मूसा भख्या। बहुरि ये दोउ पापकर्मके योगतैं अनेक योनिमें भ्रमणकर काशीमें संभ्रमदेव की दासी के पुत्र दोउ भाई भए। एकका नाम कूट अर एकका नाम कार्पटिक, सो इन दोनोंको संभ्रमदेवने चैत्यालयकी टहलकूं राखे। सो मरकर पुण्यके योगतैं रूपानन्द अर स्वरूपानन्द नामा व्यन्तरदेव भये। रूपानन्द तो चन्द्रका जीव अर स्वरूपानन्द आवली का जीव। फिर रूपानन्द तो चयकर कलूबी का पुत्र कुलंधर भया अर स्वरूपानंद

पुरोहित का पुत्र पुष्पभूत भया। ये दोनों परस्पर मित्र एक हालीके अर्थि बैरको प्राप्त भये। अर कुलंधर पुष्पभुत के मारवे को प्रवर्त्या, एक वृक्षके तलें साधु विराजते हुते तिनसों धर्म श्रवणकर कुलंधर शान्त भया। राजाने याको सामन्त जान बहुत बढ़ाया। पुष्पभूत, कुलन्धर को जिनधर्मके प्रसादतें संपत्तिवान देखिकरि जैनी भया अर व्रत धर तीसरे स्वर्ग गया अर कुलंधर भी तीसरे स्वर्ग गया। स्वर्गतें चयकर दोनों घातकी खंडके विदेहविषें अरिंजय पिता अर जयावती माताके पुत्र भये। एकका नाम अमरश्रुत दूजे का नाम धनश्रुत। ये दोनों भाई बड़े योधा सहस्रशिरसके एतवारी चाकर जगतमें प्रसिद्ध हुवे। एक दिन राजा सहस्रशिरस हाथी पकड़ने को वनमें गया। ये दोनों भाई साथ गए। वनमें भगवान केवली विराजे हुते तिनके प्रतापतें सिंह मृगादिक जाति विरोधी जीवों को एक ठौर बैठे देख राजा आश्चर्यको प्राप्त भया। आगें जाकर केवली का दर्शन किया। राजा तो मुनि होय निर्वाण गये अर ये दोनों भाई मुनि होय ग्यारहवें स्वर्ग गए। तहांतें चयकर चन्द्रका जीव अमरश्रुत तो मेघवाहन भया अर आवली का जीव धनश्रुत सो सहस्रनयन भया। यह इन दोनों के बैर का वृत्तांत है बहुरि सगर चक्रवर्ती ने भगवानकूं पूछया कि हे प्रभो ! सहस्रनयनसों मेरा जो अति हित है सो इसमें क्या कारण है ? तब भगवान ने कह्या कि वह आरम्भ नामा गणित शास्त्र का पाठी मुनिन को आहार दान देकर देवकुरु भोगभूमि गया। तहांतें प्रथम स्वर्गका देव होयकर पीछे चन्द्रपुरमें राजा हरि, रानी धरादेवीके प्यारा पुत्र व्रतकीर्तन भया अर मुनिपद धारि स्वर्ग गया अर फिर विदेहक्षेत्रमें रत्नसंचयपुरमें महाघोष पिता, चन्द्राणी माता के पयोबल नामा पुत्र होय मुनिव्रत धारि चौदहवें स्वर्ग गया तहांतें चयकर भरतक्षेत्रमें पृथ्वीपुर नगरमें यशोधर राजा अर राणी जयाके घर जयकीर्तन नामा पुत्र भया सो पिताके निकट जिनदीक्षा लेकर विजय विमान गया। तहांतें चयकर तू सगर चक्रवर्ती भया। अर आरम्भ के भव में आवली शिष्य के साथ तेरा स्नेह हुता सो अब आवली का जीव सहस्रनयन तासों तेरा अधिक स्नेह है। यह कथा सुन चक्रवर्ती के विशेष धर्मरुचि हुई अर मेघवाहन तथा सहस्रनयन दोनों अपने पिताके अर अपने पूर्वभव श्रवणकर निर्वैर भये, परस्पर मित्र भये अर इनकी धर्मविषें अति रुचि उपजी। पूर्वभव दोनों को याद आए, महाश्रद्धावंत होय भगवानकी स्तुति करते भए कि—हे नाथ ! आप अनाथनिके नाथ हैं, ये संसार के प्राणी महादुःखी हैं, तिनको धर्मोपदेश देकर उपकार करो हो, तुम्हारा किसीसे भी कुछ प्रयोजन नाहीं, तुम निःकारण जगत के बंधु हो, तुम्हारा रूप उपमा रहित है अर अप्रमाण बलके धरणहारे हो, इस जगत में तुम समान और नाहीं। तुम पूर्ण परमानन्द हो, कृतकृत्य हो,

सदा सर्वदर्शी व सर्व के वल्लभ हो, किसी के चितवन में नाहीं आते, जाने हैं सर्व पदार्थ जिनने, सबके अन्तर्यामी, सर्व जगत के हितु हो, हे जिनेन्द्र ! संसाररूप अन्धकूप में पड़े ये प्राणी तिनको धर्मोपदेशरूप हस्तावलंबन ही हो, इत्यादिक बहुत स्तुति करी। अर यह दोनों मेघवाहन अर सहस्रनयन गदगदवाणी होय अश्रुपातकरि भीज गये हैं नेत्र जिनके, परम हर्षको प्राप्त भए अर विधिपूर्वक नमस्कार करि तिष्ठे । सिंहवीर्यादिक मुनि इन्द्रादिक देव सगरादिक राजा सर्व परम आश्चर्य को प्राप्त भये ।

अथानन्तर भगवानके समोशरणविषै राक्षसोंका इन्द्र भीम और सुभीम मेघवाहनतैं प्रसन्न भए अर कहते भए कि हे विद्याधरके बालक मेघवाहन ! तू धन्य है जो भगवान अजितनाथकी शरणमें आया, हम तेरेपर अति प्रसन्न भए हैं। हम तेरी स्थिरता का कारण कहै हैं, तू सुन । इस लवणसमुद्र में अत्यन्त विषम महारमणीक हजारों अन्तरद्वीप हैं। लवणसमुद्र में मगरमच्छादिक के समूह रमै हैं अर तिन अन्तर्द्वीपोंमें कहीं तो गन्धर्व क्रीड़ा करै हैं, कहीं किन्नरों के समूह रमै हैं, कहीं यक्षोंके समूह कोलाहल करै हैं, कहीं किंपुरुष जातिके देव केलि करै हैं। उनके मध्यमें एक राक्षसद्वीप है जो सातसौ योजन चौड़ा और सातसौ योजन लम्बा है। उसके मध्य में त्रिकूटाचल पर्वत है जो अत्यन्त दुष्प्रवेश है, शरण की ठौर है, पर्वतके शिखर सुमेरु के शिखर समान मनोहर हैं अर पर्वत नव योजन ऊँचा, पचास योजन चौड़ा है, नाना प्रकारकी रत्नों की ज्योति के समूह कर जड़ित है, जाके सुवर्णमयी सुन्दर तट हैं, नाना प्रकारकी बेलों करि मंडित कल्पवृक्षनिकर पूर्ण है। ताके तलैं तीस योजन प्रमाण लंका नामा नगरी है जो रत्न अर सुवर्णके महलनिकर अत्यन्त शोभै है। जहां मनोहर उद्यान हैं, कमलनिकर मंडित सरोवर हैं, बड़े बड़े चैत्यालय हैं, वह नगरी इन्द्रपुरी समान है अर दक्षिण दिशा का मंडन (भूषण) है। हे विद्याधर ! तू समस्त बांधव वर्गकरि सहित तहाँ बसिकरि सुख से रहो, ऐसा कहकर भीम नामा राक्षसनिका इन्द्र ताकूं रत्नमई हार देता भया, वह हार अपनी किरणों से महा उद्योत करै है। अर राक्षसनिका इन्द्र मेघवाहन जन्मान्तरविषै पिता हुता, तातैं स्नेहकरि हार दिया अर राक्षस द्वीप दिया। तथा धरतीके बीचमें पाताल लंका, जिसमें अलंकारोदय नगर, छै योजन औंडा अर एकसौ साढ़े इकतीस योजन अर डेढ़ कला चौड़ा, यह भी दिया। उस नगर में बैरियोंका मनभी प्रवेश न कर सकै, स्वर्ग समान मनोहर है। राक्षसों के इन्द्रने कहा—कदाचित तुमकूं परचक्रका भय भया हो तो इस पाताललंका में सकल वंशसहित सुखसों रहियो, लंका तो राजधानी अर पाताल लंका भय निवारण का स्थान है, या भांति भीम सुभीम ने पूर्णघन के पुत्र मेघवाहन को कहा।

तब मेघवाहन परम हर्ष को प्राप्त भया, भगवानकूं नमस्कार करकें उठ्या, तब राक्षसों के इन्द्र ने राक्षस विद्या दीनी, सो लेय आकाशमार्ग से विमानमें चढ़कर लंका को चले, तब सर्व भाइयों ने सुनी कि मेघवाहन को राक्षसों के इन्द्र ने अति प्रसन्न हो लंका दी है सो समस्त ही बंधुवर्गोंके मन प्रफुल्लित भए। जैसें सूर्यके उदयतें समस्तही कमल प्रफुल्लित होंय, तैसें सर्व ही विद्याधर मेघवाहनपै आए। तिनकरि मंडित मेघवाहन चाले। कैएक तो राजा आगें जाय हैं, कैएक पीछें, कैएक दाहिने, कैएक बांये, कैएक हाथियों पर चढ़े, कैएक तुरंगनि (घोड़ों) पर चढ़े, कैएक रथों पर चढ़े जांय हैं, कैएक पालकी पर चढ़े जाय हैं अर अनेक पियादे जांय हैं। जै जै शब्द होय रहे हैं, दुंदुभि बाजे बाजें हैं, राजा पर छत्र फिरै हैं, चमर ढुरै हैं, अनेक निशान (झंडे) चले जांय हैं, अनेक विद्याधर शीस नवावै हैं, या भांति राजा चलते चलते लवणसमुद्र ऊपर आए। वह समुद्र आकाश समान विस्तीर्ण अर पाताल समान ऊंडा, तमालवन समान श्याम है, तरंगों के समूहतें भर्या है, अनेक मगर-मच्छ जिसमें कलोल करै हैं, उस समुद्र को देख राजा हर्षित भए। पर्वतके अधोभागमें कोट अर दरवाजे अर खाइयोंकरि संयुक्त लंका नामा महापुरी है तहां प्रवेश किया। लंकापुरी में रत्नों की ज्योतिकर आकाश संध्या समान अरुण (लाल) होय रह्या है, कुन्दके पुष्प समान उज्ज्वल ऊंचे भगवान के चैत्यालयनिकरि मंडित पुरी शोभै है, चैत्यालयों पर ध्वजा फहरा रही हैं। चैत्यालयों की वन्दना कर राजाने महल में प्रवेश किया अर और भी यथायोग्य घरों में तिष्ठे रत्नों की शोभा से उसके मन अर नेत्र हरे गए।

अथानन्तर किन्नरगीता नामा नगरविषें राजा रतिमयूख अर राणी अनुमती, तिनकै सुप्रभा नामा कन्या, नेत्र अर मनकी चोरनहारी, कामका निवास, लक्ष्मीरूप, कुमुदिनी के प्रफुल्लित करनेकूं चन्द्रमाकी चांदनी, लावण्यरूप जलकी सरोवरी, आभूषणोंका आभूषण, इन्द्रियनिके प्रमोदकी करणहारी, सो राजा मेघवाहनने ताकूं महा उत्साहकरि परणी, ताके महारक्ष नामा पुत्र भया। जैसें स्वर्गमें इन्द्र इन्द्राणी सहित तिष्ठै तैसें राजा मेघवाहन राणी सुप्रभासहित लंकाविषें बहुत काल राज किया।

अथानन्तर एक दिन मेघवाहन अजितनाथ की वंदना के अर्थि समोशरण में गए। तहां और कथा हो चुकी, तब सगर ने भगवानकूं नमस्कारकरि पूछया कि हे प्रभो ! इस अवसर्पिणीकालविषें धर्मचक्रके स्वामी तुम सारिखे जिनेश्वर कितने भए अर कितने होवेंगे ? तुम तीन लोक के सुख के देनें वाले हो, तुम सारिखे पुरुषों की उत्पत्ति लोकविषें आश्चर्यकारिणी है अर चक्ररत्नके स्वामी कितने होवेंगे तथा वासुदेव, प्रतिवासुदेव, बलभद्र

किंतने होवेंगे, या भांति सगरने प्रश्न किया ? तब भगवान अपनी ध्वनि करि देवदुंदभीकी ध्वनि को निराकरण करते हुए व्याख्यान करते भए। अर्धमागधी भाषाके भाषणहारे भगवान तिनके होंठ न हालें, यह बड़ा आश्चर्य है। कैसी है दिव्यध्वनि, उपजाया है श्रोतानि के कानों को उत्साह जाने। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रत्येककालविषैं चौबीस तीर्थङ्कर होय हैं, मोहरूप अँधकारकरि समस्त जगत आच्छादित हुवा, जा समय धर्मका विचार नाहीं अर और कोई भी राजा नाहीं, ता समय भगवान ऋषभदेव उपजे, तिनने कर्मभूमिकी रचना करी, तबतैं कृतयुग कहाया। भगवानने क्रियाके भेद से तीन वर्ण थापे अर उनके पुत्र भरत ने विप्र वर्ण थापा। भरतका तेज भी ऋषभ समान है। भगवान ऋषभदेव ने जिनदीक्षा धरी अर भवतापकर पीड़ित भव्य जीवनिकों शमभावरूप जलकरि शान्त किया। श्रावक के धर्म अर यती के धर्म दोऊ प्रगट किए। जिनके गुणनिकी उपमाकूं जगतविषैं कोऊ पदार्थ नाहीं, कैलाशके शिखरतैं आप निर्वाण पधारे। ऋषभदेव की शरण पाय अनेक साधु सिद्ध भए अर कई एक स्वर्गके सुखकों प्राप्त भए, कईएक भद्रपरिणामी मनुष्यभव कों प्राप्त भए अर कई एक मरीचादि मिथ्यात्वके रागकरि संयुक्त अत्यन्त उज्ज्वल जो भगवानका मार्ग ताहि न अवलोकन करते भए, जैसें घुग्घू (उल्लू) सूर्यके प्रकाशको न जानें, तैसें कुधर्मकूं अंगीकारकरि कुदेव भए। बहुरि नरक तिर्यंच गतिकूं प्राप्त भए। भगवान ऋषभदेव को मुक्ति गए पचास लाख कोटि सागर गए तब सर्वार्थसिद्धसे चय करि द्वितीय तीर्थङ्कर हम अजित भए। जब धर्मकी हानि होय अर मिथ्यादृष्टीनिका अधिकार होय, आचार का अभाव होय तब भगवान तीर्थङ्कर प्रगट होय धर्मका उद्योत करें हैं अर भव्यजीव धर्म को पाय सिद्धस्थानकों प्राप्त होंय हैं। अब हमको मोक्ष गए पीछे बाईस तीर्थङ्कर और होंगे, तीनलोकविषैं उद्योत करनेवाले, ते सर्व मो सारखे कांति वीर्य विभूति के धनी त्रैलोक्य पूज्य ज्ञानदर्शनरूप होगे। तिनमें तीन तीर्थङ्कर शान्ति, कुन्थु, अर ए तीन चक्रवर्ती पदके भी धारक होवेंगे। तिन चौबीसों के नाम सुनहु। ऋषभ १, अजित २, संभव ३, अभिनन्दन ४, सुमति ५, पद्मप्रभ ६, सुपार्श्व ७, चंद्रप्रभ ८, पुष्पदन्त ९, शीतल १०, श्रेयांस ११, वासुपूज्य १२, विमल १३, अनंत १४, धर्म १५, शांति १६, कुन्थु १७, अर १८, मल्लि १९, मुनिसुव्रत २०, नमि २१, नेमि २२, पार्श्व २३, महावीर २४। ये सब ही देवाधिदेव जिनागम के धुरन्धर होहिंगे अर सर्वके गर्भावतारविषैं रत्ननिकी वर्षा होयगी, सर्व के जन्म कल्याणक सुमेरुपर्वतपर क्षीरसागरके जलकरि होवेंगे, उपमा रहित हैं तेजरूप सुख अर बल जिनके ऐसे सर्व ही कर्मशत्रुनिके नाशनहारे होवेंगे। महावीर स्वामीरूपी सूर्यके अस्त भए पीछे पाखंडरूप

अज्ञानी चमत्कार करेंगे तो पाखंडी संसाररूप कूपविषैं आप पड़ेंगे अर औरनिकों पाड़ेंगे। चक्रवर्तीनिमें प्रथम तौ भरत भए, दूसरा तू सगर भया अर तीसरा सनत्कुमार, चौथा मघवा अर पांचवां शांति, छठा कुन्थु, सातवां अर, आठवां सुभूम, नवमां महापद्म, दशवां हरिषेण, ग्यारहवां जयसेन, बारहवां ब्रह्मदत्त, ये बारह चक्रवर्ती अर वासुदेव नव अर प्रति वासुदेव नव, बलभद्र नव होवेंगे। इनका धर्मविषैं सावधान चित्त होगा। ये अवसर्पिणीके महापुरुष कहे। याही भाँति उत्सर्पिणीविषैं भरत ऐरावत में जानने। या भांति महापुरुषोंकी विभूति अर काल की प्रवृत्ति अर कर्मनिके वशतैं संसारका भ्रमण अर कर्म रहितोंको मुक्तिका निरूपम सुख, यह सर्व कथन मेघवाहन नें सुना। यह विचक्षण चित्तविषैं विचारता भया कि हाय ! हाय ! जिन कर्मनिकरि यह जीव आताप को प्राप्त होय है तिन्हीं कर्मनिको मोहमदिराकरि उन्मत्त भया यह जीव बांधै है। यह विषय विषवत् प्राणनिके हरणहारे कल्पनामात्र मनोज्ञ हैं। दुःखके उपजावनहारे हैं। इनमें रति कहा ? या जीवने धन स्त्री कुटुम्बादि विषैं अनेक भव राग किया परन्तु ये पर पदार्थ याके नाहीं हुए। यह सदा अकेला संसार विषैं परिभ्रमण करै है अर सर्व कुटुम्बादिक तब तक ही स्नेह करैं हैं जब तक दानकरि उनका सन्मान करै है। जैसैं श्वान के बालक को जब लग टुकड़ा डारिये, तब लग अपना है। अंत काल में पुत्र कलत्र बांधव मित्र धनादिक के लार (साथ) कौन गया अर ये कौनके साथ गये। ये भोग हैं ते काले सर्पके फण समान भयानक हैं, नरकके कारण हैं, तिनविषै कौन बुद्धिमान संग करै। अहो यह बड़ा आश्चर्य है। लक्ष्मी ठगनी अपने आश्रितनिकों ठगै है, या समान और दुष्टता कहा ! जैसैं स्वप्नविषैं किसी वस्तुका समागम होय है तैसें कुटुम्बका समागम जानना। अर जैसैं इन्द्रधनुष क्षणभंगुर है तैसैं परिवारका सुख क्षणभंगुर जानना। यह शरीर जल के बुदबुदा समान असार है अर यह जीवितव्य बिजलीके चमत्कारवत् असार चंचल है तातैं इन सबनिकों तजकरि एक धर्महीका सहाय अंगीकार करूं। धर्म कैसा है, सदा कल्याणकारी ही है, कदापि विघ्नकारी नाहीं अर संसार शरीर भोगादिक चतुर्गतिके भ्रमणके कारण हैं, महादुःखरूप हैं, सुख इन्द्र धनुषवत् और शरीर जल बुदबुद सदृश क्षणभंगुर है। ऐसा जानकरि उस राजा मेघवाहनने जिसका महा वैराग्य ही कवच है, महारक्ष नामा पुत्र को राज्य देकर भगवान श्री अजितनाथ के निकट दीक्षा धारी, राजाके साथ अन्य एकसौ दस राजा वैराग्य पाय घररूप बंदीखानेतैं निकसे।

अथानंतर मेघवाहनका पुत्र महारक्ष राजपर बैठ्या सो चन्द्रमा समान दानरूपी किरणनिकरि कुटुम्बरूपी समुद्रको पूर्ण करता संता लंकारूपी आकाशविषैं प्रकाश करता

भया। बड़े बड़े विद्याधरनिके राजा स्वप्नविषें भी ताकी आज्ञाको पावकर आदरतें प्रतिबोध होय हाथ जोड़ि नमस्कार करते भए। उस महारक्ष के प्राण समान प्यारी विमलप्रभा राणी होती भई, कैसी है वह राणी मानो छाया समान पतिकी अनुगामिनी है। ताके अमररक्ष, उदधिरक्ष, भानुरक्ष ये तीन पुत्र भए। कैसे हैं वे पुत्र ? नाना प्रकार के शुभ कर्म करि पूर्ण, जिनका बड़ा विस्तार, अति ऊँचे, जगतविषें प्रसिद्ध मानों तीन लोक ही हैं।

अथानन्तर अजितनाथ स्वामी अनेक भव्य जीवनिका निस्तार कर सम्मेदशिखरतें सिद्धपदको प्राप्त भए। सगरके छियाणवें हजार राणी इन्द्राणी तुल्य अर पुत्र साठ हजार ते कदाचित् बंदनाकूं कैलाश पर्वत पर आए अर भगवानके चैत्यालयनिकी बंदना करि दंडरत्नतें कैलाशके चौगिरद खाई खोदते भए। सो तिनको क्रोधकी दृष्टि करि नागेन्द्रनें देख्या, सो ये सब भस्म हो गये। उनमें तें दोय आयुकर्मके योगतें बचे, एक भीमरथ दूसरा भगीरथ। तब सबनिने विचारी जो अचानक यह समाचार चक्रवर्ती को कहेंगे तो चक्रवर्ती तत्काल प्राण तजेंगे। ऐसा जान इनको मिलनेतें अर कहवेतें पंडित लोकों ने मना किए। सर्व राजा अर मंत्री जा विधि आए थे, ताहि विधि आए अर विनयकरि चक्रवर्ती के पास अपने अपने स्थानपर बैठे। तासमय एक वृद्ध ब्राह्मण कहता भया कि हे सगर ! देखहु या संसारकी अनित्यता जिसको देखकर भव्य जीवनिका मन संसारविषैं न प्रवर्ते। आगें तुम्हारे समान पराक्रमी राजा भरत भये, जिनने छै खंड पृथ्वी दासी समान वश करी, ताके अर्ककीर्ति पुत्र भये। वे महापराक्रमी जिनके नामतें सूर्यवंश प्रवर्त्या। या भाँति जे अनेक राजा भये, ते सर्व कालवश भए। सो राजानिकी बात तो दूर हो रहो, जे स्वर्गलोक के इन्द्र महा विभव करि युक्त हैं तेहू क्षणमें विलाय जाय हैं। अर जे भगवान तीर्थंकर तीनों लोककूं आनन्द करणहारे हैं, तेहू आयुके अंत होने पर शरीरको तज निर्वाण पधारे हैं। जैसें पक्षी एक वृक्षपर रात्रिको आय बसै हैं, प्रभात अनेक दिशानिकूं गमन करै हैं तैसें ये प्राणी कुटुम्बरूपी वृक्षविषें आय बसै हैं, स्थिति पूरी कर अपने कर्मके वशतें चतुर्गति विषें गमन करै हैं। सबनितें बलवान महाबली यह काल है, जाने बड़े बड़े बलवान निबल किये। अहो ! बड़ा आश्चर्य है। बड़े पुरुषनिका विनाश देखकर हमारा हृदय नाहीं फट जाय है। इन जीवनिका शरीर संपदा अर इष्ट का संयोग सर्व इन्द्र धनुष वा स्वप्न वा बिजली वा झाग वा बुदबुदा तिन समान जानना। इस जगतविषें ऐसा कोई नाहीं, जो कालतें बचै। एक सिद्ध ही अविनाशी हैं। अर जो पुरुष पहाड़को हाथतें चूर्णकरि डारैं अर समुद्र सोख जावैं, तेहू कालके वदनमें प्राप्त होय हैं। यह मृत्यु अलंघ्य है। सारे

ये लोक मृत्युके वश है, केवल महामुनि ही जिनधर्म के प्रसादकरि मृत्यु को जीते हैं। ऐसैं अनेक राजा कालवश भए, तैसें हमहू कालवश होवेंगे। तीन लोकका यही मार्ग है, ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष शोक न करें। शोक संसार का कारण है, या भांति वृद्ध पुरुष ने कही अर याही भांति सर्व सभा के लोगों ने कही। ताही समय चक्रवर्ती ने दोऊ बालक देखे तब ये मनमें विचारी कि सदा ये साठ हजार भेलं होय मेरे पास आवते हुते, नमस्कार करते अर आज ये दोनों ही दीन वदन दीखें हैं। तातैं जानिए है कि और सब कालवशि भए। अर ये राजा मुझे अन्योक्ति कर समझावैं हैं, मेरा दुःख देखवे कों असमर्थ हैं, ऐसा जानि राजा शोक रूप सर्प का डसा हुवा भी प्राणनिकों न तजता भया। मन्त्रियों के वचनतैं शोक को दबाय संसार को कदलीके गर्भवत् असार जानि इन्द्रियनिके सुख छोड़ भगीरथ को राज देय जिनदीक्षा आदरी। यह सम्पूर्ण छै खंड पृथ्वी जीर्ण तृण समान जान तजी। भगीरथ सहित श्रीअजितनाथ के निकट मुनि होय केवलज्ञान उपजाय सिद्ध-पद को प्राप्त भए।

अथानन्तर एक समय सगर के पुत्र भगीरथ श्रुतसागर मुनि को पूछने भये कि हे प्रभो! जो हमारे भाई एक ही साथ मरण को प्राप्त भये तिन विषैं मैं बचा? तब मुनि बोले कि एक समय चतुर्विधसंघ वंदना निमित्त सम्मेदशिखरको जाते हुते सो चलते २ अंतिम ग्राम में आय निकसे। तिनको देखकर अंतिम ग्राम के लोक दुर्वचन बोलते भए, हँसते भए। तहां एक कुम्हार ने तिनको मने करी अर मुनियोंकी स्तुति करता भया। तदनंतर ता ग्रामके एक मनुष्य ने चोरी करी। सो राजाने सर्व ग्राम जला दिया, उस दिन वह कुम्हार काहू ग्रामको गया हुता सो ही बचा। वह कुम्हार मरकरि वणिक भया अर अन्य जे ग्राम के मरे थे ते द्विइन्द्री कौडी भये। कुम्हारके जीव महाजनने सर्व कौडी खरीदी। बहुरि वह महाजन मरकर राजा भया अर कौडी मर कर गिजाई भई, सो हाथी के पग के तले चूरी गई। राजा मुनि होय कर देव भये। देवतैं तू भगीरथ भया अर ग्राम के लोक कैएक भव खेय सगर के पुत्र भये। सो मुनि के संघ की निंदा के पापतैं जन्म जन्म में कुगति पाई अर तू स्तुति करनेतैं ऐसा भया। यह पूर्व भव सुनकर भगीरथ प्रति-बोधकों पाय मुनिराज के व्रत धरि परमपद को प्राप्त भये।

बहुरि गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहैं हैं—हे श्रेणिक! यह सगर का चरित्र तो तुझे कहा। आगे लंका की कथा कहिये हैं सो सुनहु। महारिक्षनामा विद्याधर बड़ी सम्पदा करि पूर्ण लंकाविषैं निष्कंटक राज्य करै तो एक दिन प्रमद नामा उद्यान विषैं राज लोक सहित क्रीडाकूं गये, कैसा है प्रमद नामा उद्यान? कमलनिकरि पूर्ण जे सरोवर, तिनि करि

अधिक शोभाकू धरै है अर नाना प्रकारके रत्ननिकी प्रभाकू धरैं ऊंचे पर्वतों से महा रमणीक है अर सुगन्धित पुष्पों से फूल रहे वृक्षों के समूह से मंडित अर मिष्ट शब्दों के बोलनहारे पक्षियों के समूह से अति सुन्दर है, जहां रत्नोंकी राशि है अर अति सघन पत्र पल्लवनि करि मंडित लताओं (बेलों) के मंडप तिनकरि छाय रह्या है ऐसे वन में राजा राजलोकनि सहित नाना प्रकार की क्रीड़ा करि रति सागर विषैं मग्न हुता, जैसें नन्दनवन विषैं इन्द्र क्रीड़ा करै तैसें क्रीड़ा करी।

अथानन्तर सूर्य के अस्त भये पीछैं कमल संकोच को प्राप्त भये। तिन विषैं भ्रमर को दबकर मूवा देखि राजाके चिंता उपजी। कैसा है राजा, मोह की भई है मंदता जाके अर भवसागर तें पार होनेकी इच्छा उपजी। राजा विचारै है कि देखो मकरंद के रस में आसक्त यह मूढ़ भौंरा गंधतैं तृप्त न भया तातैं मृत्युकू प्राप्त भया। धिक्कार होहु या इच्छाकू, जैसें यह कमल के रसका आसक्त मधुकर मूवा, तैसें मैं स्त्रियोंके मुखरूप कमल का भ्रमर हुआ मरकर कुगतिको प्राप्त होऊंगा। जो यह एक नासिका इन्द्रियका-लोलुपी नाशको प्राप्त भया, तो मैं तो पंच इन्द्रियों का लोभी हूँ, मेरी क्या बात? अथवा यह चौइन्द्री जीव अज्ञानी भूलै तो भूलै, मैं ज्ञान सम्पन्न विषयनिके वशि क्यों भया? शहत की लपेटी खडगकी धाराके चाटने में सुख कहां? जीभहीके खण्ड होय हैं तैसें विषयसेवन में सुख कहां? अनन्त दुःखोंका उपार्जन ही होय है। विषफल तुल्य ये विषय तिनतैं जे नर पराङ्मुख हैं तिनको मैं मनवचकायकरि नमस्कार करू हूँ। हाय! हाय! यह बड़ा खेद है जो मैं पापी घने दिनतक इन दुष्ट विषयनिकरि ठगाया गया। इन विषयनि का प्रसंग विषम है। विष तो एक भव प्राण हरै है। जा समय राजा यह विचार किया, तासमय वनमें श्रुतसागर मुनि आये। वह मुनि अपने रूपकरि चन्द्रमाकी चांदनीको जीतै हैं अर दीप्तिकरि सूर्यकु जीतै हैं, स्थिरताकरि सुमेरुतैं अधिक हैं। जिनका मन एक धर्मध्यानविषैं ही आसक्त है अर जीते हैं राग द्वेष दोय जिन्होंने और तजे हैं मन वच काय के अपराध जिन्होंने, चार कषायों के जीतनेहारे, पांच इन्द्रियनिके वश करणहारे, छै काय के जीवनिपर दयालु अर सप्त भय वर्जित, आठ मद रहित, नव नय के वेत्ता, शील की नव वाडिके धारक, दशलक्षण धर्मके स्वरूप, परम तप के धरणहारे, साधुवों के समूह सहित स्वामी पधारे सो जीव जंतु रहित पवित्र स्थान देख वन में तिष्ठे, जिनके शरीर की ज्योति का दसों दिशा में उद्योत हो गया।

अथानन्तर वनपालके मुखतैं स्वामीको आया सुन राजा महारिक्ष विद्याधर वन में आये। कैसे हैं राजा? भक्ति भाव करि विनयरूप है मन जिनका, वह राजा आयकरि

मुनिके श्रीचरनि पड़े। कैसे हैं मुनि ? अति प्रसन्न है मन जिनका अर कल्याणके देनहारे हैं चरण कमल जिनके। राजा समस्त संघको नमस्कार करि, समाधान (कुशल) पूछ, एक क्षण बैठिकर भक्ति भावतैं मुनितैं धर्मका स्वरूप पूछते भये। मुनिके हृदयमें शांतभावरूपी चन्द्रमा प्रकाश कर रहा था सो वचनरूपी किरणनिकरि उद्योत करते संते व्याख्यान करते भये कि हे राजा ! धर्म का लक्षण जीव दया ही है अर ये सत्य वचनादि सर्व धर्मही का परिवार है। यह जीव कर्म के प्रभावतैं जिस गतिमें जाय है ताही शरीरमें मोहित होय है, इसलिए तीन लोककी संपदा जो कोई देय तौ हू प्राणी अपने प्राणको न तजे। सब जीवनिको प्राण समान और कुछ प्यारा नाहीं, सब ही जीवनेकों इच्छे हैं, मरनेको कोई भी न इच्छे। बहुत कहवे करि कहा ? जैसें आपको अपने प्राण प्यारे हैं, तैसें ही सबनिको प्यारे हैं तातैं जो मूरख परजीवनि के प्राण हरैं हैं, ते दुष्टकर्मी नरकमें पड़ें हैं, उन समान और कोऊ पापी नाहीं। ये जीवनिके प्राण हरि अनेक जन्म कुगतिमें दुःख पावै हैं—जैसें लोह का पिंड पानी में डूबि जाय है, तैसें हिंसक जीव भवसागर में डूबै हैं। जे वचन करि मीठे बोल बोलै हैं अर हृदय में विषके भरे हैं, इन्द्रियनिके वशि भए मलीन मन हैं, भले आचारतें रहित स्वेच्छाचारी कामके सेवनहारें हैं, ते नरक तिर्यंच गतिविषैं भ्रमण करै हैं। प्रथम तो या संसारविषैं जीवनिकों मनुष्य देह दुर्लभ है। बहुरि उत्तम कुल, आर्यक्षेत्र, सुन्दरता, धनकरि पूर्णता, विद्याका समागम, तत्वका जानना, धर्मका आचरण ये सब अति दुर्लभ हैं। धर्मके प्रसादतैं कैएक तो सिद्धपद पावै हैं, कैएक स्वर्गलोकविषैं सुख पायकरि परंपरा मोक्ष को जाय हैं अर कईएक मिथ्यादृष्टि अज्ञान तपकरि देव होय स्थावरयोनिमें आय पड़ें हैं। कईएक पशु होय हैं अर कईएक मनुष्य जन्ममें आवैं हैं। कैसा है माता का गर्भ, मलमूत्रकरि भर्‌या है अर कृमियों के समूहकर पूर्ण है, महादुर्गन्ध अत्यन्त दुस्सह, ताविषैं पित्त श्लेष्मके मध्यचर्मके जालतैं ढके ये प्राणी जननी के आहारका जो रसांश ताहि चाटै हैं। जिनके सर्व अंग संकुचि रहे हैं। दुःख के भारकरि पीड़ित नव महीना उदरविषैं बसिकरि योनि के द्वारतैं निकसै हैं। मनुष्य देह पाय पापी धर्मको भूलैं हैं। सर्व योनियों में उत्तम है। मिथ्यादृष्टि नेम धर्म आचारवर्जित पापी विषयनिको सेवैं हैं। जे ज्ञानरहित काम के वशि पड़ें स्त्रीके वशी होय हैं ते महादुःख भोगते हुए संसार समुद्रविषैं डूबैं हैं तातैं विषयकषाय न सेवने। हिंसाका वचन जामैं परजीवनिको पीडा होय सो न बोलना। हिंसा ही संसार का कारण है। चोरी न करनी, सांच बोलना, स्त्री की संगति न करनी, धनकी वांछा न रखनी, सर्व पापारंभ तजने, परोपकार करना, पर पीडा न करनी। यह मुनि की आज्ञा सुनकरि धर्म का स्वरूप जान राजा वैराग्य को प्राप्त भए। मुनिकों नमस्कार

करि अपने पूर्व भव पूछे। चार ज्ञान के धारक मुनि श्रुतसागर सर्वपताकरि पूर्वभव कहते भए कि हे राजन्! पोदनापुरिविषैं हितनामा एक मनुष्य ताके माधवी नामा स्त्री ताके प्रतिम नामा तू पुत्र भया। अर ताही नगरविषैं राजा उदयाचल, राणी उदयश्री ताका पुत्र हेमरथ राज करै सो एक दिन जिन मन्दिर विषैं महापूजा करवाई। वह पूजा आनंद की करणहारी है सो ताके जयजयकार शब्द सुनकरि तूने भी जयजयकार शब्द किया सो पुण्य उपार्ज्या। काल पाय मूवा अर यक्षों में महायक्ष हुवा। एक दिन विदेहक्षेत्रविषैं कांचनपुर नगरके वनमें मुनियोंको पूर्व भवके शत्रु ने उपसर्ग किया सो यक्ष ने ताको डराकर भगा दिया अर मुनिनकी रक्षा करी सो अति पुण्यकी राशी उपार्जी। कैएक दिन आयु पूरी करी यक्ष तडिदंगद नामा विद्याधर ताकी श्रीप्रभा स्त्री के उदितनामा पुत्र भया। अमरविक्रम विद्याधरोंके ईश बंदनाके निमित्त मुनिके निकट आये थे तिनको देखकरि निदान किया अर महा तपकर दूसरे स्वर्ग जाय तहांतैं चयकर तू मेघवाहन के पुत्र हुवा। हे राजा! तूने सूर्य के रथकी नाईं संसार में भ्रमण किया। जिह्वाका लोलुपी स्त्रियोंके वशवर्ती होय तैं अनन्तभव धरे। तेरे शरीर या संसारमें ऐसे व्यतीत भए जो उनको एकत्र करिये तो तीनलोक मे न समावैं अर सागरों की आयु स्वर्ग विषैं तेरी भई। जब स्वर्ग ही के भोगनितैं तू तृप्त न भया तो विद्याधरों के अल्प भोगनितैं कहा तृप्त होयगा! अर तेरी आयु भी अब आठ दिन बाकी है यातैं स्वप्न इन्द्रजाल समान जे भोग तिनतैं निवृत्त होहु। ऐसा सुन अपना मरण जाना तो हू विषादकूं न प्राप्त भया। प्रथम तो जिन-चैत्यालयविषैं बड़ी पूजा कराई, पीछे अनन्त संसार के भ्रमणतैं भयभीत होकर अपने बड़े पुत्र अमररक्ष को राज देय अर लघु पुत्र भानुरक्ष को युवराज पद देय आप परिग्रहको त्यागकरि तत्वज्ञान विषैं मग्न होय पाषाणके थम्भ तुल्य निश्चल होय ध्यान में तिष्ठे। अर लोभकरि रहित भए खानपान का त्याग करि शत्रु मित्र में समान बुद्धि धार निश्चल होय कर मौनव्रत के धारक समाधिमरण करि स्वर्गविषैं उत्तम देव भए।

अथानन्तर किन्नरनाद नामा नगरी विषैं श्रीधर नामा विद्याधर राजा ताके विद्या नामा रानी ताके अरिंजया नामा कन्या सो अमररक्ष ने परणी। अर गन्धर्वगीत नगरविषैं सुरसंन्निभ राजा ताके रानी गांधारी ताकी पुत्री गंधर्वा सो भानुरक्ष ने परणी। बड़े भाई अमररक्ष के दस पुत्र भए अर देवांगना समान छहपुत्री भईं जिनके गुण ही आभूषण हैं। अर लघु भाई भानुरक्ष के दश पुत्र अर छह पुत्री भईं। सो उन पुत्रों ने अपने अपने नाम के नगर बसाए। कैसे हैं वे पुत्र? शत्रुनिके जीतनेहारे पृथ्वी के रक्षक हैं। हे श्रेणिक! उन नगरों के नाम सुनो। सन्ध्याकार १ सुवेल २ मनोह्लाद ३ मनोहर ४

हंसद्वीप ५ हरि ६ योध ७ समुद्र ८ कांचन ९ अर्धस्वर्ग १० ए दस नगर तो अमररक्षके पुत्रनिने बसाए। अर आवर्तनगर १ विघट २ अम्भाद ३ उत्कट ४ स्फुट ५ रितुग्रह ६ तट ७ तोय ८ आवली ९ रत्नद्वीप १० ये दस नगर भानुरक्षके पुत्रोंने बसाए। कैसे हैं वे नगर ? जिनमें नानाप्रकारके रत्नोंसे उद्योत होय रहा है, सुवर्णकी भांति तिनकरि देदी-प्यमान वे नगर क्रीडा के अर्थि राक्षसोके निवास होते भए, बड़े बड़े विद्याधर दैशान्तरोंके वासी तहाँ आय महा उत्साह करि निवास करते भए।

अथानन्तर पुत्रनिको राज देय अमररक्ष भानुरक्ष ये दोनों भाई मुनि होय महा-तप करि मोक्षपदकों प्राप्त भए। या भाँति राजा मेघवाहनके वंशमें बड़े बड़े राजा भए। ते न्यायवंत प्रजा पालन करि सकल वस्तुनितें विरक्त होय मुनिके व्रत धारि कईएक मोक्ष को गए। कईएक स्वर्गविषैं देव भए। ता वंशविषैं एक राजा महारक्ष भए तिनकी राणी मनोवेगा ताके पुत्र राक्षस नामा राजा भए, तिनके नामतें राक्षसवंश कहाया। ये विद्याधर मनुष्य हैं, राक्षस-योनि नाहीं। राजा राक्षसके राणी सुप्रभा ताके दोय पुत्र भए। आदि-त्यगति बड़ा पुत्र अर छोटा वृहतकीर्ति ये दोऊ चन्द्र सूर्य समान अन्यायरूप अन्धकार को दूर करते भए, तिन पुत्रनिको राज देय राजा राक्षस मुनि होय देवलोक गए। राजा आदित्यगति राज्य करै अर छोटा भाई युवराज हुवा। बड़े भाई आदित्यगतिकी स्त्री सदनपद्मा अर छोटे भाईकी स्त्री पुष्पनखा भई। आदित्यगतिका पुत्र भीमप्रभ भया। ताके हजार राणी देवांगना समान अर एकसौ आठ पुत्र भए सो पृथ्वीके स्तंभ होते भए। उनमें बड़े पुत्रको राज्य देय राजा भीमप्रभ वैराग्यको प्राप्त होय परमपद को प्राप्त भए। पूर्वे राक्षसनिके इन्द्र भीम सुभीम ने कृपाकर मेघवाहनको राक्षसद्वीप दिया सो मेघवाहन के वंश में बड़े बड़े राजा राक्षसद्वीपके रक्षक भए। भीमप्रभाका बड़ा पुत्र पूजाई सो हू अपने पुत्र जितभास्करको राज्य देय मुनि भए। अर जितभास्कर संपरिकीर्ति नामा पुत्रको राज्य देय मुनि भए अर संपरिकीर्ति सुग्रीव नामा पुत्रको राज्य देय मुनि भए। सुग्रीव हरिग्रीव को राज्य देय उग्र तपकरि देवलोक गया अर हरिग्रीव श्रीग्रीवको राज्य देय वैराग्यको प्राप्त भए। अर श्रीग्रीव सुमुख नामा पुत्रको राज्य देय मुनि भए, अपने बड़ों हीका मार्ग अंगीकार किया अर सुमुख भी सुव्यक्तको राज देय आप परम ऋषि भए अर सुव्यक्त अमृतबेगको राज देय वैरागी भए अर अमृतबेग भानुगति को राज्य देय यति भए। अर वे हू चिंतागतिको राज देय निश्चिन्त भए अर मुनिव्रत आदरते भए, चिन्तागति भी इन्द्रको राज देय मुनींद्र भए। या भांति राक्षसवंशमें अनेक राजा भए। तथा राजा इन्द्र के इन्द्रप्रभ ताके मेघ, ताके मृगारिदमन, ताके पवि, ताके इन्द्रजीत,

ताके भानुवर्मा, ताके भानु–सूर्यसमान तेजस्वी, ताके मुरारी, ताके त्रिजित्, ताके भीम, ताके मोहन, ताके उद्धारक, ताके रवि, ताके चाकर, ताके वज्रमध्य, ताके प्रबोध, ताके सिंहविक्रम, ताके चामुंड, ताके मारण, ताके भीष्म, ताके द्युपबाहु, ताके अरिदमन, ताके निर्वाणभक्ति, ताके उग्रश्री, ताके अर्हद्भक्त, ताके अनुत्तर, ताके गतभ्रम, ताके अनिल, ताके लंक, ताके चंड, ताके मयूरवान, ताके महाबाहु, ताके मनोरम्य, ताके भास्करप्रभ, ताके बृहद्गति, ताके बृहतकांत अर ताके अरिसंत्रास, ताके चंद्रावर्त, ताके महारव, ताके मेघध्वान, ताके ग्रहक्षोभ, ताके नक्षत्रदमन, या भाँति कोटिक राजा भए। बड़े विद्याधर महाबलकरि मंडित, महाकीर्तिके धारी, पराक्रमी, परदाराके त्यागी, निज स्त्रीमें है संतोष जिनके, ऐसे लंका के स्वामी, महासुन्दर अस्त्र शस्त्र कला के धारक, स्वर्ग लोक से आय अनेक राजा भए। ते अपने पुत्रनिकों राज देय जगततैं उदास होय जिनदीक्षा धारि कईएक तो कर्मकाटि निर्वाणको गए, जो तीन लोक का शिखर है अर कईएक राजा पुण्य के प्रभावतैं प्रथम स्वर्ग कों आदि देय सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त प्राप्त भए। या भाँति अनेक राजा व्यतीत भए। जैसें स्वर्गविषें इन्द्र प्रसिद्ध है तैसें लंका का अधिपति घनप्रभ ताकी राणी पद्माका पुत्र कीर्तिधवल प्रसिद्ध भया। जैसें स्वर्ग में इन्द्र राज करे तैसें लंका में कीर्तिधवल राज करता भया, अनेक विद्याधर जिसके आज्ञाकारी। या भाँति पूर्व भवविषें किया जो तप ताके बलकरि यह जीव देवगति के तथा मनुष्य गति के सुख भोगवै है अर सर्व त्यागकर महाव्रत धरि आठ कर्म भस्म करि सिद्ध होय है अर जे पापी जीव खोटे कर्मनिविषें आसक्त हैं ते या ही भव विषें लोकनिंद्य होय मर करि कुयोनिमें जाय हैं अर अनेक प्रकार दुःख भोगवै हैं। ऐसा जान पापरूप अंधकार के हरवे को सूर्य समान जो शुद्धोपयोग ताको भजो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महा पद्मपुराण की भाषाटीका विषें राक्षसनिका कथन जा विषें है ऐसा पाँचवां अधिकार सम्पूर्ण भया ॥ ५ ॥

—:o:—

(षष्ठम पर्व)

[बानर वंशियों की उत्पत्ति]

अथानन्तर गौतम स्वामी कहै हैं–हे राजा श्रेणिक! यह राक्षस वंश अर विद्याधरनिके वंशका वृत्तांत तो तुमसे कह्या, आगें बानरवंशनिका कथन सुनो। स्वर्ग समान जो विजयार्धगिरि ताकी दक्षिण श्रेणी विषें मेघपुर नामा नगर ऊंचे महलों से शोभित है,

तहां विद्याधरनि का राजा अतींद्र पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध भोगसंपदामें इन्द्रतुल्य ताके श्रीमती नामा रानी लक्ष्मी समान हुई। ताके मुखकी चाँदनीकरि सदा पूर्णमासी समान प्रकाश होय है। ताके श्रीकंठ नामा पुत्र भया, शास्त्र में प्रवीण, जिसके नाम को सुनकर विचक्षण पुरुष हर्ष को प्राप्त होंय अर ताके छोटी बहिन महामनोहर देवी नामा हुई, जाके नेत्र कामके बाण ही हैं।

अथानन्तर रत्नपुर नामा नगर अति सुन्दर, तहाँ पुष्पोत्तर नामा राजा विद्याधर महाबलवान ताकै पद्माभा नामा पुत्री देवांगना समान अर पद्मोत्तर नामा पुत्र महा गुणवान, जाके देखनेतैं अति आनन्द होय। सो राजा पुष्पोत्तर ने अपने पुत्रके निमित्त राजा अतींद्रकी पुत्री देवी को बहुत बार याचना करी, तो हू श्रीकंठ भाई ने अपनी बहिन लंका के धनी कीर्तिधवल को दीनी अर पद्मोत्तरको न दीनी। यह बात सुन राजा पुष्पोत्तर ने अति कोप किया अर कहा कि देखो हममें कुछ दोष नाहीं, दारिद्र दोष नाहीं, मेरा पुत्र कुरूप नाहीं अर हमारै उनकै कछु वैर भी नाहीं तथापि मेरे पुत्रको श्रीकंठने अपनी बहिन न परणाई, यह क्या युक्त किया ?

एक दिन श्रीकंठ चैत्यालयनिकी बंदना के निमित्त सुमेरु पर्वत पर विमान में बैठकर गये। कैसा है विमान पवन समान वेगवाला अर अतिमनोहर है, सो वंदनाकर आवते हुते मार्ग में पुष्पोत्तरकी पुत्री पद्मभाका राग सुण्या अर वीन का बजाना सुण्या। कैसा है राग मन और श्रोत्रका हरनहारा सो राग सुन मन मोहित भया। तब अवलोकन किया सो गुरु समीप संगीत गृहविषैं वीण बजावती पद्मभा देखी। ताके रूपसमुद्रविषैं उसका मन मग्न हो गया, मनकूं काढ़िवे को असमर्थ भया, वाकी ओर देखता रह्या। अर यह भी अति रूपवान सो याके देखवेकरि वह भी मोहित भई। ये दोनों परस्पर प्रेमसूतकर बन्धे सो ताका मन जान श्रीकंठ ताहि आकाशमें लेय चल्या, तब परिवार के लोगों ने राजा पुष्पोत्तरपै पुकार करी कि तुम्हारी पुत्री को राजा श्रीकंठ ले गया। सो राजा पुष्पोत्तर के पुत्र श्रीकंठ ने अपनी बहिन न परणाई, ताकरि वह क्रोधरूप था ही। अब अपनी पुत्री के हरवेकरि अत्यन्त कुपित होय सब सेना लेय श्रीकंठ के मारवेकूं पीछे लग्या। दांतनिकरि होंठनिको पीसता क्रोधकरि जिसके नेत्र लाल हो रहे हैं ऐसे महाबली को आवते देख श्रीकंठ डर्‌या अर भाजकर अपने बहनेऊ लंकाके धनी कीर्तिधवलकी शरण आया सो समय पाय बड़ोंके शरणें जाय न्याय ही है। राजा कीर्तिधवल श्रीकंठ को देखि अपना साला जान बहुत स्नेह करि सामां आय मिल्या, छातीसों लगाय बहुत सन्मान किया। इतनें आपस में कुशल वार्ता हो रही थी कि पुष्पोत्तर सेना सहित आकाशमें आये।

कीर्तिधवलने उनको दूरतैं देख्या कि राजा पुष्पोत्तर के संग अनेक विद्याधरों के समूह महा तेजवान हैं, खड्ग सेल धनुष बाण इत्यादि शस्त्रनिके समूहकरि आकाश में तेज होय रह्या है, ऐसे महामई तुरंग वायु के समान है वेग जिनका अर काली घटा समान मायामई गज, चलायमान है घंटा अर सूंड जिन की, मायामई सिंह अर बड़े २ विमान तिनकरि मंडित आकाश देख्या। उत्तर दिशाकी ओर सेना का समूह देख राजा कीर्तिधवल क्रोधसहित हँसकर मंत्रियों को युद्ध करनेकी आज्ञा दीनी। तब श्रीकंठ ने लज्जातें नीचे होय अर कीर्तिधवल से कहा जो मेरी स्त्री अर मेरे कुटुम्बकी तो रक्षा आप करो अर मैं आपके प्रतापतें युद्धमें शत्रु नि को जीत आऊंगा। तब कीर्तिधवल कहते भये कि यह बात तुमको कहना अयुक्त है, तुम सुखसों तिष्ठो, युद्ध करने को हम घने ही हैं। जो यह दुर्जन नरमीतैं शान्त होय तो भला ही है, नहीं तो इनको मृत्यु के मुखमें देखोगे, ऐसा कहि अपने स्त्रीके भाईको सुखसैं अपने महल में राखि पुष्पोत्तर के निकट बड़ो बुद्धिके धारक दूत भेजे। ते दूत जाय पुष्पोत्तरसों कहते भए जो हमारे मुखतैं तुमको राजा कीर्तिधवल बहुत आदरतैं कहै है कि तुम बड़े कुल में उपजे हो, तुम्हारी चेष्टा निर्मल है, तुम सर्वशास्त्र के वेत्ता हो, जगत् में प्रसिद्ध हो अर सबनिमें वयकर बड़े हो, तुमने जो मर्यादा की रीति देखी है सो काहू ने काननिसे सुनी नाहीं। यह श्रीकंठ हू चन्द्रमा की किरण समान निर्मल कुल विषैं उपज्या है अर धनवान है, विनयवान है, सुन्दर है, सर्वकला में निपुण है। यह कन्या ऐसे ही वर को देने योग्य है, कन्या के अर याके रूप अर कुल समान हैं, तातैं तुम्हारी सेनाका क्षय कौन अर्थ करावना ? यह तो कन्यानिका स्वभाव ही है कि जो पराए गृह का सेवन करें। दूत जब लग यह बात कह ही रहे थे कि पद्माभा की भेजी सखी पुष्पोत्तरके निकट आई अर कहती भई कि तुम्हारी पुत्री ने तुम्हारे चरणारविन्दको नमस्कारकर वीनती करी है कि जो मैं तो लज्जाकरि तुम्हारे समीप नहीं आई तातैं सखीको पठाई है, हे पिता ! या श्रीकंठ का रंचमात्र हू दूषण नाहीं, अल्प हू अपराध नाहीं, मैं कर्मानुसार करि याके संग आई हूं। जे बड़े कुल में उपजी स्त्री हैं तिनके एक ही वर होय है, तातैं या टालि (इसके सिवाय) मेरे अन्य पुरुषका त्याग है। ऐसैं आय सखी ने वीनती करी, तब राजा संचित होय रहे, मनमें विचारी कि मैं सर्व बातों में समर्थ हूं, युद्धमें लंकाके धनी को जीत श्रीकंठको बांधकर ले जाऊं परन्तु मेरी कन्याही ने इसको बर्‌या तो याकूं कहा कहूं ? ऐसा जान युद्ध न किया। अर जो कीर्तिधवल के दूत आये हुते, तिनको सन्मान करि विदा किये। अर जो पुत्रीकी सखी आई थी ताको भी सन्मानकर विदा दीनी। ते हर्ष करि भये लंकाकों अर राजा पुष्पोत्तर सर्व

अर्थ के ऐसा पुत्री की वीनतीतैं श्रीकंठ पर क्रोध तजि अपने स्थानकों गए।

अथानन्तर मार्गशिर सुदी पड़वा के दिन श्री कंठ अर पद्माभा का विवाह भया। अर कीर्तिधवलने श्रीकंठसों कही जो 'तुम्हारे बैरी विजयार्धमें बहुत हैं, तातैं तुम इहां ही समुद्रके मध्य में जो द्वीप है तहाँ तिष्ठो, तुम्हारे मनको जो स्थानक रुचै सो लेवो, मेरा मन तुमको छांड़ि नाहीं सकै है। अर तुमहू मेरी प्रीतिका बंधन तुड़ाय कैसे जावोगे? ऐसे श्रीकंठसों कहिकर अपने आनन्दनामा मंत्रीसों कही 'जो तुम महाबुद्धिमान् हो अर हमारे दादेकै मुंह आगिले हो, तुमतैं सार असार किछु छाना नाहीं। या श्रीकंठके योग्य जो स्थानक होय सो बताओ। तब आनन्द कहते भए कि महाराज आपके सब ही स्थानक मनोहर हैं तथापि आप ही देखकरि जो दृष्टिमें रुचै सो देहु। समुद्र के मध्यमें बहुत द्वीप हैं, कल्पवृक्ष समान वृक्षों से मंडित, जहाँ नाना प्रकारके रत्ननिकरि शोभित बड़े बड़े पहाड़ हैं, जहाँ देव क्रीड़ा करैं हैं, तिन द्वीपों में महारमणीक नगर हैं, जहां स्वर्ग रत्ननिके महल हैं सो तिनके नाम सुनहु। संध्याकार, सुबेल, कांचन, हरिपुर, जोधन, जलधिध्वान, हंसद्वीप, भरक्षमठ, अर्धस्वर्ग, कूटावर्त, विघट, रोधन, अमलकांत, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर, अलंघन, नमोभान, क्षेम इत्यादि मनोज्ञ स्थानक हैं। जहां देव भी उपद्रव न कर सकैं। यहाँ तैं उत्तर भागविषै तीनसो योजन समुद्रके मध्य वानर द्वीप है, जो पृथ्वीमें प्रसिद्ध है, जहां अवांतरद्वीप बहुत ही रमणीक हैं। कईएक तो सूर्यकांति मणिन की ज्योतितैं देदीप्यमान हैं। अर कईएक हरितमणिनिकी कांतिकरि ऐसे शोभैं हैं मानो उगते हरे तृणों से भूमि व्याप्त होय रही है। अर कईएक श्याम इन्द्रनीलमणि की कांति के समूह से ऐसे शोभै हैं मानो सूर्यके भयतैं अंधकार वहां शरण आयकरि रहा है। अर कहूं लाल जे पद्मराग मणिनके समूहकरि मानो रक्त कमलोंका बन ही शोभै है। अर वहां ऐसी सुगन्ध पवन चालै है कि आकाश में उड़ते पक्षी भी सुगन्धसे मग्न होय जाय हैं अर तहां वृक्षनिपर आय बैठे हैं। अर स्फटिकमणिनिके मध्य मिली जो पद्मरागमणि तिनकरि सरोवर में कमल जाने जांय हैं। उन मणिनिकी ज्योति करि कमलनिके रंग न जाने जाय हैं। जहां फूलनिकी बासतैं पक्षी उन्मत्त भए ऐसे मधुर सुन्दर शब्द करै हैं मानो समीपके द्वीपनिसों अनुराग भरी बातें करै हैं। जहाँ औषधिनिकी प्रभाके समूहकरि अंधकार दूर होय है, सो अंधारे पक्षमें भी उद्योत ही रहै है। जहाँ फल पुष्पनिकरि मंडित वृक्षोंका आकार छत्र समान है। जिनकी बड़ी बड़ी डालें हैं उनपर पक्षी मिष्ट शब्द कर रहे हैं। जहाँ बिना बाहे धान आपसे ही ऊगै हैं। कैसे हैं वे धान? वीर्य अर कांतिको विस्तीरणहारे सो मन्द पवनकरि हिलते हुए शोभै हैं तिनकरि पृथ्वी मानों कंचुकी (चोली) पहरे

हैं। अर जहां लालकमल फूल रहे हैं जिनपर भ्रमरों के समूह गुंजार करे हैं सो मानो सरोवर ही नेत्रनिकरि पृथ्वीका विलास देखे है। नीलकमल तो सरोवरीन के नेत्र भए अर भ्रमर भौंहें भए। जहां पौढे अर सांठानिकी विस्तीर्ण वाड हैं सो पवनकरि हालतेतें शब्द करै हैं। ऐसा सुन्दर बानरद्वीप है। उसके मध्यविषें किहकुन्दा नामा पर्वत है। वह पर्वत रत्न अर स्वर्ण की शिला के समूहकरि शोभायमान है। जैसा यह त्रिकूटाचल मनोज्ञ है तैसा ही किहकुन्द पर्वत मनोज्ञ है। अपने शिखरनिकरि दिशारूपी कांताको स्पर्श करै है। आनन्द मन्त्र के ऐसे वचन सुनकर राजा कीर्तिधवल बहुत आनन्द रूप भए अर बानरद्वीप श्रीकंठको दिया। तब चैत्र के प्रथम दिन श्रीकंठ परिवारसहित बानरद्वीपमें गए। मार्ग में पृथ्वी की शोभा देखते चले जांय हैं। वह पृथ्वी नीलमणिनिकी ज्योतिकरि आकाश समान शोभै है अर महाग्रहोंके समूहकरि सयुक्त समुद्रको देखि आश्चर्यको प्राप्त भए, बानरद्वीप जाय पहुँचे। बानरद्वीप मानो दूसरा स्वर्ग ही है। अपने नीझरनों के शब्द से मानों राजा श्रीकंठ को बुलावे ही है। नीझरने के छींटे आकाशको उछलै हैं सो मानों राजाके आवेकरि अति हर्षको प्राप्त भए, आनन्दकरि हसै हैं। नाना प्रकार की मणिनिकी कांतिकर उपज्या जो कांतिका सुन्दर समूह ताकरि मानों तोरणनिके समूह हो ऊंचे चढ़ रहे हैं। अब राजा बानरद्वीप में उतरे अर सर्व ओर चौगिरद अपनी नीलकमलसमान दृष्टि सर्वत्र विस्तारी। छुहारे, आंवले, कैथ, अगरचंदन, दाख, पीपरली, अर्जुन कहिए सहीजणा अर कदब, आमली, चारोली, केला, दाडिम, सुपारी, इलायची, लवंग, मौलश्री अर सर्व जातिके मेवों से युक्त नानाप्रकारके वृक्षनिकरि द्वीप शोभायमान देख्या, ऐसी मनोहर भूमि देखी, जिसके देखे और ठौर दृष्टि न जाय। जहां वृक्ष सरल अर विस्तीर्ण ऊपरि छत्रसे बन रहे हैं। सघन सुन्दर पल्लव अर शाखा फूलनिके समूहकरि शोभै हैं अर महा रसीले स्वादिष्ट मिष्ट फलनिकरि नम्रीभूत होय रहे हैं अर वृक्ष अति रसीले, अति ऊंचे हू नाहीं, अति नीचे हू नाहीं, मानो कल्पवृक्ष ही शोभै हैं। अर जहां बेलनिपर फूलों के गुच्छे लग रहे हैं, जिन पर भ्रमर गुंजार करे हैं सो मानो यह बेलि तो स्त्री है, उनके जो पल्लव हैं सो हाथोंकी हथेली हैं अर फूलों के गुच्छे कुच हैं अर भ्रमर नेत्र हैं, वृक्षोंसे लग रहे हैं। अर ऐसे ही तो सुन्दर पक्षी बोले हैं अर ऐसे ही मनोहर भ्रमर गुंजार करै हैं मानों परस्पर आलाप करै हैं। जहां कईएक देश तो स्वर्ण समान कांति को धरै हैं, कईएक कमल समान, कईएक वैडूर्य मणि समान हैं। ते देश नाना प्रकार के वृक्षनिकरि मंडित हैं जिनको देखकर स्वर्ग भूमि हू नहीं रुचै है। जहां देव क्रीड़ा करै हैं, जहां हंस, सारिस, सूवा, मैना, कबूतर, कमेड़ी इत्यादि अनेक जाति के पक्षीनि युगल क्रीडा करै हैं, जीवनिकों

किसी प्रकारकी बाधा नाहीं। नाना प्रकार के वृक्षनिकी मंडप, रत्न स्वर्ण के अनेक निवास पुष्पनिकी अति सुगन्धी, ऐसे उपवनमें सुन्दर शिलानिके ऊपर राजा विराजे। अर सेना भी सकल बन में उतरी। हंसों मयूरों के नाना प्रकारके शब्द सुने अर फल फूलों की शोभा देखी। सरोवरनि में मीन केलि करते देखे। वृक्षों के फूल गिरे हैं अर पक्षियों के शब्द होय रहे हैं सो मानो वह बन राजा के आवनेतैं फूलनि की वर्षा ही करै है अर जय जयकार शब्द करै है। नाना प्रकार के रत्ननिकरि मंडित पृथ्वी मंडल की शोभा देखि विद्याधरनिका चित्त बहुत सुखी भया। बहुरि नंदनबन सारिखा वह बन तामें राजा श्रीकंठ ने क्रीडा करते सन्ते बहुत बानर देखे जिनकी अनेक प्रकार की चेष्टा है। राजा देखिकरि मनमें चितवने लगा कि तिर्यंच योनि के ये प्राणी मनुष्य समान लीला करै हैं। जिनके हाथ पग सर्व आकार मनुष्य का सा है सो इनकी चेष्टा देखि राजा चकित होय रहे। निकटवर्ती पुरुषनिसों कही कि जावो 'इनको मेरे समीप लाओ' सो राजा की आज्ञातैं कईएक बानरनिकों पकरि लाए। सो राजा ने उनको बहुत प्रीतिसों राखे अर तिनको नृत्य करना सिखाया अर उनके सफेद दाँत दाडिम के फूलनिसों रंगकर तमाशे देखे अर उनके मुखमें सोनेके तार लगाय लगाय कौतूहल करावता भया। वे आपस में परस्पर जूंवाँ काढ़ैं, तिनके तमाशे देखे अर वे आपसमें स्नेह करैं वा कलह करैं, तिनके तमाशे देखे। राजा ने ते कपि पुरुषनिकूं रक्षा निमित्त सोंपे अर मीठे मीठे भोजन करि तिनकों पोखे। तिन बानरों को साथ लेकर किहकुन्द पर्वत पर चढ़े। राजाका चित्त सुन्दर वृक्ष सुन्दर बेलि, पानी के नीझरणों से हरा गया। तहाँ पर्वत के ऊपर विषमता रहित विस्तीर्ण भूमि देखी। तहां किहकुन्द नामा नगर बसाया। कैसा है वह नगर जहाँ बैरियों का मन भी प्रवेश न कर सकै, चौदह योजन लम्बा अर चौदह योजन चौड़ा अर जो परिक्रमा करिए तो बियालीस योजन कछुइक अधिक होय। जाके मणियों के कोट, रत्नोंके दरवाजे वा रत्नों के महल हैं। रत्नों का कोट इतना ऊँचा है कि अपने शिखरकरि मानो आकाशसों ही लग रह्या है। अर दरवाजे ऊंचे मणियों से ऐसे शोभै हैं मानो यह अपनी ज्योति से थिरीभूत होय रहे हैं। घरनिकी देहली पद्मराग मणिन की है सो अत्यन्त लाल है मानो यह नगरी नारी स्वरूप है सो तांबूलकरि अपने अधर (होंठ) लाल कर रही है। अर दरवाजे मोतिनकी मालाकरि युक्त हैं सो मानों समस्त लोककी संपदा को हंसै हैं अर महलनिके शिखरनि पर चंद्रकांति मणि लगि रही हैं सो रात्रि में ऐसा भासै है मानो अँधेरी रात्रिमें चंद्र उग रहा है। अर नाना प्रकार के रत्नोंकी प्रभाकी पंक्ति करि मानो ऊंचे तोरण चढ़ रहे हैं। तहां घरनिकी पंक्ति विद्याधरनिकी बनाई हुई बहुत शोभै हैं। घरनिके चौक

मंदिरन के हैं अर जहाँ नगरके राजमार्ग बाजार बहुत सीधे हैं, तिनमें वक्रता नाहीं । अति विस्तीर्ण है मानो रत्ननि के सागर ही हैं । सागर जलरूप हैं, यह थलरूप हैं । अर मंदिरनि के ऊपर लोगों ने कबूतरनिके निवास निमित्त स्थान कर राखे हैं । सो कैसे शोभै हैं ? मानो रत्ननि के तेज ने अंधकार नगरीतैं काढ़ दिया है, सो शरण आयकर समीप पड्या है इत्यादि नगर का वर्णन कहाँ तक करिए । इन्द्र के नगर के समान उस नगर में राजा श्रीकंठ पद्माभा रानी सहित जैसें स्वर्ग विषैं शची सहित सुरेश रमै है, तैसें बहुत काल रमते भए । जे वस्तु भद्रशाल वन में तथा सौमनस वन में तथा नंदनवन में न पाइये ते राजा के वन में पाई जावें ।

एक दिन राजा महल ऊपर विराज रहे थे सो अष्टान्हिकाके दिनों में इन्द्रको चतुरनिकाय के देवनि सहित नंदीश्वरद्वीपको जाते देख्या । अर देवनिके मुकुटनिकी प्रभा के समूहसे आकाशको अनेक रंगरूप ज्योति सहित देख्या । अर बाजा बजाने वालों के समूहकरि दसों दिशा शब्दरूप देखीं, किसीको किसी का शब्द सुनाई न देवै । कई एक देव मायामई हंसीनिपर तथा तुरंगनिपर तथा हंसनिपर अनेक प्रकारके वाहननिपर चढ़े जाते देखे, सो देवोंके शरीरकी सुगन्धतासे दसों दिशा व्याप्त होय गईं । तब राजा यह अद्भुत चरित्र देखि मनमें विचारी कि नन्दीश्वर द्वीपको देव जाय हैं । यह राजा हू अपने विद्याधरों सहित नन्दीश्वरद्वीपको जानेकी इच्छा करते भये । बिना विवेक विमानपर चढ़करि रानी सहित आकाशके पथ से चाले । परन्तु मानुषोत्तर के आगें इनका विमान न चल सक्या, देवता चले गए, यह अटक रहे । तब राजाने बहुत विलाप किया, मनका उत्साह भंग हो गया, कांति और ही होय गई । मनमें विचारे है कि हाय ! बड़ा खेद है, हम हीन शक्तिके धनी विद्याधर मनुष्य अभिमान कों धरें सो धिक्कार है हमको । मेरे मनमें यह हुती कि नंदीश्वर द्वीपमें भगवान के अकृत्रिम चैत्यालय हैं उनका मैं भावसहित दर्शन करूंगा अर महामनोहर नाना प्रकारके पुष्प, धूप, गंध इत्यादि अष्ट द्रव्यनिकरि पूजा करूंगा, बारम्बार धरती पर मस्तक लगाय नमस्कार करूंगा इत्यादि जे मनोरथ किये हुते ते पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मकरि मेरे मंद भागी के भाग्यमें न भये । अथवा मैंने आगैं अनेक बार यह बात सुनी हुती कि मानुषोत्तर पर्वत को उल्लंघ करि मनुष्य आगे न जाय है, तथापि अत्यन्त भक्ति रागकरि यह बात भूल गया । अब ऐसे कर्म करूं जो अन्य जन्म विषैं नंदीश्वर द्वीप जावेकी मेरी शक्ति हो, यह निश्चय करि वज्रकंठ नामा पुत्रको राज देय सर्व परिग्रह को त्यागकरि राजा श्रीकंठ मुनि भए । एकदिन वज्रकंठने अपने पिताके पूर्व भव पूछनेका अभिलाष किया । वृद्ध पुरुष वज्रकंठ को कहते भए कि जो हमको मुनियों

के इनके पूर्व भव ऐसे कहे हुवे, जो पूर्व भव में दो भाई वणिक हुवे, तिनमें प्रीति बहुत हुती सो स्त्रियोंने वे जुदे किए। तिनमें छोटा भाई दरिद्री अर बड़ा भाई धनवान् सो बड़ा भाई सेठ की संगतितें श्रावक भया अर छोटा भाई कुव्यसनी दुःखसों दिन पूरे करे। बड़े भाई ने छोटे भाई की यह दशा देखि बहुत धन दिया अर भाई को उपदेश देय व्रत लिवाए अर आप स्त्रीका त्यागकर मुनि होय समाधिमरण करि इन्द्र भए। अर छोटा भाई शान्त परिणामी होय शरीर छोड़ देव हुवा, देव से चयकरि श्रीकंठ भया। बड़े भाई का जीव इन्द्र भया था सो छोटे भाईके स्नेहतें अपना स्वरूप दिखावता संता नंदीश्वर द्वीप गया सो इन्द्रको देखि राजा श्रीकंठको जाति स्मरण हुवा सो वैरागी भए। यह अपने पिताका व्याख्यान सुन राजा वज्रकंठहू इन्द्रायुधप्रभ पुत्रको राज देय मुनि भए। अर इन्द्रायुधप्रभ भी इन्द्रभूत पुत्र कों राज्य देय मुनि भए, तिनके मेरु, मेरुके मंदिर, तिनके समीरणगति, तिनके रविप्रभ, तिनके अमरप्रभ पुत्र हुए सो लंका के धनीकी बेटी गुणवती परणी सो गुणवती राजा अमरप्रभके महलमें अनेक भांतिके चित्राम देखती भई। कहीं तो शुभ सरोवर देखे जिनमें कमल फूल रहे हैं अर भ्रमर गुंजार करै हैं। कहीं नीलकमल फूल रहे हैं, हँसके युगल क्रीड़ा कर रहे हैं, जिनकी चूंचनि में कमलनि के तंतु ऐसे हंसनिके युगल क्रीड़ा करै हैं। अर क्रौंच, सारस इत्यादि अनेक पक्षियों के चित्राम देखे सो प्रसन्न भई। अर एक ठौर पंच प्रकार के रत्नोंके चूर्णसे बानरों के स्वरूप देखे, विद्याधरों ने चितेरे हैं सो राणी बानरों के चित्राम देखि भयभीत होय कांपने लगी, रोमांच हो आए। पसेव की बूंदों से माथेका तिलक बिगड़ गया अर आंखों के तारे फिरने लगे। राजा अमरप्रभ यह वृत्तान्त देखि घरके चाकरोंसे बहुत खिजे कि मेरे विवाहमें ये चित्राम किसने कराए जो मेरी प्यारी राणी इनको देखि डरी। तब बड़े लोगों ने अरज करी कि महाराज! इसमें किसी का भी अपराध नाहीं। आपने कही जो यह चित्राम करानेहारे ते हमको विपरीत भाव दिखाया सो ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा सिवाय काम करै? सबनिके जीवनमूल आप हो, आप प्रसन्न होय करि हमारी बीनती सुनो। आगैं तुम्हारे वंशमें पृथ्वी पर प्रसिद्ध राजा श्रीकंठ भए जिनने यह स्वर्ग समान नगर बसाया अर नाना प्रकारके कौतूहल का धारणहारा जो यह देश ताके वे मूलकारण ऐसे होते भए जैसें कर्मोंका मूलकारण रागादिक प्रपंच है। बननिके मध्य लतागृह में सुखसों तिष्ठी हुई किन्नरी जिनके गुण गावै हैं अर किन्नर हू गावै हैं, इन्द्र समान जिनकी शक्ति थी ऐसे वे राजा तिन्होंने अपनी स्थिर प्रकृतितें लक्ष्मीकी चंचलता करि उपज्या जो अपयश सो दूर किया सो राजा श्रीकंठ इन बानरोंको देखकरि आश्चर्यको प्राप्त भए अर इन सहित रमें, मीठे २ भोजन इनको दिये

अर इनके चित्राम कढ़ावे। पीछे उनके वंश में जो राजा भए तिनने मंगलीक कार्यों में इनके चित्राम मँडाए अर वानरनिसों बहुत प्रीत राखी, तातैं पूर्व रीति प्रमाण अब हू लिखे हैं। ऐसा कह्या तब राजा क्रोध तजि प्रसन्न होय आज्ञा करते भये जो हमारे बड़निने मंगल कार्यमें इनके चित्राम लिखाए तो अब भूमिमें मत डारो जहाँ मनुष्यनिके पाँव लगैं, मैं इनको मुकुट विषैं राखूंगा अर ध्वजाओं में इनके चिन्ह कराओ अर महलों के शिखर तथा छत्रोंके शिखर पर इनके चिन्ह कराओ। यह आज्ञा मंत्रियोंको करी सो मंत्रियों ने उसही भाँति किया। राजा ने गुणवती राणी सहित परम सुख भोगते हुए विजयार्धकी दोऊ श्रेणीके जीतने का मन किया। बड़ी चतुरंग सेना लेकर विजयार्ध गये। राजाकी ध्वजाओंमें अर मुकुटों में कपिनिके चिन्ह हैं। राजाने विजयार्ध जायकरि दोऊ श्रेणी जीतकर सब राजा वश किए। सर्वदेश अपनी आज्ञा में किए। किसी का भी धन न लिया। जो बड़े पुरुष हैं तिनका यह नियम है जो राजानिको नवावैं, अपनी आज्ञा में करैं, किसी का धन न हरैं। सो राजा सब विद्याधरनिकों आज्ञा में करि पीछे किहकूपुर आए। विजयार्ध के बड़े २ राजा साथ आए। सब विद्याधरों का अधिपति होय घनें दिनतक राज्य किया। लक्ष्मी चंचल हुती सो नीतिकी बेड़ी डालि निश्चल करी। तिनके पुत्र कपिकेतु भए जिनके श्रीप्रभा राणी बहुत गुणकी धरणहारी भई। ते राजा कपिकेतु अपने पुत्र विक्रमसंपन्नको राज्य देय वैरागी भए अर विक्रमसम्पन्न प्रतिबल पुत्रको राज्य देय वैरागी भए। यह राज्य लक्ष्मी विष की बेलि के समान जानो। बड़े पुरुषों के पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभाव करि यह लक्ष्मी बिना ही यत्न मिलै है परन्तु उनके लक्ष्मीमें विशेष प्रीति नाहीं। लक्ष्मी को तजते खेद नाहीं होय है। किसी पुण्यके प्रभावकरि राज्यलक्ष्मी पाय देवों के सुख भोग फिर वैराग्य को प्राप्त होय करि परमपद को प्राप्त होय है। मोक्षका अविनाशी सुख उपकरणादि सामग्री के आधीन नाहीं, निरन्तर आत्माधीन है। वह महासुख अंत रहित है अविनश्वर है। ऐसे सुखको कौन न वांछै? राजा प्रतिबल के गगनानंद पुत्र भए, तिनके खेचरानन्द, उनके गिरिनन्द। या भाँति वानरवंशियों के वंश में अनेक राजा भये जो राज्यतजि वैराग्य धर स्वर्ग मोक्ष को प्राप्त भए। इस वंश के समस्त राजाओं के नाम अर पराक्रम कौन कह सकै। जिसका जैसा लक्षण होय सो तैसा ही कहावै। सेवा करै सो सेवक कहावै, धनुष धारै सो धनुषधारी कहावै, पर की पीड़ा टालै सो शरणागति प्रतिपाल होय क्षत्री कहावै, ब्रह्मचर्य पालै सो ब्राह्मण कहावै, जो राजा राज्य तजिकर मुनि होय सो मुनि कहावै, श्रम कहिये तप धारै सो श्रमण कहावै। यह बात प्रगट ही है लाठी राखै सो लाठीवाला कहावै, तैसे राखै सो तेलवाला कहावै, तैसें यह विद्याधर छत्र ध्वजाओं पर वानरों के चिन्ह राखते भये तातें वानरवंशी कहाए। भगवान श्रीवासुपूज्यके समय राजा अमरप्रभ भए

तिनने बानरों के चिन्ह मुकुट छत्र ध्वजानिमें बनाए, तबतें इनके कुलमें यह रीतिचली आई। या भाँति संक्षेपतें बानरवंशीनिकी उत्पत्ति कही।

अथानन्तर या कुल विषें महोदधि नामा राजा भये। जिनके विद्युतप्रकाश नामा राणी भई, वह राणी पतिव्रता स्त्रियों के गुणनिकी निधान है। जिसने अपने विनय अंग-करि पति का मन प्रसन्न किया है। राजा के सुन्दर सैकड़ों रानी हैं, तिनकी यह रानी शिरोभाग्य है। महा सौभाग्यवती रूपवती ज्ञानवती है, तिस राजा के महापराक्रमी एकसौ आठ पुत्र भये, तिनको राज्यका भार देय राजा महासुख भोगते भए। मुनिसुव्रतनाथ के समय में बानरवंशीनिमें यह राजा महोदधि भये अर लंका में विद्युतकेशके अर महोदधिके परम प्रीति भई। कैसे हैं ये दोऊ सकल प्राणियों के प्यारे अर आपस में एक चित्त, देह न्यारी भई तो कहा। सो विद्युतकेश मुनि भये, यह वृत्तान्त सुन महोदधि भी वैरागी भये। यह कथा सुन राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसौं पूछी "हे स्वामी! राजा विद्युतकेश किस कारणसे वैरागी भये। तब गौतम स्वामी ने कहा कि एक दिन विद्युतकेश प्रमदा-नामा उद्यानमें क्रीडा करने को गये। कैसा है उद्यान जहाँ क्रीडा के निवास अति सुन्दर हैं, निर्मल जलके भरे सरोवर हैं, तिनमें कमल फूल रहे हैं अर सरोवरनिमें नाव डारि राखी हैं। बनमें ठौर ठौर हिंडोले हैं। सुन्दर वृक्ष, सुन्दर बेल अर क्रीडा करनेके सुवर्ण के पर्वत हैं, जिनके रत्नोंके सिवाण अर वृक्ष मनोज्ञ फल फूलनिकरि मंडित जिनके पल्लवसौं हालती लता अति शोभै हैं अर लताओंसे लिपट रहे हैं ऐसे बनमें राजा विद्युतकेश राणियोंके समूह विषें क्रीडा करते भए। कैसी है वह राणी मन की हरणहारी, पुष्पादिक के चूटनेमें आसक्त है, जिसके पल्लव समान कोमल सुगंध हस्त अर मुखकी सुगन्ध करि भ्रमर जिन-पर भ्रमै हैं। क्रीड़ाके समय राणी श्रीचन्द्राके कुच एक बानर ने नखनितें विदारे तब रानी खेद खिन्न भई। रुधिर आय गया। राजाने रानी को दिलासा देय करि अज्ञानभावतें बानरको बाणतें बींध्या, सो बानर घायल होय एक गगनचारण महामुनिके पास जाय पड्या। वे दयालु बानरको कांपता देखि दयाकरि पंच णमोकार मन्त्र देते भए सो बानर मर करि उदधिकुमार जातिका भवनवासी देव उपज्या। यहाँ बनमें बानरके मरण पीछैं राजाके लोक अन्य बानरोंको मार रहे थे सो उदधिकुमारने अवधिसे विचारकर बानरों को मारते जान मायामई बानरों की सेना बनाई। वे बानर ऐसे बने जिनकी दाढ़ विकराल, बदन विकराल, भौंह विकराल, सिन्दूर सारिखा लाल मुखसौं डराने वाले शब्दको कहते हुए आये। कैएक हाथ में पर्वत धरे, कैएक मूल से उपारि वृक्षों को धरे, कैएक हाथनिसौं धरती कूटते संते, कईएक आकाश में उछलते संते, क्रोधके भारकरि रौद्र है अंग जिनका,

उन्होंने आय राजाको घेर्या अर कहते भये। अरे दुराचारी सम्हार, तेरी मृत्यु आई है, तू बानरोंकूं मार करि अब किसकी शरण जायगा ?

तब विद्युत्केश डर्या अर जान्या कि यह बानरों का बल नाहीं, देव माया है, तब देह की आशा छोड़ि महामिष्ट वाणी करके विनती करता भया कि—"महाराज! आज्ञा करो, आप कौन हो? महादेदीप्यमान प्रचंड शरीर जिनके, यह बानरनि की शक्ति नाहीं। आप देव हैं।" तब राजा को अति विनयवान देखि महोदधिकुमार बोले "हे राजा! बानर पशु जाति जिनका स्वभाव ही अति चंचल है, उनको तैंने स्त्री के अपराधसौं हते सो मैं साधुके प्रसादसे देव भया। मेरी विभूति तू देखि।" राजा कांपने लग्या, हृदय विषैं भय उपज्या, रोमांच होय आए। तब महोदधिकुमार ने कही- "तू मत डर।" तब इसने कहा कि "जो आप आज्ञा करो सो करूं।" तब देव इसको गुरु के निकट लेय गया। वह देव अर राजा ये दोनों मुनिकी प्रदक्षिणा देय नमस्कार करि जाय बैठे। देवने मुनि सों कही कि "मैं बानर हुता सो आपके प्रसादतैं देव भया। अर राजा विद्युत्केश ने मुनिसौं पूछ्या कि मेरा क्या कर्तव्य है, मेरा कल्याण किस तरह होय? तब तपोधन मुनि जो चार ज्ञान के धारक हुते कहते भए कि हमारे गुरु निकट ही हैं उनके समीप चालो। अनादि कालका यही नियम है कि गुरुओं के निकट जाय धर्म सुनिये। आचार्यनिके होते सन्ते जो उनके निकट न जाय अर शिष्य ही धर्मोपदेश देय तो वह शिष्य नाहीं, कुमार्गी है, आचारतें भ्रष्ट है। ऐसा तपोधन ने कहा। तब देव अर विद्याधर चित्तमें चितवते भये कि ऐसे महा पुरुष हैं ते भी गुरुकी आज्ञा बिना उपदेश नाहीं करै हैं। अहो! तप का माहात्म्य अति अधिक है। मुनिकी आज्ञा से वह देव अर विद्याधर मुनिके लार उनके गुरुपै गये। तहां जाय करि तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कार करि गुरुके निकट, न अति नीरें, न अति दूर बैठे। महामुनि की मूर्ति देख देव अर विद्याधर आश्चर्यको प्राप्त भए। कैसी है महामुनि की मूर्ति, तपकी राशिकर उपजी जो दीप्ति ताकरि देदीप्यमान है। देखिकरि नेत्र कमल फूल गये। महा विनयवान होय देव अर विद्याधर धर्मका स्वरूप पूछते भये।

कैसे हैं मुनि जिनका मन प्राणियोंके हितमें सावधान है अर रागादिक जो संसार के कारण हैं तिनके प्रसंग से दूर हैं। जैसें मेघ गम्भीर ध्वनि करि गर्जे अर बरसै तैसें महा-गम्भीर ध्वनिकरि जगतके कल्याणके निमित्त परम धर्मरूप अमृत बरसावते भए। जब मुनि ज्ञानका व्याख्यान करने लगे तब मेघकासा नाद (शब्द) जान लताओंके मंडपमें जो मयूर तिष्ठे थे वे नृत्य करते भए। मुनि कहते भए—अहो देव विद्याधरो! तुम चित्त लगाय सुनो। तीन भवका आनन्द करणहारे श्रीजिनराजने जो धर्मका स्वरूप कहा है

सो मैं तुमको कहूं हूं। कईएक जो प्राणी नीच बुद्धि हैं—विचार रहित जड़चित्त हैं, ते अधर्म ही को धर्म जान सेवै हैं। जो मार्गको न जानैं सो घने कालमें भी मनवांछित स्थानको न पहुंचें। मंदमति मिथ्यादृष्टि विषयाभिलाषी जीव हिंसा करि उपज्या जो अधर्म ताको धर्म जान सेवै हैं, ते नरक निगोद के दुख भोगवैं हैं। जे अज्ञानी खोटे दृष्टांतनिके समूह करि भरे महापापनिके पुंज मिथ्या ग्रंथोंके अर्थ तिनकर धर्म जान प्राणिघात करै हैं ते अनन्त संसार भ्रमण करैं हैं। जे अधर्म चर्चा करके वृथा बकवाद करै हैं ते दंडों से आकाश को कूटै हैं सो कैसें कूटा जाय ? जो कदाचित् मिथ्यादृष्टियों के कायक्लेशादि तप होय अर शब्द ज्ञान भी होय तो भी मुक्तिका कारण नाहीं, सम्यग्दर्शन बिना जो जानपना है सो ज्ञान नाहीं अर जो आचरण है सो कुचारित्र है। मिथ्यादृष्टीनिका जो तपव्रत है सो पाषाण बराबर है अर ज्ञानी पुरुषों का जो तप है वह सूर्यमणि समान है। धर्म का मूल जीवदया है अर दया का मूल कोमल परिणाम हैं, सो कोमल परिणाम दुष्टोंके कैसैं होय ? अर परिग्रहधारी पुरुषनिकों आरम्भ करि हिंसा अवश्य होय है तातैं दया के निमित्त परग्रह आरम्भ तजना चाहिए। तथा सत्य वचन धर्म है परन्तु जिस सत्यसे परजीवको पीड़ा होय सो सत्य नाहीं, झूठ ही है। अर चोरी का त्याग करना, परनारी तजनी, परिग्रहका परिमाण करना, सन्तोष व्रत धरना, इन्द्रिय के विषय निवारना, कषाय क्षीण करने, देवगुरु धर्म का विनय करना, निरन्तर ज्ञानका उपयोग राखना, ये सम्यग्दृष्टि श्रावकोंके व्रत तुझे कहे। अब घरके त्यागी मुनियोंका धर्म सुनो। सर्व आरम्भका परित्याग, दसलक्षण धर्मका धारण, सम्यग्दर्शनकरि युक्त महाज्ञान वैराग्यरूप यतिका मार्ग है। महामुनि पंच महाव्रतरूप हाथी के कांधे चढ़ें हैं अर तीन गुप्तिरूप दृढ़ बखतर पहरें हैं अर पांच समितिरूप पयादों से संयुक्त हैं, नाना प्रकार तपरूप तीक्ष्ण शस्त्रों से मंडित हैं अर चित्तके आनंद करणहारे हैं, ऐसे दिगम्बर मुनिराज कालरूप वैरी कों जीतै हैं। वह कालरूप वैरी मोहरूप मस्त हाथी पर चढ़ा है अर कषायरूप सामन्तों से मंडित है। यतीका धर्म परमनिर्वाणका कारण है, महामंगलरूप है, उत्तम पुरुषनिकरि सेवने योग्य है। अर श्रावक का धर्म तो साक्षात् स्वर्ग का कारण है अर परंपराय मोक्षका कारण है। स्वर्ग में देवों के समूह के मध्य तिष्ठता मनवांछित इन्द्रियों के सुखको भोगै है अर मुनिके धर्मसे कर्म काट मोक्षके अतींद्रिय सुखको पावै है, अतींद्रिय सुख सर्व बाधा रहित अनुपम है जिसका अन्त नाहीं, अविनाशी है। श्रावक के व्रतकरि स्वर्ग जाय तहांतैं चय मनुष्य होय मुनिराज के व्रत धरि परमपदको पावै है। अर मिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् तपकरि स्वर्ग जाय तो चयकरि एकेन्द्रियादिक योनिविषैं आनकर प्राप्त होय है, अनंत संसार भ्रमण करै है। तातैं जैन ही परम धर्म है अर जैन ही परम तप है, जैन ही

सम्यग्दर्शन मत है। जिनराजके वचन ही सार हैं। जिन शासनके मार्गसे जो जीव मोक्ष प्राप्त होनेको उद्यमी हुआ तजवें को भव धरने पड़ें तो देव विद्याधर राजानिके भव सो बिना चाहे सहज ही होय हैं। जैसें खेतीके करणहारे का उद्यम धान्य उपजानेका है; घास, कबाड़, पराल इत्यादि सहज ही होय हैं। अर जैसें कोऊ पुरुष नगरको जाय्या ताको मार्ग में वृक्षादिक का संगम खेदका निवारण है तैसें ही शिवपुरीको उद्यमी भए जे महामुनि तिनको इन्द्रादि पद शुभोपयोगके कारण से होय हैं। मुनि का मन तिनमें नाहीं, शुद्धोपयोगके प्रभावसे सिद्ध होनेका उपाय है तथा श्रावक अर जैनके धर्मसे जो विपरीत मार्ग है सो अधर्म जानना जिससे यह जीव नाना प्रकार कुगति में दुःख भोगै है। तिर्यंच योनि में मारण ताडन, छेदन, भेदन, शीत, उष्ण, भूख, प्यास इत्यादि नाना प्रकार के दुःख भोगै है अर सदा अन्धकारसूं भरे जे नरक तिनविषें अत्यन्त उष्ण शीत महा विकराल पवन जहां अग्निके कण बरसे हैं, नाना प्रकारके भयंकर शब्द जहां नारकियों को घानी में पेलें हैं, करोंतैसे चीरें हैं। जहां भयकारी शाल्मली वृक्षों के पत्र चक्र खड्ग सेल समान हैं तिन करि तिनके तन खंड खंड होय हैं। जहां तांबा शीशा गालकर मदिरा के पीवनहारे पापियों को प्यावैं हैं अर मांस भक्षियों को तिनहीके मांस काट काट उनके मुखमें देवें हैं अर लोहे के तप्त गोलें संडासानिसूं मुख फाड़-फाड़ जोरावरी से मुखमें देवें हैं अर परदारासंगम करनहारे पापियोंको ताती लोहेकी पुतलियों से चिपटावे हैं। जहां मायामई सिंह, व्याघ्र, स्याल इत्यादि अनेक प्रकार बाधा करें हैं अर जहाँ मायामई दुष्ट पक्षी तीक्ष्ण चोंच से चूटें हैं। नारकी सागरों की आयु पर्यन्त नाना प्रकार के दुःख, त्रास, मार भोगवे हैं। मारवे मरैं नाहीं, आयु पूर्ण कर ही मरैं हैं। परस्पर अनेक बाधा करें हैं अर जहां मायामयी मक्षिका अर मायामयी कृमि जिनके सुई समान तीक्ष्ण मुख तिनकूं चूंटें हैं। ये सर्व मायामयी जानने और पशु पक्षी तथा विकलत्रय तहाँ नाहीं, नारकी जीव ही हैं तथा पंच प्रकारके स्थावर सर्वत्र ही हैं। महामुनि देव विद्याधरनसूं कहे हैं कि नरकनिविषें जो दुःख जीव भोगवें हैं ताके कहिवेको कौन समर्थ है? तुम दोऊ कुगति में बहुत भ्रमे हो, ऐसा मुनि ने कहा, तब वे दोऊ अपना पूर्वभव पूछते भए। सो मुनि कहें हैं। कैसे हैं मुनि? संयम ही है भूषण जिनका। अहो! तुम मन लगाय सुनो—यह दुःखदाई संसार ताविषें तुम मोहकर उन्मत्त होयकरि परस्पर द्वेष धरते आपसमें मरण मारण करते अनेक कुयोनिविषें प्राप्त भए, कर्मयोगतें मनुष्य भव पाया तिनमें एक तो काशी नामादेशविषें पारधी भया, दूजा श्रावस्ती नामा नगरी में राजाका सुयशोदत्त नामा मन्त्री भया। सो गृह त्याग कर मुनि भया, महा तप करि युक्त अति रूपवान पृथ्वीविषें विहार करै। सो एक दिन काशी

है तिनविषै जीव जन्तु रहित पवित्र स्थानकविषै मुनि विराजे हुते अर श्रावक श्राविका अनेक जन दर्शनकूं आए हुते, सो वह पापी पारधी मुनिको देख तीक्ष्ण वचनरूप शस्त्रनि मुनिकूं बींधता भया, यह विचार कर कि यह निर्लज्ज मार्ग भ्रष्ट स्नानरहित मलीन मुझकूं शिकार विषै प्रवर्तितेकूं यहा अमंगलरूप भया है। ये वचन पारधीने कहे तब मुनि के ध्यानका विघ्न करणहारा संक्लेश भाव उपज्या, फिर मन में विचारी कि मैं मुनि भया सो मोकूं क्लेशरूप भाव कर्त्तव्य नाहीं, ऐसा क्रोध उपजै है जो एक मुष्टि प्रहार कर इस पापी पारधी को चूर्ण कर डारूं। सो तपश्चरण के प्रभावतैं मुनि के अष्टम स्वर्ग जाइवेकूं जो पुण्य उपज्या था सो क्रोध कषाय के योगतैं क्षीण होय मरकर ज्योतिषी देव भया, तहांतैं चय कर तू विद्युतकेश विद्याधर भया अर वह पारधी बहुत संसार भ्रमण कर लंका के प्रमद नामा उद्यान विषै बानर भया सो तूने स्त्रीके अर्थि बाण करि मार्‌या सो बहुत अयोग्य कार्य किया। पशु का अपराध सामन्तों को लेना योग्य नाहीं। सो वह बानर नवकार मंत्र के प्रभावतैं उदधिकुमार देव भया।

ऐसा जानकर हे विद्याधरो! तुम वैरका त्याग करो, जातैं या संसार बन विषै तुम्हारा भ्रमण होय रह्या है। जो तुम सिद्धों के सुख चाहो हो तो राग द्वेष मत करो। सिद्धोंके सुखोंका मनुष्य अर देवोंसे वर्णन न होय सकै, अनन्त अपार सुख है। जो तुम मोक्षाभिलाषी हो अर भले आचारकरि युक्त हो, तो श्रीमुनिसुव्रतनाथकी शरण लेहु। कैसे हैं मुनिसुव्रत! परमभक्ति से युक्त इन्द्रादिक देव भी तिनको नमस्कार करै हैं, इन्द्र अहमिंद्र लोकपाल सब तिनके दासनि के दास हैं, वे त्रिलोकीनाथ हैं तिनकी तुम शरण लेयकर परम कल्याणकूं प्राप्त होवोगे, कैसे हैं वे भगवान 'ईश्वर' कहिए समर्थ हैं, सर्व अर्थपूर्ण हैं, कृतकृत्य हैं, ये जो मुनि के वचन तेई भई सूर्यकी किरण तिनकरि विद्युतकेश विद्याधर का मन कमलवत् फूल्या, सुकेशनामा पुत्रकों राज्य देय मुनिके शिष्य भए। कैसे हैं राजा–महाधीर हैं, सम्यकदर्शनज्ञानचारित्र का आराधन करि उत्तमदेव भए। किहकुपुरके स्वामी राजा महोदधि विद्याधर बानरवंशीनिके अधिपति चन्द्रकांतमणियोंके महल ऊपर विराजे, अमृतरूप सुन्दर चर्चाकर इन्द्रसमान सुख भोगते भए, तिनपै एक विद्याधर श्वेत वस्त्र पहरे शीघ्र आय नमस्कार कहता भया कि हे प्रभो! राजा विद्युतकेश मुनि होय स्वर्ग सिधारे। यह वार्ता सुनकर राजा महोदधि भी भोगभावतैं विरक्त होय जैनदीक्षा विषै बुद्धि धरी अरए वचन कहे कि मैं भी तपोवनकूं जाऊंगा। ये वचन सुनकरि राजलोकमंदिर में विलाप करते भए, सो विलापकरि महल गूंजि उठ्या। कैसे हैं राजलोक? वीणा बांसुरी मृदंगकी ध्वनि समान है शब्द जिनके अर युवराज भी आयकर राजासौं वीनती करता

कथा कि—राजा विद्युत्केश का अर अपना एक व्यवहार है, राजा ने बालक पुत्र सुकेश को राज्य दिया है सो तिहारे भरोसे दिया है सो सुकेश के राज्य की दृढ़ता तुमकूं राखनी। जैसा उनका पुत्र तैसा तिहारा, तातैं कईएक दिन आप वैराग्य न धारें। आप नवयौवन हो, इन्द्रकेसे भोगनि करि यह निष्कंटक राज्य भोगो। या भांति युवराजने बीनती करी अर अश्रुपातनिकी वर्षा करी तौ भी राजा के मनमें न आई। अर महालय के मेला मंत्रीने भी अति दीन होय बहुत बीनती करी—हे नाथ ! हम अनाथ हैं, जैसें बेल वृक्षनिसौं लगि रही हैं तैसें हम तुम्हारे चरननिसे लगि रहे हैं, तुम्हारे मनमें हमारा मन तिष्ठै है सो हमको छांड़िकर जाना योग्य नाहीं। या भांति बहुत बीनती करी, तौ हू राजा न मानी अर रानी ने बहुत बीनती करी, चरणों में लोट गई, बहुत अश्रुपात डारे। कैसी है रानी गुणनिके समूह करि राजा की प्यारी हुती सो विरक्तभावकरि राजा ने नीरस देखी। तब रानी कहै है कि हे नाथ ! हम तिहारे गुणनिकरि बहुत दिननिकी बंधी अर तुम हमको बहुत लड़ाई, महालक्ष्मी समान हमको मायाकरि राखी, अब स्नेहपाश तोड़ि कहां जावो हो इत्यादि अनेक बात करी, सो राजा चित्त में न धरी अर राजा के बड़े २ सामन्तनि हू ने बीनती करी कि—हे देव ! या नवयौवन में राज छांड़ि कहां जावो हो ? सबनितें मोह क्यों तज्या इत्यादि अनेक नेहके वचन कहे परन्तु राजा ने काहुकी न सुनी। स्नेहपाश छेदि सर्वपरिग्रह का त्यागकरि प्रतिचन्द्र पुत्रको राज्य देय आप अपने शरीरहूतैं भी उदास होय दिगम्बरी दीक्षा आदरी। कैसे हैं राजा ? पूर्ण है बुद्धि जिनकी, महा धीर वीर, पृथ्वी पर चन्द्रमा समान उज्ज्वल है कीर्ति जाकी, सो ध्यानरूप गज पर चढ़करि तपरूपी तीक्ष्णशस्त्रकरि कर्मरूपशत्रुकौं काट सिद्धपदकों प्राप्त भये। प्रतिचन्द्र भी कैएक दिन राजकर अपने पुत्र किहकन्धको राज्य देय अर छोटे पुत्र अन्ध्रकरूढ़को युवराजपद देय आप दिगम्बर होय शुक्लध्यान के प्रभावकरि सिद्ध स्थानकों प्राप्त भये।

अथानन्तर राजा किहकन्ध अर अन्ध्रकरूढ़ दोऊ भाई चांद सूर्य समान औरों के तेजकों दाबिकरि पृथ्वीपर प्रकाश करते भए। तासमय विजयार्धपर्वतकी दक्षिण श्रेणी-विषैं रथनूपुर नामा नगर सुरपुर समान, तहां राजा अशनिवेग महापराक्रमी दोऊ श्रेणी के स्वामी जिनकी कीर्ति शत्रुनिका मान हरनहारी, तिनके पुत्र विजयसिंह महारूपवान ते आदित्यपुरके राजा विद्यामंदिर विद्याधर, ताकी रानी वेगवती, ताकी पुत्री श्रीमाला ताके विवाह निमित्त जो स्वयंवर मंडप रचा हुता अर अनेक विद्याधर आये हुते, तहां पधारे। कैसी है श्रीमाला जाकी कांतिकर आकाशविषैं प्रकाश होय रहा है, सकल विद्याधर सिंहासन पर बैठे। बड़े २ राजानिके कुंवर थोड़े २ साथसों तिष्ठें हैं, सबनिकी दृष्टि

सोई भई नील कमलनिकी पांती सो श्रीमाला के ऊपर पड़ी। कैसी है श्रीमाला? किसी से भी रागद्वेष नाहीं, मध्यस्थ परिणाम हैं अर ते विद्याधरकुमार मदनकरि तप्त है, चित्त जिनका ते अनेक सविकार चेष्टा करते भए। केएक तो माथे का मुकुट निकम्प था तो भी सुन्दर हाथनिकरि ठीक करते भए। कैएक खंजर निकारे हुतें, तो भी कर के अग्रभागसों हिलावतें भए। कटाक्षनिकरि करी है दृष्टि जिन्होंने अर कैएकके किनारे मनुष्य चमर ढारते हुते अर बीजना करतें हुते तौभी लीलासहित महासुन्दर रूमालसे अपने मुखको वयार करते भये अर कैएक वाम चरण पर दाहिना पांव मेलते भये। कैसे हैं राजानिके पुत्र—सुन्दर है रूप जिनका, नवयौवन हैं, काम कलाविषें निपुण हैं। दृष्टि तो कन्या की ओर अर पग के अंगुष्ठसों सिंहासनपर किछु लिखते भए अर कैएक महामणियों के समूहकरि युक्त जो सूत्र कटिमें गाढा बंध्या हुता तौभी उसे संवार गाढा बांधते भए अर कैएक चंचल हैं नेत्र जिनके, निकटवर्तीनितें केलि कथा करतें भए, केएक अपने सुन्दर कुटिल केशनिकों संभारते भए। कैएक जापर भंवरनिके समूह गुंजार करै हैं ऐसे कमल को दाहिने हाथसों फिरावते भए, मकरंदकी रज विस्तारते भए इत्यादि अनेक चेष्टा राजानिके पुत्र स्वयंवर मंडप विषें करतें भये। कैसा है स्वयंवर मंडप, जाविषें बीन बांसुरी मृदंग नगारे इत्यादि अनेक बाजे बाज रहे हैं अर अनेक मंगलाचरण होय रहे हैं अर जहां बन्दीजननिके समूह सत्पुरुषनिके अनेक शुभ चरित्र वर्णन करै हैं, स्वयंवर मंडप विषें सुमंगला नामा धाय जाके एक हाथमें स्वर्णकी छड़ी, एक हाथमें बेतकी छड़ी, कन्या को हाथ जोड़ महा विनय कहती भई। कन्या नानाप्रकार के मणिभूषणनिकरि साक्षात् कल्पबेल समान है। हे पुत्री! यह मार्तंडकुण्डल नामा कुंवर नभस्तिलक के राजा चन्द्र-कुण्डल रानी विमला तिनका पुत्र है, अपनी कांतिकरि सूर्यको भी जीतनहारा अति रम-णीक है अर गुणनिका मण्डन है, या सहित रमवेकी इच्छा है तो याकूं वर, कैसा है यह, शस्त्र शास्त्र विद्या में निपुण है। तब यह कन्या याकों देख यौवनसों कछुइक चिग्या जानि आगें चाली। बहुरि धाय बोली, हे कन्या! यह रत्नपुर का राजा विद्यांग रानी लक्ष्मी तिनका पुत्र विद्यासमुद्रघात नामा बहुत विद्याधरोंका अधिपति है, याका नाम सुन वैरी ऐसा कांपे जैसे पीपलका पात पवनसों कांपे। महामनोहर हारों से युक्त याका सुन्दर वृक्षस्थल ताविषें लक्ष्मी निवास करै हैं, तेरी इच्छा होय तो याको वर, तब याकों भी सरलदृष्टि करि देख आगें चाली। बहुरि धाय बोली, कैसी है धाय, कन्या के अभिप्राय की जाननहारी, हे सुते! यह इन्द्र सारिखा राजा वज्रशीलका कुंवरखेचरभानु वज्रपंजर नग-रका अधिपति, याकी दोऊभुजानिविषें राज्यलक्ष्मी चंचल है तो हू निश्चल तिष्ठै है, याकूं देख-करि अन्य विद्याधर आगिया समान भासै है, यह सूर्यसमान भासै है इकतो मानकरि याका माथा

ऊँचा है ही अर रत्ननिके मुकुटकरि अति ही शोभै है, तेरी इच्छा है तो याके कण्ठविषैं माला डारि, तब यह कन्या कुमदनी समान खेचर भानुको देख सकुच गई, आगे चाली। तब धाय बोली हे कुमारी ! यह राजा चन्द्रानन चन्द्रपुर का धनी राजा चित्रांगद रानी पद्मश्री का पुत्र याका वक्षस्थल महा सुन्दर चन्दनकरि चर्चित है, जैसें कैलाश का तट चन्द्रकिरणकरि शोभै तैसें शोभै है। उछले है किरणोंके समूह जाविषैं ऐसा मोतियों का हार याके उर विषैं शोभै है। जैसें कैलाशपर्वत उछलते हुए निझरनोंके समूह करि शोभै है, याके नामके अक्षरकरि वैरीनिका हू मन परम आनन्दकूं प्राप्त होय है अर दुःख आताप करि रहित होय है। धाय श्रीमाला सों कहै है—हे सोम्यदर्शने ! कहिये सुखकारी है दर्शन जाका, ऐसी जो तू सो तेरा चित्त याविषै प्रसन्न होय तो जैसै रात्रि चन्द्रमातें संयुक्त होय प्रकाश करै है तैसें याके संगम करि आल्हादकूं प्राप्त होहु। तब या विषैं भी याका मन प्रीति को न प्राप्त भया। जैसें चन्द्रमा नेत्रनिकों आनन्दकारी है तथापि कमलनिकी या विषैं प्रसन्नता नाहीं। बहुरि धाय बोली—हे कन्ये ! मन्दरकुंज नगरका स्वामी राजा मेरुकान्त रानी श्रीरम्भाका पुत्र पुरन्दर मानों पृथ्वीपर इन्द्र ही अवतर्‌या है, मेघ समान है ध्वनि जाकी अर संग्राम विषैं जाकी दृष्टि शत्रु सहारवे समर्थ नाहीं, तौ ताके बाणनि की चोट कौन सहारै ? देव भी यासों युद्ध करवेको समर्थ नाहीं तो मनुष्यनिकी कहा बात ? अति उन्नत याका सिर सो तू पायनि पर माला डारि, ऐसा कह्या तौ भी याके मनमें न आया, क्योंकि चित्तकी प्रवृत्ति विचित्र है। बहुरि धाय कहती भई—हे पुत्री ! नाकार्ध नाम नगर का रक्षक राजा मनोजव रानी वेगिनी तिनका पुत्र महाबल सभारूप सरोवर-विषैं कमल समान फूल रह्या है अर याके गुण बहुत हैं, गिनने में आवैं नाहीं, यह ऐसा बलवान है जो अपनी भौंह टेढ़ी करने करिही पृथ्वी मण्डलकों वश करै है अर विद्या-बलकरि आकाशविषैं नगर बसावै हैं अर सर्व ग्रहनक्षत्रादिककों पृथ्वीतलपर दिखावै हैं। चाहै तौ एक और नवा लोक बसावै, इच्छा करै तौ सूर्य को चन्द्रमा समान शीतल करै, पर्वत चूर डारै, पवनकों थांभै, जलका स्थलकरि डारै स्थलका जलकरि डारै इत्यादि याके विद्या-बल वर्णन किये तथापि याका मन यावविषैं अनुरागी न भया अर और भी अनेक विद्याधर धायने दिखाये सो कन्याने दृष्टिमें न धरे, तिनकों उलंघि आगे चाली जैसें चन्द्रमा की किरण पर्वतनिको उलंघै, ते पर्वत श्याम होय जाय तैसें जिन विद्याधरनिकों उलंघि यह आगै गई तिनका मुख श्याम होय गया। सब विद्याधरनिकों उलंघिकरि याकी दृष्टि किहकंध-कुमारविषैं गई ताके कण्ठमें वरमाला डारी तब विजयसिंह विद्याधरकी दृष्टि क्रोधकी भरी किहकन्ध अर अंध्रक दोऊ भाईनिपर पई। कैसा है विजयसिंह ? विद्याबलकरि

गर्वित है सो किहकन्ध अर अंध्रक को कहता भया कि यह विद्याधरों का समाज तहां तुम वानर कौन अर्थ आये ? विरूप है दर्शन तुम्हारा, क्षुद्र कहिये तुच्छ हो, कैसे हो तुम विनयरहित हो, या स्थान विषैं फलों से नम्रीभूत जे वृक्ष तिनकरि संयुक्त कोई रमणीक वन नाहीं अर गिरिनिकी सुन्दर गुफा नीझरणीकी धरणहारी जहाँ वानरों के समूह क्रीड़ा करें सो नाहीं। लालमुखके वानरो ! तुमको इहाँ कौनने बुलाया ? जो नीच दूत तुम्हारे बुलावने कों गया होय ताका निपात करूं; अपने चाकरनिकों कही कि इनको इहांतैं निकाल देवो, ये वृथा ही विद्याधर कहावें हैं।

ये शब्द सुनकरि किहकंध अर अंध्रक दोनों भाई वानरध्वज महाक्रोध कों प्राप्त भए जैसें हथिनिपर सिंह कोप करै अर तिनकी समस्त सेनाके लोक अपने स्वामियोंका अपवाद सुनि विशेष क्रोधको प्राप्त भए। कईएक सामंत अपने दाहिने हाथपरि बावें भुजाका स्पर्श करि शब्द करते भए अर कईएक क्रोधके आवेशकरि लाल भए हैं नेत्र जिनके, कैसे हैं सामंतनिके नेत्र मानों प्रलयकालके उल्कापात ही हैं, महाकोपको प्राप्त भए। कईएक पृथ्वीविषैं दृढ बांधी है जड़ जिनकी ऐसे वृक्षनिकों उखाड़ते भए, कैसे हैं वृक्ष, फल अर पल्लवनिकूं धरै हैं। कईएक थंभ उखाड़ते भए अर कईएक सामंतोंके अगले घाव-भी क्रोधकरि फट गए तिनमेंसैं रुधिरकी धारा निकसती भई सो मानो उत्पातके मेघही बरसै हैं। कईएक गाजते भए तो दसोंदिशा शब्दकर पूरित भई अर कईएक योधा सिरके केश विकरालते भए मानों रात्रि ही होय गई इत्यादि अपूर्व चेष्टाओं से वानरवंशी विद्याधरनिकी सेना समस्त विद्याधरनि के मारने को उद्यमी भई, हाथिन से हाथी, घोड़ानितैं घोड़े, रथनितैं रथ युद्ध करते भए। दोनों सेनाविषैं महायुद्ध प्रवर्त्या, आकाशमें देव कौतुक देखते भए। यह युद्धकी वार्ता सुनकर राक्षसवंशी विद्याधरनिके अधिपति राजा सुकेश लंकाके धनी वानरवंशियों की सहायताको आए। राजा सुकेश किहकंध अर अंध्रकके परम मित्र हैं मानों इनके मनोरथ को ही आये हैं। जैसें भरत चक्रवर्ती के समय राजा अकंपनकी पुत्री सुलोचना के निमित्त अर्ककीर्ति जयकुमारका युद्ध भया हुता तैसा यह युद्ध भया। यह स्त्री ही युद्धका मूलकारण है। विजयसिंहके अर राक्षसवंशी वानरवंशीनिके महायुद्ध भया ता समय किहकंध कन्याकूं लें गया अर छोटे भाई अंध्रकने खड़गकरि विजयसिंहका सिर काट्या। एक विजयसिंहके बिना ताकी सर्व सेना बिखर गई जैसें एक आत्मा बिना सर्वइन्द्रियों के समूह विघटि जांय। तब राजा अशनिवेग विजयसिंहका पिता अपने पुत्र का मरण सुनकरि शोक करि मुर्छाकों प्राप्त भया। अपनी स्त्रियों के नेत्रके जलकरि सींचा है वक्षस्थल जाका सो घनी वेर में मूर्छा

से प्रबोधकूं प्राप्त भया, पुत्र के बैरकरि शत्रुनि पर भयानक आकार किया। ता समय ताका आकार लोक देख न सके मानों प्रलयकालके उत्पात का सूर्य ताके आकार कों धरै है। सब विद्याधरनिकों लार ले जाय किहकुंपुर घेर्या। सो नगरकूं घेरया जानि दोनौं भाई बानरध्वज सुकेश सहित अशनिवेगसों युद्ध करवेकों नीसरे। सो परस्पर महायुद्ध भया। गदानि करि, शक्तीनि करि, बाणनिकरि, पाशनिकरि, सेलनिकरि, खड्गनिकरि महायुद्ध भया। तहां पुत्रके बधसों उपजो जो क्रोधरूप अग्नि की ज्वाला उससे प्रज्वलित जो अशनिवेग सो अंध्रकके सन्मुख भया। तब बड़े भाई किहकंधने विचारी कि मेरा भाई अंध्रक तो नवयौवन है अर यह पापी अशनिवेग महा बलवान है सो मैं भाईकी मदद करूं। तब किहकंध आया अर अशनिवेगका पुत्र विद्युद्वाहन किहकंधके सन्मुख आया सो किहकंधके अर विद्युद्वाहन के महायुद्ध प्रवर्त्या। ता समय अशनिवेगने अंध्रकको मार्या सो अंध्रक पृथ्वीपर पड़्या। जैसें प्रभातका चंद्रमा कांतिरहित होय तैसे अंध्रकका शरीर कांतिरहित होय गया। अर किहकंध ने विद्युद्वाहन के वक्षस्थलपर शिला चलाई सो वह मूर्छित होय गिरया, बहुरि सचेत होय ताने वही शिला किहकंध पर चलाई सो किहंकध मूर्छा खाय घूमने लग्या सो लंकाके धनीने सचेत किया अर किहकंध को किहकुंपुर ले आए तब किहंकधने दृष्टि उघाड़ देख्या तो भाई नाहीं तब निकटवर्तीनिको पूछने लग्या। मेरा भाई कहां है ? तब लोक नीचे होय रहे अर राजलोकमें अंध्रकके मरवे का विलाप हुवा सो बिलाप सुन किहंकध भी विलाप करने लग्या। शोकरूप अग्निकरि तप्तायमान भया है चित्त जाका, बहुत देरतक भाईके गुणनिका चितवन करता संता शोकरूप समुद्रमें मग्न भया। हाय भाई ! मेरें होते संते तू मरणकूं प्राप्त भया, मेरी दक्षिण भुजा भंग भई। जो मैं एकक्षण तुझे न देखता तो महा व्याकुल होता सो अब तुम्हारे बिना प्राणनिको कैसे राखूंगा अथवा मेरा चित्त वज्रका है जो तेरा मरण सुनकर भी शरीरको नाहीं तजै है। हे बाल ! तेरा वह मुलकना अर छोटी अवस्थामें महावीरचेष्टानिको चितार चितार मुझको महादुःख उपजै है इत्यादि महाविलापकरि भाईके स्नेहसों किहकंध खेदखिन्न भया। तब लंकाके धनी सुकेशने तथा और बड़े २ पुरुषों ने किहकंध को बहुत समझाया, जो धीर पुरुषनिको यह रंक चेष्टा योग्य नाहीं। यह क्षत्रीनिका वीरकुल है सो महा साहसरूप है अर या शोक कों पंडितों ने बड़ा पिशाच कह्या है, कर्मों के उदयकरि भाईनिका वियोग होय है, यह शोक निरर्थक है। यदि शोक किए फिर आगमन होय तो शोक करिये। यह शोक शरीरको सोखै है अर पापोंका बंध करै है, महामोह का मूल है तातैं या बैरी शोककूं तजकरि प्रसन्न होय कार्यविषै बुद्धि धार। यह अशनिवेग विद्याधर

अति प्रबल वैरी है, अपना पीछा छोड़ेगा नाहीं, नाशका उपाय चिंतवै है तातैं अब जो कर्तव्य होय सो विचारो। वेरी बलवान होय तब प्रच्छन्न (गुप्त) स्थानविषैं कालक्षेप करिये, तो शत्रु से अपमान को न पाइए। फिर कईएक दिनमें वैरी का बल घटै तब वैरी कों दबाइए, विभूति सदा एक ठौर नाहीं रहै है। तातैं अपनी पाताल लंका जो बड़ोंसे आसरेकी ठौर है सो कुछ काल तहां रहिये, जो अपने कुलमें बडे हैं ते वा स्थानक की बहुत प्रशंसा करें हैं। जाको देखे स्वर्ग-लोक में भी मन न लागै, तातैं उठो, वह जगह वैरियों से अगम्य है। या भांति राजा किहकंधकों राजा सुकेश ने बहुत समझाया तो भी शोक न छांड़ै, तब रानी श्रीमाला कों दिखाई सो ताके देखनेतैं शोक निवृत भया। तब राजा सुकेश अर किहकंध समस्त परिवारसहित पाताललंकाको चाले अर अशनिवेगका पुत्रविद्युद्वाहन तिनके पीछें लग्या, अपने भाई विजयसिहके वैरतैं महा क्रोधवंत शत्रुनिके समूल नाश करनेकों उद्यमी भया। तब नीति-शास्त्रके पाठीनिने समझाया, कैसें हैं वे पुरुष ? जिनकी शुद्ध बुद्धि है, जो क्षत्री भागै तो ताके पीछें न लागैं अर राजा अशनिवेगने भी विद्युद्वाहन सों कही जो अंध्रकने तुम्हारा भाई हत्या सो मैं अंध्रकको रणमें मार्‍या, तातैं हे पुत्र ! इस हठसौं निवृत होवो। दुःखी पर दया ही करनी। जिस कायर ने अपनी पीठ दिखाई सो जीवितही मृतक है ताका पीछा क्या करना, या भांति अशनिवेगने विद्युद्वाहनको समझाया। इतनेमें राक्षसवंशी अर वानरवंशी पाताललंका जा पहुँचे। कैसा है नगर, रत्नों के प्रकाशकरि शोभायमान है तहाँ शोक अर हर्ष धरते दोऊ निर्भय रहैं। एक समय अशनिवेग शरदमें मेघपटल देख अर उनको विलय होते देख विषयोंसे विरक्त भए। चित्त विषैं विचारी 'यह राज संपदा क्षणभंगुर है, मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है सो मैं मुनि व्रत धरि 'आत्मकल्याण करूं', ऐसा विचारी सहस्रारि पुत्रकूं राजदेय आप विद्युद्वाहन सहित मुनि भए अर लंका विषैं पहले अशनिवेग ने निर्घातनामा विद्याधर थानें राख्या हुता सो अब सहस्रार की आज्ञा प्रमाण लंकाविषैं थानै रहै। एक समय निर्घात दिग्विजयको निकस्या सो संपूर्ण राक्षस द्वीप विषैं राक्षसनिका संचार न देख्या, सबही घुस रहे हैं सो निर्घात निर्भय लंकामें रहै हैं। एक समय राजा किहकंध रानी श्रीमालासहित सुमेरु पर्वतसों दर्शन कर आवै था, मार्गमें दक्षिणसमुद्रके तटपर देवकुरु भोगभूमि समान पृथ्वीमें करनतटनामा बन देख्या, देखकरि प्रसन्न भए अर श्रीमाला रानीसों कहते भए। रानीके सुन्दर वचन वीणाके स्वर समान हैं, हे देवी ! तुम यह रमणीक बन देखो। जहाँ वृक्ष फूलोंकरि संयुक्त हैं, निर्मल नदी वहै है अर मेघ के आकार समान धरणीमाला नामा पर्वत शोभै है, पर्वत के शिखर ऊंचे हैं अर कुंद पुष्प समान उज्ज्वल जलके नीझरने झरैं

हैं सो मानो यह पर्वत हँसैं ही है अर वृक्षों की शाखा से पुष्प पड़ै हैं सो मानो हमको पुष्पांजली ही देवैं हैं अर पुष्पनिकी सुगंध करि पूर्ण पवनतैं हालते जो वृक्ष तिनकरि मानों यह बन हम को देखि उठिकरि ताजीम (विनय) ही करै है अर वृक्ष फलनिकरि नम्रीभूत होय रहे हैं सो मानो हमको नमस्कार ही करै हैं। जैसें गमन करते पुरुषनिकूं स्त्री अपने गुणनितैं मोहितकरि आगें जाने न दे है, खड़ा करै है तैसें यह बन अर पर्वत की शोभा हमको मोहितकर राखै है आगैं जाने न दे है। अर मैं भी इस पर्वत को उलंघ आगैं नहीं जाय सकूं, तातैं यहां ही नगर बसाऊंगा। जहां भूमिगोचरियों का गमन नाहीं, पाताल लंकाकी जगह ऊंडी है और तहां मेरा मन खेदखिन्न भया है सो अब यहां रहनेतैं मन प्रसन्न होयगा। याभांति रानी श्रीमालासों कहिकर आप पहाड़सों उतरे। तहां पहाड़ ऊपर स्वर्ग समान नगर बसाया। नगरका किहकंधपुर नाम धर्या। तहां आप सर्व कुटुम्ब सहित निवास किया। कैसा है राजा किहकंध? सम्यग्दर्शनकरि संयुक्त है अर भगवानकी पूजा विषें सावधान है, सो राजा किहकंध की राणी श्रीमालाके योगतैं सूर्यरज अर रक्षरज दोय पुत्र भए अर सूर्यकमला पुत्री भई जाकी शोभाकरि सर्व विद्याधर मोहित हुए।

अथानंतर मेघपुरका राजा मेरु ताकी रानी मघा ताका पुत्र मृगारिदमन तावे किहकंधकी पुत्री सूर्यकमला देखी, सो ऐसा आसक्त भया कि रात दिवस चैन जाके नाहीं पड़ै, तब वाके अर्थि वाके कुटुम्ब के लोगों ने सूर्यकमला याची, सो राजा किहकंध ने रानी श्रीमाला से मंत्रकर अपनी पुत्री सुर्यकमला मृगारिदमन को परणाई, सो परणकर आवै था, मार्गमें कर्णपर्वत विषें कर्णकुंडल नगर बसाया।

अर लंकपुर कहिये पाताललंका उसमें सुकेश राजा, इंद्राणी नाम रानी, ताके तीन पुत्र भये; माली, सुमाली अर माल्यवान। बड़े ज्ञानी, गुण ही हैं आभूषण जिनके, अपनी क्रीड़ाओं से माता पिता का मन हरते भए। देवों समान है क्रीड़ा जिनकी सो तीनों पुत्र बड़े भए। महा बलवान, सिद्ध भई हैं सर्व विद्या जिनको। एक दिन माता पिता ने इनको कह्या कि जो तुम क्रीड़ा करने को किहकंधपुर की तरफ जाओ तो दक्षिण के समुद्र की ओर मत जाना, तब ये नमस्कार करि माता पिता को कारण पूछते भए, तब पिता ने कही कि हे पुत्रो! यह बात कहिवे की नाहीं। तब पुत्रोंने बहुत हठ करि पूछी, तब पिताने कही कि लंकापुरी अपने कुलक्रमतैं चली आवै है, श्रीअजितनाथ स्वामी दूसरे तीर्थंकरके समवसरण लगायकर अपना इस खंडमें राज है, आगैं अशनिवेगके अर अपने युद्ध भया सो परस्पर बहुत मरे, लंका अपनेतैं छूटी। अशनिवेगने निर्घात विद्याधरकूं थापी राख्या, सो

महाबलवान है अर क्रूर है। तानें देश देश में हलकारे राखे हैं अर हमारा छिद्र हेरै है। यह पिता के दुःख की वार्ता सुनकर माली निश्वास नाखता भया अर आंखनितें आंसू निकसे, क्रोध करि भर गया है चित्त जिसका, अपनी भुजाओं का बल देखकरि पितासों कहता भया कि हे तात ! एते दिनों तक यह बात हमसों क्यों न कही, तुम ने स्नेह करि हमको ठगा। जे शक्तिवंत होयकरि बिना काम किए निरर्थक गाजें हैं ते लोकविषें लघुता को पावै हैं सो अब हमको निर्घात पर चढ़नेकी आज्ञा देवो। हमारे यह प्रतिज्ञा है कि लंकाको लेकरि ही और काम करें। तब माता पिता ने महाधीर वीर जान इनको स्नेहदृष्टिसे आज्ञा दी, तब ये पाताल लंकासों ऐसे निकसे मानों पाताल लोकसें भवनवासी देव निकसें हैं। वैरी ऊपर अति उत्साहतें चाले, कैसे हैं तीनों भाई ? शस्त्रकला में महाप्रवीण हैं। समस्त राक्षसों की सेना इनके लार चाली। तिनमें त्रिकूटाचल पर्वत दूरसों देख्या, देखकरि जान लिया कि लंका याके नीचे बसै है सो मानों लंका लेही ली। मार्ग विषें निर्घात के कुटुम्बी जो दैत्यादि कहावें ऐसे विद्याधर मिलें सो माली सूं युद्ध करके बहुत मरे। कैएक पायन परे, कैएक स्थान छोड़ भाग गये, कैएक वैरीके कटकमें शरण आये, पृथ्वीमें इनकी बड़ी कीर्ति विस्तरी। निर्घात इनका आगमन सुन लंकासों बाहिर निकस्या। कैसा है निर्घात ? जो युद्ध में महा शूर वीर है, छत्र की छायाकरि आच्छादित किया है सूर्य जाने, तब दोऊ सेनानिमें महायुद्ध भया, मायामई हाथीनिकरि, घोड़े निकरि, विमाननिकरि, रथनिकरि परस्पर युद्ध प्रवर्त्या। हाथीनिके मद झरनेतें आकाश जलरूप होय गया अर हाथीनिके कान तेही भए ताडके बीजने उनकी पवन से आकाश मानों पवन रूप होय गया, परस्पर शस्त्रोंके घातकरि प्रगटी जो अग्नि ताकरि मानों आकाश अग्निरूप ही होगया, या भांति बहुत युद्ध भया। तब मालीने विचारी कि दीननि के मारवें करि कहा होय ? निर्घातही को मारिये, यह विचारि निर्घातपर आए। ऐसे शब्द कहते भए, कहां है वह पापी निर्घात ! सो निर्घात को देख करि प्रथम तो तीक्ष्ण बाणनिकरि रथतें नीचे डार्‌या। फेर वह उठ्या, महायुद्ध किया, तब मालीने खड्ग करि निर्घातकों मार्‌या, सो ताकूं मर्‌या जानकरि ताके वंश के भागकरि विजयार्ध विषें अपने अपने स्थानक गये अर कैएक कायर होय माली ही की शरण आए। माली आदि तीनों भाइयनिने लंका विषें प्रवेश किया। कैसी है लंका ? महा मंगल रूप है, माता पिता आदि समस्त परिवारनिकों लंका विषें बुलाया। बहुरि हेमपुरका राजा मेघ विद्याधर रानी भोगवती तिनकी पुत्री चन्द्रवती सो। माली ने परनी सो कैसी है चन्द्रमती मन को आनन्द करनहारी है अर प्रतिकूट नगरका राजा प्रीतिकांत रानी प्रीतिमती तिनकी पुत्री प्रीति-

संतका सो सुमाली ने परनी अर कनककांत नगरका राजा कनक, रानी कनकश्री तिनकी पुत्री कनकावली सो माल्यवानने परनी। इनके कईएक पटराणी रानी हुती तिनमें ये प्रधान रानी भईं अर प्रत्येक हजार २ रानी कछुइक अधिक होती भईं। माली ने अपने पराक्रम से विजयार्ध की दोऊ श्रेणी वश करी। सर्व विद्याधर इनकी आज्ञा आशीर्वादकी नाईं माथें चढावते भए। केएक दिनोंमें इनके पिता राजा सुकेश माली को राज देय महामुनि भए अर राजा किहकंध अपने पुत्र सूर्यरज कों राज देय वैरागी भए, ए दोऊ परम मित्र राजा सुकेश अर किहकंध समस्त इंद्रियनिके सुख का त्यागकर अनेक भवके पापों का हरनहारा जो जिनधर्म ताको पायकर सिद्ध स्थानके निवासी भये। हे श्रेणिक! या भांति अनेक राजा प्रथम राज्य अवस्थामें अनेक विलास करि फिर राज तजकरि आत्मध्यानके योग से समस्त पापिनिकों भस्म कर अविनाशी धाम को प्राप्त भए। ऐसा जानकरि हे राजा! मोह को नाश कर शांति दशा को प्राप्त होऊ।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषें वानरवंशीनिका निरूपण है जाविषें ऐसा छठा पर्व पूर्ण भया ॥ ६ ॥

—:०:—

(सप्तम पर्व)

[रावण का जन्म और विद्या साधनादि का निर्देश]

अथानंतर रत्नपुर नगरविषें राजा सहस्रार राज्य करै, ताके रानी मानसुन्दरी रूप अर गुणों में अति सुन्दर सो गर्भिणी भई, अत्यन्त कृश भया है शरीर जाका, शिथिल होय गए हैं सर्व आभूषण जाके, तब भरतार ने बहुत आदरसों पूछी हे प्रिए! तेरे अंग काहेतैं क्षीण भये हैं, तेरे कहा अभिलाषा है, जो अभिलाषा होय सो मैं अबार ही समस्त पूर्ण करूं। हे देवी! तू मेरे प्राणोंतैं भी अधिक प्यारी है, या भांति राजा ने कही तब रानी बहुत विनयकरि पतिसों बीनती करती भई कि हे देव! जा दिनतैं बालक मेरे गर्भ में आया है ता दिनतैं यह मेरी वांछा है कि इन्द्रकीसी सम्पदा भोगूं सो मैंने लाज तज आपके अनुग्रह से आपसों अपना मनोरथ कह्या है क्योंकि स्त्री की लज्जा प्रधान है सो मनकी बात कहिवेमें न आवै, तब राजा सहस्रार ने जो महाविद्या बलकरि पूर्ण हुता, सो तिनने क्षणमात्र में याके मनोरथ पूर्ण किये। तब वह रानी महाआनन्द रूप भई, सर्व अभिलाषा पूर्ण भई, अत्यन्त प्रताप अर कांतिको धरती भई, सूर्य ऊपर होय नीसरै सो वाहू का तेज सहार सकै नाहीं अर सर्वदिशानि के राजानिपै राजविसर आज्ञा चलाया चाहै, तब महीके

पूर्ण भये, तब पुत्र का जन्म भया, कैसा है पुत्र ? समस्त बांधवनिको परम सम्पदा का कारण है। तब राजा सहस्रार ने हर्षित होय पुत्रके जन्मका महान उत्सव किया, अनेक बाजानिके शब्दकरि दसों दिशा शब्दरूप भईं अर अनेक स्त्री नृत्य करती भईं। राजाने याचक जननिकों इच्छापूर्ण दान दिया, ऐसा विचार न किया जो यह देना न देना, सर्व ही दिया अर हाथी गरजते हुए ऊंची सूंडकरि नृत्य करते भये। राजा सहस्रारने पुत्र का नाम इन्द्र धर्या, जा दिन इन्द्रका जन्म भया तादिन समस्त बैरिन के घरमें अनेक उत्पात भये, अपशकुन भये अर भाईयनिके तथा मित्रनिके घरमें महा कल्याणके करणहारे शुभ शकुन भये अर इन्द्र कुंवर की बालक्रीडा तरुण पुरुषोंकी शक्ति को जीतने-हारी, सुन्दर कर्मकी करणहारी, वैरियोंका गर्व छेदती भई। अनुक्रमकरि कुंवर यौवन कों प्राप्त भया। कैसा है कुंवर ? अपने तेजकरि जीत्या है सूर्य का तेज जिसने अर कांति से जीत्या है चन्द्रमा अर स्थिरता से जीत्या है पर्वत अर विस्तीर्ण है वक्षस्थल जाका, दिग्गजनिके कुम्भस्थल समान ऊंचे हैं कांधे अर अति दृढ़ सुन्दर हैं भुजा, दस दिशानिकी दाबनहारी हैं दोऊ जंघा जिसकी, महासुन्दर यौवनरूप महल के थांभनेको थम्भे समान होती भईं। विजयार्ध पर्वतविषें सर्व विद्याधर जाने सेवक किये, जो यह आज्ञा करै सो सर्व करें। यह महाविद्याधर बलकर मंडित, याने अपने यहाँ सब इन्द्र कैसी रचना करी। अपना महल इन्द्रके महल समान बनाया, अडतालीस हजार विवाह किये। पटरानी का नाम शची धर्या, छब्बीस हजार नटुवा नृत्य करैं, सदा इन्द्र जैसा अखाड़ा रहै, महामनोहर अनेक इन्द्र जैसे हाथी घोड़े अर चन्द्रमा समान महा उज्ज्वल ऊंचा आकाश के आंगनमें गमन करने वाला किसी से निवार्या न जाय, महाबलवान अष्टदन्त करि शोभित गजराज जिसकी महासुन्दर गोल सूंड ताकरि व्याप्त की हैं दसो दिशा जाने, ऐसा जो हाथी ताका नाम ऐरावत धर्या। चतुरनिकाय के देव थापे अर परम शक्तियुक्त चार लोकपाल थापे। सोम १ वरुण २ कुबेर ३ यम ४ अर सभाके नाम सुधर्मा, वज्र, आयुध, तीन सभा अर उर्वशी मेनका रम्भा इत्यादि हजारां नृत्यकारिणी तिनकी अप्सरा संज्ञा ठहराई, सेनापति-का नाम हिरण्यकेशी अर आठ वसु थापे अर अपने लोकनिकों सामानिक त्रायस्त्रिंशतादि दस भेद देव संज्ञा धरी। गावनहारे तिनका नाम नारद १ तुम्बुरु २ विश्वावसु ३ यह संज्ञा धरी मंत्रीका नाम बृहस्पति इत्यादि सर्व रीति इन्द्र समान थापी, सो यह राजा इन्द्र समान सब विद्या-धरनिका स्वामी पुण्यके उदयकरि इन्द्र कैसी सम्पदा का धरनहार होता भया। ता समय लंका में राजा माली राज करै सो महामानी, जैसें आगें सर्व विद्याधर-निपर अमल करै था तैसा ही अबहू करै, इन्द्र की शंका न राखै, विजयार्ध के समस्त

खण्डों में अपनी आज्ञा राखे, सर्व विद्याधर राजानि के राज में महारत्न हाथी घोड़े मनोहर कन्या मनोहर वस्त्राभरण, दोनों श्रेणियों में जो सार वस्तु होय सो मंगाय लेय, ठौर २ हल-कारे फिरवे करें, अपने भाइनिके गर्वतें महा गर्ववान पृथ्वीपर एक आप ही को बलवान जानें।

अब इन्द्र के बलतें विद्याधर लोक माली की आज्ञा भंग करने लगे, सो यह समा-चार मालीने सुना तब अपने सर्व भाई अर पुत्र अर कुटुम्ब समस्त राक्षसवंशी अर किहु-कंधके पुत्रादि समस्त वानरवंशी तिनको लार लेय विजयार्ध पर्वतके विद्याधरनि पर गमन किया। केएक विद्याधर अति ऊंचे विमानों पर चढ़े, केएक चालते महल समान सुवर्ण के रथों पर चढ़े, केएक काली घटा समानहाथियों पर चढ़े, केएक मन समान शीघ्रगामी घोड़े तिनपर चढ़े, केएकसिंह शार्दूलनि पर चढ़े, केएक चीतानिपर चढ़े, केएक बल-धनिपर चढ़े, केएक ऊंटोंपर, केएक खच्चरनिपर, केएक भैंसे पर चढ़े, केएक हंसनिपर, केएक स्यालनि पर इत्यादि अनेक मायामई वाहनोंपर चढ़े, आकाशका आंगन आच्छा-दते थके महा देदीप्यमान शरीर धर कर माली की लार चढ़े। प्रथम प्रयाणमें ही अप-शकुन भए, तब मालीतें छोटा भाई सुमाली कहता भया, बड़े भाई में है अनुराग जाका हे देव ! यहाँ ही मुकाम करिये, आगें गमन न करिये अथवा लंकामें उलटा चलिये, आज अपशकुन बहुत भए हैं। सूखे वृक्षकी डालीपर एक पगको संकोचे काग तिष्ठया है, अत्यन्त आकुलित है चित्त जाका, बारम्बार पंख हिलावै है, सूका काठ चोंच में लिये सूर्य की ओर देखै है अर क्रूर शब्द बोलै है सो हमारा गमन मनै करै है अर दाहिनी ओर रौद्र है मुख जाका ऐसी स्यालिनी रोमांच धरती हुई भयानक शब्द करै है अर सूर्य के बिम्ब के मध्य प्रविष्ट हुई जलेरी में रुधिर झरता देखिये है अर मस्तक रहित धड़ नजर आवै है अर महा भयानक वज्रपात होय है। कैसा है वज्रपात ? कम्पाया है समस्त पर्वत जानें अर आकाश में बिखरि रहे हैं केश जिसके ऐसी मायामई स्त्री नजर आवै है अर गर्दभ आकाश की तरफ ऊंचा मुखकर खुरके अग्रभागकरि धरती को खोदता हुवा कठोर शब्द करै है इत्यादि अपशकुन होय हैं। तब राजा माली सुमालीतें हंसकर कहते भए, कैसा है राजा माली ? अपनी भुजानिके बलकरि शत्रुनिको गिनते नाहीं। अहो बीर ! बैरियको जीतना मनमें विचार विजय हस्तीपर चढ़े महापुरुष धीरताको धरते कैसें पीछे बाहुडैं। जे शूरवीर दांतनिकरि डसे हैं अधर जिन्होंने अर टेढ़ी करी है भौंह जिन्होंने अर विक-राल है मुख जिनका अर बैरीनि को डरावैं है आंख जिन्होंकी, तीक्षण बाणनि करि पूर्ण अर बाजे हैं, अनेक बाजे जिनके अर मद झरते हाथिन पर चढ़े हैं अथवा तुरंगनपर चढ़े हैं, महावीर रस के स्वरूप आश्चर्यकी दृष्टिकरि देवों ने देखे जो सामन्त वे कैसें पाछे

कहाहै ? अर मैंने या जन्म में अनेक लीला विलास किये। सुमेरुपर्वतकी गुफा तहां नंदनवन आदि मनोहर वन तिनमें देवांगना समान अनेक राणी सहित नाना प्रकार की क्रीड़ा करी अर आकाश में लग रहे हैं शिखर जिनके ऐसे रत्नमयी चैत्यालय जिनेन्द्रदेवके कराए, विधिपूर्वक भाव सहित जिनेन्द्रदेवकी पूजा करी अर अर्थी जो याचे सो दिया ऐसे किमिच्छिक दान दिये। इस मनुष्य लोक में देवों कैसे भोग भोगे अर अपने यशकरि पृथ्वीपर वंश उत्पन्न किया, तातैं या जन्म में तो हम सब बातों में इच्छा पूर्ण हैं। अब जो महा संग्राम में प्राणोंको तजैं तो यह शूरवीरनिकी रीति ही है परन्तु क्या हम लोकों से यह कहावैं कि माली कायर होय पाछे हट गया अथवा तहां ही मुकाम किया। यह निंदा के लोकनिके शब्द धीरवीर कैसें सुनें ? धीर वीरों का चित्त क्षत्रियव्रत में सावधान है। भाई को या भांति कहि आप वैताड के ऊपर सेना सहित क्षणमात्र में गये, सब विद्याधरों पर आज्ञा पत्र भेजे। सो कैएक विद्याधरनि ने न माने, तिनके पुरग्राम उजाड़े अर उद्यानवि के वृक्ष उपार डारे। जैसें कमल के वन को उन्मत्त हाथी उखाड़ें, तैसें राक्षस जाति के विद्याधर महाक्रोध कों प्राप्त भए तब प्रजा के लोग माली के कटकतैं डरकर कांपते संते रथनूपुर नगर में राजा सहस्रारके शरण गये। चरणनिको नमस्कार कर दीनवचन कहते भए कि हे प्रभो ! सुकेश का पुत्र माली राक्षसकुली समस्त विद्याधरनि पर आज्ञा चलावै, सर्व विजयार्ध में हमको पीडा करै है। आप हमारी रक्षा करो। तब सहस्रार ने आज्ञा करी कि हे विद्याधरो ! मेरा पुत्र इन्द्र है ताके शरण जाय सर्व बीनती करो, वह तुम्हारी रक्षा करनेको समर्थ है, जैसें इन्द्र स्वर्ग लोक की रक्षा करै है तैसें यह इन्द्र समस्त विद्याधरों का रक्षक है।

तब समस्त विद्याधर इन्द्रपै गए, हाथ जोडि नमस्कार करि सर्व वृतांत कहे। तब इन्द्र माली ऊपर क्रोधायमान होय गर्व करि मूलकते संते सर्व लोकनि को कहते भए। कैसा है इन्द्र ? पास धर्या जो वज्रायुध ताकी ओर देख्या, लाल भए हैं नेत्र जिनके, मैं लोकपाल लोकनिकी रक्षा करूं, जो लोक का कंटक होय ताहि हेरकर मारूं अर वह आप ही लडने को आया तो या समान और क्या ? रण के नगारे बजाए। कैसे हैं वे वादित्र जिनके श्रवणकरि माते हाथी गज के बंधनको उखाड़ें हैं, समस्त विद्याधर युद्ध का साज करि इन्द्रपै आए। बखतर पहरे हाथ में अनेक प्रकारके आयुध लिए परम हर्ष धरते संते कई एक घोड़निपर चढ़े तथा हस्ती, ऊंट, सिंह, व्याघ्र, स्याली तथा मृग, हंस, छेला, बलद, मींडा, इत्यादि मायामई अनेक वाहनों पर बैठि आए, कैएक विमान में बैठे, कैएक मयूरों पर चढ़े, कैएक खच्चरनिपर चढ़करि आए। इन्द्र ने जो लोकपाल थापे हैं ते अपनी

अपने वर्गसहित नानाप्रकारके हथियारनिकरि युक्त भौंह टेढ़ी किये आए, भयानक है मुख जिनके। पाय हस्तिकना नाम ऐरावत तापर इन्द्र चढ़े, छत्रतर पहिरे सिरपर चमर फिरते हुए रथनूपुरतें बाहिर निकसे। सेनाके विद्याधर जो देव कहावैं सो इन देवनिके अर लंकाके राक्षसनिके साथ महायुद्ध प्रवर्त्या।

हे श्रेणिक! ये देव अर राक्षस समस्त विद्याधर मनुष्य हैं, नमि विनमि के वंश के हैं तिनमें ऐसा युद्ध प्रवर्त्या जो कायरनितें देख्या न जाय, हाथियनितें हाथी, घोड़ेनितें घोड़े, पयादनितें पयादे लड़े। सेल मुद्गर सामान्य चक्र खड्‌ग गोफण मूसलगदा कनक पाश इत्यादि अनेक आयुधनिकरि युद्ध भया। सो देवों की सेना ने कछुइक राक्षसों का बल घटाया तब वानरवंशी राजा सूर्यरज रक्षरज राक्षसवंशियों के परममित्र राक्षसों की सेनाको दब्या देख युद्ध को उद्यमी भए सो इनके युद्धतें समस्त इन्द्र की सेना के लोक देव जातिके विद्याधर हटे। इनका बल पाय राक्षसकुली विद्याधर लंकाके लोक देवनिसे महायुद्ध करते भए। अस्त्रोंके समूहसे आकाशमें अंधेरा कर डार्‌या, राक्षस अर वानर-वंशियोंसे देवोंका बल हर्‌या देख इंद्र आप युद्ध करनेको उद्यमी भये। समस्त राक्षसवंशी अर वानरवंशी मेघरूप होकर इन्द्ररूप पर्वत पर गाजते हुए शस्त्र की वर्षा करते भये। सो इन्द्र महायोधा कुछ भी विषाद न करता भया। किसी का बाण आपकों न लगने दिया, सबनिके बाण काट डारे अर अपने बाणनिकरि कपि अर राक्षसों को दबाये। तब राजा माली लंकाके धनीकी सेनाको इंद्रके बलकरि व्याकुल देख इंद्रतें युद्ध करवेको आप उद्यमी भये। कैसे हैं राजा माली? क्रोधकरि उपज्या जो तेज ताकरि समस्त आकाश में किया है उद्योत जिन्होंने। इन्द्रके अर मालीके परस्पर महायुद्ध प्रवर्त्या। मालीके ललाट पर इंद्रने बाण लगाया सो माली ने उस बाणकी वेदना न गिनी अर इन्द्रके ललाटपर शक्ती लगाई सो इंद्रके रक्त झरने लगा अर माली उछलकर इंद्रपै आया तब इंद्र ने महाक्रोधसे सूर्यके बिंब समान चक्रसे माली का शिर काट्या, माली भूमिपर पड़्या तब सुमाली माली को मूआ जानि अर इंद्र को महा बलवान जानि सब परिवार सहित भाग्या। सुमाली को भाई का अत्यन्त दुःख हुवा। जब यह राक्षसवंशी अर वानरवंशी भागे तब इन्द्र इनके पीछे लाग्या तब सोम नामा लोकपालने जो स्वामीकी भक्तिमें तत्पर है इन्द्रसे विनती करी कि हे प्रभो! जब मो सारिखा सेवक शत्रुनि कें मारवे को समर्थ है तब आप इनपर क्यों गमन करें? सो मुझे आज्ञा देवो। शत्रुनिकों निर्मूल करूं। तब इन्द्र ने आज्ञा करी। यह आज्ञा प्रमाण इनके पीछे लाग्या अर बाणनिके पुंज शत्रुओंपर चलाये सो कपि अर राक्षसनिकी सेना बाणनि करि बेधी गई जैसे मेघ की

धाराकरि वायुनिके समूह व्याकुल होय तैसें तिनकी सर्व सेना व्याकुल भई।

अथानंतर अपनी सेना को व्याकुल देखि सुमालीका छोटा भाई माल्यवान बाहुकर सोमपर आये अर सोमकी छातीमें भिण्डिपाल नामा हथियार मारा सो मूर्छित हो गया। सो जबलग वह सावधान होय तब लग राक्षसवंशी अर वानरवंशी पाताल लंका जाय पहुँचे मानो नया जन्म भया, सिंहके मुख से निकसे, सोम ने सावधान होकर सर्व दिशा शत्रुओं से शून्य देखी, तब लोकनिकरि गाइये जस जाके बहुत प्रसन्न होय इन्द्रके निकट गया अर इन्द्र विजय पाय ऐरावत हस्तीपर चढ़्या, लोकपालनिकरि मंडित सिरपर छत्र फिरते चंवर ढुरते आगें अप्सरा नृत्य करती बड़े उत्साहसें महाविभूति सहित रथनूपुरविषें आये। कैसा है रथनू पुर ? रत्नमयी वस्त्रोंकी ध्वजाओंसे शोभै है, ठौर ठौर तोरणनिकरि शोभायमान है, जहां फूलनिके ढेर होय रहे हैं, अनेक प्रकार सुगंधसे देवलोक समान है, सुन्दर नारियां झरोखोंमें बैठी इन्द्रकी शोभा देखें हैं। इन्द्र राज महलमें आए, अति विनय थकी माता पिताके पायन पड़े तब माता पिताने माथे हाथ धर्‌या अर गात्र स्पर्श आशीश दई, इन्द्र बैरीनिकूं जीति अति आनन्दकों प्राप्त भया। प्रजा पालनविषें तत्पर इन्द्रके समान सोम सोभे, विजयार्ध पर्वत तो स्वर्ग समान अर यह राजा इन्द्र सर्व लोकविषें प्रसिद्ध भया।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहै हैं–कि हे श्रेणिक ! अब लोकपाल की उत्पत्ति सुनो। ये लोकपाल स्वर्गलोकतैं चयकर विद्याधर भए हैं। राजा मकरध्वज रानी अदिति तिनका पुत्र सोम नामा लोकपाल महा कांतिधारी सो इन्द्रने ज्योतिपुर नगर में थापा अर पूर्व दिशाका लोकपाल किया अर राजा मेघरथ रानी वरुणा उनका पुत्र वरुण उसको इन्द्र ने मेघपुर नगरमें थापा अर पश्चिम दिशा का लोकपाल किया, जाके पास पाश नामा आयुद्ध जिसका नाम सुनकर शत्रु अति डरें अर राजा किहकंधसूर्य रानी कनकावली उसका पुत्र कुवेर महा विभूतिवान उसको इन्द्रने कांचनपुर में थापा अर उत्तरदिशाका लोकपाल किया अर राजा बालाग्नि विद्याधर रानी श्रीप्रभा उसका पुत्र यम नामा तेजस्वी उसको किहकूंपुरमें थापा अर दक्षिणदिशाका लोकपाल किया अर असुर नामा नगर ताके निवासी विद्याधर वे असुर ठहराये अर यक्षकीर्ति नामा नगरके विद्याधर यक्ष ठहराये अर किन्नर नगरके किन्नर, गंधर्व नगरके गंधर्व इत्यादिक विद्याधरों की देव संज्ञा धरी, इन्द्र की प्रजा देव जैसी क्रीड़ा करै। यह राजा इन्द्र मनुष्य योनि में लक्ष्मीका विस्तार पाय लोगोंसे प्रशंसा पाय आपको इन्द्र ही मानता भया अर कोई स्वर्ग लोक है, इन्द्र है, देव है, यह सर्व बात भूल गया अर आपही को इन्द्र जाना, विजयार्धगिरि को स्वर्ग जाना, अपने

थापे लोकपाल थाने अर विद्याधरों को देव थाने, या भांति गर्व को प्राप्त भया कि मोतें अधिक पृथ्वी पर और कोऊ नाहीं, मैं ही सब की रक्षा करू । यह दोनों श्रेणियों का अधिपति होय ऐसा गर्वा कि मैं ही इन्द्र हूँ ।

अथानंतर कौतुकमंगल नगर का राजा व्योमबिंदु पृथ्वी पर प्रसिद्ध उसके राणी मंदवती उसके दो पुत्री भई, बड़ी कौशिकी छोटी केकसी सो कौशिकी राजा विश्रव को परणाई । वे यक्षपुर नगरके धनी, तिनके वैश्रवण पुत्र भया, अति शुभ लक्षण का धरन-हारा कमल सारिखे नेत्र जाके उसको इन्द्र ने बुलाकर बहुत सन्मान किया अर लंकाके थाने राख्या अर कहा कि मेरे आगे चार लोकपाल हैं तैसे तू पाँचवां महा बलवान है तब वैश्रवण ने विनती करी कि—"प्रभो जो आज्ञा करो सी ही मैं करू" ऐसा कह इन्द्र को प्रणाम कर लंका को चाल्या सो इन्द्र की आज्ञा प्रमाण लंकाके थाने रहे, जाको राक्षसों की शंका नाहीं, जिसकी आज्ञा विद्याधरोंके समूह अपने सिर पर धरैं हैं ।

पाताललंकाविषैं सुमाली के रत्नश्रवा नामा पुत्र भया, महा शूरवीर, दातार, जगत का प्यारा, उदारचित्त, मित्रनि के उपकार निमित्त है जीवन जाका अर सेवकों के उपकार निमित्त है प्रभुत्व जाका, पण्डितों के उपकार निमित्त है प्रवीणपणा जाका, भाइयों के उपकार निमित्त है लक्ष्मीका पालन जाका, दरिद्रियों के उपकार निमित्त है ऐश्वर्य जाका, साधुओं की सेवा निमित्त है शरीर जाका, जीवन के कल्याण निमित्त हैं वचन जाका, सुकृतके स्मरण निमित्त है मन जाका, धर्म के अर्थ है आयु जाकी, शूरवीरता का मूल है स्वभाव जाका सो पिता समान सब जीवों को दयालु, जाके परस्त्री माता समान, परद्रव्य तृण समान, पराया शरीर अपने शरीर समान, महा गुणवान, जो गुणवंतों की गिनती करें तहाँ याकों प्रथम गिनै अर दोषवन्तों की गिणतीविषैं नहीं आवै, उसका शरीर अद्भुत परमाणुओंकरि रचा है, जैसी शोभा इसमें पाइये तैसी और ठौर दुर्लभ है, संभाषणमें मानों अमृत ही सींचै है, अर्थियों को महादान देता भया । धर्म अर्थ काम में बुद्धिमान, धर्म का अत्यन्त प्रिय, निरन्तर धर्म ही का यत्न करै, जन्मान्तर से धर्म को लिये आया है, जिसका बड़ा आभूषण यश ही है अर गुण ही कुटुम्ब है, सो धीर वीर वैरियों का भय तजकर विद्यासाधन के अर्थ पुष्पक नामा वनमें गया । कैसा है वह वन, भूत पिशाचादिक के शब्द से महा भयानक है । यह तो वहाँ विद्या साधै है अर राजा व्योमबिंदुने अपनी पुत्री केकसी इसकी सेवा करने को इसके ढिग भेजी सो सेवा करै व हाथ जोड़ रहै, आज्ञा की है अभिलाषा जाके, कैएक दिनों रत्नश्रवाका नियम समाप्त भया, सिद्धोंको नमस्कार कर मौन खोला । केकसीको अकेली देखी । कैसी है केकसी, सरल है

हैं नेत्र जाके, नीलकमल समान सुन्दर अर लाल कमल समान है मुख जाका, कुन्द के पुष्प समान हैं दन्त अर पुष्पों की माला समान है कोमल सुन्दर भुजा अर मूंगा समान है कोमल मनोहर अधर, मौलश्री के पुष्पों की सुगन्ध समान है निश्वास जाके, चंपे की कांति समान है रंग जाका अथवा उस समान चंपक कहां अर स्वर्ण कहां ? मानो लक्ष्मी रत्नश्रवा के रूप में वश हुई कमलों के निवास को तज सेवा करने को आई है। चरणारविंद की ओर हैं नेत्र जाके, लज्जा से नम्रीभूत है शरीर जाका, अपने रूप का लावण्य से कूंजनों की सेवा कलंपती हुई श्वासनकी सुगंधतासे जाके मुखपर भ्रमर गुंजार करे हैं। अति सुकुमार है तनु जाका अर यौवन आंवतासा है, मानों इसकी अति सुकुमारता के भय से यौवन भी स्पर्शता शंकै है, मानों समस्त स्त्रियों का रूप एकत्रकर बनाई है अद्भुत सुन्दरता जाकी, मानों साक्षात् विद्या ही शरीर धारकर रत्नाश्रवा के तपसे वशी होकर महा कांति की हरणहारी आई है। तब रत्नश्रवा जिनका स्वभाव ही दयावान है, केकसी कों पूछते भए कि तू कौनकी पुत्री है ? अर कौन अर्थ अकेली यूथसे बिछुरी मृगीसमान महावन में रहै है अर तेरा क्या नाम है। तब यह अत्यन्त माधुर्यतारूप गद्गद् वाणी से कहती भई कि हे देव ! राजा व्योमबिन्दु रानी नन्दवती तिनकी मैं केकसी नामा पुत्री आपकी सेवा करने को पिता ने राखी हैं। ताही समय रत्नश्रवा को मानस्तम्भिनी विद्या सिद्ध भई, सो विद्या के प्रभाव से उसी वनमें पुष्पांतकनामानगर बसाया अर केकसी को विधिपूर्वक परण्या अर उसी नगरमें रहकर मनवांछित भोग भोगते भए, प्रिया प्रीतम में अद्भुत प्रीति होती भई, एक क्षण भी आपस में वियोग सहार न सकैं। यह केकसी रत्नश्रवाके चित्तका बंधन होती भई, दोनों अत्यन्त रूपवान नवयौवन महाधनवान, इनके धर्म के प्रभाव से किसी भी वस्तु की कमी नाहीं। यह रानी पतिव्रता पति की छाया समान अनुगामिनी होती भई।

एक समय यह रानी रत्न के महल में सुन्दर सेज पर पड़ी हुती। कैसी है सेज ? क्षीरसमुद्र की तरंग समान उज्ज्वल हैं वस्त्र जहां अर महाकोमल है, अनेक पुष्पनकरि मंडित है, रत्नों का उद्योत होय रहा है, रानी के शरीर की सुगन्ध से भ्रमर गुंजार करै हैं, अपने मन का मोहनहारा जो अपना मन उसके गुणों को चितवती हुई अर पुत्र की उत्पत्ति को वांछती हुई पड़ी हुती सो रात्रि के पिछले पहर महा आश्चर्य के करणहारे शुभ स्वप्ने देखे। बहुरि प्रभातविषैं अनेक बाजे बाजे, शंखों का शब्द भया, मागध बंदीजन विरद बखानते भए, तब रानी सेज से उठकर प्रभात क्रिया कर महामंगलरूप आभूषण पहरे सखियों कर मंडित पति ढिग आई, राजा रानी को देखकर उठे अर बहुत आदर

किया। दोऊ एक सिंहासन पर विराजे, रानी हाथ जोड़ राजा से विनती करती भई हे नाथ आज रात्रि के चतुर्थ पहर में तीन शुभ स्वप्न देखे हैं, एक महाबली सिंह गाजता अनेक गजेन्द्रोंके कुंभस्थल विदारता हुआ परम तेजस्वी आकाश से पृथ्वीपर आय मेरे मुखमें होकरि कुक्षि में आया अर सूर्य अपनी किरणोंसे तिमिरका निवारण करता मेरी गोदमें आय तिष्ठ्या अर चन्द्रमा, अखंड है मंडल जाका सो कुमुदनको प्रफुल्लित करता अर तिमिरको हरता हुआ मैंने अपने आगे देख्या। यह अदभुत स्वप्न मैंने देखे सो इनके फल क्या हैं ? तुम सर्व जानने योग्य हो, स्त्रियों को पति की आज्ञा प्रमाण है। तब यह बात सुन राजा स्वप्न के फल का व्याख्यान करते भए। राजा अष्टांग निमित्त के जानने-हारे जिनमार्ग में प्रवीण हैं। हे प्रिये ! तेरे तीन पुत्र होंगे जिनकी कीर्ति तीन जगत में विस्तरेगी, बड़े पराक्रमी कुल के वृद्धि करणहारे पूर्वोपार्जित पुण्य से महासम्पदा के भोगन-हारे देवों समान अपनी कीर्ति से जीत्या है चन्द्रमा, अपनी दीप्ति से जीता है सूर्य, अपनी गम्भीरताकरि जीत्या है समुद्र अर अपनी स्थिरता से जीत्या है पर्वत जिन्होंने, स्वर्ग के अत्यंत सुख भोगकर मनुष्य देह धरेंगे, महाबलवान जिनको देव भी न जीत सकैं, मन-वांछित दान के देनहारे, कल्पवृक्ष समान अर चक्रवर्ती समान ऋद्धि जिनके, अपने रूपकरि सुन्दर स्त्रियों के मन हरणहारे, अनेक शुभ लक्षणों कर मंडित, उतंग है वक्षस्थल जिनका, नाम ही श्रवण मात्र से महाबलवान वैरी भय मानेंगे तिनमें प्रथम पुत्र आठवां प्रतिवासुदेव होयगा, महा साहसी शत्रुओं के मुखरूप कमल मुद्रित करने को चंद्रमा समान तीनों भाई ऐसे योद्धा होंगे कि युद्ध का नाम सुनकर जिनके हर्ष के रोमांच होंयगे अर बड़ा भाई कछु-इक भयंकर होयगा। जिस वस्तु की हठ पकड़ेगा सो न छोड़ेगा। जिसको इन्द्र भी समझाने को समर्थ नाहीं। ऐसा पति का वचन सुनकर रानी परम हर्षको प्राप्त होय विनय थकी भरतार को कहती भई। हे नाथ ! हम दोऊ जिनमार्गरूप अमृत के स्वादी कोमलचित्त, अपने पुत्र क्रूरकर्मी कैसे होय। अपने तो जिन वचन में तत्पर, कोमल परि-णामी होने चाहिएं। अमृत की बेलपर विष पुष्प कैसे लगें ? तब राजा कहते भए कि हे वरानने ! सुन्दर है मुख जाका ऐसी तू हमारे वचन सुन। यह प्राणी अपने अपने कर्म के अनुसार शरीर धरै है तातैं कर्म ही मूल कारण है, हम मूल कारण नाही, हम निमित्त कारण हैं, तेरा बड़ा पुत्र जिनधर्मी तो होयगा परंतु कछुइक क्रूरपरिणामी होयगा अर ताके दोऊ लघु वीर महाधीर जिन मार्गविषैं प्रवीण गुणग्रामकरि पूर्ण भली चेष्टा के धरणहारे शील के सागर होवेंगे। संसार भ्रमण का है भय जिनकौं, धर्मविषैं अति दृढ़ महा दयावान सत्य वचन के अनुरागी होवेंगे। तिन दोऊनि के ऐसा ही साम्य कर्म का उदय है। हे कोमल

भाषिणी ! हे दयावती ! प्राणी जैसा कर्म करै है तैसा ही शरीर धरै है ऐसा कहकर वे दोऊ राजा राणी जिनेन्द्र की महापूजा विषैं प्रवर्ते । कैसे हैं वे ? रात दिवस नियम धर्म विषैं सावधान हैं।

अथानंतर प्रथम ही गर्भविषै रावण आए, तब माता की चेष्टा कुछइक क्रूर होती भई, यह बांछा भई कि वैरियों के सिर पर पांव धरूं । राजा इन्द्र के ऊपर आज्ञा चलाऊं, बिना कारण भोंहें टेढी करनी, कठोर वाणी बोलना, यह चेष्टा होती भई । शरीर में खेद नाहीं, दर्पण विद्यमान है तौ भी खडग में मुख देखना, सखी जनसूं खीझ उठना, काहू की शंका न राखनी ऐसी उद्धत चेष्टा होती भई । नवमें महीने रावणका जन्म भया । जासमय पुत्र जन्म्या तासमय वैरियों के आसन कंपायमान भए, सूर्यमान है ज्योति जाकी ऐसा बालक ताकूं देखकर परिवार के लोकनि के नेत्र थकित होय रहे । देव दुंदभी बाजे बजने लगे, वैरीन के घर विषै अनेक उत्पात होने लगे, माता पिता ने पुत्र के जन्म का अति हर्ष किया, प्रजा के सर्व भय मिटे, पृथ्वीका पालक उत्पन्न भया, सेज पर सूधे पड़े अपनी लीला कर देवनि समान है दर्शन जिनका, राजा रत्नश्रवा ने बहुत दान दिया । आगें इनके बड़े जो राजा मेघवाहन भए, उनको राक्षसनि के इन्द्र भीम ने हार दिया हुता जाकी हजार नागकुमार देवरक्षा करैं, सो हार पास धरा था सो प्रथम दिवस ही के बालक ने खच लिया, बालक की मुट्ठी में हार देख माता आश्चर्य को प्राप्त भई अर महास्नेहतैं बालकको छाती सें लगाय लिया अर सिर चूंमा अर पिता ने भी हार सहित बालक को देख मनमें विचारी कि यह कोई महापुरुष है, हजार नागकुमार जाकी सेवा करैं ऐसे हारतैं होता ही बालक क्रीड़ा करता भया । यह सामान्य पुरुष नाहीं, याकी शक्ति ऐसी होयगी जो सर्व मनुष्यों को उलघै । आगे चारण मुनि ने मुझे कह्या हुताकि तेरे पदवीधर पुत्र उत्पन्न होवेंगे सो प्रति वासुदेव शलाका पुरुष प्रगट भए हैं । हार के योग से दसबदन पिता को नजर आए तब उनका दशानन नाम धर्‍या । बहुरि कुछ काल में कुम्भकरण भये सो सूर्य समान है तेज जिनका, बहुरि कुछ इक काल में पूरणमासी के चंद्रमा समान बदन जाका ऐसी चद्रनखा बहिन भई, बहुरि विभीषण भए जो महासौम्य धर्मात्मा, पाप कर्मतें रहित मानो साक्षात् धर्म ही देहधारी अवतरा है । यद्यपि जिनके गुणनिकी कीर्ति जगतविषै गाइए है ऐसे दशानन की बालक्रीड़ा दुष्टनि को भयरूप होती भई अर दोऊ भाईयनिकी क्रीडा सौम्य रूप होती भई। कुम्भकर्ण अर विभीषण दोनों के मध्य चन्द्रनखा चांद सूर्य के मध्य सन्ध्या समान शोभती भई । रावण बाल अवस्था को उलंघ करि कुमार अवस्था में आया। एक दिन रावण अपनी माता की गोद में तिष्ठे था, अपने दांतनि की कांति से दसों दिशा

मैं उद्योत करता संता जिसके सिर पर चूडामणि रत्न धरा है, ता समय वैश्रवण आकाश मार्ग से जाय था सो रावण के ऊपर होय निकस्या, अपनी कांति करि प्रकाश करता संता विद्याधरों के समूहकरि युक्त महा बलवान विभूति का धनी मेघ समान अनेक हाथियों की घटा मदकी धारा बरसते जिनके बिजली समान सांकल चमके, महाशब्द करते। आकाश मार्ग से निकसे सो दसों दिशा शब्दायमान होय गईं। आकाश सेना करि व्याप्त होय गया। सो रावणने ऊंची दृष्टिकर देख्या तो बड़ा आडम्बर देखकर माताकूं पूंछी, यह कौन है अर अपने मानसे जगतको तृण समान गिनता महा सेनासहित कहाँ जाय है तब माता कहती भई "तेरी मौसीका बेटा है, सर्व विद्या याकूं सिद्ध हैं, महा लक्ष्मीवान है, शत्रुओं को भय उपजावता संता पृथ्वी विषै विचरै है, महा तेजवान है मानों दूसरा सूर्य ही है, राजा इन्द्रका लोकपाल है। इन्द्र ने तिहारे दादा का भाई माली युद्ध में हराया अर तुम्हारे कुल में चली आई जो लंकापुरी वहांसे तुम्हारे दादे को निकासकर ये राख्या सो लंकामें थाणै रहै है। यह लंका के लिये तेरा पिता निरन्तर अनेक मनोरथ करै है, रात दिन चैन नाहीं पड़ै है अर मैं भी इस चितामें सूख गई हूँ। पुत्र! स्थान भ्रष्ट होनेतैं मरण भला? ऐसा दिन कब होय जो तू अपने कुलकी भूमिको प्राप्त होय अर तेरी लक्ष्मी हम देखें, तेरी विभूति देखकरि तेरे पिताका अर मेरा मन आनन्दको प्राप्त होय, ऐसा दिन कब होयगा जब तेरे यह दोनों भाइयों को विभूति सहित तेरी लार इस पृथ्वी पर प्रताप युक्त हम देखेंगे, तिहारे कंटक न रहेगा"। तब माता के दीन वचन सुन अर अश्रुपात डारती देखकर विभीषण बोले, कैसे हैं विभीषण? प्रगट भया है क्रोधरूप विष का अंकूर जिनके, हे माता! कहां यह रंक वैश्रवण विद्याधर जो देव होय तो भी हमारी दृष्टि में न भावै। तुमने इसका इतना प्रभाव वर्णन किया सो कहा? तू वीरप्रसवनी अर्थात् योधाओं की माता है, महाधीर है अर जिनमार्गमें प्रवीण है, यह संसारकी क्षणभंगुर माया तो तैं छानी नाहीं, काहेकौं ऐसे दीन वचन कायर स्त्रियों के समान तू कहै है? क्या तोकूं रावण की खबर नाहीं है, महा श्रीवत्सलक्षणकर मंडित, अद्भुत पराक्रमका धरण हारा महाबली, अपार है चेष्टा जाकी, भस्म करि जैसे अग्नि दबी रहै तैसे मौन गह रह्या। यह समस्त शत्रु वर्गनिके भस्म करने को समर्थ है, तेरे मन विषैं अबतक नहीं आया है, यह रावण अपनी चाल से चित्त को भी जीतै है अर हाथ की चपेटसे पर्वतों को चूरकर डारै है, याकी दोऊभुजा त्रिभुवनरूप मंदिर के स्तम्भ हैं अर प्रताप को राजमार्ग है। क्षत्रवती-रूप वृक्षके अंकुर हैं सो क्या तैनें नहीं जाने? या भांति विभीषण ने रावण के गुण वर्णन किये। तब रावण मातासे कहता भया, हे माता! गर्वके वचन कहने योग्य नाहीं परन्तु

तेरे सन्देह के निवारण अर्थि मैं सत्य कहूं हूं सो तू सुन। जो यह सकल विद्याधर अनेक प्रकार विद्याकरि गर्वित दोऊ श्रेणिनिके एकत्र होयकर मेरे से युद्ध करैं तौ भी मैं सबनिकूं एक भुजा से जीतूं।

[रावण का दोनों भाइयों सहित भीम नामक महाबन में विद्या साधन करना]

तथापि हमारे विद्याधरनिके कुलविषैं विद्या का साधन उचित है सो करते लाज नाहीं। जैसे मुनिराज तपका आराधन करें तैसें विद्याधर विद्या का आराधन करें, सो हमको करना योग्य है। ऐसा कहकर दोऊ भाईयनि सहित माता पिता को नमस्कार कर नवकार मन्त्रका उच्चारण कर रावण विद्या साधनेको चाले। माता पिताने मस्तक चूमा अर आसीस दीनी, पाया है मंगलसंस्कार जिन्होंने, स्थिरभूत है चित्तजिनका, घरतैं निकरिकर हर्षरूप होय भीम नामा महाबन में प्रवेश किया। कैसा है बन? जहां सिंहादि क्रूर जीव नाद कर रहे हैं, विकराल है दाढ अर वदन जिनके अर सूते जे अजगर तिनके निश्वास से कंपायमान हैं, बड़े बड़े वृक्ष जहाँ अर नीचे हैं व्यंतरों के समूह जहां, जिनके पांयन से कंपायमान है पृथ्वीतल जहां अर महागंभीर गुफाओं में अंधकारका समूह फैल रहा है, मनुष्योंकी तो कहा बात? जहा देव भी गमन न कर सके हैं, जाकी भयंकरता पृथ्वी में प्रसिद्ध है, जहां पर्वत दुर्गम, महा अंधकारकों धरै गुफा अर कटकरूप वृक्ष हैं, मनुष्यों का संचार नाहीं। तहां ये तीनों भाई उज्ज्वल धोती दुपट्टा धारे शांति भावको ग्रहण कर सर्व आशा निवृत्त कर विद्याके अर्थि तप करवेकों उद्यमी भए। कैसे हैं ते भाई, निशंक है चित्त जिनका, पूर्ण चंद्रमा समान है वदन जिनका, विद्याधरनिके शिरोमणि, जुदे जुदे बन में विराजे हैं, डेढ़ दिनमें अष्टाक्षर मंत्रके लक्ष जाप किये सो सर्वकामप्रदा विद्या तीनों भाईयनिकों सिद्ध भई सो इनको मनबाँछित अन्न विद्या पहुँचावै, क्षुधाकी बांछा इनको न होती भई। बहुरि ये स्थिरचित्त होय सहस्रकोटि षोडशाक्षर मन्त्र जपते भए। उससमय जम्बूद्वीपका अधिपति अनावृति नामा यक्ष, स्त्रीनि सहित क्रीडा करता आय प्राप्त हुवा। सो ताकी देवांगना इन तीनों भाईनिकूं महा रूपवान अर नवयौवन अर तप विषैं सावधान है मन जिनका ऐसे देख कौतुक कर इनके समीप आई। कमल समान हैं मुख जिनके, भ्रमर समान हैं श्याम सुन्दर केश जिनके, कैएक आपसमें बोली- 'अहो! यह राजकुमार अति कोमल शरीर कांतिधारी वस्त्राभरणरहित कौन अर्थि तप करै है? ऐसे इनके शरीरकी कांति भोगनि बिना न सोहै, कहां इनकी नवयौवन वय अर कहां यह भयानक वन विषैं तप करना।" बहुरि इनके तपके डिगाववेके अर्थ कहती भई-"अहो अल्पबुद्धि! तुम्हारा सुन्दर रूपवान शरीर भोगका साधन है, योगका साधन नाहीं;

तातें काहेकों तपका खेद करो हो, उठो घर चलो, अब भी कुछ गया नाहीं" इत्यादि अनेक बचन कहे परन्तु इनके मन में एकहू न आई, जैसे जलकी बिन्दु कमल के पत्र पर न ठहरै। तब वे आपस में कहती भईं, हे सखी ! ये काष्ठमई हैं, सर्व अंग इनके निश्चल दीखें हैं ऐसा कहकर क्रोधायमान होय तत्काल समीप आईं इनके विस्तीर्ण हृदय पर कुंडल की दीनी तौ भी ये चलायमान न भए। स्थिरीभूत हैं चित्त जिनका, कायर पुरुष होय सोई प्रतिज्ञासे डिगें, देवीनिके कहते अनावृत यक्षने हंसकर कहा-भो सत्पुरुषो ! काहे कों दुर्धर तप करो हो अर किस देवको आराधो हो, ऐसे कह्या तौऊ ये बोले नाहीं, चित्राम के होय रहे। तब अनावृतयक्षने क्रोध किया कि जम्बूद्वीप का देव तो मैं हूं, मुझको छोडकरि कौनकूं ध्यावैं हैं ये मंदबुद्धि हैं इनको उपद्रव करनेके अर्थि अपने किंक- रनिकौं आज्ञा दई सो किंकर स्वभावही से क्रूर हुते अर स्वामी के कहे से उन्होंने और भी अधिक अनेक उपद्रव किये। कैएक तो पर्वत उठाय २ लाए अर इनके समीप पटके तिनके भयंकर शब्द भए। कैएक सर्प होय सर्व शरीर से लिपट गए, कैएक नाहर होय मुख फाड़ कर आए अर कैएक शब्द काननि में ऐसे करते भये जिनको सुनकर लोक बहिरे हो जायं तथा मायामई डांस बहुत किये सो इनके शरीरतें आय लगे अर मायामई हस्ती दिखाये, असराल पवन चलाई, मायामई दावानल लगाई, या भांति अनेक उपद्रव किए तो भी ये ध्यानसे न डिगे, निश्चल है अंतःकरण जिनका तब देवों ने मायामई भीलनि की सेना बनाई। अंधकार समान काल विकराल आयुधोंको धर इनको ऐसी माया दिखाई कि पुष्पांतकनगरध्वस्त भया अर महायुद्धमें रत्नश्रवा को कुटुम्ब सहित बंधा हुवा दिखाया अर यह दिखाया कि माता केकसी विलाप करै है कि हे पुत्रो ! इन चांडाल भीलनि ने तिहारे पिताकूं महा- उपद्रव किया अर ये चांडाल मारैं हैं, पांवों में बेड़ी डारी हैं, माथे के केश खोंचें हैं। हे पुत्रो ! तुम्हारे आगे मोकूं ये म्लेच्छ भील पल्लीमें लिये जांय हैं, तुम कहते हुते जो समस्त विद्याधर एकत्र होय मुझसे लड़ैं तौ भी न जीता जाऊं सो यह वार्ता तुम मिथ्या ही कहते थे। अब तुम्हारे आगें म्लेच्छ चांडाल मोकूं केश पकड़ खोंचे लिये जांय हैं, तुम तीनों ही भाई इन म्लेच्छनितें युद्ध करवे समर्थ नाहीं, मंद पराक्रमी हो। हे दशग्रीव ! तेरा स्तोत्र विभीषण वृथा ही करै था, तू तो एक ग्रीवा भी नाहीं जो माता की रक्षा न करैं। अर यह कुम्भकरण हू हमारी पुकार काननितें सुने नाहीं अर ये विभीषण कहावै है सो वृथा है—एक भीलतें भी लड़नेकूं समर्थ नाहीं अर यह म्लेच्छ तिहारी बहिन चंद्रनखा को लिये जाय हैं सो तुमको लज्जा नाहीं अर विद्या जो साधिए सो माता पिताकी सेवा अर्थि, सो विद्या किस काम आवेगी ? इत्यादि मायामई देवनिनें चेष्टा दिखाई तोहू ये ध्यानसे नाहीं

छिगे। तब देवोंने एक भयानक माया दिखाई अर्थात् रावण के निकट रत्नश्रवा का सिर कट्या दिखाया। रावण के निकट भाईनिके भी सिर कटे दिखाए अर भाइयों के निकट रावणका भी सिर कट्या दिखाया सो रावण तो सुमेरुपर्वत समान अति निश्चल ही रहे। जो ऐसा ध्यान महामुनि करैं तो अष्टकर्मनिकूं छेदैं परन्तु कुंभकरण विभीषण के कछुएक व्याकुलता भई परंतु कुछ विशेष नाहीं, सो रावण को तो अनेक सहस्र विद्या सिद्ध भईं, जेते मंत्र जपने के नेम किये थे ते पूर्ण होने से पहिले ही विद्या सिद्ध भई। धर्म के निश्चयतैं कहा न होय ? ऐसा दृढ़ निश्चय भी पूर्वोपार्जित उज्ज्वल कर्मतैं होय है, कर्म ही संसार का मूलकारण है, कर्मानुसार यह जीव सुखदुःख भोगवै है, समयविषैं उत्तम पात्रों को विधि से दान देना अर दयाभाव करि सदा ही सबको देना अर अन्त सयममें समाधिमरण करना अर सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति किसी उत्तम जीवही के होय है, कैएक के तो विद्या दशवर्षमें सिद्ध होय है, कैएकके क्षणमात्र में यह सब कर्मनिका प्रभाव जानौ। रात दिन धरतीविषैं भ्रमण करो अथवा जलविषैं प्रवेश करो तथा पर्वतके मस्तक परो, अनेक शरीर के कष्ट करो तथापि पुण्य के उदय बिना कार्यसिद्धि नाही। जे उत्तम कर्म नाहीं करैं हैं ते वृथा ही शरीर खोवैं हैं, तातैं आचार्यनिकी सेवा कार्य सर्व आदरतैं करनी। देखि, पुरुषनि को सदा पुण्य ही करना योग्य है। पुण्यबिना कहांतैं सिद्धि होय ? हे श्रेणिक ! पुण्यका प्रभाव देखि जो थोड़े ही दिनोंमें विद्या अर मंत्रविधि पूर्ण भये पहिले ही रावण को महाविद्या सिद्ध भई। जे जे विद्या सिद्धि भई तिनके संक्षेपतासे नाम सुनहु। नभः संचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, दुर्निवारा, जगतकंपा, प्रगुप्ति, भानुमालिनी, अणिमा, लघिमा, क्षोम्या, मनस्तंभनकारिणी, संवाहिनी, सुरध्वंशी, कौमारी, वध्यकारिणी, सुविधाना, तमोरूपा, दहना, विपुलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिन रात्रि विधायिनी, वज्रोदरी, समाकृष्टि, अदर्शिनी, अजरा, अमरा, अनवस्तंभिनी, तोयस्तंभिनी, गिरिदारिणी, अवलोकिनी, ध्वंशी धीरा, घोरा, भुजंगिनी, वीरिनी, एकभुवना, अवध्या, दारुणा, मदनासिनी, भास्करी, भयसंभूति, ऐशानी, विजया, जया, बंधिनी, मोचनी, बाराही, कुटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शांति, कौवरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्साही, चंडा, भीतिप्रर्वाषणी इत्यादि अनेक महा विद्या रावणकों थोड़े ही दिननिमें सिद्ध भई, तथा कुम्भकरणको पांच विद्या सिद्ध भईं उनके नाम सर्वहारिणी, अतिसंवर्धिनी, जृंभिनी, व्योमगामिनी, निद्रानी तथा विभीषण को चार विद्या सिद्ध भईं सिद्धार्था, शत्रुदमनी, व्याघाता, आकाशगामिनी। ये तीनों ही भाई विद्या के ईश्वर होते भए अर देवनिके उपद्रवतैं मानों नये जन्म में आए। तब यक्षों का पति अनावृत जंबूद्वीप का स्वामी इनको विद्यायुक्त देखकर बहुत स्तुति करी अर

दिव्य आभूषण पहराए। रावण ने विद्या के प्रभाव करि स्वयंप्रभ नगर बसाया। वह नगर पर्वत के शिखर समान ऊँचे महलों की पंक्ति से शोभायमान है अर रत्नमई चैत्यालयों से अति प्रभाव को धरै है। जहां मोतिनिकी झालरीकरि ऊँचे झरोखे शोभै हैं, पद्मराग-मणियों के स्तम्भ हैं, नानाप्रकार के रत्ननिके रंगके समूहकरि जहां इन्द्रधनुष होय रहा है, रावण भाईनिसहित ता नगरमें विराजै। कैसे हैं राजमहल ? आकाश में लग रहे हैं शिखर जाके, विद्या बलकरि पंडित रावण सुखसूं तिष्ठै।

जम्बूद्वीपका अधिपति अनावृतदेव रावणसों कहता भया—"हे महामते ! तेरे धैर्य-करि मैं बहुत प्रसन्न भया अर मैं सर्व जंबूद्वीपका अधिपति हूँ, तू यथेष्ट वैरियों को जीतता संता सर्वत्र विहार कर। हे पुत्र ! मैं बहुत प्रसन्न भया अर स्मरणमात्रतें तेरे निकट आऊँगा। तब तुझे कोई भी न जीत सकेगा अर बहुत काल भाइयोंसहित सुखसों राज कर, तेरे विभूति बहुत होहु, या भांति आशीर्वाद देय बारंबार याकी स्तुतिकर यक्ष परिवार सहित अपने स्थानको गया। समस्त राक्षसवंशी विद्याधरोंने सुनी जो रत्नश्रवा का पुत्र रावण महाविद्यासंयुक्त भया सो सबको आनन्द भया। सर्व ही राक्षस बड़े उत्साह सहित रावणके पास आए। कैएक राक्षस नृत्य करें हैं, कैएक गान करें हैं, कैएक शत्रुपक्ष कों भयकारी गाजें हैं, कैएक ऐसे आनन्द करि भर गए हैं कि आनन्द अंगमें न समावै है, कैएक हंसै हैं, कैएक केलि कर रहे हैं। सुमाली रावणका दादा अर छोटा भाई माल्यवान तथा सूर्यरज रक्षरज राजा वानरवंशी सब ही सुजन आनंद सहित रावणपै चालैं, अनेक वाहनों पर चढ़ै हर्षसों आवै हैं। रत्नश्रवा रावण के पिता पुत्र के स्नेहकरि भर गया है मन जाका, ध्वजाओं से आकाश को शोभित करता संता परम विभूति सहित महामंदिर समान रत्ननिके रथपर चढ़ि आया। बंदीजन विरद बखानै हैं, सर्व इकट्ठे होयकर पंच संगम नामा पर्वत पर आए। रावण सन्मुख गया, दादा पिता अर सूर्यरज रक्षरज बड़े हैं सो इनको प्रणामकर पांयन लाग्या अर भाईनिको बगलगीरि कर मिला अर सेवक लोगोंको स्नेह की नजरसे देख्या अर अपने दादा, पिता अर अपने सूर्यरज रक्षरजसों बहुत विनयकर कुशलक्षेम पूछी। बहुरि उन्होंने रावण से पूछी, रावणको देख गुरुजन ऐसे खुशी भये जो कहनेमें न आवै। बारंबार रावण को सुखवार्ता पूछैं अर स्वयंप्रभ नगरको देखिकर आश्चर्य को प्राप्त भए। देवलोक समान यह नगर ताकूं देख कर राक्षसवंशी अर वानरवंशी सब ही अति प्रसन्न भए अर पिता रत्नश्रवा अर माता केकसी पुत्रके गातको स्पर्शते संते अर इसको बारम्बार प्रणाम करता हुआ देखकर बहुत आनंदको प्राप्त भए। दुपहर के समय रावण ने बड़ों को स्नान करावने का उद्यम

किया तब सुमाली आदि रत्नों के सिंहासनपर स्नानके अर्थि विराजे, सिंहासनपर इनके चरण पल्लवसारिखे कोमल अर लाल कैसे शोभते भए जैसें उदयाचल पर्वतपर सूर्य शोभै। बहुरि स्वर्णरत्नों के कलशादि से स्नान कराया। कलश कमलके पत्रनिकरि आच्छादित हैं मुख जिनके अर मोतियोंकी मालाकरि शोभै हैं अर महा कांतिको धरैं हैं अर सुगंधजलकरि भरे हैं, जिनकी सुगंधकरि दसों दिशा सुगंधमयी होंय रही हैं अर जिन पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। स्नान करावते जब कलशों का जल डारिए है तब मेघ सारिखे गाजैं हैं, पहले सुगंध द्रव्यनिका उबटना लगाया पीछैं स्नान कराया। स्नान के समय अनेक प्रकार के वादित्र बाजे, स्नान कराकर दिव्य वस्त्राभूषण पहराए अर कुलवंतिनी रानियों ने अनेक मंगलाचरण किए, रावणादि तीनों भाई देवकुमार सारिखे गुरुनिका अति विनयकर चरणों की वंदना करते भए, तब बड़ोंने बहुत आशीर्वाद दिये 'हे पुत्रो ! तुम बहुत काल जीवो अर महासंपदा भोगो, तुम्हारी सी विद्या और में नाहीं।' सुमाली माल्यवान सूर्यरज रक्षरज अर रत्नश्रवा इन्होंने स्नेहकरि रावण कुम्भकरण विभीषण कों उरसों लगाया। बहुरि समस्त भाई अर समस्त सेवक लोग भलीविधिसों भोजन करते भए। रावण ने बड़ेनिकी बहुत सेवा करी अर सेवक लोगोंका बहुत सन्मान किया, सबनिको वस्त्राभूषण दिये। सुमाली आदि सर्व ही गुरुजन फूल गए हैं नेत्र जिनके, रावण से अति प्रसन्न होय कहते भए। हे पुत्रो ! तुम बहुत सुख से रहो, तब वे नमस्कार कर कहते भए—हे प्रभो ! हम आपके प्रसादकरि सदा कुशलरूप हैं, बहुरि मालीकी बात चाली, सो सुमाली शोकके भारकरि मूर्छा खाय गिरा, तब रावण ने शीतोपचारकरि सचेत किया अर समस्त शत्रुओं के समूह के घातरूप सामंतता के बचन कहकर दादाको बहुत आनन्दरूप किया। सुमाली कमलनेत्र रावण को देखकरि अति आनंदरूप भए—अहो पुत्र ! तेरा उदार पराक्रम जाहि देख देवता प्रसन्न होयँ। अहो कांति तेरी सूर्यको जीतनहारी, गंभीरता तेरी समुद्रसे अधिक है, पराक्रम तेरा सर्व सामंतनिकूं उलंघै। अहो वत्स ! हमारे राक्षस कुल का तू तिलक प्रगट भया है। जैसे जंबूद्वीपका आभूषण सुमेरु है अर आकाश के आभूषणचाद सूर्य हैं, तैसें हे पुत्र रावण ! अब हमारे कुल का तू मंडन है। आश्चर्य की करणहारी तेरी चेष्टा सकल मित्रों को आनंद उपजावै है, जब तू प्रगट भया तब हमकों क्या चिंता है। आगे अपने वशमें राजा मेघ- वाहन आदि बड़े २ राजा भये, वे लंकापुरीका राज करके पुत्रोंको राज देय मुनि होय मोक्ष गए। अब हमारे पुण्यकरि तू भया। सर्व राक्षसोंके कष्ट का हरणहारा शत्रुवर्ग का जीतनहारा तू महासाहसी हम एक मुखतें तेरी प्रशंसा कहांलो करें, तेरे गुण देव भी न कहि सकें। ये राक्षस वंशी विद्याधर जीवन की आशा छोड़

बैठे हुते सो अब सबकी आशा बंधी। तू महावीर प्रगट भया है। एक दिन हम कैलाश पर्वत गए हुते, तहाँ अवधिज्ञानी मुनि को हमने पूछी-हे प्रभो! लंका में हमारा प्रवेश होयगा कि नहीं? तब मुनि ने कही कि-तुम्हारे पुत्र का पुत्र होयगा ताके प्रभावकरि तुम्हारा लंका में प्रवेश होयगा। वह पुरुषों में उत्तम होयगा। तुम्हारा पुत्र रत्नश्रवा राजा व्योमबिंदुकी पुत्री केकसी को परणेगा ताकी कुक्षि में वह पुरुषोत्तम प्रगट होयगा, सो भरतक्षेत्र के तीन खण्डका भोक्ता होगा। महा बलवान, विनयवान, जाकी कीर्ति दसों दिशा में विस्तरेगी। वह वैरियोंसे अपना वास छुड़ावेगा अर वैरियोंके वास दावेगा सो यामें आश्चर्य नाहीं। सो तू महाउत्सवरूप कुलका मंडन प्रगट्या है, तेरासा रूप जगत में और काहूका नाहीं, तू अपने अनुपमरूपकरि सबके नेत्र अर मनकों हरै है, इत्यादिक शुभ वचनोंसे सुमाली ने रावणकी स्तुती करी। तब रावण हाथ जोड़ नमस्कारकरि सुमालीसों कहता भया कि हे प्रभो! तुम्हारे प्रसादकरि ऐसा ही होहु। ऐसा कहकरि णमोकार मंत्र जप पंचपरमेष्ठीनिकों नमस्कार किया, सिद्धोंका स्मरण किया जिनसैं सर्व सिद्धि होय।

आगें गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसों कहै हैं-हे श्रेणिक! उस बालक के प्रभाव से बन्धुवर्ग सर्व राक्षसवंशी अर बानरवंशी अपने अपने स्थानक आय बसे, वैरियोंका भय न किया। या भांति पूर्वभव के पुण्यसे पुरुष लक्ष्मी को प्राप्त होय हैं। अपनी कीर्तिसे व्याप्त करी है दसों दिशा जिसने, ऐसा वह बालक होता भया। इस पृथ्वी में बड़ी उमर का बूढ़ा होना तेजस्विता का कारण नाहीं है जैसें अग्नि का कण छोटा ही बड़े बन को भस्म करै है अर सिंह का बालक छोटा हो माते हाथियों के कुम्भस्थल विदारै है अर चन्द्रमा उगता ही कुमुदों को प्रफुल्लित करै है अर जगत का सताप दूर करै है अर सूर्य ऊगता ही काली घटा समान अंधकार को दूर करै है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषै रावणका जन्म और विद्यासाधन कहने वाला सातवाँ पर्व पूर्ण भया ॥ ७ ॥

—:०:—

(अष्टम पर्व)

[दशानन (रावण) का कुटुम्बादि परिचय और विभवका दिग्दर्शन]

अथानंतर दक्षिण श्रेणी में असुरसंगीत नामा नगर तहाँ राजा मय विद्याधर बड़े योधा विद्याधरों में दैत्य कहावैं, जैसें रावण के बड़े राक्षस कहावैं, इन्द्र के कुल के देव

कहावैं। ये सब विद्याधर मनुष्य हैं। राजा मयकी रानी हैमवती पुत्री मन्दोदरी, जिसके सर्व अंगोपांग सुन्दर, विशाल नेत्र, रूप अर लावण्यता रूपी जलकी सरोवरी ताकों नव-यौवनपूर्ण देख पिता को परणावनेकी चिंता भई। तब अपनी रानी हैमवतीसों पूछ्या हे प्रिये! अपनी पुत्री मंदोदरी तरुण अवस्था कों प्राप्त भई सो हमको बड़ी चिंता है। पुत्रियों के यौवनके आरम्भसे जो संतापरूप अग्नि उपजै तामें माता पिता कुटुम्ब सहित ईंधन के भाव को प्राप्त होय हैं। तातैं तुम कहो, यह कन्या किसको परणावैं? गुण में कुल में कान्ति में इसके समान होय ताकों देनी। तब रानी कहती भई, हे देव! हम पुत्रीके जनने अर पालनेमें हैं। परणावना तुम्हारे आश्रय है, जहां तुम्हारा चित्त प्रसन्न होय तहां देहु। जो उत्तम कुलकी बालिका हैं ते भरतारके अनुसार चालैं हैं। जब रानीने यह कह्या तब राजा ने मन्त्रिनितैं पूछ्या। तब किसी ने कोई बताया, किसी ने इन्द्र बताया कि वह सब विद्याधरों का पति है ताकी आज्ञा लोपते सर्व विद्याधर डरैं हैं। तब राजा मय ने कही मेरी तो रुचि यह है जो यह कन्या रावण को देनी, क्योंकि उसको थोड़े ही दिनों में सर्व विद्या सिद्ध भई है तातैं यह कोई बड़ा पुरुष है, जगत को आश्चर्य का कारण है। तब राजा के बचन मारीच आदि सब मंत्रियों ने प्रमाण किये। मंत्री राजा के साथ कार्य में प्रवीण हैं। तब भले ग्रह लग्न देख क्रूर ग्रह टार मारीचको साथ लेय राजा मय कन्याके परणावनेको कन्या रावणपै ले चाले। रावण भीम नामा वनमें चंद्रहास खड्ग साधनेको आये हुते अर चंद्रहासको सिद्धकर सुमेरु पर्वतके चैत्यालयोंकी बन्दनाको गए हुते, सो राजा मय हलकारोंके कहनेसे भीम नामा बनमें आये, कैसा है वह बन? मानों काली घटा का समूह ही है, जहां अति सघन अर ऊंचे वृक्ष हैं, वन के मध्य एक ऊंचा महल देख्या मानो अपने शिखरनिकरि स्वर्गको स्पर्शै है। रावणने जो स्वयंप्रभ नामा नया नगर बसाया है ताके समीप ही यह महल है, सो राजा मय विमानतैं उतरि करि महल के समीप डेरा किया अर वादित्रादि सर्व आडम्बर छोडि कैएक निकटवर्ती लोकनि सहित मन्दोदरी को लेय महलपर चढ़े। सातवें खण गये तहां रावणकी बहिन चन्द्रनखा बैठी हुती, कैसी है चन्द्रनखा? मानो साक्षात् बनदेवी ही है। या चन्द्रनखाने राजा मयको अर ताकी पुत्री मंदोदरी को देखकर बहुत आदर किया सो बड़े कुलके बालकनिके यह लक्षण ही हैं। बहुरि विनयसंयुक्त इनके निकट बैठी। तब राजा मय चन्द्रनखा को पूछते भये, हे पुत्री! तू कौन है? कौन कारण या बन में अकेली बसै है? तब चन्द्रनखा बहुत विनयसों बोली—मेरा बड़ा भाई रावण सो बेला करि चंद्रहास खड्ग को सिद्धकरि अब मोहि खड्ग की रक्षा सौंपि सुमेरुपर्वतके चैत्यालयनिकी बन्दनाको गए हैं। मैं भगवान श्रीचन्द्रप्रभु के

चैत्यालयविषें तिष्ठू हूं, तुम बड़े हितू संबन्धी सो जो रावणसूं मिलवे आये हो तो क्षणक यहां विराजो। या भांति इनकें बात होय है अर रावण आकाशके मार्ग होय आवे ही को तेजका समूह नजर आया। तब चन्द्रनखाने कही कि अपने तेजसे सूर्य के तेजको जीतता थका यह रावण आया है। तब राजा मय मेघनिकें समूह समान श्यामसुन्दर अर बिजुरी समान चमकते हुए आभूषण पहिरे रावणकूं देखि बहुत आदरतें उठ खड़े रहे अर रावण सें मिले अर सिंहासन पर विराजे। तब राजा मय के मंत्री मारीच तथा वज्रमध्य अर वज्रनेत्र अर नभस्तडित्, उग्र, बक्र, मरुध्वज, मेधावी, सारण, सुक ये सब ही रावणको देखि बहुत प्रसन्न भए अर राजा मयसों कहते भये कि हे देव ! आपकी बुद्धि अति प्रवीण है, जो मनुष्यनि में महा पदार्थ था सो तुम्हारे मन में बस्या। या भांति राजा मयसे कह कर ये मंत्री रावणसौं कहते भए—हे रावण ! हे महाभाग्य ! आपका अद्भुत रूप अर महा पराक्रम है अर तुम अति विनयवान अतिशयके धारी अनुपम वस्तु हो। यह राजामय दैत्योंका अधिपति दक्षिण श्रेणीमें असुरसंगीत नामा नगर का राजा है, पृथ्वी विषें प्रसिद्ध है। हे कुमार ! तुम्हारे गुणनिविषें अनुरागी हुआ आया है।

तब रावण ने इनका बहुत शिष्टाचार किया अर पाहुणगति करी अर बहुत मिष्ट वचन कहे सो यह बड़े पुरुषनिके घर की रीति ही है कि जो अपने द्वार आवै तिनका आदर करै ही करै। तब रावण मय कें मंत्रीनिसौं कहाकि ये दैत्यनाथ बड़े हैं, मोहि अपना जान अनुग्रह किया। तब राजामय ने कहा कि हे कुमार ! तुमको यही योग्य है, जे तुम सारिखे साधु पुरुष हैं तिनके सज्जनता ही मुख्य है। बहुरि रावण श्रीजिनेश्वरदेव की पूजा करने को जिनमंदिरविषें गए। राजा मय को अर याके मंत्रीनिहूकूं ले गये। रावण ने बहुत भाव से पूजा करी, भगवान के आगें स्तोत्र पढ़े, बारम्बार हाथि जोड़ि नमस्कार कियें, रोमांच होय आये, अष्टांग दंडवत कर जिनमंदिरतें बाहिर आए। कैसे हैं रावण ? अधिक है उदय जिनका अर महासुन्दर है चेष्टा जिनकी, चूड़ामणि करि शोभै है शिर जिनका, चैत्यालयतें बाहिर आय राजामय सहित आप सिंहासन पर विराजे। राजासे वैताड पर्वतके विद्याधरोंकी बात पूछी अर मंदोदरी की ओर दृष्टि गई तो देखकर मन मोहित भया। कैसी है मंदोदरी ? सौभाग्यरूप रत्ननिकी भूमिका, सुन्दर हैं नख जाके, कमल समान हैं चरण जाके, स्निग्ध हैं तनु जाका अर केलाके थंभसमान मनोहर है जंघा जाकी, लावण्यतारूप जलका प्रभाव ही है, महालज्जा के योगत नीची है दृष्टि जाकी, सुवर्ण के कुम्भसमान हैं स्तन जाके, पुष्पों से अधिक है सुगंधता अर सुकुमारता जाकी अर कोमल हैं दोऊ भुजलता जाकी अर शंखके समान है ग्रीवा (गरदन) जाकी,

पूर्णिमा के चन्द्रमा समान है मुख जाका, शुकहूतें अधिक सुन्दर है नासिका जाकी, मानों दोऊ नैननिकी कांतिरूपी नदीका यह सेतुबन्ध ही है। मूंगा अर पल्लव से अधिक लाल हैं अधर (होठ) जाके अर महाज्योतिको धरैं अति मनोहर हैं कपोल जाके अर वीणा का नाद, भ्रमर का गुंजार अर उन्मत्त कोयलके शब्दसे भी अति सुन्दर हैं शब्द जाके अर कामकी दूती समान सुन्दर है दृष्टि जाकी, नीलकमल अर रक्त कमल अर कुमुद भी जीतैं ऐसी श्यामता आरक्तता शुक्लताको धरै, मानों दसों दिशा में तीन रङ्ग के कमलोंके समूह ही विस्तार राखे हैं अर अष्टमीके चन्द्रमा समान मनोहर है ललाट जाका अर लम्बे बांके काले सुगन्ध सघन सचिक्कण हैं केश जाके, कमल समान है हाथ अर पांव जाके अर हंसनी तथा हस्तिनी की चालकूं जीतै ऐसी है चाल जाकी अर सिंहहूतैं अति क्षीण है कटि जाकी. मानों साक्षात् लक्ष्मी ही कमल के निवासी को तजकर रावणके निकट ईर्षा को धरती हुई आई है। क्योंकि मेरे होते संते रावण के शरीरको विद्या क्यों स्पर्शी. ऐसैं अद्भुत रूपको धरणहारी मंदोदरी रावण के मन अर नयननिकूं हरती भई। सकल रूपवती स्त्रीनिके रूप लावण्य एकत्रकरि इसका शरीर शुभ कर्मनिके उदयकरि बना है, अंग अंगमें अद्भुत आभूषण पहरैं महा मनोज्ञ मंदोदरीको अवलोकनकरि रावणका हृदय काम बाणकरि बींध्या गया, महा मधुरताकरि युक्त जो वह ताविषैं रावण की दृष्टि गयी संती नीठ नीठ पाछी आई परन्तु मत्त मधुकरको नाईं घूमने लग गई। रावण चित्तमें चितवै है कि यह उत्तम नारी कौन है? श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, सरस्वती इनमें से यह कौन है? परणी है वा कुमारी? समस्त श्रेष्ठ स्त्रियों की यह शिरोमणि है, यह मन इन्द्रियनिकौं हरणहारी, जो मैं परणूं तो मेरा नवयौवन सफल है, नाहीं तो तृणवत् वृथा है। ऐसा चितवन रावणने किया। तब राजा मय मन्दोदरी के पिता बड़े प्रवीण याका अभिप्राय जानि मन्दोदरीकौं निकट बुलाय रावणसौं कही—"याके तुम्हीं पति हो।" यह वचन सुन रावण अति प्रसन्न भया मानों अमृतकरि सींच्या है गात जाका, हर्षके अंकुर समान रोमांच होय आए। सर्व वस्तुनिकी इनके सामग्री हुती हो, ताही दिन मन्दोदरी का विवाह भया। रावण मन्दोदरी को परणकरि अति प्रसन्न होय स्वयंप्रभ नगर में गए, राजा मय भी पुत्रीको परणाय निश्चिंत भए। पुत्रीके विछोहतैं शोकसहित अपने देशको गए। रावणने हजारों राणी परणीं, उन सबकी शिरोमणि मन्दोदरी होती भई। मन्दोदरी भर्त्तारके गुणों में हरा गया है मन जाका, पति की अति आज्ञा कारिणी होती भई, रावण तासहित जैसें इन्द्र इन्द्राणी सहित रमैं तैसे सुमेरुके नंदनवनादि रमणीक स्थानिमें रमते भये। कैसी है मंदोदरी? सर्व चेष्टा मनोज्ञ हैं जाकी, अनेक विद्या जो

रावण ने सिद्ध करी हैं तिनकी अनेक चेष्टा रावण दिखावते भए। एक रावण अनेक रूप धर अनेक स्त्रियों के महलों में कौतूहल करै, कभी सूर्यकी नाईं तपै, कभी चंद्रमा की नाईं चाँदनी विस्तारै, अमृत बरसावै, कभी अग्निकी नाईं ज्वाला विस्तारै, कभी मेघ की नाईं जलधारा बरसावै, कभी पवन की नाईं पहाड़ों को चलावै, कभी इन्द्रकीसी लीला करै, कभी वह समुद्र कीसी तरंग धरै, कभी वह पर्वत समान अचल दशा ग्रहै। कभी माते हाथी समान चेष्टा करै, कभी पवनतैं अधिक वेगवाला अश्व बन जाय। क्षण में नजीक, क्षण में अदृश्य, क्षण में सूक्ष्म, क्षणमें स्थूल, क्षण में भयावक क्षण में मनोहर, या भांति रमता भया।

एक दिवस रावण मेघ पर्वत पर गया तहाँ एक वापिका देखी। निर्मल है जल जाका. अनेक जाति के कमलनि से रमणीक है अर क्रौंच हंस चकवा सारस इत्यादि अनेक पक्षीनिके शब्द होय रहे हैं अर मनोहर हैं तट जाके, सुन्दर सिवाणोंकरि शोभित हैं, जिसके समीप अर्जुन आदि जातिके बड़े बड़े वृक्षों की छाया होय रही है, जहां चंचल मीन की कलोलनिकरि जलके छींटे उछल रहे हैं। तहाँ रावणने अति सुन्दर छै हजार राजकन्या क्रीड़ा करती देखीं। कैएक तो जलकेलिमें छींटे उछालै हैं, कैएक कमलनिके वन में घुसी हुई कमलवदनी कमलनिकी शोभाको जीतै हैं। भ्रमर कमलोंकी शोभाको छोड़कर इनके मुखपर गुंजार करै हैं, कैएक मृदंग बजावै हैं, कैएक बीण बजावै हैं, ये समस्त कन्या रावणको देखकरि जलक्रीड़ाकों तज खड़ी होय रहीं, रावण भी उनके बीच जाय जल क्रीड़ा करने लगे, तब वे भी जल क्रीड़ा करने लग गईं। वे सर्व रावणका रूप देख कामबाण करि बींधीं गईं। सबकी दृष्टि यासौं ऐसी लगी जो अन्यत्र न जाय। याके अर उनके रागभाव भया। प्रथम मिलाप की लज्जा अर मदनका प्रगट होना सो तिनका मन हिंडोले में झूलता भया। तिन कन्याओं में जो मुख्य हैं उनका नाम सुनो। राजा सुरसुन्दर रानी सर्वश्री की पुत्री पद्मावती, नीलकमल सारिखे हैं नेत्र जाके। बहुरि राजा बुध राणी मनोवेगा ताकी कन्या अशोकलता मानो साक्षात् अशोक की लता ही है। अर राजा कनक राणी संध्याकी पुत्री विद्युतप्रभा जो अपनी प्रभा कर विजुली की प्रभा को लज्जावंत करै है, सुन्दर है दर्शन जाका, बडे कुलनि की बेटी; सब ही अनेक कलाकर प्रवीण-उनमें ये मुख्य हैं मानो तीन लोककी सुन्दरता ही मूर्ति धरकर विभूति सहित आई हैं। सो रावण ये छैः हजार कन्या गंधर्व विवाहकर परणी। ते भी रावणसहित नाना प्रकार की क्रीड़ा करती भईं।

तब इनकी लार जे खोजे वा सहेली हुतीं ते इनके माता पितानि से सकल वृतांत

जाकर कहती भई । तब उन राजाओं ने रावण के मारिवे को क्रूर सामन्त भेजे, ते भ्रुकुटी चढ़ाए होठ डसते आए, नाना प्रकार के शस्त्रोंकी वर्षा करते भए। ते सकल अकेले रावण ने क्षणमात्र में जीत लिये। तब भागकर कांपते हुये राजा सुरसुन्दर पै गए, जायकर हथियार डार दिये अर बीनती करते भए 'हे नाथ ! हमारी आजीविकाकों दूर करो अथवा घर लूट लेवो अथवा हाथ पांव छेदो तथा प्राण हरो, हम रत्नश्रवा का पुत्र जो रावण तासूं लडवे को समर्थ नाहीं। ते समस्त छै हजार राजकन्या उसने परणीं अर उनके मध्य क्रीड़ा करै है। इन्द्र सारिखा सुन्दर चंद्रमा समान कांतिधारी, जाकी क्रूर दृष्टि देव भी न सहार सकें, ताके सामने हम रंक कौन ? हमने घनें ही शूरवीर देखे, रथनूपुर का धनी राजा इन्द्र आदि याकी तुल्य कोऊ नाहीं। यह परम सुन्दर महा शूरवीर है।' ऐसे वचन सुन राजा सुरसुन्दर महा क्रोधायमान होय राजा बुध अर कनक सहित बडी सेना लेय निकसे, और भी अनेक राजा इनके संग भए, सो आकाशमें शस्त्रनिकी कांतिसे उद्योत करते आए। इन सब राजाओं को देखकरि ये समस्त कन्या भयकर व्याकुल भईं अर हाथ जोड़ रावणसौं कहती भईं कि हे नाथ ! हमारे कारण तुम अत्यन्त संकट को प्राप्त भए, हम पुण्यहीन हैं, अब आप उठकर कहीं शरण लेवो; क्योंकि ये प्राण दुर्लभ हैं तिनकी रक्षा करो। यह निकट ही श्रीभगवान का मंदिर है तहाँ छिप रहो, यह क्रूर बैरी तुमको न देख आप ही उठ जावेंगे। ऐसे दीन वचन स्त्रीनिके सुन कर शत्रूनिका कटक निकट आया देख रावण ने लाल नेत्र किये अर इनिसौं कहते भए, 'तुम मेरा पराक्रम नाहीं जानो हो, काक अनेक भेले भए तो कहा, क्या गरुड को जीतेंगे ? एक सिंहका बालक अनेक मदोन्मत्त हाथियोंके मदकूं दूर करै है।' ऐसे रावण के वचन सुन स्त्री हर्षित भईं अर बीनती करी "हे प्रभो ! हमारे पिता अर भाई अर कुटुंबनिकी रक्षा करहू।" तब रावण कहते भए—'हे प्यारी हो ! ऐसें ही होयगा, तुम भय मत करो, धीरता गहो। यह बात परस्पर होय है। इतने में राजाओं के कटक आए, तब रावण विद्या के रचे विमानमें बैठ क्रोधकरि उनके सन्मुख भया। ते सकल राजा अर उनके योधाओं के समूह जैसें पर्वतपर मोटी धारा मेघकी बरसै तैसें वाणोंकी वर्षा करते भए। वह रावण विद्याओंके सागर ताने शिलानिपरि सर्व शस्त्र निवारे अर केएकनिको शिलानकरि ही भय को प्राप्त किए। बहुरि मनमें विचारा कि इन रंकोंके मारवेकरि कहा, इनमें जो मुख्य राजा हैं तिनही को पकड़ लेवो। तब इन राजानिकौं तामस शस्त्रोंसे मूर्छितकर नागपाससे बांध लिया। तब इन छै हजार स्त्रियोंने बीनती कर छुडाये, तब रावण तिन राजानिकी बहुत सुश्रूषा करी अर कहा कि तुम हमारे परम हितु संबंधी

हो। तब वे रावण का शूरत्वगुण देख, महा विनयवान रूपवान देख बहुत प्रसन्न भए। अपनी-अपनी पुत्रीनिका विधिपूर्वक पाणिग्रहण कराया। तीन दिनतक महाउत्सव प्रवर्त्या। ते राजा रावणकी आज्ञा लेय अपने अपने स्थानकौं गए। रावण मंदोदरी के गुणोंकर मोहित है चित्त जाका सो स्वयंप्रभ नगरमें आए तब याको स्त्रीनसहित आया सुन कुंभकरण विभीषण भी सन्मुख गए, रावण बहुत उत्साहसे स्वयंप्रभनगरमें आए अर सुरराजवत् रमते भए।

अथानंतर कुंभपुर का राजा मंदोदर ताके राणी स्वरूपा ताकी पुत्री तडिन्माला सो कुंभकरण जाका प्रथम नाम भानुकर्ण था, ताने परणी। कैसे हैं कुंभकरण? धर्मविषैं आसक्त है बुद्धि जिनकी अर महा योधा हैं, अनेक कलागुण में प्रवीण हैं। हे श्रेणिक! अन्यमति लोक जो इनकी कीर्ति और भांति कहै हैं कि मांस अर लोहूका भक्षण करते हुते, छै महीनाकी निद्रा लेते सो नाहीं। इनका आहार बहुत पवित्र स्वादरूप सुगंधमय था, प्रथम मुनीनिकौं आहार देय अर आर्यादिकको आहार देय दुखित भुखित जीवनिको आहार देय कुटुंब सहित योग्य आहार करते हुते। मांसादिककी प्रवृत्ति नहीं थी अर निद्रा इनको अर्धरात्रि पीछे अल्प थी, सदा काल धर्मविषैं लवलीन था चित्त जिनका। चरमशरीरी जो लोग बड़े पुरुषनिको झूठा कलंक लगावै हैं ते महापापका बंध करै हैं, ऐसा करना योग्य नाहीं।

अथानंतर दक्षिण श्रेणीमें ज्योतिप्रभ नामा नगर तहां राजा विशुद्धकमल राजा मय का बड़ा मित्र ताके रानी नंदनमाला पुत्री राजीवसरसी सो विभीषण ने परणी, अति सुन्दर उस रानी सहित विभीषण अति कौतूहल करते भए, अनेक चेष्टा करते जिनको रतिकेलि करते तृप्ति नाहीं। कैसे हैं विभीषण? देवनिके समान परम सुन्दर है आकार जिनका अर कैसी है रानी? लक्ष्मीसे भी अधिक सुन्दर है। लक्ष्मी तो पद्म कहिए कमल ताकी निवासिनी है अर यह रानी पद्मरागमणिके महलकी निवासिनी है।

अथानंतर रावण की राणी मंदोदरी गर्भवती भई सो याकों माता पिता के घर लें गए तहां इंद्रजीत का जन्म भया। इंद्रजीतका नाम समस्त पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध हुआ। अपने नानाके घर वृद्धिको प्राप्त भया, सिंहके बालककी नाईं साहसरूप उन्मत्त क्रीड़ा करता भया। रावणने पुत्रसहित मंदोदरी अपने निकट बुलाई, सो आज्ञा प्रमाण आई। मंदोदरी के माता पिताकौं इनके विछोहका अति दुःख भया। रावण पुत्र का मुख देखकरि परम आनंद को प्राप्त भया, सुपुत्र समान और प्रीति का स्थान नाहीं, फिर मंदोदरी कौं गर्भ रह्या, तब माता पिता के घर फेरि ले गए तहाँ मेघनाद का जन्म भया। फिर

भरतार के पास आई, भोगके सागरमें मग्न भई, मंदोदरी ने अपने गुणों से पति का चित्त वश किया। अब ये दोनों बालक इंद्रजीत अर मेघनाथ सज्जनों को आनंद के करणहारे सुंदर चारित्र के धारक तरुण अवस्था कों प्राप्त भए, विस्तीर्ण हैं नेत्र जिनके, सो वृषभ समान पृथ्वी का भार चलावनहारे हैं।

अथानंतर वैश्रवण जिन-जिन पुरों में राज करै, उन हजारों पुरोंमें कुम्भकरण धावे करते भये। जहां इन्द्र का वैश्रवण का माल होय सो छीनकर अपने स्वयंप्रभ नगरी में ले आवैं। वैश्रवण इन्द्र के जोरकरि अति गर्वित है। सो वैश्रवण का दूत द्वारपालसौं मिल सभा में आया अर सुमालीसौं कहता भया। हे महाराज! वैश्रवण नरेन्द्र ने जो कह्या है सो तुम चित्त देय सुनो। वैश्रवण ने यह कहा है कि तुम पंडित हो, कुलीन हो, लोकरीति के ज्ञायक हो, बड़े हो, अकार्यतें भयभीत हो, औरों को भले मार्गके उपदेशक हो, ऐसे जो तुम सो तुम्हारे आगैं ये बालक चपलता करैं, तो क्या तुम अपने पोतानिको मनै न करो। तिर्यंच अर मनुष्यमें यही भेद है कि मनुष्य तो योग्य अयोग्य को जानै है अर तिर्यंच न जानै है, यही विवेककी रीति है; करने योग्य कार्य करिए, न करने योग्य कार्य न करिए। जो दृढ़ चित्त हैं वे पूर्व वृतांत को नाहीं भूलै हैं अर बिजुली समान क्षणभंगुर बिभूति के होते संते भी गर्वको नाही धरै हैं। आगैं क्या राजा माली के मरवेकरि तुम्हारे कुल की कुशल भई है? अब यह क्या स्यानपन है जो कुल के मूलनाश का उपाय करते हो। ऐसा जगत में कोऊ नाहीं जो अपने कुल के मूलनाशको आदरै। तुम कहां इन्द्रका प्रताप भूल गए जो ऐसे अनुचित काम करो हो। कैसे हैं इन्द्र? विध्वंस किये हैं समस्त वैरी जानै, समुद्र समान अथाह है बल जाका, सो तुम मींडक के समान सर्प के मुखमें क्रीड़ा करो हो। कैसा है सर्प का मुख? दाढरूपी कंटकनिकरि भर्या है अर विषरूपी अग्निके कण जामेंतें निकसै हैं, ये तुम्हारे पोते चोर हैं, अपने पोते पड़ोतोंको जो तुम शिक्षा देनेको समर्थ नाहीं हो तो मुझे सोंपो, मैं इनको तुरन्त सीधे करूं अर ऐसा न करोगे तो समस्त पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब सहित बेड़ियोंसे बंधे मलिन स्थान में रुके देखोगे, तामें अनेक भांतिकी पीड़ा इनको होगी। पाताल लंकातें नीठि २ (मुश्किलतें) बाहिर निकसे हो, अब फिर तहां ही प्रवेश किया चाहो हो? या प्रकार दूत के कठोर वचनरूपी पवनकरि स्पर्श्या है मन रूपी जल जिसका ऐसा रावणरूपी समुद्र अति क्षोभकों प्राप्त भया। क्रोधकरि शरीरमें पसेव आय गया अर आंखों की आरक्ततासौं समस्त आकाश लाल होय गया अर क्रोधरूपी स्वर के उच्चारणतें सर्व दिशा बधिर करता हुआ अर हाथियों का मद निवारता हुता गाज कर ऐसा बोल्या

"कौन है वैश्रवण अर कौन है इन्द्र ? जो हमारे गोत्रकी परिपाटी करि चली आई जो लंका ताको दाब रहे हैं। जैसें काग अपने मन में सियाना होय रहै अर स्याल आपको अष्टापद मानें तैसे वह रंक आपको इन्द्र मान रह्या है सो वह निर्लज्ज है, अधम पुरुष है, अपने सेवकनिपै इन्द्र कहाया तो क्या इन्द्र होय गया ? हे कुदूत ! हमारे निकट तू ऐसे कठोर वचन कहता हुआ भी कुछ भय नाहीं करै है ?" ऐसा कहकर म्यानतैं खड्ग काढचा धो आकाश खड्ग के तेज करि ऐसा व्याप्त होगया जैसे नीलकमलों के वनकरि महा सरोवर व्याप्त होय।

तब विभीषणने बहुत विनयकरि रावणसौं विनती करी अर दूत को मारने न दिया अर यह कहा, महाराज ! यह पराया चाकर है, इसका अपराध क्या ? जो वह कहावै सो यह कहै। यामें पुरुषार्थ नाहीं। अपनी देह आजीविकानिमित्त पालनेको बेची है, यह सूआ समान है। ज्यों दूसरा बुलावै त्यों बोलै। यह दूत लोग हैं, इनके हृदयमें इनका स्वामी पिशाचरूप प्रवेश कर रह्या है। उसके अनुसार वचन प्रवर्ते हैं। जैसे वाजित्री जा भाँति वादित्र को बजावै ताही भांति वह बाजै तैसें इनका देह पराधीन है, स्वतन्त्र नाही, तातैं हे कृपानिधे ! प्रसन्न होवो अर दुःखी जीवों पर दया ही करो। हे निष्कपट, महाधीर ! रंकनिके मारबेतैं लोक में बड़ी अपकीर्ति होय है। यह खड्ग तुम्हारा शत्रु लोगोंके शिरपर पड़ेगा, दीननिके वध करवेयोग्य नाहीं। जैसे गरुड गेडुओं को न मारै तैसें आप अनाथनि को न मारो। या भांति विभीषण ने उत्तम वचन रूपी जलकरि रावण की क्रोधाग्नि बुझाई। कैसे हैं विभीषण ? महासत्पुरुष हैं, न्याय के वेत्ता हैं। रावण के पायनि पड़ि दूत को बचाया अर सभा के लोगों ने दूत को बाहिर निकाला। धिक्कार है सेवक का जन्म जो पराधीन दुःख सहै है।

दूत ने जायकरि सर्व समाचार वैश्रवणसों कहे। रावणके मुखकी अत्यंत कठोर-वाणीरूपी ईंधनसों वैश्रवणके क्रोध रूपी अग्नि उठी सो चित्तविषै न समावै, वह मानों सर्व सेवकों के चित्तको बांट दीनी। भावार्थ—सर्वक्रोधरूप भए, रण संग्राम के बाजे बजाए, वैश्रवण सर्व सेना लेय युद्धके अर्थि बाहिर निकसे। या वैश्रवणके वंशके विद्याधर यक्ष कहावैं सो समस्त यक्षों को साथ लेय रक्षसनि पर चाले। अति झलझलाट करते खडग सेल चक्र बाणादि अनेक आयुधों को धरें हैं, अंजनगिरि समान माते हाथीनिके मद झरै हैं मानों नीझरने ही हैं तथा बड़े रथ अनेक रत्नोंकरि जड़े संध्याके बादलके रंग समान मनोहर महा तेजवंत अपने वेगकरि पवनको जीतैं हैं तैसे ही तुरंग अर प्यादेनिके समूह समुद्रसमान गाजते युद्धके अर्थि चाले, देवोंके बिमान समान सुन्दर बिमानोंपर चढ़े विद्याधर

राजा वैश्रवण के लार चाले अर रावण इनके पहिले ही कुंभकरणादि भाईनि सहित बाहर निकसे। युद्धकी अभिलाषा रखती हुई दोनों सेनाओंका संग्राम गुंज नामा पर्वतके ऊपर भया। शस्त्रों के सतापसे अग्नि दिखाई देने लगो। खडगनिके घातसैं, घोड़ानिके हींसनेसे, प्यादानिके नादसे, हाथीनिके गरजनेतैं, रथनिके परस्पर शब्दोंसे, वादित्रों के बाजनेसे तथा बाणोंके उग्रशब्दोंसे इत्यादि अनेक भयानक शब्दों से रणभूमि गाजती भई, धरती आकाश शब्दायमान होते भए, वीर रसका राग होता भया, योधाओं के मद चढ़ता भया, यम के वदन समान परिधि चक्र तीक्षण है धारा जिनकी अर यमराज की जीभ समान खडग रुधिरकी धार वर्षावनहारी अर यमकै रोम समान सेल, यमका आंगुली समान शर (बाण) अर यम की भुजा समान परिधि (कुल्हाड़ा) अर यम की मुष्टि समान मुद्गर इत्यादि अनेक शस्त्रकरि परस्पर महायुद्ध प्रवर्त्या, कायरों को त्रास अर योधाओंको हर्ष उपज्या। सामंत सिरके बदले यशरूप फनकों लेवे हैं। अनेक राक्षस अर कपि जाति के विद्याधर अर यक्ष जातिके विद्याधर परस्पर युद्ध कर परलोककों प्राप्त भए। कुछ इक यक्षोंके आगे राक्षस पीछे हटे तब रावण अपनी सेना को दबी देख आप रणसंग्राम को उद्यमी भए। कैसे हैं रावण ? महामनोज्ञ सफेद छत्र सिर पर फिरै हैं जाके, कालमेघ-समान चंद्रमंडल कांतिका जीतनहारा रावण धनुष बाण धारे, इन्द्र धनुष समान अनेक रंग का बखतर पहिरे, शिरपर मुकुट धरे, नाना प्रकारके रत्नोंके आभूषण संयुक्त अपनी दीप्ति करि आकाश में उद्योत करता आया। रावण को देखकर यक्ष जातिके विद्याधर क्षणमात्र विलखे, तेज दूर हो गया, रणकी अभिलाषा छोड़ पराङ्मुख भए, त्रासकरि आकुलित भया है चित्त जिनका, भ्रमरकी नाईं भ्रमते भए। तब यक्षोके अधिपति बड़े-बड़े योधा इकट्ठे होयकर रावण के सन्मुख आए। रावण सबके छेदने को प्रवर्त्या, जैसें सिंह उछलकर माते हाथीनिके कुंभस्थल विदारै तैसें रावण कोपरूपी वचनके प्रेरे अग्नि स्वरूप होयकर शत्रु सेनारूपी वनको दाह उपजावते भए। सो पुरुष नाहीं, सो रथ नाहीं, सो अश्व नाहीं, सो विमान नाहीं जो रावण के बाणों से न बींध्या गया। तब रावणको रणमें देख वैश्रवण भाईपने का स्नेह जनावता भया अर अपने मन में पछताया, जैसे बाहुबलि भरतसों लड़ाई करि पछताए हुते, तैसें वैश्रवण रावण सों विरोध करि पछताया। हाय ! मैं मूर्ख ऐश्वर्य में गर्वित होयकर भाई के विध्वंस करने में प्रवर्त्या। यह विचार करि वैश्रवण रावणसों कहता भया "हे दशानन ! यह राजलक्ष्मी क्षणभंगुर है, याके निमित्त तू कहा पाप करै। मैं तेरी बड़ी मौसी का पुत्र हूँ तातैं भाइयों से अयोग्य व्यवहार करना योग्य नाहीं। अर यह जीव प्राणियों की हिंसा करके महा भयानक नरककों प्राप्त होय है,

नरक महा दुखसौं भरया है। कैसे हैं जगत के जीव, विषयोंकी अभिलाषा में फंसे हैं, आँखों की पलक मात्र क्षणमात्र जीवना क्या तू न जानै है। भोगों के कारण पापकर्म काहे कौं करै है?" तब रावण ने कह्या "हे वैश्रवण! यह धर्म श्रवण का समय नाहीं। जो माते हाथियों पर चढ़ें अर खड्ग हाथमें धरे, सो शत्रुओंको मारै तथा आप मरै। बहुत कहनेसे क्या? तू तलवार के मार्गविषें तिष्ट अथवा मेरे पांवपरि पड़। यदि तू धनपाल है तो हमारा भंडारी हो, अपना कर्म करते पुरुष लज्जा न करै।"तब वैश्रवण बोले–हे रावण! तेरी आयु अल्प है तातैं ऐसे क्रूरवचन कहै। शक्ति प्रमाण हमारे ऊपर शस्त्रका प्रहार कर।" तब रावण ने कही–तुम बड़े हो, प्रथम वार तुम करो। तब रावण ऊपर वैश्रवण बाण चलाए जैसे पहाड़ के ऊपर सूर्य किरण डारै। सो वैश्रवण के बाण रावणने अपने बाणनिकरि काट डारे अर अपने बाणनिकरि शर मण्डपकरि डारा। बहुरि वैश्रवण अर्धचंद्र बाणकरि रावणका धनुष छेद्या अर रथतैं रहित किया। तब रावणने मेघनाद नामा रथपर चढ़कर वैश्रवणसूं युद्ध किया, उल्कापात समान वज्रदंडों से वैश्रवण का बखतर चूर डारया अर वैश्रवणके सुकोमल हृदयविषें भिण्डमाल मारी, सो मूर्छा कों प्राप्त भया। तब ताकी सेनाविषें अत्यन्त शोक भया अर राक्षसों के कटकविषें बहुत हर्ष भया। अर वैश्रवण के लोक वैश्रवणकूं रणखेततैं उठायकर यक्षपुर ले गये अर रावण शत्रुओं को जीतकर रण से निवृत्ते। सुभटनिकै शत्रुनिके जीतवे ही का प्रयोजन है, धनादिक का प्रयोजन नाहीं।

अथानंतर वैश्रवण का वैद्यों ने यतन किया सो अच्छा हुआ तब अपने चित्त में विचारै है कि जैसें पुष्प रहित वृक्ष तथा सीग टूटा बैल अर कमल बिना सरोवर न सोहै, तैसें मैं शूरवीरता बिना न सोहूं। जे सामंत हैं अर क्षत्रीवृत्तिका विरद धारै हैं तिनका जीतव्य सुभट ताही करि शोभै है अर तिनकूं संसारविषें पराक्रमहीतैं सुख है सो मेरे अब नाहीं रहा, तातैं अब संसारका त्यागकर मुक्तिका यत्न करूं। यह संसार असार है. क्षण भंगुर है, याहीतैं सत्पुरुष विषयसुखकों नाहीं चाहै हैं। यह अन्तराय सहित है अर अल्प है, दुःखी है, ये प्राणी पूर्वभव विषें जो अपराध करै हैं ताका फल इस भवविषें पराभव होय है, सुख दुःख का मूलकारण कर्म ही है अर प्राणी निमित्तमात्र है तातैं ज्ञानी तिनसैं कोप न करै। कैसा है ज्ञानी, संसार के स्वरूप को भली भांति जानै है। यह केकसी का पुत्र रावण मेरे कल्याण का निमित्त हुआ है, जाने मोकूं गृहवासरूप महा फांसीसैं छुड़ाया अर कुम्भकरण मेरा परम बांधव, जाने यह संग्राम का कारण मेरे ज्ञानका निमित्त बनाया; ऐसा विचार कर वैश्रवण ने दिगम्बर दीक्षा आदरी। परमतपकूं आराधकरि

परमधाम पधारे, संसार-भ्रमणसें रहित भए।

अथानंतर रावण अपने कुल का अपमानरूप मैल धोकर सुख अवस्था को प्राप्त भया, समस्त भाइयों ने उसको राक्षसोंका शिखर जाना। वैश्रवणकी असवारीका पुष्पक-नामा विमान महा मनोग्य है, रत्नोंकी ज्योतिके अंकुर छूट रहे हैं, झरोखे ही हैं नेत्र जाके, निर्मल कांतिके धारणहारे महा मुक्ताफल की झालरों से मानों अपने स्वामी के वियोग से अश्रुपात ही डारे है अर पद्मरागमणीनिकी प्रभातें आरक्तताको धारे है मानों यह वैश्रवण का हृदय ही रावणके किये घावसे लाल होय रहा है अर इन्द्रनील मणीनिकी प्रभा कैसें अतिश्याम सुन्दरताकों धरें है मानों स्वामीके शोकसे सांउला होय रहा है, चैत्यालय वन वापी सरोवर अनेक मंदिरों से मंडित मानों नगरका आकार ही है। रावण के हाथ के नाना प्रकार के घाव से मानों घायल हो रहा है, रावण के मंदिर समान ऊंचा जो वह विमान उसको रावण के सेवक रावण के समीप लाए। वह विमान आकाशमंडन है। इस विमानको वैरी के भंगका चिन्ह जान रावण ने आदरा अर किसीका कुछ भी न लिया। रावण के किसी वस्तु की कमी नाहीं। विद्यामई अनेक विमान हैं तथापि पुष्पक विमानमें विशेष अनुरागसे चढ़े। रत्नश्रवा तथा केकसी माता अर समस्त प्रधान सेनापति तथा भाई बेटों सहित आप पुष्पक विमानमें आरूढ़ भया अर पुरजन नाना प्रकार के वाहनोंपर आरूढ़ भए, पुष्पक के मध्य महा कमलवन है तहां आप मंदोदरी आदि समस्त राजलोकों सहित आय विराजे। कैसे हैं रावण? अखंड है गति जिनकी, अपनी इच्छासे आश्चर्य-कारी आभूषण पहरे हैं अर श्रेष्ठ विद्याधरी चमर ढोरें हैं, मलयागिरिके चन्दनादि अनेक सुगंध अंगपर लगी है, चन्द्रमा की कीर्ति समान उज्ज्वल छत्र फिरें हैं मानों शत्रुओं के भंग से जो यश विस्तारा है उस यश से शोभायमान हैं। धनुष त्रिशूल खड्ग सेल पाश इत्यादि अनेक हथियार जिनके हाथ में ऐसे जो सेवक तिनकर संयुक्त है। महा भक्तियुक्त हैं अर अद्भुत कर्मनिके करणहारे हैं तथा बड़े बड़े विद्याधर राजा सामन्त शत्रुनिके समूहके क्षय करणहारे, अपने गुणनिकरि स्वामी के मन के मोहनहारे महा विभवकरि शोभित तिनकरि दशमुख मंडित है, परम उदार सूर्यकासा तेज धारता पूर्वोपार्जित पुण्यका फल भोगता संता दक्षिण समुद्र की तरफ जहां लंका है ता ओर इन्द्रकीसी विभूतिकरि युक्त चाल्या। कुम्भकरण भाई हस्तीपुर चढ़े, विभीषण रथपर चढ़े, अपने लोगों सहित महाविभूतिकरि मंडित रावणके पीछे चाले। राजा मय मंदोदरी के पिता दैत्यजाति के विद्याधरों के अधिपति भाइयों सहित अनेक सामंतनिकरि युक्त तथा मारीच, अंबर, विद्युतवज्र, वज्रोदर, बुधवज्राक्षक्रूर, क्रूरनक्र, सारन, सुनय, शुक इत्यादि मंत्रियों सहित

महाविभूतिकर मंडित अनेक विद्याधरों के राजा रावणके संग चाल्ये। कैएक सिंहोंके रथ चढ़े, कैएक अष्टापदोंके रथपर चढ़करि बन पर्वत समुद्र की शोभा देखते पृथ्वीपर विहार किया अर समस्त दक्षिण दिशा वश करी।

अथानंतर एक दिन रावण ने अपने दादा सुमालीसे पूछ्या—"हे प्रभो ! हे पूज्य ! या पर्वतके मस्तक पर सरोवर नाहीं सो कमलनिका बन कैसे फूल रहा है, यह आश्चर्य है अर कमलों का बन चंचल होय, यह निश्चल है।" या भांति सुमालीसूं पूछ्या। कैसा है रावण ? विनय करि नम्रीभूत है शरीर जाका, तब सुमाली 'नमः सिद्धेभ्यः' ये मंत्र पढ़ करि कहते भए—हे पुत्र ! यह कमलनिके बन नाहीं, या पर्वत के शिखरविषें पद्मरागमणि-मयी हरिषेण चक्रवर्ती के कराए चैत्यालय हैं जिनपर निर्मल ध्वजा फरहरै हैं अर नाना प्रकारके तोरणों से शोभै हैं। कैसे हैं हरिषेण ? महा सज्जन पुरुषोत्तम थे जिनके गुण कहने में न आवैं। हे पुत्र ! तू उतरकर पवित्र मन होकर नमस्कार कर। तब रावण बहुत विनय करि जिनमदिरनिकूं नमस्कार किया अर बहुत आश्चर्य को प्राप्त भया अर सुमालीसूं हरिषेण चक्रवर्ती की कथा पूछी कि हे देव ! आपने जिसके गुण वर्णन किए ताकी कथा कहो, यह बीनती करी। कैसा है रावण ? वैश्रवण का जीतनहारा अर बड़े-निविषं है अति विनय जाकी। तब सुमाली कहै है—हे रावण ! तैं भली पूछी। पाप का नाश करणहारा हरिषेण का चरित्र सो सुन। कंपिल्यानगरविषें राजा सिंहध्वज तिनके रानी वप्रा आदि महा गुणवती सौभाग्यवती अनेक राणियां थीं परन्तु राणी वप्रा उनमें तिलक थी, ताकै हरिषेण चक्रवर्ती पुत्र भए। चौसठ शुभ लक्षणनिकरि युक्त, पापकर्म के नाश करनहारे सो इनकी माता वप्रा महा धर्मवती सदा अष्टानिकाके उत्सवविषें रथयात्रा किया करै सो याकी सौतन रानी महालक्ष्मी सौभाग्यके मदसे कहती भई कि पहिले हमारा ब्रह्मरथ नगरविषें भ्रमण करेगा पीछे तिहारा निकसेगा। यह बात सुन रानी वप्रा हृदय विषैं खेदखिन्न भई मानों वज्रपातकरि पीडी गई। उसने ऐसी प्रतिज्ञा करी कि हमारे वीतराग का रथ अठाइयों में पहिले निकसे तो हमको आहार करना अन्यथा नाहीं, ऐसा कहकर सर्व काज छोड़ दिया, शोककरि मुरझाय गया है मुख कमल जाका अर अश्रुपात की बूंद आंखनिसों डालती भई। माताको देखकर हरिषेण ने कही—'हे मात ! अब तक तुमने स्वप्नमात्रमें भी रुदन न किया, अब यह अमंगलकार्य क्यों करो हो ?' तब मातामे सर्व वृत्तांत कह्या। यह सुनकर हरिषेण मन में सोची कि क्या करूं ? एक ओर पिता एक ओर माता। मैं संकटमें पड़्या माताकूं अश्रुपात सहित देखवे समर्थ नाहीं अर एक ओर पिता जिनसूं कुछ कहा न जाय तब उदास होय घरतैं निकसि वनकूं गए, तहां मिष्ट

फलनिका भक्षण करते अर सरोवरनिका निर्मल जल पीवते निर्भय विहार किया। इनका सुन्दर रूप देखकर ता बनके निर्दयी पशु भी शांत हो गये। ऐसे भव्य जीव किसको प्यारे न हों। तहां वनविषें भी जब माताका रुदन याद आवै तब इनकू ऐसी बाधा उपजै जो बनकी रमणीकताका सुख भूल जावै सो हरिषेण चक्रवर्ती वनविषें वनदेवता समान भ्रमण करते जिनको मृगी नेत्रनिकरि देखै है सो वनविषें विहार करते शतमन्यु नाम तापसके आश्रम गये। कैसा है आश्रम ? वनके जीवनिका है आश्रय जहाँ।

अथानन्तर कालकल्प नामा राजा अति प्रबल जाका बड़ा तेज अर बड़ी फौजसूं आनकर चंपा नगरी घेरी सो तहाँ राजा जनमेजय सो जनमेजय अर कालकल्प में युद्ध भया। आगे जनमेजयने महलमें सुरंग बना राखी हुती सो ता मार्ग होयकर जनमेजयकी माता नागमती अपनी पुत्री मदनावली सहित निकसी अर शतमन्यु तापसके आश्रम में आई। सो नागमती की पुत्री हरिषेण चक्रवर्ती का रूप देखकर काम के बाणनिकरि बींधी गई। कैसे हैं काम के बाण ? शरीर में विकलता के करणहारे हैं। तब वाकूं और भाति देख नागमती कहती भई–हे पुत्री ! तू विनयवान होयकर सुन कि मुनि ने पहिले ही कहा हुता कि यह कन्या चक्रवर्ती की स्त्रीरत्न होयगी सो यह चक्रवर्ती तेरे वर हैं। यह सुनकर वह अति आसक्त भई। तब तापसीने हरिषेणको निकास दिया; क्योंकि उसने विचारी कि कदाचित् इनके संसर्ग होय तो इस बातसे हमारी अपकीर्ति होयगी। सो चक्रवर्ती इनके आश्रम से और ठौर गये अर तापसी को दीन जान युद्ध न किया। परन्तु चित्त में वह कन्या बसी रही सो इनको भोजनविषें अर शयनविषें काहू प्रकार स्थिरता नाहीं। जैसे भ्रामरी विद्याकरि कोऊ भ्रमै तैसें ये पृथ्वी में भ्रमते भए। ग्राम, नगर, बन, उपवन, लताओं के मंडप में इनको कहीं भी चैन नाहीं, कमलों के वन दावानल समान दीखें अर चंद्रमा की किरण वज्र की सूई समान दीखै अर केतकी बरछी की अणी समान दीखै, पुष्पों की सुगंध मन को न हरै, चित्त में ऐसा चितवते भए जो मैं यह स्त्रीरत्न वरूं तो मैं जायकर माताका भी शोक संताप दूर करूं। नदियों के तटनिपर अर बनविषें अर ग्रामविषें, नगरविषें, पर्वतपर भगवानके चैत्यालय कराऊं। यह चितवन करते संते अनेक देश भ्रमते सिन्धुनंदन नगरके समीप आए। कैसे हैं हरिषेण ? महा बलवान अति तेजस्वी हैं। वहां नगर के बाहिर अनेक स्त्री क्रीड़ा को आई हुतीं सो एक अंजनगिरी समान हाथी मद झरता स्त्रियों के समीप आया। महावत ने हेला मारकर स्त्रियोंसे कही "जो यह हाथी मेरे वश नाहीं, तुम शीघ्र ही भागो।" तब वे स्त्रियां हरिषेण के शरणें आईं। हरिषेण कैसा है? परम दयालु है, महायोद्धा है। वह स्त्रियों को पीछे करके आप हाथी के

सन्मुख भए अर मनमें विचारी जो वहां तो वे तापस दीन थे तातैं उनसे मैंने युद्ध न किया, वे मृग समान थे परन्तु यहां यह दुष्ट हस्ती मेरे देखते स्त्री बालादिकको हने अर मैं सहाय न करू सो यह क्षत्रीवृत्ति नाहीं, यह हस्ती इन बालादिक दीन जनों को पीड़ा देने को समर्थ है। जैसे बैल सींगोंसे बांबीनकूं खोदै परन्तु पर्वतके खोदनेको समर्थ नाहीं अर कोई बाणसे केले के वृक्ष को छेदे परन्तु शिला को न छेद सकै तैसें ही यह हाथी योद्धाओं को उड़ायवे समर्थ नाहीं। तब आप महावत को कठोर बचनकरि कही कि हस्ती को यहांसे दूर कर। तब महावतने कही कि तू भी बड़ा ढीठ है, हाथीको मनुष्य जानै है। हाथी आप ही मस्त होय रहा है, तेरी मौत आई है अथवा दुष्ट ग्रह लग्या है, सो तू यहां से वेगि भाग। तब आप हँसें अर स्त्रियोंको तो पीछे कर अर आप ऊपरको उछल हाथीके दाँतनि पर पग देय कुम्भस्थल पर चढ़ अर हाथीसे बहुत कीड़ा करी। कैसे हैं हरिषेण? कमल सारिखे हैं नेत्र जिनके अर उदार है वक्षस्थल जिनका अर दिग्गजों के कुम्भस्थल समान हैं कांधे जिनके अर स्तम्भ समान हैं जांघ जिनकी। तब ये वृत्तांत सुन सब नगर के लोग देखने को आए। राजा महल ऊपर चढ्या देखै था सो आश्चर्यको प्राप्त भया। अपने परिवार के लोक भेज इनकूं बुलाया। यह हाथी पर चढ़ नगर में आए। नगर के नर-नारी समस्त इनको देख देख मोहित होय रहे, क्षणमात्र में हाथी कूं निर्मद किया। यह अपने रूपसे समस्त का मन हरते नगरविषैं आए। राजाकी सौ कन्या परणी, सर्व लोकनि विषैं हरिषेणकी कथा भई। राजा से अधिकार सम्मान पाय सर्व बातोंसे सुखी है तौ भी तापसियों के वन में जो स्त्री देखी थी उस विना एक रात्रि वर्ष समान बीतै। मनमें चिंतवते भये जो मुझ बिना वह मृगनयनी उस विषमवन में मृगी समान परम आकुलता को प्राप्त होयगी, तातैं मैं ताके निकट शीघ्र ही जाऊं, यह विचारते रात्रीविषैं निद्रा न आती, जो कदाचित् अल्प निद्रा आई तौ भी स्वप्न विषैं उसही को देखा। कैसी है वह? कमल सारिखे हैं नेत्र जाके मानों इनके मनही में बस रही है।

अथानंतर विद्याधर राजा शक्रधनु ताकी पुत्री जलचंद्रा उसकी सखी वेगवती वह हरिषेण को रात्रिविषैं उठायकरि आकाश विषैं ले चाली। निद्राके क्षय होने पर आपको आकाश में जाता देख कोपकर उससे कहते भए, हे पापिनी! तू हमकों कहां ले जाय है। यद्यपि यह विद्याबलकर पूर्ण है तौ भी इनको क्रोधरूप मुष्टि बांधे होंठ डसते देखकर डरी अर इनसे कहती भई, हे प्रभु! जैसें कोई मनुष्य जा वृक्ष की शाखा पर बैठा होय ताही को काटै तो क्या यह सयानापना है? तैसें मैं तिहारी हितकारणी अर तुम मोहि हतो, यह उचित नाहीं, मैं तुमको उसके पास ले जाऊं हूं जो निरन्तर तुम्हारे मिलाप की

अभिलाषिनी है। तब यह मन में विचारते भए कि यह मिष्टभाषिणी परपीडाकारिणी नाहीं है, इसकी आकृति मनोहर दीखै हैं अर आज मेरी दाहिनी आंख भी फडकै, इसलिये यह हमारी प्रियाको संगमकारिणी है। बहुरि याकूं पूछी–'हे भद्रे! तू अपने आवनेका कारण कह।' तब वह कहती भई कि सूर्योदय नगर में राजा शक्रधनु ताकी रानी धारा अर पुत्री जयचन्द्रा वह गुण रूपके मदसे महा उन्मत्त है, कोई पुरुष उसकी दृष्टिमें न आवै, पिता जहाँ परणाया चाहै सो यह धारै नाहीं। मैंने जिम २ राजपुत्रोंके रूप चित्र-पटपर लिखे दिखाए उनमें कोई भी ताके चित्तमें न रुचै। तब मैंने तिहारे रूपका चित्रपट दिखाया तब वह मोहित भई अर मोकूं ऐसें कहती भई कि मेरा इस नरसे संयोग न हो तो मैं मृत्युकूं प्राप्त होऊंगी अर अधम नरसे सबंध न करूंगी। तब मैंने उसको धैर्य बंधाया अर मैं ऐसी प्रतिज्ञा करी-जहाँ तेरी रुचि है मैं उसे न लाऊं तो अग्नि में प्रवेश करूंगी। अति शोकवत ताको देख मैंने यह प्रतिज्ञा करी। ताके गुणकरि मेरा चित्त हरचा गया है सो पुण्य के प्रभाव से आप मिले, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण भई, ऐसा कह सूर्योदयनगर में ले गई। राजा शक्रधनु से ब्योरा कहा सो राजा ने अपनी पुत्री का इनसे पाणिग्रहण कराया अर वेगवती का बहुत यश माना। इनका विवाह देख परिजन अर पुरजन हर्षित भए। कैसे हैं ये वर कन्या? अद्भुतरूप के निधान हैं। इनके विवाह की वार्ता सुन कन्याके मामाके पुत्र गंगाधर महीधर क्रोधायमान भए जो या कन्याने हमको तजकर भूमि-गोचरी वरचा। यह विचारकर युद्धको उद्यमी भए। तब राजा शक्रधनु हरिषेणसूं कहता भया कि मैं युद्ध में जाऊं हूं आप नगरविषै तिष्ठो, दुराचारी विद्याधर युद्ध करने को आए हैं। तब हरिषेण ससुरसे कहते भए कि जो पराए कार्यको उद्यमी होय सो अपने कार्यको कैसे उद्यम न करै? तातै हे पूज्य! मोहि आज्ञा करो, मैं युद्ध करूंगा। तब ससुर ने अनेक प्रकार निवारण किया पर यह न रहे, नाना प्रकार हथियारनिकरि पूर्ण अर जिसमें पवनगामी अश्व जुरे अर शूरवीर सारथी हांकै ऐसे रथ पर चढ़, इनके पीछे बड़े २ विद्याधर चाले। कई हाथियों पर चढ़े, कई अश्वों पर चढ़े, कई रथोंपर चढ़े, परस्पर महा युद्ध भया। कछुइक शक्रधनु की फौज हटी तब आप हरिषेण युद्ध करने को उद्यमी भए, सो जिस ओर रथ चलाया उस ओर घोड़ा, हस्ती, मनुष्य, रथ कोऊ टिकै नाहीं। सब बाणनिकरि बींधे गए। सब कांपते युद्धसे भागे। महा भयभीत हो कहते भए 'गंगाधर महीधर ने बुरा किया जो ऐसे पुरुषोत्तमतैं युद्ध किया। यह साक्षात् सूर्य समान है। जैसे सूर्य अपनी किरण पसारै तैसे यह बाण की वर्षा करै है।' अपनी फौज हटी देख गंगाधर महीधर भाजे, तब इनके क्षणमात्रमें रत्न भी उत्पन्न भए, दशवां चक्रवर्ती महा

प्रताप को धरै पृथ्वीविषै प्रगट भया। यद्यपि चक्रवर्तीकी विभूति पाई परन्तु अपनी स्त्री-रत्न जो मदनावली उसके परणवे की इच्छा से द्वादश योजन परिमाण कटक साथ ले राजाओं को निवारते तपस्वियों के वनके समीप आए। तपस्वी वनफल लेकर आय मिले, पहिले इनका निरादर किया था ताकरि शंकावान हुते सो इनको अति विवेकी पुण्याधिकारी देख हर्षित भए। शतमन्यु का पुत्र जो जनमेजय अर मदनावली की माता नागमती उन्होंने मदनावली चक्रवर्ती को विधिपूर्वक परणाई तब आप चक्रवर्ती की विभूति सहित काम्पिल्य नगर आए, बत्तीस हजार मुकुटबंध राजाओंने संग आकर माता के चरणारविंद को हाथ जोड़ नमस्कार किया, माता वप्रा ऐसे पुत्रको देखि ऐसी हर्षित भई जो गातमें न समावे, हर्षके अश्रुपात करि व्याप्त भए हैं लोचन जाके। तब चक्रवर्ती ने जब अष्टानिका आई तो भगवान का रथ सूर्य से भी महा मनोज्ञ काढा, अष्टानिकाकी यात्रा करी। मुनि श्रावकनिकूं परम आनन्द भया, बहुत जीव जिनधर्म अंगीकार करते भए। सो यह कथा रावण सुमालीसौं कही। हे पुत्र ! ता चक्रवर्तीने भगवानके मंदिर पृथ्वीविषैं सर्वत्र पुर ग्रामादिविषे पर्वतनि पर तथा नदीके तटपर अनेक चैत्यालय रत्नस्वर्णमयी कराये। वे महापुरुष बहुतकाल चक्रवर्तीकी संपदा भोगि मुनि होय महातपकरि लोकशिखर सिधारे। यह हरिषेण का चरित्र रावण सुनकर हर्षित भया। सुमाली को बारंबार स्तुति करी अर जिनमदिरनिका दर्शन कर रावण डेरा आये, डेरा सम्मेदशिखर के समीप भया।

अथानतर रावणको दिग्विजयविषैं उद्यमी देख मानों सूर्य भी भयंकर दृष्टिगोचरसूं रहित भया, ताकी अरुणता प्रगटी मानों रावणके अनुराग ही करि जगत हर्षित भया। बहुरि संध्या मिटकर रात्रिका अन्धकार फैल्या मानों अंधकार ही प्रकाशके भयमे दशमुख के शरण आया। बहुरि रात्रि व्यतीत भई अर प्रभात भया अर रावण प्रभातकी क्रियाकर सिंहासन विराजे, अकस्मात् एक ध्वनि सुनी मानो वर्षाकालका मेघ ही गरज्या, जाकर सकल सेना भयभीत हुई अर कटकके हाथी जिन वृक्षों से बंधे थे तिनको भंग करते भए, कनसेरे ऊंचेकर तुरंग हींसते भये तब रावण बोले—'यह क्या है ? यह मरिवेकूं हमारे ऊपर कौन आया ? यह वैश्रवण आया अथवा इन्द्र का प्रेरा सोम आया अथवा हमको निश्चल तिष्ठे देख कोई और शत्रु आया।' तब रावण की आज्ञा पाय प्रहस्त सेनापति उस ओर देखने को गया सो पर्वत के आकार मदोन्मत्त अनेक लीला करता हाथी देख्या।

तब आय रावणसौं बीनती करी कि हे प्रभो ! मेघकी घटा समान यह हाथी है। इसको इन्द्र भी पकड़ने को समर्थ न भया। तब रावण हंसकर बोले—हे प्रहस्त ! अपनी प्रशंसा करनी योग्य नाहीं, मैं इस हाथी को क्षणमात्रमें वश करूंगा। यह कहकर पुष्पक

विमानमें चढ़ि हाथी देख्या। भले २ लक्षणिकरि इन्द्र नीलमणि समान अति सुन्दर है श्याम शरीर जाका, कमल समान आरक्त है तालुवा जाका अर महामनोहर उज्वल दीर्घ गोल हैं नेत्र जाके, दांत सात हाथ ऊंचा नौ हाथ चौड़ा, कछुइक पीत हैं, सुन्दर है पीठ जाकी, अगला अंग उतंग है अर लांबी है पूंछ जाकी अर बड़ी है सूंड जाकी, अत्यंत स्निग्ध सुन्दर हैं नख जाके, गोल कठोर सुन्दर है कुम्भस्थल जाका, प्रबल हैं चरण जाके, माधुर्यता को लिये महावीर गंभीर है गर्जना जाकी अर झरते हुवे मदकी सुगंधतासे करैं हैं भ्रमर गुंजार जापर, दुंदुभीबाजनिकी ध्वनि समान गंभीर है नाद जाका अर ताडवृक्ष के पत्र समान जो कान तिनकूं हलावता, मन अर नेत्रनिकी हरनहारी जो सुन्दरलीला ताकूं करता रावण ने हस्तीकूं देख्या। देखकरि बहुत प्रसन्न भया, हर्ष कर रोमांच होय आए। तब पुष्पक नामा विमानसे उतर गाढी कमर बांधकर उसके आगें जाय शंख पूरया ताके शब्दकरि दसों दिशा शब्दायमान भई। तब शंख का शब्द सुन चित्त में क्षोभकूं पाय हाथी गरज्या अर दशमुख के सम्मुख आया। बलकर गर्वित तब रावण अपने उत्तरासन का गेंद बनाय शीघ्र ही हाथीकी ओर फेंका। रावण गजकेलि विषैं प्रवीण है सो हाथी तो गेंदके सूंघने को लगा अर रावण आकाश विषैं उछलकरि अंगोंकी ध्वनि से शोभित गज के कुम्भस्थल पर हस्ततल मारया, हाथीने सूंडसे पकड़नेका उद्यम किया। तब रावण अति शीघ्रता कर दोऊ दांतके बीच होय निकस गए, हाथीसूं अनेक क्रीड़ा करी, दशमुख हाथीकी पीठ पर चढ़ बैठे, हाथी विनयवान शिष्य की न्याईं खड़ा होय रहा। तब आकाशसे रावण पर पुष्पों की वर्षा भई अर देवों ने जय जयकार शब्द किए। अर रावण की सेना बहुत हर्षित भई, रावण ने हाथी का "त्रैलोक्यमंडन" नाम धरया, याकों पाय रावण बहुत हर्षित भया। रावण ने हाथी के लाभ का बहुत उत्सव किया अर सम्मेदशिखर पर्वत पर जाय यात्रा करी। विद्याधरों ने नृत्य किया। वह रात्रि में वहाँ ही रहा। प्रभात हुआ, सूर्य उगा सो मानों दिवस ने मंगल का कलश रावण को दिखाया। कैसा है दिवस ? सेवा की विधिविषैं प्रवीण है। तब रावण डेरा में आय सिंहासन पर विराजे अर हाथी की कथा सभा विषैं कहते भये।

ता समय एक विद्याधर आकाशतैं रावण के निकट आया सो अत्यन्त कम्पायमान जाके पसेव की बून्द झरै है, बहुत खेद खिन्न घायल हुआ अश्रुपात करता, जर्जरा है तनु जाका, हाथ जोड़ि नमस्कार करि विनती करता भया। हे देव ! आज दशवां दिन है, राजा सूर्यरज अर रक्षरज बानरवंशी विद्याधर तिहारे बलकरि है बल जिनमें सो आपका प्रताप जानि अपने किहकंध नगर लेने के अर्थ अलंकारोदय जो पाताललंका तहांतैं अति

उछाह से चाल्ये। कैसे हैं दोऊ भाई ? तिहारे बलकरि महाअभिमान युक्त जगत को तृण समान मानैं ते किहकंधपुर जाय घेरया। तहां इन्द्र का यमनामा दिग्पाल ताके योधा युद्ध करने को निकसे, हाथ में हैं आयुध जिनके, बानरवंशिनके अर यमके लोगों में महायुद्ध भया। परस्पर बहुत लोक मारे गए, तब युद्ध का कलकलाट सुन यम आप निकसा, कैसा है यम ? महाक्रोधकरि पूर्ण अति भयंकर, न सहा जाय है तेज जाका, सो यमके आवते ही बानरवंशियों का बल भागा। अनेक आयुधनिकर घायल भए। यह कथा कहता कहता वह विद्याधर मूर्छा को प्राप्त भया। तब रावण ने शीतोपचार करि सावधान किया अर पूछा–आगे क्या भया। तब वह विश्राम पाय हाथ जोड़ फिर कहता भया–'हे नाथ ? सूर्यरजका छोटा भाई रक्षरज अपने दलको व्याकुल देख आप युद्ध करने लगे। सो यमके साथ बहुत देर तक युद्ध किया। यम अतिबली उसने रक्षरज को पकड़ लिया तब सूर्यरज युद्ध करने लगे, बहुत युद्ध भया, यमने आयुधका प्रहार किया सो राजा घायल होय मूर्छित भए। तब अपने पक्षके सामंतोने राजाको उठाय मेघला बनमें ले जाय शीतोपचार करि सावधान किया। बहुरि यम महापापी अपना यमपना सत्य करता सता एक बंदीगृह बनाया। उसका नरक नाम धरया तहां वैतरनी आदि सर्व विधि बनाई, जे जे वाने जीते अर पकड़े वे सर्व नरकमें दिये सो उस नरक में कैयक तो मर गए, कैयक दुःख भोगैं हैं, वहां उस नरक में सूर्यरज अर रक्षरज ये दोनों भाई भी हैं, यह वृत्तांत मैं देखकर बहुत व्याकुल होय आपके निकट आया हूं। आप उनके रक्षक हो अर जीवनमूल हो, उनको आपका ही विश्वास है अर मेरा नाम शाखावली है, मेरा पिता रणदक्ष, माता सुश्रोणी, मैं रक्षरज का प्यारा चाकर, सो आपको यह वृत्तांत कहने को आया हूं, मैं तो आपको जतावा देय निश्चिन्त भया। अपने पक्षको दुःख अवस्थामें जान आपको जो कर्तव्य होय सो करो।

तब रावण ने उसे दिलासा कर याहि संतोष देय याके घाव का यत्न कराया। अब तत्काल सूर्यरज रक्षरजके छुड़ावनेको महाक्रोधकर यमपर चाल्ये अर मुसकरायकर कहते भए–कहा यम रंक हमसे युद्ध कर सकै ? जो मनुष्य उसने वैतरणी आदि क्लेशके सागरमें डार राखे हैं, मैं आज ही उनको छुड़ाऊंगा अर उस पापीने जो नरक बना राख्या है ताहि विध्वंस करूंगा। देखो दुर्जन की दुष्टता ! जीवों को ऐसे संताप दे है। यह विचारकर आप ही चाले। प्रहस्त सेनापति आदि अनेक राजा बड़ी सेनासे आगे दौड़े। नाना प्रकारके वाहनोंपर चढ़ें शस्त्रोंके तेजसे आकाश में उद्योत करते अनेक वादित्रों के नाद होते महा उत्साह से चाले, विद्याधरों के अधिपति किहकूंपुरके समीप गए सो दूरसे

नगरके घरोंकी शोभा देखकरि आश्चर्यको प्राप्त भए। किहकूपुर की दक्षिण दिशा के समीप यम विद्याधरका बनाया हुवा कृत्रिम नरक देख्या जहां एक ऊँचा खाडा खोद राखा है अर नरककी नकल बनाय राखी है। अनेक नरकनिके समूह नरकमें राखे हैं तब रावण ने उस नरकके रखवारे जे यमके किंकर हुते तिनको कूटकर काढ दिये अर सर्व प्राणी सूर्यरज रक्षरज आदि दुःख सागरसें निकासे। कैसे हैं रावण ? दीननके बंधु दुष्टोंको दंड देनहारे हैं। वह सर्व नरक स्थान ही दूर किया। परचक्रके आवनेका यह वृत्तांत सुन यम बड़े आडंबरसे सर्व सेनासहित युद्ध करवेकूं आया मानो समुद्र ही क्षोभकों प्राप्त भया। पर्वत सारिखे अनेक गज मदधारा झरते, भयानक शब्द करते, अनेक आभूषणयुक्त, उन पर महा योधा चढ़े अर तुरंग पवन सारिखे चंचल जिनकी पूँछ चमर समान हालती अनेक आभूषण पहरें, उनकी पीठ पर महाबाहू सुभट चढ़े अर सूर्य के रथ समान अनेक ध्वजाओं की पंक्ति से शोभायमान, जिनमें बडे बड़े सामन्त बखतर पहरे, शस्त्रों के समूह धारे बैठे इत्यादि महासेना सहित यम आया। तब विभीषण ने यम की सर्वसेना अपने बाणों से हटाइ। कैसे हैं विभीषण ? रणविषें प्रवीण रथविषें आरूढ़ हैं। विभीषण के बाणों से यम किंकर पुकारते हुये भागे। यम किंकरों के भागने अर नारकियों के छुड़ाने से महा क्रूर होकर विभीषण पर रथ चढ्या धनुष को धार आया। ऊँची है ध्वजा जाकी, काले सर्पसमान कुटिल केश जाके, भ्रकुटी चढ़ाए लाल हैं नेत्र जाके, जगत रूप ईंधन के भस्म करने को अग्नि समान आप तुल्य जो बड़े बड़े सामंत उनकर मंडित युद्ध करने को अपने तेज से आकाश विषें उद्योत करता संता आप आया। तब रावण यम को देख विभीषणकूं निवार आप रणसंग्रामविषें उद्यमी भए। यम के प्रताप से सर्व राक्षस सेना भयभीत होय रावण के पीछे आय गई। कैसा है यम ? अनेक आडम्बर धरे है, भयानक है मुख जाका, रावण भी रथ पर आरूढ़ होकर यम के सन्मुख भए। अपने वाणन के समूह यम पर चलाए। इन दोनों के वाणनकरि आकाश आच्छादित भया। कैसे हैं बाण ? भयानक है शब्द जिनका, जैसे मेघों के समूह से आकाश व्याप्त होय, तैसें बाणों से आच्छादित होय गया। रावण ने यम के सारथी को प्रहार किया सो सारथी भूमि में पड़ा अर एक बाण यम को लाग्या सो यम भी रथ से गिरता भया। तब यम रावण को महा बलवान देखि दक्षिण दिशा का दिग्पालपणा छोड भाग्या। सारे कुटुम्ब को लेकर परिजन पुरजन सहित रथनूपुर गया अर इन्द्रकूं नमस्कार कर बीनती करता भया कि "हे देव ! आप कृपा करो अथवा कोप करो, आजीवका राखहु अथवा हरो, तिहारी जो वांछा होय सो करो। यह यमपणा मुझसे न होय। माली के भाई सुमाली का पोता

दशानन महा योद्धा जिसने पहिले तो वैश्रवण जीता, वह तो मुनि हो गया अर मुझें भी उसने जीता सो मैं भागकर तुम्हारे निकट आया हूं। उसका शरीर वीर रस से बना है। वह महात्मा है, वह जेष्ठके मध्यान्हका सूर्य समान कभी भी न देखा जाय है।" यह वार्ता सुनकर रथनूपुरका राजा इन्द्र संग्रामको उद्यमी भया, तब मंत्रियोंके समूह ने मने किया। कैसे हैं मंत्री ! वस्तु का यथार्थ स्वरूप जाननहारे हैं। तब इन्द्र समझकर बैठ रहा। इन्द्र यमका जमाई है, उसने यमको दिलासा दिया कि तुम बड़े योधा हो, तुम्हारे योधापनेमें कमी नाहीं परन्तु रावण प्रचंड पराक्रमी है यातें तुम चिंता न करो, यहां हीसुखसे तिष्ठो, ऐसा कहकर इनका बहुत सन्मान कर राजा इन्द्र राजलोक में गए अर कामभोग के समुद्र में मग्न भए। कैसा है इन्द्र ? बड़ा है विभूति का मद जाकै, रावण के चरित्र के जो जो वृत्तान्त यम ने कहेहुते, वैश्रवण का वैराग्य लेना अर अपना भागना, वह इन्द्र अपने ऐश्वर्य के मदमें भूल गया। जैसे अभ्यास बिना विद्या भूल जाय तैसे यम भी इन्द्र का सत्कार पाय अर असुर संगीत नगर का राज पाय मान भंग का दुःख भूल गया। मन में मानता भया कि—जो मेरी पुत्री महा रूपवन्ती सो तो इन्द्रके प्राणों से भी प्यारी है अर मेरा इन्द्र का बड़ा सम्बंध है तातें मेरे कहा कमी है ?

अथानंतर रावण ने किहकंधपुर तो सूर्यरज को दिया अर किहकूंपुर रक्षरजको दिया। दोउनकों सदा के हितु जान बहुत आदर किया। रावण के प्रसाद से बानरवंशी सुखसें तिष्ठे। रावण सब राजनिका राजा महालक्ष्मी अर कीर्ति को धरें दिग्विजय करै। बड़े २ राजा प्रतिदिन आय आय मिलें, सो रावणका कटकरूप समुद्र अनेक राजाओं की सेनारूपी नदीसे पूरित होता भया अर दिन दिन विभव अधिक होता भया, जैसें शुक्लपक्ष का चन्द्रमा दिन दिन कलाकरि बढ़ता जाय तैसें रावण दिन दिन बढ़ता जाय। पुष्पक नामा विमानविषें आरूढ होय त्रिकूटाचल के शिखर पर आय तिष्ठा। कैसा है विमान ? रत्ननिकी माला से मंडित है अर ऊँचे शिखरोंकी पंक्तिकरि विराजित है, शीघ्र जहां चाहै वहां जाय ऐसे विमान का स्वामी रावण महाधीर्यता करि मण्डित पुण्यके फलका है उदय जाकै। जब रावण त्रिकूटाचलके शिखर सिधारे, सब बातों में प्रवीण, तब राक्षसोंके समूह नाना प्रकारके वस्त्राभूषण करि मण्डित परमहर्षकूं प्राप्त भए। सर्व राक्षस रावणको ऐसे मंगल वचन गम्भीर शब्द कहते भये "हे देव ! तुम जयवंत होवो, आनन्दको प्राप्त होवो, चिरकाल जीवो, वृद्धि को प्राप्त होवो, उदय को प्राप्त होवो", निरन्तर ऐसे मंगल वचन गम्भीर शब्द कर कहते भए। कई एक सिंह शार्दूलनिपर चढ़े, कई एक हाथी घोड़निपर चढ़े, कईएक हंसनि पर चढ़े, प्रमोदकरि फूल रहे हैं नेत्र जिनके, देवनि कैसा आकार धरे,

जिनका तेज आकाश विषैं फैल रहा है, बन पर्वत अन्तरद्वीप के विद्याधर राक्षस आए, समुद्रको देखकर विस्मय को प्राप्त भए। कैसा है समुद्र ? नाहीं दीखै है पार जिसका, अति गम्भीर है, महामत्स्यादि जलचरों का भरा है, तमाल बन समान श्याम है, पर्वत समान ऊंची ऊंची उठै हैं लहरनिके समूह जाविषैं पाताल समान औंडा, अनेक नाग नागनिकरि भयानक, नाना प्रकार के रत्ननिके समूहकरि शोभायमान, नाना प्रकार की अद्भुत चेष्टाकों धारें। अर लंकापुरी अति सुन्दर हुती ही अर रावण के आने से अधिक समारी गई है। कैसी है लंका ? अति देदीप्यमान रत्नों का कोट है जाकै अर गम्भीर खाई कर मंडित है, कुंद के पुष्प समान अति उज्ज्वल स्फटिक मणि के महल हैं जिनमें। इन्द्र नील मणियों की जाली शोभै हैं अर कहू इक पद्मराग मणियों के अरुण महल हैं, कहूँ इक पुष्पराग मणिन के महल, कहूँ इक मरकत मणिन के सदा महल हैं इत्यादि अनेक मणियनिके मन्दिरनिकरि लंका स्वर्गपुरी समान है। नगरी तो सदा ही रमणीक है परन्तु धनी के आयवेकरि अधिक बनी है, रावण ने अति हर्ष से लंकामें प्रवेश किया। कैसा है रावण ? जाकों काहू की शंका नाहीं, पहाड़ समान हाथी तिनकी अधिक शोभा बनी है अर मन्दिर समान रत्नमई रथ बहुत सम्हारे हैं, अश्वों के समूह हींसते चलायमान चमर समान हैं पूछ जिनकी अर विमान अनेक प्रभा को धरें इत्यादि महा विभूति कर रावण आया। चंद्रमाके समान उज्ज्वल सिर पर छत्र फिरते, अनेक ध्वजा पताका फरहरती, बंदीजनों के समूह विरद बखानते, महामंगल शब्द होते, बीण बांसुरी शंख इत्यादि अनेक वादित्र बाजते, दसों दिशा अर आकाश शब्दायमान हो रहा है, या विधि लंका में पधारे। तब लंका के लोग अपने नाथ का आगमन देख दर्शन के लालसी हाथनि में अर्घ लिए पत्र पुष्प रत्न लिए अनेक सुन्दर वस्त्र आभूषण पहरे रागरंग सहित रावण के समीप आए, वृद्धनिकूं आगें धर तिनके पीछें आय नमस्कार करि कहते भये—हे नाथ ! लंका के लोग अजितनाथ के समय से आपके घरके शुभचिन्तक हैं सो स्वामीको अति प्रबल देख अति प्रसन्न भए हैं, भाँति भांति की आशीस दीनी। तब रावण ने बहुत दिलासा देकर सीख दीनी, तब रावण के गुण गावते अपने अपने घर को गये।

अथानन्तर रावण के महल में कौतुकयुक्त नगर की नर नारी अनेक आभूषण पहिरे, रावणके देखनेकी इच्छा जिनको, सर्व घर के कार्य छोड़ छोड़ पृथ्वीनाथ के देखनेको आईं। कैसे हैं रावण ? वैश्रवण के जीतनहारे तथा यम विद्याधर के जीतनेहारे अपने महलविषैं राजलोक सहित सुखसूं तिष्ठे। कैसा है महल ? चूडामणि समान मनोहर है। और भी विद्याधरों के अधिपति यथायोग्य स्थानकविषैं आनन्दसूं तिष्ठे, देवनि समान हैं

चरित्र जिनके ।

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं–हे श्रेणिक ! जो उज्ज्वल कर्म के करणहारे हैं तिनका निर्मल यश पृथ्वीविषें होय है, नाना प्रकार के रत्नादिक सम्पदा का समागम होय है अर प्रबल शत्रुओं का निर्मूल पृथ्वी विषें होय है, सकल त्रैलोक्यविषें गुण विस्तरै हैं। या जीव के प्रचण्ड बैरी पांच इन्द्रियों के विषय हैं, जो जीव की बुद्धि हरें हैं अर पापों का बन्ध करें हैं। ये इन्द्रियों के विषय पुण्यके प्रसाद से वशीभूत होय हैं अर राजाओंके बाहिरले वैरी प्रजाके बाधक ते भी आय पांवों विषें पड़ै हैं। ऐसा मानकर जो धर्म के विरोधी विषयरूप बैरी है, वे विवेकियों को वश करने योग्य हैं, तिनका सेवन सर्वथा न करना। जैसें सूर्यकी किरणों से उद्योत होते संते भली दृष्टि वाले पुरुष अंधकार करि व्याप्त ओंडे खंदकविषें नाहीं पड़े हैं तैसें जे भगवान के मार्ग विषें प्रवर्त्तें हैं तिनके पापबुद्धि की प्रवृत्ति नाहीं होय है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषें दशग्रीव का निरूपण करने वाला आठवाँ पर्व पूर्ण भया ॥ ८ ॥

(नवम पर्व)

[बाली मुनि का निरूपण]

अथानंतर आगे अपने इष्टदेवकूं विधिपूर्वक नमस्कार करि उनके गुण स्तवनकरि किहकंधपुर विषें राजा सूर्यरज बानरवंशी, तिनकी रानी चंद्रमालिनी अनेक गुणसम्पन्न ताके बाली नामा पुत्र भए तिसका वर्णन करिए हैं सो हे भव्य ! तू सुन। कैसे हैं बाली ? सदा उपकारी शीलवान पंडित प्रवीण धीर लक्ष्मीवान शूरवीर ज्ञानी अनेक कला संयुक्त सम्यग्दृष्टि महाबली राजनीतिविषें प्रवीण, धैर्यवान, दयाकर भीगा है चित्त जिनका, विद्या के समूहकरि गर्वित मंडित कांतिवान तेजवंत हैं।

ऐसे पुरुष संसारमें विरले ही हैं जो समस्त अढ़ाई द्वीपनिके जिनमंदिरनिके दर्शन में उद्यमी हैं। कैसे हैं वे जिनमंदिर ? अति उत्कृष्ट प्रभावकर मंडित हैं। बाली तीनोंकाल अति श्रेष्ठ भक्तियुक्त संशयरहित श्रद्धावंत जंबूद्वीपके सर्व चैत्यालयनिके-दर्शन कर आवै, महा पराक्रमी शत्रुपक्षका जीतनहारा नगरके लोगोंके नेत्ररूपी कुमुदके प्रफुल्लित करनेको चन्द्रमा समान जिसको किसी की शंका नाहीं, किहकंधपुरविषें देवनकी न्याईं रमै। कैसा है किहकंधपुर ? महारमणीक, नाना प्रकार के रत्नमयी मंदिरनिकरि मंडित गज तुरग रथादिसे पूर्ण, नाना प्रकार का व्यापार है जहां अर अनेक सुन्दर हाटनिको पंक्तिनकर

युक्त है जहां, जैसें स्वर्गविषें इन्द्र रमै तैसें रमै है। अनुक्रमतें जाके छोटा भाई सुग्रीव भया सो महाधीर वीर मनोज्ञरूपकरि युक्त महानीतिवान विनयवान है. ये दोनों ही वीर कुल के आभूषण होते भए जिनका आभूषण बड़ों का विनय है। सुग्रीव के पीछे श्रीप्रभा बहिन भई जो साक्षात लक्ष्मी, रूपकर अतुल्य है अर किहकंधपुरविषें सूर्यरजका छोटा भाई रक्षरज ताकी रानी हरिकांता ताके पुत्र नल अर नील होते भए। सुजनोंके आनन्द के उपजावनहारे महासामंत रिपु की शंकारहित मानों किहकंधपुर के मंडन ही हैं। इन दोनों भाइयनिके दो दो पुत्र महागुणवंत भए। राजा सूर्यरज अपने पुत्रोंको यौवनवंत देख मर्यादाके पालक जान आप विषयोंको विष मिश्रित अन्न समान जान संसारसे विरक्त भए। कैसे हैं राजा सूर्यरज ? महाज्ञानवान हैं। बालीको पृथ्वीके पालने निमित्त राज दिया अर सुग्रीव को युवराजपद दिया,अपने स्वजन परिजन समान जाने अर यह चतुर्गति-रूप जगत महादुःखकरि पीड़ित देख विहतमोहनामा मुनिके शिष्य भए, जैसा भगवानने भाष्या तैसा चारित्र धारचा। कैसे हैं मुनि सूर्यरज ? शरीरविषें भी नाहीं है ममत्व जिनके, आकाश सारिखा निर्मल है अंतःकरण जिनका, समस्त परिग्रहरहित पवनकी नाईं पृथ्वीविषें विहार किया, विषयकषायरहित मुक्ति के अभिलाषी भए।

अथानंतर बाली के ध्रुवा नामा स्त्री महापतिव्रता गुणों के उदय से सैंकड़ों रानियोंमें मुख्य उस सहित ऐश्वर्यको धरै। राजा बाली बानरवंशियों के मुकुट, विद्याधरनि करि मानिये है आज्ञा जाकी, सुन्दर हैं चरित्र जाके सो देवनके ऐसे सुख भोगते हुए किहकंधपुर में राज करैं।

रावणकी बहिन चंद्रनखा जिसके सर्व गात मनोहर, राजा मेघप्रभके पुत्र खरदूषण ने जिस दिन से इसको देखा उस दिन से कामबाणकरि पीडित भया, याकौं हरा चाहै। सो एक दिन रावण, राजा प्रवर रानी आवली उनकी पुत्री तनूदरी उसके अर्थ गए सो खरदूषण लंका रावण बिना खाली देख चिन्तारहित होय चन्द्रनखा हरी। कैसा है खरदूषण ? अनेक विद्याका धारक मायाचारमें प्रवीण है बुद्धि जाकी, दोऊ भाई कुम्भकरण अर विभीषण बड़े शूरवीर हैं परंतु छिद्र पायकरि मायाचारकरि कन्याकूं हर ले गया, तब वे क्या करें। ता पीछैं सैना दौड़ने लगी तब कुम्भकरण विभीषणने यह जानकर मनैं करी कि खरदूषण पकड़्या तो जावै नाहीं अर मारण योग्य नाहीं। बहुरि रावण आए तब ए वार्ता सुनि अति क्रोध किया। यद्यपि मार्गके खेदसे शरीरविषें पसेव आया हुता तथापि तत्काल खरदूषण पर जाने को उद्यमी भए। कैसा है रावण ? महामानी है। एक खड्ग ही का सहाय लिया अर सैना भी लार न लीनी। यह विचारा कि जो महावीर्यवान

पराक्रमी है तिनके एक खड्गही का सहारा है। तब मंदोदरी ने हाथ जोड़ विनती करी कि 'हे प्रभो ! आप प्रगट लौकिक स्थितिके ज्ञाता हो, अपने घरकी कन्या औरको देनी अर औरोंकी आप लेनी, इन कन्याओंकी उत्पत्ति ऐसी ही है अर खरदूषण चौदह हजार विद्याधरों का स्वामी है। जे विद्याधर युद्धसे कभी भी पीछे न हटें, बड़े बलवान हैं अर इस खरदूषणको अनेक सहस्र विद्या सिद्ध हैं, महागर्ववंत है आप समान शूरवीर है, यह वार्ता लोकनिसैं क्या आपने नाहीं सुनी है, आपके अर उसके भयानक युद्ध प्रवर्ते तब भी हारजीत का सन्देह ही है अर वह कन्या हर ले गया है सो वह हरणकार दूषित भई है, औरनिकूं जो देनी आवै सो खरदूषणके मारनेसे वह विधवा होय है अर सूर्यरजकी मुक्ति गए पीछे चन्द्रोदर विद्याधर पातालंकामें थाने हुता ताहि काढकर यह खरदूषण तुम्हारी बहिन सहित पातालंकाविषैं तिष्ठै है, तिहारा सम्बन्धी है।' तब रावण बोले-हे प्रिये ! मैं युद्ध से कभी भी नहीं डरूं परन्तु तिहारे वचन नहीं उलंघने अर बहिन विधवा नहीं करनी सो हमने क्षमा करी, तब मन्दोदरी प्रसन्न भई।

अथानंतर कर्मनिके नियोगसे चन्द्रोदर विद्याधर कालकूं प्राप्त भया, तब ताकी स्त्री अनुराधा गर्भिणी बलकरि बिचारी भयानक बनमें हिरणीकी नाईं भ्रमै, सो मणिकांत पर्वतपर सुन्दर पुत्र जन्या। शिला ऊपर पुत्रका जन्म भया, कैसी है शिला ? कोमल पल्लव अर पुष्पों के समूहसे संयुक्त है, अनुक्रमसे बालक वृद्धिकूं प्राप्त भया। यह बनवासिनी माता उदास चित्त पुत्र की आशासे पुत्रकूं पाले, जब यह पुत्र गर्भमें आया तबही से इनके माता पिता को वैरीकरि विराधना उपजी, यातैं याका नाम विराधित धरा। यह विराधित राजसम्पदावर्जित जहां २ राजानिपै जाय तहां २ याका आदर नाहीं, जो निज स्थानकतैं रहित होय ताका सम्मान कहांतैं होय ? जैसैं सिरका केश स्थानकतैं छूटया आदर न पावै। यह राजाका पुत्र सो खरदूषणको जीतवे समर्थ नाहीं, सो चित विषैं खरदूषणका उपाय चितवता हुआ सावधान रहै अर अनेक देशनिमें भ्रमण करै, षट्कुलाचल विषैं अर सुमेरु आदि पर्वतनिविषैं चढ़ा, रमणीक बनविषैं जो अतिशय स्थानक हैं, जहां देवनिका आगमन है तहाँ यह विहार करै अर संग्रामविषैं योद्धा लड़ैं तिनके चरित्र देखै, आकाशविषैं देवोंके साथ संग्राम देखा। कैसा है संग्राम ? गज, अश्व, रथादिकर पूर्ण है अर ध्वजा छत्रादिककर शोभित है। या भाँति विराधित कालक्षेप करै अर लंकाविषै रावण इंद्रकी नाईं सुखसूं तिष्ठै।

अथानंतर सूर्यरज का पुत्र बाली रावणकी आज्ञातैं विमुख भया। कैसा है बाली ? अद्भुत कर्मकी करणहारी जो महाविद्या तिनकरि मण्डित है अर महाबली है। तब रावण

ने बालोपै दूत भेजा। सो दूत महाबुद्धिमान किहकंधपुर जायकर बालीसे कहता भया—हे बानराधीश ! दशमुख तुमकूं आज्ञा करी है सो सुनो। कैसे हैं दशमुख ! महाबली महातेजस्वी, महालक्ष्मीवान, महानीतिवान, महासैनाकरियुक्त, प्रचंडनकूं दंड देनहारे महाउदयवान, जिस समान भरतक्षेत्रमें दूजा नाहीं, पृथ्वीके देव और शत्रुओंका मान मर्दन करनहारा है, तिसने यह आज्ञा करी है जो तिहारे पिता सूर्यरजको मैने राजा यम बैरीको काढकर किहकंधपुरमें थाप्या अर तुम सदाके हमारे मित्र हो; परन्तु आप अब उपकार भूलकर हमसों पराङ्मुख रहो हो, यह योग्य नाहीं है, मैं तुम्हारे पिता से भी अधिक प्रीति तुमसे करूंगा, अब तुम शीघ्र ही हमारे निकट आवो, प्रणाम करो अर अपनी बहिन श्री प्रभा हमको परणावो, हमारे संबंधसे तुमको सर्व सुख होयगा। दूतने कही—ऐसी रावण की आज्ञा प्रमाण करो। सो बालीके मन में और बात तो आई परन्तु एक प्रणाम की न आई, काहेतें ? जो याकें, देव गुरु शास्त्र बिना और कों नमस्कार नाहीं करै, यह प्रतिज्ञा है। तब दूतने फिर कही—हे कपिध्वज ! अधिक कहनेसे कहा ? मेरे वचन तुम निश्चय करो, अल्प लक्ष्मी पाकर गर्व मत करो। या तो दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करो या आयुध पकड़ो। या तो सेवक होयकर स्वामी पर चंवर ढोरो या भागकर दसों दिशाविषै विचरो। या तो सिर नवावो या खेंचिके धनुष निवावो। या रावणकी आज्ञाको कर्णका आभूषण करहु अथवा धनुषका प्रत्यंचा खेंचकर कानों तक लावो। रावण आज्ञा करी है कि कै तो मेरे चरणारविंदकी रज माथे चढावहु या रणसंग्राम विषैं सिर पर टोप धरो। या तो बाण छोड़ो या धरती छोड़ो। या तो हाथ में वेत्र दंड लेकर सेवा करो या वरछी हाथ में पकड़ो। या तो अंजली जोड़हु या सेना जोड़हु, या तो मेरे चरणोंके नख विषैं मुख देखहु या खड्गरूप दर्पणमें मुख देखहु। ये कठोर वचन रावण के दूत ने बाली से कहे। तब बाली का व्याघ्रविलम्बी नामा सुभट कहता भया। रे कुदूत ! नीच पुरुष ! तू ऐसे अविवेक वचन कहै है सो तू खोटे ग्रहकर ग्रह्या है, समस्त पृथ्वी विषै प्रसिद्ध है पराक्रम अर गुण जाका, ऐसा बाली देव तेरे कुराक्षस ने अब तक कर्णगोचर नहीं किया। ऐसा कहकर सुभट ने महाक्रोधायमान होकर दूतके मारणेकूं खड्गपर हाथ धरया तब बालीने मने किया जो इस रंक के मारने से कहा ? यह तो अपने नाथ के कहे प्रमाण वचन बोलै है अर रावण ऐसे वचन कहावै है सो उसी की आयु अल्प है। तब दूत डरकर शिताब (जल्दी) रावण पै गया, रावण को सकल वृत्तांत कह्या, सो रावण महाक्रोधकूं प्राप्त भया। दुस्सह तेजवान रावणने बड़ी सेनाकरि मंडित बखतर पहन शीघ्र ही कूच किया। रावण का शरीर तेजोमय परमाणुओं से रचा गया है, रावण किहकंधपुर पहुँचे।

तदि बाली संग्राम विषैं प्रवीण महा भयानक शब्द सुनकर युद्धके अर्थ बाहिर निकसनेका उद्यम किया तब महाबुद्धिमान नीतिवान जे सागर वृद्धादिक मंत्री तिनने वचनरूप जलकर शांत किया कि हे देव ! निष्कारण युद्ध करने से कहा ? क्षमा करो, आगे अनेक योधा मान करके क्षय भए। कैसे हैं वे योधा ? रण ही है प्रिय जिनकूं, अष्टचन्द्र विद्याधर अर्ककीर्ति के भुज के आधार जिनके देव सहाई तौ भी मेघेश्वर जयकुमार के बाणों कर क्षय भए, रावणकी बड़ी सेना है जिसकी ओर कोई देख सकै नाहीं, खड्ग गदा सेल बाण इत्यादि अनेक आयुधों करि भरी है—अतुल्य है। तातैं आप संदेहकी तुला जो संग्राम उसके अर्थ न चढ़ो। तब बाली ने कही—अहो मंत्री, अपनी प्रशंसा करनी योग्य नाहीं तथापि मैं तुमको यथार्थ कहूँ हूँ कि इस रावण को सेनासहित एक क्षणमात्र में बाएं हाथकी हथेली सं चूर डारने को समर्थ हूँ परन्तु यह भोग क्षणविनश्वर हैं, इनके अर्थ निर्दय कर्म कौन करै ? जब क्रोधरूपी अग्नि से मन प्रज्वलित होय तब निर्दयकर्म होय है। यह जगतके भोग केले के थंभ समान असार हैं तिनको पाकर मोहवंत जीव नरक में पड़ै हैं। नरक महादुःखों से भरया है, सर्व जीवों को जीतव्य वल्लभ है सो जीवनि के समूह को हतकर इंद्रियनिके भोगतैं सुख पाइए है, तिनकरि गुण कहां ? इंद्रियसुख साक्षात् दुःख ही हैं, ये प्राणी संसाररूपी महाकूप में अरहट की घड़ीके यंत्र समान रीती भरी करते रहते हैं। कैसे हैं ये जीव ? विकल्प जालसे अत्यन्त दुःखी हैं। श्री जिनेन्द्र देव के चरणयुगल संसार के तारनेके कारण हैं तिनकूं नमस्कार कर औरकूं कैसे नमस्कार करूं ? मैंने पहले से ऐसी प्रतिज्ञा करी है कि देव गुरु शास्त्रके सिवा औरको प्रणाम न करूं तातैं मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग भी न करूं अर युद्धविषैं अनेक प्राणियोंका प्रलय भी न करूं बल्कि मुक्तिकी देनहारी सर्व संगरहित दिगंबरी दीक्षा धरूं, मेरे जो हाथ श्रीजिनराज की पूजा में प्रवर्तैं, दानविषैं प्रवर्तैं अर पृथ्वीकी रक्षाविषैं प्रवर्तैं; वे मेरे हाथ कैसे किसीको प्रणाम करैं ? अर जो हस्तकमल जोड़कर पराया किंकर होवे, उसका कहा ऐश्वर्य? अर कहा जीतव्य? वह तो दीन है। ऐसा कहकर सुग्रीव को बुलाय आज्ञा करते भये कि हे बालक ! सुनो, तुम रावणको नमस्कार करो वा न करो, अपनी बहिन उसे देवो अथवा मत देवो, मेरे कछु प्रयोजन नाहीं, मैं संसारके मार्गसे निवृत्त भया, तुमको रुचै सो करो। ऐसा कहकर सुग्रीव को राज्य देय आप गुणनिकरि गरिष्ठ श्रीगगनचन्द्र मुनिपै परमेश्वरी दीक्षा आदरी। परमार्थ में लगाया है चित्त जिनने अर पाया है परम उदय जिनने, वे बाली योधा परम ऋषि होय एक चिद्रूप भाव में रत भए। सम्यग्दर्शन है निर्मल जिनके, सम्यक्ज्ञानकरि युक्त है आत्मा जिनका, सम्यक्चारित्र विषैं तत्पर बारह अनुप्रेक्षाओं का

निरंतर विचार करते भए। आत्मानुभव में मग्न मोह जाल रहित स्वगुणरूपी भूमि पर विहार करते भए। कैमी है गुण भूमि ? निर्मल आचारी जे मुनि तिनकर सेवनीक है। बाली मुनि पिता की न ईं सर्व जीवों पर दयालु बाह्याभ्यंतर तपसे कर्मकी निर्जरा करते भए। वे शांतबुद्ध तपोनिधि महाऋद्धिके निवास होते भए, सुन्दर है दर्शन जिनका, ऊँचे ऊँचे गुणस्थानरूपी जे सिवाण तिनके चढ़ने में उद्यमी भए। भेदी है अंतरंग मिथ्या भावरूपी ग्रंथि (गांठ) जिनने, बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित जिनसूत्र के द्वारा कृत्य अकृत्य सब जानते भये, महा गुणवान महासंवर कर मंडित कर्मों के समूह को खिपावते भए, प्राणोंकी रक्षामात्र सूत्रप्रमाण आहार लेय हैं अर प्राणनिकूं धर्मके निमित्त धारै हैं अर धर्मकूं मोक्ष के अर्थ उपर्जे हैं, भव्यलोकनिकूं आनंद के करनहारे उत्तम हैं आचरण जिनके, ऐसे बाली मुनि और मुनियोंको उपमा योग्य होते भये अर सुग्रीव रावण को अपनी बहिन परणाय कर रावण की आज्ञा प्रमाण किहकंधपुर का राज्य करता भया।

पृथ्वीविषैं जो जो विद्याधरोंकी कन्या रूपवती थीं, रावण ने वे समस्त अपने पराक्रम से परणी, नित्यालोक नगर में राजा नित्यालोक राणी श्रीदेवी तिनकी रत्नावली नामा पुत्री उसको परणकर रावण लंकाको आवने हुते सो कैलाश पर्वत ऊपर आय निकसे सो पुष्पक विमान तहांके जिनमंदिरनिके प्रभाव करि अर बाली मुनिके प्रभाव करि आगें न चल सका। कैसा है विमान ? मन के वेग समान चंचल है, जैसे सुमेरु के तटकूं पायकरि वायुमंडल थंभै तैसें विमान थभा। तब घंटादिक का शब्द होता रह गया मानों विलषा होय मौनको प्राप्त भया, तब रावण विमानको अटका देख मारीच मंत्रीसे पूछते भए कि यह विमान कौन कारणसे अटक्या। तब मारीच सर्व वृत्तान्त विषें प्रवीण कहता भया। हे देव ! सुनो, यह कैलाश पर्वत है, यहां कोई मुनि कायोत्सर्गकरि तिष्ठै हैं, शिला के ऊपर रत्नके थंभ समान सूर्यके सम्मुख ग्रीष्म में आतापनयोगधर तिष्ठै हैं, अपनी कान्ति से सूर्यकी कांतिको जीतते हुए विराजै हैं, ये महामुनि धीरवीर हैं, महाघोर वीर तपको धरै हैं, शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हुआ चाहै हैं। इसलिए उतरकर दर्शन करि आगे चलो तथा विमान पीछे फेर कैलाशको छोड़कर और मार्ग होय चलो। जो कदाचित् हठकर कैलाशके ऊपर होय चलोगे तो विमान खंड-खंड हो जायगा। यह मारीचके वचन सुनकर राजा यमका जीतनहारा रावण अपने पराक्रम से गर्वित होकर कैलाश पर्वत को देखता भया। कैसा है पर्वत ? मानो व्याकरण ही है; क्योंकि नानाप्रकार के धातुनि करि भरया है अर सहस्त्र गुण युक्त नाना प्रकारके सुवर्णकी रचनासे रमणीक पद पंक्तियुक्त नाना प्रकार के स्वरों कर पूर्ण है। बहुरि कैसा है पर्वत ? ऊंचे तीखे शिखरनिके समूहकरि

शोभायमान है, आकाशसे लग्या है, निसरते उछलते जे जलके नीझरने तिनकरि प्रगट हंसै ही है, कमल आदि अनेक पुष्प तिनकी सुगंध सोई भई सुरा ताकरि मत्त जे भ्रमर तिनकी गुंजार से अति सुन्दर है, नाना प्रकारके वृक्षनिकरि भरया है, बड़े २ शालके जे वृक्ष तिनकर मंडित जहां छहों ऋतुओं के फल फूल शोभै हैं, अनेक जातिके जीव विचरै हैं, जहां ऐसी ऐसी औषध हैं जिनके त्रासतें सर्पों के समूह दूर रहै हैं। महामनोहर सुगंधसे मानों वह पर्वत सदा नवयौवनहीको धरै है अर मानों वह पर्वत पूर्वपुरुष समान ही है। विस्तीर्ण जे शिला वे ही हैं हृदय जाके अर शाल वृक्ष वे ही महा भुजा अर गंभीर गुफा सो ही बदन अर वह पर्वत शरद ऋतु के मेघ समान निर्मल तट तिनकरि सुन्दर मानों दुग्ध समान अपनी कांति से दसों दिशाको स्नान ही करावै है। कईइक गुफानिविषैं सूते जे सिंह तिनकर भयानक है, कहूँ इक सूते जे अजगर तिनके स्वांसकरि हालै हैं वृक्ष जहां, कहूँ इक भ्रमतें क्रीड़ा करते जे हिरणों के समूह तिनकर शोभै है, कहूँ इक माते हाथिनि के समूहसे मंडित है बन जहां, कहूं इक फूलनिके समूह करि मानो रोमांच होय रहा है अर कहुँइक बन की सघनता करि भयानक है, कहुँइक कमलोंके बनसे शोभित है सरोवर जहाँ, कहुँ इक वानरनिके समूह वृक्षनिकी शाखानिपर केलि कर रहे हैं अर कहूं इक गेंडान के पगकरि छेदे गए हैं जे चंदनादि सुगंध वृक्ष तिनकरि सुगंधित होय रहा है, कहूँइक बिजली के उद्योत करि मेल्या जो मेघमण्डल उस समान शोभा को धरै है, कहूँइक दिवाकर समान जे ज्योतिरूप शिखर तिन करि उद्योतरूप किया है आकाश जानैं, ऐसा कैलाशपर्वत देखि रावण विमानतें उतरया। तहां ध्यानरूपी समुद्रविषैं मग्न अपने शरीर के तेजसे प्रकाश की हैं दसों दिशा जिनने, ऐसे बाली महामुनि देखें। दिग्गजन की सूण्ड समान दोऊ भुजा लंबाए, कायोत्सर्ग धरे खड़े, लिपटि रहे हैं शरीर से सर्प जिनके, मानों चंदन के वृक्ष ही हैं। आतापन शिलापर निश्चल खड़े प्राणियों को ऐसा दीखें मानो पाषाण का थंभ ही है। रावण बाली मुनिको देखकरि पूर्व बैर चितारि पापी क्रोधरूपी अग्नि से प्रज्वलित भया। भृकुटि चढ़ा होंट डसता कठोर शब्द मुनिको कहता भया—"अहो यह कहा तप तेरा जो अब भी अभिमान न छूटया, मेरा विमान चलता थांभ्या। कहां उत्तम क्षमारूप वीतराग का धर्म अर कहां पापरूप क्रोध, तू वृथा खेद करै है। अमृत अर विषको एक किया चाहै है तातैं मैं तेरा गर्व दूर करूंगा, तुझ सहित कैलाश पर्वतको उखाड़ समुद्र में डार दूंगा।" ऐसे कठोर वचन कहकर रावणने विकराल रूप किया। सर्व विद्या जे साधी हैं तिनकी अधिष्ठाता देवी चिंतवनमात्रसे आय ठाड़ी भई, सो विद्याबलकरि रावणने महारूप किया, धरतीको भेद पातालमें पैठा, महा पापविषैं उद्यमी है, प्रचण्ड

क्रोधकरि लाल हैं नेत्र जाके अर हूंकार शब्द करि वाचाल है मुख जाका, भुजाओंकर कैलाश पर्वतके उखाडनेका उद्यम किया। तब सिंह, हस्ती, सर्प, हिरण इत्यादि अनेक जीव अर अनेक जाति के पक्षी भयकरि कोलाहल शब्द करते भए, जल के नीझरने टूट गए, जल गिरने लगा, वृक्षों के समूह फट गए, पर्वत की शिला अर पाषाण पड़ते भए, तिनके विकराल शब्दकरि दसों दिशातें कैलाश पर्वत चलायमान भया, जो देव क्रीडा करते हुते ते आश्चर्य कों प्राप्त भए, दसों दिशाकी ओर देखते भए अर जो अप्सरा लताओंके मण्डप में केलि करती हुतीं सो लतानिकों छांड़िकरि आकाशमें गमन करती भईं। भगवान बालीने रावण का कर्तव्य जान आप धीर वीर क्रोध रहित कछु भी खेद न मान्या, जैसें निश्चल विराजते हुते तैसें ही रहे। चित्तमें ऐसा विचार किया जो या पर्वत पर भगवानके चैत्यालय अति उतंग महासुन्दरताकरि शोभित सर्व रत्नमयी भरत चक्रवर्तीके कराए हैं, जहां निरन्तर भक्ति संयुक्त सुर-असुर विद्याधर पूजाको आवैं हैं, सो या पर्वत के कम्पायमान होनेकरि चैत्यालयनिका भंग न होय अर यहां अनेक जीव विचरैं हैं तिनकूं बाधा न होय, ऐसा विचार करि अपने चरण का अंगुष्ठ ढीला दाब्या सो रावण महाभाराक्रांत होय दब्या। बहु रूप बनाया था सो भंग भया, महादुःख कर व्याकुल नेत्रों से रक्त झरने लगा, मुकुट टूट गया अर माथा भीग गया, पर्वत बैठ गया, रावण के गोड छिल गए, जंघा भी छिल गई, तत्काल पसेवनिमें भीग गया अर धरती पसेव करि गीली भई, रावण के गात्र सकुच गए, कछवे समान होय गया, तब रोने लगा, ताही कारण से पृथ्वी में रावण कहाया; अब तक दशानन कहावै था। इसके अत्यंत दीन शब्द सुनिकरि इसकी राणी अत्यन्त विलाप करती भई अर मंत्री सेनापति व सुभट लार के सर्व पहिले तो भ्रमकर वृथा युद्ध करनेको उद्यमी भए थे पीछे मुनिका अतिशय जान सर्व आयुद्ध डार दिये, मुनि के कायबल ऋद्धि के प्रभावतें देव दुंदुभी बजने लगे अर कल्पवृक्षोंके फूलों की वर्षा भई, तापर भ्रमर गुंजा करते भए, आकाश में देव देवी नृत्य करते भए, गीत की ध्वनि होती भई। तब महामुनि परमदयालु ने अंगुष्ठ ढीला किया।

रावण पर्वतके तलेसें निकसि बाली मुनि के समीपआय नमस्कार कर क्षमा कराई अर जान्या है तपका बल जानै, योगीश्वरकी बारम्बार स्तुति करता भया। हे नाथ! तुमने घर हीतें यह प्रतिज्ञा करी हुती जो मैं जिनेन्द्र, मुनीन्द्र अर जिनशासन सिवा काहूकूं भी प्रणाम न करूं सो यह सब आपके सामर्थ्यका फल है। अहो धन्य है निश्चय तिहारा अर धन्य है यह तपका बल। हे भगवान्! तुम योग शक्तिसे त्रैलोक्यको अन्यथा करवे को समर्थ हो, उत्तमक्षमा धर्मके योगसे सबपै दयालु हो, किसीपर क्रोध नाहीं। हे प्रभो!

जैसा तपकर पूर्ण मुनिको बिना ही यत्न परमसामर्थ्य होय है तैसें इंद्रादिक के नाहीं। धन्य गुण तिहारे, धन्य रूप तिहारा, धन्य कांति तिहारी, धन्य आश्चर्यकारी बल तिहारा, अद्भुत दीप्ति तिहारी, अद्भुत शील, अद्भुत तप, त्रैलोक्य में जे अद्भुत परमाणु हैं तिनकरि सुकृत का आधार तिहारा शरीर बना है, जन्म ही तें महाबली सर्व सामर्थ के धरनहारे तुम नव यौवन जगत् की माया को तजकरि परम शांतस्वरूप जो अरहंतकी दीक्षा ताहि प्राप्त भए हो सो यह अद्भुत कार्य तुम सारिखे सत्पुरषोंकर ही बनै है। मुझ पापी ने तुम सारिखे सत्पुरुषों का अविनय किया सो महा पाप का बंध किया। धिक्कार मेरे मन वचन काय को, मैं पापी मुनिद्रोह में प्रवर्त्या, जिनमंदिरनिका अविनय भया, आप सारिखे पुरुषरत्न अर मुझ सारिखे दुर्बुद्धि सो सुमेरु अर सरसोंकासा अंतर है, मोकूं मरतेकूं आज आप प्राण दिए, आप दयालु हम सारिखे दुष्ट दुर्जन तिन ऊपर भी क्षमा करो, इस समान और कहा। मैं जिनशासनको श्रवण करू हू, जानूं हूं, देखूं हू, यह संसार असार है, अस्थिर हे, दुःखस्वभाव है, तथापि मैं पापी विषयनिसे वैराग्यको नहीं प्राप्त भया धन्य हैं वे पुन्यवान महापुरुष अल्प ससारी मोक्ष के पात्र जे तरुण अवस्था में विषयों को तजि मोक्ष का मार्ग मुनिव्रत आचरै हैं। या भांति मुनि की स्तुतिकरि तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कारकरि अपनी निंदा करि बहुत लज्जावान होय मुनिके समीप जे जिनमंदिर हुते तहां बंदनाको प्रवेश किया। चंद्रहास खड्ग को पृथ्वीविष मेलि अपनी राणीनिकरी मण्डित जिनवरका अर्चन करता भया। भुजामेंसे नस रूप तांत काढकर बीण समान बजावता भया। भक्ति में पूर्ण है भाव जाका, स्तुतिकर जिनेन्द्र के गुणानुवाद गावता भया। हे देव! देवाधिदेव! लोकालोक के देखनहारे नमस्कार हो तुमकूं। कैसे हो? लोकको उलघे, ऐसा है तेज तिहारा। हे कृतार्थ महात्मा नमस्कार हो। कैसे हो? तीन लोककरि करी है पूजा जिनकी, नष्ट किया है मोहका वेग जिन्होंने, वचन से अगोचर, गुणनिके समूहके धरनहारे, महा ऐश्वर्यकरि मण्डित, मोक्षमार्ग के उपदेशक, सुख की उत्कृष्टता में पूर्ण, समस्त कुमार्ग से दूर, जीवनिको मुक्ति के कारण, महाकल्याण के मूल, सर्व कर्म के साक्षी, ध्यानकर भस्म किए हैं पाप जिन्होने, जन्म मरण के दूरकरनहारे, समस्तके गुरु अर आपके कोई गुरु नाहीं, आप किसीको नमै नाहीं अर सबकरि नमस्कार करने योग्य, आदि अन्तरहित समस्त परमार्थ जानहारे आपको केवली बिना अन्य न जान अकै, सर्व रागादिक उपाधि से शून्य, सर्वके उपदेशक. द्रव्यार्थिकनय से सब नित्य है अर पर्यायार्थिकनय से सब अनित्य है ऐसा कथन करनहारे, किसी एक नय से द्रव्य गुण का भेद अर किसी एक नय से द्रव्य गुणका अभेद ऐसा अनेकांत दिखावनहारे जिनेश्वर

सर्वरूप एकरूप चिद्रूप अरूप जीवनको मुक्तिके देनहारे ऐसे जो तुम, सो तिनको हमारा बारम्बार नमस्कार होहु।

श्रीऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, ऐसे विमल, अनंत शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्यके ताईं बारंबार नमस्कार हो, पाया है आत्मप्रकाश जिन्होंने धर्म, शांतिके ताईं नमस्कार हो, निरन्तर सुखों के मूल अर सबको शांतिके करता कुन्थु जिनेन्द्रके ताईं नकस्कार हो, अरनाथके ताईं नकस्कार हो, मल्लिनाथ के ताईं अर मुनिसुव्रतनाथ के ताईं नमस्कार हो। जो महाव्रतों के देनहारे अर अब जो होवेंगे नमि, नेम, पार्श्व अर वर्द्धमान तिनके ताईं नमस्कार हो अर जो पद्मनाभादिक अनागत होवेंगे तिनको नमस्कार हो अर जे निर्वाणादिक अतीत जिन भए तिनको नमस्कार हो। सदा सर्वदा साधुओं को नमस्कार हो अर सर्व सिद्धों को निरन्तर नमस्कार हो। ज्ञानरूप केवलदर्शनरूप क्षायिक सम्यक्त्वरूप इत्यादि अनंत गुणरूप हैं। यह कैसे हैं सिद्ध ? केवल पवित्र अक्षर लकाके स्वामी ने गाए।

रावण द्वारा जिनेन्द्रदेव की महास्तुति करने से धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान भया। तब अवधिज्ञानसे रावण का वृत्तांत जान, हर्ष से फूले हैं नेत्र जिनके, सुन्दर है मुख जिनका, देदीप्यमान मणियों के ऊपर जे मणि उनकी कांति से दूर किया है अंधकार का समूह जिनने, पाताल से शीघ्र ही नागोंके राजा कैलाश पर आए। जिनेन्द्र को नमस्कार करि विधिपूर्वक समस्त मनोज्ञ द्रव्यों से भगवानकी पूजाकरि रावण से कहते भए—हे भव्य! तैने भगवान की स्तुति बहुत करी अर जिनभक्तिके बहुत सुन्दर गीत गाए सो हमको बहुत हर्ष उपज्या, हर्ष करि हमारा शरीर आनन्दरूप भया। हे राक्षसेश्वर ! धन्य है तू जो जिनराजकी स्तुति करै है। तेरे भावकरि अबार हमारा आगमन भया है, मैं तेरे से संतुष्ट भया, तू वर मांग। जो मनवांछित वस्तु तू मांगे सो दूं। जो वस्तु मनुष्यों को दुर्लभ है सो तुम्हें दूं। तब रावण कहते भए कि हे नागराज ! जिन वन्दना तुल्य और कहा शुभ वस्तु है जो मैं आपसे मांगूं। आप सर्व बात समर्थ मनवांछित देने लायक हैं। तब नागपति बोले—हे रावण ! जिनेंद्र की वंदना के तुल्य और कल्याण नाहीं। यह जिनभक्ति आराधी हुई मुक्तिके सुख देवै है तातैं या तुल्य और कोई पदार्थ न हुआ व होयगा। तब रावण ने कही-हे महामते ! जो इससे अधिक और वस्तु नाहीं तो मैं कहा याचूं ? तब नागपति बोले-तैनें जो कहा सो सर्व सत्य है, जिनभक्ति से सब कुछ सिद्ध होय है, याकों कुछ दुर्लभ नाहीं, तुम सारिखे मुझ सारिखे अर इन्द्र सारिखे अनेकपद सर्व जिनभक्तिसे ही होय हैं अर यह तो संसार के सुख अल्प हैं, विनाशीक हैं,

इनकी क्या बात ? मोक्षके अविनाशी जो अतींद्रिय सुख वे भी जिनभक्ति करि प्राप्त होय हैं। हे रावण ! तुम यद्यपि अत्यन्त त्यागी हो, महाविनयवान बलवान हो, महाऐश्वर्यवान हो, गुणनिकरि शोभित हो तथापि मेरा दर्शन तुमको वृथा मत होय, मैं तेरे से प्रार्थना करूं हूँ कि तू कुछ मांग, यह मैं जानूं हूँ तू जाचक नाहीं परन्तु मैं अमोघ विजयनामा शक्ति विद्या तुझे दूं हूँ सो हे लंकेश ! तू ले, हमारा स्नेह खण्डन मत कर। हे रावण ! किसीकी दशा एक सी कभी नहीं रहती, संपत्तिके अनन्तर विपत्ति अर विपतिके अनन्तर संपत्ति होती है, तेरा मनुष्य शरीर है अर जो कदाचित् तुझ पर विपत्ति पड़े तो यह शक्ति तेरे शत्रु की नाशनेहारी अर तेरी रक्षाकी करनहारी होयगी। मनुष्यों की तो क्या बात, इससे देव भी डरै हैं, यह शक्ति अग्नि ज्वालाकरि मंडित विस्तीर्ण शक्ति की धारनेहारी है। तब रावण धरणेन्द्र की आज्ञा लोपने को असमर्थ होता हुआ शक्तिको ग्रहण करता भया, क्योंक किसीसे कुछ लेना अत्यन्त लघुता है सो इस बातसे रावण प्रसन्न नहीं भया। रावण अति उदार चित्त है। तब धरणेन्द्रकूं रावणने हाथ जोड़ नमस्कार किया। धरणेन्द्र आप अपने स्थान को गए। कैसे हैं धरणेन्द्र ? प्रगटा है हर्ष जिनके, रावण एक मास कैलाश पर रहकर भगवान के चैत्यालयों की महाभक्ति से पूजा करि अर बाली मुनि की स्तुति करि अपने स्थानक गए।

बाली मुनि ने जो कछुइक मनके क्षोभसे पापकर्म उपार्ज्या हुता सो गुरुओं के निकट जाय प्रायश्चित लिया, शल्य दूरकरि परम सुखी भए। जैसें विष्णुकुमार मुनि ने मुनियों की रक्षानिमित्त बली का पराभव किया हुता अर गुरु से प्रायश्चित लेय परम सुखी भए थे, तैसें बाली मुनि ने चैत्यालयों की अर अनेक जीवों की रक्षा निमित्त रावण का पराभव किया, कैलाश थांभा फिर गुरुपै प्रायश्चित लेय शल्य मेट परम सुखी भए। चारित्रसे, गुप्तिसे, धर्मसे, अनुप्रेक्षासे, समितिसे, परीषहोके सहनेसे महासंवरको पाय कर्मोंकी निर्जराकरि बाली मुनि केवलज्ञानको प्राप्त भए अर अष्टकर्मसे रहित होय लोकके शिखर अविनाशी स्थानमें अविनाशी अनुपम सुखको प्राप्त भए। अर रावणने मनमें विचारा कि जो इन्द्रियों को जीतै तिनको मैं जीतवे समर्थ नाहीं ताते राजाओं को साधुओं की सेवाही करना योग्य है। ऐसा जान साधुनिकी सेवामें तत्पर होता भया, सम्यग्दर्शनसे मंडित, जिनेश्वरमें दृढ है भक्ति जिसकी, काम भोग में अतृप्त यथेष्ट सुखसे तिष्ठता भया।

यह बालीका चरित्र पुण्याधिकारी जीव, भावविषैं तत्पर है बुद्धि जाकी, भली भांति सुनै सो कबहू अपमानकूं प्राप्त न होय अर सूर्य समान प्रतापकूं प्राप्त होय।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं बाली मुनि का निरूपण करने वाला नवमा पर्व पूर्ण भया ॥ ९ ॥

(दशमा पर्व)

[राजा सुग्रीव और रानी सुताराका वृत्तांत]

अथानंतर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकतें कहै हैं-हे श्रेणिक ! यह बाली का वृत्तांत तोकूं कह्या, अब सुग्रीव अर सुताराराणीका वृत्तांत कहता हूँ सो सुन । ज्योतिपुर नामा नगर तहां राजा अग्निशिख ताकी राणी तिनकी पुत्री सुतारा जो सम्पूर्ण स्त्री गुणनिकरि पूर्ण, सर्व पृथ्वी विषैं रूप गुण की शोभा से प्रसिद्ध, मानों कमलोंका निवास तज साक्षात् लक्ष्मी ही आई है अर राजा चक्रांक उसकी राणी अनुमति तिनका पुत्र साहसगति महादुष्ट एक दिन अपनी इच्छा सें भ्रमण करै था सो ताने सुतारा देखी । देखकर काम शल्यतें अत्यन्त दु:खी भया, निरन्तर सुतारा को मनविषैं धरता भया । उन्मत्त है दशा जाकी ऐसा दूत भेज सुतारा को याचता भया अर सुग्रीव भी बारंबार याचता भया । कैसी है वह सुतारा ? महामनोहर है । तब राजा अग्निशिख सुतारा का पिता दुविधा में पड़ गया कि कन्या किसको देनी तब महाज्ञानी मुनिको पूछी । मुनिचन्द्रने कहाकि साहसगतिकी अल्प आयु है अर सुग्रीवकी दीर्घ आयु है तब अमृत समान मुनिके वचन सुनकर राजा अग्निशिख सुग्रीव को दीर्घ आयुवाला जानकर अपनी पुत्रीका पाणिग्रहण कराया । सुग्रीव का पुन्य विशेष है जो सुतारा की प्राप्ति भई, तदनन्तर सुग्रीव अर सुताराके अग अर अंगद दोय पुत्र भए अर वह पापी साहसगति निर्लज्ज सुताराकी आशा छोड़ै नाही । धिक्कार है कामचेष्टाको, वह कामाग्निकरि दग्ध चित्तविषैं ऐसा चितवै कि वह सुखदायिनी कैसे पाऊं ? कब उसका मुख चन्द्रमासे अधिक मैं निरखूं ? कब उस सहित नंदनवनविषै क्रीड़ा करू ? ऐसा मिथ्या चितवन करता संता रूप परिवर्तिनी शेमुषी नामा विद्याके आराधनेको हिमवन नामा पर्वत पर जायकरि अत्यन्त विषम गुफाविषैं तिष्ठकर विद्याके आराधवेको आरम्भ करता भया । जैसें दु:खी जीव प्यारे मित्रको चितारै तैसें यह विद्या को चितारता भया ।

अथानंतर रावण दिग्विजय करनेकों निकस्या । बन पर्वतादिकरि शोभित पृथ्वी देखता अर समस्त विद्याधरोंके अधिपति अंतरद्वीपोंके वासियों को अपने वश करता भया अर तिनको आज्ञाकरि तिनही देशोंमें थापता भया । कैसा है रावण ? अखण्ड है आज्ञा जाकी अर विद्याधरोंमें सिह समान बड़े बड़े राजा महापराक्रमी रावणने वश किये तिनको पुत्र समान जान बहुत प्रीति करता भया । महन्त पुरुषोंका यही धर्म है कि नम्रतामात्र से ही प्रसन्न होवें । राक्षसों के वंशमें अथवा कपिवंश में जे प्रचंड राजा हुते वे सर्व वश किए, बड़ी सेनाकरि संयुक्त आकाशके मार्ग गमन करता जो दशमुख, पवन समान है वेग जाका, उसका तेज विद्याधर सहिवेको असमर्थ भए । संध्याकार, सुवेल, हेमापूर्ण,सुयोधन हंसद्वीप,

वारिहल्लादि इत्यादि द्वीपोंके राजा विद्याधर नमस्कार कर भेंट ले आय मिले, सो रावण ने मधुर वचन कह बहुत संतोषे अर बहुत संपदाके स्वामी किए। जे विद्याधर बड़े बड़े गढ़ तिनके निवासी हुते वे रावणके चरणारविंदको नम्रीभूत होय आय मिले, जो सार वस्तु थी सो भेंट करी। हे श्रेणिक ! समस्त बलनिविषै पूर्वोपार्जित पुण्यका बल प्रबल है ताके उदयकरि कौन वश न होय, सब ही वश होय हैं।

अथानंतर रथनूपुर का राजा जो इंद्र उसके जीतवे को गमन को प्रवर्त्या सो जहां पातालंकाविषैं खरदूषण बहणेऊ है, वहां जाय डेरा किया। पाताल लंका के समीप डेरा भया, रात्रिका समय था, खरदूषण शयन करै था सो चंद्रनखा रावणकी बहिनने जगाया, पाताललंका से निकसकरि रावण के निकट आया, रत्नोंके अर्घ देय महाभक्ति से परम उत्साहकरि रावणको पूजा करी। रावण ने बहणेऊपना के स्नेहकरि खरदूषण का बहुत सत्कार किया। जगतविषैं बहिन बहणेऊ समान और कोई स्नेहका पात्र नाहीं। खरदूषण ने चौदह हजार विद्याधर मनवांछित नानारूपके धारनहारे रावण को दिखाए। रावण खरदूषण की सेना देख बहुत प्रसन्न भए। आप समान सेनापति किया, कैसा है खरदूषण ? महा शूरवीर है, उसने अपने गुणोंसे सर्व सामंतोंका चित्त वश किया है। हिडंब हैहिडंब, विकट, त्रिजट, हयमाकोट, सुजट, टंक, किहकंधाधिपति, सुग्रीव तथा त्रिपुर, मलय, हेमपाल, कोल, वसुन्दर इत्यादिक अनेक राजा नाना प्रकारके वाहननिपर चढ़े, नाना प्रकार शस्त्र विद्याविषैं प्रवीण अनेक शास्त्रनिके अभ्यासी तिनकरि युक्त चमरेंद्र खरदूषण रावण के कटकविषैं आया जैसैं पाताललोक से असुरकुमारों के समूहकरि युक्त चमरेंद्र आवै। या भांति अनेक विद्याधर राजाओंके समूहकरि रावणका कटक पूर्ण होता भया, जैसैं बिजली आप इंद्रधनुषकरि युक्त मेघमालानिके समूह तिनकर श्रावणमास पूर्ण होय। ऐसे एक हजार ऊपर अधिक अक्षौहिणी दल रावण के होय चुका, दिन-दिन बढ़ता जाय है अर हजार हजार देवनि करि सेवायोग्य रत्न नाना प्रकार गुणनि के समूह के धरणहारे उनकरियुक्त अर चंद्रकिरण समान उज्ज्वल चमर जापर ढुरै हैं, उज्ज्वल छत्र सिर पर फिरै हैं, जाका रूप सुन्दर है, महाबाहु महाबली पुष्पकनामा विमान पर चढ़ा सुमेरु समान स्थिर, सूर्य समान ज्योति, अपने विमानादि वाहन सम्पदाकरि सूर्यमण्डलको आच्छादित करता हुआ इन्द्रका विध्वस मन में विचारकर रावणने प्रयाण किया। कैसा है रावण ? प्रबल है पराक्रम जाका, मानों आकाश को समुद्र समान करता गया, देदीप्यमान जे शस्त्र सोई भई कलोल अर हाथी घोड़े प्यादे ये ही भए जलचर जीव अर छत्र भँवर भए अर चमर तुरंग भए, नाना प्रकार के रत्नों की ज्योति फैल रही है अर चमरों के दण्ड मीन भए। हे श्रेणिक ! रावण की विस्तीर्ण सेनाका वर्णन कहां लग करिये, जिसको देखकर देव डरैं तो मनुष्यनिकी

बात कहा ? इन्द्रजीत, मेघनाद कुम्भकर्ण, विभीषण, खरदूषण, निकुम्भ कुम्भ इत्यादि बहुत सुजन रण में प्रवीण, सिद्ध है विद्या जिनको, महाप्रकाशवन्त अस्त्र शास्त्र विद्या में प्रवीण हैं, जिनकी कीर्ति बडी है, महासेना करि युक्त देवताओं की शोभा को जीतते हुए रावण के संग चले। विंध्याचल पर्वतके समीप सूर्य अस्त भया मानों रावण के तेजकरि विलषा होय तेज रहित भया, वहाँ सेना का निवास भया मानों विंध्याचल ने सेना सिर पर धारी है। विद्या के बल से नाना प्रकार के आश्रय लिए। फिर अपनी किरणनिकरि अन्धकार के समूहकूं दूर करता संता चन्द्रमा उदय भया मानों रावण के भयकरि रात्रि रत्नकर दीपक लाई है अर मानों निशा स्त्री भई, चाँदनी करि निर्मल जो आकाश सोई वस्त्र उसको धरे तारानिके जे समूह तेई सिरविषें फूल गूंथे हैं, चन्द्रमा ही है बदन जाका, नाना प्रकार की कथाकर तथा निद्राकर सेनाके लोकनिने रात्रि पूर्ण करी, फिर प्रभात के वादित्र बजे मंगल पाठकर रावण जागे। प्रभात क्रिया करी, सूर्य का उदय भया मानों सूर्य भुवन विषें भ्रमण कर किसी ठौर शरण न पाया तब रावण ही के शरण आया। पुनः रावण नर्मदा के तट आए। कैसी है नर्मदा ? शुद्ध स्फटिक मणि समान है जल जाका अर उसके तीर अनेक वन के हाथी रहैं हैं सो जल में केलि करै हैं उस कर शोभायमान है अर नाना प्रकार के पक्षियों के समूह मधुर गान करैं हैं सो मानों परस्पर संभाषण ही करै हैं। फेन कहिए झाग के पटल इन करि मंडित है, तरंगरूप जे भौंह उनके विलास करि पूर्ण हैं। भंवर ही हैं नाभि जाके अर चंचल जे मीन तेई हैं नेत्र जाके अर सुन्दर जे पुलिन तेई हैं कोटि जाके, नाना प्रकार के पुष्पनिकरि संयुक्त निर्मल जल ही है वस्त्र जाका, मानो साक्षात् सुन्दर स्त्री ही है ताहि देखकर रावण बहुत प्रसन्न भए। प्रबल जे जलचर उनके समूहकरि मण्डित है, गंभीर है, कहूं एक वेगरूप बहै है, कहूं एक मंदरूप बहै है, कहूं एक कुण्डलाकार बहै है, नाना चेष्टाकरि पूर्ण ऐसी नर्मदा को देखकर कौतुकरूप भया है मन जाका सो रावण नदी के तीर उतरा। नदी भयानक भी है अर सुन्दर भी है।

अथानंतर माहिष्मति नगरी का राजा सहस्त्ररश्मि पृथ्वीविषें महाबलवान मानों सहस्त्ररश्मि कहिये सूर्य ही है, उसके हजारों स्त्री सो नर्मदाविषें रावण के कटक के ऊपर सहस्त्ररश्मि ने जलयंत्र करि नदी का जल थाम्या अर नदी के पुलिनविषें नाना प्रकार की क्रीड़ा करी। कोई स्त्री मान कर रही थी ताको बहुत शुश्रूषाकरि प्रसन्न करा, दर्शन, स्पर्शन, मान फिर मानमोचन प्रणाम, परस्पर जलकेलि हास्य, नाना प्रकार पुष्पों के भूषणनि के शृंगार इत्यादि अनेक स्वरूप क्रीड़ा करी। मनोहर है रूप जाका; जैसे देवियों सहित इन्द्र क्रीडा करै तैसे राजा सहस्त्ररश्मि ने क्रीडा करी। जे पुलिन के बालूरेत विषें रत्नानिक मोतियो के आभूषण टूटकर पड़े सो न उठाये जैसे मुरझाई पुष्पों की माला को

कोई न उठावै। कई एक राणी चंदन के लेपकरि संयुक्त जलविषैं केलि करती भई सो जल धवल होय गया, कई एक केसर के कीचकरि जल को गाले हुए सुवर्ण के समान पीत करती भई, कई एक ताम्बूल के रंग करि लाल जे अधर तिनके प्रक्षालनिकरि नीर को अरुण करती भई, कई एक आंखों के अंजन धोवनेकरि श्याम करती भई सो क्रीड़ा करती जे स्त्री उनके आभूषणनिके सुन्दर शब्द अर तीर विषैं जे पक्षी उनके सुन्दर शब्द राजा के मन को मोहित करते भये अर नदी के निकास की ओर रावण का कटक था सो रावण स्नान करि पवित्र वस्त्र पहिर नाना प्रकार के आभूषणनि करि युक्त नदी के रमणीक पुलिन में बालू का चौतरा बंधाय जिसके ऊपर वैडूर्य मणियों के हैं दंड ऐसा मोतियों की झालरी संयुक्त चंदोवा तान श्रीभगवान अरहंतदेव की नाना प्रकार पूजा करै था, बहुत भक्ति से पवित्र स्तोत्रों करि स्तुति करै था सो उपरासकी। जलका प्रभाव आया सो पूजा में विघ्न भया, नाना प्रकार की कलुषता सहित प्रवाह बेग दे आया, तब रावण प्रतिमाजी को लेय खड़े भये अर क्रोध करि कहते भए-जो यह क्या है ? सो सेवक ने खबर दीनी कि हे नाथ ! यह कोई महा क्रीडावंत पुरुष सुन्दर स्त्रीनिके बीच परम उदय को धरे नाना प्रकार की लीला करै है अर सामन्त लोक शस्त्रनिकूं धरें दूर-२ खड़े हैं, नाना प्रकार के यंत्र बांधे, उन से यह चेष्टा भई है। अन्य राजाओं के सेना चाहिए तातैं उसके सेना तो शोभा मात्र है अर उसके पुरुषार्थ ऐसा है जो और ठौर दुर्लभ है, बड़े २ सामंतों से उसका तेज न सहा जाय अर स्वर्गविषैं इंद्र है परन्तु यह तो प्रत्यक्ष ही इंद्र देखा। यह वार्ता सुनकर रावण क्रोध को प्राप्त भए, भौंह चढ़ गईं, आंख लाल हो गईं, ढोल बाजने लगे, वीररस का राग होने लगा, नाना प्रकार के शब्द होय हैं, घोड़े हीसैं हैं, गज गाजें हैं, रावण ने अनेक राजाओं को आज्ञा करी कि यह सहस्ररश्मि दुष्टात्मा है, इसे पकड़ लाओ। ऐसी आज्ञा करि आप नदी के तट पर पूजा करने लगे। रत्न सुवर्ण के जे पुष्प उनको आदि देय अनेक सुन्दर जे द्रव्य उन से पूजा करी। अर अनेक विद्याधरों के राजा रावण की आज्ञा आशिषा की नाईं माथे चढ़ाय युद्धकूं चाले, राजा सहस्ररश्मि ने परदल को आवता देखि स्त्रियों को कहा कि तुम डरो मत, धीरज बंधाय आप जल से निकसे, कलकलाट शब्द सुन परदल आया जान माहिष्मति नगरी के योद्धा सज कर हाथी घोड़े रथनि पर चढ़े, नाना प्रकार के आयुध धरे स्वामी धर्म के अत्यत अनुराग से राजाके ढिग आए। जैसैं सम्मेदशिखर पर्वत का एक ही काल छहों ऋतु आश्रय करैं तैसें समस्त योधा तत्काल राजापै आए, विद्याधरनिकी फौज आवती देखकर सहस्ररश्मि के सामंत जीतव्यकी आशा छोड़कर घनव्यूह रचकर धनीकी आज्ञा बिना ही लड़नेको उद्यमी भये। जब रावणके योधा युद्ध करने लगे तब आकाश में देवनिकी वाणी भई कि अहो ! यह बड़ी अनीति है, ये

भूमिगोचरी अल्प बली विद्या बलकरि रहित माया युद्धकूं कहा जानै ? इनसे विद्याधर मायायुद्ध करैं यह कहा योग्य है ? अर विद्याधर घने अर यह थोड़े ऐसे आकाश विषैं देवनिके शब्द सुनकर जे विद्याधर सत्पुरुष थे वे लज्जावान होय भूमि में उतरे, दोनों सेनाओं में परस्पर युद्ध भया। रथनिके हाथीनिके घोड़निके असवार तथा पियादे तलवार बाण गदा सेल इत्यादि आयुधों करि परस्पर युद्ध करने लगे सो बहुत युद्ध भया। परस्पर अनेक मारे गये, न्याय युद्ध भया, शस्त्रों के परिहारकरि अग्नि उठी, सहस्त्ररश्मि की सेना रावण की सेनाकरि कछुइक हटी तब सहस्त्ररश्मि रथपर चढ़कर युद्ध को उद्यमी भए। माथैं मुकुट धरे, बखतर पहरे, धनुष को धारे, अति तेजको धरे विद्याधरों के बल को देख करि तुच्छमात्र भी भय न किया। तब स्वामी को तेजवंत देखि सेना के लोग जे हटे हुते थे ते आगैं आय करि युद्ध करने लगे, दैदीप्यमान हैं शस्त्र जिनके अर जे भूल गए हैं घावों की वेदना, ये रणधीर भूमिगोचरी राक्षसनिकी सेना में ऐसे पड़े जैसें माते हाथी समुद्र में प्रवेश करैं अर सहस्त्ररश्मि अति क्रोध को करते हुए। बाणों के समूहकरि जैसें पवन मेघ को हटावै तैसें शत्रुओं को हटावते भए, तब द्वारपाल रावण से कही कि हे देव ! देखो इसने तुम्हारी सेना हटाई है, यह धनुष का धारी रथ पर चढ़ा जगत को तृणवत् देखै है, इसके बाणनिकरि तुम्हारी सेना एक योजन पीछे हटी है। तब रावण सहस्त्ररश्मि को देखि आप त्रैलोक्यमंडन हाथी पर सवार भया। रावण को देखकरि शत्रु भी डरे। रावण बाणनिकी वर्षा करता भया, सहस्त्ररश्मि हाथीपर चढ़करि रावणके सन्मुख आया अर बाण छोड़े सो रावणके बखतरको भेदि अंगविषैं चुभे तब रावण ने देहसे काढ़ि डारे, सहस्त्ररश्मि ने हंसकर रावण सों कहा—अहो रावण ! तू बड़ा धनुषधारी कहावै है, ऐसी विद्या कहांतैं सीखी, तुझे कौन गुरु मिल्या, पहिले धनुषविद्या सीख फिर हमसे युद्धकर। ऐसे कठोर शब्द श्रवणतैं रावण क्रोधको प्राप्त भए। सहस्त्ररश्मिके केशनिमें सेलकी दीनी, तब सहस्त्ररश्मि के रुधिरकी धारा चली जाकरि नेत्र घूमने लगे। पहिले अचेत होय गया पीछे सचेत होय आयुध पकड़ने लग्या तब रावण उछलकरि सहस्त्ररश्मिपर आय पड़े अर जीवता पकड़ लिया, बांधकर अपने स्थान ले आए। ताहि देखि सब विद्याधर आश्चर्य को प्राप्त भए कि सहस्त्ररश्मि जैसे योधाकों रावणने पकड़या। कैसे हैं रावण ? धनपति यक्ष के जीतनहारे, यम के मान मर्दन करनहारे, कैलाश के कंपावनहारे, सहस्त्ररश्मि का यह वृत्तांत देखि सहस्त्ररश्मि जो सूर्य सो भी मानों भय करि अस्ताचल को प्राप्त भया, अन्धकार फैल गया। भावार्थ—रात्रि का समय भया। भला बुरा दृष्टि में न आवै तब चन्द्रमा का बिम्ब उदय भया सो अंधकार के हरने को प्रवीण मानों रावण का निर्मल यश ही प्रगटया है। युद्धविषैं जे योधा घायल भये थे तिनका वैद्योंकरि यत्न कराया अर जो मूवे थे तिनको अपने बन्धु

बर्ग रण खेतसों ले आए अर तिनकी क्रिया करी। रात्रि व्यतीत भई, प्रभात के वादित्र बाजने लगे, फिर सूर्य रावण की वार्ता जाननेके अर्थि राग कहिए ललाई को धारता हुवा कंपायमान उदय भया। सहस्ररश्मिका पिता राजा शतबाहु जो मुनिराज भए थे, जिनको जंघाचरण ऋद्धि थी, वे महातपस्वी, चंद्रमा के समान कांत, सूर्य समान दीप्तिमान, मेरु समान स्थिर, समुद्र सारिखे गंभीर सहस्ररश्मि को पकड़या सुनकर जीवनिकी दया के करणहारे परम दयालु शांतचित्त जिनधर्मी जान रावणपै आए। रावण मुनिको आवते देख उठ सामने जाय पांयनि पड़े, भूमिमें लग गया है मस्तक तिनका, मुनि को काष्ठ के सिंहासनपर विराजमान करि रावण हाथ जोड़ नम्रीभूत होय भूमि विषैं बैठे। अति विनयवान होय मुनिसों कहते भए—हे भगवान् ! कृपानिधान ! तुम कृतकृत्य, तुम्हारा दर्शन इंद्रादिक देवों को दुर्लभ है, तुम्हारा आगमन मेरे पवित्र होने के अर्थि है। तब मुनि इसको शलाका पुरुष जानि प्रशंसाकरि कहते भए। हे दशमुख ! तू बड़ा कुलवान बलवान विभूतिवान देवगुरुधर्म विषैं भक्तिभावयुक्त है। हे दीर्घायु शूरवीर ! क्षत्रियोंकी यही रीति है जो आपस में लड़ैं अर उसका पराभव कर उसे वश करैं, सो तुम महाबाहु परम क्षत्री हो, तुमतैं लडवेको कौन समर्थ है, अब दयाकर सहस्ररश्मिको छोड़ो। तब रावणमंत्रियों सहित मुनि को नमस्कार करि कहते भए। हे नाथ ! मैं विद्याधर राजनि को वश करने को उद्यमी भया हूँ, लक्ष्मीकर उन्मत्त रथनूपुरका राजा इन्द्र ताने मेरे दादेका बड़ा भाई राजा माली युद्धमें मारया है तासूं हमारा द्वेष है, सो मैं इन्द्र ऊपर जाऊँ था, मार्गमें रेवा कहिए नर्मदा उस पर डेरा भया सो पुलनिपर बालूके चौतरेपर पूजा करूं था सोई इसने उपरास की अर जलयंत्रों की केलि करी सो जलका बेग निकासको आया। सो मेरी पूजामें विघ्न भया तातैं यह कार्य किया है, बिना अपराध मैं द्वेष न करूं अर मैं इनके ऊपर गया तब भी इसने क्षमा न कराई कि प्रमादकरि बिना जाने मैंने यह कार्य किया है अर तुम क्षमा करो, उलटा मानके उदयकरि मेरे से युद्ध करने लग्या अर कुवचन कहे, कारण ऐसा भया, जो मैं भूमिगोचरी मनुष्यों को जीतने समर्थ न भया तो विद्याधरों को कैसे जीतूंगा ? कैसे हैं विद्याधर ? नानाप्रकार की विद्याकरि महापराक्रमवंत हैं। तातैं जो भूमिगोचरी मानी हैं, तिनको प्रथम वश करूं, पीछैं विद्याधरों को वश करूं। अनुक्रम से जैसें सिवान चढि मंदिर में जाइये है तातैं इनको वश किया अब छोड़ना न्याय ही है फिर आपकी आज्ञा समान और क्या ? कैसे हो आप? महापुन्यके उदयतें होय है दर्शन जाका। ऐसे वचन रावण के सुन इन्द्रजीत ने कही कि हे नाथ ! आपने बहुत योग्य वचन कहे। ऐसे वचन आप विना कौन कहे। तब रावण ने मारीच मंत्री को आज्ञा करी कि सहस्ररश्मिको छुड़ाय महाराजके निकट ल्यावो। तब मारीचने अधिकारीको आज्ञा करी सो आज्ञा

प्रमाण जो नांगी तलवारनिके हवाले था सो ले आए। सहस्त्ररश्मि अपने पिता जो मुनि तिनको नमस्कार करि आय बैठ्या। रावण ने सहस्त्ररश्मि का बहुत सत्कार करि बहुत प्रसन्न होय कह्या कि हे महाबल ! जैसें हम तीनों भाई तैसें चोथा तू। तेरे सहायकरि रथनूपुर का राजा जो भ्रमतें इन्द्र कहावै है ताहि जीतूंगा अर मेरी राणी मन्दोदरी ताकी लहुरी बहिन स्वयंप्रभा सो तुझे परणाऊंगा। तब सहस्त्ररश्मि बोले कि धिक्कार है इस राज्य को ! यह इन्द्रधनुष समान क्षणभंगुर है अर इन विषयनिको धिक्कार है। ये देखने मात्र मनोज्ञ हैं, महा दुःखरूप हैं अर स्वर्ग को धिक्कार जो अव्रत असंयमरूप है अर मरण के भाजन इस देह को भी धिक्कार ! अर मोकों धिक्कार ! जो एते काल कामादिक वैरीनि करि ठगाया, अब मैं ऐसा करूं जाकरि बहुरि संसार बन विषें भ्रमण न करूं। अत्यन्त दुःखकूप जो चार गति तिनमें भ्रमण करता बहुत थक्या। अब भवसागरमें जासों पतन न होय सो करूंगा। तब रावण कहते भए कि यह मुनिका व्रत वृद्धनिकूं शोभै है। हे भव्य ! तू तो नवयौवन है तब सहस्त्ररश्मिने कहा कि कालके यह विवेक नाहीं जो वृद्ध ही को ग्रसै, तरुणको न ग्रसै। काल सर्वभक्षी है, बाल वृद्ध युवा सब ही को ग्रसै है, जैसे शरदका मेघ क्षणमात्रमें विलाय जाय तैसें यह देह तत्काल विनसै है। हे रावण ! जो इन विषय भोगनि में सार होय तो महापुरुष काहे कों तजें, उत्तम है बुद्धि जिनकी ऐसे मेरे यह पिता इन्होंने भोग छोड़ योग आदरया सो योग ही सार है। यह कहकर अपने पुत्रको राज देय रावणसों क्षमा कराय पिताके निकट जिनदीक्षा आदरी अर राजा अरण्य अयोध्याका धनी सहस्त्ररश्मिका परममित्र है सो उनसे पूर्ववचन था जो हम पहले दीक्षा धरेंगे तो तुम्हें खबर करेंगे अर उनने कही हुती कि हम दीक्षा धरेंगे तो तुम्हें खबर करेंगे सो उनपै वैराग्य के समाचार भेजे। भले मनुष्योंने राजा सहस्त्ररश्मिका वैराग्य होनेका वृतांत राजा अरण्य से कह्या सो सुनकर पहिले तो सहस्त्ररश्मिका गुण स्मरणकरि आंसू भरि विलाप किया फिर विषादको तजिकर अपने समीपवर्ती लोगनिकूं महा बुद्धिमान कहते भए जो रावण वैरीका वेषकरि उनका परममित्र भया जो ऐश्वर्यके पींजरे विषें राजा रुक रहे थे, विषयोंकर मोहित था चित्त जिनका सो पींजरे तें छुड़ाया। यह मनुष्य रूपी पक्षी माया जालरूप पींजरे में पड्या है सो परम हितू ही छुड़ावै है। माहिष्मती नगरी का धनी राजा सहस्त्ररश्मि धन्य जो रावण रूप जहाजको पायकरि संसाररूप समुद्र को तिरेगा। कृतार्थ भया, अत्यन्त दुःखका देनहारा जो राजकाज महापाप ताहि तजकर जिनराजका व्रत लेनेको उद्यमी भया। या भांति मित्रकी प्रशंसाकरि आप भी लघु पुत्रको राज देय बड़े पुत्र सहित राजा अरण्य मुनि भए। हे श्रेणिक ! कोई एक उत्कृष्ट पुण्यका उदय आवै तब शत्रु का अथवा मित्रका कारण पाय जीव कों कल्याण की बुद्धि उपजै अर

पापकर्मके उदयकरि दुर्बुद्धि उपजै, जो कोई प्राणीकौं धर्मके मार्ग में लगावै सोई परम मित्र है अर जो भोग सामग्री में प्रेरै सो परम बैरी है, अस्पृश्य है। हे श्रेणिक ! जो भव्य जीव यह राजा सहस्ररश्मि की कथा भाव धर सुनै सो मुनिव्रत रूप संपदा को प्राप्त होयकरि परम निर्मल होय, जैसै सूर्यके प्रकाश करि तिमिर जाय तैसें जिनवाणी के प्रकाशकरि मोह तिमिर जाय।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं सहस्ररश्मि अर अरण्य के वैराग्य निरूपण करने वाला दसवां पर्व पूर्ण भया ॥१०॥

(एकादश पर्व)

[राजा मारुत के यज्ञ का विनाश और रावण की दिग्विजय का निरूपण]

अथानंतर रावणने जे पृथ्वी विषैं मानी राजा सुने ते ते सब नवाए, अपने वश किये अर जो आपने आप आयकरि मिले तिनपर बहुत कृपा करी। अनेक राजानिकरि मंडित सुभूम चक्रवर्ती की नाई पृथ्वीविषैं विहार किया, नाना देशनिके उपजे, नाना भेषके धारण-हारे, नाना प्रकार आभूषणनिके पहरने हारे, नाना प्रकारकी भाषाके बोलनेहारे, नाना प्रकारके वाहनों पर चढे, नाना प्रकारके मनुष्यनिकरि मंडित अनेक राजा तिन सहित दिग्विजय करता भया अर ठौर २ रत्नमयी सुवर्णमई अनेक जिनमंदिर बनवाए अर जीर्ण चैत्यालयनिका जीर्णोद्धार कराया, देवाधिदेव जिनेंद्रदेव की भावसहित पूजा करी ठौर २ पूजा कराई, जो जैनधर्म के द्वेषी दुष्ट हिंसक मनुष्य थे तिनको शिक्षा दीनी अर दरिद्रीनि-कों दयाकरि धनकरि पूर्ण किया अर सम्यग्दृष्टि श्रावकनिका बहुत आदर किया, साधर्मीनि पर है वात्सल्य भाव जाका अर जहां मुनि सुनें तहां जाय भक्ति करि प्रणाम करै, जे सम्यक्त्व-रहित द्रव्यलिंगी मुनि अर श्रावक हुते तिनकी भी शुश्रूषा करी, जैनींमात्र का अनुरागी उत्तर दिशा को दुस्सह प्रताप प्रकट करता संता विहार करता भया; जैसें उत्तरायण के सूर्य का अधिक प्रताप होय तैसें पुण्यकर्म के प्रभावकरि रावणका दिन दिन अधिक तेज होता भया।

अथानंतर रावण ने सुनी कि राजपुर का राजा बहुत बलवान् है, अति अभिमान को धरता थका किसी को प्रणाम नाहीं करै है अर जन्मतें ही दुष्ट चित्त है, मिथ्यामार्गकर मोहित है अर जीवहिंसारूप यज्ञमार्गविषैं प्रवर्त्या है। तब यज्ञका कथन सुन राजा श्रेणिकने गौतमस्वामी सूं कह्या। हे प्रभो ! रावण का कथन तो पीछे कहिए पहले यज्ञ की उत्पत्ति कहो। यह कौन वृत्तांत है ? जामें प्राणी जीवघातरूप घोर कर्म में प्रवर्तें हैं तब गणधरदेव ने कही—हे श्रेणिक ! अयोध्या विषैं इक्ष्वाकुवंशी राजा ययाति ताकी राणी सुरकांता अर

पुत्र वसु था। सो जब पढ़ने योग्य भया तब क्षीरकदंब ब्राह्मणपै पढ़नेको सौंप्या। क्षीरकदंब की स्त्री स्वस्तिमती थी अर एक नारद ब्रह्मण देशांतरी धर्मात्मा सो क्षीरकदंबपै पढ़ै अर क्षीरकदंब का पुत्र पर्वत महापापी सो हू पढ़ै। क्षीरकदंब अति धर्मात्मा सर्व शास्त्रनिमें प्रवीण शिष्यनिकूं सिद्धान्त तथा क्रियारूप ग्रन्थ तथा मंत्र शास्त्र काव्य व्याकरणादि अनेक ग्रन्थ पढ़ावै। एक दिन नारद वसु अर पर्वत इन तीनों सहित क्षीरकदंब बनविषैं गए। तहां चारणमुनि शिष्यनि सहित विराजे हुते सो एक शिष्य मुनिने कह्या कि ये चार जीव हैं, एक गुरु तीन शिष्य। तिनमेंतें एक गुरु एक शिष्य ये दोय तो सुबुद्धि अर दोय शिष्य कुबुद्धि हैं। ऐसे शब्द सुनिकरि क्षीरकदंब संसारतैं अत्यन्त भयभीत भए, शिष्यनिकों तो सीख दीनी सो अपने-२ घर गए मानो गाय के बछड़े बंधन से छूटे अर क्षीरकदंब ने मुनिपै दीक्षा धरी। जब शिष्य घर आए तब क्षीरकदंब की स्त्री स्वस्तिमती पर्वतको पूछती भई कि तेरा पिता कहां, तू अकेला ही घर क्यों आया? तब पर्वत ने कही कि हमको तो पिताजी ने सीख दीनी अर कह्या कि हम पीछे से आवें हैं। यह बचन सुन स्वस्तिमती के विकल्प उपज्या। पति के आगमन की है वांछा जाके, दिन अस्त भया, तोहू न आए। तब महाशोकवती होय पृथ्वी पर पड़ी अर रात्रि विषैं चकवी की नाईं दुःखकरि पीड़ित विलाप करती भई—हाय हाय! मैं मंदभागिनी प्राणनाथ बिना हती गई। किसी पापीने उनको मारया अथवा किसी कारणकरि देशांतर को उठ गए अथवा सर्वशास्त्रविषैं प्रवीण हुते सो सर्वपरिग्रहकों त्यागकरि वैराग्य पाय मुनि होय गए. या भांति विलाप करते रात्रि पूर्ण भई। तब प्रभात भया तब पर्वत पिता कों ढूंढने गया। उद्यानमें नदी के तटपर मुनियों के संघसहित श्रीगुरु विराजे हुते तिनके समीप विनय सहित पिता बैठ्या देख्या तब पाछा आयकर मातासौं कही कि हे माता! हमारा पिता तो मुनियों न मोह्या है सो नग्न होय गया है तब स्वस्तिमती निश्चय जानकरि पति के वियोगतैं अति दुःखी भई। हाथनिकरि उरस्थल को कूटती भई अर पुकार कर रोवती भई सो नारद महाधर्मात्मा यह वृत्तांत सुनकरि स्वस्तिमतीपै शोक का भरया आया। ताके देखवे करि अत्यंत रोवने लागी अर सिर कूटती भई, शोक विषैं आपने को देखकरि शोक अतीव बढे है तब नारद ने कही—हे माता! काहे कौं वृथा शोक करो हो, वे धर्मात्मा जीव पुण्याधिकारी, सुंदर है चेष्टा जिनकी, जीतव्य को अस्थिर जानकरि तप करने को उद्यमी भए सो निर्मल है बुद्धि जिनकी, अब शोक किएतैं पीछे घर न आवें। या भांति नारद ने संबोधी तब किंचित् शोक मंद भया, घरविषैं तिष्ठी, महा दुःखित भरतार की स्तुति भी करै अर निंदा भी करै। यह क्षीरकदंब के वैराग्य का वृत्तांत सुन राजा ययाति तत्व के वेत्ता हू वसु पुत्र को राज्य देय महामुनि भए। वसु का राज्य पृथ्वी विषैं प्रसिद्ध भया। आकाशतुल्य

स्फटिकमणि ताके सिंहासन के पाये बनाए, ता सिंहासन पर तिष्ठै सो लोक जानैं कि राजा सत्य के प्रतापकरि आकाशविषै निराधार तिष्ठै है।

अथानंतर हे श्रेणिक ! एक दिन नारद के अर पर्वत के शास्त्र-चर्चा भई तब नारद ने कही कि भगवान वीतरागदेव ने धर्म दोय प्रकार प्ररूप्या है—एक मुनि का, दूसरा गृहस्थी का। मुनिका महाव्रतरूप है, गृहस्थीका अणुव्रतरूप है। जीवहिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इनका सर्वथा त्याग सो तो पंच महाव्रत तिनकी पच्चीस भावना यह मुनि का धर्म है अर इन हिंसादिक पापों का किंचित त्याग सो श्रावक का व्रत है। श्रावक के व्रतनि में पूजा दान शास्त्र विषै मुख्य कह्या है, पूजा का नाम यज्ञ है "अजैर्यष्टव्यम्"—या शब्दका अर्थ मुनि ने या भांति कह्या है जो बोनेसे न ऊगें अर जिनमें अंकुरशक्ति नाहीं ऐसे शालिधान यव तिनका विवाहादिक क्रियानिविषैं होम करिए यह भी आरंभी श्रावक की रीति है। ऐसे नारद के वचन सुन पापी पर्वत बोला—अज कहिए छेला (बकरा) तिनका आलंभन कहिए हिंसन ताका नाम यज्ञ है। तब नारद कोपकरि दुष्ट पर्वतसौं कहते भये कि हे पर्वत ! ऐसें मत कहै, महाभयंकर वेदना है जा विषैं ऐसे नरक में तू पड़ेगा। दया ही धर्म है, हिंसा पाप है। तब पर्वत कहने लाग्या कि मेरा तेरा न्याय राजा बसु पै होयगा, जो झूठा होयगा ताको जिह्वा छेदी जाएगी, या भांति कह कर पर्वत माता पै गया। नारदकै अर याकै जो विवाद भया सो सर्व वृत्तांत मातासौं कह्या, तब माता ने कह्या कि तू झूठा है, तेरे पितासौं हमने व्याख्यान करते अनेक बार सुन्या है जो अन्न बोई हुई न उगै ऐसी पुरानी शालि तथा पुराना यव तिनका नाम छेले का नाहीं, जीवनि का भी कभी होम किया जाय है ? तू देशांतर जाय मांसभक्षण का लोलुपी भया है, तातैं मान के उदयकरि झूठ कहै है सो तुझे दुःखका कारण होयगा। हे पुत्र ! निश्चय सेती तेरी जिह्वा छेदी जाएगी। मैं पुण्यहीन अभागिनी पति अर पुत्ररहित भई क्या करूंगी, या भांति पुत्रसौं कहकरि वह पापिनी चितारती भई कि राजा बसुकैं हमारी गुरु दक्षिणा धरोहर है, ऐसा जानि अति व्याकुल भई बसु के समीप गई। राजा ने स्वस्तिमती को देखि बहुत विनय किया। सुखासन बैठाई हाथ जोड़ि पूछता भया कि हे माता ! तुम आज दुःखित दीखो हो, जो तुम आज्ञा करो सोही करूं ? तब स्वस्तिमती कहती भई कि हे पुत्र ! मैं महा दुःखिनी हूं। जो स्त्री अपने पतिकरि रहित होय तातैं काहेका सुख ? संसार में पुत्र दोय भांति के हैं। एक पेट का जाया अर एक शास्त्र का पढ़ाया। सो इनमें पढ़ाया पुत्र विशेष है। एक समल है दूसरा निर्मल है। मेरे धनी के तुम शिष्य हो, तुम पुत्रतें हू अधिक हो, तुम्हारी लक्ष्मी देखकरि मैं धैर्य धरूं हूं। तुम कही थी—माता दक्षिणा लेवो। मैं कही—समय पाय लूंगी। वह वचन याद करो। जे राजा पृथ्वी के पालन में उद्यमी हैं ते सत्य

ही कहै हैं अर जे ऋषि जीव दया के पालने में तिष्ठैं हैं ते भी सत्य ही कहै हैं। तू सत्य कर प्रसिद्ध है, मोकों दक्षिणा देवो। या भांति स्वस्तिमती ने कह्या तब राजा विनयकरि नम्रीभूत होय कहते भये—हे माता ! तिहारी आज्ञातें जो नाहीं करने योग्य काम है सो भी मैं करूंगा। जो तिहारे चित्त में होय सो कहो। तब पापिनी ब्राह्मणी ने नारद अर पर्वत के विवादका सर्व वृत्तांत कह्या अर यह कहा कि जो मेरा पुत्र सर्वथा झूठा है परंतु याके झूठ को तुम सत्य करो। मेरे कारण ताका मानभंग न होय। तब राजाने यह अयोग्य जानते हुए भी ताकी बात जो दुर्गतिका कारण ताको प्रमाण करी, तब वह राजाको आशीर्वाद देय घर आई। बहुत हर्षित भई। दूजे दिन प्रभात ही नारद पर्वतराजके समीप आए, अनेक लोक कौतूहल देखने को आए, सामंत मंत्री देश के लोग बहुत आय भेले भए। तब सभा के मध्य नारद पर्वत दोऊनिमें बहुत विवाद भया, नारद तो कहै—अज शब्द का अर्थ अंकुरशक्तिरहित शालि है अर पर्वतत कहै पशु है। तब राजा वसुको पूछ्या तुम सत्यवादिनि में प्रसिद्ध हो, जो क्षीरकदंब अध्यापक कहते हुते सो कहो। तब राजा कुगतिकों जानहारा कहता भया कि जो पर्वत कहै है सोई क्षीरकदंब कहते हुते। या भांति कहते ही सिंहासन के स्फटिकके पाए टूट गए, सिंहासन भूमिमें गिर पड्या तब नारदने कह्या, हे वसु ! असत्यके प्रभावतें तेरा सिंहासन डिगा, अबहु तुमकूं सांच कहना योग्य है। तब मोहके मदकरि उन्मत्त भया वह कहता भया कि जो पर्वत कहै सो सत्य है तब महापापके भारकरि हिंसामार्गसे प्रवर्तन तें तत्काल ही सिंहासनसमेत धरतीमें गढ़ गया। राजा मरकरि सातवें नरक गया। कैसा है नरक ? अत्यन्त भयानक है वेदना जहां, तब राजा वसु को मूवा देखि सभाके लोग वसु अर पर्वत को धिक्कार धिक्कार कर कहते भए अर महा कलकलाट शब्द भया, दया धर्म उपदेश करि नारद की बहुत प्रशंसा भई अर सर्व कहते भये (यतो धर्मस्ततो जयः) कि पापी पर्वत हिंसाके उपदेशकरि धिक्कारदंडको प्राप्त भया। पापी पर्वत देशांतरोंमें भ्रमण करता संता हिंसामई शास्त्रकी प्रवृत्ति करता भया, आप पढ़ औरनि को पढ़ावै, जैसें पतंग दीपकमें पड़ैं तैसें कईएक बहिरमुख जीव कुमार्गमें पड़े। अभक्ष्यका भक्षण अर न करवे योग्य काम करना ऐसा लोकनिकों उपदेश दिया अर कहता भया कि यज्ञ ही के अर्थि ये पशु बनाये हैं, यज्ञ स्वर्गका कारण है तातें जो यज्ञमें हिंसा होय सो हिंसा नाहीं और सौत्रामणिनाम यज्ञके विधानकरि सुरापानका हू दूषण नाहीं अर गोयज्ञ नाम यज्ञ विषैं अगम्यागम्यहू (परस्त्री सेवन भी) करें हैं, ऐसा पर्वत ने लोकनिकों हिंसादि मार्गका उपदेश दिया। आसुरी मायाकरि जीव स्वर्ग जाते दिखाये। कई एक क्रूर जीव कुकर्ममें प्रवर्तन करि कुगतिके अधिकारी भये। हे श्रेणिक! यह हिंसायज्ञकी उत्पत्तिका कारण कह्या। अब रावण का वृतांत सुनो।

रावण राजपुर गए तहां राजा मरुत हिंसा कर्म में प्रवीण यज्ञशाला विषें तिष्ठै था। संवर्त नामा ब्राह्मण यज्ञ करावं था, तहां पुत्र दारादि सहित अनेक विप्र धनके अर्थी आए हुते और अनेक पशु होम निमित्त लाए। ता समय अष्टम नारद पदवीधर बड़े पुरुष आकाश मार्गतें आय निकसे। बहुत लोकनिका समूह देख आश्चर्य पाय चित्त में चितवते भये कि यह नगर कौनका हैं और यह दूरपर सेना कौनकी पड़ी है अर नगरके समीप एते लोग किस कारण एकत्रित भए हैं। ऐसा मन में विचार आकाशतें भूमि पर उतरे।

[नारद उत्पत्ति वर्णन [

अथानंतर यह बात सुन राजा श्रेणिक गौतम स्वामीको पूछते भए कि हे भगवन्! यह नारद कौन है, यामें कैसे कैसे गुण अर याकी उत्पत्ति किह भांति है? तब गणधरदेव कहते भए। हे श्रेणिक! एक ब्रह्मरुचि नामक ब्राह्मण था ताके कुरमी नामा स्त्री, सो ब्राह्मण तापस के व्रत धरि बन में जाय कंदमूल फल भक्षण करै, ब्राह्मणी भी संग रहै ताकौं गर्भ रह्या। तहां एक दिन मार्गके वशतें कुछ संयमी महामुनि आए। क्षणएक विराजे। ब्राह्मण अर ब्राह्मणी समीप आय बैठे। ब्राह्मणी गर्भिणी, पांडुर है शरीर जाका, गर्भ के भारकरि दुःखित सांस लेती मानों सर्पणी ही है, ताकौं देखकरि मुनिकौं दया उपजी। तिन में से बड़े मुनि बोले—देखो यह प्राणी कर्म के वश करि जगतविषें भ्रमै है। धर्मकी बुद्धि करि कुटुम्बको तजिकरि संसार सागरतें तरने के अर्थि तो बनविषें आया सो हे तापस! तैनें यह क्या दुष्ट कर्म किया? स्त्री गर्भवती करी। तेरेमें अर गृहस्थी में कहा भेद है। जैसें वमन किया जो आहार ताकूं मनुष्य न भखै तैसें विवेकी पुरुष तजे हुए कामादिकनिकौं फिर नाहो आदरै। जो कोई भेष धरै अर स्त्रीका सेवन करै सो भयानक बन में स्यालिनी होय अनेक कुजन्म पावै, नरक निगोदमें पड़े है। जो कोई कुशील सेवता सर्व आरंभनि में प्रवर्त्या मदोन्मत्त आपकौं तापसी मानै है सो महा अज्ञानी है। यह कामसेवन ताकरि दग्ध दुष्ट चित्त जो दुरात्मा आरंभविषें प्रवर्तै ताकै तप काहेका? कुदृष्टिकर गर्वित भेषधारी विषयाभिलाषी जो कहै कि मैं तपसी हूँ सो मिथ्यावादी है। व्रती काहे का? सुखसों बैठना, सुखसूं सोवना, सुखसूं आहार बिहार करना, ओढना बिछावना आदि सब काज करै अर आपकौं साधु मानै सो मूर्ख आपको ठगै है। बलता जो घर तहाँ तैं निकसे फिर ताहीमें कैसें प्रवेश करै? अर जैसें छिद्र पाय पिंजरेसे निकस्या पक्षी भी फिर आपकों पिंजरे विषें नाही डारै तैसें विरक्त होय फिर कौन इंद्रीनिके वश परै? जो इन्द्रीनिके वश होय सो लोकविषें निन्दा योग्य है, आत्म कल्याण को न पावै है। सर्व परिग्रह के त्यागी मुनिको एकाग्र चित्त कर एक आत्मा ही ध्यावने योग्य है सो तुम सारिखे आरंभी तिनकरि आत्मा कैसें ध्याया जाय? प्राणीनिके परिग्रहके प्रसंग करि राग

द्वेष उपजै है, राग करि काम उपजै है, द्वेषकरि जीव हिंसा होय है, काम क्रोधकरि पीडित जो जीव ताके मनको मोह पीडै है। मूर्खके कृत्य अकृत्यविषैं विवेकरूप बुद्धि न होय। जो अविवेकतैं अशुभ कर्म उपार्जे है सो घोर संसार सागर में भ्रमै है। यह संसर्गके दोष जानकरि जे पंडित हैं ते शीघ्र ही वैरागी होय हैं। आपकरि आपकों जानि विषयवासनातैं निवृत्त होय परमधामको पावैं हैं। या भांति परमार्थरूप उपदेशनिके वचननिकरि महामुनि ने संबोध्या। तब ब्राह्मण ब्रह्मरुचि निर्मोही होय मुनि भया। कुरमी नामा स्त्रीका त्यागकरि गुरुके संग ही विहार किया, गुरुमें है धर्मराग जाके अर वह ब्राह्मणी कुरमी, शुद्ध है बुद्धि जाकी सो पापकर्मतैं निवृत्त होय श्रावक के व्रत आदरै। जान्या है रागादिकके वशतैं संसार का परिभ्रमण जानैं सो कुमार्ग का संग छोड्या। जिनराज की भक्ति विषैं तत्पर होय भर्तार रहित अकेली महासती सिंहनीकी नाईं महाबन विषैं भ्रमै। दसवें महीने पुत्रका जन्म भया तब वाकों देखकरि वह महासती ज्ञान क्रिया की धरणहारी चित्तविषैं चिंतवती भई जो यह पुत्र परिवार का सम्बन्ध महा अनर्थ का मूल मुनिराज ने कहा हुता सो सत्य है तातैं मैं या पुत्र का प्रसंग का परित्यागकरि आत्मकल्याण करूं अर यह पुत्र महाभाग्यवान है, याके रक्षक देव हैं, याने जे कर्म उपार्जे हैं तिनका फल अवश्य भोगेगा। बन में तथा समुद्र विषैं अथवा वैरियों के वश पड्या जो प्राणी ताकी पूर्वोपार्जित कर्म ही रक्षा करै है, और कोऊ नाहीं अर जाकी आयु क्षीण होय है सो माता की गोद विषैं बैठा हूं मृत्यु के वश होय है। ये सब संसारी जीव कर्मों के आधीन हैं। भगवान सिद्ध परमात्मा कर्म कलंक रहित हैं, ऐसा जान्या है तत्व ज्ञान जानें, सो महा निर्मल बुद्धिकर बालककों बन विषैं तजकार यह ब्राह्मणी विकल्परूप जो जड़ता ताकरि रहित अलोकनगर विषैं आई। जहां इन्द्रमालिनी नामा आर्या अनेक आर्यानिकी गुरुनी हुती तिनके समीप आर्या भई, सुन्दर है चेष्टा जाकी।

अथानतर आकाशके मार्ग जंभ नामा देव जाता हुता सो पुण्याधिकारी रुदनादिरहित जो बालक ताहि देख्या, दयावान होय उठाय लिया, बहुत आदर तैं पाल्या, अनेक आगम अध्यात्म शास्त्र पढ़ाए, तातैं सिद्धांत का रहस्य जानने लग्या, महापंडित भया, आकाशगामिनी विद्या हू सिद्ध भई, यौवनकों प्राप्त भया, श्रावकके व्रत धारे, शीलव्रत विषैं अत्यन्त दृढ़, अपने माता पिता जे आर्यिका मुनि भये हुते तिनकी वंदना करै, कैसा है नारद ? सम्यग्दर्शन विषैं तत्पर ग्यारमी प्रतिमा क्षुल्लक श्रावक के व्रत लेय विहार किया परन्तु कर्मके उदयतैं तीव्र वैराग्य नाहीं, न गृहस्थी न संयमी, धर्मप्रिय है अर कलह भी प्रिय है। वाचालपनेमें प्रीति है, गायन विद्यामें प्रवीण अर राग सुनने विषैं विशेष अनुराग वाला है मन जाका, महाप्रभावकरि युक्त, राजादि करि पूजित जाकी आज्ञा कोई लोप न

सकै। पुरुष स्त्रीनिविषें सदा जिसका अति सन्मान है। अढाई द्वीपविषें मुनि जिनचैत्यालयनिका दर्शन करै, सदा धरती आकाश विषें भ्रमता ही रहै, कौतूहल में लगी है दृष्टि जाकी, देवनिकरि वृद्धि पाई अर देवनिके समान है महिमा जाकी, पृथ्वी विषें देवऋषि कहावै, सदा सर्वत्र प्रसिद्ध विद्या के प्रभावकरि किया है अद्भुत उद्योत जानें।

सो नारद विहार करते संते कदाचित् मरुत के यज्ञ की भूमिपर जाय निकसे, सो बहुत लोकनिकी भीड़ देखी अर पशु बंधे देखे, तब दया भाव करि संयुक्त होय यज्ञ भूमि में उतरे। तहां जाय करि मरुत से कहने लगे–'हे राजा! जीवनिकी हिंसा दुर्गतिका ही द्वार है, तैंने यह महापाप का कार्य क्यों रच्या है?' तब मरुत कहता भया–'यह संवर्त ब्राह्मण सर्व शास्त्रनिके अर्थ विषें प्रवीण यज्ञका अधिकारी है, यह सर्व जानें है, याही तें धर्म चर्चा करो, यज्ञ करि उत्तम फल पाइये है।' तब नारद यज्ञ करावनहारे से कहते भए–अहो मानव! तें यह क्या कर्म आरंभ्या है? यह कर्म सर्वज्ञ जो वीतराग हैं तिनने दुःखका कारण कह्या है। तब संवर्त ब्राह्मण कोप करि कहता भया, अहो अत्यन्त मूढ़ता तेरी, तू सर्वथा अमिलती बात कहै है। तैंनें कोई सर्वज्ञ रागवर्जित वीतराग कह्या सो जो सर्वज्ञ वीतराग होय सो वक्ता नहीं अर जो वक्ता है सो सर्वज्ञ वीतराग नाहीं अर अशुद्ध मलिन जे जीव तिनका कह्या वचन प्रमाण नाहीं अर जो अनुपम सर्वज्ञ है सो कोई देखनेमें आवै नाहीं तातैं वेद अकृत्रिम है, वेदोक्त मार्ग प्रमाण है। वेद विषें शूद्र विना तीन वर्णनि कौं यज्ञ करावना कह्या है, यह यज्ञ अपूर्व धर्म है, स्वर्ग के अनुपम सुख देवै है। वेदी के मध्य पशुनिका वध पाप का कारण नाहीं, शास्त्रनिमें कहा जो मार्ग सो कल्याण ही का कारण है अर यह पशूनिकी सृष्टि विधातानें यज्ञ ही के अर्थि रची है तातैं यज्ञ में पशु के वधका दोष नाहीं। ऐसें संवर्त ब्राह्मण के विपरीत वचन सुन नारद कहते भए–हे विप्र! तैंनें यह सर्व अयोग्य रूप ही कह्या है–कैसा है तू? हिंसा मार्गकर दूषित है आत्मा जाका। अब तू ग्रंथार्थ का यथार्थ भेद सुन। तू कहै है सर्वज्ञ नाहीं सो यदि सर्वथा-सर्वज्ञ न होय तो शब्द सर्वज्ञ, अर्थ सर्वज्ञ, बुद्धि सर्वज्ञ, ये तीन भेद काहेकूं कहे। जो सर्वज्ञ पदार्थ है तब ही कहनेमें आवै है। जैसें सिंह है तो चित्राम में लिखिए है तातैं सर्व का देखनहारा सर्व का जाननहारा सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ न होय तो अमूर्तीक अतीन्द्रिय पदार्थोंको कौन जानै? तातैं सर्वज्ञका वचन प्रमाण है अर तैंनें कह्या जो यज्ञमें पशुका वध दोषकारी नाहीं सो पशु को वध करते समय दुःख होय हैं कि नाहीं, जो दुःख होय है तो पापहू होय है। जैसें पारधी हिंसा करै है सो जीवनकौं दुःख होय है और उसको पापहू होय है। अर तैंनें कही-विधाता सर्वलोकका कर्ता है अर यह पशु यज्ञके अर्थि बनाए हैं सो यह कथन प्रमाण नाहीं, भगवान कृतार्थ है तिनको सृष्टि बनाने तें क्या प्रयोजन? अर कहोगे ऐसी क्रीड़ा है-तो कृतार्थका

कार्य नाहीं' क्रीडा करै ताकूं बालक समान जानिए अर जो सृष्टि रचै तौ आप सारिखी रचै, वह सुखपिंड अर यह सृष्टि दुःखरूप है, जो कृतार्थ हो सो कर्ता नाहीं अर कर्ता है सो कृतार्थ नाहीं। जाकै कछु इच्छा है सो ही करै, जाके इच्छा है वह ईश्वर नाही अर ईश्वर बिना करवे समर्थ नाहीं तातैं यह निश्चय भया जाकै इच्छा है सो करने समर्थ नाहीं अर जो करवेमें समर्थ है ताके इच्छा नाही तातैं जाकों तुम विधाता कर्ता मानो हो सो कर्म करि पराधीन तुम सारिखा ही है अर ईश्वर है सो अमूर्तीक है जाकै शरीर नाहीं सो शरीर विना सृष्टि कैसें रचै? अर यज्ञके निमित्त पशु बनाइए सो बाहनादि कर्मविषै क्यों प्रवर्ते? तातैं यह निश्चय भया कि इस भवसागरविषैं अनादिकालतैं इन जीवोंने रागादिभावकरि कर्म उपार्जे हैं तिन करि नाना योनिविषैं भ्रमण करै है, यह जगत अनादिनिधन है–काहूका किया नाहीं, संसारी जीव कर्माधीन हैं अर जो तुम यह कहोगे कि करम पहिले है या शरीर पहिले है? सो जैसें बीज अर वृक्ष तैसें कर्म अर शरीर जानने। बीजतैं वृक्ष है अर वृक्षतैं बीज है, जिनके कर्म रूप बीज दग्ध भया तिनके शरीर रूप वृक्ष नाही अर शरीर वृक्ष बिना सुख दुःखादि फल नाहीं तातैं यह आत्मा मोक्ष अवस्था में कमरहित मनइंद्रियनितैं अगोचर अद्भुत परम आनन्द को भोगै है। निराकार स्वरूप अविनाशी है सो अविनाशीपद दया-धर्मतैं ही पाइए है। तू कोई पुण्यके उदय करि मनुष्य भया, ब्राह्मणका कुल पाया तातैं पारधियोंके कर्मतैं निवृत्त हो अर जो जीव हिंसातैं यह मानव स्वर्ग पावै हैं तो हिंसा के अनुमोदनतैं राजा बसु नरक में क्यों पड़े? जो कोई चूनका पशु बनायकरि घात करै है सो भी नरक का अधिकारी होय है तो साक्षात् पशुघात की कहा बात? अबहू यज्ञ के करणहारे ऐसा शब्द कहे हैं–'हो बसु! उठ स्वर्गविषै जावो'। यह कहकर अग्निविषै आहुति डारै हैं। तातैं सिद्ध भया कि बसु नरकमें गया अर स्वर्गमें न गया तातैं हे संवर्त! यह यज्ञ कल्याणका कारण नाहीं अर जो तू यज्ञ ही करै तो जैसें हम कहैं सो कर। यह चिदानन्द आत्मा सो तो यजमान नाम कहिए (यज्ञका करणहारा) अर शरीर है सो विनय-कुण्ड कहिए होमकुण्ड अर संतोष है सो पुरोडास कहिए यज्ञकी सामग्री अर जौ सर्व परिग्रह है सो हवि कहिए होमने योग्य बस्तु अर माधुर्य कहिए केश तेई दर्भ कहिये डाभ, तिनका उपारना, लोंच करना अर जो सर्व जीवनिकी दया सोई दक्षिणा अर जाका फल सिद्धपद ऐसा जो शुक्लध्यान सोई प्राणायाम अर जो सत्यमहाव्रत सोई यूप कहिए, यज्ञविषैं काष्ट का स्थंभ जातै पशुको बांधै हैं अर यह चंचल मन सोई पशु अर तपरूप अग्नि अर पांच इंद्रिय तेई समधि कहिए ईंधन, यह यज्ञ धर्मयज्ञ कहिए है। अर तुम कहो हो कि यज्ञकरि देवों की तृप्ति कीजिये है सो देवनकै तो मनसा आहार है, तिनका शरीर सुगन्धमय है, अन्नादिक का आहार नाहीं सो मांसादिक की कहा बात? कैसा है मांस, महा दुर्गंध जो

देख्या न जाय, पिता का वीर्य माता का लहू ताकरि उपज्या, कृमीनिकी है उत्पत्ति जिस विषें, महा अभक्ष सो मांस देव कैसे भखें ? अर तीन अग्नि या शरीरविषें हैं एक ज्ञानाग्नि, दूसरी दर्शनाग्नि, तीसरी उदराग्नि सो इन्हींको आचार्य दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय कहै हैं अर स्वर्गलोकके निवासी देव हाड मांस का भक्षण करें तो देव काहे के ? जैसें स्वान, स्याल, काक तैंसें वे भी भए । ये वचन नारद ने कहे ।

कैसे हैं नारद ? देवऋषि हैं, अनेकांत रूप जिनमार्ग के प्रकाशवेकों सूर्य समान महा तेजस्वी, देदीप्यमान है शरीर जिनका, शास्त्रार्थज्ञानके निधान तिनको मंदबुद्धि संवर्त कहा जीतै । सो पराभवको प्राप्त भया तब निर्दई क्रोधके भारकर कंपायमान, आशीविष सर्प समान लाल हैं नेत्र जाके, महा कलकलाट करि अनेक विप्र भेले होय लड़नेकों काछ-कछ हस्तपादादिकर नारद के मारने कों उद्यमी भए । जैसें दिन में काक घूघू पर आवै सो नारद भी कैयकनिकों मुक्कीनतें, कैयकनिकों मुद्गरतें, कैयकनिकों कोहनीसे मारते हुय भ्रमण करते भए । अपने शरीररूप शस्त्रकरि अनेकनिकों हत्या, बहुत युद्ध भया । निदान ये बहुत अर नारद अकेले सो सर्व गात्रमें अत्यन्त आकुलताकों प्राप्त भये । पक्षी की नाई बंधकों ने घेरया, आकाशविषें उड़वे को असमर्थ भए, प्राण संदेहको प्राप्त भए, ताही समय रावणका दूत राजा मरुतपै आया हुता सो नारदको घेरया देखि पाछा जाय रावणतें कही—हे महाराज ! जाके निकट मोहि भेज्या हुता सो महा दुर्जन है ताके देखते थके द्विजों ने अकेले नारदको घेरया है अर मारै है जैसें कीडी दल सर्पको घेरै । सो मैं यह बात देख न सक्या सो आपको कहिवेको आया हूँ । तब रावण यह वृत्तान्त सुन क्रोध कौं प्राप्त भया, पवन से भी शीघ्रगामी जे वाहन तिन पर चढ़ि चलनेको उद्यमी भया अर नंगी तलवारनि के धारक जे सामन्त अगाऊ दौड़ाए ते एक पलक में यज्ञशाला जाय पहुँचे, तत्काल ही नारदको शत्रुओंके घेरतें छुड़ाया अर निर्दई मनुष्य जो पशूनिको घेरि रहे हुते सो सकल पशु तत्काल छुड़ाए । यज्ञके यूप कहिए स्तंभ ते तोड़ डारे अर यज्ञके करावनहारे विप्र बहुत कूटे, यज्ञशाला बखेर डारी, राजाको भी पकड़ लिया, रावण ने द्विजनितें बहुत कोप किया कि जो मेरे राज्यविषें जीवघात करै—यह क्या बात ? सो ऐसे कूटे जो अचेत होय धरती पर गिर पड़े, तब सुभट लोक इनको कहते भये अहो जैसा दुःख तुमको बुरा लागै है अर सुख भला लागै है तैसा पशुनिके भी जानों अर जैसा जीतव्य तुमको वल्लभ है तैसा सकल जीवनिकों जानों, तुमको कूटते कष्ट होय है तो पशुओं को विनाशनेतें क्यों न होय ? तुम पापका फल सहो, आगैं नरकनिमें दुःख भोगोगे, सो घोड़ों आदिके सवार तथा खेचर भूचर सब ही पुरुष हिंसकनिकौं मारने लगे, तब वे विलाप करने लगे, हमको छोड़ो फिर ऐसा काम न करेंगे । ऐसे दीन वचन कह विलाप करते भए अर रावणका तिनपर अत्यन्त क्रोध

सो छोड़े नाहीं तब नारद महा दयावान रावणसौं कहने लगे कि हे राजन् ! तेरा कल्याण होवै, मैंने इन दुष्टों से मुझे छुडाया, अब इनकी भी दयाकर, जिन शासनमें काहूकों पीड़ा देनी लिखी नाहीं। सब जीवनिकौं जीतव्य प्रिय है। तैने सिद्धांत में क्या यह बात न सुनी है कि जो हुंड वसर्पिणी कालविषैं पाखंडिनि की प्रवृत्ति होय हैं। अबके चोथे कालके आदि में भगवान ऋषभ प्रगटे, तीन जगत् में उच्च जिनको जन्मते ही देव सुमेरु पर्वत पर ले गये, क्षीरसागर के जलकरि स्नान कराया, वे महाकांति के धारी ऋषभ जिनका दिव्य चरित्र पापोंका नाश करनहारा तीनलोकमें प्रसिद्ध है सो तैने क्या न सुन्या, वे भगवान जीवोंके दयालु जिनके गुण इंद्र भी कहनेको समर्थ नाहीं, ते वीतराग निर्वाणके अधिकारी इस पृथ्वीरूप स्त्रीको तजकरि जगतके कल्याण निमित्त मुनिपद को आदरते भये। कैसे हैं प्रभु ! निर्मल है आतमा जिनका, कैसी है पृथ्वीरूप स्त्री ? जो विंध्याचल पर्वत अर हिमालय पर्वत तेई हैं उतंग कुच जाके अर आर्यक्षेत्र है मुख जाका, सुन्दर नगर तेई चूडे तिन करि युक्त है अर समुद्र है कटिमेखला जाकी अर जे नीलवन तेई हैं तिनके केश जाके, नाना प्रकारके जे रतन तेई आभूषण हैं। ऋषभदेवने मुनि होयकरि हजारवर्ष तक महातप किया, अचल है योग जिनका, लंबायमान हैं बाहु जिनकी, स्वामीके अनुरागकरि कच्छादि चार हजार राजाओं ने मुनि के धर्म जाने बिना ही दीक्षा धरी। सो परीषह सह न सके तब फलादिकका भक्षण अर बक्कलादिका धारण कर तापसी भए, ऋषभदेवने हजार वर्ष तक तपकर वटवृक्षके तले केवलज्ञान उपजाया तब इन्द्रादिक देवों ने केवलज्ञान कल्याणक किया, समोसरण की रचना भई। भगवान की दिव्यध्वनि कर अनेक जीव कृतार्थ भए। जे कच्छादिक राजा चारित्र भ्रष्ट भये हते ते धर्म में दृढ होय गए, मारीच के दीर्घ संसार के योगतैं मिथ्याभाव न छूटया अर जिस स्थान पर भगवान को केवलज्ञान उपज्या ता स्थानकमें देवों करि चैत्यालयनिकी स्थापना भई। ऋषभदेवकी प्रतिमा पधराई अर भरत चक्रवर्ती ने विप्र वर्ण थाप्या हुता, वह जलविषैं तेल की बून्दवत् विस्तारकों प्राप्त भया। उन्होंने यह जगत मिथ्याचार करि मोहित किया, लोक अनि कुकर्म विषैं प्रवर्ते, सुकृत का प्रकाश नष्ट होय गया। जीव साधूनिके अनादर में तत्पर भए। आगें सुभूम चक्रवर्ती ने नाश को प्राप्त किए थे तौ भी इनका अभाव न भया, हे दशानन ! तो करि कैसें अभाव को प्राप्त होंहिंगे, तातैं तू प्राणीनिकी हिंसातैं निवृत्त होहु। काहूकी कभी भी हिंसा करनी नाहीं। अर जब भगवानके उपदेश करि जगत मिथ्यामार्गकरि रहित न होय, कोई एक जीव पलटै तो हम सारिखों कर सकल जगत का मिथ्यात्व कैसें जाय ? कैसे हैं भगवान ? सर्व के देखनहारे, सर्व के जाननहारे। या भाँति देवर्षि नारदके वचन सुनकर केकसी माता की कुक्षि में उपज्या जो रावण सो पुराण कथा सुनकर अति प्रसन्न भया अर बारंबार

जिनेश्वरदेव को नमस्कार किया। नारद अर रावण महापुरुषनि की मनोज्ञ जे कथा तिनके कथनि करि क्षणएक सुखसों तिष्ठे, महापुरुषों की कथा में नाना प्रकार का रस भरया है ऐसी हैं।

अथानन्तर राजा मरुत हाथ जोड़ि धरतीसौं मस्तक लगाय रावण को नमस्कार करि विनती करता भया—हे देव, हे लंकेश! मैं आपका सेवक हूं, आप प्रसन्न होवो, मैं अज्ञानी अज्ञानीनि के उपदेशकरि हिंसामार्गरूप खोटी चेष्टा करी सो आप क्षमा करो। जीवों के अज्ञानकरि खोटी चेष्टा होय है, अब मुझ धर्म के मार्ग में लेवो अर मेरी पुत्री कनकप्रभा आप परणो, जे संसार में उत्तम पदार्थ हैं तिनके आप ही पात्र हो। तब रावण प्रसन्न भए। कैसे हैं रावण? जो नम्रीभूत होय ता विषैं दयावान हैं। तब रावण ने उसकी पुत्री परणी अर ताहि आपनी कियो सो रावणके अति वल्लभा भई। मरुतने रावण के सामंतलोक बहुत पूजे, नाना प्रकारके वस्त्र भूषण, हाथी, घोड़े, रथ दिए, कनकप्रभा सहित रावण रमता भया ताके एक वर्ष बाद कृतचित्र नामा पुत्री भई, सो देखनहारे लोकनिको रूपकर आश्चर्यकी उपजावनहारी मानों मूर्तिवंत शोभा ही है। रावणके सामंत महाशूरवीर तेजस्वी, जीतकरि उपज्या हैं उत्साह जिनके, सपूर्ण पृथ्वीतल में भ्रमते भए। तीन खंडमें जो राजा प्रसिद्ध हुता अर बलवान हुता सो रावणके योधानिके आगे दीनताकौं प्राप्त भया। सब ही राजा वश भए, कैसे हैं राजा? राज्य के भंगका है भय जिनको, विद्याधरलोक भरतक्षेत्रका मध्यभाग देखि आश्चर्यकों प्राप्त भए। मनोज्ञ नदी, मनोज्ञ पहाड़, मनोज्ञ वन तिनको देख लोक कहते भए, अहो! स्वर्ग भी यातैं अधिक रमणीक नाहीं चित्तविषैं ऐसैं उपजै है जो यहां ही वास करिए। समुद्र समान विस्तीर्ण सेना जाकी ऐसा रावण जा समान और नाहीं। अहो अद्भुत धैर्य अद्भुत उदारता या रावण की, यह सब विद्याधरनिमें श्रेष्ठ नजर आवै है, या भांति समस्त लोक प्रशंसा करैं हैं। जा जा देश विषैं रावण गया तहां तहां लोक प्रशंसा करैं फिर जहां जहां रावण गया तहां तहां लोक सन्मुख आय मिलते भए। जे जे पृथ्वीविषैं राजानिकी सुन्दर पुत्री हुतीं ते रावणने परणी। जा नगरके समीप रावण जाय निकसै ताही नगरके नर-नारी देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त होवें। स्त्री सकल काम छोड़ देखवेको दौड़ी, कैयक झरोखानिमें बैठि ऊपरसे अशीस देय फूल डारैं, कैसा है रावण? मेघसमान श्याम सुन्दर पाकी बिंदूरी समान लाल हैं अधर जाके अर मुकुट विषैं नाना प्रकार की जे मणि तिनकर शोभै है सीस जाका, मुक्ताफलनि की ज्योति सोई भया जल ताकरि पखारया है चन्द्रमा समान वदन जाका, इन्द्र नीलमणि समान श्याम सघन जे केश अर सहस्र पत्र कमल समान नेत्र तत्काल खैंच्या नम्रीभूत हुवा जे धनुष ताके, केहरी समान वक्र स्याम चिकने भौंह युगल ताकरि शोभित, शंखसमान

ग्रीवा (गरदन) जाकी अर वृषभ समान कांधे जाके, पुष्ट विस्तीर्ण वक्षस्थल जाके, दिग्गज की सूंडसमान भुजा जाकी, केहरी समान कटि जाकी, कदलीके समान सुन्दर जंघा जाकी, कमल समान चरण, समचतुरस संस्थानक को धरे महामनोहर शरीर जाका, न अधिक लंबा, न अधिक ओछा, न कृश, न स्थूल, श्रीवत्स लक्षणको आदि देय बत्तीस लक्षणनिकरि युक्त अर अनेकप्रकार रत्ननिकी किरणों करि दैदीप्यमान है मुकुट जाका अर नाना प्रकार की मणिनिकरि मंडित, नाना प्रकारके मनोहर हैं कुंडल जाके, बाजूबंदकी दीप्तिकरि दैदीप्यमान हैं भुजा जाकी अर मोतीनिके हार करि शोभै है उर जाका, अर्ध चक्रवर्ती की विभूति का भोगनहारा, ताहि देख प्रजा के लोक बहुत प्रसन्न भए। परस्पर बात करै हैं कि यह दशमुख महाबलवान, जीत्या है मौसी का बेटा वैश्रवण जानैं अर जीत्या है राजा यम जिमने, कैलाश के उठानेकों उद्यमी भया अर प्राप्त कराया है राजा सहस्ररश्मि को वैराग्य जानें, मरुतके यज्ञका विध्वंस करणहारा, महा शूरवीर साहसका धारी हमारे सुकृतके उदयकरि या दिशाको आया। यह केकसी माता का पुत्र, याके रूपका अर गुणनि का कौन वर्णन कर सकै, याका दर्शन लोकनिकों परम उत्सव का कारण है, वह स्त्री पुण्यवती है जाके गर्भ तैं यह उत्पन्न भया अर वह पिता धन्य है जातैं यानैं जन्म पाया अर वे बंधु लोक धन्य हैं जिनके कुल विषैं यह प्रगट्या अर जे स्त्री इनको रानी भईं तिनके भाग्य की कौन कहै। या भांति स्त्री झरोखानिमें बैठी बात करै हैं अर रावण की असवारी चली जाय है। जब रावण आय निकसै तदि एक मुहूर्त गांव की नारी चित्राम की सी होय रहैं, ताके रूप सौभाग्य करि हर्या गया है चित्त जिनका, स्त्रीनिको अर पुरुषनिको रावण की कथा को टारि और कथा न रही। देशनिविषैं तथा नगर ग्राम तथा गांवनिके बाडे तिन विषैं जे प्रधान पुरुष हैं ते नानाप्रकारकी भेंट लेयकरि आय मिले अर हाथ जोड़ि नमस्कार करि विनती करते भए—हे देव! महाविभवके पात्र तुम, तिहारे घर विषैं सकल वस्तु विद्यमान हैं, हे राजानिके राजा! नंदनादि वनमें जे मनोज्ञ वस्तु पाइये हैं ते भी सकल वस्तु चितवन मात्रतैं ही तुमको सुलभ हैं, ऐसी अपूर्व वस्तु क्या है जो तुम्हारी भेंट करैं तथापि यह न्याय है कि रीते हाथनि राजानिसौं न मिलिए, तातैं कछू हम अपनी माफिक भेंट करै हैं। जैसैं भगवान जिनेन्द्रदेवकीदेव सुवर्णके कमलों कर पूजा करैंहैं तिनको क्या मनुष्य आप योग्य सामग्री कर नाही पूजैं हैं? या भांति नाना प्रकार के देश देशनि के सामंत बड़ी ऋद्धि के धारी रावण को पूजते भए। रावण तिनका मिष्टवचननि करि बहुत सन्मान करता भया। रावण पृथ्वी कौं बहुत सुखी देख प्रसन्न भया जैसे कोई अपनी स्त्रीकौं नाना प्रकारके रत्न आभूषणनिकरि मंडित देख सुखी होय। जहाँ रावण मार्ग के वशतैं जाय निकसैं ता देश विषैं बिना बाहे धान स्वयमेव उत्पन्न भए, पृथ्वी अति

शोभायमान भई, प्रजाके लोक परम आनंदको धरते सते अनुरागरूपी जलकरि याकी कीर्तिरूपी बेलिको सींचते भए। कैसी है कीर्ति? निर्मल है स्वरूप जाका, किसान लोग ऐसैं कहते भए कि बड़े भाग्य हमारे जो हमारे देश में रत्नश्रवा का पुत्र रावण आया। हम रंक लोग कृषिकर्म में आसक्त, रूखे अंग, खोटे वस्त्र, हाथ पग कर्कश, क्लेशतैं हमारे सुख स्वाद रहित एता काल गया, अब इसके प्रभावतैं हम संपदादिकरि पूर्ण भए। पुण्यका उदय आया, सर्व दुःखनिका दूर करणहारा रावण आया। जिन जिन देशनिमें यह कल्याण का भरचा विचरै ते देश सर्व सपदा करि पूर्ण होय। दशमुख दरिद्रीनिका दरिद्र देख न सकै। जिनको दुःख मेटवेका शक्ति नाहीं तिन भाइयनि करि कहा सिद्धि होय है, यह तो सर्व प्राणियों का बड़ा भाई होता भया। यह रावण अपने गुणनिकरि लोगनिकौं आनन्द उपजावता भया, जाके राज में शीत अर उष्ण भी प्रजा को बाधा न कर सकै तो चोर चुगल बटमार तथा सिंह गजादिकनिकी बाधा कहां से होय। जाके राज्य विषैं पवन, पानी, अग्नि की भी प्रजा को बाधा न होय, सर्व बात सुखदाई ही होती भई।

अथानन्तर रावणकी दिग्विजय विषैं वर्षा ऋतु आई मानों रावण सों साम्ही आय मिली मानों इन्द्रने श्यामघटारूपी गज की भेंट भेजी। कैसे हैं काले मेघ? महा नीलाचल समान विजुरीरूप स्वर्णकी सांकल धरे अर बगुलनिकी पंक्ति तेई भई ध्वजा तिनकरि शोभित हैं शरीर जिनके, इन्द्र धनुष रूप आभूषण पहरे जब वर्षाऋतु आई तब दसों दिशानिमें अन्धकार हो गया, रात्रि दिवस का भेद जान्या न पड़े सो यह युक्त ही है, श्याम होय सो श्यामता ही प्रकट करै। मेघ भी श्याम अर अंधकार भी श्याम, पृथ्वी विषैं मेघकी मोटी धारा अखंड बरसती भई। जो मानिनी नायिकानिके मनविषैं मानका भार हुता सो मेघके गर्जनकरि क्षणमात्रविषैं विलाय गया अर मेघकी ध्वनिकरि भयकों पाई, जे मानिनी भामिनी ते स्वमेव ही भरतारसों स्नेह करती भईं। जे शीतल कोमल मेघकी धारा ते पंथीनिको बाण के भाव कों प्राप्त करती भईं, मर्मकी विदारणहारी, धारानिके समूहकरि भेदा गया है हृदय जिनका, ऐसे पथी ते महाव्याकुल भए हैं मानों तीक्षणचक्रकरि विदारे गए हैं नवीन जो वर्षा का जल ताकरि जडताकों प्राप्त भए, पंथी क्षणमात्र में चित्राम जैसे होय गए अर जानिए कि क्षीरसागरके भरे जो मेघ सो गायनिके उदर विषैं बैठे हैं तातैं निरन्तर ही दुग्धकी धारा वर्षै है। वर्षा के समय किसान कृषिकर्मको प्रवर्तै हैं रावण के प्रभावकरि महाधन के धनी होते भए। रावण सब ही प्राणियों का महाउत्साह का कारण होता भया।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक सों कहै हैं कि हे श्रेणिक! जे पूर्ण पुण्याधिकारी हैं तिनके सौभाग्य का वर्णन कहां तक करिए। इन्दीवर कमल सारिखा श्याम रावण स्त्रियों

के चित्तको अभिलाषी करता संता मानों साक्षात् वर्षाकाल का स्वरूप ही है गंभीर है ध्वनि जाकी, जैसा मेघ गाजै तैसा रावण गाजै सो रावणकी आज्ञातैं सर्व नरेंद्र आय मिले, हाथ जोड़ नमस्कार करते भए। जो राजानिकी कन्या महा मनोहर ते रावणको स्वयमेव वरती भई। ते रावणको वरकर अत्यन्त क्रीड़ा करती भईं। जैसें वर्षा पहाड़को पाय करि अति वरषै। कैसी है वर्षा ? पयोधर जे मेघ तिनके समूहकरि संयुक्त है अर कैसी है स्त्री? पयोधर जे कुच तिनकरि मंडित है। कैसा है रावण ? पृथ्वी के पालनेको समर्थ है। वैश्रवण यक्ष का मानमर्दन करनहारा, दिग्विजय को चढ्या समस्त पृथ्वीको जीतै सो ताहि देखकरि मानों सूर्य लज्जा अर भयकरि व्याकुल होय दबि गया। भावार्थ—वर्षाकाल विषैं सूर्य मेघपटलनिकरि आच्छादित होय है) अर रावण के मुखसमान चन्द्रमा भी नाहीं सो मानो लज्जा करि चन्द्रमा भी दबि गया क्योंकि वर्षा काल में चन्द्रमा भी मेघमाला करि आच्छादित होय है अर तारे भी नजर नाहीं आवै हैं सो मानों अपना पति जो चंद्रमा ताहि रावण के मुख करि जीत्या जानि भाज गए अर रावण की स्त्रियोंकी पगथली अत्यन्त लाल जानकर लज्जावान होय कमलों के समूह भी छिप गए मानों यह वर्षा ऋतु स्त्री समान है। विजुरी तेई कटिमेखला, जो इन्द्रधनुष वह वस्त्राभूषण पयोधर, जे मेघ वे ही पयोधर कहिए कुच अर रावण महामनोहर केतकीकी वास तथा पद्मनीस्त्रियोंके शरीर की सुगन्ध इत्यादि सर्व सुगन्ध अपने शरीर सुगन्धताकरि जीतता भया जाके सुगन्ध श्वास रूप पवन के खेंचे भ्रमरनिके समूह गुंजार करते भए। गंगा तट जो अति मनोहर है तहाँ डेरा करि वर्षा ऋतु पूर्ण करी। कैसा है गंगा का तट जाके तीर सुन्दर हरित तृण शोभै हैं, नाना प्रकार के पुष्पोंकी सुगन्धता फैल रही है। बड़े बड़े वृक्ष शोभै हैं। कैसा है रावण ? जगत का बंधु कहिए हितु है। अति सुखसों चातुर्मास्य पूर्ण किया। हे श्रेणिक ! जे पुण्याधिकारी मनुष्य हैं तिनका नाम श्रवणकर सर्वलोक नमस्कार करैं हैं अर सुन्दर स्त्रियों के समूह स्वयमेव आय वरैं हैं अर ऐश्वर्य के निवास परम विभव प्रगट होय हैं। उनके तेजकरि सूर्य भी शीतल होय है ऐसा जानकर आज्ञा मान संशय छोड़ पुण्य के प्रबंध का यत्न करो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं मरुत के यज्ञ का विध्वंस अर रावण की दिग्विजयका वर्णन करने वाला ग्यारहवां पर्व पूर्ण भया ॥११॥

(द्वादश पर्व)

[इन्द्र नामक विद्याधर का पराभव कथन]

अथानंतर रावण मंत्रियों से एकांत विषैं विचार करता भया। अहो मंत्रियो ! यह अपनी कन्या कृतचित्रा कौनको परनावैं। इंद्रसों संग्रामविषैं जीतनेका निश्चय नाहीं तातैं

पुत्रीका पाणिग्रहण मंगलकार्य प्रथम करना योग्य है। तब रावणको पुत्री के विवाह की चिंताविषैं तत्पर देखि राजा हरिवाहन ने अपना पुत्र निकट बुलाया सो हरिवाहन के पुत्र को अति सुन्दराकार विनयवान देखिकर पुत्री के परणायवे का मनोरथ किया। रावण अपने मन में चितवता भया कि सर्वनीति शास्त्रविषैं प्रवीण अहो मथुरा नगरी का नाथ राजा हरिवाहन निरंतर हमारे गुणनिकी कीर्तिविषैं आसक्त है मन जाका, याकों प्राणोंहुते प्यारा मधु नामा पुत्र प्रशंसा योग्य है। महाविनयवान् प्रीतिपात्र महारूपवान् अति गुणवान् मेरे निकट आया। तब मंत्री रावणसों कहते भए–हे देव ! यह मधुकुमार महापराक्रमी याके गुण वर्णन में न आवैं तथापि कछुइक कहैं हैं। याके शरीर विषैं अत्यन्त सुगन्धता है, जो सर्व लोकनिके मनको हरै ऐसा है रूप जाका। याका मधु नाम यथार्थ है, मधुनाम मिष्टान्न का है सो यह मिष्टवादी है अर मधुनाम मकरन्द का है सो यह मकरंदतैं भी अति सुगन्ध है अर याके ऐते ही गुण आप मत जानों, असुरनिका इन्द्र जो चमरेंद्र ताने याकों महागुणरूप त्रिशूलरत्न दिया है सो त्रिशूलरत्न वैरिन पर डारचा वृथा न जाय, अत्यन्त दैदीप्यमान है सो आप याको करतूत करि याके गुण जानोहीगे। वचनों करि कहां लग कहैं तातैं हे देव ! यासों संबंध करनेकी बुद्धि करो। यह आपसे संबंध करि कृतार्थ होयगा, ऐसा जब मंत्रियोने कह्या तब रावण ने याको अपना जमाई निश्चय किया अर जमाई योग्य जो सामग्री सो याको दीनी। बड़ी विभूतिसों रावण ने अपनी पुत्री परणाई सर्वलोक हर्षित भए। यह रावणकी पुत्री साक्षात् पुण्य लक्ष्मी, महा सुन्दर शरीर, पतिके, मन अर नेत्रनिको हरनहारी, जगत् में ऐसा सुगन्ध नाहीं, ऐसे सुगन्ध शरीर को धारनहारी ताको पायकर मधु अति प्रसन्न भया।

अथानन्तर राजा श्रेणिक जिनको कौतूहल उपज्या है सो गौतमस्वामीसों पूछते भए–हे नाथ ! असुरेंद्रने मधु को कौन कारण त्रिशूल रत्न दिया, दुर्लभ है संगम जाका। तब गौतम स्वामी जिनधर्मीनितैं है वात्सल्य जिनके, त्रिशूल रत्नकी प्राप्तिका कारण कहते भए। हे श्रेणिक ! धातकीखंड नामा द्वीप तहां ऐरावत क्षेत्र तामें शतद्वार नगर तहां दोय मित्र होते भए। महा प्रेमका है बन्धन जिनकें, एकका नाम सुमित्र दूसरे का नाम प्रभव। सो ये दोनों एक चटशालामें पढ़कर पंडित भए। कई एक दिनों में सुमित्र राजा भया। सर्व सामंतनिकरि सेवित पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म के प्रभावतैं परम उदयको प्राप्त भया अर दूजा मित्र प्रभव सो दरिद्र कुल में उपज्या, महा दरिद्री। सो सुमित्रने महास्नेहतैं अपनी बराबर कर लिया। एक दिन राजा सुमित्रकों दुष्ट घोड़ा हरकर बनमें ले गया। तहां दुरिददंष्ट्र नाम भीलनिका राजा सो याकों अपने घर ले गया ताको बनमाला पुत्री परणाई सो वह बनमाला साक्षात वनलक्ष्मी ताको पाय राजा सुमित्र अति प्रसन्न भया। एक मास

तहाँ रह्या । बहुरि भीलों की सेना लेकर स्त्री सहित शतद्वार नगर मैं आवै था अर प्रभव ढूंढने को निकस्या सो मार्गमें स्त्री सहित मित्र को देखा । कैसी है वह स्त्री मानों कामकी पताका ही है । सो देखकरि यह पापी प्रभव मित्र की भार्या विषैं मोहित भया । अशुभ-कर्म के उदय से नष्ट भई है कृत्य अकृत्य की बुद्धि जाकी, प्रबल काम के बाणनिकर बीध्या संता अति आकुलता को प्राप्त भया । आहार निद्रादिक सर्व विस्मरण भया । संसार में जेती व्याधी हैं तिनमें मदन व्याधी है जाकरि परम दुःख पाइए है, जैसे सर्व देवनि में सूर्य प्रधान है तैसे समस्त रोगनिके मध्य मदन प्रधान है । तब सुमित्र प्रभव को खेद-खिन्न देखि पूछते भए–हे मित्र ! तू खेद खिन्न क्यों है ? तब यह मित्र कों कहने लगा जो तुम वणमाला परणी ताको देखकरि चित्त व्याकुल भया है । यह बात सुनकरि राजा सुमित्र, मित्रमें है अति स्नेह जाका, अपने प्राण समान मित्र को अपनी स्त्री के निमित्त दुःखी जावि स्त्री को मित्र के घर पठावता भया अर आप आपा छिपाय मित्र के झरोखे में जाय बैठा अर देखै कि यह क्या करै, जो मेरी स्त्री याकी आज्ञा प्रमाण न करै तो मैं स्त्री का निग्रह करूँ अर जो याकी आज्ञा प्रमाण करै तो सहस्र ग्राम दूं । बनमाला रात्रि के समय प्रभव के समीप जाय बैठी । तब प्रभव पूछता भया कि हे भद्रे ! तू कौन है । तब इसने विवाह पर्यंत सर्व वृत्तान्त कह्या । सुककरि प्रभव प्रभा रहित होय गया, चित्त विषैं अति उदास भया । विचारै है–हाय ! हाय ! मैं यह क्या अशुभ भावना करी, मित्र की स्त्री माता समान कौन बांछै है, मेरी बुद्धि भ्रष्ट भई, या पापतैं कब छूटूं । बनै तो अपना सिर काट डारूं, कलंकयुक्त जीवन करि कहा ? ऐसा विचार मस्तक काटने के अर्थ म्यानतैं खड्ग काढ़या, खड्ग की कांति करि दसों दिशाविषैं प्रकाश होय गया तब तलवार को कंठ के समीप ल्याया अर सुमित्र झरोखे में बैठ्या हुता सो कूदकर आय हाथ पकड़ लिया, मरते को बचाय लिया, छाती सों लगाय करि कहने लगा–हे मित्र ! आत्मघात का दोष तू न जाने है । जे अपने शरीर का अवधि से निपात करै हैं ते शूद्र मर करि नरक विषै जाय पड़े हैं । अनेक भव अल्प आयु के धारक होय हैं । यह आत्मघात निगोद का कारण है । या भांति कहकरि मित्रके हाथसों खड्ग छीन लिया अर मनोहर वचन करि बहुत संतोष्या अर कहने लगा कि हे मित्र ! अब आपसमें परस्पर परम मित्रता है सो यह मित्रता परभव में रहै कि न रहै । यह संसार असार है । यह जीव अपने कर्म के उदयकरि भिन्न भिन्न गति कों प्राप्त होय है, या संसार में कौन किसका मित्र और कौन किसका शत्रु है, सदा एक दशा न रहै है । यह कह करि दूसरे दिन राजा सुमित्र महामुनि भए, पर्याय पूर्ण करि दूजे स्वर्ग ईशान इन्द्र भये । तहांतैं चय करि मथुरापुरी में राजा हरिवाहन जाके राणी माधवी तिनकै मधु नामा पुत्र भये । हरिवंशरूप आकाशविषैं चन्द्रमा समान भए । अर

प्रभव सम्यक्त बिना अनेक योनियों में भ्रमण करि विश्वावसु की ज्योतिषमती जो स्त्री ताके शिखी नामा पुत्र भया सो द्रव्यलिंगी मुनि होय महातप करि निदान के योगतें असुरों के अधिपति चमरेन्द्र भए। तब अवधिज्ञानकरि अपने पूर्व भव विचार सुमित्र नामा मित्र के गुण अति निर्मल अपने मनविषें धारे, सुमित्र राजा का अति मनोज्ञ चरित्र चितार करि असुरेंद्रका हृदय प्रीतिकरि मोहित भया। मनविषें विचारया कि राजा सुमित्र महागुणवान मेरा परममित्र हुता, सर्व कार्यों में सहाई था, ता सहित मैं चटशाला विषें विद्या पढ़ा, मैं दरिद्री हुता तानें आप समान विभूतिवान किया अर मैं पापी दुष्टचित्त ने ताकी स्त्रीविषें खोटे भाव किए तो हू तानें द्वेष न किया, स्त्री मेरे घर पठाई, मैं मित्र की स्त्री को माता समान जान अति उदास होय अपना सिर खड्गतें काटने लाग्या तब ताही ने थांभ लिया अर मैंने जिन शासन की श्रद्धा बिना मरकर अनेक दुःख भोगे अर जे मोक्षमार्गके प्रवर्तन-हारे साधु पुरुष तिनकी निंदा करी सो कुयोनिविषें दुःख भोगे अर वह मित्र मुनिव्रत अंगीकारकरि दूजे स्वर्ग इंद्र भया। तहां तें चयकरि मथुरापुरी विषें राजा हरिवाहन का पुत्र मधुवाहन भया है अर मैं विश्वावसु का पुत्र शिखी नाम द्रव्यलिंगी मुनि होय असुरेंद्र भया। यह विचार उपकार का खैंच्या परम प्रेमकरि भीजा है मन जाका, अपने भवन से निकसि करि मध्यलोकविषें आया। मधुवाहन मित्रसों मिल्या, महारत्नोंकरि मित्र का पूजन किया, सहस्रांत नामा त्रिशूल रत्न दिया, मधुवाहन चमरेन्द्र को देख बहुत प्रसन्न भया फिर चमरेंद्र अपने स्थान कों गया। हे श्रेणिक! शस्त्र विद्याका अधिपति जिन्हों का है वाहन जाके, ऐसा मधु कुंवर, हरिवंश का तिलक रावण है श्वसुर जाका, सुखसो तिष्ठै है। यह मधु का चरित्र जो पुरुष पढ़ै सुनै सो कांति को प्राप्त होय अर ताके सर्व अर्थ सिद्ध होंय।

अथानंतर मरुत के यज्ञ का नाश करणहारे जो रावण सो लोक विषें अपना प्रभाव विस्तारता हुवा शत्रुनिको वश करता संता अठारह वर्ष विहार करि जैसें स्वर्गमें इंद्र हर्ष उपजावै तैसे उपजावता भया। पृथ्वी का पति कैलाश पर्वत के समीप आय प्राप्त भए। तहां निर्मल है जल जाका ऐसी मंदाकिनी कहिए गंगा समुद्रकी पटराणी कमलनिके मकरंदकरि पीत है जल जाका ऐसी गंगाके तीर कटकके डेरे कराए और आप कैलाशके कुक्षविषें डेरा करि क्रीडा करता भया। गंगाका स्फटिक समान जल निर्मल तामैं खेचर भूचर जलकर क्रीडा करते भए। जे घोड़े रज विषें लोटकरि मलिन शरीर भए हुते ते गंगामें नहलाय जलपान कराय फिर ठिकाने लाय बांधे। हाथी सनाए। रावण वाली का वृतांत चितार चैत्यालयनिकों नमस्कार करि धर्मरूप चेष्टा करता तिष्ठया।

अथानंतर इन्द्र ने दुर्लंघिपुर नामा नगरविषें नलकूबर नामा लोकपाल थाप्या हुता

सो रावणकी हलकारों के मुखतैं नजीक आया जानि इन्द्र के निकट शीघ्रगामी सेवक भेजे और सर्व वृत्तांत लिख्या जो रावण जगतको जीतता समुद्ररूप सेनाको लिए हमारी जगह जीतने के अर्थि निकट आय पड्या है, या ओरके सर्वलोक कंपायमान भए हैं। सो यह समाचार लेकर नलकूवर के हलवारी मनुष्य इन्द्र के निकट आये, इन्द्र भगवान के चैत्यालयनिकी वंदनाको जाते हुते सो मार्गविषैं इन्द्रको पत्र दिया। इन्द्र ने बांचकर सर्व रहस्य जान करि पाछा जबाब लिख्या जो मैं पांडुवनके चैत्यालयनिकी वंदना करि आऊं हूं, इतने तुम बहुत यत्नसों रहना। अमोघशस्त्र कहिए, खाली न पड़ै ऐसा जो शस्त्र ताके धारक हो अर मैं भी शीघ्र ही आऊं हूं ऐसी लिखकर वंदनाविषैं आसक्त है मन जाका, वैरीकी सेना को न गिनता संता पांडुकवन गया अर नलकूवर लोकपाल ने अपने निज वर्गसों मंत्रकरि नगरकी रक्षा में तत्पर विद्यामय सौ योजन ऊंचा वज्रशाल नामा कोट बनाया, प्रदक्षिणाकरि तिगुणा। रावण ने नलकूवर का नगर जानने के अर्थि प्रहस्त नामा सेनापति भेज्या सो जाकरि पाछा आय रावणसों कहता भया—हे देव! मायामई कोट करि मंडित वह नगर है सो लिया न जाय। देखो प्रत्यक्ष दीखै है। सर्व दिशाओं में भयानक विकराल दाढ़ को धरे सर्प समान शिखर जाके अर बलता जो सघन बांसन का वन ता समान देखी न जाय ऐसी ज्वाला के समूहकरि संयुक्त उठै है, स्फुलिंगों की राशि जामें अर याके यंत्र बैतालका रूप धरें, विकराल हैं दाढ जिनकी, एक योजनके मध्य जो मनुष्य आवै ताको निगलै हैं, तिन यंत्रनिविषैं प्राप्त भए जे प्राणियो के समूह तिनका यह शरीर न रहै, जन्मांतर में और शरीर धरें। ऐसा जानकर आप दीर्घदर्शी हो सो या नगर के लेने का उपाय विचारो। तब रावण मंत्रियोंसे उपाय पूछने लाग्या सो मंत्री मायामई कोटके दूर करवेका उपाय चितवते भए। कैसे हैं मंत्री? नीतिशास्त्रविषै अति प्रवीण हैं।

अथानंतर नलकूवरकी स्त्री उपरंभा, इन्द्रकी अप्सरा जो रंभा ता समान है गुण अर रूप जाका, पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध, सो रावणकों निकट आया सुन अति अभिलाषा करती भई। आगै रावणके रूप गुण श्रवणकर अनुरागवती थी ही, रात्रिविषैं अपनी सखी विचित्रमालाकों एकांत में ऐसें कहती भई—हे सुन्दरी! मेरे तू प्राण समान सखी है, तो समान और नाहीं। अपना अर जाका एक मन होय ताकों सखी कहिये, मेरे में अर तेरे में भेद नाही। तातैं हे चतुरे! निश्चयतैं मेरे कार्य का साधन तू करै तो तुझे अपनो चित्त की बात कहूं। जे सखी हैं ते निश्चयसेती जीतव्यका अवलंबन होय हैं। जब ऐसैं रानी उपरंभा ने कह्या तदि सखी विचित्रमाला कहती भई—हे देवी एती बात कहा कहो हो? हम तो तिहारे आज्ञाकारी, जो मनवांछित कार्य कहो सो ही करैं। मैं अपने मुखसों अपनी स्तुति कहा करूं, अपनी स्तुति करना लोक विषैं निंद्य है, बहुत क्या कहूं, मोहि

तुम मूर्तिवती साक्षात कार्यकी सिद्धि जानो। मेरा विश्वासकार तिहारे मनविषें जो होय सो कहो। हे स्वामिनी हमारे होते तोहि खेद कहा। तब उपरंभा विश्वास लेकर कपोल विषें कर धर मुखमें तें न निकसते जो वचन ते बारंबार प्रेरणाकरि बाहिर निकासती भई। हे सखी! बालपनेहीसों लेकर मेरा मन रावणविषें अनुरागी है, मैं लोकविषें प्रसिद्ध महासुन्दर ताके गुण अनेक बार सुने हैं सो मैं अन्तरायके उदयकरि अबतक रावण के संगमको प्राप्त न भई। चित्तविषें परम प्रीति धरूं हूँ अर अप्राप्तिका मेरे निरतर पछतावा रहै है। हे रूपिणी! में जानूं हूँ कि यह कार्य प्रशंसा योग्य नाहीं, नारी दूजे नर के संयोगकरि नरकविषें पड़ै है, तथापि मैं मरण कों सहिवे समर्थ नाहीं तातैं हे मिष्ट-भाषिणी! मेरा उपाय शीघ्र कर, अब वह मेरे मनका करणहारा निकट आया है, काहू भांति प्रसन्न होय मेरा तासों संयोग कर दे। मैं तेरे पायन पड़ूं हूँ। ऐसा कह करि वह भामिनी पाय पड़ने लागी। तब सखीने सिर थाँभ लिया अर यह कही कि हे स्वामिनी! तिहारा कार्य क्षणमात्र विषें सिद्ध करूं। यह कहि कर दूती घरसें निकसी, जाने है इन सकल बातन की रीति, अति सूक्ष्म श्याम वस्त्र पहर कर आकाश के मार्ग रावण के डेरे विषें आई। राजलोक में गई, द्वारपालोंतें अपने आगमन का वृत्तांत कहकर रावणके निकट जाय प्रणाम किया। आज्ञा पाय बैठकर विनती करती भई—हे देव! दोषके प्रसगतें रहित तेरे सकल गुणनिकरि या सकल लोक व्याप्त हो रह्या है, तुमको यही योग्य है, अति उदार है विभव तिहारा, यह पृथ्वीविषें सब ही को तृप्त करो हो, तुम सबके आनंद निमित्त प्रगट भए। तिहारा आकार देखकर यह मन विषें जानिए है कि तुम काहू की प्रार्थना भंग न करो, तुम बड़े दातार सब के अर्थ पूर्ण करो हो, तुम सारिखे महंत पुरुषनि की जो विभूति है सो परोपकार ही के अर्थि है सो आप सबनिको सीख देयकरि एक क्षण एकांत विराजकर चित्त लगाय मेरी बात सुनो तो मैं कहूँ। तब रावण ने ऐसा ही किया तब याने उपरंभा का सकल वृतांत कान विषें कह्या।

तब रावण दोनों हाथ कानन पर धरि सिर धुनि नेत्र संकोच केकसी माता के पुत्रनिविषें उत्तम सदा आचार-परायण कहते भए। हे भद्रे! कहा कहो? यह काम पाप के बंध का कारण कैसे करने में आवे, मैं पर-नारियों को अंग-दान करनेविषें दरिद्री हूँ, ऐसे कर्मों को धिक्कार होउ। तैनें अभिमान तजकर यह बात कही परंतु जिनशासन की यह आज्ञा है कि विधवा अथवा धनी की राणी अथवा कुंवारी तथा वेश्या सर्व ही पर नारी सदा काल सर्वथा तजनी। परनारी रूपवती है तो कहा? यह कार्य लोक अर परलोक का विरोधी विवेकी न करे, जो दोनों लोक भ्रष्ट करे सो काहे का मनुष्य? हे भद्रे! पर-पुरुषकरि जाका अंग मर्दित भया ऐसी जो परदारा सो उच्छिष्ट भोजन समान

है. ताहि कौन नर अंगीकार करे ? यह बात सुन बिभीषण महामंत्री सकल नय के जाननहारे राजविद्याविषें श्रेष्ठ है बुद्धि जिनकी सो रावणसों एकांतविषैं कहते भये-हे देव ! राजानिके अनेक चरित्र हैं, काहू समय प्रयोजनके अर्थ किंचित्मात्र अलीक भी प्रतिपादन करें हैं तातैं आप यासूं अत्यंत रूखी बात मत कहो। वह उपरंभा वश भई संती कछु गढ़ के लेने का उपाय कहेगी। ऐसे वचन विभीषणके सुनकर रावण राजविद्यामें निपुण मायाचारी विचित्रमाला सखीसों कहते भए। हे भद्र ! वह मेरे में मन राखे है अर मेरे बिना अत्यंत दुःखी है तातैं वाके प्राणनिकी रक्षा मोकूं करनी योग्य है सो प्राणोंसे न छूटै, या प्रकार पहले उसको ले आवो, जीवों के प्राणों की रक्षा यही धर्म है ऐसा कहकर सखी कों सीख दीनी, सो जाय कर उपरंभा को तत्काल लेआई, रावणने याका बहुत सम्मान किया। तब वह मदनसेवन की प्रार्थना करती भई। रावण ने कही-हे देवी ! दुर्लंघनगर विषे मेरी रमणे की इच्छा है, यहां उद्यानविषें कहा सुख ? ऐसा करो जो नगरविषें तुम सहित रमूं। तब वह कामातुर ताकी कुटिलताको न जानकरि, स्त्रियों का मूढ स्वभाव होय है, तानै नगर के मायामई कोटभंजन का उपाय आसालका नाम विद्या दीनी अर बहुत आदरतें नानाप्रकार के दिव्य शस्त्र दिये, देवनिकरि करिए है रक्षा जिनकी, तब विद्या के लाभतें तत्काल मायामई कोट जाता रह्या, जो सदा का कोट था सोई रह गया। तब रावण बड़ी सेना लेकर नगरके निकट गया अर नगरके कोलाहल शब्द सुनकर राजा नलकूवर क्षोभ कों प्राप्त भया। मायामई कोटको न देखकरि विषाद मन भया अर जानी कि रावणने नगर लिया। तथापि महापुरुषार्थको धरता संता युद्ध करवेको बाहिर निकस्या, अनेक सामंतनि सहित परस्पर शस्त्रनिके समूहकरि महासंग्राम प्रवर्त्या। जहां सूर्य की किरण भी नजर न आवें, क्रूर है शब्द जहां, विभीषणने शीघ्र ही लातकी दे नलकूवरका रथ तोड़ डारया अर नलकूवरको पकड़ लिया। जैसें रावणने सहस्रकिरणको पकड़ा हुआ तैसें विभीषण ने नलकूबर को पकडया। रावण की आयुध शालाविषें सुदर्शन चक्ररत्न उपज्या। उपरंभाकों रावणने एकांत विषें कही जो तुम विद्या दान सों मेरी गुरु हो अर तुमको यह योग्य नाहीं, जो अपने पति को छोड़ दूजा पुरुष सेवो अर मुझ भी अन्याय-मार्ग सेवना योग्य नाहीं, या भांति याकूं दिलासा करो अर नलकूवरकों याके अर्थि छोडया। कैसा है नलकूवर ? शस्त्रनिकरि बिदारया गया है बखतर जाका, नहीं लगा है शरीरके घाव जाके। रावणने उपरभा से कही कि या भरतार सहित मनवांछित भोगकर। कामसेवनविषें पुरुषोमें कहा भेद है अर अयोग्य कार्य करनेतें मेरी अकीर्ति होय अर मैं ऐसे करूं तो और लोग भी या मार्गविषें प्रवर्त्तें। पृथ्वीविषें अन्यायकी प्रवृत्ति होय अर तू राजा आकाशध्वज की बेटी, तेरी माता मृदुकांता सो तू विमल कुलविषें उपजी शील को राखने योग्य है। या भांति रावणने कही तब उपरंभा लज्जायमान भई, अपने भरतार विषै

संतोष किया अर नलकूबर भी स्त्री का व्यभिचार न जान स्त्री सहित रमता भया अर रावणसों बहुत सम्मान पाया। रावण की यही रीति है कि जो आज्ञा न मानै ताका पराभव करै अर जो आज्ञा मानै ताका सन्मान करै। अर युद्धविषैं मारचा जाय सो मारचा जावो अर पकडचा आवै ताकों छोड़ दे। रावणने संग्रामविषैं शत्रुनिको जीततैं बड़ा यश पाया, बड़ी है लक्ष्मी जाके, महासेनाकरि संयुक्त वैताड पर्वत के समीप जाय पडचा।

तब राजा इंद्र रावण कों समीप आया सुनकर अपने उमराव जे विद्याधर देव कहावैं तिन समस्तहीसों कहता भया—हो विश्वसी आदि देव हो! युद्ध की तैयारी करो, कहा विश्राम कर रहे हो, राक्षसनिका अधिपति आया, यह कह करि इंद्र अपने पिता जो सहस्रार तिनके समीप सलाह करवेको गया नमस्कारकरि बहुत विनयसयुक्त पृथ्वीपर बैठ बापसों पूछी। हे देव! बैरी प्रबल अनेक शत्रुनिकों जीतनहारा निकट आया है सो क्या कर्तव्य है? हे तात! मैने काम बहुत विरुद्ध किया जो यह बैरी होता ही प्रलय को न प्राप्त किया, कांटा उगता हो होठनतैं टूटे अर कठोर परे पीछे चुभै, रोग होता ही मेटै तो सुख उपजै अर रोग की जड बधै तो कटना कठिन है, तैसें क्षत्री शत्रु की वृद्धि होने न दे, मैं याके निपातका अनेक बार उद्यम किया परन्तु आपने वृथा मनै किया तब मैं क्षमा करी। हे प्रभो! मैं राजनीतिके मार्गकरि विनती करूं हूं। याके मारवे में असमर्थ नाहीं हूँ। ऐसे गर्व अर क्रोधके भरे पुत्रके बचन सुनकर सहस्रार ने कही—हे पुत्र! तू शीघ्रता मत करि, अपने श्रेष्ठ मंत्री हैं तिनसों मंत्र विचार। जे बिना विचारे कार्य करै हैं तिनके कार्य विफल होंय हैं, अर्थ की सिद्धिका निमित्त केवल पुरुषार्थ नाहीं है जैसे कृषि कर्मका है प्रयोजन जाके ऐसा जो किसान ताकूं मेघ की वृष्टि बिना कहा कार्यसिद्ध होय? अर जैसें चटशालाविषैं शिष्य पढै हैं, सर्व ही विद्याका चाहै हैं परन्तु धर्मके वशतैं काहूकों विद्या सिद्धि होय है, काहू को सिद्धि न होय, तातैं केवल पुरुषार्थसों ही सिद्धि न होय। अब भी रावणसों मिलापकरि जब वह अपना भयेगा तब तू पृथ्वी का निःकंटक राज्य करेगा औरअपनी पुत्री रूपवती नामा महा रूपवती रावण को परणाय दे, यामें दोष नाहीं। यह राजानिको रीति ही है, पवित्र है बुद्धि जिनकी ऐसे पिताने इंद्रको न्यायरूप वार्त्ता कही परन्तुइंद्रके मनमें न आई। क्षणमात्रमें रोषकरि लाल नेत्र होय गए, क्रोधकरि पसेव आगये महाक्रोधरूप वाणी कहता भया—हे तात! मरने योग्य वह शत्रु ताहि कन्या कैसे दीजिए, ज्यों ज्यों उमर अधिक होय त्यों त्यों बुद्धि क्षय होय है तातैं तुम यह योग्य न कही। कहो, मैं कौनसों घाट हूं, मेरे कौन वस्तु की कमी है जातैं तुम ऐसे कायर वचन कहे। जा

सुमेरु के पायनि चाद सूर्य लागि रहे सो उतंग सुमेरु कैसे औरनिकूं नवै। जो वह रावण पुरुषार्थ करि अधिक है तो मैं भी तासैं अत्यंत अधिक हूं अर दैव उसके अनुकूल है तो यह बात निश्चय तुम कैसे जानी ? अर जो कहोगे तानें बहुत वैरी जाने हैं तो अनेक मृगनिको हननहारा जो सिंह ताहि कहा अष्टापद न हनै। हे पिता ! शस्त्रनिके सपातकरि उपज्या है अग्नि का समूह तहां ऐसे संग्राम विषै प्राण त्यागना भला है परतु काहूसों नम्रीभूत होना बड़े पुरुषनिका योग्य नाहीं। पृथ्वी पर मेरी हास्य होय कि यह इंद्र रावण सौं नम्रीभूत हुवा पुत्री देकरि मिल्या सो तुमने यह तो विचारा ही नाहीं अर विद्याधरपने करि हम अर वह बराबर हैं परतु बुद्धि पराक्रममें वह मेरी बराबर नाहीं। जैसें सिंह अर स्याल दोऊ वनके निवासी हैं परन्तु पराक्रममें सिंह तुल्य स्याल नाहीं, ऐसे पितासों गर्व के वचन कहे। पिताकी बात मान नाहीं, पितातें विदा होयकर आयुधशालामें गए। क्षत्रीनिकों हथियार बांटे अर बखतर बांटे अर सिंधूराग होने लगे, अनेक प्रकारके वादित्र बजने लगे अर सेनामें यह शब्द भया कि हाथियों का सजावो, घोड़ों के पलान कसो, रथों के घोड़े जोड़ो, खड्ग बांधो, बखतर पहरो, धनुष लो, सिर पर टोप धरो, शीघ्र ही खंजर लावो इत्यादि शब्द देव जातिके विद्याधरों के होते भए।

अथानंतर योद्धा कोप कों प्राप्त भए, ढोल बजाने लगे, हाथी गाजने लगे, घोड़े हींसने लगे और धनुषके टंकार होने लगे, योधाओंके गुंजार शब्द होने लगे और बंदीजन विरद बखानने लगे, जगत शब्दमई होय गया, सर्व दिशा तलवार तथा तोमर जातिके शस्त्र तथा पांसिनकरि ध्वजानिकरि शास्त्रनिकरि और धनुषनिकरि आच्छादित भई और सूर्य भी आच्छादित होय गया। राजा इंद्रकी सेनाके जे विद्याधर देव कहावैं ते समस्त रथनूपुरतें निकसे। सर्वसामग्री धरे युद्धके अनुरागी दरवाजे आय भेले भए। परस्पर कहैं हैं रथ आगें करि, मस्त हाथी आया। हे महावत ! हाथी इस स्थानतें परे करि। हो घोड़े के सवार ! कहां खड़ा हो रहा है, घोड़े को आगे ले, या भांति के वचनालाप होते संते शीघ्र ही देव गाजते बाहिर निकस आए, सेनाविषै शामिल भए और राक्षसनिके सन्मुख आए। रावण के अर इंद्र के युद्ध होने लगा। देवों ने राक्षसों की सेना कछू हटाई, शस्त्रनिके जे समूह तिनके प्रहारकरि आकाश आच्छादित होय गया। तब रावण के योधा वज्रवेग, हस्त, प्रहस्त, मारीच, उद्भव, वज्रवक्र, शुक, घोर, सारन, गगनोज्वल, महाजठर मध्याभ्रक्रूर इत्यादि अनेक विद्याधर बड़े योद्धा राक्षसवंशी नाना प्रकारके वाहनोंपर चढ़ अनेक आयुधोंके धारक देवों से लड़ने लगे। तिनके प्रभावकरि क्षणमात्र में देवनिकी सेना हटी। तब इंद्रके बड़े योधा कोपकरि भरे युद्धकों सन्मुख भए, तिनके नाम मेघमाली, तडित्पिंग, ज्वलिताक्ष, अरिसंज्वर, पावकस्यंदन इत्यादि बड़े-बड़े देवोंने शस्त्रोंके समूह चलावते संते राक्षसनिकों

दबाया सो कछुइक शिथिल होय गए तब और बड़े २ राक्षस इनको धैर्य बंधावते भए। महासामंत राक्षसवंशी विद्याधर प्राण तजते भए परंतु शस्त्र न डारते भए। राजा महेंद्रसेन वानरवंशी राक्षसनिके बडे मित्र तिनका पुत्र प्रसन्नकीर्ति तानें बाणों के प्रहार करि देवनि की सेना हटाई, राक्षसनिके बलकूं बड़ा धैर्य बंधाया तब प्रसन्नकीर्तिके बाणनिके प्रभाव करि देव हटे तब अनेक देव प्रसन्नकीर्ति पर आए सो प्रसन्नकीर्ति ने अपने बाणनि करि विदारे जैसे खोटे तपस्वियों का मन मन्थन (काम) विदारै। तब और बड़े-२ देव आए, कपि राक्षस अर देवों के खड्ग कनक गदा शक्ति धनुष मुद्गर इनकरि अति युद्ध भया, तब माल्यवान का बेटा श्रीमाली रावण का काका महा प्रसिद्ध पुरुष अपनी सेनाकी मदद के अर्थि देवनिपर आया। सूर्य समान है कांति जाकी सो ताके बाणनिकी वर्षातें देवों की सेना हट गई। जैसे महाग्राह समुद्र को झकालै तैसें देवनिकी सेना श्रीमालीने झकोली, तब इंद्र के योधा अपने बलको रक्षानिमित्त महाक्रोध के भरे अनेक आयुधों के धारक शिखि केशर दंडाग्र कनक प्रवर इत्यादि इंद्र के भानजे बाण वर्षा करि आकाश कों आच्छादते संते श्रीमाली पर आए सो श्रीमाली ने अर्धचन्द्र बाणतें उनके शिररूप अलोंकार पृथ्वी आच्छादित करी। तब इंद्र ने विचारया कि यह श्रीमाली मनुष्यांविषै महायोधा राक्षसवंशियों का अधिपति माल्यवानका पुत्र है, यानै मेरे बड़े-२ देव मारे हैं अर ये मेरे भानजे मारे, या राक्षस के सन्मुख मेरे देवों में कौन आवै, यह अतिवीर्यवान महा तेजस्वी देख्या न जाय तातें मैं युद्धकरि याहि मारूं। नातर यह मेरे अनेक देवनि को हतेगा। ऐसा विचारि अपने जे देव जाति के विद्याधर श्रीमालीतै कंपायमान भए हुते तिनको धैर्य बंधाय आप युद्ध करवे कों उद्यमी भया। तब इन्द्र का पुत्र जयंत बापके पायनपड़ि बिनती करता भया, हे देवेन्द्र ! मेरे होते संते आप युद्ध करो तब हमारे जन्म निरर्थक है, हमको आपने बाल अवस्था विषैं अति लड़ाए, अब तिहारे ढिग शत्रुनिको युद्धकरि हटाऊं, यह पुत्र का धर्म है। आप निराकुल विराजिए, जो अंकुर नखतें छेद्या जाय तापर फरसी उठावना कहा ? ऐसा कहकरि पिताकी आज्ञा लेय मानों अपने शरीरकरि आकाशकों ग्रसेगा ऐसा क्रोधायमान होय युद्ध के अर्थि श्रीमाली पर आया। श्रीमाली याकों युद्ध योग्य जान खुशी भया, याके सन्मुख गए। ये दानों ही कुमार परस्पर युद्ध करने लगे। धनुष खेंच बाण चलावते भये। इन दोनों कुमारनिका बड़ा युद्ध भया। दोनों ही सेनाके लोक इनका युद्ध देखते भए सो इनका युद्ध देखि आश्चर्यको प्राप्त भए। श्रीमाली ने कनक नामा हथियार करि जयंतका रथ तोड्या अर ताको घायल किया सो मूर्छा खाय पड्या फिर सचेत होय लड़ने लग्या। श्रीमाली के भिंडामालकी दीनी. रथ तोड्या अर मूर्छित किया तब देवनिकी सेना विषै अति हर्ष भया अर राक्षसनिकै सोच भया। फिर श्रीमाली सचेत

भया तदि जयंतके सन्मुख भया, दोनोंमें महायुद्ध भया। दोनों सुभट राजकुमार युद्ध करते शोभते भए मानों सिंहके बालक ही हैं। बड़ी देरमें इन्द्रके पुत्र जयंतने माल्यवानका पुत्र जो श्रीमाली ताकै गदाकी छाती विषें दीनो सो पृथ्वी पर पड्या, बदन कर रुधिर पड़ने लग्या, तत्काल सूर्य अस्त हो जाय तैसें प्राणांत होय गया। श्रीमाली कों मार करि इंद्र का पुत्र जयंत शंखनाद करता भया। तब राक्षसनिकी सेना भयभीत भई अर पाछी हटी। माल्यवान के पुत्र श्रीमाली कों प्राण रहित देख अर जयंत कों उद्धत देखि रावणके पुत्र इन्द्रजीत ने अपनी सेना को धैर्य बंधाया पर कोपकरि जयंतके सन्मुख आया सो इन्द्रजीत ने जयंत का बखतर तोड डाल्या अर अपने बाणनि करि जयंतको जर्जर किया तब इन्द्र जयंत को घायल देखि, छेद्या गया है बखतर जाका, रुधिर करि लाल होय गया है शरीर जाका ऐसा देखिकर आप युद्ध को उद्यमी भया। आकाशकों अपने आयुधनिकरि आच्छादित करता संता अपने पुत्रकी मददके अर्थि रावण के पुत्रपर आया। तब रावणकों सुमति नामा सारथी ने कहा, हे देव! ऐरावत हाथीपर चढ्या लोकपालनिकर मंडित हाथविषें चक्र धरे मुकुटके रत्ननिकी प्रभाकरि उद्योत करता संता उज्वल छत्रकरि सूर्यको आच्छादित करता संता क्षोभ को प्राप्त भया ऐसा जो समुद्र ताससमान सेनाकरि संयुक्त जो वह इन्द्र महाबलवान है, इन्द्रजीतकुमार यासूं युद्ध करने समर्थ नाहीं तातैं आप उद्यमी होयकरि अहंकार युक्त जो यह शत्रु ताहि निराकरण करो। तब रावण इन्द्र को सन्मुख आया देखि आगें मालीमरण यादकरि अर हाल में श्रीमाली का बध से महाकोपरूप भया अर शत्रुनिकरि अपने पुत्रको बेढ्या देख आप दौड्या, पवन समान है वेग जाका ऐसे रथ विषें चढ्या, दोनों सेना के योधानिविषें परस्पर विषम युद्ध होता भया सुभटनिके रोमांच होय आए, परस्पर शस्त्रनि के निपातकरि अंधकार होय गया, रुधिर की नदी बहने लगी, योधा परस्पर पिछाने न परैं केवल ऊंचे शब्दकरि पिछाने परैं, अपने स्वामीके प्रेरे योधा अति युद्ध करते भए। गदा शक्ति बरछी मूसल खड्ग बाण परिघजाति के शस्त्र, चक्रकहिए समान्य चक्र, बरछी तथा त्रिशूल पाश मुखडी जाति के शस्त्र, कुहाड़ा मुद्गरवज्र पाषाण हल दंड कौणजाति के शस्त्र, बांसन के बाण अर नाना प्रकारके शस्त्र तिनकरि परस्पर अति युद्ध भया। परस्पर उनके शस्त्र उनने काटे, उनके उन्होंने काटे, अति विकराल युद्ध होते परस्पर शस्त्रनिके घातकरि अग्नि प्रज्वलित भई। रण विषें नाना प्रकार के शब्द होय रहे हैं, कहीं मारलो मारलो ये शब्द होय हैं, कहीं एक रणरण कहीं किणकिण भमभम दमदम छमछम पटपट छमछम दृढदृढ तथा तटतट चटचट घघघघ इत्यादि शत्रुनिकरि उपजे अनेक प्रकार के शब्दनिकर रणमंडल शब्दरूप होय गया। हाथनीनिकरि हाथी मारे गए, घोड़निकर घोड़ मारे गए, रथोंकर रथ तोडे गए, पियादनिकर पियादे हते गए, हाथियों को

सूंडकर उछले जे जलके छांटे तिनकरि शस्त्र संपातवकरि उपजी थी जो अग्नि सो शांत भई। परस्पर गज युद्धकर हाथीनके दांत टूट पड़्यें, गजमोती बिखर गए, योधानि में परस्पर यह आलाप भए—हो शूर वीर अस्त्र चलाय ! कहा कायर होय रह्या है ? भटसिंह हमारे खडगका प्रहार संभाल, हमारेतें युद्धकरि। यह मूवा, तू अब कहाँ जाय है अर कोईसूं कहै तू यह युद्ध कला कहाँ सीख्या, तलवार का भी सम्हालना न जानै है। अर कोई कहै है तू इस रणतें जा, अपनी रक्षाकर, तू कहा युद्ध करना जानें, तेरा शस्त्र मेरे लाग्या सो मेरी खाज भी न मिटी, तैं वृथा ही धनी की आजीवका अब तक खाई, अब तक तें युद्ध कहीं देख्या नाहीं, कोई ऐसें कहै हैं तू कहा कांपै हैं, तू थिरता भज, मुष्टि दृढ राख, तेरे हाथतें खडग गिरेगा इत्यादि योधानि में परस्पर आलाप होते भए। कैसे हैं योधा ? महा उत्साहरूप हैं जिनको मरने का भय नाहीं, अपने अपने स्वामीनिके आगें सुभट भले दिखाए। किसीकी एक भुजा शत्रु की गदा के प्रहारकरि टूट गई है तो भी एक ही हाथतें युद्ध करता रह्या। काहूका सिर टूट पड्या तो धड़ ही लड़ै है, योधानि के बाणनिकरि वक्षस्थल विदारे गए परंतु मन न चिगे, सामंतनिके सिर पडे परन्तु मान न छोडया, शूरवीरनिके युद्ध में मरण प्रिय है, हारना जीतना प्रिय नाहीं, ते चतुर महा धीर वीर महापराक्रमी महासुभट यश की रक्षा करते संते रावण के धारक प्राण त्याग करते भये परन्तु कायर होयकरि अपयश न लिया। कोई एक सुभट मरता थका भी वैरी के मारवे की अभिलाषाकरि क्रोध का भरया वैरी के ऊपर जाय पड्या उसे मार आप मरया। काहू के हाथनितें शस्त्र शत्रु के शस्त्र घातकरि निपात भए तब वह सामंत मुष्टि रूप जो मुद्गर ताके घातकरि शत्रुकों प्राणरहित करता भया। कोई एक सुभट शत्रुनिकों भुजानितें मित्रवत् आलिंगन करि मसल डारता भया। कोई एक सामंत पर चक्र के योधानिकी पंक्ति को हणता संता अपने पक्ष के योधानिका मार्ग शुद्ध करता भया। कोई एक जोधा रणभूमिविषें परते संते भी वैरीनिको पीठ न दिखावते भए, सूधे पडे। रावण अर इन्द्र के युद्ध में हाथी घोडे रथ योद्धा हजारों पडे, पहले जो रज उठी हुती सो मदोन्मत्त हाथियों के मद झरनेकरि तथा सामंतनिके रुधिर का प्रवाहकरि दब गई। सामंतों के आभूषणनि करि रत्नों की ज्योतिकरि आकाशविषें इन्द्रधनुष होय गया। कोई एक योधा बायें हाथकरि अपनी आंतां थांभकरि महा भयंकर खडग काढि वैरी ऊपर गया। कोईयेक योधा अपनी आंत ही करि गाढी कमर बांधे होठ डसता शत्रु ऊपर गया। कोई एक आयुध रहित होय गया तो भी रुधिर का रंग्या रोष विषें तत्पर वैरीके माथे पर हस्त का प्रहार करता भया, कोईएक रणधीर महा शूरवीर युद्धका अभिलाषी पाशकरि वैरीको बांधकरि छोड़ देता भया, रण कर उपज्या है हर्ष जाके ऐसा। कोई एक न्यायसंग्राम विषें

विषै तत्पर वैरी को आयुध रहित देखकरि आप भी आयुध डारि खड़े होय रहे, केईएक अंत समय संन्यास धार नमोकार मंत्रका उच्चारण करि स्वर्ग प्राप्त भए, कोई एक योधा आशीविष सर्प समान भयंकर पड़ता २ भी प्रतिपक्षीको मारकरि मरया। कोई एक अर्ध सिर हो गया ताहि वामें हाथ विषैं दाबि महापराक्रमी दौड़कर सिर पाड्या। केई एक सुभट पृथ्वी की आगल समान जो अपनी भुजा तिनहीकरि युद्ध करते भए। केईएक परम क्षत्रिय धर्मज्ञ शत्रु को मूर्छित भया देखि आप पवन झोल सचेत करते भए। या भाँति कायरनिको भय का उपजावनहारा अर योधानिको आनंदका उपजावनहारा महा संग्राम प्रवर्त्या। अनेक तुरंग अनेक योधा शस्त्रनिकरि हते गए, अनेक रथ चूर्ण चूर्ण होय गए, अनेक हाथियोंकी सूंड कट गई, घोड़ानिके पांव टूट गए, पूंछ कट गई, पियादे काम आय गए, रुधिरके प्रवाहकरि सर्व दिशा आरक्त होय गई, एता रण भया सो रावण किंचित् मात्र भी न गिन्या। रणविषैं है कौतूहल जाके ऐसे सुभटभावका धारक रावण सुमतिनामा सारथीकों कहता भया—हे सारथी! इस इंद्र के सन्मुख रथ चलाय अर सामान्य मनुष्यों के मारवेकरि कहा। ये तृण समान सामान्य मनुष्य तिन पर मेरा शस्त्र न चालै, मेरा मन महायोधाओंके ग्रहण विषैं तत्पर है, यह क्षुद्र मनुष्य अभिमानतैं इंद्र कहावै है, याहि आज मारूं अथवा पकड़ूं। यह विडबना का करणहारा पाखंड करि रह्या है सो तत्काल दूर करूं। देखो याकी ढीठता, आपको इंद्र कहावै है अर कल्पनाकर लोकपाल थापे हैं अर इन मनुष्यों ने विद्याधरो की देव, संज्ञा धरी है। देखो अब तो विभूति वश मूढमति भया है, लोक-हास्य का भय नाहीं। नट जैसा सांग धरया है, दुर्बुद्धि आपको भूल गया। पिता के वीर्य माता के रुधिर करि मांस हाडमई शरीर माताके उदरतैं उदरतैं उपज्या तौहू वृथा आपको देवेंद्र मानै है। विद्या के वलकरि याने यह कल्पना करी है जैसें काग आपको गरुड कहावे तैसे यह इंद्र कहावै है। या भांति जब रावणने कह्या तब सुमति सारथी ने रावण का रथ इंद्रके सन्मुख किया। रावणको देख इंद्रके सब सुभट भागे। रावणसों युद्ध करवेको कोई समर्थ नाहीं। रावण सर्व को दयालु दृष्टिकर कीट समान देखै, रावण के सन्मुख ए इंद्र ही टिका अर सर्व कृत्रिम देव याका छत्र देख भाज गए जैसें चंद्रमा के उदयतैं अंधकार जाता रहै। कैसा है रावण? वैरियों कर झेल्या न जाय जैसें जलका प्रभाव ढाहेनिकरि थांभ्या न जाय अर जैसें क्रोध सहित चित्तका वेग मिथ्यादृष्टि तापसीनिकर थांभ्या न जाय तैसें सामंतोंकरि रावण थांभ्या न जाय। इंद्र भी कैलाश पर्वत समान हाथी पर चढया धनुषनिको धरे तरकशतैं तीर काढता रावण के सन्मुख आया, कान तक धनुष को खीच रावण पर बाण चलाया जैसें पहाड़-पर मेघ मोटी धारा वर्षावै तैसे रावणपर इंद्र ने बाणनिकी वर्षा करी। रावण ने इंद्र के बाण आवते

आवते काट डारे अर अपने बाणनिकरि शरमंडप किया। सूर्य की किरण बाणनिकरि दृष्टि न आवें, ऐसा युद्ध देख नारद आकाशविषें नृत्य करता भया, कलह देख उपजै है हर्ष जाको। जब इंद्र ने जान्या कि यह रावण सामान्य शस्त्रकर असाध्य है, तबि इंद्र ने अग्निबाण रावण पर चलाया, ताकरि रावण की सेना विषें आकुलता उपजी। जैसें बांसनिका बन प्रजलै अर ताकी तडतडात ध्वनि होय, अग्निकी ज्वाला उठै तैसें अग्नि बाण प्रज्वलता संता आया तब रावण ने अपनी सेना को व्याकुल देख तत्काल ही जलबाण चलाया सो मेघमाला उठी, पर्वत समान जलकी मोटी धारा बरसने लगी, क्षणमात्र में अग्निबाण बुझ गया। तब इंद्र ने रावणपर तामस बाण चलाया ताकरि दशों दिशानिमें अंधकार होय गया, रावण के कटक विषें काहूको कुछ भी न सूझै तव रावण ने प्रभास्त्र कहिए प्रकाशबाण चलाया ताकरि क्षणमात्र में सकल अन्धकार विलय होय गया जैसें जिनशासन के प्रभाव करि मिथ्यात्व का मार्ग विलय जाय। फिर रावणने कोपकरि इन्द्र पै नागबाण चलाया सो मानो महाकाले नाग ही चलाए, भयंकर है जिह्वा जिनकी, ते सर्प इन्द्र कै अर सकल सेना कै लिपट गए, सर्पनिकरि बेढ्या इन्द्र अति व्याकुल भया जैसें भव-सागर विषें जीव कर्म जाल कर वेढ्या होय है। तव इन्द्रने गरुडबाण चितारया सो सुवर्ण समान पीत पंखनिके समूह करि आकाश पीत होय गया अर पांखनिकी पवनकरि रावण का कटक हालने लग्या मानों हिंडोले में झूलै है, गरुड के प्रभावकर नाग ऐसे विलाय गए जैसें शुक्ल ध्यान के प्रभावकरि कर्मनिके बन्ध विलय होय जांय। जब इन्द्र नागबंधनितें छूटकर जेठके सूर्य समान अति दारुण तपता भया तब रावण ने त्रैलोक्यमंडन हाथी को इन्द्र के ऐरावत हाथी पर प्रेरया। कैसा है त्रैलोक्यमंडन ? सदा मद रहित है अर वैरियों को जीतनहारा है। इन्द्र ने भी ऐरावतको त्रैलोक्यमंडन पर धकाया दोनों गज महागर्व के भरे लड़ने लगे, झरै है मद जिनके, क्रूर हैं नेत्र जिनके, हालै हैं कर्ण जिनके, दैदीप्यमान है विजुरी समान स्वर्ण की सांकल जिनके, दोऊ हाथी शरद के मेघ समान अति गाजते परस्पर अति भयंकर जो दांत तिनके घातनि करि पृथ्वी को शब्दायमान करते चपल है शरीर जिनका, परस्पर सूंडों से अद्भुत संग्राम करते भए।

तब रावण ने उछल करि इन्द्र के हाथी के मस्तक पर पग धरि अति शीघ्रताकरि गज के सारथी को पाद प्रहारतें नीचें डारया अर इन्द्र को वस्त्रतें बांध्या अर बहुत दिलासा देय कर पकड़ि अपने गज पर लेय आया अर रावणके पुत्र इन्द्रजीत ने इन्द्रका पुत्र जयंत पकड्या, अपने सुभटों को सौंप्या, अर आप इन्द्रके सुभटों पर दौड्या तब रावण ने मने किया—हे पुत्र ! अब रणतें निवृत्त होवो, क्योंकि समस्त विजयार्धके जे निवासी

विद्याधर तिनका चूडामणि पकड़ लिया है। अब समस्त अपने अपने स्थानक जावो, सुख सों जीवो। शालितैं चावल लिया, तब परालका कहा काम ? जब रावण ने ऐसा कह्या तब इन्द्रजीत पिताकी आज्ञातें पाछा बाहुड्या अर सर्व देवनिकी सेना शरद के मेघसमान भाग गई जैसें पवनकरि शरद के मेघ विलाय जांय। रावण की सेना में जीतके वादित्र बाजे। ढोल, नगारे, शंख, झांझ इत्यादि अनेक वादित्रनिका शब्द भया। इन्द्र को पकड्या देख रावण की सेना अति हर्षित भई। रावण लंका में चलवे को उद्यमी भया, सूर्य के रथ समान रथ ध्वजानिकरि शोभित अर चंचल तुरंग नृत्य करते भए। अर मद झरते हुए नाद करते हाथी तिन परि भ्रमर गुंजार करै हैं इत्यादि महा सेनाकरि मंडित राक्षसनिका अधिपति रावण लंका के समीप आया। तब समस्त बंधुजन अर नगर के रक्षक तथा पुरजन सब ही दर्शन के अभिलाषी भेंट लेय लेय सन्मुख आए अर रावण की पूजा करते भए। जे बड़े हैं तिनकी रावण ने पूजा करी, रावण को सकल नमस्कार करते भए अर बड़ों को रावण नमस्कार करता भया। कैयकनिको कृपादृष्टिकरि कैयकनिकों मंदहास्य करि कैयकनिको वचननि करि रावण प्रसन्न करता भया। बुद्धिके बलतें जान्या हैं सब का अभिप्राय जानै, लंका तो सदा ही मनोहर है परन्तु रावण बड़ी विजयकरि आया तातैं अधिक समारी है, ऊंचे रत्ननिके तोरण निरमापे, मंदमंद पवनकरि अनेक वर्णकी ध्वजा फरहरै हैं, कुंकुमादि सुगंध मनोज्ञ जलकरि सींच्या है समस्त पृथ्वीतल जहां और सब ऋतु के फूलनिकरि पूरित है राजमार्ग जहां अर पंच वर्ण रत्ननिके चूर्ण करि रचे हैं मंगलीक मांडले जहां अर दरवाजों पर थांभे हैं पूर्ण कलश, कमलों के पत्र अर पल्लवनितैं ढके, संपूर्ण नगरी वस्त्राभरणकरि शोभित है। जैसें देवों से मंडित इन्द्र अमरावती में आवै, तैसें विद्याधरनिकरि बेढ्या रावण लंका में आया। पुष्पक विमान में बैठ्या, दैदीप्यमान है मुकुट जाका, महारत्नों के बाजूबन्द पहिर निर्मल प्रभाकरयुक्त मोतियों का हार वक्षस्थल पर धार, अनेक पुष्पोंके समूहकरि विराजित, मानों वसंत ही का रूप है सो ताकों हर्षतें पूर्ण नगरके नर नारी देखते-देखते तृप्त न भए। ऐसी मनोहर मूरत है। असीस देय हैं। नाना प्रकार के वादित्रों के शब्द होय रहे हैं, जयजयकार शब्द होय हैं। आनंदतें नृत्यकारिणी नृत्य करैं हैं इत्यादि हर्षसंयुक्त रावणने लंका में प्रवेश किया। महा उत्साह की भरी लंका ताहि देखि रावण प्रसन्न भए। बंधुजन सेवकजन सब ही आनन्दको प्राप्त भए। रावण राजमहलमें आये। देखो भव्यजीव हो ! रथनूपुर के धनी राजा इन्द्र ने पूर्वपुण्यके उदयतें समस्त वैरियोंके समूह जीतकर सर्व सामग्रीपूर्ण तिनकों तृणवत् जानि सबको जीतकर दोनों श्रेणि का राज्य बहुत वर्ष किया अर इन्द्र के तुल्य विभूतिकों प्राप्त भया अर जब जब पुण्य क्षीण भया तब सकल विभूति विलय हो गई, रावण ताकों पकड़करि लंकामें ले

आया तातैं मनुष्य के चपल सुख को धिक्कार होहु। यद्यपि स्वर्ग लोक के देवनिका विनाशीक सुख है तथापि आयु पर्यन्त और रूप न होय अर जब दूसरी पर्याय पावें तब और रूप होय अर मनुष्य तो एक ही पर्याय में अनेक दशा भोगै तातैं मनुष्य होय जे मायाका गर्व करें हैं ते मूर्ख हैं। अर यह रावण पूर्व पुण्यतैं प्रबल वैरीनको जीतकरि अति वृद्धि को प्राप्त भया। यह जानकरि भव्य जीव सकल पापकर्म का त्याग कर शुभ कर्म ही को अंगीकार करो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिकाविषैं इन्द्र का पराभव नाम बारहवां पर्व पूर्ण भया ॥१२॥

(त्रयोदश पर्व)

[विद्याधर इन्द्र का निर्वाण गमन]

अथानंतर इंद्र के सामंत धनी के दुःखतैं व्याकुल भए तब इन्द्र का पिता सहस्रार जो उदासीन श्रावक है, तासों बीनती करी अर इन्द्र के छुड़ावने के अर्थि सहस्रार को लेयकरि लंका में रावणके समीप गए। द्वारपालनिसों बीनती करि इन्द्र के सकल वृतान्त कह करि रावणके ढिग गए, रावण ने सहस्रारको उदासीन श्रावक जानकरि बहुत विनय किया। इनको सिंहासन दिया, आप सिंहासनतैं उतरि बैठे। सहस्रार रावण कों विवेकी जानि कहता भया, हे दशानन ! तुम जगजीत हो सो इन्द्रको भी जीत्या, तिहारी भुजानि की सामर्थ्य सबनिने देखी, जे बड़े राजा हैं ते गर्ववंतनिके गर्व दूरकरि फिर कृपा करे, तातैं अब इन्द्र कों छोडों। यह सहस्रार ने कही अर जे चारों लोकपाल हुते तिनके मुंहतैं भी यही शब्द निकस्या मानों सहस्रार का प्रतिशब्द ही कहते भये। तब रावण सहस्रार को तो हाथ जोड़ि यही कही जो आप कहो सोई होगा अर लोकपालनितैं हँसकरि क्रीड़ारूप कही, जो तुम चारों लोकपाल नगरी विषैं बुहारी देवो। कमलनिका मकरंद अर तृण-कंटकरहित पुरी करो अर इंद्र सुगंध करि पृथ्वीको सींचै अर पांच वर्णके सुगंध मनोहर जो पुष्प तिनतैं नगरीकों शोभित करो। यह बात जब रावणने कही तब लोकपाल तो लज्जावान होय नीचे होय गये अर सहस्रार अमृतरूप वचन बोले कि हे धीर ! तुम जाकों जो आज्ञा करो सों ही वह करै, तुम्हारी आज्ञा सर्वोपरि है। यदि तुम सारिखे गुरुजन पृथ्वी के शिक्षादायक न होंय तो पृथ्वी के लोक अन्यायमार्ग विषैं प्रवर्तैं, यह वचन सुनकर रावण अति प्रसन्न भए अर कही, हे पूज्य ! तुम हमारे तात-तुल्य हो अर इंद्र मेरा चौथा भाई, याकों पाय कर मैं सकल पृथ्वी कंटक रहित करूंगा। याकों इन्द्र पद वैसा ही है अर ये लोकपाल ज्यों के त्यों ही हैं अर दोनों श्रेणी के राज्यतैं और अधिक चाहो सो लेहु। बोमें अर यामैं कछु भेद नाहीं। अर आप वड़े हो, गुरुजन हो, जैसें इंद्रको शिक्षा

देवो तैसें मोहि देवो, तिहारी शिक्षा अलंकार रूप है। अर आप रथनूपुर विषें विराजो अथवा यहाँ विराजो, दोऊ आप ही की भूमि हैं, ऐसे प्रियवचनकरि सहस्रारका मन बहुत संतोष्या। तब सहस्रार कहने लाग्या, हे भव्य ! आप सारिखे सज्जनपुरुषनिकी उत्पत्ति सर्व लोकनिकों आनन्दकारिणी है। हे चिरंजीव ! तिहारे शूरवीरपने का आभूषण यह उत्तम विनय समस्त पृथ्वीविषें प्रशंसाकों प्राप्त भया है। तिहारे देखने करि हमारे नेत्र सफल भए। धन्य तिहारे माता पिता, जिनतें तिहारी उत्पत्ति भई। कुन्दके पुष्प समान उज्वल तिहारी कीर्ति, तुम समर्थ अर क्षमावान, दातार अर निर्गर्व, ज्ञानी अर गुणप्रिय तुम जिनशासन के अधिकारी हो। तुमने हमको जो कही कि यह तिहारा घर है अर जैसें इंद्र पुत्र तैसें मैं, सो तुम इन बातों के लायक हो, तिहारे मुखतें ऐसे ही वचन झरें, तुम महाबाहु दिग्गजनिकी सूंड समान भुजा तिहारी, तुम सारिखे पुरुष या संसार विषें विरले हैं परन्तु जन्मभूमि माता-समान है सो छांडी न जाय, जन्मभूमिका वियोग चित्तको आकुल करै है, तुम सर्व पृथ्वीके पति हो परंतु तुमको भी लंका प्रिय है। मित्र बांधव अर समस्त प्रजा हमारे देखने के अभिलाषी आवने का मार्ग देखैं हैं। तातें हम रथनूपुर ही जायेंगे अर चित्त सदा तुम्हारे समीप ही है। हे देवनिके प्यारे ! तुम बहुत काल पृथ्वीकी निर्विघ्न रक्षा करो। तब रावण ने ताही समय इंद्र को बुलाया और सहस्रारके लार किया अर आप रावण कितनीक दूर तक सहस्रार को पहुँचाने गए और बहुत विनयकरि सीख दीनी, सहस्रार इन्द्रको लेयकरि लोकपालनि सहित विजियार्धगिरिपर आए, सर्व राज्य ज्योंका त्यों ही है। लोकपाल आयकरि अपने अपने स्थानक बैठे परतु मानभंग से असाता को प्राप्त भए, ज्यों २ विजयार्धके लोक इन्द्र के लोकपालनिकों अर देवनिकों देखें त्यों २ यह लज्जा कर नीचे होय जांय अर इंद्रकै भी न यो रथनूपुर में प्रीति, न रानियोंसे प्रीति, न उपवनादि मैं प्रीति, न लोकपालोंमें प्रीति, न कमलोंके मकरन्दसों पीत होय रह्या है जल जिनका ऐसे मनोहर सरोवर तिनमें प्रीति, और न किसी क्रीडाविषे प्रीति, यहां तक कि अपने शरीरसों भी प्रीति नाहीं, लज्जाकर पूर्ण है चित्त जाका सो ताको उदास जानि अनेक विधिकर प्रसन्न किया चाहैं, और कथा के प्रसंगतें वे बात भुलाया चाहैं परंतु यह भूलै नाहीं। सर्व लीला विलास तजे, अपने राजमहलके मध्य गंधमादन पर्वत के शिखर समान ऊंचा जो जिनमंदिर ताके एक थंभके माथेविषें रहै, कांतिरहित होय गया है शरीर जाका, पंडितनिकरि मंडित यह विचार करें है कि धिक्कार है या विद्याधर पद के ऐश्वर्यको जो एक क्षणमात्रविषैं विलाय गया, जैसें शरद ऋतुके मेघनिके समूह अत्यंत ऊंचे होवें परन्तु क्षणमात्रविषें विलय जांय तैसें ते शस्त्र ते हाथी ते योद्धा ते तुरंग समस्त तृण समान होय गए, पूर्वे अनेक बार अद्भुत कार्य के करणहारे। अथवा कर्मों की यह विचित्रता है, कौन

पुरुष अन्यथा करने को समर्थ है, तातैं जगतमें कर्म प्रबल हैं, मैं पूर्व नानाविधि भोग सामग्रियोंके निपजावनहारे कर्म उपार्जे हुते सो अपना फल देयकरि खिरि गए, जातैं यह दशा वरतै है। रणसंग्राम विषैं शूरवीर सामंतनिका मरण होय तो भला, जाकरि पृथ्वी विषैं अपयश न होय, मैं जन्मतैं लेकर शत्रुओं के सिर पर चरण देकर जीया सो मैं इन्द्र शत्रु का अनुचर होयकर कैसे राज्य लक्ष्मी भोगूं। तातैं अब संसार के इन्द्रिय-जनित सुखों की अभिलाषा तजकर मोक्षपदकी प्राप्तिके कारण जे मुनिव्रत तिनको अंगीकार करूं। रावण शत्रु का भेष धरि मेरा महा मित्र आया तानै मोहि प्रतिबोध दिया। मैं असार सुख के आस्वादविषैं आसक्त हुता, ऐसा विचार इन्द्रने किया ताही समय निर्वाणसंगम नामा चारण मुनि विहार करते हुए आकाश मार्गतैं जाते हुते सो चैत्यालयके प्रभावकरि उनका आगैं गमन न होय सक्या तब वे चैत्यालय जानि नीचें उतरे, भगवानके प्रतिबिंबका दर्शन किया। मुनि चार ज्ञानके धारक थे, सो उनको राजा इन्द्र ने उठकरि नमस्कार किया, मुनिके समीप जाय बैठ्या, बहुत देरकर अपनी निंदा करी, सर्व संसारका वृत्तांत जाननहारे मुनिने परम अमृतरूप वचननिकरि इन्द्रका समाधान किया कि हे इन्द्र ! जैसे अरहट की घड़ी भरी रीती होय है अर रीती भरी होय हैं तैसें यह संसारकी माया क्षणभंगुर है, याके और प्रकार होने का आश्चर्य नाहीं, मुनिके मुखसों धर्मोपदेश सुन इन्द्र ने अपने पूर्व-भव पूछे, तब मुनि कहे हैं, कैसे हैं मुनि ? अनेक गुणनिके समूहतैं शोभायमान हैं। हे राजन् ! अनादिकालका यह जीव चतुर्गतिविषैं भ्रमण करै है, जो अनंत भव धरे सो केवलज्ञानगम्य हैं। कैयक भव कहिए हैं सो सुन।

शिखापद नामा नगरविषैं एक मानुषी महा दलिद्रनी जाका नाम कुलवंती सो चीपड़ी अमनोज्ञ नेत्र, नाक चिपटी अनेक व्याधिकी भरी, पापकर्म के उदयकरि लोगनिकी झूठ खायकर जीवै। खोटे वस्त्र अभागिनी फाट्या अंग महा रूक्ष खोटे केश, जहाँ जाय तहाँ लोक अनादरै हैं, जाको कहीं सुख नाही। अंतकाल विषैं शुभमति होय, एक मुहूर्तका अनशन लिया, प्राण त्यागकरि किंपुरुष देवकै शीलधरा नामा किन्नरी भई, तहांतैं चयकरि रत्ननगर विषैं गोमुखनामा कलुंबी ताकै धरनी नामा स्त्री, ताके सहस्रभाग नामा पुत्र भया। सो परम सम्यक्तको पायकरि श्रावकके व्रत आदरे, शुक्रनामा नवमा स्वर्ग तहां जाय उत्तम देव भया। तहांसे चयकर महा विदेहक्षेत्र के रत्नसंचय नगर विषैं मणिनामा मंत्री ताकै गुणावली नामा स्त्री ताकै सामंतवर्धन नामा पुत्र भया सो पिताके साथ वैराग्य अंगीकार किया। अति तीव्र तप किए तत्वार्थविषै लग्या है चित्त जाका, निर्मल सम्यक्त का धारी, कषाय रहित बाईस परीषह सहकरि शरीर त्याग नवग्रैवेयक गया। अहमिन्द्रके बहुत काल सुख भोगकरि राजा सहस्रार विद्याधरके रानी हृदयसुन्दरी तिनकै तू इन्द्रनामा

पुत्र भया, या रथनूपुर नगरविषें जन्म लिया। पूर्वके अभ्यासकरि इन्द्रके सुखमें मन आसक्त भया, तू विद्याधरोंका अधिपति इन्द्र कहाया, अब तू वृथा मनविषे खेद करै है कि जो मैं विद्या विषें अधिक हुता सो शत्रुनिकरि जीत्या गया हूँ सो हे इंद्र ! कोई निर्बुद्धि कोदों बोयकरि वृथा शालिकी प्रार्थना करै है। ये प्राणी जैसे कर्म करें हैं तैसे फल भोगै हैं। तैंने भोगका साधन शुभ कर्म पूर्व किया हुता सो क्षीण भया, कारण बिना कार्य की उत्पत्ति न होय है। या बातका आश्चर्य कहा ? तूने याही जन्मविषें अशुभ कर्म किए, तिनकरि यह अपमानरूप फल पाया अर रावण तो निमित्तमात्र है। तैंने जो अज्ञान चेष्ठा करी सो कहा नहीं जानै है, तू ऐश्वर्य मदकरि भ्रष्ट भया, बहुत दिन भए तातें तोहि याद नाहीं आवै है। एकाग्रचित्तकरि सुन ! अरिंजयपुरमें वन्हिवेगनामा विद्याधर राजा ताकी रानी वेगवती, पुत्री अहिल्या ताका स्वयंवरमंडप रच्या हुता तहां दोनों श्रेणीके विद्याधर अति अभिलाषी होय विभवकरि शोभायमान गए अर तू भी बड़ी संपदासहित गया अर एक चंद्रवर्त नामा नगरका धनी राजा आनदमाल सो भी तहां आया। अहिल्या ने सबको तज करि ताके कंठविषें वरमाला डाली। कैसी है अहिल्या ? सुन्दर है सर्व अंग जाका सो सो आनंदमाल अहिल्या को परणकरि जैसें इंद्र इंद्राणी सहित स्वर्गलोक में सुख भोगै तैसें मनवांछित भोग भोगता भया। सो जा दिनतैं अहिल्या परणी ता दिनतें तेरे यासों ईर्षा बढ़ी। तैंने वाको अपना बड़ा वेरी जाना। कैएक दिन वह घर विषे रह्या फिर वाकों ऐसी बुद्धि उपजी कि यह देह विनाशीक है, यासों मुझे कछु प्रयोजन नाहीं, अब मैं तप करूं जाकरि संसारका दुःख दूर होय। ये इंद्रियनिके भोग महाठग तिन विषें सुख की आशा कहाँ ? ऐसा मन में विचारकरि वह ज्ञानी अंतरात्मा सर्व परिग्रह को तजकरि परम तप आचरता भया। एक दिन हंसावली नदी के तीर कायोत्सर्ग धरे तिष्ठै था सो तैंने देख्या ताके देखने मात्र रूप ईंधनकरि बढ़ी है क्रोधरूप अग्नि जाके सो तुझ मूर्ख ने गर्व कर हांसी करी। अहो आनंदमाल ! तू काम भोगविषें अति आसक्त हुता, अहिल्या का रमण अब कहां ? विरक्त होय पहाड़ सारिखा निश्चल तिष्ठया है। तत्वार्थके चिंतवन विषें लग्या है अत्यन्त स्थिर मन जाका। या भांति परम मुनि की तैंने अवज्ञा करी सो वह तो आत्मसुखविषें मग्न, तेरी बात कुछ हृदयविषें न धरी। उनके निकट उनका भाई कल्याण नामा मुनि तिष्ठै था तानै तोहि कही कि यह महामुनि निरपराध, तैंने इनकी हांसी करी सो तेरा भी पराभव होगा। तब तेरी स्त्री सर्वश्री सम्यग्दृष्टि साधूनिकी पूजा करनहार तानैं नमस्कारकरि कल्याणस्वामी को उपशांत किया। जो वह शांत न करती तो तू तत्काल साधूनि की कोपाग्नितें भस्म हो जाता। तीन लोक में तप-समान कोई बलवान नाहीं, जैसी साधुओंकी शक्ति है तैसी इन्द्रादिक देवोंकी शक्ति भी नाहीं। जे पुरुष साधु

लोगों का निरादर करै हैं ते इस भवमें अत्यन्त दुःख पाय नरक निगोदविषैं पड़े हैं, मनकर भी साधुओं का अपमान व करिए। जे मुनिजनका अपमान करै हैं ते इस भव अर पर भव विषैं दुःखी होय हैं। जे मुनियोंको मारै अथवा पीड़ा करै हैं सो अनन्तकाल दुःख भोगवैं, मुनिकी अवज्ञा समान और पाप नाहीं। मन वचनकायकरि यह प्राणी जैसे कर्म करै हैं तैसे ही फल पावै हैं। या भांति पुण्य पाप कर्मों के भल भले बुरे जीव भोगै हैं। ऐसा जानकरि धर्मविषैं बुद्धि करि अपने आत्मा को संसारके दुःखनितैं निवृत्त करो। महामुनि के मुखसों राजा इन्द्र पूर्व भव सुन आश्चर्यको प्राप्त भया। नमस्कार करि मुनिसों कहता भया—हे भगवान ! तिहारे प्रसादतैं मैंने उत्तम ज्ञान पाया, अब सकल पाप क्षणमात्रविषैं विलय गए, साधुनिके संगतैं जगत विषैं कुछ दुर्लभ नाहीं, तिनके प्रसादकर अनन्त जन्म-विषैं न पाया जो आत्मज्ञान सो पाइए है। यह कहकरि मुनिको बारबार वन्दना करी। मुनि आकाशमार्ग से विहार कर गए। इन्द्र गृहस्थाश्रमतैं परम वैराग्यको प्राप्त भया। जलके बुदबुदा समान शरीरकों असार जानि धर्मविषैं निश्चल बुद्धिकर अपनी अज्ञान चेष्टाको निंदता संता वह महापुरुष अपनी राज्य-विभूति पुत्रकों देयकरि अपने बहुत पुत्रनिसहित अर लोकपालनिसहित तथा अनेक राजानिसहित सर्वकर्मनिकी नाश करनहारी जिनेश्वरी दीक्षा आदरी, सर्व परिग्रह का त्याग किया। निर्मल है चित्त जाका, प्रथम अवस्थाविषैं जैसा शरीर भोगमें लगाया हुता तैसा ही तपके समूहमें लगाया, ऐसा तप औरनितैं न बन पड़ै, पुरुषोंकी बड़ी शक्ति है, जैसैं भोगों में प्रवर्तै तैसें विशुद्ध भावविषैं प्रवर्तै है। राजा इन्द्र बहुत काल तपकरि शुक्लध्यानके प्रतापतैं कर्मनिका क्षयकरि निर्वाण पधारे। गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसों कहै हैं—देखो ! बड़े पुरुषोंके चरित्र आश्चर्यकारी हैं, प्रबल पराक्रमके धारक बहुत काल भोगकरि वैराग्य लेय अविनाशी सुखकों भोगवै हैं, यामैं कछु आश्चर्य नाहीं। समस्त परिग्रहका त्यागकर क्षणमात्रविषैं ध्यानके बलतैं मोटे पापनिका क्षय करै हैं जैसे बहुत कालतैं ईंधनकी राशि संचय करी सो क्षणमात्र में अग्नि के संयोगकरि भस्म होय है। ऐसा जानकर हे प्राणी ! आत्मकल्याणका यत्न करो। अन्तःकरण विशुद्ध करो, मृत्यु के दिनका कुछ निश्चय नाही, ज्ञानरूप सूर्यके प्रतापकरि अज्ञान तिमिर को हरो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिकाविषैं इन्द्र का निर्वाण गमन नाम तेरहवाँ पर्व पूर्ण भया ॥१३॥

(चतुर्दश पर्व)

[अनंतवीर्य केवली के धर्मोपदेश का वर्णन]

अथानन्तर रावण विभव और देवेन्द्र समान भोगनि करि मूढ़ है मन जाका, सो

मन वांछित अनेक लीला विलास करता भया। यह राजा इन्द्र का पकड़नहारा एक दिन सुमेरु पर्वत के चैत्यालयनि की वंदनाकरि पीछे आवता हुता, सप्त क्षेत्र, षट्कुलाचल तिनकी शोभा देखता नाना प्रकार के वृक्ष नदी सरोवर, स्फटिकमणि हू ते निर्मल महा मनोहर अवलोकन करता थका सूर्य के भवन-समान विमानमें विराजमान महाविभूति करि संयुक्त लंका विषैं आवने का है मन जाका सो तत्काल महा मनोहर उतंग नाद सुनता भया। तब महाहर्षवान होय मारीच मंत्री कों पूछता भया, हे मारीच ! यह सुन्दर महा-नाद काहेका है और दसों दिशा काहेतैं लाल होय रही हैं। तब मारीचने कहा, हे देव ! यह केवली की गंधकुटी है और अनेक देव दर्शनको आवैं हैं तिनके मनोहर शब्द होय रहे हैं अर देवनिके मुकुट आदिकी किरणनिकरि यह दसों दिशा रंगरूप होय रही हैं। इस स्वर्ण पर्वतविषैं अनंतवीर्य मुनि तिनको केवलज्ञान उपज्या है। ये वचन सुनकरि रावण बहुत आनन्द को प्राप्त भया, सम्यक्दर्शनकरि संयुक्त है अर इन्द्रका वश करणहारा है, महाकांतिका धारी आकाशतैं केवलीकी वंदना के अर्थि पृथ्वी पर उतरा वदना कर स्तुति करी। इन्द्रादिक अनेक देव केवलीके समीप बैठे हुते, रावण भी हाथ जोड़ नमस्कार करि अनेक विद्याधरनि सहित उचित स्थानक में तिष्ठ्या।

चतुरनिकाय के देव तथा तिर्यंच अर अनेक मनुष्य केवली के समीप तिष्ठे हुते ता समय किसी शिष्यने पूछया कि हे देव, हे प्रभो ! अनेक प्राणी धर्म अर अधर्म के स्वरूप जानने की तथा तिनके फल जाननेकी अभिलाषा राखै हैं अर मुक्ति के कारण जानवा चाहैं हैं सो तुम ही कहने योग्य हो, सो कृपाकर कहो। तब भगवान केवलज्ञानी अनंतवीर्य मर्यादारूप अक्षर जिनमें विस्तीर्ण अर्थ अति निपुण शुद्ध संदेहरहित सबके हित-कारी प्रियवचन कहते भए। अहो भव्य जीव हो ! यह जीव चेतना लक्षण अनादिकालका निरन्तर अष्टकर्मनिकरि बन्ध्या, आच्छादित है आत्मशक्ति जाकी सो चतुर्गतिमें भ्रमण करै हैं, चौरासी लाख योनियों में नाना प्रकार इन्द्रियों करि उपजी जो वेदना ताहि भोगता संता सदाकाल दुःखी होय रागी द्वेषी मोही हुआ कर्मनिके तीव्र मन्द मध्य विपाक तैं कुम्हारके चक्रवत् पाया है चतुर्गतिका भ्रमण, जामें ज्ञानावरणी कर्मकरि आच्छादित है ज्ञान जाका सो अति दुर्लभ मनुष्यदेही पाई तो भी आत्महित को नाहीं जानै है, रसनाका लोलुपी, स्पर्श इंद्री का विषयी, पांच हू इन्द्रियों के वश भया अति निंद्य पाप कर्णकरि नरकविषैं पड़े है जैसें पाषाण पानीमें डूब है, कैसा है नरक ? अनेक प्रकार करि उपजे जे महादुःख तिनका सागर है, महा दुःखकारी है। जे पापी क्रूरकर्मी धनके लोभी माता पिता भाई पुत्र स्त्री मित्र इत्यादि सुजन तिनको हनै हैं, जगत में निंद्य है चित्त जिनका ते नरक में पड़े हैं तथा जे गर्भपात करैं हैं तथा बालक हत्या करैं हैं, वृद्ध कों हणै हैं, अबला

(स्त्रियों) की हत्या करें हैं, मनुष्यों को पकड़े हैं, रोके हैं, बांधे हैं, मारें हैं, पक्षी तथा मृगनिको हनै हैं, जे कुबुद्धि स्थलचर जलचर जीवोंकी हिंसा करै हैं, धर्मरहित है परिणाम जिनका ते महावेदनारूप जो नरक ता विषैं पड़ै हैं अर जे पापी शहदके अर्थि मधुमाखियों का छाता तोड़े हैं तथा मांसाहारी, मद्यपायी, शहदके भक्षण करनहारे, वनके भस्म करनहारे तथा ग्रामनिके बालनहारे, बन्दोके करणहारे, गायनिके घेरनहारे, पशुघाती महाहिंसक भील अहेड़ी बागरा पारधी इत्यादि पापी महा नरक में पड़े हैं अर जे मिथ्यावादी परदोष के भाषणहारे, अभक्ष्यके भक्षण करनहारे, परधन के हरणहारे, परदाराके रमनहारे, वेश्यानिके मित्र हैं ते घोर नरक में पड़ै हैं जहां काहूकी शरण नाहीं, जे पापी मांस का भक्षण करे हैं ते नरक में प्राप्त होय हैं तहां तिनही का शरीर काट काट तिनके मुख विषैं दीजिए है अर ताते लोहे के गोले तिनके मुख में दीजिए है। अर मद्यपान करनेवालों के मुखमें सोसा गाल गाल डारिये है। अर परदारा-लंपटियोंको ताती लोहेकी पूतलियोंसे आलिंगन करावें हैं। जे महापरिग्रहके धारी, महाआरंभी, क्रूर है चित्त जिनका, प्रचंड कर्मके करनहारे हैं ते सागरांपर्यंत नरकमें बसै हैं। साधुओंके द्वेषीं, पापी मिथ्यादृष्टी कुटिल कुबुद्धि रौद्रध्यानी मर कर नरक में प्राप्त होय हैं। जहां विक्रियामई कुल्हाड़े तथा खड्ग चक्र करोंत अर नाना प्रकार के विक्रियामई शस्त्र तिनकरि खंड खंड कीजिए है फिर शरीर मिल जाय है, आयु पर्यंत दुःख भोगवै हैं, तीक्ष्ण हैं चोंच जिनकी ऐसे मायामई पक्षी ते तन विदारै हैं तथा मायामई सिंह, व्याघ्र, श्वान, सर्प, अष्टापद, ल्याली, वीछू तथा और प्राणियों से नाना प्रकार के दुःख पावै हैं। नरक के दुःखिन को कहां लग वर्णन करिए अर जे मायाचारी प्रपंची विषयाभिलाषी हैं ते प्राणी तिर्यंच गति कों प्राप्त होय हैं तहां परस्पर बन्ध अर नाना प्रकार के शस्त्रनिकी घाततैं महादुःख पावै हैं तथा वाहन तथा अति भार का लादना, शीत उष्ण क्षुधा तृषादिकरि अनेक दुःख भोगवै हैं। यह जीव भवसंकटविषैं भ्रमता स्थलविषैं जलविषैं गिरिविषै तरुविषैं और गहवनविषैं अनेक ठौर सूता एकेंद्री वेइन्द्री तेइन्द्री चोइन्द्री पंचेंद्री अनेक पर्यायनिमें अनेक जन्म मरण करै। जीव अनादि निधन हैं, याका आदि अन्त नाही, तिलमात्र भी लोकाकाशविषैं प्रदेश नाहीं जहां संसार भ्रमण विषैं इस जीव ने जन्म मरण न किए हों। अर जे प्राणी निर्गर्व हैं, कपटरहित स्वभाव ही कर संतोषी हैं ते मनुष्य देहको पावै हैं सो यह नर-देह परम निर्वाण सुखका कारण ताहि पायकरि भी जे मोहमदकरि उन्मत्त कल्याण मार्गको तजकरि क्षणमात्रमें सुखके अर्थि पाप करै हैं ते मूर्ख हैं। मनुष्य भी पूर्वकर्मके उदयकरि कोई आर्यखंडविषैं उपजै हैं, कोई म्लेच्छखंडविषैं उपजै हैं तथा कोई धनाढ्य कोई अत्यन्त दरिद्री होय हैं, कोई कर्म के प्रेरे अनेक मनोरथ पूर्ण करै हैं, कोई

कष्टसों पराए घरोंमें प्राणपोषण करै हैं, केई कुरूप केई रूपवान, कोई दीर्घ आयु केई अल्प आयु, केई लोकनिकों वल्लभ केई अभावने, केई सभाग केई अभागे, केई औरोंको आज्ञा देवें केई औरन के आज्ञाकारी, केई यशस्वी केई अपयशी, केई शूर केई कायर, केई जलविषें प्रवेश करें केई रणमें प्रवेश करें, केई देशांतरमें गमन करै केई कृषि कर्म करें, केई व्यापार करें केई सेवा करें। या भांति मनुष्य गति विषें भी सुख दुःखकी विचित्रता है, निश्चय विचारिए तो सर्वगति में दुःख ही है, दुःख ही को कल्पनाकर सुख मानै हैं। अर मुनिव्रत तथा श्रावकके व्रतनिकरि तथा अव्रत सम्यक्त्वकरि तथा अकामनिर्जरातैं तथा अज्ञानतपतैं देवगति पावैं हैं। यिनमें केई बड़ी ऋद्धिके धारी केई अल्प ऋद्धि के धारी, आयु कांति प्रभाव बुद्धि सुख लेश्याकरि ऊपरले देव चढ़ते अर शरीर अभिमान अर परिग्रह से घटते देवगति में भी हर्ष विषाद कर कर्मका संग्रह करें हैं। चतुर्गतिमें यह जीव सदा अरहट की घड़ीके यंत्र समान भ्रमण करै हैं। अशुभ संकल्पनितैं दुःखको पावै हैं अर दानके प्रभावतैं भोग भूमि विषैं भोगनिकों पावै हैं। जे सर्व परिग्रह रहित मुनिव्रत के धारक हैं सो उत्तमपात्र कहिए अर जे अणुव्रत के धारक श्रावक हैं तथा श्राविका और आर्यिका सो मध्यमपात्र कहिए हैं अर व्रतरहित सम्यग्दृष्टि हैं सो जघन्यपात्र कहिए है। इन पात्रविकों विनय भक्ति करि आहार देना सो पात्र का दान कहिए अर बाल वृद्ध अंध पंगु रोगी दुर्बल दुःखित भुखित इनको करुणाकर अन्न जल औषधिवस्त्रादिक दीजिए सों करुणादान कहिये। उत्तमपात्रके दानकरि उत्कृष्ट भोगभूमि अर मध्यम पात्रके दान करि मध्यम भोगभूमि अर जघन्य पात्रके दानकरि जघन्य भोगभूमि होय है। जो नरक निगोदादि दुःखनितैं रक्षा करै सो पात्र कहिये। सो सम्यग्दृष्टि मुनिराज हैं ते जीवनिकी रक्षा करै हैं। जे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकर निर्मल हैं ते परम पात्र कहिये। जिनके मान-अपमान, सुख-दुःख, तृण-कांचन दोनों बराबर हैं तिनकों उत्तम पात्र कहिये। जिनके रागद्वेष नाहीं, जे सर्व परिग्रह रहित महा तपस्वी आत्मध्यानविषैं तत्पर ते मुनि उत्तम पात्र कहिए, तिनकों भाव कर अपनी शक्तिप्रमाण अन्न जल औषधि देनी तथा वन में तिनके रहने के निमित्त वस्तिका करावनी तथा आर्यानिको अन्न जल वस्त्र औषधि देनी। श्रावक श्राविका सम्यग्दृष्टियों को बहुत विनयकरि अन्न जल वस्त्र औषधि इत्यादि सर्व सामग्री देनी सो पात्र दान की विधि है। दीन अंधादि दुःखित जीवों को अन्न वस्त्र आदि देना, बंदीतैं छुड़ावना, यह करुणा दान की रीति है। यद्यपि यह पात्रदान तुल्य नाहीं, तथापि योग्य है, पुण्य का कारण है। अर पर उपकार सो ही पुण्य है। अर जैसे भले क्षेत्र में बोया बीज बहुत गुणा होय फलै है तैसे शुद्ध चित्तकरि पात्रविकों किया दान अधिक फलकों फलै है अर जे पापी मिथ्यादृष्टि रागद्वेषादि युक्त व्रत क्रिया-रहित महामानी ते

पात्र नाहीं अर दीन हूं नाहीं तिनको देना निष्फल है, नरकादिका कारण है जैसें ऊसर (कल्लर) खेत विषैं बोया बीज वृथा जाय है। अर जैसें एक कूप का जल ईष विषैं प्राप्त भया मधुरताकों लहै है अर नोम विषैं गया कटुकता को भजै है तथा एक सरोवर का जल गाय ने पीया सो दूध रूप होय परणवै है अर सर्प ने पीया सो विष होय परणवै है तैसें सम्यग्दृष्टि पात्रनिको भक्ति करि दिया जो दान सो शुभ फल को फलै है अर पापी पाखंडी मिथ्यादृष्टि अभिमानी परिग्रही तिनकों भक्ति करि दिया दान अशुभ फल कों फलै है। जे मांस-आहारी मद्यपायी कुशीली आपको पूज्य मानै तिनका सत्कार न करवा, जिनधर्मियोंकी सेवा करनी, दुःखियोंको देख दया करनी और विपरीतियोंसे मध्यस्थ रहना, सब जीवोंपर दया राखनी, किसीको क्लेश न उपजावना। अर जे जिनधर्मतें पराङ्मुख हैं, परवाद हैं ते भी धर्मको करना ऐसा कहैं हैं परंतु धर्मका स्वरूप जानै नाहीं तातें जे विवेकी हैं ते परखकरि अंगीकार करै हैं। कैसे हैं विवेकी ? शुभोपयोगरूप है चित्त जिनका, ते ऐसा विचार करै हैं जे गृहस्थ स्त्रीसंयुक्त आरम्भी परिग्रही हिंसक कामक्रोधादिकर संयुक्य गर्ववंत धनाढ्य अर आपको पूज्यमानै तिनको भक्तिकरि बहुत धन देना ताविषैं कहा फल है अर तिनकरि आप कहा ज्ञान पावै ? अहो यह बड़ा अज्ञान है, कुमारगतें ठगे जीव ताहि पात्रदान कहै हैं। और दुःखी जोवोंको करुणादान न करै हैं, दुष्ट धनाढ्यनि को सर्व अवस्था में धन देय हैं सो वृथा धनका नाश करै हैं, धनवंतनिकों देनेतें कहा प्रयोजन, दुखियों को देना कार्यकारी है। धिक्कार है तिन दुष्टनिको जे लोभके उदयकरि खोटे ग्रंथ बनाय मूढ़ जीवनिकों ठगै हैं। जे मृषाबाद के प्रभावतें मांसहूका फक्षण ठहरावैं हैं, पापी पाखंडी मांस का भी त्याग न करैं तो और कहा करेंगे। जे क्रूर मांसका भक्षण करैं हैं तथा जो मांसका दान करै हैं ते घोर वेदनायुक्त जो नरक ताविषैं पड़ै हैं। और जे हिंसाके उपकरण शस्त्रादिक तथा जे बन्धन के उपाय पांसी इत्यादि तिनका दान करै हैं तथा पंचेन्द्रिय पशुओंका दान करै हैं और जे इन दानों को निरूपण करै हैं ते सर्वथानिंद्य हैं। जो कोई पशुका दान करै और वह पशु बांधने करि मारवेकरि ताड़वेकरि दुःखी होय तो देनहारेको दोष लागै और भूमिदान भी हिंसा का कारण है। जहां हिंसा तहां धर्म नाहीं। श्रीचैत्यालय के निमित्त भूमिका देना युक्त है, और प्रकार नाहीं। जो जीव-घातकरि पुण्य चाहै हैं ते जीव पाषाणतें दुग्ध चाहै हैं, तातें एकेन्द्री आदि पंचेन्द्री पर्यंत सब जीवनको अभयदान देना, और विवेकियोंको ज्ञान दान देना व पुस्तकादि देना अर औषधि अन्न जल वस्त्रादि सबकों देना, पशुओंको सूखे तृण देना और जैसें समुद्र विषैं सीप मेघका जल पीया सो मोती होय परणवै है तैसें संसार विषैं द्रव्यके योगतें सुपात्रनिकों यव आदि अन्न भी दिये तो महाफलकों फलै हैं अर जो भनवान होय सुपात्रों को श्रेष्ठ वस्तु का

दान नाहीं करै हैं सो निद्य हैं। दान बड़ा धर्म है सो विधिपूर्वक करना पुण्य पाप विषैं भाव ही प्रधान है। जो बिना भाव दान करै हैं सो गिरि के जल सिर पर बरसे जल समान है सो कार्यकारी नाहीं, क्षेत्र विषैं बरसै है सो कार्यकारी है। जो कोई सर्वज्ञ वीतराग-देव कों ध्यावै है और सदा विधिपूर्वक दान करै है ताके फल को कौन कह सकै। तातैं भगवान के प्रतिबिंब जिनमंदिर, जिनपूजा, जिनप्रतिष्ठा, सिद्धक्षेत्रों की यात्रा, चतुर्विध संघ की भक्ति अर शास्त्रों का सर्व देशों विषैं प्रचार करना, ये धन खर्चने के तप्त महाक्षेत्र हैं। तिन विषैं जो धन लगावै सो सफल है। तथा करुणादान परोपकार विषै लागै सो सफल है।

अर जे आयुध का ग्रहण करैं हैं ते द्वेषसंयुक्त जानने। जिनके राग द्वेष है तिनके मोह भी है अर जे कामनी के संगतैं आभूषणोंको धारण करै है ते रागी जानने अर मोह बिना राग-द्वेष होय नाहीं, सकल दोषों का मोह कारण है। जिनके रागादि कलंक हैं ते संसारी जीव हैं। जिनके ये नाहीं ते भगवान हैं। जे देश-काल कामादिके सेवनहारे हैं ते मनुष्य-तुल्य हैं, तिनमें देवत्व नाहीं, तिनकी सेवा शिवपुर का कारण नाहीं। अर काहूके पूर्वपुण्यके उदयकरि शुभ मनोहर फल होय है सो कुदेव सेवा का फल नाहीं। कुदेवनिकी सेवातैं संसारिक सुख भी न होय तो शिवसुख कहां तैं होय तातैं कुदेवनिको सेवन बालू को पेल तेल का काढ़ना है अर अग्नि के सेवनतैं तृषा का बुझावना है जैसें कोई पंगु को पंगु देशांतर न ले जाय सकै तैसें कुदेवों के आराधनतैं परमपद की प्राप्ति कदाचित न होय। भगवान बिना और देवों के सेवन का क्लेश करै सो वृथा है। कुदेवनिमें देवत्व नाहीं। अर जे कुदेवों के भक्त हैं ते पात्र नाहीं, लोभकरि प्रेरे प्राणी हिंसा कर्म विषैं प्रवर्तैं हैं, हिंसा का भय नाहीं, अनेक उपायकर लोकनितैं धन लेय हैं, संसारी लोक भी लोभी सो लोभियोंपै ठिगावै हैं, तातैं सर्व दोष-रहित जिन-आज्ञा प्रमाण जो महादान करै सो महाफल पावै, वाणिज्य-समान धर्म है, कभी किसी वाणिज्य विषैं अधिक नफा होय, कभी अल्प होय, कभी टोटा होय, कभी मूल ही जाता रहै, अल्पपैं बहुत होय जाय, बहुततैं अल्प होय जाय। अर जैसें विष का कण सरोवरी में प्राप्त भया सरोवरी को विष रूप न करै तैसें चैत्यालयादि-निमित्त अल्प हिंसा सो धर्मको विघ्न न करै, तातैं गृहस्थी भगवान के मंदिर करावैं। कैसे हैं गृहस्थी ? जिनेन्द्र की भक्तिविषैं तत्पर हैं अर व्रत क्रिया में प्रवीण हैं। अपनी विभूतिप्रमाण जिनमंदिर कराय जल चंदन धूप दीपादिकर पूजा करनी। जे जिनमंदिरादि में धन खरचै ते स्वर्गलोकमें तथा मनुष्यलोकविषैं अत्यंत ऊंचे भोग भोगि परमपद पावै हैं अर चतुर्विध संघको भक्तिपूर्वक दान करै हैं ते गुणनिके भाजन हैं, इंद्रादि-पदके भोगोंको पावै हैं तातैं जे अपनी शक्ति प्रमाण सम्यग्दृष्टि पात्रनिको भक्ति करि दान

करैं हैं तथा दुःखियों को दयाभावकरि दान करैं हैं सो धन सफल है अर कुमारगतैं लाग्या जो धन सो चीरनि करि लूटया जानो। अर आत्म ध्यान के योगतैं केवलज्ञान की प्राप्ति होय है, जिनको केवलज्ञान उपज्या तिनको निर्वाणपद प्राप्त होय है। सिद्ध सर्व लोकके शिखर तिष्ठं हैं। सर्व बाधारहित अष्टकर्मरहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य करि संयुक्त शरीरतैं रहित अमूर्तिक पुरुषाकार जन्म मरणतैं रहित अविचल विराजै हैं जिनका संसार विषै आगमन नाहीं। मन इन्द्रीनतैं अगोचर हैं, यह सिद्धपद धर्मात्मा जीव पावै हैं। अर पापी जीव लोभरूप पवन से वृद्धि को प्राप्त भई जो दुःखरूप अग्नि तामें बलते सुकृतरूप जल विना सदा क्लेशकों पावै हैं, पाप रूप अंधकार के मध्य तिष्ठे मिथ्यादर्शन के वशीभूत हैं। केई एक भव्यजीव धर्मरूप सूर्य की किरणनिकरि पाप तिमिर को हर केवलज्ञान को पावै हैं अर ये जीव अशुभरूप लोहे के पिंजरे में पड़े आशा-रूप पापकरि बेढ़े धर्मरूप बांधव करि छूटै हैं। व्याकरणहूतें धर्म शब्द का यही अर्थ होय है जो धर्म अचारता संता दुर्गति विषैं पडते प्राणियों को थांभै सो धर्म कहिए। ता धर्म का जो लाभ सो लाभ कहिए। जिनशासनविषैं जो धर्म का स्वरूप कह्या है सो संक्षेप से तुमको कहै हैं, धर्म के भेद अर धर्मके फलके भेद एकाग्र मन कर सुनो। हिंसातें, असत्यतैं, चोरीतें, कुशीलतें, धन अर परिग्रह के संग्रहतें विरक्त होना अर इन पापों का त्याग करना सो महाव्रत कहिये। विवेकियों को उसका धारण करना अर भूमि निरख कर चलना, हित-मित संदेह रहित बचन बोलना, निर्दोष आहार लेना, यत्नतें पुस्तकादि उठावना मेलना, निर्जंतु भूमि विषैं शरीरका मल डारना, ये पांच समिति कहिए तिनका यत्नकरि पालना अर मन वचन काय की जो वृत्ति ताका अभाव ताका नाम तीन गुप्ति कहिए सो परम आदरतें साधुनिको अगीकार करनी। क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषाय जीव के महाशत्रु हैं। सो क्षमातें क्रोध को जीतना अर मार्दव कहिए निर्गर्व परिणाम तिनकरि मन को जीतना. आर्जव कहिए सरल परिणाम-निष्कपट भाव ताकरि मायाचारको जीतना अर संतोषतें लोभको जीतना; शास्त्रोक्त धर्म के करनहारे जे मुनि तिन को कषायों का निग्रह करना योग्य है। ये पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, कषाय-निग्रह मुनिराज का धर्म है अर मुनि का मुख्य धर्म त्याग है, जो सर्वत्यागी होय सो ही मुनि है अर स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ये प्रसिद्ध पांच इंद्री तिनका वश करना सो धर्म है। अर अन-शन कहिए उपवास, अवमोदर्य कहिए अल्प आहार, व्रतपरिसंख्या कहिये विषम प्रतिज्ञाका धारण, अटपटी बात विचारनी, या विधि आहार मिलेगा तो लेवेंगे, नातर नाहीं अर रस परित्याग कहिए रसनिका त्याग, विविक्त शय्यासन कहिए एकांत बनविषैं रहना, स्त्री तथा बालक तथा नपुंसक तथा ग्राम्य पशु इनकी संगति साधुओंको न करनी तथा और भी

संहारी जीवोंकी संगति न करनी, मुनिको मुनिहीकी संगति करनी अर कायक्लेश कहिए ग्रीष्ममें गिरिशिखर, शीतविषैं नदीके तीर, वर्षामें वृक्षके तलें तीनों कालके तप करना तथा विषम भूमिविषैं रहना, मासोपवासादि अनेक तप करना, ये षट् बाह्य तप कहे। अब आभ्यंतर षट् तप सुनो-प्रायश्चित कहिए जो कोई मनतैं तथा वचनतैं तथा कायतैं दोष लाग्या सो सरल परिणाम करि श्रीगुरुके निकट प्रकाशकरि तपादि दंड लेना, बहुरि विनय कहिए देव गुरु शास्त्र सार्धमियों का विनयकरना तथा दर्शन-ज्ञान चारित्रका आचरण सोही इनका विनय अर इनके जे धारक तिनका आदर करना, आपतैं जो गुणाधिक होय ताहि देखकरि उठ खड़ा होना, सन्मुख जाना, आप नीचे बैठना, उनको ऊंचे बिठाना, मिष्ठ वचन बोलना, दुःख पीडा मिटानी अर वैयाव्रत कहिए जे तपकरि तप्तायमान है, रोगकरि युक्त है गात्र जिनका वृद्ध हैं अथवा नववयके जे बालक हैं तिनका नाना प्रकार यत्न करना औषध पथ्य देना, उपसर्ग मेटना अर स्वाध्याय कहिए जिनशासनका बांचना पूछना, आम्नाय कहिये परिपाटी, अनुप्रेक्षा कहिए बारंबार चितारना, धर्मोपदेश कहिए धर्मका उपदेश देना अर व्युत्सर्ग कहिए शरीरका ममत्व तजना तथा एक दिवस आदि वर्ष पर्यंत कायोत्सर्ग धरना अर आर्त-रौद्र ध्यानका त्यागकरि धर्मध्यान शुक्लध्यानका ध्यावना, ये छह प्रकार आभ्यंतर तप कहे। ये बाह्याभ्यंतर द्वादश तप ही सार धर्म हैं। या धर्मके प्रभाव से भव्य जीव कर्मनिका नाश करै हैं अर तप के प्रभावकरि अद्भुत शक्ति होय है, सर्व मनुष्य अर देवोंको जीतनेकूं समर्थ होय है। विक्रियाशक्तिकरि जो चाहै सो करै। विक्रियाके अष्ट भेद हैं। अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व। सो महामुनि तपोनिधि परम शांत हैं, सकल इच्छातें रहित हैं अर ऐसी सामर्थ्य है, चाहैं तो सूर्य का आताप निवारैं, चाहैं तो जल वृष्टि करि क्षणमात्र विषैं जगत को पूर्ण करैं, चाहैं तो भस्म करैं, क्रूर दृष्टिकर देखैं तो प्राण हरैं, कृपा-दृष्टिकर देखैं तो रंकसे राजा करैं, चाहैं तो रत्नस्वर्णकी वर्षा करैं, चाहैं तो पाषाणकी वर्षा करैं इत्यादि सामर्थ्य है; परंतु करैं नाहीं। करैं तो चरित्र का नाश नाश होय। तिन मुनियोंके चरण-रजकरि सर्व रोग जांय, मनुष्योंको अद्भुत विभवके कारण तिनके चरण-कमल हैं। जीव धर्मकर अनंतशक्ति को प्राप्त होय हैं, धर्मकर कर्मनिको हरै हैं। अर कदाचित् कोऊ जन्म लेय तौ सौधर्म स्वर्ग आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत जाय स्वर्गविषैं इंद्रपद पावै तथा इंद्र समान विभूति के धारक देव होंय जिनके अनेक स्वर्ण के मंदिर, स्फटिकमणिके शिखर, वैडूर्यमणि के थंभ अर रत्नमई भींति दैदीप्यमान अर सुन्दर झरोखनिकरि शोभायमान पद्मरागमणि आदि नाना प्रकारकी मणिके शिखर हैं जिनके अर मोतियोंकी झालरों से शोभित अर जिन महलों में अनेक चित्राम, सिंहोंके, गजोंके, हंसोंके, स्वानोंके हिरणों मयूर कोकिलादि-

कोंके दोनों भींतिविषैं रत्नमई चित्राम शोभायमान हैं। चंद्रशालादिकरि युक्त, ध्वजोंकी पंक्तिकरि शोभित, अत्यन्त मनके हरणहारे मंदिर सजे हैं, आसनादि करि सयुक्त जहाँ नाना प्रकारके वादित्र बाजें हैं, आज्ञाकारी सेवक देव अर महामनोहर देवांगना, अद्भुत देवलोकके सुख, महासुन्दर सरोवर कमलादिक रसयुक्त, कल्पवृक्षोंके बन बिमान आदि विभूतियां, यह सभी जीव धर्मके प्रभावकरि पावैं हैं। अर कैसे हैं स्वर्ग निवासी देव ? अपनी कांतिकरि दीप्तिकरि चांद सूर्य को जीतै हैं, स्वर्गलोक विषें रात्रि अर दिवस नाहीं, षट् ऋतु नाहीं, निद्रा नाहीं अर देवोंका शरीर माता पिता से उत्पन्न होता नाहीं। जब अगला देव खिर जाय तब नया देव उपपाद शय्याविषैं उपजै हैं। जैसे कोई सूता मनुष्य सेजतैं जाग उठै तैसैं क्षणमात्रमें देव उपपाद शय्याविषैं नवयौवन को प्राप्त भया प्रगट होय है। कैसा है तिनका शरीर ? सातधातु-उपधातु रहित, निर्मल, रज पसेव अर रोगनितैं रहित, सुगंध पवित्र कोमल परम शोभायुक्त नेत्रोंको प्यारा ऐसा औपपादिक शुभ वैक्रियक देवोंका शरीर होय सो ये प्राणी पावै हैं। जिनके आभूषण महादैदीप्यमान तिनके समूह करि दसों दिशामें उद्योत होय रहा है अर तिन देवनिकै देवांगना महासुन्दर हैं, कमलोंके पत्र समान सुन्दर हैं चरण जिनके अर केलेके थंभ समान है जंघा जिनकी, कांचीदाम (तगड़ी) करि शोभित सुन्दर कटि अर नितंब जिनके, जैसे गजनिके घटीका शब्द होय तैसैं कांचीदामकी क्षुद्र घंटकानिका शब्द होय है। उगते चद्रमातैं अधिक कांति धरै हैं मनोहर है स्तन मंडल जिनका, रत्नोंके समूहकरि जीतै अर चांदनीको जीतै ऐसी है प्रभा जिनकी, मालतीकी जो माला ताहूतैं अति कोमल भुजलता है जिनकी महा अमोलिक वाचाल मणिमई चूड़े तिन करि शोभित हैं हाथ जिनके अर अशोकवृक्ष की कोंपल समान कोमल अरुण हैं हथेली जिनकी, अति सुन्दर करकी आंगुली, शंख-समान ग्रीवा, कोकिलहूतैं अति मनोहर हैं कंठ जिनके, अति लाल अति सुन्दर रसके भरे अधर तिनकरि आच्छादित, कुंदके पुष्प समान दंत अर निर्मल दर्पण समान सुन्दर हैं कपोल जिनके, लावण्यताकरि लिप्त भई हैं सर्व दिशा अर अति सुन्दर तीक्ष्ण कामके बाण-समान नेत्र सो नेत्रोंकी कटाक्ष कर्ण पर्यन्त प्राप्त भई हैं, सोई मानों कर्णाभरण भए अर पद्मरागमणि आदि अनेक मणिनिके आभूषण अर मोतियोंके हार तिनकरि मंडित अर भ्रमर समान श्याम, अति सूक्ष्म, अति निर्मल, अति चीकने, अति सघन, वक्रता धरे लंबे केश, अति कोमल शरीर, अति मधुर स्वर, अत्यन्त चतुर, सर्व उपचारकी जाननहारी, महासौभाग्यवती, रूपवन्ती, गुणवन्ती, मनोहर क्रीडाकी करणहारी, नन्दनादि वनोंतैं उपजी जो सुगन्ध ताहूतैं अति सुगन्ध है श्वास जिनके, पराए मनका अभिप्राय की चेष्टाएं जान जाँय ऐसी प्रवीण पचेंन्द्रियोंके सुख की उपजावनहारी, मनवांछित रूपकी धरणहारी ऐसी स्वर्ग में जो अप्सरा सो धर्मके फलतैं

पाइए है अर जो इच्छा करै सो चितवनमात्र सर्व सिद्ध होंय, इच्छा करै सो ही उपकरण प्राप्त होय, जो चाहैं सो सदा संग ही हैं, देवांगनानिकर देव मनवांछित सुख भोगै हैं। जो देवलोक में सुख हैं तथा मनुष्य लोक विषैं चक्रवर्त्यादिकनिके सुख हैं सो सर्व धर्म का फल जिनेश्वरदेव ने कह्या है अर तीनलोक में जो सुख ऐसा नाम धरावैं हैं सो सर्व धर्मकरि ही उत्पन्न होय हैं। जे तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती बलभद्र कामदेवादि दाता भोक्ता मर्यादा के कर्त्ता, निरन्तर हजारों राजनिकरि तथा देवनिकरि सेइए हैं सो सर्व धर्म का फल है। अर जो इन्द्र स्वर्गलोकका राज्य, हजारों जे देव मनोहर आभूषणके धरणहारे तिनका प्रभुत्व धरै हैं, सो सर्व धर्मका फल है, ये तो सकल शुभोपयोगरूप व्यवहार धर्मके फल कहे। अर जे महामुनि निश्चय रत्नत्रय के धरणहारे मोह रिपुका नाश करि सिद्धपद पावैं हैं सो शुद्धोपयोगरूप आत्मीक धर्मका फल है सो मुनि का धर्म मनुष्य जन्म बिना नहीं पाइए है, तातैं मनुष्य देह सर्व जन्म विषैं श्रेष्ठ है। जैसैं मृग कहिए वन के जीव तिनमें सिंह अर पक्षियों विषै गरुड अर मनुष्यों विषैं राजा, देवों विषै इन्द्र, तृणनि विषै शालि, वृक्षनि विषैं चंदन अर पाषाण विषै रत्न श्रेष्ठ है, तैसें सकल योनि विषैं मनुष्य जन्म श्रेष्ठ है। तीन लोक विषैं धर्म सार है अर धर्म विषै मुनिका धर्म सार है। सो मुनि का धर्म मनुष्य देहतैं ही होय है तातैं मनुष्य जन्म समान और नाहीं। अनन्त काल यह जीव परिभ्रमण करै है तामें मनुष्य जन्म कभी पावै है, यह मनुष्य देह महादुर्लभ है। ऐसे दुर्लभ मनुष्य देह कों पाय जो मूढ़ प्राणी समस्त क्लेशनिकरि रहित करणहारा जो मुनिका धर्म अथवा श्रावक का धर्म नाहीं करै हैं सो बारंबार दुर्गतिविषैं भ्रमण करै है। जैसैं समुद्र विषैं गिरचा महागुणनिका धरणहारा रत्न बहुरि हाथ आवना दुर्लभ है, तैसें भव-समुद्रविषैं नष्ट भया नर देह बहुरि पावना दुर्लभ है। या मनुष्य देहविषैं शास्त्रोक्त धर्मका साधनकरि केई मुनिव्रत धर सिद्ध होय हैं अर केई स्वर्गनिवासी देव तथा अहमिंद्रपद पावैं, परंपरा मोक्षपद पावै हैं। या भांति धर्म अधर्मके फल केवलीके मुखतैं सुनकरि सब ही सुख को प्राप्त भए। ता समय कमल-सारिखे हैं नेत्र जाके ऐसा कुंभकरण सो हाथ जोड़ नमस्कार करि पूछता भया, उपज्या है अति आनन्द जाके। हे नाथ! मेरे अब भी तृप्ति न भई, तातैं विस्तारकरि धर्मका व्याख्यान विधिपूर्वक मोहि कहो। तब भगवान अनंतवीर्य कहते भए—हे भव्य! धर्मका विशेष वर्णन सुनो, जाकरि यह प्राणी संसारके बंधनितैं छूटै सो धर्म दोय प्रकार है—एक महाव्रतरूप दूजा अणुव्रतरूप। सो महाव्रतरूप यतिका धर्म है, अणुव्रतरूप श्रावक का धर्म है। यति घरके त्यागी हैं, श्रावक गृहवासी हैं। तुम प्रथम ही सर्व पापनिका नाश करणहारा सर्व परिग्रहके त्यागी जे महामुनि तिनका धर्म सुनो।

या अवसर्पिणी कालविषैं अब तक ऋषभदेवतें लगाय मुनिसुव्रत पर्यन्त बीस तीर्थंकर

हो चुके हैं, अब चार और होयेंगे। या भांति अनन्त भए अर अनन्त होवेंगे सो सबनिका एक मत है। यह श्रीमुनिसुव्रतनाथका समय है। सो अनेक महापुरुष जन्ममरणके दुःखकरि महा भयभीत भए, या शरीरको एरंडकी लकड़ी समान असार जानि सर्वपरिग्रहका त्याग करि मुनिव्रतको प्राप्त भए। ते साधु अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्यागरूप पंच महाव्रत तिनविषें रत, तत्वज्ञानविषें तत्पर, पंचसमितिके पालनहारे, तीन गुप्तिके धरनहारे, निर्मलचित्त, महापुरुष, परमदयालु, निजदेहविषें भी निर्ममत्व, राग भाव-रहित, जहां सूर्य अस्त होय तहां ही बैठ रहैं, कोई आश्रय नाहीं, तिनके कहा परिग्रह होय, पापका उपजावनहारा जो परिग्रह सो तिनके बालके अग्र भाग मात्र हू नाहीं, ते महाधीर महामुनि सिंह-समान साहसी समस्त प्रतिबन्ध-रहित पवन सारिखे असंगी, तिनके रंचमात्र भी संग नाहीं, पृथिवी समान क्षमावन्त, जल सारिखे विमल, अग्नि सारिखे कर्मको भस्म करनहारे, आकाश सारिखे अलिप्त अर सर्व संबन्ध रहित, प्रशंसा योग्य है चेष्टा जिनकी, चंद्र-सारिखे सोम्य, सूर्य-सारिखे तिमिर के हरता, समुद्र सारिखे गंभीर, पर्वत सारिखे अचल, काछिवा समान इन्द्रियोंके संकोचनहारे, कषायनिकी तीव्रता रहित अट्ठाईस मूलगुण व चौरासी लाख उत्तरगुणोंके धरनहारे, अठारह हजार शीलके भेद तिनके धारक, तपोनिधि, मोक्षमार्गी, जिनधर्म में लवलीन, जैनशास्त्रोंके पारगामी अर सांख्य, पातंजल, बौद्ध, मीमांसक, नैयायिक, वैशेषिक वेदांती इत्यादि पर शास्त्रोंके भी वेत्ता, महाबुद्धिमान सम्यग्दृष्टि, यावज्जीव पापनिके त्यागी, यम-नियमके धरनहारे परम संयमी, परम त्यागी, निर्गर्व, अनेक ऋद्धिसंयुक्त महामंगलमूर्ति, जगतकें मंडन, महागुणवान, केई एक तो ताही भव में कर्म काट सिद्ध होंय, कइएक उत्तमदेव होंय, दोय तीन भवमें ध्यानाग्नि करि समस्त कर्म काष्ठ को भस्म करि अविनाशी सुखको प्राप्त होय हैं; यह यती का धर्म कह्या। अब स्नेहरूपी पींजरे में पड़े जे गृहस्थी तिनका द्वादशव्रतरूप जो धर्म सो सुनो। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत अर अपनी शक्तिप्रमाण हजारों नियम, अस-घातका त्याग अर मृषावादका परिहार, परधन का त्याग, परदारा का परित्याग अर परिग्रह परिमाण-तृष्णा का त्याग ये पांच अणुव्रत अर हिंसादि का प्रमाण, दिशाओंका प्रमाण, जहां जिनधर्मका उद्योत नाहीं तिन देशनिका त्याग, अनर्थदंडका त्याग ये तीन गुणव्रत हैं अर सामायिक, प्रोषधोपवास, अतिथिसंविभाग, भोगोपभोग परिमाण ये चार शिक्षाव्रत—ये बारह व्रत हैं, अब इन व्रत के भेद सुनो। जैसें अपना शरीर आपको प्यारा है तैसा सबनिको प्यारा है ऐसा जान सर्व जीवनि की दया करनी। उत्कृष्ट धर्म जीव दया ही भगवान ने कह्या है, जे निर्दई जीव हनैं हैं तिनके रंचमात्र भी धर्म नाहीं। अर जामें परजीवनिको पीड़ा होय सो वचन न कहना, पर बाधाकारी वचन सोई मिथ्या अर

पर उपकाररूप वचन सोई सत्य । जे पापी चोरी करें, पराया धन हरें हैं ते इस भव में बध-बन्धनादि दुःख पावै हैं, कुमरणतैं मरै हैं अर परभव नरकमें पड़ै हैं, नानाप्रकार के दुःख पावै हैं । चोरी दुःख का मूल है, तातैं बुद्धिमान सर्वथा पराया धन न हरै हैं सो जाकरि दोनों लोक बिगड़ैं ताहि कैसें करें । अर सर्पिणी-समान पर नारीकों जानकरि दूरहीतैं तजो, यह पापनी पर-नारी काम-लोभ के वशीभूत पुरुष की नाश करनहारी है । सर्पिणी तो एक भव ही प्राण हरै है अर परनारी अनन्त भव प्राण हरै है । कुशील के पापतैं निगोद में जाय हैं सो अनन्त जन्म मरण करै हैं अर याही भव विषैं मारना ताडना आदि अनेक दुःख पावै हैं । यह परदारा-संगम नरक-निगोदके दुःसह दुःखनिको देनहारा है । जैसें कोई पर पुरुष अपनी स्त्री का पराभव करै तो आपकों बहुत बुरा लागै, अति दुःख उपजै तैसें ही सकल की व्यवस्था जाननी अर परिग्रहका परिमाण करना, बहुत तृष्णा न करनी, जो यह जीव इच्छा को न रोकै तो महा दुःखी होय । यह तृष्णा ही दुःखका मूल है, तृष्णा-समान और व्याधि नाहीं । या ऊपर एक कथा है सो सुनो । एक भद्र, दूजा कांचन-ये दोय पुरुष हुते तिनमें भद्र फलादिक का वेचनहारा सो एक दीनारमात्र परिग्रहका परिमाण करता भया । एक दिवस ताने मार्गमें दीनारोंका बटुवा पड़्या देख्य तामेंसों एक दीनार कौतूहल करि लीना अर दूजा कांचन है नाम जिसका ताने सर्व बटुवा ही उठाय लिया सो दीनारनिका स्वामी राजा तानै बटुवा उठावता देखि कांचनको पिटाया अर गामतैं काढ्या अर भद्र ने एक दीनार लीनी हुती सो राजाको बिना मांगे स्वयमेव सोंप दीनी । राजा ने भद्र का बहुत सन्मान किया। ऐसा जानकरि बहुत तृष्णा न करनी, संतोष धरना, ये पांच अणुव्रत कहे ।

बहुरि चार दिशा, चार विदिशा, एक अधः, एक ऊर्ध्व, इन दश दिशानिका परिमाण करना कि इस दिशा को एती दूर जाऊं, आगै न जाऊंगा। बहुरि अपध्यान कहिए खोटा चिंतवन, पापोदेश कहिए अशुभ कार्य का उपदेश, हिंसादान कहिए विष फांसो लोहा सीसा खड्गादि शस्त्र, तथा चाबुक इत्यादि जीवनिके मारवेके उपकरण मांग्या देना, तथा जे जाल रस्सा इत्यादि बधन के उपाय तिनका व्यापार अर श्वान मार्जार चीतादिक का पालना अर कुश्रुति श्रवण कहिए कुशास्त्र का श्रवण, प्रमादचर्या कहिए प्रमाद करि वृथा छै काय के जीवों की विराधना करनी, ये पांच प्रकार के अनर्थदंड तजने अर भोग कहिए आहारादिक, उपभोग कहिए स्त्री वस्त्राभूषणादिक तिनका परिमाण करना अर्थात् जे अभक्ष्य-भक्षणादि, परदारा-सेवनादि अयोग्य विषय हैं तिनका तो सर्वथा त्याग अर जे योग्याहार तथा स्वदारासेवनादि तिनका नियमरूप परिमाण—यह भोगोपभोग परिसंख्याव्रत कहिए । ये तीन गुणव्रत कहे अर सामायिक कहिए समता भाव, पंचपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवचन,

जिनप्रतिमा, जिनमंदिर तिनका स्तवन अर सर्व जीवनिसों क्षमाभाव सो प्रभात मध्यान्ह सायंकाल छै छै घड़ी तथा चार २ घड़ी तथा दोय दोय घड़ी अवश्य करना अर प्रोषधोपवास कहिये दोय आठैं, दोय चौदस एक मासमें चार उपवास षोड़श पहरके पोषें संयुक्त अवश्य करनें। सोलह पहर तक संसारके कार्यका त्याग करना, आत्मचिंतवन तथा जिनभजन करना। अर अतिथिसंविभाग कहिए अतिथि जे परिग्रहरहित मुनि जिनके तिथि वार का विचार नाहीं सों महागुणोंके धारक आहारके निमित्त आवैं तिनको विधिपूर्वक अपने वित्तानुसार बहुत आदरतैं योग्य आहार देना अर आयुके अन्त विषें अनशन व्रत धर समाधिमरण करना सो सल्लेखनाव्रत कहिए। ये चार शिक्षाव्रत कहे। या प्रकार पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत जानने। जे जिनधर्मी हैं तिनके मद्य मांस मधु माखण उदंबरादि अयोग्य फल, रात्रिभोजन, बींध्या अन्न, अनछाना जल, परदारा तथा दासी वेश्यासंगम इत्यादि अयोग्य क्रियाका सर्वथा त्याग होय है, यह श्रावकका धर्म पालकर समाधिमरण कर उत्तम देव होय फिर उत्तम मनुष्य होय सिद्धपद पावें हैं अर जे शास्त्रोक्त आचरण करनेको असमर्थ हैं, न श्रावक के व्रत पालैं, न यतिके परन्तु जिनभाषितकी दृढ़ श्रद्धा है ते भी निकट संसारी हैं, सम्यक्त के प्रसादसे व्रतको धारणकरि शिवपुरको प्राप्त होय हैं। सर्व लाभ में श्रेष्ठ जो सम्यग्दर्शन का लाभ ताकरि ये जीव दुर्गति के त्रासतैं छूटै हैं। जो प्राणी भावतैं श्रीजिनेन्द्रदेवको नमस्कार करै हैं सो पुण्याधिकारी पापोंके क्लेशतैं निवृत्त होय हैं अर जो प्राणी भावकरि सर्वज्ञदेव कों सुमरै है ता भव्य जीव के कोटि भव के उपार्जे अशुभ कर्म तत्काल क्षय होय हैं अर जे महाभाग्य त्रैलोक्य विषैं सार जो अरहंतदेव तिनको हृदय विषें धारै हैं सो भवकूप विषें नाहीं परै हैं। ताके निरन्तर सर्व भाव प्रशस्त हैं अर ताकौं अशुभ स्वप्न न आवें, शुभ स्वप्न ही आवें अर शुभ शकुन ही होय हैं। अर जो उत्तम जन "अर्हंते नमः" यह वचन भावतैं कहै हैं ताके शीघ्र ही मलिन कर्मका नाश होय है, या विषें संदेह नाहीं। मुक्ति योग्य प्राणी का चित्तरूप कुमद परम निर्मल वीतराग जिनचंद्र की कथारूप जो किरण तिनके प्रसंगतैं प्रफुल्लित होय है। अर जो विवेकी अरहंत सिद्ध साधुवों ताईं नमस्कार करै है सो सर्व जिनधर्मीनिका प्यारा है, ताहि अल्प संसारी जानना। अर जो उदारचित्त श्रीभगवानके चैत्यालय करावै, जिनबिंब पधरावै है, जिनपूजा करै है, जिनस्तुति करै है, तिनकै या जगतविषैं कछु दुर्लभ नाहीं। नरनाथ कहिए राजा होहु अथवा कुटुम्बी कहिए किसान होहु, धनाढ्य होहु तथा दरिद्री होहु, जो मनुष्य धर्मकरि युक्त है सो सर्व त्रैलोक्यविषें पूज्य है। जे नर महाविनयवान हैं अर कृत्य अकृत्यके विचारविषें प्रवीण हैं, जो यह कार्य करना यह न करना ऐसा विवेक धरै

हैं, ते विवेकी धर्म के संयोगतैं गृहस्थनिविषैं मुख्य हैं। जे जन मधु मांस मद्य आदि अभक्ष्य का संसर्ग नाहीं करैं हैं तिनहीका जीवन सफल है। अर शंका कहिए जिन वचनों में संदेह, कांक्षा कहिये या भवविषै अर परभवविषैं भोगनिकी बांछा, विचिकित्सा कहिए रोगी वा दुःखीकों देख घृणा करनी आदर नाहीं करना, अर आत्मज्ञानतैं दूर जे परदृष्टि कहिये जिनधर्मतैं पराङ्मुख मिथ्यामार्गी तिनकी प्रशंसा करनी, अर अन्य शासन कहिये हिंसामार्ग ताके सेवनहारे जे निर्दयी मिथ्यादृष्टि तिनके निकट जाय स्तुति करनी ये पाँच सम्यकदर्शनके अतीचार हैं। तिनके त्यागी जे जंतु कहिये प्राणी ते गृहस्थिनिविषैं मुख्य हैं। अर जो प्रियदर्शन कहिये प्यारा है दर्शन जाका, सुन्दर वस्त्राभरण पहिरे सुगंध शरीर, मार्ग चलते धरतीको देखता निर्विकार जिनमदिरमें जाय है. शुभ कार्यनिविषैं उद्यमी ताके पुण्य का पार नाहीं। अर जे पराए द्रव्यको तृण-समान देखैं हैं अर परजीव को आप समान देखैं हैं अर परनारी को माता समान देखैं हैं सो धन्य हैं। अर जाके ये भाव हैं ऐसा दिन कब होयगा जो मैं जिनेन्द्रीदीक्षा लयकरि महामुनि होय पृथ्वी विषैं निर्द्वंद विहार करूंगा, ये कर्म-शत्रु अनादिके लगे हैं तिनका क्षयकरि कब सिद्धपद प्राप्त करूं, या भाँति निरंतर ध्यान-कर निर्मल भया है चित्त जाका ताके कर्म कैसें रहैं, भयकरि भाग जांय, कैयक विवेकी सात आठ भव में मुक्ति जाय हैं, कैयक दोय तीन भवविषैं संसारसमुद्र के पार होय हैं, कैयक चरमशरीरी उग्र तपकरि शुद्धोपयोगके प्रसादतैं तद्भव मुक्त होय हैं। जैसें कोई मार्गका जाननहारा पुरुष शीघ्र चलै तो शीघ्र ही स्थानकों जाय पहुंचै अर कोई धीरे २ चलै तो घने दिन में जाय पहुंचै परंतु मार्ग चलै सो पहुंचै अर जो मार्ग ही न जानै अर सौ-सौ योजन चालै तो भी भ्रमता ही रहै, इष्ट स्थान को न पहुंचै तैसें मिथ्यादृष्टि उग्र तप करै तो भी जन्म-मरण वर्जित जो अविनाशी पद ताहि न प्राप्त होय, संसार वन विषैं ही भ्रमै, नहीं पाया है मुक्ति का मार्ग तिनने। कैसा है संसार वन? मोहरूप अंधकारकरि आच्छादित है अर कषायरूप सर्पनिकरि भरया है जिस जीवके शील नाहीं, व्रत नाहीं, सम्यक्त नाहीं, त्याग नाही, वैराग्य नाहीं, सो संसार समुद्रको कैसें तिरै। जैसें विंध्याचल पर्वततैं चाल्या जो नदीका प्रवाह ताकरि पर्वत-समान ऊंचे हाथी बह जांय तहाँ एक शशा क्यों न बहै? तैसें जन्म जरा मरणरूप भ्रमणको धरै संसाररूप जो प्रवाह ता विषैं जे कुतीर्थी कहिए मिथ्यामार्गी अज्ञानतापस हैं तेई डूबै हैं फिर तिनके भक्तोंका कहा कहना? जैसें शिला जलविषैं तिरवे समर्थ नाहीं तैसें परिग्रहके धारी कुदृष्टि शरणागतिनिकों तारवे समर्थ नाहीं। अर जे तत्वज्ञानी, तपकरि पापनिके भस्म करणहारे हलके होय गए हैं कर्म जिनके, ते उपदेश थकी प्राणियोंको तारने समर्थ हैं। यह संसार-सागर महाभयानक है। यामें यह मनुष्यक्षेत्र रत्नद्वीप समान है सो महा कष्टतैं पाइए है, तातैं बुद्धिवंतनि को या

रत्नद्वीप विषैं नेमरूप रत्न ग्रहण करने अवश्य योग्य हैं। प्राणी या देहको तजकरि परभव विषैं जाएगा अर जैसैं कोई मूर्ख तागा के अर्थि महामणि के हार का तागा निकालनेको महामणियोंका चूर्ण करै तैसैं यह जड़बुद्धि विषयके अर्थ धर्मरत्न का चूर्ण करै है। अर ज्ञानी जीवों को सदा द्वादश अनुप्रेक्षा का चिंतवन करना; ये शरीरादि सर्व अनित्य हैं, आत्मा नित्य है या संसारविषैं कोई शरण नाहीं, आपको आप ही शरण है तथा पंच परमेष्ठी का शरण है। अर संसार महा दुःखरूप है, चतुर्गतिविषं काहू ठौर सुख नाहीं, एक सुखका धाम सिद्धपद है। यह जोव सदा अकेला है, याका कोई संगी नाहीं। अर सर्व द्रव्य जुदे हैं, कोई काहूसों मिलै नाहीं। अर यह शरीर महा अशुचि है, मलमूत्रका भरथा भाजन है। आत्मा निर्मल है अर मिथ्यात्व अव्रत कषाय योग प्रमादनिकरि कर्मका आस्रव होय है। अर व्रत समिति गुप्ति दशलक्षण धर्म अनुप्रेक्षानिका चिंतवन, परिषहजय चारित्रकरि संवर होय है, आस्रवका रोकना सो संवर। अर तपकर पूर्वोपार्जित कर्मकी निर्जरा होय है। अर यह लोक षटद्रव्यात्मक अनादि अकृत्रिम शाश्वत है, लोकके शिखर सिद्धलोक है, लोकालोक का ज्ञायक आत्मा है। अर आत्म स्वभाव सो ही धर्म है, जीवदया धर्म है अर जगत विषैं शुद्धोपयोग दुर्लभ है सोई निर्वाणका कारण है। या प्रकार द्वादश अनुप्रेक्षा विवेकी सदा चिंतवें। या भांति मुनि अर श्रावकके धर्म कहे। अपनी शक्ति-प्रमाण जो धर्म सेवै, उत्कृष्ट मध्यम तथा जघन्य सो सुरलोकादि विषैं तैसा ही फल पावै। या भांति केवली कही तब भानुकर्ण कहिए कुंभकर्णने केवलीसों पूछी—हे नाथ! भेद सहित नियमकर स्वरूप जानना चाहूं हूं। तब भगवान ने कही—हे कुम्भकर्ण! नियम में अर तप में भेद नाहीं, नियमकरि युक्त जो प्राणी सो तपस्वी कहिए तातैं बुद्धिमान नियमविषैं सर्वथा यत्न करें। जेता अधिक नियम करै सो ही भला अर जो बहुत न बनै तो अल्प ही नियम करना परंतु नियम बिना न रहना। जैसैं बनै सुकृतका उपार्जन करना। जैसैं मेघ की बूंद पड़ै हैं तिन बूंदनिकरि महानदीका प्रवाह होय जाय है सो समुद्र विषैं जाय मिलै है, तैसैं जो पुरुष दिनविषैं एक मुहूर्तमात्र भी आहार का त्याग करै सो एक मास में एक उपवास के फल को प्राप्त होय ताकरि स्वर्ग विषैं बहुत काल सुख भोग मनवांछित भोग प्राप्त होय। जो कोई जिनमार्गकी श्रद्धा करता संता यथाशक्ति तपनियम करै तिस महात्माके दीर्घकाल स्वर्गविषैं सुख होय। बहुरि स्वर्गतैं चयकर मनुष्यभव विषैं उत्तम भोग पावै है।

एक अज्ञान तापसी की पुत्री वन विषैं रहै सो महादुःखवती बदरीफल (बेर) आदि कर आजीविका पूर्ण करै तानै सत्संगतैं एक मुहूर्तमात्र भोजन का नियम लिया, ताके प्रभावतैं एक दिन राजाने देखि आदरतैं परणी, बहुत संपदा पाई अर धर्मविषैं बहुत सावधान भई, अनेक नियम आदरे सो जो प्राणी कपट रहित होय जिनवचनकों धारण करै

सो निरंतर सुखी होंय, परलोक में उत्तमगति पावै। अर जो दो मुहूर्त दिवस प्रति भोजन का त्याग करें ताके एक मास विषें दोय उपवासका फल होय। तीस मुहूर्तका एक अहोरात्रि गिनो। अर तीन मुहूर्त प्रति दिन अन्न जल का त्याग करै तो एक मास विषें तीन उपवास का फल होय। या भांति जेता अधिक नियम तेता ही अधिक फल। नियम के प्रसादकरि ये प्राणी स्वर्ग विषें अद्भुत सुख भोगै हैं अर स्वर्गतें चयकर अद्भुत चेष्टाके धरणहारे मनुष्य होय हैं। महाकुलवती महारूपवंती महागुणवंती महालावण्यकर लिप्त मोतियोंके हार पहरें अर मन के हरनहारे जे हाव भाव विलास विभ्रम तिनकों धरें जे शीलवंत स्त्री, तिनके पति होय हैं अर स्वर्गतें चयकर बड़े कुलविषें उपजि बड़े राजानिकी रानी होय हैं, लक्ष्मी समान है स्वरूप जिनका। अर जो प्राणी रात्रि भोजन का त्याग करै हैं अर जल-मात्र नाहीं ग्रहै हैं, ताके पुण्य उपजै है, पुण्यकरि अधिक प्रताप होय है अर जो सम्यग्दृष्टि व्रत धारै ताके फल का कहा कहना ? विशेष फल पावै, स्वर्गविषें रत्नमई विमान तहाँ अप्सराओं के समूह के मध्यमें बहुत काल धर्मके प्रभावकरि तिष्ठै है। बहुरि दुर्लभ मनुष्य देही पावै तातें सदा धर्मरूप रहना अर सदा जिनराज की उपासना करनी। जे धर्मपरायण हैं तिनको जिनेन्द्र का आराधन ही परम श्रेष्ठ है। कैसे है जिनेन्द्रदेव ? जिनके समोशरण की भूमि रत्न-कांचनकर निर्मापित देव मनुष्य तिर्यंचनिकर वंदनीक है। जिनेन्द्रदेव आठ प्रातिहार्य चौंतीस अतिशय महा अद्भुत हजारों सूर्यसमान तेज महा सुन्दर रूप नेत्रों को सुखदाता है। जो भव्य जीव भगवान कों भावकर प्रणाम करें सो विचक्षण थोड़े ही काल-विषें संसारसमुद्र को तिरें।

श्री वीतरागदेव के सिवाय जीवनिको कल्याण की प्राप्ति का कोई दूसरा उपाय नाहीं, तातें जिनेन्द्रचन्द्र ही का सेवन योग्य है अर अन्य हजारों मिथ्यामार्ग उवट मार्ग हैं तिनविषें प्रमादी जीव भूल रहे हैं, तिन कुतीर्थीनिके सम्यक्त नाहीं। अर मद्य मांसादिकके सेवनतें दया नाहीं। अर जैनविषें परमदया है, रंचमात्र भी दोष की प्ररूपणा नाहीं। अर अज्ञानी जीवोंके यह बड़ी जड़ता है जो दिवस में आहारका त्याग करें अर रात्रिमें भोजन कर पाप उपार्जे। चार पहर दिन अनशन व्रत किया ताका फल रात्रि भोजनतें जाता रहै, महापाप का बध होय। रात्रिका भोजन महा अधर्म जिन पापियोंने उसे धर्म कह कलप्या, कठोर है चित्त जिनका तिनको प्रतिबोधना बहुत कठिन है। जब सूर्य अस्त होय, जीव-जन्तु दृष्टि न आवै तब जो पापी विषयनिका लालची भोजन करै है सो दुर्गति के दुःखकों प्राप्त होय है। योग्य अयोग्य को नाहीं जानै है। जो अविवेकी पापबुद्धि, अंधकार के पटल कर आच्छादित भए हैं नेत्र जाके, रात्रिको भोजन करै हैं सो मक्षिका कीट केशादिक का भक्षण करै हैं। जो रात्रि भोजन करै हैं। जो रात्रि भोजन करै हैं सो डाकिनी, राक्षस,

श्वान, मार्जार, मूसा आदिक मलिन प्राणियोंका उच्छिष्ट आहार करैहैं अथवा बहुत प्रपंचकर कहा ? सर्वथा यह व्याख्यान है कि जो रात्रि को भोजन करै है सो सर्व अशुचि का भोजन करै है, सूर्य के अस्त भये पीछे कछु दृष्टि में न आवै तातैं दोय मुहूर्त दिवस बाकी रहे तबतैं लेकर दोय मुहूर्त दिन चढ़े तक विवेकियों को चौविध आहार न करना। अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य ये चार प्रकार के आहार तजने। जे रात्रि भोजन करै हैं, मनुष्य नाहीं पशु हैं। जो जिनशासनतैं विमुख व्रत नियम से रहित रात्रि-दिवस भोजन करै हैं सो परलोक विषैं कैसैं सुखी होंय ? जो दयारहित जीव जिनेन्द्रदेवकी, जिनधर्म की अर धर्मात्माओं की निंदा करैं हैं सो परभव में महा नरक में जाय हैं अर नरकतैं निकसकर तियँच तथा मनुष्य होंय सो दुर्गंध मुख होय हैं। मांस, मद्य, मधु निशि भोजन, चोरी अर परनारी जो सेवै हैं सो दोनों जन्म खोवैं हैं। जो रात्रिभोजन करै हैं सो हीन-आयु, व्याधि-पीडित, सुख-रहित, महादुःखी होय हैं। रात्रि भोजन के पापतैं, बहुतकाल जन्म मरणके दुःख पावै हैं, गर्भवास विषैं बसैं हैं, रात्रिभोजी अनाचारी शूकर, कूकर, गर्दभ, मार्जार, काग बनि नरक-निगोद, स्थावर, त्रस, अनेक योनियोंमें बहुत बहुत काल भ्रमण करै हैं, हजारों अवसर्पिणीकाल अर हजारों उत्सर्पिणी काल कुयोनिनविषैं दुःख भोगै हैं। जो कुबुद्धि निशिभोजन करै हैं सो निशाचर कहिए राक्षस-समान हैं अर जे भव्यजीव जिनधर्मको पाकर नियमविषैं तिष्ठै हैं सो समस्त पापोंको भस्मकर मोक्षपद को पावै हैं। जो व्रत लेयकरि भंग करै सो दुःखी ही हैं। जे अणुव्रतों में परायण रत्नत्रय के धारक श्रावक हैं ते दिवस विषैं ही भोजन करैं, दोषरहित योग्य आहार करैं। जे दयावान रात्रि भोजन न करैं ते स्वर्ग विषैं सुख भोगकर तहांतैं चयकर चक्रवर्त्यादिकके सुख भोगै हैं, शुभ है चेष्टा जिनकी, उत्तम व्रत-नियम चेष्टा के धरनहारे सौधर्मादि स्वर्ग विषैं ऐसे भोग पावैं जो मनुष्यों को दुर्लभ हैं अर देवोंतैं मनुष्य होय सिद्धपद पावैं हैं। कैसे मनुष्य होंय ? चक्रवर्ती, कामदेव, बलदेव, महामंडलीक, मंडलीक, महाराजा, राजाधिराज, महाविभूति के धनी, महागुणवान, उदारचित्त, दीर्घ आयु, सुन्दर रूप, जिनधर्मके मर्मी, जगतके हितु, अनेक नगर ग्रामादिकोंके अधिपति, नानाप्रकार के वाहनोंकर मंडित, सर्वलोकके वल्लभ, अनेक सामंतोंके स्वामी, दुस्सह तेजके धारनहारे ऐसे राजा होय हैं अथवा राजाओंके मंत्री पुरोहित सेनापति राजश्रेष्ठी तथा श्रेष्ठी बड़े उमराव महासामंत मनुष्यों में यह पद रात्रिभोजनके त्यागी पावै हैं। देवनिके इंद्र, भवनवासियों के इन्द्र, चक्रके धनी, मनुष्यों के इन्द्र महालक्षणों करि संपूर्ण दिन में भोजन लेनेतैं होय हैं। सूर्य सारिखे प्रतापी, चन्द्रमा सारिखे सौम्यदर्शन, अस्तको प्राप्त न होय प्रताप जिनका, देवनि-समान हैं भोग जिनके, ऐसे तेई होंई जे सूर्य अस्त भए पीछे भोजन न करैं। अर स्त्री रात्रि भोजन के पापतैं माता पिता भाई कुटुम्बरहित अनाथ कहिए पतिरहित अभागिनी,

शोक दरिद्र कर पूर्ण, रूक्ष फटे अधर. हस्त पादादि सूका शरीर, चिपटी नासिका, जो देखे सो ग्लानि करै, दुष्टलक्षण, बुरी, मांजरी, आंधी, लूली, गूंगी, बहरी, बावरी, कानी, चीपड़ी, दुर्गंधयुक्त, स्थूल अधर, खोटे कर्ण, भूरे ऊंचे बुरे सिर के केश, तूंबड़ीके बीज समान दांत, कुवर्ण, कुलक्षण, कांतिरहित, कठोर अंग, अनेक रोगोंकी भरी, मलिन फटे वस्त्र, उच्छिष्ट को भक्षणहारी, पराई मजूरी करणहारी नारी होय है। रात्रिभोजन की करणहारी नारी जो पति पावै तो कुरूप कुशील कोढ़ी, बुरे कान, बुरी नाक, बुरी आंख, चितावान, धन कुटुंब रहित ऐसा पावै। रात्रिभोजनतैं विधवा बालविधवा महा:दुःखवती, जल काष्ठादिक भारके वहनहारी, दुःखकरि भरै है उदर जाका, सर्व लोग करै हैं अपमान जाका, वचनरूप बसूलों करि छीला है चित्त जाका, अनेक फोड़ा फुनसी की धरणहारी, ऐसी नारी होय है। अर जे नारी शीलवंती, शांत है चित्त जिनका, दयावंती रात्रि भोजन का त्याग करै हैं, ते स्वर्ग विषें मनवांछित भोग पावें हैं। तिनकी आज्ञा अनेक देव देवी सिर पर धारै हैं, हाथ जोड़ कर सिर निवाय सेवा करै हैं। स्वर्ग में मनवांछित भोग भोग कर महा लक्ष्मी-वान ऊंच कुल में जन्म पावें हैं, शुभ लक्षण संपूर्ण सर्वगुणमंडित सर्वकला प्रवीण, देखन-हारों के मन और नेत्रों को हरणहारी, अमृतसमान वचन बोलै, आनन्दका उपजावनहारी, जिनके परिणवे की अभिलाषा चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव तथा विद्याधरों के अधिपति राखें, बिजुरी समान है कांति जिनकी, कमल समान है वदन जिनका, सुन्दर कुंडल आदि आभूषणनिकी धरणहारी, सुन्दर वस्त्रोंकी पहरनहारी, नरेन्द्रकी रानी दिनमें भोजन लेवेतैं होय हैं। जिनके मनवांछित अन्न धन होय हैं और अनेक सेवक नानाप्रकारकी सेवा करैं। जे दयावंती रात्रिविषें भोजन न करैं ते श्रीकांत सुप्रभा सुभद्रा लक्ष्मी तुल्य होवें। तातैं नर अथवा नारी नियमविषें है चित्त जिनका ते निशिभोजनका त्याग करैं। यह रात्रिभोजन अनेक कष्टका देनहारा है। रात्रिभोजन के त्यागविषें अति अल्प कष्ट है परन्तु याके फल-करि अति उत्कृष्ट होय है, तातैं विवेकी यह व्रत आदरैं, अपने कल्याणको कौन न बांछै। धर्म तो सुखकी उत्पत्ति का मूल है और अधर्म दुःखका मूल है, ऐसा जानकर धर्मको भजो, अधर्मको तजो। यह वार्ता लोकविषें समस्त बाल-गोपाल जानै हैं जो धर्मतैं सुख होय है अर अधर्मकरि दुःख होय है। धर्मका माहात्म्य देखो, जाकरि देवलोकके चये उत्तम मनुष्य होय हैं, जल-स्थलके उपजे जे रत्न तिनके स्वामी अर जगतकी मायातैं उदास परंतु कैयक-दिनतक महाविभूतिके धनी होय गृहवास भोगैं हैं, जिनके स्वर्ण रत्न वस्त्र धान्यनिके अनेक भंडार हैं, जिनके विभवकी बड़े २ सामंत नानाप्रकारके आयुधोंके धारक रक्षा करैं तिनके बहुत हाथी घोड़े रथ पयादे, बहुत गाय भैंस, अनेक देश ग्राम नगर, मनके हरनहारे पाँच इन्द्रियोंके विषय अर हंसनीकीसी चाल चलैं, अति सुन्दर शुभ लक्षण, मधुर शब्द, नेत्रोंको

प्रिय, मनोहर चेष्टाकी धरणहारी, नाना प्रकार आभूषण की धरणहारी स्त्री होय हैं। सकल सुखका मूल जो धर्म है ताहि कैयक मूर्ख जानैं ही नाहीं, तातैं तिनके धर्म का यत्न नाहीं अर कैयक मनुष्यसुनकर जानै हैं जो धर्म भला है परंतु पापकर्मके वशतैं अकार्यविषैं प्रवर्त्ते हैं, सुख का उपाय जो धर्म ताहि नाहीं सेवैं हैं। अर कैयक अशुभकर्मके उपशान्त होते उत्तम चेष्टाके धरणहारे श्रीगुरुके निकट जाय धर्म का स्वरूप उद्यमी होय पूछैं हैं। ते गुरु के वचन-प्रभावतैं वस्तु का रहस्य जानकर श्रेष्ठ आचरणकों आचरैं हैं। ये नियम जे धर्मात्मा बुद्धिमान पापक्रियातैं रहित होयकर करैं हैं ते महा गुणवंत स्वर्ग विषैं अद्भुत सुख भोगैं हैं, परंपराय मोक्ष पावै हैं। जे मुनिराजों को निरंतर आहार देय हैं अर जिनके ऐसा नियम है कि मुनि के आहारका समय टार भोजन करैं, पहिले न करैं ते धन्य हैं तिनके दर्शनकी अभिलाषा देव राखै हैं। दानके प्रभावकरि मनुष्य इन्द्रका पद पावैं अथवा मनवांछित सुख के भोक्ता इन्द्र के बराबर के देव होय हैं। जैसैं वटका बीज अल्प है सो बड़ा वृक्ष होय परणवै है, तैसैं दान तप अल्प भी महाफल के दाता हैं। सहस्रभट सुभट ने यह व्रत लिया हुता कि मुनि के आहारकी बेला उलंघकरि भोजन करूंगा सो एक दिन ऋद्धिके धारी मुनि आहार कों आए, सो निरंतराय आहार भया तब रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य सुभटके घर भए वह सहस्रभट धर्म के प्रसादतैं कुबेरकांत सेठ भया। सबके नेत्रों को प्रिय, धर्मविषैं जाकी बुद्धि सदा आसक्त है, पृथ्वीविषैं विख्यात है नाम जाका, उदार पराक्रमी, महा धनवान, जाके अनेक सेवक,जैसें पूर्णमासीका चंद्रमा तैसा कांतिधारी, परम-भोगोंका भोक्ता, सर्व शास्त्र में प्रवीण, पूर्वधर्मके प्रभावकरि ऐसा भया। बहुरि संसारतैं विरक्त होय जिनदीक्षा आदरी, संसारसे पार भया तातैं जे साधुके आहार के समयतैं पहिले आहारके न करनेका नियम धारैं ते हरिषेण चक्रवर्तीकी नाईं महा उत्सवको प्राप्त होय हैं। हरिषेण चक्रवर्ती याही व्रतके प्रभाव करि महा पुण्य उपार्जन को करि अनन्त लक्ष्मी का नाथ भया। ऐसे ही जे सम्यग्दृष्टि समाधान के धारी भव्य जीव मुनिके निकटजायकर एकबार भोजनका नियम करै हैं, ते एक भुक्तिके प्रभावकर स्वर्ग विमानविषैं उपजै हैं। जहां सदा प्रकाश है अर रात्रि दिवस नाहीं, निद्रा नाहीं, तहां सागरां पर्यंत अप्सराओंके मध्य रमैं हैं। मोतिनके हार, रत्नोंके कड़े, कटिसूत्र, मुकुट, बाजूबंद इत्यादि आभूषण पहरैं, जिनपर छत्र फिरैं, चमर ढुरैं ऐसे देवलोकके सुखभोग चक्रवर्त्यादि पद पावैं हैं। उत्तम व्रतों विषै आसक्त जे अणुव्रत के धारक श्रावक, शरीरको विनाशीक जानकर शांत भया है हृदय जिनका, अष्टमी चतुर्दशीका उपवास शुद्धमन होय प्रोषध संयुक्त धारै हैं ते सौधर्मादि सोलहवें स्वर्ग विषैं उपजै हैं बहुरि मनुष्य होय भववनको तजै हैं, मुनिव्रतके प्रभावकरि अहमिंद्रपद तथा मुक्तिपद पावै हैं। जे व्रत शीलगुण तपकर मंडितहैं ते साधु जिनशासनके

प्रसादकरि सर्वकर्मरहित होय सिद्धनिका पद पावै हैं। जे तीनों कालविषें जिनेंद्रदेव की स्तुति कर मन वचन काय करि नमस्कार करै हैं अर सुमेरु पर्वत सारिखे अचल मिथ्यास्वरूप पवनकर नाहीं चलै हैं, गुणरूप गहने पहरैं, शीलरूप सुगंध लगावै हैं सो कईएक भव उत्तम देव, उत्तम मनुष्यके सुख भोगकर परम स्थान को प्राप्त होय हैं। ये इन्द्रियनिके विषय जीव ने जगतविषैं अनंतकाल भोगे तिन विषयोंसे मोहित भया विरक्त भाव को नाहीं भजै है, यह बड़ा आश्चर्य है। इन विषयों को विष मिश्रित अन्न समान जानकर पुरुषोत्तम कहिए चक्रवर्ती आदि उत्तम पुरुष भी सेवै हैं। संसार में भ्रमते हुवे इस जीव को जो सम्यक्त्व उपजै और एक भी नियम व्रत साधै तो यह मुक्तिका बीज है और जिन प्राणधारियों के एक भी नियम नाहीं ते पशु हैं अथवा फूटे कलश हैं, गुण रहित हैं। अर जे भव्य जीव संसार समुद्र को तिरा चाहै हैं, ते प्रमाद रहित होय गुण अर व्रतनिकरि पूर्ण सदा नियमरूप रहैं। जे मनुष्य कुबुद्धि खोटे कर्म नाहीं तजैं हैं अर व्रत नियम को नाहीं भजै हैं ते जन्म के अंधे की नाईं अनंतकाल भववनविषैं भटकै हैं। या भांति जे श्रीअनंतवीर्य केवली तेई भए तीन लोकके चंद्रमा तिनके वचनरूप किरणके प्रभावतैं देव विद्याधर भूमिगोचरी मनुष्य तथा तिर्यंच सर्व ही आनन्द को प्राप्त भए। कईएक उत्तम मानव मुनि भए, श्रावक भए तथा सम्यक्त्व को प्राप्त भए और कई एक उत्तम तिर्यंच भी सम्यक्दृष्टि श्रावक अणुव्रतधारी भए अर चतुरनिकायके देवों में कई एक सम्यग्दृष्टि भए क्योंकि देवनिकैं व्रत नाहीं।

अथानंतर एक धर्मरथ नामा मुनि रावणको कहते भए—हे भद्र कहिये भव्यजीव ! तू भी अपनी शक्ति प्रमाण किछु नियम धारण कर। यह धर्मरत्न का द्वीप है अर भगवान केवली महा महेश्वर हैं, या रत्नद्वीपतैं किछु नियमरूप रत्न ग्रहण कर, काहेको चिंताके भारके वशि होय रह्या है, महापुरुषनिके त्याग खेदका कारण नाहीं। जैसें कोई रत्नद्वीप में प्रवेश करै अर वाका मन भ्रमै जो में कैसा रत्नलूं तैसें याका मन आकुलित भया जो मैं कैसा व्रत लूं। यह रावण भोगासक्त सो याके चित्त में यह चिंता उपजी जो मेरे खान पान तो सहज ही पवित्र है, सुगन्ध मनोहर पौष्टिक शुभस्वाद, मांसादि मलिन वस्तुके प्रसंगतैं रहित आहार है अर अहिंसाव्रत आदि श्रावकका एकहू व्रत करिवे समर्थ नाहीं, मैं अणुव्रत हू धारवे समर्थ नाहीं तो महाव्रत कैसे धारूं, माते हाथी समान चित्त मेरा सर्व वस्तु विषैं भ्रमता फिरै है, में आत्मभावरूप अंकुशतैं याकों वश करवे समर्थ नाहीं। जे निर्ग्रंथ का व्रत धरै हैं, ते अग्निकी ज्वाला पीवै हैं अर पवन को वस्त्र में बांधै हैं अर पहाड़ को उठावै हैं। मैं महाशूरवीर भी तप व्रत धरने समर्थ नाहीं। अहो धन्य हैं वे नरोत्तम! जो मुनि व्रत धारै हैं। मैं एक यह नियम धरूं जो परस्त्री अत्यंत रूपवती भी

होय तो ताहि बलात्कार करि न इच्छूं अथवा सर्वलोक में ऐसी कौन रूपवती नारी है जो मोहि देखकर मनमथ की पीडा विकल न होय अथवा ऐसी कौन परस्त्री है जो विवेकी जीवनिके मन को वश करै। कैसो है परस्त्री, परपुरुष के संयोगकरि दूषित है अंग जाका, स्वभाव ही करि दुर्गंध विष्टा की राशी ताविषैं कहा राग उपजै ? ऐसा मन में विचार भाव सहित अनंतवीर्य केवली कों प्रणाम करि देव मनुष्य असुरों की साक्षितामें प्रगट ऐसा वचन कहता भया, हे भगवान ! इच्छारहित जो पर-नारी ताहि मैं न सेऊँ, यह मेरे नियम है। अर कुंभकरण अर्हंत, सिद्ध, साधु, केवली भाषित धर्मका शरण अंगीकार करि, सुमेरु पर्वत सारिखा है अचल चित्त जाका, सो यह नियम करता भया जो मैं प्रातः ही उठकर प्रतिदिन जिनेन्द्रकी अभिषेक पूजा स्तुति कर मुनिको विधिपूर्वक आहार देयकरि आहार करूंगा अन्यथा नाहीं। मुनि के आहारकी बेला पहिले सर्वथा भोजन न करूंगा। अर सर्व पुरुष, साधुनिकों नमस्कार करि और भी घने नियम लिये। अर देव कहिये कल्पवासी, असुर कहिये भवनत्रिक अर विद्याधर मनुष्य, हर्षतैं प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनके, सर्व केवलीको नमस्कार कर अपने स्थान गए। रावण भी इंद्रकीसी लीला धरैं प्रबल पराक्रमी लंकाकी ओर पयान करता भया अर आकाशके मार्ग शीघ्र ही लंकाविषैं प्रवेश किया। कैसा है रावण ? समस्त नर-नारियोंके समूहने किया है गुण वर्णन जाका अर कैसी है लंका, वस्त्रादिकरि बहुत समारी है। राजमहलोंमें प्रवेश कर सुख से तिष्ठते भए। राजमंदिर सर्व सुख का भरया है। पुण्याधिकारी जीवनिके जब शुभकर्मका उदय होय है, तब नाना प्रकारकी सामग्रीका विस्तार होय है। गुरुके मुखतैं धर्म का उपदेश पाय परमपदके अधिकारी होय हैं ऐसा जानकरि, जिनश्रुतमें उद्यमी है मन जिनका, ते बारंबार निज-परका विचार-कर धर्मका सेवन करैं ; विनयकर जिन शास्त्र सुननेवालोंके जो ज्ञान है सो रविसमान प्रकाश को धरै है, मोहतिमिरका नाश करै है

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषैं अनंतवीर्य केवली के धर्मोपदेश का वर्णन करने वाला चौदहवां पर्व पूर्ण भया ।। १४ ।।

(पंचदश पर्व)

[अंजनासुन्दरी और पवनंजयकुमार के विवाह का वर्णन]

अथानंतर ताही केवली के निकट हनुमानने श्रावकके व्रत लिए अर विभीषणने भी व्रत लिए, भाव शुद्ध होय व्रत नियम आदरे। जैसा सुमेरु पर्वतका स्थिरपना होय ताहूतैं अधिक हनुमानका शील अर सम्यक्त परम निश्चल प्रशंसा योग्य है। जब गौतम स्वामी ने हनुमान का अत्यंत सौभाग्य आदि वर्णन किया, तब मगध देशके राजा श्रेणिक हर्षित होय गौतम स्वामीसों पूछते भए। हे भगवन् गणाधीश ! हनुमान कैसे लक्षणोंका अरआहारा,

कौन का पुत्र, कहाँ उपज्या ? मैं निश्चय कर ताका चारित्र सुन्या चाहूं हूँ । तदि सत्पुरुषनिकी कथाकरि उपज्या है प्रमोद जाकों ऐसे इंद्रभूति कहिए गौतमस्वामी आह्लादकरि वचन कहते भए हे नृप ! विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणी पृथ्वीसों दश योजन ऊंची तहां आदित्यपुर नामा मनोहर नगर, तहां राजा प्रह्लाद, रानी केतुमती तिनके पुत्र वायुकुमार ताका विस्तीर्ण वक्षस्थल लक्ष्मीका निवास । सो वायुकुमारकों संपूर्ण यौवन धरे देखकरि पिताके मनविषें इनके विवाहकी चिंता उपजी । कैसा है पिता ? परंपराय संतान के बढ़ावनेकी है वांछा जाके । अब जहां यह वायुकुमार परणेगा सो कहिए है । भरतक्षेत्र में समुद्रतें पूर्व दक्षिण दिशाके मध्य दंतीनामा पर्वत, जाके ऊंचे शिखर आकाशतें लगि रहे हैं, नाना प्रकार वृक्ष औषधि तिनकरि संयुक्त अर जल के नीझरने झरैं हैं, जहां इंद्र-तुल्य राजा महेंद्र विद्याधर तानैं महेंद्रपुर नगर बसाया । राजाके हृदयवेगा रानी ताकै अरिंदमादि सौ पुत्र महागुणवान अर अंजनासुन्दरी पुत्री सो मानों त्रैलोक्यकी सुन्दरी जे स्त्री तिनके रूप एकत्र करि बनाई है । नील कमल सारिखे हैं नेत्र जाके, कामके बाण समान तीक्ष्ण दूरदर्शी कर्णांतक कटाक्ष अर प्रशंसा योग्य करपल्लव, रक्तकमल समान चरण हस्तीके, कुम्भस्थल समान कुच अर केहरी समान कटि, सुन्दर नितंब, कदलीस्तंभ समान कोमल जंघा, शुभलक्षण प्रफुल्लित मालती समान मृदु बाहुयुगल, गंधर्वादि सर्व कला की जाननहारी मानों साक्षात् सरस्वती ही है अर रूपकरि लक्ष्मी समान सर्वगुणमंडित एक दिवस नवयौवन में कंदुक क्रीड़ा करती भ्रमण करती सखियों सहित रमती पिता ने देखी ,सोजैसें सुलोचनाकों देखकरराजा अकंपनको चिंता उपजी हुती, तैसें अंजनाको देख राजा महेंद्र को चिंता उपजी । तब याके वर ढूँढने विषें उद्यमी भए । संसार विषें माता पिताको कन्या दुःखका कारण है । जे बड़े कुल के पुरुष हैं तिनकों कन्या की ऐसी चिंता रहै है कि मेरी कन्या प्रशंसा योग्य पति को प्राप्त होय अर बहुत काल याका सौभाग्य रहै अर कन्या निर्दोष सुखी रहै । राजा महेंद्रने अपने मंत्रीनिसों कही–जो तुम सर्व वस्तुविषैं प्रवीण हो, कन्या योग्य श्रेष्ठवर मोहि बतावो । तदि अमरसागर मंत्रीने कही-यह कन्या राक्षसोंका अधीश जो रावण ताहि देवो । सर्व विद्याधरनिका अधिपति ताका संबंध पाय तुम्हारा प्रभाव समुद्रांत पृथ्वीविषें होयगा अथवा इंद्रजीत या मेघनाद को देवो अर यह भी तुम्हारे मनविषें न आवै तो कन्या का स्वयंवर रचो ऐसा कहकरि अमरसागर मंत्री चुप रह्या । तब सुमतिनामा मंत्री महापंडित बोल्या–रावणके तो स्त्री अनेक हैं अर बहु महाअहंकारी ताकों परणावें तो भी आपसमें अधिक प्रीति न होय अर कन्या की वय छोटी अर रावणकी वय अधिक सो बनै नाहीं । इंद्रजीत तथा मेघनाद को परणावें तो उन दोनोंमें परस्पर विरोध होय, आगें राजा श्रीषेणके पुत्रनिविषें विरोध भया, तातें यह न करना ।

तब ताराधन्य मंत्री कहता भया—दक्षिण श्रेणी विषें कनकपुर नामा नगर है तहाँ राजा हिरण्यप्रभ ताके रानी सुमना, पुत्र सौदामिनीप्रभ सो महायशवंत, कीर्तिधारी, नवयौवन, नववय, अति सुन्दर रूप, सर्व विद्या कला का पारगामी, लोकनिके नेत्रनिकों आनंदकारी, अनुपम गुण, अपनी चेष्टातें हर्षित किया है सकल मंडल जानै अर ऐसा पराक्रमी है जो सर्व विद्याधर एकत्र होंय तासों लड़ें तो भी ताहि न जीतें मानों शक्ति के समूहकरि निर्माप्या है। सो यह कन्या ताहि देहु। जैसी कन्या तैसा वर, योग्य संबंध है। यह वार्ता सुनकर संदेहपराग नामा मंत्री माथा धुनि, आंख मींचकर कहता भया कि यह सौदामिनी-प्रभ! महाभव्य है ताके निरंतर यह विचार है कि यह संसार अनित्य है सो संसार का स्वरूप जान बरस अठारह में वैराग्य धारेगा, विषयाभिलाषी नाहीं, भोगरूप गजबंधव तुड़ाय गृहस्थीका त्याग करेगा, बाह्याभ्यंतर परिग्रहका त्यागकरि केवलज्ञान कों पाय मोक्ष जायगा, सो याहि परणावै तो कन्या पति विना शोभा न पावै, जैसे चंद्रमा विना रात्रि नीकी न दीखै। कैसा है चन्द्रमा? प्रकाश करणहारा है। इंद्र के नगर समान जो आदित्यपुर नगर है, रत्ननिकरि सूर्य-समान देदीप्यमान है तहां राजा प्रह्लाद महाभोगी पुरुष, चंद्रसमान कांतिका धारी, ताकी रानी केतुमती कामकी ध्वजा, तिनके वायुकुमार कहिए पवनंजय नामा पुत्र, पराक्रमका समूह, रूपवान, शीलवान, गुणनिधान, सर्व कलाका पारगामी, शुभ शरीर, महावीर, खोटी चेष्टासों रहित, ताके समस्त गुण सर्व लोकनिके चित्त विषें व्याप रहे हैं, हम सौ वर्ष में हू न कह सकें, तातें आप ही वाहि देख लेहु। पवनंजय के ऐसे गुण सुन सर्व ही हर्ष को प्राप्त भए। कैसा है पवनंजय? देवनिके समान है द्युति जाकी। जैसें निशाकर को किरणोंकर कुमुदिनी प्रफुल्लित होय तैसें कन्या भी यह वार्ता सुनकर प्रफुल्लित भई।

अथानंतर वसंत ऋतु आई, स्त्रियोंके मुखकमलकी लावण्यताकी हरणहारी शीत-ऋतु गई, कमलिनी प्रफुल्लित भई, नवीन कमलों के समूह की सुगंधताकरि दसों दिशा सुगंधमय भई, कमलों पर भ्रमर गुंजार करते भये। कैसे हैं भ्रमर? मकरंद कहिये पुष्पनि की सुगंध रज ताके अभिलाषी हैं। वृक्षनिके पल्लव पत्र पुष्पादि नवीन प्रगट भए मानों वसंत के लक्ष्मी के विलापसों हर्ष के अंकुर ही उपजे हैं अर आम्र मौल आए, तिनपर भ्रमर भ्रमें हैं, लोकनिके मनकों कामवाण बींधते भए, कोकिलानिके शब्द मानिनी नायिकानिके मान का मोचन करते भए। वसंत समय परस्पर नर-नारियनके स्नेह बढ़ता भया। हरिण जो है सो दूब के अंकुर उखाड़ हिरणी के मुख में देता भया। सो ताकों अमृत समान लागी, अधिक प्रीति होती भई अर बेल वृक्षनितें लिपटी, कैसी हैं बेल? भ्रमर ही है नेत्र जिनके। दक्षिण दिशा की पवन चाली सो सब ही को सुहावनो लागी। पवन के प्रसंग

करि केसर के समूह पड़े सो मानों वसंतरूपी सिंहके केशों के समूह ही हैं। महा सघन कौरव जाति के जे वृक्ष तिन पर भ्रमरों के समूह शब्द करै हैं मानों वियोगिनी नायिकानि के मन को खेद उपजायवेको वसंत ने प्रेरे हैं अर अशोक जाति के वृक्षनिकी नवीन कोंपल लहलहाट करै हैं सो मानों सौभाग्यवती स्त्रियोंके राग की राशि ही भासै हैं अर वनों में केसूला (टेसू) अत्यन्त फूल रहे हैं सो मानों वियोगिनी नायिकानि के मन कों दाह उपजावने को अग्नि समान हैं। दसों दिशाविषैं पुष्पनिके समूहकी सुगंध रज ताहि मकरंद कहिये सो परागकरि ऐसी फैल रही हैं मानों वसंत जो है पटवास कहिए सुगंध चूर्ण अबीर ताकरि महोत्सव करै है ताकरि एक दिन भी स्त्री पुरुष परस्पर वियोग कों नहीं सहार सकैं हैं। ता ऋतु विषैं विदेश गमन कैसे रुचै, ऐसी रागरूप बसंत ऋतु प्रगट भई। तासमय फागुण सुदि अष्टमीसों लेकर पूर्णमासी तक अष्टान्हिका के दिन महामंगल-रूप हैं, सो इन्द्रादिक देव शची आदि देवी पूजा के अर्थि नंदीश्वरद्वीप गए अर विद्याधर पूजा की सामग्री लेयकर कैलाश गये। श्रीऋषभदेव के निर्वाणकल्याणक करि वह पर्वत पूजनीक है, सो समस्त परिवार सहित अंजनाके पिता राजा महेंद्र हू गए। तहां भगवान की पूजाकरि स्तुतिकरि अर भावसहित नमस्कारकर सुवर्णकी शिला पर सुखसों विराजे। अर राजा प्रह्लाद पवनंजय के पिता तेहु भरत चक्रवर्ती के कराये जिनमंदिर तिनकी वंदना के अर्थि कैलाश पर्वत पर गए सो वंदनाकरि पर्वतपर विहार करते राजा महेन्द्रकी दृष्टि विषैं आए। सो महेन्द्रको देखकर प्रीतिरूप है चित्त जिनका, प्रफुल्लित भए हैं नेत्र जिनके, ऐसे जे प्रह्लाद ते निकट आए। तब महेंद्र उठकरि सन्मुख आय कर मिले। एक मनोज्ञ शिला पर दोनों हितसौं तिष्ठे, परस्पर शरीरादि कुशल पूछते भए। तब राजा महेन्द्र कही, हे मित्र ! मेरे कुशल काहेकी ? कन्या वर-योग्य भई सो ताके परणावनेकी चिंताकरि चित्त व्याकुल रहै है, जैसी कन्या है तैसा वर चाहिए अर बड़ा घर चाहिए, कौनकों दें, यह मन भ्रमै है। रावण कों परणाइए तो ताके स्त्री बहुत हैं अर आयु अधिक है अर जो ताके पुत्रों विषैं देय तो तिनमें परस्पर विरोध होय। अर हेमपुर का राजा कनकद्युति ताका पुत्र सौदामिनीप्रभ कहिए विद्युत्प्रभ सो थोड़े ही दिन विषैं मुक्ति कों प्राप्त होयगा, यह वार्ता सर्व पृथ्वी पर प्रसिद्ध है, ज्ञानी मुनि ने कही है। हमने भी अपने मंत्रियों के मुखतें सुनी है। अब हमारे यह निश्चय भया है कि आपका पुत्र पवनंजय कन्याके वरिवे योग्य है, यही मनोरथ करि हम यहां आए हैं, सो आपके दर्शन कर अति आनंद भया, जाकरि कछु विकल्प मिटया। तब प्रह्लाद बोले, मेरे भी चिंता पुत्रके परणावने की है तातैं मैं भी आपका दर्शन करि अर वचन सुन वचनतैं अगोचर सुखकों प्राप्त भया, जो आप आज्ञा करो सो ही प्रमाण है। मेरे पुत्रका बड़ा भाग्य जो आपने कृपा

करी, वर कन्या का विवाह मानसरोवरके तट पर करना ठहराया। दोनों सेनामें आनंदके शब्द भए, ज्योतिषियों ने तीन दिन का लग्न थाप्या।

अथानंतर पवनंजयकुमार अंजना के रूपकी अद्‌भुतता सुनकरि तत्काल देखने को उद्यमी भया, तीन दिन रह न सक्या, संगमकी अभिलाषाकरियह कुमारकाम के वश हुआ, काम के दस वेगों कर पूरित भया। प्रथम विषय की चिंताकरि व्याकुल भया अर दूजे वेग देखने की अभिलाषा उपजी, तीजे वेग दीर्घ उच्छ्‌वास नाखने लग्या, चौथे वेग कामज्वर उपज्या मानों चंदन के अग्नि लागी, पांचवें वेग अंग खेदरूप भया, सुगन्ध पुष्पादितैं अरुचि उपजी, छठे वेग भोजन विष समान बुरा लाग्या, सातवें वेग ताको कथाकी आसक्तताकर विलाप उपज्या, आठवें वेग उन्मत्त भया, विभ्रमरूप सर्पकर डस्या गीत नृत्यादि अनेक चेष्टा करने लाग्या, नवमें वेग महामूर्च्छा उपजी, दसवें वेग दुःख के भारसों पीड़ित भया। यद्यपि यह पवनंजय विवेकी था, तथापि कामके प्रभावकरि विह्वल भया सो काम को धिक्कार हो, कैसा है काम ? मोक्षमार्गका विरोधी है, काम के वेगकरि पवनंजय धीरज रहित भया, कपोलनिसे कर लगाय शोकवान होय बैठ्या, पसेव टपके हैं कपोलनितैं जाके, उष्ण निश्वास कर मुरझाए हैं होठ जाके अर शरीर कंपायमन भया, बारंबार जँभाई लेने लग्या अर अत्यंत अभिलाषा शल्यतैं चिंतावान भया। स्त्रीके ध्यानतैं इंद्रियां व्याकुल भई, मनोज्ञ स्थान भी याकों अरुचिकारी भासै, चित्तकी शून्यता धारता संता, तजी हैं समस्त शृंगारादि क्रिया जानें। क्षणमात्रविषैं तो आभूषण पहिरै, क्षणमात्रविषैं खोल डारै, लज्जा-रहित भया। क्षीण होगया है समस्त अंग जाका, ऐसो चिंता धारता भया कि वह समय कब होय जो मैं वा सुन्दरी कों अपने पास बैठी देखूं अर वाके कमलतुल्य गात्रको स्पर्श करूं वा कामिनीके रसकी वार्ता करूं, वाकी बात ही सुन करि मेरी यह दशा भई है, न जानिए और कहा होय, वह कल्याणरूपिणी जाके हृदयमें वसै है ता हृदय में दुःख रूप अग्निका दाह क्यों होय ? स्त्री तो निश्चयसेती स्वभावतैं ही कोमलचित्त होय है, मोहि दुःख देवेअर्थि चित्त कठोर क्यों भया ? यह काम पृथ्वी विषैं अनंग कहावै है, जाके अंग नाहीं सो अंग विना ही मोहि अंगरहित करै है, मार डारै है; जो याके अंग होय तो न जाने कहा करै, मेरी देहविषैं घाव नाहीं परंतु वेदना बहुत है। मैं एक जगह बैठ्या हूँ अर मन अनेक जगह भ्रमै है। ये तीनदिन वाहि देखे विना मोहि कुशलसों न जांय तातैं ताके देखन का उपाय करूँ, जाकरि मेरे शांति होय। अथवा सर्व कार्योंमें मित्र-समान जगतविषैं और आनंदका कारण कोई नाहीं, मित्रतैं सर्व कार्य सिद्ध होय हैं ऐसा विचार अपना जो प्रहस्त-नामा मित्र सर्व विश्वासका भाजन तासों पवनंजय गदगद वाणी करि कहता भया। कैसा है मित्र ? किनारे ही बैठ्या है, छायाकी मूर्ति ही है, अपना ही शरीर मानों विक्रियाकरि

दूजा शरीर होय रह्या है ताहि या भांति कही हे मित्र ! तू मेरा सर्व अभिप्राय जानै है तोहि कहा कहूं ? परंतु यह मेरी दुःख अवस्था मोहि वाचाल करै है। हे सखे! तुम बिना यह बात कौनसों कहीं जाय ? तू समस्त जगतकी रीति जानै है। जैसें किसान अपना दुःख राजासों कहै अर शिष्य गुरुसों कहै अर स्त्री पतिसों कहै अर रोगी वैद्यसों कहै अर बालक मातासों कहै तो दुःख छूटै तैसें बुद्धिमान अपने मित्रसों कहै, तातें मैं तोहि कहूँ हूँ। वह राजा महेंद्रकी पुत्री ताको श्रवण कर ही कामबाणकरि मेरी विकल दशा भई है जो ताके देखे विना मैं तीन दिन निवाहिवे समर्थ नाहीं, तातें कोई ऐसा यत्नकर जो मैं वाहि देखूं, ताहि देखे विना मेरे स्थिरता न आवै अर मेरी स्थिरतासों तोहि प्रसन्नता होय, प्राणियों को सर्व कार्य से जीतव्य वल्लभ है; क्योंकि जीतव्य के होते संते आत्मलाभ होय है। या भांति पवनंजय ने कही तब प्रहस्त मित्र हंसे, मानों मित्र के मनका अभिप्रायपाकरि कार्य सिद्धिका उपाय करते भए। हे मित्र ! बहुत कहनेकरि कहा ? अपने मांही भेद नाहीं, जो करना होय ताकरि ढील न करना, या भांति तिन दोनोंके बचनालाप होय हैं, एते ही सूर्य मानों इनके उपकार निमित्त अस्त भया तब सूर्य के नियोगसों दिशाएं काली पड़ गईं, अंधकार फैल गया, क्षणमात्रमें नीला वस्त्र पहिरे निशा प्रगट भई। तब रात्रि के समय उत्साह सहित मित्रको पवनंजय कहते भए। हे मित्र ! उठो, आवो तहां चलें, जहां वह मन की हरणहारी प्राणवल्लभा तिष्ठै है। अब ये दोनों मित्र विमानमें बैठि आकाशके मार्ग चाले, मानों आकाशरूप समुद्र के मच्छ ही हैं, क्षणमात्रविषैं जाय अंजनाके सतखणे महल पर चढ़ि झरोखों में मोतिनकी झालरोंके आश्रय छिप बैठे, अंजना सुन्दरीको पवनंजय कुमार ने देख्या, पूर्णमासी के चंद्रमा के समान है मुख जाका, मुख की जोतिसों दीपक मंद ज्योति होय रहे हैं अर श्याम श्वेत अरुण त्रिविध रंग को लिए नेत्र महा सुन्दर हैं, मानों कामके बाण ही हैं अर कुच ऊंचे महा मनोहर शृंगार रस के भरे कलश ही हैं, नवीन कोंपल समान लाल सुन्दर सुलक्षण हैं हस्त अर पांव जाके अर नखों की कांतिकरि मानों लावण्यताको प्रगट करती शोभै है अर शरीर महासुन्दर है, अति नाजुक क्षीण कटि कुचों के भारनितैं मति कदाचित् भग्न हो जाय ऐसी शंकाकरि मानों त्रिबलीरूप डोरीतैं प्रतिबद्ध है अर जाकी जंघा लावण्यताको धरै हैं, सो केलेहूतैं अति कोमल मानों कामके मंदिरके स्तंभ ही हैं सो मानों वह कन्या चांदनी रात ही है, मुक्ताफलरूप नक्षत्रनिकरि इंदीवर-कमल समान है रूप जाका। सो पवनंजयकुमार, एकाग्र लगे हैं नेत्र जाके, अंजना को भले प्रकार देख सुख की भूमिकों प्राप्त भया। ताही समय वसंततिलका नामा सखी महाबुद्धि-वती अंजनासुन्दरीतैं कहती भई—हे सुरूपे ! तू धन्य है जो तेरे पिता ने तुझे वायुकुमारको दीनी, ते वायुकुमार महा प्रतापी हैं, तिनके गुण चंद्रमाकी किरण समान उज्ज्वल हैं, तिन-

करि समस्त जगत व्याप्त होय रह्या है, तिनके गुण सुन अन्य पुरुषों के गुण मंद भासैं हैं। जैसैं समुद्र में लहर तिष्ठै तैसैं तू वा योधा के अंग विषैं तिष्ठेगी। कैसी है तू ? महामिष्ट-भाषिणी, चन्द्रकांति, रत्ननिकी प्रभा को जीतैं ऐसी कांति तेरी, तू रत्नकी धरा रत्नाचल पर्वतके तटविषैं पड़ी तुम्हारा संबंध प्रशंसाके योग्य भया, याकरि सर्वही कुटुम्बके जन प्रसन्न भए। याभाँति जब पतिके गुण सखीनें गाए तब वह लाजकी भरी कटोरी चरणनिके नखकी ओर नीचे देखती भई, आनन्दरूप जलकरि हृदय भर गया अर पवनंजय कुमारहू, हर्षतैं फूल गए हैं नेत्रकमल जाके, हर्षित भया है वदन जाका।

ता समय एक मिश्रकेशी नामा दूजी सखी होंठ दाबिकर चोटी हलायकर बोली कि अहो परम अज्ञान तेरा ! यह कहा पवनंजय का संबंध सराह्या जो विद्युत्प्रभ कुंवरसों संबंध होता तो अतिश्रेष्ठ था, जो पुण्य के योगतैं कन्याका विद्युत्प्रभ पति होता तो याका जन्म सफल होता। हे वसंतमाला ! विद्युतप्रभ और पवनंजय में इतना भेद है जितना समुद्र अर गोष्पदमें भेद है। विद्युत्प्रभकी कथा बड़े बड़े पुरुषों के मुखतैं सुनी है। जैसैं मेघ के बूंद की संख्या नाहीं तैसैं ताके गुणनिका पार नाहीं। वह नवयौवन है। महा सौम्य, विनयवान, दैदीप्यमान, प्रतापवान्, गुणवान्, रूपवान, विद्यावान् बलवान्, सर्व जगत चाहै है दर्शन जाका, सर्व यही कहै हैं कि यह कन्या वाहि देनी थी सो कन्याके बाप ने सुनी— वह थोड़े ही वर्ष में मुनि होयगा तातैं संबंध न किया सो भला न किया, विद्युत्प्रभका संयोग एक क्षणमात्र ही भला अर क्षुद्र पुरुषका संयोग बहुत काल भी किस अर्थ ? यह वार्ता सुनकर पवनंजय क्रोधरूप अग्निकर प्रज्वलित भए, क्षणमात्र में और ही छाया होय गई, रसतैं विरस भाय गया, लाल आंखैं होय गई, होंठ डसकर तलवार म्यानसों काढ़ी अर प्रहस्त मित्रसों कहते भए कि याकों हमारी निंदा सुहावै अर यह दासो ऐसे निंद्य वचन कहै अर यह सुनै सो इन दोनोंका सिर काट डारूं, विद्युत्प्रभ इनके हृदय का प्यारा है सो कैसें सहाय करेगा। यह वचन पवनंजय के सुन प्रहस्त मित्र रोषकर कहता भया— हे सखे ! हे मित्र ! ऐसे अयोग्य वचन कहनेकरि कहा ? तिहारी तलवार बड़े सामंतनिके सीस पर पड़ै, स्त्री अबला अवध्य है तापर कैसें पड़ै ? यह दुष्ट दासी इनके अभिप्राय विना ऐसे कहै है, तुम आज्ञा करो तो या दासीको एक दंडकी चोटसों मार डालूं परन्तु स्त्रीहत्या, बालहत्या, पशुहत्या, दुर्बल मनुष्य की हत्या इत्यादि शास्त्रमें वर्जनीय कही है। ये वचन मित्र के सुनकर पवनंजय क्रोध को भूल गए अर मित्रको दासी पर क्रूर देखिकर कहते भए। हे मित्र ! तुम अनेक संग्रामके जीतनहारे, यशके अधिकारी, माते हाथियों के कुंभस्थल विदारन हारे तुमको दीन पर दया ही करनी योग्य है अर सामान्य पुरुष भी स्त्री हत्या न करें तो तुम कैसें करो। जे बड़े कुल में उपजे पुरुष हैं अर गुणोंकरि प्रसिद्ध

हैं, शूरवीर हैं, तिनका यश अयोग्य क्रियातैं मलिन होय है तातैं उठो, जा मार्ग आए ताही मार्ग चलो; जैसें छाने आए हुते तैसें ही चाले। पवनंजयके मन में भ्रांति पड़ी कि या कन्याको विद्युत्प्रभ ही प्रिय है, तातैं वाकी प्रशंसा सुनै है, हमारी निंदा सुनै है, जो याहि न भावै तो दासी काहेकों कहै, यह रोष धर अपने कहे स्थानक पहुंचे। पवनंजयकुमार अंजनासौं अति फीके पड़ गए, चित्तमें ऐसे चितवते भए कि दूजे पुरुषका है अनुराग जाकों ऐसी जो अंजना सो विकराल नदीकी नाईं दूर हीतैं तजनी। कैसी है वह अजनारूप नदी ? संदेहरूप जो विषम भंवर तिनकों धारै है अर खोटे भावरूप जे ग्राह तिनसों भरी है अर वह नारी वनी समान है, अज्ञानरूप अंधकारसों भरी इंद्रियरूप जे सर्प तिनको धरै है, पंडितनिकों कदाचित् न सेवना। खोटे राजा की सेवा और शत्रु के आश्रय जाना और शिथिल मित्र और अनासक्त स्त्री तिनतैं सुख कहां ? देखो जे विवेकी हैं ते इष्ट बन्धु तथा सुपुत्र अर पतिव्रता नारी इनका भी त्यागकर महाव्रत धारै हैं और शूद्र पुरुष कुसंग भी नहीं तजै हैं। मद्यपायी वैद्य और शिक्षारहित हाथी अर निःकारण वैरी, क्रूरजन अर हिंसारूप धर्म अर मूर्खनितैं चर्चा अर मर्यादा का उलंघना, निर्दयी देश, बालक राजा, परपुरुष-अनुरागिनी स्त्री, इनको विवेकी तजें। या भांति चिंतवन करता पवनंजयकुमार ताकै जैसें दुलहनिसों प्रीति गई तैसें रात्रि हू गई अर पूर्व दिशा विषै संध्या प्रगट भई, मानो पवनंजयने अंजनाका राग छोड्या सो भ्रमता फिरै है। भवार्थ—रागका स्वरूप लाल है अर इनतैं जो राग मिट्या सो तानैं संध्या के मिसकरि पूर्व दिशा में प्रवेश किया है। अर सूर्य ऐसा आरक्त उग्या जैसें स्त्री के कोपतैं पवनंजयकुमार कोप्या। कैसा है सूर्य ? तरुण बिबको धरै है। बहुरि जगत की चेष्टा का कारण है। तब पवनंजयकुमार प्रहस्त मित्रकों कहते भए, अत्यंत अरुचिकों धरे अंजनासौं विमुख है मन जाका। हे मित्र ! यहां अपने डेरे हैं सो यहांतैं वाका स्थानक समीपहै। सो यहां सर्वथा न रहना, ताको स्पर्श कर पवन आवै सो मोहि न सुहावै, तातैं उठो, अपने नगर चालें, ढील करनी उचित नाहीं। तब मित्र कुमारकी आज्ञा प्रमाण सेना के लोगों को पयानकी आज्ञा करता भया। समुद्र-समान सेना रथ घोड़े हाथी पयादे इनका बहुत शब्द भया। कन्या का निवास नजीक ही है सो सेवाके पयान के शब्द कन्याके कानमें पड़े, तब कुमार का कूच जानकर कन्या अति दुखित भई। वे शब्द कान को ऐसे बुरे लागे जैसें वज्रकी शिला कानमें प्रवेश करै अर ऊपरसौं मुद्गरनिकी घात पड़ै। मनमें विचारती भई। हाय हाय ! मोहि पूर्वोपार्जित कर्मने महा-निधान दिया था सो छिनाय लिया, कहा करूं, अब कहा होय, मेरे मनोरथ हुता जो इस नरेन्द्रके साथ क्रीड़ा करूंगी सो और ही भाँति दृष्टि आवै है सो अपराध कछु न जान पड़ै है परंतु यह मेरी वैरिन मिश्रकेशी तावे निंद्य वचन कहे हुते सो कदाचित कुमारको यह

खबर पहुंची होय अर मोविषें कुमया करी होय। यह विवेकरहित पापिनी कटु भाषिणी धिक्कार याहि जानै मेरा प्राणवल्लभ मोतैं कृपारहित किया, अब जो मेरे भाग्य होय अर मेरा पिता मुझपर कृपाकरि प्राणनाथको पाछा बहोड़ै अर उनकी सुदृष्टी होय तो मेरा जीतव्य है अर जो नाथ मेरा परित्याग करै तो मैं आहार को त्याग करि शरीर को तजूंगी। ऐसा चिंतवन करती वह सती मूर्छा खाय धरतीपर पड़ी जैसें बेलिकी जड़ उपाड़ी जाय अर वह आश्रयतें रहित होय कुमलाय जाय तैसें कुमलाय गई। तब सर्व सखीजन, यह कहा भया, ऐसे कहकर अति संभ्रमकों प्राप्त भई, शीतल क्रियासों याहि सचेत किया तब यासूं मूर्च्छा का कारण पूछ्या सो यह लज्जाकरि कहि न सकै, निश्चल लोचन होय रही।

अथानंतर पवनंजय की सेनाके लोक मन विषें आकुल भए अर विचार करते भए जो निःकारण कूच काहे का? यह कुमार विवाह करने आया हुता सो दुलहनको परण करि क्यों न चलै, याके कोप काहेतें भया, याको कौनने कह्या, सर्व वस्तु की सामग्री है, काहू वस्तु की कमी नाहीं। याका सुसर बड़ा राजा, कन्या अति सुन्दरी, यह परान्मुख क्यों भया। तब कैयक हंस करि कहते भए, याका नाम पवनंजय है सो अपनी चंचलतातैं पवनहूकों जीतै है अर कैयक कहते भए, अभी स्त्री का सुख नाहीं जानै है तातैं ऐसी कन्याकों छोड़करि जायवेकों उद्यमी भया है, जो याकैं रतिकाल का राग होय तो जैसें वनहस्ती प्रेम के बंधनकरि बंधै हैं तैसे यह बंध जाय, या भांति सेना के सामंत कहै हैं अर पवनंजय शीघ्रगामी वाहन पर चढ़ चलनेकों उद्यमी भए। तब कन्याका पिता राजा महेन्द्र कुमार का कूच सुनकर अति आकुल भया, समस्त भाईनि सहित राजा प्रह्लादपै आया। प्रह्लाद अर महेंद्र दोनों आय कुमार को कहते भए। हे कल्याणरूप! हमको शोक का करणहारा यह कूच काहे को करिए है, अहो कौन ने आपको कह्या है, हे शोभायमान! तुम कौन को अप्रिय हो, जो तुमको न रुचै सो सबही को न रुचै। तिहारे पिता का अर हमारा वचन जो सदोष होय तो भी तुमको मानना योग्य है अर हम तो समस्त दोष रहित कहै हैं सो तुमको अवश्य धारणा योग्य है। हे शूरवीर! कूंचतैं पाछे फिरो, हमारे दोउनिके मनबांछित सिद्ध करो। हम तुम्हारे गुरुजन हैं, सो तुम सारिखे सत् पुरुषों को गुरुजनों की आज्ञा आनंदका कारण है। ऐसा जब राजा महेंद्रने अर प्रह्लादने कह्या अर जब तातने अर ससुरने बहुत आदरसों हाथ पकड़े, तब यह कुमार धीर-वीर, विनयकरि नम्रीभूत भया है मस्तक जाका, गुरुजनों की जो गुरुता सो उलंघनको असमर्थ भया। तिनकी आज्ञातैं पाछा बाहुड़या अर मन में विचारी कि याहि परणकरि तज दूंगा ताकि दुःखसों जन्म पूरा करै अर औरका भी याहि संयोग न होय सकै।

अथानंतर कन्या प्राणवल्लभ को पाछा आया सुनकर हर्षित भई, रोमांच होय आए, लग्नके समय इनके विवाह-मंगल भया। जब दुलहनका कर-ग्रहण कराया तब अशोकके पल्लव समानआरक्त अति कोमल कन्याके कर सो या विरक्त चित्तके अग्निकी ज्वाला-समान लागे। बिना इच्छा कुमारकी दृष्टि कन्या के तनु पर काहू भांति गई सो क्षणमात्र भी न सह सक्या जैसे कोई विद्युत्पातकों न सह सकै। कन्या के प्रीति, वर के अप्रीति--यह याके भाव कों न जाने ऐसा जान मानों अग्नि हंसती भई और शब्द करती भई। बड़े विधान सों इनका विवाहकरि सर्वबंधुजन आनन्द कों प्राप्त भए। मानसरोवर के तट विवाह भया। नाना प्रकार वृक्ष लता फल पुष्प विराजित जो सुन्दर वन तहाँ परम उत्सवकरि एक मास रहे। परस्पर दोनों समधियों ने अति हित के वचन आलाप कहे। परस्पर स्तुति महिमा करी, सन्मान किए, पुत्री के पिता ने बहुत दान दिया अर अपने अपने स्थान कों गए।

हे श्रेणिक ! जे वस्तु का स्वरूप नाहीं जानै हैं अर विना समझे पराये दोष ग्रहैं, ते मूर्ख हैं। अर पराए दोषकर आप ऊपर दोष आय पड़े है सो सब पापकर्म का फल है। पाप आतापकारी है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषै अंजना पवनंजय का विवाह वर्णन करने वाला पंद्रहवां पर्व पूर्ण भया ।। १५ ।।

(षोडश पर्व)

[अंजना और पवनंजयकुमार का मिलाप]

अथानंतर पवनंजयकुमार ने अंजनासुन्दरी को परण कर ऐसी तजी जो कबहूं बात न बूझै, सो वह सुन्दरी पति के असंभाषणतैं अर कृपादृष्टि कर न देखवेतैं परम दुःख करती भई। रात्रि में भी निद्रा न लेय, निरंतर अश्रुपात ही झरा करैं, शरीर मलिन होय गया, पतिसों अति स्नेह, धनी का नाम अति सुहावै, पवन जावै सो भी अति प्रिय लागै, पतिका रूप तो विवाहकी वेदीमें अवलोकन किया हुता ताका मनमें ध्यान करवो करै अर निश्चल लोचन सर्व चेष्टा रहित बैठी रहै। अंतरंग ध्यान में पति का रूप निरूपण करि बाह्य भी दर्शन किया चाहै सो न होय। तब शोककरि बैठी रहै, चित्रपटविषैं पतिका चित्राम लिखने का उद्यम करै, तब हाथ कांप करि कलम गिर पड़ै, दुर्बल होय गया है समस्त अंग जाका, ढीले होय कर गिर पड़े हैं सर्व आभूषण जाके, दीर्घ उष्ण जे उच्छ्‌वास-निकरि मुरझाय गए हैं कपोल जाके, अंग में वस्त्र के भी भार करि खेद कों धरती संती, अपने अशुभ कर्मों को निंदती, माता-पितादि को बारंबार याद करती संती, शून्य भया है हृदय जाका, दुःख कर क्षीण शरीर, मूर्च्छा आय जाय, चेष्टा रहित होय जाय, अश्रुपात

करि रुक गया है कंठ जाका, दुःख कर निकसै हैं वचन जाके, विह्वल भई संती दैव कहिए पूर्वोपार्जित कर्म ताहि उलाहना देय चन्द्रमा की किरण हू करि जाकों अति दाह उपजै अर मंदिर विषें गमन करती मूर्च्छा खाय गिर पड़ै अर विकल्पकी मारी ऐसा विचार करि अपने मन ही में पति सों बतलावै कि हे नाथ ! तिहारे मनोज्ञ अंग मेरे हृदय में निरंतर तिष्ठै हैं, मोहि आताप क्यों करै हैं अर मैं आपका कछु अपराध नाहीं किया, निःकारण मेरे पर कोप क्यों करो, अब प्रसन्न होवो, मैं तिहारी भक्त हूं, मेरे चित्त के विषाद को हरो। जैसें अंतरंग दर्शन देवो हो, तैसें बहिरंग देवो। यह मैं हाथ जोड़ बीनती करूं हूं। जैसें सूर्य विना दिन की शोभा नाहीं अर चन्द्रमा बिना रात्रिकी शोभा नाहीं अर दया क्षमा शील संतोषादि गुण विना विद्या शोभै नाहीं, तैसें तिहारी कृपा बिना मेरी शोभा नाहीं, या भांति चित्तविषें बसै जो पति ताहि उलाहना देय। अर बड़े मोतियों समान नेत्रनितैं आंसुवनिकी बूंद झरैं, महा कोमल सेज पर अनेक सामग्री सखीजन करैं परन्तु याहि कछु न सुहावै, चक्रारूढ़ समान मनमें उपज्या है वियोग से भ्रम जाकों, स्नानादि संस्कार रहित कभी भी केश समारै गूंथै नाहीं, केश भी रूखे पड़ गए, सर्व क्रिया में जड़ मानों पृथ्वी ही का रूप होय रही है। अर निरंतर आंसुवनिके प्रवाहतैं मानों जलरूप ही होय रही है। हृदयके दाहके योगतैं मानों अग्निरूप ही होय रही है। अर निश्चलचित्तके योगतैं मानों वायुरूपही होय रही है। अर शून्यताके योगतैं मानों गगनरूप ही होय रही है। मोहके योगतैं आच्छादित होय रह्या है ज्ञान जाका, भूमि पर डार दिए हैं सर्व अंग जानैं, बैठ न सकै अर तिष्ठै तौ उठ न सकै अर उठै तौ देहीकों थांभ न सकै, सो सखीजनका हाथ पकड़ि विहार करै सो पग डिग जाय अर चतुर जे सखीजन तिनसों बोलने की इच्छा करै परंतु बोल न सकै अर हंसनी कबूतरी आदि गृह पक्षी तिनसों क्रीड़ा किया चाहै पर कर न सकै। यह बिचारी सबों से न्यारी बैठी रहै, पतिमें लग रहा है मन अर नेत्र जाका, निःकारण पतितैं अपमान पाया सो एक दिन एक बरस बराबर जाय। यह याकी अवस्था देखि सकल परिवार व्याकुल भया, सब ही चिंतवते भए कि ऐसा दुःख याहि बिना कारण क्यों भया है। यह कोई पूर्वोपार्जित पाप कर्मका उदय है। पिछले जन्म में यानैं काहूके सुख विषैं अंतराय किया है, सो याकै भी सुख का अंतराय भया। वायुकुमार तो निमित्त-मात्र है। यह बारी भोरी निर्दोष याहि परणकरि क्यों तजी, ऐसी दुलहन सहित देवनि समान भोग क्यों न करै। यानैं पिता के घर कभी रंचमात्र हू दुःख न देख्या सो यह कर्मानुभव कर दुःख के भारकों प्राप्त भई। याकी सखीजन विचारै हैं कि कहा उपाय करैं, हम भाग्यरहित हमारे यत्न-साध्य यह कार्य नाहीं. कोई अशुभकर्म की चाल है, अब ऐसा दिन कब होयगा, वह शुभ मुहूर्त शुभ वेला कब होयगी जो वह प्रीतम या प्रिया कों समीप

लेय बैठेगा अर कृपा दृष्टि कर देखेगा, मिष्ट वचन बोलेगा, यह सब के अभिलाषा लग रही है।

अथानंतर राजा वरुण ताकै रावणसों विरोध पड़्या, वरुण महा गर्ववान रावण की सेवा न करै, सो रावन ने दूत भेज्या, दूत जाय वरुणसों कहता भया। दूत धनी की शक्ति कर महाकांति को धरै है। अहो विद्याधराधिपते वरुण ! सर्व का स्वामी जो रावण तानै यह आज्ञा करी है जो आप मोहि प्रणाम करो अथवा युद्ध की तैयारी करो। तब वरुण ने हंसकर कही, हो दूत! कौनहै रावण, कहां रहै है जो मोहि दबावै है। सो मैं इंद्र नाहीं हूं जो वृथा गर्वित लोकनिंद्य हुता, मैं वैश्रवण नाहीं, यम नाहीं, मैं सहस्त्ररश्मि नाहीं, मैं मरुत नाहीं, रावण के देवाधिष्ठित रत्नोंकरि महा गर्व उपज्या है, वाकी सामर्थ्य है तो आवो, मैं वाहि गर्वरहित करूंगा अर तेरी मृत्यु नजीक है जो हमसों ऐसी बात कहै है। तब दूत जायकर रावणसों सर्व वृतांत कहता भया। रावण ने कोपकर समुद्र-तुल्य सेना सहित जाय वरुण का नगर घेरया अर यह प्रतिज्ञा करी जो मैं याहि देवाधिष्ठित रत्न विना ही वशकरूंगा; मारूं अथवा बांधू। तब वरुणके पुत्र राजीवपुण्डरीकादिक क्रोधायमान होय रावणके कटकपर आए। रावणकी सेना के अर इनके बड़ा युद्ध भया, परस्पर शस्त्रनिके समूह छेद डारे। हाथी हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, रथ रथोंसे, भट भटोंसे महायुद्ध करते भए, बड़े-बड़े सामंत डसि डसिकरि लाल नेत्र हैं जिनके वे महाभयानक शब्द करते भए। बड़ी देर तक संग्राम भया। सो वरुण की सेना रावण की सेनासौं कछुइक पीछे हटी। तब अपनी सेना को हटी देख वरुण राक्षसनिकी सेनापर आप चल करि आया, कालग्नि-समान भयानक। तब रावण दुर्निवार वरुणको रणभूमि विषैं सन्मुख आवता देखकर आप युद्ध करने को उद्यमी भया। वरुणकै अर रावणकै आपस विषैं युद्ध होने लगा अर वरुणके पुत्र खरदूषणसों युद्ध करते भए। कैसे हैं वरुणके पुत्र ? महाभटोके प्रलय करनहारे अर अनेक माते हाथियोंके कुंभस्थल विदारनहारे। सो रावण, क्रोधकरि दीप्त है मन जाका, महाक्रूर जो भृकुटि तिनकरि भयानक है मुख जाका, कुटिल हैं केश जाके, जब लगि धनुषके वाण तान वरुणपर चलावै तब लग वरुण के पुत्रोंने रावण के बहनेऊ खरदूषण को पकड़ लिया। तब रावण मन में विचारी जो हम वरुणसों युद्ध करै अर खरदूषण का मरण होय तो उचित नाहीं, तातें संग्राम मनै किया। जे बुद्धिमान हैं ते मंत्रविषैं चूकैं नाहीं। तब मंत्रियोंने मंत्रकर सब देशोंके राजा बुलाए, शीघ्रगामी पुरुष भेजे, सबनिकों लिखा, बड़ी सेनासहित शीघ्र ही आवो। अर राजा प्रह्लाद परभी पत्र लेय मनुष्य आया सो राजा प्रह्लाद ने स्वामीकी भक्तिकरि रावणके सेवकनिका बहुत सन्मान किया अर उठकर बहुत आदरसों पत्र माथे चढाया अर बांच्या सो पत्रविषैं या भांति लिखा था कि पातालपुर

के समीप कल्याण रूप स्थानकमें तिष्टता महाक्षेमरूप विद्याधरोंके अधिपतियोंका पति सुमाली का पुत्र जो रत्नश्रवा, ताका पुत्र राक्षसवंशरूप आकाशविषैं चंद्रमा ऐसा जो रावण सो आदित्यनगर के राजा प्रह्लादकों आज्ञा करै है। कैसा है प्रह्लाद ? कल्याणरूप है, न्यायका वेत्ता है, देश-काल-विधान का ज्ञायक है, हमारा बहुत वल्लभ है। प्रथम तो तिहारे शरीरकी कुशल पूछै है, बहुरि यह समाचार है कि हम कों सर्व खेचर भूचर प्रणाम करै हैं, हाथोंकी अंगुली तिनके नखकी ज्योतिकर ज्योतिरूप किए हैं निज शिरके केश जिनने, अर एक अति दुर्बुद्धि वरुण पाताल नगरमें निवास करै है सो आज्ञातैं पराङ्मुख होय लड़नेको उद्यमी भया है। हृदयकों व्यथाकारी विद्याधरों के समूहकरि युक्त है। समुद्र के मध्य द्वीपको पायकर वह दुरात्मा गर्वको प्राप्त भया है, सो हम ताके ऊपर चढ़कर आए हैं, बड़ा युद्ध भया। वरुण के पुत्रों ने खरदूषण को जीवता पकड़या है सो मंत्रियों ने मंत्र करि खरदूषणके मरणकी शंकातैं युद्ध रोक दिया, तातैं खरदूषण कों छुड़ावना अर वरुण को जीतना सो तुम अवश्य शीघ्र आइयो, ढील मत करियो। तुम सारिखे पुरुष कर्तव्यमें न चूकैं, अब सब विचार तिहारे आयवे पर है। यद्यपि सूर्य तेजके पुंज है तथापि अरुण सारिखा सारथी चाहिए। तब राजा प्रह्लाद पत्रके समाचार जानि मंत्रियोंसों मंत्र कर रावणके समीप चलनेकों उद्यमी भया। तब प्रह्लाद को चलता सुनकर पवनंजयकुमार ने हाथ जोड़ि गोड़नितैं धरती स्पर्श नमस्कारकर विनती करी। हे नाथ ! मुझ पुत्रके होते संते तुमको गमनयुक्त नाहीं, पिता जो पुत्रको पालै है सो पुत्रका यही धर्म है कि पिता की सेवा करै। जो सेवा न करै तो जानिए पुत्र भया ही नाहीं। तातैं आप कूच न करैं, मोहि आज्ञा करें। तब पिता कहते भये, हे पुत्र ! तुम कुमार हो, अब तक तुमने कोई युद्ध देख्या नाहीं, तातैं तुम यहां रहो, मैं जाऊंगा। तब पवनंजयकुमार कनकाचलके तट समान जो वक्षस्थल ताहि ऊंचाकर तेज के धरणहारे वचन कहता भया–हे तात ! मेरी शक्ति का लक्षण तुमने देख्या नाहीं, जगतके दाहवेमें अग्निके स्फुलिंगेका क्या वीर्य परखना। तुम्हारी आज्ञारूप आशिषाकर पवित्र भया है मस्तक मेरा, ऐसा जो मैं इंद्रको भी जीतने कों समर्थ हूं, यामें संदेह नाहीं। ऐसा कहकर पिताकों नमस्कार कर महा हर्ष संयुक्त उठकरि स्नान भोजनादि शरीरकी क्रिया करी अर आदरसहित जे कुल में वृद्ध हैं तिन्होंने असीस दीनी। भावसहित अरहंत सिद्ध को नमस्कार करि परम कांतिको धरता संता महा मंगलरूप पितासों विदा होवेकों आया सो पिताने अर माताने मंगल के भयतैं आंसू न काढ़े, आशीर्वाद दिया। हे पुत्र ! तेरी विजय होय, छाती सों लगाय मस्तक चूम्या। पवनंजयकुमार श्री भगवानका ध्यान धर माता पिताकों प्रणामकरि जे परिवार के लोग पांयनि पड़े तिनकों बहुत धैर्य बंधाय सबसों अति स्नेह कर विदा भए। पहले अपना

दाहिना पांव आगें धर चले । फुरकै है दाहिनी भुजा जिनकी अर पूर्ण कलश जिनके मुख पर लाल पल्लव तिनपर प्रथम ही दृष्टि पड़ी अर थंभसों लगी हुई द्वारै खड़ी जो अंजना सुन्दरी आंसुवनि करि भीज रहे हैं नेत्र जाके, तांबूलादिरहित धूसरे होय रहे हैं अधरजाके, मानों थंभविषें उकेरी पुतली ही है । कुमारकी दृष्टि सुन्दरीपर पड़ी सो क्षणमात्रविषें दृष्टि संकोच कोपकरि बोले । हे दुरीक्षणे कहिए दुःखकारी है दर्शन जाका, या स्थानकतें जावो, तेरी दृष्टि उल्कापात समान है, सो मैं सहार न सकूं । अहो बड़े कुलकी पुत्री कुलवंती ! तिनमें यह ढीठपणा कि मनै किए भी निर्लज्ज ऊभी रहैं । ये पतिके अतिक्रूर वचन सुने तौ भी याहि अति प्रिय लागें जैसें घने दिनके तिसाए पपैयेकों मेघकी बूंद प्यारी लागै, सो पतिके वचन मनकरि अमृत समान पीवती भई, हाथ जोड़ि चरणारविंदकी ओर दृष्टि धरि गदगद वाणीकर डिगते डिगते वचन नीठि नीठि कहती भई–हे नाथ ! जब तुम यहाँ विराजते हुते, तबहूं मैं वियोगिनी ही हुती; परंतु आप निकट हैं सो आशाकरि प्राण कष्टतैं टिक रहे हैं, अब आप दूर पधारे हैं–मैं कैसें जीऊंगी। मैं तिहारे वचनरूप अमृतके आस्वाद-नेकी अति आतुर, तुम परदेशकों गमन करते समय स्नेहतें दयालु चित्त होयकर वस्तीके पशु पक्षियोंको भी दिलासा करी, मनुष्योंकी तो कहा बात ? सबसों अमृत समान वचन कहे, मेरा चित्त तिहारे चरणारविंद विषें है, मैं तिहारी अप्राप्तिकर अति दुःखी, औरनिकी श्रीमुखतें एती दिलासा करी, मेरी औरनिके मुखतें ही दिलासा कराई होती, जब मोहि आपने तजी तब जगतमें शरण नाहीं, मरण ही है । तब कुमारने मुख संकोचकर कोपसों कही, मर । तब यह सती खेद-खिन्न होय धरतीपर गिर पड़ी । पवनकुमार यासों कुमयाही विषें चाले । बड़ी ऋद्धिसहित हाथी पर असवार होय सामंतो सहित पयान किया । पहले ही दिनविषें मानसरोवर जाय डेरे भए, पुष्ट हैं वाहन जिनके, सो विद्याधरनिकी सेना देवोंकी सेना समान आकाशतें उतरती सती अति शोभायमान भासती भई । कैसी है सेना ? नानाप्रकार के जे वाहन अर शस्त्र तेई हैं आभूषण जाके, अपने २ वाहनोंके यथा योग्य यत्न कराए, स्नान कराए, खानपानका यत्न कराया ।

अथानंतर विद्या के प्रभावतें मनोहर एक बहुखणा महल बनाया, चौड़ा अर ऊंचा सो आप मित्र सहित महल ऊपर विराजे ? संग्रामका उपज्या है अति हर्ष जिनके, झरोख-निकी जालीके छिद्रकरि सरोवरके तटके वृक्षनिकों देखते हुते, शीतल मंद सुगंध पवनकरि वृक्ष मंद मंद हालते हुते अर सरोवरविषें लहर उठती हुती, सरोवरके जीव कछुवा, मीन, मगर अर अनेक प्रकारके जलचर गर्वके धरणहारे तिनकी भुजानिकरि किलोल होय रही हैं । उज्ज्वल स्फटिकमणि समान निर्मल जल है जामें, नाना प्रकार के कमल फूल रहे हैं, हंस, कारंड, क्रौंच, सारस इत्यादि पक्षी सुन्दर शब्द कर रहे हैं, जिनके सुननेतें मन अर

कर्ण हर्ष पावै अर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। तहां एक चकवी, चकवे बिना अकेली वियोगरूप अग्नितें तप्तायमान, अति आकुल, नाना प्रकार चेष्टाकी करणहारी, अस्ताचलकी ओर सूर्य गया सो वा तरफ लग रहे हैं नेत्र जाके अर कमलिनीके पत्रनिके छिद्रोंविषैं बारंबार देखै है, पाँखनिकों हलावती उठै है अर पड़ै है। अर मृणाल कहिए कमलकी नालका तार ताका स्वाद विष-समान देखै है, अपना प्रतिबिम्ब जलविषैं देखकरि जानै है कि यह मेरा प्रीतम है, सो ताहि बुलावै है सो प्रतिबिंब कहा आवै तब अप्राप्तितैं परम शोकको प्राप्त भई है। कटक आय उतरधा है सो नाना देशनिके मनुष्योंके शब्द अर हाथी घोड़ा आदि नानाप्रकारके पशुवनिके शब्द सुनकर अपने वल्लभ चकवाकी आशाकर भ्रमै है चित्त जाका, अश्रुपात सहित हैं लोचन जाके. तटके वृक्षपर चढ़ि चढ़िकरि दसों दिशाकी ओर देखै है, प्रीतमकों न देखकरि अति शीघ्र ही भूमिपर आय पड़ै है, पाँख हलाय कमलिनीकी जो रज शरीर के लागी है सो दूर करै है सो पवनकुमारने घनी बेर तक दृष्टि धारि चकवी की दशा देखी, दयाकर भीज गया है चित्त जाका, चित्तमें ऐसा विचारै है कि प्रीतमके वियोग करि यह शोक रूप अग्निविषैं बलै है। यह मनोज्ञ मानसरोवर अर चंद्रमा की चांदनी चंदन-समान शीतल सो या वियोगिनी चकवीकों दावानल समान है, पति विना याकों कोमल पल्लव भी खड्ग समान भासै है। चंद्रमा की किरण भी वज्र समान भासै है, स्वर्ग हू नरकरूप होय आचरै है। ऐसा चिंतवनकर याका मन प्रिया विषैं गया। अर या मानसरोवरपर ही विवाह भया हुता सो वे विवाहके स्थानक दृष्टिमें पड़े सो याको अति शोकके कारण भए, मर्म के भेदनहारे दुःसह करौंत समान लागे। चित्तविषै विचारता भया—हाय! हाय! मैं क्रूरचित्त पापी, वह निर्दोष वृथा तजी, एक रात्रि का वियोग चकवी न सहार सकै तो बाईस वर्ष का वियोग वह महासुन्दरी कैसे सहारै? कटुक वचन वाकी सखीने कहे हुते, वाने तो न कहे हुते, मैं पराए दोषकरि काहेको ताका परित्याग किया। धिक्कार है मो सारिखे मूर्ख को, जो विना विचारे काम करै। ऐसे निष्कपट प्राणी को विना कारण दुःख अवस्था करी, मैं पाप चित्त हूं, वज्र समान है हृदय मेरा जो मैंने एते वर्ष ऐसी प्राणवल्लभा कों वियोग दिया, अब क्या करूं, पितासों विदा होयकर घरतें निकस्या हूं, कैसें पाछा जाऊं, बड़ा सकट पड़चा, जो मैं वासौं मिले विना संग्राममें जाऊं तो वह जीवै नाहीं अर वाके अभाव भये मेरा भी अभाव होयगा जगत विषैं जीतव्य समान कोई पदार्थ नाहीं तातें सर्व संदेह का निवारणहारा मेरा परम मित्र प्रहस्त विद्यमान है वाहि सर्व भेद पूछूं। वह सर्व प्रीतिकी रीति में प्रवीण है। जे विचार कर कार्य करै हैं ते प्राणी सुख पावैं हैं, ऐसा पवनकुमार कों विचार उपज्या सो प्रहस्त मित्र ताके सुखविषैं सुखी दुखविषैं दुखी याकों चिंतावान देख पूछता भया कि हे मित्र!

तुम रावणकी मदद करने को वरुण सारिखे योधासों लड़नेको जावो हो, सो अति प्रसन्नता चाहिये तब कार्यकी सिद्धि होय। आज तिहारा वदन रूप कमल क्यों मुरझाया दीखै है, लज्जाको तजकरि मोहि कहो, तुमको चिंतावान देखकर मेरे व्याकुल भाव भया है। तब पवनंजय ने कहा–हे मित्र ! यह वार्ता काहू सो कहनी नाहीं। परन्तु तुम मेरे सर्व रहस्यके भाजन हो तोसूं अंतर नाहीं। यह बात कहते परम लज्जा उपजै है। तब प्रहस्त कहते भये जो तिहारे चित्त विषैं होय सो कहो, जो तुम आज्ञा करो सो बात और कोई न जानेगा, जैसें ताते लोहे पर पड़ी जलकी बूंद विलाय जाय, प्रगट न दीखै तैसें मोहि कही बात प्रगट न होय। तब पवनकुमार बोले–हे मित्र ! सुनो–मैं कदापि अंजनासुन्दरीसों प्रीति न करी सो अब मेरा मन अति व्याकुल है. मेरी क्रूरता देखो ऐते वर्ष परणे भए सो अब तक वियोग रह्या, निष्कारण अप्रीति भई, सदा वह शोकको भरी रही। अश्रुपात झरते रहे अर चलते समय द्वारे खड़ी विरहरूप दाहसों मुरझा गया है मुख रूप कमल जाका, सर्व लावण्य संपदारहित मैंने देखी. अब ताके दीर्घ नेत्र नीलकमल समान मेरे हृदयकों वाणवत् भेदैं हैं, तातैं ऐसा उपायकर जाकरि मेरा वासों मिलाप होय। हे सज्जन ! जो मिलाप न होयगा तो हम दोनों का ही मरण होयगा। तब प्रहस्त क्षणएक विचारकरि बोले–तुम माता पितासों आज्ञा मांग शत्रु के जीतवे को निकसे हो, तातैं पीछे चलना उचित नाहीं अर अब तक कदापि अंजनासुन्दरी याद करी नाहीं अर यहां बुलावें तो लज्जा उपजै है तातैं गोप्य चलवा अर गोप्य ही आवना, वहां रहना नाहीं। उनका अवलोकन कर सुख संभाषण करि आनन्द रूप शीघ्र ही आवना। तब आपका चित्त निश्चल होयगा। परम उत्साहरूप चलना, शत्रु के जीतनेका निश्चय किया सो यही उपाय है। तब मुद्गर नामा सेनापति को कटक रक्षा सौंपकरि मेरुकी बन्दनाका मिसकरि प्रहस्त मित्र सहित गुप्त ही सुगंधादि सामग्री लेय करि आकाश के मार्गसों चाले। सूर्य भी अस्त होय गया अर सांझका प्रकाश भी गया, निशा प्रगट भई, अंजनासुन्दरी के महल पर जाय पहुंचे। पवनकुमार तो बाहिर खड़े रहे, प्रहस्त खबर देनेकों भीतर गए, दीपक का मन्द प्रकाश था, अंजना कहती भई कौन है। वसंतमाला निकट ही सोती हुती सो जगाई, वह सब बातों विषैं निपुण उठकर अंजनाका भय निवारण करती भई। प्रहस्तने नमस्कार करि जब पवनंजयके आगमनका वृतान्त कह्या तब सुन्दरी प्राणनाथ का समागम स्वप्न समान जान्या, प्रहस्त कों गद्गद वाणीकरि कहती भई–हे प्रहस्त ! मै पुण्यहीन पतिकी कृपाकरि वर्जित, मेरे ऐसा ही पाप कर्मका उदय आया, तू हमसों कहा हसै है, पतिसों जिसका निरादर होय वाकी कौन अवज्ञा न करै ? मैं अभागिनी दुःख अवस्थाकों प्राप्त भई, कहांतें सुख अवस्था होय। तब प्रहस्त ने हाथ जोड़ि नमस्कारकरि विनती करी–

हे कल्याणरूपिणि ! हे पतिव्रते ! हमारा अपराध क्षमा करो, अब सब अशुभ कर्म गए, तिहारे प्रेमरूप गुण का प्रेरचा तेरा प्राणनाथ आया। तेरेसे अति प्रसन्न भया तिनकी प्रसन्नताकरि कहा कहा आनन्द न होय, जैसें चन्द्रमाके योगकरि रात्रिकी अति मनोज्ञता होय। तब अंजनासुन्दरी क्षणएक नोची होय रही अर वसतमाला प्रहस्तसों कही—हे भद्रे ! मेघ बरसै जब ही भला, तातैं प्राणनाथ इनके महल पधारे सो इनका बडा भाग्य अर हमारा पुण्यरूप वृक्ष फल्या। यह बात होय रही हुती ताही समय आनन्दके अश्रूपातकरि व्याप्त होय गए हैं नेत्र जिनके सो कुमार पधारे हो, मानों करुणारूप सखी ही प्रीतमकों प्रियाके ढिग ले आई ; तब भयभीत हिरणीके नेत्र-समान सुन्दर हैं नेत्र जाके ऐसी प्रिया पतिकों देख सन्मुख जाय हाथ जोड़ि सीस निवाय पांयनि पड़ी। तब प्राण वल्लभने अपने करतैं सीस उठाय खड़ी करी। अमृत समान वचन कहे कि हे देवी ! क्लेश का सकल खेद निवृत्त होवे। सुन्दरी हाथ जोड़ि पतिके निकट खड़ी हुती। पतिने अपने करतैं कर पकड़करि सेजपर बिठाई, तब नमस्कार कर प्रहस्त तो बाहिर गए अर वसंतमाला हू अपने स्थान जाय बैठी। पवनंजयकुमारने अपने अज्ञानतैं लज्जावान होय सुन्दरीसों बारंबार कुशल पूछी अर कही हे प्रिये ! मैंने अशुभ कर्म के उदयतैं जो तिहारा वृथा निरादर किया सो क्षमा करो। तब सुन्दरी नीचा मुखकरि मंद मंद वचन कहती भई, हे नाथ ! आपने पराभव कछु न किया, कर्मका ऐसा ही उदय हुता। अब आपने कृपा करी, अति स्नेह जताया सो मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध भए। आपके ध्यानकर संयुक्त मेरा हृदय सो आप सदा हृदय ही विषैं विराजते, आपका अनादरहू आदर समान भास्या। या भाँति अंजना सुन्दरी ने कह्या तब पवनंजयकुमार हाथ जोड़ कहते भए कि हे प्राणप्रिये ! मैं वृथा अपराध किया। पराए दोषतैं तुमको दोष दिया सो तुम सब अपराध हमारा विस्मरण करो। मैं अपना अपराध क्षमावने निमित्त तिहारे पांयनि परूं हूँ, तुम हम सों अति प्रसन्न होवो, ऐसा कहकर पवनंजयकुमार ने अधिक स्नेह जनाया तब अंजना सुन्दरी पति का ऐसा स्नेह देखकरि बहुत प्रसन्न भई अर पति कों प्रिय वचन कहती भई, हे नाथ ! मैं अति प्रसन्न भई, हम तिहारे चरणारविंदकी रज हैं, हमारा इतना विनय तुमको उचित नाहीं, ऐसा कहकर सुखसों सेजपर विराजमान किए, प्राणनाथकी कृपाकरि प्रियाका मन अति प्रसन्न भया अर शरीर अतिकांतिको धरता भया, दोनों परस्पर अति स्नेहके भरे एक चित्त भए। सुखरूप जागृति रहे, निद्रा न लीनी। पिछले पहर अल्प निद्रा आई, प्रभात का समय होय आया तब यह पतिव्रता सेजसों उतर पतिके पांय पलोटने लगी, रात्रि व्यतीत भई, सो सुखमें जानी नाहीं, प्रातः समय चन्द्रमा की किरण फीकी पड़ गई, कुमार आनन्द के भार में भर गए अर स्वामी की आज्ञा भूल गए, तब मित्र प्रहस्त ने, कुमार के

हितविषैं है चित्त जाका, ऊंचा शब्द कर वसंतमाला को जगाकर भीतर पठाई अर मंद मंद आपहु सुगन्धित महल में मित्र के समीप गए अर कहते भए, हे सुन्दर ! उठो, अब कहा सोवो हो ? चन्द्रमा भी तिहारे मुखकी कांतिकरि रहित होय गया है। यह बचन सुनकर पवनंजय प्रबोधको प्राप्त भए। शिथिल है शरीर जिनका, जंभाई लेते, निद्राके आवेश करि लाल हैं नेत्र जिनके, कानोंको बांए हाथ की तर्जनी अंगुलीसों खुजावते, खुले हैं नेत्र जिनके, दाहिनी भुजा सकोचकरि अरिहतका नाम लेकर सेजसों उठे; प्राणप्यारी आपके जगनेतें पहिले ही सेजसों उतरकरि भूमिविषें विराजै है, लज्जाकर नम्रीभूत हैं नेत्र जाके, उठते ही प्रीतम की दृष्टि प्रियापर पड़ी। बहुरि प्रहस्तको देखकरि, "आवो मित्र" शब्द कहकर सेजसों उठे। प्रहस्तने मित्रसों रात्रि की कुशल पूछी, निकट बैठे, मित्र नीतिशास्त्रके वेत्ता कुमारसों कहते भए कि हे मित्र ! अब उठो, प्रियाजी का सन्मान बहुरि आयकर करियो, कोई न जानै या भांति कटक में जाय पहुँचें अन्यथा लज्जा है। रथनूपुरका धनी किन्नरगीत नगर का धनी रावण के निकट गया चाहै है सो तिहारी ओर देखे है। जो वे आगें आवें तो हम मिलकर चलें। अर रावण निरंतर मंत्रियोंतें पूछे है जो पवनंजयकुमारके डेरे कहाँ हैं अर कब आवेंगे, तातें अब आप शीघ्र ही रावण के निकट पधारो। प्रियाजीसों विदा मांगो, तुमकों पिताकी अर रावणकी आज्ञा अवश्य करनी है। कुशल क्षेमसों कार्यकर शिताब ही आवेंगे तब प्राणप्रियासों अधिक प्रीति करियो। तब पवनंजय ने कही, हे मित्र ! ऐसे ही करना। ऐसा कहकर मित्रको तो बाहिर पठाया अर आप प्राणवल्लभासों अतिस्नेहकर उरसों लगाय कहते भए, हे प्रिये ! अब हम जाय हैं, तुम उद्वेग मत करियो, थोड़े हो दिनोंमें स्वामी का कामकर हम आवेंगे, तुम आनन्दसों रहियो। तब अंजनासुन्दरी हाथ जोड़कर कहती भई, हे महाराजकुमार ! मेरा ऋतुसमय है सो गर्भ मोहि अवश्य रहेगा अर अबतक आपकी कृपा नाहीं हुती, यह सर्व जानें हैं सो माता पितासों मेरे कल्याण के निमित्त गर्भका वृत्तांत कह जावो। तुम दीर्घदर्शी सब प्राणियोंमें प्रसिद्ध हो। ऐसे जब प्रियाने कह्या तब प्राणवल्लभा कों कहते भए। हे प्यारी ! मैं माता पितासों विदा होय निकस्या सो अब उनके निकट जाना बनें नाहीं, लज्जा उपजै है। लोक मेरी चेष्टा जान हंसेंगे, तातें जब तक तिहारा गर्भ प्रकाश न पावै ताके पहिले ही मैं आऊं हूँ, तुम चित्त प्रसन्न राखो अर कोई कहै तो ये मेरे नामकी मुद्रिका राखो, हाथोंके कड़े राखो, तुमको सब शांति होयगी, ऐसा कहकर मुद्रिका दई अर वसंतमालाको आज्ञा दई, इनकी सेवा बहुत नीके करियो, आप सेजसों उठे, प्रिया विषें लग रहा है प्रेम जिनका, कैसी है सेज ? संयोगके योगतें बिखर रहे हैं हार के मुक्ताफल जहाँ अर पुष्पनिकी सुगन्ध मकरंदतें भ्रमै हैं भ्रमर जहां। क्षीरसागरकी

तरंग समान अति उज्ज्वल बिछे हैं पट जहां, आप उठकर मित्र के सहित विमान पर बैठि आकाश के मार्ग चाले। अंजना सुन्दरी ने अमंगल के कारण आँसू न काढ़े। हे श्रेणिक ! कदाचित् या लोकविषै उत्तम वस्तु के संयोगतैं किंचित् सुख होय है सो क्षणभंगुर है अर देहधारियों के पापके उदयतैं दुःख होय है, सुख दुःख दोनों विनश्वर हैं, तातैं हर्ष विषाद न करना। हो प्राणी हो ! जीवों को निरंतर सुखका देनहारा दुःखरूप अंधकार का दूर करणहारा जिनवर-भाषित धर्म सोई भया सूर्य ताके प्रतापकरि मोह-तिमिर हरहु।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषै पवनंजय अंजना का संयोग वर्णन करने वाला सोलहवां पर्व पूर्ण भया ॥ १६ ॥

(सप्तदश पर्व)

[अंजना के गर्भ का प्रगट होना और सासू द्वारा घर से निकाला जाना]

अथानंतर कैयक दिनों विषैं महेंद्रकी पुत्री जो अंजना ताके गर्भके चिन्ह प्रगट भए। कछुइक मुख पांडुवर्ण होय गया मानों हनुमान गर्भमें आया सो तिनका यश ही प्रगट भया है। मंद चाल चलने लगी जैसा मदोन्मत्त दिग्गज विचरै है, स्तन युगल अति उन्नतिको प्राप्त भए, श्यामलीभूत है अग्रभाग जिनके, आलसतैं बचन मंद मंद निसरैं, भौहों का कंप होता भया, इन लक्षणनिकरि ताहि सासू गर्भिणी जानकर पूछती भई कि तैंने यह कर्म कौनतैं किया। तब यह हाथ जोड़ प्रणामकर पतिके आवने का समस्त वृत्तांत कहती भई तब केतुमती सासू क्रोधायमान भई, महा निठुर वाणीरूप पाषाणकर पीडती भई अर कहा हे पापिनि ! मेरा पुत्र तेरेतैं अति विरक्त, तेरा आकार भी न देख्या चाहै, तेरे शब्दको श्रवण विषैं धारै नाहीं, माता पितासों बिदा होयकर रणसंग्रामको बाहिर निकस्या, वह धीर कैसें तेरे मंदिरमें आवै, हे निर्लज्ज ! धिक्कार है तुझ पापिनी कों चंद्रमाकी किरण समान उज्ज्वल वंशकों दूषण लगावनहारी यह दोनों लोक में निंद्य अशुभक्रिया तैंनें आचरी अर तेरी यह सखी बसंतमाला याने तोहि ऐसी बुद्धि दीनी, कुलटा के पास वेश्या रहै तब काहे की कुशल ? मुद्रिका अर कड़े दिखाए तो भी ताने न मानी, अत्यन्त कोप किया। एक क्रूर नामा किंकर बुलाया, वह नमस्कार कर आय ठाड़ा भया। तब क्रोध कर केतुमतीने लाल नेत्र कर कहा, हे क्रूर ! सखी सहित याही गाड़ी में बैठाय महेन्द्रनगरके निकट छोड़ आवो। तब क्रूर केतुमती की आज्ञातैं सखी सहित अंजना कों गाड़ी में बैठाकर महेंद्रनगर की ओर ले चल्या। कैसी है अंजना सुन्दरी ? अति कांपै है शरीर जाका, महा पवनकर उपड़ी जो बेल तासमान निराश्रय, अति आकुल कांतिरहित दुःखरूप अग्निकर जल गया है हृदय जाका, भयंकर सासूकों कछु उत्तर न दिया, सखीकी ओर धरे हैं नेत्र जानैं, मनकर अपने अशुभ कर्मको बारंबार निंदती अश्रुधारा नाखती, विह्वल नहीं है चित्त जाका सो क्रूर इनको लेय चाल्या सो क्रूरकर्मविषैं अति प्रवीण है।

दिवसके अंतमें महेंद्रनगरके समीप पहुँचाय कर नमस्कार कर मधुर बचन कहता भया। हे देवी ! मैं अपनी स्वामिनी की आज्ञातें तुमको दुःख का कारण कार्य किया, सो क्षमा करहु। ऐसा कहकर सखीसहित सुन्दरीकूं गाड़ीतें उतार विदा होय गाड़ी लेय स्वामिनीपै गया। जाय विनती करी—आपकी आज्ञाप्रमाण तिनकूं तहां पहुंचाय आया हूं।

अथानंतर महा उत्तम महा पतिव्रता जो अंजनासुन्दरी ताहि पतिके योगतैं दुःख के भारतें पीड़ित देख सूर्य भी मानो चिंताकर मंद हो गई है प्रभा जाकी, अस्त होय गया अर रुदनकर अत्यंत लाल होय गए हैं नेत्र जाके, ऐसी अंजना सो मानो याके नेत्र की अरुणता कर पश्चिमदिशा रक्त होय गई, अंधकार फैल गया, रात्रि भई, अंजनाके दुःखतैं निकसी जो आंसूनकी धारा तेई भए मेघ तिनकर मानों दसों दिशा श्याम होय गई अर पंछी कोलाहल शब्द करते भए सो मानों अंजनाके दुःखतें दुःखी भए पुकारै हैं। वह अंजना अपवादरूप महादुःख का जो सागर तामें डूबी क्षुधादिक दुःख भूल गई, अत्यंत भयभीत अश्रुपात नाखै, रुदन करै, सो बसंतमाला सखी धैर्य बंधावै, रात्री को पल्लवका सांथर बिछाय दिया सो याकों निद्रा रंच भी न आई। निरंतर उष्ण अश्रुपात पड़ै सो मानों दाहके भयतें निद्रा भाज गई, बसंतमाला पांव दाबै, खेद दूर किया, दिलासा करी, दुःखके योगकर एक रात्रि वर्ष बराबर बीती। प्रभात में सांथरेकों तजकर नाना सकल्प विकल्पनिके सैंकड़ानि शंका करि अति विह्वल पिता के घर की ओर चाली। सखी छाया समान संग चाली। पिता के मन्दिर के द्वार जाय पहुंची। भीतर प्रवेश करती द्वारपाल ने रोकी, दुःख के योगतें और ही रूप होय गया सो जानी न पड़ी। तब सखी ने सब वृतांत कह्या। सो जानकर शिलाकवाट नामा द्वारपाल ने एक और मनुष्य कों द्वारे मेलि आप राजा के निकट जाय नमस्कार करि विनती करी। पुत्री के आगमन का वृत्तान्त कह्या। तब राजाके निकट प्रसन्नकीर्ति नामा पुत्र बैठ्या हुता सो राजा ने पुत्र को आज्ञा करी—तुम सम्मुख जाय उसका शीघ्र ही प्रवेश करावो अर नगरकी शोभा करावो, तुम तो पहिले जावो और हमारी असवारी तैयार करावो, हम भी पीछेतें आवें हैं, तब द्वारपालने हाथ जोड़ नमस्कार कर यथार्थ विनती करी। तब राजा महेंद्र लज्जाका कारण सुनकर महा कोपवान भए अर पुत्रकों आज्ञा करी कि पापिनीकूं नगरमें तें काढ़ देवो, जाकी वार्ता सुनकर मेरे कान मानों वज्र कर हते गए हैं। तब एक महोत्साह नामा बड़ा सामंत, राजा का अतिवल्लभ, सो कहता भया, हे नाथ ! ऐसी आज्ञा करना उचित नाहीं, बसंतमालासों सब ठीक पाड़ लेहु, सासू केतुमती अति क्रूर है अर जिनधर्मतें परान्मुख है, लौकिकसूत्र जो नास्तिकमत ताविषैं प्रवीण है तानैं बिना विचारया झूठा दोष लगाया, यह धर्मात्मा श्रावकके व्रतकी धरणहारी, कल्याण आचार विषैं तत्पर पापिनी सासूने निकासी है अर

तुम भी निकासो तो कौनके शरणै जाय, जैसें व्याघ्रकी दृष्टितें मृगी त्रासकों प्राप्त भई संती महा गहन बनका शरण लेय, तैसें यह भोली निष्कपट सासूतें शंकित भई तुम्हारे शरण आई है, मानों जेठके सूर्यकी किरण के संतापतें दुःखित भई महावृक्षरूप जो तुम सो तिहारे आश्रय आई है, यह गरीबिनी, विह्वल है आत्मा जाका, अपवादरूप जो आताप ताकर पीड़ित तिहारे आश्रय भी साता न पावै तो कहां पावै ? मानों स्वर्ग तें लक्ष्मी ही आई है। द्वारपाल ने रोकी सो अत्यन्त लज्जा कों प्राप्त भई, विलखि करि माथा ढांकि द्वारै खड़ी है, आपके स्नेह कर सदा लाडली है, सो तुम दया करो, यह निर्दोष है, मंदिर मांहि प्रवेश करावो अर केतुमती की क्रूरता पृथ्वी विषें प्रसिद्ध है। ऐसे न्याय रूप वचन महोत्साह सामंत ने कहे, सो राजा कान न धरै, जैसें कमलोंके पत्रनिविषें जलकी बूंद न ठहरे तैसें राजा के चित्त में यह बात न ठहरी। राजा सामंत सो कहते भये कि यह सखी वसंतमाला सदा याके पास रहै अर याही के स्नेह के योगतें कदाचित् सत्य न कहै तो हमको निश्चय कैसें आवै, यातें याके शील विषें संदेह है, सो याकों नगरतें निकास देहु। जब यह बात प्रसिद्ध होयगी तो हमारे निर्मल कुल विषें कलंक आवेगा। जे बड़े कुलकी बालिका निर्मल हैं अर महा विनयवंती उत्तम चेष्टाकी धरणहारी हैं ते पीहर सासुरे सर्वत्र स्तुति करने योग्य हैं। जे पुण्याधिकारी बड़े पुरुष जन्म ही तें निर्मल शील पालैं हैं, ब्रह्मचर्य को धारण करै हैं अर सर्व दोष का मूल जो स्त्री तिनकों अंगीकार नाहीं करै हैं ते धन्य हैं। ब्रह्मचर्य समान और कोई व्रत नाहीं अर स्त्री के अंगीकार में यह सफल नाहीं होय है। जो कुपूत बेटा बेटी होय अर उनके अवगुण पृथ्वी विषें प्रसिद्ध होंय तो पिताका धरतीमें गड़ जाना होय है। सब ही कुल कों लज्जा उपजै है, मेरा मन आज अति दुःखित होय रह्या है, मैं यह बात पूर्व अनेक बार सुनी हुती जो यह भरतार के अप्रिय है अर वह याहि आंखतें नाहीं देखै है, सो ताकरि गर्भकी उत्पत्ति कैसें भई, तातें यह निश्चय सेती सदोष है। जो कोई याहि मेरे राज्य में राखेगा सो मेरा शत्रु है। ऐसे वचन कहकर राजा ने कोपकर जैसें कोई जानै नाहीं या भांति याकों द्वारतें निकाल दीनी। सखीसहित दुःखकी भरी अंजना राजाके निज वर्ग के जहां जहां आश्रय के अर्थि गई, सो आने न दीनी, कपाट दिए। जहां बाप ही क्रोधायमान होय निराकरण करै, तहां कुटुम्ब की कैसी आशा, वे तो सब राजा के अधीन हैं। ऐसा निश्चयकर सबतें उदास होय सखीसों कहती भई, आंसूवों के समूहकर भीज गया है अंग जाका, हे प्रिये ! यहां सब पाषाण चित्त हैं, यहां कैसा वास ? तातें बन में चालें, अपमानतें तो मरना भला। ऐसा कहकर सखी सहित बन को चाली, मानों मृगराजतें भयभीत मृगी ही है, शीत उष्ण अर वात के खेदकरि पीड़ित बन में बैठि महा रुदन करती भई। हाय हाय ! मैं मंदभागिनी दुःखदाई

को पूर्वोपार्जित कर्म ताकरि महा कष्टकों प्राप्त भई। कौनके शरण जाऊं ? कौन मेरी रक्षा करै, मैं दुर्भाग्य सागरके मध्य कौन कर्मतें पड़ी। नाथ ! मेरा अशुभ कर्मका प्रेरया कहांतें आया ? काहेको गर्भ रह्या, मेरा दोनों ही ठौर निरादर भया। माता ने भी मेरी रक्षा न करी, सो वह कहा करै, अपने धनीकी आज्ञाकारिणी प्रतिव्रतानिका यही धर्म है। अर नाथ मेरा यह वचन कह गया हुता कि तेरे गर्भकी वृद्धितैंपहिले ही मैं आऊंगा सो हाय नाथ! दयावान होय यह वचन क्यों भूले? अर सासूने बिना परखे मेरा त्याग क्यों किया? जिनके शील में संदेह होय तिनके परखने के अनेक उपाय हैं अर पिताकों मैं बाल-अवस्था विषैं अति लाड़ली हुती, निरंतर गोदमें खिलावते हुते सो विना परखे मेरा निरादर किया, इनकी ऐसी बुद्धि क्यों उपजी ? अर माताने मुझे गर्भमें धारी, प्रतिपालन किया, अब एक बात भी मुखतें न निकाली कि इसके गुण दोषका निश्चय कर लेवें। अर भाई जो एक माताके उदरसों उत्पन्न भया हुता, सोहू मो दुःखिनीकों न राख सक्या, सब ही कठोर चित्त होय गए। जहां माता पिता भ्राताही की यह दशा, तहां काका बाबाके दूर भाई तथा प्रधान सामंत कहा करैं अथवा उन सबका कहा दोष ? मेरा जो कर्मरूप वृक्ष फल्या सो अवश्य भोगना। या भांति अंजना विलाप करै सो सखी भी याके लार विलाप करै। मनतें धैर्य जाता रह्या, अत्यंत दीन मन होय यह ऊंचे स्वरतें रुदन करै सो मृगी भी याकी दशा देख आंसू डालवे लागी, बहुत देरतक रोनेतें लाल होय गए हैं नेत्र जाके तब सखी वसंतमाला महाविचक्षण याहि छातीसूं लगाय कहती भई–हे स्वामिनि! बहुत रोनेतें क्या लाभ ? जो कर्म तैंने उपार्ज्या है सो अवश्य भोगना है, सब ही जीवनिके कर्म आगें पीछे लग रहे हैं सो कर्मके उदयविषैं शोक कहा ? हे देवी ! जे स्वर्ग लोक के देव सैकड़ों अप्सराओं के नेत्रनिकर निरंतर अवलोकिए है, तेहू सुकृतके अंत होते परम दुःख पावै हैं। मनमें चिंतिए कछू और, होय जाय कछु और। जगतके लोक उद्यम में प्रवर्तें हैं तिनकों पूर्वोपार्जित कर्मका उदय ही कारण है। जो हितकारी वस्तु आय प्राप्त भई सो अशुभकर्म क उदयतें विघटि जाय अर जो वस्तु मनतें अगोचर है सो आय मिलै। कर्मनिकी गति विचित्र है तातें हे देवी ! तू गर्भके खेदकरि पीड़ित है, वृथा क्लेश मत कर, तू अपनां मन दृढ़ कर। जो तैंने पूर्व जन्म में कर्म उपार्जे हैं तिनके फल टारे न टरैं। अर तू तो महा बुद्धिमती है तोहि कहा सिखाऊं। जो तू न जानंती होय तो मैं कहूं, ऐसा कहकर याके नेत्रनिके आंसू अपने वस्त्रतें पोंछे। बहुरि कहती भई–हे देवी ! यह स्थानक आश्रय रहित है, तातें उठो, आगें चालें, या पहाड़ के निकट कोई गुफा होय जहां दुष्ट जीवनिका प्रवेश न होय, तेरे प्रसूतिका समय आया है सो कई एक दिन यत्नसूं रहना। तब यह गर्भके भारतें जो आकाशके मार्ग चलने में हू असमर्थ है तो भूमिपर सखीके संग गमनकरती महा

कष्टकरि पांव धरती भई। कैसी है बनी ? अनेक अजगरनितें भरो, दुष्ट जीवनिके नादकरि अत्यन्त भयानक, अति सघन, नाना प्रकार के वृक्षनिकरि सूर्यकी किरणका भी संचार नाहीं, जहां सूईके अग्रभाग समान डाभकी अणी अति तीक्ष्ण, जहाँ कंकर बहुत अर माते हाथीनिके समूह अर भीलोंके समूह बहुत हैं अर बनी का नाम मातंगमालिनी है, जहां मनकी भी गम्यता नाहीं तो तनकी कहा गम्यता ? सखी आकाशमार्गतें जायवेको समर्थ अर यह गर्भ के भारकरिसमर्थ नाहीं तातें सखी याके प्रेमके बंधनसों बंधी शरीरकी छाया समान लार लार चाले है। अंजना बनी को अति भयानक देखकर कांपै है, दिशा भूल गई, तब वसंतमाला याकों अति व्याकुल जानि हाथ पकड़ि कहती भई, हे स्वामिनी ! तू डरै मत, मेरे पीछें पीछें चली आवो।

तब यह सखीके कांधे हाथ मेलि चली जाय, ज्यों ज्यों डाभ की अणी चुभै त्यों त्यों अति खेदखिन्न होय, विलाप करती, देहकों कष्टतें धारती, जलके नीझरने जे अति तीव्र वेग संयुक्त वहैं तिनकों अति कष्टतें पार उतरती, अपने जे सब स्वजन अति निर्दई तिनका नाम चितार अपने अशुभ कर्मकों बारंबार निंदती, बेलों को पकड़ भयभीत हिरणी कैसे हैं नेत्र जाके, अंगविषें पसेव को धारती, कांटों से वस्त्र लगि जाय सो छुड़ावती, लहूतें लाल होय गए हैं चरण जाके, शोकरूप अग्निके दाहकरि श्यामताकों धरती, पत्र भी हालै तो त्रासकों प्राप्त होती, चलायमान है शरीर जाका, बारंबार विश्राम लेती, ताहि सखी निरंतर प्रिय वाक्य कर धैर्य बंधावै, सो धीरे धीरे अंजना पहाड़की तलहटी आई, तहां आंसू भर करि बैठ गई। सखीसों कहती भई अब मुझमें एक पग धरनेकी हू शक्ति नाहीं, यहां ही रहूँगी, मरण होय तो होय। तब सखी अत्यन्त प्रेमकी भरी महा प्रवीण मनोहर बचननिकरि याकौं शांति उपजाय नमस्कारकरि कहती भई–हे देवी ! यह गुफा नजदीक ही है, कृपाकर इहांतें उठकर वहाँ सुखसों तिष्ठो, यहाँ क्रूर जीव विचरै हैं तोकों गर्भकी रक्षा करनी है, तातें हठ मतिकर। ऐसा कह्या तब वह आताप की भरी सखी के बचनकरि अर सघन वनके भयकरि चलवेको उठी, तब सखी हस्तावलंबन देयकर याकों विषमभूमितें निकासकर गुफाके द्वारपर लेय गई। बिना विचारे गुफामें बैठने का भय होय सो ये दोनों बाहिर खड़ी विषम पाषाणके उलंघवेकर उपज्या है खेद जिनको तातें बैठ गई। तहां दृष्टि अर देख्या। कैसी है दृष्टि ? श्याम श्वेत आरक्त कमल समान प्रभाकों धरै सो एक पवित्र शिलापर विराजे चारणमुनि देखे। पल्यंकासन धरे अनेक ऋद्धि संयुक्त निश्चल है श्वासोच्छ्वास जिनके, नासिकाके अग्र भागपरधरी है सरल दृष्टि जिनने, शरीर स्तंभ समान निश्चल है, गोदपर धरया जो बांमा हाथ ताके ऊपर दाहिना हाथ समुद्र समान गंभीर, अनेक उपमा सहित विराजमान आत्मस्वरूपका जो यथार्थ स्वभाव जैसा जिनशासन-

विषैं गाया है तैसा ध्यान करते, समस्त परिग्रह रहित पवन जैसें असंगी, आकाश जैसें निर्मल, मानों पहाड़के शिखर ही हैं सो इन दोनों ने देखे। कैसे हैं वे साधु ? महापराक्रम के धारी, महाशांत ज्योतिरूप है शरीर जिनका। ये दोनों मुनि के समीप गई, सर्व दुःख विस्मरण भया, तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ि नमस्कार किया, मुनि परम बांधव पाए, फूल गए हैं नेत्र जिनके, जा समय जो प्राप्ति होनी होय सो होय, तब ये दोनों हाथ जोड़ विनती करती भई। मुनिके चरणारविंदकी ओर धरे हैं अश्रुपातरहित स्थिर नेत्र जिनने। हे भगवान् ! हे कल्याणरूप ! हे उत्तम चेष्टा के धरणहारे ! तिहारे शरीरमें कुशल है। कैसा है तिहारा देह ? सर्व तपव्रत आदि साधनेका मूलकारण है। हे गुणनिके सागर ! ऊपरां ऊपर तपकी है वृद्धि जिनकी, हे महाक्षमावान ! शांतभावके धारी ! मन इंद्रियोंके जीतनहारे ! तिहारा जो विहार है सो जीवनिके कल्याणनिमित्त है, तुम सारिखे पुरुष सकल पुरुषनिकों कुशलके कारण हैं सो तिहारी कुशल कहा पूछनी परन्तु यह पूछने का आचार है तातैं पूछी है, ऐसा कहि विनयतैं नम्रीभूत भया है शरीर जिनका सो चुप हो रही अर मुनीके दर्शनतैं सर्व भय रहित भई।

अथानंतर मुनि अमृततुल्य परमशांतिके वचन कहते भये—हे कल्याणरूपिणि ! हे पुत्री ! हमारे कर्मानुसार सब कुशल है। ये सर्वही जीव अपने अपने कर्मोंका फल भोगवै हैं। देखो कर्मनिकी विचित्रता, यह राजा महेंद्रकी पुत्री अपराध रहित कुटुम्बके लोगनिने काढ़ी है। सो मुनि बड़े ज्ञानी, विना कहे सब वृतांत के जाननहारे तिनको नमस्कार कर वसंतमाला पूछती भई—हे नाथ ! कौन कारणतैं भरतार यासों बहुत दिन उदास रहे ? बहुरि कौन कारण अनुरागी भए अर यह महासुखयोग्य वन विषैं कौन कारणतैं दुःखकों प्राप्त भई ? मंदभागी कौन याके गर्भ में आया जाकरि याकों जीवने का संशय भया। तब स्वामी अमितिगति तीन ज्ञान के धारक सर्व वृत्तांत यथार्थ कहते भए। यही महा पुरुषों की वृत्ति है जो पराया उपकार करें। मुनि वसंतमालासों कहै हैं—हे पुत्री ! याके गर्भविषैं उत्तम बालक आया है, सो प्रथम तो ताके भव सुनि। बहुरि जो पूर्व भव में पापका आचरण किया, जा कारणतैं यह अंजना ऐसे दुःखकों प्राप्त भई, सो सुन।

(हनुमान और अंजना के पूर्वभव)

जम्बूद्वीपमें भरत नामा क्षेत्र तहां मंदरनाम नगर, तहां प्रियनन्दी नामा गृहस्थ, ताके जाया नामा स्त्री अर दमयंत नामा पुत्र सो महा सौभाग्यसंयुक्त कल्याणरूप जे दया क्षमा शील संतोषादि गुण तेई हैं आभूषण जाके, एक समय वसंत ऋतु में नन्दनवन तुल्य जो वन तहां नगरके लोग क्रीड़ाको गए। दमयन्तने भी अपने मित्रों सहित बहुत क्रीड़ा करी, अबीरादि सुगंधनिकरि सुगन्धित है शरीर जाका अर कुंडलादि आभूषणनिकरि

शोभायमान सो तानै ताहि समय महामुनि देखे, कैसे हैं मुनि ? अंबर कहिए आकाश सो ही अंबर कहिए वस्त्र जिनके, तप ही है धन जिनका अर ध्यान स्वाध्याय आदि जे क्रिया तिनविषैं उद्यमी, सो यह दमयन्त महा दैदीप्यमान क्रीड़ा करते जे अपने मित्र तिनको छोड़ मुनियों की मंडली में गया। बन्दना कर धर्म का व्याख्यान सुन सम्यग्दर्शन संयुक्त भया, श्रावक-व्रत धारे, नाना प्रकार के नियम अंगीकार किए। एक दिन जे सप्त गुण दाता के अर नवधा भक्ति तिनकरि संयुक्त होय साधुनिकों आहार दान दिया, कैयक दिन विषैं समाधिमरणकर स्वर्गलोककों प्राप्त भया, नियमके अर दानके प्रभावतैं अद्भुत भोग भोगता भया, सैंकड़ों देवांगनानिके नेत्रनिकी कांति ही भई, नीलकमल तिनकी मालाकरि अर्चित चिरकाल स्वर्ग के सुख भोगे। बहुरि स्वर्ग तैं चयकरि जम्बूद्वीप में मृगांक नामा नगर में हरिचन्द नामा राजा ताकी प्रियंगुलक्ष्मी रानी ताकै सिंहचंद नामा पुत्र भया। अनेक कला गुणनिविषैं प्रवीण अनेक विवेकियोंके हृदयमें वसै। तहाँ भी देवों कैसे भोग किए, साधुवों की सेवा करी। बहुरि समाधिमरणकर देवलोक गया तहां मनवांछित अति उत्कृष्ट सुख पाए, कैसा है वह देव ? देवियों के जे वदन तेई भए कमल तिनके जो बन तिनके प्रफुल्लित करनेको सूर्य समान है। बहुरि तहांतैं चयकरि या भरत-क्षेत्रविषैं विजयार्ध गिरिपर अरुणपुर नगर में राजा सुकंठ, रानी कनकोदरी ताकै सिंहवाहन नामा पुत्र भया। अपने गुणनिकरि खेंचा है समस्त प्राणियों का मन जानैं, तहाँ देवों कैसे भोग भोगे। अप्सरा-समान स्त्री तिनके मन के चोर। भावार्थ—अति रूपवान अति गुणवान सो बहुत दिन राज्य किया। श्रीविमलनाथजी के समोसरण में उपज्या आत्मज्ञान अर संसारतैं वैराग्य जिनको सो लक्ष्मीवाहन नामा पुत्रकों राज्य देय संसारकों असार जानि लक्ष्मीतिलकमुनिके शिष्य भए। श्रीवीतराग देव का भाख्या महाव्रतरूप यति का धर्म अंगीकार किया। अनित्यादि द्वादश अनुप्रेक्षा का चिंतवनकरि ज्ञानचेतनारूप भए। जो तप काहू पुरुषतैं न बनैं सो तप किया। रत्नत्रयरूप अपने निज भावन विषैं निश्चल भए। परम तत्वज्ञानरूप आत्माके अनुभव विषैं मगन भए। तपके प्रभावतैं अनेक ऋद्धि उपजी। सर्व बात समर्थ, जिनके शरीरको स्पर्शकरि पवन आवै सो प्राणियों के अनेक रोग दुःख हरै परन्तु आप कर्म-निर्जरा के कारण बाईस परीषह सहते भए। बहुरि आयु पूर्णकर धर्मध्यानके प्रसादतैं ज्योतिषचक्रको उलंघकर सातवां लांतव नामा स्वर्ग तहां बड़ी ऋद्धि के धारी देव भए। चाहैं जैसा रूप करैं, चाहैं जहाँ जाय, जो बचनकरि कहने में न आवै। ऐसे अद्भुत सुख भोगे परंतु स्वर्गके सुख विषैं मगन न भए। परम धाम की है इच्छा जिनको, तहांतैं चयकरि या अंजनाकी कुक्षि विषैं आए हैं, सो यह्य परमसुख के भाजन हैं। बहुरि देह न धारेंगे, अविनाशी सुख कों प्राप्त होवेंगे, चरम शरीरी हैं। यह

तौ पुत्रके गर्भ में आवने का वृत्तांत कह्या। अब हे कल्याणचेष्टनि ! याने जिस कारणतें पति का विरह अर कुटुम्बतें निरादर पाया सो वृत्तांत सुन। इस अंजनासुन्दरीने पूर्वभवमें देवाधिदेव श्रीजिनेन्द्रदेव की प्रतिमा पटरानी पदके अभिमानकरि सौकिन (सौत) के ऊपर क्रोधकर मंदिरतें बाहिर निकासी, ताही समय एक संयमश्री आर्यिका याके घर आहारकों आई हुती, तपकरि पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुती सो याके द्वारा श्रीजी को मूर्ति का अविनय देख पारणा न किया। पीछे चाली अर याको अज्ञानरूप जान महा दयावती होय उपदेश देतीं भई। जे साधुजन हैं ते सबका भला ही चाहै हैं। जीवनिके समझावने के निमित्त विना पूछे ही साधुजन श्रीगुरु की आज्ञातें धर्मोपदेश देने को प्रवर्त्ते हैं। ऐसा जानकरि वह संयमश्री शील संयमरूप आभूषण की धरणहारी पटराणीको महामाधुर्य भरे अनुपम वचन कहतीभई, हे भोरी ! सुन, तू राजा की पटराणी है अर महारूपवती है, राजा का बहुत सन्मान है, भोगनिका स्थानक है, शरीर तेरा सो पूर्वोपार्जित पुण्यका फल है। या चतुर्गति विषें जीव भ्रमै है, महादुःख भोगै है, कबहुक अनंतकाल विर्षे पुण्य के योगतें मनुष्य देह पावै है। हे शोभने ! मनुष्य देह काहू पुण्य के योगतें पाई है, तातें यहनिंद्य आचार तू मत कर, योग्य क्रिया करने के योग्य है। यह मनुष्यदेह पाय जो सुकृत न करै है सो हाथ में आया रत्न खोवै है। मन, वचन तथा काय से जो शुभ क्रिया का साधन है सोई श्रेष्ठ है अर अशुभ क्रिया का साधन है सो दुःख का मूल है। जे अपने कल्याण के अर्थि सुकृत विषें प्रवर्तें हैं तेई उत्तम हैं, लोक महानिंद्य अनाचार का भरया है। जे संत संसारसागरतें आप तिरै हैं, औरनिको तारै हैं, भव्य जीवों को धर्म का उपदेश देय हैं, तिन समान और उत्तम नाहीं, ते कृतार्थ हैं, तिन मुनि के नाथ सर्व जगत के नाथ धर्मचक्री श्रीअरहंत देव तिनके प्रतिबिंबका जे अविनय करै हैं ते अनेक भवविषें कुगति के महादुःख पावै हैं। सो वे दुःख कौन वर्णव कर सकै। यद्यपि श्रीवीतरागदेव राग-द्वेषरहित हैं, जे सेवा करें तिनतें प्रसन्न नाहीं अर जे निंदा करें तिनतें द्वेष नाहीं, महामध्यस्थ भाव कों धारै हैं परंतु जे जीव सेवा करें ते स्वर्ग-मोक्ष पावें अर जे निंदा करें ते नरक-निगोद पावें। काहेतें, जीवोंके शुभ अशुभपरिणामनितें सुख-दुःख की उत्पत्ति होय है। जैसें अग्नि के सेवनतें शीत का निवारण होय है अर खान पानतें क्षुधा तृषा की पीड़ा मिटै है, तैसें जिनराज के अर्चनतें स्वयमेव ही सुख होय है अर अविनयतें परम दुःख होय है। अर हे शोभने! जे संसारविषें दुःख दीखैं हैं ते सर्व पाप के फल हैं अर जे सुख हैं ते धर्म के फल हैं। सो तू पूर्व पुण्य के प्रभावतें महाराज की पटराणी भई अर महासंपत्तिवती भई अर अद्भुत कार्य का करण-हारा तेरा पुत्र है, अब तू ऐसा कर जो सुख पावै। मेरे वचनतें अपना कल्याणकर। हे सयंके अर नेत्रके होते संते तू कूप में मत पड़ै। जो ऐसे कर्म करेगी तो घोर नरकमें

पड़ेगी, देवगुरुशास्त्र का अविनय करना अनंत दुःख का कारण है अर जैसे दोष देखे जो मैं तोहि व संबोधूं तो मोहि प्रमाद का दोष लागै है तातैं तेरे कल्याण निमित्त धर्मोपदेश दिया है। जब श्रीआर्यिकाजीने ऐसा कह्या तब यह नरकतैं डरी, सम्यग्दर्शन धारण किया, श्राविका के व्रत आदरे, श्रीजीको प्रतिमा मंदिरविषैं पधराई, बहुत विधानतैं अष्ट प्रकारकी पूजा कराई। या भांति राणी कनकोदरीको आर्यिका धर्मका उपदेश देय अपने स्थानकों गई अर वह कनकोदरी श्रीसर्वज्ञदेव का धर्म आराधनकर समाधिमरणकर स्वर्गलोकमें गई, तहां महासुख भोगे अर स्वर्गतैं चयकर महेंद्र की राणी जो मनोवेगा ताके अंजनासुन्दरी नामा तू पुत्री भई। सो पुण्यके प्रभावतैं राजकुलविषैं उपजी, उत्तम वर पाया अर जो जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को एक क्षण मंदिर के बाहिर राखा ताके पापकरि धनी का वियोग अर कुटुम्बतैं पराभव पाया। विवाहके तीन दिन पहले पवनंजय प्रच्छन्नरूप आए, रात्रिमें तिहारे झरोखेविषैं प्रहस्तमित्र के सहित बैठे हुते सो ता समय मिश्रकेशी सखीने विद्युत्प्रभकी स्तुति करी अर पवनंजयकी निंदा करी, ताकारण पवनंजय द्वेष कों प्राप्त भए। बहुरि युद्ध के अर्थ घरतैं चाले, मानसरोवर पर डेरा किया तहां चकवीका विरह देखकर करुणा उपजी, सो करुणा ही मानो सखीका रूप होय कुमारकों सुन्दरीके समीप लाई तब ताकै गर्भ रह्या। बहुरि कुमार प्रच्छन्न ही पिता की आज्ञा के साधिवे के अर्थि रावण के निकट गए। ऐसा कहकर फिर मुनि अंजनासों कहते भए, महाकरुणा भावकर अमृतरूप वचन खिरते भए, हे बालिके! तू कर्म के उदयकरि ऐसे दुःखकों प्राप्त भई तातैं बहुरि ऐसा निंद कर्म मत करना। संसार समुद्र के तारणहारे जे जिनेन्द्रदेव तिनकी भक्ति कर। पृथ्वी विषैं जे सुख हैं ते सर्व जिवभक्तिके प्रतापतैं होय हैं। ऐसे अपने भव सुनकर अंजना विस्मयको प्राप्त भई अर अपने किए जे कर्म तिनको निंदती अति पश्चाताप करती भई। तब मुनि ने कही–हे पुत्री! अब तू अपनी शक्तिप्रमाण नियम लेहु अर जिनधर्मका सेवन कर, यति-व्रतियों की उपासना कर। तैंनें ऐसे कर्म किए थे जो अधोगति को जाती परंतु संयमश्री आर्या ने कृपाकर धर्मका उपदेश दिया सो हस्तावलंबन देय कुगतिके पतनतैं बचाई अर यह बालक तेरे गर्भविषैं आया है सो महा कल्याणका भाजन है। पुत्रके प्रभावतैं तू परमसुख पावेगी, तेरा पुत्र अखंडवीर्य है, देवनिहूकरि जीत्या न जाय अर अब थोड़े ही दिन में तेरा तेरे भरतार तैं मिलाप होयगा। तातैं हे भव्ये! तू अपने चित्त में खेद मत करै, प्रमादरहित जो शुभ क्रिया तामैं उद्यमी होहु। ये मुनिके वचन सुन अंजना अर बसंतमाला बहुत प्रसन्न भईं अर बारंबार मुनिको नमस्कार किया, फूल गए हैं नेत्रकमल जिनके, मुनिराज ने इनको धर्मोपदेश देय आकाशमार्गतैं विहार किया। सो निर्मल है चित्त जिनका ऐसे संयमनिको यही उचित है कि जो निर्जन स्थानक होय

तहां निवास करें सो भी अल्प ही रहैं, या प्रकार निज-भव सुन अंजना पापकर्मतें अति डरी अर धर्मविषें सावधान भई. वह गुफा मुनि के विराजवेतें पवित्र भई हुती सो तहां अंजना वसंतमाला सहित पुत्र का प्रसूति समय देखकर रही।

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकतें कहैं हैं—हे श्रेणिक ! अब वह महेंद्रकी पुत्री गुफामें रही, वसंतमाला विद्याबलकरि पूर्ण विद्याके प्रभावकरि खान-पान आदि याके मनवांछित सर्व सामग्री करै। अथानंतर अंजना पतिव्रता पिया रहित वनविषें अकेली सो मानो सूर्य याका दुःख देख न सक्या सो अस्त होने लग्या, मानो याके दुःखतें सूर्यहूकी किरण मंद होय गई, सूर्य अस्त होय गया, पहाड़के शिखर अर वृक्षनिके अग्रभाग में जो किरणों का उद्योत रह्या था सो भी संकोच लिया।

अथानंतर संध्या कर क्षणएक आकाश मंडल लाल हो गया सो मानो अब क्रोधका भरया सिंह आवेगा, ताके लाल नेत्रनिकी ललाई फैली है। बहुरि होनहार जो उपसर्ग ताकी प्रेरी शीघ्र ही अंधकारका स्वरूप रात्रि प्रगट भई मानों राक्षसिनी ही रसातलतें नीसरी है, पक्षी संध्या समय चिगचगाटकर गहन वनमें शब्द रहित वृक्षनिके अग्रभाग पर तिष्ठे मानों रात्रिकों श्यामस्वरूप डरावनी देख भय कर चुप होय रहे। शिवा कहिए स्यालिनी तिनके भयानक शब्द प्रवर्तें सो मानों होनहार उपसर्ग के ढोल ही बाजे हैं।

अथानंतर गुफाके मुख सिंह आया, कैसा है सिंह ? विदारे हैं हाथियोंके जे कुंभ-स्थल तिनके रुधिरकर लाल होय रहे हैं केश जाके अर काल समान क्रूर भृकुटी को धरै अर महा विषम शब्द करता जिसके शब्दकरि वन गुंजि रह्या है अर प्रलयकालकी अग्नि की ज्वाला समान जीभकों मुखरूप गुफातें काढ़ता, कैसी है जीभ ? महाकुटिल है, अनेक प्राणियोंकी नाश करनहारी। बहुरि जीवनिके खेंचनेको जाकी अंकुश समान-श्याम जीभ। तीक्ष्ण दाढ़ महा कुटिल है रौद्र, सबनिको भयंकर है अर जाके नेत्र अति त्रासके कारण ऊगता जो प्रलयकाल का सूर्य ता समान तेजको धरै, दिशाओंके समूहको रंगरूप करै। वह सिंह पूछ की अणीको मस्तक ऊपर धरै, नखकी अणीतें विदारी है धरती जानै, पहाड़के तट समान उरस्थल अर प्रबल है जांघ जाकी, मानों वह सिंह मृत्युका स्वरूप दैत्य समान अनेक प्राणियों का क्षय करणहारा अंतकको भी अंतक समान, अग्नितें भी प्रज्वलित, ऐसे डरावने सिंह को देखकर वन के सब जीव डरे। ताके नाद कर गुफा गाज उठी, सो मानों भयकर पहाड़ रोवने लाग्या। अर याका निठुर शब्द वन के जीवोंके कान-निको ऐसा बुरा लाग्या मानों भयानक मुद्गर का घात ही है। जाके चिरमी समान लाल नेत्र सो ताके भयकरि हिरण चित्राम कैसे होय रहे। अर मदोन्मत्त गजनिका मद जाता रह्या, सब ही पशुगण अपने अपने ताई बच्चानि कूं लेय भयकरि कंपायमान वृक्षोंके आसरै

होय रहे। नाहरकी ध्वनि सुन अंजना ने ऐसी प्रतिज्ञा करी जो उपसर्गतैं मेरा शरीर जाय तो मेरे अनशनव्रत है, उपसर्ग टरे भोजन लेना। अर सखी वसंतमाला, खड्ग है हाथ में जाके, कबहूँ तो आकाशविषैं जाय, कबहूँ भूमि पर आवै, अति व्याकुल भई पक्षिणीकी नाईं भ्रमै। ये दोनों महा भयवान, कंपायमान है हृदय जिनका, तब गुफाका निवासी जो मणिचूल नामा गंधर्वदेव तासूं ताकी रत्नचूला नामा स्त्री महादयावंती कहती भई, हे देव! देखो ये दोनों स्त्री सिंहतैं महाभयभीत हैं अर अति विह्वल हैं, तुम इनकी रक्षा करो, तब गंधर्वदेवको दया उपजी, तत्काल विक्रियाकरि अष्टापदका स्वरूप रच्या सो सिंह का अर अष्टापद का महाभयंकर शब्द होता भया सो अंजना हृदय में भगवान का ध्यान धरती भई अर वसंतमाला सारस की नाईं विलाप करै, हाय अंजना! पहिले तो तू धनी के अप्रिय दुर्भागिनी भई, बहुरि काहूइक प्रकार धनीका आगमन भया सो तातैं तोकों गर्भ रह्या सो सासने विना समझे घरतैं निकासी, बहुरि माता पितानेहू न राखी, सो महाभयानक बन विषैं आई। तहाँ पुण्य के योगतैं मुनि का दर्शन भया, मुनि ने धैर्य बंधाया, पूर्वभव कहे, धर्मोपदेश देय आकाश के मार्ग गए अर तू प्रसूति के अर्थि गुफा विषैं रही सो अब या सिंह के मुख में प्रवेश करेगी। हाय! हाय! राजपुत्री निर्जन वनविषैं मरणको प्राप्त होय है, अब या वनके देवता दयाकर रक्षा करो। मुनि ने कही हुती जो तेरा सकल दुःख गया सो कहा मुनिहू के वचन अन्यथा होय हैं? या भांति विलाप करती वसंतमाला हिंडोले झूलने की नाईं एक स्थल न रहै; क्षणविषैं अंजना सुन्दरी के समीप आवै, क्षण विषैं बाहिर जावै।

अथानंतर वह गुफा का गंधर्वदेव जो अष्टापदका स्वरूप धरि आया हुता ताने सिंह के पंजे की मार दीनी तब सिंह भाग्या अर अष्टापद सिंहको भगायकर निज स्थानक गया। यह स्वप्न समान सिंह और अष्टापदके युद्धका चरित्र देख वसंतमाला गुफामें अंजना सुन्दरी के समीप आई, पल्लवोंसे भी अति कोमल जो हाथ तिनकरि विश्वासती भई मानो नवा जन्म पाया, हितकर संभाषण करती भई, सो एक वर्ष बराबर जाय है रात्रि जिनकी ऐसी यह दोनों कभी तो कुटुम्बके निर्दईपनेकी कथा करैं, कभी धर्मकथा करैं। अष्टापद ने सिंह को ऐसे भगाया जैसें हाथी को सिंह भगावै अर सर्प को गरुड़ भगावै। बहुरि वह गन्धर्वदेव बहुत आनन्दरूप होय गावने लग्या सो ऐसा गावता भया जो देवों के भी मनको मोहै तो मनुष्योंकी कहा बात? अर्धरात्रि के समय सब शब्द रहित होय गये तब वह गावता भया अर बारंबार वीणा को अति रागतैं बजावता भया, और भी तारके बाजे बजावता भया अर मंजीरादिक बजावता भया, मृदंगादिक बजावता भया, बाँसुरी आदिक फूकके बाजे बजावता भया। अर सप्त स्वरों में गाया तिनके नाम:—

षड्ज १, ऋषभ २, गांधार ३, मध्यम ४, पंचम ५, धैवत ६, निषाद ७। इन सप्त स्वरों के तीन ग्राम शीघ्र मध्य विलंबित अर इक्कीस मूर्छना हैं सो गंधर्वों में जे बड़े देव हैं तिनके समान गान किया। गान विद्या में गंधर्वदेव प्रसिद्ध हैं। उंचास स्थानक राग के हैं सो सब ही गंधर्वदेव जानै हैं। भगवान श्री जिनेन्द्रदेव के गुण सुन्दर अक्षरों में गाए। मैं श्री अरिहंत देवकों भक्ति कर वंदू हूँ। कैसे हैं भगवान ? देव अर दैत्योंकर पूजनीक हैं, देव कहिये स्वर्गवासी, दैत्य कहिए ज्योतिषी, विंतर अर भवनवासी, ये चतुरनिकायके देव हैं, सो भगवान सब देवों के देव हैं, जिनको सुर-नर विद्याधर अष्ट द्रव्यतैं पूजै हैं। बहुरि कैसे हैं ? तीन भुवन में अति प्रवीन हैं अर पवित्र हैं अतिशय जिनके ऐसे जे श्रीमुनिसुव्रत-नाथ तिनके चरण युगल में भक्तिपूर्वक नमस्कार करूं हूँ, जिनके चरणारविंदके नखनिकी कांति इन्द्र के मुकुटके रत्नोंकी ज्योतिकों प्रकाश करै है, ऐसें गान गंधर्वदेव ने गाए। सो वसंतमाला अति प्रसन्न भई, ऐसे राग कभी सुने नाहीं थे, सो विस्मयकरि व्याप्त भया है मन जाका वा गीतकी अतिप्रशंसा करती भई। धन्य यह गीत काहू ने अतिमनोहर गाए, मेरा हृदय अमृतकर आर्द्र किया, अंजनाको वसंतमाला कहती भई, यह कोई दयावान् देव है जानैं अष्टापद का रूप धारि सिंहको भगाया अर हमारी रक्षा करी अर ये मनोहर राग याही ने अपने आनन्द के अर्थि गाये हैं। हे देवी ! हे शोभने, हे शीलवंती ! तेरी दया सब ही करैं। जे भव्यजीव हैं तिनके महाभयंकर बनविषें देव मित्र होय हैं, या उप-सर्ग के विनाशतैं निश्चय तेरा पतिसों मिलाप होयगा अर तेरे पुत्र अद्भुत पराक्रमी होयगा। मुनिके वचन अन्यथा न होंय, सो मुनिके ध्यानकर जो पवित्र गुफा ता विषैं श्रीमुनिसुव्रतनाथ की प्रतिमा पधराय दोनों सुगंध द्रव्यनितैं पूजा करती भईं। दोनों के चित्तविषें यह विचार कि प्रसूति सुखतैं होय। वसंतमाला नानाभांति अंजनाके चित्तको प्रसन्न करै है अर वह कहती भई कि हे देवी ! मानों यह वन अर गिरि तिहारे पधारनेतैं परम हर्षकों प्राप्त भया है सो नीझरने के प्रवाहकर यह पर्वत मानों हँसै ही है अर यह वनके वृक्ष फलों के भारतैं नम्रीभूत लहलहाट करै हैं, कोमल हैं पल्लव जिनके, बिखर रहे हैं फूल जिनके, सो मानों हर्षकों प्राप्त भए हैं। अर जे मयूर सूवा मैना कोकिलादिक मिष्ट शब्द कर रहे हैं सो मानों वन पहाड़तैं वचनालाप करैं हैं। कैसा है पर्वत ? नानाप्रकारकी जे धातु तिनकी है खान जहां अर सघन वृक्षोंके जे समूह सो इस पर्वतरूप राजा के सुन्दर वस्त्र हैं अर यहां नाना प्रकार के रत्न हैं सोई या गिरिके आभूषण भए अर या पर्वत में भली भली गुफा हैं अर यहां अनेक जाति के सुगन्ध पुष्प हैं अर या पर्वत ऊपर बड़े बड़े सरोवर हैं अर तिनमें सुगंध कमल फूल रहे हैं, तेरा मुख महासुन्दर अनुपम सो चन्द्रमाकी ओर कमलकी उपमाको जीतै है। हे कल्याणरूपिणी ! चिंताके वश मति होहु, धैर्य धर,

या वनमें सर्व कल्याण होयगा, देव सेवा करेंगे। पुण्याधिकारिणी तेरा शरीर निष्पाप है, हर्षतें पक्षी शब्द करै हैं सो मानों तेरी प्रशंसा ही करै हैं। यह वृक्ष शीतल मंद सुगंध पवन के प्रेरे पत्रों के लहलहाटतें मानो तेरे विराजवे करि महाहर्षको प्राप्त भए नृत्य ही करै है। अब प्रभातका समय भया है, पहले तो आरक्त संध्या भई सो मानों सूर्य ने तेरी सेवा निमित्त सखी पठाई। अर अब सूर्य भी तेरा दर्शन करनेके अर्थि मानों उदय होनेको उद्यमी भया है। यह प्रसन्न करने की बात वसंतमाला ने जब कही तब अंजना सुन्दरी कहती भई, हे सखी! तोहि होते संते मेरे निकट सर्व कुटुम्ब है अर यह वन ही तेरे प्रसादतें नगर है। जो या प्राणीकों आपदामें सहाय करै है सो ही परम बांधव है अर जो बांधव दुःखदाता है सो ही परम शत्रु है। या भांति परस्पर मिष्ट-संभाषण करती ये दोनों गुफा में रहैं, श्रीमुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमाका पूजन करैं। विद्या के प्रभावतें वसंतमाला खानपान आदि बड़ी विधिसेती सब सामग्री करै। वह गंधर्वदेव सब प्रकार इनकी दुष्ट जीवनितें रक्षा करै अर निरंतर भक्तितें भगवान के अनेक गुण नाना प्रकार के राग रचना करि गावै।

(हनुमान का जन्म)

अथानंतर अंजनाके प्रसूतिका समय आया। तब वह वसंतमालासे कहती भई—हे सखी! आज मेरे कुछ व्याकुलता है। तब वसंतमाला बोली—हे शोभने! तेरे प्रसूतिका समय है, तू आनन्दको प्राप्त होहु, तब याके लिये कोमल पल्लवोंकी सेज रची। तापर याके पुत्रका जन्म भया। जैसें पूर्व दिशा सूर्य को प्रगट करै तैसें यह हनुमान को प्रगट करती भई। पुत्रके जन्मतें गुफाका अंधकार जाता रहा, प्रकाशरूप होय गई मानों सुवर्ण-मई ही भई। तब अंजना पुत्र कों उरसों लगाय दीनता के वचन कहती भई कि हे पुत्र! तू गहन बनविषैं उत्पन्न भया, तेरे जन्मका उत्सव कैसे करूं? जो तेरा दादाके तथा नानाके घर जन्म होता तो जन्मका बड़ा उत्सव होता, तेरा मुखरूप चंद्रमा के देखवेतें कौनको आनन्द न होय, मैं कहा करूं, मंदभागिनी सर्व वस्तु रहित हूं। दैव कहिए पूर्वोपार्जित कर्मने मोहि दुःखदायिनी दशाकों प्राप्त करी जो मैं कछु करनेको समर्थ नाहीं हूं परंतु प्राणीनिकों सर्व वस्तुतें दीर्घायु होना दुर्लभ है। सो हे पुत्र! चिरंजीवी होहु, तू है तो मेरे सर्व है। यह प्राणों का हरणहारा महागहन बन है, यामें जो मैं जीऊं हूं सो तेरे ही पुण्य के प्रभावतें। ऐसे दीनताके वचन अंजना के मुखतें सुनकरि वसंतमाला कहती भई कि हे देवी! तू कल्याणपूर्ण है जो ऐसा पुत्र पाया। यह सुन्दर लक्षण शुभरूप दीखै है, बड़ी ऋद्धि का धारी होयगा। तेरे पुत्र उत्सवतें मानों यह बेलिरूप वनिता नृत्य करैं हैं, चलाय-मान हैं कोमल पल्लव जिनके अर जो भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों संगीत करै हैं, यह

बालक पूर्ण तेज है सो याके प्रभाव करि तेरे सकल कल्याण होंयगे। तू वृथा चिंतावती मत हो। या भांति इन दोऊनिके वचनालाप होते भए।

अथानंतर बसंतमाला ने आकाश में सूर्य के तेज समान प्रकाशरूप एक ऊंचा विमान देख्या सो देखकर स्वामिनीसों कह्या तब वह शंका कर विलाप करती भई, यह कोई निःकारण वैरी मेरे पुत्र को ले जायगा अथवा मेरा कोई भाई है। तिनके विलाप सुन विद्याधर ने विमान थांम्या, दया संयुक्त आकाशतें उतर्या। गुफा के द्वार पर विमान को थांभि महा नीतिवान महा विनयवान शंकाको धरता संता स्त्री सहित भीतर प्रवेश किया, तब बसंतमालाने देखकरि आदर किया। यह शुभ मन विनयतें बैठ्या और क्षणएक बैठ करि महामिष्ट अर गंभीर वाणी कहकर बसंतमाला को पूछता भया। ऐसे गम्भीर वचन कहता भया मानो मयूरनिको हर्षित करता मेघ ही गरज्या है। सुमर्यादा कहिए मर्यादा की धरणहारी यह बाई कौन की बेटी, कौन ने परणी, कौन कारणतें महावन में रहै है, यह बड़े घर की पुत्री है, कौन कारणतें सर्व कुटुम्बतें रहित भई है अथवा या लोकविषें रागद्वेष रहित जे उत्तम जीव हैं तिनके पूर्व कर्मों के प्रेरे निःकारण वैरी होय हैं। तब बसंतमाला, दुःखके भारकरि रुक गया है कंठ जाका, आंसू डारती, नीची है दृष्टि जाकी, कष्टकर वचन कहती भई। महानुभाव! तिहारे वचन ही तें तिहारे मन की शुद्धता जानी जाय है। जैसे रोग अर मृत्यु का मूल जो विषवृक्ष ताकी छाया हू सुन्दर होय अर जैसे दाह के नाशका मूल जो चंदन का वृक्ष ताकी छाया भी सुन्दर लागै है सो तुम सारिखे जे गुणवान पुरुष हैं सो शुद्ध भाव प्रगट करने के स्थानक हैं। आप बड़े हो, दयालु हो, यदि तिहारे याके दुःख सुनवे की इच्छा है तो सुनहु, मैं कहूँ हूँ। तुम सारिखे बड़े पुरुषनिको कह्या संता दुःख निवृत्त होय है। तुम दुःखहारी पुरुष हो, तिहारा यही स्वभाव ही है जो आपदाविषें सहाय करो। सो मैं कहूँ, सुनहु। यह अंजना सुन्दरी राजा महेन्द्रकी पुत्री है, वह राजा पृथ्वी पर प्रसिद्ध महा यशवान्, नीतिवान् निर्मल स्वभाव है। और राजा प्रह्लाद का पुत्र पवनंजय गुणोंका सार ताकी प्राण हू तें प्यारी यह स्त्री है, सो पवनंजय एक समय बापकी आज्ञातें रावणके निकटवरुणसों युद्ध के अर्थि विदा होय चाले हुते सो मानसरोवरतें रात्रिकों याके महल में गोप्य आए तातें याको गर्भ रह्या सो याकी सासूका क्रूर स्वभाव दयारहित महामूर्ख था ही, वाके चित्त में गर्भका भर्म उपज्या तब वानै याकों पिता के घर पठाई। यह सब दोषरहित महासती शीलवंती निर्विकार है सो पिता ने भी अकीर्ति के भयतें न राखी। जे सज्जन पुरुष हैं ते झूठे भी दोषतें डरै हैं। यह बड़े कुल की बालिका सर्व आलंबन रहित या वन विषें मृगी समान रहै है। मैं याकी सेवा करूं हूँ। इनके कुलक्रमतें हम आज्ञाकारी सेवक हैं, इतबारी हैं अर कृपापात्र हैं सो यह आज या वनविषें

प्रसूति भई है। यह वन नाना उपसर्ग का निवास है, न जानिए कैसे याकों सुख होयगा। हे राजन् ! यह याका वृत्तांत संक्षेपतें तुमसों कह्या अर सम्पूर्ण दुःख कहांतक कहूं, या भांति स्नेहकरि पूरित जो वसंतमालाके हृदय का राग सो अंजना के तापरूप अग्नितें पिघल्या संता अंग में न समाया सो मानों वसंतमालाके वचन द्वारकरि बाहिर निकस्या। तब वह राजा प्रतिसूर्य हनूरुहनामद्वीप का स्वामी वसंतमालासूं कहता भया—हे भव्ये ! मैं राजा चित्रभानु अर राणी सुन्दरमालिनी का पुत्र हूँ, यह अंजना मेरी भानजी है। मैंने बहुत दिनमें देखी सो पिछनी नाहीं ऐसा कहकर अंजनाका बाल्यावस्थातें लेकर सकल वृत्तांत कहकर गद्गद वाणीकर वचनालापकर आंसू डालता भया। तब पूर्ण वृत्तांत कहनेतें अंजना ने याकों मामा जान गले लागि बहुत रुदन किया सो मानों सकल दुःखरुदन सहित निकस गया। यह जगत की रीति है, हितु को देख अश्रुपात पड़ै हैं। वह राजा भी रुदन करने लाग्या अर ताकी रानी भी रोवने लागी। वसंतमालाने भी अति रुदन किया। इन सबके रुदनतें गुफा गुंजार करती भई सो मानों पर्वत ने भी रुदन किया। जलके जे नीझरने तेई भये अश्रुपात तिनतें सब बन शब्दमई होय गया। वन के जीव जे मृगादि सो भी रुदन करते भए। तब राजा प्रतिसूर्य ने जलतें अंजनाका मुख प्रक्षालन कराया अर आप भी जलतें मुख पखाल्या। वन हू शब्द रहित होय गया मानों इनकी वार्ता सुनना चाहै है। अंजना प्रतिसूर्य की स्त्रीतें सम्भाषण करती भई सो बड़ों की यह रीति है जो दुःख विषै हू कर्तव्यतें न चूकें। बहुरि अंजना मामासों कहती भई, हे पूज्य ! मेरे पुत्र का समस्त शुभाशुभ वृत्तांत ज्योतिषीनितें पूछो। तब सांवत्सर नामा ज्योतिषी लार था ताकों पूछया तब ज्योतिषी बोल्या कि बालकके जन्मकी बेला बतावो तब वसंतमाला ने कही कि आज अर्धरात्रि गए जन्म भया है। तब लग्न थापकर बालकके शुभ लक्षण जान ज्योतिषी कहता भया कि यह बालक मुक्ति का भाजन है। बहुरि जन्म न धरेगा। जो तिहारे मन में संदेह है तो मैं संक्षेपतासों कहूँ हूँ सो सुनो—चैत्र वदी अष्टमी की तिथि है अर श्रवण नक्षत्र है अर सूर्य मेष का उच्चस्थान विषैं बैठ्या है अर चंद्रमा वृष का है अर मकर का मंगल है अर बुध मीनका है अर वृहस्पति कर्क का है सो उच्च है शुक्र तथा शनिश्चर दोनों मीन के हैं, सूर्य पूर्ण दृष्टिकर शनि को देखै है अर मंगल दस विश्वा सूर्यको देखै है अर वृहस्पति पंद्रह विश्वा सूर्य को देखै है और सूर्य वृहस्पतिको दस विश्वा देखै है अर चंद्रमाको पूर्ण दृष्टि करि वृहस्पति देखै है अर वृहस्पति को चंद्रमा देखै है अर वृहस्पति शनिश्चरको पंद्रहविश्वा देखै है अर शनिश्चर वृहस्पतिको दस विश्वा देखै है। वृहस्पति शुक्रको पंद्रह विश्वा देखै है, याकै सब ही ग्रह बलवान बैठे हैं. सूर्य और मंगल दोनों याका अद्भुत राज्य निरूपण करै हैं अर वृहस्पति अर शनि मुक्तिका देनहारा जो योगीन्द्रपद

ताका निर्णय करै हैं। जो एक बृहस्पति ही उच्चस्थान बैठया होय तो सर्व कल्याण के प्राप्ति का कारण है अर ब्रह्मनामा योग है अर मुहूर्त शुभ है सो अविनाशी सुखका समागम याके होयगा, या भांति सब ही ग्रह अति बलवान बैठे हैं सो सब दोष रहित यह होयगा। ऐसा ज्योतिषी ने जब कह्या तब प्रतिसूर्यने ताकों बहुत दान दिया अर भानजीकों अति हर्ष उपजाया अर कही कि हे वत्से! अब हम हनूरुहद्वीपको चालें तहां बालकका जन्मोत्सव भलीभांति होयगा। तब अंजना भगवान की वंदना कर पुत्रको गोदी में लेय गुफा का अधिपति जो वह गंधर्वदेव तासों बारंबार क्षमा कराय प्रतिसूर्य के परिवार सहित गुफातें निकसी अर विमान के पास आय ऊभी रही मानों साक्षात् वनलक्ष्मी ही है। कैसा है विमान? मोतीनिके जे हार सोई मानों नीझरने हैं अर पवन की प्रेरी क्षुद्रघण्टिका बाज रही हैं अर लहलहाट करती जे रत्नोंकी झालरी तिनतें शोभायमान अर केलि के बनों तें शोभायमान है, सूर्यके किरण के स्पर्श कर ज्योतिरूप होय रह्या है अर नाना प्रकारके रत्न की प्रभाकर ज्योतिका मंडल पड़ रह्या है सो मानों इन्द्रधनुष ही चढ़ि रह्या है अर नाना प्रकार के वर्णों की सैंकड़ों ध्वजा फरहरैं हैं अर वह विमान कल्पवृक्ष समान मनोहर नानाप्रकार के रत्ननिकरि निर्मापित नाना रूपकों धरै मानों स्वर्गलोकतें आया है सो वा विमान में पुत्र सहित अंजना वसंतमाला तथा राजा प्रतिसूर्य का परिवार सकल बैठकर आकाशके मार्ग चाले, सो बालक कौतुक कर मुलकता संता माता की गोद में तैं उछलकर पर्वत ऊपर जा पड़्या, माता हाहाकार करती भई अर राजा प्रतिसूर्यके सर्वलोक हाहाकार करते भए अर राजा प्रतिसूर्य बालक के ढूंढने को आकाशतें उतरिकरि पृथिवी पर आया, अंजना अति दीन भई विलाप करै है। ऐसा विलाप करै है जाकों सुनकर तिर्यंचनिका मन भी करुणा कर कोमल होय गया। हाय पुत्र! कहा भया, दैव कहिए पूर्वोपार्जित कर्मने कहा किया, मोहि रत्न संपूर्ण निधान दिखायकरि बहरि हर लिया, पतिके वियोगके दुःखतें व्याकुल जो मैं सो मेरे जीवनका अवलंबन जो बालक भया हुता सो भी पूर्वोपार्जित कर्मने छिनाय लिया। सो माता तो यह विलाप करै है अर पुत्र पर्वत पर पड़्या सो पर्वत के हजारों खंड होय गए अर महा शब्द भया, प्रतिसूर्य देखै तो बालक एक शिला ऊपर सुख से विराजै है, अपने अंगूठे आप ही चूसै है, क्रीड़ा करै है अर मुलकै है, अति शोभायमान सूधे पड़े हैं, लहलहाट करै हैं कर चरणकमल जिनके, सुन्दर है शरीर जिनका, वे कामदेव पद के धारक उनको कौन की उपमा दीजे? मंद मंद जो पवन ताकरि लहलहाट करता जो रक्तकमलोंका वन ता समान है प्रभा जिनकी, अपने तेजकरि पहाड़के खंड खंड किये, ऐसे बालक कों दूरतें देखकर प्रतिसूर्य अति आश्चर्यकों प्राप्त भया। कैसा है बालक? निष्पाप है शरीर जाका, धर्मका

स्वरूप, तेजका पुंज, ऐसे पुत्रको देख माता बहुत विस्मयकों प्राप्त भई, उठाय सिर चूमा अर छातीसों लगाय लिया। तब प्रतिसूर्य अंजनातें कहता भया, हे बालिके ! यह बालक तेरा समचतुरस्रसंस्थान वज्रवृषभनाराचसंहननका धरणहारा महा वज्रका स्वरूप है. जाके पड़नेकरि पहाड़ चूर्ण होय गया। जब या बालककी ही देवनितें अधिक अद्भुत शक्ति है तौ यौवन अवस्थाकी शक्तिका कहा कहना ? यह निश्चय सेती चरम शरीरी है। तद्भव मोक्षगामी है फिर देह न धारेगा, याकी यही पर्याय सिद्धपदका कारण है; ऐसा जानकर तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ सिर नवाय अपनी स्त्रीनिके समूह सहित बालककों नमस्कार करता भया। यह बालक, ताकी जे स्त्री तिनके जे नेत्र तेई भए श्याम श्वेत अरुणकमल तिनकी माला तिनकरि पूजनीक अति रमणीक मंद मंद मुलकनका करणहारा सब ही नर-नारीनिका मन हरै, राजा प्रतिसूर्य पुत्रसहित अंजना भानजीको विमानमें बैठाय अपने स्थानक लेय आया। कैसा है नगर ? ध्वजा-तोरणनिकरि शोभायमान है, राजाकों आया सुन सर्व नगरके लोक नाना प्रकार के मंगल द्रव्यनिसहित सन्मुख आए। राजा प्रतिसूर्यने नगरमें प्रवेश किया, वादित्रोंके नादतें व्याप्त भई हैं दसों दिशा जहाँ, बालकके जन्म का बड़ा उत्सव विद्याधरने किया जैसा स्वर्गलोकविषें इन्द्रकी उत्पत्तिका उत्सव देव करै हैं। पर्वत विषें जन्म पाया अर विमानतें पड़करि पर्वत कों चूर्ण किया तातें बालक का नाम माता अर राजा प्रतिसूर्य ने श्रीशैल ठहराया अर हनूरुह द्वीप विषें जन्मोत्सव भया तातें हनूमान यह नाम पृथ्वीविषें प्रसिद्ध भया। वह श्रीशैल (हनुमान) हनूरुहद्वीपविषें रमै। कैसा है कुमार ? देवनि समान है प्रभा जिनकी, महाकांतिवान, सबको महा उत्सवरूप है शरीरकी क्रिया जाकी, सर्वलोकके मन अर नेत्रनिकों हरनहारा प्रतिसूर्यके पुरविषें विराजे है।

अथानंतर गणधर देव राजा श्रेणिकतें कहै हैं—हे नृप ! प्राणीनि के पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभावतें गिरिनिका चूर्ण करणहारा महाकठोर जो वज्र सो भी पुष्प समान कोमल होय परणवै है अर महा आतापकी करणहारी जो अग्नि सो चंद्रमाकी किरण समान तथा विस्तीर्ण कमलिनी के वन समान शीतल होय है अर महा तीक्ष्ण खडग की धारा सो महा मनोहर कोमल लता समान होय है। ऐसा जानकर जे विवेकी जीव हैं ते पापतें विरक्त होय हैं, कैसा है पाप ! महा दुःख देने विषें प्रवीण है। तुम जिनराज के चरित्र विषें अनुरागी होवो। कैसा है जिनराजका चरित्र ! सारभूत जो मोक्ष का सुख ताके देने विषें चतुर है, यह समस्त जगत निरन्तर जन्म-जरा-मरणरूप सूर्यके आतापतें तप्तायमान है तामें हजारों जे व्याधि हैं सोई किरणों का समूह है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषें हनुमान की जन्म कथा का वर्णन करने वाला सत्रहवां पर्व पूर्ण भया ॥ १७ ॥

(अष्टादश पर्व)

[पवनंजयका युद्ध से प्रत्यागमन और अंजना का अन्वेषण]

अथानंतर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसों कहै हैं कि हे मगधदेशके मंडन ! यह श्रीहनुमानजी के जन्म का वृत्तांत तो तोहि कह्या, अब हनुमान के पिता पवनंजयका वृत्तांत सुन। पवनंजय पवनकी नाईं शीघ्र ही रावणपै गया अर रावणकी आज्ञा पाय वरुणतें युद्ध करता भया। सो बहुत देरतक नाना प्रकार के शस्त्रनिकरि वरुणके अर पवनंजयके युद्ध भया, सो युद्धविषैं वरुणको बांध लिया। तानै जो खरदूषणको बांध्या हुता सो छुड़ाया अर वरुण कों रावण के समीप लाया, वरुणने रावण की सेवा अंगीकार करी, रावण पवनंजयतें अति प्रसन्न भए तब पवनंजय रावणसों विदा होय अंजनाके स्नेहतें शीघ्र ही घरको चाले। राजा प्रह्लादने सुनी कि पुत्र विजय कर आया तब ध्वजा तोरण मालादिकोंसे नगर शोभित किया, तब सब ही परिजन पुरजन लोग सन्मुख आय नगर के सर्व नर नारी इनके कर्त्तव्यकी प्रशंसा करैं हैं। राज महलके द्वारे अर्घादिकर बहुत सन्मान कर भीतर प्रवेश कराया। सारभूत मंगलीक वचननिकरि कुंवरकी सबहीने प्रशंसा करी। कुंवर माता पिताकों प्रणामकरि सबका मुजरा लेय क्षणएक सभाविषैं सबनिकी शुश्रुषा कर आप अंजना के महल पधारे। प्रहस्त मित्र लार सो वह महल जैसा जीव रहित शरीर सुन्दर न लागै, तैसें अंजना बिना मनोहर न लागै, तब मन अप्रसन्न होय गया। प्रहस्तसों कहते भए कि हे मित्र ! यहां वह प्राणप्रिया कमलनयनी नहीं दीखै है सो वहां है। यह मंदिर ताके बिना मुझे उद्यान समान भासै है तातैं तुम वार्ता पूछो, वह कहां है ? तब प्रहस्त माहिले लोयनितैं निश्चयकर सकल वृत्तांत कहता भया। तब याके हृदयको क्षोभ उपज्या। माता पितासों बिना पूछे ही मित्रसहित महेंद्र के नगर में गए। चित्त में उदास जब राजा महेंद्रके नगरके समीप जा पहुंचे तब मनमें ऐसा जान्या जो आज प्रिया का मिलाप होयगा। तब मित्रसों कहते भए कि हे मित्र! देखो यह नगर मनोहर दीखै है, जहां वह सुन्दर कटाक्ष की धरनहारी सुन्दरी विराजै है। जैसें कैलाशपर्वत के शिखर शोभायमान दीखै हैं तैसें महल के शिखर रमणीक दीखै हैं अर वनके वृक्ष ऐसे सुन्दर हैं मानों वर्षाकालकी सघन घटा ही है। ऐसी वार्ता मित्रसों करते संते नगरके पास जाय पहुंचे। मित्र भी बहुत प्रसन्न होता भया। राजा महेंद्रने सुनी कि पवनंजयकुमार विजयकर पितासों मिल यहां आए हैं तब नगर की बड़ी शोभा कराई अर आप अर्घादिक उपचार लेय सन्मुख आया, बहुत आदरतैं कुंवरको नगर में लाए, नगर के लोगोंने बहुत आदरतैं गुण वर्णन किये। कुंवर राजमंदिर में आए। एक मुहूर्त ससुरके निकट विराजे,

सबहीका सन्मान किया अर यथायोग्य वार्ता करी। बहुरि राजातैं आज्ञा लेयकर सासूका मुजरा करया। बहुरि प्रियाके महल पधारे। कैसे हैं कुमार ? कांताके देखनेकी है अभिलाषा जाकै, तहां भी स्त्री को न देख्या तब अति विरहातुर होय काहूकों पूछया—हे बालिके ! यहां हमारी प्रिय कहां है ? तब वह बोली—हे देव ! यहां तिहारी प्रिया नाहीं, तब वाके वचनरूप वज्रकर हृदय चूर्ण होय गया अर कान मानों ताते खारे पावोसे सींचे गए, जैसा जीवरहित मृतक शरीर होय तैसा होय गया, शोकरूप दाहकरि मुरझाय गया है मुखकमल जाका, यह ससुराल के नगरतें निकसि करि पृथ्वीविषैं स्त्री के वार्ताके निमित्त भ्रमता भया, मानों वायुकुमार को वायुलागी। तब प्रहस्तमित्र याकों अति आतुर देखकरि याके दुःखतैं अति दुःखी भया अर यासों कहता भया, हे मित्र ! कहा खेद खिन्न होय है ? अपना चित्तनिराकुल कर। यह पृथवी केतीक है, जहां होयगी वहां ठीककर लेवेंगे। तब कुमारने मित्रसों कही, तुम आदित्यपुर मेरे पितापै जावो अर सकल वृतांत कहो जो मुझे प्रियाकी प्राप्ति न होयगी तो मेरा जीवना नहीं होयगा, मैं सकल पृथवीपर भ्रमणकरूं हूं अर तुम भी ठीक करो। तब मित्र यह वृतांत कहनेकों आदित्यपुर नगरविषैं आया, पिताकों सब वृतांत कह्या अर पवनकुमार अंबरगोचर हाथीपर चढ़करि पृथिवी विषैं विचरता भया, मनविषैं यह चिंता करी कि वह सुन्दरी कमलसमान कोमल शरीर शोकके आतापकरि संतापको प्राप्त भई कहां गई, मेरा ही है हृदयविषैं ध्यान जाके वह गरीबिनी विरहरूप अग्नितैं प्रज्वलित विषमवनमें कौन दिशाकों गई, सत्यवादिनी निःकपट धर्मकी धरनहारी, गर्भ का है भार जाकै, मत कदापि वसंतमालासों रहित होय गई होय। वह पतिव्रता श्रावक के व्रत पालनहारी राजकुमारी शोककर अंध होय गए हैं दोनों नेत्र जाके अर विकट वनविषैं विहार करती क्षुधासों पीड़ित अजगर युक्त जो अंधकूप तामैं ही पड़ी हो, अथवा वह गर्भवती दुष्ट पशुओंके भयंकर शब्द सुन प्राणरहित ही होय गई होय, प्राणनितैं भी अधिक प्यारी या भयंकर अरण्यविषैं जल विना प्यासकर सूख गए हों कंठ-तालु जाके, सो प्राणोंसे रहित होय गई होय ? वह भोरी कदाचित् गंगाविषैंउतरी होय तहां नाना प्रकारके ग्राह सो पानीमें बह गई हो, अथवा वह अतिकोमल तनु डाभकी अणीकर विदारे गए होंय चरण जाके सो एक पैंड़ भी पग धरनेकी शक्ति नाहीं सो न जानिए कहा दशा भई अथवा दुःखतैं गर्भपात भया होय अर कदाचित् वह जिनधर्म की सेवनहारी महाविरक्त भाव होय आर्या भई होय। ऐसा चिंतवन करते पवनंजयकुमारने पृथवीविषैं भ्रमण किया सो वह प्राणवल्लभा न देखी। तब विरहकरि पीड़ित सर्व जगतकों शून्य देखता भया, मरणका निश्चय किया। न पर्वतविषैं, न मनोहर वृक्षनिविषैं, न नदीके तटपर काहू ठौर ही प्राणप्रिया विना उसका मन न रमता भया। ऐसा विवेकवर्जित भया जो सुन्दरीकी

वार्ता वृक्षनिको पूछै । भ्रमता २ भूतरव नामा वनमें आया तहां हाथीतें उतरचा अर जैसें मुनि आत्मा का ध्यान करै तैसें प्रियाका ध्यान करै । बहुरि हथियार अर बखतर पृथवी पर डार दिए अर गजेन्द्रतें कहते भए—हे गजराज ! अब तुम वनविषें स्वच्छंद विहारी होवो । हाथी विनयकरि निकट खड़या है, आप कहै हैं, हे गजेन्द्र ! नदीके तीरमें शल्यकी वन है ताके जो पल्लव सो चरते विचरो अर यहां हथिनीनिके समूह हैं सो तुम नायक होय विचरो । कुंवरने ऐसा कह्या परंतु वह कृतज्ञ धनीके स्नेहविषै प्रवीण कुंवरका संग नहीं छोड़ता भया जैसें भला भाई भाईका संग न छोड़ै । कुंवर अति शोकवंत ऐसे विकल्प करै कि अति मनोहर जो वह स्त्री ताहि यदि न पाऊं तो या वनविषें प्राण त्याग करूं, प्रिया विषें लग्या है मन जाका ऐसा जो पवनंजय ताहि बनविषं रात्रि भई सो रात्रिके चार पहर चार वर्ष समान बीते । नाना प्रकारके विकल्पकरि व्याकुल भया । यहाँ की तो यह कथा अर मित्र पितापै गया सो पिताकों वृत्तांत कह्या । पिता सुन कर परम शोककों प्राप्त भया, सब को शोक उपज्या । अर केतुमति माता पुत्र के शोककरि अति पीड़ित होय रोवती संती प्रहस्तसूं कहती भई कि जो तू मेरे पुत्रकों अकेला छोड़ आया सो भला न किया । तब प्रहस्तने कही मोहि अति आग्रहकर तिहारे निकट भेज्या सो आया, अब तहाँ जाऊंगा सो माता ने कही—वह कहाँ है ? तब प्रहस्तने कही जहां अंजना है तहाँ होयगा । तब याने कही अंजना कहाँ है? ताने कही मैं न जानूं । हे माता! जो विना विचारे शीघ्र ही काम करै तिनको पश्चाताप होय । तिहारे पुत्रने ऐसा निश्चय किया कि जो मैं प्रियाकों न देखूं तो प्राणत्याग करूं । यह सुनकर माता अति विलाप करती भई । अंतःपुरकी सकल स्त्री रुदन करती भई, माता विलाप करै है—हाय मो पापिनीने कहा किया ? जो महासतीको कलंक लगाया, जाकरि मेरा पुत्र जीवनके संशयकों प्राप्त भया । मैं क्रूरभावकी धरणहारी महावक्र मंदभागिनीने विना विचारे यह काम किया । यह नगर यह कुल अर विजयार्ध पर्वत अर रावण का कटक पवनंजय विना शोभै नाहीं, मेरे पुत्र समान और कौन, जानै वरुण जो रावणहूतें असाध्य ताहि रणविषें क्षणमात्रमें बाँध लिया । हाय वत्स ! विनयके आधार गुरु पूजन में तत्पर, जगतसुन्दर विख्यात गुण तू कहां गया ? तेरे दुःखरूप अग्निकरि तप्तायमान जो मैं, सो हे पुत्र ! मातासों वचनालाप कर, मेरा शोक निवार । ऐसे विलाप करती अपना उरस्थल अर सिर कूटती जो केतुमती सो तानें सब कुटुम्ब शोकरूप किया । प्रह्लाद हू आँसू डारते भए । सब परिवार कों साथ लेय प्रहस्त को अवगानी कर अपने नगरतें पुत्रकों ढूंढनेको चाले । दोनों श्रेणियों के सर्व विद्याधर प्रीतिसों बुलाये सो परिवार सहित आए । सब ही आकाशके मार्ग कुंवर को ढूंढै हैं, पृथ्वीविषें देखै हैं अर गंभीर वन और तालाबोंमें देखै हैं, पर्वतोंमें देखै हैं अर

प्रतिसूर्यके पास भी प्रह्लादका दूत गया सो सुनकर महा शोकवान भया अर अंजनासों कह्या सो अंजना प्रथम दुःखतें भी अधिक दुःखकों प्राप्त भई, अश्रुधारा करि वदन पखालती रुदन करती भई कि हाय नाथ ! मेरे प्राणोंके आधार ! मुझमें बाँध्या है मन जिन्होंने सो मोहि जन्म दुखारीकों छोड़करि कहाँ गए ? कहा मुझसों कोप न छोड़ो हो, जो सर्व विद्याधरनितें अदृश्य होय रहे हो। एक बार एक भी अमृत समान वचन मोसों बोलो, एते दिन ये प्राण तिहारे दर्शनकी बांछाकरि राखे हैं। अब जो तुम न दीखो तो ये प्राण मेरे किस कामके हैं। मेरे यह मनोरथ हुता कि पतिका समागम होयगा सो दैवने मनोरथ भग्न किया। मुझ मंदभागिनीके अर्थि आप कष्ट अवस्थाकों प्राप्त भए, तिहारे कष्टकी दशा सुनकर मेरे पापी प्राण क्यों न विनश जांय। ऐसें विलाप करती अंजनाको देखकरि वसंतमाला कहती भई–हे देवी ! ऐसे अमंगल वचन मत कहो, तिहारे धनीसों अवश्य मिलाप होयगा अर प्रतिसूर्य बहुत दिलासा करता भया कि तेरे पतिकों शीघ्र ही लावें हैं; ऐसा कहकर राजा प्रतिसूर्य ने मनतें भी उतावला जो विमान ताविषें चढ़कर आकाशतें उतर कर पृथ्वीविषें ढूंढ्या। प्रतिसूर्यके लार दोनों श्रेणियोंके विद्याधर अर लंकाके लोग ते यत्नकरि ढूंढे हैं, देखते देखते भूतरव नामा अटवीविषें आए। तहाँ अंबर-गोचर नामा हाथी देख्या, वर्षा कालके सघन मेघ समान है आकार जाका, तब हाथीकों देखकरि सर्व विद्याधर प्रसन्न भए कि जहां यह हाथी है तहाँ पवनंजय है। पूर्वे हमने यह हाथी अनेकबार देख्या है। यह हाथी अंजनगिरि समान है रंग जाका अर कुंद के फूल समान श्वेत हैं दांत जाके अर जैसी चाहिये तैसी सुन्दर है सूंड जाकी। जब हाथी के समीप विद्याधर आए तब वाहि निरंकुश देख डरे। अर हाथी विद्याधरों के कटकका शब्द सुन महाक्षोभ कों प्राप्त भया, हाथी महाभयंकर, दुर्निवार, शीघ्र है वेग जाका, मदकर भीज रहे हैं कपोल जाके अर हालै हैं अर गाजै हैं कान जाके, जिस दिशाको हाथी दौड़ै ताही दिशातें विद्याधर हट जावें, यह हाथी लोगों का समूह देख, स्वामी की रक्षाविषें तत्पर, सूंडसों बंधी है तलवार जाके, महाभयंकर, पवनंजयका समीप न तजै सो विद्याधर त्रास पाय याके समीप न आवें। तब विद्याधरोंने हथनियोंके समूहसों याहि वश किया क्योंकि जेते वशीकरण के उपाय हैं तिनमें स्त्रीसमान और कोई उपाय नाहीं। तब ये आगे आय पवनकुमारकों देखते भए मानों काठ का है, मौनसों बैठ्या है, वे यथायोग्य याका उपचार करते भए पर यह चिंता में लीन काहूसों न बोले जैसें ध्यानारूढ मुनि काहूसों न बोलें। तब पवनंजय के माता पिता आँसू डारते याके मस्तक को चूमते भए अर छाती सों लगावते भए अर कहते भए कि हे पुत्र ! तू ऐसा विनयवान हमको छोड़करि कहाँ आया, महाकोमल सेजपर सोवनहारा तेरा शरीर, या भीमवनविषें कैसें रात्रि व्यतीत

करी, ऐसें वचन कहे तो भी न बोले। तब याहि नम्रीभूत और मौनव्रत धरे, मरण का है निश्चय जाके ऐसा जानकरि समस्त विद्याधर शोककों प्राप्त भए, पिता सहित सब विलाप करते भए।

तब प्रतिसूर्य अंजना का मामा सब विद्याधरनिकों कहता भया कि मैं वायुकुमार-सों वचनालाप करूंगा तब वह पवनंजय कों छातीसों लगाय कर कहता भया, हे कुमार ! मैं समस्त वृत्तांत कहूं हूं सो सुनो। एक महा रमणीक संध्याभ्रनामा पर्वत तहाँ अनंगबीचि नामा मुनि को केवलज्ञान उपज्या था सो इन्द्रादिक देव दर्शनको आए हुते अर मैं भी गया हुता सो बंदनाकर आवता हुता सो मार्ग में एक पर्वतकी गुफा ता ऊपर मेरा विमान आया सो मैंने स्त्री के रुदनकी ध्वनि सुनी मानों बीन बाजै है तब मैं वहां गया, गुफा विषें अंजना देखी। मैंने वनके निवासका कारण पूछ्या तब वसंतमालाने सर्व वृत्तांत कह्या। अंजना शोक करविह्वल रुदन करै सो मैं धैर्य बंधाया अर गुफामें ताके पुत्रका जन्म भया सो गुफा पुत्रके शरीर की कांतिकर प्रकाश रूप होय गई मानों सुवर्ण की रची है। यह वार्ता सुनकर पवनंजय परमहर्ष को प्राप्त भए अर प्रतिसूर्य कों पूछते भए "बालक सुखसों तिष्ठै है ?" प्रतिसूर्य ने कह्या, बालककों मैं विमान में थापकर हनुरुहद्वीपको जाऊँ था सो मार्ग में बालक एक पर्वत पर पड़्या सो पर्वतपर पड़नेका नाम सुनकर पवनंजय ने हाय हाय ऐसा शब्द कह्या। तब प्रतिसूर्यने कह्या सोच मत करहु, जो वृत्तांत भया सो सुनहु, जाकरि सर्व दुःखसों निवृत्त होय। बालककों पड़्या देख मै विलाप करता विमानतैं नीचे उतर्‌या तब क्या देखा कि पर्वतके खंड खंड होय गए अर एक शिलापर बालक पड़्या है अर ताकी ज्योतिकर दसों दिशा प्रकाशरूप होय रही हैं तब मैंने तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कार कर बालककों उठाय लिया अर माता कों सौंप्या सो माता अति विस्मय को प्राप्त भई। पुत्र का श्रीशैल नाम धर्‌या। वसंतमाला अर पुत्र सहित अंजना को हनुरुद्वीप ले गया, वहाँ पुत्र का जन्मोत्सव भया। सो बालक का दूजा नाम हनुमान भी है। यह तुमको मैंने सकल वृत्तांत कह्या। हमारे नगर में वह पतिव्रता पुत्रसहित आनंदसों तिष्ठै है। यह वृत्तांत सुनकर पवनंजय तत्काल अंजनाके अवलोकन के अभिलाषी हनुरुद्वीपकों चाले अर सब विद्याधर भी इनके संग चाले। हनुरुहद्वीपमें गए सो दोय महीना सबको प्रतिसूर्य ने बहुत आदरसों राख्या। बहुरि सब प्रसन्न होय अपने-अपने स्थानकों गए। बहुत दिनों में पाया है स्त्रीका संयोग जानैं सो ऐसा पवनंजय यहाँ ही रहै। कैसा है पवनंजय ? सुन्दर हैं चेष्टा जाकी और पुत्र की चेष्टासों अति आनंदरूप हनुरुहद्वीपमें देवनिकी नाईं रमते भए। हनुमान नवयौवन को प्राप्त भए। मेरुके शिखर समान है सीस जाका, सर्व जीवनिके मनके हरणहारे होते भए, सिद्ध भई हैं अनेक विद्या जाकों अर महा प्रभावरूप विनयवान महाबली, सर्व शास्त्रनिके अर्थविषें प्रवीण, परोपकार करनेको चतुर, पूर्वभव स्वर्गमें सुख

भोगि आए, अब यहाँ हनुरुहद्वीपविषें देवोंकी नाईं रमै हैं।

हे श्रेणिक ! गुरुपूजामें तत्पर श्रीहनुमानजीके जन्मका वर्णन अर पवनंजयका अंजनासों मिलाप यह अद्‌भुत कथा नाना रसकी भरी है। जे प्राणी भावधर यह कथा पढ़ैं पढ़ावैं, सुनैं सुनावें, तिनकी अशुभ कर्ममें प्रवृत्ति न होय, शुभक्रिया में उद्यमी होंय। अर जो यह कथा भावधर पढ़ैं पढ़ावैं उनकी परभवमें शुभगति अर दीर्घ आयु होय, शरीर निरोग सुन्दर होय, महापराक्रमी होय अर उनकी बुद्धि करनेयोग्य कार्यके पारकों प्राप्त होय अर चंद्रमा समान निर्मलकीर्ति होय अर जासों स्वर्ग-मुक्तिके सुख पाइए ऐसे धर्मकी बढ़वारी होय, जो लोकविषें दुर्लभ वस्तु हैं सो सब सुलभ होंय, सूर्य समान प्रताप के धारक होंय।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषैं पवनंजय अंजना का मिलाप वर्णन करने वाला अठारहवां पर्व पूर्ण भया ॥ १८ ॥

(एकोनविंश पर्व)

[हनुमानका युद्ध में जाकर विजय प्राप्त कर अनेक कन्याओं से विवाह करना]

अथानंतर राजा वरुण बहुरि आज्ञालोप भया तब कोप करि तापर रावण फेर चढे। सर्व भूमिगोचरी विद्याधरनिकों अपने समीप बुलवाया, सबके निकट आज्ञापत्र लेय दूत गए। कैसा है रावण ? राज्य-कार्यविषें निपुण है, किहकंधापुरके धनी अर अलकाके धनी, रथनूपुर अर चक्रावलपुरके धनी तथा वैताढ्यकी दोनों श्रेणीके विद्याधर तथा भूमिगोचरी सबही आज्ञाप्रमाण रावणके समीप आए. हनुरुद्वीपविषें भी प्रतिसूर्य तथा पवनंजय के नाम आज्ञापत्र लेय दूत आए सो ये दोनों आज्ञापत्रको माथे चढ़ाय दूतका बहुत सन्मान कर आज्ञाप्रमाण गमनको उद्यमी भए। तब हनुमानको राज्याभिषेक देने लागे। वादित्रादिकके समूह बाजने लागे अर कलश हैं हाथमें जिनके ऐसे मनुष्य आगैं आय ठाढ़े भए। तब हनुमानने प्रतिसूर्य अर पवनंजयकों पूछ्या–यह कहा है ? तब उन्होंने कही–हे वत्स ! तू हनुरुहद्वीपका प्रतिपालन कर, हम दोनोंकों रावण बुलावै है सो रावण की मददके अर्थि जांय हैं। रावण वरुण पर जाय है। वरुणने बहुरि माथा उठाया है, महासामंत है, ताके बड़ी सेना है, पुत्र बलवान हैं अर गढ़का बल है। तब हनुमान विनय कर कहते भए कि मेरे होते तुमको जाना उचित नाहीं, तुम मेरे गुरुजन हो। तब उन्होंने कही हे वत्स ! तू बालक है, अब तक रण देख्या नाहीं। तब हनुमान बोले, अनादिकालतें जीव चतुर्गतिविषें भ्रमण करै है, जब तक अज्ञानका उदय है तब तक पंचम गति जो मुक्ति सो जीवने पाई नहीं परंतु भव्य जीव पावैं ही हैं। तैसें हमने अब तक युद्ध किया नाहीं परन्तु अब युद्धकर वरुणको जीतेहींगे अर विजय कर तिहारे पास आवैं। सो जब पिता आदि कुटुम्बी जनों

ने राखने का घना ही यत्न किया परन्तु ये न रहते जाने तब उन्होंने आज्ञा दई। यह स्नान भोजन कर पहिले पहल मंगलीक द्रव्यों कर भगवान्‌की पूजा कर अरहंत सिद्धकों नमस्कार कर माता पिता अर मामा की आज्ञा लेय बड़ों का विनय करि यथायोग्य संभाषण कर सूर्यतुल्य उद्योतरूप जो विमान तामें चढ़करि, शस्त्र के समूहकरि संयुक्त जे सामंत उन सहित दसों दिशामें व्याप्त रह्या है यश जाका, लंकाकी ओर चाल्या सो त्रिकूटाचलके सन्मुख विमानमें बैठ्या जाता ऐसा शोभता भया जैसा मंदराचलके सन्मुख जाता ईशानइन्द्र शोभै है। तब जलबीचिनामा पर्वतपर सूर्य अस्त भया। कैसा है पर्वत ? समुद्रकी लहरों के समूहकर शीतल है तट जाके, तहां रात्रि सुखसों पूर्ण करी। अर करी है महा योधानितैं वीररसकी कथा जानैं, महा उत्साह कर नाना प्रकारके देश द्वीप पर्वतोंको उलंघता समुद्रके तरंगनिकरि शीतल जे स्थानक तिनकों अवलोकन करता समुद्रविषैं बड़े बड़े जलचर जीवनिकों देखता रावणके कटक में पहुँचा। हनुमानकी सेना देखकरि बड़े बड़े राक्षस विद्याधर विस्मयकों प्राप्त भए। परस्पर वार्ता करैं हैं कि यह बली श्रीशैल हनुमान भव्यजीवोंविषैं उत्तम, जानैं बालावस्थामें गिरिको चूर्ण किया। ऐसे अपने यशको श्रवण करता हनुमान रावणके निकट गया। रावण हनुमान कों देखकर सिंहासनसों उठे अर विनय किया। कैसा हैं सिंहासन ? पारिजातादिक कहिए कल्पवृक्षोंके फूलोंसे पूरित है, जाकी सुगंधकरि भ्रमर गुंजार करैं हैं, जाके रत्ननिकी ज्योति कर आकाश विषैं उद्योत होय रह्या है, जाके चारों तरफ बड़े सामंत हैं, ऐसे सिंहासनतैं उठकर रावण ने हनुमानकों उरसों लगाया। कैसा है हनुमान ? रावणके विनयकरि नम्रीभूत होय गया है शरीर जाका, रावण हनुमानकों निकट लेय बैठ्या, प्रीतिकर प्रसन्न है मुख जाका, परस्पर कुशल पूछी अर परस्पर रूपसंपदा देख हर्षित भए। दोनों ही महाभाग्य ऐसे मिले मानों दोय इंद्र मिले, रावण अति स्नेह करि पूर्ण है मन जाका, सो कहता भया कि पवनकुमारने हमतैं बहुत स्नेह बढ़ाया जो ऐसा गुणोंका सागर पुत्र हम पर पठाया। ऐसे महाबलीकों पायकरि मेरे सर्व मनोरथ सिद्ध होवेंगे। ऐसा तेजस्वी और नाहीं, जैसा यह योधा सुन्या तैसा ही है, यामें संदेह नाहीं। यह अनेक शुभ लक्षणोंका भर्‌या है, याके शरीरका आकार ही गुणोंको प्रगट करे है। रावणने जब हनुमानके गुण वर्णन किए तब हनुमान नीचा होय रह्या, लज्जावंत पुरुषकी नाईं नम्रीभूत है शरीर जाका, सो संतो की यह रीति है। अब रावण का वरुणसे संग्राम होयगा सो मानों सूर्य भयकर अस्त होनेको उद्यमी भया, मंद होय गई हैं किरण जाकी। सूर्य अस्त भए पीछें संध्या प्रगट भई, बहुरि गई सो मानों प्राणनाथकी विनयवंती पतिव्रता स्त्री ही है अर चंद्रमारूप तिलककों धरे रात्रिरूप स्त्री शोभती भई। बहुरि प्रभात भया, सूर्यकी किरणनिकरि पृथ्वीविषैं प्रकाश भया, तब रावण समस्त सेना

कों लेय युद्धकों उद्यमी भया। हनुमान विद्याकर समुद्रकों भेद वरुणके नगरविषें गया, वरुण पर जाता हनुमान ऐसी कांतिको धरता भया जैसा सुभूम चक्रवर्ती परशुरामके ऊपर जाता शोभै। रावण को कटक सहित आया जानकर वरुणकी प्रजा भयभीत भई, पाताल पुंडरीकनगरका वह धनी सो नगरमें योधाओं के महाशब्द होते भए। योधा नगरसों निकसे, मानों वह योधा असुरकुमार देवों के समान हैं अर वरुण चमरेंद्र तुल्य है, महाशूर-वीरपने करि गर्वित अर वरुणके सौ पुत्र महा उद्धत युद्ध करवे को आए। नाना प्रकारके शस्त्रों के समूहकरि रोका है सूर्यका दर्शन जिन्होंने, सो वरुणके पुत्रोंने आवते ही रावण का कटक ऐसा व्याकुल किया जैसें असुरकुमार देव क्षुद्र देवोंको कंपायमान करै। चक्र, धनुष, वज्र, सेल बरछी इत्यादि शस्त्रों के समूह राक्षसनिके हाथ से गिर पड़े अर वरुण के सौ पुत्रनिके आगे राक्षसनिका कटक ऐसा भ्रमता भया जैसा वृक्षनिका समूह अशनिपातके भयसे भ्रमै। तब अपने कटककूं व्याकुल देख रावण वरुणके पुत्रनिपर गया, जैसे गजेन्द्र वृक्षनिकूं उपाड़े तैसें बड़े बड़े योधानिकूं उपाड़े; एक तरफ रावण अकेला, एक तरफ वरुण के सौ पुत्र, सो तिनके बाणनिकर रावणका शरीर भेदा गया तथापि रावण महायोधाने कछु न गिन्या, जैसें मेघ के पटल गाजते वर्षते सूर्यमंडल को आच्छादित करें तैसें वरुण के पुत्रनिने रावण को वेढ्या। अर कुंभकरण इंद्रजीतसूं वरुण लड़ने लाग्या। जब हनुमानने रावणको वरुणके पुत्रनिकरि टेसूके फूलोंके रंगसमान आरक्त वेढ्या शरीर देख्या तब रथमें असवार होय वरुणके पुत्रनिपर दौड्या। कैसा है हनुमान? रावणसूं प्रीतियुक्त है चित्त जाका अर शत्रुरूप अंधकारके हरिवेकूं सूर्य समान है। पवनके वेगसे भी शीघ्र वरुणके पुत्रोंपर गया सो हनुमानसे वरुणके पुत्र सौ ही कंपायमान भए जैसें मेघके समूह पवनसे कंपायमान होंय। बहुरि हनुमान वरुणके कटक पर ऐसा पड़या जैसा माता हाथी कदलीके वनमें प्रवेश करै, कईयकनिकूं विद्यामई लांगूल पाशकर बांध लिया अर कईयकों को मुद्गरके घात कर घायल किया, वरुणका समस्त कटक हनुमानतें हार्या जैसें जिनमार्गीके अनेकांत नयकरि मिथ्यादृष्टि हारें। हनुमानको अपने कटकविषें रण क्रीड़ा करते देख राजा वरुणने कोपकर रक्त नेत्र किए अर हनुमानपर आया। तब रावण वरुणकूं हनुमानपर आवता देख आप जाय रोक्या जैसें नदीके प्रवाहको पर्वत रोकै, ऐसें वरुणके अर रावणके महायुद्ध भया। तब ताही समय में वरुण के सौ पुत्र हनुमान ने बांधलिए अर कईयकनिकूं मुदगरनिके घातकरि घायल किए। सो वरुण सौऊ पुत्रनिकूं बांधे सुनकर शोककर विह्वल भया अर विद्याका स्मरण न रह्या। तब रावण ने याको पकड़ लिया सो मानो वरुण सूर्य अर याके पुत्र किरण तिनके रोकन-करि मानो रावण राहू का रूप धरता भया। वरुण को कुम्भकरण के हवाले किया अर आप डेरा भववोन्माद नाम वन में किया। कैसा है वह वन? समुद्र की शीतल पवन से

महाशीतल है सो ताके निवासकर सेना को रणजनित खेद रहित किया। अर वरुण को पकड़ा सुन उसकी सेना भागी, पुण्डरीकपुरविषें जाय प्रवेश किया। देखो पुण्यका प्रभाव जो एक नायक के हारनेतें सबकी हार अर एक नायक के जीतनेतें सब की जीत। कुम्भकरण ने कोप कर वरुणके नगर लूटनेका विचार किया तब रावण ने मनें किया, यह राजानिका धर्म नाहीं। कैसे हैं रावण, करुणाकर-कोमल है चित्त जाका, सो कुम्भकरण से कहते भए-हे बालक! तैने यह दुराचारकी बात कही? जो अपराध था सो तो वरुण का था, प्रजा का कहा अपराध? दुर्बलको दुःख देना दुर्गतिका कारण है अर महा अन्याय है, ऐसा कहकर कुम्भकरण कों प्रशांत किया अर वरुणको बुलाया। कैसा है वरुण? नीचा है मुख जाका। तब रावण वरुणको कहते भए कि हे प्रवीण! तुम शोक मत करो जो तें युद्ध विषें पकड़ा गया; योधानिकी दोय रीति हैं, मारे जांय अथवा पकड़े जांय अर रणतें भागना यह कायरनिका काम है तातें तुम हमपै क्षमा करो अर अपने स्थानक जायकर मित्र बांधव सहित सकल उपद्रवरहित अपना राज्य सुखतें करहु। ऐसे मिष्ट वचन रावणके सुनकर वरुण हाथ जोड़ रावणसूं कहता भया-हे वीराधिवीर! तुम या लोकविषें महापुण्याधिकारी हो, तुमसे जो वैर भाव करै सो मूर्ख है। अहो स्वामिन्! यह तिहारा परम धैर्य हजारों स्तोत्रनितें स्तुति करने योग्य है, तुमने देवाधिष्ठित रत्न विना मुझे सामान्य शस्त्रोंसे जीता. कैसे हो तुम? अद्भुत है प्रताप जिनका। अर पवनके पुत्र हनुमानके अद्भुत प्रभावकी कहा महिमा कहूँ? तिहारे पुण्यके प्रभावतें ऐसे ऐसे सत्पुरुष तिहारी सेवा करै हैं। हे प्रभो! यह पृथ्वी काहूके गोत्रमें अनुक्रम कर नाहीं चली आई है, यह केवल पराक्रमके वश है। शूरवीर ही याके भोक्ता हैं। सो आप सर्व योधाओंके शिरोमणि हो सो भूमिका प्रतिपालन करहु। हे उदारकीर्ति! हमारे स्वामी आप ही हो, हमारे अपराध क्षमा करहु। हे नाथ! आप जैसी उत्तम क्षमा कहूँ न देखी तातें आप सरीखे उदार चित्त पुरुष से सम्बन्ध कर मैं कृतार्थ होऊंगा तातें मेरी सत्यवती नामा पुत्री परणो, याके परिणवे योग्य आप ही हो, या भांति वीनती कर उत्साहतें पुत्री परणाई। कैसी है वह सत्यवती? सर्वरूपवतियोंका तिलक है, कमल समान है मुख जाका, वरुणने रावणका बहुत सत्कार किया अर कई एक प्रयाण रावण के लार गया, रावण ने अति स्नेह करि सीख दीनी। तब वरुण अपनी राजधानी में आया, पुत्री के वियोगतें व्याकुल है चित्त जाका अर कैलाश कंप जो रावण ताने हनुमानका अति सम्मान कर अपनी बहन जो चंद्रनखा ताकी पुत्री अनंगकुसुमा महारूपवती सो हनुमान को परणाई सो हनुमान ताकूं परणकर अति प्रसन्न भए। कैसी है अनंगकुसुमा? सर्वलोक विषें जो प्रसिद्ध गुण तिनकी राजधानी है। बहुरि कैसी है, कामके आयुद्ध हैं नेत्र जाके। अर अति

सम्पदा दीनी अर कर्णकुण्डलपुरका राज्य दिया, अभिषेक कराया, ता नगरमें हनुमान सुखसूं विराजे जैसें स्वर्गलोकमें इन्द्र विराजै। तथा किहकूपुर नगर का राजा नल ताकी पुत्री हरमालिनी नामा रूप सम्पदा कर लक्ष्मी को जीतनहारी सो महाविभूतितैं हनुमान कों परणाई तथा किन्नरगीत नगरविषें जे किन्नर जाति के विद्याधर तिनकी सौ पुत्री परणी, या भांति एकसहस्र रानी परणीं। पृथ्वीविषें हनुमानका श्रीशैल नाम प्रसिद्ध भया। काहेतें, पर्वतकी गुफामें जन्म भया था। सो हनुमान पहाड़ पर आय निकसे सो देख अति प्रसन्न भए। रमणीक है तलहटी जाकी वह पर्वत पृथ्वीविषें प्रसिद्ध भया।

अथानंतर किहकंधपुर नगरविषें राजा सुग्रीव ताके रानी सुतारा चंद्र समान कांतिकूं धरै है मुख जाका अर रति समान है रूप जाका, तिनके पुत्री पद्मरागा, नवीन कमल समान है रंग जाका अर अनेक गुणनिकरि मंडित है, पृथ्वी पर प्रसिद्ध लक्ष्मी समान सुन्दर हैं नेत्र जाके, ज्योतिके मण्डलसे मंडित है मुख जाका अर महा गजराज के कुम्भस्थल समान ऊँचे कठोर स्तन हैं जाके अर सिंह समान है कटि जाकी, महा विस्तीर्ण अर लावण्यतारूप सरोवर में मग्न है मूर्ति जाकी, जाहि देख चित्त प्रसन्न होय, शोभायमान है चेष्टा जाकी, ऐसी पुत्री को नवयौवन देख माता-पिताकों याके परणायवेकी चिंता भई, याके योग्य वर चाहिए सो माता-पिताकों रात-दिन निद्रा न आवै अर दिनमें भोजन की रुचि गई, चितारूप है चित्त जिनका। तब रावण के पुत्र इंद्रजीत आदि अनेक राजकुमार कुलवान शीलवान तिनके चित्रपट लिखे, रूप लिखाय सखियोंके हाथ पुत्रीको दिखाए, सुन्दर है कांति जिनकी सो कन्या की दृष्टि में कोई न आया, अपनी दृष्टि संकोच लीनी। बहुरि हनुमानका चित्रपट देख्या ताहि देखकर यह शोषण, संतापन, उच्चाटन, मोहन, वशीकरण कामके पंचवाणों से बेधी गई। तब ताहि हनुमान विषें अनुरागिनी जान सखीजन ताके गुण वर्णन करती भई। हे कन्ये! यह पवनंजय का पुत्र जो हनुमान ताके अपार गुण कहांलों कहैं अर रूप सौभाग्य तो याके चित्रपट में तैंने देखे तातैं याको वर, माता-पिता की चिंता निवार। कन्या तो चित्रपट को देख मोहित भई हुती अर सखी जनों ने गुण वर्णन किया ही है तब लज्जाकर नीची होय गई अर हाथमें क्रीड़ा करने का कमल था ताको चित्रपट में दी। तब सबने जाना कि यह हनुमान से प्रीतिवंती भई। तब याके पिता सुग्रीवने याका चित्रपट लिखाय भले मनुष्यके हाथ वायुपुत्रपै भेजा। सो सुग्रीव का सेवक श्रीनगरमें गया अर कन्याका चित्रपट हनुमान को दिखाया सो अंजना का पुत्र सुताराकी पुत्री के रूपका चित्रपट देख कर मोहित भया। यह बात सत्य है कि कामके पाँच ही बाण हैं परन्तु कन्याके प्रेरे पवनपुत्र के मानों सौ बाण होय लागे। चित्त में

चितवता भया कि मैंने सहस्र विवाह किए अर बड़ी २ ठौर परणा, खरदूषणकी पुत्री रावण की भानजी परणी तथापि जब लग यह पद्मरागा न परणूं तौ लग कछु परणा ही नाहीं, ऐसा विचार महाऋद्धिसंयुक्त एकक्षण में सुग्रीवके पुरमें गया। सुग्रीव सुना जो हनुमान पधारे तब सुग्रीव अति हर्षित होय सन्मुख आए, बड़े उत्साह से नगर में लेगए सो राजमहल की स्त्री झरोखनिको जाली से इनका अदभुत रूप देख सकल चेष्टा तज आश्चर्यरूप होय गईं अर सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा इनके रूप को देखकर चकित होय गई। कैसी है कन्या ? अति सुकुमार है शरीर जाका, बड़ी विभूतिकर पवनपुत्रसे पद्मरागा का विवाह भया, जैसा वर तैसी बींदनी सो दोनों अति हर्षकों प्राप्त भए। स्त्री सहित हनुमान अपने नगर में आए। राजा सुग्रीव और राणी सुतारा पुत्री के वियोगतें कैएक दिन शोक-सहित रहे अर हनुमान महालक्ष्मीवान्, समस्त पृथ्वी पर प्रसिद्ध है कीर्ति जाकी, सो ऐसे पुत्रकूं देख पवनंजय अर अंजना महासुखरूप समुद्र विषैं मग्न भए। रावण तीन खंडका नाथ अर सुग्रीव समान है पराक्रम जाका, हनुमान सारिखे महाभट विद्याधरों के अधिपति तिनका नायक लंका नगरी विषैं सुखसों रमै, समस्त लोककूं सुखदाई जैसें स्वर्गलोक विषैं इन्द्र रमै। विस्तीर्ण है कांति जाकी, महा सुन्दर अठारह हजार रानी तिनके मुखकमल तिनका भ्रमर भया, आयु व्यतीत होती न जानी, जाके एक स्त्री कुरूप और आज्ञारहित होय सो पुरुष उन्मत्त होय रहे है अर जाके अष्टादश सहस्र पद्मनी पतिव्रता आज्ञाकारिणी लक्ष्मी समान होंय ताके प्रभाव का कहा कहना ? तीन खंड का अधिपति, अनुपम है कांति जाकी, समस्त विद्याधर अर भूमिगोचरी, सिर पर धारे हैं आज्ञा जाकी सो सर्व राजाओं ने अर्ध चक्रीपद का अभिषेक कराया और अपना स्वामी जान्या। विद्याधरनिके अधिपति तिनकरि पूजनीक हैं चरण कमल जाके, लक्ष्मी कीर्ति कांति परिवार जा समान और के नाहीं, मनोज्ञ है देह जाका, वह दशमुख राजा चन्द्रमा समान बड़े बड़े पुरुषरूप जे ग्रह तिनसे मंडित आह्लाद का उपजावनहारा कौनके चित्त को न हरै ? जाके सुदर्शनचक्र सर्व कार्य की सिद्धि करणहारा देवाधिष्ठित, मध्यान्हके सूर्यकी किरणोंके समान है किरणोंका समूह जा विषैं, उद्धत प्रचंड नृपवर्ग आज्ञा न मानें तिनका विध्वंसक, अति देदीप्यमान, नाना प्रकार के रत्ननिकरि मंडित शोभता भया। और दंडरत्न दुष्ट जीवनिको काल समान भयंकर, देदीप्यमान है उग्र तेज जाका मानों उल्कापात का समूह ही है सो प्रचंड याकी आयुधशाला विषैं प्रकाश करता भया, सो रावण आठमा प्रतिवासुदेव, सुन्दर है कीर्ति जाकी, पूर्वोपार्जित कर्म के वशतें कुल की परिपाटीकर चली आई जो लंकापुरी ताविषैं संसार के अद्भुत सुख भोगता भया। कैसा है रावण ? राक्षस कहावै ऐसे जे विद्याधर तिनके कुलका तिलक है। अर कैसी है लंका ?कोई प्रकारका प्रजाको नहीं है दुःख जहाँ,

श्रीमुनिसुव्रतनाथके मुक्ति गए पीछे अर श्रीनमिनाथके उपजनेसे पहिले रावण भया सो बहुत पुरुष जे परमार्थरहित मूढ़ लोक तिन्होंने उनका कथन और से और किया, मांसभक्षी ठहराया सो वे मांसाहारी नहीं थे, अन्न के आहारी थे, एक सीता के हरणका अपराधी बना, ताकरि मारे गए और परलोकविषें कष्ट पाया। कैसा है श्रीमुनिसुव्रतनाथ का समय ? सम्यकदर्शनज्ञानचारित्रकी उत्पत्ति का कारण है। सो वह समय बीते बहुत वर्ष भए तातैं तत्त्वज्ञानरहित विषयी जीवोंने बड़े पुरुषनिका वर्णन औरसे और किया, पापाचारी शीलव्रतरहित जे मनुष्य सो तिनकी कल्पना जालरूप फांसी कर अविवेकी मंदभाग्य जे मनुष्य तेई भए मृग सो बांधे। गौतमस्वामी कहे हैं ऐसा जानकर हे श्रेणिक ! इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादि कर वंदनीक जो जिनराज का शास्त्र सोई भया रत्न ताहि अंगीकार कर। कैसा है जिनराज का शास्त्र ? सूर्यतें अधिक है तेज जाका। अर कैसा है तू ! जिन शास्त्र के श्रवणकर जान्या है वस्तु का स्वरूप जाने अर धोया है मिथ्यात्वरूप कर्दम का कलंक जाने।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषें रावण का चक्र राज्याभिषेकवर्णन करने वाला अठारहवां पर्व पूर्ण भया ॥ १६ ॥

(विंशति पर्व)

विद्याधर वंश का वर्णनरूप प्रथम कांड समाप्त भया।

[त्रेषठ शलाका पुरुषों के पूर्व भव आदि का वर्णन]

अथानंतर राजा श्रेणिक महा विनयवान, निर्मल है बुद्धि जाकी सो विद्याधरनिका सकल वृत्तांत सुनकर गौतम गणधर के चरणारविंदको नमस्कारकर आश्चर्य को प्राप्त होता संता कहता भया—हे नाथ ! तिहारे प्रसादतें आठवां प्रतिनारायण जो रावण ताकी उत्पत्ति और सकल वृत्तांत मैंने जान्या। तथा राक्षसवंशी और वानरवंशी जे विद्याधर तिनके कुलका भेद भली भांति जान्या, अब मैं तीर्थंकरोंके पूर्व भव सहित सकल चरित्र सुना चाहूं हूं ? कैसा है तिनका चरित्र ? बुद्धिकी निर्मलता का कारण है अर आठवें बलभद्र जे श्रीरामचन्द्र सकल पृथिवीविषें प्रसिद्ध सो कौन वंश विषै उपजे तिनका चरित्र कहो। अर तीर्थंकरनिके नाम अर उनके माता पिताके नाम सब सुनवेकी मेरी इच्छा है सो तुम कहवे योग्य हो। या भांति जब श्रेणिक ने प्रार्थना करी तब गौतम गणधर भगवत चरित्र के प्रश्न कर बहुत हर्षित भए। कैसे हैं गणधर ? महा बुद्धिमान, परमार्थ विषें प्रवीण। ते कहै हैं कि हे श्रेणिक ! पापके विध्वंस का कारण अर इन्द्रादिक कर नमस्कार करवे योग्य चौबीस तीर्थंकरनिके नाम अर इनके पितादिकनिके नाम सर्व पूर्व भव सहित-

कथन करूं हूं, तू सुन। ऋषभ १ अजित २ संभव ३ अभिनंदन ४ सुमति ५ पद्मप्रभ ६ सुपार्श्व ७ चन्द्रप्रभ ८ पुष्पदंत (दूजा नाम सुविधिनाथ) ९ शीतल १० श्रेयांस ११ वासुपूज्य १२ विमल १३ अनन्त १४ धर्म १५ शांति १६ कुंथु १७ अर १८ मल्लि १९ मुनिसुव्रत २० नमि २१ नेमि २२ पार्श्व २३ महावीर २४ जिनका अब शासन प्रवर्त्ते है, ये चौबीस तीर्थंकरनिके नाम कहे हैं। अब इनकी पूर्व भवकी नगरीनिके नाम कहे हैं। पुण्डरीकनी १ सुसीमा २ क्षेमा ३ रत्नसंचयपुर ४ ऋषभदेव आदि तीन तीन एक एक नगरविषें अनुक्रमतें वासुपूज्य पर्यन्त की ये चार नगरी पूर्व भवके निवासकी जाननी। और महानगर १३ अरिष्टपुर १४ सुभद्रिका १५ पुण्डरीकनी १६ सुसीमा १७ क्षेमा १८ वीतशोका १९ चम्पा २० कौशांबी २१ हस्तिनागपुर २२ साकेता २३ छत्राकार २४ ये चौबीस तीर्थंकरनिकी या भव के पहले जो देवलोक ता भव पहिले जो मनुष्यभव ताकी स्वर्गपुरी समान राजधानी कहीं। अब तिनके परभवके नाम सुनो—वज्रनाभि १ विमलवाहन २ विपुलख्याति ३ विपुलवाहन ४ महाबल ५ अतिबल ६ अपराजित ७ नंदिषेण ८ पद्म ९ महापद्म १० पद्मोत्तर ११ पंकजगुल्म १२ कमल समान है मुख जाका ऐसा नलिनगुल्म १३ पद्मासन १४ पद्मरथ १५ दृढ़रथ १६ मेघरथ १७ सिंहरथ १८ वैश्रवण १९ श्रीधर्मा २० सुरश्रेष्ठ २१ सिद्धार्थ २२ आनंद २३ सुनंद २४ ये तीर्थंकरनिके या भव पहिले तीजे भव के नाम कहे। अब इनके पूर्वभव के पितानिके नाम सुन-वज्रसेन १ महातेज २ रिपुदमन ३ स्वयंप्रभ ४ विमलवाहन ५ सीमंधर ६ पिहिताश्रव ७ अरिंदम ८ युगंधर ९ सर्वजनानंद १० अभयानन्द ११ वज्रदंत १२ वज्रनाभि १३ सर्वगुप्ति १४ गुप्तिमान १५ चितारक्ष १६ विमलवाहन १७ घनरव १८ धीर १९ संवर २० त्रिलोकीरवि २१ सुनंद २२ वीतशोक २३ प्रोष्ठिल २४ ये पूर्व भव के पितानिके नाम कहे। अब चौबीस तीर्थंकर जिस जिस देवलोक से आए तिन देवलोकोंके नाम सुनो। सर्वार्थसिद्धि १ वैजयन्त २ ग्रैवेयक ३ वैजयन्त ४ ऊर्ध्व ग्रैवेयक ५ वैजयन्त ६ मध्यग्रैवेयक ७ वैजयन्त ८ अपराजित ९ आरणस्वर्ग १० पुष्पोत्तर विमान ११ कापिष्ठस्वर्ग १२ शुक्र-स्वर्ग १३ सहस्रारस्वर्ग १४ पुष्पोत्तर १५ पुष्पोत्तर १६ पुष्पोत्तर १७ सर्वार्थसिद्धि १८ विजय १९ अपराजित २० प्राणत २१ वैजयन्त २२ आनत २३ पुष्पोत्तर २४ ये चौबीस तीर्थंकरों के आवने के स्वर्ग कहे।

अब आगे चौबीस तीर्थंकरनिकी जन्मपुरी जन्म नक्षत्र माता पिता अर वैराग्य के वृक्ष अर मोक्ष के स्थान कहूं हूं सो तुम सुनो। अयोध्या नगरी, पिता नाभिराज, माता मरुदेवी राणी, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, वट वृक्ष, कैलाश पर्वत, प्रथम जिन, हे मगध देश के भूपति! तोहि अतींद्रिय सुख की प्राप्ति करहु १। अयोध्या नगरी, जितशत्रु पिता, विजया

माता, रोहिणी नक्षत्र, सप्तच्छद वृक्ष, सम्मेदशिखर, अजितनाथ, हे श्रेणिक! तुझे मंगलके कारण होहु २। श्रावस्ती नगरी, जितारि पिता, सैना माता, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, शाल वृक्ष, सम्मेदशिखर, संभवनाथ, तेरे भव-बंधन हरहु ३। अयोध्या पुरी नगरी, संवर पिता, सिद्धार्था माता, पुनर्वसु नक्षत्र, साल वृक्ष, सम्मेदशिखर अभिनन्दन तोहि कल्याणके कारण होहु ४। अयोध्यापुरी नगरी, मेघप्रभ पिता, सुमंगला माता, मघा नक्षत्र, प्रियंगु वृक्ष, सम्मेदशिखर, सुमतिनाथ जगत में महा मंगलरूप तेरे सर्व विघ्न हरहु ५। कौशांबी नगरी, धारण पिता, सुसीमा माता, चित्रानक्षत्र, प्रियंगु वृक्ष, सम्मेदशिखर, पद्मप्रभ तेरे काम-क्रोधादि अमंगल हरहु ६। काशीपुरी नगरी, सुप्रतिष्ठ पिता, पृथिवो माता, विशाखा नक्षत्र, शिरीष वृक्ष, सम्मेदशिखर, सुपार्श्वनाथ, हे राजन! तेरे जन्म-जरा मृत्यु हरहु ७। चंद्रपुरी नगरी, महासेन पिता, लक्ष्मणा माता, अनुराधा नक्षत्र, नागवृक्ष, सम्मेदशिखर, चंद्रप्रभ तोहि शांतिभावके दाता होहु ८। काकंदी नगरी, सुग्रीव पिता, रामा माता, मूल नक्षत्र, शाल वृक्ष, सम्मेदशिखर, पुष्पदंत तेरे चित्त को पवित्र करहु ९। भद्रिकापुरी नगरी, दृढ़रथ पिता, सुनंदा माता, पूर्वाषाढ़ नक्षत्र, प्लक्षवृक्ष, सम्मेदशिखर, शीतलनाथ तेरे त्रिविध ताप हरहु १०। सिंहपुरी नगरी, विष्णुराज पिता, विष्णुश्री देवी माता, श्रवण नक्षत्र, तिन्दुक वृक्ष, सम्मेदशिखर, श्रेयांसनाथ तेरे विषय-कषाय हरहु, कल्याण करहु ११। चंपापुरी नगरी, वासुपूज्य पिता, विजया माता, शतभिषा नक्षत्र, पाटल वृक्ष, निर्वाणक्षेत्र चम्पापुरीका वन, श्रीवासुपूज्य तोहि निर्वाणकी प्राप्ति करहु १२। कंपिला नगरी, कृतवर्मा पिता, सुरम्या माता, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, जंबु वृक्ष, सम्मेदशिखर, विमलनाथ तोहि रागादिमल—रहित करहु १३। अयोध्यानगरी, सिंहसेन पिता, सर्वयशा माता, रेवती नक्षत्र, पीपल वृक्ष, सम्मेदशिखर, अनंतनाथ तुझे अंतर-रहित करहु १४। रत्नपुरी नगरी, भानु पिता, सुव्रता माता, पुष्य नक्षत्र, दधिपर्ण वृक्ष, सम्मेदशिखर, धर्मनाथ तोहि धर्मरूप करहु १५। हस्तिनागपुर नगर विश्वसेन पिता, ऐरा माता, भरणी नक्षत्र, नंदी वृक्ष, सम्मेदशिखर, शांतिनाथ तुझे सदा शांति करहु १६। हस्तिनागपुर नगर, सूर्य पिता, श्रीदेवी माता, कृतिका नक्षत्र, तिलक वृक्ष, सम्मेदशिखर, कुन्थुनाथ, हे राजेन्द्र! तेरे पाप हरणके कारण होहु १७। हस्तिनागपुर नगर, सुदर्शन पिता, मित्रा माता, रोहिणी नक्षत्र, आम्रवृक्ष, सम्मेदशिखर, अरनाथ, हे श्रेणिक! तेरे कर्मरज हरहु १८। मिथिलापुरी नगरी, कुंभपिता, रक्षता माता, अश्विनी नक्षत्र, अशोक वृक्ष, सम्मेदशिखर, मल्लिनाथ, हे राजा! तेरा मन शोक रहित करहु १९। कुशाग्र नगर, सुमित्र पिता, पद्मावती माता, श्रवण नक्षत्र, चम्पक वृक्ष, सम्मेदशिखर, मुनिसुव्रतनाथ सदा तेरे मनविषें बसहु २०। मिथिलापुरी नगरी, विजय पिता, वप्रा माता, अश्विनी नक्षत्र, मौलश्रीवृक्ष, सम्मेदशिखर, नमिनाथ तेरे धर्मका समागम करहु २१।

सौरीपुरनगर, समुद्रविजय पिता, शिवादेवी माता, चित्रा नक्षत्र, मेषशृंग वृक्ष, गिरिनार पर्वत, नेमिनाथ तुझे शिवसुखदाता होवहु २२। काशीपुरी नगरी अश्वसेन पिता, वामा माता, विशाख नक्षत्र, धवल वृक्ष, सम्मेदशिखर, पार्श्वनाथ तेरे मनको धैर्य देहु २३। कुण्डलपुर नगर, सिद्धार्थ पिता, प्रियकारिणी माता, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, शाल वृक्ष, पावापुर, महावीर तुझे परम मंगल करहु, आपसमान करहु २४। आगे चौबीस तीर्थंकरनिके निर्वाणक्षेत्र कहिए हैं–ऋषभदेवका निर्वाणकल्याणक कैलाश १ वासुपूज्यका चंपापुर २ नेमिनाथका गिरनार ३ महावीरका पावापुर ४ औरनिका सम्मेदशिखर है। शांति कुन्थु अर ये तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती भी भए अर कामदेव भी भए, राज्य छोड़ वैराग्य लिया। अर वासुपूज्य मल्लिनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ महावीर ये पांच तीर्थंकर कुमार अवस्थामें वैरागी भए, राज भी न किया और विवाह भी न किया। अन्य तीर्थंकर महामंडलीक राजा भए, राज छोड़ वैराग्य लिया और चन्द्रप्रभ पुष्पदन्त ये दोय श्वेत वर्ण भए और श्रीसुपार्श्वनाथ प्रियंगु-मञ्जरीके रंग समान हरितवर्ण भए और पार्श्वनाथका वर्ण कच्चा शालि-समान हरितवर्ण भया, पद्मप्रभका वर्ण कमल-समान आरक्त भया और वासुपूज्य का वर्ण टेसू के फूल समान आरक्त भया और मुनिसुव्रतनाथ का वर्ण अञ्जनगिरि समान श्याम और नेमिनाथ का वर्ण मोर के कंठ-समान श्याम और सोलह तीर्थंकरों के ताता सोने के समान वर्ण भया। ये सब ही तीर्थंकर इंद्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिकोंसे पूजने योग्य और स्तुति करने योग्य भए और सब ही का सुमेरु के शिखर पांडुकशिला पर जन्माभिषेक भया, सब ही के पंच कल्याणक प्रगट भये, संपूरण कल्याणकी प्राप्तिका कारण है सेवा जिनकी, वे जिनेन्द्र तेरी अविद्या हरैं। या भांति गणधरदेव ने वर्णन किया तब राजा श्रेणिक नमस्कार कर विनती करते भए–हे प्रभो! छहों कालकी वर्तमान आयु का प्रमाण कहो और पापकी निवृत्तिका कारण परम तत्व जो आत्मस्वरूप उसका वर्णन बारंबार करो और जिसजिनेंद्र के अंतरालमें श्रीरामचंद्र प्रगट भए सो आपके प्रसादतैं मैं सर्व वर्णन सुना चाहूँ हूँ। ऐसा जब श्रेणिकने प्रश्न किया तब गणधरदेव कृपा कर कहते भए–कैसे हैं गणधरदेव! क्षीरसागरके जल समान निर्मल है चित्त जिनका, हे श्रेणिक! कालनामा द्रव्य है सो अनन्त समय है जाकी आदि अंत नाहीं ताकी संख्या कल्पनारूप दृष्टांत पल्य-सागरादि रूप महामुनि कहै हैं। एक महायोजन-प्रमाण लंबा चौड़ा ऊंचा गोल गर्त्त (गढ़ा) उत्कृष्ट भोगभूमि का तत्काल का जन्म्या हुवा मेढ़का बच्चा ताके रोमके अग्रभागतैं भरिए सो गर्त घना गाढ़ा भरिए और सौ वर्ष गए एक रोम काढ़ै सो व्यवहार पल्य कहिए सो यह दृष्टांत कल्पना-मात्र है, काहू ने ऐसा किया नाहीं, यातैं असंख्यात गुणा उद्धारपल्य है, इससे संख्यातगुणा अद्धापल्य है, ऐसे दस कोटा कोटि पल्य जाय तब एक सागर कहिए

और दस कोटा-कोटि सागर जांय तब एक अवसर्पिणीकाल कहिए और दस कोटाकोटि सागरकी एक उत्सर्पिणी और बीस कोटाकोटि सागरका कल्पकाल कहिए। जैसें एक मास में शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष ये दोय वर्तें तैसें एक कल्पकाल विषें एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी ये दोय वर्तें। इनके प्रत्येक २ छह छह काल हैं तिनमें प्रथम सुखमासुखमा काल चार कोटाकोटि सागर का है, दूजा सुखमा काल तीन कोटाकोटि सागर का है, तीजा सुखमा दुःखमा काल दो कोटाकोटि सागरका है अर चौथा दुःखमासुखमा काल बयालीस हजार वर्ष घाट एक कोटाकोटि सागरका है, पंचमा दुःखमा काल इक्कीस हजार वर्ष का है, छठा दुःखमादुःखमा काल सो भी इक्कीस हजार वर्ष का है। यह अवसर्पिणी काल की रीति कही, प्रथम काल से लेय छठे काल-पर्यंत आयु आदि सब घटती गई और इससे उलटी जो उत्सर्पिणी उसमें फिर छठे से लेकर पहिले पर्यंत आयु काय बल पराक्रम बढ़ते गए, यह कालचक्र की रचना जाननी।

अथानंतर जब तीजे काल में पल्य का आठवां भाग बाकी रहा तब चौदह कुलकर भए तिनका कथन पूर्व कर आए हैं। चौदहवें नाभिराजा तिनके आदि तीर्थंकर ऋषभदेव पुत्र भए। तिनको मोक्ष गए पीछे पचास लाख कोटि सागर गए श्री अजितनाथ द्वितीय तीर्थंकर भए। उनके पीछे तीस लाख कोटि सागर भए श्री संभवनाथ भए। ता पीछे दस लाख कोटि सागर गए श्री अभिनन्दन भए। ता पीछें नव लाख कोटि सागर गए श्रीसुमति-नाथ भए। ता पीछे नव्वै हजार कोटि सागर गए श्रीपद्मप्रभ भए। ता पीछे नव हजार कोटि सागर गए श्री सुपार्श्वनाथ भए। ता पीछे नौसौ कोटि सागर गए श्रीचन्द्रप्रभ भए। ता पीछे नव्वै कोटि सागर गए श्रीपुष्पदंत भए। ता पीछे नव कोटि सागर गए श्री शीतल-नाथ भए। ता पीछे सौ सागर घाट कोटि सागर गए श्रीश्रेयांसनाथ भए। ता पीछे चौवन सागर गए श्रीवासुपूज्य भए। ता पीछे तीस सागर गए श्रीविमलनाथ भए। ता पीछे नव सागर गए श्रीअनन्तनाथ भए। ता पीछे चार सागर गए श्री धर्मनाथ भए। ता पीछे पौन पल्य घाट तीन सागर गए श्री शांतिनाथ भए। ता पीछे आध पल्य गए श्रीकुन्थुनाथ भए। ता पीछे हजार कोटि वर्षघाट पाव पल्य गए श्रीअरनाथ भए। उनके पीछे पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष घाट हजार कोटि वर्ष गए श्रीमल्लिनाथ भए। ता पीछे चौवन लाख वर्ष गए श्रीमुनिसुव्रतनाथ भए। उनके पीछे छह लाख वर्ष गए श्रीनमिनाथ भए। उन के पीछे पाँच लाख वर्ष गए श्रीनेमिनाथ भए। उनके पीछे पौने चौरासी हजार वर्ष गए श्रीपार्श्वनाथ भए। उनके पीछे अढाई सौ वर्ष गए श्रीवर्द्धमान भए। जब वर्द्धमानस्वामी मोक्षकों प्राप्त होवेंगे तब चौथे कालके तीन वर्ष साढे आठ महीना बाकी रहेंगे और इतने ही तीजे काल के बाकी रहे थे जब श्रीऋषभदेव मुक्ति पधारे। हे श्रेणिक ! धर्मचक्र के

अधिपति श्रीवर्द्धमान इन्द्रके मुकुट के रत्ननिको जो ज्योति सोई भया जल ताकरि धोए हैं चरणयुगल जिनके सो तिनको मोक्ष पधारे पीछे पांचवा काल लगेगा जामें देवनिका आगमन नाहीं और अतिशयके धारक मुनि नाहीं। केवलज्ञानकी उत्पत्ति नाहीं, चक्रवर्ती बलभद्र और नारायण की उत्पत्ति नाहीं, तुम सारिखे न्यायवान राजा नाहीं, अनीतिकारी राजा होवेंगे और प्रजा के लोक दुष्ट महा ढीठ परधन हरवेकों उद्यमी होवेंगे, शीलरहित व्रतरहित महाक्लेश व्याधिके भरे मिथ्यादृष्टि घोरकर्मी होवेंगे और अतिवृष्टि अनावृष्टि टिड्डी सूवा मूषक अपनी सैना और पराई सैनाएं जो सप्त ईतियां तिनका भय सदा ही होयगा, मोहरूप मदिराके माते राग द्वेषके भरे भौंहको टेढा करनहारे क्रूर दृष्टि पापी महामानी कुटिल जीव होवेंगे। कुवचन के बोलनहारे क्रूरजीव धनके लोभी पृथ्वीपर ऐसे विचरेंगे जैसे रात्रि विषें घूघू विचरें और जैसे पटवीजना चमत्कार करें तैसें थोड़े ही दिन चमत्कार करेंगे। वे मूर्ख दुर्जन जिनधर्मसें परान्मुख कुधर्मविषें आप प्रवर्तेंगे, औरोंको प्रवर्तावेंगे। परोपकार-रहित पराए कार्योंमें निरुद्यमी आप डूबेंगे, औरोंको डूबोवेंगे। वे दुर्गतिगामी आपको महंत मानेंगे। ते क्रूरकर्मी चंडाल, मदोन्मत्त, अनर्थंकर माना है हर्ष जिन्होंने, मोहरूप अंधकारकरि अंधे कलिकालके प्रभावतें हिंसारूप जे कुशास्त्र तेई भए कुठार तिनकरि अज्ञानी जीवरूप वृक्षनिकों काटेंगे। पंचम काल के आदि में मनुष्योंका सात हाथ का ऊंचा शरीर होयगा और एकसौ बीस वर्ष की उत्कृष्ट आयु होयगी। फिर पंचम कालके अन्तमें दोय हाथका शरीर और बीस वर्षकी आयु उत्कृष्ट रहेगी। बहुरि छठेके अन्तमें एक हाथका शरीर अर सोलह वर्ष की आयु उत्कृष्ट रहेगी। वे छठे कालके मनुष्य महाविरूप, मांसाहारी, महा दुःखी, पापक्रियारत, महारोगी, तिर्यंच-समान महा-अज्ञानी होवेंगे, न कोई सम्बन्ध, न कोई व्यवहार, न कोई ठाकुर न कोई चाकर, न राजा न प्रजा, न धन, न घर, न सुख, महादुःखी होवेंगे। अन्याय काम के सेवनहारे, धर्मके आचारसे शून्य, महापापके स्वरूप होवेंगे। जैसें कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी कला घटै और शुक्लपक्षमें बढै तैसें अवसर्पिणी कालमें घटै, अर उत्सर्पिणी कालमें बढै, और जैसें दक्षिणायणमें दिन घटै और उत्तरायणमें बढै तैसें अवसर्पिणी उत्सर्पिणीविषै हानि वृद्धि जाननी। ये तीर्थंकरनिका अंतराल तोहि कह्या।

हे श्रेणिक! अब तू तीर्थंकरनि के शरीरकी ऊंचाई का कथन सुन। प्रथम तीर्थंकर का शरीर पांचसौ धनुष ५००, दूजे का साढे चार सौ धनुष ४५०, तीजे का चारसौ धनुष ४००, चौथे का साढे तीनसौ धनुष ३५०, पाँचवें का तीनसौ धनुष ३००, छठेका ढाईसौ धनुष २५०, सातवें का दो सौ धनुष २००, आठवेंका डेढसौ धनुष १५०, नौवेंका सौ धनुष १००, दसवेंका नब्बै धनुष ९०, ग्यारहवेंका अस्सी धनुष ८०, बारहवेंका

सत्तर धनुष ७०, तेरहवें का साठ धनुष ६०, चौदहवेंका पच्चास धनुष ५०, पन्द्रहवें का पैंतालीस धनुष ४५, सोलहवें का चालीस धनुष ४०, सत्रहवेंका पैंतीस धनुष ३५, अठारहवें का तीस धनुष ३०, उन्नीसवेंका पच्चीस धनुष २५, बीसवें का बीस धनुष २०, इक्कीसवें का पंद्रह धनुष १५, बाईसवें का दस धनुष १०, तेईसवेंका नौ हाथ ९, चौबीसवेंका सात हाथ ७। अब आगें इन चौबीस तीर्थंकरनिकी आयु का प्रमाण कहिए है। प्रथम का चौरासी लाख पूर्व (चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग और चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व होय है) और दूजेका बहत्तर लाख पूर्व, तीजेका साठ लाख पूर्व, चौथेका पचास लाख पूर्व, पांचवें का चालीस लाख पूर्व, छठेका तीस लाख पूर्व, सातवेंका बीस लाख पूर्व, आठवें का दस लाख पूर्व, नवमेंका दोय लाख पूर्व दसवेंका एक लाख पूर्व, ग्यारहवेंका चौरासी लाख वर्ष, बारहवेंका बहत्तर लाख वर्ष, तेरहवें का साठ लाख वर्ष, चौदहवेंका तीस लाख वर्ष, पंद्रहवेंका दस लाख वर्ष, सोलहवेंका एक लाख वर्ष, सत्रहवेंका पचानवें हजार वर्ष, अठारहवें का चौरासी हजार वर्ष, उन्नीसवें का पचावन हजार वर्ष, बीसवेंका तीस हजार वर्ष, इक्कीसवेंका दस हजार वर्ष, बाईसवें का एक हजार वर्ष, तेईसवेंका सौ वर्ष, चौबीसवेंका बहत्तर वर्षका आयु प्रमाण जानना।

अथानंतर ऋषभदेवके पहिले जे चौदह कुलकर भए तिनके आयु-काय का वर्णन करिए है—प्रथम कुलकर की काय अठारहसौ धनुष, दूसरे की तेरासौ धनुष, तीसरे की आठसौ धनुष, चौथेकी सात सौ पिच्छत्तर धनुष, पाँचवेंको साढ़े सात सौ धनुष, छठेको सवा सातसौ धनुष, सातवेंकी सातसौ धनुष, आठवेंकी पौने सातसौ धनुष, नवमें की साढ़े छै सौ धनुष, दसवें की सवा छै सौ धनुष, ग्यारहवेंकी छै सो धनुष, बारहवेंकी पौने छै सौ धनुष, तेरहवेंकी साढ़े पाँच सौ धनुष, चौदहवेंकी सवा पांचसौ धनुष। अब इन कुलकरनि की आयुका वर्णन करै हैं—पहिलेकी आयु पल्यका दसमा भाग, दूजे की पल्य का सौवां भाग, तीजेकी पल्यका हजारवां भाग, चौथेकी पल्य का दस हजारवां भाग, पांचमें की पल्यका लाखवां भाग, छठे की पल्य का दसलाखवां भाग, सातवें की पल्यका क्रोडवां भाग, आठवेंको पल्यका दस क्रोडवां भाग, दसवेंकी पल्यका हजार क्रोडवां भाग, ग्यारहवेंको पल्यका दस हजार क्रोडवां भाग, बारहवेंकी पल्यका लाख क्रोडवां भाग, तेरहवेंकी पल्यका दस लाख क्रोडवां भाग, चौदहवेंकी कोटि पूर्वकी आयु भई।

अथानंतर हे श्रेणिक, अब तू बारह जे चक्रवर्ती तिनकी वार्ता सुन। प्रथम चक्रवर्ती भरत श्रीऋषभदेवके यशस्वती राणी ताकूं सुनंदा भी कहै हैं ताके पुत्र या भरतक्षेत्रके अधिपति ते पूर्व भवविषें पुंडरीकिनी नगरीविषें पीठ नाम राजकुमार थे। वे कुशसेन स्वामीके शिष्य होय मुनिव्रत धर सर्वार्थसिद्धि भए। तहांसे चयकर षट्खंडका राज्यकर

फिर मुनि होय अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान उपजाय निर्वाण को प्राप्त भए। अर पृथिवीपुर नामा नगरविषैं राजा विजयतेज यशोधर नामा मुनिके निकट जिनदीक्षा धर विजयनाम विमान गए, वहांसे चयकर अयोध्या विषैं राजा विजय राणी सुमंगला, तिनके पुत्र सगर नाम द्वितीय चक्रवर्ती भए, ते महा भोग भोगकर इन्द्र समान देव विद्याधरनिकरि धारिए है आज्ञा जिनकी, ते पुत्रनिके शोककरि राज्यका त्यागकर अजितनाथके समोशरण में मुनि होय केवल उपजाय सिद्ध भए। और पुंडरीकिनी नगरी विषैं एक राजा शशीप्रभ वह विमलस्वामी का शिष्य हो ग्रैवेयक गए। वहां से चयकर श्रावस्ती नगरी में राजा सुमित्र, राणी भद्रवती, तिनके पुत्र मघवा नाम तृतीय चक्रवर्ती भए, लक्ष्मीरूप बेल के लिपटने को वृक्ष, ते श्रीधर्मनाथ के पीछे अर शांतिनाथ के उपजनेसे पहिले भए, समाधानरूप जिनमुद्रा धार सौधर्मस्वर्ग गए। फिर चौथे चक्रवर्ती जो श्रीसनत्कुमार भए तिनकी गौतमस्वामी ने बहुत बड़ाई करी। तब राजा श्रेणिक पूछते भए–हे प्रभो! वे किस पुण्यसे ऐसे रूपवान भए तब उनका चरित्र संक्षेपताकर गणधर कहते भए। कैसा है सनत्कुमारका चरित्र जो सौ वर्ष में भी कोऊ कहिवेकों समर्थ नाहीं। यह जीव जब लग जैनधर्मको नाहीं प्राप्त होय है तब लग तिर्यंच नारकी कुमानुष कुदेव कुगति में दुःख भोगवै है। जीवोंने अनंत भव किए सो कहां लों कहिए परन्तु एक एक भव कहिये हैं। एक गोवर्धन नाम ग्राम तहां भले भले मनुष्य वसैं तहां एक जिनदत्त नाम श्रावक बड़ा गृहस्थ जैसैं सर्व जलस्थानकों से सागर शिरोमणि है और सर्वगिरनिमें सुमेरु, सर्व ग्रहोंविषैं सूर्य, तृणोंमें इक्षु, बेलोंमें नागर बेलि, वृक्षमें हरिचंदन प्रशंसा योग्य है तैसें कुलोंमें श्रावकका कुल सर्वोत्कृष्ट आचार कर पूजनीक है, सुगतिका कारण है, सो जिनदत्त नामा श्रावक गुणरूप आभूषणनिकरि मंडित श्रावकके व्रत पाल उत्तम गति गया और ताकी स्त्री विनयवती महापतिव्रता श्रावक के व्रत पालनहारी सो अपने घर की जगह में भगवान का चैत्यालय बनाया, सकल द्रव्य तहां लगाया और आर्यिका होय महातपकर स्वर्गमें प्राप्त भई अर ताही ग्रामविषै एक और हेमबाहू नामा गृहस्थ आस्तिक दुराचारसे रहित सो विनयवतीका कराया जो जिनमंदिर ताकी भक्तिकरि जयदेव भया। सो चतुर्विध संघकी सेवामें सावधान सम्यग्दृष्टि जिन-बंदनामें तत्पर, सो चयकर मनुष्य भया। बहुरि देव, बहुरि मनुष्य। या भांति भव धर महापुरी नगरविषैं सुप्रभ नामा राजा ताके तिलकसुन्दरी रानी गुणरूप आभूषण की मंजूषा ताके धर्मरुचि नामा पुत्र भया, सो राज्य तज सुप्रभनाम पिता जो मुनि ताका शिष्य होय मुनिव्रत अंगीकार करता भया। पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति का प्रतिपालक, आत्मध्यानी, गुरुसेवामें अत्यन्त तत्पर, अपनी देहविषैं अत्यन्त निस्पृह, जीवदयाका धारक, मन इन्द्रियोंका जीतनहारा, शीलका सुमेरु, शंका आदि जे दोष तिनसे अतिदूर, साधुओंका

वैयाव्रत करनहारा, सो समाधिमरणकर चौथे देवलोकविषैं गया, तहाँ सुख भोगता भया, तहांसे चयकर नागपुरमें राजा विजय, राणी सहदेवी तिनके सनत्कुमार नामा पुत्र चौथा चक्रवर्ती भया। छह खण्ड पृथ्वीमें जाकी आज्ञा प्रवर्ती अर महारूपवान; एक दिवस सौधर्म इंद्रने इनके रूप की अति प्रशंसा करी सो रूप देखने को देव आए सो प्रच्छन्न आय कर चक्रवर्ती का रूप देख्या। ता समय चक्रवर्तीने कुश्तिका अभ्यास किया था सो शरीर रजकर धूसरा होय रहा था अर सुगंध उबटना लगाया था अर स्नानकी एक धोती ही पहिने नाना प्रकारके जे सुगंध जल तिनसे पूर्ण नाना प्रकारके रत्नविके कलश तिनके मध्य स्नान के आसन पर बिराजे हुते सो देव रूपको देख आश्चर्यकों प्राप्त भए। परस्पर कहते भए जैसा इन्द्रने वर्णन किया तैसा ही है. यह मनुष्यका रूप देवों के चित्तको मोहित करणहारा है। बहुरि चक्रवर्ती स्नान कर वस्त्राभरण पहर सिंहासन पर आय विराजे, रत्नाचलके शिखर समान है ज्योति जाकी। अर वह देव प्रगट होय कर द्वारे आय ठाढ़े रहे अर द्वारपालसे हाथ जोड़ चक्रवर्ती को कहलाया जो स्वर्गलोक के देव तिहारा रूप देखने आए हैं। तब चक्रवर्ती अद्भुत शृंगार किए विराजे हुते ही, देवों के आयवेकरि विशेष शोभा करि तिनको बुलाया, ते आय चक्रवर्ती का रूप देख माथा धुनते भए अर कहते भए कि एक क्षण पहिले हमने स्नान के समय जैसा देखा था तैसा अब नाहीं, मनुष्यों के शरीरकी शोभा क्षण भंगुर है, धिक्कार है इस असार जगत की मायाको। प्रथम दर्शन में जो रूप यौवनकी अद्भुतता हुती सो क्षणमात्र में ऐसे विलाय गई जैसे बिजुली चमत्कार कर क्षणमात्र में विलाय जाय है। देवनिके वचन सनत्कुमार सुन रूप अर लक्ष्मीको क्षण-भंगुर जान वीतराग भावधर महामुनि होय महातप करते भए। महाऋद्धि उपजी। पुनि कर्म निर्जरा निमित्त महारोगकी परिषह सहते भए, महा ध्यानारूढ़ होय समाधिमरण कर सनत्कुमार स्वर्ग सिधारे। वे शांतिनाथके पहिले अर मघवा तीजा चक्रवर्ती ताके पीछे भए। अर पुण्डरीकिनी नगरीविषै राजा मेघरथ वह अपने पिता धनरथ तीर्थंकरके शिष्य मुनि होय सर्वार्थसिद्धिको पधारे। तहाँ तैं चयकर हस्तिनापुरमें राजा विश्वसेन, राणी ऐरा, तिनके शांतिनाथ नामा सोलहवें तीर्थंकर अर पंचम चक्रवर्ती भए। जगतकूं शांतिके करणहारे जिनका जन्मकल्याणक सुमेरु पर्वत पर इन्द्र ने किया। बहुरि षट्खण्ड पृथ्वीके भोक्ता भए। राज्यको तृण समान जान तजा, मुनिव्रत धर मोक्ष गए। बहुरि कुंथुनाथ छठे चक्रवर्ती सत्रहवें तीर्थंकर, अरनाथ सातवें चक्रवर्ती अठारवें तीर्थंकर ते मुनि होय निर्वाण पधारे सो तिनका वर्णन तीर्थंकरों के कथनमें पहिले कहा ही है। अर धान्यपुर नगर में राजा कनकप्रभ सो विचित्रगुप्त स्वामी के शिष्य मुनि होय स्वर्ग गए। तहांतें चयकर अयोध्या नगरी विषें राजा कीर्तिवीर्य, रानी तारा, तिनके सुभूम अष्टम चक्रवर्ती

भए, जाकरि यह भूमि शोभायमान भई। तिनके पिताका मारणहारा जो परशुराम तानें क्षत्री मारे हुते अर तिनके सिर थंभनविषें चिनाए हुते सो सुभूम अतिथिका भेषकर परशुरामके घर भोजनको आए। परशुराम ने निमित्तज्ञानी के वचन तें क्षत्रिनिके दांत पात्र में मेलि सुभूम कों दिखाए, तब दांत क्षीरका रूप होय परणये अर भोजनका पात्र चक्र होय गया ताकरि परशुरामको मारचा। परशुरामने क्षत्री मारे और सात बार पृथ्वी निक्षत्री करी हुती सो सुभूम परशुरामको मार द्विजवर्गतें द्वेष किया अर इक्कीस बार पृथ्वी अब्राह्मण करी। जैसें परशुरामके राज्य में क्षत्री अपने कुल छिपाय रहे। तैसें याके राज्यमें विप्र अपने कुल छिपाय रहे। सो स्वामी अरनाथके मुक्ति गए पीछे अर मल्लिनाथके होयबे पहिले सुभूम भए, अति भोगासक्त निर्दय परिणामी अव्रती मरकर सातवें नरक गए। अर वीतशोका नगरी ताविषें राजा चित्त सुप्रभस्वामी के शिष्य मुनि होय ब्रह्मस्वर्ग गए तहां तें चयकर हस्तिनापुर विषें राजा पद्मरथ, रानी मयूरी, तिनके महापद्म नामा नौमे चक्रवर्ती भए। षट्खंड पृथ्वीके भोक्ता तिनकी आठ पुत्री महारूपवंती सो रूपके अतिशय करि गर्वित तिनके विवाह की इच्छा नाहीं सो विद्याधर तिनको हर ले गये सो चक्रवर्ती ने छुड़ाय मंगाई। ये आठों ही कन्या आर्यिका के व्रत धर समाधिमरणकर देवलोक में प्राप्त भई। अर विद्याधर इनको ले गए हुते ते भी विरक्त होय मुनिव्रत धर आत्मकल्याण करते भए। यह वृतांत देख महापद्म चक्रवर्ती पद्मनामा पुत्र को राज्य देय विष्णुनामा पुत्र सहित वैरागी भए, महातपकर केवल उपजाय मोक्षकों प्राप्त भए। सो महापद्म चक्रवर्ती अरनाथस्वामी के मुक्ति गए पीछे अर मल्लिनाथके उपजनेसे पहिले सुभूमके पीछे भए। अर विजय नामा नगरविषें राजा महेंद्रदत्त, ते अभिनंदन स्वामी के शिष्य होय महेंद्र स्वर्ग को गए तहां से चयकर कांपिलनगरमें राजा हरिकेतु ताकी रानी विप्रा तिनके हरिषेण नामा दसवें चक्रवर्ती भए तिनके सर्व भरतक्षेत्र की पृथ्वी चैत्यालयनिकर मंडितकरी अर मुनिसुव्रतनाथ स्वामी के तीर्थ में मुनि होय सिद्धपदकूं प्राप्त भए। राजपुर नामा नगर में राजा अमितांत थे वह सुधर्म मित्र स्वामी के शिष्य मुनि होय ब्रह्म स्वर्ग गये। तहां तें चयकर राजा विजय रानी यशोवती तिनके जयसेन नामा ग्यारहवें चक्रवर्ती भए। ते राज्य तज दिगम्बरी दीक्षा धर रत्नत्रय का आराधनकर सिद्धपदकों प्राप्त भए। यह श्रीमुनिसुव्रतनाथ स्वामीके मुक्ति गए पीछे नमिनाथ स्वामी के अन्तरालमें भए। अर काशीपुर में राजा सम्भूत, ते स्वतंत्रलिंग स्वामीके शिष्य मुनि होय पद्मयुगल नामा विमानविषें देव भए। तहां तें चयकर कांपिल नगर में राजा ब्रह्मरथ रानी चूला तिनके ब्रह्मदत्त नामा बारहवें चक्रवर्ती भए। ते छै खण्ड पृथ्वीका राज्यकर मुनिव्रत बिना रौद्र ध्यानकर सातवें नरक गए। यह श्रीनेमिनाथ स्वामीको मुक्ति गए पीछे पार्श्वनाथ स्वामीके अंतराल में भए। ये

बारह चक्रवर्ती बड़े पुरुष हैं, छै खंड पृथवी के नाथ जिनकी आज्ञा देव विद्याधर सब मानैं हैं। हे श्रेणिक! तोहि पुण्य पापका फल प्रत्यक्ष कह्या सो यह कथन सुनकर योग्य कार्य करना, अयोग्य कार्य न करना। जैसे बटसारी बिना कोई मार्ग में चलै तो सुखसूं स्थानक नाहीं पहुंचै, तैसें सुकृत बिना परलोकमें सुख न पावै। कैलाशके शिखर समान जे ऊंचे महल तिनमें जो निवास करै हैं सो सर्व पुण्यरूप वृक्षका फल है अर जहां शीत उष्ण पवन पानी की बाधा ऐसी कुटियोंमें बसै हैं, दलिद्ररूप कीचमें फंसै हैं सो सर्व अधर्मरूप वृक्षका फल है। विंध्याचल पर्वत के शिखर समान ऊंचे जे गजराज तिनपर चढ़कर सैनासहित चलै हैं, चंवर ढुरै हैं सो सर्व पुण्यरूप वृक्षका फल है। जे महा तुरंगनि पर चमर ढुरते अर अनेक असवार पियादे जिनके चौगिर्द चलै हैं सो सब पुण्यरूप राजाका चरित्र है अर देवनिके विमानसमान मनोज्ञ जे रथ तिन पर चढ़कर जे मनुष्य गमन करै हैं सो पुण्य रूप पर्वत के मीठे नीझरने हैं। अर जो फटे पग अर फाटे मैले कपड़े अर पियादे फिरै हैं सो सब पापरूप वृक्ष का फल है अर जो अमृत-सारिखा अन्न ताका स्वर्ण के पात्र में भोजन करै हैं सो सब धर्म रसायनका फल मुनियों ने कहा है अर जो देवों का अधिपति इंद्र अर मनुष्योंका अधिपति चक्रवर्ती तिनका पद भव्य जीव पावै हैं सो सब जीव दयारूप बेल का फल है। कैसे हैं भव्य जीव, कर्मरूप कुंजर को शार्दूल-समान हैं। अर राम कहिए बलभद्र, केशव कहिए नारायण तिनके पद जो भव्य जीव पावै हैं सो सब धर्म का फल है।

हे श्रेणिक! आगे वासुदेवों का वर्णन करिबे हैं सो सुनि—या अवसर्पिणीकालके भरतक्षेत्रके नव वासुदेव हैं, प्रथम ही इनके पूर्वभवकी नगरियों के नाम सुनों—हस्तिनागपुर १ अयोध्या २ श्रावस्ती ३ कौशांबी ४ पोदनापुर ५ शैलनगर ६ सिंहपुर ७ कौशांबी ८ हस्तिनागपुर ९। ये नव ही नगर कैसे हैं? सर्व ही द्रव्यके भरे हैं अर ईति-भीतिरहित हैं। अब वासुदेवोंके पूर्व भवके नाम सुनो—विश्वानंदी १ पर्वत२ धनमित्र३ सागरदत्त४ विकट५प्रियमित्र ६ मानचेष्टित ७ पुनर्वसु ८ गंगदेव जिसे निर्णामिक भी कहै हैं९। नव ही वासुदेवोंके जीव पूर्व भवविषैं विरूप दौर्भाग्य राज्य भ्रष्ट होय हैं बहुरि मुनि होय महा तप करै हैं। बहुरि निदानके योगतैं स्वर्गविषैं देव होय हैं तहां तैं चयकर बलभद्रके लघु भ्राता वासुदेव होय हैं तातैं तपतैं निदान करना ज्ञानियों को वर्जित है। निदान नाम भोगाभिलाष का है सो महा भयानक दुःख देनेको प्रवीण है। अब इनके पूर्वभवके गुरुवों के नाम सुनो, जिनपै इन्होंने मुनिव्रत आदरे—संभूत १ सुभद्र २ वसुदर्शन ३ श्रेयांस ४ भूतिसंग ५ वसुभूति ६ घोषसेन ७ परांभोधि ८ द्रुमसेन ९। अब जिस जिस स्वर्गतैं आय वासुदेव भए तिनके नाम सुनो—शुक्र१ महाशुक्र २ लांतव ३ सहस्रार ४ ब्रह्म ५ माहेन्द्र ६ सौधर्म ७ सनत्कुमार ८ महाशुक्र ९। आगे वासुदेवों की जन्मपुरियों के नाम सुनो, पोदनापुर १ द्वापर २ हस्तिनागपुर ३ बहुरि

हस्तिनागपुर ४ चक्रपुर ५ कुशाग्रपुर ६ मिथिलापुर ७ अयोध्या ८ मथुरा ९ ये वासुदेवोंके उत्पत्तिके नगर हैं। कैसे हैं नगर ? समस्त धन धान्यकर पूर्ण महा उत्सवके भरे हैं। आगें वासुदेवोंके पिताके नाम सुनो—प्रजापति १ ब्रह्मभूत २ रौद्रनंद ३ सौम ४ प्रख्यात ५ शिवाकर ७ दशरथ ८ वसुदेव ९ बहुरि इन नव वासुदेवों की माताओंके नाम सुनो—मृगावती १ माधवी २ पृथिवी ३ सीता ४ अंबिका ५ लक्ष्मी ६ केशिनी ७ सुमित्रा ८ देवकी ९। ये नव ही वासुदेवों की नव माता कैसी हैं, अति रूप गुणनिकरि मंडित महा सौभाग्यवती जिनमती हैं। आगें नव वासुदेवों के नाम सुनो—त्रिपृष्ट १ द्विपृष्ट २ स्वयंभू ३ पुरुषोत्तम ४ पुरुषसिंह ५ पुण्डरीक ६ दत्त ७ लक्ष्मण ८ कृष्ण ९। आगे नव ही वासुदेवोंकी पटराणियोंके नाम सुनो—सुप्रभाती१ रूपिणी२ प्रभवा ३ मनोहरा ४ सुनेत्रा ५ विमलसुन्दरी ६ आनंदवती ७ प्रभावती ८ रुक्मिणी ९ ये वासुदेवों की मुख्य पटराणी कैसी हैं ? महागुण कला निपुण धर्मवती व्रतवती हैं।

अथानंतर अब नवबलभद्रोंका वर्णन सुनो सो पहिले नव बलभद्रोंकी पूर्वजन्मकी पुरियों के नाम कहैं हैं—पुंडरीकिनी १ पृथिवी २ आनंदपुरी३ नंदपुरी ४ वीतशोका ५ विजयपुर ६ सुसीमा ७ क्षेमा ८ हस्तिनागपुर ९। अब बलभद्रों के नाम सुनो—बाल १ मारुतदेव २ नंदिमित्र ३ महाबल ४ पुरुषऋषभ ५ सुदर्शन ६ वसुधर ७ श्रीरामचंद्र ८ शंख ९। अब इनके पूर्व भवके गुरुओं के नाम सुनो जिनपै इन्होंने जिनदीक्षा आदरी। अमृतार १ महासुव्रत २ सुव्रत ३ वृषभ ४ प्रजापाल ५ दमवर ६ सधर्म ७ आर्णव ८ विद्रुम ९। बहुरि नव बलदेव जिन जिन देवलोकनितैं आए तिनके नाम सुनहु—तीन बलभद्र तो अनुत्तर विमानतैं आए अर तीन सहस्रार स्वर्गतैं आए, दो ब्रह्म स्वर्गतैं आए अर एक महाशुक्रतैं आया। अब इन नव बलभद्रोंकी मातानिके नाम सुनो क्योंकि पिता तो बलभद्रोंके और नारायणों के एकही होय हैं—भद्रांभोजा १ सुभद्रा २ सुवेषा३ सुदर्शना ४ सुप्रभा ५ विजया ६ वैजयंती ७ अपराजिता जाहि कौशल्या भी कहैं हैं ८ रोहिणी ९। नव बलभद्र नव नारायण तिनमें पांच बलभद्र पांच नारायण तो श्रेयांसनाथ स्वामी के समयसे आदि लेय धर्मनाथ स्वामीके समय पर्यन्त भए और छठे सातवें अरनाथ स्वामी कों मुक्ति गए पीछे मल्लिनाथ स्वामीके पहिले भए और अष्टम बलभद्र वासुदेव मुनिसुव्रतनाथ स्वामीके मुक्ति गए पीछे, नेमिनाथ स्वामीके समय पहिले भए अर नवमें श्रीनेमिनाथके काकाके बेटे भाई महाजिनभक्त अद्भुत क्रियाके धारणहारे भए। अब इनके नाम सुनहु—अचल १ विजय २ भद्र ३ सुप्रभ ४ सुदर्शन ५ नंदिमित्र (आनंद) ६ नंदिषेण (नंदन) ७ रामचंद्र ८ पद्म ९। आगे जिन महामुनियों पै बलभद्रों ने दीक्षा धरी तिनके नाम कहिए हैं—सुवर्णकुम्भ १ सत्यकीर्ति २ सुधर्म ३ मृगांक ४ श्रुतकीर्ति ५ सुमित्र ६ भवनश्रुत ७ सुव्रत ८ सिद्धार्थ ९। यह बलभद्रों के गुरुवों के

नाम कहे, महातप के भार कर कर्म निर्जरा के करणहारे, तीन लोकमें प्रगट है कीर्ति जिनकी, नव बलभद्रोंके आठ तो कर्म रूप वन को भस्म कर मोक्ष प्राप्त भए। कैसा है संसार वन ? आकुलता कों प्राप्त भए हैं नाना प्रकार की व्याधि कर पीडित प्राणी जहां। बहुरि वह बन कालरूप जो व्याघ्र ताकरि अति भयानक है अर कैसा है यह वन ? अनंत जन्मरूप जे कंटकवृक्ष तिनका है समूह जहाँ। विजय बलभद्र आदि श्रीरामचंद्र पर्यंत आठ तो सिद्ध भए और पद्मनामा जो नवमां बलभद्र वह ब्रह्म- स्वर्ग में महाऋद्धि का धारी देव भया।

अब नारायणों के शत्रु जे प्रतिनारायण तिनके नाम सुनो—अश्वग्रीव १ तारक २ मेरक ३ मधुकैटभ ४ निशुंभ ५ बलि ६ प्रह्लाद ७ रावण ८ जरासिंध ९ अब इन प्रति-नारायणों की राजधानियों के नाम सुनो—अलका १ विजयपुर २ नंदनपुर ३ पृथ्वीपुर ४ हरिपुर ५ सूर्यपुर ६ सिंहपुर ७ लंका ८ राजगृही ९ ये नो ही नगर कैसे हैं, महारत्न जडित अति दैदीप्यमान स्वर्गलोक समान हैं।

हे श्रेणिक ! प्रथम ही श्रीजिनेंद्रदेवका चरित्र तुझे कह्या। बहुरि भरत आदि चक्रवर्तियोंका कथन कह्या और नारायण, बलभद्र तिनका कथन कह्या, इनके पूर्व जन्मके सकल वृत्तांत कहे अर प्रतिनारायण तिनके नाम कहे। ये त्रेसठ शलाकाके पुरुष हैं तिनमें कैयक पुरुष तो जिनभाषित तप करि ताही भव में मोक्षकों प्राप्त होय हैं, कैयक स्वर्ग प्राप्त होय हैं पीछे मोक्ष पावै हैं। अर कैयक जे वैराग्य नाहीं धरै हैं, चक्री तथा हरि प्रति-हरि ते कैयक भव धर फिर तप कर मोक्षकों प्राप्त होय हैं। ये संसार के प्राणी नाना प्रकार के जे पाप तिन करि मलीन मोहरूप सागर के भ्रमण में मग्न महा दुःखरूप चार गति तिनमें भ्रमण कर तप्तायमान सदा व्याकुल होय हैं, ऐसा जानकर जे निकट संसारी भव्य जीव हैं ते संसार का भ्रमण नाहीं चाहैं हैं, मोह तिमिरका अन्त करि सूर्य समान केवलज्ञान प्रकाश करै हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं चौदह कुलकर चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नवनारायण, नव प्रतिनारायण, नव बलभद्र, ग्यारह रुद्र, इनके माता पिता, पूर्व भव, नगरीनिके नाम, पूर्व गुरु कथन नाम वर्णन करने वाला बीसवाँ पर्व पूर्ण भया ॥ २० ॥

(इक्कीसवां पर्व)

(श्री रामचंद्र के वंश का वर्णन)

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतें कहै हैं—हे मगधाधिपति ! आगें अष्टम बलभद्र जो श्रीरामचंद्र, तिनका संबंध कहिए हैं सो सुनहु अर राजानिके वंश अर महा पुरुषनि की उत्पत्ति, तिनका कथन कहिए हैं सो उर में धारहु। भगवान दशम तीर्थंकर जे शीतलनाथ स्वामी तिनकों मोक्ष गए पीछें कोशांबी नगरी विषैं एक राजा सुमुख भया।

अर ताही नगर में एक श्रेष्ठी वीरक, ताकी स्त्री वनमाला, सो अज्ञानके उदयतैं राजा सुमुखने घर में राखी फिर विवेककों प्राप्त होय मुनियोंको दान दिया सो मरकर विद्याधर भया और वह वनमाला विद्याधरी भई। सो ता विद्याधरने परणी। एक दिवस ये दोनों क्रीड़ा करवेकूं हरिक्षेत्र गए अर वह श्रेष्ठी वीरक वनमालाका पति विरहरूप अग्निकर दग्धायमान सो तपकर देवलोक कों प्राप्त भया। एक दिवस अवधि कर वह देव अपने बैरी सुमुख के जीवको हरिक्षेत्र विषैं क्रीड़ा करता जान क्रोधकर तहांतैं भार्या सहित उठाय लाया सो वा क्षेत्रविषैं हरि ऐसा नामकरि प्रसिद्ध भया जाही कारणसे याका कुल हरिवंश कहलाया। ता हरि के महागिरि नामा पुत्र भया, ताके हिमगिरि, ताके वसुगिरि, ताके इंद्रगिरि, ताके रत्नमाल, ताके संभूत, ताके भूतदेव इत्यादि सैंकड़ों राजा हरिवंशविषैं भए। ताही हरिवंशविषैं कुशाग्र नामा नगर विषैं एक राजा सुमित्र जगत् विषैं प्रसिद्ध भया। कैसा है राजा सुमित्र ? भोगोंकर इंद्र समान, कांतिकरि जीत्या है चंद्रमा जाने अर दीप्तिकर जीत्या है सूर्य अर प्रतापकर नवाए हैं शत्रु जाने। ताके राणी पद्मावती, कमल सारिखे हैं नेत्र जाके, शुभ लक्षणनिकरि संपूर्ण अर पूर्ण भए हैं सकल मनोरथ जाके, सो रात्रि विषैं मनोहर महल में सुख रूप सेज पर सूती हुती सो पिछले पहर सोलह स्वप्न देखे—गजराज १, वृषभ २, सिंह ३, लक्ष्मी स्नान करती ४, दोय पुष्पमाला ५, चंद्रमा ६, सूर्य ७, दोयमच्छ जल में केलि करते ८, जल का भरा कलश समूहसे मुँह ढका ९, सरोवर कमल पूर्ण १०, समुद्र ११, सिंहासन रत्न-जटित १२, स्वर्गलोक के विमान आकाशतैं आवते देखे १३, नागकुमार के विमान पातालतैं निकसते देखे १४, रत्ननिकी राशि १५, अर निर्धूम अग्नि १६। तब राणी पद्मावती सुबुद्धिवंती जागकर, आश्चर्य भया है चित्त जाका, प्रभात की क्रियाकर विनयरूप थई भरतार के निकट आई, पतिके सिंहासन पै आय विराजी, फूल रह्या है मुख कमल जाका, महान्यायकी वेत्ता, पतिव्रता, हाथ जोड़ नमस्कार कर पतिसों स्वप्नों का फल पूछती भई। तब राजा सुमित्र स्वप्नोंका फल यथार्थ कहते भए। तब ही रत्नों की वर्षा आकाशतैं बरसती भई। साढ़े तीन कोटि रत्न एक संध्यामें बरसे सो त्रिकाल संध्या वर्षा होती भई। पंद्रह महीनों लग राजाके घरमें रत्नधारा वर्षी। अर जे षट्कुमारिका ते समस्त परिवार सहित माताकी सेवा करती भई। अर जन्म होते ही भगवानकूं क्षीरसागरके जलकरि इंद्र लोकपालनिसहित सुमेरु पर्वत पर स्नान करावते भए। अर इंद्रने भक्ति थकी पूजा अर स्तुतिकर नमस्कार करी फिर सुमेरुतैं ल्याय माताकी गोद विषैं पधराए। जबसे भगवान माताके गर्भमें आए तबहीतैं लोक अणुव्रतकरि महाव्रतकरि विशेष प्रवर्तें अर माता व्रतरूप होती भई तातैं पृथ्वीविषैं मुनिसुव्रत कहाए। अंजनगिरि समान है वर्ण जिनका परन्तु शरीर के तेज से सूर्य को जीतते भए अर कांतिकर चंद्रमाकूं जीतते भए। सब कोय

आवश्रो इंद्रलोकतें कुबेर लावे। अर जैसा आपकों मनुष्य भव में सुख है तैसा अहमिंद्रनिको नाहीं। अर हाहा हूहू तुंवर नारद विश्वावसु इत्यादि गंधर्वनिकी जाति हैं सो सदा निकट गान करा ही करें अर किन्नरी जातिकी देवांगना तथा स्वर्ग की अप्सरा नृत्य किया ही करें अर वीणा बांसुरी मृदंग आदि वादित्र नाना विध के देव बजाया ही करें। अर इंद्र सदा सेवा करें अर आप महासुन्दर यौवन अवस्था विषें विवाह भी करते भए सो तिनके राणी अद्भुत आवती भई, अनेक गुण कला चातुर्यताकर पूर्ण हाव भाव विलास विभ्रम की धरणहारी। सो कैयक वर्ष आप राज किया, मनवांछित भोग भोगे। एक दिवस शरद के मेघ विलय होते देख आप प्रतिबोधकों प्राप्त भए। तब लौकांतिक देवनिने आय स्तुति करी तब सुव्रतनाम पुत्रकूं राज्य देय वैरागी भए। कैसे हैं भगवान ? नाहीं है काहू वस्तु की वांछा जिनके, आप वीतराग भावधर दिव्य स्त्रीरूप जो कमलविका वन तहांतैं विकसे। कैसा है वह सुन्दर स्त्रीरूप कमलविका वन ? सुगंधकरि व्याप्त किया है दसों दिशाका समूह जाने, बहुरि महादिव्य जे सुगंधादिक तेई हैं मकरंद जामें और सुगंधताकर भ्रमें हैं भ्रमरों के समूह जाविषें अर हरितमणिकी जे प्रभा तिनके जो पुंज सोई हैं पत्रनि का समूह जाविषें अर दांतों की जो पंक्ति तिनकी जो उज्ज्वल प्रभा सोई है कमल तंतु जाविषें अर नाना प्रकार आभूषणनिके जे नाद तेई भए पक्षी उनके शब्द तिनकरि पूरित है अर स्तनरूप जे चकवे तिनकर शोभित है अर उज्ज्वल कीर्तिरूप जे राजहंस तिनकरि मंडित है सो ऐसे अद्भुत विलास तजकर वैराग्यके अर्थ देवोपुनीत पालकीविषें चढ़कर विपुलनाम उद्यान विषें गए। कैसे हैं भगवान मुनिसुव्रत ? सर्व राजनिके मुकुटमणि हैं सो वनमें पालकीतें उतरकर अनेक राजानिसहित जिनेश्वरी दीक्षा धरते भए। बेले पारणा करना यह प्रतिज्ञा आदरी। राजगृहनगर में वृषभदत्त महाभक्तिकर श्रेष्ठ अन्न कर पारणा करावता भया। आप भगवान महाशक्ति करि पूर्ण कुछ क्षुधा की बाधा करि पीड़ित नाहीं परन्तु आचारांग सूत्रकी आज्ञा प्रमाण अंतरायरहित भोजन करते भए। वृषभदत्त भगवानकूं आहार देय कृतार्थ भया। भगवान कैयक महीना तपकर चम्पाके वृक्षतले शुक्लध्यानके प्रतापतें घातिया कर्मनिका नाशकर केवलज्ञानकूं प्राप्त भए। तब इन्द्रसहित देव आयकर प्रणाम अर स्तुति कर धर्म श्रवण करते भए। आपने यति श्रावक का धर्म विधिपूर्वक वर्णन किया। धर्म श्रवणकर कई मनुष्य मुनि भए, कई मनुष्य श्रावक भए, कई तिर्यंच श्रावकके व्रत धारते भए अर देवनिकों व्रत नाहीं सो कई देव सम्यक्त्वको प्राप्त होते भए। श्रीमुनिसुव्रतनाथ धर्मतीर्थका प्रवर्तन कर सुर असुर मनुष्यनिकरि स्तुति करवे योग्य अनेक साधुवों सहित पृथवी पर विहार करते भए। सम्मेदशिखर पर्वतसे लोकशिखर को प्राप्त भए। यह श्रीमुनिसुव्रतनाथका चरित्र जे प्राणी भाव धर सुनें तिनके

समस्त पाप नाशकूं प्राप्त होंय अर ज्ञानसहित तपसे परम स्थानकूं पावें जहांतें फेर आगमन न होय।

अथानंतर मुनिसुव्रतनाथ के पुत्र राजा सुव्रत बहुत काल राज्य कर दक्ष पुत्र को राज्य देय जिनदीक्षा धर मोक्ष कों प्राप्त भए। अर दक्ष के एलावर्धन पुत्र भया, ताके श्री वर्धन, ताके श्रीवृक्ष, ताके संजयन्त, ताके कुणिम, ताके महारथ, ताके पुलोम इत्यादि अनेक राजा हरिवंश विषें भए तिनमें कैयक मुक्तिको गए, कैयक स्वर्ग लोक गए। या भांति अनेक राजा भए। बहुरि याही कुलविषें एक राजा वासवकेतु भया, मिथिला नगरी का पति ताके विपुला नामा पटरानी, सुन्दर हैं नेत्र जाके, सो वह रानी परम लक्ष्मी का स्वरूप ताके जनक नामा पुत्र होते भए। समस्त नयों में प्रवीण वे राज्य पाय प्रजा कों ऐसे पालते भए जैसें पिता पुत्र को पालै। गौतम स्वामी कहे हैं–हे श्रेणिक ! यह जनक की उत्पत्ति कही, जनक हरिवंशी हैं।

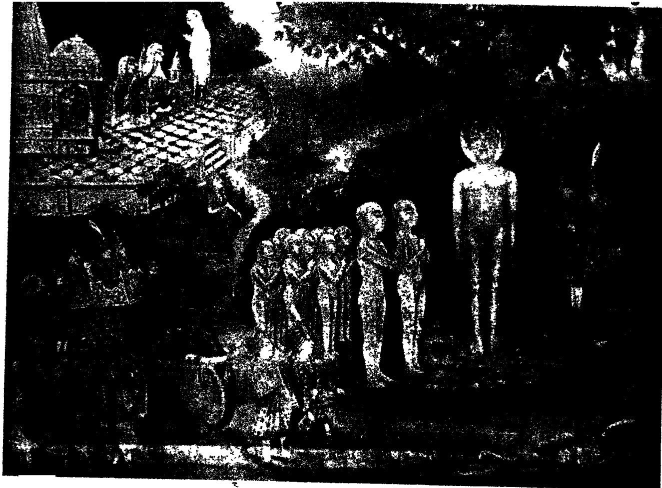
(दशरथ की उत्पत्ति आदि का वर्णन)

अब ऋषभदेव के कुलमें राजा दशरथ भए तिनके वंशका वर्णन सुन–इक्ष्वाकुवंश में श्री ऋषभदेव निर्वाण पधारे बहुरि तिनके पुत्र भरत भी निर्वाण पधारे। सो ऋषभदेव के समयसे लेकर मुनिसुव्रतनाथके समय पर्यन्त बहुत काल बीत्या, तामें असंख्य राजा भए। कैयक तो महादुर्द्धर तपकर निर्वाणकों प्राप्त भए, कैयक अहमिंद्र भए, कैयक इंद्रादिक बड़ी ऋद्धिके धारी देव भए, कैयक पापके उदयकर नरकमें गए सो थोरे। हे श्रेणिक ! या संसारमें अज्ञानी जीव चक्रकी नाईं भ्रमण करै हैं, कबहूं स्वर्गादिक भोग पावें हैं तिन विषें मग्नहोय क्रीड़ा करै हैं, कैयक पापी जीव नरक निगोदमें क्लेश भोगै हैं। ये प्राणी पुण्य पाप के उदयतें अनादि काल भ्रमण करै हैं। कबहूं कष्ट, कबहूं उत्सव। यदि विचार कर देखिए तो दुःख मेरु-समान, सुख राई समान है। कैयक द्रव्यरहित क्लेश भोगवै हैं, कैयक बाल अवस्था में मरण करै हैं, कैयक शोक करै हैं, कैयक रुदन करै हैं, कैयक विवाद करै हैं, कैयक पढ़ैं हैं, कैयक पराई रक्षा करै हैं, कैयक पापी बाधा करै हैं, कैयक गरजै हैं, कैयक गान करै हैं, कैयक पराई सेवा करै हैं, कैयक भार वहै हैं, कैयक शयन करै हैं, कैयक पराई निंदा करै हैं, कैयक केलि करै हैं, कैयक युद्धकरि शत्रुओं को जीतै हैं, कैयक शत्रुको पकड़ छोड़ देय हैं, कैयक कायर युद्धको देख भागै हैं, कैयक शूरवीर पृथ्वीका राज्य करै हैं, विलास करै हैं, बहुरि राज्य तज वैराग्य धारै हैं, कैयक पापी हिंसा करै हैं, परद्रव्य की वांछा करै हैं, परद्रव्यकूं हरै हैं, दौड़ै हैं, कूट-कपट करै हैं, ते नरक में पड़ै हैं। अर जे कैयक लज्जा धारै हैं, शील पाले हैं, करुणा भाव धारै हैं, क्षमा भाव धारै हैं, पर द्रव्य तजै हैं, वीतरागताको भजै हैं, संतोष धारै हैं, प्राणियों को साता उपजावै हैं ते स्वर्ग पाय

परंपराय मोक्ष पावैं हैं, जे दान करे हैं। तप करे हैं, अशुभ क्रियाका त्याग करे हैं, जिनेंद्र की अर्चा करै हैं, जैनशास्त्रकी चर्चा करे हैं, सब जीवनिसूं मित्रता करै हैं, विवेकियों का विनय करै हैं, ते उत्तम पद पावैं हैं। कैयक क्रोध करै हैं, काम सेवै हैं, राग द्वेष मोह के वशीभूत हैं, पर जीवोंको ठगै हैं, ते भव सागर में डूबै हैं, नाना विध नाचै हैं, जगत में राचै हैं, खेदखिन्न हैं, दीर्घशोक करै हैं, झगड़ा करै हैं, संताप करै हैं, असि मसि कृषि वाणिज्यादि व्यापार करै हैं, ज्योतिष वैद्यक यन्त्र मंत्रादिक करै हैं, शृंगारादि शास्त्र रचै हैं, वे वृथा पच पचकर मरै हैं; इत्यादि शुभाशुभ कर्मकरि आत्मधर्मको भूल रहे हैं। संसारी जीव चतुर्गति विषें भ्रमण करै हैं। या अवसर्पिणी काल विषें आयु काय घटती जाय है। श्रीमल्लिनाथ के मुक्ति गए पीछे मुनिसुव्रतनाथ के अंतरालविषैं या क्षेत्रतैं अयोध्या नगरी विषें एक विजय नामा राजा भया, महा शूरवीर प्रतापकरि संयुक्त, प्रजा के पालन विषें प्रवीण, जीते हैं समस्त शत्रु जानें, ताके हेमचूलनी नामा पटरानी, ताके महा गुणवान् सुरेन्द्रमन्यु नामा पुत्र भया। ताके कीर्तिसमा नामा रानी, ताके दोय पुत्र भए–एक वज्रबाहु दूजा पुरंदर, चंद्र-सूर्य समान है कांति जाकी, महागुणवान अर्थसंयुक्त है नाम जिनके, वे दोऊ भाई पृथवी विषें सुखसूं रमते भए।

अथानंतर हस्तिनागपुर में एक राजा इंद्रवाहन ताके राणी चूडामणी ताके पुत्री मनोदया अतिसुन्दरी सो वज्रबाहुकुमार ने परणी। सो कन्याका भाई उदयसुन्दर बहिन के लेनेकूं आया सो वज्रबाहुकुमारका स्त्रीसूं अति प्रेम था, स्त्री अति सुन्दरी सो कुमार स्त्री के लार सासरे चाले। मार्ग विषें वसंतका समय था और वसतगिरि पर्वत के समीप जाय निकसे। ज्यों २ वह पहाड़ निकट आवै त्यों २ उसकी परम शोभा देख कुमार अति हर्ष कूं प्राप्त भए। पुष्पनिकी जो मकरंदता उससे मिली सुगध पवन सो कुमारके शरीरसे स्पर्शी ताकरि ऐसा सुख भया जैसा वहुत दिनों के बिछुरे मित्रसों मिले सुख होय। कोकिलनिके शब्दनिकरि अति हर्षित भया जैसें जीत का शब्द सुन हर्ष होय। पवन से हाल हैं वृक्षों के अग्रभाग सो मानों वज्रबाहुका सन्मान ही करै हैं और भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों बीणका नाद ही होय है. वज्रबाहु का मन प्रसन्न भया। वज्रबाहु पहाड़ की शोभा देखै है कि यह आम्र वृक्ष, यह कर्णकार जाति का वृक्ष, यह रौद्र जातिका वृक्ष फलनिकरि मंडित, यह प्रयाल वृक्ष, यह पलाश का वृक्ष, अग्नि समान देदीप्यमान हैं पुष्प जाके, वृक्षनि की शोभा देखते २ राजकुमार की दृष्टि मुनिराज पर पड़ी अर विचारता भया कि थंभ है अथवा पर्वत का शिखर है अथवा मुनिराज हैं? कायोत्सर्ग धर खड़े जो मुनि तिनविषे वज्रबाहु का ऐसा विचार भया, कैसे हैं मुनि जिनको ठूंठ जानकर जिनके शरीर से मृग खाज खुजावें हैं, जब नृप निकट गया तब निश्चय भया कि जो ये महा योगीश्वर विदेह

अवस्थाकों धरे कायोत्सर्ग ध्यान धरे स्थिर रूप खड़े हैं, सूर्य की किरणनिकरि स्पर्श्या है मुख कमल जिनका और महासर्प के फण समान देदीप्यमान भुजाओं को लंबाय ऊभे हैं, सुमेरु का जो तट उस समान सुन्दर है वक्षस्थल जिनका और दिग्गजोंके बांधनेके थंभ तिन समान अचल है जंघा जिनकी, तप से क्षीण शरीर है परन्तु कांति से पुष्ट दीखें हैं, नासिका के अग्रभागविषें लगाए हैं निश्चल सौम्य नेत्र जिन्होंने, आत्माकूं एकाग्र ध्यावें हैं; ऐसे मुनिकूं देखकर राजकुमार चितवता भया, अहो धन्य हैं ये शांतिभाव के धारक महामुनि जो समस्त परिग्रहकूं तजकर मोक्षाभिलाषी होय तप करें हैं, इनकूं निर्वाण निकट है, निज कल्याण में लगी है बुद्धि जिनकी, परजीवनिकूं पीड़ा देनेसे निवृत्त भया है आत्मा जिनका अर मुनिपद की क्रिया करि मंडित हैं। जिनके शत्रु मित्र समान हैं। तृण अर कंचन समान, पाषाण अर रत्न समान, मान और मत्सर से रहित है मन जिनका। वश करी हैं पांचों इंद्रिय जिन्होंने, निश्चल पर्वत समान वीतराग भाव हैं, जिनको देखें जीवनका कल्याण होय या मनुष्यदेहका फल इनही ने पाया, यह विषय कषायों से न ठगाए, कैसे हैं विषय? महा क्रूर हैं अर मलिनता के कारण हैं। मैं पापी कर्म-पाश करि निरंतर बंधा जैसे चंदन का वृक्ष सर्पों से वेष्टित होय है तैसें मैं पापी असावधानचित्त अचेत-समान होय रहा, धिक्कार है मुझे जो मैं भोगादिरूप महा पर्वत उसके शिखरपर निद्रा करूं हूं सो नीचेही पड़ूंगा, जो इस योगींद्रकी सी अवस्था धरूं तो मेरा जन्म कृतार्थ होय। ऐसा चितवन करते वज्रबाहुकी दृष्टि मुनिनाथमें अत्यंत निश्चल भई मानों थंभसे बांधी गई। तब उसका साला उदयसुन्दर इसको निश्चल दृष्टि देख मुलकता हुवा याहि हास्यके वचन कहता भया कि मुनिकी ओर अत्यंत निश्चल होय निरखो हो सो क्या दिगम्बरीदीक्षा धरोगे? तब वज्रबाहु बोले जो हमारा भाव था सो तुमने प्रगट किया। अब तुम इसही भाव की वार्ता कहो। तब वह इसको रागी जान हास्यरूप बोला कि तुम दीक्षा धरोगे तो मैं भी धरूंगा परन्तु इस दीक्षासे तुम अत्यंत उदास होवोगे। तब वज्रबाहु बोले—यह तो ऐसे ही भई। यह कहकर विवाहके आभूषण उतार डारे और हाथीसे उतरे। तब मृगनयनी स्त्री रोने लगी, स्थूल मोती समान अश्रुपात डारती भई। तब उदयसुंदर आंसू डारता कहता भया कि हे देव! यह हास्यमें कहा विपरीत करो हो? तब वज्रबाहु अति मधुर वचनसूं ताको शांतता उपजावते कहते भए—हे कल्याणरूप! तुम समान उपकारी कौन। मैं कूपमें पड़ूं था सो तुमने राखा, तुम समान मेरा तीनलोकमें मित्र नाहीं। हे उदयसुन्दर! जो जन्म्या है सो अवश्य मरेगा और जो मूआ है सो अवश्य जन्मेगा। ये जन्म और मरण अरहटकी घड़ी समान हैं तिनमें संसारी जीव निरंतर भ्रमै हैं। यह जीतव्य बिजली के चमत्कार समान है तथा जलकी तरंग समान तथा दुष्ट सर्पकी जिह्वा समान चंचल है।



चित्र पृष्ठ २५१-२५२

नव विवाहित वज्रबाहु कुमार अपनी राणी मनोदया और उसके भाई उदयसुंदर के साथ सासरे चले। मार्ग में ध्यानस्थ मुनि को देखा। वज्रबाहु की दृष्टि मुनिनाथ में निश्चल भई देख उदयसुंदर ने हास्य किया। वज्रबाहु व उदयसुंदर अन्य राजकुमारों के सहित मुनि दीक्षा लेते हैं। साथ साथ मनोदया आर्यिका बनती है।

यह जगत के जीव दुःखसागरविषें डूब रहे हैं। यह संसारके भोग स्वप्न के भोग समान असार हैं, जलके बुदबुदा समान काया है, सांझके रंग समान यह जगतका स्नेह है और यौवन फूल समान कुमलाय जाय है। यह तुम्हारा हँसना भी हमको अमृत समान कल्याण-रूप भया। हास्य से जो औषधि पीए तो क्या रोग को न हरै? अवश्य हरै ही। अर तुम हमको मोक्षमार्ग के उद्यम के सहाई भए, तुम समान हमारे और हितु नाहीं। मैं संसार के आचारविषें आसक्त होय रहा था सो वीतराग भावको प्राप्त भया। अब मैं जिनदीक्षा धरूं हूँ, तुम्हारी जो इच्छाहोय सो तुम करो। ऐसा कहकर सर्व परिवारसूं क्षमा कराय वह गुणसागर नामा मुनि, तप ही है धन जिनके, तिनके निकट जाय चरणारविंदको नमस्कार करि बिनयवान होय कहता भया कि हे स्वामी! तुम्हारे प्रसादतें मेरा मन पवित्र भया, अब मैं संसाररूप कीचसे निकस्या चाहूँ हूं। तब इसके वचन सुन गुरुने आज्ञा दई कि तुमको भवसागरसे पार करनहारी यह भगवती दीक्षा है। कैसे हैं गुरु? सप्तमगुणस्थान से छठे गुणस्थान आए हैं। यह गुरूकीआज्ञा उरमें धार वस्त्राभूषण का त्यागकर पल्लव समान जे अपने कर तिनसें केशोंका लौंचकर पल्यंकासन धरता भया। इस देहको विनश्वर जान देह से स्नेह तजकर राजपुत्रीको और राग अवस्था को तज मोक्ष की देन-हारी जो जिनदीक्षा सो अंगीकार करता भया और उदयसुन्दरको आदिदे छब्बीस राज-कुमार भी जिनदीक्षा धरते भए। कैसे हैं वे कुमार? कामदेव समान है रूप जिनका, तजे हैं राग द्वेष मद मत्सर जिन्होंने, उपज्या है वैराग्यका अनुराग जिनके, परम उत्साह के भरे नग्न मुद्रा धरते भए। अर यह वृत्तांत देख वज्रबाहु की स्त्री मनोदेवी पतिके अर भाईके स्नेहसों मोहित हुई मोह तज आर्यिकाके व्रत धारती भई, सर्व वस्त्राभूषण तजकर एक सफेद साड़ी धरती भई, महा तप आदरे। यह वज्रबाहु की कथा इसका दादा जो राजा विजय उसने सुनी, सभाके मध्य बैठ्या था सो शोकसे पीड़ित होय ऐसे कहता भया—यह आश्चर्य देखो कि मेरा पोता नवयौवन विषैं विषय को विष-समान जान विरक्त होय मुनि भया और मो सारिखा मूर्ख विषयों का लोलुपी वृद्ध अवस्थामें भी भोगोंको न तजता भया सो कुमारने कैसे तजे? अथवा वह महाभाग्य जो भोगोंको तृणवत् तजकर मोक्षके निमित्त शांतभावोंमें तिष्ठया, मैं मंद भाग्य जराकर पीड़ित हूँ सो इन पापी विषयोंने मोहि चिर-काल ठग्या। कैसे हैं ये विषय? देखनेमें तो अति सुंदर हैं परंतु फल इनके अति कटुक हैं। मेरे इंद्रनील मणि समान श्याम जो केशोंके समूह थे सो अब कफकी राशिसमान श्वेत होय गए। जे यौवन अवस्थामें मेरे नेत्र श्यामता श्वेतता अरुणता लिये अति मनोहर थे सो अब उंडे पड़ गए। और मेरा जो शरीर अति दैदीप्यमान शोभायमान महाबलवान स्वरूप-वान था सो वृद्ध अवस्थाविषें वर्षा से हता जो चित्राम ता समान होय गया। जे धर्म काम

तरुण अवस्था विषैं भली भांति सर्व हैं सो जराकर मंडित जे प्राणी तिनसे सघना विषम है। धिक्कार है मो पापी दुराचारी प्रमादी कों जो मैं चेतन थका अचेतन दशा आदरी। यह झूठा घर झूठी माया झूठी काया झूठे बांधव झूठा परिवार तिनके स्नेहकरि भवसागरके भ्रमणमें भ्रमा। ऐसा कहकर सर्व परिवारसों क्षमा कराय छोटा पोता जो पुरंदर उसे राज्य देय अपने पुत्र सुरेंद्रमन्यु सहित राजा विजयने वृद्ध अवस्थामें निर्वाणघोष स्वामीके समीप जिनदीक्षा आदरी। कैसा है राजा? महा उदार है मन जाका।

अथानंतर पुरंदर राज्य करै है, उसके पृथिवीमती रानी ताके कीर्तिधर नामा पुत्र भया, सो गुणोंका सागर पृथ्वी विषैं विख्यात वह विनयवान अनुक्रमकर यौवनकों प्राप्त भया। सर्व कुटुंबको आनंद बढ़ावता संता अपनी सुन्दर चेष्टासूं सबकों प्रिय भया। तब राजा पुरंदरने अपने पुत्रकों राजा कौशलकी पुत्री परणाई अर इसकों राज्य देय राजा पुरंदर ने, गुण ही हैं आभरण जाके, क्षेमंकर मुनिके समीप मुनिव्रत धरे, कर्मनिर्जराका कारण महातप आरंभा।

अथानंतर राजा कीर्तिधर कुलक्रम से चला आया जो राज्य उसे पाय, जीते हैं सब शत्रु जिसने, देव समान उत्तम भोग भोगता संता रमता भया। एक दिवस राजा कीर्तिधर प्रजाका बन्धु, जे प्रजाके बाधक शत्रु तिनकों भयंकर, सिंहासनविषैं जैसें इन्द्र विराजै तैसें विराजे हुते सो सूर्यग्रहण देख चित्तमें चितवते भए कि देखो यह सूर्य जो ज्योतिका मंडल है सो राहुके विमानके योगसे श्याम होय गया, यह सूर्य प्रतापका स्वामी अंधकारकों मेट प्रकाश करै है और जिसके प्रतापसे चंद्रमाका बिंब कांतिरहित भासै है और कमलिनोके वनकों प्रफुल्लित करै है सो राहुके विमानसे मंदकांति भासै है, उदय होता ही सूर्य ज्योति-रहित होय गया, तातैं संसार की दशा अनित्य है। यह जगतके जीव विषयाभिलाषी रंक-समान मोह-पाशसे बंधे अवश्य कालके मुखमें पड़ेंगे। ऐसा विचारकर यह महाभाग्य संसार की अवस्थाकों क्षणभंगुर जान मंत्री पुरोहित सेनापति सामंतनिकों कहता भया कि यह समुद्र-पर्यंत पृथ्वी के राज्य की तुम भली भांति रक्षा करियो, मैं मुनिके व्रत धरूं हूँ। तब सब ही विनती करते भए—हे प्रभो! तुम बिना यह पृथवी हमसे दबै नाहीं, तुम शत्रुओंके जीतनहारे हो, लोकोंके रक्षक हो, तुम्हारी वय भी नवयौवन है, इस राज्यके पति अद्वितीय तुमही हो, यह पृथवी तुम ही से शोभायमान है; इसलिए यह इन्द्रतुल्य राज्य कैयक दिन करो। तब राजा बोले— यह संसार अटवी अति दीर्घ है, इसे देख मोहि अति भय उपजै है। कैसी है यह भवरूप अटवी? अनेक दुःख वेई हैं, फल जिनके, ऐसे कर्मरूप वृक्षनि से भरी है अर जन्म जरा मरण रोग शोक रति अरति इष्टवियोग अनिष्टसंयोगरूप अग्नि से प्रज्वलित है। तब मंत्रीजनोंने राजाके परिणाम विरक्त जान बुझे अंगारोंके समूह लाय धरे

और तिनके मध्य एक वैडूर्यमणि ज्योतिका पुंज अति अमोलक लाय धरया सो मणि के प्रतापसैं कोयले प्रकाशरूप होय गए। फिर वह मणि उठाय लई तब वे कोयले नीके न लागे तब मंत्रियोंने राजासे विनती करो–हे देव जैसें यह काष्ठ के कोयले रत्ननि बिना न शोभै हैं तैसें तुम बिना हम सब ही न शोभैं। हे नाथ ! तुम बिना प्रजाके लोक अनाथ मारे जायेंगे और लूटे जायेंगे अर प्रजाके नष्ट होते धर्मका अभाव होवेगा तातैं जैसा तुम्हारा पिता तुमको राज्य देय मुनि भया था तैसें तुम भी अपने पुत्रकों राजदेय जिनदीक्षा धरियो। या भांति प्रधान पुरुषोंने विनती करी तब राजा ने यह नियम किया कि जो मैं पुत्रका जन्म सुनूं उस ही दिन मुनिव्रत धरूं, यह प्रतिज्ञा कर इन्द्र समान भोग भोगता भया। प्रजाकों साता उप-जाय राज्य किया, जिसके राज्य में किसी भांति का भी प्रजाकों भय न उपजा। कैसा है राजा ? समाधान रूप है चित्त जाका। एक समय राणी सहदेवी राजा सहित शयन करती थी सो उसको गर्भ रह्या। कैसा पुत्र गर्भ में आया ? संपूर्ण गुणनिका पात्र और पृथ्वी के प्रतिपालनकों समर्थ सो जब पुत्रका जन्म भया तब राणी ने पति के वैरागी होने के भय से पुत्र का जन्म प्रगट न किया, कैयक दिवस वार्ता गोप राखी। जैसें सूर्य के उदयकों कोई छिपाय न सकै, तैसें राजपुत्रका जन्म कैसें छिपै ? किसी दरिद्री मनुष्यने द्रव्यके अर्थके लोभतैं राजासे प्रगट किया। तब राजाने मुकुट आदि सर्व आभूषण अंगसे उतार उसको दिए और घोषशाखा नामा नगर महारमणीक अति धनकी उत्पत्तिका स्थानक सो गाँव भी दिया और पुत्र पंद्रह दिनका माताकी गोदमें तिष्टै था सो तिलक कर उसको राजपद दिया जिससे अयोध्या अति रमणीक होती भई और अयोध्याका नाम कौशल भी है तातैं उसका सुकौशल नाम प्रसिद्ध भया। कैसा है सुकौशल? सुन्दर है चेष्टा जाकी, सुकौशलकों राज्य देय राजा कीर्तिधर घररूप बंदीगृहतैं निकस करि तपोवनकों गए, मुनिव्रत आदरे, तपसे उपज्या जो तेज उससे जैसें मेघपटलसे रहित सूर्य शोभै तैसें शोभते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं वज्रबाहु अर कीर्तिधर माहात्म्य वर्णन करने वाला इक्कीसवां पर्व पूर्ण भया ॥२१॥

बाईसवां पर्व

(सुकौशल का दीक्षा लेना और भयंकर उपसर्ग सह कर इष्ट प्राप्ति करना)

अथानंतर कैयक वर्षमें कीर्तिधर मुनि, पृथ्वीसमान है क्षमा जिनके, दूर भया है मान मत्सर जिनका और उदार है चित्त जिनका, तपकरि शोखा है सर्व अंग जिन्होंने अर लोचव ही हैं सर्व आभूषण जिनके, प्रलंबित हैं महाबाहु और जूड़े प्रमाण धरती देख अधोदृष्टि गमन करै हैं। जैसें मत्त गजेंद्र मन्द मन्द गमन करै तैसें जीव दयाके अर्थ धीरे-धीरे गमन करै हैं।

सर्व विकार रहित महासावधानी ज्ञानी महा विनयवान लोभ-रहित पंच आचार के पालनहारे, जीवदयासे विमल है चित्त जिनका, स्नेहरूप कर्दम से रहित, स्नानादि शरीर संस्कार से रहित, मुनिपदकी शोभासे मंडित, सो आहार के निमित्त बहुत दिनोंके उपवासे नगरमें प्रवेश करते भए । तिनकों देखकर पापिनी सहदेवी उनकी स्त्री मनमें विचार करती भई कि इनको देख मेरा पुत्र भी वैराग्यकों प्राप्त न होय तब महाक्रोधकर लाल होय गया है मुख जाका, दुष्ट चित्ता द्वारपालनिसों कहती भई, यह यति नग्न महामलिन घरका खोऊ है, इसे नगरसे बाहिर निकास देवो फिर नगरमें न आवने पावै । मेरा पुत्र सुकुमार है, भोला है, कोमल चित्त है सो उसे देखने न पावै, या सिवाय और भी यति हमारे द्वारे आवने न पावैं । रे द्वारपाल हो ! इस बात में चूक पड़ी तो मैं तुम्हारा निग्रह करूंगी । जबसे यह दया-रहित बालक पुत्रकों तजकर मुनि भया तबसूं इस भेषका मेरे आदर नाहीं, यह राज्यलक्ष्मी विघ्न है अर लोगों को वैराग्य प्राप्त करावै है, भोग छुड़ाय योग सिखावै है । जब राणीने ऐसे वचन कहे तब वे क्रूर द्वारपाल,बेंतकी छड़ी है हाथमें जिनके, मुनिकों मुखसें दुर्वचन कहकर नगरसे निकास दिए अर आहारकों और भी साधु नगरमें आए हुते वे भी निकास दिए । मेरा पुत्र कभी धर्म-श्रवण न करे या कारण कीर्तिधरका अविनय देख राजा सुकौशल की धाय महाशोक कर रुदन करती भई । तब राजा सुकौशल धायकों रोवती देख कहते भए कि हे माता! तेरा अपमान करै ऐसा कौन? माता तो मेरी गर्भधारण मात्र है और तेरे दुग्धकरि मेरा शरीर वृद्धिकों प्राप्त भया सो मेरे तू मातासे भी अधिक है । जो मृत्युके मुखमें प्रवेश किया चाहे सो तोहि दुखावै । जो मेरी माताने भी तेरा अनादर किया होय तो मैं उसका अविनय करूं, औरोंकी क्या बात ? तब वसंतलता धाय कहती भई, हे राजन्! तेरा पिता तुझे बालअवस्थामें राज्य देय संसाररूप कष्टके पींजरेसे भयभीत होय तपोवनको गए सो वह आज इस नगरमें आहारकों आए थे सो तिहारी माताने द्वारपालनिसों आज्ञाकर नगरतें कढ़ाए । हे पुत्र ! वे हमारे सबके स्वामी सो उनका अविनय मैं देख न सकी तातें मैं रुदन करूं हूं और तिहारी कृपाकर मेरा अपमान कौन करै ? और साधुवों को देखकर मेरा पुत्र ज्ञानकों प्राप्त होय ऐसा जान मुनिनका प्रवेश नगरसे निषेध्या सो तिहारे गोत्रविषें यह धर्म परंपरासे चला आया है कि जो पुत्रकों राज्य देय पिता वैरागी होय हैं और तिहारे घरसे आहार बिना कभी भी साधु पाछे न गए । यह वृत्तांत सुन राजा सुकौशल मुनिके दर्शनको महलसे उतर चमर छत्र वाहन इत्यादि राजचिह्न तजकर कमलसे भी अति कोमल जो चरण सो उबाणे ही मुनिके दर्शनकों दौड़े और लोकनिकों पूछते जावें कि तुमने मुनि देखे, तुमने मुनि देखे, या भांति परम अभिलाषा संयुक्त अपने पिता जो कीर्तिधर मुनि तिनके समीप गए अर इनके पीछे छत्र-चमर-वारे सब दौड़े ही गए । महामुनि उद्यान विषें शिला



चित्र पृष्ठ २५६

सुकौशल के पिता कीर्तिधर मुनि को आहार लेने के लिए नगर में आते देख, सुकौशल की माता सहदेवी, मुनि को नगर से बाहर निकलवाती है। मुनि नगर के बाहर जाकर ध्यान में बैठते हैं। सुकौशल, रुदन करती धाय माता से, मुनि की बात सुन कर मुनि के पास जाकर अश्रुपात करता है और मुनि दीक्षा ग्रहण करता है। सहदेवी अति दुःख से मर कर नाहरी होती है। ध्यानमग्न सुकौशल मुनि को खाती है। सुकौशल मुनि अंतकृत केवली होते हैं। नाहरी कीर्तिधर मुनि के उपदेश से सन्यास धारण कर स्वर्गलोक में जाती है।

पर विराजे हुते सो राजा सुकौशल, अश्रुपात कर पूर्ण हैं नेत्र जाके, शुभ है भावना जाकी, हाथ जोड़ि नमस्कार करि बहुत विनयसों मुनिके आगेंखड़े द्वारपालनिने द्वारतें निकासे थे सो ताकर अतिलज्जावंत होय महामुनिसों विनती करते भए—हे नाथ ! जैसें कोई पुरुष अग्नि प्रज्वलित घरविषें सूता होवै ताहि कोऊ मेघ के नाद-समान ऊँचा शब्द कर जगावै, तैसें संसाररूप गृह में जन्म-मृत्युरूप अग्निकरि प्रज्वलित ताविषें मैं मोह-निद्राकरि युक्त शयन करूँ था सो आपने मोहि जगाया । अब कृपाकर यह तिहारी दिगंबरी दीक्षा मोहि देहु । यह कष्टका सागर संसार तासों मोहि उबारहु । जब ऐमे वचन मुनिसों राजा सुकौशलने कहे, तब ही समस्त सामंत लोक आए और रानी विचित्रमाला गर्भवती हुती सो हू अति कष्ट करि विषाद सहित समस्त राजलोक सहित आई । इनकों दीक्षाके लिए उद्यमी सुन सब ही अंतःपुर के अर प्रजाके शोक उपज्या । तब राजा सुकौशल कहते भए कि या रानी विचित्रमाला के गर्भविषें पुत्र है, ताहि मैं राज्य दिया । ऐसा कहकरि निस्पृह भए, आशारूप फांसी को छेदि स्नेहरूप जो पींजरा ताहि तोड़ स्त्रीरूप बंधनसों छूट जीर्ण तृणवत् राज्यकों जानि तज्या और वस्त्राभूषण सब ही तजि बाह्याभ्यंतर परिग्रह का त्याग करके केशनिका लोंच किया अर पद्मासन धार तिष्ठे । कीर्तिधर मुनींद्र इनके पिता तिनके निकट जिनदीक्षा धरी । पंच महाव्रत पांच समिति अर तीन गुप्ति अंगीकार करि सुकौशल मुनिने गुरुके संग विहार किया । कमल समान आरक्त जो चरण तिनकरि पृथवीकों शोभायमान करते संते विहार करते भए । अर इनकी माता सहदेवी आर्तध्यानकरि मरकैं तिर्यंच योनिमें नाहरी भई । अर ए पिता पुत्र दोनों मुनि महाविरक्त जिनकों एक स्थानक रहना नाहीं, पिछले पहर दिनसूं निर्जन प्रासुक स्नान देखि बैठि रहैं । अर चातुर्मासिकमें साधुओंको विहार न करना सो चातुर्मासिक जान एक स्थान बैठि रहैं । दसों दिशाकों श्याम करता संता चातुर्मासिक पृथवी विषें प्रवर्त्या, आकाश मेघमालाके समूहकरि ऐसा शोभै मानों काजलतें लिप्या है। अर कहीं एक बगुलानिकी पंक्ति उड़ती ऐसी सोहै मानों कुमुद फूल रहे हैं । अर ठौर ठौर कमल फूल रहे हैं, जिन पर भ्रमर गुंजार करैं हैं सो मानों वर्षाकालरूप राजाके यश ही गावैं हैं । अंजनगिरि समान महानील जो अंधकार ताकरि जगत् व्याप्त होय गया अर मेघके गाजनेतें मानों चांद सूर्य डरकर छिप गए, अखंड जलकी धारातें पृथवी सजल होय गई अर तृण ऊग उठे सो मानों पृथवी हर्ष के अंकुर धरे है । अर जलके प्रवाह करि पृथ्वीविषें नीचा ऊँचा स्थल नजर नाहीं आवै । अर पृथवी विषें जलके समूह गाजे हैं अर आकाश विषें मेघ गाजे हैं सो मानों ज्येष्ठका समय जो बैरी ताहि जीतकर गाज रहे हैं । अर धरती नीझरननिकरि शोभित भई । भांति भांति के

वनस्पति पृथ्वीविषें ऊगी सो ताकरि पृथवी ऐसे शोभै है मानों हरितमणिके समान बिछोना कर राखै हैं। पृथवीविषें सर्वत्र जल ही जल होय रहा है मानों मेघ ही जलके भारतें टूट पड़े हैं। अर ठौर ठौर इन्द्रगोप अर्थात् वीरबहूटी दीखै हैं सो मानों वैराग्यरूप वज्रतें चूर्ण भए। रागके खंड ही पृथवीविषें फल रहे हैं अर बिजलीका तेज सर्व दशाविषें विचरै है सो मानों मेघ नेत्रकरि जलपूरित तथा अपूरित स्थानकों देखै है। अर नाना प्रकारके रंगको धरै जो इन्द्रधनुष ताकरि मण्डित आकाश सो ऐसा शोभता भया मानों अति ऊंचे तोरणों कर युक्त है। अर दोऊ पालि ढाहती महा भयानक भ्रमरकों धरै अविवेकर युक्त कलुषतासंयुक्त नदी बहै है। सो मानों मर्यादा रहित स्वच्छंद स्त्रीके स्वरूपको आचरै है। अर मेघके शब्दकर त्रासकों प्राप्त भई जे मृगनयनी विरहिणी ते स्तंभनिसूं स्पर्श करै हैं अर महा विह्वल हैं, पतिके आवनेकी आशाविषें लगाए हैं नेत्र जिनने। ऐसे वर्षाकाल विषें जीवदयाके पालनहारे महाशांत अनेक निर्ग्रंथ मुनि प्रासुक स्थानविषें चौमासी उपवास लेय तिष्ठे। अर जे गृहस्थ श्रावक साधु सेवाविषें तत्पर ते भी चार महीना गमनका त्याग कर नाना प्रकारके नियम धर तिष्ठे। ऐसे मेघकर वर्षाकाल विषें वे पिता पुत्र यथार्थ आचारके आचरणहारे प्रेतवन कहिए श्मशान ताविषें चार महीना उपवास धर वृक्षके तलें विराजे। कभी पद्मासन, कभी कायोत्सर्ग, कभी वीरासन आदि अनेक आसन धरे चतुर्मास पूर्ण किया। कैसा है वह प्रेतवन? वृक्षनि के अन्धकार करि महा गहन है अर सिंह व्याघ्र रीछ स्याल सर्प इत्यादि अनेक दुष्ट जीवनिकर भरया है, भयंकर जीवनिकों भी भयकारी महा विषम है, गीध सियाल चील इत्यादि जीवनिकरि पूर्ण होय रहा है, अर्धदग्ध मृतकनिका स्थानक महा भयानक विषम भूमि मनुष्यनिके सिरके कपालके समूहकर जहां पृथवी श्वेत होय रही है अर दुष्ट शब्द करते पिशाचनिके समूह विचरै हैं अर जहां तृणजाल कंटक बहुत हैं सो ये पिता पुत्र दोनों मुनि धीर वीर पवित्र मन चार महीना तहां पूर्ण करते भए।

अथानंतर वर्षा ऋतु गई, शरद ऋतु आई सो मानों रात्रि पूर्ण भई, प्रभात भया। कैसा है प्रभात? जगतके प्रकाश करने में प्रवीण है। शरदके समय आकाश विषें बादल श्वेत प्रगट भए अर सूर्य मेघपटल रहित कांतिसों प्रकाशमान भया जैसें उत्सर्पिणी कालका जो दुःखमाकाल ताके अन्तमें दुखमासुखमाके आदि ही श्रीजिनेन्द्रदेव प्रगट होंय। अर चंद्रमा रात्रिविषें तारानिके समूहके मध्य शोभता भया, जैसें सरोवरके मध्य तरुण राजहंस शोभै। अर रात्रिमें चंद्रमाकी चांदनीकर पृथवी उज्ज्वल भई सो मानों क्षीर सागर ही पृथ्वीविषें विस्तर रहा है। अर नदी निर्मल भई, कुरचि सारस चकवा आदि पक्षी सुन्दर शब्द करने लगे अर सरोवरमें कमल फूले जिनपर भ्रमर गुंजार करै हैं अर उड़ै हैं सो मानों भव्य जीवनिने मिथ्यात्वपरिणाम तजे हैं सो उड़ते फिरै हैं। भावार्थ—मिथ्यात्वका स्वरूप श्याम अर

भ्रमरका भी स्वरूप श्याम। अनेक सुगंध का है प्रचार जहां ऐसे जे ऊँचे महल तिनके निवासविषैं रात्रिके समय लोक निज प्रियानिसहित क्रीड़ा करै हैं। शरद ऋतुविषैं मनुष्यनि के समूह महाउत्सव कर प्रवर्त्ते हैं, सन्मान किया है मित्र बांधवनिका जहां अर जो स्त्री पीहर गई तिनका सासरे आगमन होय है। कार्तिक सुदी पूर्णमासीके व्यतीत भए पीछे तपोधर जे मुनि ते जैनतीर्थोंमें विहार करते भए। तब ये पिता अर पुत्र कीर्तिधर सुकौशल मुनि, समाप्त भया है नियम जिनका शास्त्रोक्त ईर्यासमितिसहित पारणाके निमित्त नगरकी ओर विहार करते भए। अर वह सहदेवी सुकौशल की माता मरकरि नाहरी भई हुती सो पापनी महाक्रोधकी भरी, लोहूकर लाल है केशोंके समूह जाके, विकराल है वदन जाका, तीक्ष्ण हैं दाड़ जाके, कषायरूप पीत हैं नेत्र जाके, सिरपर धरी है पूछ जाने, नखोंकरि विदारे हैं अनेक जीव जाने अर किए हैं भयंकर शब्द जाने मानों मरी ही शरीर धरि आई है। लहलहाट करै है लाल जीभका अग्रभाग जाका, मध्यान्ह के सूर्य समान आतापकारी सो पापिनी सुकौशल स्वामीको देखकरि महावेगतें उछल कर आई, ताहि आवती देख वे दोनों मुनि, सुन्दर हैं चरित्र जिनके, सर्व आलंब रहित कायोत्सर्ग धर तिष्ठे सो पापिनी सिंहनी सुकौशल स्वामी का शरीर नखोंकरि विदारती भई। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतें कहैं हैं—हे राजन्! देख संसार का चरित्र? जहां माता पुत्रके शरीरके भक्षणका उद्यम करै है, या उपरांत और कष्ट कहा? जन्मांतरके स्नेही बांधव कर्मके उदयतें वैरी होय परिणमैं। तब सुमेरुतें भी अधिक स्थिर सुकौशल मुनि शुक्लध्यान के धरणहारे तिनको केवलज्ञान उपज्या, अंतकृतकेवली भए। तब इन्द्रादिक देवोंने आय इनके देह को कल्पवृक्षादिक पुष्पनिसों अर्चा करी, चतुरनिकाय के सर्व ही देव आए अर नाहरीकों कीर्तिधर मुनि धर्मोपदेश वचनोंसे संबोधते भए—हे पापिनी! तू सुकौशल की माता सहदेवी हुती अर पुत्र से तेरा अधिक स्नेह हुता ताका शरीर तैंने नखनितें विदारया। तब वह जाति स्मरण होय श्रावक के व्रतधर संन्यास धारण कर शरीर तजि स्वर्गलोक में गई। बहुरि कीर्तिधर मुनिको भी केवलज्ञान उपज्या तब इनके केवलज्ञान की सुर असुर पूजाकर अपने अपने स्थानकों गए। यह सुकौशल मुनि का माहात्म्य जो कोई पुरुष पढ़ै सुनै सो सर्व उपसर्ग तैं रहित होय सुखसों चिरकाल जीवै।

अथानंतर सुकौशलकी राणी विचित्रमाला ताके संपूर्ण समय पर सुन्दर लक्षण करि मंडित पुत्र होता भया। जब पुत्र गर्भ में आया तबही तैं माता सुवर्णकी कांतिको धरती भई। तातैं पुत्रका नाम हिरण्यगर्भ पृथ्वीपर प्रसिद्ध भया। सो हिरण्यगर्भ ऐसा राजा भया मानों अपने गुणनिकर बहुरि ऋषभदेवका समय प्रगट किया। सो राजा हरि की पुत्री अमृतवती महामनोहर ताहि तानै परणी। राजा अपने मित्र बांधवनिकरि संयुक्त पूर्णद्रव्य

के स्वामी मानों स्वर्ण के पर्वत ही हैं। सर्व शास्त्रार्थ के पारगामी देवनि समान उत्कृष्ट भोग भोगते भए। एक समय राजा, उदार है चित्त जिनका, दर्पण में मुख देखते हुते सो भ्रमर समान श्याम केशनिके मध्य एक सफेद केश देख्या। तब चित्त में विचारते भए कि यह कालका दूत आया, बलात्कार यह जराशक्ति कांतिकी नाश करणहारी ताकरि मेरे अंगोपांग शिथिल होवेंगे। यह चंदन के वृक्ष समान मेरी काया अब जरारूप अग्निकरि जल्या अंगारतुल्य होयगी। यह जरा छिद्र हेरै ही है सो समय पाय पिशाचनीकी नाईं मेरे शरीर में प्रवेशकर बाधा करेगी अर कालरूप सिंह चिरकालतें मेरे भक्षणका अभिलाषी हुता सो अब मेरे देहकों बलात्कारतें भखेगा। धन्य है वह पुरुष जो कर्मभूमिको पायकर तरुण अवस्था में व्रतरूप जहाजविषें चढ़िकर भवसागर कों तिरै। ऐसा चिंतवन कर राणी अमृतवती का पुत्र जो नघोष ताहि राजविषै थापकरि विमलमुनि के निकट दिगम्बरी दीक्षा धरी। यह नघोष जबतें माताके गर्भ में आया तबहीतें कोई पापका वचन न कहे तातें नघोष कहाए। पृथ्वीपर प्रसिद्ध हैं गुण जिनके, तिन गुणों के पुंज, तिनके सिंहिका नाम राणी, ताहि अयोध्याविषें राख उत्तर दिशा के सामंतों को जीतवेको चढ़े, तब राजा कों दूर गया जान दक्षिण दिशाके राजा बड़ी सेनाके स्वामी अयोध्या लेनेको आए तब राणी सिंहिका महाप्रतापिनि बड़ी फौजकरि चढ़ी। सो सर्व वैरीनिकों रणमें जीतकर अयोध्या दृढ़ थाना राखि आप अनेक सामंतनिकों लेय दक्षिण दिशा जीतनेकों गई। कैसी है राणी ? शस्त्रविद्या अर शास्त्रविद्या का किया है अभ्यास जानै, प्रतापकरि दक्षिणदिशाके सामंतोंको जीतकर जयशब्दकर पूरित पाछी अयोध्या आई अर राजा नघोष उत्तर दिशाकों जीतकर आए सो स्त्रीका पराक्रम सुन कोपकों प्राप्त भए, मन में विचारी कि जे कुलवंती स्त्री अखंडित शीलकी पालनहारी हैं तिनमें एती धीठता न चाहिए। ऐसा निश्चयकर राणी सिंहिकासों उदास चित्त भए। यह पतिव्रता महाशीलवती, पवित्र है चेष्टा जाकी, पटराणी के पदतें दूर करी सो महादरिद्रता कों प्राप्त भई।

अथानंतर राजाके महादाहज्वरका विकार उपज्या सो सर्व वैद्य यत्न करें पर तिनकों औषधि न लागै। तब राणी सिंहिका राजाकों रोगग्रस्त जानकर व्याकुल चित्त भई अर अपनी शुद्धता के अर्थि यह पतिव्रता पुरोहित मंत्री सामंत सबनिको बुलायकर पुरोहित के हाथ अपने हाथका जल दिया अर कही कि यदि मैं मन वचन कायकरि पतिव्रता हूं तो या जलकरि सींच्या राजा दाह ज्वरकर रहित होवे। तब जलकरि सींचते ही राजा का दाहज्वर मिट गया अर हिम विषें मग्न जैसा शीतल होय गया, मुखतें ऐसे मनोहर शब्द कहता भया जैसें वीणाके शब्द होवें। अर आकाशविषें यह शब्द होते भए कि यह राणी सिंहिका पतिव्रता महाशीलवंती धन्य है, धन्य है, आकाशतें पुष्प वर्षा भई।

तब राजा ने राणीको महाशीलवंती जान बहुरि पटराणी का पद दिया अर बहुत दिन निष्कंटक राज्य किया। बहुरि अपने बड़ों के चरित्र चित्तविषैं धरि संसारकी मायातैं निस्पृह होय सिंहिका राणी का पुत्र जो सौदास ताहि राज देय आप धीरवीर मुनिव्रत धरे, जो कार्य परंपराय इनके बड़े करते आए हैं सो किया। सौदास राज करै सो पापी मांस-आहारी भया, इनके वंश में किसी ने आहार न किया, यह दुराचारी अष्टान्हिका के दिवस विषैं भी अभक्ष्य आहार न तजता भया। एक दिन रसोईदारसों कहता भया कि मेरे मांसभक्षण का अभिलाष उपज्या है। तब तानै कही–हे महाराज! अष्टान्हिका के दिन हैं, सर्व लोक भगवान् की पूजा कर व्रत नियम विषैं तत्पर हैं, पृथवी पर धर्म का उद्योत होय रह्या है, इन दिनों में यह वस्तु अलभ्य है। तब राजा ने कही कि या वस्तु बिना मेरा मन रहै नाहीं, तातैं जा उपायकरि यह वस्तु मिलै सो कर। तब रसोईदार राजा की यह दशा देख नगर के बाहिर गया। अर एक मूवा हुवा बालक देख्या, वह ताही दिन मूवा था सो ताहि वस्त्र में लपेट वह पापी लेय आया, स्वादु वस्तुनिकरि ताहि मिलाय पकाय राजाकों भोजन दिया, सो राजा महादुराचारी अभक्ष्य का भक्षण कर प्रसन्न भया। अर रसोइदारतैं एकांतमें पूछता भया कि हे भद्र! यह मांस तू कहाँ तैं लाया, अब तक ऐसा मांस मैंने भक्षण नहीं किया हुता। तब रसोईदार अभयदान मांग यथावत् कहता भया। तब राजा कहता भया, ऐसा ही मांस सदा लायाकर। तब रसोईदार बालकनिकों लाडू बांटता भया। तिन लाडुओं के लालचवशि बालक निरंतर आवैं सो बालक लाडू लेयकर जावैं तब जो पीछे रह जाय ताहि यह रसोईदार मार राजा को भक्षण करावै। नगर विषैं निरंतर बालक छीजने लगे, तब यह वृत्तांत लोकनिने जान रसोईदार सहित राजा को देशतैं निकाल दिया अर याकी राणी कनकप्रभा ताका पुत्र सिंहरथ ताहि राज्य दिया। तब वह पापी सर्वत्र निरादर हुआ महादुःखी पृथवी पर भ्रमण किया करै। जे मृतक बालक लोग मसान विषैं डार आवैं तिनको भखै जैसें सिंह मनुष्यों का भक्षण करै। तातैं याका नाम सिंहसौदास पृथवी विषैं प्रसिद्ध भया। बहुरि यह दक्षिण दिशाकों गया तहाँ मुनिके दर्शन कर धर्म श्रवणकर श्रावक के व्रत धारता भया। बहुरि एक महापुर नामा नगर तहाँ का राजा मूवा ताके पुत्र नहीं था तब सबने यह विचार किया कि पाटबंध हस्ती जाय अर जाहि कांधे चढ़ाय लावै सोई राजा होवै तब याही कांधे चढ़ाय हस्ती लेय गया तब याकों राज्य दिया। यह न्यायसुयंक्त राज्य करै अर पुत्र के निकट दूत भेज्या कि तू मेरी आज्ञा मान, तब वानैं लिख्या जो तू महा निंद्य है, मैं तोहि नमस्कार न करूं। तब यह पुत्रपर चढ़ करि गया। याहि आवता सुन लोक भागने लगे कि यह मनुष्यनि कों खायगा, पुत्रके अर याके महायुद्ध भया, सो पुत्रकों

युद्ध में जीत दोनों ठौरका राज्य पुत्रकों दैयकर आप महा वैराग्यकों प्राप्त होय तपके अर्थि वनमें गया।

अथानंतर याके पुत्र सिंहारथके ब्रह्मरथ पुत्र भया, ताके चतुर्मुख, ताके हेमरथ, ताके सत्यरथ, ताके पृथुरथ, ताके पयोरथ, ताके दृढ़रथ, ताके सूर्यरथ, ताके मानधाता, ताके वीरसेन, ताके पृथ्वीमन्यु, ताके कमलबंधु दीप्तितैं मानों सूर्य ही है अर समस्त मर्यादामें प्रवीण है, ताके रविमन्यु, ताके बसंततिलक, ताके कुवेरदत्त, ताके कुंथुभक्त सो महाकीर्तिका धारी, ताके शतरथ, ताकें द्विरदरथ, ताके सिंहदमन, ताके हिरण्यकश्यप, ताके पुंजस्थल, ताके ककुस्थल ताके रघु सो बड़ा पराक्रमी। यह इक्ष्वाकुवंश श्रीऋषभदेवतैं प्रवर्त्या। सो वंशकी महिमा हे श्रेणिक! तोहि कही। ऋषभदेवके वंशमें श्रीरामचंद्र पर्यंत अनेक बड़े बड़े राजा भए ते मुनिव्रतधार मोक्ष गए। केयक अहमिंद्र भए, कई स्वर्ग को प्राप्त भए। या वंशविषें पापी विरले भए।

बहुरि अयोध्या नगरविषें राजा रघुके अनरण्य पुत्र भया, जाके प्रतापकरि उद्यान में वस्ती होती भई, ताके पृथ्वीमती राणी, महागुणवन्ती, महाकांतिकी धरणहारी, महा-रूपवंती, महापतिव्रता, ताके दोयपुत्र होते भए। महा शुभलक्षण एक अनंतरथ दूसरा दशरथ। सो राजा सहस्ररश्मि माहिष्मति नगरीका पति ताकी अर राजा अनरण्यकी परम मित्रता होती भई मानों वे दोनों सौधर्म अर ईशान इंद्र ही हैं। जब रावणने युद्धमें सहस्ररश्मिको जीत्या अर ताने मुनिव्रत धरे सो सहस्ररश्मि के अर अनरण्य के यह वचन हुता कि जो तुम वैराग्य धारो तब मोहि जतावना अर मैं वैराग्य धारूंगा तो तुम्हें जताऊँगा, सो वाने जब वैराग्य धार्‌या तब अनरण्य को जतावा दिया। तब राजा अनरण्यने सहस्ररश्मि को मुनि हुवा जानकरि दशरथ पुत्रकों राज्य देय आप अनंतरथ पुत्र सहित अभयसेन मुनिके समीप जिनदीक्षा धारी, महातपकरि कर्मोंका नाशकर मोक्षकों प्राप्त भए अर अनंतरथ मुनि सर्व परिग्रह रहित पृथ्वी पर विहार करते भए। बाईस परिषहके सहनहारे किसी प्रकार उद्वेगकों प्राप्त न भए तब इनका अनतवीर्य नाम पृथ्वी पर प्रसिद्ध भया। अर राजा दश-रथ राज्य करै सो महासुन्दर शरीर नवयौवनविषें अति शोभायमान होता भया, अनेक प्रकार पुष्पनिकरि शोभित मानों पर्वतका उतंग शिखर ही है।

अथानंतर दर्भस्थल नगर का राजा कौशल प्रशंसा योग्य गुणोंका धरणहारा ताके राणी अमृतप्रभा ताकी पुत्री कौशल्या, ताहि अपराजिता भी कहै हैं। काहेतैं कि यह स्त्रीके गुणनि करि शोभायमान अर कामकी स्त्री रतिसमान महासुन्दर किसीतैं न जीती जाय ऐसी महारूपवंती सो राजा दशरथने परणी। बहुरि एक कमलसंकुल नामा बड़ा नगर तहां का राजा सुबंधुतिलक ताके राणी मित्रा ताके पुत्री सुमित्रा सर्वगुणनिकरि मंडित महारूप-

वंती जाहि नेत्ररूप कमलनिकरि देख मन हर्षित होय अर पृथ्वीपर प्रसिद्ध सो भी दशरथ ने परणी। बहुरि एक और महाराजा नामा राजा ताकी पुत्री सुप्रभा रूप लावण्यकी खानि जाहि लखै लक्ष्मी लज्जावान होय सो हू राजा दशरथने परणी। अर राजा दशरथ सम्यग्दर्शनकों प्राप्त होते भए अर राज्यका परम उदय पाय सो सम्यग्दर्शन को रत्नों समान जानते भए अर राज्यकों तृण समान मानते भए कि जो राज्य न तजें तो यह जीव नरकमें प्राप्त होय, राज्य तजे तो स्वर्ग मुक्ति पावै। अर सम्यग्दर्शनके योगतें निःसंदेह ऊर्ध्वगति ही है सो ऐसा जानि राजाके सम्यग्दर्शनकी दृढ़ता होती गई। अर जे भगवानके चैत्यालय प्रशंसायोग्य आगें भरत चक्रवर्त्यादिकने कराए हुते तिनमें कैयकठौर कैयक भंगभावकों प्राप्त भए हुते सो राजा दशरथ ने तिनकों मरम्मत कराय ऐसे किए मानों नवीन ही हैं अर इंद्रनिकरि नमस्कार करने योग्य महारमणीक जे तीर्थंकरनिके कल्याणक स्थानक तिनकी रत्ननिके समूह करि यह राजा पूजा करता भया। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसों कहैं हैं—हे भव्यजीव ! राजा दशरथ सारिखे जीव परभवमें महाधर्मको उपार्जनकर अति मनोज्ञ देवलोककी लक्ष्मी पायकर या लोकमें नरेंद्र भये हैं, महाराज ऋद्धिके भोक्ता सूर्य समान, दसों दिशा विषें है प्रकाश जिनका।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें राजा सुकौशल का माहात्म्य अर तिनके वंश विषें राजा दशरथ की उत्पत्ति का कथन वर्णन करने वाला बाईसवां पर्व पूर्ण भया ॥२२॥

तेईसवां पर्व

(दशरथ के पुत्र और जनक की पुत्री से रावण के मरण की शंका और उसका निराकरण)

अथानंतर एक दिन राजा दशरथ महा तेज प्रतापकरि संयुक्त सभामें विराजते हुते। कैसे हैं राजा ? जिनेंद्रकी कथाविषें आसक्त है मन जिनका अर सुरेन्द्र समान है विभव जिनका। ता समय अपने शरीरके तेजकरि आकाशविषें उद्योत करते नारद आए। तब दूर ही सों नारदकों देखकर राजा उठकर सन्मुख गए। बड़े आदरसों नारदकूं ल्याय सिंहासन पर विराजमान किए। राजाने नारदकी कुशल पूछी, नारदने कही—जिनेन्द्रदेवके प्रसादकरि कुशल है। बहुरि नारदने राजाकी कुशल पूछी, राजाने कही—देव धर्म गुरुके प्रसादकरि कुशल है। बहुरि राजाने पूछी—हे प्रभो ! आप कौन स्थानकतें आए ? इन दिनोंमें कहां कहां विहार किया ? कहा देख्या ? कहा सुन्या ? तुमतें अढ़ाई द्वीपमें कोई स्थान अगोचर नाहीं। तब नारद कहते भए। कैसे हैं नारद? जिनेंद्र चंद्रके चरित्र देखकर उपज्या है परम हर्ष जिनको। हे राजन् ! मैं महा विदेहक्षेत्रनि विषें गया हुता, कैसा है वह क्षेत्र ? उत्तम

जीवनिकरि भर्या है, जहां ठौर ठौर श्रीजिनराजके मन्दिर अर ठौर२ महामुनिराज विराजै हैं, जहां धर्मका बड़ा उपकार अतिशय करि उद्योत है। श्रीतीर्थंकरदेव चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेवादि उपजै हैं तहां श्रीमंधर स्वामीका मैंने पुंडरीकिनी नगरी में तप-कल्याणक देख्या। कैसी है पुंडरीकिनी नगरी ? नाना प्रकार के रत्ननिकरि जे महल तिनके तेजतें प्रकाशरूप है। अर सीमंधर स्वामी के तपकल्याणक विषें नाना प्रकार के देवनिका आगमन भया, तिनके भांति-भांतिके विमान ध्वजा अर छत्रादि करि महाशोभित अर नाना प्रकार के जे वाहन तिनकरि नगरी पूर्ण देखी अर जैसा श्रीमुनिसुव्रतनाथ का सुमेरु विषें जन्माभिषेक का उत्सव हम सुनें हैं तैसा श्रीमंधरस्वामी के जन्माभिषेक का उत्सव मैंने सुन्या। अर तपकल्याणक तो मैंने प्रत्यक्ष ही देखा अर नाना प्रकार के रत्ननि करि जड़ित जिनमंदिर देखे जहां महामनोहर भगवान के बड़े-बड़े बिंब विराजै हैं अर विधिपूर्वक निरंतर पूजा होय है। अर महा विदेहतें मैं सुमेरु पर्वत आया, सुमेरु की प्रदक्षिणा कर सुमेरु के बन तहां भगवान के जे अकृत्रिम चैत्यालय तिनका दर्शन किया। हे राजन् ! नंदन बनके चैत्यालय नाना प्रकार के रत्ननिसूं जड़े अति रमणीक मैंने देखे। जहां स्वर्णके पीत अति देदीप्यमान हैं, सुन्दर हैं मोतियों के हार अर तोरण जहां, जिन-मंदिर देखते सूर्य का मंदिर कहा ? अर चैत्यालयनिकी वैडूर्य मणिमई भींति देखी तिनमें गज सिंहादिरूप अनेक चित्राम मढ़े हैं अर जहां देव देवी संगीत शास्त्ररूप नृत्य कर रहे हैं। अर देवारण्य बनविषें चैत्यालय तहां मैंने जिन प्रतिमा का दर्शन किया अर कुला-चलनिके शिखर विषें जिनेन्द्र के चैत्यालय मैंने देखे, बंदे। या भांति नारद कही तब दशरथ 'देवेभ्यः नमः' ऐसा शब्द कहकर हाथ जोड़ सिर नवाय नमस्कार करता भया।

बहुरि नारदने राजाकूं सैन करी तब राजा ने दरबारको कहकर सबको सीख दीनी। आप एकांत विराजे तब नारद कही—हे सुकौशल देश के अधिपति। चित्त लगाय सुन, तेरे कल्याण की बात कहूँ हूँ। मैं भगवान का भक्त, जहां जिनमंदिर होय तहां बंदना करूं हूँ सो लंका में गया हुता। तहां महामनोहर श्रीशांतिनाथ का चैत्यालय बंदा सो एक वार्ता विभीषणादिके मुखसे सुनी कि रावण ने बुद्धिसार निमित्तज्ञानी कों पूछा कि मेरो मृत्यु कौन निमित्ततें है ? तब निमित्तज्ञानी कही—दशरथका पुत्र अर जनक राजा की पुत्री इनके निमित्ततें तेरी मृत्यु है, यह सुनकर रावण सचिंत भया। तब विभीषण कही—आप चिंता न करहु, दोऊनिके पुत्र पुत्री न होय ता पहिले दोऊनकों मैं मारूंगा। सो तिहारे ठीक करनेकों विभीषणने हलकारे पठाए हुते सो वे तिहारा स्थान निरूपादि सब ठीक कर गए हैं। अर मेरा विश्वास जान मुझे विभीषण ने पूछी कि क्या तुम दशरथ और जनक का स्वरूप नीके जानो हो ? तब मैं कही, मोहि उनको देखे बहुत दिन भए

हैं, अब उनकों देख तुमको कहूंगा । सो उनका अभिप्राय खोटा देखकर तुम पै आया सो जब तक वह विभीषण तिहारे मारनेका उपाय करै ता पहिले तुम आपा छिपाय कहीं बैठ रहो । जे सम्यग्दृष्टि जिनधर्मी देव गुरु धर्मके भक्त हैं तिन सबनिसों मेरी प्रीति है, तुम सारिखोंसे विशेष है, तुम योग्य होय सो करहु, तिहारा कल्याण होहु । अब मैं राजा जनक से यह वृत्तांत कहने जाऊं हूं । तब राजाने उठ नारदका सत्कार किया । नारद आकाश के मार्ग होय मिथिलापुरीकी ओर गए, जनककों समस्त वृत्तांत कह्या । नारदको भव्य जीव जिनधर्मी प्राणनिहूतैं प्यारे हैं । नारद तो वृत्तांत कह देशांतर को गए अर दोनों ही राजाओं को मरण की शंका उपजी । राजा दशरथ ने अपने मंत्री समुद्रहृदय को बुलाय एकांतमें नारद का सकल वृतांत कह्या । तब मंत्री राजा के मुखतैं ये महाभयके समाचार सुन कर, स्वामी की भक्तिविषैं परायण अर मंत्रशक्तिविषैं महा श्रेष्ठ राजाकूं कहता भया–हे नाथ ! जीतव्य के अर्थ सकल करिए है, जो त्रिलोक का राज्य आवै अर जीव जाय तो कौन अर्थ ? तातैं जौं लग मैं तिहारे वैरीनिका उपाय करूं तब लग तुम अपना रूप छिपायकर पृथ्वीपर विहार करहु, ऐसा मंत्री ने कह्या । तब राजा देश भंडार नगर याकों सौंपकर नगरतैं बाहिर निकसे । राजा के गए पीछे मंत्रीने राजा दशरथ के रूपका पुतला बनाया; एक चेतना नाहीं, और सब राजा ही के चिह्न बनाए, लाखादि रस के योगकर उस विषैं रुधिर निरमाप्या अर शरीरकी कोमलता जैसी प्राणधारीके होय तैसी ही बनाई सो महलके सातवें खणमें सिंहासनविषैं राजा विराजमान किया सो समस्त लोकनिकों नीचेसे मुजरा होय, ऊपर कोई जाने न पावै, राजा के शरीर में रोग है, पृथिवीपर ऐसा प्रसिद्ध किया । एक मंत्री अर दूजा पुतला बनानेवाला यह भेद जानै, इनकूं भी देखकर ऐसा भ्रम उपजै जो राजा ही है । अर यही वृत्तांत राजा जनक के भया । जो कोई पंडित हैं तिनके बुद्धि एकसी ही हो है । मंत्रीनिकी बुद्धि सबके ऊपर होय विचरै है । यह दोनों राजा लोकस्थितिके वेत्ता पृथवी विषैं भाये फिरैं, आपदाकाल विषैं जे रीति बताई हैं ता भांति करैं । जैसें वर्षाकाल में चांद सूर्य मेघके जोर से छिपे रहैं तैसें जनक और दशरथ दोऊ छिप रहे ।

यह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं–हे मगधदेश के अधिपति ! वे दोऊ बड़े राजा, महा सुन्दर हैं राजमंदिर जिनके अर महामनोहर देवांगना सारिखी स्त्री जिनके, महामनोहर भोगनिके भोक्ता, सो पायन पियादे दलिद्री लोकनिकी नाईं, कोई नहीं संग जिनके, अकेले भ्रमते भए । धिक्कार है संसार के स्वरूप को ! ऐसा निश्चय कर जो प्राणी स्थावर जंगम सब जीवनिकूं अभयदान दे सो आप भी भय से कंपायमान

न हो। इस अभयदान समान कोऊ दान नाहीं, जाने अभयदान दिया तानें सब ही दिया, अभयदानका दाता सत्पुरुषनिमें मुख्य है।

अथानंतर विभीषण ने दशरथ जनकके मारवेकूं सुभट बिदा किए अर हलकारे जिनके संगमें ते सुभट, शस्त्र हैं हाथनिमें जिनके, महाक्रूर, छिपे छिपे रात दिन नगरी में फिरैं, राजा के महल अति ऊंचे सो प्रवेश न कर सकें। इनकूं दिन बहुत लगे तब विभीषण स्वयमेव आय महलमें गीत नाद सुन महल में प्रवेश किया। राजा दशरथ अंतःपुरके मध्य शयन करता देख्या। विभीषण तो दूर ठाढ़े रहे अर एक विद्युविलसित नामा विद्याधर ताकों पठाया कि याका मस्तक ले आओ। सो आय मस्तक काट विभीषणकों दिखाया अर समस्त राजलोक रोय उठे। विभीषण इनका और जनकका सिर समुद्र विषें डार आप रावणके निकट गया, रावणकों हर्षित किया। इन दोनों राजनिकी राणी विलाप करें फिर यह जानकर कि कृत्रिम पुतला था तब यह संतोष कर बैठ रहीं। अर विभीषण लंका जाय अशुभ कर्म के शांति के निमित्त दान पूजादि शुभ क्रिया करता भया। अर विभीषणके चित्त में ऐसा पश्चाताप उपज्या जो देखो मेरे कौन कर्म का उदय आया जो भाई के मोह से वृथा भय मान वापुरे रंक भूमि गोचरी मृत्युकों प्राप्त किए। जो कदाचित् आशीविष जाति का सर्प (ऐसा सर्प जिसे देख विष चढ़ै) होय तो भी क्या गरुड़ कों प्रहार कर सकै ? कहां वह अल्प ऐश्वर्य के स्वामी भूमिगोचरी अर कहां इन्द्र समान शूरवीरताका धरणहारा रावण; कहां मूसा कहां केशरी सिंह, जाके अवलोकनतें माते गजराजनि का मद उतर जाय। कैसा है केशरी सिंह ? पवन समान है वेग जाका। अथवा जा प्राणीकों जा स्थानकमें जा कारणकरि जेता दुःख अर सुख होना है सो ताकौ ताकर ता स्थानकविषें कर्मनिके वशकरि अवश्य होय है अर यह निमित्तज्ञानी जो कोऊ यथार्थ जानै तो अपना कल्याण ही क्यों न करै जाकरि मोक्षके अविनाशी सुख पाइए, निमित्तज्ञानी पराई मृत्यु को निश्चय जाने तो अपनी मृत्यु के निश्चय से मृत्यु के पहिले आत्मकल्याण क्यों न करै ? निमित्तज्ञानी के कहने से मैं मूर्ख भया, खोटे मनुष्यनि की शिक्षा से जे मन्दबुद्धि हैं ते अकार्य विषें प्रवर्तें हैं। यह लंकापुरी, पाताल है तल जाका ऐसा जो समुद्र ताके मध्य तिष्ठै अर जो देवनिहूं को अगम्य तहां बिचारे भूमिगोचरियोंके कहांसे गम्य होय ? मैं यह अत्यन्त अयोग्य किया बहुरि ऐसा काम कबहुं न करूं, ऐसी धारणा धार उत्तमदीप्तिसे युक्त जैसें सूर्य प्रकाश रूप विचरै तैसें मनुष्यलोकमें रमते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राजा दशरथ अर राजा जनक को विभीषण कृत मरण भय वर्णन करने वाला तेईसवां पर्व पूर्ण भया ॥२३॥

—:०:—

चौबीसवां पर्व

(दशरथ और केकई का विवाह)

अथानंतर गौतमस्वामी कहै हैं–हे श्रेणिक ! अनरण्य के पुत्र दशरथ ने पृथ्वी पर भ्रमण करते केकई को परणा सो कथा महा आश्चर्य की कारण तू सुन । उत्तर दिशाविषैं एक कौतुकमंगल नामा नगर, ताके पर्वत समान ऊँचे कोट, तहाँ राजा शुभमति राज करै सो वह शुभमति नाममात्र नाहीं, यथार्थ शुभमति ही है, ताकी रानी पृथुश्री गुण रूप आभरणनिकरि मंडित, ताके केकई पुत्री अर द्रोणमेघ पुत्र भए, जिनके गुण दसों दिशामें व्याप्त रहे । केकई अति सुन्दर, सर्व अंग मनोहर अद्भुत लक्षणनिकी धरणहारी, सर्व कलाओंकी पारगामिनी, अति शोभित भई । सम्यग्दर्शनकरि संयुक्त, श्राविकाके व्रत पालनहारी जिनशासन की वेत्ता, महा श्रद्धावंती तथा सांख्य पातंजल वैशेषिक वेदांत न्याय मीमांसा चार्वाकादिक परशास्त्रनिके रहस्यकी ज्ञाता तथा लौकिकशास्त्र श्रृंगारादिक तिनका रहस्य जानै, नृत्यकला में अति निपुण, सर्व भेदों से मंडित जो संगीत सो भली भांति जानै, उर कंठ सिर इन तीन स्थानक से स्वर निकसै हैं अर स्वरों के सात भेद हैं–षडज १ ऋषभ२ गांधार ३ मध्यम ४ पंचम ५ धैवत ६ निषाद ७ सो केकईको सर्वगम्य अर तीन प्रकारका लय–शीघ्र १ मध्य २ विलंबित ३ अर चार प्रकारका ताल–स्थायी१ संचारी२ आरोहक३ अवरोहक ४ और तीन प्रकारकी भाषा–संस्कृत १ प्राकृत २ शौरसेनी ३ अर स्थाईचालके भूषण चार–प्रसंगादि १ प्रसन्नान्त२ मध्यप्रसाद ३ प्रसन्नांद्यवसान ४ अर संचारीके छह भूषण–निवृत्त१ प्रस्थिल २ बिंदु ३ प्रखोलित ४ तमोमंद ५ प्रसन्न ६ अर आरोहणका एक प्रसन्नादि भूषण अर अवरोहणके दो भूषण–प्रसन्नान्त १ कुहर२ ये तेरह अलंकार अर चार प्रकार वादित्र–जे ताररूप सो तांत १ और चाम के मढ़े ते आनद्ध २ अर बाँसुरी आदि फूकके बाजे वे सुषिर ३ अर कांसीके बाजे वे घन ४ ये चार प्रकारके वादित्र जैसें केकई बजावै, तैसें और न बजावै, गीत नृत्य वादित्र ये तीन भेद हैं सो नृत्यमें तीनों आए । अर रसके भेद नव श्रृंगार १ हास्य २ करुण ३ वीर ४ अद्भुत ५ भयानक ६ रौद्र ७ वीभत्स ८ शांत ९ तिनके भेद जैसें केकई जानै तैसें और कोऊ न जानै अक्षर मात्रा अर गणितशास्त्र में निपुण, गद्य-पद्य सर्वमें प्रवीण, व्याकरण छंद अलंकार नाममाला लक्षणशास्त्र तर्क इतिहास अर चित्रकलामें अति प्रवीण तथा रत्नपरीक्षा अश्वपरीक्षा नरपरीक्षा शास्त्रपरीक्षा गजपरीक्षा वृक्षपरीक्षा वस्त्रपरीक्षा सुगंधपरीक्षा सुगंधादिक द्रव्यनिका निपजावना इत्यादि सब बातनि में प्रवीण, ज्योतिष विद्यामें निपुण, बाल वृद्ध तरुण मनुष्य तथा घोड़े हाथी इत्यादि सबके इलाज जानै, मंत्र औषधादि सर्व में तत्पर, वैद्य विद्यानिधान सर्व

कलामें सावधान, महाशीलवंत, महामनोहर युद्धकलामें अतिप्रवीण, शृंगारादि कलामें अति निपुण, विनय ही है आभूषण जाके, कला अर गुण अर रूपमें ऐसी कन्या और नाहीं। गौतम स्वामी कहै हैं–हे श्रेणिक ! बहुत कहवे कर कहा ? केकईके गुणनिका वर्णन कहाँ तक करिए। तब ताके पिताने विचारा कि ऐसी कन्या के योग्य वर कौन ? स्वयंवरमंडप करिए तहां यह आप ही वरै। ताने हरिवाहन आदि अनेक राजा स्वयंवरमंडपमें बुलाए सो विभवकर संयुक्त आए। वहाँ भ्रमते संते जनकसहित दशरथ हू आए सो यद्यपि इनके निकट राज्यका विभव नाहीं तथापि रूप अर गुणनिकरि सर्व राजाओं तें अधिक हैं, सर्व राजा सिंहासन पर बैठे अर केकईकों द्वारपाली सबनिके नाम ग्राम गुण कहै है सो वह विवेकिनी साधुरूपिणी मनुष्योंके लक्षण जाननेवाली प्रथम तो दशरथ की ओर नेत्ररूप नीलकमलकी माला डारी बहुरि वह सुन्दर बुद्धि की धरनहारी जैसे राजहंसिनी बगुलोंके मध्य बैठे जो राजहंस उसकी ओर जाय तैसे अनेक राजाओंके मध्य बैठा जो दशरथ ताकी ओर गई सो भावमाला तो पहिले ही डाली हुती अर द्रव्यरूप जो रत्नमाला सो भी लोकाचारके अर्थ दशरथके गले में डारी। तब कैयक नृप जे न्यायवंत बैठे हुते ते प्रसन्न भए अर कहते भए कि जैसी कन्या थी वैसा ही योग्य वर पाया। अर कैयक विलख होय अपने देश उठ गए। अर कैयक जे अति धीठ थे ते क्रोधायमान होय युद्धकूं उद्यमी भए अर कहते भए, जे बड़े बड़े वंशके उपजे अर महाऋद्धिकरि मंडित ऐसे नृप उनको तजकर यह कन्या, नहीं जानिए कुल-शील जिसका ऐसा यह विदेशी, उसे कैसे वरै, खोटा है अभिप्राय जाका, ऐसी कन्या है। इसलिए इस विदेशी को यहांसे काढ़कर कन्याके केश पकड़ बलात्कार हरलो–ऐसा कहकर वे दुष्ट कैयक युद्धकों उद्यमी भए। तब राजा शुभमति अति व्याकुल होय दशरथकूं कहता भया–हे भव्य ! मैं इन दुष्टनिकूं निवारूं हूं, तुम इस कन्याको रथमें चढ़ाय अन्यत्र जाओ। जैसा समय देखिये तैसा करिए, सर्व राजनीति में यह बात मुख्य है। या भांति जब ससुरने कह्या तब राजा दशरथ अत्यन्त धीर है बुद्धि जिनकी, हंसकर कहते भए–हे महाराज ! आप निश्चिन्त रहो, देखो इन सबनिको दशों दिशाकों भगाऊं, ऐसा कहकर आप रणविषें चढ़े और केकईको चढ़ाय लीनी। कैसा है रथ जाकें महामनोहर अश्व जुड़े हैं। कैसे हैं दशरथ ? मानों रथपर चढ़े शरदऋतु के सूर्य ही हैं। अर केकई घोड़ोंकी वाग समारती भई। कैसी है केकई ? महापुरुषार्थ के स्वरूपकूं धरै युद्धकी मूर्ति ही है सो पतिसूं विनती करती भई, हे नाथ ! आपकी आज्ञा होय और जाकी मृत्यु उदय आई होय उसही की तरफ रथ चलाऊं। तब राजा कहते भए कि हे प्रिये ! गरीबनिके मारने करि क्या; जो इस सर्व सेनाका अधिपति हेमप्रभ है, जाके सिरपर चंद्रमा सारिखा सफेद छत्र फिरै है ताकी तरफ रथ चला। हे रणपंडिते !

आज मैं इस अधिपति ही कों मारूंगा। जब दशरथ ने ऐसा कह्या तब वह पतिकी आज्ञा प्रमाण वाही ओर रथ चलावती भई। कैसा है रथ ! ऊँचा है सफेद छत्र जाके अर तरंग रूप है महाध्वजा जाके। रथविषैं ये दोनों दम्पती देवरूप विराजे हैं, इनका रथ अग्नि समान है, जे या रथकी ओर आए वे हजारों पतंगकी न्याई भस्म भए। दशरथके चलाए जे बाण तिनसे अनेक राजा बींधे गए, सो क्षणमात्र में भागे। तब हेमप्रभ जो सबनिका अधिपति था, उसके प्रेरे अर लज्जावान होय दशरथसूं लड़वेकों हाथी घोड़ा रथ पयादोंसे मंडित आए, किया है शूरपनेका महाशब्द जिनने, तोमर जातिके हथियार बाण चक्र कनक इत्यादि अनेक जातिके शस्त्र अकेले दशरथ पर डारते भए। सो बड़ा आश्चर्य है कि दशरथ राजा जो एक रथका स्वामी था सो युद्ध समय मानों असंख्यात रथ होय गए, अपने बाणनि करि समस्त वैरियनिके बाण काट डाले अर आप जे बाण चलाए वे काहूकी दृष्टि में न आए और शत्रुवोंके लागे सो राजा दशरथने हेमप्रभकों क्षणमात्र में जीत लिया। ताकी ध्वजा छेदी, छत्र उड़ाया और रथके अश्व घायल किए, रथ तोड़ डाला, रथतैं नीचे डार दिया। तब वह राजा हेमप्रभ और रथ पर चढ़कर भयंकर कंपायमान होय अपना यश कालाकर शीघ्र ही भाग्या। दशरथने आपको बचाया, स्त्रीकूं बचाई, अपने अश्व बचाए। वैरियोंके शस्त्र छेदे अर वैरियोंको भगाया। एक दशरथ अनन्त रथ जैसे काम करता भया। एक दशरथ सिंह समान उसको देख सर्व योधा सर्व दिशाकों हिरण समान होय भागे। अहो धन्य शक्ति या पुरुषकी अर धन्य शक्ति याकी, ऐसा शब्द ससुरकी सेनामें और शत्रुओंकी सेनामें सर्वत्र भया अर बंदीजन विरद बखानते भए। राजा दशरथने महाप्रतापकूं धरे कौतुकमंगल नगरविषैं केकईसूं पाणिग्रहण किया, महा-मंगलाचार भया। दशरथ केकईकों परणकर अयोध्या आए और जनक भी मिथिला-पुर गए। फिर इनका जन्मोत्सव और राज्याभिषेक विभूति से भया अर समस्त भय रहित इन्द्र समान रमते भए।

अथानंतर सर्व रानियों के मध्य राजा दशरथ केकईसूं कहते भए, हे चंद्रवदनी ! तेरे मनमें जा वस्तुकी अभिलाषा होय सो मांग, जो तू मांगे सोई देऊँ। हे प्राणप्यारी ! तेरेसे मैं अति प्रसन्न भया हूँ। जो तू अति विज्ञानसे उस युद्धमें रथको न प्रेरती तो एक साथ एते वैरी आए थे तिनको मैं कैसे जीतता। जब रात्रिको जगत में अन्धकार व्याप्त रह्या है अर जो अरुण सारिखा सारथी न होय तो उसे सूर्य कैसे जीतै। या भांति राजाने केकईके गुण वर्णन किए। तब पतिव्रता लज्जा के भारकर अधोमुख होय गई। राजा ने बहुरि कही वर मांग, तब केकई ने बीनती करी—हे नाथ ! मेरा वर आपके धरोहर रहै, जा समय मेरी इच्छा होयगी ता समय लूंगी। तब राजा प्रसन्न होय कहते भए, हे कमल-

सबकी मृगनयनी ! श्वेतता, श्यामता, आरक्तता ये तीन वर्णकों धरे अद्भुत हैं नेत्र तेरे, अद्भुत है बुद्धि तेरी, महा नरपति की पुत्री, अति नयकी वेत्ता, सर्वकलाकी पारगामिनी, सर्व भोगोपभोगकी निधि, तेरा वर मैं धरोहर राख्या, तू जब जो मांगेगी सो ही मैं दूंगा। अर सब ही राजालोक केकईकों देख हर्षकों प्राप्त भए और चितमें चिंतवते भए कि यह अद्भुत बुद्धिनिधान है सो कोई अपूर्व वस्तु मांगेगी, अल्प वस्तु कहा मांगे।

अथानंतर गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहे हैं, हे श्रेणिक ! लोकका चरित्र मैं तुझे संक्षेपताकर कह्या। जो पापी दुराचारी हैं वे नरकनिगोद के परम दुःख पावें हैं अर जे धर्मात्मा साधुजन हैं वे स्वर्ग मोक्षमें महा सुख पावें हैं। भगवान की आज्ञा के अनुसार बड़े सत्पुरुषनिके चरित्र तुझे कहे, अब श्रीरामचन्द्रकी उत्पत्ति सुन। कैसे हैं श्रीरामचन्द्र-जी ? महा उदार, प्रजाके दुःखहरणहारे, महान्यायवंत, महाधर्मवंत, महा विवेकी, महा शूरवीर, महाज्ञानी इक्ष्वाकुवंशका उद्योत करणहारे बड़े सत्पुरुष हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषैं रानी केकइकूं राजा दशरथका वरदान कथन वर्णन करनेवाला चौबीसवां पर्व पूर्ण भया ॥२४॥

पच्चीसवां पर्व

(रामलक्ष्मण आदि चारों भाईयोंका जन्म और विद्याभ्यास)

अथानंतर जाहि अपराजिता कहे हैं ऐसी जो कौशल्या सो रत्नजड़ित महलविषैं महासुन्दर सेज पर सूती थी सो रात्रि के पिछले पहर अतिशयकरि अद्भुत स्वप्न देखती भई। उज्ज्वल हस्ती, इन्द्र के ऐरावत हस्ती समान १ महाकेसरी सिंह २ अर सूर्य ३ तथा सर्व कलापूर्ण चन्द्रमा ४ ये पुराण पुरुषों के गर्भ में आवने के अद्भुत स्वप्न देख आश्चर्य कों प्राप्त भई। फिर प्रभातके वादित्र और मंगल शब्द सुनकर सेजसे उठी, प्रभात क्रिया से निवृत्त भई। स्वप्ने देखने करि हर्ष कूं प्राप्त भया है तन जाका, विनयवंती सखीजन-मंडित भरतार के समीप जाय सिंहासन पर बैठी। कैसी है राणी ? सिंहासनको शोभित करणहारी, हाथ जोड़ नम्रीभूत होय महामनोहर स्वप्ने जे देखे तिनका वृत्तांत स्वामीसूं कहतीभई। तब समस्त विज्ञानके पारगामी राजा स्वप्ननिका फल कहतेभए-हे कांते! तेरे परम आश्चर्यकारी मोक्षगामी पुत्र अंतर बाह्य शत्रुवोंका जीतनहार महापराक्रमी होयगा। राग-द्वेष मोहादिक अंतरंग शत्रु कहिये अर प्रजाके बाधक दुष्टभूपति बहिरंग शत्रु कहिए। या भांति राजा कही तब राणी अति हर्षित होय अपने स्थानक गई, मंद मुलकन रूप जो केश उनसे संयुक्त है मुखकमल जाका। अर राणी केकई पति सहित श्रीजिनेंद्रके जे चैत्यालय तिनमें भाव-संयुक्त महापूजा करावती भई सो भगवान की पूजा के प्रभावसें राजा का सर्व उद्वेग मिटा, चित्त में महा शांति होती भई।

अथानंतर राणी कौशल्याके श्रीराम का जन्म भया। राजा दशरथ ने महा उत्सव किया, याचकनिकों छत्र चमर सिंहासन टार बहुत द्रव्य दिए। उगते सूर्य समान है वर्ण रामका, कमल समान है नेत्र और लक्ष्मीसे आलिंगित है वक्षस्थल जाका, तातें माता पिता सर्व कुटुम्बने इनका नाम पद्म धरा। फिर राणी सुमित्रा, अति सुन्दर है रूप जाका, सो महा शुभ स्वप्न अवलोकन कर आश्चर्यको प्राप्त होती भई। वे स्वप्न कैसे, सो सुनो—एक बड़ा केहरी सिंह देख्या, लक्ष्मी और कीर्ति बहुत आदरसे सुन्दर जलके भरे कलश कमलसे ढके उनसे स्नान करावे हैं और आप सुमित्रा बड़े पहाड़ के मस्तकपर बैठी है अर समुद्र पर्यंत पृथवी कों देखै है अर देदीप्यमान हैं किरणनिके समूह जाके ऐसा सूर्य देख्या अर नाना प्रकार के रत्ननिकरि मंडित चक्र देख्या। ये स्वप्न देख प्रभातके मंगलीक शब्द भए। तब सेज से उठकर प्रातः क्रियाकर बहुत विनय संयुक्त पति के समीप जाय मिष्टवाणीकरि स्वप्ननिका वृत्तांत कहती भई। तब राजा कही—हे वरानने! कहिए सुन्दर है वदन जाका, तेरे पृथवीपर प्रसिद्ध पुत्र होयगा, शत्रुओंके समूह का नाश करन-हारा महातेजस्वी, आश्चर्यकारी है चेष्टा जाकी। ऐसा पतिने कहा तब वह पतिव्रता, हर्षकरि भरया है चित्त जाका, अपने स्थानक गई, सर्वलोकनिकों अपने सेवक जानती भई। फिर याके परमज्योतिका धारी पुत्र होता भया मानो रत्नोंकी खान विषैं रत्न ही उपज्या सो जैसा श्रीरामके जन्मका उत्सव किया हुता तैसा ही उत्सव भया। जा दिन सुमित्रा के पुत्र का जन्म भया ताही दिन रावण के नगर विषैं हजारों उत्पात होते भए अर हितुवोंके नगर विषैं शुभ शकुन भए। इंदीवर कमल समान श्यामसुन्दर अर कांतिरूप जल का प्रवाह, भले लक्षणनिका धरणहारा तातैं माता पिता ने लक्ष्मण नाम धरया। राम लक्ष्मण ये दोऊ बालक, महामनोहररूप, मूंगा समान हैं लाल होंठ जिनके अर लाल कमल समान हैं कर अर चरण जिनके, माखनहूतें अति कोमल है शरीर का स्पर्श जिनका अर महासुगंध शरीर वाले ये दोऊ भाई बाललीला करते कौनके चित्त कूं न हरैं? चंदनकरि लिप्त है शरीर जिनका, केसरका तिलक किए कैसे सोहै हैं मानों विजयार्धगिरि अर अंजनगिरि ही हैं। स्वर्ण के रससे लिप्त है शरीर जिनका, अनेक जन्मका बड़ा जो स्नेह तातैं परम स्नेहरूप चंद्र सूर्य समान ही हैं। महल मांही जावें तब तो सर्व स्त्रीजनकों अति प्रिय लागैं अर बाहिर आवैं तब सर्व जननिकों प्यारे लागैं। जब ये वचन बोलैं तब मानों जगतकों अमृत कर सींचै हैं अर नेत्रनिकर अवलोकन करै हैं तब सबनिकों हर्षकरि पूर्ण करै हैं। सबनिके दारिद्र हरणहारे, सबके हितु, सबके अंतःकरण पोषणहारे मानों ये दोऊ हर्षकी अर शूरवीरताकी मूर्ति ही हैं, ये अयोध्यापुरी विषैं सुखसूं रमते भए। कैसे हैं दोनों कुमार? अनेक सुभट करैं हैं सेवा जिनकी, जैसें पहले बलभद्र विजय अर वासुदेव

विपृष्ट होते भए तिन समान है चेष्टा जिनको। बहुरि केकईको दिव्यरूप का धरणहारा महाभाग्य पृथवी विषैं प्रसिद्ध भरत नामा पुत्र भया। बहुरि सुप्रभा के सर्वलोक में सुन्दर शत्रुवों का जीतनहारा शत्रुघ्न ऐसा पुत्र भया। अर रामचंद्रका नाम पद्म तथा बलदेव अर लक्ष्मण का नाम हरि अर वासुदेव अर अर्द्धचक्री भी कहे हैं। एक दशरथ की जो चार राणी सो मानों चार दिशा ही हैं तिनके चार ही पुत्र समुद्र समान गंभीर, पर्वत समान अचल, जगतके प्यारे, इन चारों ही कुमारनिका पिता विद्या पढ़ावने के अर्थि योग्य पाठक कों सौंपते भए।

अथानंतर कांपिल्य नामा नगर अतिसुन्दर, तहां एक शिवी नामा ब्राह्मण, ताकी इषु नामा स्त्री, ताके अरि नामा पुत्र, सो महा अविवेकी अविनई माता पिता ने लड़ाया सो महा कुचेष्टा का धरणहारा हजारों उलाहनों का पात्र होता भया। यद्यपि द्रव्यका उपार्जन, धर्मका संग्रह, विद्याका ग्रहण उस नगर में ये सब ही बातें सुलभ हैं परन्तु याकों विद्या सिद्ध न भई। तब माता पिता विचारी कि विदेश में याहि सिद्धि होय। यह विचार खेद खिन्न होय घरतें निकास दिया सो महा दुःखी होय केवल वस्त्र याके पास सो यह राजगृह नगर में गया। तहां एक वैवस्वत नामा धनुर्विद्या का पाठी महापण्डित, ताके हजारों शिष्य विद्या का अभ्यास करें, ताके निकट यह अरि यथार्थ धनुर्विद्या का अभ्यास करता भया सो हजारों शिष्यनि विषैं यह महाप्रवीण होता भया। या नगरका राजा कुशाग्र सो ताके पुत्र भी वैवस्वत के निकट बाणविद्या पढ़ें सो राजा ने सुनी कि एक विदेशी ब्राह्मण का पुत्र आया है जो राजपुत्रनितें हूँ अधिक बाण विद्या का अभ्यासी भया सो राजा मन में रोष किया। जब यह बात वैवस्वत ने सुनी तब अरि को समझाया कि तू राजा के निकट मूर्ख होय जा, विद्या मत प्रकाशै। सो राजा ने धनुषविद्या के गुरुको बुलाया कि जो मैं तेरे सर्व शिष्यनिकी विद्या देखूंगा तब वह सब शिष्यनिकों लेय-कर गया। सर्व ही शिष्योंने यथा योग्य अपनी अपनी बाणविद्या दिखाई, निशाने बांधे; ब्राह्मण का जो पुत्र अरि, ताने ऐसे बाण चलाए सो विद्या रहित जाना गया। तब राजा ने जानी, याकी प्रशंसा काहू ने झूठी कही। तब वैवस्वतकों सर्व शिष्यनि सहित सीख दीनी तब वह अपने घर आया अर अपनी पुत्री अरि को परणाय विदा किया। सो रात्रि ही पयाण कर अयोध्या आया, राजा दशरथसों मिल्या, अपनी बाणविद्या दिखाई। तब राजा प्रसन्न होय अपने चारों पुत्र बाण विद्या सीखने कों याके निकट राखे। ते बाणविद्याविषैं अति प्रवीण भए; जैसें निर्मल सरोवरमें चन्द्रमा की कांति विस्तार को प्राप्त होय तैसें इन विषैं बाण विद्या विस्तार को प्राप्त भई। और और भी अनेक विद्या गुरुसंयोगतें तिनकों सिद्ध भईं, जैसें काहू ठौर रत्न मिले होवें अर ढकने से ढके

होवें सो ढकना उघाड़े प्रगट होय तैसें सर्व विद्या प्रगट भई। तब राजा अपने पुत्रनिकूं सर्व शास्त्र विषें अति प्रवीण देख अर पुत्रों का विनय उदार चेष्टा अवलोकन कर अति प्रसन्न भया। इनके सर्व विद्याओं के गुरुवों का बहुत सन्मान किया। राजा दशरथ गुणोंके समूह से युक्त, महाज्ञावी ने जो उनकी वांछा हुती वह संपदा दीनी, दान विषें विख्यात है कीर्ति जाकी। केतेक जीव शास्त्र ज्ञान को पायकर परम उत्कृष्टता कों प्राप्त होय हैं अर कैएक जैसेके तैसे ही रहै हैं अर कैयक विषम कर्म के योग तें मद करि आंधे होय हैं जैसें सूर्य की किरण स्फटिकगिरि के तट विषें अति प्रकाश कों धरै है, और स्थावकविषें यथा-स्थित प्रकाशकों धरै है अर उल्लुवों के समूह में अति तिमिररूप होय परणवै।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषें चार भाईनिके जन्म का वर्णन करनेवाला पच्चीसवां पर्व पूर्ण भया ॥२५॥

छब्बीसवां पर्व

(राजा जनक के भामण्डल और सीता की उत्पत्ति)

अथानंतर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकतें कहैं हैं कि हे श्रेणिक! अब जनकका कथन सुनहु। राजा जनक की स्त्री विदेहा ताहि गर्भ रह्या सो एक देव के यह अभिलाषा हुई कि जो याके बालक होय सो मैं ले जाऊं। तब श्रेणिक ने पूछी–हे नाथ! वा देव के ऐसी अभिलाषा काहेतें उपजी सो मैं सुना चाहूं। तब गौतम स्वामी कहते भए–हे राजन्! चक्रपुरनामा एक नगर है तहाँ चक्रध्वज नामा राजा ताके रानी मनस्विनी तिनके पुत्री चित्तोत्सवा सो कुवांरी चटशाला में पढ़ै। अर राजा का पुरोहित धूम्रकेश ताके स्वाहा नामा स्त्री ताका पुत्र पिंगल सो भी चटशालामें पढ़ै। सो चित्तोत्सवा का अर पिंगल का चित्त मिल गया सो इनकूं विद्या की सिद्धि न भई। जिनका मन कामबाणकरि बेध्या जाय तिनकूं विद्या अर धर्म की प्राप्ति न होय है। प्रथम स्त्री पुरुष संसर्ग होय, बहुरि प्रीति उपजे, प्रीतितें परस्पर अनुराग बढ़ै, बहुरि विश्वास उपजै, ताकरि विकार उपजै, बहुरि जैसें हिंसादिक पंच पापनिकरि अशुभ कर्म बंधै तैसें स्त्रीसंगतें काम उपजै है।

अथानंतर वह पापी पिंगल चित्तोत्सवाकूं हर ले गया जैसें कीर्तिकों अपयश हर ले जाय। जब दूर देशनिविषें हर ले गया तब सब कुटुम्बके लोकनि ने जानी कि अपने प्रमाद के दोषकरि ताने वह हरी है, जैसें अज्ञान सुगति कों हरै तैसें वह पिंगल कन्याकूं चोरी करि हर ले गया। परन्तु धन रहित शोभै नाहीं जैसें लोभी धर्मवर्जित तृष्णा करि न सोहै। सो यह विदग्ध नगर में गया तहां अन्य राजानिकी गम्यता नाहीं, सो निर्धन नगर कें बाहिर कुटी बनाय कर रह्या। ता कुटी के किवाड़ नाहीं अर यह ज्ञान विज्ञान

रहित तृण-काष्ठादिका संग्रहकर विक्रयकर उदर भरै, दारिद्रके सागर में मग्न सो स्त्री का घर आपका उदर महाकठिनतासूं भरै। तहां राजा प्रकाशसिंह अर रानी प्रवरावली का पुत्र जो राजा कुण्डलमण्डित सो याकी स्त्रीकूं देख शोषण संतापन उच्चाटन वशीकरण मोहन ये काम के पंच बाण इन करि बेध्या गया। ताने रात्रि कों दूती पठाई सो चित्तोत्सवा को राजमंदिर में ले गई जैसें राजा सुमुख के मंदिर विषें दूती नवमालाको ले गई हुती सो कुण्डलमंडित वा सहित सुखसूं रमै।

अथानंतर वह पिंगल काष्ठ का भार लेकर घर आया सो सुन्दरीकूं न देख अति कष्ट के समुद्र में डूबा, विरह करि महा दुःखित भया, काहू ठौर सुख न पावै, चक्र विषें आरूढ़ समान याका चित्त व्याकुल भया, हरी गई है भार्या जाकी ऐसा जो यह दीन ब्राह्मण सो राजा पै गया अर कहता भया—हे राजन्! मेरी स्त्री तिहारे राज में चोरी गई, जे दरिद्री आर्तिवंत भयभीत स्त्री वा पुरुष उनका राजा ही शरण है। तब राजा धूर्त सो राजा ने मन्त्री को बुलाय झूठमूठ कहा याकी स्त्री चोरी गई है ताहि पैदा करो, ढील मत करो। तब एक सेवक ने नेत्रों की सैन मार कर झूठ कहा—हे देव! मैं या ब्राह्मण की स्त्री पोदनापुरके मार्ग में पथिकनि के साथ जाती देखी सो आर्यिकानिके मध्य तप करवेको उद्यमी है तातैं हे ब्राह्मण! तू ताहि लाया चाहे तो शीघ्र ही जा, ढील काहे कों करै। ताका अबार दीक्षा धरनेका समय कहाँ, तरुण है शरीर जाका अर महा श्रेष्ठ स्त्री के गुणनि से पूर्ण है। ऐसा जब झूठ कहा तब ब्राह्मण गाढ़ी कमर बांध शीघ्र वाकी ओर दौड्या, जैसे तेज घोड़ा शीघ्र दौड़े। सो पोदनापुरमें चैत्यालय तथा उपवनादि वनमें सर्वत्र ढूंढी, काहू ठोर न देखी। तब पाछा विदग्ध नगर में आया, सो राजा की आज्ञातें क्रूर मनुष्यों ने गलहटा देय लष्टमुष्टि प्रहार कर दूर किया, ब्राह्मण स्थानभ्रष्ट भया, क्लेश भोगा, अपमान लहा, मार खाई। एते दुःख भोग कर दूर देशांतर उठ गया, सो प्रिया बिना याकों किसी ठौर सुख नाहीं। जैसें अग्नि में पड़ा सर्प सूंसै तैसें यह रात दिन सूंसता भया, विस्तीर्ण कमलनिका वन याहि दावानल समान दीखै अर सरोवर अवगाह करता विरहरूप अग्नि से बलै। या भांति यह महा दुःखी पृथ्वीविषैं भ्रमण करै। एक दिन नगर से दूर वनमें मुनि देखे। मुनिका नाम आर्यगुप्ति, बड़े आचार्य, तिनके निकट जाय हाथ जोड़ नमस्कार कर धर्म श्रवण करता भया, धर्मश्रवणकर याको वैराग्य उपजा, महा शांतचित्त होय जिनेन्द्रके मार्गकी प्रशंसा करता भया। मनमें विचारै है—अहो यह जिनराज का मार्ग परम उत्कृष्ट है। मैं अंधकार में पड़ा हुता सो यह जिनधर्म का उपदेश मेरे घट में सूर्य समान प्रकाश करता भया। मैं अब पापों का नाश करणहारा जो जिनशासन ताका शरण लेऊं, मेरा मन और तन विरह रूप अग्निमें जरै है सो मैं शीतल करूं। तब

वह गुरु की आज्ञातें वैराग्यकों पाय परिग्रह का त्याग कर दिगम्बरी दीक्षा धरता भया, पृथ्वी पर विहार करता सर्व संगका परित्यागी नदी पर्वत समान वन उपवनों में निवास करता तप कर शरीर का शोषण करता भया। जाके मन को वर्षा काल में अति वर्षा भई तो भी खेद न उपज्या और शीतकाल में शीत वायुकरि जाका शरीर न कांपा और ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरण कर व्याकुल न भया। याका मन विरहरूप अग्नि कर जला हुता सो जिन वचन रूप जलकी तरंग करि शीतल भया। तपकर शरीर अर्धदग्ध वृक्ष के समान होय गया।

विदग्धपुर का राजा जो कुंडलमंडित ताकी कथा सुनहु—राजा दशरथके पिता अनरण्य अयोध्यामें राज्य करै सो यह कुंडलमंडित पापी गढ़के बलकर अनरण्यके देशकों विराधै। जैसे कुशील पुरुष मर्यादा लोप करै तैसें यह ताकी प्रजाको बाधा करै। राजा अनरण्य बड़ा राजा ताके बहुत देश सो याने कैयक देश उजाड़े जैसे दुर्जन गुणोंको उजाड़ै। अर राजाके बहुत सामंत विराधे जैसें कषाई जीवनिके परिणाम विराधै। अर योगी कषायों का निग्रह करै तैसें याने राजासे विरोध कर अपने नाशका उपाय किया। सो यद्यपि यह राजा अनरण्यके आगे रंक है तथापि गढ़के बलसे पकड़ा न जाय जैसें मूसा पहाड़के नीचे जो बिल तामें बैठजाय तब नाहर क्या करै। सो राजा अनरण्यको या चिंतासें रात दिन चैन न पड़ै। आहारादिक शरीरकी क्रिया अनादरसे करै। तब राजाका बालचंद्र नामा सेनापति सो राजाको चिंतावान देख पूछता भया—हे नाथ! आपको व्याकुलताका कारण कहा? तब राजाने कुण्डलमंडित का वृतान्त कहा। तब बालचंद्रने राजासे कही—आप निश्चित होवो, उस पापी कुंडलमंडितको बांधकर आपके निकट ले आऊं हूं। तब राजाने प्रसन्न होय बालचंद्र को विदा किया। चतुरंग सेना ले बालचंद्र सेनापति चढ्या सो कुंडल मंडित मूर्ख चित्तोत्सवा से आसक्तचित्त सर्व राज्य चेष्टारहित महाप्रमाद में लीन था, नहीं जाना है लोकका वृत्तांत जाने, वह कुंडलमंडित, नष्ट भया है उद्यम जाका, सो बालचंद्रने जायकर क्रीड़ामात्रमें जैसे मृगको बाँधै तैसे बांध लिया अर उसके सर्वराज्यमें राजाअनरण्य का अधिकार किया अर कुंडलमंडितकों राजा अनरण्यके समीप लाया। बालचंद्र सेनापति ने राजाअनरण्यका सर्व देश बाधारहित किया। राजा सेनापतिसे बहुत हर्षित भया अर बहुत बधारा अर पारितोषिक दिये। अर कुंडलमंडित अन्याय मार्गतें राज्यसे भ्रष्ट भया, हाथी घोड़े रथ पयादे सब गए, शरीरमात्र रह गया, पयादे फिरै सो महादुःख पृथ्वी पर भ्रमण करता खेदखिन्न भया, मनमें बहुत पछतावै जो मैंअन्यायमार्गीनि बड़ोंसे विरोधकर बुरा किया। एक दिन यह मुनियोंके आश्रम जाय आचार्यकों नमस्कारकर भावसहित धर्मका भेद पूछता भया। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतें कहै हैं—हे राजन्! दुःखी दरिद्री कुटुम्बरहित, व्याधिकरि

पीड़ित तिनमें काहू एक भव्यजीवके धर्म बुद्धि उपजी है। ताने आचार्यसूं पूछा–हे भगवन! जाकी मुनि होनेकी शक्ति न होय सो गृहस्थाश्रम में कैसे धर्मका साधन करै? आहार भय मैथुन परिग्रह यह चार संज्ञा तिनमें तत्पर यह जीव कैसें पापनिकरि छूटै सो मैं सुना चाहूं हूं, आप कृपाकर कहो। तब गुरु कहते भए, धर्म जीवदयामई है–ये सर्व प्राणी अपनी निंदाकर अर गुरुनिके पास आलोचनाकर पापतें छूटै हैं। तू अपना कल्याण चाहै है अर शुद्ध धर्म की अभिलाषा करै है तो हिंसा का कारण महाघोर कर्म लहू अर वीर्य से उपजा ऐसा जो मांस ताका भक्षण सर्वथा तज। सर्व ही संसारी जीव मरणतैं डरै हैं। तिनके मांसकर जे अपने शरीरको पोखैं हैं ते पापी नि.संदेह नरकमें पड़ेंगे। जे मांसका भक्षण करै हैं अर नित्य स्नान करै हैं तिनका स्नान वृथा है। अर मूड़ मुड़ाय भेष लिया सो भेष भी वृथा है। अर अनेक प्रकारके दान उपवासादिक यह मांसाहारीकों नरकसे नाहीं बचा सकै हैं। या जगतमें ये सर्व ही जातिके जीव पूर्वजन्ममें या जीवके बांधव भए हैं तातैं जो पापी मांसका भक्षण करै हैं ताने तो सर्व बांधव भखे। जो दुष्ट निर्दई मच्छ मृग पक्षियों को हनै हैं अर मिथ्यामार्ग में प्रवर्तैं हैं सो मधु मांसके भक्षणतैं महाकुगतिविषैं जावै हैं। यह मांस वृक्षनितैं नाहीं उपजै है, भूमितैं नाहीं उपजै है अर कमलकी न्याईं जलसे नाहीं निपजै है अथवा अनेक वस्तूनिके योगतैं जैसें औषधि बनै है तैसें मांसकी उत्पत्ति नाहीं होय है, दुष्ट निर्दई जीव निर्बल वा गरीब, बड़ा वल्लभ है जीतव्य जिनको, ऐसे पक्षी मृग मत्स्यादिक तिनको हनकर मांस उपजावै हैं सो उत्तम दयावान जीव नाहीं भखै हैं। अर जिनके दुग्धकरि शरीर वृद्धि कों प्राप्त होय ऐसी गाय भैंस छेरी तिनके मृतक शरीरको भखै हैं अथवा मार मारकर भखै हैं तथा तिनके पुत्र पोत्रादिककों भखै हैं ते अधर्मी महा नीच नरकनिगोदके अधिकारी हैं। जो दुराचारी मांस भखै हैं ते माता पिता पुत्र मित्र सहोदर सर्व ही भखै हैं। या पृथ्वीके तले भवनवासी अर व्यंतर देवनिके निवास हैं अर मध्य लोक में भी हैं तहां दुष्ट कर्मके करनहारे नीचदेव हैं; जो जीव कषाय सहित तापस होय हैं ते नीच देवनिमें निपजै हैं। पाताल में प्रथम ही रत्नप्रभा पृथ्वी ताके तीन भाग, तिनमें खर अर पंक भाग में भवनवासी अर व्यंतर देवनिके निवास हैं अर अब्बहल भागमें पहला नरक ताके नीचे छह नरक और हैं। ये सातों नरक छह राजूमें अर सातवें नरक के नीचे एक राजूमें निगोदादि स्थावर ही हैं, त्रस जीव नाहीं हैं अर निगोद से तीन लोक भरे हैं।

अथानंतर नरक का व्याख्यान सुनहु–कैसे हैं नारकी जीव? महाक्रूर, महाकुशब्द बोलनहारे, अति कठोर है स्पर्श जाका, महा दुर्गन्ध अन्धकाररूप नरक में पड़े हैं, उपमा रहित जे दुःख तिनका भोगनहारा है शरीर जिनका, महाभयंकर नरक ताहि कुम्भीपाक कहिए, जहां वैतरणी नदी है अर तीक्ष्ण कंटकयुक्त शाल्मलीवृक्ष, जहां असिपत्र वन तीक्ष्णखड्ग

की धारा समान है पत्र जिनके अर जहां देदीप्यमान अग्नि से तप्तायमाव तीखे लोहेके कीले निरंतर हैं। उन नरकनिमें मधु-मांस के भक्षणहारे अर जीवनिके मारणहारे निरंतर दुःख भोगै हैं। जहाँ एक आध अंगुल मात्र भी क्षेत्र सुखका कारण नाहीं अर एक पलको भी नारकियों को विश्राम नाहीं। जो चाहें कि कहूं भाजकर छिप रहैं तो जहां जाँय तहां ही नारकीमारैं अरअसुरकुमार पापीदेव बताय देंय। महाप्रज्वलित अंगार-तुल्य जो नरककी भूमि ता विषैं पड़े ऐसे विलाप करैं जैसें अग्निमें मत्स्य व्याकुल हुआ विलाप करै। अर भयसे व्याप्त काहू प्रकार निकस कर अन्य अन्य ठौर गया चाहैं तो तिनको शीतलता निमित्त और नारकी वैतरणी नदी के जलसे छांटे देय सो वैतरणी महादुर्गन्ध क्षारजल की भरी ताकरि अधिक दाहकों प्राप्त होंय। बहुरि विश्रामके अर्थ असिपत्र बनमें जाँय सो असिपत्र सिरपर पड़ें मानों चक्र खड्ग गदादिक हैं तिनकरि विदारे जावें, छिदगए हैं नासिका कर्ण कंधा जंघा आदि शरीर के अंग जिनके, नरक में महा विकराल महादुःखदाई पवन है। अर रुधिरके कण बरसै हैं, जहां घानिमें पेलिये हैं अर क्रूर शब्द होय हैं, तीक्ष्ण शूलोंसे भेदिए हैं, महा विलापके शब्द करै हैं अर शाल्मली वृक्षनिसे घसीटिए हैं अर महा मुद्गरोंके घात से कूटिए हैं। अर जब तिसाए होय हैं तब जलकी प्रार्थना करैं हैं तब उन्हें ताँबा गलाकर प्यावै हैं तातें देह महा दग्धायमान होय है ताकर महादुःखी होय हैं अर कहैं हैं कि हमें तृषा नाहीं तो पुनि बलात्कार इनको पृथ्वीपर पछाड़कर ऊपर पग देय संडासियों से मुख फाड़ ताता तांबा प्यावै हैं तातें कंठ भी दग्ध होय है अर हृदय भी दग्ध होय है। नारकियोंको नारकीनिका अनेक प्रकारका परस्पर दुःख तथा भवनवासी देव जे असुरकुमार तिनकरि करवाया दुःख सो कौन वर्णन कर सकै। नरकमें मद्य-मांसके भक्षणसे उपजा जो दुःख ताहि जानकर मद्य-मांसका भक्षण सर्वथा तजना। ऐसे मुनिके वचन सुन नरकके दुःख से डरा है मन जाका, ऐसा जो कुण्डलमंडित सो बोला—हे नाथ! पापी जीव तो नरक हीके पात्र हैं अर जे विवेकी सम्यग्दृष्टि श्रावकके व्रत पालै हैं तिनकी कहा गति है? तब मुनि कहते भए-जे दृढ़ व्रत सम्यग्दृष्टि श्रावक के व्रत पालै हैं ते स्वर्ग-मोक्ष के पात्र होय हैं, औरहू जे जीव मद्य मांस मधुका त्याग करै हैं ते भी कुगति से बचै हैं, जे अभक्ष्यका त्याग करै हैं सो शुभ गति पावै हैं। जो उपवासादिक रहित हैं अर दानादिक भी नाहीं बनै है परन्तु मद्य-मांस के त्यागी हैं तो भले हैं। अर जो कोई शीलव्रत मंडित है अर जिनशासन का सेवक है अर श्रावक के व्रत पालै है ताका कहा पूछना? सो तो सौधर्मादि स्वर्ग में उपजै ही है। अहिंसाव्रत धर्म का मूल कहा है, अहिंसा मांसादिकके त्यागी के अत्यन्त निर्मल होय है। जे म्लेच्छ अर चांडाल हैं अर दयावान होय मधु माँसादिकका त्याग करै हैं सो भी पापनिकरि छूटै हैं, पापनिकरि छूटा हुआ पुण्य को ग्रहै हैं अर पुण्य के बंधन से देव अथवा मनुष्य

होय हैं अर जो सम्यग्दृष्टि जीव हैं सो अणुव्रतको धारण कर देवोंका इंद्र होय परम भोगों को भोगैं हैं बहुरि मनुष्य होय मुनिव्रत धर मोक्षपद पावै हैं। ऐसे आचार्यके वचन सुनकर यद्यपि कुंडलमंडित अणुव्रत के धारवे में शक्ति रहित है तो भी शीश नवाय गुरुनिकूं सविनय नमस्कार कर मद्य-मांसका त्याग करता भया अर समीचीन जो सम्यग्दर्शन ताका शरण ग्रहा, भगवान की प्रतिमा को नमस्कार कर अर गुरुवों को नमस्कारकर देशांतर को गया। मन में ऐसी चिंता भई कि मेरा मामा महापराक्रमी है सो विश्चय सेती मुझे खेदखिन्न जान मेरी सहायता करेगा। मैं बहुरि राजा होय शत्रूनिकों जीतूंगा। ऐसी आशा धर दक्षिणदिशा जायवेकों उद्यमी भया सो अति खेदखिन्न दुःखसे भरा धीरे २ जाता हुता सो मार्ग में अत्यन्त व्याधिवेदना कर सम्यक्त रहित होय मिथ्यात्व गुणठाणे मरण कों प्राप्त भया। कैसा है मरण ? नाहीं है जगत में उपाय जाका सो जिस समय कुंडलमंडितके प्राण छूटे सो राजा जनककी स्त्री विदेहाके गर्भ में आया ताही समय वेदवती का जीव जो चित्तोत्सवा भई हुती सो भी तपके प्रभावकरि सीता भई सो हू विदेहा के गर्भ में आई। ये दोनों एक गर्भ में आए अर वह पिंगल ब्राह्मण जो मुनिव्रत धर भवनवासी देव भया हुता सो अवधिकर अपने तपका फल जान बहुरि विचारता भया कि वह चित्तोत्सवा कहां अर वह पापी कुंडलमंडित कहाँ, जाकरि मैं पूर्व भव में दुःख अवस्थाकों प्राप्त भया, अब वे दोनों राजा जनक की स्त्री के गर्भ में आए हैं सो वह तो स्त्री की जाति पराधीन हुती अर उस पापी कुंडलमंडितने अन्याय मार्ग किया सो यह मेरा परमशत्रु है, जो गर्भ में विराधना करूं तो रानी मरणको प्राप्त होय सो यासैं मेरा वैर नाहीं। तातैं जब यह गर्भतैं बाहिर आवै तब मैं याहि दुःखदूं, ऐसा चितवता हुआ पूर्वकर्म के वैरकरि क्रोधायमान जो देव सो कुंडलमंडित के जीव पर हाथ मसलै; ऐसा जानकर सब जीवनिकूं क्षमा करनी, काहू कूं दुःख न देना, जो कोई काहूकूं दुःख देय है सो आपकों ही दुःख सागर में डुबोवै है।

अथानंतर समय पाय रानी विदेहा के पुत्र अर पुत्री का युगल जन्म भया तब वह देव पुत्र को हरता भया सो प्रथम तो क्रोध के योगकरि ताने ऐसी विचारी कि मैं याहि शिला पर पटक मारूं। बहुरि विचारी कि धिक्कार है मोकूं, मैं ऐसा अनन्त संसार का कारण पाप चितया। बालहत्या समान और कोई पाप नाहीं। पूर्व भव में मैं मुनिव्रत धरे हुते सो तृणमात्र का भी विराधन न किया, सर्व आरम्भ तजा, नाना प्रकार तप किए, श्री गुरु के प्रसाद से निर्मल धर्म पाय ऐसी विभूति कों प्राप्त भया। अब मैं ऐसा पाप कैसें करूं ? अल्प मात्र भी पापकर महादुःखकी प्राप्ति होय है। पापकरि यह जीव संसारवन-विषैं बहुत काल दुःखरूप अग्नि में जलै है। अर जो दयावान, निर्दोष है भावना जाकी,

महा सावधानरूप है सो धन्य है, सुगति नामा रत्न वाके हाथमें है। वह देव ऐसा विचार कर दयावान होयकर बालककों आभूषण पहिराय काननिविषें महा देदीप्यमान कुण्डल घाले। पर्णलध्विनामा विद्याकरि आकाशतें पृथवीविषें सुखकी ठौर पधराय आप अपने धाम गया। सो रात्रि के समय चन्द्रगति नामा विद्याधर ने या बालकको आभरण की ज्योतिकर प्रकाशमान आकाशसे पड़ता देखा तब विचारी कि यह नक्षत्रपात भया या विद्युत्पात भया। यह विचारकर निकट आय देखे तो बालक है तब हर्षकर बालककों उठाय लिया अर अपनी राणी पुष्पवती जो सेज में सूती हुती ताकी जांघों के मध्य धर दिया। अर राजा कहता भया–हे राणी! उठो उठो तिहारे बालक भया है, बालक महाशोभायमान है। तब रानी, सुन्दर है मुख जाका, ऐसे बालककों देख प्रसन्न भई, जाकी ज्योतिके समूहकर निद्रा जाती रही, महाविस्मयकों प्राप्त होय राजाकों पूछती भई-हे नाथ! यह अद्भुत बालक कौन पुण्यवती स्त्रीने जाया। तब राजा ने कही–हे प्यारी तैंने जना, तो समान और पुण्यवती कौन है, धन्य है भाग्य तेरा जाके ऐसा पुत्र भया। तब वह रानी कहती भई–हे देव मैं तो बांझ हूँ, मेरे पुत्र कहां, एक तो मुझे पूर्वोपार्जित कर्म ने ठगी बहुरि तुम कहा हास्य करो हो? तब राजा ने कही–हे देवी! तुम शंका मत करहु–स्त्रियों के प्रच्छन्न (गुप्त) भी गर्भ होय है। तब रानी ने कही ऐसे ही होहु परन्तु याके मनोहर कुंडल कहांतें आए, ऐसे भूमंडल में नाहीं। तब राजा ने कही हे राणी ऐसे विचारकर कहा? यह बालक आकाशसे पड़ा अर मैं झेला, तुझे दिया। यह बड़े कुलका पुत्र है, याके लक्षणनिकर जानिए है कि यह मोटा पुरुष है। अन्य स्त्री तो गर्भके भारकर खेद खिन्न भई है परन्तु हे प्रिये! तैंनें याहि सुखसे पाया अर अपनी कुक्षि में उपजा भी बालक जो माता पिता का भक्त न होय, अर विवेकी न होय शुभ काम न करै तो ताकर कहा? कई एक पुत्र शत्रु समान परणवैं हैं तातें उनके उदर के पुत्र का कहा विचार? तेरे यह पुत्र सुपुत्र होयगा, शोभनीक वस्तु में सन्देह कहा? अब तुम या पुत्र को लेओ अर प्रसूति के घर में प्रवेश करो। अर लोकनिको यही जनवाना जो राणी के गुप्त गर्भ हुता सो पुत्र भया। तब राणी पतिकी आज्ञा-प्रमाण प्रसन्न होय प्रसूति-गृह विषें गई, प्रभात विषें राजा ने पुत्र के जन्म का उत्सव किया। रथनूपुरमें पुत्रके जन्म का ऐसा उत्सव भया जो सर्व कुटुम्ब अर नगर के लोग आश्चर्यको प्राप्त भए। रत्ननिके कुंडलकी किरणोंकर मंडित जो यह पुत्र सो माता पिता ने याका नाम प्रभामण्डल धरा अर पोषने के निमित्त धायको सौंपा। सब अंतःपुरकी राणी आदि सकल स्त्री तिनके हाथ रूप कमलनिका भ्रमर होता भया। भावार्थ–यह बालक सर्व लोकनिकों वल्लभ सुखसों तिष्ठै है, यह तो कथा यहां ही रही।

अथानंतर मिथिलापुरी विषें राजा जनककी रावी विदेहा पुत्रको हरा जाव विलाप करती भई, अति ऊँचे स्वरसूं रुदन किया, सर्व कुटुम्बके लोक शोक सागर में पड़े । रावी ऐसे पुकारे मानों शस्त्र कर मारी है । हाय ! हाय पुत्र ! तुझे कौन ले गया, मोहि महा-दु:खका करणहारा वह दिर्दई कठोर चित्त के हाथ तेरे लेने पर कैसे पड़े ? जैसे पश्चिम दिशा की तरफ सूर्य आय अस्त होय जाय तैसें तू मेरे मंदभागिनीके आयकर अस्त होय गया । मैं हू परभव विषें काहू का बालक विछोहा हुता सो मैं फल पाया, तातैं कभी भी अशुभ कर्म न करना । जो अशुभ कर्म है सो दुख:का बीज है । जैसे बीज बिना वृक्ष नाहीं तैसे अशुभकर्म बिना दु:ख नाहीं । जा पापीने मेरा पुत्र हरया सो मोकूं ही क्यों न मार गया, अर्धमुईकर दु:खके सागरमें काहेकों डुबो गया । या भांति रानी अति विलाप किया । तब राजा जनक आय धैर्य बंधावते भए कि हे प्रिये ! तू शोक को मत प्राप्त होहु, तेरा पुत्र जीवै है, काहू ने हरया है सो तू निश्चय सेती देखेगी, वृथा काहेको रुदन करै है । पूर्व कर्मके भाव कर गई वस्तु कोई तो देखिए, कोई न देखिए, तू थिरताकों प्राप्त होहु । राजा दशरथ मेरा परम मित्र है सो वाकों यह वार्ता लिखू हूँ, वह अर मैं तेरे पुत्रकूं तलाशकर लावेंगे, भले२ प्रवीण मनुष्य तेरे पुत्रके ढूंढ़वेकों पठावेंगे । या भांति कहकर राजा जवक ने अपनी स्त्री को संतोष उपजाय दशरथके पास लेख भेजा सो दशरथ लेख बांच महाशोकवंत भए । राजा दशरथ अर जवक दोऊन ने पृथ्वीयें बालककों तलाश किया परन्तु कहूं देख्या नाहीं। तब महाकष्टकर शोक को दाव बैठे रहे । ऐसा कोई पुरुष वा स्त्री नाहीं जो इस बालकके गए पर भरे वेत्र न भया होय, सब ही शोक के वश होय रुदन करते भए ।

अथानंतर प्रभामण्डल के गए या शोक भुलावनेकूं महामनोहर जावकी बाललीला कर सर्व बन्धुलोककूं आनन्द उपजावती भई । महा हर्षकूं प्राप्त भई जो स्त्रीजन तिनकी गोद में तिष्ठती अपने शरीर की कांतिकर दसों दिशाकूं प्रकाशरूप करती वृद्धिकूं प्राप्त भई । कैसी है जानकी ? कमल सारिखे हैं नेत्र जाके अर महासुकंठ प्रसन्न वदन मानो पद्मद्रह के कमल के निवास से साक्षात् श्रीदेवी ही आई है, याके शरीररूप क्षेत्रविषें गुण-रूप धान्य निपजते भए । ज्यों २ शरीर बढ़ा त्यों त्यों गुण बढ़े । समस्त लोकनिकूं सुख-दाता, अत्यंत मनोज्ञ सुन्दर लक्षणनिकर संयुक्त है अंग जाका, सीता कहिए भूमि तासमान क्षमाकी धरणहारी तातैं जगतविषें सीता कहाई । वदनकर जीत्या है चन्द्रमा जाने, पल्लव समान है कोमल आरक्त हस्ततल जाके, महाश्याम, महासुन्दर, इन्द्रनीलमणि समान है केशनिके समूह जाका अर जीती है मद की भरी हंसिनीकी चाल जाने अर सुन्दर है भौंह जाकी अर मौलश्री के पुष्प समान मुख की सुगन्ध, गुंजार करै हैं भ्रमर जापर, अति कोमल है पुष्पमाला समान भुजा जाकी, केहरी समान है कटि जाकी अर महा श्रेष्ठरसका

अरा जो केलिका थंभ ता समान है जंघा जाकी, स्थल कमल समान महामनोहर हैं चरण जाके, अर अति सुन्दर है कुच युग्म जाका, अति शोभायमान है रूप जाका, महाश्रेष्ठ मंदिरके आँगनविषे महारमणीक सातसै कन्याओं के समूह में शास्त्रोक्त क्रीड़ा करै। जो कदाचित् इन्द्र की पटरानी सची वा चक्रवर्ती की पटरानी सुभद्रा याके अंगकी शोभाकूं किंचित्मात्र भी धरै तो वे अति मनोज्ञरूप भासैं, ऐसी यह सीता सबनितैं सुन्दर है। याकूं रूप गुणयुक्त देख राजा जनक विचारचा कि जैसें रति कामदेव ही के योग्य है तैसें यह कन्या सर्व विज्ञानयुक्त दशरथ के बड़े पुत्र जो राम तिन ही के योग्य है, सूर्य की किरण के योगतैं कमलनि की शोभा प्रगट होय है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै सीता प्रभामण्डल का जन्म वर्णन करने वाला छब्बीसवाँ पर्व पूर्ण भया ॥२६॥

—:०:—

सत्ताईसवां पर्व

(राम लक्ष्मण द्वारा म्लेच्छ राजा का पराजय)

अथानंतर राजा श्रेणिक यह कथा सुनकर गौतमस्वामीकों पूछताभया कि हे प्रभो! जनक ने रामका कहा माहात्म्य देख्या जो अपनी पुत्री देनी विचारी? तब गणधर तिनको आनंद कारी वचन कहते भए—हे राजन्! महा पुण्याधिकारी जो श्रीरामचंद्र तिनका सुयश सुनि, जा कारणतैं जनक महा बुद्धिमान्ने रामकूं अपनी कन्या देनी विचारी। विजयार्धपर्वतके दक्षिणभागविषैं अर कैलाश पर्वत के उत्तर भागविषैं अनेक अंतर देश बसे हैं तिनमें एक अर्द्धबरबर देश, असंयमी जीवनिका है मान्य जहाँ अर महा मूढ़जन निर्दयी म्लेच्छलोकनि-करि भर्‌या ताविषैं एक मयूरमाल नामा नगर, कालके नगर समान महा भयानक, तहाँ आतरंगतम नामा म्लेच्छ राज्य करै सो महापापी दुष्टनिका नायक महा निर्दयी बड़ी सेनातैं नाना प्रकारके आयुधनिकर मंडित सकल म्लेच्छ संग लेय देश उजाड़नेकूं आए सो अनेक देश उजाड़े। कैसे हैं म्लेच्छ? करुणाभाव रहित प्रचंड हैं चित्त जिनके अर अत्यंत है दौड़ जिनकी, सो जनक राजा का देश उजाड़नेकूं उद्यमी भए; जैसें टिड्डीदल आवै तैसें म्लेच्छोंके दल आय सबकों उपद्रव करने लगे। तब राजा जनक ने अयोध्याको शीघ्र ही मनुष्य पठाए, म्लेच्छके आवनेके सब समाचार राजा दशरथकूं लिखे सो जनकके जन [illegible] आय सकल वृत्तान्त दशरथसूं कहते भए—हे देव! जनक विनती करी है कि [illegible] म्लेच्छनिका आवना सो सब पृथिवी उजाड़ै है, अनेक आर्यदेश विध्वंस किए, ते पापी [illegible] एक वर्ण किया चाहै हैं सो प्रजा नष्ट भई तब हमारा जीवेकर कहा, अब हमको

कहा कर्त्तव्य है ? उवसे लड़ाई करना अथवा कोई गढ़ पकड़ तिष्ठें, लोकनिकूं गढ़में राखैं, कालिन्दीभागा नदीकी तरफ विषमस्थल है, कहां जावैं ? अथवा विपुलाचल की तरफ जावैं अथवा सर्व सेना सहित कुंजगिरि की ओर जावैं, परसेना महा भयानक आवै है। साधु श्रावक सर्वलोक अति विह्वल हैं, ते पापी गौ आदि सब जीवनि के भक्षक हैं सो जो आप आज्ञा देहु सो करैं। यह राज्य भी तिहारा और पृथवी भी तिहारी, यहां की प्रतिपालना सब तुमकूं कर्त्तव्य है। प्रजाकी रक्षा किए धर्म की रक्षा होय है, श्रावक लोक भाव सहित भगवान की पूजा करै हैं, नाना प्रकारके व्रत धरै हैं, दान करै हैं, शील पालैं हैं, सामायिक करै हैं, पोषा पड़िक्रमण करै हैं, भगवानके बड़े बड़े चैत्यालय तिनविषैं महा उत्सव होय है, विधिपूर्वक अनेक प्रकार महा पूजा होय है, अभिषेक होय है, विवेकी लोक प्रभावना करै हैं अर साधु दशलक्षणधर्म कर युक्त आत्मध्यान में आरूढ़ मोक्ष का साधक तप करै हैं सो प्रजा के नष्ट भए साधु अर श्रावक का धर्म लुप्त हो है अर प्रजाके होते धर्म अर्थ काम मोक्ष सब सधै हैं। जो राजा परचक्रतैं पृथवीकी प्रतिपालना करै सो प्रशंसा के योग्य है। राजाके प्रजा की रक्षातैं या लोक परलोक विषैं कल्याण की सिद्धि होय है। प्रजा बिना राजा नहीं अर राजा बिना प्रजा नहीं, जीवदयामय धर्म का जो पालन करै सो इस लोक और परलोक में सुखी होय है। धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्रवृत्ति लोकनि के राजा की रक्षा से होय है, अन्यथा कैसे होय ? राजा के भुजबल की छाया पायकर प्रजा सुखसे रहै है। जाके देश में धर्मात्मा धर्म सेवन करै हैं, दान तप शील पूजादिक करै हैं सो प्रजा की रक्षा के योगतैं छठा अंश राजाकों प्राप्त होय है। यह सब वृत्तांतराजा दशरथ सुनकर आप चलनेको उद्यमी भए अर श्रीरामको बुलाय राज्य देना विचारया। वादित्रनि के शब्द होते भए, सब मंत्री आए, सब सेवक आए, हाथी-घोड़े रथ-पयादे सब आय ठाढ़े भए, जलके भरे स्वर्णमयी कलश सेवक लोग स्नानके निमित्त भर लाए अर शस्त्र बांधकरि बड़े बड़े सामन्त लोक आए अर नृत्यकारिणी नृत्य करती भई अर राजलोक की स्त्री जब नाना प्रकार के वस्त्र आभूषण पटलनिमें ले आईं। यह राज्याभिषेकका आडम्बर देखकर राम दशरथसूं पूछते भए कि हे प्रभो ! यह कहा है ? तब दशरथ कही—हे भद्र! तुम या पृथवीकी प्रतिपालना करो, मैं प्रजाके हित निमित्त शत्रुवनिके समूहतैं लड़ने जाऊं हूं, वे शत्रुदेवनि करहू दुर्जय हैं। तब कमल सारिखे हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीराम कहते भए—हे तात ! ऐसे रंकन पर एता परिश्रम कहा ? ते आपके जायबे लायक नाहीं, वे पशु समान दुरात्मा जिनसूं संभाषण करना उचित नाहीं, तिनके सन्मुख युद्ध की अभिलाषाकर आप कहां पधारे। उन्दरू (चूहा) के उपद्रव कर हस्ती कहा कोप करै ? अर रुई के भस्म करबेके अर्थ अग्नि कहा परिश्रम करै ? तिनपर जायबेकी हमकूं आज्ञा देहु, येही

उचित है। ये राम के वचन सुन दशरथ अति हर्षित भए अर रामकूं उरसूं लगाय कहते भए—हे पद्म ! कमल समान हैं नेत्र जाके, ऐसे तुम बालक सुकुमार अंग उन दुष्टनिकूं कैसें जीतोगे ? यह बात मेरे मनमें न आवै। तब राम कहते भए—हे तात ! कहा तत्काल उपज्या अग्नि की कणिका मात्र हू विस्तीर्ण वनकों भस्म न करै ? करै ही करै, छोटी बड़ी अवस्थासूं कहा प्रयोजन ? अर जैसें अकेला ऊगता ही बालसूर्य घोर अंधकारकूं हरै ही है तैसें हम बालक तिन दुष्टनिकूं जीतैं ही जीतें। ये वचन राम के सुन राजा दशरथ अति प्रसन्न भए, रोमांच होय आए अर बालपुत्रकूं भेजने का कछुइक विषाद उपज्या, नेत्र सजल होय गए। राजा मन में विचारै है जो महा पराक्रमी त्यागादि व्रत के धरणहारे क्षत्री तिनकी यही रीति है जो प्रजा की रक्षा के निमित्त अपने प्राण तजवेका उद्यम करैं अथवा आयु के क्षय बिना मरण नाहीं, यद्यपि गहन रण में जाय तौ हू न मरै—ऐसा चितवन करता जो राजा दशरथ ताके चरणकमलयुगल को नमस्कारकरि राम लक्ष्मण बाहिर नीसरे। सब शास्त्र अर शस्त्र विद्याविषैं प्रवीण, सर्व लक्षणनिकरि पूर्ण, सबकूं प्रिय है दर्शन जिनका, चतुरंग सेनाकरि मंडित, विभूतिकरि पूर्ण, अपने तेजकर देदीप्यमान दोऊ भाई राम लक्ष्मण रथविषैं आरूढ़ होय जनककी मददकूं चाले। सो इनके जायवे पहिले जनक अर कनक दोऊ भाई परसेनाका दो योजन अंतर जान युद्ध करवेकूं चढ़े हुते। सो जनक कनक के महारथी योधा शत्रुनिकें शब्द न सहते संते म्लेच्छनिके समूहमें जैसें मेघ की घटा में सूर्यादिक ग्रह प्रवेश करें तैसें यह थे, सो म्लेच्छों के अर सामंतनिके महायुद्ध भया, जाके देखे अर सुने रोमांच होय आवै। कैसा संग्राम भया ? बड़े शस्त्रनिकरि किया है प्रहार जहाँ, दोऊ सेनाके लोक व्याकुल भए, कनककूं म्लेच्छनिका दबाव भया तब जनक भाई की मदद के निमित्त अति क्रोधायमान होय दुर्निवार हाथियों की घटा प्रेरता भया सो वे बरबर देशके म्लेच्छ महा भयानक जनककूं दबावते भए। ताही समय राम लक्ष्मण जाय पहुँचे, अति अपार महागहन म्लेच्छनिकी सेना रामचन्द्रने देखी। सो श्रीरामचन्द्रका उज्ज्वल छत्र देखकर शत्रुनिकी सेना कंपायमान भई, जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमाका उदय देखकर अंधकारका समूह चलायमान होय। म्लेच्छनिके बाणनिकरि जनक का बखतर टूट गया हुता अर जनक खेदखिन्न भया हुता सो राम ने धैर्य बंधाया। जैसें संसारी जीव कर्मनिके उदय कर दुःखी होय सो धर्म के प्रभावतें दुःखनितें छूटे सुख होय तैसें जनक राम के प्रभावकर सुखी भया। चंचल तुरंगनि कर युक्त जो रथ ताविषैं आरूढ जो राघव, महाउद्योतरूप है शरीर जिनका, बखतर पहिरे अर हार कुंडल कर मंडित धनुष चढ़ाए और बाण हाथमें, सिंहके चिन्हकी है ध्वजा जिनके अर जिन पर चमर ढुरै हैं और महामनोहर उज्ज्वल छत्र सिर पर फिरै हैं, पृथ्वी के रक्षक, धीरवीर है मन

जिनका, ऐसे श्रीराम लोकके वल्लभ, प्रजाके पालक शत्रुनिकी विस्तीर्ण सेनाविषैं प्रवेश करते भए, सुभटनिके समूहकर संयुक्त जैसे सूर्य किरणनिके समूह कर सोहै है तैसें शोभते भए। जैसें माता हाथी कदली वनमें बैठया केलनिके समूह का विध्वंस करै तैसें शत्रुनिकी सेना का भंग किया। जनक अर कनक दोऊ भाई बचाए। अर लक्ष्मण जैसें मेघ बरसै तैसें बाणनिकी वर्षा करता भया, तीक्ष्ण सामान्य चक्र अर शक्ति कुठार करौत इत्यादि शस्त्रनिके समूह लक्ष्मणके भुजानिकर चले, तिन कर अनेक म्लेच्छ मरे जैसे फरसीन कर वृक्ष कटैं। ते भील पारधी महा म्लेच्छ, लक्ष्मणके बाणनि कर विदारे गए हैं उरस्थल जिनके, कट गई हैं भुजा अर ग्रीवा जिनकी, हजारों पृथवीविषैं पड़े तब वे पृथवी के कटंक तिनकी सेना लक्ष्मण के आगें भागी। लक्ष्मण सिंह समान दुर्निवार ताहि देखकर जे म्लेच्छों में शार्दूल समान हुते तेहू अति क्षोभकूं प्राप्त भए। महावादित्रके शब्द करते अर मुखतैं भयानक शब्द करते अर धनुष बाण खड्ग चक्रादि अनेक शस्त्रनिकूं धरे अर रक्त वस्त्र पहिरे, खंजर जिनके हाथमें, नाना वर्णका अंग जिनका, कैयक काजल समान श्याम कैयक कर्दम कैयक ताम्र वर्ण वृक्षनिके बक्कल पहिरे अर नाना प्रकार गेरुवादि रंग तिनकरि लिप्त हैं अंग जिनकेअर नाना प्रकारके वृक्षनिकी मंजरी तिनके हैं छोगा जिनके सिर पर अर कौड़ी सारिखे हैं दांत जिनके अर विस्तीर्ण हैं उदर जिनके. ऐसें भासैं मानों कुटज जातिके वृक्ष ही फूले हैं। अर कैयक निज हाथनिविषैं आयुधनिकूं धरे, कठोर हैं जंघा जिनकी, भारी भुजानिके धरणहारे मानो असुरकुमार देवनि सारिखे उन्मत्त, महानिर्दयी पशु मांस के भक्षक, महामूढ़ जीव हिंसाविषैं उद्यमी, जन्महीतैं लेकर पापनि के करणहारे, तत्काल खोटे आरंभके करणहारे अर सूकर भैंस व्याघ्र ल्याली इत्यादि जीवनिके चिन्ह हैं जिनकी ध्वजानिमें, नाना प्रकारके जे वाहन तिनपर चढ़े, पत्रनिके छत्र जिनके, नाना प्रकार युद्धके करणहारे, अति दौड़के करणहारे, महा प्रचंड तुरंग समान चंचल, ते भील मेघमाला समान लक्ष्मण रूप पर्वत पर अपने स्वामीरूप पवनके प्रेरे बाणवृष्टि करते भए। तब लक्ष्मण तिनके निपात करवेकूं उद्यमी तिनपर दौड़े, महाशीघ्र है वेग जिनका, जैसे महागजेन्द्र वृक्षनिके समूह पर दौड़ै। सो लक्ष्मणके तेज प्रतापकरि वे पापी भागे सो वे परस्पर पगनिकर मसले गए। तब तिनका अधिपति आतरंगतम अपनी सेवाकूं धैर्य बधाय सकल सेनासहित आप लक्ष्मण के सन्मुख आया, महाभयंकर युद्ध किया, लक्ष्मणकूं रथ रहित किया। तब श्रीरामचंद्र अपना रथ चलाय, पवन-समान है वेग जाका, लक्ष्मण के समीप आए, लक्ष्मणकूं दूजे रथ पर चढ़ाय अर आप जैसें अग्नि वनकूं भस्म करै तैसें तिनकी अपार सेना बाणनिरूप अग्निकर भस्म करी। कैयक तो बाणनिकर मारे अर कैयक कनकनामा शस्त्रनिकरि विध्वंसे, कैयक तोमर नामा आयुधनिकरि हते, कैयक सामान्य

चक्रबाण शस्त्रनिकरि निपात किए। वह म्लेच्छनिकी भयंकर सेना दस दिशाकूं जाती रही, छत्र चमर ध्वजा धनुष आदि शस्त्र डार डार भाजे। महा पुण्याधिकारी जो राम तिनने एक निमिष में म्लेच्छनि का निराकरण किया। महामुनि क्षणमात्र में सर्व कषायनि का निराकरण करें तैसें म्लेच्छनिका निपात किया। वह पापी आतरंगतम अपार सेना रूप समुद्र करि आया हुता सो भयकरि युक्त दस घोड़ा के असवारनिसूं भाग्या। तब श्रीराम आज्ञा करी कि ये नपुंसक युद्धतैं परान्मुख होय भागे, अब इनके मारवेकरि कहा ? तब लक्ष्मण भाई सहित पाछे बाहुड़े, वे म्लेच्छ भयकरि व्याकुल होय सह्याचल बिंध्याचल के वननि में छिप गए। श्रीरामचन्द्र के भयतें पशु हिंसादिक दुष्ट कर्मकूं तजि बनके फलनिका आहार करें, जैसें गरुड़तें सर्प डरे तैसें श्री रामसूं डरते भए। लक्ष्मण सहित श्रीराम, शांत है स्वरूप जिनका, राजा जनककूं बहुत प्रसन्न कर विदा किया अर आप अपने पिता के समीप अयोध्याकूं चाले, सर्व पृथ्वी के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। सबकूं परम आनन्द उपजाया, सबनि के परम हर्षकरि रोमांच होय आए। राम के प्रभाव से सर्व पृथ्वी शोभायमान भई जैसें चतुर्थकाल के आदि ऋषभदेव के समय संपदासे शोभायमान भई हुती। धर्म अर्थ काम करि युक्त जे पुरुष तिनसे जगत ऐसा भासता भया जैसें बर्फ के अवरोध कर वर्जित जे नक्षत्र तिनसूं आकाश शोभै। गौतम स्वामी कहै हैं कि हे राजा श्रेणिक ! ऐसा रामका माहात्म्य देखकर जनक ने अपनी पुत्री सीता रामकूं देनी विचारी। बहुत कहवेकरि कहा, जीवनिके संयोग तथा वियोग का कारण एक कर्म का उदय ही है। सो वह श्रीराम श्रेष्ठ पुरुष महासौभाग्यवन्त अतिप्रतापी, औरनमें न पाइए ऐसे गुणनिकरि पृथ्वीविषें प्रसिद्ध होता भया जैसें किरणनि के समूहकर सूर्य महिमाकूं प्राप्त होय।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषें म्लेच्छनिकी हार अर राम की जीत का कथन वर्णन करनेवाला सत्ताईसवां पर्व पूर्ण भया ॥२७॥

अट्ठाईसवां पर्व

(सीता स्वयंवर और राम के साथ विवाह)

अथानंतर ऐसे पराक्रमकर पूर्ण जो राम तिनकी कथा बिना नारद एक क्षण भी न रहै, सदा रामकथा करबो ही करै। कैसा है नारद, रामके यश सुनकर उपज्या है परम आश्चर्य जाकों। बहुरि नारद ने सुनी जो जनक ने रामको जानकी देनी विचारी। कैसी है जानकी ? सर्व पृथ्वीविषें प्रगट है महिमा जाकी। नारद मनमें चितवता भया, एक बार सीताकूं देखूं कि वह कैसी है। कैसे लक्षणनिकर शोभायमान है जो जनक ने रामको देनी करी है। सो नारद, शील संयुक्त है हृदय जाका, सीताके देखवेकूं सीताके घर आया।

सो सीता दर्पण में मुख देखती हुती सो नारद की जटा दर्पण में भासी सो कन्या भयकर व्याकुल भई, मनमें चितवती भई, हाय माता ! यह कौन है ? भयकर कम्पायमान होय महल के भीतर गई। नारद भी लारही महल में जाने लगे तब द्वारपाली ने रोका सो नारद के अर द्वारपालीके कलह हुवा, कलह के शब्द सुन खड्ग के अर धनुष के धारक सामंत दौड़े गए अर कहते भए—पकड़लो, पकड़लो, यह कौन है ? ऐसे तिन शस्त्रधारियों के शब्द सुनकर नारद डरा, आकाशविषें गमनकर कैलाश पर्वत गया। तहाँ तिष्ठकर चितवता भया कि जो मैं महाकष्टकूं प्राप्त भया सो मुश्किलसे बचा, नवा जन्म पाया; जैसें पक्षी दावानल से बाहिर निकसै तैसें मैं वहाँसे निकस्या। सो धीरे-धीरे नारद की कांपनी मिटी अर ललाटके पसेव पूंछ केश बिखर गए हुते ते समार कर बांधे। कांपे हैं हाथ जाके, ज्यों ज्यों वह बात याद आवे त्यों त्यों निश्वास नाखे, महाक्रोधायमान होय मस्तक हलाए ऐसें विचारता भया कि देखो कन्याकी दुष्टता, मैं अदुष्टचित्त सरलस्वभाव रामके अनुरागतें ताके देखवेकूं गया हुता सो मृत्यु समान अवस्थाकूं प्राप्त भया, यम समान दुष्ट मनुष्य मोहि पकड़वेकूं आए सो भली भई जो बचा, पकड़ा न गया। अब वह पापिनी मो आगे कहाँ बचे। जहाँ जहाँ जाय तहाँ ही कष्ट में नाखूं। मैं बिना वादित्र बजाए नाचूं सो जब वादित्र बाजे तब कैसें टरूं, ऐसा विचारकर शीघ्र ही वैताड्यकी दक्षिणश्रेणीविषें जो रथनुपुर नगर वहाँ गया, महासुन्दर जो सीता का रूप सो चित्रपट विषें लिख ले गया। कैसा है सीता का रूप ? महासुन्दर है। ऐसा लिखा मानों प्रत्यक्ष ही है। सो उपवनविषें भामंडल चन्द्रगतिका पुत्र अनेक कुमारनि सहित क्रीड़ा करनेकूं आया हुता सो चित्रपट उसके समीप डार आप छिप रह्या सो भामण्डलने यह तो न जान्या कि यह मेरी बहिनका चित्रपट है अर चित्रपट देख मोहित चित्त भया, लज्जा अर शास्त्रज्ञान अर विचार सब भूल गया, लम्बे २ निश्वास नाखै, होठ सूक गए, गात शिथिल हो गया, रात्रि अर दिवस निद्रा न आवै, अनेक मनोहर उपचार कराए तो भी इसे सुख नाहीं, सुगन्ध पुष्प अर सुन्दर आहार याहि विष समान लगे। शीतल जल छांटिये तो भी संताप न जाय। कबहूं मौन पकड़ रहे, कबहूं हँसै, कबहूं विकथा बकै, कबहूं उठ खड़ा रहै, वृथा उठ चलै, बहुरि पाछा आवै, ऐसी चेष्टा करै मानों याहि भूत लगा है। तब बड़े बड़े बुद्धिमान याहि कामातुर जान परस्पर बात करते भए जो यह कन्या का रूप किसी ने चित्रपटविषें लिखकर याके ढिग आय डारधा सो यह विक्षिप्त होय गया। कदाचित् यह चेष्टा नारदने ही करी होय। तब नारद ने अपने उपाय कर कुमारकूं व्याकुल जान लोगनकी बात सुन कुमार के बंधूनिकूं दर्शन दिया तब तिनने बहुत आदर कर पूछा, हे देव ! कहो यह कौनकी कन्या का रूप है ? तुमने कहाँ देखी ?

यह कोऊ स्वर्ग विषैं देवांगना का रूप है अथवा नागकुमारी का रूप है, या पृथवी विषैं आई होगी सो तुमने देखी। तब नारद माथा हिलाकर बोला कि मिथिला नामा नगरी है, वहां महासुन्दर राजा इन्द्रकेतु का पुत्र जनक राज्य करै है, ताके विदेहा रानी है सो राजा को अतिप्रिय है, तिनकी पुत्री सीता का यह रूप है। ऐसा कहकर फिर नारद भामण्डल से कहते भए, हे कुमार ! तू विषाद मतकर, तू विद्याधर राजाका पुत्र है, तोहि यह कन्या दुर्लभ नाहीं, सुलभ ही है। अर तू रूपमात्रसे ही क्या अनुरागी भया, यामें बहुत गुण हैं, याके हाव भाव विलासादिक कौन वर्णन कर सकै ? अर यही देखे तेरा चित्त वशीभूत हुआ सो क्या आश्चर्य है। जिसे देख बड़े पुरुषनिका चित्त मोहित होजाय। मैं तो आकारमात्र पट में लिख्या है, ताकी लावण्यता वाही विषैं है, लिखवे में कहां आवै, नवयौवन रूप जलकर भरा जो कांतिरूप समुद्र ताकी लहरनि विषैं वह स्तनरूप कुंभनिकर तिरै है अर ऐसी स्त्री तोहि टार और कौनके योग्य, तेरा अर वाका संगम योग्य है, या भाँति कहकर भामंडलकूं अति स्नेह उपजाया अर आप नारद आकाशविषैं विहार किया। भामंडल कामके बाणकर वींध्या अपने चित्तमें विचारता भया कि यदि यह स्त्री रत्न शीघ्र ही मुझे न मिलै तो मेरा जीवना नाहीं। देखो यह आश्चर्य है कि वह सुन्दरी परमकांतिकी धरणहारी मेरे हृदयमें तिष्ठती हुई अग्नि की ज्वाला समान हृदयकूं आताप करै है। सूर्य है सो बाह्य शरीरकों आताप करै है अर काम है सो अन्तर बाह्य दाह उपजावै है। सूर्यके आताप निवारवेकूं तो अनेक उपाय हैं परन्तु कामके दाह निवारवेकूं उपाय नाहीं। अब मुझे दो अवस्था आय बनी हैं—कै तो वाका संयोग होय अथवा कामके बाणनिकर मेरा मरण होयगा, निरंतर ऐसा विचारकर भामंडल विह्वल हो गया। सो भोजन तथा शयन सब भूल गया, ना महलविषैं वा उपवन विषैं याहि काहू ठौर साता नाहीं। यह सब वृतान्त कुमार के व्याकुलता का कारण कुमारकी माता नारदकृत जानकर कुमारके पितासूं कहती भई—हे नाथ ! अनर्थका मूल जो नारद तानै एक अत्यंत रूपवती स्त्री का चित्रपट लायकर कुमारकूं दिखाया सो कुमार चित्रपटकूं देखकर अति विभ्रम चित्त होय गया सो धैर्य नाहीं धरै है, लज्जारहित होय गया है, बारंबार चित्रपटकूं निरखै है अर सीता ऐसे शब्द उच्चारण करै है अर नाना प्रकार की अज्ञान चेष्ठा करै है मानो याहि वाय लगी है तातैं तुम शीघ्र ही साता उपजावने का उपाय विचारो। यह भोजनादिकतैं परान्मुख होय गया है सो याके प्राण न छूटें ता पहिले ही यत्न करहु। तब यह वार्ता चंद्रगति सुनकर अति व्याकुल भया अर अपनी स्त्रीसहित आयकर पुत्रकूं ऐसे कहता भया, हे पुत्र ! तू स्थिरचित्त हो अर भोजनादि सर्वक्रिया जैसें पूर्वै करै था, तैसें कर। जो कन्या तेरे मनमें बसी है सो तुझे शीघ्र ही परणाऊंगा। या भांति कहकर पुत्र को शांतता

उपजाय राजा चंद्रगति एकांत विषैं हर्ष विषाद अर आश्चर्यकूं धरता संता अपनी स्त्रीसूं कहता भया—हे प्रिये ! विद्याधरनिकी कन्या अतिरूपवंती अनुपम उनकूं तजकर भूमिगोचरिन का संबन्ध हमकूं कहां उचित अर भूमिगोचरिनके घर हम कैसें जावेंगे ? अर जो कदाचित् हम जाय प्रार्थना करें अर वह न दे तो हमारे मुखकी प्रभा कहां रहेगी ? अर कोई उपाय कर कन्या के पिताकूं यहां शीघ्र ही ल्यावैं, ऐसा उपाय नाहीं। तब भामंडल की माता कहती भई—हे नाथ ! युक्त अथवा अयुक्त तुम ही जानो, तथापि ये तिहारे वचन मुझे प्रिय लागैं। तब एक चपलवेग नामा विद्याधर अपना सेवक आदर सहित बुलाय कर राजाने सकल वृत्तांत वाके कान में कहा अर नीके समझाया सो चपलवेग राजाकी आज्ञा पाय बहुत हर्षित होय शीघ्र ही मिथला नगरी को चाल्या जैसें प्रसन्न भया तरुण हंस सुगंध की भरी जो कमलिनी ताकी ओर जाय। यह शीघ्र ही मिथला नगरी जाय पहुँच्या। आकाशतैं उतरकर अश्व का भेष धर गौ महिषादि पशुनिकूं त्रास उपजावता भया, राजाके मंडलमें उपद्रव किया। तब लोकनिकी पुकार आई, सो राजा सुनकर नगरके बाहिर निकस्या, प्रमोद उद्वेग अर कौतुकका भरचा राजा अश्वकूं देखता भया। कैसा है अश्व ? नवयौवन है अर उछलता संता अति तेजकूं धरै, मन समान है वेग जाका, सुन्दर हैं लक्षण जाके अर प्रदक्षिणारूप महा आवर्तकूं धरै है मुख जाका अर महा बलवान खुरों के अग्रभागकर मानों मृदंग ही बजावै है, जा पर कोई चढ़ न सकै अर नासिका का शब्द करता संता अति शोभायमान है, ऐसे अश्वकूं देखकर राजा हर्षित होय बारंबार लोगनिसूं कहता भया कि यह काहूका अश्व बन्धन तुड़ाय आया है। तब पंडितनिके समूह राजासूं प्रियवचन कहते भए—हे राजन् ! या तुरंग के समान कोई तुरंग नाहीं, औरोंकी तो क्या बात ? ऐसा अश्व राजा के भी दुर्लभ, आपके भी देखने में ऐसा अश्व न आया होगा। सूर्य के रथ के तुरंगनि की अधिक उपमा सुनिये है सो या समान तो ते भी न होंयगे, कोई दैव के योगतैं आपके निकट ऐसा अश्व आया है सो आप याहि अंगीकार करहु, आप महापुण्याधिकारी हो, तब राजाने अश्वको अंगीकार किया। अश्वशाला में लाय सुन्दर डोरीतैं बांधा अर भांति भांतिकी योग्य सामग्रीकर याके यत्न किए, एक मास [illegible] यहां हुआ। एक दिन सेवकने आय राजाकूं नमस्कार कर विनती कीनी, हे नाथ ! [illegible]का वनगज आया है सो उपद्रव करै है। तब राजा बड़े गज पर असवार होय [illegible] ओर गए, वह सेवक जिसने हाथीका वृत्तान्त आय कहा था ताके कहे मार्ग [illegible] महावन में प्रवेश किया। सो सरोवरके तट हाथी खड़ा देखा अर चाकरनिसूं [illegible] तेज तुरंग लाओ। तब वे मायामई अश्वकूं तत्काल ले गए। सुन्दर है शरीर जाका, राजा उस पर चढ़े सो वह आकाशमें राजाकूं ले उड़ा। तब सब परिजन पुरजन हाहाकार कर शोकवंत

गए। आश्चर्यकर व्याप्त हुआ है मन जिनका, तत्काल पाछे नगर में गए।

अथानंतर वह अश्व के रूप का धारक विद्याधर, मन समान है वेग जाका, अनेक नदी पहाड़ वन उपवन नगर ग्राम देश उलंघन कर राजाकूं रथनूपर ले गया। जब नगर निकट रह्या तब एक वृक्ष के नीचे आय निकस्या सो राजा जनक वृक्षकी डाली पकड़ लूंब रहा। वह तुरंग नगरविषें आया। राजा वृक्षतें उतर विश्राम कर आश्चर्य सहित आगें गया तहां स्वर्णमई ऊंचा कोट देख्या अर दरवाजा रत्नमई तोरणनि कर शोभाय-मान अर महासुन्दर उपवन देख्या। ताविषें नाना जाति के वृक्ष अर बेल फूलनिकर संपूर्ण देखे जिन पर नाना प्रकार के पक्षी शब्द करें हैं। अर जैसें सांझके बादले होवें तैसें नाना रंग के अनेक महल देखे मानो ये महल जिन मंदिर की सेवा ही करै हैं। तब राजा खड्ग को दाहिने हाथ में मेल सिंह समान अति निशंक क्षत्री व्रत में प्रवीण दरवाजे पर गया। दरवाजेके भीतर नाना जातिके फूलनिकी बाड़ी रत्न स्वर्ण के सिवाण जाके ऐसी वापिका, स्फटिक समान उज्ज्वल है जल जाका अर महासुगंध मनोज्ञ विस्तीर्ण कुन्द जाति के फूलनि के मंडप देखे। चलायमान है पल्लवों के समूह जिनके अर संगीत करै हैं भ्रमरों के समूह जिन पर। अर माधवी लतानि के समूह महा सुन्दर फूले देखे अर आगे प्रसन्न नेत्रनिकर भगवान का मन्दिर देख्या। कैसा है मन्दिर ? मोतिनिकी झालरनिकर शोभित, रत्ननिके झरोखनिकर संयुक्त, स्वर्णमई हजारां महास्तम्भ तिनकर मनोहर अर जहां नाना प्रकार के चित्राम सुमेरु के शिखर समान ऊंचे शिखर अर वज्रमणि जे हीरा तिनकर बेढ्या है पीठ (फरश) जाका, ऐसे जिनमंदिरकूं देखकर जनक विचारता भया कि यह इंद्रका मंदिर है अथवा अहमिंद्रका मंदिर है, ऊर्ध्वलोकतें आया है अथवा नागेन्द्र का भवन पातालतें आया है अथवा काहू कारणतें सूर्य की किरणनिका समूह पृथ्वी विषें एकत्र भया है। अहो उस मित्र विद्याधर ने मेरा बड़ा उपकार किया जो मोहि यहां ले आया, ऐसा स्थानक अब तक देख्या नाहीं। भला मंदिर देख्या ऐसा चिंतवन कर महामनोहर जो जिनमन्दिर ताविषें बैठि, फूल गया है मुख कमल जाका, श्रीजिनराजका दर्शन किया। कैसे हैं श्रीजिन-राज ? स्वर्ण समान है वर्ण जिनका अर पूर्णमासीके चन्द्रमा समान है सुन्दर मुख जिनका अर पद्मासन विराजमान अष्ट प्रातिहार्य संयुक्त कनकमई कमलनिकर पूजित अर नाना प्रकार के रत्ननिकर जड़ित जे छत्र ते हैं सिर पर जिनके अर ऊंचे सिंहासनपर तिष्ठै हैं। तब जनक हाथ जोड़ शीस निवाय प्रणाम करता भया, हर्षकर रोमांच होय आए, भक्ति के अनुरागकर मूर्छाकूं प्राप्त भया। एक क्षण में सचेत होय भगवान की स्तुति करने लाग्या। अति विश्राम कूं पाय परम आश्चर्यकूं धरता संता जनक चैत्यालय विषें तिष्ठै

है। वह चपलवेग विद्याधर जो अश्वका रूप कर इनको ले आया हुता सो अश्वका रूप दूर कर राजा चन्द्रगति के पास गया अर नमस्कार कर कहता भया—मैं जनककूं ले आया, मनोज्ञ वन में भगवान के चैत्यालय विषें तिष्ठै है, तब राजा सुनकर बहुत हर्षकूं प्राप्त भया। थोड़े से समीपी लोग लार लेय राजा चन्द्रगति, उज्ज्वल है मन जाका, पूजा की सामग्री लेय मनोरथ समान रथ पर आरूढ़ होय चैत्यालय विषें आया सो राजा जनक चन्द्रगतिकी सेवाकूं देख अर अनेक वादित्रनिका नाद सुनकर कछुइक शंकायमान भया। कैएक विद्याधर मायामई सिंहों पर चढ़े, कैएक मायामई हाथियों पर चढ़े, कैएक घोड़ों पर चढ़े, तिनके बीच राजा चन्द्रगति को देखकर जनक विचारता भया जो विजयार्ध पर्वत पर विद्याधर बसै हैं ऐसी मैं सुनता हुता सो ये विद्याधर हैं। विद्याधरनिकी सेना के मध्य यह विद्याधरों का अधिपति कोई परम दीप्तिकर शोभै है, ऐसा चिंतवन जनक करै है। ताहि समय वह चन्द्रगति राजा दैत्य जाति के विद्याधरनिका स्वामी चैत्यालयविषें आय प्राप्त भया, महाहर्षवन्त नम्रीभूत है शरीर जाका। तब जनक ताकूं देखकर कछुइक भयवान होय भगवान के सिंहासन के नीचे बैठ रह्या अर वह राजा चन्द्रगति भक्ति कर भगवान के चैत्यालय विषें जाय प्रणाम कर विधिपूर्वक महाउत्तम पूजा करी अर परम स्तुति करता भया। बहुरि सुन्दर हैं स्वर जाके ऐसी वीणा हाथ में लेयकर महाभावना सहित भगवान के गुण गावता भया। सो कैसें गावै है सो सुनो, अहो भव्यजीव हो! जिनेन्द्रको आराधहु, कैसे हैं जिनेन्द्रदेव? तीन लोक के जीवनिकूं वर-दाता अर अविनाशी है सुख जिनके अर देवनिमें श्रेष्ठ जे इंद्रादिक तिनकर नमस्कार करने योग्य हैं। कैसे हैं वे इंद्रादिक? महा उत्कृष्ट जो पूजा का विधान ताविषें लगाया है चित्त जिन्होंने। अहो उत्तम जन हो! श्रीऋषभदेवको मन वच कायकर निरन्तर भजो। कैसे हैं ऋषभदेव? महा उत्कृष्ट हैं अर शिवदायक हैं, जिनके भजेतें जन्म २ के किये पाप समस्त विलय होय हैं। अहो प्राणी हो! जिनवरको नमस्कार करहु, कैसे हैं जिनवर? महा अतिशय धारक हैं, कर्मनिके नाशक हैं अर परमगति जो निर्वाण ताकूं प्राप्त भए हैं अर सर्व सुरासुर नर विद्याधर, उन कर पूजित हैं चरण कमल जिनके, क्रोधरूप महाबैरी का भंग करनहारे हैं। मैं भक्तिरूप भया जिनेन्द्रकूं नमस्कार करूँ हूँ। उत्तम लक्षणकर संयुक्त है देह जिनका अर विनय कर नमस्कार करें हैं सर्व मुनियों के समूह जिनकों, ते भगवान नमस्कार मात्र ही से भक्तों के भय हरै हैं। अहो भव्य जीव हो! जिनवर को बारंबार प्रणाम करहु, वे जिनवर अनुपमगुण को धरै हैं अर अनुपम है काया जिनकी अर हते हैं संसारमई सकल कुकर्म जिनने अर रागादिक रूप जे मल तिनकर रहित महानिर्मल हैं अर ज्ञानावरणादिक रूप जो पट तिनके दूर करनहारे अर संसार पार करवेकूं अति प्रवीण हैं अर अत्यन्त

पवित्र हैं, या भांति चन्द्रगति बीण बजाय भगवान की स्तुति करी। तब भगवान के सिंहासनके नीचेतें राजा जनक भय तजकर जिनराजकी स्तुति कर निकस्या, महाशोभाय-मान। तब चन्द्रगति जनककूं देख, हर्षित भया है मन जाका, सो पूछताभया—तुम कौन हो? या निर्जन स्थानकविषैं भगवान के चैत्यालयविषैं कहांतैं आए हो? तुम नागों के पति नागेन्द्र हो अथवा विद्याधरों के अधिपति हो? हे मित्र! तुम्हारा नाम क्या है सो कहो? तब जनक कहता भया—हे विद्याधरों के पति! मैं मिथला नगरी से आया हूँ अर मेरा नाम जनक है, मायामई तुरंग मोहि ले आया है। जब ये समाचार जनक ने कहे तब दोऊ अति प्रीतिकर मिले, परस्पर कुशल पूछी, एक आसन पर बैठ फिर क्षण एक तिष्ठकर दोऊ आपस में विश्वासकों प्राप्त भए। तब चन्द्रगति और कथा कर जनककूं कहते भए. हे महाराज! मैं बड़ा पुण्यवान जो मोहि मिथला नगरी के पति का दर्शन भया, तिहारी पुत्री महा शुभ लक्षणनिकर मण्डित है, मैं बहुत लोगनि के मुख से सुनी है सो मेरे पुत्र भामंडलको देवो, तुमसे संबन्ध पाय मैं अपना परम उदय मानूंगा। तब जनक कहते भए, हे विद्याधराधिपति! तुम जो कही सो सब योग्य है परन्तु मैं अपनी पुत्री राजा दशरथके बड़े पुत्र जो श्रीरामचन्द्र तिनकूं देनी करी है। तब चन्द्रगति बोले, काहेतें उनको देनी करी है? तब जनकने कही जो तुमको सुनिवेको कौतुक है तो सुनहु। मेरी मिथिलापुरी रत्नादिक धनकर अर गौ आदि पशुमति कर पूर्ण सो अर्धबर्बर देशके म्लेच्छ महा भयंकर उन्होंने आय मेरे देशको पीड़ा करी, धनके समूह लूटने लगे अर देशमें श्रावक अर यतिका धर्म मिटने लगा सो मेरे म्लेच्छोंके महायुद्ध भया। ता समय राम आय मेरी अर मेरे भाई की सहायता करी। वे म्लेच्छ जो देवों से भी दुर्जय सो जीते। अर रामका छोटा भाई लक्ष्मण इन्द्र समान पराक्रमका धरणहारा है अर बड़े भाईका सदा आज्ञाकारी, महा विनयकर संयुक्त है। वे दोनों भाई आयकरजो म्लेच्छनिकी सेनाको न जीतते तो समस्त पृथवी म्लेच्छमई हो जाती। वे म्लेच्छ महा अविवेकी, शुभ क्रिया रहित, लोककूं पीड़ाकारी, महाभयंकर विष समान दारुण उत्पातका स्वरूप ही हैं। सो रामके प्रसाद कर सब भाजगए। पृथ्वीका अमंगल मिट गया। वे दोनों राजा दशरथके पुत्र, महा-दयालु, लोकनिके हितकारी, तिनकूं पायकर राजा दशरथ सुखसे सुरपति समान राज्य करै है। ता दशरथके राज्यविषैं महा संपदावान लोक बसै हैं अर दशरथ महाशूरवीर है। जाके राज्य में पवन हू काहूका कछु नाहीं हर सकै तो और कौन हरै? रामलक्ष्मणने मेरा ऐसा उपकार किया। तब मोहि ऐसी चिंता उपजी जो मैं इनका कहा प्रतिउपकार करूं। रात्रि दिवस मोहि निद्रा न आवती भई। जाने मेरे प्राण राखे, प्रजा राखी, ता राम समान मेरे कौन? मोते कबहु कछु उनकी सेवा न बनी अर उनने बड़ा उपकार किया। तब मैं विचा-

रता भया—जो अपना उपकार करै अर उसकी सेवा कछु न बनै तो कहा जीतव्य ? कृतघ्न का जीतव्य तृण समान है। तब मैंने अपनी पुत्री सीता नवयौवन-पूर्ण राम-योग्य जान रामको देवी विचारी। तब मेरा सोच कछु इक मिट्या। मैं चिंतारूप समुद्रमें डूबा हुता सो पुत्री नावरूप भई तातें मैं सोच समुद्रतें निकस्या। राम महा तेजस्वी हैं। यह वचन जनकके सुन चंद्रगतिके निकटवर्ती और विद्याधर मलिनमुख होय कहते भए कि अहो तुम्हारी बुद्धि शोभायमान नाहीं। तुम भूमिगोचरी हो, अपंडित हो। कहां वे रंक म्लेच्छ अर कहाँ उनके जीतवे की बड़ाई, यामें कहा रामका पराक्रम ? जाकी एती प्रशंसा तुमने म्लेच्छनिके जीतवे कर करी। रामका जो ऐसा स्तोत्र किया सो इसमें उलटी निंदा है। अहो ! तुम्हारी बात सुन हाँसी आवै है। जैसें बालकको विषफल ही अमृत भासै है अर दरिद्रीकूं बदरीफल (बेर) ही नीके लागें अर काक सूके वृक्षविषें प्रीति करै, यह स्वभाव ही दुर्निवार है। अब तुम भूमिगोचरियों का खोटा संबंध तजकर यह विद्याधरों का इन्द्र राजा चंद्रगति तासूं संबंध करहु। कहाँ देवों समान सम्पदा के धरणहारे विद्याधर अर कहाँ वे रंक भूमिगोचरी सर्वथा अति दुःखी। तब जनक बोले, क्षीरसागर अत्यंत विस्तीर्ण है परंतु तृषा हरता नाहीं अर वापिका थोड़े ही मिष्ट जल से भरी है सो जीवनि की तृषा हरै है। अर अंधकार अत्यन्त विस्तीर्ण है वाकरि कहा अर दीपक अल्प भी है परन्तु पृथ्वी में प्रकाश करै है, पदार्थनिको प्रगट करै है। अर अनेक माते हाथी जो पराक्रम न कर सकें सो अकेला केसरी सिंहका बालक करै है। ऐसे जब राजा जनकने कहा तब वे सर्व विद्याधर कोपवंत होय अति क्रूर शब्द कर भूमिगोचरियोंकी निंदा करते भए। हो जनक ! वे भूमिगोचरी विद्या के प्रभावतें रहित सदा खेद खिन्न शूरवीरतारहित आपदावान, तुम कहा उनकी स्तुति करो हो? पशुनिमें अर उनमें भेद कहा? तुममें विवेक नाहीं, तातें उनकी कीर्ति करो हो ? तब जनक कहते भए—हाय! हाय ! बड़ा कष्ट है जो मैंने पापके उदय-कर बड़े पुरुषनिकी निंदा सुनी। तीन भुवनमें विख्यात जे भगवान् ऋषभदेव, इन्द्रादिक देवनिमें पूजनीक, तिनका इक्ष्वाकुवंश लोकमें पवित्र सो कहा तुम्हारे श्रवण में न आया ? तीन लोकके पूज्य श्री तीर्थंकरदेव अर चक्रवर्ती बलभद्रनारायण सो भूमिगोचरियों में उपजे, तिनकूं तुम कौन भांति निंदो हो। अहो विद्याधरो! पंचकल्याणककी प्राप्ति भूमिगोचरियों के ही होय है, विद्याधरोंमें कदाचित् किसीके तुमने देखी ? इक्ष्वाकुवंश में बड़े बड़े राजा जो षट् खण्ड पृथवीके जीतनहारे तिनके चक्रादि महारत्न अर बड़ी ऋद्धिके स्वामी चक्रके धारी, इन्द्रादिक कर गाई है उदार कीर्ति जिनकी, ऐसे गुणोंके सागर कृतकृत्य पुरुष ऋषभदेवके वंशके बड़े २ पृथवीपति या भूमिमें अनेक भए। ताही वंशमें राजा अनरण्य बड़े राजा भए। तिनके राणी सुमंगला, ताके दशरथ पुत्र भए; जे क्षत्री धर्ममें तत्पर

लोकनिकी रक्षा निमित्त अपना प्राण त्याग करते न शंकें, जिनकी आज्ञा समस्त लोक सिर पर धरैं, जिनके चार पटराणी मानों चार दिशाहो हैं अर सर्व शोभाकूं धरैं अर गुणनिकरि उज्ज्वल पांच सौ और राणी, मुखकर जीता है चन्द्रमा जिनने, जे नाना प्रकार के शुभचरित्रनिकर पतिका मन हरें हैं। अर राजा दशरथ के बड़े पुत्र राम जिनकूं पद्म कहिए लक्ष्मीकर मंडित है शरीर जिनका, दीप्तिकर जीता है सूर्य अर कीर्ति कर जीताहै चन्द्रमा, स्थिरता कर जीता है सुमेरु, शोभाकर जीता है इन्द्र, शूरवीरता कर जीते हैं सर्व सुभटजिनने, सुन्दर हैं चरित्र जिनके, जिनका छोटा भाई लक्ष्मण जाके शरीरमें लक्ष्मी का निवास, जाके धनुषको देख शत्रु भयकर भाज जावें अर तुम विद्याधरोंको उनसे भी अधिक बताओ हो ? सो काक भी तो आकाश में गमन करै है तिन में कहा गुण है ? अर भूमि गोचरनिमें भगवान् तीर्थंकर उपजै हैं तिनको इन्द्रादिक देव भूमि में मस्तक लगाय नमस्कार करै हैं, विद्याधरोंकी कहा बात ? ऐसे वचन जब जनकने कहे तब वे विद्याधर एकांतमें तिष्ठकर आपस में मंत्रकर जनककू कहते भए, हे भूमिगोचरनि के नाथ ! तुम राम लक्ष्मण का एता प्रभाव कहो हो अर वृथा गरज गरज बातें करो हो, सो हमारे उनके बल पराक्रम की प्रतीति नाहीं तातें हम कहैं हैं सो सुनहु—एक वज्रावर्त, दूजा सागरावर्त—ये दो धनुष तिनकी देव सेवा करै हैं सो ये धनुष वे दोनों भाई चढ़ावें तो हम उनकी शक्ति जानें। बहुत कहनेकर कहा, जो वज्रावर्त धनुष राम चढ़ावें तो तुम्हारी कन्या परणें नातर हम बलात्कार कन्याकूं यहां ले आवेंगे, तुम देखते ही रहोगे। तब जनकने कही, यह बात प्रमाण है। तब उसने दोऊ धनुष दिखाए सो जनक उन धनुषनिकूं अति विषम देखकर कछुइक आकुलताकूं प्राप्त भया। बहुरि वे विद्याधर भाव थकी भगवानकी पूजा स्तुतिकर गदा अर हलादि रत्नों कर संयुक्त धनुषकू ले और जनककूं ले मिथिलापुरी आए अर चंद्रगति उपवनसे रथनूपुर गया। जब राजा जनक मिथिलापुरी आए तब नगरीकी महाशोभा भई, मंगलाचार भए अर सब जन सन्मुख आए। अर वे विद्याधर नगरके बाहिर एक आयुधशाला बनाय तहां धनुष धरे अर महा गर्वको धरते संते तिष्ठे। जनक खेद सहित किंचित भोजन खाय चिंताकर व्याकुल उत्साह रहित सेजपर पड़े। तहां महा नम्रीभूत उत्तम स्त्री बहुत आदर सहित चंद्रमाकी किरणसमान उज्ज्वल चमर ढारती भई। राजा अति दीर्घ निःश्वास महा उष्ण अग्नि समान नाखै। तब रानी विदेहाने कहा—हे नाथ ! तुमने कौन स्वर्गलोककी देवांगना देखी, जिसके अनुरागकर ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भए हो; सो हमारे जानवेमें वह कामिनी गुणरहित निर्दई है जो तुम्हारे आताप विषैं करुणा नाहीं करै है। हे नाथ ! वह स्थानक हमें बताओ जहांतैं वाहि लें आवैं। तुम्हारे दुःख कर मुझे अर सकल लोकनिकूं दुःख होय है। तुम ऐसे महासौभाग्यवन्त ताहि कहा न रुचै। वह कोई पाषा-

णचित्त है। उठो, राजाओं को जे उचित कार्य होंय सो करो। यह तिहारा शरीर है तो सब ही मनवांछित कार्य होंगे। या भांति राणी विदेहा जो प्राणहूतें प्रिया हुती सो कहती भई। तब राजा बोले–हे प्रिये, हे शोभने, हे वल्लभे! मुझे खेद और ही है, तू वृथा ऐसी बात कही, काहेको अधिक खेद उपजावै है, तोहि या वृत्तांतकी गम्य नाहीं तातें ऐसे कहै है। बहु मायामई तुरंग मोहि विजयार्धगिरिमें ले गया, तहाँ रथनूपुर के राजा चंद्रगति से मेरा मिलाप भया सो वानै कही–तुम्हारी पुत्री मेरे पुत्रको देवो। तब मैंने कही–मेरी पुत्री दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्रको देनी करी है। तब वाने कही जो रामचन्द्र वज्रावर्त धनुषकूं चढ़ावैं तो तिहारी पुत्री परणें, नातर मेरा पुत्र परणेगा। सो मैं तो पराए वश जाय पड्या तब उनके भय थकी अर अशुभकर्म के उदय थकी यह बात प्रमाण करी सो वज्रावर्त अर सागरावर्त दोऊ धनुष ले विद्याधर यहां आए हैं ते नगरके बाहिर तिष्ठै हैं। सो मैं ऐसी जानी हूँ जो ये धनुष इन्द्रहूते चढ़ाए न जांय। जिनकी ज्वाला दसों दिशामें फैल रही है अर मायामई नाग फुंकारै हैं सो नेत्रनिसों तो देखे न जावैं। धनुष बिना चढ़ाए ही स्वतः स्वभाव महा भयानक शब्द करै हैं, इनको चढ़ायवेकी कहा बात। जो कदाचित् श्रीरामचन्द्र धनुषकूं न चढ़ावैं तो यह विद्याधर मेरी पुत्रीकूँ जोरावरी लेजावेंगे, जैसें स्याल के समीप तें मांसकी डली खग कहिए पक्षी ले जाय। सो धनुषके चढ़ायवेके बीस दिन बाकी हैं, एही करार है, जो न बना तो वह कन्याकूं ले जायगे, फिर याका देखना दुर्लभ है। हे श्रेणिक! जब राजा जनक या भांति कही तब राणी विदेहाके नेत्र अश्रुपातसूं भर आए अर पुत्रके हरवेका दुःख भूल गई हुती सो याद आया। एक तो प्राचीन दुःख, बहुरि नवीन दुःख अर आगामी दुःख सो महा शोककर पीड़ित भई, महा शब्दकर पुकारने लगी, ऐसा रुदन किया जो सकल परिवार के मनुष्य विह्वल होगए। राजासूं रानी कहै है, हे देव! मैं ऐसा कौनसा पाप किया जो पहिले तो पुत्र हरया गया अर अब पुत्री भी हरी जाय है, मेरे तो स्नेहका अवलंबन एक यह शुभ चेष्टित पुत्री ही है। मेरे तिहारे सर्व कुटुम्बके लोगनिके यह पुत्री ही आनंदका कारण है सो पापिनीके एक दुःख नाहीं मिटै है अर दूजा दुःख आय प्राप्त होय है। या भांति शोकके सागरमें पड़ी रानी रुदन करती ताहि राजा धैर्य बंधाय कहते भए–हे रानी! रुदन कर कहा! जो पूर्वे या जीवने कर्म उपजें हैं, वे उदय अनुसार फलैं हैं, संसार रूप नाटक का आचार्य जो कर्म सो समस्त प्राणीनिकूं नचावै है, तेरा पुत्र गया सो अपने अशुभके उदयतें गया, अब शुभ कर्मका उदय है सो सकल मंगल ही होहिं। ऐसे नाना प्रकार के सारवचननिकर राजा जनक ने रानी विदेहाकूं धैर्य बंधाया। तब रानी शांतिकूं प्राप्त भई।

बहुरि राजा जनक नगर बाहिर जाय धनुषशाला के समीप स्वयंवर मण्डप रच्या

अर सकल राजपुत्रवि के बुलावेकूं पत्र पठाए, सो पत्र बांच सर्व राजपुत्र आए। अर अयोध्या वगरीको हू दूत भेजे सो माता पिता संयुक्त रामादिक चारों भाई आए, राजा जनक बहुत आदरकर पूजे। सीता परमसुन्दरी सातसौ कन्याओं के मध्य महल के ऊपर तिष्ठै है। बड़े २ सामन्त याको रक्षा करें अर एक महा पंडित खोजा जानें बहुत देखी बहुत सुनी है अर स्वर्णरूप वेतकी छड़ी जाके हाथमें, सो ऊंचे शब्दकर कहै है, प्रत्येक राजकुमार को दिखावै है—हे राजपुत्री ! यह श्री रामचन्द्र कमललोचन राजा दशरथ के पुत्र हैं, तू नीके देख अर यह इनका छोटा भाई लक्ष्मीवान् लक्ष्मण महा ज्योतिकूं धरै है अर यह इनका भाई महाबाहु भरत है अर यह यातें छोटा शत्रुघ्न है। ये चारों ही भाई गुणनि के सागर हैं। इन पुत्रनिकर राजा दशरथ पृथ्वी की भली भांति रक्षा करै है, जाके राज्य में भयका अंकुर नाहीं। अर यह हरिवाहन महा बुद्धिमान काली घटासमान है प्रभा जाकी अर यह चित्ररथ महागुणवान तेजस्वी महा सुन्दर है। अर यह हमुं खनामाकुमार अतिमनोहर महातेजस्वी है अर यह श्रीसंजय, यह जय, यह भानु, यह सुप्रभ, यह मन्दिर, यह बुध, यह विशाल, यह श्रीधर, यह वीर, यह बन्धु, यह भद्रबल, यह मयूरकुमार इत्यादि अनेक राजकुमार महापराक्रमी महासौभाग्यवान निर्मल वंशके उपजे, चन्द्रमा समान निर्मल है कांति जिनकी, महागुणवान, भूषण के धरणहारे, परम उत्साहरूप महाविनयवन्त, महाज्ञानी, महाचतुर आय इकट्ठे भए हैं अर यह सकाशपुर का नाथ—याके हस्ती पर्वत समान अर तुरंग महाश्रेष्ठ अर रथ महामनोज्ञ अर योधा अद्‌भुत पराक्रम के धारी अर यह सुरपुर का राजा, यह रंध्रपुर का राजा, यह नंदनपुर का राजा, यह कुन्दनपुर का अधिपति, यह मगधदेशका राजेन्द्र, यह कंपिल्य नगरका नरपति, इनमें कैयक इक्ष्वाकुवंशी अर कैयक नागवंशी अर कैयक सोमवंशी अर कैयक उग्रवंशी अर कैयक हरिवंशी अर कैयक कुरुवंशी इत्यादि महागुणवंत जे राजा सुनिए हैं ते सर्व तेरे अर्थ आए हैं। इनके मध्य जो पुरुष वज्रावर्त धनुषकूं चढ़ावै ताहि तू वर। जो पुरुषनि में श्रेष्ठ होयगा ताहीसूं यह कार्य होयगा। या भांति खोजा कही। अर राजा जनक सबनिकूं एकत्र कर सब ही राजकुमार अनुक्रमतैं धनुष की ओर पठाए सो गए। सुन्दर है रूप जिनका, सो सर्व ही धनुषकूं देख कंपायमान भए। धनुषतैं सर्व ओर अग्निकी ज्वाला बिजुली समान निकसै अर मायामई भयानक सर्प फुंकार करैं। तब कैयक तो कानों पर हाथ धर भागे अर कैयक धनुषकूं देखकर दूर ही कीलेसे ठाढ़े रहे, कांपै हैं समस्त अंग जिनके अर मुंद गए हैं नेत्र जिनके। अर कैयक ज्वर करि व्याकुल भए अर कैयक धरती विषैं गिर पड़े अर कैयक ऐसे भए जो बोल न सकैं अर कैयक मूर्छाकूं प्राप्त भए। अर कैयक धनुषके नागनिके श्वासकरि जैसें वृक्षका सूका पत्र पवनसे उड़ा उड़ा फिरै, तैसें उड़ते

किरें। अर कैयक कहते भए जो अब जीवते घर जावें तो महादान करें. सकल जीवनिकूं अभयदान देवें। अर कैयक ऐसे कहते भए, यह रूपवती कन्या है तो कहा, याके निमित्त प्राण तो न देने। अर कैयक कहते भए–यह कोई मायामई विद्याधर आया है सो राजाओं के पुत्रनिकूं बाधा उपजाई है। अर कैयक महाभाग ऐसे कहते भए–अब हमारे स्त्रीतें प्रयोजन नाहीं, यह काम महा दुःखदाई है। जैसें अनेक साधु अथवा उत्कृष्ट श्रावक शील व्रत धारे हैं तैसें हम हू शीलव्रत धारेंगे, धर्म ध्यान कर काल व्यतीत करेंगे। या भाँति सर्व परान्मुख भए। अर श्रीरामचन्द्र धनुष चढ़ावनेकूं उद्यमी महामाते हाथीकी नाईं उठकर मनोहर गति से चलते जगतकूं मोहते धनुष के निकट गए सो धनुष राम के प्रभावतें ज्वाला रहित होय गया, जैसा सुन्दर देवोपुनीत रत्न है तैसा सौम्य होय गया; जैसें गुरुके निकट शिष्य सौम्य होय जाय। तब श्रीरामचंद्र धनुषकूं हाथ लेय करि चढ़ाय कर खेंचते भए सो महाप्रचंड शब्द भया, पृथवी कंपायमान भई। कैसा है धनुष ? विस्तीर्ण है प्रभा जाकी, जैसा मेघ गाजे तैसा धनुषका शब्द भया, मयूरनिके समूह मेघका आगमन जान नाचने लगे। जाके तेज के आगें सूर्य ऐसा भासने लग्या जैसा अग्निका कणा भासै अर स्वर्णमई रजकर आकाशके प्रदेश व्याप्त होयगए। यह धनुष देवाधिष्ठित है सो आकाशविषैं धन्य धन्य शब्द कहते भए अर पुष्पनिकी वर्षा होती भई। देव नृत्य करते भए। तब राम महादयावन्त धनुषके शब्दकरि लोकनिकूं कंपायमान देख धनुषकूं उतारते भए। लोक ऐसे डरे मानों समुद्र के भ्रमर में आय गए हैं। तब सीता अपने नेत्रनि करि श्रीरामकूं निरखती भई। कैसे हैं नेत्र ? पवनकरि चंचल, जैसें कमलोंका दल होय तातें अधिक है कांति जिनकी अर जैसा कामका बाण तीक्ष्ण होय तैसें तीक्ष्ण हैं। सीता रोमांच कर संयुक्त मनकी वृत्तिरूप माला जो प्रथम देखते ही इनके ओर प्रेरी हुती, बहुरि लोकाचार निमित्त हाथ में रत्नमाला लेकर श्रीराम के गले में डारी, लज्जा से नम्रीभूत है मुख जाका, जैसें जिनधर्म के निकट जीवदया तिष्ठै तैसें राम के निकट सीता आय तिष्ठी। श्रीराम अतिसुन्दर हुते सो याके समीपतें अत्यन्त सुन्दर भासते भए, इन दोऊनिके रूप का दृष्टान्त देवे में न आवै। अर लक्ष्मण दूजा धनुष सागरावर्त, क्षोभकूं प्राप्त भया जो समुद्र ताके समान है शब्द जाका, उसे चढ़ाय खेंचते भए, सो पृथवी कंपायमान भई। आकाश में देव जय जयकार शब्द करते भए अर पुष्प वर्षा होती भई। लक्ष्मण धनुषकूं चढ़ाय खेंचकर जब बाण पर दृष्टि धरी तब सर्व डरे, लोकनिकूं भयरूप देख आप धनुष की पिणच (प्रत्यंचा) उतार महाविनय संयुक्त रामके निकट आए, जैसे ज्ञान के निकट वैराग्य आवै। लक्ष्मणका ऐसा पराक्रम देख चन्द्रगति का पठाया जो चन्द्रवर्द्धन विद्याधर आया हुता सो अति प्रसन्न होय अष्टादश कन्या विद्याधरनिकी पुत्री

लक्ष्मणकूं दीनी। श्रीराम लक्ष्मण दोऊ धनुष लेय महाविनयवंत पिताके पास आए अर सीता हू आई। अर जेते विद्याधर आए हुते सो रामलक्ष्मण का प्रताप देख चंद्रवर्द्धन की लार रथनूपुर गए, जाय राजा चन्द्रगतिकूं सर्व वृत्तांत कह्या सो सुनकर चिंतावान होय तिष्ठया। अर स्वयम्वर मंडप में राम के भाई भरत हू आए हुते सो मन में ऐसा विचारते भए कि मेरा अर राम लक्ष्मणका कुल एक अर पिता एक परन्तु इनकासा अद्‌भुत पराक्रम मेरा नाहीं, ये पुण्याधिकारी हैं, इनकेसे पुण्य मैंने न उपार्जे। यह सीता साक्षात् लक्ष्मी, कमल के भीतर दल समान है वर्ण जाका, राम सारिखे पुण्याधिकारी ही की स्त्री होय। तब केकई इनकी माता सर्व कलाविषें प्रवीण भरत के चित्त का अभिप्राय जान पति के कान विषें कहती भई–हे नाथ! भरत का मन कछुइक विलखा दीखे है, ऐसा करो जो यह विरक्त न होय। कनक की राणी सुप्रभा उसकी पुत्री लोकसुन्दरी है, स्वयंवर मण्डप की विधि बहुरि कराओ अर वह कन्या भरतके कंठ में वरमाला डारे तो यह प्रसन्न होय। तब दशरथ याकी बात प्रमाणकर कनकके कान पहुँचाई। तब कनक दशरथ की आज्ञा प्रमाणकर जे राजा गए हुते सो पीछे बुलाए। यथा योग्य स्थान विषें तिष्ठे सब जे भूपति तेई भए नक्षत्रनिके समूह तिनके मध्य तिष्ठता जो भरतरूप चंद्रमा ताहि कनककी पुत्री लोकसुन्दरी रूप शुक्लपक्ष की रात्रि सो महाअनुरागकरि वरती भई, मनकी अनुरागतारूप माला तो पहिले अवलोकन करते ही डारी हुती, बहुरि लोकाचारमात्र सुमन कहिये पुष्प तिनकी वरमाला भी कंठ में डाली। कैसी है कनक की पुत्री? कनक समान है प्रभा जाकी। जैसे सुभद्रा भरत चक्रवर्तीकूं वरया हुता, तैसे यह दशरथ के पुत्र भरतकों वरती भई। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतें कहैं हैं–हे श्रेणिक! कर्मनिकी विचित्रता देख, भरत जैसे विरक्त चित्त राजकन्या पर मोहित भए अर सर्व राजा विलखे होय अपने अपने स्थानक गए। जानै जैसा कर्म उपार्जा होय, तैसा ही फल पावै है। किसीके द्रव्यको दूसरा चाहने वाला न पावै।

अथानंतर मिथिलापुरीमें सीता अर लोकसुन्दरीके विवाह का परम उत्सव भया। कैसी है मिथिलापुरी? ध्वजा अर तोरणनिके समूहकरि मंडित है अर महा सुगंध करि भरी है, शंख आदि वादित्रनिके समूहसे पूरित है। श्रीराम अर भरत का विवाह महोत्सव सहित भया। द्रव्यकरि भिक्षुक लोग पूर्ण भए। जे राजा विवाह का उत्सव देखवेकूं रहे हुते ते दशरथ अर जनक कनक दोनों भाईसे अति सन्मान पाय अपने अपने स्थानक गए। राजा दशरथ के चारों पुत्र, रामकी स्त्री सीता, भरत की स्त्री लोकसुन्दरी महाउत्सवनिसूं अयोध्याके निकट आए। कैसे हैं दशरथके पुत्र? सकल पृथ्वी विषें प्रसिद्ध है कीर्ति जिनकी

अर परमरूप परमगुण सोई भया समुद्र ताविषैं मग्न हैं अर परम रत्ननिके आभूषण तिन-कर शोभित है शरीर जिनके, माता पिताकूं उपजाया है महाहर्ष जिनने, नाना प्रकारके वाहन तिनकर पूर्ण जो सैना सोई भया सागर, जहां अनेक प्रकार के वादित्र बाजे हैं जैसें जलनिधि गाजै, ऐसी सैनासहित राजमार्ग होय महल पधारे। मार्ग में जनक अर कनक की पुत्रीकूं सब ही देखै हैं सो देख देख अति हर्षित होय हैं अर कहै हैं, इनकी तुल्य और कोऊ नाहीं। ये उत्तम शरीरकूं धरै हैं, इनके देखवेकूं नगर के नर नारी मार्ग में आय इकट्ठे भए तिनकरि मार्ग अति संकीर्ण भया। नगर के दरवाजेसों लेय राजमहल पर्यन्त मनुष्यनिका पार नाहीं, किया है समस्त जननिने आदर जिनका। ऐसे दशरथ के पुत्र, इनके श्रेष्ठ गुणनि की ज्यों-ज्यों लोक स्तुति करैं त्यों-त्यों ये नीचे नीचे हो रहे। महासुखके भोगनहारे वे चारों ही भाई सुबुद्धि अपने अपने महलनिमें आनन्दसों विराजे। यह सब शुभ कर्मका फल विवेकी जन जानकर ऐसे सुकृत करहु जाकरि सूर्यतें अधिक प्रताप होय। जेते शोभायमान उत्कृष्ट फल हैं ते सर्व धर्म के प्रभावतें हैं अर जे महानिंद्य कटुक फल हैं ते सब पाप कर्मके उदयतें हैं, तातें सुखके अर्थि पाप क्रियाकूं तजहु अर शुभ क्रिया करहु।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषैं राम लक्ष्मण का धनुष चढ़ावने आदि का प्रताप वर्णन अर राम का सीतासों तथा भरत का लोकसुन्दरी सों विवाह वर्णन करने वाला अट्ठाईसवां पर्व पूर्ण भया ॥२८॥

उनतीसवां पर्व

(राजा दशरथ का धर्म श्रवण)

अथानंतर आषाढ़ शुक्ला अष्टमीतें अष्टाह्निकाका महा उत्सव भया। राजा दशरथ जिनेन्द्रकी महा उत्कृष्ट पूजा करनेकूं उद्यमी भया, राज्यधर्म विषैं अति सावधान है। राजा की सब रानी पुत्र बांधव तथा सकल कुटुम्ब जिनराजके प्रतिबिम्बनिकी महा पूजा करवेकूं उद्यमी भए। केई बहुत आदर से पंच वर्णके जे रत्न तिनके चूर्णका मांडला मांडै हैं अर केई नाना प्रकारके रत्ननिकी माला बनावै हैं, भक्ति विषैं पाया है अधिकार जिनने। अर कोऊ एला (इलायची) कपूरादि सुगंध द्रव्यनिकरि जलकूं सुगंध करै है अर कोऊ सुगंध जलसे पृथवी को छांटै है अर कोऊ नाना प्रकारके परम सुगंध पीसै है अर कोऊ जिन-मंदिरों के द्वारनिकी शोभा अति दैदीप्यमान वस्त्रनिकरि करावै है अर कोऊ नानाप्रकार की धातुओंके रंगोंकर चैत्यालयनिकी दीवारों को मढ़वावै है, या भाँति अयोध्यापुरी के सब ही लोक वीतराग देवकी परम भक्ति को धरते संते अत्यन्त हर्षकरि पूर्ण जिनपूजाके उत्साह से उत्तम पुण्यकूं उपार्जते भए। राजा दशरथ भगवान का अति विभूति करि अभिषेक करावता भया। नाना प्रकार के वादित्र बाजते भए। तब राजाने अष्ट

दिनोंके उपवास किए अर जिनेन्द्रकी अष्ट प्रकार के द्रव्यनितैं महा पूजा करी अर नाना प्रकारके सहज पुष्प अर कृत्रिम कहिए स्वर्ण रत्नादिकके रचे पुष्प तिनकरि अर्चा करी, जैसे नंदीश्वर द्वीपविषें देवनिकरि संयुक्त इन्द्र जिनेन्द्रकी पूजाकरै तैसें राजा दशरथने अयोध्यामें पूजा करी। अर चारों ही पटरानियोंको गंधोदक पठाया, सो तीनके निकट तो तरुण स्त्री ले गई सो शीघ्र ही पहुँचा। वे उठकर समस्त पापोंका दूर करनहारा जो गन्धोदक ताहि मस्तक अर नेत्रनितैं लगावती भई। अर रानी सुप्रभाके निकट वृद्ध खोजा ले गया हुता सो शीघ्र नहीं पहुंचा, तातैं रानी सुप्रभा परम कोप अर शोककूं प्राप्त भई। मनमें चितवती भई जो राजा उन तीन रानियों को गन्धोदक भेजा अर मोहि न भेजा सो राजाका कहा दोष है, मैं पूर्व जन्ममें पुण्य न उपजाया। ये पुण्यवती महा सौभाग्यवती प्रशंसा करवे योग्य हैं जिनको भगवानका महापवित्र गन्धोदक राजाने पठाया। अपमानकर दग्ध जो मैं सो मेरे हृदय का ताप और भांति न मिटै, अब मुझे मरण ही शरण है। ऐसा विचार एक विशाखानामा भण्डारीकूं बुलाय कहती भई-हे भाई ! यह बात तू काहूसे मत कहियो। मोहि विषतैं प्रयोजन है सो तू शीघ्र ले आ। तब प्रथम तो वाने शंकावान होय लायवे में ढील करी। बहुरि विचारी कि औषधि निमित्त मंगाया होयगा सो लेवेकूं गया। अर यह शिथिलगात्र मलिन चित्त वस्त्र ओढ़ सेजपर पड़ी। राजा दशरथने अंतःपुर में आयकर तीन रानी देखी, सुप्रभा न देखी; सुप्रभासूं राजा का बहुत स्नेह सो इसके महलमें राजा आय खड़े रहे। ता समय जो विष लेनेकूं पठाया हुता सो ले आया अर कहता भया-हे देवी ! यह विष लेहु। यह शब्द राजा जे सुना तब उसके हाथसे उठाय लिया अर आप रानी की सेजपर बैठ गए। तब रानी सेजसे उतर कर नीचे बैठी तब राजा आग्रहकर सेज ऊपर बैठाई अर कहते भए-हे वल्लभे ! ऐसा क्रोध काहेतैं किया, जाकर प्राण तजा चाहै है। सर्व वस्तुनितैं जीतव्य प्रिय है अर सर्व दुःखोंसे मरणका बड़ा दुःख है, ऐसा तोहि कहा दुःख है जो विष मंगाया। तू मेरे हृदय का सर्वस्व है, जाने तुझे क्लेश उपजाया हो ताको मैं तत्काल तीव्र दण्ड दूं। हे सुन्दरमुखी ! तू जिनेन्द्रका सिद्धांत जानै है, शुभ अशुभ गति के कारण जानै है, जे विष तथा शस्त्र आदि से अपघात कर मरै हैं ते दुर्गति में पड़ै हैं, ऐसी बुद्धि तोहि क्रोधसे उपजी सो क्रोधकों धिक्कार ! यह क्रोध महा अन्धकार है, अब तू प्रसन्न हो; जे पतिव्रता हैं तिनने जौ लग प्रीतम के अनुराग के वचन न सुने तौ लग ही क्रोधका आवेश है। तब सुप्रभा कहती भई हे नाथ ! तुम पर कोप कहा ? परन्तु मुझे ऐसा दुःख भया जो मरण बिना शांत न होय। तब राजा कही, हे रानी ! तोहि ऐसा कहा दुःख भया? तब रानी कही, भगवानका गंधोदक और रानीनिकूं पठाया अर मोहि न पठाया सो मोमें कौन कार्यकर हीनता जानी? अबलों तुम मेरा कभी भी अनादर न किया,

अब काहेतें अनादर किया ? यह बात राजा सों रानी कहै है ता समय वृद्ध खोजा गंधोदक ले आया अर कहता भया–हे देवी ! यह भगवानका गंधोदक नरनाथ तुमको पठाया सो लेहु। अर ता समय तीनों रानी आई अर कहती भई–हे मुग्धे ! पति की तोपर अति कृपा है, तू कोप को काहे प्राप्त भई ? देख हमकूं तो गंधोदक दासी लाई अर तेरे वृद्ध खोजा लाया। पति के तोसूं प्रेमकी न्यूनता नाहीं, जो पति में अपराध भी होय अर वह आय स्नेहकी बात करै तो उत्तम स्त्री प्रसन्न ही होय हैं। हे शोभने ! पतिसूं क्रोध करना सुखके विघ्न का कारण है सो कोप उचित नाहीं सो तिनने जब या भाँति संतोष उपजाया तब सुप्रभाने प्रसन्न होय गंधोदक शीश पर चढ़ाया अर नेत्रनिकूं लगाया। राजा खोजासे कोपकर कहते भए–हे निकृष्ट, तैं एती ढील कहां लगाई ? तब वह भय कर कंपायमान होय हाथ जोड़ शीश निवाय कहता भया, हे भक्त वत्सल ! हे देव ! हे विज्ञान भूषण ! अत्यन्त वृद्ध अवस्था कर हीन शक्ति जो मैं सो मेरा कहा अपराध ? मोपर आप कोप करो सो मैं क्रोधका पात्र नाहीं। प्रथम अवस्थाविषैं मेरे भुज हाथी के सूंड-समान हुते, उरस्थल प्रबल अर जाँघ गज बन्धन तुल्य हुतीं अर शरीर दृढ़ हुता। अब कर्मनिके उदय करि शरीर शिथिल होय गया। पूर्वे ऊँची धरती राजहंस की न्याईं उलंघ जाता, मन-वाँछित स्थान जाय पहुँचता। अब स्थानकतें उठा भी नहीं जाय है। तिहारे पिता के प्रसादकर मैं यह शरीर नाना प्रकार लड़ाया था सों अब कुमित्रकी न्याईं दुःखका कारण होय गया। पूर्वे मुझ वैरीनिके विदारनेकी शक्ति हुती, सो अब तो लाठीके अवलंबन कर महा कष्टसूं फिरूं हूँ। बलवान पुरुषनिकर खेंचा जो धनुष वा समान वक्र मेरी पीठ हो गई है अर मस्तकके केश अस्थि-समान श्वेत होय गए हैं। अर मेरे दांत हू गिर गए, मानों शरीरका आताप देख न सकैं। हे राजन् ! मेरा समस्त उत्साह विलय गया, ऐसे शरीर कर कोई दिन जीऊँ हूँ सो बड़ा आश्चर्य है। जरं करि अत्यन्त जर्जर मेरा शरीर साँझ सकारे विनस जायगा। मोहि मेरी कायाकी सुधि नाहीं तो और सुध कहांसे होय ? पूर्वे मेरे नेत्रादिक इन्द्रिय विचक्षणता कूं धरे हुते, अब नाममात्र रह गए हैं। पाँय धरूं किसी ठौर अर परैं काहू ठौर। समस्त पृथ्वीतल दृष्टिकर श्याम भासै है, ऐसी अवस्था होय गई तो भी बहुत दिननितैं राजद्वार की सेवा है सो नाहीं तज सकूं हूँ। पके फल समान जो मेरा तन ताहिकाल शीघ्र ही भक्षण करेगा। मोहि मृत्युका ऐसा भय नाहींजैसा चाकरी चूकनेका भय है। अर मेरे आपकी आज्ञा हीका अवलंबन है, और अवलम्बन नाहीं शरीरकी अशक्तिता कर विलम्ब होय ताकूं मैं कहा करूं। हे नाथ ! मेरा शरीर जराके आधीनजान कोप मत करो, कृपा ही करो। ऐसे वचन खोजाके राजा दशरथ सुनकर वाम हाथ कपोल के लगाय चिंतावान होय विचारता भया–अहो ! यह जल के बुदबुदा समान असार

शरीर क्षणभंगुर है अर यह यौवन बहुत विभ्रमकूं हू धरै सन्ध्या के प्रकाश समान अथिर है अर अज्ञान का कारण है। बिजली के चमत्कार समान शरीर अर संपदा तिनके अर्थ अत्यन्त दुःखके साधन कर्म यह प्राणी करै है। उन्मत्त स्त्रीके कटाक्ष समान चंचल, सर्पके फण समान विषके भरे, महातापके समूहके कारण ये भोग ही जीवनकूं ठगै हैं, तातैं महाठग हैं। ये विषय विनाशीक हैं, इनसे प्राप्त हुआ जो दुःख सो मूढ़निकूं सुखरूप भासै है। ये मूढ़ जीव विषयनिकी अभिलाषा करै हैं अर इनकूं मनवांछित विषय दुष्प्राप्य हैं, विषयों के सुख देखनेमात्र मनोज्ञ हैं अर इनके फल अति कटुक हैं। ये विषय इन्द्रायण के फल समान हैं, संसारी जीव इनकूं चाहै हैं सो बड़ा आश्चर्य है। जे उत्तमजन विषयनिकूं विषतुल्य जानकर तजैं हैं अर तप करै हैं वे धन्य हैं, अनेक विवेकी जीव पुण्याधिकारी महा उत्साहके धरणहारे जिनशासन के प्रसादकरि प्रबोधकूं प्राप्त भए हैं। मैं कब इन विषयनिका त्याग कर स्नेहरूप कीच से निकस निवृत्ति का कारण जिनेन्द्रका तप आचरूंगा। मैं पृथ्वीकी बहुत सुखसे प्रतिपालना करी अर भोग भी मनवांछित भोगे अर पुत्र भी मेरे महापराक्रमी उपजे, अब भी मैं वैराग्यविषैं विलम्ब करूं तो यह बड़ी विपरीत है। हमारे वंश की यही रीति है कि पुत्रकूं राज्यलक्ष्मी देकर वैराग्यको धारण कर महाघोर तप करनेकूं वन में प्रवेश करै। ऐसा चिंतवनकर राजा भोगनितैं उदास चित्त कई एक दिन घर में रहे। हे श्रेणिक ! जो वस्तु जा समय जा क्षेत्र में जाकी जाको जेती प्राप्त होनी होय सो ता समय ता क्षेत्र में तासे ताकूं तेती निश्चय सेती होय ही होय।

गौतम स्वामी कहै हैं, हे मगध देशके भूपति ! कैयक दिनोंमें सर्व प्राणोनिके हितू सर्वभूपति नामा मुनि बड़े आचार्य मनःपर्य्ययज्ञान के धारक पृथवीविषैं विहार करते संघसहित सरयू नदीके तीर आए, कैसे हैं मुनि ? पिता समान छहकायके जीवनिके पालक, दयाविषैं लगाई है मन वचन कायकी क्रिया जिनके, आचार्यकी आज्ञा पाय कैयक मुनि तो गहन वहनमें विराजे, कैयक पर्वतनिकी गुफानिमें, कैयक वनके चैत्यालयनिमें, कैयक वृक्षनिके कोटरनिमें इत्यादि ध्यान योग्य स्थाननिमें साधु तिष्ठे। अर आप आचार्य महेंद्रोदय नामा वनमें एक शिलापर जहाँ विकलत्र जीवनिका संचार नाहीं अर स्त्री नपुंसक बालक ग्राम्यजन पशुनिका संसर्ग नाहीं, ऐसा जो निर्दोष स्थानक तहाँ नागवृक्षोंके नीचे निवास किया। महागंभीर महाक्षमावान जिनका दर्शन दुर्लभ, कर्म खिपावनके उद्यमी, महा उदार है मन जिनका, महामुनि तिनके स्वामी वर्षाकाल पूर्ण करवेकूं समाधियोग धर तिष्ठे। कैसा है वर्षाकाल ? विदेश गमन किया तिनकूं भयानक है। बरसती जो मेघमाला अर चमकती जो बिजली अर गरजती काली घटा तिनकी भयंकर जो ध्वनि ताकरि मानों सूर्य को खिझावता संता पृथवीपर प्रगट भया है। सूर्य ग्रीष्म ऋतु विषैं लोकनिकूं आतापकारी

हुता सो अब स्थूल मेघकी धाराके अंधकारतें भय थकी भाज मेघमालामें छिप्या चाहै है। अर पृथवीतल हरे नाजके अंकुरनिरूप कंचुकिन कर मंडित है अर महानदियनिके प्रवाह वृद्धिकूं प्राप्त भए हैं, ढाहा पहाड़तें वहै हैं। इस ऋतु में जे गमन करै हैं ते अति कंपायमान होय हैं अर तिनके चित्तमें अनेक प्रकारकी भ्रांति उपजै है, ऐसी वर्षा ऋतुमें जैनी जन खड्ग की धारा समान कठिन व्रत निरंतर धारै हैं। चारणमुनि अर भूमिगोचरी मुनि चातुर्मासिक में नानाप्रकारके नियम धरते भए। हे श्रेणिक ! वे तेरी रक्षा करहु, रागादिक परणतितें तोहि निवृत्त करहु।

अथानंतर प्रभात समय राजा दशरथ वादित्रनिके नाद करि जाग्रत भया जैसें सूर्य उदयकूं प्राप्त होय। अर प्रातः समय कूकड़े बोलने लगे, सारस चकवा सरोवर तथा नदियनिके तटविषें शब्द करते भए, स्त्री पुरुष सेजनितें उठे। भगवानके चैत्यालय तिन विषें भेरी मृदंग वीणा वादित्रनिके नाद होते भए। लोक निद्राकूं तज जिन-पूजवादिक विषें प्रवर्ते। दीपक मंद ज्योति भए। चंद्रमाकी प्रभा मंद भई। कमल फूले, कुमुद मुद्रित भए। अर जैसें जिन सिद्धांतके ज्ञातानिके वचननिकरि मिथ्यावादी विलय जांय तैसें सूर्य की किरणनिकरि ग्रह तारा नक्षत्र छिप गए। या भांति प्रभात समय अत्यंत निर्मल प्रगट भया। तब राजा देहकृत्य क्रियाकर भगवानकी पूजाकर बारम्बार नमस्कार करता भया। अर भद्र जातिकी हथिनीपर चढ़े देवनि सारिखे जे राजा तिनके समूहनिकरि संयुक्त ठौर२ मुनिनकूं अर जिनमंदिरनिकूं नमस्कार करता महेंद्रोदय वनमें पृथवीपति गया; जाकी विभूति पृथवीकूं आनंद उपजावनहारी अर वर्षों पर्यंत व्याख्यान करिए तौ भी न कह सकिए। जो मुनि गुणरूप रत्ननिका सागर जा समय याकी नगरीके समीप आवै ताही समय याकूं खबर होय अर यह दर्शनकूं जाय सो सर्वभूतहित मुनिकूं आए सुन तिनके निकट केते समीपी लोकनि सहित आया। हथिनीसूं उतर अति हर्षका भर्‌या नमस्कारकर महाभक्ति संयुक्त सिद्धांत-संबंधी कथा सुनता भया। चारों अनुयोगनिकी चर्चा अवधारी अर अतीत अनागत वर्तमान कालके जे महापुरुष तिनके चरित्र सुने। लोकालोकका निरूपण अर छह द्रव्यनिका स्वरूप, छह कायके जीवनिका वर्णन, छह लेश्याका व्याख्यान अर छहों कालका कथन अर कुलकरनिकी उत्पत्ति अर अनेक प्रकार क्षत्रियादिकनिके वंश अर तत्व, नव पदार्थ व पंचास्तिकायका वर्णन आचार्यके मुखतें श्रवणकर सब मुनियनिकूं बारंबार नमस्कार कर राजा धर्मके अनुरागकरि पूर्ण नगरमें आए, जिनधर्मके गुणनिकी कथा निकटवर्ती राजानिसों अर मंत्रियनिसूं कर अर सबनिकूं विदाकर महल में प्रवेश करता भया, विस्तीर्ण हैं विभव जाके। अर राणी लक्ष्मीतुल्य परमकांतिकर संपूर्ण चन्द्रमा समान संपूर्ण सुन्दर वदनकी धरणहारी, नेत्र अर मनकी हरणहारी, हाव भाव विलास विभ्रमकर मंडित

महाविपुण, परम विनयकी करणहारी, प्यारी तेई कमलविकी पंक्ति तिवकूं राजा सूर्य समान प्रफुल्लित करता भया।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें अष्टान्हिका आगमन अर राजा दशरथ का धर्म श्रवण वर्णन करनेवाला उनतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥२९॥

तीसवां पर्व

(भामण्डल का मिलाप)

अथानंतर मेघ के आडंबरकर युक्त जो वर्षाकाल सो गया अर आकाश संभारे खड्गकी प्रभा समान निर्मल भया। पद्म महोत्पल पुंडरीक इन्दीवरादि अनेक जातिके कमल प्रफुल्लित भए। कैसे हैं कमलादिक पुष्प, विषयी जीवनकूं उन्माद के कारण हैं अर नदी सरोवरादि विषें जल निर्मल भया, जैसा मुनिका चित्त निर्मल होय तैसा। अर इन्द्र धनुष जाते रहे। पृथ्वी कर्दम रहित होय गई। शरदऋतु मानूं कुमुदनिके प्रफुल्लित होनेसे हंसती हुई प्रगट भई। बिजलियोंके चमत्कारकी संभावना हो गई। सूर्य तुला राशिपर आया, शरद के श्वेत बादरे कहूँ कहूँ दृष्टि आवैं सो क्षणमात्रमें विलाय जाँय। निशा रूप नवोढ़ा स्त्री संध्याके प्रकाशरूप महा सुन्दर लाल अधरनिकूं धरे चांदनीरूप निर्मल वस्त्रनिकूं पहिर, चंद्रमारूप है चूड़ामणि जाके, सो अत्यंत शोभती भई। अर वापिका निर्मल जलकी भरी मनुष्यनिके मनकूं प्रमोद उपजाती भई। चकवा चकवीके युगल करें हैं केलि जहां अर मदोन्मत्त जे सारस ते करै हैं नाद जहाँ, कमलनिके वनमें भ्रमते जो राजहंस ते अत्यंत शोभाकूं धरें हैं। सो सीताकी है चिंता जाके, ऐसा जो भामंडल ताहि यह ऋतु सुहावनी न लगी, अग्नि समान भासै है जगत जाकूं। एक दिन यह भामंडल लज्जाकूं तजकर पिता के आगे वसंतध्वज नामा जो परम मित्र ताहि कहता भया, कैसा है भामंडल ? अरति से पीडित है अंग जाका, मित्रसूं कहै है—हे मित्र ! तू दीर्घ-सोची है अर पर-कार्यविषें उद्यमी है, एते दिन होय गए तोहि मेरी चिंता नाहीं। व्याकुलतारूप भ्रमणकूं धरै जो आशारूप समुद्र ताविषें डूबा हूँ, मोहि आलंबन कहा न देवो ? ऐसे आर्तध्यानकर-युक्त भामंडलके वचन सुन राजसभाके सब लोक प्रभाव-रहित विषाद-संयुक्त होय गए। तिनकूं महाशोक कर तप्पतायमान देख भामंडल लज्जा से अधोमुख होय गया। तब एक बृहत्केतु नामा विद्याधर कहता भया कि अब कहा छिपाय राखो, कुमारसूं सर्व वृत्तांत यथार्थ कहो जाकरि भ्रांति न रहै। तब वे सर्व वृत्तांत भामंडलसूं कहते भए—हे कुमार ! हम कन्याके पिताकूं यहां ले आए हुते, कन्याकी याचना करी, सो वाने कही मैं कन्या रामकूं देनी करी है। हमारे अर वाके वार्ता बहुत भई, वह न माने। तब वज्रावर्त धनुषका करार भया जो धनुष राम चढ़ावें तो कन्याकूं परणें, नातर हम यहां ले आवेंगे अर भामंडल विवाहेगा।

सो धनुष लेकर यहां से विद्याधर मिथिलापुरी गए। सो राम महा पुण्याधिकारी धनुष चढ़ाया ही। तब स्वयम्वर मण्डपमें जनककी पुत्री अति गुणवती महा विवेकवन्ती, पतिके हृदयकी धरणहारी, व्रत नियमकी धरनहारी, नवयौवन मंडित, दोषनिकरि अखंडित, सर्व कलापूर्ण, शरदऋतुकी पूर्णमासीके चन्द्रमा समान मुखकी कांतिकूं धरै, लक्ष्मी सारिखे शुभलक्षण लावण्यताकरि युक्त सीता महासती श्रीरामके कंठ में वरमाला डार वल्लभा होती भई। हे कुमार ! वे धनुष वर्तमान काल के नाहीं, गदा अर हल आदि देवोपुनीत रत्ननिकर युक्त, अनेक देव जिनकी सेवा करै हैं, कोई जिनकूं देख न सकै सो वज्रावर्त सागरावर्त दोऊ धनुष राम लक्ष्मण दोऊ भाई चढ़ावते भए। वह त्रिलोकसुन्दरी रामने परणी अर अयोध्या ले गए। सो अब वह बलात्कार देवनिकरि भी न हरी जाय; हमारी कहा बात ? अर कदाचित कहोगे कि राम को परणाए पहले ही क्यों न हरी ? तो जनक का मित्र रावणका जमाई मधु है सो हम कैसें हर सकें। तातें हे कुमार ! अब सन्तोष आदरो, विमलता भजहु, होनहार होय सो होय, इंद्रादिक भी और भांति न कर सकें। तब धनुष चढ़ावनेका वृत्तांत अर राम से सीता का विवाह भया सुन भामण्डल अति लज्जावान होय विषादकरि पूर्ण भया, मनमें विचारै है जो मेरा यह विद्याधर का जन्म निरर्थक है। जो मैं हीन पुरुष की न्याईं ताहि न परण सक्या। ईर्षा अर क्रोधकर मंडित होय सभाके लोकनिकूं कहता भया, कहा तुम्हारा विद्याधरपना ? तुम भूमिगोचारनितेहूं डरो हो। मैं आप जायकर भूमिगोचरिनिकूं जीत ताकूं ले आऊँगा। अर जे धनुष के अधिष्ठाता नाहीं उनकूं धनुष दे आए तिनका निग्रह करूंगा, ऐसा कहकर शस्त्र सजि विमान विषैं चढ़ आकाशके मार्ग गया। अनेक ग्राम नदी नगर वन उपवन सरोवर पर्वतादि पूर्ण पृथवीमँडल देख्या। तब याकी दृष्टि जो अपने पूर्व भवका स्थानक विदग्धपुर पहाड़निके बीच हुता वहाँ पड़ी, चित्तमें चिंतई कि यह नगर मैंने देख्या है। जाति स्मरण होय मूर्छा प्राय गई। तब मंत्री व्याकुल होय पिताके निकट ले आए। चन्दनादि शीतल द्रव्यनिकरि छांटया, तब प्रबोधकूं प्राप्त भया। राजलोककी स्त्री याहि कहती भई—हे कुमार ! तुम को यह उचित नाहीं जो माता पिताके निकट ऐसी लज्जारहित चेष्टा करहु। तुम तो विचक्षण हो, विद्याधरनिकी कन्या देवांगनाहूतें अति सुन्दर हैं ते परणो। लोक हास्य कहा कराओ हो ? तब भामंडल लज्जा अर शोक करि मुख नीचा किया अर कहता भया—धिक्कार है मोकूं ! मैं महामोहकरि विरुद्ध कार्य चिंत्या, जो चांडालादि अत्यंत नीचकुल हैं तिनहूके यह कर्म न होय। मैं अशुभ कर्मनिके उदय करि अत्यन्त मलिन परिणाम किए। मैं अर सीता एक ही माता के उदर से उपजे हैं। अब मेरे अशुभ कर्म गया तब यथार्थ जानी, सो याके ऐसे वचन सुनकर अर शोककर पीड़ित देख याका पिता राजा चंद्रगति

गोदमें लेय मुख चूम पूछता भया–हे पुत्र ! यह तू कौन भांति कही। तब कुमार कहता भया–हे तात ! मेरा चरित्र सुनहु। पूर्वभवविषें मैं इस ही भरतक्षेत्र विषें विदग्धपुर नगर तहाँ कुंडलमंडित राजा हुता, परमंडल का लूटनहारा, सदा विग्रहका करणहारा, पृथवी विषें प्रसिद्ध, निज प्रजाका पालक, महाविभवकर संयुक्त सो मैं पापी मायाचार कर एक विप्रकी स्त्री हरी। सो वह विप्र तो अतिदुःखी होय कहीं चला गया अर मैं राजा अनरण्य के देशमें बाधा करी सो अनरण्यका सेनापति बालचन्द्र मोहि पकड़ ले गया अर मेरी सर्व संपदा हर लीनी। मैं शरीरमात्र रह गया, कैएक दिनमें बंदीगृहतें छूट्या सो महादुःखित पृथ्वी विषें भ्रमण करता मुनियोंके दर्शनकूं गया, महाव्रत अणुव्रत का व्याख्यान सुन्या, तीन लोकपूज्य जो सर्वज्ञ वीतरागदेव जिनका पवित्र जो मार्ग ताकी श्रद्धा करी। जगतके बांधव जे गुरु तिनकी आज्ञाकर मैंने मद्य-मांस का त्यागरूप व्रत आदर्या, मेरी शक्तिहीन हुती तातें ये विशेष व्रत न आदर सक्या। जिनशासनका अद्भुत माहात्म्य जो मैं महापापी हुता सो एते ही व्रतसे मैं दुर्गतिमें न गया। जिनधर्मके शरणकरि जनककी रानी विदेहाके गर्भमें उपज्या अर सीता भी उपजी सो कन्या सहित मेरा जन्म भया। अर वह पूर्वभवका विरोधी विप्र जाकी मैं स्त्री हरी हुती सो देव भया अर मोहि जन्मतें ही जैसें गृद्ध पक्षी मांसकी डलीकूं ले जाय तैसें नक्षत्रनितें ऊपर आकाशविषें ले गया। सो पहिले तो तानै विचार किया कि याकूं मारूं। बहुरि करुणाकरि कुंडल पहराय लघुपर्ण विद्याकर मोहि यन्त्रसों डार्या, सो रात्रिविषें पड़ता तुमने झेल्या अर दयावान् होय अपनी रानीकूं सौंप्या, सो मैं तिहारे प्रसादतें वृद्धिकूं प्राप्त भया, अनेक विद्याका धारक भया। तुमने बहुत लड़ाया अर माता मेरी बहुत प्रतिपालना करी। भामंडल ऐसे कहके चुप हो रह्या। राजा चन्द्रगति यह वृत्तान्त सुनकर परमप्रबोधकूं प्राप्त भया अर इन्द्रियनिके विषयनिकी वासना तज महावैराग्य अंगीकार करवेकूं उद्यमी भया। लोकधर्म कहिए स्त्री सेवन सोई भया वृक्ष ताहि सुख फलसूं रहित जान्या अर संसार का बंधन जानकर अपना राज्य भामंडलकूं देय आप सर्वभूतहित स्वामीके समीप शीघ्र आया। वे सर्वभूतहित स्वामी पृथ्वीविषें सूर्य समान प्रसिद्ध गुणरूप किरणनिके समूहकर भव्य जीवनिकूं प्रतिबुद्ध करनहारे सो राजा चंद्रगति विद्याधर महेंद्रोदय उद्यानविषें आय मुनिकी अर्चना करी। बहुरि नमस्कार स्तुति कर शीश नवाय हाथ जोड़ या भांति कहता भया– हे भगवन् ! तिहारे प्रसाद कर मैं जिनदीक्षा लेय तप कर्या चाहूँ हूँ, मैं गृहवासतें उदास भया। तब मुनि कहते भए, भव-सागरसूं पार करणहारी यह भगवती दीक्षा है सो लेहु। राजा तो वैराग्यकूं प्राप्त भया अर भामंडलके राज्यका उत्सव होता भया, ऊँचे स्वरसे नगारे बाजे, नारी गीत गावती

भई, बांसुरी आदि अनेक वादित्रनिके समूह बाजते भए, ताल मंजीरा बांसुरी आदि वादित्र बाजे। 'शोभायमान जनक राजाका पुत्र जयवंत होवे', ऐसा बंदीजननिका शब्द होता भया सो महेंद्रोदय उद्यान विषैं ऐसा मनोहर शब्द रात्रिविषैं भया जातैं अयोध्याके समस्त जन निद्रा-रहित होय गए। बहुरि प्रातः समय मुनिराजके मुखतें महाश्रेष्ठ शब्द सुनकर जैनी-जन अतिहर्षकूं प्राप्त भए। अर सीता 'जनक राजाका पुत्र जयवंत हो' ऐसीध्वनि सुनकर मानों अमृतसे सींची गई, रोमांचकर संयुक्त भया है सर्व अंग जाका अर फरकै है बांई आंख जाकी, मन में चिंतवती भई जो यह बारम्बार ऊँचा शब्द सुनिए कि जनक राजा का पुत्र जयवंत होऊ सो मेरा हू पिता जनक है कनकका बड़ा भाई अर मेरा भाई जन्मता ही हर्‌या गया था सो वही न होय ? ऐसा विचार कर भाईके स्नेहरूप जलकर भीज गया है मन जाका, सो ऊँचे स्वरकर रुदन करती भई। तब राम अभिराम कहिए सुन्दर है अंग जाका, महामधुर वचन कर कहते भए–हे प्रिये ! तू काहेकूं रुदन करै है, जो यह तेरा भाई है तो अब खबर आवै है अर जो और है तो हे पण्डिते ! तू कहा सोच करै है, जे विचक्षण हैं ते मुए का हरेका नष्ट हुए का सोच न करें। हे वल्लभे ! जे कायर हैं अर मूर्ख हैं उनके विषाद होय है अर जे पण्डित हैं, पराक्रमी हैं तिनके विषाद नाहीं होय है। या भांति राम के अर सीताके वचनालाप होवै हैं ताही समय बधाईवारे मंगल शब्द करते आए। तब राजा दशरथने महाहर्षतें बहुत आदरतें नाना प्रकारके दान करे अर पुत्र कलत्रादि सर्व कुटुम्ब सहित वनमें गया सो नगरके बाहिर चारों तरफ विद्याधरनिकी सेना सैंकड़ों सामन्तनिसे पूर्ण देख आश्चर्यकू प्राप्त भया; विद्याधरनिने इन्द्रके नगर तुल्य सेनाका स्थानक क्षणमात्रमें बनाय राखा है। जाके ऊँचे कोट, बड़ा दरवाजा, जे पताका तोरण तिनतें शोभायमान, रत्ननिकरि मंडित ऐसा निवास देख राजा दशरथ जहाँ वनमें साधु बिराजे हुते तहाँ गया, नमस्कारकर स्तुतिकर राजा चन्द्रगति का वैराग्य देख्या। विद्याधरनिसहित श्रीगुरुकी पूजा करी। राजा दशरथ सर्व बांधव सहित एक तरफ बैठ्या अर भामण्डल सर्व विद्याधरनि सहित एक तरफ बैठ्या। विद्याधर अर भूमिगोचरी मुनिके पास यति अर श्रावकका धर्म श्रवण करते भए। भामंडल पिताके वैराग्य होयवे कर कछुइक शोकवान बैठा तब मुनि कहते भए जो यतिका धर्म है सो शूरवीरोंका है, जिनके गृहवास नाहीं, महा शांत दशा है, आनन्दका कारण है, महा दुर्लभ है, कायर जीवनिकूं भयानक भासै है। भव्यजीव मुनिपदकूं पायकर अविनाशी धामकूं पावैं हैं अथवा इन्द्र अहमिंद्र पद लहै हैं, लोकके शिखर जो सिद्ध स्थानक है सो मुनिपद बिना नाहीं पाइये है, कैसे हैं मुनि ? सम्यग्दर्शनकरि मण्डित हैं, जिस मार्गसे निर्वाणके सुखकूं प्राप्त होय अर चतुर्गतिके दुःखतें छूटै सो ही मार्ग श्रेष्ट है सो सर्वभूतहित मुनिने, मेघकी

गर्जना समान है ध्वनि जिनकी, सर्व जीवनिके चित्तकूं आनन्दकारी ऐसे वचन कहे। कैसे हैं मुनि ? समस्त तत्वोंके ज्ञाता। सो मुनिके वचनरूप जल, सन्देहरूप तापकूं हरता जीवनिने कर्णरूप अंजुलीनिकरि पीए। कैयक मुनि भए, कैयक श्रावक भए, महाधर्मानुराग कर युक्त है चित्त जिनका। धर्मका व्याख्यान हो चुक्या तब दशरथ पूछता भया—हे नाथ! चंद्रगति विद्याधरकूं कौन कारण वैराग्य उपज्या? अर सीता अपने भाई भामंडलका चरित्र सुनिवेकी इच्छा करतीभई। कैसी है सीता? महाविनयवंती है। तब मुनि कहतेभए-हे दशरथ! तुम सुनहु, इन जीवनिकी अपने २ उपार्जे कर्मनिकर विचित्र गति है। यह भामंडल पूर्वसंसार में अनंतकाल भ्रमण कर अति दुखित भया, कर्मरूपी पवन का प्रेर्या या भव में आकाशसूं पड़ता राजा चंद्रगतिकूं प्राप्त भया, सो चंद्रगति अपनी स्त्री पुष्पवतीकूं सौंप्या, सो नवयौवनमें सीताका चित्रपट देख मोहित भया। तब जनककूं एक विद्याधर कृत्रिम अश्व होय ले गया अर यह करार ठहर्‌या जो धनुष चढ़ावै सो कन्या परणै। बहुरि जनककूं मिथिलापुरी लेय आए अर धनुष श्रीराम ने चढ़ाया अर सीता परणी। तब भामंडल विद्याधरनिके मुखसे यह वार्ता सुन क्रोधकर विमानमें बैठा आवै था सो मार्गमें पूर्वभवका नगर देख्या। तब जातिस्मरण हुआ जो मैं कुंडलमंडित नामा या विदग्धपुरका राजा अधर्मी हुता। पिंगल ब्राह्मणकी स्त्री हरी बहुरि मोहि अनरण्यके सेनापतिने पकड़्या, देशतें काढ़ दिया, सर्वस्व लूट लिया। सो महापुरुषनिके आश्रय आय मधु-मांस का त्याग किया, शुभ परिणामनितें मरणकर जनककी राणी विदेहाके गर्भतें उपज्या। अर वह पिंगल ब्राह्मण जाकी स्त्री याने हरी सो बनसे काष्ठ लाय स्त्री रहित शून्य कुटी देख अति विलाप करता भया कि हे कमल नयनी! तेरी राती प्रभावती सारिखी माता अर चक्रध्वज सारिखे पिता तिनकूं अर बड़ी विभूति अर बड़ा परिवार ताहि तज मोसूं प्रीतिकर विदेश आई, रूखे आहार अर फाटे वस्त्र तैनें मेरे अर्थसे आदरे। सुन्दर हैं सर्व अंग जाके, अब तू मोहि तज कहां गई ? या भांति वियोगरूप अग्निकर दग्धायमान वह पिंगल विप्र पृथ्वी विषै महा दुःखसहित भ्रमण कर मुनिराजके उपदेशतें मुनि होय तप अंगीकार करता भया, तपके प्रभावतें देव भया सो मनमें चितवता भया कि वह मेरी कांता सम्यक्तरहित हुती सो तिर्यंचगतिकूं गई अथवा मायाचार रहित सरल परिणाम हुती सो मनुष्यनी भई अथवा समाधिमरण कर जिनराजकूं उरमें धर देवगतिकूं प्राप्त भई। अर वह दुष्ट कुंडलमंडित जाने आगें मेरी स्त्री हरी हुती सो कहां ? तब अवधि करि जनककी स्त्रीके गर्भमें आया जान जन्म होते ही बालककूं हर्‌या, सो चन्द्रगति झेल्या अर रानी पुष्पवती को सौंप्या, सो भामंडल जातिस्मरण होयसर्व वृत्तान्त चन्द्रगतिकूं कह्या। जो सीता मेरी बहिन है अर राती विदेहा मेरी माता है अरपुष्पवती मेरी प्रतिपालक माता है। यह

वार्ता सुन विद्याधरनिकी सर्व सभा आश्चर्यकूं प्राप्त भई अर चन्द्रगति भामण्डलकूं राज्य देय संसार शरीर अर भोगनितैं उदास होय वैराग्य अंगीकार करना विचार्‌या। अर भामण्डलकूं कहता भया-हे पुत्र ! तेरे जन्मदाता माता पिता तेरे शोक करि महादुःखी तिष्ठैं हैं सो अपना दर्शनदेय तिनके नेत्रनिकूँ आनन्द उपजाय। सो स्वामी सर्वभूतहित मुनिराज राजा दशरथसूँ कहै है कि यह राजा चन्द्रगति संसारका स्वरूप असार जान हमारे निकट आय जिन दीक्षा धरता भया; जो जन्म्या है सो निश्चय से मरेहीगा अर जो मूवा है सो अवश्य नया जन्म धरेगा, यह संसारकी अवस्था जान चंद्रगति भवभ्रमणतैं डर्‌या। ये मुनिके वचन सुनकर भामण्डल पूछता भया-हे प्रभो ! चंद्रगतिका पुष्पवती का मोपर अधिक स्नेह काहेतें भया। तब मुनि बोले-ये पूर्वभव के तेरे माता पिता हैं सो सुन। एक दारू नाम ग्राम वहां ब्राह्मण विमुचि ताके स्त्री अनुकोशा अर अतिभूत पुत्र, ताकी स्त्री सरसा, अर एक कयान नामा परदेसी ब्राह्मण सो अपनी माता ऊर्या सहित दारूग्राम में आया सो पापी अतिभूत की स्त्री सरसाकूं अर इनके घर के सारभूत धनकूं ले भागा। सो अतिभूत महादुखी होय ताके ढूँढवेकूँ पृथ्वीपर भटक्या। अर याका पिता कैयक दिन पहिले दक्षिणाके अर्थ देशांतर गया हुता सो घर पुरुषनि बिना सूना होय गया। जो घरमें थोड़ा बहुत धन रहा था सो भी जाता रहा अर अतिभूतकी माता अनुकोशा सो दारिद्रकरि महादुःखी भई। अर यह सब वृत्तांत विमुचि ने सुना कि घरका धनहू गया अर पुत्रकी बहू हू गई अर पुत्र ढूँढवेकूँ निकसा है सो न जानिये कौन तरफ गया ? तब विमुचि घर आया अर अनुकोशाकूँ अति विह्वल देख धैर्य बँधाया अर कयानकी माता उर्या सो हूँ महादुखिनी, पुत्र अन्याय कार्य किया ताकरि अति लज्जायमान सो कहके दिलासा करी जो तेरा अपराध नाहीं अर आप विमुचि पुत्रके ढूँढवेकूँ गया। सो एक सर्वारि नाम नगर ताके वनमें एक अवधिज्ञानी मुनि सो लोकनिके मुखतैं उनकी प्रशंसा सुनी कि ये अवधिज्ञानरूप किरणोंकर जगतमें प्रकाश करै हैं। तब यह मुनिपै गया. धन अर पुत्रवधूके जानेसे महा दुःखी हुता ही सो मुनिराजकी तपोऋद्धि देखकर अर संसार की झूठी माया जान तीव्र वैराग्य पाय विमुचि ब्राह्मण मुनि भया अर विमुचिकी स्त्री अनुकोशा अर कयानकी माता ऊर्या ये दोनों ब्राह्मणी कमलकांता आर्यिका के निकट आर्यिका के व्रत धारती भई। सो विमुचि मुनि अर वे दोनो आर्यिका तीनों जीव महानिस्पृह धर्मध्यानके प्रसादतैं स्वर्ग लोक गए। कैसा है वह लोक? सदा प्रकाशरूप है। विमुचिका पुत्र अतिभूत हिंसामार्गका प्रशंसक अर संयमी जीवोंका निन्दक सो आर्त रौद्र ध्यानके योगतैं दुर्गति गया अर यह कयान भी दुर्गति गया। अर वह सरसा अतिभूतकी स्त्री जो कयान की लार निकसी हुती सो बलाहक पर्वत की तलहटी में मृगी भई, सो व्याघ्र के भयतैं

मृगोंके यूथसे अकेली होय दावानल में जल मुई, सो जन्मांतरमें चित्तोत्सवा भई अर वह कयान भव-भ्रमण कर ऊँट भया फिर धूम्रकेशका पुत्र पिंगल भया अर वह अतिभूत सरसा का पति भव-भ्रमण करता राक्षस सरोवर के तीर हँस भया, सो सिचानूने इसका सर्व अँग घायल किया सो चैत्यालयके समीप पड़ा। तहाँ गुरु शिष्यको भगवानका स्तोत्र पढ़ावता भया सो याने सुना, हँस की पर्याय छोड़ दस हजार वर्ष की आयु का धारो दगोत्तम नामा पर्वतविषें किन्नर देव भया। तहांतें चयकर विदग्धपुरका राजा कुंडलमंडित भया, सो पिंगल के पास से चित्तोत्सवा हरी सो ताका सकल वृत्तांत पूर्वें कहा ही है। अर वह विमुचि ब्राह्मण जो स्वर्गलोककूं गया हुता सो राजा चंद्रगति भया, अनुकोशा ब्राह्मणी पुष्पवती भई अर वह कयान कई भव लेय पिंगल होय मुनिव्रत धार देव भया सो वाने भामंडलकूं होते ही हरया अर वह ऊर्या ब्राह्मणी देवलोकतें चयकर रानी विदेहा भई। यह सकल वृत्तांत राजा दशरथ सुनकर भामंडलतें मिलया अर नेत्र अश्रुपाततें भर लिये। अर सम्पूर्ण सभा यह कथा सुनकर सजल नेत्र होय गई अर रोमांच होय आए। अर सीता अपने भाई भामंडलकूं देख स्नेह कर मिली अर रुदन करती भई, हे भाई! मैं तोहि प्रथम ही देख्या। अर श्रीराम लक्ष्मण उठकर भामंडलतें मिले, मुनिकूं नमस्कार कर खेचर भूचर सब ही बन से नगरकूं गए। भामंडलसूं मन्त्र कर राजा दशरथने जनक राजा के पास विद्याधर पठाया अर जनककूं आवने अर्थ विमान भेजे। राजा दशरथ ने भामंडल का बहुत सन्मान किया अर भामंडलकूं अति रमणीक महल रहिवेकूं दिए जहाँ सुन्दर वापी सरोवर उपवन हैं सो वहां भामंडल सुखसूं तिष्ठया। अर राजा दशरथ ने भामण्डल के आवनेका बहुत उत्सव किया, याचकनिकूं बांछासे भी अधिक दान दिया, सो दरिद्रता रहित भए। अर राजा जनक के निकट पवनहूते अति शीघ्रगामी विद्याधर गए, जाय कर पुत्रके आगमनकी बधाई दी अर दशरथका अर भामण्डल का पत्र दिया सो बांच कर जनक अति आनन्दकूं प्राप्त भया, रोमांच होय आए। राजा विद्याधरसूं पूछे है, हे भाई! यह स्वप्न है या प्रत्यक्ष है? तू आ, हमसों मिल, ऐसा कहकर राजा मिले अर लोचन सजल होय आए। जैसा हर्ष पुत्रके मिलनेका होय तैसा पत्र लानेवालेसे मिलनेका भया, सम्पूर्ण वस्त्र आभूषण ताहि दिए, सब कुटुम्ब के लोग भेले होय उत्सव किया अर बारम्बार पुत्र का वृत्तांत ताहि पूछे हैं अर सुन सुन तृप्त न होंय। विद्याधर सकल वृत्तांत विस्तारसूं कह्या। ताही समय राजा जनक सर्व कुटुम्ब सहित विमान में बैठ अयोध्या को चाले सो एक निमिष में जाय पहुँचे। कैसी है अयोध्या? जहाँ वादित्रनिके नाद होय रहे हैं। जनक शीघ्र ही विमानतें उतर पुत्रतें मिल्या, सुखकर नेत्र मिल गए, क्षण एक मूर्च्छा आय गई। बहुरि सचेत होय अश्रूपातके भरे नेत्रनिसूं पुत्रकूं देखा अर हाथ से स्पर्शा।

अर माता विदेहा हू पुत्रकूं देख मूर्च्छित होय गई। बहुरि सचेत होय मिली अर रुदन करती भई, जाके रुदनकूं सुनकर तिर्यन्चनिकूं भी दया उपजै। हाय पुत्र! तू जन्मतें ही उत्कट वैरीतें हरा गया हुता अर तेरे देखवेकूं मेरा शरीर चितारूप अग्नि कर दग्ध भया हुवा सो तेरे दर्शन रूप जलकरि सींचा, शीतल भया। अर धन्य है वह राणी पुष्पवती विद्याधरी जानें तेरी बाल लीला देखी अर क्रीडा करधूसरा तेरा अंग उर से लगाया अर मुख चूमा अर नवयौवन अवस्था विषैं चन्दन कर लिप्त सुगन्धनिकर युक्त तेरा शरीर देख्या, ऐसे शब्द माता विदेहा ने कहे। अर नेत्रनितैं अश्रुपात झरै, स्तनतैं दुग्ध झरा अर विदेहाकूं परम आनन्द उपज्या; जैसें जिनशासन की सेवक देवी आनन्द सहित तिष्ठै तैसें वह पुत्रकूं देख सुखसागरमें तिष्ठी। एक मास पर्यन्त यह अयोध्या में रहे। फिर भामण्डल श्रीरामसूं कहते भए—हे देव! या जानकी को तिहारो ही शरण है, धन्य है भाग्य याके जो तुम सारिखे पति पाए, ऐसे कह बहिनकूं छातीसे लगाया। अर माता विदेहा सीताकूं उरसे लगाय कर कहती भई—हे पुत्री! सास ससुरकी अधिक सेवा करियो अर ऐसा करियो जो सर्व कुटुम्बमें तेरी प्रशंसा होय। अर भामण्डल ने सबकूं बुलाया; जनकका छोटा भाई जो कनक उसे मिथिलापुरीका राज्य सौंपकर जनक अर विदेहाकूं अपने स्थानक ले गया। यह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं कि हे मगधदेशके अधिपति! तू धर्मका माहात्म्य देख, जो धर्मके प्रसादतैं श्रीरामदेव के सीता सारिखी स्त्री भई, गुण-रूपकर पूर्ण जाका भामण्डलसा भाई—विद्याधरनिका इन्द्र अर जिनके लक्ष्मणसा भाई सेवक अर देवाधिष्ठित वे धनुष सो राम ने चढ़ाए। यह श्रीराम का चरित्र-भामंडल के मिलाप का वर्णन जो निर्मल चित्त होय सुनै ताहि मन वांछित फल की सिद्धि होय अर निरोग शरीर होय सूर्य समान प्रभावकूं पावै।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै भामण्डल का मिलाप वर्णन करनेवाला तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३०॥

इकतीसवां पर्व

(राजा दशरथ का पूर्व भव सुनकर संसार से विरक्त होना)

अथानंतर राजा श्रेणिक गौतमस्वामीसूं पूछते भए—हे प्रभो! वे राजा दशरथ जगतके हितकारी, राजा अनरण्यके पुत्र बहुरि कहा करते भए? अर श्रीराम लक्ष्मणका सकल वृत्तांत मैं सुना चाहूं हूं, कृपा करके कहो, तुम्हारा यश तीन लोकमें विस्तर रहा है। तब मुनियोंके स्वामी महातप तेजके धरनहारे गौतम गणधर कहते भए कि जैसा यथार्थ कथन श्रीसर्वज्ञ वीतरागदेवने भाख्या है, हे भव्योत्तम! तू सुन। जब राजा दशरथ बहुरि मुनियोंके दर्शनोंकूं गए सो सर्वभूतहित स्वामीकूं नमस्कारकर पूछते भए—हे स्वामी! मैं

संसार में अनंत जन्म धरे सो केई भवकी वार्ता तिहारे प्रसाद से सुनकर संसारकूं तजा चाहूं हूं। तब साधु दशरथकूं भव सुननेका अभिलाषी जानकर कहते भए कि हे राजन् ! सब ससारके जीव अनादिकालसे कर्मोंके सम्बन्धसे अनंत जन्म मरण करते दुःख ही भोगते आए हैं। इस जगतमें जीवनिके कर्मोंकी स्थिति उत्कृष्ट मध्यम जघन्य तीन प्रकारकी है अर मोक्ष सर्वमें उत्तम है जाहि पंचमगति कहै हैं सो अनंत जीवनि में कोई एकके होय है, सबनिको नाहीं। यह पंचमगति कल्याणरूपिणी है जहांतें बहुरि आवागमन नाहीं। वह अनंत सुखका स्थानक शुद्ध सिद्ध पद इन्द्रियविषयरूप रोगनिकरि पीड़ित मोहकर अन्ध प्राणी न पावें। जे तत्वार्थ श्रद्धानकर रहित वैराग्यतें बहिर्मुख हैं अर हिंसादिकमें है प्रवृत्ति जिनकी तिनकूं निरन्तर चतुर्गति का भ्रमण ही है। अभव्यों को तो सर्वथा मुक्ति नाहीं, निरंतर भव भ्रमण ही है अर भव्यनिकै कोई एकको निवृत्ति है। जहाँ तक जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल हैं सो लोकाकाश है अर जहाँ अकेला आकाश ही है सो अलोकाकाश है। लोक के शिखर सिद्ध विराजें हैं। या लोकाकाश में चेतना लक्षण जीव अनन्त हैं जिनका विनाश नाहीं। संसारी जीव निरन्तर पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय ये छै काय तिनमें देह धार भ्रमण करै हैं। यह त्रैलोक्य अनादि अनन्त है, यामें स्थावर जंगम जीव अपने अपने कर्मनिके समूह करि बँधे नाना योनिविषैं भ्रमण करै हैं। अर जिनराजके धर्मकर अनन्त सिद्ध भए अर अनन्त सिद्ध होंयगे अर होय हैं। जिनमार्ग टारकर और मार्ग मोक्ष नाहीं। अर अनन्त काल व्यतीत भया, अनन्त काल व्यतीत होयगा, कालका अन्त नाहीं। जो जीव संदेहरूप कलंक कर कलंकी हैं अर पापकर पूर्ण हैं अर धर्मकूं नाहीं जानै हैं, तिनकै जैन का श्रद्धान कहांतें होय ? अर जिनके श्रद्धान नाहीं, सम्यक्तरहित हैं, तिनके धर्म कहाँतें होय ? अर धर्मरूप वृक्ष बिना मोक्षफल कैसे पावें ? अज्ञान अनंत दुःखका कारण है। जे मिथ्यादृष्टि अधर्मविषैं अनुरागी हैं अर अति उग्र पाप कर्मरूप कंचुकी (चोला) कर मंडित हैं, रागादि विषके भरे हैं तिनका कल्याण कैसें होय, दुःख ही भोगवै हैं। एक हस्तिनापुर विषैं उपास्तिनामा पुरुष ताकी दीपनी नामा स्त्री सो मिथ्याभिमान कर पूर्ण जाके कछु नियम व्रत नाहीं, श्रद्धानरहित महाक्रोधवन्ती-अदेखसकी कषायरूप विषकी धारणहारी, महादुर्भाव निरंतर साधुनिकी निंदा करणहारी, कुशब्द बोलनहारी, महाकृपण, कुटिल, आप काहूकूं अन्न न देय अर जो कोई दान करै ताकूं मनै करै, धनकी धिरानी अर धर्म न जानै इत्यादिक महादोषकी भरी मिथ्यामार्गकी सेवक सो पापकर्मके प्रभावकर भवसागरविषैं अनंतकाल भ्रमण करती भई अर उपास्थित दानके अनुरागकर चंद्रपुर नगर विषैं भद्रनामा मनुष्य ताके धारिणी स्त्री ताके धारणनामा पुत्र भया। भाग्यवान बहुत कुटुम्बी ताके नयनसुन्दरी नामा स्त्री सो धारण शुद्ध भावतें

मुनिनिको आहार दान देय अन्तकाल शरीर तजकर धातकीखड द्वीपविषें उत्तरकुरु भोग-भूमिमें तीन पल्य सुख भोग देवपर्याय पाय तहांतें चयकर पृथुलावती नगरी विषें राजा नंदिघोष रानी वसुधा ताके नंदिवर्धन नामा पुत्र भया। एकदिन राजा नंदि घोष यशोधर नामा मुनिके निकट धर्म श्रवणकर नंदिवर्धनकूं राज्य देय आप मुनि भया अर महातपकर स्वर्गलोक गया। अर नंदिवर्धन श्रावकके व्रत धारे, पंच नमोकारके स्मरणविषें तत्पर कोटि-पूर्व पर्यंत महाराजपद के सुख भोगकर अन्तकाल समाधिमरण कर पंचम देवलोक गया। तहां तें चयकर पश्चिम विदेहविषें विजयार्ध पर्वत तहां शशिपुर नामा नगर तहां राजा रत्नमाली ताके राणी विद्युल्लता ताके सूर्यंजय नामा पुत्र भया। एक दिन रत्नमाली महा-बलवान सिंहपुर का राजा वज्रलोचन तासूं युद्ध करवेकूं गया। अनेक दिव्य रथ हाथी घोड़े पियादे महापराक्रमी सामंत लार, नानाप्रकार शस्त्रनिके धारक, राजा होठ डसता धनुष चढ़ाय वस्त्र पहिरे रथ विषें आरूढ़, भयानक आकृतिकूं धरे आग्नेय विद्याधर शत्रु के स्थानककूं दग्ध करवेकी है इच्छा जाके, ता समय एक देव तत्काल आय कर कहता भया—हे रत्नमाली ! तैं यह कहा आरंभ्या। अब तू क्रोध तज, मैं तेरा पूर्व भवका वृत्तांत कहूँ हूँ सो सुन—भरतक्षेत्र विषें गांधारी नगरी तहाँ राजा भूति, ताके पुरोहित उपमन्यु सो राजा अर पुरोहित दोनों पापी मांस-भक्षी। एक दिन राजा केवलगर्भस्वामीके मुखतें व्याख्यान सुन यह व्रत लिया जो मैं पापका आचरण न करूँ तो उपमन्यु पुरोहित ने छुड़ाय दिया। एक समय राजा पर शत्रुओंकी धाड़ आई सो राजा अर पुरोहित दोनों मारे गए। पुरोहित का जीव हाथी भया सो हाथी युद्ध में घायल होय अंतकाल णमोकार मंत्र का श्रवणकर तहाँ गांधारी नगरी विषें राजा भूति की रानी योजनगंधा ताके अरि-सूदन नामा पुत्र भया सो तानै केवलगर्भ मुनि का दर्शन कर पूर्व जन्म स्मरण किया तब वैराग्य उपजा सो मुनिपद आदरा, समाधिमरण कर ग्यारहवें स्वर्गविषें देव भया। सो मैं उपमन्यु पुरोहित का जीव अर तू राजा भूति मरकर मंदारण्यविषें मृग भया। दावानल में जल मूवा, मरकर कलिजनामा नीच पुरुष भया। सो तहांपापकर दूजे नरक गया सो मैं स्नेह के योगकर नरकविषें तुझे संबोधा। आयु पूर्णकर नरकसे निकस रत्नमाली विद्याधर भया सो तू अब वे नरकके दुःख भूल गया। यह वार्ता सुन रत्नमाली सूर्यंजय पुत्रसहित परम वैराग्यकूं प्राप्त भया। दुर्गतिके दुःखसे डरथा, तिलकसुन्दर स्वामी का शरण लेयपिता पुत्र दोनों मुनि भए। सूर्यंजय तपकर दसवें देवलोकमें देव भया। तहाँतें चयकर राजा अनरण्यका पुत्र दशरथ भया। सो सर्वभूतहित मुनि कहै हैं, अल्पमात्र भी सुकृतकर उपास्तिका जीव कैयक भव विषें बड़के बीज की न्याईं वृद्धिकूं प्राप्त भया। तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है अर नंदिवर्धनके भवविषें तेरा पिता राजा नंदिघोष मुनि

होय ग्रैवेयक गया सो तहांतैं चयकर मैं सर्वभूतहित भया। अर जो राजा भूतिका जीव रत्नमाली भया हुता सो स्वर्गसूं आयकर यह जवक भया। अर उपमन्यु पुरोहितका जीव जाने रत्नमालीको संबोधा हुता सो जनकका भाई कनक भया। या संसारविषें न कोई अपना है न कोई पर है। शुभाशुभ कर्मोंकर यह जीव जन्म मरण करै है। यह पूर्व भवका वर्णन सुन राजा दशरथ निःसंदेह होय संयमको सन्मुख भया। गुरुके चरणनिकों नमस्कार कर नगर में प्रवेश किया, निर्मल है अन्तःकरण जिनका, मनमें विचारता भया कि यह महामंडलेश्वर पदका राज्य महा सुबुद्धि जे राम तिनको देकर मैं मुनिव्रत अंगीकार करूं। राम धर्मात्मा हैं अर महा धीर हैं, धैर्य को धरै हैं, यह समुद्रांत पृथवीका राज्य पालवे समर्थ हैं। अर भाई भी इनके आज्ञाकारी हैं। ऐसा राजा दशरथने चिंतवन किया। कैसे हैं राजा? मोहतैं परान्मुख अर मुक्तिके उद्यमी। तासमय शरद ऋतु पूर्ण भई अर हिम-ऋतुका आगमन भया। कैसी है शरद ऋतु? कमल ही हैं नेत्र जाके अर चन्द्रमाकी चांदनी सो ही है उज्ज्वल वस्त्र जाके, सो मानों हिमऋतु के भय कर भाग गई।

अथानंतर हिमऋतु प्रगट भई, शीत पड़ने लगा, वृक्ष दहे अर ठंडी पवन कर लोक व्याकुल भए। जा ऋतुविषें धनरहित प्राणी जीर्ण कुटी में दुःखसे काल व्यतीत करै हैं, कैसे हैं दरिद्री? फट गए हैं अधर चरण जिनके अर बाजे हैं दाँत जिनके अर रूखे हैं केश जिनके अर निरंतर अग्निका है सेवन जाके अर कभी भी उदर भर भोजन न मिले, कठोर है चर्म जिनका अर घर में कुभार्याके वचनरूप शस्त्रनिकर विदारा गया है चित्त जिनका अर काष्ठादिकके भार लायवेको कांधे कुठारादिकको धरे बन बन भटकै हैं अर शाक बोरफलि आदि ऐसे आहारकर पेट भरै हैं अर जे पुण्य के उदयकरि राजादिक धनाढ्य पुरुष भए हैं ते बड़े महलोंमें तिष्ठैं हैं अर शीत के निवारणहारे अगर की धूपकी सुगंधिता-कर युक्त सुन्दर वस्त्र पहरै हैं अर सुवर्ण अर रूपादिक के पात्रों में षटरससंयुक्त सुगंधित स्निग्ध भोजन करै हैं, केसर अर सुगंधादिकर लिप्त हैं अंग जाके अर जिनके निकट धूप-दान में धूप खेइये है अर परिपूर्ण धन कर चिंता-रहित हैं, झरोखोंमें बैठे लोकनिको देखै हैं अर जिनके समीप गीत नृत्यादिक विनोद होयवो करै है, रत्नोंके आभूषण अर सुगंध मालादिककर मंडित सुन्दर कथामें उद्यमी हैं अर जिनके विनयवान अनेक कलाकी जननहारी महारूपवान पतिव्रता स्त्री हैं। पुण्यके उदयकरि ये संसारी जीव देवगति मनुष्य-गतिके सुख भोगैं हैं अर पापके उदयकरि नरक तिर्यन्च तथा मानुष होय दुःख दरिद्र भोगवैं हैं, सब लोक अपने अपने उपार्जित कर्मके फल भोगवैं हैं। ऐसे मुनिके वचन दशरथ पहिले सुने हुते, संसार तैं विरक्त भया द्वारपालकूं कहता भया, कैसा है द्वारपाल?

भूमिविषैं थाप्या है मस्तक अर जोड़े हैं हाथ जाने, नृपति ताकों आज्ञा करी।

हे भद्रे ! सामंत मन्त्री पुरोहित सेनापति आदि सबको ल्यावो, तब वह द्वारपाल द्वारे पर आय दूजे मनुष्यको द्वारपर मेलि तिनकी आज्ञा प्रमाण बुलावनेकों गया, तब वे आयकर राजाकूं प्रणामकरि यथायोग्य स्थानविषें तिष्ठे अर विनती करते भए—हे नाथ ! आज्ञा करहु, क्या कार्य है ? तब राजा कही, मैं संसारका त्यागकर निश्चय सेती संयम धारूंगा। तब मंत्री कहते भए कि हे प्रभो ! तुमको कौन कारण वैराग्य उपजा ? तब नृपति कही जो प्रत्यक्ष यह समस्त जगत सूके तृणकी न्याईं मृत्युरूप अग्निकर जरै है अर जो अभव्यनिकूं अलभ्य अर भव्यनिकूं लेने योग्य ऐसा सम्यक्तसहित संयम सो भव-ताप का हरणहारा अर शिव सुख का देनहारा है, सुर असुर नर विद्याधरनिकरि पूज्य प्रशंसा योग्य है। मैं आज मुनिके मुख से जिनशासनका व्याख्यान सुन्या। कैसा है जिनशासन ? सकल पापों का वर्जन हारा है। तीन लोक विषैं प्रगट, महा सूक्ष्म है चर्चा जा विषैं, अति निर्मल उपमारहित है। सर्व वस्तुनिमें सम्यक्त परम वस्तु है, ता सम्यक्तका मूल जिन-शासन है, श्री गुरुओंके चरणारविंद के प्रसादकर मैं निर्वृत्तिमार्गमें प्रवृत्या, मेरी भवभ्रांति रूप नदीकी कथा आज मैं मुनि के मुख से सुनी अर मोहि जातिस्मरण भया। सो मेरे अंग देखो, त्रास कर कांपै हैं। कैसी है मेरी भव-भ्रांति नदी ? नाना प्रकार के जन्म वे ही हैं भ्रमर जामैं, मोह रूप कीच करि मलिन कुतर्करूप ग्राहनिकरि पूर्ण महादुःखरूप लहर उठै हैं निरंतर जामैं, मिथ्यारूप जलकर भरी, मृत्यु रूप मगर मच्छनिका है भय जाविषें, रुदनके महाशब्दकूं धरे अधर्म प्रवाह कर बहती, अज्ञानरूप पर्वततैं निकसी, संसाररूप समुद्र में है प्रवेश जाका, सो अब मैं इस भव-नदीकूं उलंघकर शिवपुरी जायवे का उद्यमी भया हूं। तुम मोह के प्रेरे कछु वृथा मत कहो, संसार समुद्र तर निर्वाण द्वीप जाते अंतराय मत करहु। जैसें सूर्य के उदय होते अंधकार न रहै तैसें सम्यग्ज्ञान के होते संशय तिमिर कहां रहै। तातैं मेरे पुत्रकूं राज्य देहु, अब ही पुत्रका अभिषेक करावहु, मैं तपोवन में प्रवेश करूं हूं। ए वचन सुन मन्त्री सामन्त राजाकूं वैराग्य का निश्चय जान परम शोककूं प्राप्त भए। नीचे होय गए हैं मस्तक जिनके अर अश्रुपात कर भर गए हैं नेत्र जिनके, अंगुरी कर भूमिकूं कुचलते क्षणमात्र में प्रभा रहित होय गए, मौनसे तिष्ठे अर सकल ही रणवास प्राणनाथ का निर्ग्रंथ व्रतका निश्चय सुनि शोककूं प्राप्त भया, अनेक विनोद करते हुते सो तजकर आंसुओं से लोचन भर लिए अर महा रुदन किया। भरत पिता का वैराग्य सुन आप भी प्रतिबोधकूं प्राप्त भए, चित्त में चितवते भए—अहो यह स्नेहका प्रबन्ध छेदना कठिन है। हमारा पिता ज्ञानकूं प्राप्त भया, जिनदीक्षा लेवेकूं इच्छै है, अब इनके राज्य की चिंता कहां। मुझे न तो किसी को कुछ पूछना, न कुछ

करवा। मैं तपोवन में प्रवेश करूँगा, संयम धारूँगा। कैसा है संयम ? संसारके दुःखनिका क्षय करणहारा है। अर मेरे या देह करहू कहा ? कैसा है यह देह ? व्याधिका घर है अर विनश्वर है सो यदि देहसे मेरा सम्बन्ध नाहीं तो दुःखरूप बांधवनिसों कहा सम्बन्ध? यह सब अपने कर्मफलके भोक्ता हैं, यह प्राणी मोह कर अंधा है, संसार वनविषैं अकेला ही भटकै है, कैसा है दुःखरूप वन ? अनेक भव-भयरूप वृक्षनितैं भरया है।

अथानन्तर केकई सकल कलाकी जानवहारी भरतकी यह चेष्टा जाव अति शोककूं धरती भई, मनमें चितवै है—भरतार अर पुत्र दोवों ही वैराग्य धारया चाहै हैं, कौन उपाय करि इनका निवारण करूँ ? या भांति चिंताकर व्याकुल भया है मन जाका, तब राजाने जो वर दिया हुता सो याद आया। अर शीघ्र ही पतिपै जाय आधे सिंहासन पर बैठी। अर विनती करती भई, हे नाथ ! सर्व ही स्त्रीनिके निकट तुम मोहि कृपाकर कही हुती जो तू माँग सो मैं देऊँ, सो अब देवो। तुम सत्यवादी हो अर दान करि निर्मल कीर्ति तिहारी जगत विषैं विस्तर रही है। तब दशरथ कहते भए—हे प्रिये ! जो तेरी वांछा होय सोही लेहू। तब राणी केकई आँसू डारती संती कहती भई—हे नाथ! हमपै ऐसी कहा चूक भई जो तुम कठोर चित्त किया हमकूं तजा चाहो हो, हमारा जीव तो तिहारे आधीन है अर यह जिन दीक्षा अत्यन्त दुर्धर सो लेववेको तुम्हारी बुद्धि काहेकूं प्रवर्ती है ? ये इंद्र समाव जे भोग तिनकर लड़ाया जो तिहारा शरीर सो कैसे मुनिपद धारोगे ? कैसा है मुनिपद, अत्यन्त विषम है। या भाँति जब रानी केकई वे कहा तब आप कहते भए—हे कांते ! समर्थनिकूं कहा विषम ? मैं तो निसन्देह मुनिव्रत धारूंगा, तेरी अभिलाषा होय सो माँग लेहु। रानी चिंतावान होय नीचा मुखकर कहती भई, हे नाथ ! मेरे पुत्रकूं राज्य देहु। तब दशरथ बोले, यामें कहा संदेह ? तैं धरोहर मेली हुती सो अब लेहु, तैं जो कहा सो हम प्रमाण किया, अब शोक तज, तैं मोहि ऋण-रहित किया। तब राम लक्ष्मणकूं बुलाय दशरथ कहते भए—कैसे हैं दोऊ भाई ? महा विनयवान हैं, पिता के आज्ञाकारी हैं। राजा कहै है, हे वत्स ! यह केकई अनेक कला की पारगामिनी है, याने पूर्व महा घोर संग्राम विषैं मेरा सारथीपना किया, यह अति चतुर है, मेरी जीत भई, तब मैं तुष्टायमान होय याहि वर दिया जो तेरी वांछा हो सो माँग, तब याने वचन मेरे धरोहर मेला। अब यह कहै है कि मेरे पुत्रकूं राज्य देवो, सो जो याके पुत्रकूं राज्य न देऊँ तो याका पुत्र भरत संसार का त्याग करै अर यह पुत्र के शोककरि प्राण तजै अर मेरी वचन चूकवे की अकीर्ति जगत् में विस्तरै। अर बड़े पुत्रकूं छोड़कर छोटे पुत्रकूं राज्य देउँ तो यह काम मर्यादातैं विपरीत है अर भरतकूं सकल पृथ्वी का राज्य दिए तुम लक्ष्मण-सहित कहाँ जाओ ? तुम दोऊ भाई परमक्षत्री तेज के धरनहारे हो। तातैं हे

वत्स ! मैं कहा करूं ? दोऊ ही कठिन बात आय बनी। मैं अत्यन्त दुःखरूप चिंता के सागर में पड्या हूँ। तब श्रीरामचन्द्र महा विनयकूं धरते सन्ते कहते भए, पिता के चरणारविंदकी ओर हैं नेत्र जिनके अर महा सज्जनभावकूं धरै हैं। हे तात ! तुम अपना वचन पालहु, हमारी चिंता तजहु, जो तिहारे वचन चूकने की अपकीर्ति होय अर हमारे इन्द्र की सम्पदा आवे तो कौन अर्थ। जो सुपुत्र हैं सो ऐसा ही कार्य करें जाकर माता पिताकूं रंचमात्र भी शोक न उपजै। पुत्र का यही पुत्रपना पंडित कहै हैं जो पिताकूं पवित्र करै अर कष्टतें रक्षा करै। पवित्र करणा यह कहावै जो उनकूं जिनधर्म के सम्मुख करै। दशरथके अर राम लक्ष्मण के यह बात होय है, ताही समय भरत महलतें उतरया, मन में विचारी–मैं मुनिव्रत धरूं अर कर्मनिकूं हनूं। सो लोकनिके मुखतें हाहाकार शब्द भया। पिताने विह्वल चित्त होय भरतकूं वन जायवेतें राख्या, गोदमें ले बैठे, छातीसूं लगाय लिया, मुख चूमा अर कहते भए–हे पुत्र ! तू प्रजाका पालनकर, मैं तपके अर्थि वन में जाऊं हूँ। भरत बोले–मैं राज्य न करूं, जिन दीक्षा धरूँगा। तब राजा कहते भए–हे वत्स ! कैयक दिन राज्य करहु। तिहारी नवीन वय है, वृद्ध अवस्था में तप करियो। भरत कही–हे तात ! जो मृत्यु है सो बाल वृद्ध तरुणकूं नाहीं देखे है, सर्व भक्षी है, तुम मोहि वृथा काहेकूं मोह उपजावो हो। तब राजा कही–हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम विषैं भी धर्म का संग्रह होय है, कुमानुषनितें नाहीं बनै है। तब भरत कही–हे नाथ ! इंद्रियनिके वशतें काम क्रोधादिक भरे गृहस्थनिकूं मुक्ति कहां ? तब भूपतिने कही–हे भरत ! मुनिनहू में सबकी तद्भवमुक्ति नाहीं होय है, कोई एकको होय है तातें तू कैयक दिन गृहस्थधर्म आराधि। तब भरत कही–हे देव ! आप जो कही सो सत्य है परन्तु गृहस्थनिका तो यह नियम ही है जो मुक्ति न होय अर मुनिनमें कोईकी होय, कोईकी न होय। गृहस्थधर्मतें परंपराय मुक्ति होय है, साक्षात् नाहीं, तातें वह हीनशक्ति वारेनिका काम है; मोहि यह बात न रुचे, मैं महाव्रत ही धरणे का अभिलाषी हूँ। गरुड कहा पतंगनिकी रीति आचरै ? कुमानुष कामरूप अग्निकी ज्वालाकरि परम दाहकूं प्राप्त भए संते स्पर्शन इन्द्रिय अर जिह्वा इन्द्रिय करि अधर्म कार्यकूं करै हैं, तिनकूं निवृत्ति कहां ? पापी जीव धर्मतें विमुख विषय-भोगनिकूं सेय करि निश्चयसेती महा दुःखदाता जो दुर्गति ताहि प्राप्त होय हैं। ये भोग दुर्गति के उपजावनहारे अर राखे न रहैं, क्षण- भंगुर हैं तातें त्याज्य ही हैं। ज्यों ज्यों कामरूप अग्नि में भोगरूप ईंधन डारिए त्यों त्यों अत्यन्त तापकी करणहारी कामाग्नि प्रज्वलित होय है, तातें हे तात ! तुम मोहि आज्ञा देवो जो मैं वन में जाय विधिपूर्वक तप करूं, जिनभाषित तप परम निर्जरा का कारण है, या संसारतें मैं अति भय कूं प्राप्त भया हूँ। अर हे प्रभो ! जो घर ही विषैं कल्याण

होय तो तुम काहे को घर तजि मुनि हुआ चाहो हो ? तुम मेरे तात हो, सो तात का यही धर्म है जो संसार-समुद्रतें तारै, तपकी अनुमोदना करै, यह बात विचक्षण पुरुष कहैं हैं। शरीर स्त्री धन माता पिता भाई सकलकूं तजि यह जीव अकेला ही परलोककूं गया है, चिरकाल देवलोकके सुख भोगे, तोहू यह तृप्त न भया, सो अब मनुष्यनिके भोगकरि कैसे तृप्त होय ? पिता भरतके ये वचन सुनकर बहुत प्रसन्न भया, हर्ष थकी रोमांच होय आए अर कहता भया—हे पुत्र ! तू धन्य है, भव्यनि विषैं मुख्य है, जिनशासनका रहस्य जानि प्रतिबोधकूं प्राप्त भया है। तू जो कहै है सो प्रमाण है, तथापि हे धीर ! तैं अब तक कबहूं मेरी आज्ञा भंग न करी, तू विनयवान पुरुषों में प्रधान है, मेरी वार्ता सुनि। तेरी माता केकई ने युद्ध विषैं मेरा सारथीपना किया, वह युद्ध अति विषम हुता जामें जीवनकी आशा नाहीं, सो याके सारथीपने करि युद्ध विषैं विजय पाई, तब मैं तुष्टायमान होय याकूं कहा जो तेरी वांछा होय सो मांग। तब याने कही कि यह वचन भंडार रहै, जा दिन मोहि इच्छा होयगी ता दिन मांग लूंगी। सो आज याने यह मांगी कि मेरे पुत्रकूं राज्य देहु, सो मैं प्रमाण किया। अब हे गुणनिधे ! तू इंद्रके राज्य समान यह राज्य निःकंटक करि। मेरी प्रतिज्ञा भंगकी अकीर्ति जगत विषैं न होय अर यह तेरी माता तेरे शोक करि तप्तायमान होय मरणकों न पावैं, कैसी है यह ? निरंतर सुखकर लड़ाया है शरीर जानै। अपत्य कहिए पुत्र, ताका यही पुत्रपना है कि माता पिताकूं शोक समुद्र में न डारे, यह बात बुद्धिमान कहै हैं, या भांति राजा कही।

अथानन्तर श्रीराम भरत का हाथ पकड़ महामधुर वचनकरि प्रेमकी भरी दृष्टि करि देखते सन्ते कहते भए, हे भ्रात! तात ने जैसे वचन तोहि कहे ऐसे और कौन समर्थ ? जो समुद्र से रत्नों की उत्पत्ति होय सो सरोवर से कहां ? अबार तेरी वय तपके योग्य नाहीं, कैयक दिन राज्य कर जासैं पिता की कीर्ति वचन के पालबे की चन्द्रमा समान निर्मल होय। अर तो सारिखे पुत्रके होतें सन्ते माता शोककर तप्तायमान मरणकूं प्राप्त होय, यह योग्य नाहीं। अर मैं पर्वत अथवा वन विषैं ऐसी जगह निवास करूंगा जो कोई न जानै, तू निश्चिंत राज्य कर। मैं सकल राजऋद्धि तज देशतें दूर रहूँगा अर पृथ्वीको पीड़ा काहू प्रकार न होयगी। तातें अब तू दीर्घ सांस मत डारै, कैयक दिन पिताकी आज्ञा मान राज्य करि न्याय सहित पृथ्वीकी रक्षा कर। हे निर्मल-स्वभाव ! यह इक्ष्वाकुवंशनिका कुल ताहि अत्यन्त शोभायमान करि, जैसें चंद्रमा ग्रह नक्षत्रादिको शोभायमान करै है। भाई का यही भाईपना पंडितनि ने कहा है कि भाईनिकी रक्षा करै, संताप हरै। श्रीरामचंद्र ऐसे वचन कहिकर पिताके चरणनिको भावसहित प्रणाम कर चल पड़े। तब पिताकूं मूर्च्छा आय गई, काष्ठ के स्तंभ समान शरीर होय गया। राम तर्कश बांध धनुष हाथमें

लेय माताकूं नमस्कार कर कहते भए–हे माता ! हम अन्य देशकूं जांय हैं, तुम चिंता न करवा। तब माताको भी मूर्च्छा आय गई, बहुरि सचेत होय आँसूं डारती सन्ती कहती भई–हाय पुत्र ! तुम मोहि शोकके समुद्रमें डार कहाँ जावो हो ? तुम उत्तम चेष्टा के धरणहारे हो, माता का पुत्र ही अवलम्बन है जैसें शाखाके मूल आधार है। माता रुदन करि विलाप करती भई। तब श्रीराम माता की भक्ति विषें तत्पर ताहि प्रणामकर कहते भए–हे माता ! तुम विषाद मत करहु। मैं दक्षिण दिशा विषें कोई स्थानकर तुमकूं निसंदेह बुलाऊँगा। हमारे पिता ने माता केकईकूं वर दिया हुता सो भरतकूं राज्य दिया। अब मैं यहां रहूँ नाहीं विंध्याचल के वन विषें अथवा मलयाचल के वन विषें तथा समुद्र के समीप स्थान करूंगा। मैं सूर्य समान यहाँ रहूँ तो भरत चंद्रमा की आज्ञा ऐश्वर्यरूप कांति न विस्तरै। तब माता नम्रीभूत जो पुत्र ताहि उरसूं लगाय रुदन करती सन्ती कहती भई–हे पुत्र! मोकूं तिहारे लार ही चलना उचित है, तुमकूं देखे बिना मैं प्राणनिकूं राखवे समर्थ नाहीं, जे कुलवन्ती स्त्री हैं तिनके पिता अथवा पति तथा पुत्र ये आश्रय हैं। सो पिता तो कालवश भया अर पति जिनदीक्षा लेयबेकूं उद्यमी भया है; अब तो पुत्र ही का अवलंबन है सो तुमहू छांड चाले तो मेरी कहा गति होसी ? तब राम बोले, हे माता ! मार्गमें पाषाण अर कंटक बहुत हैं, तुम कैसें पायन चलोगी? तातें कोऊ सुखका स्थानकरि असवारी भेज तुमकूं बुलाऊँगा। मोहि तिहारे चरणनि की सौगंध है, तिहारे लेनेकूं मैं आऊँगा, तुम चिंता मत करहु। ऐसे कह माताकूं शांतता उपजाय सीख दीनी। बहुरि पितापै गए। पिता मूर्च्छित होय गए हुते सो सचेत भए। पिताकूं प्रणाम कर और मातानिपैं गए; सुमित्रा, केकई व सुप्रभा सबनिकूं प्रणाम कर सीख करी। कैसे हैं राम? न्याय विषें प्रवीण, निराकुल है चित्त जिनका, तथा भाई बंधु मंत्री अनेक राजा उमराव परिवारके लोक सबनिकूं शुभ वचन कह विदा भए। सबनिकूं बहुत दिलासाकर छातीसूं लगाए, उनके आँसू पूँछे। उनने घनी ही विनती करी जो यहाँ ही रहो सो न मानी। सामंत तथा हाथी घोड़े रथ सबकी ओर कृपा दृष्टि कर देख्या। बहुरि बड़े २ सामंत हाथी घोड़े भेंट लाए सो रामने न राखे। सीता अपने पतिकूं विदेश गमनकूं उद्यमी देख ससुर अर सासूकूं प्रणाम कर नाथके संग चाली जैसें शची इन्द्रके साथ चालै। अर लक्ष्मण स्नेहकर पूर्ण रामकूं विदेश गमनकूं उद्यमी देख चित्तमें क्रोधकर चिंतवता भया कि जो हमारे पिता ने स्त्री के कहे तें यह कहा अन्याय कार्य विचारया जो राम को टार और को राज्य दिया। धिक्कार है स्त्रीनिकूं जो अनुचित काम करती शंका न करैं, स्वार्थ विषें आसक्त है चित्त जिनका। अर यह बड़ा भाई महानुभाव पुरुषोत्तम है सो ऐसे परिणाम मुनिनके होय हैं। अर मैं ऐसा समर्थ हूँ जो समस्त दुराचारिनिका पराभव कर भरतकूं

राज्यलक्ष्मीतें रहित करू' अर राज्यलक्ष्मी श्रीरामके चरणनिमें लाऊँ परन्तु यह बात उचित नाहीं, क्रोध महा दुःखदाई है, जीवनिकूं अंध करै है। पिता तो जिनदीक्षाकूं उद्यमी भया अर मैं क्रोध उपजाऊँ, सो योग्य नाही। अर मोहि ऐसा विचार कर कहा? योग्य अर अयोग्य पिता जानै अथवा बड़ा भाई जानै, जामें पिता की कीर्ति उज्ज्वल होय सो कर्तव्य है। मोहि काहूसूं कुछ न कहना, मैं मौन पकड़ बड़े भाई के संग जाऊँगा। कैसा है यह भाई? साधु समान हैं भाव जाके, ऐसा विचार कर कोप तज धनुष-बाण लेय समस्त गुरुजननिकूं प्रणामकर महाविनय संपन्न राम के लार चाल्या; दोऊ भाई जैसें देवालयतें देव निसरें तैसें राजमंदिरतें नीसरे। अर माता पिता सकल परिवार अर भरत शत्रुघ्न सहित इनके वियोगतें अश्रुपात करि मानों वर्षा ऋतु करते सन्ते राखवेकूं चाले सो राम लक्ष्मण प्रति पिताभक्त अर संबोधवेकूं महापंडित, विदेश जायवेही का निश्चय जिनके, सो माता पिता की बहुत स्तुतिकर बारंबार नमस्कार कर बहुत धैर्य बंधाय पीठ पीछे फेरी सो नगर में हाहाकार भया। लोक वार्ता करै हैं, हे मात! यह कहा भया, यह कौनने मति उपजाई। या नगरीही का अभाग्य है अथवा सकल पृथ्वी का अभाग्य है। हे मात! हम तो अब यहाँ न रहेंगे, इनके लार चालेंगे। ये महा समर्थ हैं। अर देखो यह सीता नाथके संग चाली है अर रामकी सेवा करणहारा लक्ष्मण भाई है। धन्य है यह जानकी विनयरूप वस्त्र पहिरे भरतार के संग जाय है। नगर की नारी कहै हैं कि हम सबनिकूं शिक्षा देनहारी यह सीता महापतिव्रता है। या समान और नारी नाहीं, जो महापतिव्रता होय सो याकी उपमा पावै, पतिव्रतानिकै भरतार ही देव हैं। अर देखो यह लक्ष्मण माताकूं रोवती छोड़ बड़े भाईके संग जाय है। धन्य याकी भक्ति, धन्य याकी प्रीति, धन्य याकी शक्ति, धन्य याकी क्षमा, धन्य याकी विनयकी अधिकता। या समान और नाहीं। अर दशरथ भरतकूं यह कहा आज्ञा करी जो तू राज्य लेहु? अर राम लक्ष्मणकूं यह कहा बुद्धि उपजी जो अयोध्याकूं छांड़ि चाले? जा काल में जो होनी होय सो होय है, जाके जैसा कर्म उदय होय तैसा ही होय, जो भगवान के ज्ञान में भासा है सो होय, दैवगति दुर्निवार है. यह बात बहुत अनुचित होय है, यहां के देवता कहां गए? ऐसे लोगनिके मुखध्वनि होती भई। सब लोक इनके लार चालवेकूं उद्यमी भए, घरनितें निकसे, नगरी का उत्साह जाता रह्या, शोक कर पूर्ण जो लोक तिनके अश्रुपातनिकरि पृथ्वी सजल होय गई; जैसें समुद्र की लहर उठै है तैसें लोक उठे। राम के संग चले, मनें किए हू लोक न रहे, रामकूं भक्तिकर लोक पूजें, संभाषण करें, सो राम पैंड पैंड में विघ्न मानें, इनका भाव चलवेका अर लोक राख्या चाहैं। कैएक लार चले, रामका विदेश गमन मानों सूर्य देख न सक्या सो अस्त होने लग्या। अस्त समय सूर्य के प्रकाशने सर्व दिशा तजी, जैसें

भरत चक्रवर्ती मुक्तिके निमित्त राज्य संपदा तजी हुती। सूर्यके अस्त होते परम रामको धरती संती संध्या सूर्यके पीछे ऐसें चाली जैसें सीता रामके पीछे चाली। अर समस्त विज्ञान का विध्वंस करणहारा अंधकार जगत में व्याप्त भया, मानों रामके गमन करि तिमिर विस्तरया। लोग लार लागे, पीछे जांय नाहीं। तब राम लोगनिके टारिवेकूं श्रीअरनाथ तीर्थंकरके चैत्यालयविषें विवास करना विचार्या। संसारके तारणहारे भगवान तिनका भवन सदा शोभायमान महासुगंध अष्टमंगल द्रव्यनिकर मंडित, जाके तीन दरवाजे, ऊंचा तोरण सो समस्त विधिके वेत्ता राम लक्ष्मण सीता प्रदक्षिणा देय चैत्यालय मांहि पैठे। दोय दरवाजे तक तो लोक चले गए अर तीसरे दरवाजे पर द्वारपालने लोकनिकूं रोक्या जैसें मोहनीय कर्म मिथ्यादृष्टिनिकूं शिवपुर जायवेतें रोके; राम लक्ष्मण धनुष बाण अर बखतर बाहिर मेल भीतर दर्शनकूं गए। कमल समान हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीअरनाथ का प्रतिबिंब रत्ननिके सिंहासन पर विराजमान, महाशोभायमान, महासौम्य, कायोत्सर्ग, श्रीवत्स लक्षण कर देदीप्यमान है उरस्थल जिनका, प्रगट हैं समस्त लक्षण जिनके, संपूर्ण चन्द्रमा समान वदन, फूले कमलसे नेत्र, कथनविषें अर चिंतवन विषें न आवै ऐसा है रूप जिनका, तिनका दर्शनकर भाव सहित नमस्कार कर ये दोऊ भाई परमहर्षकूं प्राप्त भए। कैसे हैं दोऊ? बुद्धि, पराक्रम, रूप, विनयके भरे, जिनेंद्रकी भक्ति विषें तत्पर, रात्रिकूं चैत्यालयके समीप रहे। तहां इनकूं बसे जान माता कौशल्यादिक, पुत्रनिविषें है वात्सल्य जिनका, आयकर आंसू डारती बारंबार उरसूं लगावती भई; पुत्रनिके दर्शन विषें अतृप्त, विकल्प रूप हिंडोलविषें झूलै है चित्त जिनका। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतें कहै हैं—

हे श्रेणिक! सर्व शुद्धता में मनकी शुद्धता महा प्रशंसा योग्य है। स्त्री पुत्रकूं भी उरसे लगावै अर पतिकूं भी उरसे लगावै परन्तु परणामनिका अभिप्राय जुदा जुदा है। दशरथ की चारों ही राणी गुण रूप लावण्यता कर पूर्ण महा मिष्टवादिनी पुत्रनिसूं मिल पतिपै गईं, जायकर कहती भईं, कैसा है पति? सुमेरु समान निश्चल है भाव जाका। राणी कहै हैं, हे देव! कुलरूप जहाज शोकरूप समुद्रविषें डूबै है सो थांभो, राम लक्ष्मणकूं वापिस ल्यावो। तब राजा कहते भए—यह जगत विकाररूप मेरे आधीन नाहीं। मेरी इच्छा तो यही है कि सर्व जीवनिकूं सुख होय, काहूकूं दुःख न होय, जन्म जरा मरणरूप पराधीनकरि कोई जीव पीड्या न जाय परन्तु ये जीव नाना प्रकारके कर्मनिकी स्थितिकूं धरै हैं तातें कौन विवेकी वृथा शोक करै। बांधवादिक इष्ट पदार्थनिके दर्शन विषें प्राणिनिकूं तृप्ति नाहीं तथा धन अर जीतव्य इनकरि तृप्ति नाहीं। इन्द्रियनिके सुख पूर्ण न होय सके अर आयु पूर्ण होय जाय तब जीव देहकूं तज और जन्म धरै, जैसें पक्षी वृक्षकूं तज चला जाय है। तुम पुत्रनिकी माता हो, पुत्रनिकूं ले आओ, पुत्रनिके राज्यका उदय देख विश्रामकूं

भजो। मैंने तो राज्य का अधिकार तज्या, पाप क्रियातें निवृत्त भया, भव-भ्रमणतें भयकूं प्राप्त भया। अब मैं मुनिव्रत धारूंगा; या भांति राजा राणिनिसों कही। निर्मोहताके निश्चयकूं प्राप्त भया सकल विषयाभिलाषरूप दोषनितें रहित, सूर्य समान है तेज जाका, सो पृथ्वी में तप संयम का उद्योत करता भया।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै दशरथ का वैराग्य वर्णन करनेवाला इकतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३१॥

बत्तीसवां पर्व

(राम लक्ष्मण का वन गमन और भरत का राज्याभिषेक)

अथानंतर राम लक्ष्मण क्षण एक निद्रा कर अर्धरात्रि के समय जब मनुष्य सोय रहे, लोकनिका शब्द मिट गया अर अन्धकार फैल गया ता समय भगवानकूं नमस्कारकर बखतर पहिर धनुष बाण लेय सीताकूं बीच मैं लेकर चाले, घर-घर दीपकनिका उद्योत होय रहा है, कामीजन अनेक चेष्टा करैं हैं। ये दोऊ भाई महाप्रवीण नगरके द्वारकी खिड़कीकी ओरसे निकसि दक्षिण दिशा का पंथ लिया, रात्रि के अन्त में दौड़कर सामन्त लोक आय मिले, राघव के संग चलने की है अभिलाषा जिनके, दूरतें राम लक्ष्मणकूं देख महा विनय के भरे असवारी छोड़ प्यादे आए, चरणारविंदकों नमस्कारकरि निकट आय वचनालाप करते भए। बहुत सेना आई अर जानकी की बहुत प्रशंसा करते भए जो याके प्रसादतें हम राम लक्ष्मणकों आय मिले; यह न होती तो ये धीरे-धीरे न चलते अर हम कैसे पहुँचते? ये दोऊ भाई पवन-समान शीघ्रगामी हैं अर यह सीता महासती हमारी माता है, या समान प्रशंसा योग्य पृथ्वी विषैं और नाहीं। ये दोऊ भाई नरोत्तम सीताकी चाल प्रमाण मन्द-मन्द दो कोस चाले। खेतविविषैं नाना प्रकार के अन्न हरे होय रहे हैं अर सरोवरविमैं कमल फूल रहे हैं अर वृक्ष महारमणीक दीखै हैं। अनेक ग्राम नगरादिमैं ठौर ठौर भोजनादि सामग्री करि लोक पूजें हैं अर बड़े बड़े राजा बड़ी फौजसे आय मिले जैसें वर्षा काल में गंगा जमुना के प्रवाह विषैं अनेक नदियनि के प्रवाह आय मिलैं। केइक सामन्त मार्ग के खेद करि इनका निश्चय जान आज्ञा पाय पीछे गए अर केइक लज्जाकर, केइक भयकर, केइक भक्ति कर लार प्यादे चले जाय हैं सो राम लक्ष्मण क्रीड़ा करते परियात्रा नामा अटवी विषैं पहुँचे। कैसी है अटवी? नाहर अर हाथीनिके समूहनिकर भरी महा भयानक वृक्षनिकर रात्रि समान अन्धकार की भरी, जाके मध्य नदी है ताके तट आए, जहां भीलनिका निवास है, नाना प्रकार के मिष्ट फल हैं। आप तहां तिष्टकर केएक राजनिकों विदा किया अर केएक पीछे न फिरे, राम ने बहुत कहा तो भी संग ही

चाले सो सकल नदीको महा भयानक देखते भए। कैसी है नदी ? पर्वतनिसों निकसती महानील है जल जाका, प्रचण्ड हैं लहर जामें, महा शब्दायमान अनेक जे ग्राह मगर तिन कर भरी दौऊ ढाहीं विदारती, कल्लोलनिके भयकर उड़े हैं तीर के पक्षी जहाँ, ऐसी नदी को देखकर सकल सामन्त त्रासकर कंपायमान होय राम लक्ष्मणकूं कहते भए कि हे नाथ ! कृपाकर हमें भी पार उतारहु, हम सेवक भक्तिवन्त हमसे प्रसन्न होवो, हे माता जानकी लक्ष्मण से कहो जो हमकूं पार उतारें, या भाँति आंसू डारते अनेक नरपति नाना चेष्टाके करणहारे नदी विषें पड़ने लगे। तब राम बोले, अहो अब तुम पाछे फिरो। यह वन महाभयानक है, हमारा तुम्हारा यहां लग ही संग हुता, पिताने भरतकूं सबका स्वामी किया है सो तुम भक्तिकर तिनकूं सेवहु। तब वे कहते भए, हे नाथ ! हमारे स्वामी तुम ही हो, महादयावान हो, हमपर प्रसन्न होवो, हमको मत छोड़हु, तुम विना यह प्रजा निराश्रय भई, आकुलतारूप कहो कौनकी शरण जांय ? तुम समान और कौन है ? व्याघ्र सिंह अर गजेंद्र सर्पादिकका भरा भयानक जो यह वन तामें तुम्हारे संग रहेंगे। तुम बिना हमारे स्वर्ग हू सुखकारी नाहीं। तुम कही पाछे जावो सो चित्त फिरै नाहीं, कैसे जाहिं ? यह चित्त सब इन्द्रियनिका अधिपति याहींतें कहिए हैं जो यह अद्भुत वस्तु में अनुराग करे। हमारे भोगनिकर घरकर तथा स्त्री कुटुम्बादिकर कहा ? तुम नररत्न हो, तुमको छोड़ कहाँ जाहिं ? हे प्रभो ! तुमने बालक्रीडा विषें हमसों कबहू वंचना न करी, अब अत्यन्त निठुरताकूं धारो हो। हमारा अपराध कहो। तिहारे चरण रजकर परम वृद्धिकूं प्राप्त भए, तुम तो भृत्य-वत्सल हो। अहो माता जानकी ! अहो लक्ष्मण धीर ! हम शीश नवाय हाथ जोड़ विनती करे है, नाथकूं हम पर प्रसन्न करहु। ये वचन सबनिने कहे, तब सीता अर लक्ष्मण राम के चरणनिकी ओर निरख रहे। तब राम बोले—जाहु, यही उत्तर है। सुखसों रहियो, ऐसा कहकर दोनों धीर नदी के विषै प्रवेश करते भए। श्रीराम सीता का कर गह सुखसे नदीमें ले गए जैसें कमलिनीकों दिग्गज ले जाय। वह असराल नदी राम लक्ष्मण के प्रभावकर नाभि-प्रमाण बहने लगी, दोऊ भाई जलविहार विषै प्रवीण क्रीड़ा करते चले गए। राम के हाथ गहे ऐसी शोभै मानों साक्षात लक्ष्मी ही कमलदल में तिष्ठी है। राम लक्ष्मण क्षणमात्र विषें नदी पार भए वृक्षनिके आश्रय आय गए। तब लोकनिकी दृष्टितें अगोचर भए। तब कई-एक तो विलाप करते आंसू डारते घरनिकूं गए अर कईएक राम लक्ष्मण की ओर धरी है दृष्टि जिनने सो काष्ट से होय रहे अर कई एक मूर्च्छा खाय धरती पर पड़े अर कई एक ज्ञान को प्राप्त होय जिनदीक्षाको उद्यमी भए, परस्पर कहते भए—जो धिक्कार है या असार संसार को अर धिक्कार इन क्षणभंगुर भोगनिको ! ये काले नाग के फण समान भयानक हैं। ऐसे शूरवीरनिकी यह

अवस्था तो हमारी कहा बात ? या शरीरको धिक्कार। जो पानीके बुदबुदा समान निस्सार, जरा मरण इष्टवियोग अनिष्टसंयोग इत्यादि कष्ट का भाजन है। धन्य हैं वे महापुरुष भाग्यवन्त उत्तम चेष्टाके धारक ! जे मरकट (बन्दर) की भौंह समान लक्ष्मी को चंचल जान तजिकर दीक्षा धरते भए। या भांति अनेक राजा विरक्त होय दीक्षाको सन्मुख भए। तिनने एक पहाड़की तलहटी में सुन्दर वन देख्या, अनेक वृक्षनिकर मंडित महासघन, नाना प्रकारके पुष्पनिकर शोभित, जहां सुगन्धके लोलुपी भ्रमर गुंजार करै हैं तहां महापवित्र स्थानक में तिष्ठते ध्यानाध्ययनविषैं लीन महातपके धारक साधु देखे। तिनकों नमस्कार कर वे राजा जिननाथका जो चैत्यालय तहाँ गए। ता समय पहाड़निके शिखर विषैं अथवा रमणीक वन विषैं अथवा नदीनके तट विषैं अथवा नगर ग्रामादिक विषैं जिनमन्दिर हुते तहाँ नमस्कार करि एक समुद्र समान गम्भीर मुनिनके गुरु सत्यकेतु आचार्य तिनके निकट गए, नमस्कार कर महाशान्त रसके भरे आचार्य से विनती करते भए—हे नाथ! हमको संसार समुद्रतें पार उतारहु। तब मुनि कही—तुमको भव-पार उतारनहारी भगवती दीक्षा है सो अंगीकार करहु। मुनि की आज्ञा पाय ये परम हर्षकूं प्राप्त भए। राजा विदग्धविजय मेरुक्रूर, संग्रामलोलुप, श्री नागदमन, धीर शत्रुदमन अर विनोद कंटक, सत्यकठोर, प्रियवर्धन इत्यादि निर्ग्रंथ होते भए, तिनका गज तुरंग रथादि सकल साज सेवक लोकनि ने जाय करि उनके पुत्रादिकनिकूं सोंप्या, तब वे बहुत चितावान भए। बहुरि समझकर नाना प्रकारके नियम धारते भए। कैयक सम्यग्दर्शन कूं अंगीकार कर संतोषकूं प्राप्त भए, कैयक निर्मल जिनेश्वरदेवका धर्म श्रवणकरि पापतें परान्मुख भए। बहुत सामन्त राम लक्ष्मण की वार्ता सुन साधु भए, कैयक श्रावक के अणुव्रत धारते भए। बहुत रानी आर्यिका भईं, बहुत श्राविका भईं, कैयक सुभट रामका सर्व वृत्तांत भरत दशरथ पर जाकर कहते भए सो सुनकर दशरथ अर भरत कछुयक खेदकूं प्राप्त भए।

अथानन्तर राजा दशरथ भरतको राज्याभिषेक कर, कछुयक जो राम के वियोग कर व्याकुल भया हुता हृदय सो समता में लाय, विलाप करता जो अन्तःपुर ताहि प्रतिबोधि नगरतें वनकूं गए। सर्वभूतहित स्वामीको प्रणामकरि बहुत नृपनि सहित जिनदीक्षा आदरी। एकाकी विहारी जिनकल्पी भए। परम शुक्लध्यानकी है अभिलाषा जिनके तथापि पुत्रके शोककर कब हूँ कछुइक कलुषता उपज आवै सो एक दिन ये विचक्षण विचारते भए कि संसारके दुःखका मूल यह जगतका स्नेह है, इसे धिक्कार हो ! या करि कर्म बंधैं हैं। मैं अनन्त जन्म धरे तिनविषैं गर्भ-जन्म बहुत धरे, सो मेरे गर्भ-जन्म के अनेक माता-पिता भाई-पुत्र कहां गए ? अनेक बार मैं देवलोकके भोग भोगे अर अनेक बार नरक के दुःख भोगे, तिर्यंच गति विषैं मेरा शरीर अनेक बार इन जीवनिने भख्या, इनका मैं भख्या;

नाना रूप ये योनियां तिन विषैं मैं बहुत दुःख भोगे। अर बहुतबार रुदन किया अर रुदन के शब्द सुने। अर बहुत बार वीणाबांसुरी आदि वादित्रों के नाद सुने, गीत सुने, नृत्य देखे, देवलोकविषैं मनोहर अप्सरानिके भोग भोगे. अनेक बार मेरा शरीर नरकविषैं कुल्हाड़निकर काटा गया अर अनेक बार मनुष्यगतिविषैं महा सुगन्ध महा वीर्य करणहारा षट्रस संयुक्त अन्न आहार किया। अर अनेक बार नरकविषैं गला हुआ सीसा अर तांबा नारकियोंने मार मार मुझे प्याया अर अनेक बार सुर नर गतिविषैं मनके हरणहारे सुन्दर रूप देखे अर सुन्दर रूप धारे। अर अनेक बार नरक विषैं महाकुरूप धारे अर नाना प्रकार के त्रास देखे। कैयक बार राजपद देवपदविषैं नाना प्रकारके सुगन्ध सूंघे तिनपर भ्रमर गुंजार करैं। अर कैयक बार नरककी महा दुर्गन्ध सूँघी अर अनेक बार मनुष्य तथा देवगतिविषैं महालीलाकी धरणहारी, वस्त्राभरण मंडित, मन को चोरनहारी जे नारी तिनसों आलिंगन किया। अर बहुत बार नरकविषैं कूटशालमलि वृक्ष तिनके तीक्ष्ण कंटक अर प्रज्वलिती लोहकी पुतलोनिसे स्पर्श किया? या संसार विषैं कर्मनिके संयोगतैं मैं कहा कहा न देखा,कहा कहा न सूंघा,कहा कहा न सुना,कहा कहा न भखा। अर पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय विषैं ऐसा देह नाहीं जो मैं न धारा। तीनलोकविषैं ऐसा जीव नाहीं जासूं मेरे अनेक नाते न भए, ये पुत्र मेरे कई बार पिता भए, माता भए, शत्रु भए, मित्र भए। ऐसा स्थानक नाहीं, जहां मैं न उपजा, न मूआ। ये देह भोगादिक अनित्य, या जगतविषैं कोई शरण नाहीं, यह चतुर्गतिरूप संसार दुःखका निवास है, मैं सदा अकेला हूँ, ये षट्द्रव्य परस्पर सब ही भिन्न हैं; यह काय अशुचि. मैं पवित्र; ये मिथ्यात्वादि अव्रतादि कर्म आस्रव के कारण हैं, सम्यक्त व्रत संयमादि संवरके कारण हैं। तपकर निर्जरा होय है। यह लोक नानारूप मेरे स्वरूपतैं भिन्न, या जगत विषैं आत्मज्ञान दुर्लभ है अर वस्तुका जो स्वभाव सोई धर्म तथा जीव दया धर्म सो मैं महाभाग्यतैं पाया। धन्य ये मुनि जिनके उपदेशतैं मोक्षमार्ग पाया सो अब पुत्रनिकी कहा चिंता? ऐसा विचार कर दशरथ मुनि निर्मोह दशाकूं प्राप्त भए। जिन देशों में पहिले हाथी चढ़े, चमर ढुरते, छत्र फिरते हुते अर महारण संग्राम विषैं उद्धत वैरिनिकूं जीते हुते तिन देशनिविषैं निर्ग्रन्थ दशा धरे, बाईस परीषह जीतते, शांतिभाव संयुक्त विहार करते भए। अर कौशल्या तथा सुमित्रा पति के वैरागी भए अर पुत्रनिके विदेश गए बहा शोकवन्ती भई, निरंतर अश्रुपात डारैं; तिनके दुःखकूं देख भरत राज्य विभूति को विष समान मानता भया। अर केकई तिनकूं दुःखी देख, उपजो है करुणा जाके, पुत्र को कहती भई कि हे पुत्र! तू राज्य पाया, बड़े बड़े राजा सेवा करै हैं परन्तु राम लक्ष्मण विना यह राज्य शोभै नाहीं सो वे दोऊ भाई महाविनयवान उन बिना कहा राज्य

अर कहा सुख अर कहा देश की शोभा अर कहा तेरी धर्मज्ञता ? वे दोऊ कुमार अर वह सीता राजपुत्री सदा सुखके भोगनहारे पाषाणादिककर पूरित जे मार्ग ताविषैं वाहन बिना कैसें जावेंगे ? अर तिन गुण-समुद्रनिकी ये दोनों माता निरन्तर रुदन करै हैं सो मरणकूं प्राप्त होंयगीं, तातैं तुम शीघ्रगामी तुरंग पर चढ़ शिताबी जावो, उनको ले आवो, तिन सहित महासुखसों चिरकाल राज करियो अर मैं भी तेरे पीछे ही उनके पास आऊँ हूँ। यह माता की आज्ञा सुन बहुत प्रसन्न होय ताको प्रशंसा कर अति आतुर भरत हजार अश्वसहित राम के निकट चला, अर जे राम के समीप वापिस आए हुते तिनकूं संग ले चला, आप तेज तुरंग पर चढ़ा, उतावली चालसे वन विषैं आया। वह नदी असराल बहती हुती सो तामें वृक्षनिके लठे गेर, बेड़े बाँध क्षणमात्र में सेनासहित पार उतरे; मार्ग विषैं नर नारिनसों पूछते जाँय जो तुम राम लक्ष्मण कहीं देखे ? वे कहै हैं, यहाँते निकट हैं। सो भरत एकाग्रचित्त चले गए। सघन वनमें एक सरोवर के तट पर दोऊ भाई सीता सहित बैठे देखे, समीप हैं धनुष बाण जिनके। सीता के साथ ते दोऊ भाई घने दिवसविषैं आए अर भरत छह दिवमें आया। रामकूं दूरते देख भरत तुरंगतैं उतर पांय पियादा जाय राम के पांयनि पर मूर्च्छित होय गया। तब राम सचेत किया। भरत हाथ जोड़ सिर नवाय रामसूं विनती करता भया।

हे नाथ ! राज्य देयवेकर मेरी कहा विडम्बना करी। तुम सर्व न्यायमार्गके जानन हारे, महा प्रवीण, मेरे या राज्यकरि कहा प्रयोजन? तुम बिना जीवेकर कहा प्रयोजन ? तुम महा उत्तम चेष्टाके धरणहारे मेरे प्राणनिके आधार हो। उठो, अपने नगर चलैं। हे प्रभो ! मो पर कृपा करहु, राज्य तुम करहु, राज्य योग्य तुम ही हो,मोहि सुखकी अवस्था देहु। मैं तिहारे सिर पर छत्र फेरता खड़ा रहूँगा अर शत्रुघ्न चमर डोलेगा अर लक्ष्मण मंत्रीपद धारेगा, मेरी माता पश्चातापरूप अग्निकर जरै है अर तिहारी माता अर लक्ष्मण की माता महा शोक करै है; यह बात भरत करै हैं, ताही समय शीघ्र रथ पर चढ़ी अनेक सामंतनिसहित महाशोककी भरी केकई आई अर राम लक्ष्मणकूं उरसूं लगाय बहुत-रुदन करती भई। राम ने धैर्य बंधाया। तब केकई कहती भई—हे पुत्र ! उठो, अयोध्या चालो, राज्य करहु, तुम बिन मेरे सकल पुर वन समान हैं। अर तुम महा बुद्धिमान हो, भरतकूं सिखाय लेहु। बहुरि हम स्त्रीजन नष्ट बुद्धि हैं, मेरा अपराध क्षमा करहु। तब राम कहते भए—हे मात ! तुम तो सब बातनि विषैं प्रवीण हो, तुम कहा न जानो हो कि क्षत्रियनिका नियम है जो वचन न चूकें; जो कार्य विचारया ताहि और भाँति न करें। हमारे तातने जो वचन कहा है सो हमकूं अर तुमकूं निवाहना, या बातविषैं भरतकी अकीर्ति न होयगी। बहुरि भरतसूं कहा कि हे भाई ! तू चिंता न करै, तू अनाचारतै शंकै है सो

पिताकी आज्ञा अर हमारी आज्ञा पालवेतैं अनाचार नाहीं। ऐसा कहकर वनविषैं सब राजानिके समीप भरतका श्रीरामने राज्याभिषेक किया अर केकईकूं प्रणाम कर बहुत स्तुतिकर बारंबार संभाषणकर भरतकूं उरसूं लगाय बहुत दिलासा करी, नीठितैं विदा किया। केकई अर भरत राम लक्ष्मण सीता के समीपतैं पाछे नगरकूं चाले, भरत रामकी आज्ञा प्रमाण प्रजा का पिता समान हुआ। राज्यविषैं सर्व प्रजाकूं सुख, कोई अनाचार नाहीं; ऐसा निःकंटक राज्य है तौहू भरत का क्षणमात्र राग नाहीं। तीनों काल श्री अरनाथकी वन्दना करै है अर मुनिनके मुखतैं धर्म श्रवण करैं; द्युति भट्टारक नामा जे मुनि, अनेक मुनि करै हैं सेवा जिनकी, तिनके निकट भरत ने यह नियम लिया कि रामके दर्शन मात्रतैं ही मुनिव्रत धारूँगा। तब मुनि कहते भए कि–हे भव्य! कमल सारिखे हैं नेत्र जिनके, ऐसे राम जो लग न आवैं तौ लग तुम गृहस्थ के व्रत धारहु। जे महात्मा निग्रन्थ हैं तिनका आचरण अति विषम है सो पहिले श्रावक के व्रत पालने तासूं यतिका धर्म सुखसूं सधै। जब वृद्ध अवस्था आवेगी तब तप करेंगे, यह वार्ता कहते हुवे अनेक जड़बुद्धि मरणकूं प्राप्त भए। महा अमोलक रत्न समान यति का धर्म, जाकी महिमा कहवे विषैं न आवै ताहि जे धारै हैं तिनकी उपमा कौनकी देहि। यति के धर्मतैं उतरता श्रावकका धर्म है सो जे प्रमाद रहित करै हैं ते धन्य हैं। यह अणुव्रत हू प्रबोधका दाता है; जैसें रत्नद्वीप विषैं कोऊ मनुष्य गया अर वह जो रत्न लेय सोई देशांतर विषैं कोऊ मनुष्य गया अर वह जो रत्न लेय सोई देशांतर विषैं दुर्लभ है तैसें जिनधर्म नियमरूप रत्ननिका द्वीप है, ता विषैं जो नियम लेय सोई महाफलका दाता है। जो अहिंसारूप रत्नकूं अंगीकारकर जिनवरकूं भक्तिकर अरचै वो सुर नर के सुख भोग मोक्षकूं प्राप्त होय। अर जो सत्यव्रतका धारक मिथ्यात्वका परिहारकर भावरूप पुष्पनि की माला कर जिनेश्वरकूं पूजै हैं, ताकी कीर्ति पृथ्वी विषैं विस्तरै है अर आज्ञा कोई लोप न सकै। अर जो परधन का त्यागी जिनेंद्रकूं उरविषैं धारै, बारंबार जिनेंद्रकूं नमस्कार करै, वह नव निधि चौदह रत्न का स्वामी होय अक्षयनिधि पावै। अर जो जिनराज का मार्ग अंगीकारकर परनारीका त्याग करै सो सबके नेत्रनिकूं आनन्दकारी मोक्ष-लक्ष्मीका वर होय। अर जो परिग्रह का प्रमाणकर सन्तोष धर जिनपतिका ध्यान करै सो लोक-पूजित अनंत महिमाकूं पावे। अर आहार दानके पुण्य कर महासुखी होय, ताकी सब सेवा करैं। अर अभयदान कर निर्भयपद पावै, सर्व उपद्रवतैं रहित होय। अर ज्ञानदान कर केवलज्ञानी होय सर्वज्ञपद पावै। अर औषधिदानके प्रभाव कर रोगरहित निर्भयपद पावै। अर जो रात्रिकूं आहार का त्याग करै सो एक वर्ष विषैं छह महीना उपवास का फल पावै, यद्यपि गृहस्थपद के आरंभ विषैं प्रवर्त्ते है तो हू शुभ गति के सुख पावै। जो

त्रिकाल जिनदेव की वन्दना करै ताके भाव निर्मल होंय, सर्व पापका नाश करै। अर जो निर्मल भाव रूप पहुपनिकरि जिननाथकूं पूजे सो लोकविषें पूजनीक होय। अर जो भोगी पुरुष कमलादि जल के पुष्प तथा केतकी मालती आदि पृथ्वी के सुगन्ध पुष्पनिकर भगवानकूं अरचै सो पुष्पक विमानकूं पाय यथेष्ट क्रीड़ा करै। अर जो जिनराज पर अगर चन्दनादि धूप खेवैं सो सुगन्ध शरीर का धारक होय। अर जो गृहस्थी जिन-मंदिर विषें विवेक सहित दीपोद्योत करै सो देवलोक विषें प्रभाव संयुक्त शरीर पावै। अर जो जिनभवन विषें छत्र चमर झालरी पताका दर्पणादि मंगलद्रव्य चढ़ावै अर जिनमंदिरकूं शोभित करै सो आश्चर्यकारी विभूति पावै। अर जो जल-चंदनादितें जिन पूजा करै सो देवनिका स्वामी होय,महानिर्मल सुगंधमय शरीर जे देवांगना तिनका वल्लभ होय। अर जो नीरकर जिनेंद्र का अभिषेक करै सो देवनिकर मनुष्यनितें सेवनीक चक्रवर्ती होय, जाका राज्यभिषेक देव विद्याधर करें। अर जो दुग्धकरि अरहंतका अभिषेक करै सो क्षीरसागर के जलसमान उज्ज्वल विमान विषें परम कांति धारक देव होय बहुरि मनुष्य होय मोक्ष पावै। अर जो दधिकर सर्वज्ञ वीतरागका अभिषेक करै सो दधिसमान उज्ज्वल यशकूं पायकर भवोदधिकूं तरै। अर जो घृतकर जिननाथ का अभिषेक करै सो स्वर्ग विमान में महा बलवान देव होय परंपराय अनंत वीर्यकूं धरै। अर जो ईख-रसकर जिननाथका अभिषेक करै सो अमृतका आहारी सुरेश्वर होय नरेश्वर पद पाय मुनीश्वर होय अविनश्वर पद पावैं। अभिषेक के प्रभावकर अनेक भव्यजीव देव अर इन्द्रनिकरि अभिषेक पावते भए, तिनकी कथा पुराणनिमें प्रसिद्ध है। जो भक्ति कर जिनमन्दिर विषें मयूरपिच्छादिककर बुहारी देय सो पापरूप रजतें रहित होय परम विभूति अर आरोग्यता पावै। अर जो गीत नृत्य वादित्रादिकर जिनमंदिर विषें उत्सव करै सो स्वर्ग विषें परम उत्साहकूं पावै अर जो जिनेश्वरके चैत्यालय करावै सो ताके पुण्यकी महिमा कौन कह सकै, सुर-मन्दिरके सुख भोग परम्पराय अविनाशी धाम पावै। अर जो जिनेन्द्रकी प्रतिमा विधिपूर्वक करावै सो सुर नर के सुख भोग परम पद पावै। व्रत विधान तप दान इत्यादि शुभ चेष्टानिकरि प्राणी जे पुण्य उपार्जे हैं सो समस्त कार्य जिनबिंब करावे के तुल्य नाहीं। जो जिनबिंब करावै सो परंपराय पुरुषाकार सिद्धपद पावै। अर जो भव्य जिनमन्दिरके शिखर चढ़ावै सो इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादिक सुख भोग लोक के शिखर पहुँचै। अर जो जीर्ण जिनमन्दिरकी मरम्मत करावै सो कर्मरूप अजीर्णकूं हर निर्भय निरोग पद पावै। अर जो नवीन चैत्यालय कराय जिनबिंब पधराय प्रतिष्ठा करै सो तीन लोक विषें प्रतिष्ठा पावै अर जो सिद्धक्षेत्रादि तीर्थनिकी यात्रा करै सो मनुष्य जन्म सफल करै। अर जो जिनप्रतिमा के दर्शनका चितवन करै ताहि एक उपवासका फल होय, अर दर्शनका उद्यम

का अभिलाषी होय सो बेलाका फल पावे। अर जो चैत्यालय जायवे का आरंभ करै, ताहि तेला का फल होय। अर गमन किए चौला का फल होय अर कछुएक आगे गए पंच उपवासका फल होय, आधी दूर गये पक्षोपवासका फल होय अर चैत्यालय के दर्शन ते मासोपवास का फल होय अर भाव भक्ति कर महास्तुति किए अनन्त फलकी प्राप्ति होय। जिनेंद्र की भक्ति समान और उत्तम नाहीं। अर जो जिनसूत्र लिखवाय ताका व्याख्यान करें करावें, पढ़ें पढ़ावें, सुनें सुनावें, शास्त्रनिकी तथा पंडितनिकी भक्ति करें, वे सर्वांगके पाठी होय केवल पद पावें। जो चतुर्विध संघ की सेवा करें सो चतुर्गतिके दुःख हर पंचमिगति पावें। मुनि कहै हैं–हे भरत! जिनेद्र की भक्ति कर कर्म क्षय होय अर कर्म क्षय भए अक्षयपद पावै। ये वचन मुनिके सुन राजा भरत प्रणामकर श्रावकका व्रत अंगीकार किया। भरत बहुश्रुत अतिधर्मज्ञ महाविनयवान श्रद्धावान चतुर्विध संघकूं भक्ति कर अर दुःखित जीवनकूं दया भावकर दान देता भया। सम्यग्दर्शन रत्नकूं उर विषें धारता अर महासुन्दर श्रावकके व्रय विषें तत्पर न्यायसहित राज्य करता भया।

भरत गुणनिका समुद्र ताका प्रताप अर अनुराग समस्त पृथ्वी विषें विस्तरता भया। ताके देवांगना समान ड्योढ़सौ राणी तिन विषें आसक्त न भया, जलमें कमल की न्याईं अलिप्त रहा। जाके चित्त में निरंतर यह चिंता वरते कि कब यति के व्रत धरूं, निर्ग्रंथ हुवा पृथ्वीविषें विचरूं। धन्य हैं वे धीर पुरुष जे सर्व परिग्रह का त्याग कर तप के बल पर समस्त कर्मनिकूं भस्मकर सारभूत जो निर्वाण का सुख सो पावें हैं। मैं पापी संसार विषें मग्न प्रत्यक्ष देखूं हूं जो यह समस्त संसारका चरित्र क्षणभंगुर है। जो प्रभात देखिये सो मध्याह्नविषें नाहीं। मैं मूढ़ होय रहा हूँ। जो रंक विषयाभिलाषी संसार में राचै हैं तो खोटी मृत्यु मरैं है, सर्प व्याघ्र गज जल अग्नि शस्त्र विद्युत्पात शूलारोपण असाध्य रोग इत्यादि कुरीतितें शरीर तजैंगे। यह प्राणी अनेक सहस्रों दुःखका भोगनहारा संसारविषें भ्रमण करै है। बड़ा आश्चर्य है कि यह अल्प आयुमें प्रमादी होय रहा है। जैसें कोई मदोन्मत्त क्षीरसमुद्र के तट सूता तरंगों के समूह से न डरै तैसें मैं मोहकर उत्पन्न भव-भ्रमणसे नाहीं डरूँ हूँ, निर्भय होय रहा हूँ। हाय हाय! मैं हिंसा आरम्भादि अनेक जे पाप तिनकर लिप्त राज्य कर कौन से घोर नरक में जाऊँगा? कैसा है नरक, बाण खड्ग चक्र के आकार तीक्ष्ण पत्र हैं जिनके ऐसे शाल्मलीवृक्ष जहाँ हैं अथवा अनेक प्रकार तिर्यञ्चगति ता विषें जाऊँगा। देखो जिनशास्त्र सारिखा महा ज्ञानरूप शास्त्र ताहूकों पाय करि मेरा मन पापयुक्त होय रह्या है। निस्पृह होकर यतिका धर्म नाहीं धारे है सो न जानिए कौन गति जाना है। ऐसी कर्मनिकी नाशनहारी जो धर्मरूप चिंता ताकूं निरन्तर प्राप्त हुवा जो राजा भरत सो जैनपुराणादि ग्रन्थनिके श्रवण विषें आसक्त

है, सदैव साधुन की कथा विषैं अनुरागी रात्रि दिन धर्म में उद्यमी होता भया।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषैं दशरथ का वैराग्य, राम का विदेश गमन अर भरत का राज्य वर्णन करने वाला बत्तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३२॥

तेतीसवां पर्व

(श्री राम का वज्रकरण पर उपकार)

अथानन्तर श्री रामचन्द्र लक्ष्मण सीता जहां एक तापसी का आश्रम है तहाँ गए। अनेक तापस जटिल नानाप्रकार के वृक्षनि के वक्कल पहिरे, अनेक प्रकार के स्वादु फल तिनकर पूर्ण है मठ जिनके, वन विषैं वृक्ष समान बहुत मठ देख, विस्तीर्ण पत्तों कर छाए हैं मठ जिनके अथवा घासके फूलनिकर आच्छादित हैं निवास जिनके, विना वाहे सहज ही उगे जे धान्य ते उनके आंगन में सूके हैं अर मृग भयरहित आँगनमें बैठे जुगालै हैं अर तिनके निवास विषैं सूवा मैना पढ़ैं हैं अर तिनके मठनिके समीप अनेक गुलक्यारी लगाय राखी हैं सो तापसनिकी कन्या मिष्ट जल कर पूर्ण जे कलश ते थांवलनि में डारै हैं। श्री रामचन्द्रकूं आए जान तापस नाना प्रकारके मिष्ट फल सुगन्ध पुष्प मिष्ट जल इत्यादिक सामग्रीनि कर बहुत आदरतैं पाहुनगति करते भए। मिष्ट वचनका संभाषणकर रहने को कुटी मृदुपल्लवनिकी शय्या इत्यादि उपचार करते भए। तापस सहज ही सबनिका आदर करै हैं, इनको महा रूपवान अद्भुत पुरुष जान बहुत आदर किया। रात्रिकूं वसकर ये प्रभात उठकर चाले। तब तापस इनकी लार चाले, इनके रूपकूं देख अनुरागी होते भए, पाषाण हू पिघलै तौ मनुष्यनिकी कहा बात। ते तापस सूके पत्रनिके आहारी इनके रूपकूं देख अनुरागी होते भए। जे वृद्ध तापस हैं ते इनकूं कहते भए—तुम यहां ही रहो, यह सुखका स्थानक है अर कदाचित् न रहो तो या अटवीविषैं सावधान रहियो। यद्यपि यह वनी जल फल पुष्पादि कर भरी है तथापि विश्वास न करना, नदी वनी नारी ये विश्वास योग्य नाहीं; सो तुम तो सर्व बातविमें सावधान ही हो। फिर राम लक्ष्मण सीता यहांतें आगे चले, अनेक तापसिनी इनके देखवेकी अभिलाषकर बहुत विह्वल भई संती दूर लग पुष्प फल ईंधनादिकके मिसकर साथ चली आईं। कईएक तापसिनी मधुर वचनकर इनकूं कहती भईं जो तुम हमारे आश्रम विषैं क्यों न रहो, हम तिहारी सब सेवा करें; यहाँ तें तीन कोसपर ऐसो वनो है जहां महासघन वृक्ष हैं, मनुष्यनिका नाम नाहीं, अनेक सिंह व्याघ्र दुष्ट जीवनिकर भरी जहां ईंधन अर फल फूलके अर्थ तापसहू न आवें, डाभकी तीक्ष्ण अणीनिकर जहां संचार नाहीं, वन महा भयानक है अर चित्रकूट पर्वत अति ऊँचा दुलँघ्य विस्तीर्ण पड्या है, तुम कहा नहीं सुन्या है जो निशंक चले जावो

हो ? तब राम कहते भए—अहो तापसिनी हो ! हम अवश्य आगे जावेंगे, तुम अपने स्थानक जाहु। कठिनतातैं तिनकूं पाछे फेरीं। ते परस्पर इनके गुण रूपका वर्णन करतीं अपने स्थानक आईं। ये महा गहन वनविषें प्रवेश करते भए। कैसा है वह वन ? पर्वतके पाषाणनिके समूहकरि महा कर्कश अर बड़े बड़े जे वृक्ष तिनपर आरूढ बेलनिके समूह जहाँ अर क्षुधाकर अति क्रोधायमान जे शार्दुल तिनके नखनिकर विदारे गए हैं वृक्ष जहाँ अर सिंहनिकर हते गए जे गजराज तिनके रुधिरकर रक्त भए जे मोती सो ठौर२ विखर रहे हैं अर मत्ते जे गजराज तिनकर भग्न भए हैं तरुवर जहां अर सिंहनी की ध्वनि सुनकर भाग रहे हैं कुरंग जहाँ अर सूते जे अजगर तिनके स्वासनिकी पवनकरि गूंज रही हैं गुफा जहाँ, शूकरनिके समूहकरि कर्दमरूप होय रहे हैं तुच्छ सरोवर जहाँ अर महा अरण्य भैंसे तिनके सींगन कर भग्न भए हैं बबइयनि के स्थल जहाँ अर फणकूं ऊँचे फेरै हैं भयानक सर्प जहां अर काँटनि कर बींधा है पूंछ का अग्रभाग जिनका ऐसी जे सुरैंगाय सो खेद खिन्न भई हैं अर फैल रहे हैं कटेरी आदि अनेक प्रकारके कंटक जहाँ अर विष पुष्पनि की रज की वासना कर घूमैं हैं अनेक प्राणी जहाँ अर गैंडानिके नखनिकर विदारे गए हैं वृक्षनिके पींड अर भ्रमते रोझनके समूह तिनकर भग्न भए हैं पल्लवनिके समूह जहाँ। अर नाना प्रकारके जे पक्षीनिके समूह तिनके जो क्रूर शब्द उन कर वन गूंज रह्या है अर बन्दरनिके समूह तिनके कूदने कर कम्पायमान हैं वृक्षनिकी शाखा जहाँ अर शीघ्र वेगकूं धरे पर्वतसों उतरते जलके जे प्रवाह तिनकर विदारी गई है पृथ्वी जहाँ अर वृक्षनिके पल्लवनिकर नाहीं दीखै हैं सूर्यकी किरण जहाँ अर नाना प्रकार के फल फूल तिनकर भरा, अनेक प्रकारकी फैल रही है सुगन्ध जहाँ, नाना प्रकारकी जे औषधि तिनकरि पूर्ण अर वन के जे धान्य तिनकरि पूरित, कहूँ एक नील कहूएक रक्त कहूएक हरित नानाप्रकारवर्णकूं धरै जो वन तामें दोऊ वीर प्रवेश करते भए। चित्रकूट पर्वतके महा मनोहर जे नीझरने तिन विषें क्रीड़ा करते वन की अनेक सुन्दर वस्तु देखते परस्पर दोऊ भाई बात करते वन के मिष्ट फल आस्वादन करते किन्नर देवनिके हू मनकूं हरै ऐसा मनोहर गान करते पुष्पनि के परस्पर आभूषण बनावते, सुगन्ध द्रव्य अंग विषें लगावते, फूल रहे हैं सुन्दर नेत्र जिनके, महा स्वच्छन्द अत्यन्त शोभाके धारणहारे, सुर नर नागनिके मनके हरणहारे, नेत्रनिकूं प्यारे, उपवन की नाईं भीमवन में रमते भए। अनेक प्रकार के सुन्दर जे लता मण्डप तिन विषें विश्राम करते नाना प्रकार कथा करते विनोद करते रहस्य की बातें करते, जैसे नंदन वन विषें देव भ्रमण करें तैसें अति रमणीक लीलासूं वन विहार करते भए।

अथानंतर साढ़े चार मास में मालव देशविषें आए सो देश अत्यन्त सुन्दर नाना प्रकारके धान्योंकर शोभित, जहां ग्राम पट्टन घने, सो केतीक दूर आयकर देखा तो वस्ती

नाहीं, तब एक वटकी छाया में बैठ दोऊ भाई परस्पर बतलावते भए जो काहे तें यह देश उजाड़ दीखै है ? नाना प्रकारके खेत फल रहे हैं अर मनुष्य नाहीं, नाना प्रकारके वृक्षफल फूलनि कर शोभित हैं अर पौंडे साँठेके वाड़ बहुत हैं अर सरोवरनिमें कमल फूल रहे हैं, नाना प्रकारके पक्षी केलि कर रहे हैं। यह देश अति विस्तीर्ण मनुष्यनिके संचार बिना शोभै नाहीं, जैसें जिनदीक्षाकूं धरे मुनि वीतराग भावरूप परम संयम बिना शोभै नाहीं। ऐसी सुन्दर वार्ता राम लक्ष्मणसूं करै हैं तहां अत्यन्त कोमल स्थानक देख रत्नकम्बल बिछाय श्रीराम बैठे, निकट धरया है धनुष जिनके अर सीता प्रेमरूप जलकी सरोवरी, श्रीरामके विषैं आसक्त है मन जाका, सो समीप बैठी। श्रीरामने लक्ष्मणकूं आज्ञा करी—तू वट ऊपर चढ़ कर देख कि कछु वस्ती दीखै है सो वह आज्ञा प्रमाण देखता भया अर कहता भया कि हे देव! विजयार्ध पर्वत समान ऊँचे जिनमंदिर दीखै हैं जिनके शरदके बादल समान शिखर शोभै हैं, ध्वजा फरहरै हैं अर ग्राम हू बहुत दीखै हैं, कूप वापी सरोवरनि करि मंडित हैं अर विद्याधरनिके नगर समान दीखै हैं, खेत फल रहे हैं परन्तु मनुष्य कोई नाही दीखै है। न जानिये लोक परिवार सहित कहां भाज गए हैं अथवा क्रूरकर्मके करणहारे म्लेच्छ बांध कर ले गए हैं। एक दरिद्री मनुष्य आवता दीखै है। मृगसमान शीघ्र आवै है, रूक्ष हैं केश जाके, मल कर मंडित है शरीर जाका, लम्बी दाढी कर आच्छादित है उरस्थल अर फाटे वस्त्र पहिरे, फाटे हैं चरण जाके, ढरै है पसेव जाके मानों पूर्व जन्म के पापकूं प्रत्यक्ष दिखावै है। तब राम आज्ञा करी जो शीघ्र जाय याकूं ले आओ। तब लक्ष्मण वटतें उतर दरिद्रीके पास गए। तब दरिद्री लक्ष्मणकूं देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया। जो यह इन्द्र है, वरुण है अथवा नागेन्द्र है तथा नर है, किन्नर है, चन्द्रमा है कि सूर्य है, अग्निकुमार है कि कुवेर है, यह कोऊ महा तेजका धारक है; ऐसा विचारता संता डरकर मूर्च्छा खाय भूमिविषैं गिर पडया। तब लक्ष्मण कहते भए—हे भद्र ! भय न करहु। उठ उठ ऐसा कहि उठाया अर बहुत दिलासाकरि श्रीराम के निकट ले आया। सो दरिद्री पुरुष क्षुधा आदि अनेक दुःखनिकर पीडित हुता सो रामकूं देख सब दुःख भूल गया। राम महासुन्दर, सौम्य है मुख जिनका, कांतिके समूहतें विराजमान, नेत्रनिकूं उत्साहके करणहारे, महाविनयवान सीता समीप बैठी है, सो मनुष्य हाथ जोड़ सिर पृथवीसूं लगाय नमस्कार करता भया। तब आप दयाकर कहते भए—तू छाया विषैं आय बैठ, भय न करि। तब वह आज्ञा पाय दूर बैठया, रघुपति अमृत रूप वचनकर पूछते भए—तेरा नाम कहा अर कहांतैं आया अर कौन है ? तब वह हाथ जोड़ विनती करता भया—हे नाथ! मैं कुटुम्बी (कुनबी) हूँ, मेरा नाम सिरगुप्त है, दूरतैं आऊँ हूँ। तब आप बोले—यह देश उजाड़ काहेतैं है ? तब वह कहता भया, हे देव! उज्जयिनी नाम नगरी ताके पति राजा सिंहोदर

प्रसिद्ध, प्रतापकर नवाए हैं बड़े २ सामन्त जानै, देवनि समान है विभव जाका अर एक दशांगपुरका पति वज्रकर्ण सो सिंहोदरका सेवक, अत्यन्त प्यारा सुभट जानै स्वामीके बड़े२ कार्य किए सो एक समय निर्ग्रंथ मुनिकूं नमस्कारकर धर्मश्रवणकर ताने यह प्रतिज्ञा करी जो मैं देवगुरुशास्त्र टार औरनिकूं नमस्कार न करूं। साधु के प्रसादकर ताकू सम्यग्दर्शन की प्राप्ति भई सो पृथ्वी विषें प्रसिद्ध है। क्या आप अब लों वाकी वार्ता न सुनी ? तब लक्ष्मण राम के अभिप्रायतें पूछते भए जो वज्रकर्ण पर कौन भांति संतनिकी कृपा भई। तब पंथी कहता भया–हे देवराज ! एक दिन वज्रकर्ण दशारण्य वनविषें मृगयाकूं गया हुता, जन्म ही तें पापी क्रूर कर्मका करणहारा, इन्द्रियनिका लोलुपी महामूढ़, शुभ क्रियातें परान्मुख, महासूक्ष्म जिनधर्मकी चर्चा को न जान कामी क्रोधी लोभी अन्ध भोग सेवन कर उपजा जो गर्व सोई भया पिशाच ताकर पीड़ित, सो वन विषें भ्रमण करै सो ताने ग्रीष्म समयविषें एक शिला पर तिष्ठता सन्ता सत्पुरुषनिकर पूज्य ऐसा महामुनि देख्या। चार महीना सूर्य की किरणका आताप सहनहारा महातपस्वी, पक्षी समान निराश्रय, सिंह समान निर्भय, तप्तायमान जो शिला ताकर तप्त शरीर; ऐसे दुर्जय तीव्र तापका सहनहारा सज्जन सो ऐसे तपोनिधि साधुकूं देख वज्रकर्ण तुरंग पर चढ्या, बरछी हाथमें लिए, काल समान महाक्रूर पूछता भया। कैसे हैं साधु ? गुणरूप रत्ननि के सागर, परमार्थ के वेत्ता, पापनिके घातक, सब जीवनिके दयालु, तपोविभूति कर मंडित तिनसूं वज्रकर्ण कहता भया–हे स्वामी ! तुम या निर्जन वन विषें कहा करो हो ? ऋषि बोले–आत्म-कल्याण करै हैं, जो पूर्वे अनन्त भव विषें न आचर्या। तब वज्रकर्ण हँसकर कहता भया–या अवस्था कर तुमकूं कहा सुख है। तुम तपकर रूप लावण्यरहित शरीर किया। तिहारे अर्थ काम नाहीं, वस्त्राभरण नाहीं, कोई सहाई नाहीं। स्नान सुगन्ध लेपनादि रहित हो, पराए घरनिके आहार कर जीविका पूरी करो हो, तुम सारिखे मनुष्य कहा आत्म हित करें। तब याकूं काम भोगकर अत्यन्त आसक्त देख महादयावान संयमी बोले–कहा तूने महाघोर नरक की भूमि न सुनी है जो तू उद्यमी होय पापनि विषें प्रीति करै है। नरक की महा भयानक सात भूमि हैं ते महादुर्गंधमई देखी न जांय, स्पर्शी न जाय, सुनी न जांय, महातीक्ष्ण लोहे के कांटेनिकर भरी जहाँ नारकीनिकूं घानी में पेलैं हैं, अनेक वेदना त्रास होय है, छुरियों कर तिल तिल काटिए हैं। अर तातें लोह समान ऊपरले नरकनिका पृथ्वीतल अर महाशीतल नीचले नरकनिका पृथ्वीतल ताकर महा पीड़ा उपजै है। जहाँ महाअंधकार, महाभयानक रौरवादि गर्त, असिपत्र वन, महादुर्गंध-वैतरणी नदी। जे पापी माते हाथिनि की न्याईं निरंकुश हैं ते नरक विषें हजारों भांति के दुःख देखैं हैं। हम तोहि पूछैं हैं, तो सारिखे पापारंभी विषयातुर कहा आत्महित करै हैं।

ये इन्द्रायण के फल समान इन्द्रियके सुख तू निरन्तर सेय कर सुख मानै है सो इनमें हित नाहीं, ये दुर्गति के कारण हैं। आत्मा का हित वह करै है जो जीवनिकी दया पालै, मुनि के व्रत धारै अथवा श्रावक के व्रत आदरे, निर्मल है चित्त जिनका। जे महाव्रत तथा अणुव्रत नाहीं आचरैं हैं ते मिथ्यात्व अव्रत के योगतैं समस्त दुःख के भाजन होय हैं। तैंने पूर्व जन्म विषैं कोई सुकृत किया हुता ता कर मनुष्य देह पाया, अब पाप करेगा तो दुर्गति जायगा। ये बिचारे निर्बल निरपराध मृगादि पशु अनाथ, भूमि ही है शय्या जिनके, चंचल नेत्र सदा भयरूप, वनके तृण अर जल कर जीवनहारे, पूर्व पाप कर अनेक दुःखविकर दुःखी, रात्रि हू निद्रा न करैं, भय कर महा कायर सो भले मनुष्य ऐसे दीननिकूं कहा हनें। तातैं जो तू अपना हित चाहै है तो मन वचन काय कर हिंसा तज, जीव दया अंगीकार करि। ऐसे मुनि के श्रेष्ठ वचन सुन करि वज्रकर्ण प्रतिबोधकूं प्राप्त भया, जैसें फला वृक्ष नव जाय तैसें साधु के चरणारविंदकूं नव गया, अश्वतैं उतर साधु के निकट गया, हाथ जोड़ प्रणाम कर अत्यन्त विनय की दृष्टि कर चित्त में साधु की प्रशंसा करता भया। धन्य हैं ये परिग्रह के त्यागी मुनि जिनकूं मुक्ति की प्राप्ति होय है अर या वन के पक्षी अर मृगादि पशु प्रशंसा योग्य हैं जे इस समाधिरूप साधु का दर्शन करै हैं अर अति धन्य हूँ मैं जो मोहि आज साधु का दर्शन भया। ये तीन जगत कर वन्दनीक हैं, अब मैं पापकर्म तें निवृत्त भया। ये प्रभु ज्ञानस्वरूप नखनिकर बन्धु-स्नेहमई संसाररूप जो पींजरा ताहि छेद कर सिंह की न्याईं निकसे ते साधु देखो, मनरूप बैरीकूं वशकरि नग्न मुद्रा धार शील पालैं हैं। अतृप्त आत्मा पूर्ण वैराग्यकूं प्राप्त नाहीं भया तातैं श्रावकके अणुव्रत आचरूं। ऐसा विचार कर साधु के समीप श्रावक के व्रत आदरे अर अपना मन शांति रस रूप जल से धोया अर यह नियम लिया जो देवाधिदेव परमेश्वर परमात्मा जिनेन्द्रदेव अर तिनके दास महाभाग्य निर्ग्रन्थ मुनि अर जिनवाणी इन बिना औरनि कूं नमस्कार न करूं। प्रीतिवर्धन नामा जे मुनि तिनके निकट वज्रकर्ण अणुव्रत आदरे अर उपवास धारे, मुनि याकूं विस्तार कर धर्म का व्याख्यान कह्या जाकी श्रद्धाकर भव्य जीव संसारपाशतैं छूटैं। एक श्रावकका धर्म, एक यति का धर्म। इसमें श्रावक का धर्म गृहावलम्बन संयुक्त अर यतिका धर्म निरालम्ब निरपेक्ष, दोऊ धर्मनिका मूल सम्यक्त्व की निर्मलता, तप अर ज्ञानकर युक्त अत्यन्त श्रेष्ठ जो प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगरूपविषैं जिनशासन प्रसिद्ध है। तब वह यतिका धर्म अति कठिन जान अणुव्रत विषैं बुद्धि ठहराई अर महाव्रतकी महिमा हृदयमें धारी। जैसें दरिद्रीके हाथमें निधि आवै अर वह हर्षकूं प्राप्त होय तैसें धर्म ध्यानकूं धरता सन्ता आनन्दकूं प्राप्त भया। यह अत्यन्त क्रूर कर्म का करणहारा एक साथ ही शांत दशाकूं

प्राप्त भया, या बातकर मुनि भी प्रसन्न भए। राजा तादिन तो उपवास किया, दूजे दिन पारणा कर दिगम्बर के चरणारविंदकूं प्रणाम कर अपने स्थानक गया। गुरुके चरणारविंदकूं हृदयमें धारता सन्ता सन्देह रहित भया। अणुव्रत आराधे। चित्त में यह चिंता उपजी जो उज्जैनी का राजा जो सिंहोदर ताका मैं सेवक सो ताका विनय किए बिना मैं राज्य कैसें करूं ? तब विचार कर एक मुद्रिका बनाई जामें श्रीमुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमा पधराई, दक्षिण अंगुष्ठ में पहरी, जब सिंहोदरके निकट जाय तब मुद्रिका विषें प्रतिमा ताहि बारंबार नमस्कार करै; सो याका कोऊ बैरी हुता तानें यह छिद्र हेर सिंहोदरतें कही जो यह तुमकूं नमस्कार नाहीं करै है, जिनप्रतिमाकूं करै है। तब सिंहोदर पापी क्रोधकूं प्राप्त भया अर कपट कर वज्रकर्णकू दशांगनगरतें बुलावता भया, सम्पदा कर उन्मत्त याके मारवेकूं उद्यमी भया। सो वज्रकर्ण सरल चित्त सो तुरंग पर चढ़ उज्जयिनी जायवेकूं उद्यमी भया, ता समय एक पुरुष, जवान पुष्ट अर उदार है शरीर जाका, दंड जाके हाथ में सो आय कर कहता भया–हे राजा! जो तू शरीरतें और राज्य भोगतें रहित भया चाहै है तो उज्जयिनी जाहु, सिंहोदर अति क्रोधकूं प्राप्त भया है, तू नमस्कार न करी तातें तोहि मारया चाहै है, तू जो भला जानै सो कर। यह वार्ता सुनकर वज्रकर्ण विचारी कि कोऊ शत्रु मो विषें अर नृप विषें भेद किया चाहै है तानै मन्त्रकर यह पठाया होय। बहुरि विचारी जो याका रहस्य तो लेना। तब एकांतविषें ताहि पूछता भया, तू कौन है अर तेरा नाम कहा अर कहांतें आया है अर यह गोप्य मन्त्र तूने कैसें जान्या ? तब वह कहता भया कि कुंदन नगरविषें महा धनवन्त एक समुद्रसंगम सेठ है जाके यमुना स्त्री ताके वर्षा काल में बिजुरीके चमत्कार समय मेरा जन्म भया, तातें मेरा विद्युदंग नाम धरया सो मैं अनुक्रमतें नवयौवनकूं प्राप्त भया। व्यापार के अर्थ उज्जयिनी गया तहां कामलता वेश्याकूं देख अनुराग कर व्याकुल भया। एक रात्रि तासूं संगम किया सो वाने प्रीति के बन्धन कर बांध लिया जैसें पारधी मृगकूं पासितैं बांधै। मेरे बाप ने बहुत वर्षनि में जो धन उपार्ज्या हुता सो मैं ऐसा कुपूत जो वेश्याके संग कर षट मासमें सब खोया; जैसें कमलविषें भ्रमर आसक्त होय तैसें ता विषें आसक्त भया। एक दिन वह नगरनायिका अपनी सखी के समीप अपने कुंडलनिकी निंदा करती हुती सो मैं सुनी। तब वासे पूछी, तब तानें कही–धन्य है रानी श्रीधरा महासौभाग्यवती ताके काननि में जैसे कुंडल हैं तैसे काहूके नाहीं। तब मैं मन में चितई जो मैं रानी के कुंडल हरकर याकी आशा पूर्ण न करूं तो मेरे जीने कर कहा। तब कुंडल हरनेकूं मैं अंधेरी रात्रिविषें राजमन्दिर गया सो राजा सिंहोदर कुपित हो रहा था अर रानी श्रीधरा निकट बैठी हुती सो रानी पूछी—हे देव! आज निद्रा काहे तैं न आवै है? तब राजा

कही, हे रानी ! मैं वज्रकर्णकूं छोटा तैं मोटा किया अर मोहि सिर न नवावै सो वाहि जब तक न मारूँ तब तक आकुलता के योगतैं निद्रा कहां आवै ? एते मनुष्यनितैं निद्रा दूर भागै–अपमान से दग्ध अर कुटुम्बी निर्धन, शत्रु ने आय दबाया अर जीतवे समर्थ नाहीं, जाके चित्तमें शल्य तथा कायर अर संसारतैं विरक्त, इनतैं निद्रा दूर ही रहै है, यह वार्ता राजा रानीकूं कही । सो मैं सुनकर ऐसा होय गया मानों काहू ने मेरे हृदय में वज्र की दीनी । सो कुंडल लेयवेकी बुद्धि तज यह रहस्य लेय तेरे निकट आया, अब तुम वहां मत जावो । कैसे हो तुम ? जिनधर्म में उद्यमी हो अर निरंतर साधुनि के सेवक हो । अंजनगिरि पर्वतसे मद झरे हाथी तिन पर चढ़े योद्धा बक्तर पहिरे अर महातेजस्वी तुरंगनिके असवार चलते पहिरे महाक्रूर सामन्त तेरे मारवेके अर्थ राजाकी आज्ञातैं मार्ग रोके खड़े हैं तातैं तू कृपाकर अवार वहां मत जाय, मैं तेरे पांयन परूं हूँ। मेरा वचन मान अर तेरे मनमें प्रतीत नहीं आवै तो देख वह फौज आई, धूल के पटल उठै हैं, महा शब्द होते आवें हैं । यह विद्युदंग के वचन सुन वज्रकर्ण परचक्रकूं आवता देख याकूं परम मित्र जान लार लेय अपने गढ़विषैं तिष्ठया । सिंहोदरके सुभट दरवाजेमें आववे न दिए । तब सिंहोदर सर्व सेना लार ले चढ़ आया सो गढ़ गाढ़ा जान अपने कटक के लोग इनके मारवे के डरतैं तत्काल गढ़ लेवे की बुद्धि न करी, गढ़ के समीप डेरे कर वज्रकर्ण के समीप दूत भेज्या सो अत्यन्त कठोर वचन कहता भया । तू जिनशासन के गर्व करि मेरे ऐश्वर्य का कंटक भया, जे घरखोवा यति तिनने तोहि बहकाया, तू न्याय रहित भया, देश मेरा दिया खाय अर माथा अरहंतकूं नवावै, तु महामायाचारी है तातैं शीघ्र ही मेरे समीप आयकर मोहि प्रणाम कर, नातर मारा जायगा । यह वार्ता दूतने वज्रकर्णसूं कही तब वज्रकर्ण जो जवाब दिया सो दूत जाय सिंहोदरसूं कहै है, हे नाथ ! वज्रकर्णकी यह विनती है जो देश नगर भण्डार हाथी घोड़े सब तिहारे हैं सो लेहु, मोहि स्त्री सहित धर्म-द्वार देय काढ़ देहु, मेरा तुमतैं उजर नाहीं परंतु मैं यह प्रतिज्ञा करी है जो जिनेन्द्र, मुनि अर जिनवाणी इन विना और कूं नमस्कार न करूं, सो मेरा प्राण जाय तो हू प्रतिज्ञा भंग न करूं, तुम मेरे द्रव्य के स्वामी हो, आत्माके स्वामी नाहीं । यह वार्ता सुन सिंहोदर अति क्रोधकूं प्राप्त भया, नगरकूं चारों तरफ से घेर्या अर देश उजाड़ दिया । सो दरिद्री मनुष्य श्रीरामसूं कहै है, हे देव ! देश उजाड़ने का कारण मैं तुमसूं कह्या, अब मैं जाऊं हूँ । यहांतैं नजदीक मेरा ग्राम है सो ग्राम सिंहोदरके सेवकनिने बाल्या, लोगनिके विमान तुल्य घर हुते सो भस्म भए । मेरी तृण काष्ठ कर रची कुटी सो हू भस्म भई होयगी, मेरे घर में एक छाज एक माटीका घट एक हांडी यह परिग्रह हुता सो लाऊं हूँ । मेरे खोटी स्त्री तानें क्रूर वचन कह मोहि पठाया है अर वह बारंबार ऐसे कहे है जो सूने गाम

में धरनिके उपकरण बहुत मिलेंगे सो जाय कर ले आवो सो मैं जाऊँ हूँ। मेरे बड़े भाग्य जो आपका दर्शन भया, स्त्री ने मेरा उपकार किया जो मोहि पठायो। यह वचन सुन श्रीराम महा दयावान पंथीकूं दुःखी देख अमोलक रत्ननिका हार दिया सो पंथी प्रसन्न होय चरणारविंदकूं नमस्कार कर हार लेय अपने घर गया, द्रव्यकर राजनिके तुल्य भया।

अथानंतर श्रीराम लक्ष्मणसूं कहते भए, हे भाई ! यह जेष्ठका सूर्य अत्यन्त दुस्सह जब अधिक चढ़े ता पहिले ही चलो; या नगरके समीप निवास करें। सीता तृषाकर पीड़ित है सो याहि जल पिलावें अर आहारकी विधि भी शीघ्र ही करें, ऐसा कहि आगे गमन किया। सो दशांगनगरके समीप जहां श्री चन्द्रप्रभ का चैत्यालय महा उत्तम है तहाँ आए अर श्रीभगवानकूं प्रणामकर सुखसूं तिष्ठे अर आहार की सामग्री निमित्त लक्ष्मण गए, सिंहोदरके कटकमें प्रवेश करते भए। कटकके रक्षक मनुष्यनिने मनै किए तब लक्ष्मण विचारी, ये दरिद्री अर नीच कुली, इनतें मैं कहा विवाद करूँ। यह विचार नगरकी ओर आए सो नगरके दरवाजे पर अनेक योधा बैठे हुते अर दरवाजेके ऊपर वज्रकर्ण तिष्ठा हुता, महासावधान सो लक्ष्मणकूं देख लोक कहते भए, तुम कौन हो अर कहाँतें कौन अर्थ आए हो ? तब लक्ष्मण कही–दूरतें आए हैं अर आहार निमित्त नगरमें आए हैं तब वज्रकर्ण इनकूं अति सुन्दर देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया अर कहता भया–हे नरोत्तम! भीतर प्रवेश करो। तब यह हर्षित होय गढ़ में गया, वज्रकर्ण बहुत आदरसूं मिल्या अर कहता भया जो भोजन तैयार है सो आय कृपाकर यहां ही भोजन करहु। तब लक्ष्मण कही–कि मेरे गुरुजन बड़े भाई और भावज श्री चंद्रप्रभके चैत्यालय विषें बैठे हैं तिनकूं पहिले भोजन कराय मैं भोजन करूँगा। तब वज्रकर्णने कही–बहुत भली बात, वहां ले जाइये, उन योग्य सब सामग्री है, ले जावो। अपने सेवकनि हाथ नाने भांति भाँतिकी सामग्री पठाई, सो लक्ष्मण लिवाय लाए। श्रीराम लक्ष्मण अर सीता भोजन कर बहुत प्रसन्न भए। श्रीराम कहते भए–हे लक्ष्मण ! देखो वज्रकर्ण की बड़ाई, जो ऐसा भोजन कोऊ अपने जमाईको न जिमावै सो विना परिचय अपने ताईं जिमाए, पीने की वस्तु महामनोहर अर व्यंजन महामिष्ट, यह अमृत तुल्य भोजन जाकरि मार्गका खेद मिट्या अर ज्येष्ठके आतापकी तप्त मिटी, चांदनी समान उज्जवल दुग्ध जापरि भ्रमर महा सुगंध गुंजार करै हैं अर सुन्दर घृत सुन्दर दधि मानों कामधेनु के स्तनिकरि उपजाया दुग्ध ताकरि निरमापे हैं, ऐसे व्यंजन ऐसे रस और ठौर दुर्लभ हैं, ता पंथीने पहिले अपने ताईं कहा हुता जो यह अणुव्रतका धारी श्रावक है अर जिनेंद्रमुनींद्र जिनसूत्र टार औरनिकूं नमस्कार नाहीं करै है सो ऐसा धर्मात्मा व्रत शील का धारक अपने आगे शत्रुकरि पीड़ित रहै तो अपने पुरुषार्थ कर कहा ? अपना यही धर्म है जो दुःखी का दुःख निवारें, साधर्मीका तो अवश्य निवारैं। यह अपराध रहित

साधु सेवा विषें सावधान महा जिनधर्मी, जाके लोक जिनधर्मी, ऐसे जीवकूं पीड़ा काहे उपजै ? यह सिंहोदर ऐसा बलवान है जो याके उपद्रवतें वज्रकर्णकूं भरत भी न बचाय सकै। तातें हे लक्ष्मण ! तुम याकूं शीघ्र ही सहाय करो, सिंहोदर पै जावो अर वज्रकर्ण का उपद्रव मिटै सो करहु, हम तुमकूं कहा सिखावें, तुम महा बुद्धिमान हो, जैसें महामणि प्रभा-सहित प्रगट होय है तैसें तुम महा बुद्धि पराक्रम के घर प्रगट भए हो। या भाँति श्रीराम ने भाई के गुण गाए, तब भाई लक्ष्मण लज्जा कर नीचे मुख हो गए। नमस्कार कर कहते भए, हे प्रभो ! जो आप आज्ञा करोगे सोई होयगा। महाविनयवान लक्ष्मण राम की आज्ञा प्रमाण धनुष बाण लेय धरतीकूं कंपायमान करते संते शीघ्र ही सिंहोदर पै गए, सिंहोदरके कटकके रखवारे पूछते भए, तुम कौन हो ? लक्ष्मण कही, मैं राजा भरतका दूत हूँ, तब कटकमें पैठने दिया, अनेक डेरे उलंघ राजद्वार गया। द्वारपाल राजा सूं मिलाया सो महा बलवान सिंहोदरकूं तृण समान गिनता संता कहता भया—हे सिंहोदर ! अयोध्याका अधिपति भरत तानै यह आज्ञा करी है जो वृथा विरोध कर कहा ? वज्रकर्णसूं मित्रभाव करहु। तब सिंहोदर कहता भया—हे दूत! तू राजा भरतसूं या भाँति कहियो जो अपना सेवक होय अर विनयमार्गसे रहित होय ताहि स्वामी समझाय सेवा में लावै, यामें विरोध कहा? यह वज्रकर्ण दुरात्मा मानो मायाचारी, कृतघ्न, मित्रनि का निंदक, चाकरी चूक आलसी मूढ़, विनयाचार रहित, खोटी अभिलाषाका धारक, महाक्षुद्र, सज्जनता-रहित है सो याके दोष जब मिटैं जब यह मरण कों प्राप्त होय अथवा याहि राज्य-रहित करूँ, तातें तुम कछु मत कहो, मेरा सेवक है, जो चाहूँगा सो करूँगा। तब लक्ष्मण बोले—बहुत उत्तरनि करि कहा ? यह परम हितु है, या सेवकका अपराध क्षमा करहु। ऐसा जब कह्या तब सिंहोदर क्रोध करि अपने बहुत सामंतनिकूं देख गर्वकूं धरता सन्ता उच्च स्वरसूं कहता भया, यह वज्रकर्ण तो मानी है ही अर तू याके कार्यकूं आया सो तू महामानी है। तेरा तन अर मन मानों पाषाणतें निर्माप्या है, तो में रंचमात्र हू नम्रता नाहीं, तू भरत का मूढ़ सेवक है, जानिये है जो भरत के देश में तो सारिखे मनुष्य होंगे। जैसें सीजतो भरी हाँडी में से एक चावल काढ़ कर नरम कठोरकी परीक्षा करिए है तैसें एक तेरे देखवेकरि सबनिकी बानगी जानी जाय है। तब लक्ष्मण क्रोध कर कहते भए, मैं तेरी वार्ता सन्धि करावेकूं आया हूँ, तोहि नमस्कार करवेकूं न आया। बहुत कहनेसूं कहा ? थोड़े ही में समझ जाहु। वज्रकर्णसूं सन्धिकर लेहु नातर मारा जायगा। ये बचन सुन सब ही सभा के लोक क्रोधकूं प्राप्त भए। नाना प्रकार के दुर्वचन कहते भए अर नाना प्रकार क्रोधकी चेष्ठाकूं प्राप्त भए। कैयक छुरी लेय, कैयक

कटारी भाला तलवार लेयकरि याके मारवेकूं उद्यमी भए। हुंकार शब्द करते अनेक सामंत लक्ष्मणकूं बेढ़ते भए, जैसें पर्वतकूं मच्छर रोकै तैसें रोकते भए। सो यह धीर वीर युद्ध क्रिया विषें पंडित शीघ्र क्रिया के वेत्ताचरणके घातकर तिनकूं दूर उड़ाय दिए। कैयक गोडनितें मारे, कैयक कुहनितें पछाड़े, कैयक मुष्टि प्रहार करि चूर्ण कर डारे, कैयकनिके केश पकड़ पृथ्वी पर पाड़ि मारे, कैयकनिकूं परस्पर सिर भिड़ाय मारे, या भांति अकेले महाबली लक्ष्मण ने अनेक योधा विध्वंस किये। तब और बहुत सामंत हाथी घोड़ेनि पर चढ़ बखतर पहिर लक्ष्मण के चौगिरद फिरें, नाना प्रकार के शस्त्रनिके धारक। तब लक्ष्मण जैसें सिंह स्यालनिकों भगावै तैसें तिनकूं भगावता भया। तब सिंहोदर काली घटा समान हाथी पर चढ़कर अनेक सुभटवि सहित लक्ष्मणतें लड़वेकूं उद्यमी भया। अनेक योधा मेघ समान लक्ष्मण रूप चन्द्रमाकूं बेढ़ते भए सो सर्व योधा ऐसे भगाए जैसें पवन आक के डोडनि के जे फफूंदे तिनकूं उड़ावै। ता समय महा योधानिकी कामिनी परस्पर वार्ता करै हैं, देखो यह एक महासुभट अनेक योधानिकर बेढ्या है परन्तु यह सबकूं जीतै है, कोऊ याहि जीतवे समर्थ नाहीं, धन्य याहि, धन्य याके माता-पिता इत्यादि अनेक वार्ता सुभटविकी स्त्री करै हैं। अर लक्ष्मण सिंहोदर कूं कटक सहित चढ्या देखकर गज का थंभ उपाड़्या अर कटक के सन्मुख गया, जैसें अग्नि वनकूं भस्म करै तैसें कटक के बहुत सुभट विध्वंस किए। अर जो दशांगनगर के योधा नगरके दरवाजे ऊपर वज्रकर्णके समीप बैठे हुते सो फूल गए हैं मुख जिवके, स्वामी सूं कहते भए—हे नाथ ! देखो यह एक पुरुष सिंहोदर के कटकतें लड़ै है, ध्वजा रथ चक्र भग्न कर डारे, परम ज्योति का धारी है, खड्ग समान है कांति जाकी, समस्त कटककूं व्याकुलतारूप भ्रमर में डारया है, सब तरफ सेना भागी जाय है जैसें सिंहतें मृगवि के समूह भागें। अर भागते थके सुभट परस्पर बतलावें हैं कि बखतर उतार धरो, हाथी घोड़ छोड़ो, गदा खाड़े में डार देहु, ऊँचे शब्द व करहु, ऊँचे शब्दको सुनकर व शस्त्र के धारक देख यह भयानक पुरुष आय मारेगा। अरे भाई ! यहाँतें हाथी ले जावो, कहाँ थाँभ राखा है ? मार्ग देऊ। अरे दुष्ट सारथी ! कहाँ रथकूं थाँभ राख्या है। अर घोड़े आगे करहु। यह आया, यह आया, या भांति के वचनालाप करते महा कष्टकूं प्राप्त भए, सुभट संग्राम तज आगे भागे जाय हैं, नपुंसक समान होय गए। यह युद्ध में क्रीड़ा का करणहारा कोई देव है तथा विद्याधर है अथवा काल है अथवा वायु है ? यह महाप्रचंड सब सेनाकूं जीतकर सिंहोदरकूं हाथी से उतार गले में वस्त्र डार बांध लिए जाय है जैसें बलदको बांध धनी अपने घर ले जाय। यह वचन वज्रकर्णके योधा वज्रकर्णसूं कहते भए। तब वह कहता भया—हे सुभट हो ! बहुत चिंताकर कहा ? धर्मके प्रसादतें सब

शांति होयगी। अर दशांगनगरकी स्त्री महलनिके ऊपर बैठी परस्पर वार्ता करैं हैं,हे सखी! या सुभट की अद्भुत चेष्टा, जो एक पुरुष अकेला नरेंद्रकूं बांध लिए जाय है। अहो धन्य याका रूप! धन्य याकी कांति! धन्य याकी शक्ति, यह कोई अतिशयका धारी पुरुषोत्तम है। धन्य हैं वे स्त्री, जिनका यह जगदीश्वर पति हुआ है तथा होयगा। अर सिंहोदर की पटरानी बाल तथा वृद्धनि सहित रोवती लक्ष्मण के पांयनि पड़ी अर कहती भई–हे देव! याहि छोड़ देहु, हमें भरतार की भीख देहू। अब जो तिहारी आज्ञा होयगी सो करेगा। तब आप कहते भए, यह आगें बड़ा वृक्ष है तासूं बांध याहि लटकाऊंगा। तब वाकी रानी हाथ जोड़ बहुत विनती करती भई–हे प्रभो! आप रोष भए हो तो हमें मारो, याहि छोड़ो, कृपा करो, प्रीतम का दुःख हमें मत दिखावो, जे तुम सारिखे पुरुषोत्तम हैं ते स्त्री अर बालक वृद्धनि पर करुणा ही करै हैं। तब आप दया कर कहते भए—तुम चिंता न करहु, आगे भगवान का चैत्यालय है तहाँ याहि छोड़ेंगे। ऐसा कह आप चैत्यालय में गए, जाय कर श्रीरामतें कहते भए–हे देव! यह सिंहोदर आया है, आप कहो सो करें। तब सिंहोदर हाथ जोड़ कांपता संता श्रीरामके पांयनि परथा अर कहता भया–हे देव ! तुम महाकांति के धारी परम तेजस्वी हो, सुमेरु सारिखे अचल पुरुषोत्तम हो, मैं आपका आज्ञाकारी, यह राज्य तिहारा, तुम चाहो ताहि देहु; मैं तिहारे चरणारविंदकी निरंतर सेवा करूँगा। अर रानी नमस्कार कर पति की भीख मांगती भई, अर सीता सती के पांयन परी अर कहती भई—हे देवी ! हे शोभने ! तुम स्त्रीनिकी शिरोमणि हो, हमारी करुणा करो। तब श्रीराम सिंहोदरकूं कहते भए मानो मेघ गाज्या। अहो सिंहोदर ! तोहि जो वज्रकर्ण कहै सो कर, या बातकरि तेरा जीतव्य है और बात कर नाहीं, या भांति सिंहोदरकूं राम की आज्ञा भई। ताही समय जे वज्रकर्ण के हितकारी हुते तिनकूं भेज वज्रकर्णकूं बुलाया सो परिवार सहित चैत्यालय आया, तीन प्रदक्षिणा देय भगवानकूं नमस्कार करि चन्द्रप्रभ स्वामी की अत्यन्त स्तुतिकर रोमांच होय आए। बहुरि वह विनयवान दोनों भाईन के पास आय स्तुतिकर शरीरकी आरोग्यता पूछता भया अर सीता की कुशल पूछी। तब श्रीराम अत्यन्त मधुर ध्वनि कर वज्रकर्णकूं कहते भए—हे भव्य ! तेरी कुशलकरि हमारे कुशल है। या भांति वज्रकर्ण की अर श्रीरामकी वार्ता होय है तब ही सुन्दर भेष धरे विद्युदंग आय श्रीराम लक्ष्मण की स्तुति कर वज्रकर्णके समीप आया। सर्व सभा विषैं विद्युदंग की प्रशंसा भई जो यह वज्रकर्ण का परम मित्र है। बहुरि श्रीरामचन्द्र प्रसन्न होय वज्रकर्णसूं कहते भए कि तेरी श्रद्धा महाप्रशंसा योग्य है। कुबुद्धीनिके उत्पातकरि तेरी बुद्धि रंचमात्र भी न डिगी जैसें पवन के समूहकरि सुमेरुकी चूलिका न डिगै। मोहिकूं देख तेरा मस्तक न नमा सो धन्य है तेरी सम्यक्त की दृढ़ता; जे शुद्ध तत्वके अनुभवी पुरुष हैं तिनकी यही रीति है जो

जगत कर पूज्य जे जिनेन्द्र तिनही कूं प्रणाम करें। बहुरि मस्तक कौनकों नमावें? मकरंद रसका आस्वाद करणहारा जो भ्रमर सो गंधर्व (गधा) की पूंछपै कैसे गुंजार करै? तू बुद्धिमान है, धन्य है, निकट भव्य है, चन्द्रमाहूते उज्जवल बल कीर्ति तेरी पृथ्वीमें विस्तरी है; या भांति वज्रकर्णके सांचे गुण श्रीरामचन्द्रने वर्णन किये तब वह लज्जावान् होय नीचा मुख कर रह्या, श्रीरघुनाथसूं कहता भया—हे नाथ! मोपर यह आपदा तो बहुत पड़ी हुती परन्तु तुम सरीखे सज्जन जगतके हितु मेरे सहाई भए। मेरे भाग्य करि तुम पुरुषोत्तम पधारे। या भांति वज्रकर्ण ने कही तब लक्ष्मण बोले तेरी वांछा जो होय सो करें। बज्रकर्ण ने कही कि तुम सारिखे उपकारी पुरुष पाय कर मोहि या जगत विषैं कछु दुर्लभ नाहीं। मेरी यही विनती है—मैं जिनधर्मी हूँ, मेरे तृणमात्रको भी पर पीड़ाकी अभिलाषा नाहीं अर यह सिंहोदर तो मेरा स्वामी है तातैं याहि छोड़ो। ये वचन जब वज्रकर्ण कहे तब सबके मुखतैं धन्य धन्य यह ध्वनि होती भई जो देखो यह ऐसा उत्तम पुरुष है, द्वेष प्राप्त भए भी पराया भला ही चाहै। जे सज्जन पुरुष हैं ते दुर्जनहूका उपकार करैं अर जे आपका उपकार करैं ताका तो करैं ही करें। लक्ष्मण ने वज्रकर्णकूं कही जो तुम कहोगे सो ही होयगा। सिंहोदरको छोड़ा अर वज्रकर्ण अर सिंहोदर का परस्पर हाथ पकड़ाय परम मित्र किए। वज्रकर्णकूं सिंहोदर का आधा राज्य दिवाया अर जो माल लूटा हुता सो हू दिवाया। अर देश धन सेना आधा आधा विभाग कर दिया। वज्रकर्णके प्रसाद करि विद्युदंग सेनापति भया। अर वज्रकर्ण राम लक्ष्मण की बहुत स्तुति करि अपनी आठ पुत्रीनिकी लक्ष्मणसौं सगाई करी। कैसी हैं ते कन्या? महाविनयवन्ती सुन्दर भेष सुन्दर आभूषणकों धरैं। अर राजा सिंहोदरकूं आदि देय राजानिकी तीनसौ परम कन्या लक्ष्मणकूं दई। सिंहोदर अर वज्रकर्ण लक्ष्मणसूं कहते भए—ये कन्या आप अंगीकार करहु। तब लक्ष्मण बोले—विवाह तो तब करूंगा जब अपने भुजा कर राज्य स्थान जमाऊँगा। अर श्रीराम तिनसूं कहते भए—हमारे अब तक देश नाहीं है। तातनैं राज भरतकूं दिया है, तातैं चन्दनगिरिके समीप तथा दक्षिण समुद्रके समीप स्थानक करेंगे। तब हमारी दोऊ मातानिकूं लेनेकूं मैं आऊँगा अथवा लक्ष्मण आवेगा। ता समय तिहारी पुत्रीनिकूं परणकर लेआवेंगा। अब तक हमारे स्थानक नाहीं, कैसें पाणिग्रहण करें? जब या भांति कही तब वे सब राजकन्या ऐसी होय गईं जैसा जाड़ेका मरचा कमलनिका वन होय। तब मनमें विचारती भई—वह दिन कब होयगा जब हमकूं प्रीतमके संगमरूप रसायनकी प्राप्ति होयगी। अर जो कदाचित प्राणनाथका विरह भया तो हम प्राण त्याग करेंगी, इन सबका मन विरहरूप अग्निकर जलता भया। यह विचारती भईं कि एक ओर महा औंडा गर्त अर एक ओर महाभयंकर सिंह, कहा करैं? कहां जावें? विरहरूप

व्याघ्रकूं पतिके संगमकी आशातें वशीभूत कर प्राणनिकूं राखेंगी, यह चितवन करती संती अपने पिताकी लार अपने स्थानक गई। सिंहोदर वज्रकर्ण आदि सब ही नरपति रघुपति की आज्ञा लेय घर गए। ते राजकन्या उत्तम चेष्टा की धरणहारी, माता पितादि कुटुम्बकरि अत्यन्त है सन्मान जिनका अर पतिमें है चित जिनका, सो नाना विनोद करती पिताके घरमें तिष्टती भई। अर विद्युदंगने अपने माता पिताकूं कुटुम्ब सहित बहुत विभूति से बुलाया, तिनके मिलापका परम उत्सव किया। अर वज्रकर्ण अर सिंहोदर के परस्पर अति प्रीति बढ़ी। अर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण अर्ध रात्रिकूं चैत्यालयतें चाले, धीरे २ अपनी इच्छा प्रमाण गमन करें हैं अर प्रभात समय जे लोक चैत्यालय में आए तो श्रीरामकूं न देख शून्य हृदय होय अति पश्चात्ताप करते भए।

अथानन्तर राम लक्ष्मण जानकीकूं धीरे धीरे चलावते अर रमणीक वनमें विश्राम लेते अर महामिष्ट स्वादु फलका रसपान करते, क्रीड़ा करते, रस भरी बातें करते, सुन्दर चेष्टाके धरणहारे चले। चलते-चलते नलकूवर नामा नगर आए। कैसा है नगर ? नाना प्रकार के रत्ननिके जे मंदिर तिनके उतंग शिखरनि कर मनोहर अर सुन्दर उपवनों करि मंडित अर जिनमंदिरनिकरि शोभित, स्वर्ग समान निरन्तर उत्सव का भरया लक्ष्मी का निवास है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै राम लक्ष्मण कृत वज्रकरण का उपकारवर्णन करनेवाला तेतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३३॥

चौंतीसवां पर्व

(बालिखिल्य का कथानक)

अथानन्तर श्रीराम लक्ष्मण और सीता नलकूवर नामा नगर के परम सुन्दर वनमें आय तिष्ठे, कैसा है वह वन ? फल-पुष्पनिकर शोभित जहां भ्रमर गुंजार करें हैं अर कोयल बोलै हैं। सो निकट सरोवरी, तहां लक्ष्मण जलके निमित्त गए, सो ताही सरोवरी पर क्रीड़ा के निमित्त कल्याणमाला नामकी राजपुत्री राजकुमारका भेष किए आई हुती। कैसा है राजकुमार ? महा रूपवान नेत्रनिकूं हरणहारा, सर्वकूं प्रिय, महा विनयवान, कांतिरूप निर्झरनिका पर्वत, श्रेष्ठ हाथीपर चढ़या, सुन्दर प्यादे लार, जो नगरका राज्य करै सो सरोवरीके तीर लक्ष्मणकूं देख मोहित भया। कैसा है लक्ष्मण ? नीलकमल समान श्याम सुन्दर लक्षणनिका धारक। राजकुमार एक मनुष्यकूं आज्ञा करी जो इनकूं ले आवो। सो मनुष्य जायकर हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया, हे धीर! यह राजपुत्र आपसूं मिल्या चाहै है सो पधारिए। तब लक्ष्मण राजकुमारके समीप गए। सो वह हाथी

तैं उतरकर कमलतुल्य जे अपने कर तिनकर लक्ष्मण का हाथ पकड़ वस्त्रनिके डेरामें ले गया, एक आसन पर दोऊ बैठे। राजकुमार पूछता भया आप कौन हो, कहांतैं आए हो? तब लक्ष्मण कही—मेरे बड़े भाई सो बिना एक क्षण न रहैं सो उनके निमित्त अन्न पाव सामग्री कर उनकी आज्ञा लेय तुम पर आऊँगा तब सब बात कहूँगा। यह बात सुन राजकुमार कही जो रसोई यहाँ ही तैयार भई है सो यहाँ ही तुम अर वे भोजन करो। तब लक्ष्मण से आज्ञा पाय सुन्दर भात दाल नाना विधि व्यंजन. नवीन घृत कर्पूरादि सुगन्ध द्रव्यनिसहित दधि, दुग्ध अर नाना प्रकार पीने की वस्तु, मिश्री के स्वाद जामें ऐसे लाडू अर पूरी सांकली इत्यादि नाना प्रकार भोजन की सामग्री अर वस्त्र आभूषण माला इत्यादि अनेक सुगंध नाना प्रकार तैयार किए। अर अपने निकटवर्ती जो द्वारपाल ताहि भेज्या सो जाय कर सीता सहित रामकूं प्रणाम कर कहता भया—हे देव! या वस्त्र-भवनविषैं तिहारा भाई तिष्टै है अर या नगर के नाथ ने बहुत आदरतैं विनती करी है, वहां छाया शीतल है अर स्थान मनोहर है सो आप कृपाकर पधारो तो मार्गका खेद निवृत्त होय। तब आप सीता सहित पधारे जैसें चाँदनी सहित चांद उद्योत करै। कैसे हैं आप? मातें हाथी समान है चाल जिनकी; लक्ष्मण सहित नगर का राजा दूर हीतैं देख उठकर सामने आया। सीता सहित राम सिंहासन पर विराजे, राजाने आरती उतार कर अर्घ दिए, अति सन्मान किया, आप प्रसन्न होय स्नानकर भोजन किया, सुगंध लगाई। बहुरि राजा सबनिकूं सीख देय विदा किए; ए चार ही रहे, एक राजा अर तीन ये। सबनिकूं कह्या जो मेरे पिताके पासतैं इनके हाथ समाचार आए हैं सो एकांत की वार्ता है, कोई आवने न पावै, जो आवेगा ताहि मैं मारूँगा। बड़े २ सामंत द्वारे राखे, एकांतविषैं इनके आगें लज्जा तज कन्या जो राजाका भेष धारे हुती सो तज अपना स्त्री-पद का रूप प्रकट दिखाया। कैसी है कन्या? लज्जाकर नम्रीभूत है मुख जाका अर रूप कर मानो स्वर्ग की देवांगना है अथवा नागकुमारी है, ताकी कांति करि समस्त मन्दिर प्रकाशरूप होय गया मानो चन्द्रमाका उदय भया; चन्द्रमा किरणों करि मंडित है, याका मुख लज्जा अर मुलकन कर मंडित है मानों यह राजकन्या साक्षात् लक्ष्मी ही है अर कमलनिके वनतें आय तिष्ठी है, अपनी लावण्यता रूप सागरविषैं मानों मंदिरकूं गर्क किया है। जाकी द्युति आगें रत्न अर कंचन द्युतिरहित भासैं हैं। जाके युगल स्तन से कांतिरूप जलकी तरंगनि समान त्रिवली शोभै है अर जैसें मेघपटलकूं भेद निशाकर निकसै तैसें वस्त्रकूं भेद अंगकी ज्योति फैल रही है। अर अत्यन्त चिकने सुगन्ध कारे बाँके पतले लम्बे केश तिन करि विराजित है प्रभारूप वदन जाका मानो कारी घटामें बिजुरीके समान चमकै हैं अर महासूक्ष्म स्निग्ध जो रोमनिकी पंक्ति, ताकर विराजित मानों नीलमणि

करि मंडित सुवर्ण की मूर्ति ही है। तत्काल नररूप तज नारीका रूपकर मनोहर वेषविकी धरनिहारी सीताके पायनि लाग समीप जाय बैठी, जैसें लक्ष्मी रतिके निकट जाय बैठें। सो याका रूप देख लक्ष्मण काम कर बींधा गया, और ही अवस्था होय गई, नेत्र चलायमान भए। तब श्रीरामचंद्र कन्यातें पूछते भए, तू कौनकी पुत्री है अर पुरुष का भेष कौन कारण किया? तब वह महामिष्टवादिनी अपना अंग वस्त्रतें ढांक कहती भई–हे देव! मेरा वृत्तान्त सुनहु। या नगरका राजा बालिखिल्य महा सुबुद्धि सदाचारवान श्रावकके व्रतका धारक महादयालु जिनधर्मियों पर वात्सल्य अंगका धरणहारा, राजाके पृथ्वी राणी ताहि गर्भ रह्या सो मैं गर्भविषें आई अर म्लेच्छनिका जो अधिपति तासूं संग्राम भया। मेरा पिता पकड्या गया। सो मेरा पिता सिंहोदरका सेवक सो सिंहोदरने यह आज्ञा करी जो बालिखिल्य के पुत्र होय सो राज्यका कर्त्ता होय, सो मैं पापिनी पुत्री भई। तब हमारे मंत्री सुबुद्धि तानै मनसूबाकर राज्यके अर्थ मोहि पुत्र ठहराया। सिंहोदरकूं विनती लिखी, कल्याणमाल मेरा नाम धर्‌या अर बड़ा उत्सव किया सो मेरी माता अर मंत्री ये तो जानै हैं जो यह कन्या है अर और सब कुमार ही जानै हैं। सो एते दिन मैं व्यतीत किए, अब पुण्यके प्रभावतें आपका दर्शन भया। मेरा पिता बहुत दुःखसूं तिष्ठै है, म्लेच्छनिका बंदी है। सिंहोदरहू ताहि छुड़ायवे समर्थ नाहीं। अर जो द्रव्य देश विषें उपजै है जो सब म्लेच्छ के जाय है। मेरी माता वियोगरूप अग्नि कर तप्तायमान है जैसें दूज के चन्द्रमा की मूर्ति क्षीण होय तैसी होय गई है। ऐसा कहकर दुःखके भारकर पीड़ित है समस्त अंग जाका सो मुरझाय गई अर रुदन करती भई। तब श्रीरामचंद्र ने अत्यंत मधुर वचन कहकर धैर्य बंधाया, सीता गोद में लेय बैठी। मुख धोया और लक्ष्मण कहते भए–हे सुन्दरी! सोच तज अर पुरुष का भेषकरि राज्य करि, कैयक दिननिमें म्लेच्छनिकूं पकड़ा अर अपने पिताकूं छूट्या ही जान, ऐसा कहकर परम हर्ष उपजाया। सो इनके वचन सुनकर कन्या पिताकूं छुट्या ही जानती भई। श्रीराम लक्ष्मण देवनकी नाईं तीन दिन यहाँ बहुत आदर तें रहे। बहुरि रात्रिमें सीतासहित उपवनतें निकसकर गोप चले गए। प्रभात समय कन्या जागी, तिनकूं न देख व्याकुल भई अर कहती भई, वे महापुरुष मेरा मन हर ले गए, मो पापिनीकूं नींद आयई सो गोप चले गए। या भांति विलापकर मन को थांभ हाथी पर चढ़ पुरुषके भेषमें नगर विषें गई अर रामलक्ष्मण, कल्याणमाला के विनयकर हर्‌या गया है चित्त जिनका, अनुक्रमतें मेकला नामा नदी पहुँचे। नदी उतर क्रीड़ा करते अनेक देशनि कूं उल्लंघि विन्ध्याटवीकूं गए, पंथमें जाते संते गुवालनिने मनै किए कि यह अटवी भयानक है, तिहारे जाने योग्य नाहीं। तब आप तिनकी बात न मानी, चले ही गए। कैसी है वनी? कहीं एक लता कर मंडित जे शाल वृक्षादिक तिनकरि शोभित है अर

नाना प्रकार के सुगंध वृक्षनिकर भरी महा सुगन्धरूप है अर कहीं एक दावानल कर जले वृक्ष तिनकर शोभा रहित है जैसें कुपुत्र-कलंकित गोत्र न शोभै ।

अथानंतर सीता कहती भई कि कंटकवृक्षके ऊपर बांई ओर काग बैठ्या है सो यह तो कलह की सूचना करै है अर दूसरा एक काग क्षीर वृक्ष पर बैठा है सो जीत दिखावै है तातें एक मुहूर्त थिरता करहु, दूजे मुहूर्त विषें चालें, आगे कलह के अंत जीत है, मेरे चित्तमें ऐसा भासै है । तब क्षणएक दोऊ भाई थंभे, बहुरि चाले, आगे म्लेच्छनिकी सेना दृष्टि पड़ी, तब ते दोऊ भाई निर्भय धनुष-बाण धारे म्लेच्छनिकी सेनापर पड़े सो सेना नाना दिशानिकूं भाग गई । तब अपनी सेनाका भंग देखि और म्लेच्छनिकी सेना शस्त्र धरे अर बखतर पहिरे आए सो ते भी लीलामात्रमें जीते । तब वे सब म्लेच्छ धनुष-बाण डार पुकार करते पतिपै जाय सब वृत्तांत कहते भए । तब वे सब म्लेच्छ परम क्रोधकर धनुष-बाण लिए महा निर्दई बड़ी सेनासूं आए । शस्त्रनिके समूह करि संयुक्त वे काकोनद जातिके म्लेच्छ पृथवी विषें प्रसिद्ध सर्व मांसके भक्षी राजानिहूकरि दुर्जय ते कारी घटा समान उमड़ि आए । तब लक्ष्मणने क्रोधकर धनुष चढ़ाया तब वन कंपायमान भया, वनके जीव कांपने लग गए । तब लक्ष्मण ने धनुष के शर बांधा तब सब म्लेच्छ डरे, वनमें दसों दिश आंधे की न्याई भटकते भए । तब महाभयंकर पूर्ण म्लेच्छनिका अधिपति रथ से उतर हाथ जोड़ प्रणाम कर पांयनि पर्‌या अर अपना सब वृत्तांत दोऊ भाईनसूं कहता भया । हे प्रभो ! कौशांबी नामा नगरी है तहां एक विश्वानल नामा अग्निहोत्री ब्राह्मण ताके प्रतिसंध्या नामा स्त्री तिनके मैं रौद्रभूतनामा पुत्र सो द्यूत कलामें प्रवीण, बाल अवस्था हीतें क्रूर कर्मका करण-हारा सो एक दिन चोरीतें पकड्या गया अर सूली देवेकूं उद्यमी भए तब एक दयावन्त पुरुष ने छुड़ाया सो मैं कांपता देश तज यहां आया । कर्मानुयोग कर काकोनद जातिके म्लेच्छनिका अधिपति भया, महाभ्रष्ट पशु समान व्रत क्रिया रहित तिष्ठूं हूं । अब तक महासेनाके अधिपति बड़े-बड़े राजा मेरे सन्मुख युद्ध करवेकूं समर्थ न भए, मेरी दृष्टिगोचर न आए, परन्तु मैं आपके दर्शनमात्रहीतें वशीभूत भया । धन्य भाग मेरे जो मैंने तुम पुरुषोत्तम देखे, अब मोहि जो आज्ञा देहु सो करूं । आपका किंकर, आपके चरणारविंदकी चाकरी सिरपर धरूं हूं । अर यह विंध्याचल पर्वत अर या स्थानक निधिकर पूर्ण है, बहुत धन कर पूर्ण युक्त है, आप यहां राज्य करहु, मैं तिहारा दास ऐसा कहकर म्लेच्छ मूर्च्छा खाय कर पांयन पर्‌या जैसें वृक्ष निर्मूल होय गिर पड़ै । ताहि विह्वल देख श्री रामचन्द्र दयारूप वेढ़े कल्पवृक्ष समान कहते भए, उठ-उठ ! डरै मत, बालिखिल्यकूं छोड़, तत्काल यहां मंगाय अर ताका आज्ञाकारी मन्त्री होय कर रह, म्लेच्छनिकी क्रिया तज, पापकर्मतें निवृत्त हो, देश की रक्षा कर; या भांति किए तेरी कुशल है । तब याने कही—हे प्रभो !

ऐसा ही करूँगा । यह विनती कर आप गया अर महारथ का पुत्र जो बालिखिल्य ताहि छोड्या, बहुत विनय संयुक्त ताके तैलादि मर्दन कर स्नान भोजन कराय आभूषण पहिराय रथ विषैं चढ़ाय श्रीरामचन्द्र के समीप ले जानेकूं उद्यमी किया । तब बालिखिल्य परम आश्चर्यकूं प्राप्त होय विचारता भया, कहाँ यह म्लेच्छ महाशत्रु कुकर्मी, अत्यन्त निर्दयी अर कहाँ यह मेरा एता विनय करै है सो जानिये है जो आज मोहि काहूकी भेंट देगा, अब मेरा जीवन नाहीं । यह विचार कर बालिखिल्य सचिंत चल्या, आगे राम लक्ष्मण को देख परम हर्षित भया । रथतें उतर कर नमस्कार किया अर कहता भया, हे नाथ ! मेरे पुण्यके योगतैं आप पधारे, मोहि बन्धनतैं छुड़ाया । आप महासुन्दर इन्द्र तुल्य मनुष्य हो । पुरुषोत्तम पुरुष हो । तब राम ने आज्ञा करी कि तू अपने स्थानक जाहु, कुटुम्बतैं मिलहू । तब बालिखिल्य रामकूं प्रणाम करि रौद्रभूत सहित अपने नगर गया । श्रीराम बालिखिल्यकूं छुड़ाय रौद्रभूतकूं दास करि वहांते चाले । बालिखिल्यकूं आया सुनकर कल्याणमाला महा विभूति सहित सन्मुख आई अर नगरमें महाउत्सव भया । राजा राजकुमार को उर से लगाय अपनी असवारी में चढ़ाय नगरविषैं प्रवेश किया । रानी पृथ्वी के हर्ष से रोमांच होय आए, जैसा आगे शरीर सुन्दर हुता तैसा पतिके आए भया । सिंहोदरकूं आदि देय बालिखिल्यके हितकारी सब ही प्रसन्न भए । अर कल्याणमाला पुत्री ने एते दिवस पुरुष का भेष कर राज थाम्या हुता सो या बात का सबकूं आश्चर्य भया । यह कथा राजा श्रेणिकसूं गौतम स्वामी कहै हैं, हे नराधिप ! वह रौद्रभूत परद्रव्यका हरणहारा अनेक देशनिका कंटक सो श्रीराम के प्रतापतैं बालिखिल्य का आज्ञाकारी सेवक भया । जब रौद्रभूत वशीभूत भया अर म्लेच्छनिकी विषमभूमि में बालिखिल्य की आज्ञा प्रवर्ती तब सिंहोदर भी शंका मानता भया अर अति स्नेह सहित सन्मान करता भया । बालिखिल्य रघुपति के प्रसादतैं परम विभूति पाय जैसा शरद ऋतु में सूर्य प्रकाश करै तैसा पृथवी विषैं प्रकाश करता भया । अपनी रानी सहित देवनिकी न्याईं रमता भया ।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं बालिखिल्य का वर्णन करनेवाला चौंतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३४॥

पैंतीसवां पर्व

(कपिल ब्राह्मण का कथानक)

अथानन्तर राम लक्ष्मण देवनि सारिखे मनोहर नंदनवन सारिखा बन ताविषैं सुख से विहार करते एक मनोज्ञ देश विषैं आय निकसे जाके मध्य तापती नदी बहै, नाना प्रकारके पक्षिनिके शब्द करि सुन्दर तहां एक निर्जन बनमें सीता तृषा कर अत्यन्त खेद खिन्न भई ।

तब पतिकूं कहती भई–हे नाथ ! तृषासे मेरा कंठ शोषै है; जैसे अनंत भवके भ्रमण कर खेदखिन्न हुआ भव्य जीव सम्यग्दर्शनकूं वांछै तैसें मैं तृषासे व्याकुल शीतल जलकूं वांछू हूं। ऐसा कहिकर एक वृक्षके नीचे बैठ गई। तब राम ने कही—हे देवी! हे शुभे ! तू विषादकूं मत प्राप्त होहु, नजीक ही यह आगे ग्राम है जहाँ सुन्दर मंदिर है, उठ आगे चल; या ग्राम में तोहि शीतल जलकी प्राप्ति होयगी। ऐसा जब कह्या तब उठकर सीता चली, मंद-मंद गमन करती गजगामिनी ता सहित दोऊ भाई अरुणवाया ग्राममें आए तहां महा धनवान किसान रहैं। तहां एक कपिल नामा प्रसिद्ध अग्निहोत्री ब्राह्मण ताके घर में आय उतरे, ता अग्निहोत्रीकी शाला में क्षण एक बैठ खेद निवार्या। कपिलकी ब्राह्मणी जल लाई सो सीता पीया अर वे तहां विराजे। अर वनतैं ब्राह्मण विल्व तथा छीलावा खेजड़ा इत्यादि काष्ठका भार बांधे आया, दावानल समान प्रज्वलित जाका मन, महाक्रोधी कालकूट विष समान वचन बोलता भया। उल्लू समान है मुख जाका अर करमें कमंडल, चोटीमें गाँठ दिए, लांबी डाढ़ी, यज्ञोपवीत पहिरे, उंछवृत्ति कहिए अन्नको काटकर ले गए पीछे खेतनतैं अन्न कण बीन लावैं या भांति है आजीविका जाकी सो इनकूं बैठा देख वक्र मुख कर ब्राह्मणीकूं दुर्वचन कहता भया कि हे पापिनी ! इनकूं घर में काहेको प्रवेश दिया, मैं आज तोहि गायनिके वास में बांधूगा। देख ! इन निर्लज्ज ढीठ पुरुष धूरकर धूसरोंने मेरा अग्निहोत्रका स्थान मलिन किया। यह वचन सुन सीता राम तें कहती भई, हे प्रभो !या क्रोधीके घरमें न रहना, वनमें चलिए जहाँ नाना प्रकारके पुष्प फल तिनकर मंडित वृक्ष शोभै हैं, निर्मल जल के भरे सरोवर हैं तिनमें कमल फूल रहे हैं अर मृग अपनी इच्छा से क्रीड़ा करते हैं। तहाँ ऐसे दुष्ट पुरुषनिके कठोर वचन न सुनिए है। यद्यपि यह देश धनसे पूर्ण है अर स्वर्ग सारिखा सुन्दर है परन्तु लोग महाकठोर हैं अर ग्रामीणजन विशेष कठोर ही होय हैं। अर विप्रके रुखे वचन सुन ग्रामके सकल लोक आए, इन दोऊ भाईनिका देवनि समान रूप देख मोहित भए। ब्राह्मणकूं एकान्तमें लेजाय लोक समझावते भए–ये एक रात्रि यहाँ रहै हैं, तेरा कहा उजाड़ है। ये गुणवान् विनयवान, रूपवान पुरुषोत्तम हैं। तब द्विज सबसे लड़्या अर सबसे कह्या, तुम मेरे घर काहे आए, परे जाहु। अर मूर्ख इन पर क्रोध कर आया, जैसे श्वान गज पर आवै अर इनकूं कहता भया–रे अपवित्र हो, मेरे घरतैं निकस्यो। इत्यादि कुवचन सुन लक्ष्मण कुपित भए, ता दुर्जन के पांव ऊँचे कर वाड़ि नीचे कर भ्रमाया, भूमि पर पछाड़ने लगा तब श्रीराम परम दयालु ताहि मनैं किया, हे भाई ! यह कहा ? ऐसे दीनके मारवेकरि कहा ? याहि छोड़ देहु, याके मारने तैं बड़ा अपयश है। जिनशासन में शूरवीरकूं एते न मारने–यति, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक, वृद्ध; ये दोष सयुक्त होंय तो भी हनवे योग्य नाहीं। या भांति राम भाईकूं समझाया, विप्र

छुड़ाया अर आप लक्ष्मणकूं आगे करि सीता सहित कुटीतें निकसे। आप जानकीसे कहै हैं, हे प्रिये! धिक्कार है नीच की संगतिकूं जिस कर मनमें विकारका कारण महापुरुषनि कर त्याज्य क्रूर वचन सुनिए। महाविष वन में वृक्षनिके नीचे वास भला अर आहारादिक विना प्राण जावैं तो भले परंतु दुर्जनके घर क्षण एक रहना योग्य नाहीं। नदीनिके तटविषैं पर्वतनि की कंदरानिविषैं रहेंगे बहुरि ऐसे दुष्टके घर न आवेंगे। या भांति दुष्टके संगकूं निंदते ग्रामसे निकस राम वनकूं गए,वहां वर्षा समय आय प्राप्त भया। समस्त आकाशको श्याम करता संता अर अपनी गर्जना कर शब्द रूप करी है पर्वतकी गुफा जानें, ग्रह नक्षत्र तारानि के समूह को ढांककर शब्द सहित बिजली के उद्योतकर मानों अंबर हंसै है, मेघ पटल ग्रीष्मके तापकूं निवारकर पंथीनिकी बिजलीरूप अंगुरिनि करि डरावता संता गाजै है। श्याम मेघ आकाश में अंधकार करता संता जलकी धाराकर मानों ताकूं स्नान करावै है जैसैं गज लक्ष्मीकूं स्नान करावै। ते दोऊ वीर वन में एक बड़ा वट का वृक्ष ताके डाहला घरके समान तहां विराजे, सो एक दंभकर्ण नामा यक्ष उस वटमें रहता हुता सो इनको महातेजस्वी जानकर अपने स्वामीकूं नमस्कार कर कहता भया—हे नाथ! कोई स्वर्गतें आए हैं, मेरे स्थानक विषैं तिष्ठै हैं। जिनने अपने तेजकर मोहि स्थानतें दूर किया है, वहां मैं जाय न सकूं हूं। तब यक्षके वचन सुनकर यक्षाधिपति अपने देवनिसहित वटका वृक्ष जहां राम लक्ष्मण हुते तहां आया, महाविभव संयुक्त, वन क्रीड़ा विषैं आसक्त, नूतन है नाम जाका, दूर हीतें दोऊ भाईनिकूं महा रूपवान देख अवधि करि जानता भया जो ये बलभद्र नारायण हैं तब वह इनके प्रभावकर अत्यंत वात्सल्य रूप भया। क्षणमात्र में महामनोज्ञ नगरी निरमापी तहां सुखसूं सोते हुए प्रभात सुन्दर गीतोंके शब्दनिकर जागे। रत्न-जडित सेजपर आपकूं देख्या अर मंदिर महा मनोहर बहुत खणका अति उज्ज्वल अर सम्पूर्ण सामग्रीकर पूर्ण अर सेवक सुन्दर बहुत आदर के करनहारे, नगरमें रमणीक शब्द, कोट दरवाजेनिकर शोभायमान ते पुरुषोत्तम महानुभाव तिनका चित्त ऐसे नगरकूं तत्काल देख आश्चर्यकूं न प्राप्त भया। यह क्षुद्र पुरुषनिकी चेष्टा है जो अपूर्व वस्तु देख आश्चर्य कों प्राप्त होंय। समस्त वस्तु कर मंडित वह नगर तहां वे सुन्दर चेष्टा के धारक निवास करते भए, मानों ये देव ही हैं। यक्षाधिपति ने रामके अर्थ नगरी रची, तातैं पृथ्वी पर रामपुरी कहाई। ता नगरीविषैं सुभट मंत्री द्वारपाल नगरके लोग अयोध्या समान होते भए। राजा श्रेणिक गौतमस्वामीको पूछै हैं, हे प्रभो! ये तो देवकृत नगरविषैं विराजे अर ब्राह्मण की कहा बात? सो कहो, तब गणधर बोले—वह ब्राह्मण अन्यदिन दांतला हाथमें लेय वनमें गया, लकड़ी ढूंढते अकस्मात् ऊंचे नेत्र किये। निकट ही सुन्दर नगर देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त भया। नाना प्रकारके रंग की ध्वजा उन कर शोभित शरदके मेघसमान

सुन्दर महल देखे। अर एक राजमहल महाउज्ज्वल मानो कैलाशका बालक है सो ऐसा देखकर मन में विचारता भया। जो यह अटवी मृगनितैं भरी जहाँ मैं लकड़ी लेने निरंतर आवता हुता सो यहाँ रत्नाचल समान सुन्दर मन्दिरनितैं संयुक्त नगरी कहांसूं बसी? सरोवर जलके भरे कमलनिकरि शोभित दीखै हैं जो मै अब तक कभी न देखे, उद्यान महामनोहर जहां चतुर जन क्रीडा करते दीखै हैं अर देवालय महाध्वजानि कर संयुक्त शोभै हैं अर हाथी घोड़े गाय भैंस तिनके समूह दृष्टि आवैं हैं, घंटादिक के शब्द होय रहे हैं। यह नगरी स्वर्गतैं आई है अथवा पातालतैं नीसरी है, कोऊ महाभाग्य के निमित्त यह स्वप्न है, अक देवमाया है, अक गन्धर्वनिका नगर है, अक मैं पित्त कर व्याकुल भया हूँ। याके निकटवर्ती जो मैं सो मेरे मृत्यु का चिन्ह दीखै है, ऐसा विचार कर विप्र विषादकूं प्राप्त भया। सो एक स्त्री नाना प्रकार के आभरण पहरे देखी ताके निकट जाय पूछता भया—हे भद्रे! यह कौनकी पुरी है? तब वह कहती भई—यह रामकी पुरी है, तूने कहा न सुनी? जहाँ राम राजा, जाके लक्ष्मण भाई, सीता स्त्री। अर नगर के मध्य यह बड़ा मन्दिर है, शरद के मेघ समान उज्ज्वल, जहां वह पुरुषोत्तम विराजै है। कैसा है पुरुषोत्तम? लोक विषैं दुर्लभ है दर्शन जाका। सो तामे मनवांछित द्रव्यके दान करि सब दरिद्री लोक राजानि समान किये। तब विप्र बोला—हे सुन्दरी! कौन उपाय कर वाहि देखूं सो तू कह, ऐसे काष्ठ का भार डार कर हाथ जोड़ ताके पांयनि परया। तब वह सुमाया नामा यक्षिणी कृपा कर कहती भई—हे विप्र! या नगरी के तीन द्वार हैं। जहाँ देव हू प्रवेश न कर सकैं, बड़े बड़े योधा रक्षक बैठे हैं, रात्रि में जागै हैं। जिनके मुख सिंह गज व्याघ्र तुल्य हैं तिनकरि मनुष्य भयकूं प्राप्त होय हैं। यह पूर्व द्वार है जाके निकट बड़े बड़े भगवान के मंदिर हैं। मणि के तोरणकरि मनोज्ञ तिनमें इन्द्र कर वंदनीक अरहंत के बिंब विराजै हैं अर जहां भव्य जीव सामायिक स्तवन आदि करै हैं। अर जो नमोकार मन्त्र भाव सहित पढ़ै हैं सो याहि प्रवेश कर सकै हैं। जो पुरुप अणुव्रत का धारी गुणशील करि शोभित है ताको राम परम प्रीतिकर वांछै हैं। तब यक्षिणी के यह अमृत समान वचन सुनकर ब्राह्मण परम हर्षकूं प्राप्त भया। धन आगम का उपाय पाय यक्षिणी की बहुत स्तुति करी, रोमांच कर मंडित भया है सर्व अंग जाका सो चारित्रशूर नामा मुनिके निकट जाय हाथ जोड़ नमस्कार कर श्रावक की क्रिया का भेद पूछता भया। तब मुनिने श्रावक का धर्म याहि सुनाया, चारों अनुयोगका रहस्य बताया। सो ब्राह्मण धर्म का रहस्य जान मुनि की स्तुति करता भया कि हे नाथ! तिहारे उपदेशकरि मेरे ज्ञानदृष्टि भई। जैसें तृषावानकूं शीतल जल अर ग्रीष्म के तापकर तप्तायमान पंथीकूं छाया अर क्षुधावान कूं मिष्टान्न अर रोगीकूं औषधि मिलै तैसें कुमार्ग में प्रतिपन्न जो मैं सो मोहि तिहारा

उपदेश रसायन मिल्या जैसें समुद्रविषें डूबतेकूं जहाज मिले। मैं यह जैन का मार्ग सर्व दुःखनिका दूर करणहारा तिहारे प्रसाद करि पाया, जो अविवेकीनिकूं दुर्लभ है। तीन लोक में मेरे तुम समान कोऊ हितू नाहीं जिनकर ऐसा जिनधर्म पाया। ऐसा कहकर मुनि के चरणारविंदकूं नमस्कार कर ब्राह्मण अपने घर गया। अति हर्षकर फूल रहे हैं नेत्र जाके, स्त्रीसूं कहता भया, हे प्रिये ? मैंने आज गुरु के निकट अद्भुत जिनधर्म सुन्या है जो तेरे बापने, अथवा मेरे बापने, अथवा पिताके पिताने भी न सुन्या। अर हे ब्राह्मणी ! मैंने एक अद्भुत वन देख्या, तामें एक महामनोज्ञ नगरी देखी जाहि देख अचरज उपजै; परन्तु मेरे गुरुके उपदेशकरि अचरज नाही उपजै है। तब ब्राह्मणी कही, हे विप्र ! तैं कहा देख्या अर कहा २ सुन्या सो कहहु। तब ब्राह्मण कही—हे प्रिये! मैं हर्ष थकी कहवे समर्थ नाहीं। तब बहुत आदर कर ब्राह्मणी बारंबार पूछ्या। तब ब्राह्मण कही—हे प्रिये! मैं काष्ठ के अर्थ वन विषें गया हुता। सो वनविषें एक महारमणीक रामपुरी देखी, ता नगरी के समीप उद्यान विषें एक सुन्दर नारी देखी। सो वह कोई देवता होयगी, महा-मिष्टवादिनी। मैंने पूछ्या, या नगरी कौन की है। तब वाने कही—यह रामपुरी है, जहां राजा राम श्रावकनिकूं मनवांछित धन देवें हैं। तब मैं मुनिपै जाय जैन वचन सुने सो मेरा आत्मा बहुत तृप्त भया, मिथ्यादृष्टि कर मेरा आत्मा आतापयुक्त हुता सो आताप पाया। जिनधर्मकूं पायकर मुनिराज मुक्तिके अभिलाषी सर्व परिग्रह तज महा तप करैं, सो वह अरहंतका धर्म त्रैलोक्य विषें एक महानिधि मैं पाया। ये बहिर्मुख जीव वृथा क्लेश करै हैं। मुनि थकी जैसा जिनधर्म का स्वरूप सुन्या हुता तैसा ब्राह्मणीकूं कहा। कैसा है जिनधर्मका स्वरूप ? उज्ज्वल है। अर कैसा है ब्राह्मण ? निर्मल है चित जाका। तब ब्राह्मणी सुन कर कहती भई—मैं भी तिहारे प्रसाद करि जिनधर्मकी रुचि पाई अर जैसे कोई विष फलका अर्थी महानिधि पावै तैसें ही तुम काष्ठादिकके अर्थी धर्म की इच्छा तें रहित श्रीअरहंत का धर्म रसायन पाया, अब तक धर्म न जान्या। अपने आंगनविषें आए सत्पुरुष तिनका निरादर किया, उपवासादि करि खेद-खिन्न दिगम्बर तिनकूं कबहूं आहार न दिया, इन्द्रादिक कर वंदनीक जे अरहंतदेव तिनकूं तजकर ज्योतिषी व्यंतरादि-कनिकूं प्रणाम किया। जीव दयारूप जिनधर्म अमृत तज अज्ञानके योगतें पापरूप विषका सेवन किया। मनुष्य देहरूप रत्नदीप पाय साधुनि करि परखा धर्मरूप रत्न तज विषयरूप कांचका खंड अंगीकार किया। जे सर्वभक्षी, दिवस रात्रि आहारी, अव्रती, कुशीली तिनकी सेवा करी। भोजनके समय अतिथि आवै अर जो निर्बुद्धि अपने विभवप्रमाण अन्नपानादि न दे ताके धर्म नाहीं। अतिथि पद का अर्थ—तिथि कहिये उत्सवके दिन तिनविषें उत्सव तजें, जाके तिथि कहिये विचार नाहीं अर सर्वथा निस्पृह धनरहित साधु सो अतिथि कहिये।

जिनके भाजन नाहीं,कर ही पात्र हैं, वे निर्ग्रंथ आप तिरें अर औरनिकूं तारें। अपने शरीरमेंहू निःस्पृह, काहू वस्तुविषें जिनका लोभ नाहीं। ते निःपरिग्रही मुक्तिके कारण जे दशलक्षणधर्म तिनकर शोभित हैं, या भांति ब्राह्मणने ब्राह्मणीकूं धर्मका स्वरूप कह्या। तब वह सुशर्मानामा ब्राह्मणी मिथ्यात्व रहित होती भई; जैसें चंद्रमाके रोहिणी शोभै अर बुधके भरणी सोहै तैसें कपिलके सुशर्मा शोभती भई। ब्राह्मण ब्राह्मणीकूं उन्हींगुरुके निकट लेगया,जाके निकटआप व्रतलिये हुते सो स्त्रीकोहू श्राविकाके व्रत दिवाए। कपिलकूं जिनधर्म विषै अनुरागी जान और हू अनेक ब्राह्मण समभाव धारते भए। मुनिसुव्रतनाथ का मत पायकर अनेक सुबुद्धि श्रावक श्राविका भए। अर जे कर्मनिके भारकर संयुक्त, मानकर ऊंचा है मस्तक जिनका, वे प्रमादी जीव थोड़े ही आयुविषें पापकर घोर नरक विषें जाय हैं। कैयक उत्तम ब्राह्मण सर्व संगका परित्यागकर मुनि भए, वैराग्यकर पूर्ण मन विषें ऐसा विचार किया—यह जिनेंद्र का मार्ग अब तक अन्य जन्म में न पाया, महा निर्मल अब पाया ध्यानरूप अग्निविषें कर्म-रूप सामग्री भाव घृतसहित होम करेंगे। सो जिनके परम वैराग्य उदय भया ते मुनि ही भए अर कपिल ब्राह्मण महा क्रियावान श्रावक भया। एक दिवस ब्राह्मणीकूं धर्म की अभिलाषिनी जान कहता भया—हे प्रिये ! श्रीरामके देखवेकूं रामपुरी क्यों न चालें। कैसे हैं राम महापराक्रमी, निर्मल है चेष्टा जिनकी अर कमल सरीखे हैं नेत्र जिनके, सर्व जीवनि के दयालु, भव्य जीवनि पर है वात्सल्य जिनका, जे प्राणी आशामें तत्पर, नित्य उपायविषें है मन जिनका, दरिद्ररूप समुद्रमें मग्न, उदरपूर्ण करनेकूं असमर्थ, तिनकूं दरिद्ररूप समुद्रतें पार उतार परम सम्पदाकूं प्राप्त करै हैं, या भांति जिनकी कीर्ति पृथ्वी विषें फैल रही है, महा आनन्दकी करणहारी। तातैं हे प्रिये ! उठ, भेंट लेकर चालें अर मैं सुकुमार बालककूं कांधे लूंगा। ऐसे ब्राह्मणीकूं कह तैसे ही कर दोऊ हर्षके भरे उज्ज्वल भेषकर शोभित रामपुरीकूं चाले। सो उनकूं मार्गविषें भयानक नागकुमार दृष्टि आए, बहुरि व्यंतर विकराल वदन अट्टहास करते नजर आए। इत्यादि भयानक रूप देख ये दोऊ निकंप हृदय होयकर या भांति भगवान की स्तुति करते भए—श्री जिनेश्वर ताईं निरन्तर मन वचन कायकर नमस्कार होहु। कैसे हैं जिनेश्वर? त्रैलोक्यकर वंदनीक हैं। संसार कीचसे पार उतारें हैं, परम कल्याण के देनहारे हैं, यह स्तुति पढ़ते ये दोऊ चले जावैं हैं। इनकूं जिन-भक्त जान यक्ष शांत होय गए। ये दोऊ जिनालयमें गए, नमस्कार होहु जिनमंदिरकूं ऐसा कह दोऊ हाथ जोड़ अर चैत्यालयकी प्रदक्षिणा दई अर मांही जाय स्तोत्र पढ़ते भए—हे नाथ ! महाकुगति का दाता मिथ्यामार्ग ताहि तजकर बहुत दिनमें तिहारा शरण गह्या। चौबीस तीर्थंकर अतीत कालके अर चौबीस वर्तमानकालके अर चौबीस अनागतकाल के तिनकूं मैं वंदूं हूं। अर पंच भरत पंच ऐरावत पंच विदेह ये पन्द्रह कर्मभूमि तिनविषें जे

तीर्थंकर भए अर वर्तें हैं अर अब होवेंगे तिन सबनिकूं हमारा नमस्कार होहु। जो संसार समुद्रसूं तिरैं अर औरनिकूं तारैं ऐसे श्री मुनिसुव्रतनाथके तांई नमस्कार होहु, तीन लोकमें जिनका यश प्रकाश होय रहा है। या भांति स्तुति कर अष्टांग दण्डवतकरि ब्राह्मण स्त्री सहित श्रीरामके अवलोकनकूं गए। मार्ग में बड़े २ मन्दिर महाउद्योत रूप ब्राह्मणीकूं दिखाए अर कहता भया—ये कुन्दनके पुष्प समान उज्ज्वल सर्व कामना पूर्ण नगरी के मध्य राम के मंदिर हैं, जिन करि यह नगरी स्वर्ग समान शोभै है। या भांति वार्ता करता ब्राह्मण राजमंदिर विषें गया। सो दूर ही तें लक्ष्मणकूं देख व्याकुलताकूं प्राप्त भया, चित्त में चितारै है—वह श्याम सुन्दर नील कमल समान प्रभा जाकी ऐसा यह, मैं अज्ञानी दुष्ट वचननि करि दुखाया, इन्हें त्रास दीनी। पापनी जिह्वा महा दुष्टनी काननकूं कटुक भाखे। अब कहा करूँ? कहां जाऊँ? पृथ्वी के छिद्रमें बैठूं, अब मोहि शरण किनका? जो यह मैं जानता अक ये यहां ही नगरी बसाए रहे हैं तो मैं देश त्याग कर उत्तर दिशाकूं चला जाता। या भाँति विकल्परूप होय ब्राह्मनीकूं तज ब्राह्मण भागा, सो लक्ष्मणने देख्या। तब हँसकर रामकूं कहा—वह ब्राह्मण आया है अर मृगकी नाईं व्याकुल होय मोहि देख भागै है। तब राम बोले, याकूं विश्वास उपजाय शीघ्र लावो। तब कुछ जन दौड़, दिलासा देय लाए, डिगता अर कांपता निकट आय भय तज दोऊ भाईनिके आगे भेंट मेल 'स्वस्ति' ऐसा शब्द कहता भया अर अति स्तवन पढ़ता भया। तब राम बोले—हे द्विज! तैं हमकूं अपमानकर अपने घरतें काढ़े हुते, अब काहे पूजै है। तब विप्र बोला—हे देव, तुम प्रच्छन्न महेश्वर हो, मैं अज्ञानतें न जाने तातें अनादर किया है जैसें भस्मतें दबी अग्नि जानी न जाय। हे जगन्नाथ! या लोक की यही रीति है, धनवानकूं पूजिये है। सूर्य शीत ऋतु में ताप रहित होय है सो तासे कोई नाहीं शंकै है। अब मैं जाना तुम पुरुषोत्तम हो। हे पद्मलोचन! ये लोक द्रव्यकूं पूजै हैं, पुरुष को नाहीं पूजै हैं। जो अर्थकर युक्त होय ताहि लौकिक जन मानै हैं। अर परम सज्जन हैं अर धन रहित हैं तो ताहि निःप्रयोजन जन जान न मानै हैं। तब राम बोले, हे विप्र! जाकै अर्थ ताके मित्र, जाकै अर्थ ताके भाई जाकै अर्थ सोई पंडित, अर्थ बिना न मित्र, न सहोदर; जो अर्थकर संयुक्त है ताके परजन हू निज होय जाय हैं अर धन वही जो धर्म कर युक्त अर धर्म वही जो दयाकर युक्त अर दया वही जहां मांस-भोजन का त्याग। जब सब जीवनि का मांस तजा तब अभक्ष्य का त्याग कहिए, ताके और त्याग सहज ही होंय, मांस के त्याग बिना और त्याग शोभै नाहीं। ये वचन राम के सुन विप्र प्रसन्न भया अर कहता भया—हे देव! जो तुम सारिखे पुरुषहूं करि महापुरुष पूजिए हैं तिनका भी मूढ़ लोक अनादर करैं हैं। आगे सनत्कुमार चक्रवर्ती भए। बड़ी ऋद्धि के धारी, महारूपवान जिनका रूप देव देखने आए, सो मुनि होयकर आहारकूं

ग्रामादिक विषैं गए। महा आचार प्रवीण सो निरंतराय भिक्षाकूं न प्राप्त होते भए। एक दिवस विजयपुर नामा नगर विषैं एक निर्धन मनुष्य ने आहार दिया, याके पंच आश्चर्य भए। हे प्रभो ! मैं मन्दभाग्य तुम सारिखे पुरुषनिका आदर न किया सो अब मेरा मन पश्चात्ताप रूप अग्नि कर तपै है। तुम महारूपवान तुम्हें देख महाक्रोधी का क्रोध जाता रहै अर आश्चर्यकूं प्राप्त होय। ऐसा कह कर कपिल गृहस्थ रुदन करता भया—तब श्रीराम ने शुभ वचनकरि संतोष्या अर सुशर्मा ब्राह्मणीकूं जानकी संतोषती भई। बहुरि राघवकी आज्ञा पाय स्वर्ण के कलशनिकरि सेवकनि ने द्विजकूं स्त्रीसहित स्नान कराया अर आदरसों भोजन कराया। नाना प्रकार के वस्त्र अर रत्ननिके आभूषण दिए, बहुत धन दिया सो लेयकर कपिल अपने घर आया। मनुष्यनिकूं विस्मयका करणहारा धन याके भया। यद्यपि याके घर विषैं सब उपकार सामग्री अपूर्व है तथापि या प्रवीणका परिणाम विरक्त, घरविषैं आसक्त नाहीं, मनविषैं विचारता भया कि आगे मैं काष्ठके भारका वहनहारा दरिद्री हुता सो श्रीरामदेवने तृप्त किया। याही ग्राम विषैं मैं शोषित शरीर अभूषित हुता सो राम ने कुवेर समान किया, चिंता दुःख रहित किया। मेरा घर जीर्ण तृण का जाके अनेक छिद्रकादि अशुचि पक्षीनिकी बीटकर लिप्त हुता, अब रामके प्रसाद करि अनेक खणके महल भए; बहुत गोधन, बहुत धन, काहू वस्तु की कमी नाहीं। हाय २ मैं दुर्बुद्धि कहा किया ? वे दोऊ भाई चन्द्रमा समान वदन जिनके कमल नेत्र मेरे घर आए हुते, ग्रीष्म के आतापकरि तप्तायमान सीता सहित, सो मैंने घरते निकासे। या बात की मेरे हृदयविषैं महाशल्य है, जो लग घरविषैं बसूं हूँ तौ लग खेद मिटै नाहीं, तातैं गृहारम्भ का परित्याग कर जिनदीक्षा आदरूं। जब यह विचारी, तब याकूं वैराग्यरूप ज्ञान समस्त कुटुम्ब के लोक अर सुशर्मा ब्राह्मणी रुदन करते भए। तब कपिल सबकूं शोकसागर विषैं मग्न देख निर्ममत्व बुद्धिकरि कहता भया, कैसा है कपिल ? शिवसुख विषैं है अभिलाषा जाकी; हो प्राणी हो ! परिवार के स्नेहकरि अर नाना प्रकार के मनोरथनिकरि यह मूढ़ जीव भवातापकर जरै है, तुम कहा नाहीं जानो हो ? ऐसा कह महा विरक्त होय दुःखकर मूर्छित जो स्त्री ताहि तज अर सब कुटुम्बकूं तज, अठारह हजार गाय अर रत्ननिकर पूर्ण घर अर घरके बालक स्त्रीकूं सौंप आप सर्वारम्भ तज दिगम्बर भया, स्वामी आनंदमतिका शिष्य भया। कैसे हैं आनंदमति ? जगत विषैं प्रसिद्ध तपोनिधि गुण शीलके सागर। यह कपिल मुनि गुरुकी आज्ञा-प्रमाण महातप करता भया। सुन्दर चारित्रका भार धर, परमार्थविषैं लीन है मन जाका, वैराग्यविभूतिकर अर साधुपदकी शोभाकर मंडित है शरीर जाका। सो जो विवेकी यह कपिलकी कथा पढ़ै

सुनै ताहि अनेक उपवासनिका फल होय, सूर्य समान ताकी प्रभा होय।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें देवनिकर नगरका बसावना वा कपिल ब्राह्मण का वैराग्य वर्णन करनेवाला पैंतीसवाँ पर्व पूर्ण भया ॥३५॥

छत्तीसवां पर्व

(लक्ष्मण के वनमाला की प्राप्ति)

अथानंतर वर्षा ऋतु पूर्ण भई। कैसी है वर्षा ऋतु? श्याम घटाकरि महा अंधकाररूप जहाँ जल असराल वरसै अर विजुलिनिके चमत्कार कर भयानक वर्षा ऋतु व्यतीत भई, शरदऋतु प्रगट भई, दसों दिशा उज्ज्वल भई। तब वह यक्षाधिपति श्रीराम सूं कहता भया, कैसे हैं श्रीराम? चलवेका है मन जिनका। यक्ष कहै है, हे देव! हमारी सेवा में जो चूक होय सो क्षमा करो। तुम सारिखे पुरुषनिकी सेवा करवेकूं कौन समर्थ है। तब राम कहते भए–हे यक्षाधिपते! तुम सब बातों के योग्य हो अर तुम पराधीन होय हमारी सेवा करी सो क्षमा करियो। तब वह इनके उत्तम भाव विलोक अति हर्षित भया, नमस्कार कर स्वयंप्रभ नामा हार श्रीराम की भेंट किया अर लक्ष्मणकूं महा अद्भुत मणि कुण्डल चाँद सूर्य सारिखे भेंट किए अर सीताकूं कल्याण नामा चूड़ामणि महा दैदीप्यमान दिया अर महा मनोहर मनवांछित नाद की करनहारी देवोपुनीत वीणा दई। वे अपनी इच्छातैं चाले। तब यक्षराज पुरी संकोच लई अर इनके जायवे का बहुत शोक किया। अर श्रीरामचन्द्र यक्ष की सेवा कर अति प्रसन्न होय आगे चले, देवों की न्याईं रमते नाना प्रकार की कथा विषें आसक्त, नाना प्रकार के फलनिके रस के भोक्ता, पृथ्वी पर अपनी इच्छासूं चलते भ्रमते, मृगराज तथा गजराजनि कर भरया जो महा भयानक वन ताहि उलंघ कर विजयपुर नामा नगर पहुँचे। ता समय सूर्य अस्त भया, अंधकार फैल्या, आकाशविषैं नक्षत्रनिके समूह प्रगट भए। तब वे नगरतैं उत्तर दिशा की तरफ न अति निकट, न अति दूर, कायर लोगनिकूं भयानक जो उद्यान तहां विराजे।

अथानन्तर नगरका राजा पृथ्वीधर जाके इन्द्राणी नामा राणी, स्त्रीके गुणनिकरि मंडित, वाके वनमाला नामा पुत्री महासुन्दर सो बाल अवस्था ही तैं लक्ष्मण के गुण सुन अति आसक्त भई। बहुरि सुनी, दशरथ ने दीक्षा धरी अर केकईके वचनतैं भरतकूं राज्य दिया, राम लक्ष्मण परदेश निकसे हैं; ऐसा विचार याके पिताने कन्याको इन्द्रनगर का राजा ताका पुत्र जो बालमित्र महासुन्दर ताहि देनो विचारी सो यह वृत्तांत वनमाला सुना, हृदय विषै विराजै है लक्ष्मण जाके तब मनविषैं विचारी–कंठ फांसी लेय मरण भला परन्तु अन्य पुरुषका सम्बन्ध शुभ नाहीं, यह विचार सूर्यसूं संभाषण करती भई–हे भानो!

तुम अस्त होय जावो, शीघ्र ही रात्रिकूं पठावहु, अब दिन का एक क्षण मोहि वर्ष समान बीतै है सो मानो याके चितवन कर सूर्य अस्त भया। कन्याका उपवास है, संध्या समय माता पिता की आज्ञा लेय श्रेष्ठ रथ विषें चढ़ बनयात्रा का बहाना कर रात्रि विषें तहां आई जहां राम लक्ष्मण तिष्ठे हुते सो यानें आनकर ताही बन विषें जागरण किया। जब सकल लोक सोय गए तब यह मन्द-मन्द पैर धरती वन की मृगी समान डेरातें निकस वनविषें चाली सो यह महासती पद्मनी ताके शरीर की सुगन्धता कर बन सुगन्धित होय गया। तब लक्ष्मण विचारता भया—यह कोई राजकुमारी महाश्रेष्ठ मानो ज्योतिकी मूर्ति ही है सो महा शोक के भार कर पीड़ित है मन जाका, यह अपघात कर मरण वांछै है सो मैं याकी चेष्टा छिपकर देखूं, ऐसा विचार कर छिपकर बटके वृक्ष तले बैठ्या मानों कौतुक युक्त देव कल्प वृक्ष के नीचे बैठे। ताही वट के तले, हंसनी की सी है चाल जाकी अर चन्द्रमा समान है वदन जाका, कोमल है अंग जाका, ऐसी बनमाला आई, जलसूं आला वस्त्रकर फांसी बनाई अर मनोहर वाणीकर कहती भई–हो या वृक्ष के निवासी देवता ? कृपाकर मेरी बात सुनहु, कदाचित् बन विषें विचरता लक्ष्मण आवै तो तुम ताहि ऐसे कहियो जो तिहारे विरह करि महा दुःखित वनमाला तुमविषें चित्त लगाय वटके वृक्ष विषें वस्त्रकी फांसी लगाय मरणकूं प्राप्त भई, हम या देखी अर तुमकूं यह सन्देशा कह्या है जो या भव विषें तो तिहारा सयोग मोहि न मिल्या, अब परभव विषें तुम ही पति हूजियो। यह वचन कह वृक्षकी शाखासूं फांसी लगाय आप फाँसी लेने लगी, ताही समय लक्ष्मण कहता भया–हे मुग्धे ! मेरी भुजाकर आलिंगन योग्य तेरा कंठ ताविषें फांसी काहेकूं डारै है ? हे सुन्दरवदनी, परमसुन्दरी ! मैं लक्ष्मण हूँ, जैसा तेरे श्रवणविषें आया है तैसा देख अर प्रतीति न आवै तो निश्चयकर लेहु। ऐसा कह ताके करसे कमल थकी भ्रमरों के समूह के समान फाँसी हर लीनी। तब वह लज्जाकरयुक्त प्रेम की दृष्टिकर लक्ष्मणकूं देख मोहित भई। कैसा है लक्ष्मण ? जगतके नेत्रनिका हरण-हारा है रूप जाका। परम आश्चर्यकूं प्राप्त भई, चित्त विषें चितवै है - यह कोई मो पर देवनि उपकार किया, मेरी अवस्था देख दयाकूं प्राप्त भए, जैसा मैं सुन्या हुता तैसा देव-योगतें यह नाथ पाया जाने मेरे प्राण बचाए, ऐसा चितवन करती वनमाला लक्ष्मण के मिलापतें अत्यन्त अनुरागकूं प्राप्त भई।

अथानतर महासुगन्ध कोमल साँथरे पर श्रीरामचद्र पौढ़े हुते सो जागकर लक्ष्मणकूं न देख जानकीकूं पूछते भए–हे देवी ! यहां लक्ष्मण नाहीं दीखै है रात्रिके समय मेरे सोवनेकूं पुष्प पल्लवनिका कोमल साँथरा बिछाय आप यहां ही तिष्ठता हुता सो अब नाहीं दीखै है। तब जानकी कही–हे नाथ ! ऊंचा स्वरकर बुलाय लेहु तब आप शब्द किया।

हे भाई ! हे लक्ष्मण ? हे बालक ! कहाँ गया । शीघ्र आवहु । तब भाई बोला—हे देव! आया । वनमालासहित बड़े भाईके निकट आया । आधी रात्रिका समय चंद्रमाका उदय भया, मुकुद फूले, शीतलमंद सुगंध पवन बाजने लागी । ता समय वनमाला कोपल समान कोमल कर जोड़े, वस्त्रकर वेढ्या है सर्व अंग जानें, लज्जाकर नम्रीभूत है मुख जाका, जाना है समस्त कर्तव्य जानें, महाविनयकूं धरती श्रीराम अर सीताके चरणारविंदकूं कहती भई। सीता लक्ष्मणकूं वंदती भई—हे कुमार ! तैंने चंद्रमाकी तुल्यता करी । तब लक्ष्मण लज्जाकर नीचा होय गया । श्रीराम जानकीतैं कहते भए तुम कैसे जानी ? तब कही—हे देव ! जा समय चन्द्रकला सहित चद्रमा का उद्योत भया ताही समय कन्यासहित लक्ष्मण आया। तब श्रीराम सीताके वचन सुन प्रसन्न भए ।

अथानन्तर वनमाला महाशुभ शील इनकूं देख, आश्चर्यकी भरी, प्रसन्न है मुख चंद्रमा जाका, फूल रहे हैं नेत्रकमल जाके, सीताके समीप बैठी । अर ये दोऊ भाई देवनि समान महासुन्दर निद्रारहित सुखतें कथा वार्ता करते तिष्ठैं हैं । अर वनमालाकी सखी जागकर देखै तो सेज सूनी, कन्या नाही, तब भयकर खेदित भई अर महाव्याकुल होय रुदन करती भई । ताके शब्दकर योधा जागे, आयुध लगाय तुरंत चढ़ दसों दिशा को दौड़े अर पयादे दौड़े । बरछी पर धनुष है हाथमें जिनके, दसों दिशा ढूंढी । राजा का भय अर प्रीतिकर संयुक्त हैं मन जाके ऐसे दोड़े मानों पवन के बालक हैं । तब कैयक या तरफ दौड़े आए, वनमालाकूं वन विषैं राम लक्ष्मणके समीप बैठी देख बहुत हर्षित हुए अर जायकर राजा पृथ्वीधरको बधाई दई अर कहते भए—हे देव! जिनके पावनेका बहुत यत्न करिये तो भी न मिलें, वे सहज ही आए हैं । हे प्रभो! तेरे नगरमें महानिधि आई,बिना बादल आकाशतें वृष्टि अर बिना बाहे क्षेत्र विषैं धान ऊगा । तिहारा जमाई लक्ष्मण नगरके निकट तिष्ठै है, जानैं वनमाला प्राण त्याग करती बचाई । अर राम तिहारे परम हितु सीता सहित विराजै हैं जैसे शची सहित इन्द्र विराजै । ये वचन राजा सेवकनिके सुनकर महा हर्षित होय क्षणएक मूर्छित होय गया । बहुरि परम आनन्दकूं प्राप्त होय सेवकनिकूं बहुत धन दिया अर मन विषैं विचारता भया कि मेरी पुत्रीका मनोरथ सिद्ध भया । जीवनिके धनकी प्राप्ति अर इष्टका समागम अर और हू सुखके कारण पुण्यके योग करि होय हैं । जो वस्तु सैंकड़ों योजन दूर अर श्रवणमें न आवै सोहू पुण्याधिकारीके क्षणमात्रविषैं प्राप्त होय है । अर जे प्राणी दुःखके भोक्ता पुण्यहीन हैं तिनके हाथसे इष्टवस्तु बिलाय जाय है । पर्वतके मस्तकपर तथा वनविषैं, सागरविषैं पंथविषैं पुण्याधिकारिनके इष्ट वस्तुका समागम होय है । ऐसा मनविषैं चिंतवन कर स्त्रीसूं सब वृत्तांत कह्या, स्त्री बारंबार पूछै है, यह जानै मानों स्वप्न ही है । बहुरि रामके अधर समान आरक्त सूर्यका उदय भया । तब राजा प्रेमका भरया सर्व परिवार सहित

हाथीपर चढ़कर परमकांतियुक्त रामसूं मिलने चाल्या अर वनमालाकी माता आठ पुत्रनि सहित पालकी पर चढ़कर चाली सो राजा दूर हीतैं श्रीरामका स्थानक देखकर, फूल गए हैं नेत्र कमल जाके, हाथीतैं उतर समीप आया। श्रीराम अर लक्ष्मणसूं मिल्या। अर वाकी राणी सीताके पांयनि लागी अर कुशल पूछती भई। वीणा बांसुरी मृदंगादिकके शब्द होते भए, बंदीजन विरद बखावते भए, बड़ा उत्सव भया, राजा ने लोकनिकूं बहुत दान दिया, नृत्य होता भया, दसों दिशा नाद कर शब्दायमान होती भईं, श्रीराम लक्ष्मणकूं स्नान भोजन कराया। बहुरि घोड़े हाथी रथ तिन पर चढ़े अनेक सामंत अर हिरण समान कूदते प्यादे तिनसहित राम लक्ष्मणने हाथीपर चढ़े संते पुरविषैं प्रवेश किया। राजाने नगर उछाया महाचतुर मागध विरद बखानै हैं, मंगल शब्द करै हैं। राम लक्ष्मणने अमोलक वस्त्र पहरे, हारकर विराजे है वक्षस्थल जिनका, मलियागिरिके चन्दनतैं लिप्त है अंग जिनका, नाना प्रकारके रत्ननिकी किरणनि करि इन्द्र धनुष होय रह्या है। दोऊ भाई चाँद-सूर्य सारिखे, नहीं वरणे जावैं हैं गुण जिनके, सौधर्म ईशान सारिखे जानकी सहित लोकनिकूं आश्चर्य उपजावते राजमंदिर पधारे, श्रेष्ठ माला धरे सुगन्धकर गुंजार करै हैं भ्रमर जापर, महा विनयवान चंद्रवदन इनकूं देख लोक मोहित भए। कुवेर कासा किया जो वह सुन्दर नगर वहां अपनी इच्छाकरि परम भोग भोगते भए। या भांति सुकृत में है चित्त जिनका, महा गहन वन विषैं प्राप्त भए हू परम विलासकूं अनुभवैं हैं। सूर्य समान है कांति जिनकी, वे पाप रूप तिमिरकूं हरै हैं, निज पदार्थके लाभतैं आनन्दरूप हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं वनमाला का लाभ वर्णन करनेवाला छत्तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ ३६ ॥

सैंतीसवां पर्व

(अतिवीर्य का भरतके साथ युद्धारम्भ और राम-लक्ष्मण से पराजित हो दीक्षा ग्रहण करना)

अथानंतर एक दिन श्रीराम सुखसे विराजे हुते अर पृथ्वीधर भी समीप बैठा हुता, ता समय एक पुरुष दूर का चाल्या महा खेदखिन्न आयकर नम्रीभूत होय पत्र देता भया। श्री राजा पृथ्वीधरने पत्र लेकर लेखककूं सौंप्या, लेखकने खोलकर राजाके निकट बांच्या। तामें या भांति लिख्या हुता कि इन्द्र समान है उत्कृष्ट प्रभाव जाका, महालक्ष्मीवान, नमै हैं अनेक राजा जाकूं, श्रीनन्द्यावर्त नगरका स्वामी महा प्रबल पराक्रमका धारी, सुमेरु पर्वतसा अचल, प्रसिद्ध शस्त्र-शास्त्रविद्या विषैं प्रवीण, सब राजनिका राजा, महा राजाधिराज, प्रतापकर वश किए हैं शत्रु अर मोहित करी है सकल पृथ्वी जानै, उगते-सूर्य समान महा बलवान, समस्त कर्तव्यविषैं कुशल, महानीतिवान, गुणनिकरि विराजमान,

श्रीमान, पृथ्वी का नाथ, महाराजेन्द्र अतिवीर्य सो विजयनगर विषैं पृथ्वीधरकूं क्षेमपूर्वक आज्ञा करै है कि जे केई पृथ्वीपर सामंत हैं वे भण्डारसहित अर सर्व सेनासहित मेरे निकट प्रवर्तें हैं, आर्य खंडके अर म्लेच्छ खंड़के चतुरंग सेनासहित नाना प्रकारके शस्त्रनिके धरण-हारे मेरी आज्ञाकूं शिरपर धारै हैं। अञ्जनगिरि सारिखे आठसै हाथी अर पवनके पुत्रसम तीन हजार तुरंग, अनेक पयादे तिन सहित महा पराक्रमका धारी महातेजस्वी मेरे गुणनिसे खींचा है मन जाका ऐसा राजा विजयशार्दूल आया है अर अंग देशके राजा मृगध्वज, रणोर्मि अर कलभकेशरी ये प्रत्येक पाँच हजार तुरंग अर छहसौ हाथी अर रथ पयादे तिन सहित आए हैं, महा उत्साहके धारी, महा न्यायविषैं प्रवीण है बुद्धि जिनकी अर पांचाल-देशका राजा प्रौढ़ परम प्रताकूं धरता न्यायशास्त्रविषैं प्रवीण अनेक प्रचंड बलकूं उत्साह रूप करता हजार हाथी अर सात हजार तुरंगनितैं अर रथ पयादनिकरि युक्त हमारे आया है अर मगधदेशका राजा सुकेश बड़ी सेनासूं आया है, अनेक राजानिसहित जैसें सैंकड़ानि नदीनिके प्रवाहकूं लिए रेवाका प्रवाह समुद्रविषैं आवै तैसें ताके संग काली घटा समान आठ हजार हाथी, अनेक रथ तुरंगनिके समूह हैं अर वज्रका आयुध धारै है। अर म्लेच्छनि के अधिपति समुद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र, नंदन इत्यादि राजा वज्रधर समान मेरे समीप आए हैं। अर नहीं निवार्या जाय पराक्रम जाका ऐसा राजा सिंहवीर्य आया है। अर राजा वंग अर सिंहरथ ये दोऊ हमारे मामा महा बलवान बड़ी सेनासूं आए हैं अर वत्सदेशका स्वामी मारुदत्त अनेक पयादे अनेक हाथी अनेक रथ अनेक घोड़ानिकर युक्त आया है अर राजा प्रौष्ठल सौवीर सुमेरु सारिखे अचल प्रबल सेनातैं आए हैं। ये राजा महापराक्रमी पृथ्वीपर प्रसिद्ध देवनि सारिखे दस अक्षौहिणी दल सहित आए, तिन राजनि सहित मैं बड़े कटकतैं अयोध्या के राजा भरत पर चढ़ा हूँ। सो तेरे आयवेकी वाट देखूं हूँ तातैं आज्ञापत्र पहुँचते प्रमाण पयानकर शीघ्र आइयो। किसी कार्यकर विलम्ब न करियो। जैसें किसान वर्षाकूं चाहै तैसें मैं तेरे आगमनकूं चाहूँ हूँ। या भांति पत्र के समाचार लेखकने बांचे तब पृथ्वी-धर ने कछु कहने का उद्यम किया। तासूं पहले लक्ष्मण बोले, अरे दूत! भरतके अर अतिवीर्यके विरोध कौन कारणतैं भया। तब वह वायुगत नामा दूत कहता भया—मैं सब बातोंका मरमी हूं, सब चरित्र जानूं हूं। तब लक्ष्मण बोले—हमारे सुनवे की इच्छा है। तब तानै कही, आपको सुनवेकी इच्छा है तो सुनो। एक श्रुतबुद्धि नामा दूत हमारे राजा अतिवीर्यने भरत पर भेज्या सो जायकर कहता भया कि इन्द्र तुल्य राजा अतिवीर्य का मैं दूत हूँ, प्रणाम कर हैं समस्त नरेन्द्र जाकूं, न्यायके थापने विषैं महा बुद्धिमान, सो पुरुषनि विषैं सिंह समान-जाके भयतैं अरिरूप मृग निद्रा नाहीं करैं हैं। ताके यह पृथ्वी वनिता

समान है, कैसी है पृथ्वी ? चार तरफके समुद्र सोई है कटि मेखला जाके, जैसें परणी स्त्री आज्ञा विषें होय तैसें समस्त पृथ्वी आज्ञा के वश है, सो पृथ्वीपति महा प्रबल मेरे मुख होय तुमकूं आज्ञा करे है कि हे भरत ! शीघ्र आयकर मेरी सेवा करहु अथवा अयोध्या तज समुद्र के पार जावो। ये बचन सुन शत्रुघ्न महा क्रोधरूप दावानल-समान प्रज्वलित होय कहता भया—अरे दूत ! तोहि ऐसे वचन कहने उचित नाहीं। वह भरत की सेवा करै अक भरत ताकी सेवा करै ? अर भरत अयोध्याका भार मंत्रिनिकूं सौंप पृथ्वी के वश करने के निमित्त समुद्र के पार जाय अक और भाँति जाय। अर तेरा स्वामी ऐसे गर्व के वचन कहै है सो गर्दभ माते हाथी की न्याईं गाजै है अथवा ताकी मृत्यु निकट है, तातैं ऐसे वचन कहै है अथवा वायुके वश है? राजा दशरथकूं वैराग्य के योगतें तपोवन को गए जान वह दुष्ट ऐसी बात कहै है। सो यद्यपि तात की क्रोधरूप अग्नि मुक्तिकी अभिलाषा कर शाँत भई, तथापि पिताकी अग्नि से हम स्फुलिंग समान निकसे हैं सो अतिवीर्यरूप काष्ठकूं भस्म करने समर्थ हैं। हाथीनिके रुधिररूप कीचकर लाल भए हैं केश जाके ऐसा जो सिंह सो शाँत भया, तो ताका बालक हाथिनिके निपात करने समर्थ है। ये वचन कह शत्रुघ्न बलता जो वाँसोंका वन ता समान तड़तड़ात कर महाक्रोधायमान भया अर सेवकनिकूं आज्ञा करी जो या दूतका अपमान कर काढ़ देवहु। तब आज्ञा प्रमाण सेवकनि ने अपराधीकूं श्वानकी न्याईं तिरस्कार कर काढ दिया, सो पुकारता नगरीके बाहिर गया। धूलिकरि धूसरा है अंग जाका, दुर्वचन करि दग्ध अपने धनी पै जाय पुकाराया अर राजा भरत समुद्र-समान गंभीर परमार्थ का जाननहारा अपूर्व दुर्वचन सुन कछूएक कोपकूं प्राप्त भया। भरत शत्रुघ्न दोऊ भाई नगरतैं सेनासहित शत्रुपर निकसे अर मिथिला नगरीका धनी राजा जनक अपने भाई कनक-सहित बड़ी सेनासूं आय मेला भया अर सिंहोदरकूं आदि दे अनेक राजा भरतसूं आय मिले, भरत बड़ी सेवा सहित नन्द्यावर्तपुर के धनी अतिवीर्य पर चढ़या, पिता समान प्रजाकी रक्षा करता सता। कैसा है भरत ? न्यायविषें प्रवीण है। अर राजा अतिवीर्य भी दूत के वचन सुन परम क्रोधकूं प्राप्त भया, क्षोभकूं प्राप्त भया जो समुद्र ता समान भयानक सर्व सामंतनिकरि मंडित भरत के ऊपर जाइवेकूं उद्यमी भया है। यह समाचार सुन श्रीरामचन्द्र अपना ललाट दूजके चन्द्रमा समान वक्र कर पृथ्वीधरसूं कहते भए—जो अतिवीर्यकूं भरतसे ऐसा करना उचित ही है क्योंकि जाने पिता समान बड़े भाई का अनादर किया। तब राजा पृथ्वीधर ने रामसूं कही—वह दुष्ट है, हम बल जान सेवा करै हैं। तब मंत्र कर अतिवीर्यकूं जवाब लिख्या कि मैं कागदके पीछे ही आऊँ हूँ अर दूतकूं विदा किया। बहुरि श्रीरामसूं कहता भया कि अतिवीर्य महाप्रचण्ड है तातैं मैं जाऊँ हूँ। तब श्रीराम ने कही तुम तो यहां ही

रहो अर मैं तिहारे पुत्रकूं अर तिहारे जवांई लक्ष्मणकूं ले अतिवीर्यके समीप जाऊंगा। ऐसा कहकर रथपर चढ़ बड़ी सेनासहित पृथ्वीधर के पुत्रकूं लार लेय सीता अर लक्ष्मण सहित नन्द्यावर्त नगरीकूं चाले, सो शीघ्र गमनकर नगरके निकट जाय पहुँचे। वहाँ पृथ्वीधरके पुत्र सहित स्नान भोजनकर राम लक्ष्मण सीता ये तीनों मंत्र करते भए। जानकी श्रीरामसूं कहती भई—हे नाथ ! यद्यपि मेरे कहिवेका अधिकार नाहीं. जैसे सूर्यके प्रकाश होते नक्षत्रनिका उद्योत नाहीं, तथापि हे देव ! हितकी वांछाकर मैं कछूइक कहूँ हूँ; जैसैं बांसनितैं मोती लेना तैसैं हम सारिखनितैं हितकी बात लेनी (काहू एक बांसके बीड़ा विषैं मोती निपजै है)। हे नाथ ! यह अतिवीर्य महासेना का स्वामी क्रूरकर्मी भरतकर कैसे जीत्या जाय तातैं याके जीतवेका उपाय करो, तुमसे अर लक्ष्मणसे कोई कार्य असाध्य नाहीं। तब लक्ष्मण बोले—हे देवी ! यह कहा कहो हो, आज अथवा प्रभात या अतिवीर्यकूं मेरे कर हता ही जानहु। श्रीराम के चरणारविंदकी जो रजकर पवित्र है सिर मेरा, मेरे आगे देव भी टिक सकै नाहीं, क्षुद्र मनुष्य अतिवीर्यकी तो कहा बात ! जब तक सूर्य अस्त न होय तासैं पहिलें ही या क्षुद्रवीर्यकूं मूवा ही देखियो। यह लक्ष्मण के वचन सुन पृथ्वीधर का पुत्र गर्जनाकर ऐसे कहता भया। तब श्रीराम भौंह फेर ताहि मनै कर लक्ष्मणसे कहते भए—महा धीरवीर है मन जाका, हे भाई ! जानकी कही सो युक्त है, यह अतिवीर्य बलकर उद्धत है, रणविषै भरतके वश करनेका पात्र नाहीं, भरत याके दसवें भाग भी नाहीं। यह दावानल समान, याका वह मतंग गज कहा करै। यह हाथीनिकर पूर्ण, रथ पयादनिकर पूर्ण, याकूं जीतवे भरत समर्थ नाहीं। जैसे केशरी सिंह महा प्रबल है परन्तु विंध्याचल पर्वतके ढाहिवे समर्थ नाहीं। तैसें भरत याकूं जीतै नाहीं, सेनाका प्रलय होवेगा। जहां निःकारण संग्राम होय वहाँ दोनों पक्षनिके मनुष्यनिका क्षय होय। अर यदि इस दुरात्मा अतिवीर्यने भरतकूं वश किया, तब रघुवंशिनके कष्ट का कहा कहना। अर इन विषैं संधि भी सूझै नाहीं, शत्रुघ्न अति मानी बालक सो उद्धत वैरीसूं दोष किया, यह न्यायविषैं उचित नहीं। अंधेरी रातविषैं रौद्रभूत सहित शत्रुघ्नने दूर के दौरा जाय अतिवीर्यके कटकविषैं धाड़ा दिया, अनेक योधा मारे, बहुत हाथी घोड़ काम आए अर पवन सारिखे तेजस्वी हजारों तुरंग अर सातसै अंजनगिरि समान हाथी ले गया। सो तूने कहा लोगनिके मुखतैं न सुनी ? यह समाचार अतिवीर्य सुन महाक्रोधकूं प्राप्त भया। अर अब महा सावधान है, रणका अभिलाषी है। अर भरत महामानी है सो यासूं युद्ध छोड सन्धि न करै। तातैं तू अतिवीर्यकूं वशकर, तेरी शक्ति सूर्यकूं भी तिरस्कार करवे समर्थ है। अर यहांतै भरतहू निकट है सो हमकूं आपा न प्रकाशना, जे मित्रकूं न जनावैं अर उपकार करैं ते पुरुष अद्भुत प्रशंसा करने योग्य हैं, जैसैं रात्रिका मेघ। या भांति मन्त्रकर रामकूं

अतिवीर्य के पकड़वे की बुद्धि उपजी, रात्रि तो प्रमाद रहित होय समीचीन लोगनितें कथा कर पूर्ण करी, सुखसों निशा व्यतीत भई, प्रातःसमय दोऊ वीर उठकर प्रातः क्रियाकर एक जिनमन्दिर वैस्या सो ताविषैं प्रवेश कर जिनेन्द्रका दर्शन किया। तहाँ आर्यिकानिका समूह विराजता हुता तिनकी वंदना करी अर आर्यिकानि की जो गुरानी वरधर्मा महा शास्त्रकी वेत्ता, ताके समीप सीताकूं राखी, आप भगवानकी पूजाकर लक्ष्मण-सहित नृत्यकारिणी स्त्री का भेषकर लीला सहित राजमंदिर की तरफ चाले, इंद्र की अप्सरा तुल्य नृत्यकारिणीकूं देख नगर के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए लार लागे। ये महाआभूषण पहिरे सर्व लोक के मन अर नेत्र हरते राजद्वार गए, चौबीसों तीर्थंकरनिके गुण गाए, पुराणोंके रहस्य बताए, प्रफुल्लित हैं नेत्र जिनके, इनकी ध्वनि सुन राजा इनके गुणनिका खेंचा समीप आया, जैसें रस्सी का खेंचा जलके विषैं काष्ठका भार आवै। नृत्यकारिणीने नृपके समीप नृत्य किया। रेचक कहिए भ्रमण अंग मोड़ना, मुलकना, अवलोकना, भौंहनिका फेरना, मंद मंद हँसना, जंघा बहुरि करपल्लव तिनका हलावना, पृथ्वीकूं स्पर्शि शीघ्र ही पगनिका उठावना, राग का दृढ़ करना, केशरूप फास का प्रवर्तना, इत्यादि चेष्टारूप काम बाणनिकर सकल लोकनिकूं बींधे। स्वरनिके ग्राम यथास्थान जोड़वेकरि अर वीणाके बजायवेकर सबनिकूं मोहित किए। जहां नर्त्तकी खड़ी रहै वहां सकल सभाके नेत्र चले जांय। रूपकर सबनिके नेत्र, स्वर कर सबनिके श्रवण, गुणकर सबनिके मन बाँध लिए। गौतम स्वामी कहै हैं कि हे श्रेणिक ! जहाँ श्रीराम लक्ष्मण नृत्य करें अर गावें बजावें तहाँ देवनिके मन हरे जांय तो मनुष्यनिकी कहा बात ? श्रीऋषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरनि के यश गाय सकल सभा वश करी। राजाकूं संगीत करि मोहित देख शृंगाररससे वीररसमें आए, आँख फेर, भौंहैं फेर, महा प्रबल तेजरूप होय अतिवीर्यकूं कहते भए–हे अतिवीर्य तैं कहा दुष्टता आरम्भी, तोहि यह मंत्र कौन दिया, तैं अपने नाशके निमित्त भरतसों विरोध उपजाया, जीया चाहै तो महाविनयकर तिनकूं प्रसन्नकर दास होय तिनके निकट जावहु। तेरी रानी बड़े वंश की उपजी काम क्रीड़ा की भूमि विधवा न होय; तोहि मृत्युकूं प्राप्त भए सब आभूषण डार शोभा रहित होयगी जैसें चन्द्रमा बिना रात्रि शोभा रहित होय। तेरा चित अशुभ विषैं आया है सो चित्तकूं फेर नमस्कार कर। हे नीच! या भाँति न करेगा तो अबार ही मारा जायगा, राजा अनरण्य के पोता अर दशरथ के पुत्र तिनके जीवते तू कैसें अयोध्या का राज्य चाहै है। जैसें सूर्यके प्रकाश होते चन्द्रमा का प्रकाश कैसे होय ? जैसें पतंग दीपविषैं पड़ मूवा चाहै है तैसें तू मरण चाहै है। राजा भरत गरुड़-समान महाबली तिनसे तू सर्प-समान निर्बल बराबरी करै है ? यह वचन भरतकी प्रशंसाके अर अपनी निंदाके नृत्यकारिणीके मुखतें सुन सकल सभा सहित अतिवीर्य क्रोधकूं प्राप्त भया अर लाल नेत्र

किए। जैसें समुद्रकी लहर उठै है तैसें सामन्त उठे अर राजा ने खड्ग हाथ में लिया। ता समय नृत्यकारिणीने उछल हाथसों खड्ग छीन लिया अर सिर के केश पकड़ बांध लिया। अर नृत्यकारिणी अतिवीर्यके पक्षी राजा तिनसों कहती भई, जीवने की वांछा राखो तो अतिवीर्य का पक्ष छोड़ भरतपै जाहु, भरतकी सेवा करहु। तब लोकनिके मुखतैं ऐसी ध्वनि निकसी, महा शोभायमान गुणवान भरत भूप जयवन्त होऊ। सूर्य समान है तेज जाका, न्यायरूप किरणनिके मंडलकर शोभित, दशरथके वंशरूप आकाशविषैं चन्द्रमा समान लोककूं आनन्दकारी, जाका उदय थकी लक्ष्मी रूपी कुमुदिनी विकासकूं प्राप्त होय शत्रुनिके आतापतैं रहित परम आश्चर्यकूं धरती भई। अहो यह बड़ा आश्चर्य! जा नृत्यकारिणी की यह चेष्टा जो ऐसे नृपतिकूं पकड़ लेय, तो भरत की शक्ति का कहा कहना? इंद्र हूं जीते। हम या अतिवीर्य सों आय मिले, सो भरत महाराज कोप भए होंयगे, न जानिये कहा करेंगे। अथवा वे दयावन्त पुरुष हैं, जाय मिलें, पांयनि परैं, कृपा ही करेंगे, ऐसा अतिवीर्य के मित्र राजा कहते भए। अर श्रीराम अतिवीर्यकूं पकड़ हाथी पर चढ़ि जिनमन्दिर गए। हाथीसूं उतर मंदिर विषैं जाय भगवान की पूजा करी अर वरधर्मा आर्यिकाकी वन्दना करी, बहुत स्तुति करी, राम ने अतिवीर्य लक्ष्मणकूं सौंप्या, लक्ष्मण ने केश गह दृढ़ बांध्या। तब सीता कही, याहि ढीला करहु, पीड़ा मत देवहु, शांतता भजहु। कर्म के उदयकरि मनुष्य मतिहीन होय जाय है, आपदा मनुष्यनिमें ही होय, बड़े पुरुषनिकूं सर्वथा पर की रक्षा ही करना, सत्पुरुषनिकूं सामान्य पुरुषका हू अनादर न करना, यह तो सहस्र राजनिका शिरोमणि है तातैं याहि छोड़ देवहु। तुम यह वश किया, अब कृपा ही करना योग्य है। राजानिका यही धर्म है जो प्रबल शत्रुनिकूं पकड़ छोड़ दें, यह अनादि काल की मर्यादा है। जब या भांति सीता कही तब लक्ष्मण हाथ जोड़ प्रणाम कर कहता भया—हे देवी! तिहारी आज्ञा से छोड़वे की कहा बात? ऐसा करूं जो देव याकी सेवा करैं, लक्ष्मण का क्रोध शांत भया। तब अतिवीर्य प्रतिबोध कूं पाय श्रीरामसूं कहता भया—हे देव! तुम बहुत भला किया, ऐसी निर्मल बुद्धि मेरी अब तक कबहू न भई हुती सो तिहारे प्रतापतैं भई। तब श्रीराम ताहि हार मुकुटादि-रहित देख विश्रामके वचन कहते भए। कैसे हैं रघुवीर? सौम्य है आकार जिनका। हे मित्र! दीनता तज जैसा प्राचीन अवस्थामें धैर्य हुता तैसा ही धरि, बड़े पुरुषनिके ही संपदा अर आपदा दोऊ होय हैं। अब तोहि कुछ आपदा नाहीं, इस क्रमागत नंद्यावर्तपुर का राज्य भरत का आज्ञाकारी होय किया कर। तब अतिवीर्य कही कि मेरे राज्य की वांछा नाहीं, मैं राज्य का फल पायो, अब मैं और ही अवस्था धारूंगा। समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी

का वश करणहारा महामानका धारी जो मैं सो कैसे पराया सेवक होय राज्य करूं, या विषैं पुरुषार्थ कहा ? अर यह राज्य कहा पदार्थ ? जिन पुरुषनिने षट् खण्ड का राज्य किया ते तृप्त न भए तो मैं पाँच ग्रामों का स्वामी कहा अल्प विभूतिकर तृप्त होऊंगा ? जन्मांतरविषैं किया जो कर्म ताका प्रभाव देखहु, जो मोहि कीतिरहित किया जैसें राहु चन्द्रमाकूं कांति रहित करै। यह मनुष्य देह सारभूत देवनहूतैं अधिक मैं वृथा खोई, नवा जन्म धरनेकूं कायर सो तुमने प्रतिबोध्या, अब मैं ऐसी चेष्टा करूं जाकर मुक्ति प्राप्त होय। या भांति कहकर श्रीराम लक्ष्मणसूं क्षमा कराय वह राजा अतिवीर्य, केसरीसिंह जैसा है पराक्रम जाका, श्रुतधरनामा मुनीश्वर के समीप जाय हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया–हे नाथ ! मैं दिगम्बरी दीक्षा वांछू हूं। तब आचार्य कही–यही बात योग्य है। या दीक्षाकर अनन्त सिद्ध भए अर होवेंगे। तब अतिवीर्य वस्त्र तज केशनिकूं लुंच-कर महाव्रतका धारी भया। आत्माके अर्थ विषैं मग्न, रागादि परिग्रह का त्यागी विधि-पूर्वक तप करता पृथ्वी पर विहार करता भया। जहाँ मनुष्यनि का संचार नाहीं, वहाँ रहै। सिंहादिक क्रूर जीवनिकर युक्त जो महागहन वन अथवा गिरि शिखर गुफादि तिन विषैं निर्भय निवास करै, ऐसे अतिवीर्य स्वामीकूं नमस्कार होहु। तजी है समस्त परिग्रह की आशा जाने अर अंगीकार किया है चारित्र का भार जाने, महाशील के धारक नाना प्रकार तपकर शरीरका शोषणहारा प्रशंसा योग्य महामुनि, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप सुन्दर हैं आभूषण अर दसों दिशा ही वस्त्र जिनके, साधुनि के जे मूलगुण उत्तरगुण वे ही हैं संपदा जिनके, कर्म हरिवेकूं उद्यमी संयमी, मुक्तिके वर योगीन्द्र तिनकूं नमस्कार होहु। यह अतिवीर्य मुनिका चरित्र जो सुबुद्धि पढ़ै सुनै सो गुणनि वृद्धिकूं प्राप्त होय, भानु समान तेजस्वी होय और संसार के कष्टतैं निवृत्त होय।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं अतिवीर्य का वैराग्य वर्णन करनेवाला सैंतीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३७॥

अड़तीसवां पर्व

(लक्ष्मण के जितपद्मा की प्राप्ति)

अथानन्तर श्रीरामचंद्र महा न्याय के वेत्ता, अतिवीर्य का पुत्र जो विजयरथ ताहि अभिषेक कराय पिताके पदविषैं थाप्या। ताने अपना समस्त वित्त दिखाया सो ताका ताकूं दिया अर ताने अपनी बहिन रत्नमाला लक्ष्मणकूं देनी करी सो तिनने प्रमाण करी, ताके रूपकूं देख लक्ष्मण हर्षित भए मानों साक्षात् लक्ष्मी ही है। बहुरि श्रीराम लक्ष्मण जिनेंद्र की पूजा करि पृथ्वीधरके विजयपुर नगरविषैं वापिस गए। अर भरतने सुनी कि अति-

तीर्थंकू नृत्यकारिणीने पकड़्या सो विरक्त होय दीक्षा धरी तब शत्रुघ्न हास्य करने लागा। तब ताहि मनेकर भरत कहते भए—अहो भाई ! राजा अतिवीर्य महाधन्य हैं, जो महाकुल रूप विषयनिकूं तज शांतभावकूं प्राप्त भए, वे महास्तुति योग्य हैं तिनकी हांसी कहा ? तपका प्रभाव देखहु जो रिपु हू प्रणाम योग्य गुरु होय हैं। यह तप देवनिकूं दुर्लभ है। या भांति भरत अतिवीर्य की स्तुति करै है, ताही समय अतिवीर्यका पुत्र विजयरथ आया, अनेक सामंतनि सहित, सो भरतकूं नमस्कार कर तिष्ठ्या। क्षणिक और कथाकर अपने रत्नमाला लक्ष्मणकूं दई ताकी बड़ी बहिन विजयसुन्दरी नानाप्रकार आभूषणकी धरणहारी भरतकूं परणाई अर बहुत द्रव्य दिया। सो भरत ताकी बहिन परण करि बहुत प्रसन्न भए, विजयरथसूं बहुत स्नेह किया, यही बड़ेनिकी रीति है। अर भरत महाहर्ष थकी पूर्ण है मन जाका, तेज तुरंगपर चढ़्या अतिवीर्य मुनिके दर्शनकूं चाल्या, सो जा गिरिपर मुनि विराजे हुते तहां पहिले मनुष्य देख गए हुते सो लार हैं तिनकूं पूछते जाय हैं, कहां महा मुनि हैं? कहां महामुनि हैं ? वे कहे हैं—आगे विराजे हैं। सो जा गिरिपर मुनि हुते वहां जाय पहुंचे, कैसा है गिरि ? विषम पाषाणनिके समूहकरि महा अगम्य अर नाना प्रकारके वृक्षनिकरि पूर्ण, पुष्पनिकी सुगन्धकर महासुगंधित अर सिंहादिक क्रूर जीवनिकरि भर्या। सो राजा भरत अश्वतें उतर महा विनयवान मुनिके निकट गए। कैसे हैं मुनि ? रागद्वेष रहित हैं, शांत भई हैं इन्द्रियां जिनकी, शिलापर विराजमान, निर्भय अकेले जिनकल्पी अतिवीर्य मुनींद्र, महातपस्वी ध्यानी, मुनिपदकी शोभाकर संयुक्त तिनकूं देख भरत आश्चर्यकूं प्राप्त भया। फूल गए हैं नेत्र कमल जाके, रोमांच होय आए। हाथ जोड़ नमस्कार कर साधुके चरणारविंदुकी पूजाकर महा नम्रीभूत होय, मुनि भक्ति विषैं है प्रेम जाका, सो स्तुति करता भया। हे नाथ ! परम तत्वके वेत्ता तुम ही या जगत विषै शूरवीर हो, जिनने यह जैनेन्द्री दीक्षा महा दुर्द्धर धारी। जे महंत पुरुष विशुद्ध कुलविषैं उत्पन्न भए हैं तिनकी यही चेष्टा है, या मनुष्य लोककूं पाय जो फल बड़े पुरुष वांछें हैं सो आपने पाया। अर हम या जगतकी माया करि अत्यन्त दुःखी हैं। हे प्रभो! हमारा अपराध क्षमा करहु, तुम कृतार्थ हो, पूज्यपदकूं प्राप्त भए, तुमको वारंवार नमस्कार होहु; ऐसा कह कर तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ नमस्कार कर मुनि संबधी कथा करता संता गिरितें उतर तुरंग पर चढ़ हजारों सुभटनिकर संयुक्त अयोध्या आया। समस्त राजानिके निकट सभाविषैं कहा कि वे नृत्यकारिणी समस्त लोकनिके मनकूं मोहित करती अपने जीवित विषैं हू निर्लोभ, प्रबल नृपनिकूं जीतनहारी कहां गई ? देखो आश्चर्य की बात, अतिवीर्य के निकट वेके स्तुति करें अर ताहि पकड़ें, स्त्री वर्ग विषैं ऐसी शक्ति कहां तैं होय ? जानिए है जिनशासन की देवीनिने यह चेष्टा करी। ऐसा चिंतवन करता संता प्रसन्न चित्त भया।

अर शत्रुघ्न नाना प्रकार के धान्यकर मंडित जो धरा ताके देखवेकूं गया, जगत विषै व्याप्त है कीर्ति जाकी। बहुरि अयोध्या आया, परम प्रतापकूं धरै अर राजा भरत अति-वीर्य की पुत्री विजयसुन्दरी सहित सुख भोगता सुखसूं तिष्ठै जैसें सुलोचना सहित मेघेश्वर तिष्ठया। यह तो कथा यहां ही रही, आगें श्रीराम लक्ष्मण का वर्णन करै हैं।

अथानंतर राम लक्ष्मण सर्वलोककूं आनन्द के कारण कैयक दिन पृथ्वीधर के पुर विषें रहे। जानकी सहित मंत्र कर आगें चलवेकूं उद्यमी भए। तब सुन्दर लक्षण की धरणहारी वनमाला लक्ष्मणसूं कहती भई, नेत्र सजल होय आए। हे नाथ! मैं मंदभागिनी मोहि आप तज जावो हो तो पहिले मरणतें क्यों बचाई? तब लक्ष्मण बोले—हे प्रिये! तू विषाद मत करै, थोड़े दिनमें तेरे लेवेकूं आवें हैं। हे सुन्दरवदनी! जो तेरे लेयवेको शीघ्र ही न आवें तो हमको वह गति हूजो जो सम्यग्दर्शनरहित मिथ्यादृष्टि की होय है। हे वल्लभे! जो शीघ्र ही तेरे निकट न आवै तो हमको वह पाप होय जो महाव्रतकर दग्ध साधुनि के के निंदकनिको होय है। हे गजगामिनी। हम पिताके वचन पालिवे निमित्त दक्षिणके समुद्रके तीर निसंदेह जाय हैं। मलयाचलके निकट कोई परम स्थान कर तोहि लेने आवेंगे। हे शुभमते! तू धैर्य राख, या भांति कहकर अनेक सौगंध कर अति दिलासा देय आप सुमित्रा के नन्दन लक्ष्मण श्रीराम के संग चलवेकूं उद्यमी भए। लोकनिकूं सूते जान रात्रिकूं सीता सहित गोप्य निकसे। प्रभात विषैं इनकूं न देखकर नगरके लोक परम शोककूं प्राप्त भए। राजाकूं अति शोक उपज्या, वनमाला लक्ष्मण बिना घर सूना जानती भई, अपना चित्त जिनशासन विषैं लगाय धर्मानुरागरूप तिष्ठी। राम लक्ष्मण पृथ्वी विषैं विहार करते, नर-नारिनिकूं मोहते, पराक्रमी पृथ्वीकूं आश्चर्य के कारण धीरे २ लीलातैं विचरै हैं। जगत के मन अर नेत्रनिकूं अनुराग उपजावते रमै हैं। इनकूं देख लोग विचारैं हैं कि ये पुरुषोत्तम कौन पवित्र गोत्र विषैं उपजे हैं। धन्य है वह मात जाकी कुक्षि विषैं ये उपजे अर धन्य हैं वे नारी जिनकूं ये परणै, ऐसा रूप देवनिकूं दुर्लभ, ये सुन्दर कहांतैं आए अर कहां जाय हैं, इनके कहा वांछा है, परस्पर स्त्रीजन ऐसी वार्ता करै हैं। हे सखी! देखो, दोऊ कमलनेत्र चन्द्रमा सारिखे अद्भुत वदन जिनके अर एक नारी नागकुमारी समान अद्भुत, देखो। न जानिये वे सुर हुते वा नरहुते। हे मुग्धे! महापुण्य बिना उनका दर्शन नाहीं। अब तो वे दूर गए, पाछे फिरो, वे नेत्र अर मनके चोर जगत का मन हरते फिरै हैं इत्यादि नर नारिनिके आलाप सुनते सबको मोहित करते वे स्वेच्छाविहारी, शुद्ध हैं चित्त जिनके, नाना देशनिविषैं विहार करते क्षेमांजली नामा नगर विषैं आए, ताके निकट कारी घटा समान सघन वन विषैं सुखसूं तिष्ठे जैसें सौमनसवनमें देव तिष्ठैं। तहां लक्ष्मण बहुत सुन्दर अन्न अर अनेक व्यंजन तैयार किए अर दाखनिका रस तैयार किया सो श्रीराम

सीता सहित लक्ष्मण भोजन किया।

अथानंतर लक्ष्मण श्रीराम की आज्ञा लेय क्षेमांजली नाम पुर के देखवेकूं चाले, महासुन्दर माला पहिरे अर पीताम्बर धारे, सुन्दर है रूप जिनका, नाना प्रकारकी बेल वृक्ष तिन करि युक्त वन अर निर्मल जल की भरी नदी अर नाना प्रकार के क्रीड़ागिरि-अनेक धातु के भरे अर ऊँचे २ जिनमन्दिर अर मनोहर जलके निपान अर नाना प्रकार के लोक तिनकूं देख नगर विषें प्रवेश किया। कैसा है नगर? नाना प्रकार के व्यापार कर पूर्ण, सो नगरके लोक इनका अद्भुत रूप देख परस्पर वार्ता करते भए। तिनके शब्द इनने सुने जो या नगरके राजा के जितपद्मा नामा पुत्री है ताहि वह परणे जो राजा के हाथ की शक्तिकी चोट खाय जीवता बचे। सो कन्या की कहा बात? स्वर्ग का राज्य देय तौ भी यह बात कोई न करै। शक्ति की चोटतें प्राण ही जाय तब कन्या कौन अर्थ? जगत विषें जीतव्य सर्व वस्तुतें प्रिय है तातें कन्या के अर्थ प्राण कौन देय। यह वचन सुनकर महाकौतुकी लक्ष्मण काहूकूं पूछते भए—हे भद्र! यह जितपद्मा कौन है? तब वह कहता भया—यह कालकन्या पंडित-मानिनी सर्व लोक प्रसिद्ध तुम कहा न सुनी? या नगर का राजा शत्रुदमन, जाके राणी कनकप्रभा, ताके जितपद्मा पुत्री रूपवन्ती गुणवन्ती, जाके वदन ने कमलकूं जीत्या है अर गात्र की शोभा कर कमलिनी जीती तातें जितपद्मा कहावै है। नवयौवन मंडित सर्व कलापूर्ण अद्भुत आभूषण की धरणहारी ताहि पुरुष नाम रुचै नाहीं, देवनिका दर्शन हू अप्रिय, मनुष्यनिकी तो कहा बात? जाके निकट कोई पुल्लिंग शब्द हू उच्चारण न कर सके, यह कैलाश के शिखर-समान जो उज्ज्वल मन्दिर ता विषें कन्या तिष्ठै है, सैंकड़ानि सहेली जाकी सेवा करें हैं। जो कोई कन्याके पिताके हाथ की शक्ति की चोटतें बचे ताहि कन्या वरै। लक्ष्मण यह वार्ता सुन आश्चर्यकूं प्राप्त भया अर कोप उपज्या, मनमें विचारी कि महागर्वित दुष्ट चेष्टा-संयुक्त यह कन्या ताहि देखूं। यह चिंतवन कर राजमार्ग होय विमान समान सुन्दर घर देखता अर मदोन्मत्त हाथी कारी घटा समान अर तुरंग चंचल अवलोकता अर नृत्यशाला निरखता राजमंदिर विषें गया। कैसा है राजमंदिर? अनेक प्रकारके झरोखानिकर ध्वजानिकर मंडित, शरद के बादल समान उज्ज्वल मंदिर जहाँ कन्या तिष्ठै है, महामनोहर रचनाकर संयुक्त ऊँचे कोट कर वेष्ठित सो लक्ष्मण जाय द्वार पर ठाढ़ा भया, इन्द्रके धनुष समान अनेक वर्णका है तोरण जहाँ, सुभटनिके समूह अनेक देशनिके नाना प्रकार भेंट लेयकर आए हैं, कोई निकसै है कोई जाय है, सामंतनिकी भीड़ होय रही है। लक्ष्मणकूं द्वार में प्रवेश करता देख द्वारपाल सौम्य वाणीसूं कहता भया—तुम कौन हो अर कौनकी आज्ञातें आए हो। कौन प्रयोजन राजमंदिरमें प्रवेश करो हो? तब कुमार ने कही—राजाकूं देखा चाहै हैं,

तू जाय राजासों पूछ। तब वह द्वारपाल अपनी ठौर दूजेको राख आप राजाते जाय विनती करता भया—हे महाराज! आपके दर्शनकूं एक महारूपवान पुरुष आया है, द्वारे तिष्ठै है, नील कमल समान है वर्ण जाका अर कमललोचन महा शोभायमान सौम्य शुभ मूर्ति है। तब राजाने उसकी ओर निरख आज्ञा करी—आव। तब द्वारपाल लक्ष्मणकूं राजा के समीप लेय गया, सो समस्त सभा याकूं अति सुन्दर देख हर्षकी वृद्धिकूं प्राप्त भई जैसे चन्द्रमाकूं देख समुद्रकी शोभा वृद्धिकूं प्राप्त होय। राजा याकूं प्रणाम-रहित दैदीप्यमान विकट-स्वरूप देख कछुइक विकारकूं प्राप्त होय पूछता भया—तुम कौन हो, कौन अर्थ कहांतें यहां आए हो? तब लक्ष्मण वर्षाकालके मेघ के समान शब्द करते भए—मैं राजा भरत का सेवक हूँ, पृथ्वीको देखवेकी अभिलाषाकरि विचरूं हूँ। तेरी पुत्री का वृत्तान्त सुन यहां आया हूँ। यह तेरी पुत्री महादुष्ट मरखनी गाय है। नहीं भग्न भए हैं मानरूपी सींग जाके, यह सर्व लोकनिकूं दुःखदायिनी वर्ते है। तब राजा शत्रुदमन ने कही—मेरी शक्तिकूं जो सहार सकै सो जितपद्माकूं वरै। तब लक्ष्मण कहता भया कि तेरी एक शक्ति करि कहा होय, तू अपनी समस्त शक्तिकरि मेरे पच शक्ति लगाय। या भांति राजाके अर लक्ष्मणके विवाद भया। ता समय झरोखातें जितपद्मा लक्ष्मणकूं देख मोहित भई अर हाथ जोड़ इशारा कर मने करती भई कि शक्तिकी चोट मत खावो। तब आप सैन करते भए कि तू डरै मत, या भांति धैर्य बंधाया अर राजासूं कही कि काहे कायर होय रहा है, शक्ति चलाय, अपनी शक्ति हमकूं दिखा। तब राजा कही—तू मूवा चाहै है तो झेल, यहां कोप कर प्रज्वलित अग्नि समान एक शक्ति चलाई, सो लक्ष्मण ने दाहिने करतें ग्रही जैसें गरुड़ सर्पकूं ग्रहै। अर दूसरी शक्ति बायें हाथतें गही अर तीजी चौथी दोनों कांखविषें गहीं सो चारों शक्तिनिकूं गहे लक्ष्मण ऐसे शोभै है मानो चौंदता हस्ती है। तब राजा पांचवीं शक्ति चलाई सो दांतनिते गही,जैसे मृगराज मृगीको गहै। तब देवनिके समूह हर्षित होय पुष्पवृष्टि करते भए अर दुन्दुभी बाजे बजाते भए। लक्ष्मण राजासूं कहते भए कि और है तो और भी चला, तब सकल लोक भयकर कंपायमान भए। राजा लक्ष्मणका अखंड बल देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया, लज्जाकर नीचा हो गया। अर जितपद्मा लक्ष्मणके रूप अर चरित्र कर खैंची थकी आय ठाढ़ी भई। वह कन्या सुन्दरवदनी मृगनयनी लक्ष्मणके समीप ऐसी शोभती भई जैसे इंद्रके समीप शची होय। जितपद्माकूं देख लक्ष्मण का हृदय प्रसन्न भया। यहां संग्रामविषें जाका चित्त स्थिर न होय, सो याके स्नेह करि वशीभूत भया। लक्ष्मण तत्काल विनयकर नम्रीभूत होय राजाकूं कहता भया—हे तात! हम तुम्हारे बालक हैं, हमारा अपराध क्षमा करहु, जे तुम सारिखे गम्भीर नर हैं ते बालकनि की अज्ञान-चेष्टा कर अर कुवचन कर विकारकूं नाहीं प्राप्त होय हैं। तब

शत्रुदमन अति हर्षित होय हाथी की सूंड-समान अपनी भुजानिकर कुमारसूं मिल्या अर कहता भया–हे धीर ! मैं महायुद्ध विषें माते हाथिनिकूं क्षणमात्र विषें जीतवहारा सो तूने जीत्या अर वनके हस्ती पर्वत-समान तिनकूं मद-रहित करनहारा जो मैं सो तुम मोहि मदरहित किया । धन्य तिहारा पराक्रम, धन्य तिहारा रूप, धन्य तिहारी निर्गर्वता, महा विनयवान अद्‌भुत चरित्रके धरणहारे तुमसे तुम ही हो; या भांति राजा ने लक्ष्मणके गुण सभाविषें वर्णन किये । तब लक्ष्मण लज्जाकर नीचा होय गया ,

अथानन्तर राजा की आज्ञाकर मेघकी ध्वनि समान वादित्रनिके शब्द सेवक करते भए अर याचकनिकूं बहुत दान देय उनकी इच्छा पूर्ण करते भए, नगरके विषें आनन्द वर्त्या । राजाने लक्ष्मणसूं कहा–हे पुरुषोत्तम ! मेरी पुत्रीका तुम पाणिग्रहण किया चाहो हो तो करो । लक्ष्मणने कहा मेरे बड़े भाई अर भावज नगरके निकट तिष्ठै हैं तिनकूं पूछो, तिनकी जो आज्ञा होय सो तुमको हमको करनी उचित है । वे सर्व नीके जानै हैं । तब राजा पुत्रीकूं अर लक्ष्मणकूं रथमें चढ़ाय सर्व कुटुम्बसहित रघुवीरपै चाल्या । सो क्षोभकूं प्राप्त हुआ जो समुद्र ताकी गर्जनासमान याकी सेनाका शब्द सुनकर अर धूलके पटल उठते देखकर सीताभयभीत होय कहती भई–हे नाथ ! लक्ष्मणने कुछ उद्धत चेष्टा करी, या दिशाविषें उपद्रव दृष्टि आवै है तातैं सावधान होय जो कुछ करना होय सो करहु । तब आप जानकीकूं उरसूं लगाय कहते भए– हे देवी ! भय मत करहु । ऐसा कहकर उठे, धनुष ऊपर दृष्टि धरी, तब ही मनुष्यनिके समूहके आगे स्त्रीजन सुन्दर गान करती देखीं, बहुरि निकट ही आईं, सुन्दर हैं अंग जिनके । स्त्रीनिकूं गावती अर नृत्य करती देख श्रीरामकूं विश्राम उपज्या, सीता सहित सुखसूं विराजे । स्त्रीजन सब आभूषण-मंडित अर अति मनोहर मंगल द्रव्य हाथ में लिये, हर्ष के भरे हैं नेत्र जिनके, रथसूं उतर कर आईं अर राजा शत्रुदमन भी बहुत कुटुम्ब-सहित श्रीराम के चरणारविंदकूं नमस्कार कर बहुत विनयसूं बैठ्या । लक्ष्मण अर जितपद्मा एक रथ विषें बैठे थे, सो लक्ष्मण महा विनयवान उतरकर श्रीरामचन्द्रकूं अर जानकीकूं शीश नवाय प्रणामकर दूर बैठ्या । श्रीराम राजा शत्रुदमन से कुशल प्रश्न वार्ता करि सुखसूं विराजे । रामके आगमन करि राजाने हर्षित होय नृत्य किया, महा भक्ति करि नगर में चलवे की विनती करी । श्रीराम, सीता अर लक्ष्मण एक रथ विषें विराजे । परम उत्साहसूं राजा के महल पधारे मानों वह राजमंदिर सरोवर ही है । स्त्रीरूप कमलनितैं भरया, लावण्यरूप जल है जा विषें, शब्द करते जे आभूषण तेई हैं सुन्दर पक्षी जहां । ये दोऊ वीर नवयौवन महाशोभा करि पूर्ण कौतक दिन सुखसूं विराजे, राजा शत्रुदमन करै है सेवा जिनकी । [illegible]

[illegible] अथानन्तर सर्व लोक के चित्तकूं आनन्दके करणहारे राम लक्ष्मण महाधीर वीर

सीता सहित अर्धरात्रिकूं उठ चाले, लक्ष्मणने प्रिय वचन कर जैसे बनमालाकूं धैर्य बँधाया हुता तैसे जितपद्माको धैर्य बंधाया, बहुत दिलासाकर आप श्रीरामके लार भए, नगर के सर्व लोक अर नृप को इनके चले जानेकी अति चिंता भई, धैर्य न रह्या। यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं, हे मगधाधिपति ! ते दोउ भाई जन्मांतर के उपार्जे जे पुण्य तिनकरि सब जीवनिके वल्लभ जहाँ जहाँ गमन करें तहाँ तहाँ राजा प्रजा सब लोक सेवा करें अर यह चाहैं कि न जावें तो भला। सब इन्द्रियनिके सुख अर महा मिष्ट अन्न-पानादि बिना ही यत्न इनकूं सर्वत्र सुलभ, जे पृथ्वीविषें दुर्लभ वस्तु हैं ते सब इनकूं प्राप्त होय। महा भाग्य भव्य जीव सदा भोगनितें उदास हैं, ज्ञानके अर विषयनिके वैर है। ज्ञानी ऐसा चिंतवन करै हैं कि इन भोगनिकर प्रयोजन नाहीं, ये दुष्ट नाशकूं प्राप्त होंय। या भांति यद्यपि भोगनिकी सदा निन्दा ही करै हैं, भोगनितें विरक्त ही हैं, दीप्ति करि जीत्या है सूर्य जिनने तथापि पूर्वोपार्जित पुण्य के प्रभावतें पहाड़के शिखरविषें निवास करै हैं। तहाँ हू नाना प्रकार सामग्री का संयोग होय है, जब लग मुनिपदका उदय नाहीं तब लग देवों समान सुख भोगवै हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं जितपद्मा का वर्णन करनेवाला अड़तीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३८॥

उनतालीसवां पर्व

(देशभूषण-कुलभूषण मुनिका कथानक)

अथानंतर ये दोऊ वीर महाधीर सीता सहित वनविषैं आए। कैसा है वन? नानाप्रकार के वृक्षनिकर शोभित, अनेक भांतिके पुष्पनिकी सुगंधिताकर महासुगंध, लतानिके मंडपनिकरि युक्त, तहां राम लक्ष्मण रमते रमते आए। कैसे हैं दोनों ? समस्त देवोपुनीत सामग्रीकर शरीरका है आधार जिनके, कहूंइक मूंगोंके रंग समान महासुन्दर वृक्षनिका कूंपल लेय श्रीराम जानकीके कर्णाभरण करै हैं, कहूंइक छोटा वृक्ष विषैं लग रही जो बेल ताकर हिंडोला बनाय दोऊ भाई झोटा देय जानकीकूं झुलावें हैं अर आनंदकी कथा कर सीताकूं विनोद उपजावें हैं। कभी सीता रामसों कहै है—हे देव ! यह बेलि यह वृक्ष कैसा महा-मनोज्ञ दीखै है। अर सीताके शरीरकी सुगंधताकर भ्रमर आय लगे हैं, सो दोऊ भाई उड़ावें हैं। या भांति नाना प्रकारके वनविषैं धीरे २ विहार करते दोऊ वीर, मनोज्ञ हैं चरित्र जिनके, जैसें स्वर्गके वनविषें देव रमैं तैसें रमते भए; अनेक देशनिकूं देखते अनुक्रम कर वंशस्थल नगर आए। ते दोऊ पुण्याधिकारी तिनकूं सीता के कारण थोड़ी दूर ही आवनेविषें बहुत दिन लागे, सो दीर्घकाल हू दुःख क्लेशका देनहारा न भया, सदा सुखरूप ही रह्या। नगरके निकट एक वंशधर नामा पर्वत देख्या मानों पृथ्वीकूं भेदकर निकस्या

है। जहाँ बाँसनिके अति समूह तिनकरि मार्ग विषम है, ऊँचे शिखरनिकी छायाकरि मानों सदा संध्याकूं धारै है अर निर्झरनों कर मानो हंसै है सो नगरतें राजा प्रजाकूं निकसती देख श्रीरामचंद्र पूछते भए—अहो कहा भयकर वगर तजो हो ? तब कोई कहता भया कि आज तीसरा दिन है, रात्रिके समय या पहाड़के शिखर विषैं ऐसी ध्वनि होय है जो अब तक कबहुं नाहीं सुनी, पृथ्वी कंपायमान होय है अर दसों दिशा शब्दायमान होय है, वृक्षनिकी जड़ उपड़ जाय है,सरोवरनिका जल चलायमान होय है। ता भयानक शब्दकर सर्व लोकनिके कान पीड़ित होय हैं, मानों लोहेके मुद्गरनि कर मारें। कोई एक दुष्ट देव जगतका कंटक हमारे मारवेके अर्थ उद्यमी होय या गिरिपर क्रीड़ाकरै है, ताके भयंकर संध्या समय लोक भागै हैं, प्रभात विषैं बहुरि आवैं हैं, पाँच कोस परे जाय रहैं हैं जहां वाकी ध्वनि न सुनिये। यह वार्ता सुनि सीता राम लक्ष्मण सों कहती भई कि जहां ये सर्व लोक जाय हैं वहाँ हम भी चालें; जे नीति शास्त्रके वेत्ता हैं अर देश कालकूं जानकर पुरुषार्थ करै हैं ते कदाचित् आपदाकूं नाहीं प्राप्त होय हैं। तब धीर हंस कर कहते भए—तू बहुत कायर है सो ये लोक जहां जाय हैं तहाँ तू भी जाहु, प्रभात सब आवैं तब तू आइगे। हम तो आज या गिरि पर रहेंगे। यह अत्यन्त भयानक कौनकी ध्वनि होय है सो देखेंगे यही निश्चय है। ये लोक रंक हैं, भय कर पशु बालकनिकूं लेय भागै हैं, हमकूं काहुका भय नाहीं। तब सीता कहती भई कि तिहारे हठकी कौन हरिवे समर्थ, तिहारा आग्रह दुर्निवार है। ऐसा कहकर वह पति के पीछे चाली, खिन्न भए हैं चरण जाके। पहाड़के शिखर पर ऐसी शोभै मानों निर्मल चंद्रकांति ही है। श्रीराम के पीछे और लक्ष्मणके आगे सीता कैसी सोहै मानों चंद्र-कांति अर इन्द्रनीलमणि के मध्य पुष्परागमणि ही है; ता पर्वतका आभूषण होती भई। राम लक्ष्मणकूं यह डर है जो यह कहीं गिरि से गिर न पड़े तातें याका हाथ पकड़ लिए जाय हैं। वे निर्भय पुरुषोत्तम,विषम हैं पाषाण जाके ऐसे पर्वतकूं उलंघकर सीतासहितशिखर पर जाय पहुचे। तहाँ देशभूषण कुलभूषणनामा दोय मुनि महाध्यानारूढ दोऊ भुजा लुंबाए कायोत्सर्ग आसन धरे खड़े, परम तेजकर युक्त समुद्र सारिखे गंभीर, गिरि सारिखे स्थिर, शरीर अर आत्माकूं भिन्न २ जानवहारे, मोहरहित नग्न स्वरूप यथाजातरूपके धरनहारे, कांतिके सागर, नवयौवन परम सुन्दर, महासंयमी, श्रेष्ठ हैं आकार जिनके, जिन-भाषित धर्मके आराधनहारे तिनकूं श्रीराम लक्ष्मण देखकर हाथ जोड़ नमस्कार करते भए अर बहुत आश्चर्यकूं प्राप्त भए; चित्तविषैं चितवते भए जो संसारके सर्व कार्य असार हैं, दुःख के कारण हैं। मित्र द्रव्य स्त्री सर्व कुटुम्ब अर इन्द्रिय जनित सुख यह सब दुःख ही है, एक धर्म ही सुखका कारण है। महा भक्तिके भरे दोऊ भाई परम हर्षकूं धरते, विनयकरि

नम्रीभूत हैं शरीर जिनके, मुनिनि के समीप बैठे। ताही समय असुर के आवमनतें महा भयानक शब्द भया। मायामई सर्प अर बिच्छू तिनकर दोनों मुनिवका शरीर वेष्टित होय गया, सर्प अति भयावक महा शब्द के करणहारे, काजल समान कारे, चलायमान है जिह्वा जिवकी अर अनेक वर्णके अति स्थूल बिच्छू तिनकरि मुनिनके अंग बेढ़े देख राम लक्ष्मण असुर पर कोपकूं प्राप्त भए। सीता भयकी भरी भरतारके अंगसूं लिपट गई। तब आप कहते भए—तू भय मत करै। याकूं धैर्य बंधाय दोऊ सुभट विकट जाय मुनिनके अंगतें साँप बिच्छू दूर किए, चरणारविंद की पूजा करी अर योगीश्वरनिकी भक्ति वंदना करते भए। श्रीराम वीणा लेय बजावते भए अर मधुर स्वरसूं गावते भए। अर लक्ष्मण गाव करते भए, गान विषें ये शब्द गाए—महा योगीश्वर धीर वीर मन वचन कायकर वंदनीक हैं, मनोज्ञ है चेष्टा जिवकी, देवविहू विषें पूज्य महाभाग्यवंत, जिनने अरहंत का धर्म पाया, जो उपमारहित अखंड महाउत्तम, तीन भुवन विषें प्रसिद्ध जे महामुनि, जिन-धर्मके धुरंधर, ध्यानरूप वज्रदंडकरि महामोहरूप शिलाकूं चूर्ण कर डारें अर जे धर्मरहित प्राणनिकूं अविवेकी जान दयाकर विवेकके मार्ग ल्यावें। परम दयालु आप तिरें, औरनिकूं तारें। या भांति स्तुति करि दोऊ भाई ऐसे गावें जो वनके तिर्यंचविहूके मन मोहित भए। अर भक्तिकी प्रेरी सीता ऐसा नृत्य करती भई जैसा सुमेरुके विषें शची नृत्य करै। जाना है समस्त संगीत शास्त्र जानै, सुन्दर लक्षणकूं धरे, अमोलक हार मालादि पहिरे, परम लीलाकरि युक्त दिखाई है प्रगटपणे अद्‌भुत नृत्यकी कला जानै, सुन्दर है बाहुलता जाकी, हावभावादि विषें प्रवीण, मंद मंद चरणनिकूं धरती, महा लयकूं लिए पावती, गीत अनु-सार भावकूं बतावती, अद्‌भुत नृत्य करती महाशोभायमान भासती भई। अर असुरकृत उपद्रवकूं मानों सूर्य देख न सक्या सो अस्त भया अर संध्या हू प्रगट होय जाती रही, आकाश विषें नक्षत्रविका प्रकाश भया, दसों दिशा विषें अंधकार फैल गया। ता समय असुर की माया करि महारौद्र भूतनिके गण हुडहुड हंसते भए, महा भयंकर हैं मुख जिनके; अर राक्षस खोटे शब्द करते भए अर मायामई स्यालिनी मुखतें भयानक अग्निकी ज्वाला काढती शब्द बोलती भई अर सैंकड़ों कलेवर भयकारी नृत्य करते भए, मस्तक भुजा जंघादितें अग्निवृष्टि होती भई। अर दुर्गंधसहित स्थूल बूंद लोहू की बरसती भई अर डाकिनी नग्न-स्वरूप हाडोंके आभरणपहिरे आवें, क्रूर हैं शरीर जिनके, हालें हैं स्तन जिनके, खड्ग है हाथ में जिनके, वे दृष्टिविषें आवती भई। अर सिंह व्याघ्रादिक कैसे मुख, तप्त लोह-समान लोचन, हस्तविषें त्रिशूल धारे, होंठ डसते, कुटिल हैं भौंह जिनकी, कठोर हैं शब्द जिनके; ऐसे अनेक पिशाच नृत्य करते भए। पर्वत की शिला कंपायमान भई अर भूकंप भया, इत्यादि चेष्टा असुर ने करी सो मुनि शुक्ल ध्यान विषें मग्न किछु न आवते

भए। ये चेष्टा देख जानकी भयकूं प्राप्त भई, पति के अंगसे लग गई। तब श्रीराम कहते भए—हे देवी ! भय मत करहु, सर्व विघ्नके हरणहारे जे मुनि के चरण तिनका शरण गहहु। ऐसा कहकर सीताकूं मुनिके पायन मेल आप लक्ष्मणसहित धनुष हाथविषें लिए महाबली मेघसमान गरजे, धनुषके चढ़ायवेका ऐसा शब्द भया जैसा वज्रपातका शब्द होय। तब वह अग्निप्रभ नामा असुर इन दोऊ वीरनिकूं बलभद्र नारायण जान भाग गया, बाकी सर्व चेष्टा विलाय गई। श्रीराम लक्ष्मण ने मुनिका उपसर्ग दूर किया, तत्काल देश-भूषण, कुलभूषण मुनिनिको केवल ज्ञान उपज्या, चतुरनिकायके देव दर्शनकूं आए, विधिपूर्वक नमस्कार कर यथायोग्य बैठे। केवलज्ञान के प्रतापतें केवली के रात-दिन का भेद न रहा। भूमिगोचरी अर विद्याधर केवलीकी पूजाकर यथायोग्य बैठे, सुर नर विद्याधर सब ही धर्मोपदेश श्रवण करते भए। राम लक्ष्मण हर्षित चित्त सीता सहित केवली की पूजाकर हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछते भए—हे भगवान ! असुर ने आपकूं कौन कारण उपसर्ग किया अर तुम दोऊ विषें परस्पर अति स्नेह काहे तें भया। तब केवली की दिव्यध्वनि होती भई—पद्मिनी नामा नगरी विषें राजा विजयपर्वत, गुणरूप धान्यके उपजिवेका उत्तम क्षेत्र, ताके धारणी नामा स्त्री अर अमृतसुर नामा दूत, सर्वशास्त्र विषें प्रवीण, राज-काज विषें निपुण, लोक रीति को जानें अर याकूं गुण ही प्रिय, ताके उपभोगा नामा स्त्री, ताकी कुक्षि विषें उपजे उदित मुदित नामा दोय पुत्र, व्यवहार में प्रवीण सो अमृतसुर नामा दूतकूं राजाने कार्य निमित्त बाहिर भेज्या सो वह स्वामी भक्त वसुभूति मित्र सहित चला। वसुभूति पापी दुष्ट चित्त याकी स्त्रीसूं आसक्त सो रात्रिविषें अमृतसुरको खड्ग से मार नगरीमें वापिस आया, लोगनितें कही—मोहि वापिस भेज दिया है अर ताकी स्त्री उपभोगा, तासे यथार्थ वृत्तांत कहा। तब वह कहती भई कि मेरे दोऊ पुत्रनिको मारि, जो हम दोऊ निश्चित तिष्ठें। सो यह वार्ता उदितकी बहूने सुनी अर कहा हुवा सर्व वृत्तांत उदित से कहा। यह बहू सासके चरित्रकूं पहिले भी जानती हुती, याकों वसुभूतिकी बहूने सब समाचार कहे हुते जो परदाराके सेवनतें पतिसे विरक्त हुती। सो उदित ने सब बातोंसे सावधान होय मुदितको भी सावधान किया। अर वसुभूति का खड्ग देख पिताके मरणका निश्चयकर उदितने वसुभूति को मारा सो पापी मरकर म्लेच्छ की योनिकूं प्राप्त भया। ब्राह्मण हुता सो कुशीलके अर हिंसाके दोषतें चांडालका जन्म पाया। एक समय मतिवर्धननामा आचार्य, मुनिनिविषें महातेजस्वी, पद्मिनी नगरी आए सो वसन्ततिलकनामा उद्यानमें संघसहित विराजे अर आर्यिकानिकी गुरानी अनुधरा धर्म ध्यान विषें तत्पर सोहू आर्यिकानिके संघसहित आई सो नगरके समीप उपवनविषें तिष्ठी। अर जा वनमें मुनि विराजे हुते ता वनके अधिकारी आय राजासूं हाथ जोड़ विनती

करते भए—हे देव ! आगेको या पीछे को कहो संघ कौन तरफ जावै ? तब राजा कही, जो कहा बात है । ते कहते भए—उद्यानविषें मुनि आए हैं, जो मनै करें तो डरें, जो नहीं मनै करें तो तुम कोप करो; यह हमको बड़ा संकट है । स्वर्गके उद्याव समान यह वन है, अब तक काहूको याविषें आने न दिया परन्तु मुनिनिका कहा करें । ते दिगम्बर देवनिकर न निवारे जावें, हम सारिखे कैसे निवारें? तब राजा कही—तुम मत मनै करो, जहां साधु विराजै सो स्थानक पवित्र होय है । सो राजा बड़ी विभूतिसूं मुनिनिके दर्शनको गया । ते महाभाग्य उद्यान में विराजे हुते, वनकी रजकरि धूसरे हैं अंग जिनके, मुक्ति योग्य जो क्रिया ताकरि युक्त, प्रशांत हैं हृदय जिनके, कैयक कायोत्सर्ग धरे दोनों भुजा लंबाय खड़े हैं, कैयक पद्मासन धरे विराजे हैं, बेला तेला चौला पंच उपवास दस-उपवास पक्ष-मासादि अनेक उपवासनिकरि शोषा है अंग जिनने, पठन-पाठन विषें सावधान, भ्रमर समान मधुर हैं शब्द जिनके, शुद्ध स्वरूप विषें लगाया है चित्त जिनने, सो राजा ऐसे मुनिनिकूं दूरसे देख गर्व रहित होय गजतें उतर सावधान होय सर्व मुनिनिको नमस्कार कर आचार्य के निकट आय तीन प्रदक्षिणा देय प्रणामकर पूछता भया—हे नाथ ! जैसी तिहारे शरीर में दीप्ति है तैसे भोग नाहीं । तब आचार्य कहते भए कि यह कहां बुद्धि तेरी, तू शूरवीर याकूं स्थिर जानै है, यह बुद्धि संसारकी बढ़ावनहारी है, जैसे हाथीके कान चपल तैसा जीतव्य चपल है, यह देह कदली के थंभ समान असार है अर ऐश्वर्य स्वप्न तुल्य है, घर कुटुम्ब पुत्र कलत्र बांधव सब असार हैं, ऐसा जानकर या संसारकी माया विषें कहा प्रीति ?यह संसार दुःखदायक है । यह प्राणी अनेक बार गर्भवास के संकट भोगवै है । गर्भवास नरक तुल्य महा भयानक, दुर्गंध कृमिजाल कर पूर्ण, रक्तश्लेषमादिका सरोवर, महा अशुचि कर्दमका भरा है; यह प्राणी मोहरूपअंधकार करि अंध भया गर्भवाससूं नहीं डरै है । धिक्कार है या अत्यन्त अपवित्र देहकूं, सर्व अशुभका स्थानक, क्षणभंगुर, जाका कोई रक्षक नाहीं । जीव देहकूं पोषै, वह याहि दुःख देय सो महा कृतघ्न, नसा-जालकर बेढ़ा, चर्मकरि ढका, अनेक रोगनिका पुंज, जाके आगमनकरि ग्लानिरूप; ऐसे देह में जे प्राणी स्नेह करै हैं ते ज्ञान रहित अविवेकी हैं । तिनका कल्याण कहां ते होय ? अर या शरीर विषें इन्द्रिय चोर बसै हैं । ते बलात्कार धर्मरूप धनकूं हरै हैं । यह जीवरूप राजा कुबुद्धिरूप स्त्रीसूं रमै है अर मृत्यु याकूं अचानक ग्रसा चाहै है । मनरूप माता हाथी विषयरूप वन-विषें क्रीड़ा करै है । ज्ञानरूप अंकुशतें याहि वशकर वैराग्य रूप थंभसूं विवेकी बांधै हैं । यह इन्द्रियरूप तुरंग मोहरूप पताकाकूं धरे, परस्त्रीरूप हरित तृणनिविषें महा लोभकूं धरते शरीररूप रथकूं कुमार्ग में पाड़ैं हैं । चित्तके प्रेरे चंचलता धरै हैं तातें चित्तको वश करना योग्य है । तुम संसार, शरीर, भोगनितें विरक्त होयभक्तिकर जिनराजकूं नमस्कार

करहु, निरन्तर सुमरहु, जाकरि निश्चयतैं संसार-समुद्रकूं तिरहु। तप-संयमरूप बाणनिकरि मोहरूप शत्रुको हन लोकके शिखर अविनाशीपुरका अखंड राज्य करहु, निर्भय निजपुरविषैं निवास करहु। यह मुनिके मुखतैं वचन सुनकर राजा विजयपर्वत सुबुद्धि राज्यतज मुनि भया। अर वे दूतके पुत्र दोऊ भाई उदित मुदित जिनवाणी सुन मुनि होय यहीविषैं विहार करते भए। सम्मेदशिखरकी यात्राकूं जाते हुते सो काहू प्रकार मार्ग भूल वनविषैं जाय पड़े। वह वसुभूति विप्रका जीव महारौद्र भील भया हुता तानैं देखे। अति क्रोधायमान होय कुठार-समान कुवचन बोले, इनकूं खड़े राखे अर मारवेकूं उद्यमी भया। तब बड़ा भाई उदित मुदितसे कहता भया—हे भ्रात! भय मत करहु, क्षमा ढालको अंगीकार करहु। यह मारवेको उद्यमी भया है सो हमने बहुत दिन तपसूं क्षमा का अभ्यास किया है सो अब दृढ़ता राखनी। यह बचन सुन मुदित बोला कि हम जिनमार्गके सरधानी, हमकूं कहा भय, देह तो विनश्वर ही है अर यह वसुभूतिका जीव है जो पिताके बैरतैं माराहुता। परस्पर दोऊ मुनि ए वार्ता कर शरीरका ममत्व तज कायोत्सर्ग धार तिष्ठे। वह मारवे कों आया सो म्लेच्छ कहिए भील ताके पति ने मनै किया, दोऊ मुनि बचाए। यह कथा सुनि रामने केवलीसूं प्रश्न किया—हे देव! वाने बचाए सो वासूं प्रीतिका कारण कहा? तब केवली की दिव्यध्वनिविषैं उत्तर भया कि एक यक्षस्थान नामग्राम तहाँ सुरप अर कर्षक दोऊ भाई हुते। एक पक्षीकूं पारधी जीवता पकड़ ग्राममें लाया सो इन दोऊ भाईनिने द्रव्य देय छुड़ाया, सो पक्षी मरकर म्लेच्छपति भया अर वे सुरप कर्षक दोऊ वीर उदित मुदित भए। ता परोपकारकर वाने इनको बचाए। जो कोई जेती नेकी करै है सो वह भी तासूं नेकी करै है अर जो काहूसूं बुरी करै हे सो वह भी वासूं बुरी करै है। यह संसारी जीवनकी रीति है तातैं सबनिका उपकार ही करहु। काहू प्राणी सूं वैर न करना। एक जीवदया ही मोक्षका मार्ग है, दया बिना ग्रन्थनिके पढ़वेकरि कहा? एक सुकृत ही सुखका कारण सो करना। वे उदित मुदित मुनि उपसर्गतैं छूट सम्मेदशिखरकी यात्राकूं गए, अन्य हू अनेक तीर्थनिकी यात्रा करी। रत्नत्रयका आराधनकरि समाधितैं प्राण तज स्वर्गलोक गए। अर वह वसुभूतिका जीव जो म्लेच्छ भया हुता सो अनेक कुयोनिविषैं भ्रमण कर मनुष्य देह पाय तापस व्रत धर, अज्ञान तपकर मर ज्योतिषी देवनि विषैं अग्निकेतु नामा क्रूर देव भया। अर भरतक्षेत्र के विषम अरिष्टपुर नगर, जहाँ राजा प्रियव्रत महा भोगी, ताके दो रानी महा गुणवती—एक कनकप्रभा दूजी पद्मावती, सो वे उदित मुदितके जीव स्वर्गसूं चयकर पद्मावती रानीके रत्नरथ विचित्ररथ नामा पुत्र भए अर कनकप्रभाके वह ज्योतिषी देव चयकर अनुधर नामा पुत्र भया। राजा प्रियव्रत पुत्रकूं राज्य देय भगवानके चैत्यालयविषैं छह दिनका अनशन धार देह त्याग स्वर्गलोक गया।

अथानंतर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा लक्ष्मीसमान सो रत्नरथ ने परणी। ताकी अभिलाषा अनुधरके हुती सो रत्नरथतैं अनुधरका पूर्व जन्ममें तो वैर हुता, बहुरि नया वैर उपजा सो अनुधर रत्नरथको पृथ्वी उजाड़ने लगा; तब रत्नरथ अर विचित्ररथ दोऊ भाईनिवे अनुधरकूं युद्ध में जीत देशतैं निकाल दिया सो देशतैं निकासनतैं अर पूर्व वैरतैं महा क्रोधकूं प्राप्त होय जटा अर वक्कल का धारी तापसी भया, विषवृक्ष समान कषाय-विषका भरया। अर रत्नरथ विचित्ररथ महातेजस्वी चिरकाल राजकर मुनि होय तपकर स्वर्गविषैं देव भए। महासुख भोग तहाँतैं चयकर सिद्धार्थ नगर विषैं राजा क्षेमंकर रानी विमला तिनके महासुन्दर देशभूषण कुलभूषण नामा पुत्र होते भए। सो विद्या पढ़ने के अर्थ घरमें उचित क्रीड़ा करते तिष्ठे। ता समय एक सागरघोष नामा पंडित अनेक देशनिमें भ्रमण करता आया, सो राजा पंडितकूं बहुत आदरसूं राखा अर ये दोऊ पुत्र पढ़नेकूं सौंपे सो महा विनयकर संयुक्त सर्वकला सीखीं; केवल एक विद्या-गुरु को जानें या विद्या को जानें, और कुटुम्ब में काहूको न जानें। तिनके एक विद्याभ्यासही का कार्य, विद्या-गुरुतैं अनेक विद्या पढ़ीं। सर्व कलाके पारगामी होय पितापै आए सो पिता इनकूं महाविद्वान सर्व कला निपुण देखकर प्रसन्न भया। पंडितको मनवाँछित दान दिया। यह कथा केवली रामसूं कहैं हैं कि वे देशभूषण कुलभूषण हम हैं। सो कुमार अवस्था में हमने सुनी जो पिताने हमारे विवाहके अर्थ राजकन्या मंगाई हैं, यह वार्ता सुनकर परम विभूतिके धरे तिनकी शोभा देखवेको नगर बाहिर जायवेकै उद्यमी भए। सो हमारी बहिन कमलोत्सवा कन्या झरोखेमें बैठी नगरीकी शोभा देखती हुती, सो हम तो विद्याके अभ्यासी कबहू काहूको न देखा न जाना, हम न जानें कि यह हमारी बहिन है। अपनी मांग-जान विकाररूप चित्त भया, दोऊ भाईनिके चित्त चले, दोऊ परस्पर मन विषैं विचारते भए कि याहि मैं परणूं, दूजा भाई परणा चाहै तो ताहि मारूं ? सो दोऊके चित्तविषैं विकारभाव अर निर्दयी भाव भया। ताही समय वन्दीजनके मुख ऐसा शब्द निकसा कि राजा क्षेमंकर विमला रानी सहित जयवंत होवे, जाके दोनों पुत्र देवनि समान अर यह झरोखे विषैं बैठी कमलोत्सवा इनकी बहिन सरस्वती समान, दोऊ वीर महागुणवान अर बहिन महा गुणवंती ऐसी संतान पुण्याधिकारीनिके ही होय है। जब यह वार्ता हमने सुनी तब मनविषैं विचारी, अहो देखो मोह कर्म की दुष्टता, जो हमारे बहिनकी अभिलाषा उपजी ? यह संसार असार महा दुःख का भरा, हाय जहाँ ऐसा भाव उपजै, पापके योग करि प्राणी नरक जांय अर वहाँ महादुःख भोगैं, यह विचारकर हमारे ज्ञान उपजा सो वैराग्यको उद्यमी भए। तब माता पिता स्नेहसूं व्याकुल भए। हमने सबसूं ममत्व तज दिगम्बर दीक्षा आदरी, आकाशगामिनी रिद्धि सिद्ध भई। नाना प्रकार के जिन-तीर्थादिविषैं विहार किया,

तप ही है धन जिनके । अर माता पिता राजा क्षेमंकर, पिछले भी भवका पिता, सो हमारे शोकरूप अग्निकर तप्तायमान हुवा सर्व आहार तज मरणको प्राप्त भया सो गरुडेन्द्र भया। भवनवासी देवविविषें गरुड़कुमार जातिके देव तिनका अधिपति, महासुन्दर, महापराक्रमी, महालोचन नाम सो आयकर यह देवविकी सभाविषें बैठा है। अर वह अनुधर तापसी विहार करता कौमुदी नगरी गया, अपने शिष्यनिके समूह करि बेढ़ा। तहां राजा सुमुख, ताके रानी रतिवती परम सुन्दर, सैंकड़ा रानिवि विषें प्रधान अर ताके एक मदना नृत्यकारिणी मानों मदनकी पताका ही है, अति सुन्दर रूप, अद्भुत चेष्टाकी धरणहारी, ताने साधुदत्त मुनिके समीप सम्यग्दर्शन ग्रह्या, तबतें कुगुरु कुदेव कुधर्मकूं तृणवत् जाने। ताके निकट एक दिन राजा कही कि यह अनुधर तापसी महातपका निवास है। तब मदनाने कही—हे नाथ! अज्ञानी का कहा तप, लोक विषें पाखण्डरूप है। यह सुनकर राजाने क्रोध किया अर कहा कि तू तपस्वी की निंदा करै है। तब वाने कही कि आप कोप मत करहु, थोड़े ही दिनविषें याकी चेष्टा दृष्टि पड़ेगी। ऐसा कहकर घर जाय अपनी नागदत्ता नामा पुत्रीको सिखाय तापसीके आश्रम पठाई। सो वह देवांगना-समान परम चेष्टा की धरणहारी महा विभ्रम रूप तापसीको अपना शरीर दिखावती भई, सो याके अंग उपंग महा सुन्दर निरखकर अज्ञानी तापसीका मन मोहित भया अर लोचन चलायमान भए, जा अंग पर नेत्र गए वहां ही मन बंध गया, काम-बाणनिकरि तापसी पीड़ित भया। व्याकुल होय देवांगना समान जो यह कन्या ताके समीप आय पूछता भया कि तू कौन है अर यहां कहां आई है? संध्याकालविषें सब ही लघु वृद्ध अपने स्थानकविषें तिष्ठें हैं। तू महासुकुमार अकेली वनमें क्यों विचरै है? तब वह कन्या मधुर शब्दकर याका मन हरती संती दीनता को लिये बोली, चंचल नीलकमल समान हैं लोचन जाके, हे नाथ! दयावान, शरणागत-प्रतिपाल, आज मेरी माताने मोहि घरते निकास दई,सो अब मैं तिहारे भेषकर तिहारे स्थानक रहना चाहूं हूं, तुम मो पर कृपा करहु। रात दिन तिहारी सेवा कर मेरा यह लोक परलोक सुधरेगा। धर्म अर्थ काम इनविषें कौनसा पदार्थ है जो तुम विषें न पाईए। तुम परम निधान हो, मैंने पुण्यके योगतें तुम्हें पाया। या भांति जब कन्याने कही, तब याका मन अनुरागी जान विकल तापसी कामकर प्रज्वलित हुवा बोला—हे भद्रे! मैं कहा कृपा करूं, तू कृपाकर प्रसन्न होहु, मैं जन्मपर्यन्त तेरी सेवा करूंगा; ऐसा कहकर हाथ चलावने का उद्यम किया, तब कन्या अपने हाथसूं मनैकर आदर सहित कहती भई—हे नाथ! ऐसा करना उचित नाहीं, मैं कुमारी कन्या, मेरी माता के घर जायकर पूछो, घर भी निकट ही है। जैसी मोपर तिहारी करुणा भई है, तैसें मेरी माँ को प्रसन्न करहु। वह तुमको देवेगी, तब जो इच्छा होय सो करियो? ये

कन्या के वचन सुनकर मूढ़ तापसी व्याकुल होय तत्काल कन्या की लार रात्रिको ताकी माता के पास आया, कामकर व्याकुल हैं सर्व इन्द्रियाँ जाकी; जैसें माता हाथी जल के सरोवर विषें पैठे तैसें तापसी ने नृत्यकारिणी के घर विषें प्रवेश किया। गौतमस्वामी राजा श्रेणिक से कहै हैं कि हे राजन् ! काम कर ग्रसा हुवा प्राणी न स्पर्शे, न स्वादे, न सूंघै, न देखै, न सुनै, न जानै, न डरै, अर न लज्जा करै, महामोहसे निरंतर कष्टकूं प्राप्त होय है। जैसें अंधा प्राणी सर्पनिके भरे कूपमें पड़ै तैसें कामांध जीव स्त्रीके विषयरूप विषम कूपमेंपड़े। सो वह तापसी नृत्यकारिणीके चरण में लोट अति आधीन होय कन्याकूं याचता भया। तब ताने तापसी को बाँध राखा। राजा को समस्या हुती सो राजा ने रात्रि को आय कर तापसी बंधा देखा। प्रभात तिरस्कारकरि निकास दिया, सो अपमान कर लज्जायमान महा दुःख को धरता संता पृथ्वी विषें भ्रमणकर मूवा, अनेक कुयोनिविषें जन्म मरण किए बहुरि कर्मानुयोगकर दरिद्री के घर उपजा। जब यह गर्भ में आया तब ही याकी माता ने याके पिता को क्रूर वचन कहकर कलह किया सो उदास होय विदेश गया अर याका जन्म भया। बालक अवस्था हुती तब भीलनि देश के मनुष्य बन्द किये सो याकी माता भी बन्दी में गई, सब कुटुम्ब-रहित यह परम दुःखी भया। कई एक दिन पीछे तापसी होय अज्ञान तप कर ज्योतिषी देवनि विषें अग्निप्रभ नामा देव भया। अर एक समय अनन्तवीर्य केवलीकूं धर्मविषें निपुण जो शिष्य तिनने पूछया, कैसे हैं केवली ? चतुरनिकायके देव अर विद्याधर तथा भूमिगोचरी तिनकरि सेवित। हे नाथ! मुनिसुव्रतनाथ के मुक्ति गए पीछे तुम केवली भए, तुम समान संसार का तारक कौन होयगा ? तब तिनने कही कि देशभूषण कुलभूषण होवेंगे, केवलज्ञान अर केवलदर्शन के धरणहारे, जगत् विषें सार जिनका उपदेश ताको पायकर लोक संसार समुद्रकूं तिरेंगे। ये वचन अग्निप्रभ ने सुने सो सुनकर अपने स्थानक गया। इन दिननिमें कुअवधि कर हमकूं या पर्वतविषें तिष्ठे जान 'अनन्तवीर्य केवलीका वचन मिथ्या करूं' ऐसा गर्व धर पूर्व वैर कर उपद्रव करनेकूं आया। सो तुमकूं बलभद्र नारायण जान भयकर भाग गया। हे राम ! तुम चरम-शरीरी तद्भव मोक्षगामी बलभद्र हो अर लक्ष्मण नारायण है ता सहित तुमने सेवा करी अर हमारे घातिया कर्म के क्षय से केवलज्ञान उपज्या। या प्रकार प्राणीनिके वैरका कारण सर्व वैरानुबन्ध है ऐसा जानकर अर जीवनिके पूर्व भव श्रवण कर हे प्राणी हो ! राग द्वेष तज निश्चल होवो। ऐसे महा पवित्र केवलीके वचन सुन सुर नर असुर बारंबार नमस्कार करते भए अर भव दुःखतैं डरे। अर गरुडेंद्र परमहर्षित होय केवलीके चरणारविंदकूं नमस्कार कर महा स्नेहकी दृष्टि विस्तारता, लहलहाट करै हैं मणि-कुण्डल जाके, रघुवंशमें उद्योत करणहारे जे राम तिनसों कहता भया—हे भव्योत्तम ! तुम मुनिन की

भक्ति करी सो मैं अति प्रसन्न भया। ये मेरे पूर्व भव के पुत्र हैं। जो तुम मांगो सो मैं देहूं। तब श्रीरघुनाथ क्षणएक विचार कर बोले कि तुम देवनिके स्वामी हो, कभी हमपै आपदा परै तो हमें चितारियो, साधुनि की सेवा के प्रसाद से यह फल भया जो तुम सारिखों से मिलाप भया। तब गरुडेन्द्र ने कही—तुम्हारा वचन मैं प्रमाण किया, जब तुमकूं कार्य पड़ेगा तब मैं तिहारे निकट ही हूं। ऐसा कहा तब अनेक देव मेघकी ध्वनि समान वादित्रनिके नाद करते भए। साधुनिके पूर्व भव सुन कईएक उत्तम मनुष्य मुनि भए, कईएक श्रावक के व्रत धारते भए। वे देशभूषण कुलभूषण केवली जगत् पूज्य सर्व संसार के दुःखसे रहित नगर ग्राम पर्वतादि सर्व स्थान विषें विहार करते धर्मका उपदेश देते भए। उन दोऊ केवलिनिके पूर्व भवका चरित्र जे निर्मल स्वभाव के धारक भव्य जीव श्रवण करें, वे सूर्य समान तेजस्वी पापरूप तिमिरकूं शीघ्र हरें।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें
देशभूषण कुलभूषण केवलो का चरित्र वर्णन करनेवाला उनतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥३९॥

चालीसवां पर्व

(रामगिरि पर श्रीरामचंद्र का पदार्पण)

अथानन्तर केवली के मुखतें रामचंद्र को चरम-शरीरी कहिये तद्भव-मोक्षगामी सुनकर सकल राजा जय जय शब्द कहकर प्रणाम करते भए। अर वंशस्थलपुर का राजा सुरप्रभ महा निर्मल-चित्त राम लक्ष्मण सीता की भक्ति करता भया। महलनिके शिखर की कांतिकर उज्ज्वल भया है आकाश जहां, ऐसा जो नगर, तहां चलनेकी राजा प्रार्थना करी परन्तु रामने न मानी; वंशगिरिके शिखर हिमाचलके शिखर समान सुन्दर जहां नलिनी वनविषें महारमणीक विस्तीर्ण शिला तहां आय हंस समान विराजे। कैसा है वह वन ? नाना प्रकारके वृक्ष अर लतानिकरि पूर्ण अर नाना प्रकारके पक्षी करै हैं नाद जहां, सुगन्ध पवन चालै है, भांति भांतिके फल पुष्प तिनकरि शोभित अर सरोवरनिमें कमल फूल रहे हैं, स्थानक अति सुन्दर, सर्व ऋतु की शोभा जहां बन रही है, शुद्ध आरसी के तल समान मनोज्ञभूमि, पांच वर्णके रत्ननि करि शोभित, जहां कुन्द, मौलसिरी, मालती, स्थलकमल, जहां अशोक वृक्ष, नागवृक्ष इत्यादि अनेक प्रकार के सुगन्ध वृक्ष फूल रहे हैं, तिनके मनोहर पल्लव लहलहाट करै हैं, तहां राजा की आज्ञा कर महा भक्तिवन्त जे पुरुष तिनने श्रीरामकूं विराजने के निमित्त वस्त्रनिके महा मनोहर मण्डप बनाए; सेवक जन महा चतुर सदा सावधान, अति आनंद के करणहारे, मंगलरूप वाणीके बोलनहारे, स्वामीकी भक्तिविषें तत्पर, तिनने बहुत तरहके चौड़े ऊंचे वस्त्रनिके मण्डप बनाए, नाना

प्रकारके चित्राम हैं जिनमें अर जिनपर ध्वजा फरहरै हैं, मोतिन की माला जिनके लटकै हैं, क्षुद्र घंटिकानिके समूह कर युक्त अर जहाँ मणिनिकी झालर लूंब रही है, महा देदीप्यमान सूर्यकी सी किरण धरे अर पृथ्वीपर पूर्ण कलश थापे हैं अर छत्र चमर सिंहासनादि राज.चिन्ह तथा सर्व सामग्री धरे हैं, अनेक मंगल द्रव्य धरे हैं;ऐसे सुन्दर स्थलविषैं सुखसों तिष्ठें हैं। जहाँ जहाँ रघुनाथ पाँव धरें तहाँ पृथ्वीपर राजा अनेक सेवा करें। शय्या आसन, मणि सुवर्णके नाना प्रकारके उपकरण अर इलायची, लवंग ताम्बूल, मेवा मिष्टान्न तथा श्रेष्टवस्त्र अद्भुत आभूषण अर महा सुगन्ध नाना प्रकारके भोजन दधि दुग्ध घृत भाँति-भाँति अन्न इत्यादि अनुपम वस्तु लावैं; या भाँति सब ठौर सब जन श्रीरामकूं पूजें, वंशगिरि पर श्रीराम लक्ष्मण सीताके रहिवे को मण्डप रचे तिनमें किसी ठौर गीत कहीं नृत्य कहीं वादित्र बाजै हैं। कहीं सुकृत की कथा होय है अर नृत्यकारिणी ऐसा नृत्य करैं मानों देवांगना ही हैं, कहीं दान बटै। ऐसे मन्दिर बनाए जिनका कौन वर्णन कर सकै? जहां सर्व सामग्री पूर्ण, जो याचक आवें सो विमुख न जाय। दोनों भाई सब आभरणनिकरि युक्त सुन्दर वस्त्र धरे मनवाँछित दानके करणहारे, महा यशकर मंडित अर सीता परम सौभाग्यकी धरणहारी, पापके प्रसंगसूं रहित, शास्त्रोक्त रीतिकर रहै, ताकी महिमा कहां तक कहिए। अर वंशगिरिविषैं श्रीरामचंद्रने जिनेश्वरदेवके हजारों अद्भुत चैत्यालय बनवाए, महादृढ़ हैं स्तंभ जिनके, योग्य है लंबाई चौड़ाई ऊँचाई जिनकी अर सुन्दर झरोखानिकरि शोभित, तोरण सहित हैं द्वार जिनके, कोट अर खाई कर मंडित अर सुन्दर ध्वजानिकरि शोभित, वंदनाके करणहारे भव्यजीव तिनके मनोहर शब्द संयुक्त, मृदंग वीणा बांसुरी झालरी झांझ मंजीरा शंख भेर इत्यादि वादित्रनिके शब्दकर शोभायमान, निरंतर आरंभिए हैं महाउत्सव जहाँ, ऐसे रामके रचे रमणीक जिनमंदिर तिनकी पंक्ति शोभती भई। तहाँ सर्व लक्षणनि कर संयुक्त, सर्व लोकनिकरि पूज्य, पंच वर्णके जिनेन्द्र प्रतिबिंब विराजते भए। एक दिन श्रीराम कमललोचन लक्ष्मणसूं कहते भए—हे भाई! यहां अपने तईं बहुत दिन बीते अर सुखसूं या गिरि पर रहे, श्रीजिनेश्वरके चैत्यालय बनायवेकर पृथ्वी में निर्मलकीर्ति भई। अर या वंशस्थलपुर के राजा ने अपनी बहुत सेवा करी, अपने मन बहुत प्रसन्न किए। अब यहाँ हो रहैं तो कार्यकी सिद्धि नाहीं अर इन भोगनिकर मेरा मन प्रसन्न नाहीं। ये भोग रोगके समान हैं—ऐसा ही जानूं हूँ तथापि ये भोगनिके समूह मोहि क्षणमात्र नाहीं छोड़े हैं। सो जब तक संयम का उदय नाहीं तब तक ये बिना यत्न आय प्राप्त होय हैं। या भव विषैं जो कर्म यह प्राणी करै है ताका फल परभव में भोगवै है अर पूर्व उपार्जे जे कर्म तिनका फल वर्तमान काल विषैं भोगै है। या स्थलमें निवास करते अपने सुख संपदा है परंतु जे दिन जांयहैं वे फेर न आवें। नदीका वेग अर

आयुके दिन अर यौवन गए फेर न आवें। या कर्णरवा नाम नदीके समीप दंडक वन सुनिये है, वहां भूमिगोचरनिकी गम्यता नाहीं अर वहां भरतकी आज्ञाका हू प्रवेश नाहीं, वहां समुद्रके तट एक स्थान बनाय निवास करेंगे। यह राम की आज्ञा सुन लक्ष्मण ने विनती करी—हे नाथ ! आप जो आज्ञा करोगे सोई होयगा। ऐसा विचार दोऊ वीर महाधीर इन्द्र-सारिखे भोग भोगि वंशगिरितें सीता सहित चाले। राजा सूरप्रभ वंशस्थलपुर का पति लार चाल्या सो दूर तक गया। आप विदा किया सो मुश्किलसे पीछे बाहुडा, महाशोकवंत अपने नगर में आया। श्रीराम का विरह कौन कौनको शोकवंत न करै। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे राजन् ! वह वंशगिरि बड़ा पर्वत, जहाँ अनेक धातु सो रामचंद्रने जिनमंदिरनिकी पंक्ति कर महा शोभायमान किया। कैसे हैं जिनमंदिर? दिशानिके समूहकूं अपनी कांति करि प्रकाशरूप करैं हैं, ता गिरिपर श्रीरामने परम सुन्दर जिनमन्दिर बनाए सो वंशगिरि रामगिरि कहाया; या भाँति पृथ्वीपर प्रसिद्ध भया, रवि समान है प्रभा जाकी।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं रामगिरि का वर्णन करने वाला चालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४०॥

इकतालीसवां पर्व

(जटायु पक्षी का उपाख्यान)

अथानंतर राजा अनरण्यके पोता, दशरथके पुत्र राम लक्षमण सीता सहित दक्षिण दिशाके समुद्रकूं चाले। कैसे हैं दोऊ भाई ? महा सुखके भोक्ता। नगर ग्राम तिनकर भरे जे अनेक देश तिनको उलंघ कर महा वन विषै प्रवेश करते भए जहाँ अनेक मृगनिके समूह हैं अर मार्ग सूझै नाहीं अर उत्तम पुरुषनिकी वस्ती नाहीं। जहां विषम स्थानक सो भील भी विचर न सकैं, नाना प्रकारके वृक्ष अर बेल तिनकर भरया महाविषम अति अन्धकाररूप जहां पर्वतनिकी गुफा गंभीर निर्झरने झरैं हैं, ता वनविषैं जानकीके प्रसंगतैं धीरे धीरे एक कोस रोज चालैं। दोऊ भाई निर्भय अनेक क्रीड़ा करणहारे नर्मदा नदी पहुँचे। जाके तट महारमणीक प्रचुर तृणनिके समूह अर सघनता धरे महा छायाकारी अनेक वृक्ष फल पुष्पादिकरि शोभित अर याके समीप पर्वत, ऐसे स्थानकूं देख दोऊ भाई वार्ता करते भए—यह वन अति सुन्दर अर नदी सुन्दर, ऐसा कहकर रमणीक वृक्षकी छाया विषैं सीता सहित तिष्ठे। क्षणएक तिष्ठकर तहांके रमणीक स्थान निरख कर जल क्रीड़ा करते भए। बहुरि महा मिष्ट आरोग्य पक्व फल फूलनिके आहार बनाए, सुखकी है कथा जिनके, तहां रसोईके उपकरण अर वासन माटीके अर बांसनिके नाना प्रकार तत्काल बनाए, महास्वादिष्ट सुन्दर सुगंध आहार-वनके धान सीताने तैयार किए। भोजनके समय

दोऊ वीर मुनिके आयवेके अभिलाषी द्वारापेक्षण को खड़े, ता समय दो चारण मुनि आए, सुगुप्ति अर गुप्ति हैं नाम जिनके, ज्योति-पटलकर संयुक्त है शरीर जिनका अर सुन्दर है दर्शन जिनका, मति श्रुति अवधि तीन ज्ञान विराजमान, महाव्रतके धारक, परम तपस्वी, सकल वस्तुकी अभिलाषा रहित, निर्मल हैं चित्त जिनके, मासोपवासी, महाधीर वीर, शुभ चेष्टाके धरणहारे, नेत्रनिकूं आनन्दके कर्ता, शास्त्रोक्त आचार कर संयुक्त है शरीर जिनका, सो आहारकूं आए सो दूरतें सीताने देखे। तब महाहर्षके भरे हैं नेत्र जाके अर रोमांचकर संयुक्त है शरीर जाका, पतिसों कहती भई—हे नाथ ! हे नर श्रेष्ठ ! देखहु ! देखहु ! तप कर दुर्बल शरीर दिगंबर कल्याणरूप चारण-युगल आए। तब राम कही कि हे प्रिये! हे पंडिते ! हे सुन्दर मूर्त्ते ! वे साधु कहाँ हैं ? हे रूप आभरणकी धरणहारी, धन्य हैं भाग्य तेरे, तूने निर्ग्रन्थ-युगल देखे, जिनके दर्शनतें जन्म जन्मके पाप जाय हैं, भक्तिवंत प्राणीके परम कल्याण होय है। जब या भांति रामने कही तब सीता कहती भई—ये आए, ये आए। तब ही दोनों मुनि रामके दृष्टि परे, जीवदयाके पालक, ईर्यासमिति सहित, समाधानरूप हैं मन जिनके। तब श्रीरामने सीता-सहित सन्मुख जाय नमस्कार कर महा भक्तियुक्त श्रद्धा-सहित मुनिकूं आहार दिया, आरणी भैंसोंका अर वनकी गायोंका दुग्ध अर छुहारे गिरी दाख, नाना प्रकारके वनके धान्य, सुन्दर घी, मिष्टान्न इत्यादि मनोहर वस्तु विधिपूर्वक तिनकरि मुनिकूं पारणा करावते भए। ते मुनि भोजनके स्वादके लोलुपतासूं रहित निरंतराय आहार करते भए। जब रामने अपनी स्त्री सहित भक्तिकर आहार दिया तब पचाश्चर्य भए—रत्ननिकी वर्षा, पुष्पवृष्टि, शीतलमंद सुगंध पवन, दुंदभी बाजे अर जय जयकार शब्द। सो जा समय रामके मुनिनिका आहार भया, ता समय वनविषें एक गृध पक्षी अपनी इच्छानुसार वृक्षपर तिष्ठै था, सो अतिशयकर संयुक्त मुनिनिकूं देख अपने पूर्वभव जानता भया कि कईएक भव पहिले मैं मनुष्य हुता, प्रमादी अविवेककर जन्म निष्फल खोया, तप संयम न किया, धिक्कार मो मूढ़-बुद्धिकूं। अब मैं पापके उदय करि खोटी योनिविषें आय पड़्या, कहा उपाय करूं ? मोहि मनुष्य भवविषें पापी जीवनि भरमाया, वे कहिवेके मित्र अर महाशत्रु। सो उनके संगमें धर्मरत्न तज्या अर गुरुनिके वचन उलंघ महापाप आचर्या। मैं मोहकर अंध अज्ञान तिमिर कर धर्म न पहिचान्या, अब अपने कर्म चितार उरविषें जलूं हूं। बहुत चितवनकर कहा, दुःखके निवारवेके अर्थ इन साधुनिकी शरण गहूं। ये सर्व सुखके दाता, इनसूं मेरे परम अर्थकी प्राप्ति निश्चय सेती होयगी। या भांति पूर्वभवके चितारवेतें प्रथम तो परम शोककूं प्राप्त भया बहुरि साधुनिके दर्शनतें तत्काल परम हर्षित होय अपनी दोऊ पांख हलाय, आंसुनिकर भरे हैं नेत्र जाके, महा विनयकर मण्डित पक्षी वृक्षके अग्रभागतें भूमिविषें पड़्या, सो महाघोटा

पक्षी ताके पड़ने के शब्दकरि हाथी अर सिंहादि वनके जीव भयकर भाग गए अर सीता भी आकुल चित्त भई। देखो, यह ढीठ पक्षी मुनिनिके चरणविषें कहांसू आय पड़्या, कठोर शब्दकर घनाही निवार्‌या, परंतु वह पक्षी मुनिनिके चरणनिके धोवनविषें आय पड़्या, चरणोदकके प्रभावकर क्षणमात्रविषें ताका शरीर रत्नोंकी राशि-समान नाना प्रकार के तेजकर मण्डित होय गया, पांव तो स्वर्णकी प्रभाको धरते भए, दोऊ पांव वैडूर्यमणि समान होय गए अर देह नाना प्रकारके रत्ननिकी छबिको धरता भया अर चूंच मूंगा समान आरक्त भई। तब यह पक्षी आपकूं अर अपने रूपकूं देख परम हर्षकूं प्राप्त होय मधुर नादकर नृत्य करवेकूं उद्यमी भया। देवनिके दुन्दुभी समान है नाद जाका, नेत्रनितैं आनंद के अश्रुपात करता शोभता भया; जैसा मोर मेघके आगमन विषें नृत्य करै तैसा मुनिके आगे नृत्य करता भया। महामुनि विधिपूर्वक पारणा कर वैडूर्यमणि समान शिला पर विराजे। पद्मराग मणि समान हैं नेत्र जाके ऐसा पक्षी पांख संकोच मुनिनिके पाँवों को प्रणामकर आगे तिष्ठा। तब श्रीराम, फूले कमल समान हैं नेत्र जिनके, पक्षीकूं प्रकाशरूप देख आप परम आश्चर्यकूं प्राप्त भए। साधुनिके चरणारविंदको नमस्कारकर पूछते भए, कैसे हैं साधु? अठाईस मूलगुण अर चौरासीलाख उत्तरगुण, वे ही हैं आभूषण जिनके। वारंवार पक्षीकी ओर निरख राम मुनिसूं कहते भए—हे भगवन्! यह पक्षी पूर्व अवस्था विषें महा विरूप अंग हुता सो क्षणमात्रविषें सुवर्ण अर रतननिके समूह की छवि धरता भया, यह अशुचि सर्व मांसका आहारी दुष्ट गृद्धपक्षी आपके चरणनिके निकट तिष्ठ कर महाशांत भया सो कौन कारण? तब सुगुप्ति नामा मुनि कहते भए—हे राजन्! पूर्व या स्थल विषें दण्डकनामा सुन्दर देश हुता, जहाँ अनेक ग्राम नगर पट्टण संवाहण मटव घोष खेट कर्वट द्रोणमुख हुते। वाड़िकर युक्त सो ग्राम, कोट खाई दरवाजेनिकर मंडित सो नगर अर जहाँ रत्ननिकी खान सो पट्टण, पर्वतके ऊपर सो संवाहन अर जाहि पाँचसौ ग्राम लागें सो मटंब अर गायनिके निवास गुवालनिके आवास सो घोष अर जाके आगे नदी सो खेट अर जाके पीछेपर्वत सो कर्वट अर समुद्रके समीप सो द्रोण मुख इत्यादि अनेक रचनाकर शोभित, तहां कर्ण कुंडल नामा महामनोहर नगर ताविषें या पक्षी का जीव दंडक नामा राजा हुता, महा प्रतापी प्रचंड उदय धरे पराक्रम संयुक्त, भग्न किये हैं शत्रुरूप कंटक जानें, महा-मानी, बड़ी सेनाका स्वामी सो या मूढने अधर्मकी श्रद्धाकर पापरूप मिथ्या शास्त्र सेया, जैसें कोई घृतका अर्थी जलकूं मथे। याकी स्त्रीदंडीनिकी सेवक हुती, तिनसों अति अनु-रागिणी, सो वाके संगकर यह भी ताके मार्गकूं धरता भया, स्त्रीनि के वश हुवा पुरुष कहा कहा न करै। एक दिवस यह नगर के बाहिर निकस्या, सो वनविषें कायोत्सर्ग धरे ध्यानारूढ मुनि देखे। तब या निर्दईने मुनिके कंठविषें मूवा सर्प डार्‌या। कैसा हुवा यह?

पाषाण समान जाका कठोर चित्त हुता, सो मुनि ध्यान धरे मौन तिष्ठे अर यह प्रतिज्ञा करी कि जौ लग कोई मेरे कंठतें सर्प दूर न करै तौ लग मैं हलन-चलन नाहीं करूं, योगरूप ही रहूँ। सो काहू ने सर्प दूर न किया, मुनि खड़े ही रहे। बहुरि कैयक दिननि विषैं राजा ताही मार्ग गया। ताही समय काहू भले मनुष्य ने सर्प काढ्या अर मुनि के पास बैठ्या हुता सो राजा वा मनुष्यसूं पूछा जो मुनि के कंठतें सांप कौन काढ्या अर कब काढ्या ? तब वाने कही—हे नरेन्द्र ! किसी नरकगामीने ध्यानारूढ़ मुनिके कंठ विषैं मूवा सर्प डार्या हुता सो सर्प के संयोग से साधुका शरीर अति खेद-खिन्न भया, इनके तो कोई उपाय नाहीं। आज सर्प मैंने काढ्या है। तब राजा मुनिको शांतस्वरूप कषाय-रहित जान प्रणामकर अपने स्थानक गया। उस दिनसे मुनियोंकी भक्तिविषैं अनुरागी भया, और किसीकूं उपद्रव न करै। जब यह वृत्तांत रानी ने दंडियोंके मुखसे सुना कि राजा जिनधर्मका अनुरागी भया तब या पापिनीने क्रोधकर मुनियों के मारने का उपाय किया। जे दुष्ट जीव हैं वे अपने जीने का भी यत्न तज पराया अहित करें। सो पापिनी ने अपने गुरुको कहा कि तुम निर्ग्रंथ मुनि का रूपकर मेरे महल में आवो और विकार चेष्टा करहु। तब याने याही भांति करी। सो राजा यह वृत्तांत जानकर मुनियों से क्रुद्ध भया। मंत्री आदि दुष्ट मिथ्यादृष्टि सदा मुनियोंकी निन्दा ही करते। अन्य भी और जे क्रूरकर्मी मुनियोंके अहितु थे तिन्होंने राजाकूं भरमाया। सो पापी राजा मुनियोंको घानी विषैं पेलिवेकी आज्ञा करता भया, आचार्यसहित सर्व मुनि घानी में पेले। एक साधु बहिर्भूमि गया हुवा पीछे आवता हुता सो किसी दयावान ने कही कि अनेक मुनि पापी राजा ने यन्त्र में पेले हैं, तुम भाग जावो, तुम्हारा शरीर धर्म का साधन है सो अपने शरीर की रक्षा करहु। तब यह समाचार सुन, संघ के मरण के शोककर चुभी है दुःखरूप शिला जाके, क्षणएक वज्रके स्तंभ-समान निश्चल होय रहा। बहुरि न सहा जाय ऐसा दुःख ताकर क्लेश रूप भया। सो मुनिरूप जो पर्वत उसकी समभावरूप गुफासे क्रोधरूप केसरी सिंह निकस्या, जैसें आरक्त अशोकवृक्ष होय तैसें मुनिके नेत्र आरक्त भए, तेजकर आकाश संध्याके रंगसमान होय गया, कोप कर तप्तायमान जो मुनि ताके सर्व शरीरविषैं पसेवकी बूंद प्रगट भई। फिर कालाग्नि समान प्रज्वलित अग्नि-पूतला निकस्या, सो धरती आकाश अग्निरूप होय गए, लोक हाहाकार करते मरणकूं प्राप्त भए, जैसें बांसों का वन बलै तैसें देश भस्म होय गया। न राजा न अन्तःपुर, न पुर, न ग्राम, न पर्वत, न नदी, न वन, न कोई प्राणी कुछ भी देश में न बच्या। महा ज्ञान वैराग्य के योगकर बहुत दिनों में मुनिने समभावरूप जो धन उपार्ज्या हुता सो तत्काल क्रोधरूप रिपुने हरा। दंडक देसका दंडक राजा पापके प्रभावकरि प्रलय भया और देश भी प्रलय भया। सो अब

यह दंडक वन कहावे है। कैयक दिन तो यहां तृण भी न उपज्या। फिर घने काल पीछे मुनियों का विहार भया, तिनके प्रभावकरि वृक्षादिक भए। यह वन देवों को भी भयंकर है, विद्याधरों की क्या बात? सिंह व्याघ्र अष्टापदादि अनेक जीवों से भर्या और नाना प्रकार के पक्षियों कर शब्दरूप है और अनेक प्रकार के धान्य से पूर्ण है। वह राजा दंडक महा प्रबल शक्ति का धारक हुता सो अपराध कर नरक तिर्यंच गति विषैं बहुत काल भ्रमणकर यह गृद्ध पक्षी भया। अब इसके पाप कर्म की निवृत्ति भई, हमकूं देख पूर्व भव स्मरण भया। ऐसा जान जिन-आज्ञा धार संसार-शरीर-भोगतें विरक्त होय धर्म विषैं सावधान होना। पर जीवों का जो दृष्टांत है सो अपने शांत-भाव की उत्पत्तिका कारण है। या पक्षीकूं अपने पूर्व भवकी विपरीत चेष्टा याद आई है सो कंपायमान है। पक्षी पर दयालु होय मुनि कहते भए–हे भव्य! अब तू भय मत करै, जा समय जैसी होनी होय सो होय, रुदन काहेको करै है, होनहार के मेटवे समर्थ कोऊ नाहीं। अब तू विश्रामकूं पाय सुखी होय, पश्चात्ताप तज। देख कहाँ यह वन और कहाँ सीता सहित श्रीराम का आवना और कहां हमारा वनचर्याका अवग्रह जो वनमें श्रावक के आहार मिलेगा तो लेवेंगे और कहाँ तेरा हमको देख प्रतिबुद्ध होना, कर्मों की गति विचित्र है, कर्मों को विचित्रता से जगतकी विचित्रता है। हमने जो अनुभव्या और सुना वा देखा है सो कहैं हैं। पक्षी के प्रतिबोधवे के अर्थ रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनि अपना और दूजा गुप्ति मुनि दोनों का वैराग्यका कारण कहते भए–एक वाराणसी नगरी, वहाँ अचल नामा विख्यात राजा, उसके रानी गिरदेवी-गुणरूप रत्नोंकर शोभित, उसके एक दिन त्रिगुप्तिनामा मुनि शुभ चेष्टा के धरणहारे आहार के अर्थ आए सो रानी ने परम श्रद्धाकर तिनकूं विधिपूर्वक आहार दिया। जब निरंतराय आहार हो चुका तब रानी ने मुनिकूं पूछी–हे नाथ! यह मेरा गृहवास सफल होयगा या नहीं। भावार्थ–मेरे पुत्र होयगा या नहीं। तब मुनि वचनगुप्ति भेद इसके संदेह निवारणके अर्थ आज्ञा करी कि तेरे दोय पुत्र विवेकी होंयगे सो हम दोय पुत्र त्रिगुप्ति मुनि की आज्ञा भए पीछे भए। इसलिए माता पिता ने सुगुप्ति और गुप्ति हमारे नाम राखे। सो हम दोनों राजकुमार लक्ष्मीकर मंडित सर्वकला के पारगामी लोकों के प्यारे नाना प्रकारकी क्रीडा कर रमते घरमें तिष्ठे।

अथानन्तर एक और वृत्तांत भया। गन्धवती नामा नगरी, वहांके राजाका पुरोहित सोम, उसके दोय पुत्र–एक सुकेतु दूजा अग्निकेतु, तिनविषैं अतिप्रीतिसों सुकेतु का विवाह भया; विवाहकर यह चिन्ता भई कि कभी इस स्त्री के योगकर हम दोनों भाइयोंमें जुदायगी न होय। फिर शुभकर्म के योग से सुकेतु प्रतिबुद्ध होय अनन्तवीर्यस्वामी के

समीप मुनि भया और लहुरा भाई अग्निकेतु भाई के वियोगकर अत्यन्त दुःखी होय वाराणसी विषें उग्र तापस भया। तब बड़ा भाई सुकेतु जो मुनि भया हुता सो छोटे भाई कूं तापस भया जान संबोधवे के अर्थ आयवेका उद्यमी होय गुरुपै आज्ञा मांगी; तब गुरुने कहा कि तू भाईको संबोधा चाहै है तो यह वृत्तान्त सुन। तब इसने कहा कि हे नाथ ! क्या वृत्तान्त। तब गुरुने कही कि वह तुमसों मतपक्षका वाद करेगा और तुम्हारे वादके समय एक कन्या गंगाके तीर तीन स्त्रियों सहित आवेगी, गौर है वर्ण जाका, नाना प्रकार के वस्त्र पहिरे, दिनके पिछले पहर आवेगी; तब तू इन चिन्हों कर जान भाईसे कहियो कि इस कन्याका कहा शुभ-अशुभ होनहार है सो कहो। तब वह विलखा होय तोसूं कहेगा कि मैं तो न जानूं, तुम जानो हो तो कहो ? तब तू कहियो कि इस पुरविषें एक प्रवर नामा श्रेष्ठी धनवन्त उसकी यह रुचिरा नामा पुत्री है सो आजतें तीसरे दिन मरण कर कंबर ग्राम विषें विलास नामा कन्याके पिताका मामा उसके छेली होयगी, ताहि ल्याली मारेगा, सो मरकर गाड़र होयगी, फिर भैंस, भैंससे उसी विलासके विधुरा नामा पुत्री होयगी। यह वार्ता गुरु कही, तब सुकेतु सुनकर गुरुकूं प्रणामकर तापसीनिके आश्रम आया। जा भांति गुरु कही हुती ताही भांति तापससों कही और ताही भांति भई। उस विधुरा नामा विलासकी पुत्रीकूं जब प्रवर नामा श्रेष्ठी परण ने लाग्या, तब अग्निकेतु कही कि यह तेरी रुचिरा नामा पुत्री सो मरकर अजा गाडर भैंस होय तेरे मामा के पुत्री भई, अब तू याहि परनै सो उचित नाहीं और विलासकूं भी सर्व वृत्तान्त कहा, कन्या के पूर्वभव कहे, सो सुनकर कन्याकूं जातिस्मरण भया। तब वह कुटुम्ब से मोह तज सब सभाकूं कहती भई कि यह प्रवर मेरा पूर्वभव का पिता है सो ऐसा कह आर्यिका भई और अग्निकेतु तापस मुनि भया। यह वृत्तांत सुनकर हम दोनों भाइयों ने महावैराग्यरूप होय अनंतवीर्यस्वामी के निकट जैनेन्द्रव्रत अंगीकार किए। मोहके उदयकर प्राणियों के भव-वनके भटकावनहारे अनेक अनाचार होय हैं। सद्गुरुके प्रभावकर अनाचारका परिहार होय है, संसार असार है। माता पिता बांधव मित्र स्त्री सतानादिक तथा सुख दुःख सबही विनश्वर हैं। ऐसा सुनकर पक्षी भव-दुःखसे भयभीत भया अर धर्मग्रहण की वांछाकर बारंबार शब्द करता भया। तब गुरु कही—हे भद्रे ! तू भय मतकर, श्रावकके व्रत लेवो, जाकर फिर दुःखकी परम्परा न पावै। अब तू शांत भाव धर, काहू प्राणीकूं पीडा मत करे, अहिंसा व्रतधर, मृषा वाणी तज, सत्यव्रत आदर, परवस्तु का ग्रहण तज, परदारा तज तथा सर्वथा ब्रह्मचर्य भज, तृष्णा तज, सन्तोष भज, रात्रि-भोजनका परिहार कर, अभक्ष आहारका परित्याग कर, उत्तम चेष्टा का धारक होहु और त्रिकाल सन्ध्याविषें जिनेन्द्रका ध्यान धरहु। हे सुबुद्धि! उपवासादि तपकर नाना प्रकारके नियम अंगीकार कर, प्रमादरहित

होय इंद्रियां जीत साधुवोंकी भक्तिकर अर अरहंत देव, निर्ग्रंथ गुरु, दयामयी धर्मका निश्चय कर। या भांति मुनिने आज्ञा करी। तब पक्षी बारंबार नमस्कार कर मुनि के निकट श्रावक के व्रत धारता भया। सीता ने जानी कि यह उत्तम श्रावक भया, तब हर्षित होय अपने हाथ से बहुत लड़ाया। ताहि विश्वास उपजाय दोऊ मुनि कहते भए—यह पक्षी तपस्वी शांत चित्त भया कहां जायगा, गहन वन विषैं अनेक क्रूर जीव हैं, या सम्यग्दृष्टि पक्षी की तुम सदा काल रक्षा करनी। यह गुरु के वचन सुन सीता, पक्षी के पालवेरूप है चित्त जाका, अनुग्रह कर राख्या। राजा जनक की पुत्री या पक्षीकूं कर-कमलकर विश्वासती संती कैसी शोभती भई, जैसें गरुड़ की माता गरुड़कूं पालती शोभै। श्रीराम लक्ष्मण पक्षी को जिनधर्मी जान अति धर्मानुराग करते भए अर मुनिनिकी स्तुति कर नमस्कार करते भए। दोनों चारण मुनि आकाश के मार्ग गए, सो जाते कैसे शोभते भए मानों धर्मरूप समुद्रकी कल्लोल ही हैं। अर एक वनका मदोन्मत्त हाथी वनमें उपद्रव करता भया ताकूं लक्ष्मण वशकर तापर चढ़ रामपै आए। सो गजराज गिरिराज सारिखा ताहि देख राम प्रसन्न भए। अर वह ज्ञानी पक्षी मुनिकी आज्ञा प्रमाण यथाविधि अणुव्रत पालता भया, महाभाग्य के योगतें राम लक्ष्मण सीता का ताने समीप पाया, इनके लार पृथ्वी विषें विहार करै। यह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे राजन् ! धर्मका माहात्म्य देखो, याही जन्मविषें वह विरूप पक्षी अद्भुत रूप होय गया। पूर्व अवस्थाविषें बहुत मांस का आहारी, दुर्गंध निंद्य पक्षी सुगन्ध के भरे कंचन कलश समान महासुगन्ध सुन्दर शरीररूप होय गया। कहूंइक अग्निकी शिखासमान प्रकाशमान अर कहूंइक वैडूर्यमणि समान, कहूंइक स्वर्ण समान, कहूंइक हरित मणिकी प्रभाकूं धरे शोभता भया। राम लक्ष्मण के समीप वह सुन्दरपक्षी श्रावकके व्रतधार महास्वाद संयुक्त भोजन करता भया। पक्षी के महाभाग्य जो श्रीरामकी संगति पाई। राम के अनुग्रहतें अनेक चर्चाधार दृढ़व्रती महा श्रद्धानी भया। श्रीराम ताही अति लडावैं, चन्दनकर चर्चित है अंग जाका, स्वर्ण की किंकिणी कर मण्डित, रत्न की किरणनिकर शोभित है शरीर जाका, ताके शरीरविषैं रत्न हेमकर उपजी किरणनिकी जटा तातें याका नाम श्रीराम ने जटायू धरया। राम लक्ष्मण सीताकूं यह अति प्रिय, जीती है हंसकी चाल जाने, महासुन्दर चेष्टाकूं धरे राम का मन मोहता भया, ता वनके और जे पक्षी वे देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त भए। यह व्रती तीनों सध्याविषे सीता के साथ भक्तिकर नम्रीभूत हुआ अरहन्त सिद्ध साधुनिकी वन्दना करै। महा दयावान जानकी जटायू पक्षी पर अति कृपाकर सावधान भई, सदा याकी रक्षा करै। कैसी है जानकी? जिनधर्मतें है अनुराग जाका। वह

पक्षी महा शुद्ध अमृत समान फल अर महा पवित्र सोधा अन्न, निर्मल छाना जल इत्यादि शुभ वस्तु का आहार करता भया। पक्षी अविधि छोड़ विधि रूप भया। श्रीभगवानकी भक्ति विषें अति लीन जो जनक की पुत्री सीता जब ताल बजावै अर राम लक्ष्मण दोऊ भाई ताल के अनुसार तान लावैं तब यह जटायू पक्षी, रवि-समान है कांति जाकी, परम हर्षित होय ताल अर तान के अनुसार नृत्य करै।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं जटायु का वर्णन करने वाला इकतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४१॥

बयालीसवां पर्व

(श्रीरामका दंडक वन-निवास)

अथानंतर पात्र दानके प्रभावकर राम लक्ष्मण सीता या लोकमें रत्न-हेमादि संपदाकर युक्त भए। एक सुवर्णमयी रत्न-जडित, अनेक रचनाकर सुन्दर, ताके मनोहर स्तंभ, रमणीक वाडि, बीच बिराजवेका सुन्दर स्थानक अर जाके मोतिनकी माला लूंबे, सुन्दर झालरी सुगंध चंदन कर्पूरादि कर मंडित; जामें सेज आसन, वादित्र वस्त्र अर सर्व सुगंध कर पूरित ऐसा एक विमान समान अद्भुत रथ बनाया। जाके चार हाथी जुड़ें ताविषैं बैठे राम, लक्ष्मण, सीता जटायु सहित रमणीक वनविषै विचरैं जिनको काहूका भय नाहीं, काहूकी घात नाहीं; काहू ठौर एक दिन, काहू ठौर पन्द्रह दिन, काहू ठौर एक मास मन-वांछित क्रीडा करै। यहाँ निवास करैं, अक यहां निवास करैं—ऐसी है अभिलाषा जिनके, नवीन शिष्यकी इच्छाकी न्याईं इनकी इच्छा अनेक ठौर विचरती भई। महा निर्मल जे नीझरने तिनकूं निरखते, ऊँची नीची जायगा टार समभूमि निरखते, ऊँचे वृक्षनिकूं उलंघकर धीरे धीरे आगे गए, अपनी स्वेच्छाकर भ्रमण करते ये धीर वीर सिंह समान निर्भय दंडकवनके मध्य जाय प्राप्त भए। कैसा है वह स्थानक? कायरनिकूं भयकर, जहाँ पर्वत विचित्र शिखरनि धरक, जहाँ रमणीक निझरने झरैं, जहां तें नदी निकसैं, जिनका मोतिनके हार-समान उज्ज्वल जल, जहाँ अनेक वृक्ष बड़ पीपल बहेड़ा पीलू सरसी बड़े बड़े साल वृक्ष धवल वृक्ष कदंब तिलक जातिके वृक्ष लोध वृक्ष अशोक जम्बूवृक्ष पाटल आम्र आंवला इमली चम्पा कण्डीर शाली वृक्ष ताड वृक्ष पियंगू सप्तच्छद तमाल नागवृक्ष नन्दी-वृक्ष अर्जुन जातिके वृक्ष पलाश वृक्ष मलयागिर चन्दन केसरि भोजवृक्ष हिंगोटवृक्ष काला अगर अर सुफेद अगर कुन्दवृक्ष पद्माकवृक्ष कुरजवृक्ष पारिजातवृक्ष खिजन्यौं कतकी केवडा महुआ कदली खैर मदनवृक्ष नींबू खजूर छूहारे चारोली नारंगी बिजोरा दाडिम नारियल हरडे बहेडा तिरमला विदारीकंद अगथिया करंज कटालीकूठ अजमोद कौंच कंकोल मिर्च

लवंग इलायची जायफल जाविश्री चव्य चित्रक सुपारी ताँबूलोंकी वेलि रक्तचंदन बेत श्याम-लता मीठा मीगी हरिद्रा अरलू सहिजडा कुडा वृक्ष पद्माख पिस्ता मौलश्री बीलवृक्ष द्राक्षा-बदाम शाल्मलि इत्यादि अनेक जातिके वृक्ष तिनकरि शोभित है। अर स्वयमेव उपजे नाना प्रकारके धान्य अर महारसके भर फल अर पौंडे (साठे) इत्यादि अनेक वस्तुनिकर वह वन पूर्ण, नाना प्रकारके वृक्ष, नाना प्रकारकी बेल, नाना प्रकारके फल फूल तिनकर वन अति सुन्दर मानों दूजा नन्दनवन ही है सो शीतलमंद सुगंध पवनकर कोमल कूंपल हालैं, सो ऐसा सोहै मानों वह वन रामके आइवेकर हर्षकर नृत्य करै है। अर सुगध पवनकर उठी जो पुष्प की रज, सो इनके अंगसूं आय लगै सो मानों अटवी आलिंगन ही करै है। अर भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों श्रीरामके पधारने कर प्रसन्न भया वन गान ही करै है अर महा मनोज्ञ गिरनिके झरनोंके छांटेनिके उछरिवेके शब्दकर मानों हँसै ही हैं अर भैरुण्ड जातिके पक्षी तथा हंस सारस कोयल मयूर सिचांड कुरुचि सूवा मैना कपोत भारद्वाज इत्यादि अनेक पक्षिनके ऊंचे शब्द होय रहे हैं सो मानों श्रीराम लक्ष्मण सीताके आइवेका आदर ही करै हैं। अर मानों वे पक्षी कोमल वाणी कर ऐसा वचन कहै हैं कि महाराज भले ही यहाँ आओ अर सरोवरनि विषैं सफेद श्याम अरुण कमल फूल रहे हैं सो मानों श्रीरामके देखवेकूं कौतूहलतें कमलरूप नेत्रनिकर देखवेकूं प्रवर्ते हैं। अर फलनिके भारकर नम्रीभूत जो वृक्ष सो मानों रामकूं नमै हैं अर सुगध पवन चालै है सो मानों वह रामके आयवेसूं आनन्दके स्वाँस लेय है। सो श्रीराम सुमेरु के सौमनसवन समान वनकूं देखकर जानकीसूं कहते भए, कैसी है जानकी ? फूले कमल समान हैं नेत्र जाके। पति कहै है कि हे प्रिये ! देखो यह वृक्ष बेलनिसूं लिपटे पुष्पनिके गुच्छनिकर मण्डित मानों गृहस्थ समान ही भासै है। अर प्रियंगुकी बेल मौलश्री के वृक्षसूं लगी कैसी शोभै है जैसी जीवदया जिन-धर्मसूं एकताकूं धरे सोहै। अर यह माधवीलता पवनकर चलायमान जे पल्लव तिनके समीपके वृक्षनिकों स्पर्शै है जैसे विद्या विनयवानकूं स्पर्शै है। अर हे पतिव्रते! यह वनका हाथी मद कर, आलसरूप हैं नेत्र जाके, सो हथिनीके अनुरागका प्रेर्या कमलनिके वनमें प्रवेश करै है जैसे अविद्या कहिए मिथ्यापरणति ताका प्रेरा अज्ञानी जीव विषयवासनाविषैं प्रवेश करै, कैसा है कमलका वन ? विकसि रहे जे कमल-दल तिनपर भ्रमर गुंजार करै हैं। अर हे दृढ़व्रते ! यह इन्द्रनीलमणि समान श्यामवर्ण सर्प बिलतें निकसकर मयूरकूं देख भागकर पीछे बिलमें धसै है जैसें विवेकतें काम भाग भव-वनमें छिपै। अर देखो केशरी महा सिंह, साहसरूप चरित्र, इस पर्वतकी गुफामें बैठा हुता सो अपने रथका नाद सुन निद्रा तज गुफाके द्वार आय निर्भय तिष्ठै है। अर वह बघेरा, क्रूर है मुख जाका, गर्वका भर्या, मांजरे नेत्रनिका धारक, मस्तक पर धरी है पूंछ जाने, नखनिकर वृक्षकी जड़कूं कुचरै।

अर मृगनिके समूह दूबके अंकुर तिनके चरिवेकूं चतुर अपने बालकनिकूं बीचमें कर मृगीनिसहित गमन करै हैं सो नेत्रनिकर दूरहीसों अवलोकन करते अपने ताईं दयावंत जान निर्भय भए विचरै हैं। यह मृग मरणसूं कायर सो पापी जीवनिके भयतैं अति साव-धान हैं, तुमकूं देख अति प्रीतिकूं प्राप्त भए विस्तीर्ण नेत्रकर बारंबार देखै है। तुम्हारेसे नैन इनके नाहीं तातैं आश्चर्यकूं प्राप्त भए हैं। अर यह वनका शूकर अपनी दांतली कर भूमिकूं विदारता गर्वका भर्या चला जाय है, लग रह्या है कर्दम जाके। अर हे गज-गामिनी ! या वनविषैं अनेक जातिके गजनिकी घटा विचरै है सो तुम्हारीसी चाल तिनकी नाहीं तातैं तिहारी चाल देख अनुरागी भए हैं। अर ये चीतेके विचित्र अंग अनेक वर्णकर शोभै हैं जैसे इंद्र धनुष अनेक वर्णकर सोहै है। हे कलानिधे ! यह वन अनेक अष्टापदादि क्रूर जीवनिकर भर्या है अर अति सघन वृक्षनिकर भर्या है अर नाना प्रकारके तृणनिकर पूर्ण है। कहूंइक महासुन्दर है जहाँ भयरहित मृगनिके समूह विचरै हैं, कहूंइक महाभयंकर अति गहन है जैसे महाराजनिका राज्य अति सुन्दर है तथापि दुष्टनिकूं भयंकर है। अर कहूंइक महा मदोन्मत्त गजराज वृक्षनिकूं उखाडै है जैसें मानी पुरुष धर्मरूप वृक्षकूं उखाड़ै है। कहूंइक नवीन वृक्षनिके महासुगंध समूहपर भ्रमर गुंजार करै हैं जैसें दातानिके निकट याचक आवैं। काहू ठौर वन लाल होय रहा है। काहू ठौर श्वेत, काहू ठौर पीत, काहू ठौर हरित, काहू ठौर श्याम, काहू ठौर चंचल, काहू ठौर निश्चल, काहू ठौर शब्द सहित, काहू ठौर शब्द रहित काहू ठौर गहन, काहू ठौर विरले वृक्ष, काहू ठौर सुभग, काहू ठौर दुर्भग, काहू ठौर विरस, काहू ठौर सरस, काहू ठौर सम, काहू ठौर विषम, काहू ठौर तरुण, काहू ठौर वृक्षवृद्धि या भांति नाना विध भासै है। यह दण्डकवन विचित्र गति लिए है जैसें कर्मनिका प्रपंच विचित्र गति लिए है। हे जनकसुते! जे जिनधर्मकूं प्राप्त भए हैं ते ही या कर्म-प्रपंचतैं निवृत्त होय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। जीवदया समान कोऊ धर्म नाहीं। जो आप समान परजीवनिकूं जान सर्व जीवनिकी दया करैं, तेई भवसागरसूं तिरैं। यह दण्डक नाम पर्वत जाके शिखर आकाशसों लग रहे हैं ताका नाम यह दण्डक वन कहिए। या गिरि के ऊँचे शिखर हैं अर अनेक धातुकर भर्या है जहाँ अनेक रंगनिकर आकाश नाना रंग होय रह्या है। पर्वतमें नाना प्रकारकी औषधि हैं—कैयक ऐसी जड़ी हैं जे दीपक समान प्रकाशरूप अंधकारकूं हरैं तिनकूं पवनका भय नाहीं, पवनमें प्रज्वलित रहैं। और या गिरितैं नीझरने झरैं हैं जिनका सुन्दर शब्द होय है अर जिनके छांटोंकी बूंद मोतिन की प्रभा धरै है। या गिरिके स्थान कैयक उज्ज्वल कैयक नील कैयक आरक्त दीखै हैं अर अत्यंत सुन्दर सोहै हैं, सूर्यकी किरण गिरिके शिखरके वृक्षनिके अग्रभाग विषैं आय पड़ै हैं अर पत्र पवनकरि चंचल हैं सो अत्यंत सोहै हैं। हे सुबुद्धिरूपिणि ! या वन विषैं कहूंइक

वृक्ष फूलनिके भारकर नम्रीभूत होय रहे हैं अर कहूँइक नाना रंगके जे पुष्प तेई भए पट तिनकर शोभित हैं अर कहूँइक मधुर शब्द बोलनहारे पक्षी तिनकरि शोभित है। हे प्रिये ! या पर्वततैं यह क्रौंचरवा नदी जगत प्रसिद्ध निकसी है जैसे जिनराज के मुखतै जिनवाणी निकसै। या नदी का जल ऐसा मिष्ट है जैसी तेरी चेष्टा मिष्ट है। हे सुकेशी ! या नदीमें पवनकरि लहर उठैं हैं अर किनारेके वृक्षनिके पुष्प जलमें पड़ैं हैं सो अति शोभित है। कैसी है नदी ? हंसनिके समूह अर झागनिके पटलनिकरि अति उज्ज्वल है अर ऊँचे शब्द कर युक्त है जल जाका, कहूँइक महा विकट पाषाणनिके समूह तिनकर विषम है अर हजारा-ग्राह मगर तिनकरि अति भयंकर है। अर कहूँइक अति वेगकर चला आवै है जलका जो प्रवाह ताकर दुर्निवार है, जैसें महामुनिनके तपकी चेष्टा दुर्निवार है। कहूँइक शीतल बहै है, कहूँइक वेगरूप बहै है, कहूंइक काली शिला, कहूंइक श्वेत शिला, तिनकी कांतिकर जल नील श्वेत दुरंग होय रहा है मानो हलधर-हरि का स्वरूप ही है। कहूंइक रक्त शिलानिके किरणकी समूह कर नदी आरक्त होय रही है जैसे सूर्यके उदय कर पूर्व दिशा आरक्त होय। अर कहूंइक हरित पाषाण के समूह कर जल विषैं हरितता भासै है सो सिवालकी शंका करै, पीछे जाय रहे है। हे कांते ! कमलनिके समूह विषैं मकरंद के लोभी भ्रमर निरन्तर भ्रमण करै हैं अर मकरन्दकी सुगंधताकर जल सुगंधमय होय रहा है अर मकरंद के रंगनिकर जल सुरंग होय रहा है परन्तु तिहारे शरीर की सुगंधता समान मकरंद की सुगंधि नाहीं अर तिहारे रंग समान मकरंदका रंग नाहीं मानों तुम कमलवदनी कहावो हो सो तिहारे मुखकी सुगंधता ही से कमल सुगन्धित है अर यह भ्रमर कमलनिकूं तज तिहारे मुखकमल पर गुंजार कर रहे हैं। अर या नदीका जल काहू ठौर पाताल समान गंभीर है मानो तिहारे मनकीसी गम्भीरताकूं धरै है अर कहूँइक नीलकमलनिकर तिहारे नेत्रनिकी छायाकूं धरै है। अर यहां अनेक प्रकार के पक्षिनि के समूह नाना प्रकार क्रीडा करै हैं जैसे राजपुत्र अनेक प्रकार की क्रीडा करै। हे प्राणप्रिये ! या नदी के पुलनिका बालू रेत अति सुन्दर शोभित है जहां स्त्री सहित खग कहिये विद्याधर अथवा खग कहिए पक्षी आनंदकरि विचरै हैं। हे अखंडव्रते ! यह नदी अनेक विलासनिकूं धरे समुद्र की ओर चली जाय है जैसें उत्तम शीलकी धरणहारी राजानिकी कन्या भरतार के परणवेकूं जांय। कैसे हैं भरतार ? महामनोहर प्रसिद्ध गुणके समूहकूं धरै शुभ चेष्टा कर युक्त जगत विषैं विख्यात हैं। हे दयारूपिणी ! इस नदी के किनारेके वृक्ष फल फूलनिकर युक्त नाना प्रकार पक्षिनिकर मंडित जल की भरी कारी घटा समान सघन शोभाकूं धरै हैं। या भांति श्रीरामचंद्रजी अति स्नेहके भरे वचन जनक सुतासूं कहते भए, परम विचित्र अर्थकूं धरे। तब वह पतिव्रता अति हर्ष के समूह करि भरी पतिसूं

प्रसन्न भई परम आदरसूं कहती भई।

हे करुणानिधे ! यह नदी, निर्मल है जल जाका, रमणीक हैं तरंग जाविषैं, हंसादिक पक्षिनिके समूह कर सुन्दर है परंतु जैसा तिहारा चित्त निर्मल है तैसा नदी का जल निर्मल नाहीं अर जैसे तुम सघन अर सुगंध हो तैसा बन नाहीं अर जैसे तुम उच्च अर स्थिर हो तैसे गिरि नाहीं। अर जिनका मन तुममें अनुरागी भया है तिनका मन और ठौर जाय नाहीं। या भाँति राजसुताके अनेक शुभ वचन श्रीराम भाई सहित सुनकर अति प्रसन्न होय याकी प्रशंसा करते भए। कैसे हैं राम ? रघुवंशरूप आकाश विषैं चन्द्रमा समान उद्योतकारी हैं। नदी के तटपर मनोहर स्थल देख हाथिनि के रथसे उतर लक्ष्मण प्रथम ही नाना स्वादकूं धरे सुन्दर मिष्ट फल लाया अर सुगंध पुष्प लाया। बहुरि राम सहित जलक्रीडा का अनुरागी भया। कैसा है लक्ष्मण ? गुणनि की खान है मन जाका; जैसी जलक्रीडा इन्द्र नागेन्द्र चक्रवर्ती करें तैसी राम लक्ष्मण ने करी। मानों वह नदी श्रीरामरूप कामदेवकूं देख रतिसमान मनोहर रूप धारती भई। कैसी है नदी ? लहलहाट करती जे लहर तिनकी माला कहिए पंक्ति ताकरि मंदित किए हैं श्वेत श्याम कमलनिके पत्र जाने अर उठे हैं झाग जामें, भ्रमररूप हैं चूचा जाके, पक्षिनिके जे शब्द तिनकर मानों मिष्ट शब्द करै है, वचनालाप करै है। राम जलक्रीडा कर कमलनिके वन विषैं छिप रहे बहुरि शीघ्र ही आए। जनकसुतासूं जलकेलि करते भए। इनकी चेष्टा देख वनके तिर्यंच हू और तरफ से मन रोक एकाग्र चित्त होय इनकी ओर निरखते भए। कैसे हैं दोऊ वीर ? कठोरतासे रहित है मन जिनका अर मनोहर है चेष्टा जिनकी, सीता गान करती भई। सो गान के अनुसार रामचंद्र मृदंगनिकरि ताल देते भए। अति सुन्दर राम जलक्रीडाविषैं आसक्त अर लक्ष्मण चौगिरद फिरै। कैसा है लक्ष्मण ? भाईके गुणनि विषैं आसक्त है बुद्धि जाकी, राम अपनी इच्छा प्रमाण, जलक्रीडाकर समीपके मृगनिकूं आनंद उपजाय जलक्रीडातैं निवृत्त भए, महाशस्त जे वनके मिष्टफल तिनकर क्षुधा निवारण कर लतामंडप विषै तिष्ठे, जहाँ सूर्यका आताप नाहीं; ये देवनि सारिखे सुन्दर नाना प्रकारकी सुन्दर कथा करते भए। सीतासहित अति आनंदसूं तिष्ठे। कैसी है सीता? जटायु के मस्तक पर हाथ है जाका, तहां राम लक्ष्मणसूं कहैं हैं-हे भ्रात ! यह नाना प्रकार के वृक्ष स्वादु फलकर संयुक्त अर नदी निर्मल जल की भरी अर जहाँ लतानि के मडप अर यह दंडक नामा गिरि अनेक रत्ननिकर पूर्ण, यहाँ अनेक स्थानक क्रीडा करनेके हैं तातैं या गिरिके निकट एक सुन्दर नगर बसावैं। अर यह वन अत्यन्त मनोहर, औरनितैं अगोचर, यहाँ निवास हर्षका कारण है। यहाँ स्थानक कर हे भाई ! तू दोऊ मातानिके लायवेकूं जाहु, वे अत्यंत शोकवती हैं सो शीघ्र ही लावहु। अथवा तू यहाँ रहु अर सीता

तथा जटायु भी यहाँ रहै, मैं मातानिके त्यायवेकूं जाऊंगा। तब लक्ष्मण हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया कि जो आपकी आज्ञा होयगी सो होयगा। तब राम कहते भए कि अब तो वर्षाऋतु आई अर ग्रीष्मऋतु गई। यह वर्षाऋतु अति भयकर है जाविषें समुद्र समान गाजते मेघघटानिके समूह विचरें हैं, चालते अञ्जनगिरि समान, दसों दिशाविषें श्यामता होय रही है, विजुरी चमकै है, बगुलानिकी पंक्ति बिचरै है अर निरतर बादलनि के जल बरसैं हैं जैसें भगवान के जन्म कल्याणक विषें देव रत्न धारा बरसावें। अर हे भ्रात ! देख यह श्यामघटा तेरे रंगसमान सुन्दर जलकी बूंद बरसावै है जैसें तू दान की धारा बरसावै। ये बादर आकाशविषें विचरते विजुलीके चमत्कार कर युक्त बड़े बड़े गिरिनकूं अपनी धाराकर आछादते ध्वनि करते संते ऐसे सोहै हैं जैसे तुम पीत वस्त्र पहिरे अनेक राजानिकूं आज्ञा करते पृथ्वीकूं कृपादृष्टिरूप अमृतकी वृष्टिकर सींचते सोहो हो। हे वीर ! ये कैयक बादर पवन के वेग से आकाश विषें भ्रमैं हैं जैसे यौवन अवस्था विषें असंयमियों का मन विषय-वासना विषें भ्रमै अर यह मेघ नाजके खेत छोड़ वृथा पर्वतके विषें वरषें हैं जैसें कोई द्रव्यवान पात्रदान अर करुणादान तज वेश्यादि कुमार्गविषें धन खोवै। हे लक्ष्मण ! या वर्षाऋतुविषें अति वेगसूं नदी बहै है अर धरती कीचसूं भर रही है अर प्रचंड पवन बाजें है, भूमि विषें हरितकाय फैल रही है अर त्रस जीव विशेषता से हैं, या समयविषें विवेकनिका विहार नाहीं। ऐसे वचन श्रीरामचन्द्रके सुनकर सुमित्रा का नन्दन लक्ष्मण बोला—हे नाथ ! जो आप आज्ञा करोगे सो ही मैं करूंगा। ऐसी सुन्दर कथा करते दोऊ वीर महाधीर सुन्दर स्थानक विषें सुखसूं वर्षाकाल पूर्ण करते भए। कैसा है वर्षाकाल ? जा समय सूर्य नाहीं दीखें है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें दंडक वन विषें निवास वर्णन करनेवाला बयालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४२॥

तेतालीसवां पर्व

(रावण के भानजे शंबूक का सूर्यहास खड्ग साधन और लक्ष्मण के हाथ से मरण)

अथानतर वर्षाऋतु व्यतीत भई अर शरदऋतुका आगमन भया, मानों यह शरद-ऋतु चन्द्रमाकी किरणरूप बाणनिकर वर्षारूप वैरोकूं जीत पृथ्वीविषें अपना प्रताप विस्तारती भई। दिशारूप जे स्त्री सो फूल रहे हैं फूल जिनके ऐसे वृक्षनिकी सुगन्धताकर सुगन्धित भई है अर वर्षा समय विषें काली घटानिकर जो आकाश श्याम हुता सो अब चन्द्रकांतिकर उज्ज्वल शोभता भया मानों क्षीर सागर के जलकरि धोया है। अर बिजली रूप स्वर्ण सांकलकर युक्त वर्षाकालरूपो गज पृथ्वीरूप लक्ष्मीकूं स्नान कराय कहां जाता

रहा। अर शरदके योगतैं कमल फूले तिनपर भ्रमर गुंजार करते भए, हंस क्रीडा करतैं भए अर नदीनके जल निर्मल होय गए। दोऊ किनारे महासुन्दर भासते भए मानों शरद कालरूप नायककूं पाय सरितारूप कामिनी काँतिकूं प्राप्त भई है। अर बन वर्षा अर पवनकर छूटे कैसे शोभते भए मानों निद्राकरि रहित जाग्रत दशाकूं प्राप्त भए हैं। सरोवर विषैं सरोजनिपर भ्रमर गुंजार करै हैं। अर वन विषैं वृक्षनिपर पक्षी नाद करै हैं सो मानों परस्पर वार्ता ही करै हैं। अर रजनीरूप नायिका नाना प्रकारके पुष्पनि की सुगन्धता कर सुगँधित निर्मल आकाशरूप वस्त्र पहिरे चंद्रमारूप तिलक धरे मानों शरदकालरूप नायकपै जाय है। अर कामीजनकूं काम उपजावती केतकीके पुष्पनि की रज कर सुगंध पवन चलै है। या भाँति शरद ऋतु प्रवरती, सो लक्षमण बड़े भाई की आज्ञा मांग सिंह-समान महा पराक्रमी वन देखवेकूं अकेला निकस्या सो आगै गए। सुगंध पवन आई तब लक्षमण विचारते भए—यह सुगंध काहेकी है? ऐसी अद्भुत सुगंध वृक्षनिकी न होय अथवा मेरे शरीरकी हू ऐसी सुगंध नाहीं, यह सीताजी के अंगकी होय तथा रामजीके अंगकी सुगंध होय तथा कोई देव आया होय; ऐसा संदेह लक्षमणकूं उपजा। सो यह कथा राजा श्रेणिक सुन गौतम स्वामीसूं पूछता भया--हे प्रभो। जो सुगंध कर वासुदेवकूं आश्चर्य उपजा सो वह सुगंध काहेकी थी? तब गौतम गणधर कहते भए। कैसे हैं गौतम? संदेहरूप तिमिर दूर करवेकूं सूर्य हैं। सर्व लो क की चेष्टाकूं जानै हैं, पापरूप रजके उडावने को पवन हैं। गौतमस्वामी कहै हैं—हे श्रेणिक! द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ तिनके समोशरणमें मेघवाहन विद्याधर (रावणका बड़ा) शरणे आया, ताहि राक्षसनिके इन्द्र महाभीम ने त्रिकूटाचल पर्वत के समीप राक्षसद्वीप तहा लंका नामा नगरी सो कृपा कर दई अर यह रहस्य की बात कही कि हे विद्याधर! भरत क्षेत्र के दक्षिण दिशा की तरफ अर लवण समुद्र के उत्तर की ओर पृथ्वी के उदर विषैं एक अलंकारोदय नामा नगर है सो अद्भुत स्थानक है अर नाना प्रकार रत्ननिकी किरणनिकरि मंडित है। देवनिकूं आश्चर्य उपजावै तो मनुष्यनिकी कहा बात, भूमिगोचरीनिकूं तो अगम्य है अर विद्याधरकूं भी अतिविषम है, चिंतवन विषैं न आवै, सर्व गुणनिकरि पूर्ण है, मणिनिके मंदिर हैं, परचक्रतैं अगोचर है। सो कदाचित तुमकूं अथवा तेरे सन्तानके राजनिकूं लंकाविषैं परचक्र का भय उपजै तो अलंकारोदयपुर विषै निर्भय भए तिष्ठियो—याहि पाताललंका कहै हैं। ऐसा कहकर महाभीम बुद्धिमान राक्षनिके इन्द्र ने अनुग्रहकर रावणके बड़ेनिकूं लंका अर पाताललंका दई अर राक्षसद्वीप दिया सो यहाँ इनके वंशमें अनेक राजा भए। बड़े २ विवेक व्रतधारी भए सो ये रावण के बड़े विद्याधर कुल विषैं उपजे हैं, देव नाहीं; विद्याधर अर देवनिविषैं

भेद है जैसा तिलक अर पर्वत, कर्दम अर चन्दन, पाषाण अर रत्नविषैं बड़ा भेद है। देवनि के शक्ति बड़ी व कांति बड़ी अर विद्याधर तो मनुष्य हैं, क्षत्री वैश्य शूद्र ये तीन कुल हैं, गर्भवासके खेद भुगतैं हैं, विद्याधर साधनकर आकाश विषैं विचरै हैं सो अढ़ाई द्वीप पर्यन्त गमन करै हैं अर देव गर्भवाससे उपजै नाहीं, महासुन्दर स्वरूप, पवित्र, धातु उपधातु कर रहित, आंखनिकी पलक लगे नाहीं, सदा जाग्रत, जरारोग रहित, नवयौवन, तेजस्वी, उदार, सौभाग्यवन्त, महासुखी, स्वभाव हीतैं विद्यावन्त, अवधिनेत्र, चाहैं जैसा रूप करैं, स्वेच्छाचारी; देव विद्याधरनि का कहा संबंध। हे श्रेणिक! ये लंका के विद्याधर राक्षसद्वीप विषैं बसैं, तातैं राक्षस कहाए। ये मनुष्य क्षत्री वंशी विद्याधर हैं, देव हू नाहीं, राक्षस हू नाहीं, इनके वंश विषैं लंकाविषैं अजितनाथ के समयतैं लेकर मुनिसुव्रतनाथ के समय पर्यंत अनेक सहस्र राजा प्रशंसा करने योग्य भए। कई सिद्ध भए, कई सर्वार्थसिद्धि गए, कई स्वर्गविषैं देव भए, कई एक पापी नरक गए। अब ता वंशविषै तीन खण्डका अधिपति जो रावण सो राज्य करै है ताकी बहिन चन्द्रनखा रूपकरि अनुपम सो महापराक्रमवंत खरदूषणने परणी। वह चौदह हजार राजनिका शिरोमणि रावणकी सेनाविषैं मुख्य सो दिग्पाल समान अलंकापुर जो पाताललंका वहां थाने रहै है, ताकें संबूक अर सुन्दर ये दो पुत्र रावणके भानजे पृथ्वीविषैं अतिमान्य भए। सो गौतम स्वामी कहै हैं कि हे श्रेणिक! माता पिता ने संबूकक्ूं बहुत मने किया तथापि कालका प्रेरया सूर्यहास खड्ग साधवे के अर्थ महाभयानक वन विषैं प्रवेश करता भया, शास्त्रोक्त आचारकूं आचारता संता सूर्यहास खड्गके साधवेकूं उद्यमी भया। एक ही अन्न का आहारी, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, विद्या साधवेकूं बांसके बीड़ेमें यह कहकर बैठा कि जबमेरा पूर्ण साधन होयगा तब ही मैं बाहिर आऊंगा, ता पहिले कोई बीड़ेमें आवेगा अर मेरी दृष्टि पड़ेगा तो ताहि मैं मारूंगा। ऐसा कहकर एकांत विषैं बैठा सो कहां बैठा? दंडकवनमें क्रोंचरवा नदीके उत्तर तीर बांसके बीड़ेमें बैठा, बारह वर्ष साधन किया, खड्ग प्रगट भया। सो सात दिन विषैं यह न लेय तो खड्ग परके हाथ जाय अर यह मारा जाय। सो चन्द्रनखा निरंतर पुत्र के निकट भोजन लेय आवती सो खड्ग देख प्रसन्न भई अर पतिसूं जाय कही कि संबुकको सूर्यहास खड्ग सिद्ध भया। अब मेरा पुत्र मेरु की प्रदक्षिणा कर तीन दिन में आवेगा सो यह तो ऐसे मनोरथ करै अर ता वनविषैं भ्रमता लक्ष्मण आया। हजारां देवनिकर रक्षायोग्य खड्ग स्वभाव सुगंध अद्भुत रत्न सो गौतम कहै हैं कि हे श्रेणिक! वह देवोपनीत खड्ग महासुगंध दिव्य गंधादि कर लिप्त, कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी माला तिनकरि युक्त, सो सूर्यहास खड्ग की सुगंध लक्ष्मणकूं आई अर लक्ष्मण आश्चर्यकूं प्राप्त भया, और कार्य तज सीधा शीघ्र ही बासकी ओर आया, सिंह

समान निर्भय देखता भया। वृक्षनिकरि आच्छादित महाविषम स्थल जहाँ बेलनिके समूह अनेक जाल, ऊंचे पाषाण तहाँ मध्य विषैं समभूमि, सुन्दर क्षेत्र, श्रीविचित्ररथ मुनिका निर्वाणक्षेत्र, सुवर्णके कमलनिकरि पूरित, ताके मध्य एक बांसनिका बीडा ताके ऊपर खड्ग आय रहा है सो ताकी किरणके समूहकरि बांसनिका बीडा प्रकाशरूप होय रहा है। सो लक्ष्मण ने आश्चर्यकूं पाय निशंक होय खड्ग लिया अर ताकी तीक्ष्णता जानवे के अर्थ बांसके बीडापर वाहिया सो संबूक सहित बांसका बीडा कट गया। अर खड्गके रक्षक सहस्रों देव लक्ष्मण के हाथ विषैं खड्ग आया जान कहते भए कि तुम हमारे स्वामी हो, ऐसा कह नमस्कार कर पूजते भए।

अथानंतर लक्ष्मणकूं बहुत बेर लगी जान रामचन्द्र सीतासूं कहते भए कि लक्ष्मण कहाँ गया। हे भद्र जटायू ! तू उड़कर लक्ष्मणको देख आ। तब सीता बोली—हे नाथ ! वह लक्ष्मण आया, केसरकर चरचा है अंग जाका, नाना प्रकारकी माला अर सुन्दर वस्त्र पहिरे अर एक खड्ग अद्भुत लिए आवै है सो खड्गसूं ऐसा सोहै है जैसा केसरी सिंहसूं पर्वत शोभै। तब राम, आश्चर्यकूं प्राप्त भया है मन जिनका, अति हर्षित होय लक्ष्मणकूं उठकर उरसे लगाय लिया, सकल वृत्तान्त पूछा। तब लक्ष्मण सर्व बात कही, आप भाई सहित सुखसे विराजे, नाना प्रकारकी कथा करें। अर संबूककी माता चंद्रनखा प्रतिदिन एक ही अन्नका भोजन लावती हुती सो आगे आयकर देखै तो बाँसका बीड़ा कटा पड़ा है, तब विचारती भई जो मेरे पुत्र ने भला न किया, जहां इतने दिन रहा अर विद्या सिद्ध भई ताही बीड़े को काटा सो योग्य नाहीं। अब अटवी छोड़ कहां गया ? इत उत देखै तो अस्त होता जो सूर्य ताके मंडल समान कुण्डल सहित सिर पड़ा है. ताहि देखकर मूर्छा आय गई। सो मूर्छा याका परम उपकार किया नातर पुत्र के मरण करि यह कहाँ जीवै ? बहुरि केतीक बेरमें याहि चेत भया, तब हाहाकार कर उठी। पुत्रका कटा मस्तक देख शोककर अतिविलाप किया, नेत्र आंसुनिसूं भर गए, अकेली वनमें कुरचीकी न्याईं पुकारती भई—हा पुत्र ! बारह वर्ष अर चार दिन यहाँ व्यतीत भए तैसें तीन दिन और हू क्यों न निकसि गए ? तोहि मरण कहांते आया ? हाय पापी काल मैं तेरा कहा बिगाड़्या जो नेत्रनिका निधि मेरा पुत्र तत्काल विनास्या ? मैं पापिनी परभवमें काहू का बालक हता सो मेरा बालक हता गया। हे पुत्र ! आर्तिका मेटनहारा एक वचन तो मुखसूं कह। हे वत्स ! आ, अपना मनोहर रूप मोहि दिखा। ऐसी माया रूप अमंगल क्रीड़ा करना तोहि उचित नाहीं। अब तक तैं माताकी आज्ञा कबहू न लोपी, अब निःकारण यह विनयलोप कार्य करना तोहि योग्य नाहीं, इत्यादिक विकल्प कर विचारती भई कि निःसंदेह मेरा पुत्र परलोककूं प्राप्त भया, विचारा कुछ और ही हुता अर भया कुछ और ही, यह बात विचार

मैं न हुती सो भई। हे पुत्र ! जो तू जीवता अर सूर्यहास खडग सिद्ध होता तो जैसे चंद्र-हासके धारक रावणके सन्मुख कोऊ नाहीं आय सकै है तैसे तेरे सन्मुख कोऊ न आय सकता। मानों चंद्रहास मेरे भाईके हाथ में स्थानक किया सो अपना विरोधी सूर्यहास ताहि तेरे हाथमें न देख सक्या। अर तू भयानक वनमें अकेला निर्दोष नियम का धारी ताहि मार-वेकूं जाके हाथ चले, सो ऐसा पापी खोटा वैरी कौन है ? जा दुष्ट ने तोहि हत्या। अब वह कहाँ जीवता जायगा। या भांति विलाप करती पुत्रका मस्तक गोदमें लेय चूमती भई, मूंगा समान आरक्त हैं नेत्र जाके, बहुरि शोक तज क्रोधरूप होय शत्रुके मारवेकूं दौड़ी। सो चली चली तहां आई, जहां दोऊ भाई विराजे हुते। दोऊ महा रूपवान, मन मोहिवेके कारण, तिनकूं देख याका प्रबल क्रोध तत्काल जाता रहा, तत्काल राग उपजा, मनविषैं चिंतवती भई कि इन दोऊनिमें जो मोहि इच्छै ताहि मैं सेऊँ, यह विचार तत्काल कामा-तुर भई, जैसें कमलनिके वनविषैं हंसनी मोहित होय अर महा हृदविषें भैंस अनुरागिनी होय अर हरे धान के खेत विषें हिरणी अभिलाषिणी होय तैसें इन विषें यह आसक्त भई। सो एक पुन्नाग वृक्षके नीचे बैठी रुदन करै, अति दीन शब्द उचारै, वनकी रज कर धूसरा होय रहा है अंग जाका, ताहि देखकर राम की रमणी सीता अति दयालुचित्त उठकर ताके समीप आय कहती भई कि तू शोक मत कर, हाथ पकड़ ताहि शुभ वचन कह धैर्य बंधाय रामके निकट लाई। तब राम ताहि कहते भए—तू कौन है ? यह दुष्ट जीवनिका भरा वन ता विषें अकेली क्यों विचरै है ? तब वह, कमल सरीखे हैं नेत्र जाके अर भ्रमर की गुंजार समान हैं वचन जाके, सो कहती भई—हे पुरुषोत्तम ! मेरी माता तो मरणकूं प्राप्त भई सो मोकूं गम्य नाहीं, मैं बालक हुती। बहुरि ताके शोककर पिता भी परलोक गया। सो मैं पूर्वले पापतैं कुटुम्बरहित दंडक वनविषैं आई। मेरे मरणकी अभि-लाषा सो या भयानक वनमें काहू दुष्ट जीव ने न भखी, बहुत दिननतैं या वनविषें भटक रही हूं, आज मेरे कोऊ पापकर्मका नाश भया सो आपका दर्शन भया। अब मेरे प्राण न छूटें, ता पहिले मोहि कृपाकर इच्छहु। जो कन्या कुलवन्ती शीलवन्ती होय ताहि कौन न इच्छै ? सबही इच्छैं। तब याके लज्जारहित वचन सुनकर दोऊ भाई नरोत्तम परस्पर अवलोकनकर मौनसूं तिष्ठे। कैसे हैं दोऊ भाई ? सर्वशास्त्रनिके अर्थका जो ज्ञान सोई भया जल ताकरिधोया है मनजिनका, कृत्यअकृत्यके विवेकविषैं प्रवीण, तब वह इनका चित्त निष्काम जान निश्वास नाख कहती भई कि मैं जावूं, तब राम लक्ष्मण बोले—जो तेरी इच्छा होय सो कर। तब वह चली गई। ताके गए पीछे राम लक्ष्मण सीता आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर यह क्रोधायमान होय शीघ्र पतिके समीप गई। अर लक्ष्मण मनमें विचा-रता भया जो यह कौनकी पुत्री ? कौन देश विषें उपजी ? समूह से बिछुरी मृगी समान

यहां कहांसूं आई ? हे श्रेणिक ! यह कार्य कर्तव्य, यह न कर्तव्य, याका परिपाक शुभ या अशुभ, ऐसा विचार अविवेकी न जानें, अज्ञानरूप तिमिरकरि आच्छादित है बुद्धि जिनकी। अर प्रवीण बुद्धि महाविवेकी अविवेकतें रहित हैं सो या लोकविषें ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाशकर योग्य अयोग्य जान अयोग्य के त्यागी होय योग्य क्रिया विषें प्रवृत्तें हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें संबूक का वध वर्णन करने वाला तेतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४३॥

चवालीसवां पर्व

(रावण द्वारा सीता का हरण और राम का विलाप वर्णन)

अथानन्तर जैसें ह्रद का तट फूट जाय अर जल का प्रवाह विस्तारकूं प्राप्त होय तैसें खरदूषणकी स्त्रीका रामलक्ष्मणसे रोग उपजा हुता सो उनकी अवांछातें विध्वंस भया। तब शोकका प्रवास प्रगट भया, अति व्याकुल होय नाना प्रकार विलाप करती भई, आर्तिरूप अग्निकर तप्तायमान है अंग जाका, जैसे बछड़े बिना गाय विलाप करै तैसे शोक करती भई, झरै हैं नेत्रनिके आसूं जाके, सो विलाप करती पति देखी, नष्ट भया है धैर्य जाका अर धूरकर धूसरा है अंग जाका, बिखर रहे हैं केशनिके समूह जाके अर शिथिल होय रही है कटिमेखला जाकी अर नखनिकर विदारे गए हैं वक्षस्थल, कुच अर जंघा जाकी, सो रुधिरकरि आरक्त हैं अर आवरण-रहित,लावण्यता-रहित अर फट गई है चोली जाकी जैसे माते हाथीने कमलनिकूं दलमली होय तैसी याहि देख पति धैर्य बंधाय पूछता भया कि हे कांते ! कौन दुष्टने तोहि ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त करी सो कहो ? वह कौन है जाहि आज आठवां चंद्रमा है अथवा मरण ताके निकट आया है? वह मूढ़ पहाड़के शिखर पर चढ़ सोवै है, सूर्य से क्रीड़ा कर अंधकूप में पड़ै है, दैव तासूं रूसा है, मेरी क्रोधरूप अग्नि विषें पतंग की नाँई पड़ेगा। धिक्कार ता पापी अविवेकीकूं वह पशु समान अपवित्र, अनीति युक्त, इस लोक परलोक भ्रष्ट, जानै तोहि दुखाई, तू बड़वानलकी शिखा समान है, रुदन मत कर, और स्त्रीनि सारिखी तू नाहीं। बड़े वंशकी पुत्री अर बड़े घर परणी आई है। अब ही ता दुराचारीकूं हस्त तलते हण परलोककूं प्राप्त करूँगा जैसें सिंह उन्मत्त हाथीकूं हणै। या भाँति जब पति ने कही तब चंद्रनखा महा कष्ट थकी रुदन तज गदगद वाणीसूं कहती भई—अलखनिकर आच्छादित हैं कपोल जाके, हे नाथ ! मैं पुत्र के देखवेकूं वन विषें नित्य जाती हुती सो आज पुत्रका मस्तक कटा भूमि में परया देख्या अर रुधिर की धाराकर बांसोंका बीड़ा आरक्त देख्या। काहू पापीने मेरे पुत्रकूं मार खड़ग रत्न लिया। कैसा है खड्ग ? देवनिकर सेवने योग्य सो मैं अनेक

दुःखनिका भाजन भाग्य रहित पुत्रका मस्तक गोदमें लेय विलाप करती भई। सो वा पापीने संबूकक्ूं मारया हुता ताने मोहिसूं अनीति विचारी, भुजाकर पकड़ी, मैं कही मोहि छांड़, सो पापी नीच कुली छांड़े नाहीं, नखनिकरि दांतनिकरि विदारी, निर्जन वन विषैं मैं अकेली अर वह बलवान पुरुष, मैं अबला तथापि पूर्व पुण्यसे शील बचाय महाकष्टतैं मैं यहां आई। सर्व विद्याधरनिका स्वामी तीन खण्ड का अधिपति तीनलोक विषें प्रसिद्ध रावण काहूसे न जीत्या जाय सो मेरा भाई अर तुम खरदूषण वावा महाराज, दैत्य जाति के जे विद्याधर तिनके अधिपति, सो मेरे भरतार तथापि मैं दैवयोगतैं या अवस्थाकूं प्राप्त भई। ऐसे चंद्रनखा के वचन सुन महा क्रोध कर जहाँ पुत्रका शरीर मृतक पड़या हुता तहाँ तत्काल गया सो मूवा देखकर अति खेदखिन्न भया। पूर्व अवस्था विषें पुत्र पूर्णमासीके चंद्रमा समान हुता सो महा भयानक भासता भया। खरदूषणने अपने घर आय अपने कुटुम्ब से मन्त्र किया। तब कैयक मंत्री कर्कश चित्त हुते, वे कहते भए कि हे देव ! जाने खड्ग रत्न लिया अर पुत्र हता ताहि जो ढीला छोड़ोगे तो न जानिये कहा करै, सो ताका शीघ्र यत्न करहु अर कैएक विवेकी कहते भए कि हे नाथ ! यह लघु कार्य नाहीं, सर्व सामन्त एकत्र करहु अर रावणपैंहू पत्र पठावहु। जिनके हाथ सूर्यहास खड़ग आया, ते समान पुरुष नाहीं, तातें सर्व सामंत एकत्र कर जो विचार करना होय सो करहु, शीघ्रता न करहु। तब रावण के निकट तो तत्काल दूत पठाया, दूत शीघ्रगामी अर तरुण, सो तत्काल रावण पै गया। रावण का उत्तर आवे पहिले खरदूषण अपने पुत्र के मरण कर महाद्वेष का भरया सामन्तनिसूं कहता भया कि वे रंक विद्याबल-रहित भूमिगोचरी हमारी विद्याधरनिकी सेनारूप समुद्र के तिरवेकूं समर्थ नाहीं। धिक्कार हमारे सूरापनकूं, जो और का सहारा चाहें हैं। हमारी भुजा हैं वही सहाई हैं अर दूजा कौन ? ऐसा कहकर महाअभिमान कूं धरे शीघ्र ही मंदिरसूं विकस्या, आकाश मार्ग गमन किया, तेजरूप है मुख जाका, सो ताहि सर्वथा युद्धके सन्मुख जान चौदह हजार राजा संग चाले,सो दण्डक वनमें आए। तिनकी सेनाके वादित्रनिके शब्द समुद्रके शब्द समान सीता सुनकर भयकूं प्राप्त भई। हे नाथ ! कहा है ! कहा है ! ऐसे शब्द कह पतिके अंगसूं लगी जैसे कलपबेल कल्पवृक्षसूं लगै। तब आप कहते भए कि हे प्रिये ! भय मत कर। याहि धैर्य बंधाय विचारते भए कि यह दुर्धर शब्द सिंहका है अक मेघका है अक समुद्रका है अक दुष्ट पक्षीनका है अक आकाश पूर गया है। तब सीतासूं कहते भए–हे प्रिये ! ए दुष्ट पक्षी हैं जो मनुष्य अर पशुनिकूं लेजांय हैं, धनुषके टंकारतैं इन्हें भगाऊं हूं। इतने ही में शत्रुकी सेना निकट आई, नाना प्रकारके आयुधनिकरि युक्त सुभट दृष्टि पड़े, जैसे पवनके प्रेरे मेघ घटानिके समूह विचरैं तैसे विद्याधर विचरते भए। तब श्रीराम विचारी कि नंदीश्वर द्वीपकूं भगवानकी पूजाके

अर्थ देव जाय हैं अथवा बांसनिके बीड़े में काहू मनुष्यकूं हतकर लक्ष्मण खड्ग रत्न लाया हुवा अर वह कन्या वनमें आई हुती सो कुशील स्त्री हुती, तानैं ये अपने कुटुम्बके सामंत प्रेरे हैं तातैं अब पर सेना समीप आए निश्चित रहना उचित नाहीं, धनुषकी ओर दृष्टि धरी अर बक्तर पहिरवेकी तैयारी करी। तब लक्ष्मण हाथ जोड़ सिर नवाय विनती करता भया कि हे देव! मोहि तिष्ठते आपकूं एता परिश्रम करना उचित नाहीं। आप राजपुत्री की रक्षा करहु, मैं शत्रुनिके सन्मुख जाऊं हूं। सो जो कदाचित भीड़ पड़ेगी तो मैं सिंहनाद करूंगा तब आप मेरी सहाय करियो। ऐसा कहकर बक्तर पहर शस्त्र धार लक्ष्मण शत्रुनिके संमुख युद्धकूं चाल्या। सो वे विद्याधर लक्ष्मणकूं उत्तम आकारका धरनहारा वीराधिवीर श्रेष्ठ पुरुष देख जैसें मेघ पर्वतकूं बेढें तैसें बेढते भए। शक्ति मुद्गर सामान्य चक्र बरछी बाण इत्यादि शस्त्रनिकी वर्षा करते भए सो अकेला लक्ष्मण सर्व विद्याधरनिके चलाए बाण अपने शस्त्रनिकरि निवारता भया अर आप विद्याधरनिकी ओर आकाश में वज्रदंड बाण चलावता भया। यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे हैं कि हे राजन्! अकेला लक्ष्मण विद्याधरनिकी सेनाकूं बाणनिकरि ऐसा रोकता भया जैसे संयमी साधु आत्मज्ञान कर विषयवासनाकूं रोकै, लक्ष्मणके शस्त्रनिकरि विद्याधरनिके सिर रत्ननिके आभरण कर मंडित अर कुन्डलनिकरि शोभित आकाशसे धरतीपर परें मानों अम्बर रूप सरोवरके कमल ही हैं, योधानि सहित पर्वत समान हाथी पड़ें अर अश्वनिसहित सामंत पड़ें, भयानक शब्द करते, होंठ डसते, ऊर्ध्वगामी बाणनिकरि वासुदेव वाहन सहित योधानिकूं पीडता भया। ताही समय पुष्पक विमान विषैं बैठ्या रावण आया, संबूकके मारणहारे पुरुषनिपर उपज्या है महा क्रोध जाकूं सो मार्गमें रामके समीप सीता महा सतीकूं तिष्ठती देखता भया सो देखकर महामोहकूं प्राप्त भया। कैसी है सीता? जाहि लखि रतिका रूप भी या समान न भासै, मानो साक्षात् लक्ष्मी ही है, चन्द्रमा समान सुन्दर वदन निभन्याके फूल समान अधर, केसरी की कटि समान कटि, लहलहात करते चंचल कमल पत्र समान लोचन अर महागजराजके कुंभस्थलके शिखर समान कुच, नवयौवन, सर्व गुणनिकरि पूर्ण, कांतिके समूहकरि संयुक्त है शरीर जाका, मानों कामके धनुषकी पिणच ही है अर नेत्र जाके कामके बाण ही हैं मानों नामकर्मरूप चितेरेने अपनी चपलता निवाहने के निमित्त स्थिरताकर सुखसूं जैसी चाहिए तैसी बनाई है। जाहि लखे रावण की बुद्धि हरी गई। महारूपके अतिशयकूं धरे जो सीता ताके अवलोकनेसे संबूकके मारवेवारे पर जो क्रोध हुवा सो जाता रह्या अर सीता पर रागभाव उपज्या। चित्त की विचित्र गति है, मनमें चितवता भया कि या बिना मेरा जीतव्य कहा अर जो विभूति मेरे घरमें है ताकरि कहा? यह अद्भुतरूप अनुपम महा सुन्दर नवयौवन, मोहि खरदूषणकी सेनामें आया

कोई न जाने ता पहिले याहि हर कर घर लेजाऊं। मेरी कीर्ति सकल लोकमें चन्द्रमा समान निर्मल विस्तर रही है सो छिपकर लेजाने में मलिन न होय। हे श्रेणिक ! अर्थी दोषकूं न गिनै, तातैं गोप्य लेजाइवेका यत्न किया। या लोकमें लोभ समान और अनर्थ नाहीं अर लोभमें परस्त्रीके लोभ समान और महा अनर्थ नाहीं। रावणने अवलोकनी विद्यासूं वृतांत पूछ्या सो वाके कहे से याके नाम कुल सब जाने, अकेला लक्ष्मण अनेकनिसूं लड़नहारा युद्ध में गया अर यह राम हैं। यह इनकी स्त्री सीता है अर जब लक्ष्मण गया तब रामसूं ऐसा कह गया जो मोपै भीड़ पड़ेगी तब सिंहनाद करूंगा तब तुम मेरी सहाय करियो; सो वह सिंहनाद मैं करूं, तब यह राम धनुष बाण लेय भाईपै जावेंगे अर मैं सीताकूं ले जाऊंगा जैसें पक्षी मांसकी डलीकूं ले जाय अर खरदूषणका पुत्र तो इनने मारा ही हुता अर ताकी स्त्रीका अपमान किया सो वह शक्ति आदि शस्त्रनिकरि दोऊ भाइनिकूं मारेहीगा जैसें महाप्रबल नदीका प्रवाह दोऊ ढाहे पाडै, नदीके प्रवाह की शक्ति छिपी नाहीं है तैसें खरदूषणकी शक्ति काहूतैं छिपी नाहीं, सब कोऊ जानै हैं—ऐसा विचार कर मूढमति काम कर पीड़ित रावण मरणके अर्थ सीताके हरणका उपाय करता भया जैसें दुर्बुद्धि बालक विषके लेनेका उपाय करै।

उधर लक्ष्मण अर कटक-सहित खरदूषण दोऊमें महायुद्ध होय रहा है, शस्त्रनिका प्रहार होय रहा है अर इधर कपटकर रावणने सिंहनाद किया, तामें बारंबार राम राम यह शब्द किया। तब राम जानी कि यह सिंहनाद लक्ष्मण किया, जानकर व्याकुल चित्त भए, यह जानी कि भाईपै भीड़ पड़ी। तब रामने जानकीकूं कहा—हे प्रिये ! भय मत करहु, क्षणएक तिष्ठ, ऐसा कह निर्मल पुष्पनि विषैं छिपाई अर जटायूकूं कहा—हे मित्र ! यह स्त्री अबला जाति है, याकी रक्षा करियो, तुम हमारे मित्र हो- सहधर्मी हो, ऐसा कह कर आप धनुष बाण लेय चाले, सो अपशकुन भए सो न गिने, महासतीकूं अकेली वन विषैं छोड़ शीघ्र ही भाई पै गए। महारण में भाईके आगें जाय ठाढे रहे, ता समय रावण सीताकूं उठायवेकूं आया जैसें माता हाथी कमलिनीकूं लेने आवै, कामरूप दाहकर प्रज्वलित है मन जाका, भूल गई है समस्त धर्म की बुद्धि जाकी, सीताकूं उठाय पुष्पक विमान पर धरने लाग्या तब जटायुपक्षी स्वामी की स्त्रीकूं हरता देख क्रोधकर अग्निकर प्रज्वलित भया। उड़कर अतिवेगतैं रावणपर पड्या, तीक्षण नखनिकी अणी अर चूंचसे रावणका उरस्थल रुधिरसंयुक्त किया अर अपनी कठोर पांखनिकर रावण के वस्त्र फाड़ डाले, रावणका सर्व शरीर खेदखिन्न भया। तब रावणने जानी कि यह सीताकूं छुड़ावेगा, झंझट करेगा, तबलों याका धनी आन पहुंचेगा, सो याहि मनोहर वस्तुका अवरोधक जान महाक्रोधकर हाथकी चपेट से मारया सो अति कठोर हाथकी घातसे पक्षी विह्वल होय

पुकारता संता पृथ्वीमें पड़ा अर मूर्छाकूं प्राप्त भया। तब रावण जनकसुताकूं पुष्पक विमानमें धर अपने स्थान चाल्या। हे श्रेणिक! यद्यपि रावण जानै है कि यह कार्य योग्य नाहीं तथापि कामके वशीभूत हुवा सर्व विचार भूल गया। सीता महा सती आपकूं परपुरुष कर हरी जान, रामके अनुरागसे भीज रहा है चित्त जाका, महा शोकवंती होय आर्तिरूप विलाप करती भई, तब रावण याहि निज भरतार विषैं अनुरक्त जान रुदन करती देख कछुइक उदास होय विचारता भया जो यह निरन्तर रोवै है अर विरह कर व्याकुल है, अपने भरतारके गुण गावै है, अन्य पुरुषके संयोगका अभिलाप नाहीं सो स्त्री अवध्य है तातैं मैं मार न सकूं अर कोऊ मेरी आज्ञा उलंघे तो ताहि मारूं। अर मैं साधुनिके निकट व्रत लिया हुता जो परस्त्री मोहि न इच्छै ताहि मैं न सेऊं सो मोहि व्रत दृढ़ राखना, याहि कोऊ उपाय कर प्रसन्न करूं? उपाय किए प्रसन्न होयगी। जैसैं क्रोधवंत राजा शीघ्र ही प्रसन्न न किया जाय तैसैं हठवंती स्त्री भी वश न करी जाय। जो कछु वस्तु है सो यत्नतैं सिद्ध होय है। मनवांछित विद्या, परलोककी क्रिया अर मन भावनी स्त्री ये यत्न से सिद्ध होंय, यह विचारकर रावण सीता के प्रसन्न होयवेका समय हेरै। कैसा है रावण? मरण आया है निकट जाके।

अथानंतर श्रीराम ने बाणरूप जलकी धाराकर पूर्ण जो रणमंडल तामें प्रवेशकिया। सो लक्ष्मण देखकर कहता भया, हाय! हाय! एते दूर आप क्यों आए। हे देव! जानकीकूं अकेली वनविषैं मेल आए! यह वन अनेक विग्रहका भर्या है। तब राम कह्या कि मैं तेरा सिंह नाद सुन शीघ्र ही आया। तब लक्ष्मण कहा—आप भली न करी, अब शीघ्र जहां जानकी है तहां जाहु। तब राम जानी, वीर तो महा धीर है, याहि शत्रु का भय नाहीं। तब याकूं कही कि तू परम उत्साह रूप है, बलवान बैरीकूं जीत, ऐसा कहकर आप सीता की उपजी है शंका जिनको, सो चंचल चित्त होय जानकीकी दिश चाले। क्षणमात्रमें आय देखें तो जानकी नाहीं; तब प्रथम तो विचारी कि कदाचित् सुरतिभंग भया हूं बहुरि निर्धारण देखें तो सीता नाहीं, तब आप हाय सीता! ऐसा कह मूर्च्छा खाय धरती पर पड़े। सो धरती रामके विलाप से कैसी सोहती भई जैसे भरतारके मिलाप से भार्य्या सोहै। बहुरि सचेत होय वृक्षनिकी ओर दृष्टि धर प्रेम के भरे अत्यंत आकुलित होय कहते भए—हे देवी! तू कहां गई? क्यों न बोलहु? बहुत हास्य करि कहा? वृक्षनिके आश्रय बैठी होय तो शीघ्र ही आवहु, कोपकर कहा? मैं तो शीघ्र ही तिहारे निकट आया। हे प्राण बल्लभे! यह तिहारा कोप हमें सुख का कारण नाहीं, या भाँति विलाप करते फिरै हैं। सो एक नीची भूमि में जटायुकूं कंठगत प्राण देख्या, तब आप पक्षीकूं अत्यन्त खेद खिन्न होय ताके समीप बैठ नमोकार मंत्र दिया अर दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये

चार आराधना सुनाई, अरहंत सिद्ध साधु केवली प्रणीत धर्मका शरण लिवाया। पक्षी श्रावक के व्रतका धरणहारा श्रीरामके अनुग्रह करि समाधिमरण कर स्वर्गविषैं देव भया, परम्पराय मोक्ष जायगा। पक्षीके मरण के पीछे आप यद्यपि ज्ञानरूप हैं तथापि चारित्र मोह के वश होय महाशोकवन्त अकेले वन विषैं प्रियाके वियोगके दाहकर मूर्च्छा खाय पड़े, बहुरि सचेत होय महा व्याकुल महासती सीताकूं ढूंढते फिरें, विराश भए दीन वचन कहैं जैसे भूतके आवेश कर युक्त पुरुष वृथा आलाप करै। छिद्र पाय यहां भीम वनमें काहू पापी ने जानकी हरी सो बहुत विपरीत करी, मोहि मार्‌या, अब जो कोई मोहि प्रिया मिलावै अर मेरा शोक हरै, ता समान मेरा परम बांधव नाहीं। हे वन के वृक्षो! तुमने जनक सुता देखी? चंपाके पुष्प समान रंग, कमलदल लोचन, सुकुमार चरण, निर्मल स्वभाव, उत्तम चाल, चित्तकी उत्सव करणहारी, कमलके मकरंद समान सुगंध मुखका स्वांस, स्त्रीनिके मध्य श्रेष्ठ, तुमने पूर्व देखी होय तो कहो। या भांति वनके वृक्षविसूं पूछें हैं, सो वे एकेन्द्री वृक्ष कहा उत्तर देवें। तब राम सीताके गुणनिकर हर्‌या है मन जाका, बहुरि मूर्च्छा खाय धरती पर पड़े बहुरि सचेत होय महा क्रोधायमान वज्रा-वर्त धनुष हाथ में लिया, फिणच चढ़ाई, टंकोर किया, सो दसों दिशा शब्दायमान भईं, सिंहनिकूं भयका उपजावनहारा नरसिंहने धनुषका नाद किया। सो सिंह भाग गए, गजनिके मद उतर गए। तब धनुष उतार अत्यंत विषादकूं प्राप्त होय बैठकर अपनी भूलका सोच करते भए, हाय हाय! मैं मिथ्या सिंहनादके श्रवणकर विश्वास मान वृथा जाय प्रिया खोई, जैसे मूढ जीव कुश्रुत का श्रवण कर विश्वास मान अविवेकी होय शुभगतिकूं खोवै, सो मूढके खोयवेका आश्चर्य नाहीं परन्तु मैं धर्मबुद्धि वीतरागके मार्गका श्रद्धानी असमर्थ होय असुर की माया में मोहित हुवा, यह आश्चर्य की बात है। जैसें या भव वनविषैं अत्यंत दुर्लभ मनुष्यकी देह महापुण्य कर्मकर पाई, ताहि वृथा खोवै सो बहुरि कब पावै? अर त्रैलोक्य विषैं दुर्लभ महारत्न ताहि समुद्र में डारै, बहुरि कहां पावै? तैसें वनितारूप अमृत मेरे हाथसूं गया। बहुरि कौन उपायकरि पाइये? या निर्जन वन विषैं कौनकूं दोषदूं। मैं ताहि तजकर भाई पै गया सो कदाचित् कोपकर आर्या भई होय। अरण्य वनविषैं मनुष्य नाहीं, कौनकूं जाय पूछें? जो हमकूं स्त्रीकी वार्ता कहै। ऐसा कोई यालोक विषैं दयावान् श्रेष्ठ पुरुष है जो मोहि सीता दिखावै, वह महासती शीलवंती सर्व पापरहित, मेरे हृदयकूं वल्लभ, मेरा मनरूप मंदिर ताके विरहरूप अग्निकर जरै है सो ताकी वार्ता-रूप जलके दानकर कौन बुझावै? ऐसा कहकर परम उदास, धरतीकी ओर है दृष्टि जाकी, बारंबार कछुइक विचार कर निश्चल होय तिष्ठे। एक चकवीका शब्द निकट ही सुन्या

सो सुनकर ताकी ओर निरखा। बहुरि विचारी कि या गिरिका तट अत्यन्त सुगंध होय रहा है सो याही ओर गई होय अथवा यह कमलनिका वन है—यहां कौतूहलके अर्थ गई होय, आगे याने यह वन देखा हुता सो स्थानक मनोहर है, नानाप्रकार पुष्पविकर पूर्ण है, कदाचित् तहां क्षणमात्र गई होय, सो यह विचार आप वहां गए। वहां हू सीताकूं न देख्या, चकवी देखी, तब विचारी कि वह पतिव्रता मेरे बिना अकेली कहां जाय ? बहुरि व्याकुलताकूं प्राप्त होय पर्वतसूँ पूछते भए कि हे गिरिराज ! तू अनेक धातुविकरि भरया है, मैं राजा दशरथ का पुत्र रामचन्द्र तोहि पूछूं हूँ, कमल सारिखे नेत्र हैं जाके, सो सीता मेरे मनकी प्यारी हंसगामिनी, सुन्दर स्तनके भारकरि नम्रीभूत है अंग जाका, किंदूरी समान अधर, सुन्दर नितंब सो तुम कहूं देखी, वह कहाँ है ? तब पहाड कहा जवाब देय, इनके शब्दसे गूंजा। तब आप जानी कि याने कुछ स्पष्ट न कही, जानिए है याने न देखी, वह महासती कालको प्राप्त भई। यह नदी प्रचंड तरंगनिकी धरनहारी अत्यंत वेगकूं धरे बहै है, अविवेकवंती ताने मेरी कांता हरी, जैसें पापकी इच्छा विद्याकूं हरै अथवा कोई क्रूर सिंह क्षुधातुर भख गया होय। वह धर्मात्मा साधुवर्गनिकी सेवक सिंहादिकके देखते ही नखादिके स्पर्श बिना ही प्राण देय। मेरा भाई भयानक रणविषैं संग्राममें है सो जीवने का संशय ही है। यह संसार असार है अर सर्व जीवराशि संशय रूप ही है, अहो! यह बड़ा आश्चर्य है जो मैं संसार का स्वरूप जानूं हूँ अर दुःखमय होय रहा हूँ। एक दुःख पूरा नहीं परै है अर दूजा और आवै है, तातैं जानिए है यह ससार दुःख का सागर ही है जैसें खोडे पगकूं खडित करना अर दाहे मारेको भस्म करना अर डिगेकूं गर्त में डारना। रामचद्रजीने वनविषैं भ्रमणकर मृग सिंहादिक अनेक जंतु देखे परन्तु सीता न देखी तब अपने आश्रम आय अत्यन्त दीन वदन धनुष उतार पृथ्वी में तिष्ठे। बारंबार अनेक विकल्प करते क्षणएक निश्चल होय मुखसे पुकारते भए। हे श्रेणिक ! ऐसे महापुरुषनिकूं भी पूर्वोपार्जित अशुभ के उदयसूं दुःख होय है, ऐसा जानकर अहो भव्यजीव हो ! सदा जिनवर के धर्म में बुद्धि लगाओ, संसारतैं ममता तजो। जे पुरुष संसारके विकारसूं पराङ्मुख होय अर जिनवचनकूं नाहीं आराधैं, वे संसार विषैं शरण रहित पापरूप वृक्षके कटुक फल भोगवै हैं, कर्मरूप शत्रुके आतापसे खेद-खिन्न होय हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं सीता हरण व राम का विलाप वर्णन करने वाला चवालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४४॥

पैंतालीसवां पर्व

(राम के सीता-वियोग-जनित सन्ताप का वर्णन)

अथानंतर लक्ष्मण के समीप युद्ध विषैं खरदूषण का शत्रु विराधित नामा विद्याधर

अपने मंत्री अर शूरवीरनि सहित शस्त्रनिकर पूर्ण आया सो लक्ष्मणकूं अकेला युद्ध करता देख महानरोत्तम जाव अपने स्वार्थकी सिद्धि इनसे जान प्रसन्न भया, महा तेजकर दैदीप्यमान शोभता भया, वाहनतैं उतर गोड़े धरती लगाय हाथ जोड़ सीस नवाय अति वशीभूत होय परम विनयसूं कहता भया–हे नाथ ! मैं आपका भक्त हूँ, कछुइक मेरी विनती सुनो, तुम सारिखेनिका संसर्ग हम सारिखेनिके दुःखका क्षय करनहारा है, वाने आधी कही आप सारी समझ गए। ताके मस्तक पर हाथ धर कहते भए कि तू डरै मत, हमारे पीछे खड़ा रह, तब वह नमस्कारकर अति आश्चर्यकूं प्राप्त होय कहता भया कि हे प्रभो ! यह खरदूषण शत्रु महाशक्तिकूं धरै है, याहि आप निवारहु अर सेनाके योधानिकरि मैं लड़ूंगा। ऐसा कह खरदूषण के योद्धानिसूं विराधित लड़ने लाग्या, दौड़कर तिनके कटक पर पर्‌या, अपनी सेनासहित झूलझलाट करै है आयुधनिके समूह ताके, विराधित तिनकूं प्रगट कहता भया–मैं राजा चंद्रोदयका पुत्र विराधित युद्धका अभिलाषी, घने दिननिविषैं पिताका वैर लेवे आया हूं, अब तुम कहाँ जावो हो, जो युद्धमें प्रवीण हो तो खड़े रहो, मैं ऐसा भयंकर फल दूंगा जैसा यम देय, ऐसा कहा तब तिन योद्धानिके अर इनके महासंग्राम भया, अनेक सुभट दोऊ सेनानिके मारे गए। प्यादे प्यादेनिसूं, घोड़निके असवार घोड़निके असवारनिसूं, हाथीनिके असवार हाथीनिके असवारनिसूं, रथी रथीनिसूं परस्पर हर्षित होय युद्ध करते भए। वह वाहि बुलावै, वह वाहि बुलावै, या भाँति परस्पर युद्ध कर दसों दिशानिकूं बाणनिकर आच्छादित करते भये।

अथानंतर लक्ष्मण अर खरदूषण का महायुद्ध भया जैसें इन्द्र असुरेंद्रके युद्ध होय। ता समय खरदूषण क्रोध कर मंडित लक्ष्मणसूं लाल नेत्र कर कहता भया कि मेरा पुत्र निर्वैर सो तूने हत्या अर हे चपल ! तूने मेरी कांता के कुच मर्दन किए, सो पापी अब मेरी दृष्टिसूं कहाँ जायगा ? आज तीक्ष्ण बाणनिकरि तेरे प्राण हरूंगा, तैं जैसे कर्म किए हैं तैसा फल भोगेगा। हे क्षुद्र निर्लज्ज परस्त्री संग लोलुपी ! मेरे सन्मुख आयकर परलोक जाहु। तब ताके कठोर वचननिकर प्रज्वलित भया है मन जाका सो लक्ष्मण वचनकर सकल आकाशकूं पूरता संता कहता भया–अरे क्षुद्र ! वृथा काहे गाजै है, जहां तेरा पुत्र गया वहाँ तोहि पठाऊंगा, ऐसा कहकर आकाश विषैं तिष्ठता जो खरदूषण ताहि लक्ष्मण ने रथ रहित किया अर ताका धनुष तोड़्या अर ध्वजा उड़ाय दई अर प्रभारहित किया तब वह क्रोधकर भर्‌या पृथ्वी विषैं पड़्या जैसें क्षीणपुण्य भया देव स्वर्गतैं पड़ै। बहुरि महा सुभट खड्ग लेय लक्ष्मण पर आया तब लक्ष्मण सूर्यहास खड्ग लेय ताके सन्मुख भया। इन दोऊनिमें नाना प्रकार महायुद्ध भया, देव पुष्पवृष्टि करते भए अर धन्य २ शब्द करते भए, बहुरि महा युद्धके विषैं सूर्यहास खड्ग कर लक्ष्मण नें खरदूषणका सिर काट्या, सो

निर्जीव होय खरदूषण पृथ्वी विषें पर्‌या मानों स्वर्गसूं देव पर्‌या, सूर्य समान है तेज जाका, मानों रत्न पर्वतका शिखर दिग्गज ने ढाहा।

अथानंतर खरदूषणका सेनापति दूषण विराधितकूं रथ रहित करवेकूं आरम्भता भया। तब लक्ष्मण बाणकरि मर्मस्थल विषें घायल किया सो घूमता भूमिमें पर्‌या। अर लक्ष्मण ने खरदूषण का समुदाय अर पाताल लंकापुरी विराधितकूं दीनी अर लक्ष्मण अतिस्नेहका भर्‌या जहाँ राम तिष्ठै हैं तहाँ आया, आकर देखै तो आप भूमिमें पड़े हैं अर स्थानक में सीता नाहीं। तब लक्ष्मणने कही—हे नाथ! कहां सोवो हो, जानकी कहाँ गई। तब राम उठकर लक्ष्मणकूं घाव रहित देख कछु इक हर्षकूं प्राप्त भए। लक्ष्मणकूं उरसे लगाया अर कहते भए—हे भाई! मैं न जानूं कि जानकी कहां गई, कोई हर लेगया अथवा सिंह भख गया, बहुत हेरी सो न पाई, अति सुकुमार शरीर उद्वेग कर विलय गई। तब लक्ष्मण विषादरूप होय क्रोध कर कहता भया—हे देव! सोचके प्रबन्ध कर कहा? यह निश्चय करो कि कोई दुष्ट दैत्य हर ले गया है, जहाँ तिष्ठै है सो लावेंगे, आप संदेह न करो। नाना प्रकार के प्रिय वचननिकरि रामकूं धैर्य बंधाया अर निर्मल जल करि सुबुद्धि ने रामका मुख धुवाया। ताही समय विशेष शब्द सुन राम पूछी, यह शब्द काहे का है? तब लक्ष्मणने कहा—हे नाथ! यह चन्द्रोदय विद्याधर का पुत्र विराधित याने रणमें मेरा बहुत उपकार किया, सो आपके निकट आया है, याकी सेनाका शब्द है। या भांति दोऊ वीर वार्ता करै हैं। अर वह बड़ी सेना सहित हाथ जोड़ नमस्कार कर जय जय शब्द कह अपने मंत्रीनि सहित विनती करता भया—आप हमारे स्वामी हो, हम सेवक हैं, जो कार्य होय ताकी आज्ञा देहु। तब लक्ष्मण कहता भया, हे मित्र! काहू दुराचारी ने मेरे प्रभु की स्त्री हरी है ता बिना ये श्री राम कदाचित् शोक के वशी होय प्राणकूं तजें तो मैं भी अग्निमें प्रवेश करूंगा, इनके प्राणनिके आधार मेरे प्राण हैं, यह तू निश्चय जान तातैं यह कार्य कर्तव्य है, भली जानै सो कर। तब यह बात सुन वह अति दुःखित होय नीचा मुख कर रहा अर मनमें विचारता भया—एते दिन मोहि स्थानक भ्रष्ट हुए भए, नाना प्रकार वन विहार किया अर इनने मेरा शत्रु हुवा, स्थानक दिया, तिनकी यह दशा है; मैं जो २ वेलि पकरू हूँ सो सो उपड़ जाय है, यह समस्त जगत् कर्माधीन है तथापि मैं कछू उद्यम कर इनका कार्य सिद्ध करूं, ऐसा विचार कर अपने मंत्रीनिसूं कहा—पुरुषोत्तमकी स्त्री रत्न पृथ्वी विषें जहाँ होय तहाँ जल स्थल आकाश पुर वन गिरि ग्रामादिक में यत्न कर हेरहु, यह कार्य भए मनवांछित फल पावोगे। ऐसी राजा विराधितकी आज्ञा सुन यश के अर्थी सब दिशाकूं विद्याधर दौड़े।

अथानंतर एक अर्कजटी का पुत्र रत्नजटी विद्याधर सो आकाश मार्ग में जाता

हुता ताने सीता के रुदन की 'हाय राम, हाय लक्ष्मण' यह ध्वनि समुद्र के ऊपर आकाश में सुनी, तब रत्नजटी वहां आय देखै तो रावण के विमान में सीता बैठी विलाप करै है। तब सीताको विलाप करती देख रत्नजटी क्रोधका भर्‍या रावणसों कहता भया—हे पापी दुष्ट विद्याधर ! ऐसा अपराध कर कहां जायगा, यह भामण्डलकी बहिन है, रामदेव की रानी है। मैं भामंडल का सेवक हूं, हे दुर्बुद्धि! जीया चाहै तो याहि छोड़। तब रावण अति क्रोध कर युद्धकूं उद्यमी भया। बहुरि विचारी, कदाचित् युद्ध के होते अति विह्वल भो सीता सो मर जावै तो भला नाहीं तातैं यद्यपि यह विद्याधर रंक है तथापि याहि न मारना, ऐसा विचार रावण महाबली ने रत्नजटी की विद्या हर लीनी अर वह आकाशतैं पृथ्वी विषें पर्‍या, मंत्रके प्रभावकरि धीरे धीरे स्फुलिंग की न्याईं समुद्र के मध्य जंबूद्वीप में आय पर्‍या, आयु कर्म के योगतैं जीवता बचा। जैसे वणिक का जहाज फट जाय अर जीवता बचै,सो रत्नजटी विद्या खोय जीवता बच्या सो विद्या तो जाती रही जाकरि विमान विषें बैठ घर पहुंचे, सो अत्यन्त स्वाँस लेता कम्बूपर्वत पर चढ़ दिशाका अवलोकन करता भया, समुद्र की शीतल पवन कर खेद मिट्या, सो वन-फल खाय कम्बु-पर्वत पर रहै। अर जो विराधितके सेवक विद्याधर सब दिशा नाना भेष कर दौड़े हुते ते सीताकूं न देख पाछे आए। सो उनका मलिन मुख देख राम ने जानी कि सीता इनकी दृष्टि न आई, तब राम दीर्घ स्वाँस नाख कहते भए—

हे भले विद्याधरो! तुमने हमारे कार्य के अर्थ अपनी शक्ति प्रमाण अति यत्न किया परन्तु हमारे अशुभ का उदय, तातैं अब तुम सुखसूं अपने स्थानक जाहु, हाथतैं बड़वानल में गया रत्न बहुरि कहाँ दीखै, कर्मका फल है सो अवश्य भोगना, हमारा तिहारा निवार्‍या न निवरै। हम कुटुम्बतैं छूटे, वन में पैठे तौ हू कर्म शत्रुकूं दया न उपजी, तातैं हम जानी कि हमारे असाता का उदय है. सीता हू गई, या समान और दु.ख कहा होयगा। या भांति कहकर राम रोवने लागे, महाधीर नरनिके अधिपति, तब विराधित धैर्य बंधायवे विषें पडित नमस्कार कर हाथ जोड़ कहता भया—हे देव ! आप एता विषाद कहा करो, थोड़े ही दिनमें आप जनकसुताकूं देखोगे। कैसी हे जनक सुता ? निःपाप है देह जाकी। हे प्रभो ! यह शोक महाशत्रु है, शरीर का नाश करै, और वस्तु की कहा बात ? तातैं आप धैर्य अंगीकार करहु, यह धैर्य ही महापुरुषनिका सर्वस्व है, आप सारिखे पुरुष विवेक के निवास हैं। धैर्यवन्त प्राणी अनेक कल्याण देखैं अर आतुर अत्यन्त कष्ट करै तौ हू इष्ट वस्तुकूं न देखें। अर यह समय विषादका नाहीं, आप मन लगाय सुनहु, विद्याधरनि का महाराजा खरदूषण मार्‍या सो अब याका परिपाक महाविषम है, सुग्रीव किहकंधापुर का धनी अर इन्द्रजीत कुम्भकरण त्रिशिर अक्षोभ भीम क्रूरकर्मा महोदर इनकूं आदिदेय

अनेक विद्याधर महा बलवन्त योधा याके परम मित्र हैं सो ताके मरणके दुःखतें क्रोधकूं प्राप्त भए होंगे, ये समस्त नाना प्रकार युद्धमें प्रवीण हैं, हजारां ठौर रणविषें कीर्ति पाय चुके हैं अर वैताड्यपर्वतके अनेक विद्याधर खरदूषण के मित्र हैं अर पवनंजय का पुत्र हनुमान जाहि लखे सुभट दूर हीतें डरें, ताके सन्मुख देव हू न आवै सो खरदूषण का जमाई है तातें वह हू या के मरण का रोष करेगा तातैं यहाँ वन विषें न रहना, अलंकारोदय नगर जो पाताललंका ता विषें विराजिये अर भामंडलकूं सीताके समाचार पठाइये, वह नगर महादुर्गम है, तहाँ निश्चल होय कार्यका उपाय सर्वथा करेंगे, या भाँति विराधित विनती करी। तब दोऊ भाई चार घोड़ेनिका रथ [illegible]ढकर पाताल लंकाकूं चाले सो दोऊ पुरुषोत्तम सीता बिना न शोभते भए जैसें सम्यग्दृष्टि बिना ज्ञान-चारित्र न सोहै; चतुरंग सेनारूप सागरकरि मंडित दंडकवनतें चाले, विराधित अगाऊ गया, तहां चन्द्रनखा का पुत्र सुन्दर सो लड़वेकूं नगरके बाहिर निकस्या, तानै युद्ध किया, सो ताकूं जीत नगर में प्रवेश किया, देवनिके नगर समान वह नगर रत्नमई तहाँ खरदूषणके मंदिर विषें विराजे सो महामनोहर सुरमंदिर समान वह मंदिर तहाँ सीता बिना रंचमात्र हू विश्रामकूं न पावते भए, सीता में है मन रामका सो रामकूं प्रियाके समीप कर वनहू मनोज्ञ भासता हुता, अब कांताके वियोग कर दग्ध जो राम तिनकूं नगर मंदिर विन्ध्याचल वन के समान भासे।

अथानंतर खरदूषण के मन्दिर में जिनमंदिर देखकर रघुनाथ प्रवेश किया। वह अरहंत की प्रतिमा देखकर रत्नमई पुष्पनिकर अर्चा करी, क्षणएक सीताका संताप भूल गए। जहाँ जहां भगवान के चैत्यालय हुते तहाँ तहाँ दर्शन किया, प्रशांत भई है दुःखकी लहर जिनके, रामचंद्र खरदूषणके महल विषें तिष्ठे हैं। अर सुन्दर अपनी माता चन्द्रनखा सहित पिता अर भाई के शोककर महाशोक सहित लंका गया। यह परिग्रह विनाशीक है अर महादुःखका कारण है, विघ्नकर युक्त है, तातें हे भव्य जीवो! तिन विषें इच्छा निवारहु। यद्यपि जीवनिके पूर्व कर्मके सम्बन्धसूं परिग्रह की अभिलाषा होय है तथापि साधुवर्गके उपदेशकरि यह तृष्णा निवृत्त होय है जैसें सूर्यके उदयतें रात्रि निवृत्त होय है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषें रामको सीता का वियोग अर पाताल लंका विषैं निवास वर्णन करने वाला पैंतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४५॥

छयालीसवां पर्व

(लंका के मायामई कोट का वर्णन)

अथानन्तर रावण सीताकूं लेय विमानके ऊंचे शिखर पर तिष्ठता धीरे चालता भया जैसें आकाश विषें सूर्य चालै। शोक कर तप्तायमान जो सीता ताका मुख कमल

कुमलाय गया देख रति के रागकर मूढ भया है मन जाका ऐसा जो रावण सो सीता के चौगिर्द फिरै अर दीन बचन कहै—हे देवी । कामके बाण कर मैं हता जाऊं हूं सो तोहि मनुष्य की हत्या होयगी । हे सुन्दरी ! यह तेरा मुखरूप कमल सर्वथा कोप-संयुक्त है तौ हू मनोज्ञ ते अधिक मनोज्ञ भासै है । प्रसन्न हो, एक बार मेरी ओर दृष्टि धर देख, अपने नेत्रनिकी कांतिरूप जलकर मोहि स्नान कराय अर जो कृपादृष्टि कर नाहीं निहारै तो अपने चरण कमल करि मेरा मस्तक तोड़ । हाय! हाय! तेरी क्रीड़ा के वनविषैं मैं अशोक वृक्ष ही क्यों न भया, जो तेरे [illegible] पगथलीकी घात अत्यन्त प्रशंसा योग्य सो मोहि सुलभ होती । भावार्थ— [illegible] पगथलीके घात से फूलै । हे कृशोदरि ! विमानके शिखर पर तिष्ठी सर्व दिशा देख मैं सूयके ऊपर आकाश विषैं आया हूं । मेरु कुलाचल अर समुद्र सहित पृथ्वी देख मानो काहू सिलावट ने रची है, ऐसे वचन रावण ने कहे । तब वह महासती शीलका सुमेरु पटके अंतर अरुचिके अक्षर कहती भई कि हे अधम! दूर रह, मेरे अंगका स्पर्श मत कर अर ऐसे निंद्य वचन कभी मत कह । रे पापी! अल्प आयु ! कुगतिगामी ! अपयशी ! तेरा यह दुराचार तोहिकूं भयकारी है, परदारा की अभिलाषा करता तू महादुःख पावेगा । जैसे कोई भस्म कर दबी अग्नि पर पाँव धरै तो जरै, तैसे तू इन कर्मनिकरि बहुत पछतावेगा । तू महा मोह रूप कीच करि मलिन चित्त है, तोहि धर्मका उपदेश देना वृथा है जैसे अन्धे के निकट नृत्य करै । हे क्षुद्र ! जे पर स्त्री की अभिलाषा करै हैं ते इच्छा मात्र ही पापको बाँधकर नरक विषैं महाकष्टकूं भोगैं हैं, इत्यादि रूक्ष वचन सीताने रावणसूं कहे । तथापि काम कर हता है चित्त जाका सो अविवेकसूं पाछा न भया । अर खरदूषणकी मददकूं जे परम हितु शुक हस्त प्रहस्तादिक गए हुते ते खरदूषण के मूवे पीछे उदास होय लंका आए सो रावण काहूकी ओर देखै नाहीं, जानकीकूं नाना प्रकारके वचनकर प्रसन्न करै सो वह कहाँ प्रसन्न होय ? जैसे अग्नि की ज्वालाकूं कोई पीय न सकै अर नाग के माथेकी मणिको न लेय सकै, तैसे सीताकूं कोई मोह न उपजाय सकै । बहुरि रावण हाथ जोड़ सीस नवाय नमस्कार कर नाना प्रकार के दीनता के बचन कहे सो सीता याके वचन कछू न सुने । अर मन्त्री आदि सन्मुख आए, सर्व दिशानितैं सामन्त आए । राक्षसनिका पति जो रावण सो अनेक लोकनिकर मंडित होता भया, लोक जय जयकार शब्द करते भए । मनोहर गीत नृत्य वादित्र होते भए । रावणने इन्द्रकी न्याईं लंकाविषैं प्रवेश किया, सीता चित्तमैं चिंतवती भई कि जब राजा ही अमर्यादाकी रीति करै तब पृथ्वी कौनके शरण रहै । जब लग रामचंद्रकी कुशल क्षेम वार्ता मैं न सुनूं तब लग खान-पानका मेरे त्याग है । रावण देवारण्य नामा उपवन, स्वर्ग समान परम सुन्दर, जहाँ कल्पवृक्ष, वहाँ सीताको मेलकर अपने मंदिर

गया, ताहि समय खरदूषण के मरणके समाचार आए सो महाशोककर रावणकी अठारह हजार रानी ऊंचे स्वरकर विलाप करती भईं अर चंद्रनखा रावण की गोद विषैं लोटकर अति रुदन कर कहती भई कि हाय मैं अभागिनी हती गई, मेरा धनी मारा गया, मेहके झरवे समान रुदन किया, अश्रुपात का प्रवाह बहा, पति अर पुत्र दोऊके मरणके शोकरूप अग्निकर दग्धायमान है हृदय जाका, सो याहि विलाप करती देख याका भाई रावण कहता भया—हे वत्से ! रोयवेकर कहा, या जगत्के प्रसिद्ध चरित्रको कहा न जाने है। बिना काल कोऊ वज्रसे भी हता न मरे अर जब मृत्युकाल आवै तब सहज ही मर जाय। कहाँ वे भूमिगोचरी रंक अर कहाँ तेरा भरतार विद्याधरनिका अधिपति खरदूषण; ताहि वे मारें, यह काल ही का कारण है। जाने तेरा पति मारा ताको मैं मारूंगा, या भाँति बहिनकूं धैर्य बंधाय कहता भया। अब तू भगवान्का अर्चनकर, श्राविकाके व्रत धार, चंद्रनखाकूं ऐसा कहकर रावण महलविषैं गया, सर्प की न्याईं निश्वास नाखता सेजपर पडा। वहाँ पटरानी मन्दोदरी आयकर भरतारकूं व्याकुल देख कहती भई—हे नाथ ! खरदूषणके मरण कर अति व्याकुल भए हो, सो तिहारे सुभट कुलविषैं यह बात उचित नाहीं। जे शूरवीर हैं तिनके मोटी आपदा विषैं हू विषाद नाहीं, तुम वीराधिवीर क्षत्री हो, तिहारे कुल में तिहारे पुरुष अर तिहारे मित्र रण संग्रामविषैं अनेक क्षय भए, सो कौन-कौन का शोक करोगे। कबहूं काहूका शोक न किया, अब खरदूषण का एता सोच क्यों करो हो ? पूर्वे इन्द्रके संग्राम विषैं तिहारा काका श्रीमाली मरणकूं प्राप्त भया अर अनेक बांधव रण में हते गए, तुम काहू का कभी शोक न किया, आज ऐसा सोच दृष्टि क्यों पड़ा है जो पूर्वे कबहू हमारी दृष्टि न पड़ा। तब रावण निश्वास नाख बोला कि हे सुन्दरी ! सुन, अपने अन्तःकरणका रहस्य तोहि कहूं हूँ, तू मेरे प्राणनिकी स्वामिनी है अर सदा मेरी वांछा पूर्ण करै है, जो तू मेरा जीतव्य चाहै है तो कोप मत कर, मैं कहूं सो कर, सर्व वस्तुका मूल प्राण हैं। तब मन्दोदरी कही जो आप कहो सो मैं करूं। तब रावण याकी सलाह लेय बिलखा होय कहता भया—हे प्रिये ! एक सीता नामा स्त्री, स्त्रीनिकी सृष्टिविषैं ऐसी और नाहीं सो वह मोहि न इच्छै तो मेरा जीवन नाहीं, मेरा लावण्यता रूप माधुर्यता सुन्दरता ता सुन्दरीकूं पायकर सफल होय। तब मन्दोदरी याकी दशा कष्टरूप जान हँसकर दाँतनिकी कांति रूप चांदनीकूं प्रकाशती संती कहती भई—हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि तुम सारिखे प्रार्थना करैं अर वह तुमको न इच्छै, सो मन्दभागिनी है। या संसार में ऐसी कौन परम सुन्दरी है जाका मन तिहारे देखे खंडित न होय अर मन मोहित न होय अथवा वह सीता कोई परम उदयरूप अद्भुत त्रैलोक्य सुन्दरी है जाको तुम इच्छो हो अर वह तुमको नाहीं इच्छै है, ये तिहारे कर हस्तीकी सूंड समान, रत्न जड़ित बाजूनिकर युक्त तिन करि उरसैं

लगाय बलात्कार क्यों न सेवहु। तब रावण कही कि या सर्वांगसुन्दरीसूं मैं बलात्कार नाहीं गहूं, ताका कारण सुन—अनंतवीर्य केवलीके निकट मैं एक व्रत लिया है, वे भगवान् देव इन्द्रादिक कर वंदनीक ऐसा व्याख्यान करते भए-या संसारविषें भ्रमण करते जे जीव परम दुःखी तिनके पापनि की निवृत्ति निर्वाणका कारण है, एक भी नियम महाफलकूं देय है अर जिनके एक भी व्रत नाहीं वे नर जर्जर कलश समान निर्गुण हैं। जिनके मोक्ष का कारण कोई नियम नाहीं तिन मनुष्यनिमें अर पशुनिमें कछू अन्तर नाहीं, तातैं अपनी शक्ति प्रमाण पापनिको तजहु, सुकृतरूप धनको अंगीकार करहु, जातैं जन्मके आंधेकी न्याईं संसाररूप अन्धकूपमें न परो। या भांति भगवान् के मुखरूप कमलतैं निकसे वचन-रूप अमृत पीकर कैएक मनुष्य तो मुनि भए, कैएक अल्पशक्ति अणुव्रतकूं धारण कर श्रावक भए, कर्मके संबंधतैं सबकी एक तुल्य शक्ति नाहीं। वहां भगवान् केवलीके समीप एक साधु मोसे कृपाकर कहता भया—हे दशानन! कछू नियम तुमहु लेहु, तू दया-धर्मरूप रत्न-द्वीप विषें आया है सो गुणरूप रत्ननिके संग्रह बिना खाली मति जाहु। ऐसा कही तब मैं प्रमाण कर देव असुर विद्याधर मुनि सर्व की साक्षी व्रत लिया कि जो परनारी मोहि न इच्छै ताहि मैं बलात्कार न सेऊं। हे प्राणप्रिये! मैं विचारी जो मोसे रूपवान नर को देख ऐसी कौनसी नारी है जो मान करै, तातैं मैं बलात्कार न सेऊं। राजानिकी यही रीति है जो वचन कहे सो निवाहैं, अन्यथा महादोष लागै। तातैं मैं प्राण तजूं, ता पहिले सीताको प्रसन्न कर; घरके भस्म भए पीछे कूवां खोदना वृथा है। तब मंदोदरी रावणकूं विह्वल जान कहती भई—हे नाथ! तिहारी आज्ञा-प्रमाण ही होयगा। ऐसा कह देवारण्य नामा उद्यान विषें गई अर ताकी आज्ञा पाय रावणकी अठारह हजार रानी गईं। मंदोदरी जायकर सीताकूं या भांति कहती भई—हे सुन्दरी! हर्षके स्थानक विषें कहा विषाद कर रही है, जा स्त्रीके रावणपति सो जगतविषें धन्य है। सब विद्याधरनिका अधिपति, सुरपतिका जीतनहारा, तीनलोक विषें सुन्दर, ताहि क्यों न इच्छै। निर्जन वनके निवासी, निर्धन, शक्तिहीन भूमिगोचरी तिनके अर्थ कहा दुःख करै है, सर्व लोकविषें श्रेष्ठ ताहि अंगीकार करि क्यों न सुख करै? अपने सुखका साधन कर, या विषें दोष कहा? जो कुछ करिए है सो अपने सुख के निमित्त करिए है अर मेरा कहा जो न करेगी तो जो कुछ तेरा होनहार है सो होगा। रावण महा बलवान् है, कदाचित् प्रार्थना-भंगतैं कोप करै तो तेरा या बात में अकारज ही है। अर राम लक्ष्मण तेरे सहाई हैं सो रावण के कोप किए उनका भी जीवित बचना नाहीं। तातैं शीघ्र ही विद्याधरनिका जो ईश्वर ताहि अंगीकार कर, ताके प्रसादतैं परम ऐश्वर्य को पाय कर देवनिके से सुख भोगवै।

गया, ताहि समय खरदूषण के मरणके समाचार आए सो महाशोककर रावणकी अठारह हजार रानी ऊंचे स्वरकर विलाप करती भई अर चंद्रनखा रावण की गोद विषें लोटकर अति रुदन कर कहती भई कि हाय मै अभागिनी हती गई, मेरा धनी मारा गया, मेहके झरवे समान रुदन किया, अश्रुपात का प्रवाह बहा, पति अर पुत्र दोऊके मरणके शोकरूप अग्निकर दग्धायमान है हृदय जाका , सो याहि विलाप करती देख याका भाई रावण कहता भया–हे वत्से ! रोयवेकर कहा, या जगत्के प्रसिद्ध चरित्रको कहा न जानै है। बिना काल कोऊ वज्रसे भी हता न मरे अर जब मृत्युकाल आवै तब सहज ही मर जाय। कहाँ वे भूमिगोचरी रंक अर कहाँ तेरा भरतार वि[illegible],दैत्यनिका अधिपति खरदूषण; ताहि वे मारें, यह काल ही का कारण है। जाने तेरा पति मारा ताको मैं मारूंगा, या भाँति बहिनकूं धैर्य बंधाय कहता भया। अब तू भगवान्का अर्चनकर, श्राविकाके व्रत धार, चंद्रनखाकूं ऐसा कहकर रावण महलविषै गया, सर्प की न्याईं निश्वास नाखता सेजपर पडा। वहाँ पटरानी मन्दोदरी आयकर भरतारकूं व्याकुल देख कहती भई–हे नाथ ! खरदूषणके मरण कर अति व्याकुल भए हो, सो तिहारे सुभट कुलविषै यह बात उचित नाहीं। जे शूरवीर हैं तिनके मोटी आपदा विषै हू विषाद नाहीं, तुम वीराधिवीर क्षत्री हो, तिहारे कुल में तिहारे पुरुष अर तिहारे मित्र रण संग्रामविषैं अनेक क्षय भए, सो कौन-कौन का शोक करोगे। कवहूं काहूका शोक न किया, अब खरदूषण का एता सोच क्यों करो हो ? पूर्वे इन्द्रके संग्राम विषैं तिहारा काका श्रीमाली मरणकूं प्राप्त भया अर अनेक बांधव रण में हते गए, तुम काहू का कभी शोक न किया, आज ऐसा सोच दृष्टि क्यों पड़ा है जो पूर्वे कबहू हमारी दृष्टि न पड़ा। तब रावण निश्वास नाख बोला कि हे सुन्दरी ! सुन, अपने अन्तःकरणका रहस्य तोहि कहूं हूँ, तू मेरे प्राणनिकी स्वामिनी है अर सदा मेरी वांछा पूर्ण करै है, जो तू मेरा जीतव्य चाहै है तो कोप मत कर, मै कहूं सो कर,सर्व वस्तुका मूल प्राण हैं। तब मन्दोदरी कही जो आप कहो सो मैं करूं। तब रावण याकी सलाह लेय बिलखा होय कहता भया–हे प्रिये !एक सीता नामा स्त्री, स्त्रीनिकी सृष्टिविषैं ऐसी और नाहीं सो वह मोहि न इच्छै तो मेरा जीवन नाहीं, मेरा लावण्यता रूप माधुर्यता सुन्दरता ता सुन्दरी कूं पायकर सफल होय। तब मन्दोदरी याकी दशा कष्टरूप जान हँसकर दाँतनिकी कांति रूप चांदनीकूं प्रकाशती संती कहती भई–हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि तुम सारिखे प्रार्थना करै अर वह तुमको न इच्छै, सो मन्दभागिनी है। या संसार में ऐसी कौन परम सुन्दरी है जाका मन तिहारे देखे खंडित न होय अर मन मोहित न होय अथवा वह सीता कोई परम उदयरूप अद्भुत त्रैलोक्य सुन्दरी है जाको तुम इच्छो हो अर वह तुमको नाहीं इच्छै है, ये तिहारे कर हस्तीकी सूंड समान, रत्न जड़ित बाजूनिकर युक्त तिव करि उरसे

लगाय बलात्कार क्यों न सेवहु । तब रावण कही कि या सर्वांगसुन्दरीसूं मैं बलात्कार नाहीं गहूं, ताका कारण सुन—अनंतवीर्य केवलीके निकट मैं एक व्रत लिया है, वे भगवान् देव इन्द्रादिक कर वंदनीक ऐसा व्याख्यान करते भए—या संसारविषे भ्रमण करते जे जीव परम दुःखी तिनके पापनि की निवृत्ति निर्वाणका कारण है, एक भी नियम महाफलकूं देय है अर जिनके एक भी व्रत नाहीं वे नर जर्जर कलश समान निर्गुण हैं । जिनके मोक्ष का कारण कोई नियम नाहीं तिन मनुष्यनिमें अर पशुनिमें कछू अन्तर नाही, तातैं अपनी शक्ति प्रमाण पापनिको तजहु, सुकृतरूप धनको अंगीकार करहु, जातैं जन्मके आंधेकी न्याईं संसाररूप अन्धकूपमें न परो । या भांति भगवान् के मुखरूप कमलतैं निकसे वचन-रूप अमृत पीकर कैएक मनुष्य तो मुनि भए, कैएक अल्पशक्ति अणुव्रतकूं धारण कर श्रावक भए, कर्मके संबंधतैं सबकी एक तुल्य शक्ति नाही । वहां भगवान् केवलीके समीप एक साधु मोसे कृपाकर कहता भया—हे दशानन ! कछू नियम तुमहु लेहु, तू दया-धर्मरूप रत्न-द्वीप विषे आया है सो गुणरूप रत्ननिके संग्रह बिना खाली मति जाहु । ऐसा कही तब मैं प्रमाण कर देव असुर विद्याधर मुनि सर्व की साक्षी व्रत लिया कि जो परनारी मोहि न इच्छै ताहि मैं बलात्कार न सेऊं । हे प्राणप्रिये ! मैं विचारी जो मोसे रूपवान नर को देख ऐसी कौनसी नारी है जो मान करै, तातैं मै बलात्कार न सेऊं । राजानिकी यही रीति है जो वचन कहे सो निवाहैं, अन्यथा महादोष लागै । तातैं मैं प्राण तजूं, ता पहिले सीताको प्रसन्न कर; घरके भस्म भए पीछे कूवां खोदना वृथा है । तब मंदोदरी रावणकूं विह्वल जान कहती भई—हे नाथ ! तिहारी आज्ञा-प्रमाण ही होयगा । ऐसा कह देवारण्य नामा उद्यान विषैं गई अर ताकी आज्ञा पाय रावणकी अठारह हजार रानी गई । मदोदरी जायकर सीताकूं या भांति कहती भई—हे सुन्दरी ! हर्षके स्थानक विषैं कहा विषाद कर रही है, जा स्त्रीके रावणपति सो जगतविषै धन्य है । सब विद्याधरनिका अधिपति, सुरपतिका जीतनहारा, तीनलोक विषैं सुन्दर, ताहि क्यो न इच्छै । निर्जन वनके निवासी, निर्धन, शक्तिहीन भूमिगोचरी तिनके अर्थ कहा दुःख करै है, सर्व लोकविषै श्रेष्ठ ताहि अंगीकार करि क्यों न सुख करै ? अपने सुखका साधन कर, या विषै दोष कहा ? जो कुछ करिए है सो अपने सुख के निमित्त करिए है अर मेरा कहा जो न करेगी तो जो कुछ तेरा होनहार है सो होगा । रावण महा बलवान् है, कदाचित् प्रार्थना-भगतैं कोप करै तो तेरा या बात में अकारज ही है । अर राम लक्ष्मण तेरे सहाई हैं सो रावण के कोप किए उनका भी जीवित बचवा नाहीं । तातैं शीघ्र ही विद्याधरनिका जो ईश्वर ताहि अंगीकार कर, वाके प्रसादतैं परम ऐश्वर्य को पाय कर देवनिके से सुख भोगवै ।

जब ऐसा कहा तब जानकी, अश्रुपातकर पूर्ण हैं नेत्र जाके, गद्गद् वाणी कर कहती भई कि हे नारी ! यह वचन तूने सब ही विरुद्ध कहे । तू पतिव्रता कहावे है । पतिव्रतानिके मुखतें ऐसे वचन कैसें निकसे । यह शरीर मेरा छिदजावे, भिद जावे, हत जावे परन्तु अन्य पुरुषकूं मैं न इच्छूं, रूपकर सनत्कुमार समान होवे अथवा इन्द्र समान होवे तो मेरे कौन अर्थ ? मैं सर्वथा अन्य पुरुषकूं न इच्छूं । तुम सब अठारह हजार रानी भेली होयकर आई हो, सो तिहारा कहा मैं न करूं, तिहारी इच्छा होय सो करो । ताही समय रावण आया, मदनके आतापकरि पीड़ित, जैसें तृषातुर माता हाथी गंगाके तीर आवै तैसे सीताके समीप आय मधुर वाणी कर आदरसूं कहता भया कि हे देवी ! तू भय मत करै, मैं तेरा भक्त हूं । हे सुन्दरी ! चित्त लगाय एक विनती सुन, मैं तीन लोकमें कौन वस्तुकर हीन जो तू मोहि न इच्छै ? ऐसा कहकर स्पर्शकी इच्छा करता भया । तब सीता क्रोधकर कहती भई–हे पापी ? परे जा, मेरा अग मत स्पर्शे । तब रावण कहता भया–कोप अर अभिमान तज प्रसन्न हो, शची इन्द्राणी समान दिव्य भोगनिकी स्वामिनी होहू । तब सीता बोली–कुशीली पुरुषका विभव मल समान है अर शीलवंत हैं तिनके दरिद्रता ही आभूषण है । जे उत्तम वंश विषै उपजे हैं तिनके शीलकी हानिकरि दोऊ लोक बिगरे हैं तातें मेरे तो मरण ही शरण है । तू परस्त्री की अभिलाषा राखै है सो तेरा जीतव्य वृथा है । जो शील पालता जीवै है ताहीका जीतव्य सफल है । या भांति जब सीता तिरस्कार किया तब रावण क्रोधकर माया की प्रवृत्ति करता भया । रानी अठारह हजार सब जाती रहीं अर रावण की माया के भयतैं सूर्य अस्त होय गया, मद झरती मायामई हाथीनिकी घटा आई । यद्यपि सीता भयभीत भई तथापि रावणके शरण न गई । बहुरि अग्निके स्फुलिंगे बरसते भए अर लहलहाट करे हैं जीभ जिनकी ऐसे सर्प आए तथापि सीता रावणके शरण न गई । बहुरि महा क्रूर वानर, फारे हैं मुख जिन्होने, उछल उछल आए, अति भयानक शब्द करते भए तथापि सीता रावणके शरण न गई । अर अग्निके ज्वाला समान चपल हैं जिह्वा जिनकी ऐसे मायामई अजगर तिनने भय उपजाया तथापि सीता रावणके शरण न गई । बहुरि अन्धकार समान श्याम ऊँचे व्यन्तर हुकार शब्द करते आए, भय उपजावते भए तथापि सीता रावण के शरण न गई । या भांति नाना प्रकारकी चेष्टाकर रावण ने उपसर्ग किए तथापि सीता न डरी, रात्रि पूर्ण भई, जिनमदिरनि विषै वादित्रनिके शब्द होते भए, द्वारनिके कपाट उघरे मानों लोकनिके लोचन ही उघरे । प्रातः संध्याकर पूर्व दिशा आरक्त भई मानों कुंकुमके रंगकरि रंगी ही है । निशाका सर्व अन्धकार दूरकर, चंद्रमाको प्रभारहित कर सूर्यका उदय भया । कमल फूले, पक्षी विचरने लगे, प्रभात भया तब प्रातःक्रियाकर विभीषणादि रावणके भाई खरदूषणके शोक कर रावणपै आए सो नीचा मुख किए, आंसू डारते

भूमि विषै तिष्ठे। तासमय पटके अंतर शोककी भरी जो सीता ताके रुदनके शब्द विभीषण ने सुने अर सुनकर कहता भया कि यह कौन स्त्री रुदन करै है? अपने स्वामीतैं बिछुरी है, याका शोकसंयुक्त शब्द दुःख को प्रगट दिखावै है। ये विभीषण के शब्द सुन सीता अधिक रोवने लगी, सज्जनको देख शोक बढै ही है। विभीषण पूछता भया कि हे बहिन! तू कौन है? तब सीता कहती भई कि मैं राजा जनककी पुत्री, भामंडलकी बहिन, राम की रानी, दशरथ मेरा ससुर, लक्ष्मण मेरा देवर सो खरदूषणतैं लड़ने गया, ताके पीछे मेरा स्वामी भाई की मददको गया, मैं वन विषैं अकेली रही सो छिद्र देख या दुष्ट चित्त ने हरी सो मेरा भरतार मो बिना प्राण तजेगा। तातैं हे भाई! मोहि मेरे भरतार पै शीघ्र ही पठाय देहु। ये वचन सीताके सुन विभीषण रावणसे विनय कर कहता भया, हे देव! यह परनारी अग्निकी ज्वाला है, आशीविष सर्पके फण समान भयंकर है, आप काहेकूं लाए, अब शीघ्र ही पठाय देहु। हे स्वामी! मैं बालबुद्धि हूँ परंतु मेरी विनती सुनो, मोहि आपने आज्ञा करी हुती जो तू उचित वार्ता हमसो कहियो कर, तातै आपकी आज्ञातैं मैं कहूं हूं। तिहारी कीर्तिरूप बेलिके समूह कर सर्व दिशा व्याप्त होय रही हैं, ऐसा न होय जो अपयशरूप अग्निकर यह कीर्ति लता भस्म होय। यह परदाराका अभिलाष अयुक्त, अति भयकर, महानिंद्य, दोऊ लोकका नाश करणहारा, जाकरि जगत विषै लज्जा उपजै, उत्तम जननिकरि धिक्कार शब्द पाइए है। जे उत्तम जन हैं तिनके हृदयकूं अप्रिय ऐसा अनीति कार्य कदाचित् कर्तव्य नाहीं। आप सकल वार्ता जानो हो, सब मर्यादा आप ही से रहै, आप विद्याधरनिके महेश्वर, यह बलता अगारा काहेकूं हृदय में लगाओ हो, जो पापबुद्धि परदारा सेवैं हैं सो नरक विषैं प्रवेश करै हैं, जैसे लोहे का ताता गोला जल में प्रवेश करै तैसें पापी नरकमें पड़ै हैं। ये वचन विभीषणके सुनकर रावण बोला कि हे भाई! पृथ्वी पर जो सुन्दर वस्तु हैं ताका मैं स्वामी हूँ, सर्व मेरी ही वस्तु हैं, परवस्तु कहाँ से आई। ऐसा कहकर और बात करने लगा। बहुरि महानीति का धारी मारीच मंत्री क्षणएक पीछे कहता भया कि देखो यह मोहकर्मकी चेष्टा, रावण सारिखे विवेकी सर्व रीतिको जानें अर ऐसे कर्म करें, सर्वथा जे सुबुद्धि पुरुष हैं तिनकूं प्रभात ही उठकर अपनो कुशल अकुशल चितवनो, विवेक से न चूकना, या भाँति निरपेक्ष भया महाबुद्धिमान् मारीच कहता भया। तब रावणने कछू पाछो जवाब न दिया, उठकर खड़ा होयगया, त्रैलोक्य मंडन हाथी पर चढि सब सामंतनि सहित उपवनतैं नगरकूं चाल्या, बरछी, खड्ग, तोमर, चमर, छत्र, ध्वजा आदि अनेक वस्तु हैं हाथनिमें जिनके, ऐसे पुरुष आगे चले जाय हैं, अनेक प्रकार शब्द होय हैं, चंचल हैं ग्रीवा जिनकी ऐसे हजारां तुरंगनिपर चढे सुभट चले जाय हैं अर कारी घटा समान मद झरते गाजते गजराज चले जाय हैं अर नाना

प्रकार की चेष्टा करते उछलते पयादे चले जाय हैं, हजारों वादित्र बाजे, या भांति रावण ने लंकामें प्रवेश किया। रावण के चक्रवर्तीकी सम्पदा तथापि सीता तृणसे हू जघन्य जानै, सीता का निष्कलंक मन यह लुभायवेकूं समर्थ न भया; जैसें जल विषें कमल अलिप्त रहै तैसें सीता अलिप्त रहै। सर्व ऋतु के पुष्पनिकरि शोभित नाना प्रकार के वृक्ष अर लता-निकरि पूर्ण ऐसा प्रमदनामा वन तहाँ सीताकूं राखी। वह वन नंदन वन समान सुन्दर जाहि लखे नेत्र प्रसन्न होंय, फुल्लगिरि के ऊपर यह वन सो देखे पीछे और ठौर दृष्टि न लगे, जाहि लखे देवनिका मन उन्मादकूं प्राप्त होय, मनुष्यनि की कहा बात ? वह फुल्लगिरि सप्त वनकरि वेष्टित सोहै जैसे भद्रशालादि वन कर सुमेरु सोहै है।

हे श्रेणिक ! सात ही वन अद्भुत हैं, उनके नाम सुन—प्रकीर्णक, जनानन्द, सुखसेव्य, समुच्चय, चारणप्रिय, निबोध, प्रमद। तिनमें प्रकीर्णक पृथ्वी विषे ताके ऊपर जनानन्द तहाँ चतुर जन क्रीड़ा करें अर तीजा सुखसेव्य जहां अति मनोज्ञ सुन्दर वृक्ष अर बेल कारी घटा समान सघन सरोवर सरिता व पिका अति मनोहर अर समुच्चय विषैं सूर्यका आताप नाहीं, वृक्ष ऊँचे, कहूँ ठौर स्त्री क्रीड़ा करें, कहूँ ठौर पुरुष अर चारणप्रिय वन विषे चारण मुनि ध्यान करें अर निबोध ज्ञानका निवास अर सबनिके ऊपर अति सुन्दर प्रमद नामा वन ताके ऊपर जहाँ तांबूल का बेल, केतकीनिके बीड़े, जहां स्नानक्रीड़ा करवे को उचित रमणीक वापिका कमलनिकर शोभित हैं अर अनेक खण के महल अर जहां नारंगी बिजौरा नारियल छुहारे ताडवृक्ष इत्यादि अनेक जातिके वृक्ष सर्व ही पुष्पनिके गुच्छनि कर शोभै हैं जिन पर भ्रमर गुंजार करै हैं अर जहां बेलनिके पल्लव मन्द पवन कर हालैं हैं। जा वन विषे सघन वृक्ष समस्त ऋतुनिके फल फूलनिकर कारी घटा समान सघन हैं, मोरनके युगलकर शोभित हैं ता वन की विभूति मनोहर वापी, सहस्रदल कमल हैं मुख जिनके, सो नील कमल रूप नेत्रनिकर निरखैं हैं। अर सरोवर विषें मंद मंद पवन कर कल्लोल उठें हैं सो मानों सरोवरी नृत्य ही करे हैं। अर कोयल बोलै हैं सो मानो वचनालाप ही करें हैं अर राज-हंसनीके समूहकर मानों सरोवरी हंसै ही हैं। बहुत कहिवे कर कहा ? वह प्रमद नामा उद्यान सर्व उत्सवका मूल भोगनिका निवास, नन्दन वनतैंहू अधिक, ता वन में एक अशोकमालिनीनामा वापी कमलादि कर शोभित, जाके मणि स्वर्णके सिवाण, विचित्र आकारकूं धरै हैं द्वार जाके, जहां मनोहर महल, जाके सुन्दर झरोखे, तिनकर शोभित जहाँ नीझरने झरैं हैं, वहां अशोक वृक्षके तले सीता राखी। कैसी है सीता ? श्रीरामजी के वियोग कर महाशोककूं धरै है जैसे इन्द्रते बिछुरी इन्द्राणी। रावण की आज्ञातें अनेक स्त्री विद्याधरी खड़ी ही रहैं, नाना प्रकार के वस्त्र सुगन्ध आभू- भाँति भांति की चेष्टाकर सीताकूं प्रसन्न किया चाहैं। दिव्य गीत

दिव्य नृत्य दिव्य वादित्र अमृत सारिखे दिव्य वचन तिनकर सीताकूं हर्षित किया चाहैं परंतु यह कहाँ हर्षित होय ? जैसें मोक्ष सम्पदाकूं अभव्य जीव सिद्ध न कर सकें तैसें रावणकी दूती सीताकूं प्रसन्न न कर सकी। ऊपर ऊपर रावण दूती भेजै, कामरूप दावानलकी प्रज्वलित ज्वाला ताकर व्याकुल महा उन्मत्त भांति भांतिके अनुरागके वचन सीताकूं कह पठावै, यह कछू जवाब नहीं देय। दूती जाय रावणसों कहैं कि हे देव ! वह तो आहार पानी तज बैठी है, तुमको कैसे इच्छै, वह काहूसों बात न करै, निश्चल अंगकर तिष्ठै है, हमारी ओर दृष्टि ही नाही धरै, अमृतहूते अति स्वादु अर दुग्धादि कर मिश्रित नाना प्रकार के व्यंजन ताके मुख आगे धरैं हैं सो स्पर्शे नाहीं। यह दूतीनिकी बात सुन रावण खेद खिन्न होय, मदनाग्नि की ज्वाला कर व्याप्त है अंग जाका, महा आरत रूप चिन्ता के सागर में डूबा। कबहूं निश्वास नाखै, कबहूं सोच करै, सूक गया है मुख जाका, कबहूं कछूइक गावै, कामरूप अग्निकर दग्ध भया है हृदय जाका, कछूइक विचार २ निश्चल होय है, अपना अंग भूमिमें डार देय, फिर उठै, सूना सा होय रहै बिना समझे उठि चालै, बहुरि पाछा आवै, जैसे हस्ती सूंड पटकै तैसें वह भूमिमे हाथ पटकै, सीताको बराबर चितारता आंखनितैं आंसू डारै, कबहूं शब्द कर बुलावै, कबहूं हुंकार शब्द करै, कबहूं चुप होय रहै, कबहूं वृथा बकवाद करै, कबहूं सीता सीता बार बार बकै, कबहूं नीचा मुखकर नखनिकर धरतो कुचरै, कबहूं हाथ अपने हिये लगावै, कबहूं बाहू ऊंचा करै, कबहूं सेज पर पड़ै, कबहूं उठ बैठै, कबहूं कमल हिये लगावै, कबहूं दूर डार देय, कबहूं शृंगार का काव्य पढ़ै, कबहूं आकाश की ओर देखै, कबहूं हाथ से हाथ मसलै, कबहूं पगसे पृथ्वी हणै, निश्वासरूप अग्निकर अधर श्याम होय गए। कबहूं कह-कह शब्द करै, कबहूं अपने केश बखेरै,कबहूं बांधै, कबहूं जंभाई लेय, कबहूं मुखपर आँचल डारै कबहूं सर्व वस्त्र पहिर लेय, सीता के चित्राम बनावै, कबहूं अश्रुपात कर आर्द्र करै, दीन भया हाहाकार शब्द करै, मदन-ग्रह कर पीड़ित अनेक चेष्टा करै, आशारूप इंधन कर प्रज्वलित जो कामरूप अग्नि उसकर उसका हृदय जरै और शरीर जलै, कभी मनमें चिंतवै कि मैं कौन अवस्थाकूं प्राप्त भया जिसकर अपना शरीर भी नहीं धार सकूं हूं। मैंने अनेक गढ़ और सागर के मध्य तिष्ठे बड़े बड़े विद्याधर युद्ध विषै हजारों जीते और लोकविषैं प्रसिद्ध जो इन्द्र नामा विद्याधर सो बंदीगृहविषै डारा, अनेक राजाओंके समूह युद्धविषैं जीते, अब मोहकर उन्मत्त भया मै प्रमादके वश प्रवर्ता हूं। गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहै हैं—हे राजन् ! रावण तो कामके वश भया और विभीषण महाबुद्धिमान मंत्रविषैं निपुण ताने सब मंत्रियों को इकट्ठा कर मंत्र विचार्या। कैसा है विभीषण? रावणके राज्य का भार जिसके सिर पर पड़्या है, समस्त शास्त्रो का ज्ञानरूप जलकर धोया है मनरूप

मैल जिसने, रावणके उस समान और हितु नाही, विभीषणको सर्वथा रावणके हित ही का चितवन है सो मन्त्रियोंसे कहता भया–अहो वृद्ध हो ! राजाकी तो यह दशा, अब अपने ताईं कहा कर्त्तव्य सो कहो ? तब विभीषणके वचन सुन सभिन्नमति मंत्री कहता भया कि हम कहा कहैं, सर्व कार्य विगड़ा, रावण की दाहिनी भुजा खरदूषण था सो मूवा और विराधित कया पदार्थ हो स्यालसे सिंह भया, लक्ष्मण के युद्ध विषै सहाई भया और बानर-वंशी जोरसे बस रहे हैं, इनका आकार तो कछु और ही अर चित्त में कछु और ही; जैसें सर्प ऊपर तो नरम अर भीतर विष। अर पवनका पुत्र जो हनुमान सो खरदूषणकी पुत्री अनंगकुसमा का पति सो सुग्रीव की पुत्री परणी है, सुग्रीवका पक्ष विशेष है। यह वचन संभिन्नमतिके सुन पंचमुख मत्री मुसकाय कर बोल्या–तुम खरदूषणके मरणकर सोच किया सो शूरवीरनिकी यही रीति है कि सग्राम विषैं शरीर तजे। अर एक खरदूषणके मरणकर रावणका क्या घट गया जैसे पवनके योग से समुद्रमे एक जलकी कणिका गई तो समुद्रका क्या न्यून भया ? अर तुम औरोंकी प्रशसा करो हो सो मेरे चित्तमें लज्जा उपजै है। कहां रावण जगत्का स्वामी और कहां वे वनवासी भूमिगोचरी ? लक्ष्मणके हाथ सूर्यहास खड्ग आया तो क्या ? और विराधित आय मिला तो क्या ? जैसे पहाड़ विषम है और सिंह संयुक्त है तो भी क्या दावानल न दहै ? सर्वथा दहै। तब सहस्रमति मंत्री माथा हलाय कहता भया–कहां ये अर्थहीन बातें कहो हो। जिसमें स्वामी का हित हो सो करना, दूसरा स्वल्प है और हम बड़े हैं–यह विचार बुद्धिमान्का नाही। समय पाय एक अग्निकी कणिका सकल मंडलको दहै। अर अश्वग्रीवके महासेना थी और सर्व पृथ्वीविषै प्रसिद्ध हुवा था सो छोटे से त्रिपृष्टिने रणमें मार लिया। इसलिए और यत्न तज लकाकी रक्षाका यत्न करो। नगरी परम दुर्गम करो, कोई प्रवेश न कर सकै, महा भयानक मायामई यन्त्र सर्व दिशा में विस्तारो अर नगरमे परचक्रका मनुष्य न आवने पावै अर लोकको धैर्य बंधाओ अर सब उपायकर रक्षा करो जिसकर रावण सुखकू प्राप्त हो। अर मधुर वचन कर नाना वस्तुओं की भेंटकर सीताकू प्रसन्न करो जैसें दुग्ध पायवेसे नागिन प्रसन्न करिए और बानर वंशी योधाओंकी नगरके बाहिर चौकी राखो, ऐसे किए कोऊ परचक्रका धनी न आय सकै अर यहांकी बात परचक्रमें न जाय, या भांति गढका यत्न करिये तब कौन जाने सीता कौनने हरी है और कहां है? सीता बिना राम निश्चय सेती प्राण तजेगा, जिसकी स्त्री जाय सो कैसे जीवै अर राम मूवा तब अकेला लक्ष्मण क्या करेगा अथवा रामके शोककर लक्ष्मण अवश्य मरै, न जीवै, जैसें दीपकके गए प्रकाश न रहै। अर यह दोनों भाई मूए तब अपराधरूप समुद्रमें डूबा जो विराधित सो क्या करेगा और सुग्रीवका रूपकर विद्याधर उसके घरमें आया सो रावण टार सुग्रीवका दुःख कौन हरै, मायामई

यन्त्रकी रखवारी सुग्रीवको सौंपी जिससे वह प्रसन्न होय, रावण इसके शत्रूका नाश करै। लंकाकी रक्षा का उपाय मायामई यन्त्र कर करना। यह मंत्रकर हर्षित होय सब अपने अपने घर गए, विभीषण ने मायामई यन्त्रकर लकाका यत्न किया। अर अधः ऊर्ध तिर्यंकसे कोऊ न आय सकै, नाना प्रकारकी विद्याकर लंका अगम्य करी। गौतम गणधर कहै हैं—हे श्रेणिक ! संसारी जीव सर्व ही लौकिक कार्यमें प्रवृत्त हैं, व्याकुल चित्त हैं अर जे व्याकुलता रहित निर्मल चित्त हैं तिनकूं जिनवचन के अभ्यास टाल और कर्तव्य नाहीं अर जो जिनेश्वरने भाषा है सो पुरुषार्थ बिना सिद्धि नाहीं अर भले भवितव्यके बिना पुरुषार्थ की सिद्धि नाहीं। इसलिए जे भव्य जीव हैं वे सर्वथा संसार से विरक्त होय मोक्ष का यत्न करो। नर नारक देव तिर्यंच ये चार ही गति दुःखरूप हैं, अनादि काल से ये प्राणी कर्मके उदय कर युक्त रागादिमें प्रवृत्ते हैं। इसलिए इनके चित्तमें कल्याणरूप वचन न आवें, अशुभका उदय मेट शुभकी प्रवृत्ति करें तब शोकरूप अग्निकर तप्तायमान न होंय।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै लंका का मायामई कोटका वर्णन करने वाला छियालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४६॥

सैंतालीसवां पर्व

(विटरूप सुग्रीव के वधका कथानक)

अथानंतर किहकंधापुरका स्वामी जो सुग्रीव सो उसका रूप बनाय विद्याधर इसके पुरमें आया और सुग्रीव कांताके विरहकर दुःखी भ्रमता संता वहाँ आया जहा खरदूषण की सेनाके सामत मूए पड़े थे। बिखरे रथ, मूए हाथी, मूए घोड़े, छिन्न भिन्न होय रहे हैं शरीर जिनके, कैयक राजाओंका दाह होय है, कैयक ससकै हैं, कैयकनिकी भुजा कट गई है, कैयकनिकी जघा कट गई है, कैयकोंकी आंत गिर पड़ी है, कैयकों के मस्तक पड़े हैं, कैयकों को स्याल भखै हैं, कैयकों को पक्षी चूटै हैं, कैयकोके परिवार रोवै हैं, कैयकों को टाँग राखे हैं; यह रणखेत का वृत्तांत देख सुग्रीव किसीकूं पूछता भया तब उसने कही कि खरदूषण मारा गया। तब सुग्रीव ने खरदूषण का मरण सुन अति दुःख किया, मनमें चितवै है कि बड़ा अनर्थ भया, वह महाबलवान था जिससे मेरा सर्व दुःख निवृत्त होता सो कालरूप दिग्गजने मेरा आशारूप वृक्ष तोड़ा, मैं पुण्य हीन, अब मेरा दुःख कैसे शांत होय ? यद्यपि विना उद्यम जीवकूं सुख नाहीं, तातें दुःख दूर करवेका उद्यम अंगीकार करूं, तब हनुमान पै गया। हनुमान दोनों का समानरूप देख पीछे गया। तब सुग्रीवने विचारी कि कौन उपाय करूं जिससे चित्त की प्रसन्नता होय जैसे नवा चांद निरखे हर्ष होय। जो रावणके शरणे जाऊं तो रावण मेरा और शत्रूका एक

रूप जान शायद मुझे ही मारे अथवा दोनोंको मार स्त्री हर लेय । वह कामांध है, कामांध का विश्वास नाहीं । मंत्र दोष अपमान दान पुण्य वित्त शूरवीरता कुशील मनका दाह यह सब कुमित्रकूं न कहिए, जो कहैं सो खता पावे । तातैं संग्राममें जाने खरदूषणकूं मार्‌या ताहीके शरणे जाऊं, वह मेरा दुःख हरै और जिसपै दुःख पड़ा होय सो दुःखी के दुःख को जानै । जिनकी तुल्य अवस्था होय तिन ही विषैं स्नेह होय । सीता के वियोग का सीताके पतिही को दुःख उपजा है, ऐसा विचार विराधितके निकट अति प्रीतिकर दूत पठाया सो दूत जाय सुग्रीवके आगमनका वृत्तांत विराधितसूं कहता भया, सो विराधित सुनकर मनमें हर्षित भया, विचारी कि बड़ा आश्चर्य है जो सुग्रीव जैसे महाराज मुझसूं प्रीति करवेकी इच्छा करैं, सो बड़ोंके आश्रयसे क्या न होय ? मैं श्रीराम लक्ष्मणका आश्रय किया, इस-लिए सुग्रीवसे पुरुष मोसे स्नेह किया चाहे हैं । सुग्रीव आया, मेघकी गाज समान वादित्रनि के शब्द होते आए सो पातालंकाके लोग सुनकर व्याकुल भए । तब लक्ष्मणने विराधितसूं पूछा, वादित्रनिका शब्द कौनका सुनिए है ? तब अनुराधाका पुत्र विराधित कहता भया—हे नाथ ! यह वानरवंशियोंका अधिपति प्रेमका भरा तिहारे निकट आया है । किहकधापुर के राजा सूर्यरज के पुत्र, पृथ्वी पर प्रसिद्ध बड़ा बाली छोटा सुग्रीव सो बालीने तो रावणकूं सिर न नवाया, सब परिग्रह तज सुग्रीवकूं राज्य देय वैरागी भया, सुग्रीव निष्कटक राज्य करै । ताके सुतारा स्त्री, जैसे शची संयुक्त इन्द्र रमै तैसे सुग्रीव सुतारा सहित रमै । जिसके अंग अर अंगतनामा पुत्र, गुण रत्नोंकर शोभायमान, जिसकी पृथ्वी पर कीर्ति फैल रही है; यह बात विराधित कहै है अर सुग्रीव आय गया, राम और सुग्रीव मिले, रामकूं देख फूल गया है मुखकमल जाका, सुवर्ण के आंगनमें बैठे अमृत-समान वाणी कर योग्य संभाषण करते भए । सुग्रीवके संग जे वृद्ध विद्याधर हैं वे रामसूं कहते भए—हे देव ! यह राजा सुग्रीव किहकधापुरका पति महाबली गुणवान पुरुषनिकू प्रिय, सो कोई एक दुष्ट विद्याधर माया कर इनका रूप बनाया, इनकी स्त्री सुतारा और राज्य लेयवेका उद्यमी भया है । ये वचन सुन राम मनमें चिंतवते भए कि यह कोई मुझसे भी अधिक दुखिया है, इसके बैठे ही दूजा पुरुष इसके घरमें आय धसा है, इसके राज्य विभव है परन्तु कोई शत्रू को निवारवे समर्थ नाही । लक्ष्मणने समस्त कारण सुग्रीवके मंत्री जामवंतको पूछ्या । जामवन्त सुग्रीव के मनतुल्य हैं । तब वह मुख्य मंत्री महा विनय संयुक्त कहता भया—हे नाथ ! काम की फाँसीकर बेढ़या वह पापी सुताराके रूपपर मोहितभया, मायामई सुग्रीव का रूप बनाय राजमंदिर आया सो सुताराके महलमें गया । सुतारा महासती अपने सेवकनिसूं कहती भई कि यह कोई दुष्ट विद्याधर विद्यासे मेरे पति का रूप बनाय आवै है, पापकर पूर्ण सो इसका आदर सत्कार कोई मत करो । वह पापी शंकारहित

जायकर सुग्रीवके सिंहासन पर बैठ्या और ताही समय सुग्रीव भी आया अर अपने लोकनिकूं चितावान देखा तब विचारी कि मेरे घर में काहेका विषाद है, लोक मलिन वदन ठौर ठौर भेले होय रहे हैं, कदाचित अंगद मेरुके चैत्यालयोंकी वन्दनाके अर्थ सुमेरु गया हुआ न आया होय अथवा रानी ने काहू पर रोष किया होय अथवा जन्म जरा मरण कर भयभीत विभीषण वैराग्यकूं प्राप्त भया होय अर उसका सोच होय, ऐसा विचारकर द्वारे आया, रत्नमईद्वार गीत गान-रहित देख्या, लोक सचित देखे। मनमें विचारो यह मनुष्य और ही होय गये। मन्दिरके भीतर स्त्री जनोंके मध्य अपनासा रूप किए दुष्ट विद्याधर बैठ्या देख्या, दिव्य हार पहिरे, सुन्दर वस्त्र मुकुटकी कांतिमें प्रकाश रूप। तब सुग्रीव क्रोध कर गाजा जैसे वर्षा काल का मेघ गाजै और नेत्रनि की आरक्ततासूं दसों दिशा आरक्त होय गईं जैसे सांझ फूलै। तब वह पापी कृत्रिम सुग्रीव भी गाजा, जैसे माता हाथी मदकर विह्वल होय तैसे काम कर विह्वल सुग्रीवसूं लडवेकूं उठ्या, दोऊ होंठ डसते भृकुटी चढाय युद्धकूं उद्यमी भया। तब श्रीचन्द्रादि मन्त्रियोंने मने किया और सुतारा पटराणी प्रगट कहती भई कि यह कोई दुष्ठ विद्याधर मेरे पतिका रूप बनाय आया है, देह और बल और वचनोंकी कांतिसे तुल्य भया है परन्तु मेरे भरतारमें महा-पुरुषोंके लक्षण हैं सो इसमें नाही; जैसे तुरग और खरकी तुल्यता नाहीं तैसें मेरे पतिकी और इसकी तुल्यता नाही या भांति रानी सुतारा के वचन सुनकर भी कैएक मत्रीनिने न मानी जैसें निर्धन का वचन धनवान न माने। सादृश्यरूप देखकर हरा गया है चित्त जिनका, सो सब मन्त्रियोंने भेले होय मन्त्र किया–पंडितनिकूं इतनों के वचनों का विश्वास न करना–बालक अतिवृद्ध स्त्री मद्यपायी वेश्यासक्त, इनके वचन प्रमाण नाही। और स्त्रीनिकूं शीलकी शुद्धि राखनी, शीलकी शुद्धि विना गोत्रकी शुद्धि नाहीं, स्त्रियोंको शीलका ही प्रयोजन है इसलिये राजलोक में दोनों ही न जाने पावें, बाहिर रहैं। तब इनका पुत्र अंग माताके वचनसे ही इनकी पक्ष आया, जांबूनद कहै है कि हम भी इन ही के संग रहैं अर इनका पुत्र अंगत सो कृत्रिम सुग्रीवकी पक्ष है और सात अक्षोहणी दल इनके है और सात उसपै है, नगरके दक्षिणकी ओर वह राखा, उत्तर की ओर यह राखा। अर बालीका पुत्र चंद्ररश्मि उसने यह प्रतिज्ञा करी कि जो सुतारा के महल आवेगा, उसे ही खड्ग कर मारूंगा। तब यह सांचा सुग्रीव स्त्री के विरह कर व्याकुल शोकके निवारवे निमित्त खरदूषण पै गया, सो खरदूषण तो लक्ष्मण के खड्ग कर हता गया। फिर यह हनुमान पै गया, जाय प्रार्थना करी कि मैं दुःख कर पीडत हूँ, मेरी सहाय करो, मेरा रूपकर कोई पापी मेरे घर में बैठ्या है सो मोहि महा

बाधा है, जायकर उसे मारो। तब सुग्रीवके वचन सुन हनुमान वडवानल समान क्रोधकर प्रज्वलित होय अपने मंत्रीनि सहित अप्रतीघात नामा विमान में बैठ किहकंधापुर आया। सो हनुमानकूं आया सुन वह मायामई सुग्रीव हाथी चढ लडिवेकूं आया सो हनुमान दोनोंका सादृश्य रूप देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया, मनमें चितवता भया कि ये दोनों समान रूप सुग्रीव ही हैं, इनमें से कौनको मारूं, कछु विशेष जाना न पड़े। विना जाने सुग्रीव ही को मारूं तो बड़ा अनर्थ होय। एक मुहूर्त अपने मन्त्रीनिसूं विचारकर उदासीन होय हनुमान पीछे निजपुर गया। सो हनुमानकूं गए सुग्रीव बहुत व्याकुल भया, मनमें विचारता भया कि हजारां विद्या अर माया तिनसे मंडित महाबली महा प्रतापरूप वायुपुत्र सो भी सन्देहकूं प्राप्त भया सो बड़ा कष्ट, अब कौन सहाय करै। अति व्याकुल होय दुःख निवारवे अर्थ स्त्रीके वियोगरूप दावानल कर तप्तायमान आपके शरण आया है, आप शरणागतके प्रतिपालक हैं। यह सुग्रीव अनेक गुणनिकर शोभित है। हे रघुनाथ! प्रसन्न होहु, याहि अपना करहु। तुम सारिखे पुरुषनिका शरीर परदुःखका नाशक है। ऐसे जांबूनदके वचन सुन राम लक्ष्मण और विराधित कहते भए, धिक्कार होवे परदारा-रत पापी जीवनिकूं। रामने विचारी, मेरा और इसका दुःख समान है सो यह मेरा मित्र होयगा; मैं इसका उपकार करूं अर यह पीछे मेरा उपकार करेगा, नही तो मैं निर्ग्रंथ मुनि होय मोक्षका साधन करूंगा। ऐसा विचार कर राम सुग्रीवसूं कहते भए–हे सुग्रीव! मैं सर्वथा तुझे मित्र किया, जो तेरा स्वरूप बनाय आया है उसे जीत तेरा राज्य तुझे निष्कंटक कराय दूंगा और तेरी स्त्री तोहि मिलाय दूंगा अर तेरा काम होय पीछे तू सीता की सुध हमे आन देना कि वह कहाँ है। तब सुग्रीव कहता भया–हे प्रभो! मेरा कार्य भए पीछे जो सात दिनमें सीताकी सुध न लाऊँ तो अग्निमें प्रवेश करूं। यह बात सुन राम प्रसन्न भए, जैसे चन्द्रमा की किरण करि कुमुद प्रफुल्लित होय। रामका मुखरूप कमल फूल गया, सुग्रीवके अमृतरूप वचन सुनिकर रोमांच खड़े होय आए। जिनराजके चैत्यालयमें दोनों परम मित्र भए, यह वचन किया कि परस्पर कोई द्रोह न करै। बहुरि राम लक्ष्मण रथ चढ अनेक सामन्तनि सहित सुग्रीवके साथ किहकंधापुर आए, नगर के समीप डेराकर सुग्रीवने मायामयी सुग्रीवपै दूत भेज्या। सो दूतकूं ताने खेद दिया अर मायामई सुग्रीव रथमे बैठ बड़ी सेना सहित युद्धके निमित्त निकस्या। सो दोऊ सुग्रीव परस्पर लड़े। मायामई सुग्रीव और सांचे सुग्रीव के आयुधनि करि नाना प्रकारका युद्ध भया, अंधकार होय गया, दोऊ ही खेदकूं प्राप्त भए, घनी देरमें मायामई सुग्रीवने सांचे सुग्रीव के गदा की दीनी सो गिर पड्या। तब वह मायामई सुग्रीव इसकूं मूवा जान हर्षित होय नगर मे गया अर सांचा सुग्रीव मूर्च्छित होय पड्या सो परिवार के लोक डेरा

में लाए तब सचेत होय रामसूं कहता भया, हे प्रभो ! मेरा चोर हाथमें आया हुता सो नगरमें क्यों जाने दिया। जो रामचंद्रकूं पायकर मेरा दुःख नाही मिटै तो या समान दुःख कहा ? तब राम कही कि तेरा और उसका रूप देखकर हम भेद न जान्या ताते तेरा शत्रु न हन्या। कदाचित् विना जाने तेरा ही अगर नाश होय तो योग्य नाही। तू हमारा परम मित्र है, तेरे और हमारे जिनमदिरमें वचन हुवा है।

अथानंतर रामने मायामई सुग्रीवकूं बहुरि युद्धके निमित्त बुलाया, सो वह बलवान् क्रोधरूप अग्निकर जलता आया, राम सन्मुख भए। वह समुद्रतुल्य, अनेक शस्त्रोके धारक सुभट तेई भए ग्राह उनकर पूर्ण ता समय लक्ष्मणने साँचा सुग्रीव पकड़ राख्या ताकि स्त्रीके वैर से शत्रुके सन्मुख न जाय। अर श्रीरामकूं देखकर मायामई सुग्रीवके शरीर में जो वैताली विद्या हुती सो ताकूं पूछकर ताके शरीरतें निकासी। तब सुग्रीव का आकार मिट वह साहसगति विद्याधर इन्द्रनीलके पर्वत समान भासता भया, जैसे साँपकी कांचली दूर होय तैसे सुग्रीवका रूप दूर होय गया। तब जो आधी सेना वानरवंशनिकी यामे भेली भई थी, याते जुदा होय युद्धकूं उद्यमी भई। सब वानरवंशी एक होय नाना प्रकार के आयुधनिकरि साहसगतिसूं युद्ध करते भए सो साहसगति महातेजस्वी प्रबल शक्तिका स्वामी ताने सब वानरवंशिनिकूं दशों दिशाकूं भजाए, जैसें पवन धूलकूं उड़ावै। बहुरि साहसगति धनुष बाण लेय रामपै आया सो मेघमंडल समान बाणनिकी वर्षा करता भया। उद्धत है पराक्रम जाका ऐसे साहसगतिके और श्रीरामके महायुद्ध भया। प्रबल है पराक्रम जिनका ऐसे राम रणक्रीड़ामें प्रवीण क्षुद्रबाणनिकरि साहसगतिका बक्तर छेद्या और तीक्षण बाणनिकरि साहसगतिका शरीर चालिनी समान कर डारया सो प्राण रहित होय भूमिमें परया। सबनिने निरख निश्चय किया जो यह प्राण रहित है। तब सुग्रीव राम लक्ष्मण की महास्तुति कर इनकूं नगरमें लाया, नगरकी शोभा करी, सुग्रीव को सुताराका सयोग भया। भोगसागरमें मग्न होय गया, रात दिनकी सुध नाहीं। सुतारा बहुत दिवनि में देखी सो मोहित होय गया। अर नन्दनवनकी शोभाकूं उलंघै है ऐसा आनंदनामा वन वहां श्रीरामकूं राखे। ता वनकी रमणीकताका वर्णन कौन कर सकै जहां महामनोज्ञ श्रीचंद्रप्रभुका चैत्यालय, वहां राम लक्ष्मण पूजा करी अर विराधितकूं आदि दे सर्व कटक का डेरा वनमें भया खेदरहित तिष्ठे। सुग्रीवकी तेरह पुत्री रामचंद्रके गुण श्रवण कर अति अनुराग भरी वरिबेकी बुद्धि करती भई, चन्द्रमा समान है मुख जिनका तिनके नाम सुनो--चन्द्राभा, हृदयावली, हृदयधर्म्मा, अनुधरी, श्रीकांता, सुन्दरी, सुरवती-देवांगना समान है विभ्रम जाका, मनोवाहिनी-मनमें बसनहारी, चारुश्री, मदनोत्सवा, गुणवती-अनेक गुणनिकरि शोभित अर पद्मावती-फूले कमन समान है मुख जाका तथा जिनमती-

सदा जिनपूजा में तत्पर; ए त्रयोदश कन्या लेकर सुग्रीव रामपै आया, नमस्कार कर कहता भया कि हे नाथ! ये इच्छाकरि आपकू वरैं हैं। हे लोकेश! इन कन्यानिके पति होवो। इनका चित्त जन्महीतें यह भया जो हम विद्याधरनिकू न वरें, आपके गुण श्रवणकर अनुरागरूप भई हैं, यह कहकर रामको परणाईं। ये कन्या अति लज्जा की भरी, नम्रीभूत हैं मुख जिनके, रामका आश्रय करती भईं, महासुन्दर नवयौवन जिनके गुण वर्णनमें न आवैं, बिजुरी समान, सुवर्णसमान, कमलके गर्भ समान, शरीरकी कांति जिनकी ताकर आकाश विषैं उद्योत भया। वे विनयरूप लावण्यताकरि मंडित रामके समीप तिष्ठी,सुन्दर है चेष्टा जिनकी। यह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं कि हे मगधाधिपति! पुरुषनि में सूर्यसमान श्रीराम सारिखे पुरुष तिनका चित्त विषय वासनातें विरक्त है परन्तु पूर्व जन्मके सम्बन्धसूं कई एक दिन विरक्तरूप गृहमें रह बहुरि त्याग करेंगे।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं सुग्रीवका व्याख्यान वर्णन करने वाला संतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४७॥

अड़तालीसवां पर्व

(लक्ष्मण का कोटि शिला उठाकर नारायण होने की परीक्षा करना)

अथानंतर ते सुग्रीव की कन्या रामके मनमोहिवेके अर्थ अनेक प्रकारकी चेष्टा करती भई मानो देवलोक हीतें उतरी हैं। वीणादिकका बजावना, मनोहर गीतका गावना इत्यादि अनेक सुन्दर लीला करती भई तथापि रामचंद्रका मन न मोहा, सर्व प्रकार के विस्तीर्ण विभव प्राप्त भए परन्तु रामने भोगनि विषै मन न किया। सीता विषैं अत्यन्त दत्तचित्त समस्त चेष्टारहित महा आदरकरि सीताकूं ध्यावते तिष्ठे, जैसे मुनिराज मुक्ति को ध्यावैं। वे विद्याधरकी पुत्री गान करैं सो उनकी ध्वनि न सुनें अर देवांगना-समान तिनका रूप सो न देखे। रामकूं सर्व दिशा जानकीमई भासैं, और कछू भासै नाहीं, और कथा न करै। ए सुग्रीव की पुत्री परणी सो पास बैठी, तिनकूं हे जनकसुते! ऐसा कह बतरावैं, काकसे प्रीतिकर पूछें—अरे काक! तू देश २ भ्रमण करै है, तैंने जानकी हू देखी? अर सरोवर विषै कमल फूल रहे हैं तिनकी मकरन्द कर जल सुगन्ध होय रहा है तहां चकवा चकवीके युगल कलोल करते देख चितारैं, सीता बिना रामकूं सर्व शोभा फीकी लागै, सीताके शरीरके संयोगकी शंकाकरि पवनसूं आलिंगन करै कि कदाचित् पवन सीताजीके निकटतें आई होय। जा भूमिमें सीताजी तिष्ठै हैं ता भूमिकूं धन्य गिनैं। अर सीता बिना चन्द्रमाकी चांदनीकूं अग्नि समान जान मनमें चितवैं—कदाचित् सीता मेरे वियोगरूप अग्निकरि भस्म भई होय। अर मंदमंद पवनकर लतानिकूं हालती देख जानैं हैं कि यह जानकी ही है अर बेलपत्र हालते देख जानैं, जो जानकीके वस्त्र फरहरैं हैं अर

भ्रमर संयुक्त फूल देख जानें, जो ये जानकीके लोचनही हैं अर कोंपल देख जानें कि ये जानकीके करपल्लव ही हैं अर श्वेत श्याम आरक्त तीनों जातिके कमल देख जानें जो सीताके नेत्र तीन रगकूं धरें हैं अर पुष्पनिके गुच्छे देख जानें कि ये जानकीके शोभायमान स्तन ही हैं अर कदलीके स्तंभ विषें जंघानिकी शोभा जानें अर लाल कमलनिविषें चरणनि की शोभा जानें, सम्पूर्ण शोभा जानकीरूप ही जानें।

अथानंतर सुग्रीव सुताराके महल विषें ही रहा, रामपै आय बहुत दिन भए तब रामने विचारी कि ताने सीता न देखी। मेरे वियोगकर तप्तायमान भई वह शीलवंती मर गई, तातें सुग्रीव मेरे पास नाहीं आवै। अथवा वह अपना राज्य पाय निश्चिंत भया, हमारा दुःख भूल गया। यह चिंतवनकरि रामकी आंखनितें आंसू पड़े, तब लक्ष्मण रामकूं सचित देख, कोपकर लाल भए हैं नेत्र जाके, आकुलित है मन जाका, नंगी तलवार हाथ में लेय सुग्रीव ऊपर चाल्या, सो नगर कंपायमान भया। सम्पूर्ण राज्यका अधिकारी तिनकू उलघ सुग्रीवके महलमें जाय ताकूं कहा, रे पापी! अपने परमेश्वर राम तो स्त्रीके दु.खकर दु:खी अर तू दुर्बुद्धि स्त्री सहित सुखसों राज्य करै, रे विद्याधर-वायस ! विषय-लुब्ध दुष्ट ! जहां रघुनाथने तेरा शत्रु पठाया है तहाँ मैं तोहि पटाऊँगा। या भांति अनेक क्रोधके उग्र वचन लक्ष्मण ने कहे। तब वह हाथ जोड़ नमस्कारकर लक्ष्मणका क्रोध शांत करता भया। सुग्रीव कहै है, हे देव ! मेरी भूल माफ करहु, मैं करार भूल गया, मो सारिखे क्षुद्र मनुष्यनिके खोटी चेष्टा होय है। अर सुग्रीव की सम्पूर्ण स्त्री कांपती हुई लक्ष्मणकूं अर्घ देय आरती करती भईं अर हाथ जोड़ नमस्कार कर पतिकी भिक्षा मांगती भईं। तब आप उत्तम पुरुष तिनकूं दीन जान कृपा करते भए। यह महतपुरुष प्रणाममात्र ही करि प्रसन्न होंय अर दुर्जन महादान लेकर हू प्रसन्न न होंय। लक्ष्मण ने सुग्रीवकूं प्रतिज्ञा चिताय उपकार किया, जैसें यक्षदत्तकूं माताका स्मरण कराय मुनि उपकार करते भए। यह वार्ता सुन राजा श्रेणिक गौतमस्वामीसूं पूछें हैं, हे नाथ ! यक्षदत्तका वृत्तांत मैं नीका जानना चाहूं हूं। तब गौतम स्वामी कहते भए—हे श्रेणिक! एक क्रौंचपुर नगर, तहां राजा यक्ष, रानी राजिलता, ताके पुत्र यज्ञदत्त सो एक दिन एक स्त्रीकूं नगर के बाहर कुटिमे तिष्ठती देख कामबाणकर पीड़ित होय ताकी ओर चाल्या। तब रात्रिविषें अयन नामा मुनि याकूं मना करते भए। यह यज्ञदत्त, खड्ग है जाके हाथमें सो बिजुरीके उद्योतकरि मुनिकूं देखकर तिनके निकट जाय विनय संयुक्त पूछता भया—हे भगवान ! काहेको मोहि मने किया ? तब मुनिने कहा - जाको देख तू कामवश भया है सो स्त्री तेरी माता है, तातें यद्यपि सूत्रमें रात्रिको बोलना उचित नाहीं तथापि करुणाकर अशुभ कार्यतें मनै किया। तब यज्ञदत्तने पूछा कि हे स्वामी! यह मेरी माता कैसे है ? तब मुनि कही कि

धुव। एक मृत्यकावती नगरी, तहां कणिक नामा वणिक, ताके धू नामा स्त्री, ताके बंधुदत्त नामा पुत्र, ताकी स्त्री मित्रवती लतादत्तकी पुत्री, सो स्त्रीकूं छाने गर्भ राखि बन्धुदत्त जहाज में बैठ देशांतर गया। ताकूं गए पीछे याकी स्त्रीके गर्भ जान सासू ससुरने दुराचारिणी जान घरसे निकाल दई, सो उत्पलका दासी को लार लेय बड़े सारथीकी लार पिता के घर चाली। सो उत्पलकाको सर्पने डसी, वनमें मूई। अर यह मित्रवती, शीलमात्र ही है सहाय जाके सो क्रौंचपुरविषें आई अर महाशोक की भरी ताके उपवनविषें पुत्रका जन्म भया। तब यह तो सरोवरविषें वस्त्र धोयवे गई अर पुत्ररत्न कंबलमें वेढा,सो कंबल-संयुक्त पुत्रकूं श्वान लेय गया सो काहूने छुड़ाया, राजा यक्षदत्तकूं दिया, ताके रानी राजिलता अपुत्रवती सो राजाने पुत्र रानीको सौंप्या, ताका यक्षदत्त नाम धर्‌या सो तू अर वह तेरी माता वस्त्र धोय आई सो पुत्रको न देखि विलाप करती भई, एक देव पुजारीने ताहि दया कर धैर्य बंधाया कि तू मेरी बहिन है, ऐसा कह राखी, सो यह मित्रवती सहाय-रहित लज्जाकर अकीर्तिके भयसे थकी बापके घर न गई। अत्यन्त शीलकी भरी, जिनधर्म विषें तत्पर दरिद्री की कुटिविषे रहै, सो तैं भ्रमण करता देख कुभाव किया। अर याका पति बंधुदत्त रत्नकंबल दे गया हुता, ता विषें ताहि लपेट सरोवर गई हुती, सो रत्नकंबल राजा के घरमें है अर वह बालक तू है; या भांति मुनि कही। तब यह नमस्कारकर खड्ग हाथमें लेय राजा यक्षपै गया अर कहता भया—या खड्गकर तेरा सिर काटूंगा नातर मेरे जन्म का वृत्तांत कहो। तब राजा यक्षने यथावत वृत्तांत कहा अर वह रत्नकंबल दिखाया, सो यक्षदत्त लेयकर अपनी माता जो कुटी में तिष्ठै थी तासूं मिला अर अपना पिता बंधुदत्त ताकूं बुलाया, महा उत्सव अर महाविभव कर मंडित माता पितासूं मिला। यह यक्षदत्तकी कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कही—जैसे यक्षदत्तको मुनिने माताका वृत्तांत जनाया तैसें लक्ष्मणने सुग्रीवको जो प्रतिज्ञा विस्मरण होय गया हुता सो जनाया। सुग्रीव लक्ष्मण के संग शीघ्र ही रामचंद्रपै आया, नमस्कार किया अर अपने सब विद्याधर सेवक महाकुल के उपजे बुलाए। वे या वृत्तांतको जानते हुते अर स्वामीके कार्यविषें तत्पर तिनकूं समझाय कर कहा कि सर्व ही सुनो—रामने मेरा बड़ा उपकार किया, अब सीताकी खबर इनकूं लाय दो, तातें तुम सब दिशानिकूं जाओ अर सीता कहां है यह खबर लावो। समस्त पृथ्वीपर जल स्थल आकाश विषे हेरो। जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कुलाचल, वन, सुमेरु, नाना प्रकारके विद्याधरनिके नगर, समस्त स्थानक, सर्व दिशा ढूंढो।

अथानंतर ये सब विद्याधर सुग्रीवकी आज्ञा सिरपर धारकर हर्षित भए, सब ही दिशाविकूं शीघ्र ही दौड़े; सब ही विचारें कि हम पहिले सुध लावें तासों राजा अति प्रसन्न होय। अर भामंडलकूं हू खबर पठाई जो सीता हरी गई ताकी सुध लेवो। तब भामण्डल

बहिनके दुःख कर अति ही दुःखी भया, हेरनेका उद्यम किया। अर सुग्रीव आप भी ढूंढनेकूं चिकसा सो ज्योतिषचक्रके ऊपर होय विमान में बैठ्या देखता भया, दुष्ट विद्याधरनिके नगर सर्व देखे, सो समुद्रके मध्य जम्बूद्वीप देखा, वहां महेंद्र पर्वत पर आकाश से सुग्रीव उतरा, तहां रत्नजटी तिष्ठै था सो डरा जैसे गरुड़तें सर्प डरै। बहुरि विमान नजीक आया तब रत्नजटी जाना कि यह सुग्रीव है। लंकापतिने क्रोधकर मोपर भेजा सो मोहि मारेगा, हाय ! मैं समुद्रमें क्यों न डूब मूया, अंतरद्वीपविषैं मारा जाऊंगा ? विद्या तो रावण मेरी हर लेय गया, अब प्राण हरने याहि पठाया। मेरी यह वांछा हुती कि जैसे तैसे भामंडल पर पहुँचूं तो सर्वकार्य होय सो न पहुँच सक्या। यह चितवन करै है, इतने में ही सुग्रीव आया मानों दूसरा सूर्य ही है। द्वीपका उद्योत करता आया सो याको बनकी रजकर धूसरा देख दयाकर पूछता भया, हे रत्नजटी ! पहिले तू विद्याकर संयुक्त हुता, अब हे भाई ! तेरी कहा अवस्था भई ? या भाँति सुग्रीव दयाकर पूछा सो रत्नजटी अत्यंत कंपायमान कछु कह न सकै। तब सुग्रीव कही कि भय मतकर, अपना वृत्तांत कह, बारंबार धैर्य बधाया, तब रत्नजटी नमस्कार कर कहता भया—रावण दुष्ट सीताकूं हरण कर ले जाता हुता, सो ताके अर मेरे परस्पर विरोध भया, मेरी विद्या छेद डारी, अब विद्यारहित जीवित विषै सन्देह चिन्तावान तिष्ठूं हूँ सो हे कपिवंशके तिलक ! मेरे भाग्यतें तुम आए। ये वचन रत्नजटीके सुन सुग्रीव हर्षित होय ताहि संग लेय अपने नगरमें श्री रामपै लाया, सो रत्नजटी राम-लक्ष्मणसों सबके समीप हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया—हे देव ! सीता महासती है, ताकूं दुष्ट निर्दई लंकापति रावण हर ले गया, सो रुदन करती विलाप करती विमानमें बैठी मृगी समान व्याकुल मैंने देखी, वह बलवान बलात्कार लिए जा रहा था सो मैंने क्रोधकर कहा—यह महासती मेरे स्वामी भामंडलकी बहिन है, तू छोड़ दै, सो वाने कोपकर मेरी विद्या छेदी, वह महा प्रबल, जाने युद्धमें इन्द्रकूं जीता पकड़ लिया अर कैलाश उठाया, तीन खण्डका स्वामी, सागरांत पृथ्वी जाकी दासी, जो देवनिहूं करि न जीता जाय, सो ताहि मैं कैसे जीतूं ? ताने मोहि विद्यारहित किया। यह सकल वृत्तांत राम देवने सुनकर ताकूं उरसे लगाया अर बारंबार ताहि पूछने भए। बहुरि राम पूछते भए—हे विद्याधरो ! कहो लंका कितनी दूर है ? तब वे विद्याधर निश्चल होय रहे, नीचा मुख किया, मुख की छाया और ही होय गई, कछु जवाब न दिया। तब रामने उनका अभिप्राय जाना जो यह हृदयविषैं रावणतें भयरूप हैं, मन्द दृष्टिकर तिनकी ओर निहारे। तब वे कहते भए—हमकूं आप कायर जानो हो, लज्जावान होय हाथ जोड़ सिर नवाय कहते भए—हे देव ! जाके नाम सुने हमकूं भय उपजै है, ताकी बात हम कैसे कहैं? कहां हम अल्प शक्तिके धनी अर कहां वह लंकाका ईश्वर, तातैं

तुम यह हठ छोड़ो, अब वस्तु गई जानो। अथवा तुम सुनो हो हम सब वृत्तांत कहैं, सो नीके उरमें धारो। लवणसमुद्रविषे राक्षसद्वीप प्रसिद्ध है, अद्भुत संपदाका भरा, सो सातसौ योजन चौड़ा है अर प्रदक्षिणा कर किंचित् अधिक इक्कीससौ योजन वाकी परिधि है। ताके मध्य सुमेरु तुल्य त्रिकूटाचल पर्वत है सो नव योजन ऊँचा, पचास योजनके विस्तार रूप, नाना प्रकारके मणि अर स्वर्ण कर मण्डित, आगे मेघवाहनको राक्षसनिके इन्द्रने दिया हुता। ता त्रिकूटाचलके शिखर पर लंका नाम नगरी, शोभायमान रत्नमई, जहां विमान समान घर अर अनेक क्रीड़ा करनेके निवास, तीस योजनके विस्ताररूप लंकापुरी महाकोट खाईकर मण्डित, मानों दूजी वसुन्धरा ही है। अर लंका के चौगिरद बड़े बड़े रमणीक स्थानक हैं, अति मनोहर मणि सुवर्णमई, जहाँ राक्षनिके स्थानक हैं, तिन विषें रावणके बंधुजन बसै हैं। संध्याकर सुवेल कांचन ह्लादन पोधन हंस हरि सागरघोष अर्ध-स्वर्ग इत्यादि मनोहर स्थानक वन-उपवन आदिकरि शोभित देवलोक समान हैं। जिनविषैं भ्रात, पुत्र, मित्र, स्त्री, बांधव, सेवकजन सहित लंकापति रमै है सो विद्याधरनि सहित क्रीड़ा करता देख लोकनिकूं ऐसी शंका उपजै है मानो देवनि सहित इन्द्र ही रमै है। जाका महाबली विभीषणसा भाई, औरनिकर युद्धमें न जीता जाय, तासमान बुद्धि देवनिमें नाहीं, तासमान मनुष्य नाहीं, ताहिकरि रावणका राज्य पूर्ण है अर रावणका भाई कुम्भकरण त्रिशूलकाधारक, जाकी युद्धमें टेढ़ी भौहैं, देव भी देखसकै नाहीं तो मनुष्यनिकी कहा बात ? अर रावणका पुत्र इन्द्रजीत पृथ्वीविषै प्रसिद्ध है अर जाके बड़े २ सामन्त सेवक हैं, नाना प्रकार विद्याके धारक शत्रुनिके जीतनहारे अर जाका छत्र पूर्ण चन्द्रमा समान जाहि देखकर बैरी गर्वकूं तजै हैं, जानैं सदा रण संग्राममें जीत ही जीतकर सुभटपनेका विरद प्रगट किया है सो रावणके छत्रकूं देख सर्वका गर्व जाता रहै। अर रावणका चित्रपट देखे अथवा नाम सुने शत्रु भयकूं प्राप्त होय, ऐसा जो रावण तासों युद्ध कौन कर सकै ? तातैं यह कथा ही न करना, और बात करो। यह बात विद्याधरनिके मुखतैं सुनकर लक्ष्मण बोला मानो मेघ गाजा। तुम एती प्रशंसा करो हो सो सब मिथ्या है। जो वह बलवान हुता तो अपना नाम छिपाय स्त्रीकूं चुराकर काहे ले गया ? वह पाखण्डी अति कायर अज्ञानी पापी नीच राक्षस ताके रंचमात्र भी शूरवीरता नाहीं। अर राम कहते भए–बहुत कहने करि कहा, सीता की सुध ही कठिन हुती, अब सुध आई, बस सीता आय चुकी। अर तुम कही–और बात करो, और चिन्तवन करो, सो हमारे और कछु बात नाहीं, और कछु चिंतवन नाहीं। सीताकूं लावना यही उपाय है। रामके वचन सुनकर वृद्ध विद्याधर क्षण एक विचार कर बोले–हे देव ! शोक तजो, हमारे स्वामी होवो अर अनेक विद्याधरनिकी पुत्री, गुणनिकर देवांगना समान, तिनके भरतार होवो

अर समस्त दुःख की बुद्धि छोड़ो। तब राम कहते भए–हमारे और स्त्रीनिका प्रयोजन नाहीं, जो शची समान स्त्री होय तो भी हमारे अभिलाष नाहीं। जो हममें प्रीति है तो सीता हमें शीघ्र ही दिखावो। तब जांबूनद कहता भया, हे प्रभो ! या हठको तजो, एक क्षुद्र पुरुषने कृत्रिम मयूरका हठ किया त की न्याई स्त्रीका हठकर दुःखी मत होवो। वह कथा सुनो :—

एक बेणातट ग्राम तहाँ सर्वरुचि नामा गृहस्थ ताके विनयदत्त नामा पुत्र, ताकी माता गुणपूर्णा अर विनयदत्तका मित्र विशालभूत सो पापी विनयदत्त की स्त्रीसों आसक्त भया, स्त्रीके वचनकरि विनयदत्तकूं कपट करि वनविषै ले गया, सो एक वृक्षके ऊपर बाँध वह दुष्ट घर उठि आया। कोई विनयदत्तके समाचार पूछै तो ताहि कछु मिथ्या उत्तर देय सांचा होय रहै। अर जहाँ विनयदत्त बाँधा हुता, तहाँ एक क्षुद्र नामा पुरुष आया, वृक्षके तले बैठा। वृक्ष महा सघन, विनयदत्त कुरलावता हुता, क्षुद्र देखै तो दृढ बंधनकर मनुष्य वृक्षकी शाखाके अग्रभाग से बंधा है। तब क्षुद्र दयाकर ऊपर चढा, विनयदत्त को बंधनतैं निवृत्त किया। विनयदत्त द्रव्यवान सो क्षुद्रकूं उपकारी जान अपने घर ले गया। भाईतै हू अधिक हित राखै, विनयदत्त के घर उत्साह भया। अर वह विशालभूत कुमित्र दूर भाग गया, क्षुद्र विनयदत्त का परम मित्र भया। सो क्षुद्र का एक रमनेका पत्रमयी मयूर सो पवनकर उड्या अर राजपुत्र के घर जाय पड्या, सो ताने राख मेल्या, ताके निमित्त क्षुद्र महा शोककर मित्रकूं कहता भया–मोहि जीवता इच्छै है तो मेरा वही मयूर लाव। विनयदत्त ने कहा कि मैं तोहि रत्नमई मयूर करायदूं अर साचे मोर मगाय दूँ। वह पत्रमई मयूर पवनतैं उड गया सो राजपुत्रने राखा, मैं कैसे लाऊँ ? तब क्षुद्र कही–मैं वही लेऊँ, रत्ननिके न लूं, न साँचे लूं। विनयदत्त कहै जो चाहो सो लेहु, वह मेरे हाथ नाहीं। क्षुद्र बारम्बार वही माँगै सो वह तो मूढ हुता, तुम पुरुषोत्तम होय ऐसे क्यों भूलो हो। वह पत्रनिका मयूर राजपुत्र के हाथ गया, विनयदत्त कैसे लावै। तातैं अनेक विद्याधरनिकी पुत्री, सुवर्ण समान वर्ण जिनका, श्वेत श्याम आरक्त तीन वर्णकूं धारै हैं नेत्र कमलनिके, सुन्दर पीवर हैं स्तन जिनके, कदली समान जघा जिनकी अर मुख की कांतिकर शरदकी पूर्णमासीके चद्रमाकूं जीतै, मनोहर गुणनिकी धरणहारी, तिनके पति होऊ। हे रघुनाथ ! महाभाग्य ! हमपर कृपा करहु, यह दुःखका बढावनहारा शोक सताप छोडहु। तब लक्ष्मण बोले–हे जाम्बूनद ! तैं यह दृष्टान्त यथार्थ न दिया। हम कहै हैं सो सुनहु—एक कुसुमपुर नामा नगर, तहाँ एक प्रभव नामा गृहस्थ, ताके यमुना नामा स्त्री, ताके धनपाल बंधुपाल गृहपाल पशुपाल क्षेत्रपाल ये पाँच पुत्र, सो ये पाँचों ही पुत्र यथार्थ गुणनिके धारक, धनके कमाऊ, कुटुम्बके

पालिवेविषैं उद्यमी, सदा लौकिक धन्धे करै, क्षणमात्र आलस नाहीं अर इन सबनितैं छोटा आत्म श्रेय नामा कुमार सो पुण्य के योगकरि देवनि कैसे भोग भोगवै, सो याकौं माता पिता अर बड़े भाई कटुक वचन कहैं। एक दिन यह मानी नगर बाहिर भ्रमै था सो कोमल शरीर खेदकूं प्राप्त, भला उद्यम करवेकू असमर्थ सो आपका मरण वांछता हुता, ता समय याके पूर्व पुण्य कर्मके उदयकरि एक राजपुत्र याहि कहता भया–हे मनुष्य! मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र भानुकुमार हूँ सो देशांतर भ्रमणकूं गया हुता, सो अनेक देश देखे, पृथ्वी विषै भ्रमण करता दैवयोगतैं कर्मपुर गया, सो एक निमित्तज्ञानी पुरुषकी संगति विषैं रहा ताने मोहि दुःखी जान करुणाकर यह मंत्रमई लोहका कड़ा दिया अर कही–यह सब रोगका नाशक है, बुद्धिवर्द्धक है, ग्रह सर्प पिशाचादिका वश करणहारा है, इत्यादि अनेक गुण हैं सो तू राख, ऐसे कह मोहि दिया। अर कहा–अब मेरे राज्यका उदय आया। मैं राज्य करवेकूं अपने नगर आऊँ हूँ. यह कड़ा मै तोहि दूं हूँ। तू मरै मत, जो वस्तु आपपै आई, अपना कार्य कर काहूकू दे डारी तो यह महाफल है सो लोकविषैं ऐसे पुरुषनिकूं मनुष्य पूजैं हैं। आत्मश्रेयको ऐसा कह राजकुमार अपना कड़ा देय अपने नगर गया। अर यह कड़ा लेय अपनेघर आया। ताही दिन ता नगरके राजाकी रानीकूं सर्पने डसी हुती, सो चेष्टा-रहित होय गई। ताहि मृतक जान जलावेकू लाए हुते, सो आत्मश्रेयने मंत्रमई लोहेके कड़ेके प्रसादकरि विषरहित करी, तब राजा अति दान देय बहुत सत्कार किया, आत्मश्रेयके कड़ेके प्रसादकरि महाभोग सामग्री भई। सब भाइयनि विषैं यह मुख्य ठहरा, पुण्यकर्मके प्रभावकरि पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध भया। एक दिन कड़ेकूं वस्त्रविषैं बांध सरोवर गया, सो गोह आय कड़ेकू लेय महावृक्षके तले ऊंडा बिल है ताविषैं पैठ गई, बिल शिलानिकरि आच्छादित सो गोह बिल विषै बैठी भयानक शब्द करै। आत्मश्रेय ने जाना कि कड़ेकूं गोह बिलविषै ले गई गर्जना करै है। तब आत्मश्रेय ने वृक्ष जडते उखाड़ शिला दूर कर गोहका बिल चूर कर डारा अर बहुत धन लिया। सो राम तो आत्मश्रेय हैं अर सीता कड़े समान है, लंका बिल समान है, रावण गोह समान है तातैं हो विद्याधरो! तुम निर्भय होवो। ये लक्ष्मण के वचन जांबूवद के वचननिकूं खंडन करनहारे सुनकर विद्याधर आश्चर्यकूं प्राप्त भए।

अथानंतर जांबूनद आदि सब रामसूं कहते भए, हे देव! अनंतवीर्य योगींद्रकूं रावणने नमस्कारकर अपने मृत्युका कारण पूछया, तब अनंतवीर्यकी आज्ञा भई–जो कोटि शिलाकूं उठावेगा, ता करि तेरी मृत्यु है। तब ये सर्वज्ञके वचन सुन रावणने विचारी कि ऐसा कौन पुरुष है जो कोटिशिलाकूं उठावै? ये वचन विद्याधरनिके सुन लक्ष्मण बोले– मैं अब ही यात्राकूं वहां चलूंगा तब सब ही प्रमाद तज उनके लार भए। जांबूनद, महा-

बुद्धि, सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, नल नील इत्यादि नामी पुरुष विमानविषें राम-लक्ष्मण कूं चढ़ाय कोटिशिलाकी ओर चाले। अंधेरीरात्रिविषें शीघ्र ही जाय पहुंचे, शिलाके समीप उतरे, शिला महामनोहर, सुर-नर-असुरनिकरि नमस्कार करने योग्य, ये सर्वदिशाविषें सामन्तनिकूं रखवारे राख शिलाकी यात्राकूं गए, हाथ जोड़ शीस नवाय नमस्कार किया, सुगंध कमलनिकरि तथा अन्य पुष्पनिकरि शिलाकी अर्चा करी, चंदन कर चरची, सो शिला कैसी शोभती भई मानो साक्षात् शची ही है। ताविषें जे सिद्ध भए तिनकूं नमस्कार कर हाथ जोड़ भक्तिकर शिला की तीन प्रदक्षिणा दई। सब विधिविषें प्रवीण लक्ष्मण कमर बांध महाविनयकूं धरता संता णमोकार मंत्रमें तत्पर महाभक्ति करि स्तुति करवेकूं उद्यमी भया। अर सुग्रीवादि वानरवंशी सब ही जयजयकार शब्दकर महास्तोत्र पढ़ते भए, एकाग्र चित्तकर सिद्धनिकी स्तुति करै हैं, जे भगवान् सिद्ध त्रैलोक्यके शिखर महादेदीप्यमान हैं अरजे सिद्धस्वरूपमात्रसत्ताकर अविनश्वर हैं, जिनका बहुरि जन्म नाहीं, अनंतवीर्यकर संयुक्त, अपने स्वभावमें लीन, महासमीचीनता युक्त, समस्त कर्म-रहित, संसार-समुद्र के पारगामी, कल्याणमूर्ति, आनंद-पिंड, केवलज्ञान केवलदर्शनके आधार, पुरुषाकार, परमसूक्ष्म, अमूर्ति, अगुरुलघु, असंख्यात-प्रदेशी, अनतगुणरूप, सर्वकू एक समयमें जानैं, सब सिद्ध समान, कृतकृत्य-जिनके कोई कार्य करवा रहा नाही, सर्वथा शुद्ध भाव, सर्व द्रव्य, सर्वक्षेत्र सर्वभावके ज्ञाता, निरंजन, आत्मज्ञानरूप, शुक्ल ध्यान अग्निकर अष्ट कर्म वन के भस्म करणहारे अर महाप्रकाशरूप प्रतापके पुञ्ज, जिनकूं इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्त्यादि पृथ्वीके नाथ सब ही सेवें, ऐसे महास्तुति करें। ते भगवान् संसारके प्रपंचतें रहित अपने आनदस्वभाव, तिनमई अनंत सिद्ध भए अर अनंत होंहिंगे। अढ़ाई द्वीप विषें मोक्षका मार्ग प्रवृतै है, एकसौ साठ महाविदेह अर पांच भरत, पांच ऐरावत, ये एकसौ सत्तर क्षेत्र, तिनके आर्यखंडविषें जे सिद्ध भए अर होंहिंगे तिन सबनिकूं हमारा नमस्कार होहु। या भरतक्षेत्र विषें यह कोटिशिला, यहांतें जे सिद्धशिलाकूं प्राप्त भए ते हमकूं कल्याणके कर्ता होहु; जीवनिकूं महामंगलरूप, या भांति चिरकाल स्तुति कर चित्त विषै सिद्धनिका ध्यान कर सब ही लक्ष्मणकूं आशीर्वाद देते भए—

या कोटिशिलातें जे सिद्ध भए वे सर्व तिहारा विघ्न हरें, अरिहंत सिद्ध साधु जिनशासन ये सर्व तुमकूं मंगलके करता होहु, या भांति शब्द करते भए। अर लक्ष्मण सिद्धनिका ध्यानकर शिलाकूं गोडे प्रमाण उठावता भया। अनेक आभूषण पहिरे, भुज-बंधन कर शोभायमान है भुजा जाकी सो भुजानिकरि कोटिशिला उठाई तब आकाशविषें देव जय जय शब्द करते भए। सुग्रीवादिक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। कोटिशिलाकी यात्रा कर बहुरि सम्मेदशिखर गए अर कैलाशकी यात्रा कर भरतक्षेत्र के सर्व तीर्थ बंदे, प्रद-

क्षिणा करी, साँझ समय विमानमें बैठ जय जय कार करते सन्ते राम लक्ष्मण के लार किहूकंधापुर आए। सब अपने अपने स्थानक सुखतें शयन किया, बहुरि प्रभात भया, सब एकत्र होय परस्पर वार्ता करते भए—देखो, अब थोड़े ही दिनमें इन दोऊ भाईनि का नष्कंटक राज्य होयगा। ये परम शक्तिकूं धरें हैं। वह निर्वाणशिला इनने उठाई सो यह सामान्य मनुष्य नाहीं, यह लक्ष्मण रावणकूं नि.संदेह मारेगा। तब कैयक कहते भए—रावणने कैलाश उठाया सो वाहूका पराक्रम घाट नाहीं। तब और कहते भए-ताने कैलाश विद्याके बलतें उठाया सो आश्चर्य नाहीं। तब कैयक कहते भए—काहेकूं विवाद करो, जगतके कल्याण अर्थ इनका अर उनका हित कराय देवो, या समान और नाहीं। रावणतें प्रार्थनाकर सीता लाय रामकूं सौंपो, युद्ध तें कहा प्रयोजन है। आगें तारकमेरु महा बलवान भए सो संग्राम विषें मारे गए। वे तीन खंड के अधिपति महाभाग्य, महा-पराक्रमी हुते अर और हू अनेक राजा रणविषें हतेगए तातें साम कहिए परस्परमित्रता श्रेष्ठ है। तब ये विद्याकी विधिमें प्रवीण परस्पर मंत्रकर श्रीराम पै आए, अति भक्तितें रामके समीप नमस्कार कर बैठे ऐसे शोभते भए जैसे इन्द्रके समीप देव सोहैं। कैसे हैं राम? नेत्रनिकूं आनंद के कारण सो कहते भए—अब तुम काहे ढील करो हो, मो बिना जानकी लंका विषें महादुःखकरि तिष्ठै है, तातें दीर्घ सोच छांडि अबार ही लंकाकी तरफ गमनका उद्यम करहु। तब जे सुग्रीवके जांबूनद आदि मन्त्री राजनीतिमें प्रवीन हैं ते रामसूं विनती करते भए—हे देव! हमारे ढील नाहीं परन्तु यह निश्चय कहो कि सीताके लायवे हीका प्रयोजन है कि राक्षसनितैं युद्ध करना है, यह सामान्य युद्ध नाहीं, विजय पावना अति कठिन है। वह भरत क्षेत्रके तीनखंड का निष्कंटक राज करै है। द्वीप समुद्रनि विषें रावण प्रसिद्ध है जासूं धातकीखंड द्वीपके शंका मानै। जम्बूद्वीपविषें जाकी अधिक महिमा, अद्भुत कार्यका करणहारा, सबके उरका शल्य है, सो युद्ध योग्य नाहीं। तातैं रणकी बुद्धि छांड़ि हम जो कहैं सो करहु। हे देव! ताहि युद्ध सन्मुख करिवेमें जगतकूं महा क्लेश उपजै है, प्राणीनिके समूहका विध्वंस होय है, समस्त उत्तम क्रिया जगत तें जाय है। तातें रावण का भाई विभीषण जो पापकर्म रहित श्रावकव्रत का धारक है, रावण ताके वचनकूं उलंघै नाही, तिन दोऊ भाईनिमे अन्तराय रहित परम प्रीति है सो विभीषण चातुर्यतातें समझावेगा अर रावणहू अपयशतें शकेगा, लज्जाकर सीताकूं पठाय देगा तातें विचार कर रावण पै ऐसा पुरुष भेजना जो बातें करनेमें प्रवीण होय अर राजनीतिमें कुशल होय, अनेक नय जानै अर रावणका कृपापात्र हो, ऐसा हेरहु। तब महोदधि नामा विद्याधर कहता भया—तुम कछु सुनी है कि लंकाको चौगिरद मायामई यन्त्र रचा है सो आकाशके मार्गतें कोऊ जाय सकै नाहीं, पृथ्वीके मार्गतें जायसकै नाहीं। लंका अगम्य है,

महाभयानक, देख्या न जाय ऐसा मायामई यंत्र बनाया है सो इतने बैठे हैं तिनमें तो ऐसा कोऊ नाहीं जो लंका विषैं प्रवेश करै तातैं पवनंजयका पुत्र श्रीशैल जाहि हनुमान कहै हैं सो महाविद्याका धारक बलवान पराक्रमी प्रतापरूप है ताहि जांचो, वह रावणका परम मित्र है अर पुरुषोत्तम है सो रावणकूं समझाय विघ्न टारेगा। तब यह बात सबने प्रमाण करी। हनुमान के निकट श्रीभूत नामा दूत शीघ्र पठाया। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतैं कहै हैं—हे राजन्! महा बुद्धिमान होय अर महाशक्तिकूं धरे होय अर उपाय करै तो भी होनहार होय सो होय; जैसें उदयकालमें सूर्यका उदय होय ही तैसें जो होनहार होय सो होय ही।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं कोटि शिला उठावने का व्याख्यान वर्णन करने वाला अडतालीसवां पर्व पूर्ण भया ॥४८॥

उनंचासवां पर्व

(हनुमान का लंका को प्रस्थान)

अथानन्तर श्रीभूतनामा दूत पवनके वेगतैं शीघ्र ही आकाशके मार्गसों लक्ष्मी का निवास जो श्रीपुरनगर, अनेक जिन-भवन तिनकरि शोभित तहां गया। जहां मन्दिर सुवर्ण रत्नमई सो तिनकी माला करि मण्डित, कुन्दके पुष्पसमान उज्ज्वल, सुन्दर झरोखनिकरि शोभित, मनोहर उपवनकर रमणीक, सो दूत नगरकी शोभा अर नगरके अपूर्व लोग देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया। बहुरि इन्द्रके महल समान राजमंदिर अर तहांकी अद्भुत रचना देख चकित होय रहा। खरदूषण की बेटी रावण की भानजी अनंगकुसमा ताके खरदूषण का शोक, कर्म के उदय करि शुभ अशुभ फल पावै, ताहि कोई निवारवे शक्त नाहीं; मनुष्यनिकी कहा शक्ति, देवनिहू करि अन्यथा न होय। दूत ने द्वारे आय अपने आगमन का वृत्तांत कहा, सो अनंगकुसमा की मर्यादा नामा द्वारपाली दूतकूं भीतर लेय गई। अनंगकुसमा ने सकल वृत्तांत पूछ्या सो श्रीभूत ने नमस्कारकर विस्तारसूं कहा। दंडकवन में श्रीराम लक्ष्मणका आवना, शम्बूकका वध, खरदूषणतैं युद्ध, बहुरि भले भले सुभटनि सहित खरदूषणका मरण; यह वार्ता सुन अनंगकुसमा मूर्च्छाकूं प्राप्त भई। तब चन्दनके जलकरि सींच सचेत करी। अनंगकुसमा अश्रुपात डारती विलाप करती भई—हाय पिता! हाय भाई! तुम कहां गए। एक बार मोहि दर्शन देवो, वचनालाप करो, महा भयानक वनमें भूमिगोचरीनि तुमको कैसे हते? या भांति पिता अर भाईके दुःखकरि चन्द्रनखाकी पुत्री दुःखी भई सो महा कष्टकरि सखीनिने शांतिताकूं प्राप्त करी। अर जे प्रवीण उत्तम जन हुते तिनने बहुत संबोधी। तब यह जिनमार्गविषै प्रवीण समस्त संसारके स्वरूपकूं जान

लोकाचारकी रीति-प्रमाण पिता के मरणकी क्रिया करती भई। बहुरि दूतकूं हनुमान महाशोक के भरे सकल वृत्तान्त पूछते भए। तब इनकूं सकल वृत्तान्त कहा। सो हनुमान खरदूषण के मरणकरि अति क्रोधकूं प्राप्त भया। भौह टेढ़ी होय गई, मुख अर नेत्र आरक्त भए। तब दूतने कोप निवारिवेके निमित्त मधुर स्वरनिकरि विनती करी—हे देव! किहकंधापुरके स्वामी सुग्रीव तिनकूं दुःख उपजा, सो तो आप जानो ही हो, साहसगति विद्याधर सुग्रीवका रूप बनाय आया, ताते पीडित भया सुग्रीव श्रीरामके शरणें गया सो राम सुग्रीवका दुःख दूर करवे निमित्त किहकंधापुर आए। प्रथम तो सुग्रीव अर वाके युद्ध भया सो सुग्रीवकरि वह जीता न गया। बहुरि श्रीराम के अर वाके युद्ध भया सो रामकूं देख वैताली विद्या भाग गई। तब वह साहसगति सुग्रीव के रूपरहित जैसा हुता तैसा होय गया। महायुद्ध विषैं रामने ताहि मार्‍या, सुग्रीवका दुःख दूर किया। यह बात सुन हनुमानका क्रोध दूर भया। मुखकमल फूला, हर्षित होय कहते भए—

अहो श्रीरामने हमारा बड़ा उपकार किया। सुग्रीवका कुल अकीर्तिरूप सागरमें डूबे था, सो शीघ्र ही उबारा। सुवर्ण कलश-समान सुग्रीव का गोत्र सो अपयशरूप ऊंडे कूप में डूबता हुता, श्रीराम सन्मति के धारकने गुणरूप हस्तकरि काढ्या। या भांति हनुमान ने बहुत प्रशंसा करी अर सुख के सागर विषै मग्न भए। हनुमानकी दूजी स्त्री सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा पिता के शोक का अभाव सुन हर्षित भई। ताके बड़ा उत्साह भया। दान पूजा आदि अनेक शुभ कार्य किए। हनुमान के घर विषै अनंगकुसमा के घर खरदूषणका शोक भया अर पद्मरागा के सुग्रीवका हर्ष भया, या भाँति विषमताकूं प्राप्त भए घर के लोग तिनको समाधान कर हनुमान किहकंधापुरकूं सन्मुख भए। महा ऋद्धि कर सेनासूं युक्त हनुमान चल्या, आकाशविषै अधिक शोभा भई, महारत्नमई हनुमानका विमान ताकी किरणनिकरि सूर्यकी प्रभा मद होय गई। हनुमानकूं चालता सुन अनेक राजा लार भए, जैसें इन्द्र की लारें बड़े २ देव गमन करै, आगें पीछे दाहिनी बाईं ओर अनेक राजा चाले जाय हैं, विद्याधरनिके शब्द करि आकाश शब्दमई होय गया। आकाशगामी अश्व अर गज तिनके समूहकरि आकाश चित्रामरूप होय गया। महातुरंगनिकरि संयुक्त ध्वजानि करि शोभित सुन्दर रथ तिनकर आकाश शोभायमान भासता भया। अर उज्ज्वल छत्रनिके समूहकर शोभित आकाश ऐसा भासै मानों कुमुदनिका वन ही है। अर गंभीर दुंदुभिनिके शब्दनिकरि दसो दिशा ध्वनिरूप होय गई मानों मेघ गाजै है। अर अनेक वर्णके आभूषण तिनकी ज्योतिके समूहकरि आकाश नाना रंगरूप होय गया मानों काहू चतुर रंगरेजाका रंगा वस्त्र है। हनुमानके वादित्रनिका नाद सुन कपिवंशी हर्षित भए जैसें मेघकी ध्वनि सुन मोर हर्षित होय। सुग्रीवने सब नगरकी शोभा कराई,

हाट बाजार उजाले, मन्दरनिपर ध्वजा चढ़ाई, रत्ननिके तोरणनिकर द्वार शोभित किए। हनुमान के सब सन्मुख गए, सबका पूज्य देवनि की न्याईं नगर विषैं प्रवेश किया। सुग्रीव के मंदिर आए, सुग्रीवने बहुत आदर किया अर श्रीराम का समस्त वृत्तान्त कहा। तब ही सुग्रीवादिक हनुमान-सहित परम हर्षकूं धरते श्रीरामके निकट आए सो हनुमान रामकूं देखता भया, महासुन्दर सूक्ष्म स्निग्ध श्याम सुगन्ध वक्रलंबे महामनोहर हैं केश जिनके, सो लक्ष्मीरूप बेलि तिनकर मंडित, महा सुकुमार है अंग जिनका, सूर्यसमान प्रतापी, चन्द्र समान कांतिधारी, अपनी कांतिकर प्रकाशके करणहारे, नेत्रनिके आनन्दके कारण, महामनोहर, अति प्रवीण, आश्चर्यके करणहारे मानों स्वर्गलोकतें देव ही आएहैं, देदीप्यमान, निर्मल स्वर्णके कमलके गर्भसमान है प्रभा जिनकी, सुन्दर श्रवण, सुन्दर नासिका, सर्वांग सुन्दर मानों साक्षात् कामदेव ही हैं, कमलनयन, नवयौवन, चढे धनुष समान भौंह जिनकी, पूर्णमासीके चन्द्रमा समान वदन, महा मनोहर मूंगा समान लाल होंठ, कुन्दके पुष्प समान उज्ज्वल दंत, शंख समान कंठ, मृगेन्द्रसमान साहस, सुन्दर कटि, सुन्दर वक्षस्थल, महाबाहु, श्रीवत्सलक्षण, दक्षिणावर्त गम्भीर नाभि, आरक्त कमल समान कर चरण, महा कोमल गोल पुष्ट दोऊ जंघा अर कछुवेकी पीठ समान चरणके अग्रभाग, महा कांतिकूं धरै, अरुण नख, अतुल बल, महायोधा, महा गंभीर, महा उदार, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन मानों सर्व जगत्त्रय की सुन्दरता एकत्रकर बनाए हैं, महाप्रभाव संयुक्त परन्तु सीताके वियोगकरि व्याकुल चित्त मानों शची-रहित इन्द्र विराजै हैं अथवा रोहिणी-रहित चन्द्रमा तिष्ठै हैं। रूप सौभाग्य कर मंडित, सर्व शास्त्रनिके वेत्ता महाशूरवीर जिनकी सर्वत्र कीर्ति फैल रही है, महा बुद्धिमान् गुणवान्, ऐसे श्रीराम तिनकूं देखकर हनुमान आश्चर्यकूं प्राप्त भया। तिनके शरीरकी कांति हनुमान पर जा पड़ी, प्रभाव देखकर वशीभूत भया, पवनका पुत्र मनमें विचारता भया— ये श्रीराम दशरथके पुत्र, भाई लक्ष्मण लोक-श्रेष्ठ याका आज्ञाकारी, संग्रामविषै जाके चन्द्रमा समान उज्ज्वल छत्र देख साहसगतिकी विद्या वैताली ताके शरीरतैं निकस गई अर इन्द्रहूकूं मैं देख्या है परंतु इनकूं देखकर परम आनन्द संयुक्त हृदय मेरा नम्रीभूत भया; या भांति आश्चर्यकूं प्राप्त भया। अंजनीका पुत्र, श्रीराम कमललोचन ताके दर्शनकूं आगे आया अर लक्ष्मणने पहिले ही रामते कह राखी हुती सो हनुमानकूं दूरहीतैं देख उठे, उरसे लगाय मिले, परस्पर अतिस्नेह भया, हनुमान अति विनयकर बैठा, आप श्रीराम सिंहासन पर विराजे, भुज बंधनकरि शोभित भुजा जिनकी, महा निर्मल नीलाम्बर मंडित राजनिके चूड़ामणि, महासुन्दर हार पहिरे ऐसे सोहैं मानों नक्षत्रनि सहित चंद्रमा ही है अर दिव्य पीताम्बर धारे हार कुण्डल कर्पूरादि संयुक्त सुमित्राके पुत्र श्रीलक्ष्मण कैसे सोहै हैं मानों

बिजुरी-सहित मेघ ही है। अर वानरवंशनिका मुकुट, देवनिसमान पराक्रम जाका, राजा सुग्रीव कैसा सोहै मानों लोकपाल ही है अर लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित विद्याधर कैसा सोहै मानों लक्ष्मण नरसिंह का चक्ररत्न ही है, रामके समीप हनुमान कैसा शोभता भया जैसे पूर्णचन्द्रके समीप बुध सोहै है अर सुग्रीव के दोय पुत्र एक अग दूजा अंगद सो सुगंधमाला अर वस्त्र आभूषणादिकर मंडित ऐसे सोहै मानों यह कुबेर हो है अर नल नील अर सैंकड़ों राजा श्रीरामकी सभा विषै ऐसे सोहैं जैसे इन्द्र की सभा विषै देव सोहैं। अनेक प्रकार की सुगन्ध अर आभूषणनिका उद्योत ताकरि सभा ऐसी सोहै मानो इन्द्र की सभा है। तब हनुमान आश्चर्यकूं पाय अति प्रीतिकूं प्राप्त भया श्रीरामको कहता भया—

हे देव ! शास्त्रमें ऐसा कहा है—प्रशंसा परोक्ष करिए, प्रत्यक्ष न करिए परन्तु आपके गुणनिकर यह मन वशीभूत भया प्रत्यक्ष स्तुति करै है। अर यह रीति है कि आप जिनके आश्रय होय तिनके गुण वर्णन करै सो जैसी महिमा आपकी हमने सुनी हुती तैसी प्रत्यक्ष देखी। आप जीवनिके दयालु, महा पराक्रमी, परम हितू, गुणनिके समूह, जिनके निर्मल यशकर जगत् शोभायमान है। हे नाथ ! सीताके स्वयम्बर विधान विषैं हजारों देव जाकी रक्षा करैं ऐसा वज्रावर्त धनुष आपने चढ़ाया सो हमने वे सब पराक्रम सुने। जिनका पिता दशरथ, माता कौशल्या, भाई लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, स्त्रीका भाई भामंडल, सो राम जगतपति तुम धन्य हो, तिहारी शक्ति धन्य, तिहारा रूप धन्य, सागरावर्त धनुषका धारक लक्ष्मण सो सदा आज्ञाकारी धन्य, यह धैर्य धन्य, यह त्याग धन्य जो पिताके वचन पालवे अर्थ राज्य का त्यागकर महा भयानक दण्डक वनमें प्रवेश किया अर आप हमारा जैसा उपकार किया तैसा इन्द्र हू न करै। सुग्रीव का रूपकर साहसगति सुग्रीव के घरमे आया हुता सो आप कपिवंशका कलक दूर किया, आपके दर्शनकर बैताली विद्या साहसगतिके शरीरतै निकस गई। आप युद्धविषैं ताहि हत्या सो आपने तो हमारा बड़ा उपकार किया। अब हम कहा सेवा करै। शास्त्र की यह आज्ञा है जो आपसों उपकार करै अर ताकी सेवा न करै ताके भाव शुद्धता नाहीं। अर जो कृतघ्न उपकार भूलै सो न्याय धर्मतैं बहिर्मुख है, पापनिविषैं महापापी है अर पारधीन में पारधी है, निर्दई है सो वातै सत्पुरुष संभाषण न करै। तातैं हम अपना शरीर तजकर तिहारे कामकूं उद्यमी हैं। मैं लंकापतिकूं समझाय तिहारी स्त्री तिहारे पास लाऊँगा। हे राघव ! महाबाहू, सीताका मुखरूप कमल, पूर्णमासीके चन्द्रमा समान कांतिका पुंज, आप निस्संदेह शीघ्र ही सीता देखोगे। तब जांबूनद मंत्री हनुमानकूं परम हितके वचन कहता भया। हे वत्स वायुपुत्र हमारे सबनिके एक तू ही आश्रय है, सावधान होय लंकाकूं जाना अर काहूसों कदाचित् विरोध न करना। तब हनुमान कही कि आपकी आज्ञा प्रमाण ही होयगा।

अथानंतर हनुमान लंका चालवेकू उद्यमी भया। तब राम अति प्रीतकू प्राप्त भए एकांतमें कहते भए—हे वायुपुत्र ! सीताकूं ऐसे कहियो कि हे महासती ! तिहारे वियोगकरि रामका मन एक क्षण भी साताररूप नाहीं अर राघवे यों कही है कि ज्यों लग तुम पराए वश हो त्यों लग हम अपना पुरुषार्थ नाहीं जानै हैं। अर तुम महा निर्मल शील करि पूर्ण हो अर हमारे वियोगकरि प्राण तजा चाहो हो सो प्राण मति तजियो, अपना चित्त समाधानरूप राखहु, विवेकी जीवनिकूं आर्त्त रौद्रतें प्राण न तजने। मनुष्य देह अति दुर्लभ है, ताविषें जिनेन्द्र का धर्म दुर्लभ है, ताविषें समाधिमरण दुर्लभ है, जो समाधिमरण न होय तो यह मनुष्य देह तुषवत् असार है। अर यह मेरे हाथ की मुद्रिका जाकर ताहि विश्वास उपजै सो ले जावहु अर उनका चूड़ामणि महा प्रभावरूप हमपै ले आइयो। तब हनुमान कही कि जो आप आज्ञा करोगे सोही होयगा; ऐसा कहकर हाथ जोड़ नमस्कार कर बहुरि लक्ष्मण तें वशीभूत होय बाहिर निकस्या। विभूतिकर परिपूर्ण अपने तेजकरि सर्व दिशाकूं उद्योत करता सुग्रीव के मन्दिर आया अर सुग्रीवसों कही—ज्यों लग मेरा आवना न होय त्यों लग तुम बहुत सावधान यहाँ ही रहियो, या भांति कहकर, सुन्दर है शिखर जाके, ऐसा जो विमान तापर चढ्या ऐसा शोभता भया जैसा सुमेरुके ऊपर जिनमन्दिर शोभै, परम ज्योति करि मंडित, उज्ज्वल छत्रकर शोभित, हंस समान उज्ज्वल, चमर जापर ढुरै हैं अर पवन समान अश्व चालते, पर्वत समान गज अर देवनिकी सेना समान सेना ताकरि संयुक्त, या भांति महा विभूतिकरि युक्त आकाश विषें गमन करता रामादिक सर्वने देख्या। गौतमस्वामी राजा श्रेणिकतें कहै हैं, हे राजन् ! यह जगत् नाना प्रकारके जीवनिकरि भर्‍या है, तिनमे जो कोई परमार्थके निमित्त उद्यम करै हैं सो प्रशंसा योग्य हैं अर स्वार्थतें तो जगत भरा ही है। जे पराया उपकार करें ते कृतज्ञ हैं, प्रशंसा योग्य हैं अर जे निःकारण उपकार करै हैं उनके तुल्य इन्द्र चन्द्र कुबेर भी नाहीं। अर जे पापी कृतघ्नी पराया उपकार लोपै हैं वे नरक-निगोदके पात्र हैं अर लोकनिंद्य हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं हनुमान का लंका की दिशाको गमन वर्णन करने वाला उनंचासवां पर्व पूर्ण भया ॥४९॥

पचासवां पर्व

(हनुमान का अपने नाना राजा महेन्द्र के साथ युद्ध और मिलाप)

अथानन्तर अंजनीका पुत्र आकाशविषें गमन करता परम उदयकूं धरै कैसा शोभता भया मानों बहिन समान जानकी ताहि लायवेकूं भाई भामंडल जाय है। कैसे हैं हनुमान? श्रीरामकी आज्ञाविषें प्रवर्ते हैं, महा विनयरूप श्रावकन्त शुद्धभाव रामके कामका चित्तमें

उत्साह सो दिशा मंडल अवलोकते लंकाके मार्गविषै राजा महेन्द्रका नगर देखते भए मानों इन्द्रका नगर है। पर्वतके शिखर पर नगर बसै है जहाँ चन्द्रमा समान उज्ज्वल मन्दिर हैं सो नगर दूरहीतै नजर आया। तब हनुमानने देखकरि मनमें चितया कि यह दुर्बुद्धि महेंद्रका नगर है, वह यहाँ तिष्ठै है, मेरा काहेका नाना, जाने मेरी माताको संताप उपजाया था। पिता होयकर पुत्रीका ऐसा अपमान करै जो जाने नगर में न राखी तब माता वनमें गई जहां अनन्तगति मुनि तिष्ठे हुते, तिनने अमृतरूप वचन कहकर समाधान करी सो मेरा उद्यानविषैं जन्म भया, जहां कोई बंधु नाहीं। मेरी माता शरणे आवै अर यह न राखै—यह क्षत्री का धर्म नाहीं ताते याका गर्व हरूं। तब क्रोधकर रणके नगारे बजाए अर ढोल बाजते भए, शंखनिकी ध्वनि भई, योधानिके आयुध झलकने लगे, राजा महेन्द्र परचक्र आया सुनकर सर्व सेना सहित बाहर निकस्या। दोऊ सेनाविषैं महायुद्ध भया। महेंद्र रथ में चढ़ा, माथे छत्र फिरता धनुष चढ़ाय हनुमान पर आया, सो हनुमान ने तीन बाणनिकरि ताका धनुष छेद्या जैसें योगीश्वर तीन गुप्तिकर मानकूं छेदैं। बहुरि महेंद्र ने दूजा धनुष लेवेका उद्यम किया ताके पहिले ही बाणनिकरि ताके घोड़े छुटाय दिए सो रथके समीप भ्रमैं जैसे मनके प्रेरे इन्द्रिय विषयनिमें भ्रमैं। बहुरि महेंद्रका पुत्र विमानमें बैठ हनुमान पर आया सो हनुमानके अर वाके बाणचक्र कनक इत्यादि अनेक आयुधनिकरि परस्पर महायुद्ध भया। हनुमानने अपनी विद्याकरि वाके शस्त्र निवारे जैसे योगीश्वर आत्म चिंतवनकर परीषहके समूहकूं निवारैं। ताने अनेक शस्त्र चलाए सो हनुमान के एकहू न लाग्या जैसे मुनि को काम का एक भी बाण न लागै। जैसे तृणनिके समूह अग्निमें भस्म होंय तैसे महेंद्रके पुत्रके सर्व शस्त्र हनुमानपर विफल गए। अर हनुमान ने ताहि पकड़ा जैसे सर्प को गरुड़ पकड़ै। तब राजा महेंद्र महारथी पुत्रकूं पकड़ा देख महा क्रोधायमान भया हनुमान पर आया जैसे साहसगति रामपर आया हुता। हनुमानहू महाधनुषधारी सूर्यके रथ समान रथपर चढ़ा, मनोहर है उरविषैं हार जाके, शूरवीरनिमें महाशूरवीर, नानाके सन्मुख भया सो दोऊनिमे करोत कुठार खड्ग बाण आदि अनेक शस्त्रनिकरि पवन अर मेघकी न्याईं महायुद्ध भया। दोऊ सिंह समान महा उद्धत महा-कोप के भरे बलवन्त अग्नि के कण-समान रक्त नेत्र, दोऊ अजगर समान भयावक शब्द करते परस्पर शस्त्र चलावते, गर्व हास-सयुक्त प्रगट हैं शब्द जिनके, परस्पर ऐसे शब्द करै हैं—धिक्कार तेरे शूरपनेको, तू कहा युद्ध करना जानै इत्यादि वचन परस्पर कहते भए। दोऊ विद्याबलकरि युक्त परम युद्ध करते बारम्बार अपने लोगनिकरि हाहाकार जयजयकारादिक शब्द करावते भए। राजा महेन्द्र महाविक्रिया शक्तिका धारक, क्रोधकर प्रज्वलित है शरीर जाका, सो हनुमानपर आयुधनिके समूह डारता भया, भुशुंडी फरसी

बाण शतघ्नी मुदगर गदा पर्वतनिके शिखर शाल वृक्ष बटवृक्ष इत्यादि अनेक आयुध हनुमान पर महेन्द्र ने चलाए सो हनुमान व्याकुलताकूं प्राप्त न भया जैसे गिरिराज महामेघके समूह करि कंपायमान न होय। जेते महेन्द्र ने बाण चलाए सो हनुमानने उनको विद्याके प्रभाव करि सब चूर डारे। बहुरि अपने रथतें उछल महेन्द्रके रथमें जाय पड़े; दिग्गजकी सूंड समान अपने जे हाथ तिनकरि महेन्द्रकूं पकड़ लिया अर अपने रथमें आए, शूरवीरनिकरि पाया है जीत का शब्द जाने, सर्व ही लोक प्रशंसा करते भए। राजा महेन्द्र हनुमानकूं महाबलवान् परम उदयरूप देख महा सौम्य वाणीकर प्रशंसा करता भया—हे पुत्र! तेरी महिमा जो हमने सुनी हुती सो प्रत्यक्ष देखी। मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति जो अब तक काहूने न जीता, रथनूपुरका स्वामी राजा इन्द्र ताकरि न जीता गया, विजियार्धगिरिके निवासी विद्याधर तिनमें महाप्रभाव संयुक्त सदा महिमाकूं धरै मेरा पुत्र सो तैंने जीता अर पकड़ा। धन्य पराक्रम तेरा, महाधैर्यको धरे तेरे समान और पुरुष नाहीं अर अनुपमरूप तेरा अर संग्राम विषैं अद्भुत पराक्रम हे पुत्र हनुमान! तूने हमारे सब कुल उद्योत किये। तू चरमशरीरी अवश्य योगीश्वर होयगा, विनय आदि गुणनिकरि युक्त परम तेजकी राशि कल्याणमूर्ति कल्पवृक्ष प्रगट भया है, तू जगत विषैं गुरु कुलका आश्रय अर दुःखरूप सूर्यकरजे तप्तायमान हैं तिनकूं मेघसमान। या भांति नाना महेंद्रने अति प्रशसा करी अर आंख भर आई अर रोमांच होय आए, मस्तक चूमा, छातीसे लगाया। तब हनुमान नमस्कार कर हाथ जोड़ अति विनयकर क्षमा करावते भए, एक क्षणमें और ही होय गए। हनुमान कहै हैं—हे नाथ! मैं बाल बुद्धिकर जो तिहारा अविनय किया सो क्षमा करहु। अर श्रीरामका किहकंधापुर आवनेका सकल वृत्तांत कहा, आप लंकाकी ओर जावने का वृत्तांत कहा अर कही—मैं लंका होय कार्य करके आऊं हूं, तुम किहकंधापुर जावो, रामकी सेवा करो। ऐसा कहकर हनुमान आकाशके मार्ग लकाकू चाले जैसे स्वर्गलोकको देव जाय। अर राजा महेंद्र रानी सहित तथा अपने प्रसन्नकीर्ति पुत्र सहित अजनी पुत्रीके गया, अंजनीको माता पिता अर भाईका मिलाप भया सो अति हर्षित भई। बहुरि महेंद्र किहकंधापुर आए सो राजा सुग्रीव विराधित सन्मुख गए, श्रीरामके निकट लाए, राम बहुत आदरसे मिले। जे राम सारिखे महंत पुरुष महातेज प्रतापरूप विर्मल चित्त हैं अर जिनने पूर्वजन्म विषैं दान व्रत तप आदि पुण्य उपार्जे हैं तिनकी देव विद्याधर भूमिगोचरी सब ही सेवा करैं हैं, जे महा गर्ववंत बलवंत पुरुष हैं ते सब तिनके वश होवें। तातैं सर्व प्रकार अपने मनको जीत सत्कर्म में यत्न करो, हे भव्य जीव हो ता सत्कर्म के फलकर सूर्य समान दीप्तिकूं प्राप्त होहु।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिकाविषैं हनुमानका श्रीरामके निकट आवने का बहुरि महेन्द्रका अर अंजनाका मिलाप वर्णन करने वाला पचासवां पर्व पूर्ण भया॥५०॥

इक्यावनवां पर्व

(श्रीराम के गंधर्व कन्याओं की प्राप्ति)

अथानंतर हनुमान आकाशविषें विमानमे बैठे जाय हैं अर मार्ग में दधिमुख नामा द्वीप आया, तामें दधिमुख नामा नगर जहाँ दधि समान उज्ज्वल मन्दिर, सुन्दर सुवरणके तोरण, काली घटा समान सघन उद्यान, पुरुषनिकर युक्त, स्फटिक मणि समान उज्ज्वल जलकी भरी वापिका, सोपाननि कर शोभित कमलादिक कर भरी; गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे हैं-हे राजन्! या नगरतें दूर वन तहाँ तृण बेल वृक्ष काँटनिके समूह सूके वृक्ष दुष्ट सिंहादिक जीवनिके नाद महा भयानक प्रचण्ड पवन जाकरि वृक्ष गिर पड़े, सूक गए हैं सरोवर जहाँ अर गृद्ध उल्लूक आदि दुष्ट पक्षी विचरें, ता वन विषे दोय चारणमुनि अष्ट दिनका कायोत्सर्ग धरे खड़े थे अर तहाँतें चार कोस तीन कन्या महा मनोज्ञ नेत्र जिनके अर सफेद वस्त्र पहरे विधिपूर्वक महा तपकर निर्मल चित्त जिनका मानों कन्या तीन लोककी आभूषण ही हैं।

अथानंतर वनमें अग्नि लागी सो दोऊ मुनि धीर वीर वृक्ष की न्याईं खड़े, समस्त वन दावानल करि जलै, ते दोऊ निर्ग्रन्थ योगयुक्त मोक्षाभिलाषी रागादिकके त्यागी प्रशांत वदन शान्त चित्त निष्पाप अवांछक नासादृष्टि, लम्बो हैं भुजा जिनकी, कायोत्सर्ग धरे, जिनके जीवना मरना तुल्य, शत्रु मित्र समान, काँचन पाषाण समान, सो दोऊ मुनि जलते देख हनुमान कम्पायमान भया, वात्सल्य गुणकरि मंडित महाभक्ति संयुक्त वैयाव्रत करिवेको उद्यमी भया। समुद्रका जल लेयकर मूसलाधार मेह बरसाया सो क्षणमात्रविषें पृथ्वी जलरूप होय गई। वह अग्नि तो जलकर हनुमानने ऐसे बुझाई जैसे मुनि क्षमाभाव रूप जलकरि क्रोधरूप अग्निकूं बुझावै। मुनिनका उपसर्ग दूर कर तिनकी पूजा करता भया अर वे तीनों कन्या विद्या साधती हुती सो दावानलके दाहकर व्याकुलता का कारण भया हुता सो हनुमानके मेघकर वनका उपद्रव मिटा सो विद्या सिद्ध भई, सुमेरुकी तीन प्रदक्षिणा करि मुनिनिके निकट आयकर नमस्कार करती भई अर हनुमानकी स्तुति करती भई—अहो तात! धन्य तिहारी जिनेश्वर विषै भक्ति, तुम काहूतरफ जाते हुते सो साधुनिकी रक्षा करी, हमारे कारण करि वनमें उपद्रव भया सो मुनि ध्यानारूढ़ ध्यानतैं न डिगे। तब हनुमानने पूछी—तुम कौन हो अर निर्जन स्थानकमें कौन कारण रहो हो? तब सबनि में बड़ी बहिन कहती भई—यह दधिमुख नामा नगर जहाँ राजा गन्धर्व ताकी हम तीन पुत्री, बड़ी चन्द्ररेखा दूजी विद्युतप्रभा तीजी तरंगमाला सर्वगोत्रकूं वल्लभ सो जेते विजयार्धके विद्याधर हैं वे सब हमारे विवाहके अर्थ हमारे पितासूं याचना करते भए अर एक दुष्ट अंगारक सो अति अभिलाषी निरंतर कामके दाहकर आतापरूप तिष्ठै। एक

दिन हमारे पिताने अष्टांग निमित्त के वेत्ता जे मुनि तिनकूं पूछी कि हे भगवान्! मेरी पुत्रीनिका वर कौन होयगा? तब मुनि कही—जो रणसंग्राम विषैं साहसगतिकूं मारेगा सो तेरी पुत्रीनिका वर होयगा। तब मुनिके अमोघ वचन सुनकर हमारे पिता ने विचारी कि विजयार्धकी उत्तर श्रेणीविषै जो साहसगति ताहि कौन मार सकै, जो ताहि मारै सो मनुष्य या लोकविषैं इन्द्रके समान है। अर मुनिके वचन अन्यथा नाही सो हमारे माता पिता अर सकल कुटुम्ब मुनिके वचन पर दृढ़ भए। अर अंगारक निरंतर हमारे पितासूं याचना करै सो पिता हमकूं न देय तब वह अति चितावान् दुःखरूप वैरकूं प्राप्त भया। अर हमारे यही मनोरथ उपजा जो वह दिन कब होय जब हम साहसगतिके हनिवे वारेकूं देखें सो मनोऽनुगामिनी नाम विद्या साधिवेकूं या भयानक वनविषैं आईं, सो अनुगामिनी नामा विद्या साधते हमकूं बारवां दिन है अर मुनिनि को आठमा दिन है। आज अंगारक ने हमको देख क्रोधकर वनविषै अग्नि लगाई, जो छह वर्ष कछु इक अधिक दिननिविषैं विद्या सिद्ध होय वह हमको उपसर्गतैं भय न करवे कर बारह ही दिन विषैं विद्या सिद्ध भई। या आपदा विषै हे महाभाग! जो तुम सहाय न करते तो हमारा अग्निकर नाश होता अर मुनि भस्म होते, तातैं तुम धन्य हो। तब हनुमान कहते भए कि तिहारा उद्यम सफल भया, जिनके निश्चय होय तिनकूं सिद्धि होय ही। धन्य निर्मल बुद्धि तिहारी, बड़े स्थानकविषै मनोरथ, धन्य तिहारा भाग्य, ऐसा कहकर श्रीरामके किहकंधापुर आवनेका सकल वृत्तांत कहा अर रामकी आज्ञा प्रमाण अपने लंका जायवेका वृत्तांत कहा। ताहि समय वनके दाह शांत होयवे का अर मुनि उपसर्ग दूर होनेका वृत्तांत सुन राजा गन्धर्व हनुमानपै आया। विद्याधरनिके योगकरि वह वन नंदनवन जैसा शोभता भया अर राजा गधर्व हनुमानके मुखकरि श्रीराम का किहकंधापुर विराजनेका हाल सुन अपनी पुत्रीनिसहित श्रीराम के निकट आया। पुत्री महा विभूतिकर रामकूं परणाईं, राम महा विवेकी, ये विद्याधरनिकी पुत्री अर महाराज विभूति कर युक्त हैं तोहू सीता बिना दसों दिशा शून्य देखते भए, समस्त पृथ्वी गुणवान् जीवनितैं शोभित होय है अर गुणवंतनि बिना नगर गहन वन तुल्य भासै है। कैसे हैं गुणवान् जीव? महा मनोहर है चेष्टा जिनकी अर अति सुन्दर हैं भाव जिनके। ये प्राणी पूर्वोपार्जित कर्मके फलकरि सुख दुःख भोगवै हैं तातैं जो सुखके अर्थी हैं वे जिनरूप सूर्यकरि प्रकाशित जो पवित्र जिनमार्ग ताविषैं प्रवर्तै हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं रामको राजा गंधर्व की कन्यानिका लाभ वर्णन करने वाला इक्यावनवां पर्व पूर्ण भया ॥५१॥

बावनवां पर्व

(हनुमान के लंकासुन्दरी का लाभ)

अथानंतर महा प्रतापकर पूर्ण महाबली हनुमान जैसे सुमेरुको सौम जाय तैसैं

त्रिकूटाचलको चला। सो आकाशविषैं जाती हुई जो हनुमानकी सेना ताका महाधनुषके आकार मायामई यंत्रकर निरोध भया। तब हनुमान अपने समीपी लोकनितैं पूछी जो मेरी सेना कौन कारण आगे चल न सकै ? यहां गर्वका पर्वत असुरनिका नाथ चमरेन्द्र है अथवा इन्द्र है तथा या पर्वतके शिखरविषैं जिन मंदिर हैं अथवा चरमशरीरी मुनि हैं ? तब हनुमानके ये वचन सुनकर पृथुमति मंत्री कहता भया—हे देव ! यह क्रूरता संयुक्त मायामई यंत्र है। तब आप दृष्टि धर देखा, कोटविषैं प्रवेश कठिन जाना मानो यह कोट विरक्त स्त्रीके मन समान दुःप्रवेश है, अनेक आकारकूं धरे वक्रता करि पूर्ण महाभयानक सर्वभक्षी पूतली जहाँ देव भी प्रवेश न कर सकै। जाज्वल्यमान तीक्ष्ण हैं अग्र भाग जिनके, ऐसे करोतनिके समूहकर मण्डित, जिह्वाके अग्रभागकरि रुधिरकूं उगलते ऐसे हजारों सर्प तिनकरि भयानक फण ते विकराल शब्द करै हैं अर विषरूप अग्निके कण बरसै हैं, विषरूप धूमकरि अन्धकार होय रह्या है। जो कोई मूर्ख सामन्तपना के मानकरि उद्धत भया प्रवेश करै ताहि मायामई सर्प ऐसे निगलै जैसे सर्प मैढकको निगलैं, लंकाके कोटका मंडल जोतिष चक्रतैं हू ऊँचा, सर्व दिशानिविषै दुर्लंघ अर देखा न जाय, प्रलयकालके मेघसमान भयानक शब्द कर सयुक्त अर हिंसारूप ग्रन्थनिकी न्याईं अत्यन्त पाप कर्मनिकरि निरमापा ताहि देखकर हनुमान विचारता भया कि यह मायामई कोट राक्षसनिके नाथने रचा है सो अपनी विद्याकी चातुर्यता दिखाई है। अर अब मैं विद्याबल करि याहि उपाडता संता राक्षसनिका मद हरूं जैसे आत्मध्यानी मुनि मोह मदकूं हरै। तब हनुमान युद्धविषै मन कर समुद्र समान जो अपनी सेना सो आकाश विषै राखी अर आप विद्यामई वक्तर पहिर हाथ विषै गदा लेकर मायामई पूतली के मुख विषैं प्रवेश किया जैसे राहूके मुख विषैं सूर्य प्रवेश करै। अर वा मायामई पूतली की कुक्षि सोई भई पर्वतकी गुफा अन्धकार कर भरी सो आप नरसिंहरूप तीक्ष्णनखनिकर विदारी। अर गदाके घात करि कोट चूर्ण किया जैसे शुक्ल ध्यानी मुनि निर्मल भावनिकर घातिया कर्म की स्थिति चूर्ण करैं।

अथानतर यह विद्या महाभयंकर भंगकूं प्राप्त भई तब मेघकी ध्वनि समान ध्वनि भई, विद्या भाग गई, कोट विघट गया जैसे जिनेन्द्रके स्तोत्रकरि पाप कर्म विघट जाय। तब प्रलयकालके मेघ समान भयंकर शब्द भया। मायामई कोट बिखरा देख कोटका अधिकारी वज्रमुख महा क्रोधायमान होय शीघ्र ही रथपर चढ़ हनुमान पर बिना विचारे मारवेकूं दौडया जैसे सिंह अग्नि की ओर दौड़े। तब वाहि आया देख पवनका पुत्र महायोधा युद्ध करिवेकूं उद्यमी भया। तब दोऊ सेनाके प्रचण्ड योधा नाना प्रकारके वाहननि पर चढ़ अनेक प्रकारके आयुध धरे परस्पर लड़ने लगे। बहुत कहने करि कहा ?

स्वामीके कार्य ऐसा युद्ध भया जैसा मान के अर मार्दवके युद्ध होय। अपने अपने स्वामी की दृष्टि विषै योधा गाज गाज युद्ध करते भए, जीवनविषैं नाहीं है स्नेह जिनके। फिर हनुमानके सुभटनि कर वज्रमुखके योद्धा क्षणमात्रविषैं दशों दिशाकूं भाजे अर हनुमानने सूर्यहू ते अधिक है ज्योति जाकी ऐसे चक्र शस्त्रकर वज्रमुखका सिर पृथ्वी पर डारा। यह सामान्य चक्र है, चक्री अर्धचक्रीनिके सुदर्शनचक्र होय है। युद्ध विषै पिताका मरण देख लंकासुन्दरी-वज्रमुखकी पुत्री पिताका जो शोक उपजा हुता ताहि कष्टतैं निवार, क्रोधरूप विषकी भरी, तेज तुरंग जुते हैं जाके ऐसे रथ पर चढ़ी, कुण्डलनिके उद्योतकरि प्रकाशरूप है मुख जाका, वक्र हैं भौंह जाकी, उल्कापातका स्वरूप, सूर्य मंडल समान तेजधारी, क्रोधके वश कर लाल हैं नेत्र जाके, क्रूरताकर डसे हैं किंदूरी समान होंठ जाने, मानों क्रोधायमान शची ही है; सो हनुमानपर दौड़ी अर कहती भई—रे दुष्ट ! मैं तोहि देखूं, जो तुझमें शक्ति है तो मोतैं युद्ध कर, जो क्रोधायमान भया रावण न करै सो मैं करूंगी, हे पापी ! तोहि यममंदिर पठाऊंगी, तू दिशाकूं भूल अर अनिष्ट स्थानकूं प्राप्त भया, ऐसे शब्द कहती वह शीघ्र ही आई सो आवती का हनुमानने छत्र उड़ाय दिया। तब वाने बाणनिकर इनका धनुष तोड़ डारा। अर शक्ति लेय चलावै ता पहिले हनुमानने बीचमें ही शक्तिकू तोड़ डारी। तब वह विद्या बलकर गंभीर वज्रदंडसमानबाण अर फरसी बरछी चक्र शतघ्नी मूसलशिला इत्यादि वायु पुत्रके रथपर बरसावती भई, जैसे मेघमाला पर्वतपर जलकी धारा बरसावै। नाना प्रकारके आयुधनिके समूह करि वानै हनुमानकू बेढ़ा जैसे मेघपटल सूर्यकूं आच्छादै। तब हनुमान विद्या की सब विधिविषैं प्रवीण महापराक्रमी ताने शत्रुनिके समूह अपने शस्त्रनिकर आप तक न आवने दिये, तोमरादिक बाणनिकरि तोमरादिक बाण निवारे अर शक्तितै शक्ति निवारी। या भांति परस्पर अति युद्ध भया, याके बाण वाने निवारे, वाके बाण याने निवारे, बहुत देर तक युद्ध भया, कोई नाहीं हारै। सो गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—

हे राजन् ! हनुमानको लंकासुन्दरी बाणशक्ति इत्यादि अनेक आयुधनिकरि जीतती भई अर कामके बाणनिकरि स्वयं पीड़ित भई ? कैसे हैं कामके बाण ? मर्मके विदारण हारे। कैसी है लंकासुन्दरी ? साक्षात् लक्ष्मीसमान, रूपवंती कमल लोचन, सौभाग्य गुणनिकरि गर्वित, सो हनुमानके हृदयविषैं प्रवेश करती भई, जाके कर्ण पर्यंत बाणरूप तीक्ष्ण कटाक्ष नेत्ररूप धनुषतै कढ़े ज्ञान-धैर्यके हरणहारे, महासुन्दर दुर्द्धर मनके भेदनहारे अपनी लावण्यता करि हरी है सुन्दरताई जिनने। तब हनुमान मोहित होय मनमें चितवता भया कि जो यह मनोहर आकार महाललित बाहिर तो विद्याबाण अर सामान्य बाण तिनकरि मोहि भेदै है और अभ्यन्तर मेरे मनकूं कामके बाणकरि बींधै

है, यह मोहि बाह्याभ्यंतर हनै है, तन मन को पीड़ै है, या युद्धविषैं याके बाणनि करि मृत्यु होय तो भली परन्तु याके बिना स्वर्ग विषै जीवन भला नाहीं, या भाँति पवनपुत्र मोहित भया । अर वह लकासुन्दरी याके रूपकूँ देख मोहित भई, क्रूरता रहित करुणा विषैं आया है चित्त जाका। तब जो हनुमान के मारिवेकूं शक्ति हाथ में लीनी हुती सो शीघ्र ही हाथते भूमि में डार दई, हनुमान पर न चलाई । कैसे हैं हनुमान? प्रफुल्लित है तन अर मन जिनके अर कमल दल समान हैं नेत्र जिनके अर पूर्णमासी के चन्द्रमा समान है मुख जिनका, नवयौवन, मुकुटविषैं बानरका चिन्ह अर साक्षात् कामदेव हैं। लंकासुन्दरी मनमें चिंतवती भई कि याने मेरा पिता मारया सो बड़ा अपराध किया । यद्यपि द्वेषी है तथापि अनुपम रूपकर मेरे मनकूं हरै है, जो या सहित काम-भोग न सेऊँ तो मेरा जन्म निष्फल है। तब विह्वल होय एक पत्र तामें अपना नाम लिख बाण में लगाय चलाया । तामें ये समाचार हुते, हे नाथ ! देवनिके समूहकरि न जीती जाऊँ ऐसी मैं सो तुमने काम के बाणनिकरि जीती । यह पत्र वाँच हनुमान प्रसन्न होय रथते उतर कर यासूं मिले जैसें काम रति से मिलै । वह प्रशात वैर भई सती आँसू ढारती तातके मरण कर शोक-रत, तब हनुमान कहते भए—हे चन्द्रवदनो ! रुदन मत करै, तेरे शोककी निवृत्ति होहु । तेरे पिता परम क्षत्री महा शूरवीर तिनकी यही रीति जो स्वामी के कार्य के अर्थ युद्ध में प्राण तजें अर तुम शास्त्रविषैं प्रवीण हो सो सब नीके जानो हो, या राज्य विषैं यह प्राणी कर्मनिके उदय कर पिता पुत्र बांधवादिक सबको हनै है तातैं तुम आर्त्त ध्यान तजो। ये सकल प्राणी अपना उपार्ज्या कर्म भोगवै हैं, मरणका निश्चय कारण आयु का अन्त है अर परजीव निमित्त मात्र है । इन वचननिकरि लकासुन्दरी शोक रहित भई । या भाँति या सहित वह कैसी सोहती भई जैसें पूर्णचन्द्रसे निशा सोहै । प्रेम के समूह कर पूर्ण दोऊ मिलकर संग्राम का खेद भूल गए, दोऊनिका चित्त परस्पर प्रीति रूप होय गया । तब आकाश विषैं स्तम्भिनी विद्याकर कटक थांभा अर सुन्दर मायामई नगर बसाया, जैसी साँझकी आरतता होय ता समान लाल, देवनिके नगर समान मनोहर जामें राजमहल अत्यन्त सुन्दर, सो हाथी घोड़े विमान रथों पर चढ़े बड़े बड़े राजा नगर में प्रवेश करते भए । नगर ध्वजानिकी पंक्तिकर शोभित सो यथा योग्य नगर में तिष्ठे, महा उत्साह से संयुक्त रात्रि में शूरवीरनिके युद्ध का वर्णन जैसा भया तैसा सामंत करते भए । हनुमान लंकासुन्दरी के संग रमता भया ।

अथानंतर प्रभात ही हनुमान चलवेकू उद्यमी भए, तब लंकासुन्दरी महाप्रेमकी भरी ऐसे कहती भई—हे कांत ! तुम्हारे पराक्रम, न सहे जाँय ऐसे अनेक मनुष्योंके मुख, रावण ने सुने होयगे सो सुनकर अतिखेद-खिन्न भया होयगा तातैं तुम लंका काहेको जाओ

हो। तब हनुमान ने उसे सकल वृत्तांत कहा जो रामने वानरवंशियोंका उपकार किया सो सबों का प्रेरा रामके प्रति उपकार निमित्त जाऊँ हूँ। हे प्रिये! राम का सीता से मिलाप कराऊँ, राक्षसनि का इन्द्र सीताकूं अन्याय मार्गसे हर ले गया है सो मैं सर्वथा लाऊँगा। तब ताने कहा—तुम्हारा और रावण का वह स्नेह नाहीं, स्नेह नष्ट भया, सो जैसें स्नेह कहिए तेल ताके नष्ट होयवेकरि दीपककी शिखा नाही रहै है तैसें स्नेहके नष्ट होयवे करि सबंधका व्यवहार नाही रहै है। अब तक तुम्हारा यह व्यवहार था कि तुम जब लंका आवते हुते तब नगर २ में अर गली २ में हर्ष होता, मंदिर ध्वजानिकी पंक्ति से शोभित होते जैसे स्वर्ग में देव प्रवेश करै तैसे तुम प्रवेश करते। अब दशानन तुम विषैं द्वेषरूप है, सो निःसंदेह तुमकूं पकड़ेगा। तातै जब तिहारे उनके संधि होय तब मिलवा योग्य है। तब हनुमान बोले—हे विचक्षणे! मै जायकर ताका अभिप्राय जानना चाहूँ हूँ और वह सीता सती जगत्में प्रसिद्ध है अर रूपकर अद्वितीय है जाहि देखकर रावण का सुमेरु-समान अचल मन चला है। वह महा पतिव्रता हमारे नाथकी स्त्री, हमारी माता समान, ताका दर्शन किया चाहूँ हूँ। या भाँति हनुमानने कही और सब सेना लकासुन्दरी के समीप राखी और आप तो विवेकनी से विदा होय कर लंका की सन्मुख भए। यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतें कहै हैं—हे राजन्। या लोकविषै यह बड़ा आश्चर्य है जो यह प्राणी क्षणमात्रमें एक रसको छोड़कर दूजे रसमें आ जाय, कभी विरसको छोड़कर रसमें आ जाय, कबहूँ रसको छोड़कर विरसमें आ जाय। या जगत्विषैं इन कर्मनिकी अद्भुत चेष्टा है, सर्व संसारी जीव कर्मोंके आधीन हैं। जैसें सूर्य दक्षिणायनसे उत्तरायण में आवै तैसें प्राणी एक अवस्थासे दूजी अवस्था में आवै।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं हनुमान के लंका सुन्दरी का लाभ वर्णन करने वाला बावनवां पर्व पूर्ण भया ॥५२॥

तिरेपनवां पर्व

(हनुमान का लंका में जाकर सीता से भेट कर लंका नष्ट भ्रष्ट करना)

अथानतर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकतें कहै हैं कि हे श्रेणिक! वह पवन का पुत्र महा प्रभावके उदयकर संयुक्त थोड़ा सेवकनि सहित निःशक लंकाविषैं प्रवेश करता भया। बहुरि प्रथम ही विभीषणके मन्दिरमें गया, विभीषणने बहुत सन्मान किया। फिर क्षणएक तिष्ठकर परस्पर वार्ताकर हनुमान कहता भया—जो रावण आधे भरतक्षेत्र का पति सर्वका स्वामी ताहि यह कहा उचित जो दरिद्र मनुष्य की न्याईं चोरी कर परस्त्री लावै? जे राजा हैं सो मर्यादा के मूल हैं जैसे नदीका मूल पर्वत; राजा ही अनाचारी

होय तो सर्वलोकमें अन्यायकी प्रवृत्ति होय। ऐसे चरित्र किए राजाकी सर्वलोक में निंदा होय, तातैं जगत के कल्याण निमित्त रावणकूं शीघ्र ही कहो कि न्यायको न उलंघै। यह कहो—हे नाथ ! जगत्में अपयशका कारण यह कर्म है जिससे लोक नष्ट होय सो न करना, तुम्हारे कुलका निर्मल चरित्र केवल पृथ्वी पर ही प्रशंसा योग्य नाहीं, स्वर्ग में भी देव हाथ जोड़ नमस्कारकर तिहारे बड़ोंकी प्रशंसा करै हैं। तिहारा यश सर्वत्र प्रसिद्ध है। तब विभीषण कहता भया—मैं बहुत बार भाईकूं समझाया परन्तु मानै नाहीं। अर जिस दिन से सीता ले आया, उस दिन से हम से बात भी न करै तथापि तिहारे वचन से मैं बहुरि दबाय कर कहूँगा परन्तु यह हठ उससे छूटना कठिन है। अर आज ग्यारहवां दिन है, सीता निराहार है, जलहू नाहीं लेय है, तो भी रावणकूं दया नाहीं उपजी, या कामतैं विरक्त नाहीं होय है। ए बात सुनकर हनुमानकूं अति दया उपजी। प्रमद नामा उद्यान जहां सीता विराजै है तहां हनुमान गया। ता वन की सुन्दरता देखता भया, नवीन जे बेलनिके समूह तिन करि पूर्ण अर तिनके लाल पल्लव सोहै मानों सुन्दर स्त्री के कर पल्लव ही हैं। अर पुष्पनिके गुच्छों पर भ्रमर गुंजार करै है और फलनिकरि शाखा नम्रीभूत होय रही है अर पवन से हालै है, कमलो कर जहां सरोवर शोभित हैं और दैदीप्यमान बेलनिकरि वृक्ष वेष्टित है मानो वह वन देववन समान है अथवा भोगभूमि समान है, पुष्पनिकी मकरन्द से मंडित मानों साक्षात् नंदन वन है। अनेक अद्भुतताकर पूर्ण हनुमान कमललोचन वन की लीला देखता संता सीता के दर्शन निमित्त आगे गया। चारों तरफ वन में अवलोकन किया सो दूर ही ते सीताकू देखा। सम्यग्दर्शन सहित महासती ताहि देखकर हनुमान मनमें चितवता भया कि यह रामदेवकी परम सुन्दरी महासती निर्धूम अग्नि समान, आंसुवन से भर रहे हैं नेत्र जाके, सोच सहित मुखसे हाथ लगाय बैठी है, सिर के केश बिखर रहे हैं, कृश है शरीर जिसका सो देखकर हनुमान विचारता भया—धन्य रूप या माता का, लोक विषै जीते हैं सर्वलोक जिसने, मानों यह कमल से निकसी लक्ष्मी ही विराजै है, दुःख के समुद्रमें डूब रही है तोहू या समान और कोई नारी नाही। मै जैसे होय तैसे इसे श्रीराम से मिलाऊँ, इसके और राम के काज अपना तन दू, याका और राम का विरह न देखूं। यह चितवनकर अपना रूप फेर मंद मंद पांव धरता हनुमान आगे जाय श्रीरामकी मुद्रिका सीताके पास डालता भया सो शीघ्र ही उसे देख रोमांच होय आए अर कछुइक मुख हर्षित भया तब समीप जो नारी बैठी थीं वे जाय कर इसकी प्रसन्नता के समाचार रावण कू कहती भई सो वह तुष्टायमान होय इनकू वस्त्र रत्नादिक देता भया और सीताकू प्रसन्न वदन जान कार्य की सिद्धि चिंतता भया और मदोदरीकूं सर्व अंतःपुर सहित सीतापै पठाई, सो अपने नाथ के वचन से सर्व

अंतःपुर सहित सीतापै आई सो सीताकूं मंदोदरी कहती भई—

हे बाले ! आज तू प्रसन्न भई सुनी सो तैंने हम पर बड़ी कृपा करी। अब लोक का स्वामी रावण उसे अंगीकार कर जैसे देवलोक की लक्ष्मी इन्द्रकूं भजै। ये वचन सुन सीता कोपकर मंदोदरीसे कहती भई–हे खेचरी ! आज मेरे पतिकी वार्ता आई है, मेरे पति आनन्द से हैं, इसलिए मोहि हर्ष उपजा है। तब मंदोदरीने जानी कि इसे अन्न जल किये ग्यारह दिन भए सो वाय से बकै है। तब सीता मुद्रिका ल्यावबहारासूं कहती भई, हे भाई ! मैं इस समुद्र के अंतर्द्वीप विषैं भयानक वन में पड़ी हूँ, सो कोऊ उत्तम जीव मेरे भाई समान अति वात्सल्य धरणहारा मेरे पतिकी मुद्रिका लेय आया है सो प्रगट दर्शन देहु। तब हनुमान महा भव्य जीव सीता का अभिप्राय जान मन में विचारता भया कि जो पहिले पराया उपकार विचारै बहुरि अति कायर होय छिप रहै सो अधम पुरुष है अर जे पर जीव को आपदा विषैं खेद-खिन्न देख पराई सहाय करें तिन दयावन्तोंका जन्म सफल है। तब समस्त रावणकी स्त्री मंदोदरी आदि देखैं हैं अर यह दूर ही से सीताकूं देख हाथ जोड़ सीस नवाय नमस्कार करता भया। कैसा है हनुमान ? महा निशंक कांतिकर चन्द्रमा समान, दीप्ति कर सूर्यसमान, वस्त्र आभूषणकर मंडित, रूपकर अतुल्य, मुकुटमें बानर का चिन्ह, चन्दनकर चर्चित है सर्व अंग जाका, महा बलवान, वज्रवृषभ-नाराच संहनन, सुन्दर केश, रक्त होंठ, कुंडलके उद्योतकरि महा प्रकाशरूप मनोहर मुख, गुणवान, महाप्रतापसंयुक्त सीता के निकट आवता कैसा शोभता भया मानों भाई भामंडल लेयवेकूं आया है। प्रथम ही अपना कुल गोत्र माता पिता का नाम सुनायकर बहुरि अपना नाम कहा। बहुरि श्रीराम वे जो कहा हुता सो सर्व कहा अर हाथ जोड विनती करी–हे साध्वी ! स्वर्ग विमान समान महलोंमें श्रीराम विराजै हैं परंतु तिहारे विरहरूप समुद्रमे मग्न काहू ठौर रतिकूं नाही पावै हैं, समस्त भोगोपभोग तजे मौन धरे तिहारा ध्यान करै हैं जैसे मुनि शुद्धताकूं ध्यावैं, एकाग्र चित्त तिष्ठै हैं। वे वीणाका नाद अर सुन्दर स्त्रियोंके गीत कदापि नाहीं सुनै हैं अर सदा तिहारी ही कथा करै हैं। तिहारे देखवेके अर्थ केवल प्राणोको धरैं हैं। यह वचन हनुमानके सुन सीता आनंदकूं प्राप्त भई। बहुरि सजल नेत्र होय कहती भई (सीता के निकट हनुमान महा विनयवान हाथ जोड़ खड़ा है) । जानकी बोली—

हे भाई ! अब दुःखके सागर विषैं पड़ी हूँ, अशुभके उदयकरि पतिके समाचार सुन तुष्टायमान भई तोहि कहा दूं ? तब हनुमान प्रणामकर कहता भया–हे जगतपूज्य ! तिहारे दर्शन हीसे मोहि महा लाभ भया। तब सीता मोती समान आंसुवनिकी बूंद नाखती हनुमानसे पूछती भई–हे भाई ! यह नगर ग्राह आदि अनेक जलचरोंकर भरा महा

भयानक समुद्र ताहि उलंघकर तू कैसे आया ? अर सांचे कहो कि मेरा प्राणनाथ तैंने कहाँ देख्या ? अर लक्ष्मण युद्धविषैं गया हुता सो कुशल क्षेमसूं है अर मेरा नाथ कदाचित् तोहि यह संदेशा कहकर परलोक प्राप्त हुवा होय अथवा जिनमार्ग विषैं महाप्रवीण सकल परिग्रह का त्यागकर तप करता होय अथवा मेरे वियोगतैं शरीर शिथिल होय गया होय अर अंगुरीतैं मुद्रिका गिर पड़ी होय, यह मेरे विकल्प है। अब तक मेरे प्रभुका तोसों परिचय न हुता सो कौन भाँति मित्रता भई, सो सब मोसूं विशेषता कर कहो। तब हनुमान हाथ जोड़ सिर नवाय कहता भया—हे देवी ? सूर्यहास खड्ग लक्ष्मणकूं सिद्ध भया अर चंद्रनखाने धनीपै जाय धनीकूं क्रोध उपजाया सो खरदूषण दंडकवनविषैं युद्ध करवेकूं आया अर लक्ष्मण उससे युद्ध करवेकू गए सो तो सब वृत्तांत तुम जानो हो। बहुरि रावण आया अर आप श्रीराम के पास विराजती हुती सो रावण यद्यपि सर्व शास्त्र का वेत्ता हुता अर धर्म अधर्म का स्वरूप जानता हुता परन्तु आपकूं देखकर अविवेकी होय गया, समस्त नीति भूल गया, बुद्धि जाती रही। तिहारे हरिवेके कारण कपटकर सिंहनाद किया सो सुनकर राम लक्ष्मणपै गए अर यह पापी तुमकूं हर ले गया। बहुरि लक्ष्मण रामसों कही— तुम क्यों आए, शीघ्र जानकीपैं जावहु। तब आप अपने स्थानक आए, तुमकूं न देखकर महा खेदखिन्न भए। तिहारे ढूंढनेके कारण वनविषैं बहुत भ्रमे। बहुरि जटायुको मरता देखा तब ताहि णमोकार मंत्र दिया अर चार आराधना सुनाय संयास देय पक्षी का परलोक सुधारा। बहुरि तिहारे विरहकर महादुःखी, सोच से परे। अर लक्ष्मण खरदूषणकूं हन रामपै आया, धैर्य बंधाया अर चन्द्रोदयका पुत्र विराधित लक्ष्मणसे युद्धही विषैं आय मिला हुता। बहुरि सुग्रीव रामपै आया अर साहसगति विद्याधर जो सुग्रीवका रूपकर सुग्रीवकी स्त्रीका अर्थी भया हुता, सो रामकू देख साहसगतिकी विद्या जाती रही, सुग्रीवका रूप मिट गया। अर साहसगति रामसूं लड़ा सो साहसगतिकूं राम ने मारा, सुग्रीवका उपकार किया। तब सबने मोहि बुलाय रामसूं मिलाया। अब मैं श्री रामका पठाया तिहारे छुड़ाइवे अर्थ यहां आया हूँ, परस्पर युद्ध करना निःप्रयोजन है। कार्य की सिद्धि सर्वथा नयकर करना। अर लंकापुरी का नाथ दयावान है, विनयवान है, धर्म अर्थ काम का वेत्ता है, कोमल हृदय है, सौम्य है, वक्रता रहित है, सत्यवादी महा धीर वीर है सो मेरा वचन मानेगा अर तोहि रामपै पठावेगा। याकी कीर्ति महा निर्मल पृथ्वी विषैं प्रसिद्ध है अर यह लोकापवादतै डरै है। तब सीता हर्षित होय हनुमान से कहती भई—हे कपिध्वज ! तो सरीखे पराक्रमी धीरवीर विनयवान मेरे पति के निकट केतेक हैं ? तब मंदोदरी कहती भई—हे जानकी ! तैं यह कहा समझकर कही। तू याहि न जानै है तातैं ऐसा पूछै है। या सरीखा भरतक्षेत्रमें कौन है ? या क्षेत्रमें यह

एक ही है, यह महासुभट युद्धमें कई बार रावण का सहाई भया है। यह पवनका पुत्र अंजनाका सुत रावणका भनेज जमाई है, चद्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा परणी है, या एकने अनेक जीते हैं, सदा लोग याके दर्शनकूं वांछे हैं। चन्द्रमाकी किरणवत् याकी कीर्ति जगत्मे फैल रही है। लंकाका धनी याहि भाईतितैं भी अधिक गिनै है। यह हनुमान पृथ्वी विषैं प्रसिद्ध गुणनिकर पूर्ण है परन्तु यह बड़ा आश्चर्य है कि भूमिगोचरियो का दूत होय आया है। तब हनुमान कही–तुम राजा मयकी पुत्री अर रावणकी पटरानी दूती होयकर आई हो। जा पतिके प्रसादतैं देवनि कैसे सुख भोगे, ताहि अकार्यविषं प्रवर्तते मनै नाही करो हो और ऐसे कार्य की अनुमोदना करो हो। अपना वल्लभ विषका भरा भोजन करै ताहि नाही विवारो हो, जो अपना भला बुरा न जानै ताका जीतव्य पशु समान है। अर तिहारा सौभाग्यरूप सबतै अधिक अर पति परस्त्रीरत भया ताका दूतीपना करो हो। तुम सब बातनिविषैं प्रवीण परम बुद्धिमती हुती सो प्राकृत जीवनि समान अविधि कार्य करो हो। तुम अर्धचक्री की महिषी कहिए पटरानी हो सो अब मैं महिषी कहिए भैंस समान जानूँ हूँ। यह वचन हनुमान के मुखतैं सुन मन्दोदरी क्रोधरूप होय बोली–अहो तू दोषरूप है, तेरा वाचालपना निरर्थक है। जो कदाचित् रावण यह बात जानै कि यह राम का दूत होय सीतापै आया है तो जो काहूसे न करै ऐसी तोसों करै। अर जाने रावणका बहनेऊ चन्द्रनखाका पति मारा ताके सुग्रीवादिक सेवक भए, रावणकी सेवा छांडी सो वे मंद बुद्धि हैं, रंक कहा करेंगे ? इनकी मृत्यु निकट आई है, तातैं भूमिगोचरीके सेवक भए हैं। ते अति मूढ़ निर्लज्ज तुच्छ वृत्ति कृतघ्नी वृथा गर्वरूप होय मृत्युके समीप तिष्ठै हैं। ये वचन मदोदरीके सुनकर सीता क्रोधरूप होय कहती भई–हे मन्दोदरी ! तू मंदबुद्धि है जो वृथा ऐसे कहै है, तैं मेरा पति अद्भुत पराक्रमका धनी कहा नाही सुना है ? शूरवीर अर पंडितनिकी गोष्ठीविषै मेरा पति मुख्य गाईए है, जाकै वज्रावर्त धनुष का शब्द रण संग्रामविषं सुनकर महा रणधीर योधा धैर्य नाहीं धारै हैं। भयसे कम्पायमान होयकर दूर भागे हैं अर जाका लक्ष्मण छोटा भाई, लक्ष्मीका निवास, शत्रुपक्ष के क्षय करवेकूं समर्थ, जाके देखते ही शत्रु दूर भाग जावे। बहुत कहिवेकरि कहा ? मेरा पति राम लक्ष्मण सहित समुद्र तिरकर शीघ्र ही आवै है सो युद्ध विषैं थोड़े ही दिननिविषं तू अपने पतिकूं मूवा देखेगी। मेरा पति प्रबल पराक्रम का धारी है। तू पापी भरतार की आज्ञारूप दूती होय आई है सो शीघ्र ही विधवा होयगी अर बहुत रुदन करेगी। ये वचन सीता के मुखतैं सुनकर मंदोदरी राजा मयकी पुत्री अति क्रोधकूं प्राप्त भई। अठारह हजार रानी हाथों-कर सीताके मारवेकूँ उद्यमी भईं और अति क्रूरवचन कहती सीता पर आई। तब हनुमान बीच आनकर तिनकूं थांभी, जैसैं पहाड़ नदीके प्रवाहकूं थांभै। ते सब सीताको

दुःखका कारण वेदनारूप होय हनिवेकूं उद्यमी भई थी सो हनुमानने वैद्यरूप होय निवारा। तब ये सब मंदोदरी आदि रावणकी रानी मानभग होय रावणपै गईं, क्रूर है चित्त जिनके। तिनकूं गए पीछे हनुमान सीताकू नमस्कारकरि आहारके निमित्त विनती करता भया, हे देवी ! यह सागरांत पृथ्वी श्रीरामचन्द्र की है तातै यहांका अन्न उन ही का है, वैरीनिका न जानो। या भांति हनुमान ने सम्बोधी अर प्रतिज्ञा भी यही हुती कि जब पतिके समाचार सुनूं तब भोजन करूं, सो समाचार आए ही। तब सीता सब आचार में विचक्षण महासाध्वी शीलवती दयावंती देश-कालकी जाननेवाली आहार लेना अंगीकार करती भई, तब हनुमानने एक ईरा नाम की स्त्री कुलपालिकाकूं आज्ञा करी जो शीघ्र ही श्रेष्ठ अन्न लावो। अर हनुमान विभीषणके पास गया ताहीके भोजन किया अर तासूं कही-सीताको भोजन की तैयारी कराय आया हूँ। अर ईरा जहां डेरे हुते वहां गई सो चार मुहूर्तमें सर्व सामग्री लेकर आई, दर्पण समान पृथ्वीकूं चन्दनसूं लीपा और महा-सुगंध विस्तीर्ण निर्मल सामग्री और सुवर्णादिक के भाजनमें भोजन धराय लाई। कैएक पात्र घृतके भरे हैं, कैएक चावलनिकरि भरे हैं, चावल कुन्दके पुष्प समान उज्ज्वल और कैएक पात्र दालसों भरे हैं और अनेक रस नाना प्रकार के व्यजन दूध दही महास्वादरूप भांति भांति का आहार सो सीता बहुत क्रिया सयुक्त रसोई कर ईरा आदि समीपवर्तियों को यहां ही न्योते। हनुमान से भाई का भाव कर अति वात्सल्य किया। महाश्रद्धासंयुक्त है अन्तःकरण जाका ऐसी सीता महा पतिव्रता भगवान्कू नमस्कार कर अपना नियम समाप्त कर त्रिविध पात्रनिकूं भोजन करावनेका अभिलाप कर महा सुन्दर श्रीराम तिनकूं हृदय विषैं धार, पवित्र है अग जाका, दिन विषैं शुद्ध आहार करती भई। सूर्य का उद्योत होय तब ही पवित्र मनोहर पुण्य का बढावनहारा आहार योग्य है, रात्रिकूं योग्य नाहीं। सीता भोजन कर चुकी अर कछु इक विश्रामकू प्राप्त भई तब हनुमान ने नमस्कार कर विनती करी-हे पतिव्रते ! हे पवित्रे ! हे गुण भूषणे ! मेरे कांधे चढहु अर समुद्र उलंघ क्षणमात्र में रामके निकट ले जाऊं। तिहारे ध्यान में तत्पर महाविभव संयुक्त जे राम तिनकूं शीघ्र ही देखहु। तिहारे मिलापकर सबहीकूं आनन्द होय। तब सीता रुदन करती कहती भई-हे भाई ! पतिकी आज्ञा बिना मेरा गमन योग्य नाहीं, जो पूछी कि तू बिना बुलाए क्यों आई तो मैं कहा उत्तर दूंगी। अर रावण ने उपद्रव तो सुना होयगा सो अब तुम जावो, तोहि यहां विलम्ब उचित नाहीं। मेरे प्राणनाथके समीप जाय मेरी तरफ से हाथ जोड़ नमस्कार कर मेरे मुखके वचन या भांति कहियो-हे देव! एक दिन मो सहित आपने चारण मुनि की वन्दना करी, महा स्तुति करी अर निर्मल जल की भरी सरोवरी कमलनिकर शोभित जहां जल क्रीड़ा करी ता समय महा भयंकर एक वन का हाथी आया

सो वह हाथी महाप्रबल आपने क्षणमात्रमें वशकर सुन्दर क्रीड़ा करी। हाथी गर्व रहित निश्चल किया। अर एक दिन नन्दन वन समान वन विषै मैं वृक्ष की शाखाकूं नवाती क्रीड़ा करती हुती सो भ्रमर मेरे शरीरकूं आय लगे सो आपने अति शीघ्रता कर मुझे भुजासे उठाय लई अर आकुलतारहित करी। अर एक दिन सूर्य उद्योत समय आपके समीप सरोवरके तट तिष्ठती थी तब आप शिक्षा देयवेके काज कछू इक मिसकर कोमल कमल नालकी मेरे मधुरसी दीनी। अर एक दिन पर्वत पर अनेक जातिके वृक्ष देख मैं आपकूं पूछी—हे प्रभो ! यह कौन जातिके महामनोहर वृक्ष हैं। तब आप प्रसन्न मुखकर कही—हे देवी ! ये नन्दनी वृक्ष है। अर एक दिन करणकुण्डल नामा नदीके तीर आप विराजे हुते अर मैं हू हुती ता समय मध्यान्ह समय चारण मुनि आए सो तुम उठकर महाभक्तिकर मुनिकूं आहार दिया तहां पचाश्चर्य भए; रत्नवर्षा, कल्पवृक्षोंके पुष्पनिकी वर्षा, सुगन्ध जलकी वर्षा, शीतल मन्द सुगन्ध पवन, दुन्दुभी बाजे अर आकाशविषै देवनि ने यह ध्वनि करी कि धन्य वे पात्र, धन्य ये दाता, धन्य यह दान; ये सब रहस्य की बातें कहीं। अर चूडामणि सिरतें उतार दिया जो याके दिखानेसे उनकूं विश्वास आवेगा। अर यह कहियो—मैं जानूँ हूँ, आपकी कृपा मोपै अत्यन्त है तथापि तुम अपने प्राण यत्नसू राखियो, तिहारे से मेरा वियोग भया, अब तिहारे यत्नसे मिलाप होयगा, ऐसा कह सीता रुदन करती भई। तब हनुमान ने धैर्य बंधाया अर कही—हे माता ! जो तुम आज्ञा करोगी सो ही होयगा और शीघ्र ही स्वामीसों मिलाप होयगा, यह कह हनुमान सीतासे विदा भया। अर सीता ने पति की मुद्रिका अंगुरी में पहिर ऐसा सुख माना मानों पति का समागम भया।

अथानंतर वन की नारी हनुमानकूं देखकर आश्चर्यकूं प्राप्त भई अर परस्पर ऐसी बात करती भई—यह कोई साक्षात् कामदेव है अथवा देव है सो वनकी शोभा देखवेकूं आया है। तिनमें कोई एक काम कर व्याकुल होय बीन बजावती भई, किन्नरी देवियों के से हैं स्वर जिनके, कोईएक चन्द्रवदनी वामें हस्तविषै दर्पण राख याका प्रतिबिम्ब दर्पणमें देखती भई अर देखकर आसक्त मन भई। या भांति समस्त स्त्रियोंको संभ्रम उपजाय हार माला सुन्दर वस्त्र धरे देदीप्यमान अग्निकुमार देववत् सोहता भया।

इतनेमें वन विषैं अनेक वार्ता रावण ने सुनी, तब रावण क्रोधरूप होय महानिर्दयी किंकर जे युद्ध विषै प्रवीण हुते ते पठाए अर तिनकूं यह आज्ञा करी कि मेरी क्रीड़ाका जो पुष्पोद्यान तहां मेरा कोई एक द्रोही आया है सो अवश्य मारि डारियो। तब ये जायकर वनके रक्षकनिकूं कहते भए—हो वनके रक्षक हो ! तुम कहा प्रमादरूप होय रहे हो, कोई उद्यान विषैं दुष्ट विद्याधर आया है सो शीघ्र ही मारना अथवा पकड़ना, वह कहा

अविनयी है। वह कौन है ? कहां है ? ऐसे किंकरनिके मुखतें ध्वनि निकसी। सो हनुमान नें सुना अर धनुषके धरणहारे, शक्तिके धरणहारे, गदाके धरणहारे, खड्गके बरछीके धरणहारे अनेक लोग आवते हनुमानने देखे। तब पवनका पूत, सिंहहूतें अधिक है पराक्रम जाका, मुकुट विषें रत्नजड़ित बानरका चिह्न ताकर प्रकाश किया है आकाश जाने, आप उनकूं अपना रूप दिखाया, उगते सूर्य समान क्रोध होंठ डसता लाल नेत्र। तब याके भयकरि सब किंकर भागे। तब और क्रूर सुभट आए, शक्ति तोमर खड्ग चक्र गदा धनुष इत्यादि आयुध करविषें धरे अर अनेक शस्त्र चलावते आए। तब अंजना का पुत्र शस्त्र रहित हुता सो वनके जे वृक्ष ऊँचे ऊँचे थे, उनके समूह उपाड़े अर पर्वतनिकी शिला उपाड़ी सो रावण के सुभटनि पर अपनी भुजानिकर वृक्ष अर शिला चलाई मानो कालही है सो बहुत सामंत मारे। कैसी है हनुमानकी भुजा ? महा भयकर जो सर्प ताके फण समान है आकार जिनका, शाल वृक्ष पीपल बड़ चम्पा नीब अशोक कदम्ब कुन्द नाग अर्जुन धव आम्र लोध कटहल बड़े बड़े वृक्ष उपार उपार अनेक योधा मारे, कैयक शिलाओं से मारे, कैयक मुक्कों और लातों से पीस डारे, समुद्र समान रावणके सुभटों की सेना क्षणमात्र विषें बखेर डारी, कैयक मारे कैयक भागे। हे श्रेणिक ! मृगनिके जीतवेकूं मृगराजका कौन सहाई होय ? अर शरीर बलहीन होय तो घनोंकी सहाय कर वहा ? ता वनके सब ही भवन अर वापिका अर विमान सारिखे उत्तम मंदिर सब चूर डारे, केवल भूमि रह गई। वनके मन्दिर अर वृक्ष विध्वंस किए सो मार्ग होय गया, जैसे समुद्र सूक जाय अर मार्ग हो जाय। फोरि डारी है हाटोंकी पंक्ति अर मारे हैं अनेक किंकर सो बाजार ऐसा होय गया मानों संग्राम की भूमि है, उतंग जे तोरण सो पड़े अर ध्वजाओंकी पंक्ति पड़ी सो आकाश से मानों इन्द्र धनुष पड़ा है अर अपनो जघातें अनेक वर्णके रत्ननि के महल ढाहे सो अनेक वर्णके रत्ननिकी रजकर मानों आकाश विषें हजारों इन्द्रधनुष चढ़े हैं अर पायनिकी लातनिकरि पर्वत समान ऊँचे घर फोर डारे तिनका भयानक शब्द होता भया। अर कईयक तो हाथनिसे अर कांधेसे मारे अर कईयक पगोंसे अर छातीसे मारे, या भाँति रावणके हजारों सुभट मारे सो नगर विषें हाहाकार भया अर रत्नोके महल गिर पड़े तिनका शब्द भया। अर हाथीनिके थंभ उखारडारे अर घोड़े पवनमडल पानोंकी न्याईं उड़े उड़े फिरै हैं अर वापी फोर डारीं सो कीचड़ रह गया, समस्त लका व्याकुल भई मानों चाक चढाई है। लंकारूप सरोवर राक्षसरूप मीनोंसे भरा सो हनुमानरूप हाथीने गाह डारा। तब मेघवाहन बक्तर पहिर बड़ी फौज लेय आया अर ताके पीछे इन्द्रजीत आया सो हनुमान उनसे युद्ध करने लगा। लकाकी बाह्यभूमि विषें महायुद्ध भया जैसा खरदूषणके अर लक्ष्मण के युद्ध भया हुता। अर हनुमान चार घोड़ों के रथपर चढ़ धनुष बाण लेय

राक्षसनिकी सेना पर दौड़ा।

तब इन्द्रजीत ने बहुत देर तक युद्ध कर हनुमानकूं नाग फांस से पकरचा अर नगरमें ले आया सो याके आयवेसे पहिले ही रावण के निकट हनुमान की पुकार हो रही थी, अनेक लोग नाना प्रकार कर पुकार कर रहे हुते कि सुग्रीव का बुलाया यह अपने नगरतैं किहकंधापुर आया, रामसों मिला अर तहांते या ओर आया सो महेंद्रकूं जीता अर साधुवों के उपसर्ग निवारे, दधिमुखकी कन्या रामपै पठाई अर वज्रमई कोट विध्वसा, वज्रमुखकूं मारा अर ताकी पुत्री लंकासुन्दरी अभिलाषवंती भई सो परणी अर ता संग रमा अर पुष्पनामा वन विध्वंसा, वनपालक विह्वल करे अर बहुत सुभट मारे अर घटरूप जे स्तन तिनकर सींच २ मालियों की स्त्रियोंने पुत्रोंकी नाईं जे वृक्ष बढ़ाए हुते ते उपार डारे अर वृक्षोंसे बेल दूर करी, विधवा स्त्रियों की नाई भूमि विषैं पड़ी तिनके पल्लव सूक गए अर फल फूलोंसे नम्रोभूत नाना प्रकारके वृक्ष मसान कैसे वृक्ष कर डारे। सो यह अपराध सुन रावणकूं अति कोप भया हुता। इतने में इन्द्रजीत हनुमानको लेकर आया सो रावणने याकूं लोहेकी सांकलनिकर बंधाया अर कहता भया कि यह पापी निर्लज्ज दुराचारी है। अब याके देखवे कर कहा ? यह नाना अपराधका करणहारा है, ऐसे दुष्टको क्यो न मारिये। तब सभाके लोग सब ही माथा धुनकर कहते भए–हे हनुमान ! जाके प्रसादतैं पृथ्वीविषैं तू प्रभुताकू प्राप्त भया ऐसे स्वामीके प्रतिकूल होय भूमिगोचरीका दूत भया। रावणकी ऐसी कृपा पीठ पीछे डार दई, ऐसे स्वामीकूं तज जे भिखारी निर्धन पृथ्वीमें भ्रमते फिरते दोनों वीर तिनका तू सेवक भया। अर रावणने कहा कि तू पवनका पुत्र नाहीं, काहू और कर उपजा है, तेरी चेष्टा अकुलीन की प्रत्यक्ष दीखै है। जे जार-जात हैं तिनके चिन्ह अगमें नाहीं दीखै हैं, जब अनाचार को आचरैं तब जानिए यह जार-जात है। क्या केशरी सिंहका बालक स्याल का आश्रय करै ? नीचका आश्रयकर कुलवंत पुरुष न जीवैं। अब तू राजद्वारका द्रोही है, निग्रह करिवे योग्य है ? तब हनुमान यह वचन सुन हंसा अर कहता भया, न जानिए कौनका निग्रह होय। या दुर्बुद्धिकरि-तेरी मृत्यु नजीक आई है, कैएक दिन विषैं दृष्टि परेगी। लक्ष्मणसहित श्रीराम बड़ी सैनासे आवैं हैं सो किसीसे रोके न जांय जैसैं पर्वतनिसे मेघ न रुकै। अर जैसैं कोई नाना प्रकारके अमृत समान आहार कर तृप्त न भया अर विषकी एक बूंद भखे नाशकूं प्राप्त होय, तैसैं तू हजारों स्त्रीनिकर तृप्तायमान न होय अर परस्त्री की तृष्णा कर नाशकूं प्राप्त होयगा। जो शुभ अर अशुभ कर प्रेरी बुद्धि होनहार माफिक होय है सो इन्द्रादि कर भी अन्यथा न होय, दुर्बुद्धिविषैं सैकड़ां प्रिय बचनकर उपदेश दीजिये तोहू

न लगै, जैसा भवितव्य होय सोही होय। विनाशकाल आवै तब बुद्धिका नाश होय। जैसें कोऊ प्रमादी विषका भरा सुगंध मधुर जल पीवै तो मरणकूं पावै, तैसें हे रावण ! तू परस्त्रीका लोलुपी नाशकूं प्राप्त होयगा। तू गुरु परिजन वृद्ध मित्र प्रिय बाँधव मंत्री सबनिके वचन उलघ कर पाप कर्म विषें प्रवर्ता है सो दुराचाररूप समुद्र विषें कामरूप भ्रमरके मध्य आय नरकके दुःख भोगेगा। हे रावण ! तू रत्नश्रवा राजाके कुलक्षय का कारण नीच पुत्र भया। तोकर राक्षस वंशनिका क्षय होयगा, आगें तेरे वंश में बड़े २ मर्यादाके पालनहारे पृथ्वीविषें पूज्य मुक्तिके गमन करणहारे भए। अर तू उनके कुलविषें पुलाक कहिए न्यून पुरुष भया। दुर्बुद्धि मित्रकूं कहना निरर्थक है। जब हनुमानने यह वचन कहे तब रावण क्रोधकर आरक्त होय दुर्वचन कहता भया—यह पापी मृत्यु से नाही डरै है, वाचाल है, तातें शीघ्र ही याके हाथ पांव ग्रीवा साँकलनिसूं बाँधकर अर कुवचन कहते ग्रामविषै फेरो, क्रूर किंकर लार घर घर यह वचन कहो—भूमिगोचरियों का दूत आया है याहि देखहु अर श्वान बालक लार सो नगर की लुगाई धिक्कार देवै अर बालक धूर उड़ावै अर श्वान भौंकै, सारी नगरी विषै या भांति इसे फेरो, दुःख देवो। तब वे रावणकी आज्ञा प्रमाण कुवचन बोलते ले निकसे सो यह बन्धन तुड़ाय ऊँचा चल्या जैसें यति मोहफाँस तोड़ मोक्षपुरीकूं जाय, आकाश तें उछल अपने पगों की लातो कर लंका का बड़ा द्वार ढाया तथा कईएक छोटे दरवाजे ढाए। इन्द्रके महल तुल्य रावणके महल हनुमानके चरणनिके घातसे बिखर गए जिनके बड़े बड़े स्तम्भ हुते। अर महलके आस पास रत्न सुवर्ण का कोट हुता सो चूर डारा, जैसें वज्रपातके मारे पर्वत चूर्ण होजांय तैसें रावणके घर हनुमानरूप वज्रके मारे चूर्ण होय गए। यह हनुमानके पराक्रम सुन सीता ने प्रमोद किया अर हनुमानकू बंधा सुन विषाद किया। तब वज्रोदरी पास बैठी हुती ताने कहा—हे देवी ! वृथा काहेकूं रुदन करै, यह साँकल तुड़ाय आकाशमे चला जाय है सो देख। तब सीता अति प्रसन्न भई अर चित्तमें चितवती भई कि यह हनुमान मेरे समाचार पतिपै जाय कहेगा सो आशीस देती भई अर पुष्पांजलि नाखती भई कि तू कल्याण से पहुँचियो समस्त ग्रह तुझे सुखदाई होय, तेरे विघ्न सकल नाशकू प्राप्त होंय, तू चिरंजीव हो। या भाँति परोक्ष आसंस देती भई। जे पुण्याधिकारी हनुमान सारिखे पुरुष हैं वे अद्भुत आश्चर्यकू उपजावे हैं। कसे हे वे पुरुष ? जिन्होंने पूर्व जन्ममें उत्कृष्ट तप व्रत आचरे हैं अर सकल भुवनमे विस्तरै है ऐसी कीर्तिके धारक हैं। अर जो काम किसीसे न बनै सो करवे समर्थ हैं अर चितवन में न आवै ऐसा जो आश्चर्य उसे उपजावें हैं, इसलिए सर्व तजकर जे पडित जन हैं वे धर्मकूं भजो। अर जे नीच कर्म हैं वे खोटे फलके दाता हैं, इसलिए अशुभ कर्म तजो। अर परम सुखका आस्वाद तामें आसक्त जे

सुन्दर लीलाके धारक प्राणी वे सूर्यके तेजकूं जीतै—ऐसे होय हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषै हनुमान का लंकासूं पाछा आवनेका वर्णन करने वाला तिरेपनवां पर्व पूर्ण भया ॥५३॥

चौवनवां पर्व

(राम लक्ष्मण का लंका को प्रस्थान)

अथानंतर हनुमान अपने कटक में आय किहकन्धापुरकूं आया। लंकापुरीमें विघ्न कर आया, ध्वजा छत्रादि नगरी की मनोज्ञता हर आया, किहकंधापुरके लोग हनुमानकूं आया जान बाहिर निकसे, नगरमें उत्साह भया। यह धीर, उदार है पराक्रम जाका, नगर मेंप्रवेश करता भया सो नगरके नर नारियों को याके देखवेका अति संभ्रम भया, अपना जहां निवास तहां जाय सेना के यथायोग्य डेरे कराए, राजा सुग्रीवने सब वृत्तांत पूछा, सो ताहि कहा। बहुरि रामके समीप गए। राम यह चिंतवन कर रहे हैं कि हनुमान आया है सो यह कहेगा कि तिहारी प्रिया सुखसूं जीवै है। हनुमान ने ताही समय आय रामकूं देखा, महाक्षीण वियोगरूप अग्निसे तप्तायमान जैसे हाथी दावानल कर व्याकुल होय महाशोकरूप गर्त विषै पड़े, तिनकूं नमस्कार कर हाथ जोड़ हर्षित वदन होय सीता की वार्ता कहता भया, जेते रहस्यके समाचार कहे हुते ते सब वर्णन किए अर सिरका चूड़ामणि सौंप निश्चित भया। चिन्ता कर वदनकी और ही छाया होय रही है, आंसू पड़े हैं। सो राम याहि देखकर रुदन करने लग गए अर उठकर मिले, श्रीराम यों पूछे हैं कि हे हनुमान! सत्य कहो, क्या मेरी स्त्री जीवै है? तब हनुमान नमस्कार कर कहता भया—हे नाथ! जीवै है, आपका ध्यान करै है। हे पृथ्वीपते! आप सुखी होवो, आपके विरहकर वह सत्यवती निरंतर रुदन करै है, नेत्रनिके जलकर चतुर्मास कर राखा है, गुणके समूह की नदी सीता ताके केश बिखर रहे हैं, अत्यन्त दुःखी है अर बारम्बार निश्वास नाखती चिंताके सागरमें डूब रही है। स्वभाव ही कर दुर्बल शरीर है अर विशेष दुबल होय गई है। रावण की स्त्री आराधै है परन्तु उनसे संभाषण करै नाहीं। निरंतर तिहाराही ध्यान करै है। शरीर का सब संस्कार तज बैठी है। हे देव! तिहारी रानी बहुत दुःख से जीवै है। अब तुमकूं जो करना होय सो करो। ये हनुमानके वचन सुन श्रीराम चिंतावान भए, मुख कमल कुमलाय गया। दीर्घ निश्वास नाखते भए अर अपने जीतव्यकूं अनेक प्रकार निंदते भए। तब लक्ष्मणने धैर्य बंधाया। हे महाबुद्धि! कहा सोच करो हो, कर्तव्य विषैं मन धरो। अर लक्ष्मण सुग्रीवसूं कहता भया—हे किहकंधाधिपते! तू दीर्घसूत्री है। अब सीता के भाई भामण्डलकूं शीघ्र ही बुलावहु, रावणकी नगरी हमकूं अवश्य

ही जाना है। कै तो जहाजनिकरि समुद्र तिरै अथवा भुजानितै। ये बात सुन सिंहनाद नामा विद्याधर बोला—आप चतुर महाप्रवीण होयकर ऐसी बात मत कहो; अर हम तो आपके संग हैं परन्तु ऐसा करना जा विषै सबका हित होय। हनुमानने जाय लंकाके वन विध्वसे अर लकाविषै उपद्रव किया, सो रावणके क्रोध भया है सो हमारी तो मृत्यु आई है। तब जामवन्त बोला—तू नाहर होयकर मृग की न्याईं कहा कायर होय है, अब रावण हू भयरूप है अर वह अन्याय मार्गी है, वाकी मृत्यु निकट आई है अर अपनी सेनामें भी बड़े बड़े योधा महारथी हैं, विद्या विभवकर पूर्ण हैं, हजारों आश्चर्यके कार्य जिन्होंने किये हैं तिनके नाम घनगति, भूतानन्द, गजस्वन, क्रूरकेलि, किलभीम, कुण्ड, गोरवि, अंगद, नल, नील, तडिदवक्त्र, मंदर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदंष्ट्र, दिवाकर अर उल्काविद्या, लांगूलविद्या, दिव्य शस्त्र विषै प्रवीण, जिनके पुरुषार्थमें विघ्न नाहीं ऐसे हनुमान महाविद्यावान अर भामण्डल विद्याधरों का ईश्वर महेंद्रकेतु, अति उग्र है पराक्रम जाका, प्रसन्नकीर्ति उदवृत्त अर ताके पुत्र महा बलवान् तथा राजा सुग्रीव के अनेक सामंत महाबलवान् हैं, परम तेजके धारक वरतै है, अनेक कार्यके करणहारे, आज्ञाके पालनहारे, ये वचन सुनकर विद्याधर लक्ष्मण की ओर देखते भए। अर श्रीरामकूं देखा सो सौम्यता-रहित महाविकरालरूप देखा अर भृकुटि चढा महाभयकर मानों कालके धनुष ही हैं। श्रीराम लक्ष्मण लंकाकी दिशाकी ओर क्रोध भरे लाल नेत्रकर चौके मानों राक्षसनिके क्षय करनहारे ही हैं। बहुरि वही दृष्टि धनुष की ओर धरी अर दोनों भाइयोंका मुख महा क्रोधरूप होय गया, कोपकर मंडित भए, सिरके केश ढीले होय गए मानो कमलके स्वरूप ही हैं, जगतकूं तामसरूप तमकर व्याप्त किया चाहैं हैं, ऐसा दोऊनिका मुख ज्योतिके मँडल मध्य देख सब विद्याधर गमनकूं उद्यमी भए, सभ्रमरूप है चित्त जिनका, राघवका अभिप्राय जानकर सुग्रीव हनुमान सर्व नाना प्रकारके आयुध अर सपदा कर मंडित चलवेकूं उद्यमी भए। राम लक्ष्मण दोनो भाइनिके प्रयाण होनेके वादित्रनिके समूहके नादकर पूरित हैं दसों दिशा, सो मार्गशिर वदी पंचमीके दिन सूर्यके उदय समय महाउत्साह सहित भले २ शकुन भए, ता समय प्रयाण करते भए। कहा २ शकुन भए सो कहिये हैं—निर्धूम अग्निकी ज्वाला दक्षिणावर्त देखी अर मनोहर शब्द करते मोरअर वस्त्राभूषण सयुक्त सौभाग्यवती नारी, सुगन्ध पवन, निर्ग्रंथ मुनि, छत्र, तुरंगों का गम्भीर हीसना, घंटाका शब्द, दही का भरा कलश, काग पंख फैलाए मधुर शब्द करता, भेरी अर शंख का शब्द अर तिहारी जय होवे, सिद्धि होवे, नंदो, बधो, ऐसे वचन इत्यादि शुभ शकुन भए। राजा सुग्रीव श्रीरामके संग चलवेकूं उद्यमी भए। सुग्रीवके ठौर ठौर विद्याधरोंके समूह आए। कैसा है सुग्रीव? शुक्लपक्षके चंद्रमा समान है प्रकाश जाका, नाना प्रकारके बिमान,

नाना प्रकारकी ध्वजा, नाना प्रकारके वाहन, नाना प्रकारके आयुध, उन सहित बड़े बड़े विद्याधर आकाश विषे जाते शोभते भए। राजा सुग्रीव हनुमान शल्य दुर्मर्षण नल नील काल सुषेण कुमुद इत्यादि अनेक राजा श्रीरामके लार भए तिनके ध्वजाओं पर देदीप्यमान रत्नमई वानरोंके चिन्ह मानों आकाशके ग्रसवेकू प्रवर्ते हैं अर विराधितकी ध्वजा पर नाहरका चिन्ह नीझरने समान देदीप्यमान अर जांबुकी ध्वजापर वृक्ष अर सिंहरवकी ध्वजामें व्याघ्र अर मेघकांतकी ध्वजामें हाथीका चिन्ह इत्यादि राजानिकी ध्वजामे नाना प्रकारके चिन्ह, इनमें भूतनाद महा तेजस्वी लोकपाल समान सो फौजका अग्रसर भया अर लोकपाल समान हनुमान भूतनादके पीछे सामतनि के चक्रसहित परम तेजकूं धरे लंकापर चढ़े सो अति हर्षके भरे शोभते भए जैसे पूर्व रावणके बड़ सुकेशीके पुत्र माली लंका पर चढे हुते अर अमल किया हुता तैसे। श्रीरामके सन्मुख विराधित बैठा अर पीछे जामवत बैठा, बाँई भुजा सुषेण बैठा, दाहिनी भुजा सुग्रीव बैठा सो एक निमिषमे वेलधरपुर पहुंचे। तहांकासमुद्र नामा राजा सो उसके अर नलके परम युद्ध भया सो समुद्रके बहुत लोक मारे गए अर नलने समुद्रको बांधा। बहुरि श्रीरामसे मिलाया अर तहाँ ही डेरा भए। श्रीराम ने समुद्र पर कृपा करी, ताका राज्य ताको दिया सो राजा ने अति हर्षित होय अपनी कन्या सत्यश्री कमला गुणमाला रत्नचूड़ा स्त्रियोके गुणकर मंडित देवांगना समान सो लक्ष्मणसे परणाई तहां एक रात्रि रहे। बहुरि तहासे प्रयाणकर सुवेल पर्वत पर सुवेल नगर गए वहां राजा सुवेल नामा विद्याधर ताकू सग्राममे जीत रामके अनुचर विद्याधरक्रीड़ा करते भए जैसे नन्दनवनविषै देव क्रीड़ा करै। तहाँ अक्षय नाम वनमें आनन्दसे रात्रि पूर्ण करी। बहुरिप्रयाणकर लकाजायवेकूं उद्यमीभए। कैसीहै लका? ऊँचे कोटसे युक्त सुवर्णके मंदिरनिकर पूर्ण कैलाशके शिखर समान है आकार जिनके अर नानाप्रकारके रत्ननिके उद्योतकर प्रकाश रूप अर कमलनिके वन तिनसे युक्त वापी कूप सरोवरादिककर शोभित नाना प्रकार रत्नों के ऊँचे जे चैत्यालय तिनकर मंडित महापवित्र इन्द्रकी नगरी समान। ऐसी लकाकू दूरतै देखकर समस्त विद्याधर राम के अनुचर आश्चर्यकूं प्राप्त भए अर हंसद्वीप विषै डेरे किए, हसपुर नगर तहां राजा हंसरथ ताहि युद्ध विषै जीत हसपुर मे क्रीड़ा करते भए। तहांतैं भामण्डल पर बहुरि दूत भेजा अर भामण्डलके आयवे की वांछा कर तहाँ निवास किया। जा जा देशमें पुण्याधिकारी गमन करें, तहाँ तहाँ शत्रुनिको जीत महाभोग उपभोगको भजें। इन पुण्याधिकारी उद्यमवंतोंसे कोई परे नाहीं है, सब आज्ञाकारी हैं। जो जो उनके मनमें अभिलाषा होय सो सब इनकी मूठी में हैं तातैं सर्व उपायकर त्रैलोक्यमें सार ऐसा जो जिनराज का धर्म सो प्रशंसा योग्य है। जो कोई जगजीत भया चाहै वह जिनधर्मकूं आराधो। ये भोग क्षणभंगुर हैं, इनकी कहा बात? यह वीतरागका धर्म निर्वाण देनहारा

है अर कोई जन्मलेय तो इन्द्र चक्रवर्त्यादिक पद का देनहारा है, ता धर्मके प्रभावतै ये भव्य जीव सूर्य से अधिक प्रकाश को धरै हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै राम लक्ष्मण का लंका गमन वर्णन करने वाला चौवनवां पर्व पूर्ण भया ॥५४॥

पचपनवां पर्व

(राम लक्ष्मण से विभीषण का समागम)

अथानंतर रामका कटक समीप आया जान प्रलयकाल के तरंग समान लंका क्षोभकूं प्राप्त भई। अर रावण कोपरूप भया अर सामन्त लोक रण-कथा करते भए, जैसे समुद्रका शब्द होय तैसे वादित्रनिके नाद भए जिससे सर्व दिशा शब्दायमान भईं अर रण भेरीके नादतै सुभट महाहर्षकूं प्राप्त भए। सब साजबाज सज स्वामीके हित स्वामीके निकट आए। तिनके नाम मारीच अमलचन्द्र भास्कर सिंहप्रभ हस्त प्रहस्त इत्यादि अनेक योधा आयुधनिकरि पूर्ण स्वामीके समीप आए।

अथानन्तर लंकापति महायोधा संग्रामके निमित्त उद्यमी भया। तब विभीषण रावणपै आए, प्रणामकर शास्त्रमार्गके अनुसार अति प्रशमायोग्य सबकूं सुखदाई आगामी कालमें कल्याण रूप वर्तमान कल्याणरूप ऐसे वचन विभीषण रावणसे कहता भया। कैसा है विभीषण ? शास्त्रविषै प्रवीण महा चतुर नय प्रमाणका वेत्ता भाईको शान्तवचन कहता भया—हे प्रभो ! तिहारी कीर्ति कुन्दनके पुष्प समान उज्ज्वल महाविस्तीर्ण महाश्रेष्ठ इन्द्र समान पृथ्वीपर विस्तर रही है सो परस्त्रीके निमित्त यह कीर्ति क्षणमात्र में क्षय होयगी, जैसे सांझके बादल की रेखा। तातै हे स्वामी ! हे परमेश्वर ! हम पर प्रसन्न होवो, शीघ्र ही सीताकूं रामके समीप पठावो, यामें दोष नाहीं, केवल गुण ही है। सुखरूप समुद्रमें आप निश्चय तिष्ठो। हे विचक्षण ! जे न्यायरूप महा भोग हैं वे सब तुम्हारे स्वाधीन हैं अर श्रीराम यहाँ आए हैं सो बडे पुरुष हैं, तिहारे तुल्य हैं सो जानकी तिनकूं पठाय देवहु। सर्व प्रकार अपनी वस्तु ही प्रशंसा योग्य है, परवस्तु प्रशसा योग्य नाहीं। यह वचन विभीषणके सुन रावणका पुत्र इन्द्रजीत पिताके चित्तकी वृत्ति जान विभीषणकूं कहता भया, अत्यन्त मानका भरा है अर जिनशासनसे विमुख है। साधो ! तुमकूं कौनने पूछा अर कौनने अधिकार दिया ? जाकरि या भाँति उन्मत्त की नाईं वचन कहो हो। तुम अत्यन्त कायर हो अर दीन लोकनिकी नाईं युद्धसे डरो हो तो अपने घरके विवर में बैठो। ऐसी बातनिकर कहा ? ऐसा दुर्लभ स्त्रीरत्न पायकर मूढोंकी न्याईं कौन तजै ? तुम काहेकूं वृथा वचन कहो, जिस स्त्री के अर्थ सुभट पुरुष संग्राम विषैं

तीक्ष्ण खड्ग की धारा करि महाशत्रुनिकूं जीतकर वीर लक्ष्मी भुजानिकरि उपार्जे हैं तिनके कायरता कहां? कैसा है संग्राम? मानों हाथीनिके समूहसे जहां अंधकार होय रहा है अर नाना प्रकारके शस्त्रनिके समूह चलै हैं, जहां अति भयानक है। यह वचन इन्द्रजीत के सुनकर इंद्रजीतकूं तिरस्कार करता सता विभीषण बोला-रे पापी! अन्यायमार्गी, कहा तू पुत्र नामा शत्रु है? तोकूं शीत-वायु उपजी है. अपना हित नाही जानै है, शीत वायु की पीडा अर उपाय छांड शीतल जल विषै प्रवेश करै तो अपने प्राण खोवै अर घर विषैं आग लागै अर ता अग्नि विषै सूके ईंधन डारै तो कुशल कहां से होय? अहो मोहरूप ग्राह कर तू पीड़ित है तेरी चेष्टा विपरीत है, यह स्वर्णमई लंका जहां देवविमान से घर, लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से चूर्ण न होहि जाइ, ता पहिले जनक सुता पतिव्रताकू रामपै पठाय देहु, सर्वलोकके कल्याणके अर्थ शीघ्र ही सीता को पठाना योग्य है। तेरे बाप कुबुद्धिने यह सीता नाही आनी है, राक्षसरूप सर्पोंका बिल जो यह लंका ताविषै विषनाशक जड़ी आनी है। सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण सोई भया क्रोधायमान सिंह, ताहि तुम गज-समान निवारवे समर्थ नाही। जाके हाथ सागरावर्त धनुष अर आदित्यमुख अमोघबाण अर जिनके भामंडलसा सहाई सो लोकोंसे कैसे जीता जाय। अर बड़े बड़े विद्याधरनिके अधिपति जिनसे जाय मिले, महेन्द्र मलय हनुमान सुग्रीव त्रिपुर इत्यादि अनेक राजा और रत्नद्वीपका पति, वेलधरका पति सध्या हरद्वीप हैहयद्वीप आकाशतिलक केली किल दधिवक्र अर महाबलवान विद्या के विभव करि पूर्ण अनेक विद्याधर आय मिले। या भाँति के कठोर वचन कहता जो विभीषण ताप्रर रावण महा क्रोधायमान होय खड्ग काढ मारवेकूं उद्यमी भया। तब विभीषण भी महाक्रोध के वश होय रावणसूं युद्ध करवेकू वज्रमई स्तंभ उपारया। ये दोनों भाई उग्र तेज के धारक युद्ध कूं उद्यमी भए सो मंत्रियो ने समझाय मनै किए। विभीषण अपने घर गया, रावण अपने महल गया।

बहुरि रावणने कुंभकरण इन्द्रजीतको कठोर चित्त होय कहा कि जो यह विभीषण मेरे अहित में तत्पर है अर दुरात्मा है, वाहि मेरी नगरीसे निकासो, या अनर्थीके रहिवे करि कहा? मेरा अंग ही मोसे प्रतिकूल होय तो मोहि न रुचै। जो यह लंका विषै रहै अर मैं याहि न मारू तो मेरा जीवना नाही। ऐसो वार्ता विभीषण सुनकर कही—मै हू कहा रत्नश्रवा का पुत्र नाही? ऐसा कह लंकाते निकसा। महासामंतनि सहित तीस अक्षौहिणी दल लेयकर रामपै चाल्या। तीस अक्षौहिणी कतेक भए ताका वर्णन—छह लाख छप्पन हजार एकसौ हाथी अर एते ही रथ अर उगणीस लाख अड़सठ हजार तीनसौ तुरंग अर बत्तीस लाख अस्सी हजार पाँचसै पयादा। विद्युतधन इन्द्रवज्र इन्द्रप्रचंड चपल उद्धत एक अशनिसन्घात काल महाकाल ये विभीषण सबधी परम सामत अपने कुटुम्ब अर

सब समुदाय सहित नाना प्रकार शस्त्रनिकरि मंडित रामकी सेनाकी तरफ चाले। नानाप्रकारके वाहननिकर युक्त आकाशकूं आच्छादित कर सर्वपरिवार सहित विभीषण हंसद्वीप आया सो उस द्वीप के समीप मनोज्ञ स्थल देख जलके तीर सेना सहित तिष्ठा जैसे नंदीश्वर द्वीपके विषै देव तिष्ठैं। विभीषणकू आया सुन वानरवंशिनिकी सेना कंपायमान भई जैसें शीतकाल विषैं दरिद्री कांपै। लक्ष्मणने सागरावर्त धनुष अर सूर्यहास खड्गकी तरफ दृष्टि धरी अर रामने वज्रावर्त धनुष हाथ लिया अर सब मंत्री भेले होय मंत्र करते भए; जैसें सिंह से गज डरै तैसें विभीषण से वानरवशी डरे। ताही समय विभीषण ने श्रीरामके निकट विचक्षण द्वारपाल भेजा सो रामपै आय नमस्कार कर मधुर वचन कहता भया—हे देव ! इन दोनों भाइयनिविषै जबते रावण सीता लाया तब ही से विरोध पड़ा अर आज सर्वथा बिगड़ गई, तातें आपके पांयनि आया है, आपके चरणारविंदकूं नमस्कार पूर्वक विनती करै है। कैसा है विभीषण ? धर्म कार्य विषै उद्यमी है अर यह प्रार्थना करी है कि आप शरणागतके प्रतिपालक हो, मैं तिहारा भक्त शरणे आया हूं, जो आज्ञा होय सोही करूं, आप कृपा करनहारे हैं। यह द्वारपालके वचन सुन रामने मंत्रीनिसूं मन्त्र किया तब राम से सुमतिकान्त मंत्री कहता भया—कदाचित् रावणने कपट कर भेजा हो तो याका विश्वास कहा ? राजानिकी अनेक चेष्टा हैं। अर कदाचित् कोई बातकर आपसमें कलुष होय बहुरि मिलि जांय, कुल अर जल इनके मिलने का अचरज नाहीं। तब महाबुद्धिमान मतिसमुद्र बोला—इनमें विरोध तो भया, यह बात सबसे सुनिए है अर विभीषण महा धर्मात्मा नीतिवान है, शास्त्ररूप जलकर धोया है चित्त जाका, महा दयावान है, दीन लोकनि पर अनुग्रह करै है अर मित्रनिमें दृढ़ है अर भाईपने की बात कहो सो भाईपने का कारण नाहीं, कर्म का उदय जीवनि के जुदा जुदा होय है। इन कर्मनिके प्रभाव कर या जगत विषै जीवनकी विचित्रता है। या प्रस्ताव विषै एक कथा है सो सुनहु— एक गिरि एक गोभूत, वे दोऊ भाई ब्राह्मण हुते। सो एक राजा सूर्यमेघ हुता, ताकै रानी मतिक्रिया, ताने दोनोकू पुण्यको वांछाकर भातमें छिपाय सुवर्ण दिया। सो गिरिकपटी ने भात विषै स्वर्ण जान गोभूतकूं छलकर मारया, दोनों का स्वर्ण हर लिया सो लोभसे प्रीतिभंग होय है। और भी कथा सुनो— कोशांबो नगरी विषै एक बृहद्धन नामा गृहस्थी, ताके पुरविदा नामा स्त्री, ताके पुत्र अहिदेव महिदेव, सो इनका पिता मूवा तब ये दोऊ भाई धनके उपार्जने निमित्त समुद्र मे जहाज में बैठ गए सो सर्वद्रव्य देय एक रत्न मोल लिया सो वह रत्नकूं जो भाई हाथ में लेय ताके ये भाव होंय कि मैं दूजे भाईकूं मारूं सो परस्पर दोऊ भाईनि के खोटे भाव भए तब घर आए। वह रत्न माताकूं सौंपा सो माताके ये भाव भए कि दोऊ पुत्रनिकूं विष देय मारूं। तब माता अर

दोनों भाइयों ने वा रत्नसे विरक्त होय कालिन्दी नदी में डारा सो रत्नकूं मछली निगल गई सो मछलीकूं धीवरने पकरी अर अहिदेव महीदेवहीके बेची, सो अहिदेव महीदेव की बहिन मछलीकूं विदारती हुती सो रत्न निकस्या। याहू के ये भाव भए कि माताकूं अर दोऊ भाईनिकूं मारूं। तब याने सकल वृत्तांत कह्या कि या रत्न के योग से मेरे ऐसे भाव होय हैं जो तुमकूं मारूं। तब रत्नकूं चूर डारचा, माता बहिन अर दोऊ भाई संसार के भावसे विरक्त होय जिनदीक्षा धरते भए। तातें द्रव्यके लोभकर भाइयनिमें बैर होय है अर ज्ञानके उदयकर बैर मिटै है। अर गिरि ने तो लोभ के उदयसे गोभूतकूं मारचा अर अहिदेव महीदेवके बैर मिट गया। सो महाबुद्धि विभीषणका द्वारपाल आया है ताकूं मधुर वचन कर विभीषणकूं बुलाओ। तब द्वारपालसों स्नेह जताया अर विभीषणकूं अति आदरसूं बुलाया। विभीषण रामके समीप आया सो राम विभीषण का अति आदर कर मिले। विभीषण विनती करता भया—हे देव! हे प्रभो! निश्चयकर मेरे इस जन्मविषैं तुम ही प्रभु हो, श्रीजिननाथ तो इस जन्म परभवके स्वामी अर रघुनाथ या लोकके स्वामी—या भाँति प्रार्थना करी। तब श्रीराम कहते भए—तुझे निःसन्देह लकाका धनी करूंगा, सेनामें विभीषणके आवनेका उत्साह भया। अर ताही समय भामंडल भी आया। कैसा है भामडल? अनेक विद्या सिद्ध भई हैं जाकूं, सर्व विजियार्धका अधिपति। जब भामंडल आया तब राम लक्ष्मण आदि सकल हर्षित भए, भामंडल का अति सन्मान किया। आठ दिन हंसद्वीप विषैं रहे। बहुरि लंकाकूं सन्मुख भए, नाना प्रकारके अनेक रथ अर पवन से भी अधिक तेजकूं धरे बहुत तुरंग अर मेघमालासे गयन्दों के समूह अर अनेक सुभटनि सहित श्रीरामने लंकाकूं पयान किया। समस्त विद्याधर सामन्त आकाशकूं आच्छादते संते राम के संग चाले। सबमें अग्रसर बानरवंशी हुए। जहाँ रणक्षेत्र थापा है तहाँ गए, संग्राम भूमि बीस योजन चौड़ी है अर लंबाईका विस्तार विशेष है। वह युद्धभूमि मानों मृत्यु की भूमि है। या सेनाके हाथी गाजे अर अश्वहींसे अर विद्याधरनिके वाहन सिंह हैं तिनके शब्द हुए अर वादित्र बाजे। तब सुनकर रावण अति हर्षकूं प्राप्त भया। मन विषैं विचारी कि बहुत दिननिमें मेरे रणका उत्साह भया, समस्त सामंतनिकूं आज्ञा दई जो युद्धके उद्यमी होवो सो समस्त ही सामंत आज्ञा प्रमाण आनन्द कर युद्धकूं उद्यमी भए। कैसा है रावण? युद्ध विषैं है हर्ष जाकूं, जाने कबहु सामंतनिकूं अप्रसन्न न किया, सदा प्रसन्न ही राखे सो अब युद्धके समय सब ही एक चित्त भए। भास्कर नामा पुर तथा पयोदपुर, कांचनपुर, व्योमपुर, वल्लभपुर, गंधर्वगीतपुर, शिवमंदिर कंपनपुर, सूर्योदयपुर, अमृतपुर, शोभासिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगीतपुर, किन्नरपुर, बहुनादपुर,

महाशैलपुर, चक्रपुर,स्वर्णपुर, सीमंतपुर, मलयानंदपुर, श्रीगृहपुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुंजयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तंडप्रभपुर, विशालपुर, ज्योतिदंडपुर, परिष्योधपुर, अश्वपुर, रत्नपुर इत्यादि अनेक नगरों के स्वामी बड़े २ विद्याधर मंत्रीनिसहित महा प्रीतिके भरे रावणपै आए सो रावण राजाओंका सन्मान करता भया जैसे इन्द्र देवनिका करै है, शस्त्र वाहन बक्तर आदि युद्धकी सामग्री सब राजाओंकू देता भया। चार हजार अक्षौहिणी रावणके होती भई अर दो हजार अक्षौहिणी रामके होती भई सो कौन भांति ? हजार अक्षौहिणी दल तो भामंडल का अर हजार सुग्रीवादि का। या भांति सुग्रीव अर भामंडल ये दोऊ मुख्य अपने मंत्रीनि सहित तिनसों मन्त्रकर राम लक्ष्मण युद्धकूं उद्यमी भए। अनेक वंशके उपजे, अनेक आचरण के धरणहारे, नाना जातिनिसे युक्त, नाना प्रकार गुण क्रियासूं प्रसिद्ध, नाना प्रकार भाषा के बोलनहारे विद्याधर श्रीराम रावणपै भेले भए। गौतम-स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे राजन्! पुण्यके प्रभावकरि मोटे पुरुषनिके वैरी भी अपने मित्र होय हैं अर पुण्यहीनोंके चिरकालके सेवक अर अतिविश्वासके भाजन ते भी विनाश कालमें शत्रुरूप होय परणवैं है। या असार संसारविषै जीवनिकी विचित्रगति जानकर यह चितवन करना चाहिए कि मेरे भाई सदा सुखदाई नाही तथा मित्र बांधव सब ही सुखदाई नाहीं, कबहूं मित्र शत्रु हो जाय अर कबहुं शत्रु मित्र हो जाय; ऐसे विवेकरूप सूर्य उदय से उरविषैं प्रकाशकर बुद्धिवंतोंको सदा धर्म ही चितवना।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिकाविषै विभीषण का रामसूं मिलाप अर भामडल का आगमन वर्णन करने वाला पचपनवां पर्व पूर्ण भया ।।५५।।

छप्पनवां पर्व

(राम और रावण की सेना का प्रमाण वर्णन)

अथानंतर राजा श्रेणिक गौतम स्वामीकू पूछता भया—हे प्रभो! अक्षौहिणीका प्रमाण आप कहो। तब गौतमका दूजा नाम इन्द्रभूति है सो इन्द्रभूति कहते भए—हे मगधाधिपति! अक्षौहिणीका प्रमाण तोहि सक्षेपसे कहै हैं सो सुन। आगमविषै आठ भेद कहे हैं ते सुन—प्रथम भेद पत्ति, दूजा भेद सेना, तीजा भेद सेनामुख, चौथा गुल्म, पांचवां वाहिनी, छठा पृतना, सातवां चमू, आठवां अनीकिनी। सो अब इनके यथार्थ भेद सुन। एक रथ, एक गज, पांच पयादे, तीन तुरंग, इनका नाम पत्ति है। अर तीन रथ, तीन गज, पन्द्रह प्यादे, नव तुरंग, याकूं सेना कहिए। अर नव रथ, नव गज, पैंतालीस पयादा, सत्ताइस तुरंग, याहि सेनामुख कहिए। अर सत्ताइस रथ, सत्ताइस गज, एकसौ पैंतिस पयादा, इक्यासी अश्व, इसे गुल्म कहिए। अर इक्यासी रथ, इक्यासी गज, चारसै पांच पयादे, दोसौ

तेंतालिस अश्व, इसे वाहिनी कहिए। अर दोसौ तेंतालिस रथ, दोसौ तेंतालिस गज बारेसौ पंद्रह पयादे, सातसौ उनतीस घोड़े, याहि पृतना कहिए। अर सातसौ गुणतीस रथ, सातसौ गुणतीस गज, छत्तीससै पेंतालिस पयादे, इक्कीससौ सत्तासी तुरंग, इसे चमू कहिए। अर इक्कीससौ सत्तासी रथ, इक्कीससौ सत्तासी गज, दश हजार नौ सौ पेंतीस पयादे, अर पेंसठसो इकसठ तुरग, इसे अनीकिनी कहिए। सो पत्ति से लेय अनीकिनी तक आठ भेद भए। सो यहालों तिगुने तिगुने बढ़े। अर दश अनीकिनी की एक अक्षौहिणी होय है। ताका वर्णन—रथ इक्कीस हजार आठसौ सत्तर अर गज इक्कीस हजार आठसौ सत्तर, पयादे एक लाख नौ हजार तीनसौ पचास अर घोड़े पेंसठ हजार छहसौ दश; यह एक अक्षौहिणी का प्रमाण भया। ऐसी चार हजार अक्षौहिणी कर युक्त जो रावण ताहि अति बलवान जानकर भी किहकंधापुरके स्वामी सुग्रीवकी सेना श्रीरामके प्रसादसूं निर्भय रावणके सन्मुख होती भई। श्रीरामकी सेनाकूं अति निकट आए हुवे नाना पक्षकूं धरे जो लोक सो परस्पर या भांति वार्ता करते भए कि देखो रावणरूप चन्द्रमा, विमान-रूप जे नक्षत्र, तिनके समूहका स्वामी अर शास्त्रमें प्रवीण सो परस्त्रीकी इच्छारूप जे बादल तिनसूं आच्छादित भया है। जिसके महाकीर्तिकी धरणहारी अठारह हजार रानी तिनसे जो तृप्त न भया अर देखहु एक सीता के अर्थ शोककरि व्याप्त भया है। अब देखिये कि राक्षसवंशी अर बानरवंशी इनमें कौनका क्षय होय? रामकी सेनामें पवनका पुत्र हनुमान महा भयंकर दैदीप्यमान, जो शूरता सोई भई उष्ण किरण उनसे सूर्य तुल्य है; या भांति कैयक तो रामके पक्षके योधाओंके यश वर्णन करते भए। अर कैयक समुद्रसे अति गंभीर जो रावणकी सेना ताका वर्णन करते भए। अर कैयक जो दण्डकवन में खरदूषणका अर लक्ष्मण का युद्ध भया था उसका वर्णन करते भए अर कहते भए—चन्द्रोदयका पुत्र विराधित सो है शरीर तुल्य जिनके ऐसे लक्ष्मण तिनने खरदूषण हता। अतिबलके स्वामी लक्ष्मण तिनका बल क्या तुमने न जान्या, कैयक ऐसे कहते भए। अर कैयक कहते भए कि राम लक्ष्मणकी क्या बात? वे तो बड़े पुरुष हैं, एक हनुमानने केते काम किये, मदोदरी का तिरस्कार कर सीताकूं धैर्य बंधाया अर रावणकी सेना जीत लकामें विघ्न किया, कोट दरवाजे ढाहे; या भाँति नाना प्रकारके वचन कहते भए। तब एक सुवक्रनामा विद्याधर हँसकर कहता भया कि कहां समुद्र समान रावण की सेना और कहां गायके खुर समान वानरवंशियोंका बल? जो रावण इन्द्रकूं पकड़ लाया और सबोंका जीतनहारा सो वानरवंशियोंसे कैसे जीता जाय? सर्व तेजस्वियों के सिर पर तिष्ठै है, मनुष्यनि में चक्रवर्तीके नामकूं सुने कौन धैर्य धरै। अर जिसके भाई कुम्भकरण महाबलवान त्रिशूल का धारक युद्ध में प्रलयकालकी अग्नि समान भासै है सो जगतमें प्रबल पराक्रमका धारक

कौनकरि जीता जाय ? चन्द्रमा समान जाके छत्रकूं देखकर शत्रुओंका सेनारूप अंधकार नाशकूं प्राप्त होय है सो उदार तेज का धनी उसके आगे कौन ठहर सके? जो जीतव्य की वांछा तजै सो ही उसके सन्मुख होय। या भांति अनेक प्रकारके रागद्वेषरूप वचन सेनाके लोग परस्पर कहते भए। दोनों सेनामें नाना प्रकारकी वार्ता लोकनिके मुख होती भई। जीवनिके भाव नाना प्रकार के हैं, रागद्वेषके प्रभावसे जीव निज कर्म उपार्जे हैं सो जैसा उदय होय है तैसे ही कार्यमें प्रवृत्ते हैं। जैसें सूर्यका उदय उद्यमी जीवों को नाना कार्यमें प्रवृत्तावै है तैसें कर्मका उदय जीवनिके नाना प्रकारके भाव उपजावै है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं दोऊ कटकनिकी संख्या का प्रमाण वर्णन करने वाला छप्पनवां पर्व पूर्ण भया ॥५६॥

सत्तावनवां पर्व

(रावण का युद्ध के लिए सदल-बल प्रयाण)

अथानंतर पर सेनाके समीपकूं न सह सकै ऐसे मनुष्य वे शूरपने के प्रगट होनेकरि अति प्रसन्न होय लड़वेकूं उद्यमी भए, योधा अपने घरोंसे विदा होय सिंह सारिखे लंकासे निकसे, कोईयक सुभटकी नारी रण संग्रामका वृत्तांत जान अपने भरतारके उरसे लग ऐसे कहती भई—हे नाथ ! तिहारे कुलकी यही रीति है जो रणसग्राम से पीछे न होंय अर जो कदाचित् तुम युद्धतैं पीछे होवोगे तो मैं सुनते ही प्राण त्याग करूंगी। योधाओं के किंकरोंकी स्त्रियां कायरोंकी स्त्रियोंको धिक्कार शब्द कहैं, या समान और कष्ट क्या? जो तुम छाती घाव खाय भले दिखाय पीछे आवोगे तो घाव ही आभूषण है अर टूटगया है बक्तर अर करें हैं अनेक योधा स्तुति, या भांति तुमकूं मैं देखूंगी तो अपना जन्म धन्य गिनूंगी अर सुवर्णके कमलनिसों जिनेश्वरकी पूजा कराऊंगी। जे महा योधा रणमें सन्मुख होय मरणकूं प्राप्त होंय तिनका ही मरण धन्य है अर जे युद्धमें पराङ्मुख होय धिक्कार शब्दसे मलिन भए जीवें हैं तिनके जीवने से क्या। अर कोईयक सुभटानी पतिसे लिपट या भांति कहती भई जो तुम भले दिखाय कर आवोगे तो हमारे पति हो अर भागकर आवोगे तो हमारे तुम्हारे सम्बन्ध नाहीं। अर कोईएक स्त्री अपने पतिसूं कहती भई—हे प्रभो ! तिहारे पुराने घाव अब विघट गए, इसलिए नवे घाव लगा शरीर अति शोभै। वह दिन होय जो तुम वीर लक्ष्मीके वर प्रफुल्लित वदन हमारे आवो अर हम तुमकूं हर्षसंयुक्त देखें। तुम्हारी हार हम क्रीड़ा में भी न देख सकैं तो युद्धमें हार कैसे देख सकैं। अर कोईयक कहती भई कि हे देव ! जैसें हम प्रेम कर तिहारा वदन कमल स्पर्श करै हैं तैसें वक्षस्थल में लगे घाव हम देखें तब अति हर्ष पावैं। और कैयक रीताणी अति

नवोढा हैं परन्तु संग्राम में पतिकूं उद्यमी देख प्रौढाके भावकूं प्राप्त भईं। अर कोईयक मानवती घने दिननिसूं मान कर रही थी सो पतिकूं रणमें उद्यमी जान मान तज पतिके गले लागी अर अति स्नेह जनाया, रणयोग्य शिक्षा देती भई। और कोईयक कमलनयनी भरतार के वदनकूं ऊंचाकर स्नेहकी दृष्टि कर देखती भई अर युद्ध में दृढ करती भई। अर कोईयक सामतवी पतिके वक्षस्थलमें अपने नखका चिन्हकर होनहार शस्त्रोंके घावनकूं मानो स्थानक करती भई। या भांति उपजो है चेष्टा जिनके ऐसी राणी रौताणी अपने प्रीतमोंसे नाना प्रकारके स्नेहकर वीररसमें दृढ़ करती भईं। तब महासंग्रामके करणहारे योधा तिनसूं कहते भए—हे प्राणवल्लभे! नर वेई हैं जे रणमें प्रशंसा पावैं तथा युद्धके सन्मुख प्राण तजे तिनकी शत्रु कीर्ति करें अर हाथीनिके दांतनिमें पग देय शत्रुओंके घाव करें तिनको शत्रू कीर्ति करें। पुण्यके उदय बिना ऐसा सुभटपना नाहीं, हाथियोंके कुम्भस्थल विदारणहारे नरसिंह तिनकूं जो हर्ष होय है सो कहिवेकूं कौन समर्थ है। हे प्राणप्रिये! क्षत्रीका यही धर्म है जो कायरनिकूं न मारै, शरणागतकूं न मारै, न मारिवे देय। जो पीठ देय उसपर चोट न करै, जिसपै आयुध न होंय वासों युद्ध न करै सो बाल वृद्ध दीनकूं तज हम योधाओंके मस्तक पर पड़ेंगे, तुम हर्षित रहियो हम युद्धमें विजयकर तुमसे आय मिलेंगे। या भांति अनेक वचन कर अपनी अपनी रौताणियोंको धैर्य बंधाय योधा संग्राम के उद्यमी घरसे रणभूमिकू निकसे। कोईएक सुभटानी चलते पतिके कंठमें दोनों भुजा से लिपट गई अर हिंदती भई जैसे गजेंद्रके कंठमें कमलिनी लटकै। अर कोईयक रौताणी बक्तर पहिरे पतिके अंगसे लग अंगका स्पर्श न पाया सो खेद-खिन्न होती भई। अर कोईयक अर्द्ध बाहुलिका कहिए पेटी सो वल्लभके अंगसे लगी देख ईर्षाके रससे स्पर्श करती भई कि हम टार इनके दूजी इनके उरसे कौन लगे, यह जान लोचन संकोचे। तब पति प्रियाकूं अप्रसन्न जान कहते भए—हे प्रिये! यह आधा बक्तर है, स्त्रीवाची शब्द नाहीं। तब पुरुषका शब्द सुन हर्षकूं प्राप्त भई। कोईयक अपने पतिकूं ताम्बूल चबावती भई अर आप तांबूल चाबती भई। कोईयक पतिने रुखसत करी तौ बी केतीक दूर पतिके पीछे पीछे जाती भई, पतिके रणकी अभिलाषा सो इनकी ओर निहारैं नाहीं। अर रण की भेरी बाजी सो योधाओं का चित्त रणभूमिमें अर स्त्रीनिसे विदा होवा सो दोनों कारण पाय योधाओंका चित्त मानों हिंडोले हींदता भया, रौतानियोंको तज चाले, तिन रौतानियोंने आंसू न डारे, आंसू अमंगल हैं। अर कैयक योधा युद्धमें जायवेकी शीघ्रता कर बक्तर भी न पहिर सके, जो हथियार हाथ आया सो ही लेकर गर्वके भरे निकसे। रणभेरी सुन उपजा है हर्ष जिनकूं अर तासे शरीर पुष्ट होय गया सो बक्तर अंगमें न आवै। अर कैयक योधाओंके रणभेरीका शब्द सुन हर्ष उपजा सो पुराने

घाव फट गए तिनमेंसूं रुधिर निकसता भया। अर किसीने नवा बक्तर बनाय पहिरा सो हर्ष के होवेसे टूट गया सो मानों नया बक्तर पुराने वक्तरके भावकूं प्राप्त भया। अर काहूके सिरका टोप ढीला होय गया सो प्राणवल्लभा दृढ करती भई। अर कोईयक सुभट संग्रामका लालसी उसके स्त्री सुगंध लगायवेकी अभिलाषा करती भई सो सुगन्धमें चित्त न दिया, युद्धकूं निकसा। अर वे स्त्रियां व्याकुलतारूप अपनी २ सेजपर पड़ रहीं। प्रथम ही लंका से हस्त प्रहस्त राजा युद्धकूं निकसे। कैसे हैं दोनों? सर्व में मुख्य जो कीर्ति सोई भया अमृत उसके आस्वाद में लालसी और हाथियों के रथ पर चढ़े, नहीं सह सके हैं बैरियों का शब्द अर महाप्रताप के धारक शूरवीर सो रावणकूं बिना पूछे ही निकसे। यद्यपि स्वामीकी आज्ञा करे बिना कार्य करना दोष है तथापि धनी के कार्यकूं बिना आज्ञा जाय तो दोष नाहीं, गुणके भावकूं भजै है। मारीच सिंहजघ्राण स्वयंभू शंभू प्रथम विस्तीर्ण बल से मंडित, शुक अर सारण चांद सूर्य सारिखे, गज अर वीभत्स तथा वज्राक्ष वज्रभूति गंभीरनाद नक्र मकर वज्रघोष उग्रनाद सुन्द निकुंभ कुंभ सध्याक्ष विभ्रमकर माल्यवान खरनिस्वन जंबूमाली शिखावीर दुर्द्धर्ष महाबल यह सामंत नाहरनि के रथ चढ़े निकसे। अर वज्रोदर शक्रप्रभ कृतांत विकटोदर महारव अशनिघोष चन्द्र चन्द्रनख मृत्युभीषण धूम्राक्ष मुदित विद्युज्जिह्व महामाली कनक क्रोधन क्षोभण घुंघुर उद्दाम डिंडी डिंडम डिभव प्रचंड डंबर चंड कुण्ड हालाहल इत्यादि अनेक राजा व्याघ्रों के रथ चढे निकसे। वह कहै मैं आगे रहूँ, वह कहै मैं आगे रहूँ, शत्रु के विध्वंस करनेकूं है प्रवृत्त बुद्धि जिनकी, विद्याकौशिक विद्याविख्यात सर्पबाहू महाद्युति शंख प्रशंख राजभिन्न अंजनप्रभ पुष्पचूड़ महारक्त घटास्त्र पुष्पखेचर अनगकुसुम काम कामावर्त स्मरायण कामाग्नि कामराशि कनकप्रभ शिलीमुख सौम्यवक्त्र महाकाम हैमगौर ये पवन सारिखे तेज तुरंगनि के रथ चढे निकसे। अर कदम्ब विटप भीम भीमनाद भयानक शार्दूल सिंह चलांग विद्युदंग ल्हादन चपल चोल चचल इत्यादि हाथनिके रथ चढ़े निकसे। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे मगधाधिपति! कहाँ लग सामन्तोंके नाम कहैं। सबमें अग्रेसर अढाई कोड़ि निर्मलवंश के उपजे राक्षसनिके कुमार देवकुमार तुल्य पराक्रमी, प्रसिद्ध है यश जिनके, सकल गुणनिके मण्डन, युद्धकूं निकसे। महाबलवान मेघवाहन कुमार इन्द्र के समान रावण का पुत्र अतिप्रिय इन्द्रजीत सो भी निकसा। जयंत समान वीरबुद्धि कुम्भकर्ण सूर्य्य के विमान तुल्य ज्योतिप्रभव नामा विमान उसमें आरूढ़ त्रिशूलका आयुध धरे निकसा। अर रावण भी सुमेरुके शिखर तुल्य पुष्पक नामा अपने विमान पर चढ़े, इन्द्र तुल्य पराक्रम जिसका, सेना कर आकाश भूमिकूं आच्छादित करता हुवा दैदीप्यमान आयुधनिकूं धरे, सूर्यसमान ज्योति जिसकी सो भी अनेक सामंतनिसहित

लंकासे बाहर निकसा। वे सामन्त शीघ्रगामी बहुरूप के धरणहारे वाहनों पर चढे। कैयकनिके रथ, कैयकनिके तुरंग, कैयकनिके हाथी, कैयकनिके सिंह तथा शूरसांभर बलध भैंसा उष्ट्र मीढ़ा मृग अष्टापद इत्यादि स्थलके जीव अर मगरमच्छ आदि अनेक जलके जीव अर नाना प्रकार के पक्षी तिनका रूप धरे देवरूपी वाहन तिनपर चढ़े अनेक योधा रावणके साथी निकसे। भामंडल अर सुग्रीवपर रावणका अति क्रोध सो राक्षसवंशी इनसे युद्धकूं उद्यमी भए। रावणकूं पयान करते अनेक अपशकुन भए तिनका वर्णन सुनो। दाहिनी तरफ शल्य कहिए सेही मँडलकूं बांधे भयानक शब्द करती प्रयाण का निवारण करै है अर गृद्ध पक्षी भयंकर अपशब्द करते आकाश में भ्रमते मानों रावणका क्षय ही कहै हैं अर अन्य भी अनेक अपशकुन भए। स्थलके जीव, आकाशके जीव अति व्याकुल भए, क्रूर शब्द करते हुवे रुदन करते भए। सो यद्यपि राक्षसनिके समूह में सब ही पंडित हैं, शास्त्रका विचार जानें हैं तथापि शूरवीरताके गर्वसे मूढ भए महासेना सहित संग्रामके अर्थी निकसे। कर्मके उदयसे जीवनिका जब काल आवै है तब अवश्य ऐसा ही कारण होय है। कालको इन्द्र भी निवारवे शक्य नाहीं, औरनिकी कहा बात। वे राक्षसवंशी योधा बड़े बड़े बलवान्, युद्ध में दिया है चित्त जिन्होंने, अनेक वाहनों पर चढ़े नाना प्रकार के आयुध धरे अनेक अपशकुन भए तो भी न गिने, निर्भय भए, रामकी सेना के सन्मुख आए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै रावणकी सेना लंकातै निकसि युद्ध के अर्थ आवने का वर्णन करनेवाला सत्तावनवाँ पर्व पूर्ण भया ॥५७॥

अट्ठावनवाँ पर्व

[युद्ध में हस्त-प्रहस्त के मरण का वर्णन]

अथानंतर समुद्र समान रावण की सेनाकूं देख नल नील हनुमान जाम्वन्त आदि अनेक विद्याधर रामके हित, रामके कार्यकूं तत्पर, महा उदार शूरवीर अनेक प्रकार हाथियों के रथ चढ़े कटकसे निकसे, सन्मान जाय मित्र चद्रप्रभ रतिवर्द्धन कुमुदावर्त महेंद्र भानुमडल अनुधर दृढरथ प्रीतिकण्ठ महाबल समुन्नतबल सर्वज्योति सर्वप्रिय बलसवसार सर्वद शरभभर अभृष्ट निर्विनष्ट संत्रास विघ्नसूदन नाद बरबर पाप लोल पाटन मण्डल संग्रामचपल इत्यादि विद्याधर नाहरोंके रथ चढ़े निकसे, विस्तीर्ण है तेज जिनका, नाना प्रकारके आयुध धरे अर महासामन्तपनाका स्वरूप लिए प्रस्तार हिमवान भंग प्रियरूप इत्यादि सुभट हाथियोंके रथ चढ़े निकसे, दुःप्रेक्ष पूर्णचन्द्र विधि सागरघोष प्रियविग्रह स्कन्ध चन्दन पादप चन्द्रकिरण अर प्रतिघात महा भैरवकीर्तन दुष्टसिंह कटि कृष्ट समाधि बहुल हल इन्द्रायुध गतत्रास संकट प्रहार ये नाहरनिके रथ चढ़ निकसे। विद्युत्कर्ण बलशील सुपक्षरचन घन संमेद विचल साल काल क्षत्रवर अगद विकाल लोलक

काली भंग भंगोर्मि प्रजित तरंग तिलक कील सुषेण तरल बली भीमरथ धर्म मनोहर मुख सुखप्रमत्त मर्दक मत्तसार रत्नजटी शिव भूषण दूषण कोल विघट विराधित मेरू रण क्षनि क्षेम वेला आक्षेपी महाधर नक्षत्र लुब्ध संग्राम विजय जय नक्षत्रमाल क्षोद अति विजय इत्यादि घोड़ोंके रथ चढ़ निकसे। कैसे हैं रथ ? मनोरथ समान शीघ्र वेगकूं धरे अर विद्युतवाह मरुद्वाह सानु मेघवाहन रवियान प्रचंडालि इत्यादि नाना प्रकारके वाहनों पर चढ़े युद्ध की श्रद्धाकूं धरे हनुमान के संग निकसे। अर विभीषण रावणका भाई रत्नप्रभ नामा विमानपर चढ़ा, श्रीरामका पक्षी अति शोभता भया। अर युद्धावर्त वसन्त कांत कौमुदिनंदन भूरि कोलाहल हेड भावित साधु वत्सल अर्धचंद्र जिवप्रेम सागर सागरोपम मनोज्ञ जिन जिनपति इत्यादि योधा नाना वर्ण के विमानों पर चढ़े महाबिल सन्नाह कहिए बक्तर पहिरे युद्धकों निकसे। राम लक्ष्मण सुग्रीव हनुमान ये हंस विमान चढ़े जिनके विमान आकाशविषें शोभते भए। रामके सुभट महामेघमाला सारिखे नाना प्रकारके वाहन चढे लंकाके सुभटनिसूं लड़वेकूं उद्यमी भए। प्रलयकालके मेघ समान भयकर शब्द शख आदि वादित्रनिके शब्द होते भए, झंझा भेरी मृदंग कंपाल धुधुमंदय आमलातके हक्कार दुंदुकांन उरदर हेमगुंज काहल बीणा इत्यादि अनेक बाजे बाजते भए। अर सिंहों के तथा हाथियोंके भैंसों के रथों के ऊँटों के मृगों के पक्षियो के शब्द होते भए तिनसे दसों दिशा व्याप्त भई। जब राम रावण की सेना का संघट्ट भया तब लोक समस्त जीवनेके सन्देहकूं प्राप्त भए, पृथ्वी कंपायमान भई, पहाड़ कांपे, योधा गर्व के भरे निगर्वसे निकसे, दोवों कटक अति प्रबल लखिवे में न आवै। इन दोनों सेना में युद्ध होने लगा, सामान्य चक्र करोत कुठार सेल खड्ग गदा शक्ति बाण भिंडिपाल इत्यादि अनेक आयुधनिकरि परस्पर युद्ध होता भया। योधा हेलाकर योधाओंको बुलावते भए, कैसे हैं योधा ? शस्त्रों से शोभित हैं भुजा जिनकी अर युद्ध का है सर्वसाज जिनके ऐसे योधाओं पर पड़ते भए, अतिवेगसे दौड़े परसेनामें प्रवेश करते भए, परस्पर अति युद्ध भया, लका के योधाओं ने बानरवंशी योधा दबाए जैसें सिंह गजों को दबावै। फिर बानरवंशियों के प्रबल योधा अपने योधाओं का भंग देखकर राक्षसोंके योधाओं को हतते भए अर अपने योधाओं को धैर्य बँधाया। बानरवंशियों के आगे लंका के लोगोंको चिगते देख बड़े २ स्वामी भक्त रावण के अनुरागी महाबल से मंडित, हाथियोंके चिन्हकी है ध्वजा जिनके, हाथियोंके रथ चढ़े, महायोधा हस्त प्रहस्त बानरवंशियों पर दौड़े अर अपने लोगों को धैर्य बँधाया-हो सामंत हो ! भय मत करो। हस्त प्रहस्त दोनों महातेजस्वी बानरवंशियोंके योधाओंको दबावते भए। तब बानरवंशियों के नायक महा प्रतापी हाथियोंके रथ चढे, महा शूरवीर परम तेजके धारक सुग्रीवके काकाके पुत्र नल नील महा भयंकर क्रोधायमान होय नाना

प्रकार शस्त्रनिके युद्धकरवेकूं उद्यमी भए। अनेक प्रकारके शस्त्रनिसे घनी वेर युद्ध भया। दोनों तरफके अनेक योधा मूए। नलने उछलकर हस्त को हता अर नील ने प्रहस्तकूं हवा। जब ये दोनों पड़े तब राक्षसनिकी सेना परान्मुख भई। गौतम स्वामी राजा श्रेणिक सूं कहै हैं—हे मगधाधिपति ! सेनाके लोग सेनापतिकूं जब लग देखें तब लग ही ठहरें अर सेनापति नाश भए सेना बिखर जाय जैसें मालके टूटे अरहट की घड़ी बिखर जाय अर सिर बिना शरीर भी न रहै। यद्यपि पुण्याधिकारी बड़े राजा सब बातमें पूर्ण हैं तथापि बिना प्रधान कार्य की सिद्धि नाहीं, प्रधान पुरुषनिका सम्बन्ध कर मनवांछित कार्य की सिद्धि होय है अर प्रधान पुरुषनिके सम्बन्ध बिना मन्दताकूं भजै हैं जैसे राहू के योगसे सूर्यको आच्छादित भए किरणों का समूह मन्द होय है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं ! हस्त प्रहस्त का मरण वर्णन करने वाला अठावनवां पर्व पूर्ण भया॥५८॥

उनसठवां पर्व

(हस्त प्रहस्त, नल नील के भव का वर्णन)

अथानन्तर राजा श्रेणिक गौतम स्वामीसूं पूछता भया—हे प्रभो ! हस्त प्रहस्त जैसे सामन्त महा विद्यामें प्रवीण हुते, बड़ा आश्चर्य है कि नल नील ने कैसे मारे ? इनके पूर्वभवका विरोध है या याही भवका ? तब गणधरदेव कहते भए—हे राजन् ! कर्मनिकर बँधे जीव तिनकी नाना गति हैं। पूर्वकर्म के प्रभाव कर जीवनिकी यही रीति है कि जानै जाकूं मारा सो वह हू ताकूं मारनहारा हो है अर जाने जाकूं छुड़ाया सो ताका छुड़ावनहारा हो है। या लोक में यही मर्यादा है। एक कुशस्थल नामा नगर वहां दोय भाई निर्धन अर एक माता के पुत्र इन्धक अर पल्लव ब्राह्मण खेतीका कर्म करें, पुत्र स्त्री आदि जिनके कुटुम्ब, बहुत स्वभाव ही से दयावान, साधुनिकी निंदातें परान्मुख सो एक जैनी मित्रके प्रसंगतें दानादि धर्मके धारक भए अर एक दूजा निर्धन युगल सो महा विर्दई मिथ्यामार्गी हुते, राजा के दान बटा सो विप्रनिमें परस्पर कलह भया, सो इन्धक पल्लव को इन दुष्टोने मारा, सो दान के प्रसादतें मध्यमभोगभूमि में उपजे, दोय पल्य का आयु पाय मूए सो देव भए। अर वे क्रूर इनके मारणहारे अधर्म परिणामनिकर मूवे सो कालिंजर नामा वनमें सूस्या भए, मिथ्यादृष्टि साधुनिके निंदक पापी कपटी तिनकी यही गति है। बहुरि तिर्यञ्चगति में चिरकाल भ्रमण कर मनुष्य भए सो तापसी भए, बढ़ो हैं जटा जिनके, फल पत्रादि के आहारी, तीव्र तपकर शरीर कृश किया, कुज्ञानके अधिकारी दोनों मूए सो विजयार्धकी दक्षिण श्रेणी में अरिंजयपुर तहांका राजा अग्निकुमार रानी

अश्विनी, ताके ये दोय पुत्र जग प्रसिद्ध रावण के सेनापति भए। अर ते दोऊ भाई इंधक अर पल्लव देवलोकतें चयकर मनुष्य भए। बहुरि श्रावक के व्रत पाल स्वर्ग में उत्तम देव भए अर स्वर्गतें चयकर किहकंधापुरविषें नल नील दोनों भाई हुवे। पहिले हस्तप्रहस्त के जीव ने नल नील के जीव मारे हुते सो नल नील ने हस्तप्रहस्त मारे, जो काहूकूं मारै है सो ताकर मारा जाय है। अर जो काहूकूं पालै है सो ताकर पाला जाय है। जो जासूं उदासीन रहै है सो तासूं भी उदासीन रहै। जाहि देख निःकारण क्रोध उपजै सो जानिए परभवका शत्रु है अर जाहि देख चित्त हर्षित होय सो निःसन्देह परभव का मित्र है। जो जल विषै जहाज फट जाय है अर मगर मच्छादि बाधा करैं हैं अर थल विषै म्लेच्छ बाधा करैं हैं सो सब पापका फल है। पहाड़ समान माते हाथी अर नाना प्रकारके आयुध धरे अनेक योधा अर महातेजकूं धरे अनेक तुरंग अर बक्तर पहिरे बड़े २ सामन्त इत्यादि जो अपार सेनासूं युक्त जो राजा अर निःप्रमाद तौ भी पुण्यके उदय बिना युद्ध में शरीर की रक्षा न होय सकै। अर जहाँ जहाँ तिष्ठता अर जाके कोऊ सहाई नाही ताकी तप अर दान रक्षा करै; न देव सहाई, न बांधव सहाई। अर प्रत्यक्ष देखिए है—धनवान शूरवीर कुटुम्बका धनी सर्व कुटुम्बके मध्य मरण करै है, कोऊ रक्षा करवे समर्थ नाही। पात्रदानसे व्रत अर शील अर सम्यक्त अर जीवनिकी रक्षा होय है। दया दानसे जाने धर्म न उपार्जा अर बहुत काल जीया चाहै सो कैसे बनै? इन जीवनि के कर्म तप बिना न विनशैं, ऐसा जानकर जो पण्डित हैं तिनकूं वैरियोंपर भी क्षमा करनी। क्षमा समान और तप नाहीं। जे विचक्षण पुरुष हैं वे ऐसी बुद्धि न धरैं कि यह दुष्ट बिगाड़ करै है। या जीव का उपकार अर बिगाड़ केवल कर्माधीन है, कर्म ही सुख दुःख का कारण है, ऐसा जानकर जे विचक्षण पुरुष हैं ते बाह्य सुख-दुःखके निमित्त कारण अन्य पुरुषनिपर रागद्वेष भाव न धरैं। जैसें अन्धकारसे आच्छादित जो पथ तामें नेत्रवान पृथ्वीपर पड़े सर्प पर पग धरैं अर सूर्य के प्रकाशसे मार्ग प्रगट होय तब नेत्रवान सुखसे गमन करे तैसें जो लग मिथ्यारूप अन्धकार सं मार्ग नाही अवलोकैं तौ लग नरकादि विवरमें पड़ैं अर जब ज्ञान सूर्य का उद्योत होय तब सुख से अविनाशीपुर जाय पहुँचैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषें हस्त प्रहस्त अर नल नील के पूर्व भव का वर्णन करने वाला उनसठवां पर्व पूर्ण भया ॥५९॥

साठवां पर्व

(राम लक्ष्मण को अनेक विद्याओंका लाभ वर्णन)

अथानन्तर हस्त प्रहस्त को नल नीलने हते सुन बहुत योधा क्रोधकर युद्धकूं उद्यमी भए। मारीच सिंहजघन जघव स्वयम्भू शम्भु ऊर्जित शुक सारण चन्द्र अर्क जगत्बीभत्स

निस्वन ज्वर उग्र क्रमकर वज्राक्ष घातनिष्ठुर गंभीरनाद संनाद इत्यादि राक्षस पक्षके योधा सिंह, अश्व, रथ आदि पर चढ़कर आय बानरवंशियों की सेनाकूं क्षोभ उपजावते भए। तिनकूं प्रबल जान बानरवंशियोंके योधा युद्धकूं उद्यमी भए। मदन मदनांकुर सन्ताप प्रथित आक्रोश नन्दन दुरित अनघ पुष्पास्त्र विघ्न प्रियंकर इत्यादि अनेक बानरवंशी योधा राक्षसनिसे लड़ते भए। याने वाकूं ऊंचे स्वरसे बुलाया वाने याकूं बुलाया। इनके परस्पर संग्राम भया, नाना प्रकारके शस्त्रनिकरि आकाश व्याप्त होय गया। संताप तो मारीचसे लड़ता भया। अर प्रस्थित सिंहजघनसे अर विघ्न उद्यानसे अर आक्रोश सारण से, ज्वर नन्दन से, ऐसे समान योधाओंमें अद्भुत युद्ध भया। तब मारीचने सन्ताप का निपात किया अर नन्दनने ज्वरके वक्षस्थल में बरछी दई अर सिंहकटिने प्रथितके अर उद्दामकीर्तिने विघ्नकूं हणा। ता समय सूर्य अस्त भया, अपने २ पतिकूं प्राणरहित भए सुन इनकी स्त्री शोकके सागर में मग्न भई सो उनकी रात्रि दीर्घ होती भई।

दूजे दिन महा क्रोधके भरे सामन्त युद्धकूं उद्यमी भए। वज्राक्ष अर क्षुभितार, मृगेन्द्रदमन अर विधि, शम्भू अर स्वयम्भू, चन्द्रार्क अर वज्रोदर, इत्यादि राक्षस पक्षके बड़े २ सामन्त अर बानरवंशियोंके सामन्त परस्पर जन्मांतरके उपार्जित वैर तिनसे महा क्रोधरूप होय युद्ध करते भए, अपने जीवनमें नि.स्पृह। संक्रोधने महाक्रोधकर क्षपितारिको महा ऊंचा स्वरकर बुलाया अर बाहुबलीने मृगारिदमनकूं बुलाया अर वितापीने विधिकूं बुलाया इत्यादि अनेक योधा परस्पर युद्ध करते भए। अर योधा अनेक मूए, शार्दूलने वज्रोदरकूं घायल किया अर क्षपितारि संक्रोध को मारता भया अर शंभू ने विशालद्युति मारा अर स्वयम्भू ने विजयकूं लोहयदृष्टि से मारा अर विधिने वितापीकूं गदा से मारया। बहुत कष्टसे या भाँति योधाओं ने युद्ध में अनेक योधा हते सो बहुत देर तक युद्ध भया।

राजा सुग्रीव अपनी सेनाकूं राक्षसनिकी सेवासे खेद-खिन्न देख आप महाक्रोधका भरा युद्ध करवेकूं उद्यमी भया तब अंजनी का पुत्र हनुमान हाथीनिके रथ पर चढ़ राक्षसनिसूं युद्ध करता भया। सो राक्षसनिके सामन्तनिके समूह पवनपुत्रकूं देखकर जैसें नाहर कूं देख गाय डरै तैसें डरते भए। अर राक्षस परस्पर बात करते भए कि यह हनुमान बानरध्वज आज घनों की स्त्रीनिकूं विधवा करेगा। तब याके सन्मुख माली आया। ताहि आया देख हनुमान धनुष विषै बाण तान सन्मुख भए, तिनमें महायुद्ध भया। मन्त्री मन्त्रीविसे लड़ने लगे,रथी रथीविसूं लड़ने लगे, घोड़निके असवार घोड़निके असवारनिसूं लड़ते भए, हाथीनिके असवार हाथीनिके असवारविसूं लड़ते भए। सो हनुमानकी शक्ति कर माली पराङ्मुख भया। तब वज्रोदर महापराक्रमी हनुमानपर दौड़ा, युद्ध करता भया,

चिरकाल युद्ध भया। सो हनुमानने वज्रोदरकूं रथ रहित किया तब वह और दूजे रथपर चढ़ हनुमान पर दौड़ा। तब हनुमान ने बहुरि ताकूं रथ रहित किया। तब बहुरि पवनसे हू अधिक वेग है जाका ऐसे रथपर चढ़ हनुमान पर दौड़ा। तब हनुमानने ताहि हता सो प्राणरहित भया। तब हनुमानके सन्मुख महाबलवान रावणका पुत्र जंबूमाली आया सो आवतेही हनुमान की ध्वजा छेद करता भया। तब हनुमानने क्रोधसे जम्बूमालीका बक्तर भेद्या, धनुष तोड़ डार्‌या जैसे तृणको तोड़ै। तब मन्दोदरीका पुत्र नवा बक्तर पहिर हनुमानके वक्षस्थलविषै तीक्ष्ण बाणनिसे घाव भरता भया सो हनुमानने ऐसाजाना मानो नवीन कमलकी नालिकाका स्पर्श भया। कैसा है हनुमान? पर्वत समान निश्चल है बुद्धि जाकी। बहुरि हनुमानने चन्द्रवक्र नामा बाण चलाया सो जम्बूमालीके रथके अनेक सिंह जुते हुते सो छूट गए, तिनहीके कटकविषैं पड़े, तिनकी विकराल दाढ, विकराल वदन, भयकर नेत्र, तिनकरि सकल सेना विह्वल भई, मानों सेनारूप समुद्र विषैं ते सिंह कल्लोलरूप भए उछलते फिरैं हैं अथवा दुष्ट जलचर जीवनि समान विचरैं हैं अथवा सेनारूप मेघ विषैं बिजली समान चमकैं हैं अथवा संग्राम ही भया संसार चक्र ताविषै सेनाके लोक तेई भए जीव, तिनकूं ये रथके छूटे सिंह कर्मरूप होय महादुःखी करैं हैं, इनसे सर्वसेना दुःखरूप भई, तुरंग गज रथ पियादे सब ही विह्वल भए, रावणका उद्यम तज दसों दिशाकूं भाजे। तब पवनका पुत्र सबोंको पेल रावण तक जाय पहुँचा। दूर से रावण को देखा, सिंह के रथ पर चढा हनुमान धनुषबाण लेय रावण पर धाया, रावण सिंहोंसे सेनाकूं भयरूप देख अर हनुमानकूं काल समान महादुर्द्धर जान आप युद्ध करवेकूं उद्यमी भया। तब महोदर रावणकूं प्रणामकर हनुमान पर महाक्रोध से लड़वेकूं आया सो याके अर हनुमान के महायुद्ध भया। ता समय विषै वे सिंह योधाओंने वश किए सो सिंहोंको वशीभूत भए देख महाक्रोध कर समस्त राक्षस हनुमान पर पड़े। तब अजनाका पुत्र महाभट पुण्याधिकारी तिन सबकूं अनेक बाणनिसे थांभता भया अर अनेक राक्षसनिने अनेक बाण हनुमान पर चलाए परन्तु हनुमानको चलायमान न करते भए। जैसे दुर्जन अनेक कुवचन रूप बाण सयमीके लगावैं परन्तु तिनके एक न लागैं, तैसे ही हनुमानके राक्षसनिका एक बाण भी न लाग्या। अनेक राक्षसनिकरि अकेला हनुमानकूं बेढा देख बानरवंशी विद्याधर युद्ध के निमित्त उद्यमी भए, सुषेण नल नील प्रीतिंकर विराधित संत्रासित हरिकट सूर्यज्योति महाबल जांबूनदके पुत्र। कई नाहरनिके रथ, कई गजनिके रथ, कई तुरंगनिके रथ चढ़ रावण की सेना पर दौड़े सो बानरवंशीनिनें रावण की सेना सब दिशा विषैं विध्वंस करी जैसे क्षुधादि परीषह तुच्छ व्रतियों के व्रत को भंग करैं। तब रावण अपनी सेनाकूं व्याकुल देख आप युद्ध करवेकूं उद्यमी भया तब कुम्भकरण रावणकूं नमस्कार

कर आप युद्धकूं चला तब याहि महाप्रबल योधा रण में अग्रगामी जान सुषेण आदि सब ही बानरवंशी व्याकुल भए। जब चन्द्ररश्मि जयस्कंध चन्द्राहु रतिवर्धन अग अंगद सम्मेद कुमुद कशमण्डल बलि चण्ड तरंगसार रत्नजटी जय वेलक्षिपी वसन्त कोलाहल इत्यादि अनेक योधा राम के पक्षी कुम्भकर्ण से युद्ध करने लगे तब कुम्भकर्णने सबको निद्रा नामा विद्यासे निद्राके वश किए; जैसे दर्शनावरणीय कर्म दर्शन के प्रकाशकूं रोके तैसे कुम्भकर्ण की विद्या बानरवंशीनिके नेत्रनिके प्रकाशकूं रोकती भई। सब ही कपिध्वज निद्रासे घूमने लगे अर तिनके हाथनिसे हथियार गिर पड़े तब इन सबोको निद्रावश अचेतन समान देख सुग्रीव ने प्रतिबोधिनी विद्या प्रकाशी सो सब बानरवंशी प्रतिबोध भए अर हनुमानादि युद्धकूं प्रवर्ते। बानरवंशीविके बलमें उत्साह भया अर युद्धमें उद्यमी भए अर राक्षसनिकी सेना दबी तब रावण आप युद्धकूं उद्यमी भए। तब बड़ा बेटा इन्द्रजीत हाथ जोड़ शिर नवाय विनती करता भया—हे तात! हे नाथ! यदि मेरे होते आप युद्धकूं प्रवर्तें तो हमारा जनम निष्फल है, जो तृण नख ही से उपड़ आवै उस पर फरसी उठावना कहा? तातें आप निश्चित होवें, मैं आपकी आज्ञा प्रमाण करूँगा। ऐसा कहकर महाहर्षित भया पर्वत समान त्रैलोक्यकंटक नामा गजेन्द्र पर चढ़ युद्धकूं उद्यमी भया। कैसा है गजेन्द्र? इन्द्र के गज समान अर इन्द्रजीतकूं अतिप्रिय। अपना सब साज लेय मन्त्रीनिसहित ऋद्धि से इन्द्र समान रावणका पुत्र कपिनपर क्रूर भया सो महाबलका स्वामी मानी आवते प्रमाण ही बानरवंशीनिका बल अनेक प्रकार के आयुधनिकरि जो पूर्ण हुता सो सर्व विह्वल किया। सुग्रीव की सेना में ऐसा सुभट कोई न रहा जो इन्द्रजीतके बाणनिकरि घायल न भया। लोक जानते भए जो यह इन्द्रजीत कुमार नाही, अग्निकुमारों का इन्द्र है अथवा सूर्य है। सुग्रीव अर भामण्डल ये दोऊ अपनी सेनाकूं इन्द्रजीत कर दबी देख युद्धकूं उद्यमी भए। इनके योधा इन्द्रजीतके योधानि से अर ये दोनों इन्द्रजीतसे युद्ध करव लगे सो परस्पर योधा योधाओंको हकार कर बुलावते भए। शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार होय गया, योधानि के जीवनेकी आशा नाही। गजसे गज, रथसे रथ, तुरंगसे तुरग, सामन्तोंसे सामन्त उत्साहकर युद्ध करते भए। अपने २ नाथके अनुरागविषें योधा परस्पर अनेक आयुधनिकर प्रहार करते भए। ताही समय इन्द्रजीत सुग्रीवकूं समीप आया देख ऊंचे स्वरकर अपूर्व शस्त्ररूप दुर्वचनिकर छेदता भया—अरे बानरवंशी पापी! स्वामीद्रोही! रावण से स्वामी को तज स्वामी के शत्रु का किंकर भया। अब मुझसे कहाँ जायगा, तेरे सिर को तीक्ष्ण बाणनिकर तत्काल छेदूंगा। वे दोनों भाई भूमिगोचरी तेरी रक्षा करें। तब सुग्रीव कहता भया—ऐसे वृथा गर्व के वचन कर कहा तू मान शिखर पर चढ़ा है सो अबार ही तेरा मान भंग करूंगा। अब ऐसा कहा तब इन्द्रजीत ने कोपकर धनुष चढ़ाय

बाण चलाया अर सुग्रीव ने इन्द्रजीतपर चलाया, दोनो महायोधा परस्पर बाणनिकर लड़ते भए, आकाश बाणनिसे आच्छादित होय गया। मेघवाहनने भामण्डलको हुंकारा सो दोनों भिड़े। अर विराधित अर वज्रनक्र युद्ध करते भए, सो विराधितने वज्रनक्रके उरस्थलमें चक्रनामा शस्त्रकी दई अर वज्रनक्रने विराधितके दई, शूरवीर घात पाय शत्रुके घात न करैं तो लज्जा है, चक्रविकरि बक्तर पीसे गए तिनके अग्निकी कणिका उछली सो मानों आकाशसे उल्काओंके समूह पड़े हैं। लंकानाथके पुत्रने सुग्रीवपै अनेक शस्त्र चलाए। लंकेश्वरके पुत्र संग्राममें अटल हैं, या समान दूजा योधा नाहीं। तब सुग्रीवने वज्रदंडसे इन्द्रजीतके शस्त्र निराकरण किए। जिनके पुण्यका उदय है तिनका घात न होय। फिर क्रोधकर इन्द्रजीत हाथीसे उतर सिंहके रथ चढ़ा, समाधानरूप है बुद्धि जाकी, नाना प्रकार के दिव्य शस्त्र अर सामान्य शस्त्र इनमें प्रवीण, सुग्रीव पर मेघबाण चलाया सो संपूर्ण दिशा जलरूप होय गई। तब सुग्रीवने पवनबाण चलाया सो मेघबाण विलाय गया अर इन्द्रजीतका छत्र उड़ाया अर ध्वजा उड़ाई। अर मेघवाहन ने भामण्डल पर अग्निबाण चलाया सो भामण्डलका धनुष भस्म होय गया अर सेनामें अग्नि प्रज्वलित भई। तब भामण्डलने मेघवाहन पर मेघबाण चलाया सो अग्निबाण विलाय गया अर अपनी सेनाकी बहुरि रक्षा करी। मेघवाहनने भामंडलकूं रथरहित किया। तब भामण्डल दूजे रथ चढ़ युद्ध करबे लगा। मेघवाहनने तामसबाण चलाया सो भामण्डलकी सेनामें अन्धकार होय गया, अपना पराया कुछ सूझै नाहीं मानों मूर्च्छाकूं प्राप्त भए। तब मेघवाहनने भामण्लकूं नागपाशसे पकड़ा, मायामई सर्प सर्व अंग में लिपट गए जैसे चंदनके वृक्ष के नाग लिपट जावें। कैसे हैं नाग ? भयंकर जे फण तिनकर महा विकराल, भामण्डल पृथ्वीपर पड़ा। अर याही भाँति इन्द्रजीतने सुग्रीवको नागपाशकर पकड़ा सो धरतीपर पड़ा। तब विभीषण जो विद्याबलमें महाप्रवीण श्रीराम लक्ष्मणसूं दोऊ हाथ जोड़ सीस नवाय कहता भया–हे राम महाबाहु ! हे लक्ष्मण महावीर। इन्द्रजीतके बाणनिसे व्याप्त भई सब दिशा देखहु, धरती अर आकाश बाणनिकर आच्छादित है, उल्कापातके स्वरूप नागबाण तिनकरि सुग्रीव अर भामण्डल दोऊ भूमिविषैं बंधे पड़े हैं। मंदोदरीके दोनों पुत्रोंने अपने दोनों महाभट पकड़े, अपनी सेना के जे दोनों मूल थे वे पकड़े गए तब हमारे जीवनकरि कहा ? इन बिना सेना शिथिल होय गई है, देखो दसों दिशाकूं लोक भागै हैं। अर कुम्भकर्ण ने महा युद्ध विषैं हनुमानकूं पकड़ा है, कुम्भकरणके बाणनिकरि हनुमान जरजरे भए, छत्र उड़ गए, ध्वजा उड़ गई, धनुष टूटा, बक्तर टूटा, रावणके पुत्र इन्द्रजीत अर मेघवाहन युद्ध विषैं लग रहे हैं, अब वे आयकर सुग्रीव भामण्डलकूं ले जाँयगे सो वे न ले जावें ता पहिले ही आप उनकूं ले आवें। वे दोनों चेष्टा रहित हैं सो मैं उनके लेवेकूं जाऊं हूं।

अर आप भामण्डल सुग्रीव की सेना विर्नाथ होय गई है सो उसे थांभहु। या भाँति विभीषण राम लक्ष्मण से कहै हैं ताही समय सुग्रीव का पुत्र अंगद छाने छाने कुम्भकर्ण पर गया अर उसका उत्तरासन वस्त्र परे किया सो लज्जाके भार कर व्याकुल भया, वस्त्रको थाँभे तौ लग हनुमान इसकी भुजा-फांससे निकस गया जैसे नवा पकड़ा पक्षी पिंजरेसे निकस जाय। हनुमान नवीन ज्योतिकूं धरे अर अंगद दोनों एक विमानमें बैठे ऐसे शोभते भए मानों देव ही हैं। अर अंगद का भाई अंग अर चन्द्रोदय का पुत्र विराधित इन सहित लक्ष्मण सुग्रीव की अर भामण्डलकी सेनाकूं धैर्य बधाय थांभते भए। अर विभीषण इन्द्रजीत अर मेघवाहन पर गया। सो विभीषणकूं आवता देख इन्द्रजीत मनमें विचारता भया—जो न्याय विचारिये तो हमारे पितामें अर यामें कहा भेद है ? तातैं याके सन्मुख लड़ना उचित नाहीं सो याके सन्मुख खड़ा न रहना यही योग्य है। अर ये दोनों भामण्डल सुग्रीव नागपाशमें बंधे सो निःसन्देह मृत्युकूं प्राप्त भए अर काकातैं भाजिए तो दोष नाहीं, ऐसा विचार दोनों भाई महा अभिमानी न्याय के वेत्ता विभीषण से टरि गए। अर विभीषण, त्रिशूल का है आयुध जाके, रथसे उतर सुग्रीव भामण्डल के समीप गया सो दोनों को नागपाश से मूर्च्छित देख खेद खिन्न होता भया। तब लक्ष्मण रामसूं कही—हे नाथ! ये दोनों विद्याधरनिके अधिपति महासेना के स्वामी महाशक्तिके धनी भामण्डल सुग्रीव रावणके पुत्रनिसे शस्त्ररहित किए मूर्च्छित होय पड़े हैं सो इन बिना आप रावणकूं कैसें जीतोगे। तब रामकूं पुण्यके उदयसे गरुड़ेन्द्र ने वर दिया था सो चितार लक्ष्मण से राम कहते भए—हे भाई। वंशस्थल गिरि पर देशभूषण कुलभूषण मुनिका उपसर्ग निवारा, उस समय गरुड़ेंद्रने वर दिया था। ऐसा कह महालोचन राम ने गरुड़ेंद्र को चितारा सो सुख अवस्था में तिष्ठै था सो सिंहासन कम्पायमान भया। सो अवधिकर राम लक्ष्मणकूं काम जान चिंतावेग नामा देवकूं दोय विद्या देय पठाया, सो आयकर बहुत आदरसूं राम लक्ष्मण से मिल्या अर दोऊ विद्या तिनकूं दई, श्रीरामको सिंहवाहिनी विद्या दई अर लक्ष्मणकूं गरुडवाहिनी विद्या दई। तब यह दोनों वीर विद्या लेय चिन्तावेग का बहुत सन्मान कर जिनेन्द्र की पूजा करते भए अर गरुड़ेंद्र की बहुत प्रशंसा करी। तब देव इनको जलबाण अग्निबाण पवनबाण इत्यादि अनेक दिव्य शस्त्र देता भया अर चांद सूर्य सारिखे दोनों भाइयों को छत्र दिये अर चमर दिये, नाना प्रकार के कांति के समूह रत्न दिये अर विद्युद्वक्र नामा गदा लक्ष्मण को दई अर हल मूसल दुष्टों को भय के कारण रामकूं दिये। या भाँति वह देव इनको देवोपुनीत शस्त्र देय अर सैंकड़ों आशिष देय अपने स्थानक गया। यह सर्व धर्म का फल जानो जो समय पर योग्य वस्तु की प्राप्ति होय। विधि पूर्वक निर्दोष धर्म आराधा होय उसके ये अनुपम फल हैं जिनकूं पायकरि

दुःख की निवृत्ति होय, महावीर्यके धनी आप कुशलरूप अर औरनिकूं कुशल करो, मनुष्य लोक की सम्पदा की कहा बात ? पुण्याधिकारियोंकूं देवलोक की वस्तु भी सुलभ होय है तातैं निरन्तर पुण्य करहु। अहो प्राणी हो ! जो सुख चाहो तो प्राणियों को सुख देवो, जिन धर्म के प्रसाद से सूर्य समान तेज के धारक होवो अर आश्चर्यकारी वस्तुनिका संयोग होय।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै राम लक्ष्मणकूं अनेक विद्या का लाभ वर्णन करने वाला साठवां पर्व पूर्ण भया ॥६०॥

इकसठवां पर्व

(सुग्रीव भामण्डल का नाग पाश से बन्धन मुक्त होना)

अथानन्तर राम लक्ष्मण दोऊ वीर तेजके मण्डल में मध्यवर्ती लक्ष्मी के निवास श्रीवत्स लक्षणकूं धरे महामनोज्ञ कवच पहिरे सिंहवाहन गरुड़वाहनपर चढ़े महासुन्दर सेना सागरके मध्य सिंहकी अर गरुड़की ध्वजा धरे परपक्षके क्षयकरवेकूं उद्यमी महासमर्थ सुभटोंके ईश्वर संग्रामभूमिके मध्य प्रवेश करते भए। आगे २ लक्ष्मण चला जाय है, दिव्य शस्त्रके तेजसे सूर्यके तेजकूं आच्छादित करता हुवा हनुमान आदि बड़े २ योधा वानरवंशी तिनकर मंडित, वर्णन में न आवै ऐसा देवों कैसा रूप धरे बारह सूर्यकीसी ज्योति लिए लक्ष्मण को विभीषणने देखा सो जगत्कूं आश्चर्य उपजावै ऐसे तेजकर मंडित सो गरुडवाहनके प्रताप कर नागपाशका बन्धन भामण्डल सुग्रीवका दूर भया, गरुड़के पक्षों की पवन क्षीरसागरके जलकूं क्षोभरूप करै, उससे वे सर्प विलाय गए जैसे साधुवों के प्रतापसे कुभाव मिट जाय। गरुडके पक्षनिकी कांतिकर लोक ऐसे होयगए मानों सुवर्ण के रसकर निरमापे हैं। तब भामण्डल सुग्रीव नागपाशसे छूट विश्रामकूं प्राप्त भए मानों सुखनिद्रा लेय जाग अधिक शोभते भए। तब इनकूं देख श्रीवृक्ष प्रथादिक सब विद्याधर विस्मयकूं प्राप्त भए अर सब ही श्रीराम लक्ष्मणकी पूजाकर विनती करते भए—हे नाथ! आजकी सी विभूति हम अब तक कभी न देखी, वाहन वस्त्र सम्पदा छत्र ध्वजामें अद्भुत शोभा दीखै है। तब श्रीरामने जबसे अयोध्यासे चले तबसे लेय सर्व वृत्तांत कहा, कुल-भूषण देशभूषण का उपसर्ग दूर किया सो सर्व वृत्तांत कहा, तिन्होंको केवल उपजा अर कही हमसे गरुडेन्द्र तुष्टायमान भया सो अबार उसका चिन्तवन किया, उससे यह विद्या की प्राप्ति भई। तब वे यह कथा सुन परमहर्षकूं प्राप्त भए अर कहते भए—इस ही भव में साधु सेवा से परम यश पाइए है अर अति उदार चेष्टा होय है अर पुण्यकी विधि प्राप्त होय है अर जैसा साधु सेवा से कल्याण होय है वैसा न माता पिता न मित्र न भाई

कोई जीवों को न करै। साधू की सेवा अथवा प्रशंसा में लगाया है चित्त जिन्होंने, जिनेन्द्र के मार्गकी उत्तकिमें उपजी है श्रद्धा जिनके, वे राजा बलभद्र नारायणका आश्रय ले महाविभूतिसे शोभते भए। भव्य जीवरूप कमल तिनकूं प्रफुल्लित करनहारी यह पवित्र कथा उसे सुनकर वे सर्व ही हर्षके समुद्रमें मग्न भए अर श्रीराम लक्ष्मणकी सेवामें अति प्रीति करते भए। अर भामण्डल सुग्रीव, मूर्छारूप निद्रासे रहित भए हैं नेत्र कमल जिनके, श्रीभगवान् की पूजा करते भए, वे विद्याधर श्रेष्ठ देवों सारिखे सर्व प्रकार धर्ममें श्रद्धा करते भए। जो पुण्याधिकारी जीव हैं सो इस लोकमें परम उत्सवके योगकूं प्राप्त होय हैं। यह प्राणी अपने स्वार्थसे संसार में महिमा नाहीं पावै है, केवल परमार्थसे महिमा होय है, जैसे सूर्य पर पदार्थ को प्रकाशै वैसे शोभा पावै है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं भामण्डलका नागपाशतें छूटना आदि निरूपण करने वाला इकसठवां पर्व पूर्ण भया ॥६१॥

बासठवां पर्व

(लक्ष्मण के रावण की शक्ति का लगना और मूर्छित होकर पृथ्वीपर पड़ना)

अथानन्तर श्रीरामके पक्षके योधा पराक्रमी रणरीतिके वेत्ता शूरवीर युद्धकूं उद्यमी भए। वानरवंशियों की सेना से आकाश व्याप्त भया अर शंख आदि वादित्रनिके शब्द अर गजोंकी गर्जना अर तुरंगनिके हींसवेका शब्द सुनकर कैलाशका उठावनहारा जो रावण, अति प्रचंड है बुद्धि जाकी, महामानी, देवनि सारिखी है विभूति जाके, महा प्रतापी बलवान सेनारूप समुद्र कर संयुक्त शस्त्रनिके तेजकर पृथ्वीमें प्रकाश करता, पुत्र भ्रातादिक सहित लंका से निकल युद्धकूं उद्यमी भया। दोनों सेनाके योधा बखतर पहिर संग्रामके अभिलाषी नाना प्रकार वाहननि विषैं आरूढ़ अनेक आयुधनिके धरणहारे पूर्वोपार्जित कर्मसे महाक्रोधरूप परस्पर युद्ध करते भए। चक्र करोत कुठार धनुष बाण खड्ग लोहयष्टि वज्र मुदगर कनक परिघ इत्यादि अनेक आयुधनिसे परस्पर युद्ध भया। घोड़ेके असवार घोड़े के असवारोंसे, हाथियोंके असवार हाथियोंके असवारोंसे, रथोंके महाधीर रथियोंसे लड़ने लगे अर सिंहोंके असवार सिंहोंके असवारोंसे, पयादे पयादोंसे भिड़ते भए। बहुत देरमें कपिध्वजोंकी सेना राक्षसोंके योधाओंसे दबी तब नल नील संग्राम करने लगे सो इनके युद्धसे राक्षसोंकी सेना चिगी। तब लंकेश्वर के योधा समुद्रकी कल्लोल सारिखे चंचल अपनी सेनाकूं कंपायमान देख विद्युद्वचन मारीच चन्द्रार्क सुखसारण कृतांत मृत्यु भूतनाद संक्रोधन इत्यादि महा सामन्त अपनी सेनाकूं धैर्य बंधायकर कपिध्वजोंकी सेनाकूं दबावते भए। तब मर्कटवंशी योधा अपनी सेनाकूं चिगा जान हथारों युद्धको

उठे सो उठते ही नाना प्रकारके आयुधनिकरि राक्षसविकी सेनाकूं हनते भए, अति उदार है चेष्टा जिनकी। तब रावण अपनी सेनारूप समुद्रकूं कपिध्वज रूप प्रलयकालकी अग्नि से सूकता देख आप कोपकर युद्ध करवेकूं उद्यमी भया। सो रावणरूप प्रलयकाल की पवनसें वानरवंशी सूके पातसें उड़ने लगे। तब विभीषण महायोधा वानरवंशियोंकूं धैर्य बंधाय तिनकी रक्षा करवेकूं आप रावणसे युद्धकूं सन्मुख भया। तब रावण लहुरे भाईकूं युद्धमें उद्यमी देख क्रोधकर निरादर वचन कहता भया—रे बालक! तू लघुभ्राता है सो मारवे योग्य नाहीं, मेरे सन्मुख से दूर हो, मैं तुझे देखे प्रसन्न नाहीं। तब विभीषणने रावण से कही—कालके योगसे तू मेरी दृष्टि पड़ा, अब मोसे कहां जायेगा? तब रावण अति क्रोधसे कहता भया—रे पुरुषत्वरहित विनष्ट धृष्ट पापिष्ट कुचेष्टि नर धिक्कार तोकूं! तो सारिखे दीनकूं मारे मुझे हर्ष नाहीं, तू निर्बल रंक अवध्य है अर तो सारिखे मूर्ख और कौन जो विद्याधरों की सन्तानमें होयकर भूमिगोचरियों का आश्रय करें, जैसे कोई दुर्बुद्धि पापकर्मके उदयसे जिनधर्मको तज मिथ्यात्वका सेवन करें। तब विभीषण बोला—हे रावण! बहुत कहनेकरि कहा, तेरे कल्याण की बात तुझे कहूँ सो सुन। एती भई तो भी कुछ बिगड़ा नाहीं, जो तू अपना कल्याण चाहै है तो रामसूं प्रीतिकर, सीता रामकूं सौंप अर अभिमान तज, रामकूं प्रसन्नकर, स्त्रीके निमित्त अपने कुलको कलंक मत लगावे। अथवा तू मेरे वचन नाहीं मानै है सो जानिए है तेरी मृत्यु नजीक आई है। समस्त बलवन्तनिमें मोह महा बलवान है, तू मोहसे उन्मत्त भया है। ये वचन भाईके सुनकर रावण अति क्रोधरूप भया, तीक्ष्ण बाण लेय विभीषण पर दौड्या, और भी रथ घोड़े हाथिनके असवार स्वामी भक्ति में तत्पर महायुद्ध करते भए। विभीषण ने भी रावणकूं आवता देख अर्धचन्द्र बाणसे रावणकी ध्वजा उड़ाई अर रावणने क्रोधकर बाण चलाया सो विभीषणका धनुष तोड्या अर हाथसूं बाण गिरा। तब विभीषण ने दूजा धनुष लेय बाण चलाया सो रावणका धनुष तोड्या। या भांति दोनों भाई महायोद्धा परस्पर जोरसूं युद्ध करते भए अर अनेक सामंतनिका क्षय भया। तब इन्द्रजीत महायोधा पिता भक्त पिताकी पक्ष विभीषणपर आया, तब ताहि लक्ष्मण ने रोक्या जैसे पर्वत सागरकूं रोकै। अर श्रीरामने कुम्भकर्ण घेर्या अर सिंहकटि से नील अर शंभूसे नल अर स्वयंभूसे दुरमती अर घटोदरसे दुर्मुख, शक्रासनसे दुष्ट, चन्द्रनखसे काली, भिन्नांजनसे स्कन्ध, विघ्नसे विराधित, अर मयसे अंगद अर कुम्भकर्णका पुत्र जो कुम्भ उससे हनुमानका पुत्र अर सुमालीसे सुग्रीव अर केतुसे भामंडल, कामसे दृढरथ, क्षोभ से बुध इत्यादि बड़े २ राजा परस्पर युद्ध करते भए अर समस्त ही योधा परस्पर रण रचते भए। वह वाहि बुलावै वह वाहि बुलावे, बराबर के सुभट। कोई कहै है मेरा शस्त्र आवै है

उसे झेल, कोई कहे है तू हमसे युद्ध योग्य नाहीं, बालक है, वृद्ध है, रोगी है, निर्बल है तू जा। फलाने सुभट युद्ध योग्य है सो आवो, या भाँतिके बचनालाप होय रहे हैं। कोई कहे है याही छेदो, कोई कहे है बाण चलाओ, कोई कहे मार लेवो, पकड़ लेवो, बांध लेवो, ग्रहण करो, छोड़ो, चूर्ण करो, घाव लगे ताहि सहो, घाव देहु आगे होवो, मूर्छित मत होवो, सावधान होवो, तू कहा डरै है मैं तुझे न मारूं, कायरनिकूं न मारना, भागोंको न मारना, पड़े को न मारना, आयुधरहितपर चोट न करनी तथा रोगसे ग्रसा मूर्छित दीन बालवृद्ध यति व्रती स्त्री शरणागत तपस्वी पागल पशुपक्षी इत्यादिकूं सुभट न मारें, यह सामन्तनिकी वृत्ति है। कोई अपने वंशियोंको भागते देख धिक्कार शब्द कहै है और कहै है तू कायर है, नष्ट मति है, कांपै है, कहां जाय है,धीरा रहो, अपने समूहमें खड़ा रहो, तोसूं क्या होय है, तोसूं कौन डरै, तू काहेका क्षत्री। शूर और कायरनिके परखने का समय है। मीठा २ अन्न तो बहुत खाते यथेष्ट भोजन करते,अब युद्धमें पीछे क्यों होवो, या भांति वीरोंकी गर्जना और वादित्रनिका बाजना तिनसूं दसों दिशा शब्दरूप भई और तुरंगनि के खुरकी रजसे अंधकार होय गया, चक्र शक्ति गदा लोहयष्टि कनक इत्यादि शस्त्रनि से युद्ध भया, मानों ये शस्त्र काल की दाढ़ ही हैं। लोग घायल भए, दोनों सेना ऐसी दीखें मानों लाल अशोक का बन है अथवा टेसू का वन है अथवा पारिभद्र जातिके वृक्षोंका वन है। कोई योद्धा अपने बखतरको टूटा देख दूजा बखतर पहरता भया, जैसें साधु व्रत में दूषण उपजा देख फिर भी छेदोपस्थापना करें। अर कोई दाँतोंसे तलवार थाम्भ कमर गाढ़ी कर फिर युद्धकूं प्रवृत्ता। कोईयक सामन्त, माते हाथियों के दाँतों के अग्रभाग से विदारा गया है वक्षस्थल जाका, सो हाथीके चालते जे कान वेई भए बीजना उससे मानों हवासे सुख रूप कर रहे हैं और कोईइक सुभट निराकुल बुद्धि हुआ माथी के दाँतनिपर दोनों भुजा पसार सोवै है मानों स्वामी के कार्यरूप समुद्र से उतरा। अर कैयक योद्धा युद्ध में रुधिरका नाला बहावते भए जैसें पर्वत में गेरु की खान से लाल नीझरने बहैं। अर कैयक योधा पृथ्वीमें साम्हने मुँहसे पड़े होठ डसते शस्त्र जिनके करमें टेढी भौंह विकराल बदन इस रीतिसे प्राण तजै हैं। अर कैयक भव्य जीव महा संग्रामसूं अत्यन्त घायल होय कषायका त्यागकर सन्यास धर अविनाशी पद का ध्यान करते देहकूं तज उत्तम लोककूं पावै हैं, कैयक धीरवीर हाथीनिके दांतनिकूं हाथसे पकड़कर उपाड़ते भए, रुधिरकी छटा शरीरसे पड़ै है। शस्त्र हैं हाथविषैं जिनके ऐसे कैयक काम आय गए तिनके मस्तक गिर पड़े अर सैंकड़ों धड़ नाचै हैं, कैयक शस्त्ररहित भए अर घावों से जरजरे भए, तृषातुर होय जल पीवने को बैठे हैं, जीवन की आशा नाहीं, ऐसे भयंकर संग्राम के होते परस्पर अनेक योधाओंका क्षय भया। इंद्रजीत तीक्ष्ण बाणनिसे लक्ष्मणकूं आच्छादते

लगा अर लक्ष्मण उसको, सो इन्द्रजीतने लक्ष्मण पर तामस बाण चलाया सो अंधकार होय गया। तब लक्ष्मणने सूर्यबाण चलाया उससे अंधकार दूर भया। फिर इन्द्रजीतने आशीविष जातिके नागबाण चलाए सो लक्ष्मण अर लक्ष्मणका रथ नागोंसे वेष्टित होने लगा। तब लक्ष्मणने गरुडबाणके योगसे नागबाणका निराकरण किया जैसें योगी महातप से पूर्वोपार्जित पापोंके समूहकूं निराकरण करै। अर लक्ष्मणने इन्द्रजीतकूं रथरहित किया। कैसा है इन्द्रजीत ? मंत्रियोंके मध्य तिष्ठै है अर हाथियोंकी घटाओंसे वेष्टित है। सो इन्द्रजीत दूजे रथपर अपनी सेनाकूं वचनसे कृपाकर रक्षा करता सन्ता लक्ष्मण पर तप्त बाण चलावता भया। उसे लक्ष्मणने अपनी विद्यासे विचार इंद्रजीत पर आशीविष जाति का नागबाण चलाया सो इन्द्रजीत नागबाणसे अचेत होय भूमि में पड़ा जैसें भामंडल पड़ा था और रामने कुम्भकरणकूं रथरहित किया। बहुरि कुम्भकरण ने सूर्य बाण राम पर चलाया सो राम ने ताका बाण निराकरण कर नागबाण कर ताहि बेढा, सो कुम्भकरण भी नागों का बेढा थका धरती पर पड़ा।

यह कथा गौतम गणधर राजा श्रेणिकतैं कहै हैं—हे श्रेणिक। बड़ा आश्चर्य है ते नागबाण धनुषके लगे उल्कापातस्वरूप होय जाय हैं अर शत्रुओं के शरीरके लग नागरूप होय उसको बेढै हैं। ये दिव्य शस्त्र देवोपुनीत हैं, मनवांछितरूप करै हैं,एक क्षण में बाण, एक क्षणमें दंड,एक क्षणमें पाशरूप होय परिणवै हैं। जैसें कर्म पाशकर जीव बंधे तैसें नागपाश कर कुम्भकरण बंधा सो रामकी आज्ञा पाय भामंडलने अपने रथ में राखा, कुम्भकरणकूं रामने भामण्डल के हवाले किया। अर इन्द्रजीत को लक्ष्मणने पकड़ा सो विराधितके हवाले किया सो विराधितने अपने रथमें राखा, खेदखिन्न है शरीर जाका। ता समय युद्धमें रावण विभीषणको कहता भया जो यदि तू आपको योधा मानै है तो एक मेरा घाव सह जाकर रणकी लाज बुझै। यह रावणने कही। कैसा है विभीषण ? क्रोधकर रावणके सन्मुख है अर विकराल करी है रणक्रीडा जाने, रावणने कोपकर विभीषण पर त्रिशूल चलाया। कैसा है त्रिशूल ? प्रज्वलित अग्निके स्फुलिंगों कर प्रकाश किया है आकाशमें जाने। सो त्रिशूल लक्ष्मण ने विभीषण तक आवने न दिया, अपने बाणकर बीच ही में भस्म किया। तब रावण अपने त्रिशूल को भस्म किया देख अति क्रोधायमान भया अर नागेन्द्र की दी हुई शक्ति महा दारुण सो ग्रही अर आगे देखै तो इन्दीवर कहिए नील कमल ता समान श्यामसुन्दर महादैदीप्यमान पुरुषोत्तम गरुडध्वज लक्ष्मण खड़े हैं। तब काली घटा समान गंभीर उदार है शब्द जाका ऐसा दशमुख सो लक्ष्मणकूं ऊँचे स्वर कर कहता भया थावों ताडना ही करै है। तेरा बल कहां जो मृत्यु के कारण मेरे शस्त्र तू झेलै, तू औरनिकी तरह मोहि मत जानै। हे दुर्बुद्धि लक्ष्मण ! जो तू मूवा चाहे है तो मेरा यह शस्त्र झेल। तब लक्ष्मण यद्यपि चिरकाल संग्रामकर अति

खेदखिन्न भया है तथापि विभीषणको पीछेकर आप आगे होय रावणकी तरफ दौड़े। तब रावण ने महा क्रोधकरि लक्ष्मण पर शक्ति चलाई। कैसी है शक्ति ? निकसे हैं ताराओं के आकार स्फुलिंगनिके समूह जाविषै सो लक्ष्मणका वक्षस्थल महापर्वतके तट समान था शक्ति कर विदारा गया, कैसी है शक्ति ? महादिव्य अति देदीप्यमान अमोघक्षेपा कहिए वृथा नाहीं है लगना जाका, सो शक्ति लक्ष्मणके अंगसों लग कैसी सोहती भई मानों प्रेम की भरी वधू ही है। सो लक्ष्मण शक्ति के प्रहारकर, पराधीन भया है शरीर जाका, सो भूमिपर पड़ा जैसें वज्र का मारा पहाड़ पड़े। सो ताहि भूमिपर पड़ा देख श्रीराम कमल-लोचन शोकको दबाय शत्रु के घात करिवे निमित्त उद्यमी भए, सिंहों के रथ चढ़े क्रोधकर भरे शत्रु को तत्काल ही रथ रहित किया। तब रावण और रथ चढ़ा तब रामने रावण का धनुष तोड़ा, बहुरि रावण और धनुष लिया तितने रामने रावणका दूजा रथ भी तोड़ा सो रामके बाणनिकर विह्वल हुआ रावण धनुष बाण लेयवे असमर्थ भया। वह जब रथचढ़े, तीव्रबाणनिकर राम रावणका रथ तोड़ डारैं सो अत्यन्त खेदखिन्न भया, छेदा है बक्तर जाका सो छह बार रामने रथरहित किया तथापि रावण अद्भुत पराक्रमका धारी राम कर हता न गया तब राम आश्चर्य पाय रावणसे कहते भए तू दीर्घ आयु नाहीं, कोईयक दिन आयु बाकी है, तातैं मेरे बाणनिकर न मूवा, मेरी भुजाकर चलाए बाण महा तीक्ष्ण तिनकर पहाड़ भी भिदजाय, मनुष्यकी तो कहा बात? तथापि आयुकर्मने तोकूं बचाया। अब मैं तोहि कहूं सो सुन–हे विद्याधरों के अधिपति। मेरा भाई संग्राममें शक्ति कर तैनें हना सो याकी मृत्युक्रिया कर मैं तोसों प्रभात ही युद्ध करूंगा। तब रावणने कही–ऐसे ही करो। यह कह रावण इन्द्रतुल्य पराक्रमी लंका में गया। कैसा है रावण ? प्रार्थना भंग करिवेकूं असमर्थ है। रावण मनमें विचारै है कि इन दोनों भाइयोंमें एक यह मेरा शत्रु अति प्रबल था सो तो मैं हृत्या, यह विचार कछुइक हर्षित होय महल विषैं गया। कैयक जो योधा युद्धसे जीवते आए तिनकूं देख हर्षित भया। कैसा है रावण ? भाइनिमें है वात्सल्य जाके, बहुरि सुनी कि इन्द्रजीत मेघनाद पकड़े गए अर भाई कुम्भकरण पकड़ा गया सो या वृत्तांतकर रावण अतिखेदखिन्न भया, इनके जीवनेकी आशा नाहीं। यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं–हे भव्योत्तम ! अनेकरूप अपने उपार्जे कर्मों के कारण से जीवनिके नाना प्रकारकी साता असाता होय है। देख ! या जगत् विषैं नाना प्रकारके कर्म तिनके उदय कर जीवनिके नाना प्रकारके शुभाशुभ होय हैं अर नाना प्रकार के फल होय हैं, कैयक तो कर्म के उदयकर रण विषैं नाशकूं प्राप्त होय हैं अर कैयक, वैरियों को जीत अपने स्थानककूं प्राप्त होय हैं अर काहूकी विस्तीर्ण शक्ति विफल होय जाय है अर बंधनकूं पावैं हैं सो जैसें सूर्य पदार्थोंके प्रकाशनमें प्रवीण है तैसें कर्म, जीवनि

को नाना प्रकारके फल देने में प्रवीण है ।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं लक्ष्मणके रावणके हाथकी शक्तिका लगना और भूमिविषैं अचेत होय पड़ना वर्णन करनेवाला बासठवां पर्व पूर्ण भया ।।६२।।

तिरेसठवां पर्व

[लक्ष्मण के शक्ति प्रहार से मूर्च्छित होनेपर राम का विलाप]

अथानन्तर श्रीराम लक्ष्मण के शोक करि व्याकुल भए, जहाँ लक्ष्मण पड़ा हुता तहाँ आय पृथ्वीमंडलका मंडन जो भाई ताहि चेष्टारहित शक्तिसे आलिंगित देख मूर्च्छित होय गए । बहुरि घनी बेरमें सचेत होयकर महाशोक से संयुक्त दु:खरूप अग्नि से प्रज्वलित अत्यन्त विलाप करते भए—हा वत्स ! कर्म के योग कर तेरी यह दारुण अवस्था भई, अपन दुर्लंघ्य समुद्र तिर यहाँ आए, तू मेरी भक्ति में सदा सावधान, मेरे कार्य निमित्त सदा उद्यमी, शीघ्र ही मेरे से वचनालाप कर, कहा मौन धरे तिष्ठै है ? तू न जाने मैं तेरे वियोगकूं एक क्षणमात्र भी सहिवे समर्थ नाहीं, उठ मेरे उरसे लग, तेरा विनय कहाँ गया, तेरे भुज गजके सूंड समान दीर्घ भुजबंधननिकर शोभित, सो ये क्रियारहित प्रयोजनरहित होय गए, भावमात्र ही रह गए अर तू माता पिताने मोहि धरोहर सौंपा हुता सो अब मैं महाविर्लज्ज तिनकूं कहा उत्तर दूंगा, अत्यन्त प्रेमके भरे अति अभिलाषी राम, हा लक्ष्मण ! हा लक्ष्मण ! ऐसा जगत्में हितु तो समान नाहीं, या भाँतिके वचन कहते भए । लोक समस्त देखें हैं अर महादीन भए भाईसूं कहै हैं—तू सुभटनिमें रत्न है तो बिना मैं कैसे जीऊँगा, मैं अपना जीतव्य पुरुषार्थ तेरे बिना विफल मानूं हूं, पापोंके उदयका चरित्र मैंने प्रत्यक्ष देखा, मोहि तेरे बिना सीता कर कहा, अन्य पदार्थनि कर कहा ? जा सीताके निमित्त तेरे सारिखे भाईकूं निर्दय शक्तिकर पृथ्वी पर पड़ा देखूं हूं सो तो समान भाई कहां ? काम अर्थ पुरुषों को सब सुलभ है अर और सम्बन्धी पृथ्वी पर जहाँ जाइये वहाँ सब मिलै परन्तु माता पिता अर भाई न मिलै । हे सुग्रीव ! तैंने अपना मित्रपणा मुझे अति दिखाया, अब तुम अपने स्थानक जावो अर हे भामंडल ! तुम भी जावो, अब मैं सीता की भी आशा तजी अर जीवने की आशा तजी, अब मैं भाई के साथ नि:सन्देह अग्निमें प्रवेश करूंगा । हे विभीषण ! मोहि सीताका भी सोच नाहीं अर भाई का भी सोच नाहीं परन्तु तिहारा उपकार हमसे कछु न बना, सो यह मेरे मनमें बाधा है । जे उत्तम पुरुष हैं ते पहिले ही उपकार करें अर जे मध्यम पुरुष हैं ते उपकार पीछे उपकार करें अर जो पीछे भी न करें वे अधम पुरुष हैं । सो तुम उत्तम पुरुष हो, हमारा उपकार किया, ऐसे भाईसे विरोध कर हमपै आए अर हमसे तिहारा कछु उपकार न बना तातें मैं अति आतापरूप हूं । हो भामंडल सुग्रीव ! चिता रचो, मैं भाईके

साथ अग्निमें प्रवेश करूंगा,तुम जो योग्य हो सो करियो। यह कहकर लक्ष्मणकूं राम स्पर्शने लगे। तब जांबूनद महा बुद्धिमान मना करता भया–हे देव ! यह तिहारा भाई दिव्यास्त्र से मूर्छित भया है सो स्पर्श मत करो। यह अच्छा हो जायगा, ऐसे होय है। तुम धीरताकूं धरो, कायरता तजो, आपदामें उपाय ही कार्यकारी है। यह विलाप उपाय नाहीं, तुम सुभट जन हो, तुमको विलाप उचित नाहीं, यह विलाप करना क्षुद्र लोगों का काम है, तातैं अपना चित्त धीर करो, कोईयक उपाय अब ही बने है, यह तिहारा भाई नारायण है सो अवश्य जीवेगा। अवार याकी मृत्यु नाहीं, यह कह सब विद्याधर विषादी भए अर लक्ष्मण के अंग से शक्ति निकालने का उपाय अपने मनमें सब ही चिंतवते भए। यह दिव्य शक्ति है, याहि औषध कर कोऊ निवारवे समर्थ नाहीं। अर कदाचित् सूर्य उगा तो लक्ष्मण का जीवना कठिन है, यह विद्याधर बारम्बार विचारते हुए उपजी है चिन्ता जिनके सो कमरबन्ध आदि सब दूरकर आध निमिष में धरती शुद्ध कर कपड़े के डेरे खड़े किए। अर कटक की सात चौकी मेली, सो बड़े बड़े योधा बक्तर पहिरे धनुष बाण धारे बहुत सावधानीसे चौकी बैठे। प्रथम चौकी नील बैठे, धनुषबाण हाथ में धरे अर दूजी चौकी नल बैठे, गदा कर में लिए अर तीजी चौकी विभीषण बैठे, महा उदार मन त्रिशूल थांभे अर कल्पवृक्षोंकी माला रत्ननिके आभूषण पहिरे ईशानइन्द्र समान अर चौथी चौकी तरकश बांधे कुमुद बैठे, महा साहस धरे, पाँचवीं चौकी बरछी संभारे सुषेण बैठे, महा प्रतापी अर छठी चौकी महा दृढ़भुज आप सुग्रीव इन्द्र सारिखा शोभायमान भिंडिपाल लिए बैठे, सातवीं चौकी महा शस्त्र का निकन्दक तरवार सम्हाले आप भामंडल बैठा, पूर्वके द्वार अष्टापदी ध्वजा जाके ऐसा सोहता भया मानों महाबली अष्टापद ही है अर पश्चिम के द्वार जाम्बूकुमार विराजता भया अर उत्तर के द्वार मंत्रियों के समूह सहित बालीका पुत्र महा बलवान चन्द्रमरीच बैठा, या भांति विद्याधर चौकी बैठे सो कैसे सोहते भए जैसे आकाशमें नक्षत्रमंडल भासे। अर वानरवंशी महाभट वे सब दक्षिण दिशाकी तरफ चौकी बैठे। या भाँति चौकीका यत्नकर विद्याधर तिष्ठे, लक्ष्मणके जीनेमें सन्देह जिनके, प्रबल है शोक जिनका, जीवनिके कर्मरूप सूर्यके उदयकर फलका प्रकाश होय है ताहि न मनुष्य, न देव, न नाग, न असुर, कोई भी निवारवे समर्थ नाहीं। यह जीव अपना उपार्जा कर्म आप ही भोगवै है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें
लक्ष्मण के शक्ति लगना अर रामका विलाप वर्णन करने वाला
तिरेसठवाँ पर्व पूर्ण भया ॥६३॥

चौसठवां पर्व

(लक्ष्मण की शक्ति दूर करने के उपाय और विशल्या के पूर्व भव का वर्णन)

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका निश्चय से मरण जान अर अपने भाई दोऊ पुत्रनिकों बुद्धिमें मरणरूपही जान अत्यन्त दुःखी भया। रावण विलाप करै है–हाय भाई कुम्भकरण! परम उदार अत्यन्त हितु, कहा ऐसी बन्धन अवस्थाकूं प्राप्त भया,हाय इन्द्रजीत मेघनाद! महा पराक्रमके धारी हो, मेरी भुजा समान दृढ़कर्म के योगकर बन्ध को प्राप्त भए, ऐसी अवस्था अब तक न भई,मैं शत्रुका भाई हना है सो न जानिए कि शत्रु व्याकुल भया कहा करै, तुम सारिखे उत्तम पुरुष मेरे प्राणवल्लभ दुःख अवस्थाकूं प्राप्त भए, या समान मोकों अति कष्ट कहा। ऐसे रावण गोप्य भाई अर पुत्रनिका शोक करता भया। अर जानकी लक्ष्मणके शक्ति लगी सुन अति रुदन करती भई–हाय लक्ष्मण ! विनयवान गुणभूषण ! तू मो मन्दभागिनी के निमित्त ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भया, मैं तोहि ऐसी अवस्था विषैं ही देखा चाहूँ हूँ सो दैवयोगसे देखबे नाहीं पाऊँ हूँ। तो सारिखे योधा को पापी शत्रु ने हना सो कहा मेरे मरण का संदेह न किया। तो समान पुरुष या संसारमें और नाहीं, बड़े भाई की सेवा में आसक्त है चित्त जाका, समस्त कुटुम्ब को तज भाई के साथ निकसा अर समुद्र तिर यहाँ आया, ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भया तोहि मैं कब देखूंगी। कैसा है तू ? बालक्रीड़ा में प्रवीण अर महा विनयवान, महा मिष्ट वाक्य, अद्भुत कार्य का करणहारा, ऐसा दिन कब होयगा जो तुझे मैं देखूं, सर्व देव सर्वथा प्रकार तेरी सहाय करहु। हे सर्व-लोकके मनके हरणहारे ! तू शक्तिकी शल्य से रहित होय। या भांति महाकष्टतें शोक-रूप जानकी विलाप करै। ताहि भावनिकरि अति प्रीतिरूप जो विद्याधरी तिनने धैर्य बन्धाय शांत चित्त करी–हे देवी ; तेरे देवरके अब तक मरबे का निश्चय नाहीं, तातें तू रुदन मत कर। आगे महाधीर सामन्तोंकी यही गति है अर पृथ्वीविषें उपाय भी नाना प्रकारके हैं, ऐसे विद्याधरियोंके वचन सुन सीता किंचित निराकुल भई। अब गौतमस्वामी राजा श्रेणिक तें कहै हैं–हे राजन् ! अब जो लक्ष्मण का वृत्तांत भया सो सुन। एक योधा, सुन्दर है मूर्ति जाकी, सो डेरोंके द्वार पर प्रवेश करता भामंडलने देख्या अर पूछा–तू कौन है और कहांसे आया अर कौन अर्थ यहाँ प्रवेश करै है ? यहां ही रह, आगे मत जा। तब वह कहता भया कि मोहि महीने ऊपर कई दिन गए हैं, मेरे अभिलाषा राम के दर्शन की है सो राम का दर्शन करूंगा। अर जो लक्ष्मण के जीवने की वांछा करो हो तो मैं जीवने का उपाय कहूँगा। जब वाने ऐसा कहा तब भामंडल अति प्रसन्न होय द्वारपर आप समान अन्य सुभट मेल ताहि लार लेय श्रीरामपै आया। तब विद्याधर श्रीरामको

नमस्कार कर कहता भया—हे देव! तुम खेद मत करो, लक्ष्मणकुमार निश्चय सेती जीवेगा। देवगति नामा नगर, तहाँ राजा शशिमंडल, राणी सुप्रभा, तिनका पुत्र मैं चन्द्रप्रीतम सो एक दिन आकाश विषैं विचरता हुता सो राजा वेलाध्यक्षका पुत्र सहस्रविजय सो वासे मेरा यह वैर कि मैं वाकी मांग परणी, सो वह मेरा शत्रु, ताके अर मेरे महायुद्ध भया, सो ताने चंडरवा नामा शक्ति मेरे लगाई सो मैं आकाश से अयोध्याके महेन्द्रनामा उद्यान में पड़ा, सो मोहि पड़ता देख अयोध्याके धनी राजा भरत आय ठाढ़े भए, शक्ति से विदारा मेरा वक्षस्थल देख, वे महा दयावान उत्तम पुरुष जीवदाता, मुझे चन्दनके जलकर छांटा सो शक्ति निकस गई, मेरा जैसा रूप हुता वैसा होय गया अर कुछ अधिक भया। वा नरेंद्र भरतने मोहि नवा जन्म दिया जाकर तिहारा दर्शन भया।

यह वचन सुन श्रीरामचन्द्र पूछते भए कि वा गन्धोदक की उत्पत्ति क्या तू जानै है। तब ताने कहा—हे देव ! जानूं हूँ, तुम सुनो। मैं राजा भरतको पूछी अर ताने मोहि कही कि जो यह हमारा समस्त देश रोगनिकर पीड़ित भया सो काहू इलाजसे अच्छा न होय, पृथ्वी विषै कौन २ रोग उपजे सो सुनो—उरोघात, महादाहज्वर, लालपरिश्रम, सर्वशूल अर छिरद सोई फोरे इत्यादि अनेक रोग सर्व देशके प्राणियोंके भए मानों क्रोध कर रोगनिकी धाड़ ही देश विषै आई। अर राजा द्रोणमेघ प्रजा सहित नीरोग तब मैं ताको बुलाया अर कही—हे माम ! तुम जैसे नीरोग हो तैसा शीघ्र मोहि अर मेरी प्रजा को करो। तब राजा द्रोणमेघने, जाकी सुगंधतासे दसों दिशा सुगंध होंय, ता जलकर मोहि सींचा सो मैं चंगा भया। अर ता जल कर मेरा राजलोक भी चंगा अर नगर तथा देश चंगा भया, सर्व रोग निवृत्त भए सो हजारों रोगोंकी करणहारी अत्यन्त दुस्सह वायु मर्म की भेदनहारी ता जलसे जाती रही। तब मैंने द्रोणमेघको पूछा—यह जल कहां का है जाकर सर्वरोगका विनाश होय ? तब द्रोणमेघ ने कही—हे राजन् ! मेरे विशल्या नामा पुत्री, सर्व विद्या विषैं प्रवीण, महागुणवती सो जब गर्भ विषैं आई तब मेरे देशविषै अनेक व्याधि हुतीं सो पुत्रीके गर्भ विषै आवते ही सर्व रोग गए। पुत्री जिनशासन विषै प्रवीण है, भगवानकी पूजा विषैं तत्पर है, सर्व कुटुम्ब की पूजनीक है, ताके स्नानका यह जल है, ताके शरीरकी सुगंधतासे जल महा सुगन्ध है, क्षणमात्र विषैं सर्व रोगका विनाश करै है। ये वचन द्रोणमेघके सुनकरमैं अचरजकों प्राप्त भया। ताके नगर विषैं जाय ताकी पुत्रीकी स्तुति करी अर नगरीसे निकस सत्त्वहित नामा मुनिको प्रणामकर पूछा—हे प्रभो ! द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या का चरित्र कहो? तब चार ज्ञानके धारक मुनि महावात्सल्यके धरणहारे कहते भए—हे भरत ! महाविदेहक्षेत्र विषैं स्वर्ग समान पुंडरीक देश, तहाँ त्रिभुन नंद

नामा नगर, तहाँ चक्रधर नामा चक्रवर्ती राजा राज्य करै, ताके पुत्री अनंगशरा, गुण ही हैं आभूषण जाके, स्त्रीनिविषें ता समान अद्‌भुत रूप और का नाहीं, सो एक प्रतिष्ठितपुर का धनी राजा पुनर्वसु विद्याधर चक्रवर्ती का सामंत सो कन्याकूं देख कामबाणकर पीड़ित होय विमानमें बैठाय लेय गया। सो चक्रवर्तीने क्रोधायमान होय किंकर भेजे सो तासूं युद्ध करते भए, ताका विमान चूर डारा, तब ताने व्याकुल होय कन्या आकाशतैं डारी सो शरदके चंद्रमाकी ज्योति समान पुनर्वसुकी पर्णलघुविद्याकर अटवी विषें आय पड़ी, सो अटवी दुष्ट जीवनिकर महा भयानक, जाका नाम श्वापद रौरव, जहाँ विद्याधरों का भी प्रवेश नाहीं, वृक्षनि के समूहकर महा अंधकाररूप, नाना प्रकारकी बेलनिकर बेढ़े नाना प्रकार के ऊँचे वृक्षनिकी सघनतासे जहाँ सूर्यकी किरण का भी प्रवेश नाहीं अर चीता व्याघ्र सिंह अष्टापद गैंडा रीछ इत्यादि अनेक वनचर विचरैं अर नीची ऊँची विषम भूमि, जहाँ बड़े २ गर्त (गड्ढे), सो यह चक्रवर्ती की कन्या अनंगशरा बालिका अकेली ता वनमें महा भयकर युक्त अति खेदखिन्न होती भई, नदी के तीर जाय दिशा अवलोकन कर माता पिताकूं चितार रुदन करती भई—हाय ! मैं चक्रवर्ती की पुत्री, मेरा पिता इन्द्रसमान, ताके मैं अति लाड़ली, दैवयोगकर या अवस्थाकूं प्राप्त भई, अब कहा करूं ? या वनका छोर नाहीं, यह वन देख दुःख उपजै। हाय पिता ! महा पराक्रमी, सकल लोक प्रसिद्ध, मैं या वनमें असहाय पड़ी, मेरी दया कौन करै। हाय माता ! ऐसे महादुःखकर मोहि गर्भमें राखी, अब काहेसे मेरी दया न करो। हाय मेरे परिवारके उत्तम मनुष्य हो ! एक क्षणमात्र मोहि न छोड़ते, सो अब क्यों तज दीनी ? अर मैं होती ही क्यों न मर गई, काहेसे दुःखकी भूमिका भई, चाही मृत्यु भी न मिलै, कहा करूँ, कहां जाऊँ, मैं पापिनी कैसे तिष्ठूँ ? यह स्वप्न है कि साक्षात् है। या भाँति चिरकाल विलाप कर महाविह्वल भई। ऐसे विलाप किए जिनकूं सुन महा दुष्ट पशुका भी चित्त कोमल होय। यह दीन चित्त क्षुधा तृषा से दग्ध, शोकके सागरमें मग्न, फल पत्रादिकसे कीनी है आजीविका जाने, कर्मके योग ता वनमें कई शीतकाल पूर्ण किए। कैसे हैं शीतकाल? कमलनिके वन की शोभाका जो सर्वस्व ताके हरणहारे। अर तिसने अनेक ग्रीष्मके आताप सहे। कैसे हैं ग्रीष्म आताप ? सूके हैं जलोंके समूह अर जले हैं दावानलों से अनेक वन वृक्ष अर जरे हैं मरे हैं अनेक जन्तु जहां। अर जाने ता वनमें वर्षा काल भी बहुत व्यतीत किए। ता समय जलधाराके अन्धकारकर दब गई है, सूर्यकी ज्योति अर ताका शरीर वर्षा का धोया चित्रामके समान होय गया, कांति रहित दुर्बल बिखरे केश मलयुक्त शरीर लावण्य रहित ऐसा होय गया जैसे सूर्यके प्रकाश कर चन्द्रमाकी कलाका प्रकाश क्षीण होय जाय। कैथ का वन फलनिकर नम्रीभूत, वहाँ बैठी पिताको चितार या भाँतिके

वचन कहकर रुदन करै कि मैं जो चक्रवर्ती के तो जन्म पाया अर पूर्व जन्मके पापकर वनविषें ऐसी दुःख अवस्थाको प्राप्त भई; या भांति आंसुवों की वर्षा कर चातुर्मास किया। अर जे वृक्षों से टूटे फल सूक जाय तिनका भक्षण कर अर बेला तेला आदि अनेक उपवासनिकर, क्षीण होय गया है शरीर जाका, सो केवल फल अर जलकर पारणा करती भई। अर एक ही बार जल ताही समय फल। यह चक्रवर्तीकी पुत्री पुष्पनि की सेज पर सोवती अर अपने केश भी जाको चुभते सो विषम भूमि पर खेद रहित शयन करती भई। अर पिताके अनेक गुणीजन राग करते तिनके शब्द सुन प्रबोधकूं पावती, सो अब स्याल आदि अनेक वनचरोंके भयानक शब्दकरि रात्रि व्यतीत करती भई। या भांति तीन हजार वर्ष तप किया। सूके फल तथा सूके पत्र अर पवित्र जल आहार किए। अर महा वैराग्य को प्राप्त होय खान पानका त्यागकर धीरता धर संलेखणा मरण आरम्भा। एक सौ हाथ भूमि पांओंसे परै न जाऊं"—यह नियम धारे तिष्ठी। आयुमें छह दिन बाकी हुते अर एक अरहदास नामा विद्याधर सुमेरु की वन्दना करके जावे था सो आय निकसा सो चक्रवर्ती की पुत्री को देख पिता के स्थानक ले जाना विचारा, संलेखणा के योग कर कन्याने मने किया।

तब अरहदास शीघ्र ही चक्रवर्ती पर जाय चक्रवर्ती को लेय कन्यापै आया। सो जिस समय चक्रवर्ती आया ता समय एक सर्प कन्याको भखे था सो कन्याने पिताको देख अजगर को अभयदान दिवाया अर आप समाधिमरण कर शरीर तज तीजे स्वर्ग गई। पिता पुत्री की यह अवस्था देखकर बाईस हजार पुत्रनि सहित वैराग्यको प्राप्त होय मुनि भया। कन्याने अजगर से क्षमाकर अजगर को पीड़ा न होवे दई सो ऐसी दृढता ताहीसूं बनै। अर वह पुनर्वसु विद्याधर अनंगशरा को देखता भया सो न पाई। तब खेद खिन्न होय द्रुमसेन मुनिके निकट मुनि होय महातप किया सो स्वर्ग में देव होय महासुंदर लक्ष्मण भया। अर वह अनंगशरा चक्रवर्तीकी पुत्री स्वर्गलोकतें चयकरद्रोणमेघके विशल्या भई अर पुनर्वसुने ताके निमित्त निदान किया हुता सो अब लक्ष्मण याहि वरेगा। यह विशल्या या नगरविषें या देशविषें तथा भरतक्षेत्रमें महागुणवंती है, पूर्वभवके तपके प्रभाव कर महापवित्र है, ताके स्नानका यह जल है सो सकल विकारको हरै है। याने उपसर्ग सहा, महातप किया ताका फल है, याके स्नानके जल कर जो तेरे देशमें वायुविषम विकार उपजा हुता सो नाश भया। ये मुनिके वचन सुन भरतने मुनिसे पूछी—हे प्रभो! मेरे देशमें सर्व लोकोंको रोग विकार कौन कारणसे उपजा? तब मुनिने कहा—गजपुर नगरतें एक विन्ध्य नामा महा धनवंत व्यापारी सो रासभ (गधा) ऊंट भैंसा लादे अयोध्या में आया अर ग्यारह महीना अयोध्या में रहा, ताके एक भैंसा बहुत बोझ के लदने से

घायल हुवा तीव्र रोग के भारसे पीड़ित या नगर में घूमा, सो अकामनिर्जरा के योगकर अश्वकेतु नामा वायुकुमार देव भया जाका विद्यावर्त नाम, सो अवधिज्ञानसे पूर्वभव को चितारा कि पूर्वभव विषे मैं भैंसा था, पीठ कट रही हुती अर महा रोगों कर पीड़ित मार्ग विषें कीच में पड़ा हुता सो लोक मेरे सिर पर पांव देय २ गए, ये लोक महा निर्दई, अब मैं देव भया सो मैं इनका निग्रह न करूं तो मैं देव काहे का ? ऐसा विचार अयोध्या नगरविषें अर सुकोशल देश में वायु रोग विस्तारा, सो समस्त रोग विशल्याके चरणोदक के प्रभावसे विलय गया । बलवानसे अधिक बलवान है सो यह पूर्ण कथा मुनि ने भरत से कही अर भरत ने मोसें कही सो मैं समस्त तुमको कही । विशल्या का स्नान जल शीघ्र ही मंगाओ, लक्ष्मण के जीवने का अन्य यत्न नाहीं । या भांति विद्याधर ने श्रीरामसे कहा सो सुनकर प्रसन्न भए । गौतम स्वामी कहैं हैं कि हे श्रेणिक ! जे पुण्याधिकारी हैं तिनको पुण्य के उदयकरि अनेक उपाय मिलै हैं । अहो महतजन हो ! तिन्हैं आपदाविषें अनेक उपाय सिद्ध होय हैं ।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषें विशल्या का पूर्व भव वर्णन करने वाला चौंसठवाँ पर्व पूर्ण भया ।।६४।।

पैंसठवां पर्व

(राम के कटक में विशल्या का आगमन और लक्ष्मण का शक्ति रहित होना)

अथानन्तर या विद्याधर के वचन सुनकर रामने समस्त विद्याधरनि सहित ताकी अति प्रशंसा करी अर हनुमान भामंडल तथा अंगद इनकूं मंत्रकर अयोध्या की तरफ विदा किए । वे क्षणमात्र में गए जहाँ महाप्रतापी भरत विराजें हैं, सो भरत शयन करते हुते । तिनकूं राग कर जगावने का उद्यम किया, सो भरत जागते भए । तब ये मिले । सीता का हरण, रावण से युद्ध अर लक्ष्मण के शक्ति का लगना, ये समाचार सुन भरतको शोक अर क्रोध उपजा । अर ताही समय युद्ध की भेरी दिवाई सो सम्पूर्ण अयोध्याके लोक व्याकुल भए अर विचार करते भए कि यह राजमंदिर में कहा कलकलाट शब्द है ? आधी रात के समय कहा अतिवीर्य का पुत्र आय पड्या ? कोईयक सुभट अपनी स्त्री सहित सोता हुता ताहि तजकर अपने बक्तर पहिरे अर खड्ग हाथमें समारा अर कोईयक मृगनैनी भोरे बालक को गोद लेय अर कुचोंपर हाथ धर दिशावलोकन करती भई अर कोईयक स्त्री निद्रारहित भई अर सोते कंतको जगावती भई, कोईयक भरतजीका सेवक जागकर अपनी स्त्रीको कहता भया–हे प्रिये ! कहा सोवै है ? आज अयोध्या में कछु भला नाहीं, राजमंदिर में प्रकाश होय रह्या है अर रथ, हाथी, घोड़े, प्यादे, राजद्वार की

तरफ जाय हैं, जो सयाने मनुष्य हुते ते सब सावधान होय उठ खड़े हुवे। अर कईयक पुरुष स्त्रीसे कहते भए—ये सुवर्ण कलश अर मणि रत्नों के पिटारे तहखानोंमें अर सुन्दर वस्त्रोंकी पेटी भूमिग्रहमें धरो, और भी द्रव्य ठिकाने धरो। अर शत्रुघ्न भाई निद्रा तज हाथी चढ़ मन्त्रियों सहित शस्त्रधारक योधाओं को लेय राजद्वार आया, और भी अनेक राजा राजद्वार आए सो भरत सबकू युद्धका आदेश देय उद्यमी भया। तब भामंडल हनुमान अंगद भरतकू नमस्कार कर कहते भए—हे देव ! लंकापुरी यहाँ से दूर है अर बीचमें समुद्र है। तब भरत ने कही—कहा करना ? तब उन्होंने विशल्या का वृत्तांत कहा—हे प्रभो ! राजा द्रोणमेघकी पुत्री विशल्या ताके स्नान का उदक देवहु, शीघ्र ही कृपा करहु जो हम ले जाँय, सूर्यका उदय भए लक्ष्मणका जीवना कठिन है। तब भरत ने कही—ताके स्नानका जल क्या, वाही ले जाओ। मोहि मुनिने कही हुती—यह विशल्या लक्ष्मणकी स्त्री होयगी। तब द्रोणमेघके निकट एक मनुष्य ताही समय पठाया सो द्रोणमेघ ने लक्ष्मण के शक्ति लगी सुन अति कोप किया अर युद्धकू उद्यमी भया अर ताके पुत्र मंत्रीनिसहित युद्धकू उद्यमी भए। तब भरत अर माता केकईने आप द्रोणमेघको जायकर ताको समझाय विशल्याको पठावना ठहराया। तब भामंडल हनुमान अंगद विशल्याकू विमानमें बैठाय एक हजार अधिक राजाकी कन्या साथ लेय राम कटकमें आए, एक क्षण-मात्रमें संग्राम भूमि आय पहुँचे, विमानसे कन्या उतरी, ऊपर चमर ढुरें हैं। कन्याके कमल सारिखे नेत्र सो हाथी घोड़े बड़े २ योधानिको देखती भई। ज्यों २ विशल्या कटक में प्रवेश करै त्यों २ लक्ष्मण के शरीर में साता होती भई, वह शक्ति देवरूपिणी लक्ष्मण के अंग से निकसी, ज्योतिके समूहसे युक्त मानों दुष्ट स्त्री घरसे निकसी. दैदीप्यमान अग्नि के स्फुलिंगोंके समूह आकाश में उछलते सो वह शक्ति हनुमान ने पकड़ी, दिव्य स्त्री का रूप धरे। तब वह हनुमानको हाथ जोड़ कहती भई—हे नाथ ! प्रसन्न होवो, मोहि छांडो, मेरा अपराध नाहीं, हमारी यही रीति है कि हमको जो साधे हम ताके वशीभूत हैं। मैं अमोघविजया नामा शक्ति विद्या तीन लोकविषै प्रसिद्ध हूँ सो कैलाश पर्वत विषैं बालमुनि प्रतिमा योग धरि तिष्ठे हुते अर रावण ने भगवान् के चैत्यालय में गान किया अर अपने हाथनिकी नस बजाई अर जिनेन्द्र के चरित्र गाए तब धरणेंद्र का आसन कंपायमान भया सो धरणेंद्र परम हर्ष धर आए, रावणसू अति प्रसन्न होय मोहि सौंपी, रावण याचना विषैं कायर सो मोहि न इच्छे। तब धरणेन्द्र ने हठकर दई सो मैं महा विकराल स्वरूप, जाके लागू ताके प्राण हरू, कोई मोहि निवारवे समर्थ नाहीं। एक या विशल्यासुन्दरीको टार मैं देवों की जीतवहारी सो मैं याके दर्शन ही तैं भाग जाऊं, याके प्रभाव कर मैं शक्ति रहित भई, तपका ऐसा प्रभाव है जो चाहे तो सूर्य को शीतल करै अर चन्द्रमाको

उष्ण करे। याने पूर्व जन्म विषैं अति उग्र तप किए, सिरसनाके फूल समान याका सुकुमार शरीर सो याने तप विषैं लगाया, ऐसा उग्रतप किया जो मुनिहूतैं न बनै, मेरे मनमैं संसार विषैं यही भासैं है जो ऐसे तप प्राणी करैं, वर्षा शीतल आताप अर महादुस्सह पवन तिनसे यह सुमेरुकी चूलिका समान न कांपी, धन्य याका रूप, धन्य याका साहस,धन्य याका धर्मविषैं दृढ़ मन, याकासा तप और स्त्रीजन करवे समर्थ नाहीं, सर्वथा जिनेंद्रचन्द्रके मत के अनुसार जे तपको धारण करैं हैं ते तीन लोक को जीतैं हैं। अथवा या बातका कहा आश्चर्य, जा तपकर मोक्ष पाइए ताकर और कहा कठिन ? मै पराए आधीन, जो मोहि चलावै ताके शत्रुका मै नाश करूं सो याने मोहि जीती, अब मैं अपने स्थान जाऊं हूं सो तुम तो मेरा अपराध क्षमा करहु। या भांति शक्ति देवीने कहा तब तत्वका जाननहारा हनुमान ताहि विदाकर अपनी सेवामें आया। अर द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या अति लज्जा की भरी रामके चरणारविंदकूं नमस्कार कर हाथ जोड़ ठाढ़ी भई। विद्याधर लोक प्रशंसा करते भए अर नमस्कार करते भए अर आशीर्वाद देते भए। जैसे इन्द्रके समीप शची जाय तिष्ठै तैसें वह विशल्या सुलक्षणा महा भाग्यवती सखियोंके वचनसे लक्ष्मणके समीप तिष्ठी। वह नवयौवन जाके मृगी कैसे नेत्र, पूर्णमासी के चन्द्रमा समान मुख जाका अर महा अनुराग की भरी उदार मन पृथ्वी विषैं सुखसे सूते जो लक्ष्मण तिनको एकांत विषे स्पर्शकर अर अपने सुकुमार करकमल सुन्दर तिनकर पतिके पाँव पलोटने लगी अर मलयागिरि चन्दनसे पतिका सर्व अंग लिप्त किया। अर याकी लार हजार कन्या आई थीं तिनने याके करसे चन्दन लेय विद्याधरनिके शरीर छांटे सो सब घायल आछे भए। अर इन्द्रजीत कुम्भकर्ण मेघनाद घायल भए हुते सो उनको हू चन्दनके लेपसे नीके किये सो परम आनन्दको प्राप्त भए, जैसे कर्म रोगरहित सिद्ध परमेष्ठी परम आनन्दको पावैं। और भी जे योधा हाथी घोड़े पियादे घायल भए हुते सो सब नीके भए, घावों की शल्य जाती रही, सब कटक अच्छा भया। अर लक्ष्मण जैसे सूता जागै तैसे वीणा के नाद सुन अति प्रसन्न भए अर मोह शय्या छोड़ते भए, स्वांस लिए आंख उघड़ी, उठकर क्रोध के भरे दसों दिशा निरखि ऐसे वचन कहते भए--कहाँ गया रावण, कहाँ गया वो रावण ? ये वचन सुन राम अति हर्षित भए, फूल गए हैं नेत्र कमल जिनके, महा आनंदके भरे बड़े भाई, रोमांच होय गया है शरीर में जिनके अपनी भुजानिकर भाई से मिलते भए अर कहते भए—हे भाई ! वह पापी तोहि शक्तिसे अचेत कर आपको कृतार्थ मान कर गया अर या राजकन्याके प्रसादतें तू नीका भया। अर जामवन्तको आदि देय सब विद्याधरनि ने शक्तिके लागवे आदि से निकसवे पर्यंत सर्व वृत्तांत कहा। अर लक्ष्मणने विशल्याको अनुरागकी दृष्टिकरि देखी। कैसी है विशल्या ? श्वेत श्याम आरक्त तीन वर्ण कमल

तिन समान हैं नेत्र जाके अर शरद की पूर्णिमा के चन्द्रमा समान है मुख जाका अर कोमल शरीर, क्षीण कटि, दिग्गजके कुंभस्थल समान हैं स्तन जाके, नव यौवन मानों साक्षात् मूर्तिवन्ती काम की क्रीड़ा ही है, मानों तीन लोक की शोभा एकत्र कर नामकर्म ने याहि रचा है, ताहि लक्ष्मण देख आश्चर्य को प्राप्त होय मन में विचारता भया–यह लक्ष्मी है अक इन्द्र की इन्द्राणी है अथवा चंद्र की कांति है ? यह विचार करै है अर विशल्याकी लारकी स्त्री कहती भई–हे स्वामी ! तिहारा यासूं विवाहका उत्सव हम देखा चाहैं हैं। तब लक्ष्मण मुलके अर विशल्या का पाणिग्रहण किया अर विशल्या की सर्व जगत् में कीर्ति विस्तरी। या भाँति जे उत्तम पुरुष हैं अर जिनने पूर्व जन्म में महा शुभ चेष्टा करी है तिनको मनोज्ञ वस्तु का संबन्ध होय है अर चांद सूर्य की सी उनकी कान्ति होय है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै विशल्या का समागम बर्णन करने वाला पैंसठवां पर्व पूर्ण भया ॥६५॥

छयासठवां पर्व

(रावण के द्वारा राम के पास दूत भेजना)

अथानन्तर लक्ष्मण का विशल्यासूं विवाह अर शक्ति का निकसना यह सब समाचार रावण ने हलकारनिके मुख सुने अर सुनकर मुलकि कर मंद बुद्धि कर कहता भया–शक्ति निकसी तो कहा ? अर विशल्या व्याही तो कहा ? तब मारीच आदि मंत्री मंत्रमें प्रवीण कहते भए–हे देव ! तिहारे कल्याणकी बात यथार्थ कहेंगे, तुम कोप करो अथवा प्रसन्न होवो, सिंहवाहनी, गरुडवाहनी विद्या राम लक्ष्मणको यत्न बिना सिद्ध भई सो तुम देखी। अर तिहारे दोऊ पुत्र अर भाई कुम्भकरणको तिन्होंने बांध लिए सो तुम देखे। अर तिहारी दिव्य शक्ति सो निरर्थक भई। तिहारे शत्रु महाप्रबल हैं, उनकर जो कदाचित् तुम जीते भी तो भ्राता पुत्रोंका निश्चय नाश है, तातैं ऐसा जानकर हम पर कृपा करो, हमारी विनती अब तक आपने कदापि भंग न करी तातैं सीताको तजो। अर जो तिहारे धर्मबुद्धि सदा रही है सो राखहु, सर्वलोककूं कुशल होय राघवसे संधि करो, यह बात करनेमें दोष नाहीं, महागुण है। तुम ही कर सर्वलोक विषैं मर्यादा चलै है, धर्मकी उत्पत्ति तुमसे है, जैसे समुद्रतैं रत्ननिकी उत्पत्ति होय। ऐसा कहकर बड़े मंत्री हाथ जोड़ नमस्कार कर विनती करते भए। सब ने यह मंत्र किया जो एक सामंत दूत विद्याविषैं प्रवीण संधि के अर्थि रामपै पठाइये। सो एक दूत बुद्धि से शुक्र समान, महातेजस्वी प्रतापवान मिष्टवादी, ताहि बुलाया, सो मंत्रीनिने महासुन्दर महा अमृत औषधि समान वचन कहे

परन्तु रावण ने नेत्र की समस्या कर मंत्रीनिका अर्थ दूषित कर डाला; जैसें कोई विषसे महा औषधिको विषरूप कर डारै। तैसे रावण सन्धि को बात विग्रहरूप जताई। सो दूत स्वामी को नमस्कार कर जायवेकूं उद्यमी भया। कैसा है दूत ? बुद्धि के गर्व कर लोक को गोपद समान निरखै है। आकाश के मार्ग जाता राम के कटक को भयानक देख दूत को भय न उपजा। याके वादित्र सुन वानरवंशियों की सेना क्षोभ को प्राप्त भई, रावण के आगमन की शंका करी। जब नजीक आया तब जानी कि यह रावण नाहीं, कोई और पुरुष है। तब वानरवंशियों की सेना को विश्वास उपजा। दूत द्वारे आय पहुँचा तब द्वारपाल ने भामंडल सों कही। भामंडलने राम से विनती कर कहा, केतेक लोकनि सहित निकट बुलाया अर ताकी सेना कटक में उतरी।

रामको नमस्कार कर दूत वचन कहता भया—हे रघुचंद्र ! मेरे वचननि कर मेरे स्वामी ने तुमको कुछ कहा है सो चित्त लगाय सुनहु, युद्ध कर कछु प्रयोजन नाहीं, आगे युद्धके अभिमानी बहुत नाश को प्राप्त भए, तातें प्रीति ही योग्य है, युद्धकर लोकनिका क्षय होय अर महा दोष उपजै है, अपवाद होय है, आगे संग्राम की रुचिकर राजा दुर्वर्तक शंख धवलांग असुर सम्बरादि अनेक राजा नाश को प्राप्त भए, तातें मेरे सहित तुमको प्रीति ही योग्य है। और जैसे सिंह महापर्वत की गुफा को पायकर सुखी होय है तैसे अपने मिलापकर सुख होय है। मैं रावण जगत् प्रसिद्ध, कहा तुमने न सुना ? जाने इन्द्रसे राजा बन्दीगृह विषें किए, जैसे कोई स्त्रीनिको अर सामान्य लोकोंको पकड़ै तैसे इन्द्र पकड़ा। अर जाकी आज्ञा सुर असुरनिकर न रोकी जाय, न पाताल विषें न जल विषै न आकाश विषें आज्ञा को कोई न रोक सकै, नाना प्रकारके अनेक युद्धोका जीतनहारा वीर लक्ष्मी जाको वरै ऐसा मैं सो तुमको सागरांत पृथ्वी विद्याधरों से मंडित दूँ हूँ अर लंकाके दोय भागकर बांटदूँ हूँ—भावार्थ समस्त राज्य अर आधी लंका दूँ हूँ, तुम मेरा भाई अर दोनों पुत्र मोपै पठावो अर सीता मोहि देवो जाकर सब कुशल होय। अर जो तुम यों न करोगे तो जो मेरे पुत्र भाई बन्धनमें हैं तिनको तो बलात्कार छुड़ाय लूंगा अर तुमको कुशल नाहीं। तब राम बोले—मोहि राज्यसे प्रयोजन नाहीं अर और स्त्रियों से प्रयोजन नाहीं, सीता हमारे पठावो, हम तिहारे दोऊ पुत्र अर भाईको पठावें। अर तिहारी लंका तिहारे ही रहो अर समस्त राज्य तुम ही करो, मैं सीता सहित दुष्ट जीवनि संयुक्त जो वन ताविषें सुखसूं विचरूंगा। हे दूत ! तू लंकाके धनी से जाय कह, याही बातमें तिहारा कल्याण है, और भांति नाहीं। ऐसे श्रीरामके सर्व पूज्य वचन सुख साताकर संयुक्त तिनको सुनकर दूत कहता भया—हे नृपति ! तुम राज काज विषें समझते नाहीं, मैं तुमकूं बहुरि कल्याणकी बात कहूँ हूँ निर्भय होय समुद्र उलंघ आए हो तो नीके न

करी अर यह जानकीकी आशा तुमकों भली नाहीं। यदि लंकेश्वर कोप किया तब जानकी की कहा बात ? तिहारा जीवना भी कठिन है। अर राजनीति विषें ऐसा कहा है—जे बुद्धिमान हैं तिनको निरंतर अपने शरीरकी रक्षा करनी, स्त्री अर धन इनपर दृष्टि न धरनी। अर जो गरुडेंद्र ने सिंहवाहन गरुड़वाहन तुमपै भेजे तो कहा अर तुम छल छिद्र कर मेरे पुत्र अर सहोदर बांधे तो कहा ? जों लग मैं जीऊँ हूँ तोंलग इन बातोंका गर्व तुमको वृथा है। जो तुम युद्ध करोगे तो न जानकी का अर न तिहारा जीवन, तातैं दोऊ मत खोवहु, सीताकी हठ छांडहु। अर रावण यह कही है—जे बड़े बड़े राजा विद्याधर, इन्द्र तुल्य पराक्रम जिनके, सो समस्त शास्त्रविषें प्रवीण अर युद्धनिके जीतनहारे, ते मैंने नाशको प्राप्त किए हैं। तिनके कैलाश पर्वतके शिखर-समान हाडवके समूह देखो। जब ऐसा दूतवे कहा तब भामण्डल क्रोधायमान भया, ज्वाला-समान महा विकराल मुख, ताकी ज्योतिसे प्रकाश किया है आकाश विषें जानें। भामंडलने कही—रे पापी दूत स्याल! चातुर्यता रहित दुर्बुद्धि वृथा शंका रहित कहा भाषै है ? सीताकी कहा वार्ता ? सीता तो राम लेंगे ही; यदि श्रीराम कोपे तब रावण राक्षस कुचेष्टित पशु कहा? ऐसा कह ताके मारवेकूं खड्ग सम्भाला। तब लक्ष्मणने हाथ पकड़े अर मने किया। कैसे हैं लक्ष्मण ? नीति ही नेत्र जिनके। भामंडल के क्रोधकर रक्त नेत्र होय गए, वक्र होय गए, जैसी सांझकी लाली होय तैसा लाल वदन होय गया। तब मंत्रीनिने योग्य उपदेश कहे समताकूं प्राप्त किया, जैसें विषका भरा सर्प मंत्रसे वश कीजिए है। हे नरेंद्र! क्रोध तजो, यह दीन तिहारे मारवे योग्य नाहीं, यह तो पराया किंकर है, जो वह कहावै सो कहै, याके मारवेकर कहा? स्त्री बालक, दूत, पशु, पक्षी, वृद्ध, रोगी, सोता, आयुधरहित, शरणागत, तपस्वी, गाय, ये सर्वथा अवध्य हैं। जैसें सिंह कारी घटा समान गाजते जे गज तिनका मर्दन करनहारा सो मींडकनिपर कोप न करै, तैसें तुमसे नृपति दूत पर कोप न करें। यह तो वाके शब्दानुसारी है जैसें छायापुरुष है (छाया पुरुषकी अनुगामिनी है)। अर सूवाको ज्यों पढ़ावें तैसें पढ़ै अर यंत्रको ज्यों बजावै त्यों बजै, तैसें यह दीन ज्यों बकावै त्यों बकै। ऐसे शब्द लक्ष्मण ने कहे—तब सीताका भाई भामंडल शांत चित्त भया। श्रीराम दूत को प्रगट कहते भए—हे मूढ़ दूत ! तू शीघ्र ही जा अर रावणको ऐसे कहियो—तू ऐसे मूढ मंत्रियोंका बहकाया खोटे उपाय कर आपा ठगावेगा। तू अपनी बुद्धि कर विचार, किसी कुबुद्धि को पूछै मत, सीता का प्रसंग तज, सर्व पृथ्वी का इन्द्र हो पुष्पक विमान में बैठा जैसें भ्रमै था तैसें विभवसहित भ्रम, यह मिथ्या हठ छोड़ दे, क्षुद्रनिकी बात मत सुनहु, करने योग्य कार्य विषें चित्त धर जो सुखकी प्राप्ति होय। ये वचन कह श्रीराम तो चुप होय रहे अर और

पुरुषनिने दूतको बहुरि बात न करने दई, निकाल दिया। दूतको रामके अनुचरनिने तीक्षण बाणरूप वचननिकर बींधा अर अति निरादर किया तब रावणके निकट गया, मनविषैं पीड़ा बका, सो जायकर रावणसूं कहता भया—हे नाथ! मैं तिहारे आदेश प्रमाण राम सों कही जो या पृथ्वी नाना देशनिकर पूर्ण समुद्रांत महा रत्ननिकी भरी विद्याधरों के समस्त पट्टनसहित मैं तुमको दूं हूं अर बड़े २ हाथी रथ तुरंग दूं हूं अर यह पुष्पक बिमान लेवहु जो देवों से न निवारा जाय, या विषैं बैठ विचरो अर तीन हजार कन्याएं अपने परिवार की तुमको परिणाय दूं अर सूर्य समान सिंहासन अर चंद्रमा समान छत्र लेहु अर निःकंटक राज करो; एती बात मुझे प्रमाण हैं जो तिहारी आज्ञा कर सीता मोहि इच्छे, यह धन अर धरा लेवो अर मैं अल्प विभूति राखि बेत ही के सिंहासन पर रहूँगा। विचक्षण हो तो एक वचन मेरा मानहु, सीता मोहि देवहु। ए वचन मैं बार २ कहे सो रघुनन्दन सीता का हठ न छोड़ें, केवल वाके सीताका अनुराग है, और वस्तुकी इच्छा नाहीं। हे देव! जैसें मुनि महा शांत चित्त अठाईस मूलगुणो की क्रिया न तजे, वह क्रिया मुनिव्रत का मूल है, तैसें राम सीताकूं न तजें, सीता ही रामके सर्वस्व है। कैसी है सीता? त्रैलोक्य विषै ऐसी सुन्दरी नाही। अर राम ने तुमसूं यह कह्यो है कि हे दशानन! ऐसे सर्वलोक निंद्य वचन तुमसे पुरुषनिकूं कहना योग्य नाहीं, ऐसे वचन पापी कहे हैं। उनकी जीभके सौ टूक क्यों न होंय। मेरे या सीता बिना इन्द्र के भोगनिकर कार्य नाहीं। यह सर्व पृथ्वी तू भोग, मैं बनवास ही करूंगा। अर तू परदारा हर कर मरवे को उद्यमी भया है तो मैं अपनी स्त्री के अर्थ क्यों न मरूंगा? अर मुझे तीन हजार कन्या दे है सो मेरे अर्थ नाहीं, मैं वनके फल अर पत्रादिकका ही भोजन करूंगा अर सीता सहित वनमें विहार करूंगा। अर कपिध्वजों का स्वामी सुग्रीव ताने हँसकर मोहि कही—जो कहा तेरा स्वामी आग्रहरूप ग्रह के वश भया है? कोऊ वायु का विकार उपजा है जो ऐसी विपरीत वार्ता रंक हुवा बकै है? अर कहा कि लंका में कोऊ वैद्य नाहीं अक मंत्रवादी नाहीं, वायके तैलादिक कर यत्न क्यों न करै? नातर संग्राम विषैं लक्ष्मण सर्व रोग निवारेगा। भावार्थ—मारेगा।

तब यह सुन मैं क्रोधरूप अग्निकर प्रज्वलित भया अर सुग्रीवसूं कही—रे वानरध्वज! तू ऐसे बकै है, जैसें गजके लार स्वान बकै। तू रामके गर्वकर मूवा चाहे है जो चक्रवर्तीकूं निन्दाके वचन कहै है? सो मेरे अर सुग्रीवके बहुत बात भई। अर विराधित से कहा—अधिक कहा कहो, तिहारी ऐसी शक्ति है तो मेरे अकेले के ही साथ युद्ध करले। अर राम सों कहा—हे राम! तुम महारण विषैं रावणका पराक्रम न देखा, कोऊ तिहारे पुण्यके योग कर वह वीर विकराल क्षमामें आया है। वह कैलाशका उठावनहारा, तीन जगतमें

प्रसिद्ध प्रतापी, तुमसे हित किया चाहै है अर राज्य देय है ता समान और कहा ? तुम अपनी भुजानिकर दशमुख रूप समुद्रकूं कैसें तिरोगे। कैसा है दशमुखरूप समुद्र ? प्रचण्ड सेना सोई भई तरंगनिकी माला तिनकर पूर्ण है अर शस्त्ररूप जलचरनिके समूह कर भरा है। हे राम ! तुम कैसे रावणरूप भयंकर बन विषें प्रवेश करोगे ? कैसा है रावण रूप बन ? दुर्गम कहिए-जा विषें प्रवेश करना कठिन है अर व्याल कहिए दुष्ट गज, तेई भए नाग, तिनकर पूर्ण है अर सेनारूप वृक्षनिके समूह कर महा विषम है। हे राम ! जैसे कमल पत्रकी पवनकर सुमेरु न डिगै अर सूर्य की किरण कर समुद्र न सूकै अर बलद के सींगोंसे धरती न उठाई जाय, तैसें तुम सारिखे नरनिकर नरपति दशानन जीता न जाय। ऐसे प्रचंड वचन मैं कहे तब भामंडल ने महाक्रोधरूप होय मोहि मारवेकूं खड्ग काढ्या, तब लक्ष्मण ने मनें किया जो दूतकूं मारना न्याय में नहीं कहा। स्याल पर सिंह कोप न करै, जो सिंह गजेन्द्रके कुम्भस्थल अपने नखविसें विदारै। तातैं हे भामंडल! प्रसन्न होवहु, क्रोध तजहु। जे शूरवीर महा तेजस्वी नृपति हैं, ते दीननिपर प्रहार न करैं। जो भयकर कंपायमान होय ताहि न हनै। श्रमण कहिए मुनि अर ब्राह्मण कहिए व्रतधारी गृहस्थी अर शून्य कहिए सूना अर स्त्री बालक वृद्ध पशु पक्षी दूत ए अवध्य हैं, इनको शूरवीर सर्वथा न हनै, इत्यादि वचननिके समूहकर लक्ष्मण महापंडित ताने समझाय भामंडलकूं प्रसन्न किया। अर कपिध्वजनिके कुमार महाक्रूर तिसने वज्र-समान वचननिकर मोहि बींधा, तब मैं उनके असार वचन सुन आकाश में गमन कर आयु कर्मके योगसे आपके निकट आया हूं। हे देव ! जो लक्ष्मण न होय तो आज मेरा मरण ही होता। जो शत्रुनिके अर मेरे विवाद भया सो मैं सब आपसूं कहा, मैं कछु शंका न राखो। अब आपके मनमें जो होय सो करो, हम सारिखे किंकर तो वचन कहैं हैं, जो कहो सो करै। या भांति दूत दशमुखसे कहता भया। यह कथा गौतम गणधर श्रेणिक से कहैं हैं—हे श्रेणिक ! जो अनेक शास्त्रनिके समूह जानें अर अनेक नय विषें प्रवीण होंय अर जाके मंत्री भी निपुण होंय अर सूर्य सारिखा तेजस्वी होय तथापि मोहरूप मेघपटलकर आच्छादित भया प्रकाश-रहित होय है, यह मोह महा अज्ञान का मूल विवेकियोंको तजना योग्य है।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं रावणके दूत का आगमन बहुरि पाछा रावणपर गमन वर्णनकरने वाला छयासठवां पर्व पूर्ण भया ॥६६॥

सरसठवां पर्व

(बहुरूपिणी विद्या साधन के लिए रावण द्वारा शान्तिनाथ के मन्दिरमें पूजा का आयोजन)

अथानंतर लंकेश्वर अपने दूतके वचन सुन, क्षणएक मंत्रके ज्ञाता मन्त्रियोंसे मंत्रकर,

कपोल पर हाथ धर अधोमुख होय कछुएक चिन्तारूप तिष्ठा। अपने मनमें विचारै है-जो शत्रुकूं युद्ध विषैं जीतूं हूं तो भ्राता पुत्रनिकी अकुशल दीखै है अर जो कदाचित् वैरिनिके कटक में मैं रतिहावकर कुमारनिकूं ले आऊं तो या शूरतामें न्यूनता है। रतिहाव क्षत्रियोंके योग्य नाहीं, कहा करूं, कैसें मोहि सुख होय? यह विचार करते रावणकूं यह बुद्धि उपजी जो मैं बहुरूपिणी विद्या साधूं। कैसी है बहुरूपिणी? जो कदाचित् देव युद्ध करै तो भी न जीती जाय। ऐसा विचारकर सर्व सेवकनिकूं आज्ञा करी-श्रीशांतिनाथके मंदिर में समीचीन तोरणादिकनिकर अति शोभा करहु अर सर्व चैत्यालयनिमें विशेष पूजा करहु। सर्व भार पूजा प्रभावनाका मंदोदरीके सिरपर धर्या। गौतम गणधर कहै हैं—हे श्रेणिक! वह श्रीमुनिसुव्रतनाथ बीसमां तीर्थंकर का समय, ता समय या भरतक्षेत्र विषैं सर्व ठौर जिनमंदिर हुते, यह पृथ्वी जिनमंदिरनिकर मंडित हुती, चतुर्विध संघ की विशेष प्रवृत्ति, राजा श्रेष्ठि ग्रामपति अर प्रजाके लोग सकल जैनी हुते, सो महा रमणीक जिन मंदिर रचते, जिनमंदिर जिनशासनके भक्त जो देव तिनसे शोभायमान, वे देव धर्म की रक्षा में प्रवीण, शुभ कार्यके करणहारे, ता समय पृथ्वी भव्य जीवनिकरि भरी ऐसी सोहती भई मानों स्वर्गविमान हो हैं। ठौर ठौर पूजा, ठौर २ प्रभावना, ठौर २ दान। हे मगधाधिपति! पर्वत २ विषैं, गांव गांव विषै, नगर नगर विषैं, वन वन विषैं, मंदिर मंदिर विषैं जिन मंदिर हुते, महा शोभाकर संयुक्त, शरदके पूनोंके चन्द्रमा समान उज्ज्वल, गीतोंकी ध्वनिकर मनोहर, नाना प्रकारके वादित्रनिके शब्द कर मानों समुद्र गाजै है। अर तीनों संध्या वंदनाकूं लोग आवैं, सो साधुवोंके संगसे पूर्ण नाना प्रकारके आश्चर्यकर संयुक्त, नाना प्रकारके चित्रामको धरे, अगर चंदनका धूप अर पुष्पनिकी सुगन्धता कर महा सुगन्धमई, महा विभूतिकरि युक्त, नाना प्रकारकर शोभित, महाविस्तीर्ण, महाउतंग, महाध्वजानिकर विराजित, तिनमें रत्नमई तथा स्वर्णमई पंचवर्ण की प्रतिमा विराजैं, विद्याधरनिके स्थानविषैं अति सुन्दर जिनमंदिरनिके शिखर तिनकर अति शोभा होय रही है। ता समय नाना प्रकारके रत्नमई उपवनादिमें शोभित जे जिनभवन तिनकर यह जगत् व्याप्त अर इन्द्रके नगर समान लंका का अन्तर बाहिर जिनेंद्रके मन्दिरनिकरि मनोज्ञ था सो रावणने विशेष शोभा कराई। अर आप रावण अठारह हजार राणी वेई भई कमलनिके वन तिनको प्रफुल्लित करता, वर्षाके मेघ समान है स्वरूप जाका, महा नागसमान है भुजा जाकी, पूर्णमासीके चन्द्रमा समान सुन्दर वदन, केतकीके फूल समान लाल होंठ विस्तीर्ण नेत्र, स्त्रीनिका मन हरणहारा लक्ष्मण समान श्याम सुन्दर दिव्यरूपका धरणहारा सो अपने मंदिरनि विषैं तथा सर्वक्षेत्र विषैं जिनमंदिरनि की शोभा करावता भया। कैसा है रावणका घर? लग रहे हैं लोगनिके नेत्र जहां अर जिनमंदिरनिकी पंक्तिकर मंडित

नाना प्रकारके रत्नमई मंदिरके मध्य उत्तंग श्रीशांतिनाथका चैत्यालय, जहां भगवान् शांतिनाथ जिनकी प्रतिमा विराजै। जे भव्य जीव हैं ते सकल लोकचरित्र को असार अशाश्वता जानकर धर्म विषैं बुद्धि धरैं, जिनमंदिरनिकी महिमा करैं। कैसे हैं जिनमंदिर ? जगत्कर वंदनीक हैं अर इन्द्रके मुकुटके शिखरविषैं लगे जे रत्न तिनकी ज्योतिको अपने चरणनिके नखोंकी ज्योतिकर बढ़ावनहारे हैं, धन पावने का यही फल है जो धर्म करिए। सो गृहस्थ का धर्म दान पूजारूप अर यतिका धर्म शांतभावरूप। या जगत विषैं यह जिनधर्म मनवांछित फलका देनहारा है; जैसें सूर्यके प्रकाश कर नेत्रनिके धारक पदार्थनिका अवलोकन करैं हैं तैसें जिनधर्मके प्रकाशकर भव्यजीव निज भावका अवलोकन करैं हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं श्रीशांतिनाथ के चैत्यालय का वर्णन करने वाला सरसठवां पर्व पूर्ण भया ॥६७॥

अड़सठवां पर्व

(लंका मे अष्टान्हिका महा महोत्सव के समय सिद्ध चक्र व्रत की आराधना)

अथानंतर फाल्गुण सुदी अष्टमीसूं लेय पूर्णमासी पर्यंत सिद्धचक्रका व्रत है जाहि अष्टाह्निका कहे हैं सो इन आठ दिननिमें लंकाके लोग अर लशकरके लोग नियम ग्रहणको उद्यमी भए। सर्व सेनाके उत्तम लोक मनमें यह धारणा करते भए जो यह आठ दिन धर्म के हैं सो इन दिननिमें न युद्ध करैं न और आरम्भ करैं, यथाशक्ति कल्याणके अर्थ भगवान् की पूजा करेंगे अर उपवासादि नियम करेंगे। इन दिननि विषैं देव भी पूजा प्रभावना विषैं तत्पर होय हैं। क्षीरसागरके जे सुवर्णके कलश जलकर भरे तिनकर देव भगवान् का अभिषेक करै हैं। कैसा है जल ? सत्पुरुषनिके यशसमान उज्ज्वल। अर और भी जे मनुष्यादिक हैं तिनकूं भी अपनी शक्तिप्रमाण पूजा अभिषेक करना। इन्द्रादिक देव नंदीश्वर द्वीप जायकर जिनेश्वरका अर्चन करैं हैं तो कहा ये मनुष्य अपनी शक्ति प्रमाण यहां के चैत्यालयनिका पूजन न करैं ? करैं ही करैं। देव स्वर्ण-रत्ननिके कलशनिकरि अभिषेक करैं हैं अर मनुष्य अपनी संपदा प्रमाण करैं, महा निर्धन मनुष्य होय तो पलाशपत्रनिके पुट ही से अभिषेक करैं। देवरत्न स्वर्णके कमलनिसे पूजा करैं हैं, निर्धन मनुष्य चित्त ही रूप कमलनिसे पूजा करैं हैं। लंकाके लोक यह विचारकर भगवान्के चैत्यालयनिकूं उत्साहसहित ध्वजा पताकादिकर शोभित करते भए, वस्त्र स्वर्ण रत्नादिकर अतिशोभा करी, रत्ननिकी रज अर कनकरज तिनके मंडल मांडे अर देवालयनिके द्वार अति सिंगारे अर मणि सुवर्णके कलश कमलनिके ढके दधि दुग्ध घृतादिसे पूर्ण, मोतियोंकी माला है कंठमें जिनके, रत्ननि की कांतिकर शोभित, जिन बिंबोंके अभिषेकके अर्थ भक्तिवंत लोक

लाए, जहाँ भोगी पुरुषोंके घरमें सैंकड़ों हजारों मणि सुवर्णोंके कलश हैं। नंदनवनके पुष्प अर लंकाके वनविषै नाना प्रकारके पुष्प—कर्णिकार अतिमुक्त कदंब सहकार चम्पक पारिजात मंदार, जिनकी सुगंधताकर भ्रमरनिके समूह गुंजार करै हैं अर मणि सुवर्णादिक के कमल तिनकर पूजा करते भए। अर ढोल मृदंग ताल शंख इत्यादि अनेक वादित्रनिके नाद होते भए। लंकापुरके निवासी वैर तज आनन्दरूप होय आठ दिनमें भगवानकी अति महिमाकर पूजा करते भए; जैसे नंदीश्वर द्वीपविषै देव पूजाको उद्यमी होंय तैसें लंकाके लोक लंका विषैं पूजाके उद्यमी भए। अर रावण विस्तीर्ण प्रतापका धारक श्रीशांतिनाथ के मंदिरविषैं जाय पवित्र होय भक्तिकर महा मनोहर पूजा करता भया जैसें पहिले प्रति-वासुदेव करैं। गौतम गणधर कहैं हैं—हे श्रेणिक! जे महा विभवकर युक्त भगवानके भक्त महाविभूतिवंत अति महिमाकर प्रभुका पूजन करै हैं तिनके पुण्य के समूह का व्याख्यान कौन कर सकै? वे उत्तम पुरुष देवगतिके सुख भोगैं, बहुरि चक्रवर्तियोंके भोग पावैं, बहुरि राज्य तज जैनमतके व्रत धार महातप कर परम मुक्ति पावैं। कैसा है तप? सूर्यहूतैं अधिक है तेज जाका।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं
श्री शांतिनाथ के चैत्यालय विषैं अष्टान्हिका उत्सव वर्णन
करने वाला अड़सठवां पर्व पूर्ण भया॥६८॥

उनहत्तरवां पर्व

(रावण का अष्टान्हिका पर्व के समय लोगों को व्रत-नियम धारण करने का आदेश)

अथानंतर महाशांतिका कारण श्रीशांतिनाथ का मंदिर, कैलाशके शिखर अर शरदके मेघ समान उज्ज्वल, महा दैदीप्यमान, मंदिरों की पंक्तिकर मंडित; जैसें जंबूद्वीप के मध्य महा उतंग सुमेरु पर्वत सोहै तैसें रावणके मंदिरके मध्य जिनमंदिर सोहता भया। तहां रावण जाय, विद्याके साधनमें आसक्त है चित्त जाका अर स्थिर है निश्चय जाका, परम अद्भुत पूजा करता भया। भगवान् का अभिषेक कर अनेक वादित्र बजावता, अति मनोहर द्रव्यनिकर महासुगन्ध धूपकर, नानाप्रकारकी सामग्री कर, शांत चित्त भया शांतिनाथकी पूजा करता भया मानों दूजा इन्द्र ही है। शुक्ल वस्त्र पहिरे, महासुन्दर जे भुजबंध तिनकर शोभित हैं भुजा जाकी, सिरके केश भली भांति बांध तिनपर मुकट धर, तापर चूडामणि लहलहाट करती महाज्योतिकूं धरे रावण दोनों हाथ जोड़ गोडों से धरतीकूं स्पर्शता मन वचन कायकर शांतिनाथकूं प्रणाम करता भया। श्रीशांतिनाथके सन्मुख निर्मल भूमिमें खड़ा अत्यन्त शोभता भया। कैसी है भूमि? पद्मराग मणिकी है फर्श जा विषैं। अर रावण स्फटिककी माला हाथविषैं अर उर विषैं धरे कैसा सोहता भया

मानों बक पंक्तिकर संयुक्त कारी घटाका समूह ही है, वह राक्षसनिका अधिपति महा धीर विद्याका साधन आरम्भता भया। जब शांतिनाथके चैत्यालय गया तो पहिले मंदोदरी को यह आज्ञा करी जो तुम मंत्रिनिकूं अर कोटपालकूं बुलायकर यह घोषणा नगरमें फेरियो जो सर्व लोक दया विषैं तत्पर नियम धर्मके धारक होवैं, समस्त व्यापार तज जिनेंद्र की पूजा करहु अर अर्थी लोगनिकूं मनवांछित धन देवहु, अहंकार तजहु। जौं लग मेरा नियम न पूरा होय तौंलग समस्त लोग श्रद्धाविषैं तत्पर संयमरूप रहो, जो कदाचित् कोई बाधा करै तो निश्चयसेती सहियो, महाबलवान होय बल का गर्व न करियो। इन दिवसनिविषैं जो कोऊ क्रोधकर विकार करेगा सो अवश्य सजा पावेगा। जो मेरे पिता समान पूज्य होय अर इन दिननि विषैं कषाय करै, कलह करै, ताहि मैं मारूं। जो पुरुष समाधिमरण कर युक्त न होय सो संसार समुद्रको न तिरैं; जैसें अंध पुरुष पदार्थनिकूं न परखै तैसें अविवेकी धर्मकूं न निरखै। तातैं सब विवेकरूप रहियो, कोऊ पाप क्रिया न करने पावै। यह आज्ञा मदोदरीको कर रावण जिनमंदिर गए। अर मंदोदरी मंत्रियोंको अर यमदंड नामा कोटपालकूं द्वारे बुलाय पतिकी आज्ञा करती भई। तब सबने कही जो आज्ञा होयगी सो ही करेंगे। यह कह आज्ञा सिरपर धर घर गए अर संयमसहित विषय धर्मके उद्यमी होय नृपकी आज्ञा प्रमाण करते भए। समस्त प्रजाके लोग जिन पूजाविषैं अनुरागी होते भए अर समस्त कार्य तज, सूर्यकी कांतितैं हू अधिक है कांति जिनकी, ऐसे जे जिनमंदिर तिन विषैं तिष्ठे, निर्मल भावकर युक्त संयम नियमका साधन करते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं
लंका के लोगनिका अनेकानेक नियम धारण वर्णन करने वाला
उनहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥६९॥

सत्तरवां पर्व

(रावण का विद्या साधना और वानरवंशी कुमारों के द्वारा लंका में उपद्रव करना)

अथानन्तर श्रीरामके कटक में हलकारोंके मुख यह समाचार आए कि रावण बहुरूपिणी विद्याके साधनको उद्यमी भया श्रीशांतिनाथके मंदिरमें विद्या साधै है, चौबीस दिनमें यह बहुरूपिणी विद्या सिद्ध होयगी। यह विद्या ऐसी प्रबल है जो देवनिका मद हरै। सो समस्त कपिध्वजनिने यह विचार किया कि जो वह नियममें बैठा विद्या साधै है सो ताकों क्रोध उपजाए यह विद्या सिद्ध न होय, तातैं रावणको कोप उपजावने का यत्न करना, जो वाने विद्या सिद्ध कर पाई तो इन्द्रादिक देवनिकरहू न जीता जाय, हम सारिखे रंकनिकी कहा बात ? तब बिभीषण कही—जो कोप उपजावनेका उपाय शीघ्र ही करो। तब सबने मंत्र कर रामसूं कहा कि लंका लेवेका यह समय है। रावणके कार्यमें विघ्न करिये

अर अपनेकूं जो करना होय सो करिए। तब कपिध्वजनिके यह वचन सुन श्रीरामचन्द्र महाधीर, महापुरुषनिकी है चेष्टा जिनकी, सो कहते भए—हो विद्याधर हो! तुम महामूढ़ता के वचन कहो हो, क्षत्रिनिके कुलका यह धर्म नाहीं जो ऐसे कार्य करैं। अपने कुल की यह रीति है जो भयकर भाजे ताका वध न करना, तो जे नियमधारी जिनमंदिरमें बैठे हैं तिनके उपद्रव कैसे करिए। यह नीचनिके कर्म हैं सो कुलवंतनिकों योग्य नाहीं। यह अन्याय प्रवृत्ति क्षत्रियनिकी नाहीं, कैसे हैं क्षत्री? महामान्यभाव अर शस्त्रकर्म विषें प्रवीण। यह राम के वचन सुन सबने विचारी जो हमारा प्रभु श्रीराम महा धर्मधारी है, उत्तम भावका धारक है सो इनकी कदाचित् हू अधर्मविषें प्रवृत्ति न होयगी। तब लक्ष्मणकी जान में इन विद्याधरनिने अपने कुमार उपद्रव को विदा किए अर सुग्रीवआदिक बड़े बड़े पुरुष आठ दिनका नियम धर तिष्ठे। अर पूर्ण चन्द्रमा-समान वदन जिनके, कमल समान नेत्र, नाना लक्षणके धरणहारे सिंह व्याघ्र वराह गज अष्टापद इनकर युक्त जे रथ तिनविषें बैठे तथा विमाननिमें बैठे, परम आयुधनिको धरे कपियोंके कुमार, रावणको कोप उपजायवेका है अभिप्राय जिनके मानों यह असुरकुमार देव ही हैं, प्रीतंकर दृढ़रथ चन्द्राभ रतिवर्धन वातायन गुरुभार सूर्यज्योति महारथ सामंत बल नंदन सर्वदृष्ट सिंह सर्वप्रिय नल नील सागर घोषपुत्र सहित पूर्ण चन्द्रमा स्कंध चन्द्र मारीच जांबव संकट समाधि बहुल सिंहकट चन्द्रासव इन्द्रामणि बल तुरंग सब इत्यादि अनेक कुमार तुरगनिके रथ चढ़े अर अन्य कैयक सिंह वराह गज व्याघ्र इत्यादि मनहूतें चंचल जे वाहन तिन पर चढ़ें, पयादनिके पटल तिनके मध्य महातेजको धरे नाना प्रकारके चिन्ह तिनकरि युक्त हैं छत्र जिनके अर नाना प्रकारकी ध्वजा फरहरै हैं जिनके, महा गंभीर शब्द करते दसों दिशाको आच्छादित करते लंकापुरीमें प्रवेश करते भए। मनविषें विचार करते भए—बड़ा आश्चर्य है जो लंकाके लोक निश्चित तिष्ठे हैं, जानिये है कछू संग्रामका भय नाहीं। अहो लंकेश्वर का बड़ा धैर्य महागंभीरता देखहु जो कुम्भकरण से भाई अर इन्द्रजीत मेघनाद से पुत्र पकड़े गए हैं तो हू चिंता नाहीं अर अक्षादिक अनेक योधा युद्धविषें हते गए, हस्त प्रहस्त सेनापति मारे गए तथापि लंकापतिको शंका नाहीं, ऐसा चिंतवन करते परस्पर वार्तालाप करते नगर में बैठे। तथा विभीषण का पुत्र सुभूषण कपि कुमारनिकूं कहता भया—तुम निर्भय लंकामें प्रवेश करहु, बाल वृद्ध स्त्री इनसूं तो कछु न कहना अर और सबकूं व्याकुल करेंगे। तब याका वचन मान विद्याधर कुमार महा उद्धत कलहप्रिय आशीविष समान प्रचण्ड व्रत रहित चपल लंका विषें उपद्रव करते भए। सो तिनके महा भयानक शब्द सुन लोक अति व्याकुल भए अर रावणके महलहूमें व्याकुलता भई; जैसें तीव्र पवनकर समुद्र क्षोभकूं प्राप्त होय तैसें लंका कपि कुमारनिसूं उद्वेगको प्राप्त भई। रावणके महलविषें

राजलोकनिकूं चिंता उपजी। कैसा है रावणका मंदिर ? रत्ननिकी कांतिकर दैदीप्यमान है अर जहाँ मृदंगादिकके मंगल शब्द होवें हैं, जहाँ निरन्तर स्त्रीजन नृत्य करें हैं। अर जिनपूजा विषें उद्यमी राजकन्या धर्ममार्गविषें आरूढ सो शत्रुसेनाके क्रूर शब्द सुन आकुलता उपजी, स्त्रीनिके आभूषणनिके शब्द होते भए मानों बीणा बाजै हैं। सब मनमें विचारती भई–न जानिए कहा होय। या भाँति समस्त नगरी के लोग व्याकुलताकूं प्राप्त होय विह्वल भए। तब मन्दोदरीका पिता राजा मय विद्याधरनिविषें दैत्य कहावै सो सब सेनासहित बक्तर पहर आयुध धार महा पराक्रमी युद्धके अर्थ उद्यमी होय राजद्वार आया जैसे इन्द्रके भवन हिरण्यकेशी देव आवै। तब मंदोदरी पितासे कहती भई–हे तात ! जा समय लंकेश्वर मंदिर पधारे ता समय आज्ञा करी जो सब लोक सम्बररूप रहियो, कोई कषाय मत करियो, तातैं तुम कषाय मत करहु। ये दिन धर्म ध्यान के हैं सो धर्म सेवो, और भांति करोगे तो स्वामी की आज्ञा भंग होगी अर तुम भला फल न पाओगे। ये वचन पुत्रीके सुन राजा मय उद्धतता तज महा शांत होय शस्त्र डारते भए जैसे अस्त समय सूर्य किरणोंको तजै, मणियों के कुण्डलनि कर मंडित अर हार कर शोभै है वक्षस्थल जाका, अपने जिनमंदिरमें प्रवेश करता भया। अर इन बानरवंशी विद्याधरनिके कुमारनिने निज मर्यादा तज नगर का कोट भंग किया, वज्रके कपाट तोड़े, दरवाजे तोड़े।

अथानन्तर इनको देख नगरके वासियों को अति भय उपजा, घर घर में ये बात होय हैं कि आजकर कहाँ जाइये, ये आए, बाहिर खड़े मत रहो, भीतर घुसो, हाय मात! यह कहा भया ? हे तात देखो ! हे भ्रात हमारी रक्षा करो ! हे आर्यपुत्र ! महा भय उपजा है ठिकाने रहो, या भाँति नगरी के लोग व्याकुलता के वचन कहते भए। लोग भाग रावण के महल विषै आए, अपने वस्त्र हाथनिमें लिए अति विह्वल बालकनिको गोदमें लिए स्त्रीजन कांपती भागी जाय हैं, कैयक गिर पड़ीं सो गोड़े फूट गए, कैयक चली जाय हैं, हार टूट गए सो बड़े बड़े मोती बिखरें हैं; जैसे मेघमाला शीघ्र जाय तैसे जाय हैं। त्रासको पाई जो हिरणी, ता समान हैं नेत्र जिनके अर ढीले होय गए हैं केशनि के बन्धन जिनके अर कोई भयकर प्रीतम के उर से लिपट गई। या भाँति लोकनि को उद्वेगरूप महा भयभीत देख जिनशासनके देव श्रीशांतिनाथके मंदिरके सेवक अपनी पक्षके पालने को उद्यमी करुणावंत जिनशासन के प्रभाव करनेकूं उद्यमी भए। महाभैरव आकार धरे शांतिनाथ के मन्दिर से निकसे, नाना भेष धरे विकराल हैं दाढ जिनकी, भयंकर है मुख जिनका, मध्याह्न के सूर्य समान तेज हैं नेत्र जिनके, होंठ डसते दीर्घ है काया जिनकी, नाना वर्ण भयंकर शब्द महा विषम भेष को धरे, विकराल स्वरूप तिनको देखकर

वानरवंशियों के पुत्र महा भयकर अत्यन्त विह्वल भए। वे देव क्षणविषै सिंह, क्षण विषैं मेघ, क्षण विषैं हाथी, क्षण विषैं सर्प, क्षण विषैं वायु, क्षण विषै वृक्ष, क्षण विषैं पर्वत, सो इनकर कपिकुमारनिको पीड़ित देख कटकके देव मदद करते भए। देवनि में परस्पर युद्ध भया, लंका के देव कटक के देवनि से अर कपिकुमार लंका के सन्मुख भए। तब यक्षनि के स्वामी पूर्णभद्र महाभद्र महा क्रोधकूं प्राप्त भए, दोनों यक्षेश्वर परस्पर वार्ता करते भए देखो ए निर्दई कपिनिके पुत्र महाविकारकूं प्राप्त भए हैं। रावण तो निराहार होय, देहविषैं निस्पृह, सर्व जगत् का कार्य तज पोसे बैठा है सो ऐसे शांत चित्तकूं ये छिद्र पाय पापी पीड़ा चाहे हैं सो यह योधाओंकी चेष्टा नाहीं। ये वचन पूर्णभद्र के सुन मणिभद्र बोला—अहो पूर्णभद्र ! रावण का इन्द्र भी पराभव करिवे समर्थ नाही, रावण सुन्दर लक्षणनिकर पूर्ण शांत स्वभाव है। तब पूर्णभद्र ने कही—जो लंकाको विघ्न उपजा है सो आपां दूर करेंगे, यह वचन कह कर दोनों धीर सम्यग्दृष्टि जिनधर्मी यक्षनि के ईश्वर युद्धकूं उद्यमी भए सो वानरवंशनि के कुमार और उनके पक्षी देव सब भागे। ये दोनों यक्षेश्वर महावायु चलाय पाषाण बरसावते भए अर प्रलयकाल के मेघ समान गाजते भए। तिनके जांघों की पवनकर कपिदल सूके पान की न्याईं उडे तत्काल भाग गए। तिनके लार ही ये दोनों यक्षेश्वर राम के निकट उलाहना देने को आए। सो पूर्णभद्र सुबुद्धि राम को स्तुति कर कहते भए—राजा दशरथ महा धर्मात्मा तिनके तुम पुत्र अर अयोग्य कार्य के त्यागी, सदा योग्य कार्यनिके उद्यमी, शास्त्रसमुद्र के पारगामी, शुभ गुणनिकर सकल विषै ऊँचे, तिहारी सेना लंका के लोकनिकूं उपद्रव करै, यह कहाँ की बात ? जो जाका द्रव्य हरै सो ताका प्राण हरै है. यह धन जीवनि के बाह्य प्राण हैं। अमोलक हीरे वैडूर्य मणि मूंगा मोती पद्मराग मणि इत्यादि अनेक रत्ननिकरि भरी लंका उद्वेग को प्राप्त करी। तब यह वचन पूर्णभद्र के सुन रामका सेवक गरुडकेतु कहिए लक्ष्मण नीलकमल समान, सो तेज से विविधरूप वचन कहता भया। ये श्रीरघुचन्द तिनके रानी सीता प्राणहूतें प्यारी, शीलरूप आभूषणकी धरणहारी, वह दुरात्मा रावण छल कर हर ले गया ताका पक्ष तुम कहा करो ? हे यक्षन्द्र ! हमने तिहारा कहा अपराध किया अर तानें कहा किया जो तुम भृकुटी बाँकी कर अर संध्या की ललाई समान अरुण नेत्रकर उलाहना देने को आए सो योग्य नाहीं। एती वार्ता लक्ष्मण ने कही अर राजा सुग्रीव प्रति भयरूप होय पूर्णभद्र को अर्घ देय कहता भया—हे यक्षेन्द्र ! क्रोध तजो अर हम लंकाविषैं कछु उपद्रव न करें परन्तु यह वार्ता है—रावण बहुरूपिणी विद्या साधै है सो जो कदाचित् ताकूं विद्या सिद्ध होय तो वाके सन्मुख कोई ठहर न सकै, जैसे जिनधर्मके पाठकके सन्मुख वादी न टिकैं तातें वह क्षमावंत होय विद्या

साधै है सो ताकूं क्रोध उपजावेंगे जो विद्या साध न सकै जैसें मिथ्यादृष्टि मोक्षकूं साध न सकै। तब पूर्णभद्र बोले -ऐसे ही करो परंतु लंकाके एक जीर्ण तृणकूं भी बाधा न कर सकोगे। अर तुम रावणके अंग को बाधा मत करो अर अन्य बातनिकर क्रोध उपजावो। परन्तु रावण अति दृढ है, ताहि क्रोध उपजना कठिन है। ऐसे कह वे दोनों यक्षेन्द्र, भव्य जीवनिविषें है वात्सल्य जिनका, प्रसन्न हैं नेत्र जिनके, मुनिनिके समूहों के भक्त वैयावृत विषें उद्यमी जिनधर्मी अपने स्थानक गए। रामको उलाहना देने आए थे सो लक्ष्मण के वचननि कर लज्जावान् भए, समभाव कर अपने स्थानक गए सो जाय तिष्ठे। गौतम स्वामी कहै हैं हे श्रेणिक! जौलग निर्दोषता होय तौलग परस्पर अति प्रीति होय। यह सदोषता भए प्रीतिभंग होय, जैसे सूर्य उत्पात सहित होय तो नीका न लगै।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें रावण का विद्या साधना अर कपिकुमारनिका लंका गमन बहुरि पूर्णभद्र मणिभद्र का कोप अर क्रोध की शांति वर्णन करने वाला सत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥७०॥

इकहत्तरवां पर्व

(रावण के बहुरूपिणी विद्या का सिद्ध होना)

अथानंतर पूर्णभद्र मणिभद्रकूं शांत भाव जान सुग्रीवका पुत्र अंगद तानें लंका विषें प्रवेश किया, सो अंगद किहकंध नामा हाथी चढया मोतीनिकी मालाकर शोभित, उज्जवल चमरनिकर युक्त ऐसा सोहता भया जैसा मेघमाला विषें पूर्णमासीका चन्द्रमा सोहै, अति उदार महासामंत तथा स्कध इन्द्र नील आदि बड़ी ऋद्धिकर मंडित तुरंगनि पर चढ़े कुमार गमन को उद्यमी भए। अर अनेक पयादे, चन्दन कर चर्चित हैं अंग जिनके, तांबूलनिकर लाल अधर, कांधे ऊपर खड्ग धरे, सुन्दर वस्त्र पहिरे, स्वर्णके आभूषणकर शोभित, सुन्दर चेष्टा धरे, आगे पीछे अगल बगल पयादे चले जांय हैं, बीण बांसुरी मृदंगादि वादित्र बाजें हैं, नृत्य होता जाय है, कपिवंशियोंके कुमार लंकाविषें ऐसे पैठे जैसे स्वर्गपुरीविषें असुरकुमार प्रवेश करै हैं। अंगदकूं लकाविषें प्रवेश करता देख स्त्रीजन परस्पर वार्ता करती भईं—देखहु! यह अंगदरूप चंद्रमा दशमुख की नगरी विषें निर्भय चला जाय है, याने कहा आरंभा? आगे अब कहा होयगा? या भांति लोक बात करै हैं। ए चले चले रावण के मंदिर विषें गए सो मणियों का चौक देख इन्होंने जानी कि ये सरोवर हैं सो त्रासको प्राप्त भए। बहुरि निश्चय देख मणियोंका चौक जाना तब आगे गए, सुमेरुकी गुफा समान महारत्ननिकर निर्मापित मंदिरका द्वार देख्या, मणियोंके तोरणनि कर दैदीप्यमान तहां अंजन पर्वत सारिखे इन्द्र नीलमणिनिके गज देखे, महास्कंध कुम्भस्थल जिनके, स्थूल दंत अत्यन्त मनोज्ञ अर तिनके मस्तकपर सिंहनिके चिह्न, जिनके सिरपर

पूंछ, हाथिनिके कुम्भस्थलपर सिंह विकराल बदन तीक्षण दाढ डरावने केश तिनको देख पयादे डरे—जानिए सांचे ही हाथी हैं तब भयकर भागे अति विह्वल भए। अंगदने नीके समझाए तब आगे चले। रावणके महलविषैं कपिवंशी ऐसे जावें जैसें सिंहकी गुफाविषैं मृग जांय, अनेक द्वार उलंघ आगे जावेकूं समर्थ भए, घरनिकी रचना गहन सो ऐसें भटकैं जैसें जन्मका अन्धा भ्रमै, स्फटिक मणिके महल तहाँ आकाश की आशंकाकर भ्रमकूं प्राप्त भए अर इन्द्र नीलमणिकी भांति सो अंधकारस्वरूप भासें, मस्तक विषें शिलाकी लागी सो आकुल होय भूमिमें पड़े, वेदना कर व्याकुल हैं नेत्र जिनके, काहु प्रकार मार्ग पाय आगे गए जहाँ स्फटिक मणि की भीति सो घननिके गोड़े फूटे ललाट फूटे, दुःखी भए, तब उलटे फिरे सो मार्ग न पावें। आगे एक रत्नमई स्त्री देखी, साक्षात् स्त्री जान तासें पूछते भए सो वह कहा कहै ? तब महा शंकाके भरे आगे गए, विह्वल होय स्फटिकमणि की भूमि में पड़े। आगे शांतिनाथके मदिरका शिखर नजर आया परन्तु जाय सकें नाहीं, स्फटिककी भींति आड़ी। ज्यों वह स्त्री दृष्टि पड़ी थी त्यों एक रत्नमई द्वारपाल दृष्टि पर्‌या, हेमरूप बेतकी छड़ी जाके हाथमें, ताहि कही—श्रीशान्तिनाथके मदिरका मार्ग बताओ, सो वह कहा बतावै ? तब वाहि हाथसूं कूटया सो कूटनहारेकी अगुरी चूर्ण होय गई। बहुरि आगे गए, जाना यह इन्द्रनीलमणि का द्वार है, शाँतिनाथके चैत्यालय में जाने की बुद्धि करी, कुटिल हैं भाव जिनके। आगे एक वचन बोलता मनुष्य देखा ताके केश पकड़े अर कहा कि तू हमारे आगे २ चल, शान्तिनाथका मंदिर दिखाय। जब वह अग्रगामी भया तब ए निराकुल भए, श्रीशाँतिनाथ के मंदिर जाय पहुँचे। पुष्पांजलि चढाय जय जय शब्द किए। स्फटिकके थंभनिके ऊपर बड़ा विस्तार देख्या, सो अचरजकूं प्राप्त भए मनमें विचारते भए जैसें चक्रवर्तीके मंदिरमें जिनमंदिर होय तैसें हैं। अंगद पहिले ही वाहनादिक तज भीतर गया, ललाट पर दोनों हाथ धर नमस्कार करि तीन प्रदक्षिणा देय स्तोत्र पाठ करता भया, सेना लार थी सो बाहिरले चौकविषें छांडी। कैसा है अगद ? फूल रहे हैं नेत्र जाके, रत्ननिके चित्रामकर मंडल लिखा सोलह स्वप्नेका भाव देखकर नमस्कार किया, मंडपकी भींति विषें वह धीर भगवान्‌को नमस्कार कर शाँतिनाथके मंदिर विषें गया, अति हर्षकर भरा भगवान् की वंदना करता भया, बहुरि देखें तो सन्मुख रावण पद्मासन धरे तिष्ठे है, इन्द्रनीलमणि की किरणनिके समूह समान है प्रभा जाकी, भगवानके सन्मुख बैठा है जैसे सूर्यके सन्मुख राहू बैठा होय। विद्याको ध्यावै जैसें भरत जिनदिक्षाको ध्यावै, सो रावणसूं अंगद कहता भया—हे रावण ! कहो अब तेरी कहा वार्ता ? तोसूं ऐसी करूं जैसी यम न करै, तैने कहा पाखंड रोप्या ? धिक्कार तो पापकर्मीकूं, वृथा शुभ-क्रियाका आरम्भ किया है, ऐसा कहकरि याका उत्तरासन उतार्‌या अर याकी राणीनिकूं

याके आगे कूटता हुवा कठोर वचन कहता भया। अर रावणक पास पुष्प पड़े हुते सो उठाय लिए अर स्वर्ण के कमलनिकर भगवान् की पूजा करी। बहुरि रावणसूं कुवचन कहता भया। अर रावणके हाथमें स्फटिककी माला छिनाय लई, सो मणियां बिखर गईं। बहुरि मणियें चुनी, माला पोय रावण के हाथ विषें दई, बहुरि छिनाय लई, बहुरि पोय गलेविषें डालो, बहुरि मस्तक पर मेली। बहुरि रावणका राजलोक सोई भया कमलनिका वन ता विषैं ग्रीष्मकर तप्तायमान जो वनका हाथी ताकी न्याईं प्रवेश किया अर निःशंक भया राजलोकमें उपद्रव करता भया, जैसे चचल घोड़ा कूदता फिरै तैसे चपलता करि भ्रमण किया। काहूके कठ विषें कपड़ेका रस्सा बनाय बांध्या अर काहूके कठ विषें उत्तरासन डार थंभविषें बांध बहुरि छोड़ दिया, काहूको पकड़ अपने मनुष्यनिसे कही कि याहि बेच आओ। ताने हंसकर कही—पाँच दीनारनिको बेच आया, या भाँति अनेक चेष्टा करी। काहूके काननविषें घुंघरूवाले अर केशनिविषें कटिमेखला पहराई, काहू के मस्तक का चूडामणि उतार चरणनिविषें पहिराया अर काहूको परस्पर केशनिकर बांधी। अर काहू के मस्तक विषें शब्द करते मोर बैठाए। या भाँति जैसे सांड गायनिके समूह विषें प्रवेश करै अर तिनकूं अति व्याकुल करैं तैसें रावण के समीप सब राजलोकनिकूं क्लेश उपजाया। अर अगद क्रोधकर रावणसूं कहता भया—हे अधम राक्षस! तैंने कपटकर सीता हरी, अब हम तेरे देखते तेरी समस्त स्त्रीनिकूं हरै हैं, तो में शक्ति होय तो यत्न कर, ऐसा कह कर याके आगे मंदोदरीकूं पकड़ ल्याया जैसे मृगराज मृगोकूं पकड़ ल्यावै। कंपायमान हैं नेत्र जाके, चोटी पकड़ खींचता भया जैसे भरत राजलक्ष्मी को खींचै। अर रावण सूं कहता भया—देख! यह पटरानी तेरे जीवहूतें प्यारी मंदोदरी गुणवंतो ताहि हम हर ले जांय हैं। यह सुग्रीवके चमरग्राहणी चेरी होयगी सो मन्दोदरी आंखनितैं आंसू डारती भई अर विलाप करने लगी। रावण के पायनविषें प्रवेश करै, कभी भुजानिविषें प्रवेश करै अर भरतारसों कहती भई—हे नाथ! मेरी रक्षा करहु। ऐसी दशा मेरी कहा न देखो हो, तुम क्या और ही होय गए। तुम रावण हो अक और ही हो। अहो जैसी निर्ग्रंथ मुनिकी वीतरागता होय तैसी तुम वीतरागता पकड़ी सो ऐसे दुःख में यह अवस्था कहा? धिक्कार तिहारे बलको जो या पापी का सिर खड्गसों न काटो। तुम महा बलवान् चाँद सूर्य समान पुरुषों का पराभव न सहो सो ऐसे रंक का कैसे सहो। हे लंकेश्वर! ध्यान विषें चित्त लगाया, न काहू की सुनो, न देखो, अर्धपर्यंकासन धर बैठे, अहंकार तज दिया, जैसे सुमेरु का शिखर अचल होय तैसे अचल होय तिष्ठे, सर्व इन्द्रियनिकी क्रिया तजी, विद्याके आराधन विषैं तत्पर निश्चल शरीर महाधीर ऐसे तिष्ठे हो मानों काष्ठके हो अथवा चित्रामके हो, जैसे राम सीता को चितवैं तैसे तुम

विद्याको चिंतवो हो, स्थिरता कर सुमेरुके तुल्य भए हो। जब या भांति मंदोदरी रावण से कहती भई, ताही समय बहुरूपिणी विद्या दसों दिशा विषैं उद्योत करती जय जयकार का शब्द उच्चारती रावण के समीप आय ठाढी भई अर कहती भई—हे देव ! आज्ञा मैं उद्यमी मैं तुमको सिद्ध भई, मोहि आदेश देवहु। एक चक्री अर्ध चक्री को टार तिहारी आज्ञा से विमुख होय ताहि वश करूं, या लोकविषैं तिहारी आज्ञाकारिणी हूँ, हम सारखिनिकी यही रीति है जो हम चक्रवर्तियोंसे समर्थ नाहीं, जो तू कहे तो सर्व दैत्यनिको जीतूं, देवनिकूं वश करूं, जो तोसे अप्रिय होय ताहि वशीभूत करूं अर विद्याधर तो मेरे लिए तृण समान हैं। यह विद्या के वचन सुन रावण योग पूर्ण कर ज्योति का धारक उदार चेष्टाका धरणहारा शांतिनाथके चैत्यालयकी प्रदक्षिणा करता भया। ताही समय अंगद मंदोदरीको छोड़ आकाश गमन कर राम के समीप आया। कैसा है अंगद ? सूर्य समान है तेज जाका।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं श्री शांतिनाथ के मन्दिर मे रावण को बहुरूपिणी विद्या के सिद्ध होने का वर्णन करने वाला इकहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥७१॥

बहत्तरवां पर्व

(रावण का युद्ध के लिए पुनः सकल्प)

अथानन्तर रावण की अट्ठारह हजार स्त्री रावणके पास एक साथ सब ही रुदन करती भई, सुन्दर है दर्शन जिनका। हे स्वामिन्? सर्व विद्याधरनि के अधीश ! तुम हमारे प्रभु सो तुमको होते संते मूर्ख अंगद ने आयकर हमारा अपमान किया। तुम परम तेज के धारक सूर्य समान सो ध्यानारूढ़ हुते अर विद्याधर आगिया (जुगनू) समान सो तिहारे मुंह आगिला छोहरा सुग्रीव का पुत्र पापी हमको उपद्रव करै। तिनके वचन सुनकर रावण सबको दिलासा करता भया अर कहता भया—हे प्रिये ? वह पापी ऐसी चेष्टा करै है सो मृत्यु के पाशकर बंधा है। तुम दुःख तजो, जैसे सदा आनन्दरूप रहो हो ताही भांति रहो, मैं सुग्रीव को निग्रीव कहिए मस्तकरहित भूमिपर प्रभात ही करूँगा। अर वे दोनों भाई राम लक्ष्मण भूमिगोचरी कीट समान हैं तिनपर कहा कोप, ये दुष्ट विद्याधर सब इनपै भेले भए हैं तिनका क्षय करूंगा। हे प्रिये ! मेरी भौंह टेढी करनेही में शत्रु विलाय जाँय अर अब तो बहुरूपिणी महाविद्या सिद्ध भई, मोसे शत्रु कहा जीवे। या भाँति सब स्त्रीनिकूं महाधैर्य बधाय मन में जानता भया—मैं शत्रु हते। भगवान् के मंदिर से बाहर निकसा, नाना प्रकार के वादित्र बाजते भए, गीत नृत्य होते भए, रावण का अभिषेक भया, कामदेव समान है रूप जाका, स्वर्ण रत्ननिके कलशनि कर स्त्री स्नान करावती भईं। कैसी हैं स्त्री ? कांतिरूप चांदनीसे मंडित है शरीर जिनका, चन्द्रमा समान वदन

अर सुफेद मणिनिके कलशनिकर स्नान करावें सो अद्‌भुत ज्योति भासती भई। अर कई एक स्त्री कमल समान कान्तिको धरे-मानों सांझ फूल रही है अर उगते सूर्य समान सुवर्णके कलशनिकर स्नान करावें, सो मानों साँझ ही जल बरसे है अर कई एक स्त्री हरितमणि के कलशनिके कलशनिकर स्नान करावती अति हर्ष की भरी शोभै हैं मानों साक्षात् लक्ष्मी ही हैं, कमलपत्र हैं कलशनि के मुखपर। अर कैयक केलेके गर्भ समान कोमल महा सुगंध शरीर जिनपर भ्रमर गुंजार करैं हैं, वे नाना प्रकारके सुगंध उबटनाकरि रावणको नानाप्रकारके रत्नजडित सिंहासन विषैं स्नान करावती भई। सो रावणने स्नानकर आभूषण पहिर महासावधान भावनिकर पूर्ण शान्तिनाथके मंदिरमें गया। वहाँ अरहन्त देवकी पूजाकर स्तुति करता भया, बारंबार नमस्कार करता भया। बहुरि भोजनशालामें आय चार प्रकारका उत्तम आहार किया, अशन पान खाद्य स्वाद्य। बहुरि भोजनकर विद्याकी परख निमित्त क्रीडा भूमि विषै गया, वहाँ विद्याकर अनेकरूप बनाय नानाप्रकार के अद्‌भुत कर्म विद्याधरनिसे न बनें सो बहुरूपिणी विद्यासे किए, अपने हाथकी घातकरि भूकंप किया, रामके कटक विषै कपियोंको ऐसा भय उपजा मानों मृत्यु ही आई। अर रावणकूं मंत्री कहते भए—हे नाथ ! तुम टार राघव का जीतनहारा और नाहीं, राम महायोधा है और क्रोधवान होवैं तब कहा कहना ? सो ताके सन्मुख तुम ही आवहु अर कोई रण विषैं रामके सन्मुख आवनेको समर्थ नाहीं।

अथानंतर रावण ने बहुरूपिणी विद्या से मायामई कटक बनाया अर आप उद्यान विषैं जहाँ सीता तिष्ठै तहाँ गया, मंत्रिनिकरि मंडित जैसें देवनिकर संयुक्त इन्द्र होय, सो सूर्य समान कान्तिकरि युक्त आवता भया तब ताकूं आवता देख विद्याधरी सीताकों कहती भई—हे शुभे ! महाज्योतिवंत रावण पुष्पक विमानसे उतरकर आया, जैसें ग्रीष्म ऋतुविषैं सूर्य की किरणकरि आतापकूं पाता गजेंद्र सरोवरीके ओर आवै तैसें कामरूप अग्निसे तापरूप भया आवै है। यह प्रमद नामा उद्यान पुष्पनि की शोभाकर शोभित जहाँ भ्रमर गुंजार करै हैं। तब सीता बहुरूपिणी विद्याकर संयुक्त रावणकूं देखकर भयभीत भई मनमें विचारै है, याके बल का पार नाहीं, सो राम लक्ष्मण हू याहि न जीतेंगे। मैं मंद-भागिनी रामकू अथवा लक्ष्मणकू अथवा अपने भाई भामंडलकूं मत हना सुनूं—यह विचार कर व्याकुल है चित्त जाका, कांपती चितारूप तिष्ठै है, तहाँ रावण आया सो कहता भया—हे देवी! मैं पापी ने तुझे कपटकर हरी सो यह बात क्षत्रीकुलविषै उत्पन्न भए हैं जे धीर अतिवीर तिनको सर्वथा उचित नाहीं परन्तु कर्मकी गति ऐसी है, मोह कर्म बलवान है अर मैं पूर्वं अनंतवीर्य स्वामीके समीप व्रत लिया हुवा जो पर नारी मोहि न इच्छै ताहि मैं न ग्रहूं; उर्वशी, रम्भा अथवा और मनोहर होय तौ भी मेरे प्रयोजन नाहीं। यह प्रतिज्ञा

पालते संते मैं तेरी कृपा ही की अभिलाषा करी परन्तु बलात्कार रमी नाहीं। हे जगत विषैं उत्तम सुन्दरी! अब मेरी भुजानिकर चलाए जे बाण तिनसे तेरे अवलम्बन राम लक्ष्मण भिदे ही जान अर तू मेरे संग पुष्पक विमान में बैठ आनंदसे विहार कर। सुमेरुके शिखर चैत्य वृक्ष अनेक वन उपवन नदी सरोवर अवलोकन करती विहार कर। तब सीता दोऊ हाथ काननि पर धर गदगद वाणी से दीन शब्द कहती भई—हे दशानन! तू बड़े कुल विषैं उपजा है तो यह करियो जो कदाचित् संग्राम विषैं तेरे अर मेरे वल्लभ के शस्त्र प्रहार होय तो पहले यह संदेशा कहे बगैर मेरे कंथकूं मत हतियो। यह कहियो—हे पद्म! भामंडलकी बहिनने तुमकूं यह कहा है जो तिहारे वियोगकरि महाशोक के भार करि महा दुःखी हूँ, मेरे प्राण तिहारे तक ही हैं, मेरी दशा यह भई है जैसें पवन की हती दीपककी शिखा। हे राजा दशरथ के पुत्र! जनकको पुत्री ने तुमकूं बारंबार स्तुतिकर यह कही है कि तिहारे दर्शन की अभिलाषाकर यह प्राण टिक रहे हैं, ऐसा कह कर मूर्च्छित होय भूमिमें पड़ी, जैसें माते हाथीतैं भग्न करी कल्पवृक्षकी बेल गिर पड़े। यह अवस्था महासती की देख रावणका मन कोमल भया, परम दुःखी भया, यह चिन्ता करता भया—अहो कर्मनिके योगकर इनका निःसन्देह स्नेह का क्षय नाहीं अर धिक्कार मोकूं! मैं अति अयोग्य कार्य किया जो ऐसे स्नेहवान् युगल का वियोग किया, पापाचारी महा नीच जन समान मैं निःकारण अपयशरूप मल से लिप्त भया, शुद्ध चंद्रमा समान गोत्र हमारा मैं मलिन किया। मेरे समान दुरात्मा मेरे वंश में न भया। ऐसा कार्य काहूने न किया सो मैंने किया। जे पुरुषों में इन्द्र हैं ते नारी को तुच्छ गिनै हैं, यह स्त्री साक्षात् विष तुल्य है, क्लेश की उत्पत्तिका स्थानक, सर्पके मस्तककी मणि समान अर महा मोहका कारण। प्रथम तो स्त्रीमात्र ही निषिद्ध है अर परस्त्री की कहा बात? सर्वथा त्याज्य ही है। परस्त्री नदी समान कुटिल महा भयंकर धर्म अर्थ का नाश करणहारी सदा संतोंको त्याज्य ही है। मैं महापाप की खान, अब तक यह सीता मुझे देवांगनाहूतैं अति प्रिय भासती भई सो अब विष के कुंभतुल्य भासै है, यह तो केवल रामसूं अनुरागिनी है। अब लग यह न इच्छती थी परन्तु मेरे अभिलाषा हुती, अब जीर्ण तृणवत् भासै है। यह तो केवल रामसे तन्मय है, मोसूं कदाचित् न मिलै। मेरा भाई महा पंडित विभीषण सब जानता हुता सो मोहि बहुत समझाया, मेरा मन विकारकूं प्राप्त भया सो न मानी, तासूं द्वेष किया। जब विभीषण के वचननिकरि मैत्रीभाव करता तो नीके था, महायुद्ध भया, अनेक हते गए, अब कैसी मित्रता? यह मित्रता सुभटनिकूं योग्य नाहीं। अर युद्ध करके बहुरि दया पालनी यह बनै नाहीं, अहो मैं सामान्य मनुष्य की नाईं संकट में पड़ा हूँ, जो कदाचित् जानकी रामपै पठाऊँ तो लोक मोहि असमर्थ जानैं अर युद्ध करिए तो महा

हिंसा होय। कोई ऐसे हैं जिनके दया नाहीं, केवल क्रूरतारूप हैं, ते भी कालक्षेप करैं हैं। अर कोईयक दयावान् हैं, संसार कार्यसे रहित हैं, ते सुखसे जीवै हैं। मैं मानी युद्धाभिलाषी अर कछू करुणाभाव नाहीं, सो हम सारिखे महा दुःखी हैं। अर राम के सिंहवाहन अर लक्ष्मण के गरुडवाहन विद्या सो इनकर महा उद्योत हैं सो इनकूं शस्त्ररहित करूं अर जीवते पकड़ूं, बहुरि बहुत धनदूं तो मेरी बड़ी कीर्ति होय अर मोहि पाप न होय, यह न्याय है। तातैं यही करूं, ऐसी मनमें धार महा विभवसंयुक्त रावण राजलोकविषैं गया जैसैं माता हाथी कमलनिके वनविषैं जाय। बहुरि विचारी-अंगद ने बहुत अनीति करी, या बाततैं अति क्रोध किया अर लाल नेत्र होय आए; रावण होंठ डसता वचन कहता भया—वह पापी सुग्रीव नाहीं दुग्रीव है ताहि निर्ग्रीव कहिये मस्तक रहित करूंगा, ताके पुत्र अंगद सहित चन्द्रहास खड्गकर दोय टूक करूंगा। अर तमोमंडल को लोग भामंडल कहै हैं सो वह महादुष्ट है ताहि दृढ़ बन्धन से बांधि लोह के मुदगरों से कूट मारूंगा। अर हनुमानकूं तीक्षण करोंत की धारसे काठ के युगल में बांध विहराऊंगा, वह महा अनीति है। एक राम न्यायमार्गी है, ताहि छोड़ूंगा। अर समस्त अन्यायमार्गी हैं तिनकूं शस्त्रनिकर चूर डारूंगा, ऐसा विचारकर रावण तिष्ठा। अर सैंकड़ों उत्पात होने लगे, सूर्यका मंडल आयुध समान तीक्षण दृष्टि पड़ा, पूर्णमासीका चंद्रमा अस्त होय गया, आसन पर भूकम्प भया, दसों दिशा कम्पायमान भई, उलकापात भए, शृगाली (गीदड़ी) विरस शब्द बोलती भई, तुरंग नाड हिलाय विरस विरूप हींसते भए, हाथी रूक्ष शब्द करते भए, सूण्डसे धरती कूटते भए, यक्षनिकी मूर्तिके अश्रुपात पड़े, सूर्यके सन्मुख काग कटुक शब्द करते भए, ढीले पांख किए महा व्याकुल भए, सरोवर जलकर भरे हुते ते शोषको प्राप्त भए अर गिरियोंके शिखर गिर पड़े अर रुधिर की वर्षा भई, थोड़े ही दिन में जानिए है—लंकेश्वरकी मृत्यु होय, ऐसे अपशकुन और प्रकार नाहीं। जब पुण्य क्षीण होय तब इन्द्र भी न बचै। पुरुष में पौरुष पुण्य के उदयकरि होय है। जो कछू प्राप्त होना होय सोई पाइए है, हीनाधिक नाहीं। प्राणियों के शूरवीरता सुकृत के बलकर है।

देखहु-रावण नीति शास्त्र विषैं प्रवीण, समस्त लौकिक नीति रीति जानै, व्याकरण का पाठी, महा गुणनिकर मंडित, सो कर्मनिकर प्रेरा संता अनीतिमार्गकूं प्राप्त भया मूढ़ बुद्धि भया, लोक विषैं मरण उपरान्त कोई दुःख नाहीं। सो याकूं अत्यन्त गर्वकर विचारै नाहीं, नक्षत्रनिके बलकरि रहित अर ग्रह सर्व ही क्रूर आए सो यह अविवेकी रणक्षेत्र का अभिलाषी होता भया। प्रताप के भग का है भय जाकूं अर महा शूरवीरता के रस से

युक्त, यद्यपि अनेक शास्त्रनिका अभ्यास किया है तथापि युक्त अयुक्तकूं न देखै । गौतम स्वामी राजा श्रेणिकतै कहै हैं- हे मगधाधिपति ! रावण महामानी अपने मन विषै विचारै है सो सुत-सुग्रीव भामण्डलादिक समस्तकूं जीत अर कुम्भकरण इन्द्रजीत मेघनादकूं छुड़ाय लंका में लाऊंगा, बहुरि बानरवंशिनि का वंश नाश करूंगा अर भामण्डल का पराभव करूंगा अर भूमिगोचरनिकूं भूमि विषैं न रहने दूंगा अर शुद्ध विद्याधरनिकूं धरा विषैं थापूंगा, तब तीन लोक के नाथ तीर्थंकर देव अर चक्रायुध बलभद्र नारायण हम सारिखे विद्याधर कुल ही विषैं उपजेंगे, ऐसा वृथा विचार करता भया । हे मगधेश्वर! जा मनुष्य ने जैसे संचित कर्म किए होंय तैसा ही फल भोगवै । ऐसे न होय तो शास्त्रों के पाठी कैसे भूलें । शास्त्र हैं सो सूर्य समान हैं ताके प्रकाश होते अन्धकार कैसे रहै परन्तु जे घू घू समान मनुष्य हैं तिनकू प्रकाश न होय ।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै रावण के युद्ध का निश्चय वर्णन करने वाला बहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥७२॥

तेहत्तरवां पर्व

(मन्दोदरी का युद्ध के लिए मना करना तथापि रावण का हठ न छोड़ना)

अथानतर दूजे दिन प्रभात ही रावण महादैदीप्यमान आस्थान मंडपविषैं तिष्ठथा । सूर्य के उदय होते संते सभा विषै कुवेर वरुण ईशान यम सोम समान जे बड़े २ राजा तिनकरि सेवनीक, जैसें देवनिकर मंडित इन्द्र विराजै तैसें राजानिकरि मंडित सिंहासन पर विराज्या । परम कांतिकूं धरे जैसें ग्रह तारा नक्षत्रनिकर युक्त चंद्रमा सोहै तैसें अत्यन्त सुगंध मनोज्ञ वस्त्र पुष्पमाला अर महामनोहर गजमोतिनिके हार तिनकरि जाका उरस्थल शोभै है, महा सौभाग्यरूप सौम्यदर्शन सभाकूं देखकर चिंता करता भया जो भाई कुम्भकरण इन्द्रजीत मेघनाद यहां नाहीं दीखै हैं सो उन बिना यह सभा सोहै नाहीं, और पुरुष कुमुदरूप बहुत हैं, पर वे पुरुष कमलरूप नाहीं । सो यद्यपि रावण महारूपवान सुन्दर वदन हुते अर फूल रहे हैं नेत्र कमल जाके, महामनोज्ञ तथापि पुत्र भाईकी चिंतासे कुमलाया वदन नजर आवता भया । अर महा क्रोधरूप कुटिल हैं भृकुटी जाकी मानो क्रोधका भरघा आशीविष सर्प ही है, महा भयंकर होंठ डसे, महाविकरालस्वरूप मंत्री देखकर डरे, आज ऐसा कौनसा कोप भया—यह व्याकुलता भई । तब हाथ जोड़ शीस भूमि में लगाय राजा मय उग्र शुक लोकाक्ष सारण इत्यादि धरतीकी ओर निरखते, चलायमान हैं कुण्डल जिनके, विनती करते भए—हे नाथ ! तिहारे निकटवर्ती योधा सब ही यह प्रार्थना करैं हैं कि प्रसन्न होहु । अर कैलाश के शिखर तुल्य ऊंचे महल, जिनके

पक्षियों की भीति मणियोंके झरोखा तिनमें तिष्ठती, भ्रमररूप हैं नेत्र जिनके ऐसी सब राणियों सहित मंदोदरी सो याहि देखती भई। कैसा देख्या ? लाल हैं नेत्र जाके, प्रताप का भरा ताहि देखकर मोहित भया है मन जाका, रावण उठकर आयुधशाला में गया। कैसी है आयुधशाला ? अनेक दिव्य शस्त्र अर सामान्य शस्त्र तिनसे भरी, अमोघ बाण अर चक्रादिक अमोघ रत्ननिसूं भरी जैसे वज्रशाला में इन्द्र जाय। जा समय रावण आयुधशाला में गया ता समय अपशकुन भए, प्रथम ही छींक भई सो शकुन शास्त्रविषैं पूर्वदिशाकूं छींक होय तो मृत्यु अर अग्निकोण विषैं शोक, दक्षिण में हानि, नैऋत्य में शुभ, पश्चिम विषैं मिष्ट आहार, वायुकोणमें सर्व संपदा, उत्तरविषैं कलह, ईशानविषैं धनागम, आकाश विषैं सर्व संहार, पातालविषैं सर्व संपदा, ये दसों दिशाविषै छींकके फल कहे। सो रावणकूं मृत्यु की छींक भई। बहुरि आगे मार्ग रोके महानाग निरख्या अर हा शब्द, ही शब्द, धिक् शब्द, कहां जाय है—यह वचन होते भए। अर पवन कर छत्र के वैडूर्यमणिका दण्ड भग्न भया अर उत्तरासन गिर पड्या, काग दाहिना बोला इत्यादि और भी अपशकुन भए, ते युद्धतैं निवारते भए. वचनकर कर्मकर निवारते भए। जे नाना प्रकार के शकुनशास्त्रविषै प्रवीण पुरुष हुते वे अत्यन्त आकुल भए। अर मंदोदरी शुक सारण इत्यादि बड़े २ मंत्रिनकूं बुलाय कहती भई—तुम स्वामीकूं कल्याणकी बात काहेकूं न कहो ? अब तक कहा अपनी अर उनकी चेष्टा न देखी। कुम्भकर्ण इन्द्रजीत मेघनादसे बंधन विषैं आए, वे लोकपाल समान महातेजके धारक अद्भुत कार्यके करणहारे। तब नमस्कार कर मंत्री मंदोदरीसे कहते भए—हे स्वामिनी ! रावण महामानी यमराजसा क्रूर आप ही आप प्रधान है, ऐसा या लोक विषैं कोई नाहीं जाके वचन रावण मानै, जो कुछ होनहार है ताप्रमाण बुद्धि उपजै है, बुद्धि कर्मानुसारिणी है, सो इन्द्रादिककर तथा देवनिके समूहकर और भांति न होय। सम्पूर्ण न्याय शास्त्र अर धर्मशास्त्र तिहारा पति सब जानै है परन्तु मोह करि उन्मत्त भया है। हम बहुत प्रकार कह्या सो काहू प्रकार मानै नाहीं, जो हठ पकड्या है सो छांडै नाहीं, जैसें वर्षाकाल के समागम विषै महाप्रवाह कर संयुक्त जो नदी ताका तिरना कठिन है तैसें कर्मनिका प्रेरा जो जीव ताका संबोधना कठिन है। यद्यपि स्वामी का स्वभाव दुर्निवार है तथापि तिहारा कह्या तो करै, तातैं तुम हित की बात कहो, यामें दोष नाहीं। यह मंत्रीनि ने कही तब पटरानी, साक्षात् लक्ष्मी समान निर्मल है चित्त जाका, सो कंपायमान पति के समीप जायवेकूं उद्यमी भई। महा निर्मल जल समान वस्त्र पहिरे, जैसें रति काम के समीप जाय तैसें चाली, सिरपर छत्र फिरै हैं, अनेक सहेली चमर ढारै हैं, जैसें अनेक देवीनिकर इन्द्राणी इन्द्रपैं जाय तैसें यह सुन्दर वदन की धरणहारी पतिपै गई, विश्वास नाखती पांय डिगते शिथिल होय गई

है कटिमेखला जाकी, भरतारके कार्य विषैं सावधान, अनुराग की भरी, ताहि स्नेह की दृष्टिकरि देखती भई, आपका चित्त शस्त्रनिविषैं अर बक्तर विषैं तिनकू आदर से स्पर्शे है सो मंदोदरी से कहते भए-हे मनोहरे ! हंसनी समान चालकी चलनहारी हे देवी ! ऐसा कहा प्रयोजन है जो तुम शीघ्रता से आवो हो। हे प्रिये ! मेरा मन काहेकू हरो हो, जैसें स्वप्नविषें निधान। तब वह पतिव्रता, पूर्ण चन्द्रमा समान है वदन जाका, फूले कमल समान नेत्र, स्वतः उत्तम चेष्टाकी धरणहारी, मनोहर जे कटाक्ष वेई भए बाण सो पतिकी ओर चलावनहारी, महा विचक्षण मदन का निवास है अंग जाका, महामधुर शब्द की बोलनहारी, स्वर्णके कुम्भसमान हैं स्तन जाके, तिनके भारकर नय गया है उदर जाका, दाडिम के बीज समान दांत, मूंगा समान लाल अधर, अत्यंत सुकुमार, अति सुन्दरी, भरतार की कृपा भूमि सो नाथकू प्रणाम कर कहती भई-हे देव ! मोहि भरतारकी भीख देवो, आप महादयावंत धर्मात्माओंसे अधिक स्नेहवंत, मैं तिहारे वियोगरूप नदी विषैं डूबू हूँ, सो महाराज मोहि निकासो। कैसी है नदी ? दुःखरूप जलकी भरी संकल्प विकल्परूप लहरकर पूर्ण है। हे महाबुद्धे ! कुटुम्बरूप आकाश विषैं सूर्य समान प्रकाश के कर्त्ता एक मेरी विनती सुनहु--तिहारा कुलरूप कमलोंका वन महा विस्तीर्ण प्रलय हुआ जाय है सो क्यों न राखहु। हे प्रभो! तुम मोहि पटराणीका पद दिया हुता सो मेरे कठोर वचननिकू क्षमा करो, जे अपने हितू हैं तिनका वचन औषध समान ग्राह्य है, परिणाम सुखदाई विरोध रहित स्वभावरूप आनंदकारी है। मैं यह कहूं हूँ--तुम काहेकू संदेह की तुला चढो हो। यह तुला चढिवे की नाहीं, काहेकू आप संताप करो हो अर हम सबनिकू संताप करो हो, अब हू कहा गया ? तिहारा सब राज, तुम सकल पृथ्वी के स्वामी अर तिहारे भाई पुत्रनिकू बुलाय लेहु, तुम अपना चित्त कुमार्गतें निवारो, अपना मन वश करो, तिहारा मनोरथ अत्यंत अकार्य विषैं प्रवर्ता है सो इन्द्रियरूप तरल तुरगोंको विवेकरूप दृढ लगाम कर वश करो, इन्द्रियनिके अर्थ कुमार्ग विषैं मन को कौन प्राप्त करै, तुम अपवाद का देनहारा जो उद्यम ताविषैं कहा प्रवर्तो हो, जैसे अष्टापद अपनी छाया कूप विषैं देख क्रोधकर कूपविषैं पड़ै तैसैं तुम आप ही क्लेश उपजाय आपदामें पड़ो हो, यह क्लेश का कारण जो अपयशरूप वृक्ष ताहि तजकर सुखसे तिष्ठो, केलिके थंभ समान असार यह विषय ताहि कहा चाहो हो, यह तिहारा कुल समुद्र समान गंभीर प्रशंसा योग्य ताहि शोभित करो, यह भूमिगोचरियों की स्त्री बड़े कुलवंतनिकू अग्निकी शिखा समान है ताहि तजो। हे स्वामी ! जे सामंत सामंतसों युद्ध करैं हैं वे मनविषैं यह निश्चय करै हैं कि हम मरेंगे। हे नाथ ! तुम कौन अर्थ मरो हो, पराई नारी ताके अर्थ कहा मरणा ? या मरिवे विषैं यश नाहीं अर उनकू मारे तिहारी जीत होय तोहू यश नाहीं, क्षत्री मरै

हैं यश के अर्थ तातैं सीता सम्बन्धी हठ को छांडो । अर जे बड़े २ व्रत हैं तिनकी महिमा का तो कहा कहना, एक यह परदारा परित्याग ही पुरुष के होय तो दोऊ जन्म सुधरैं, शीलवंत पुरुष भवसागर तिरैं । जो सर्वथा स्त्री का त्याग करै सो तो अति श्रेष्ठ ही है । काजल समान कालिमा की उपजावनहारी यह परनारी तिन विषैं जे लोलुपी तिन विषैं मेरु समान गुण होंय तोहू तृण समान लघु होय जांय । जो चक्रवर्ती का पुत्र होय अर देव जाके पक्षमें होंय अर परस्त्री के संगरूप कीच विषैं डूबै तो महा अपयशकूं प्राप्त होय । जो मूढमति परस्त्री से रति करै हैं सो पापी आशीविष भुजंगनी से रमै हैं, तिहारा कुल अत्यन्त निर्मल सो अपयशकर मलिन मत करो, दुर्बुद्धि तजो, जे महा बलवान हुते अर दूसरोंको निर्बल जानते अर्ककीर्ति अशनघोषादिक अनेक नाशकूं प्राप्त हुए । सो हे सुमुख! तुम कहा न सुने । ये मंदोदरीके वचन सुन रावण कमलनयन, काली घटा समान है वर्ण जाका, मलयागिरि चंदनकर लिप्त मंदोदरी से कहता भया—हे कांते ! तू काहेकूं कायर भई, मैं अर्ककीर्ति नाहीं जो जयकुमार से हारा अर मैं अशनघोष नाहीं जो अमिततेज से हारा अर और हू नाहीं । मैं दशमुख हूं, तू काहेकूं कायरता की बात कहै है, मैं शत्रुरूप वृक्षनिके समूहकूं दावानलरूप हूँ, सीता कदाचित् न दूं, हे मंदमानसे! तू भय मत करै, या कथा कर तोहि कहा ? तोकों सीता की रक्षा सौंपी है सो रक्षा भली भाँति कर । अर जो रक्षा करिवेकूं समर्थ नाहीं तो शीघ्र मोहि सौंप देवो । तब मंदोदरी कहती भई—तुम उससे रतिसुख वांछो हो तातैं यह कहो हो कि मोहि सौंप देवो, सो यह निर्लज्जता की बात कुलवंतोंको उचित नाहीं । बहुरि कहती भई—तुमने सीता के कहा माहात्म्य देखा जो ताहि बारंबार वांछो हो । वह ऐसी गुणवती नाहीं, ज्ञाता नाहीं, रूपवतियोंका तिलक नाहीं, कला विषैं प्रवीण नाहीं, मनमोहनी नाहीं, पति के छांदे चलनेवारी नाहीं, ता सहित रतिविषैं बुद्धि करो हो । सो हे कंत ! यह कहा वार्ता, अपनो लघुता होय है सो तुम नाहीं जानो हो । मैं अपने मुख अपनी प्रशंसा कहा करूं, अपने मुख अपने गुण कहे गुणों की गौणता होय है अर पराए मुख सुने प्रशंसा होय है, तातैं मैं कहा कहूँ, तुम सब नीके जानो हो, बिचारी सीता कहा ? लक्ष्मी भी मेरे तुल्य नाहीं तातैं सीता की अभिलाषा तजो, मेरा निरादर कर तुम भूमिगोचरिणीकूं इच्छो हो सो मदमति हो, जैसे बाल बुद्धि वैडूर्य मणि को तज कांचको इच्छै, ताका कछू दिव्यरूप नाहीं, तिहारे मन विषैं क्या रुची, यह ग्राम्यजन की नारी समान अल्पमति ताकी कहा अभिलाषा ? अर मोहि आज्ञा देवो सोई रूप धरूं, तिहारे चित्तकी हरणहारी मैं लक्ष्मी का रूप धरूं । अर आज्ञा करो तो शची इन्द्राणी का रूप धरूं । कहो तो रति का रूप धरूं । हे देव ! तुम इच्छा करो सोई रूप धरूं, यह वार्ता मन्दोदरीकी सुन रावण ने नीचा मुख किया अर लज्जावान भया।

बहुरि मन्दोदरी कहती भई–तुम परस्त्री आसक्त होय अपनी आत्मा लघु किया। विषय रूप आमिषकी आसक्ति है जाके सो पापका भाजन है, धिक्कार है ऐसी क्षुद्र चेष्टाकूं।

यह वचन सुन रावण मंदोदरीसे कहता भया–हे चंद्रवदनी ! कमललोचने ! तुम यह कही—जो कहो जैसा रूप धरूं सो औरों के रूप से तिहारा रूप कहा घाट है, तिहारा स्वतः ही रूप मोहि अति वल्लभ है। हे उत्तमे ! मेरे अन्य स्त्रीनिकर कहा ? तब हर्षित चित्त होय कहती भई–हे देव ! सूर्य को दीपकका उद्योत कहा दिखाइये मैं जो हितके वचन आपको कहे सो औरों से पूछ देखो, मैं स्त्री हूँ, मेरेमें ऐसी बुद्धि नाहीं, शास्त्र में कही है जो धनी सब ही नय जाने हैं। परन्तु दैवयोग की थकी प्रमादरूप भया होय तो जे हितू हैं ते समझावें, जैसे विष्णुकुमार स्वामी को विक्रियाऋद्धि का विस्मरण भया तो औरों के कहे कर जाना। यह पुरुष यह स्त्री ऐसा विकल्प मंदबुद्धिनि के होय है, जे बुद्धिमान हैं ते हितकारी वचन सब ही का मान लेंय, आपका कृपाभाव मो ऊपर है तो मैं कहूं हूँ—तुम परस्त्री का प्रेम तजो, मैं जानकीकूं लेकर राम पै जाऊं अर रामकूं तिहारे पास लाऊं और कुम्भकर्ण इन्द्रजीत मेघनादकूं लाऊं, अनेक जीवनिकी हिंसा कर कहा ? ऐसे वचन मन्दोदरी ने कहे। तब रावण अति क्रोधकर कहता भया—शीघ्र ही जाओ, जहाँ तेरा मुख न देखूं तहाँ जाओ। अहो तू आपको वृथा पंडित मानै है, अपनी ऊंचता तज परपक्ष की प्रशंसा में प्रवरती, तू दीन चित्त है—योधाओं की माता, तेरे इन्द्रजीत मेघनाद कैसे पुत्र अर मेरी पटराणी, राजा मयकी पुत्री, तो में एती कायरता कहाँ से आई ? ऐसा कहा। तब मंदोदरी बोली हे पति ! सुनो, जो ज्ञानियों के मुख बलभद्र नारायण प्रतिनारायण का जन्म सुनिये है—पहिला बलभद्र विजय, नारायण त्रिपृष्ट, प्रतिनारायण अश्वग्रीव; दूजा बलभद्र अचल, नारायण द्विपृष्ट, प्रतिहरि तारक—इस भांति अबतक सात बलभद्र नारायण हो चुके सो इनके शत्रु प्रतिनारायण इन्होंने हते। अब तुम्हारे समय यह बलभद्र नारायण भए हैं अर तुम प्रतिवासुदेव हो, आगे प्रतिवासुदेव हठकर हते गए तैसें तुम नाशको इच्छो हो। जे बुद्धिमान हैं तिनको यही कार्य करना जो या लोक परलोक में सुख होय अर दुःख के अंकुर की उत्पत्ति न होय सो करना, यह जीव चिरकाल विषय से तृप्त न भया, तीन लोक विषें ऐसा कौन है जो विषयों से तृप्त होय, तुम पापकर मोहित भए हो सो वृथा है। अर उचित तो यह है—तुमने बहुतकाल भोग किए, अब मुनिव्रत धरो अथवा श्रावकव्रत के तथर दुःख नाश करो, अणुव्रतरूप खड्गकर दीप्त है अंग जाका, नियमरूप छत्र कर शोभित, सम्यग्दर्शनरूप बख्तर पहिरे, शीलरूप ध्वजाकर शोभित, अनित्यादि बारह भावना तेई चंदन तिरकर चर्चित है अंग जाका अर ज्ञानरूप धनुष को धरे वश किया है इन्द्रियनिका बल जाने, शुभ ध्यान अर प्रतापकर

युक्त, मर्यादारूप अंकुश कर संयुक्त, निश्चलरूप हाथी पर चढ़ा, जिनभक्ति की है महाभक्ति जाके, दुर्गतिरूप कुनदी सो महा कुटिल पापरूप है वेग जाका, अतिदु:सह सो पंडितनिकर तिरिये है, ताहि तिरकर सुखी होवो। अर हिमवान सुमेरु पर्वतविषैं जिनालय को पूजते संते मेरे सहित ढाई द्वीप में विहार कर अर अष्टादश सहस्र स्त्रीनि के हस्तकमलपल्लव तिनकर लड़ाया संता सुमेरु पर्वत के वन विषै क्रीड़ा कर अर गंगा के तटपर क्रीड़ा कर अर और भी मनवांछित प्रदेशनि विषै रमणीक क्षेत्रनिविषैं हे नरेन्द्र सुख से विहार कर। या युद्ध कर कछू प्रयोजन नाहीं, प्रसन्न होहु, मेरा वचन सर्वथा सुख का कारण है, यह लोकापवाद मत करावहु। अपयशरूप समुद्र में काहेकूं डूबो हो, यह अपवाद विषतुल्य महानिन्द्य परम अनर्थ का कारण भला नाहीं, दुर्जन लोक सहज ही परनिन्दा करें सो ऐसी बात सुनकर तो करें ही करें। या भाँति के शुभ वचन कह वह महासती हाथ जोड़ पति का परमहित वांछती पतिके पांयनि पड़ी।

तब रावण मन्दोदरीकूं उठाय कर कहता भया—तू नि:कारण क्यों भयकूं प्राप्त भई। सुन्दर वदनी ! मोसे अधिक या संसार विषैं कोई नाहीं, तू स्त्रीपर्यायके स्वभावकर वृथा काहेकूं भय करै है। तैनें कही जो यह बलदेव नारायण हैं सो नाम नारायण अर नाम बलदेव भया तो कहा? नाम भए कार्य की सिद्धि नाहीं, नाम नाहर भया तो कहा? नाहर के पराक्रम भए नाहर होय, कोई मनुष्य सिद्ध नाम कहाया तो कहा सिद्ध भया? हे कांते ! तू कहा कायरता की वार्ता करै है? रथनूपुरका राजा इन्द्र कहावता सो कहा इन्द्र भया? तैसें यह भी नारायण नाहीं। या भांति रावण प्रतिनारायण ऐसे प्रबल वचन स्त्री को कह महाप्रतापी क्रीड़ा भवन विषैं मन्दोदरी सहित गया जैसें इन्द्र इन्द्राणी सहित क्रीड़ागृह विषै जाय। सांझ के समय सांझ फूली, सूर्य अस्त समय किरण संकोचने लगा, जैसें संयमी कषायों को संकोचैं। सूर्य आरक्त होय अशक्तिकूं प्राप्त भया, कमल मुद्रित भए. चकवा चकवी वियोगके भयकर दीन वचन रटते भए मानों सूर्यकूं बुलावैं अर सूर्य के अस्त होयवे कर ग्रह नक्षत्रनिको सेना आकाश विषैं विस्तरी मानों चन्द्रमा ने पठाई। रात्रि के समय रत्नदीपों का उद्योत भया, दीपोंकी प्रभाकर लंका नगरी ऐसी शोभती भई मानों सुमेरुकी शिखा ही है। कोऊ वल्लभा वल्लभसे मिलकर ऐसे कहती भई -एक रात्रि तो तुम सहित व्यतीत करेंगे, बहुरि देखिए कहा होय? अर कोई एक प्रिया नाना प्रकार के पुष्पनिकी सुगन्धता के मकरंद कर उन्मत्त भई स्वामी के अंग विषैं मानों महा कोमल पुष्पनिकी वृष्टि ही पड़ी। कोई नारी कमल तुल्य हैं चरण जाके अर कठिन हैं कुच जाके, महासुंदर शरीर की धरणहारी सुंदरपतिके समीप गई। अर कोई सुंदरी आभूषणोंकूं पहरती ऐसी शोभती भई मानों स्वर्ण रत्नोंको कृतार्थ करै है। भावार्थ—ता समान ज्योति

रत्न स्वर्णनि विषैं नाहीं। रात्रि समय विद्याकरि विद्याधर मनवांछित क्रीड़ा करते भए। घर २ विषैं भोगभूमिकीसी रचना होती भई, महासुन्दर गीत अर बीण बांसुरियोंका शब्द तिनकर लंका हर्षित भई मानों वचनालाप ही करै हैं। अर ताम्बूल सुगंध माल्यादिक भोग अर स्त्री आदि उपभोग सो भोगोपभोगनिकरि लोग देवनिकी न्याईं रमते भए। अर कैयक नारी अपने वदनकी प्रतिबिम्ब रत्ननिकी भीतिविषैं देखकर जानती भई कि कोई दूजी स्त्री मंदिरमें आई है सो ईर्षाकर नीलकमलसे पतिकूं ताड़ना करती भई। स्त्रीनिके मुखकी सुगन्धताकर सुगन्ध होय गया अर बर्फके योगकर नारीनि के नेत्र लाल होय गए। अर कोईयक नायिका नवोढ़ा हुती अर प्रीतम ने अमल खवाय उन्मत्त करी सो मन्मथ कर्म विषैं प्रवीण प्रौढा के भावकूं प्राप्त भई, लज्जारूप सखीकूं दूरकर उन्मत्तताहरूप सखी ने क्रीड़ा विषैं अत्यन्त तत्पर करी अर घूमैं हैं नेत्र जाके अर स्खलित हैं वचन जाके, स्त्री पुरुषनिकी चेष्टा उन्मत्तता कर विकटरूप होती भई। नरनारीनि के अधर मूंगा समान शोभायमान दीखते भए, नर नारी मदोन्मत्त भए सो न कहनेकी बात कहते भए अर न करने की बात करते भए, लज्जा छूट गई, चंद्रमाके उदय कर मदन की वृद्धि भई। ऐसा ही सुन्दर मंदिर अर ऐसा ही अमल का जोरसूं सब ही उन्मत्त चेष्टा का कारण आय प्राप्त भया, ऐसी निशा विषैं प्रभात विषैं होनहार है युद्ध जिनके सो संभोग का योग उत्सव रूप होता भया। अर राक्षसनिका इन्द्र, सुन्दर है चेष्टा जाकी सो समस्त ही राजलोककूं रमावता भया, बारम्बार मंदोदरीसूं स्नेह जनावता भया। याका वदनरूप चंद्र निरखते रावण के लोचन तृप्त न भए। मंदोदरी रावणसूं कहती भई—मैं एक क्षण-मात्र हू तुमको न तजूंगी। हे मनोहर! सदा तिहारे संग ही रहूँगी, जैसें बेल बाहुबलिके सर्व अंगसूं लगी तैसें रहूँगी। आप युद्ध विषैं विजयकर वेग ही आवो, मैं रत्ननिकूं चूर्ण कर चौक पूरूंगी अर तिहारे अर्घपाद्य करूंगी, प्रभु की महामख पूजा कराऊंगी, प्रेमकर कायर है चित्त जाका, अत्यत प्रेमके वचन कहते निशा व्यतीत भई। अर कूकड़ा बोले, नक्षत्रनिकी ज्योति मिटी, संध्या लाल भई अर भगवान् के चैत्यालयनिविषै महामनोहर गीतध्वनि होती भई अर सूर्यलोकका लोचन उदयकूं सन्मुख भया अपनी किरणनिकर सर्वदिशा विषैं उद्योत करता संता, प्रलयकाल के अग्निमंडल समान है आकार जाका, प्रभात समय भया। तब सब रानी पतिकूं छोड़ती उदास भई। तब रावण ने सबकूं दिलासा करी, गम्भीर वादित्र बाजे, शंखों के शब्द भए, रावण की आज्ञा कर जे युद्ध विषैं विचक्षण हैं ते महाभट महा अहंकारकूं धरते परम उद्धत अति हर्ष के भरे नगर से निकसे, तुरंग हस्ती रथों पर चढ़े, खड्ग धनुष गदा बरछी इत्यादि अनेक आयुधनिकूं धरे, जिनपर चमर ढुरते छत्र फिरते, महा शोभायमान देवनि जैसे स्वरूपवान्, महाप्रतापी

विद्याधरनिके अधिपति योधा, शीघ्र कार्य के करणहारे, श्रेष्ठ ऋद्धि के धारक युद्धकूं उद्यमी भए। ता दिन नगर की स्त्री कमलनयनी करुणाभावकरि दुःखरूप होती भई सो तिनकूं निरखें दुर्जनका चित्त भी दयालु होय। कोईयक सुभट घरसे युद्धकूं निकसा अर स्त्री लार लगी आवै है, ताहि कहता भया—हे मुग्धे ! घर जाओ, हम सुखसूं जाय हैं। अर कोईयकस्त्री, भरतार चले हैं तिनकूं पीछेसूं जाय कहती भई—हे कंत ! तिहारा उत्तरासन लेवो तब पति सन्मुख होय लेते भए। कैसी है मृगनयनी ? पतिके मुख देखवे की है लालसा जाके। अर कोईयक प्राणवल्लभा पतिकूं दृष्टि से अगोचर होते संते सखियों सहित मूर्च्छा खाय पड़ी। अर कोईयक पतिसूं पाछी आय मौन गह सेजपर परी मानों काठकी पुतली ही है। अर कोईयक शूर वीर श्रावक के व्रत का धारक पीठ पीछे अपनी स्त्रीकूं देखता भया अर आगें देवांगनाओंकूं देखता भया। भावार्थ—जे सामंत अणुव्रत के धारक हैं वे देवलोक के अधिकारी हैं। अर जे सामंत पहिले पूर्णमासी के चन्द्रमा समान सौम्य वदन हुते वे युद्धके आगमन विषें काल समान क्रूर आकार होय गए। सिर पर टोप धरे बक्तर पहिरे शस्त्र लिए तेज भासते भए।

अथानंतर चतुरंग सेना संयुक्त धनुष छत्रादिक कर पूर्ण मारीच महातेजकूं धरे युद्ध का अभिलाषी आय प्राप्त भया, फिर विमलचंद्र आया महा धनुषधारी अर सुनन्द आनंद नंद इत्यादि हजारों राजा आए सो विद्याकर निर्मापित दिव्य रथ तिनपर चढ़े अग्नि जैसी प्रभाकूं धरे मानों अग्निकुमार देव ही हैं। कैयक तीक्षण शस्त्रोंकर संपूर्ण हिमवान पर्वत समान जे हाथी उनपर सर्वदिशाओंकूं आच्छादते हुए आए जैसें बिजुलीसे संयुक्त मेघमाला आवै। अर कैयक श्रेष्ठ तुरंगोंपर चढ़े पाँचों हथियारोंकर संयुक्त शीघ्र ही ज्योतिष लोककूं उल्लंघ आवते भए। नाना प्रकार के बड़े २ वादित्र और तुरंगों का हींसबा, गजोंका गर्जना, पयादोंके शब्द, योधानिके सिंहवाद, बन्दीजनों के जय २ शब्द अर गुणीजनों के गीत वीररस के भरे इत्यादि और भी अनेक शब्द भेले भए, धरती आकाश शब्दायमान भए, जैसे प्रलयकाल के मेघपटल होवें तैसे निकसे। मनुष्य हाथी घोड़े रथ पियादे परस्पर अत्यंत विभूतिकर देदीप्यमान बड़ी भुजानिसे बक्तर पहिर, उतंग हैं उरस्थल जिनके, विजय के अभिलाषी। अर पयादे खड्ग संभाले हैं, महा चंचल आगे २ चले जाय हैं, स्वामीके हर्ष उपजावनहारे तिनके समूहकर आकाश पृथ्वी अर सर्व दिशा व्याप्त भई। ऐसे उपाय करते भी या जीव के पूर्व कर्म का जैसा उदय है तैसा ही होय है। यह प्राणी अनेक चेष्टा करै है परंतु अन्यथा न होय, जैसा भवितव्य है तैसा ही होय, सूर्य हू और प्रकार करिवे समर्थ नाहीं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै रावणका युद्ध विषैं उद्यमी होने का वर्णन करने वाला तेहत्तरवाँ पर्व पूर्ण भया ॥७३॥

चौहत्तरवां पर्व

(रावण का राम लक्ष्मण के साथ युद्ध)

अथानन्तर लंकेश्वर मंदोदरीसूं कहता भया–हे प्रिये ! न जानिये बहुरि तिहारा दर्शन होय वा न होय ? तब मंदोदरी कहती भई–हे नाथ ! सदा वृद्धिकूं प्राप्त होवो, शत्रुवोंकूं जीत शीघ्र ही आय हमको देखोगे अर संग्राम से जीते आग्रोगे; ऐसा कहा अर हजारों स्त्रियों कर अवलोकता संता राक्षसोंका नाथ मदिर से बाहिर गया। महाविकटता कूं धरे विद्याधर निरमाप्या ऐन्द्र नामा रथ ताहि देखता भया, जाके हजार हाथी जुड़े मानों कारी घटाका मेघ ही है। हे नाथ ! हाथी मदोन्मत्त, झरै है मद जिनके, मोतियों की माला तिनकरि पूर्ण, महा घंटा के नाद कर युक्त ऐरावत समान, नाना प्रकार के रंगोंसे शोभित, जिनका जीतना कठिन अर विनयके धाम, अत्यन्त गर्जनाकर शोभित ऐसे सोहते भए मानों कारी घटाके समूह ही हैं। मनोहर है प्रभा जिनको ऐसे हाथियों के रथ चढ्या रावण सोहता भया, भुजबन्ध कर शोभायमान हैं भुजा जाकी मानों साक्षात् इन्द्र ही है। विस्तीर्ण हैं नेत्र जाके, अनुपम है आकार जाका अर तेज कर सकल लोक विषें श्रेष्ठ आप समान दस हजार विद्याधर तिनके मंडलकर युक्त रणविषें आया सो वे महा-बलवान देवों सारिखे अभिप्रायके वेत्ता रावणकूं देखि सुग्रीव हनुमान क्रोधकूं प्राप्त भए। अर जब रावण चढ्या तब अत्यंत अपशकुन भए–भयानक शब्द भए अर आकाश विषें गृद्ध भ्रमते भए, आच्छादित किया है सूर्य का प्रकाश जिन्होंने। सो ये क्षय के सूचक अपशकुन भए परंतु रावण के सुभट न मानते भए, युद्धकूं आए ही। अर श्री रामचंद्र अपनी सेना विषें तिष्ठते सो लोकनिसूं पूछते भए–हे लोको ! या नगरीके समीप यह कौन पर्वत है ? तब सुषेणादिक तो तत्काल ही जवाब न देय सके अर जांबुन्दिक कहते भए–यह बहुरूपिणी विद्यासे रचा पद्मनाग नामा रथ है, घनेनिकूं मृत्युका कारण। अंगद ने नगर विषें जायकर रावणकूं क्रोध उपजाया सो अब बहुरूपिणी विद्या सिद्ध भई, हम से महा शत्रुता लिए है। सो तिनके वचन सुनकर लक्ष्मण सारथी से कहता भया–मेरा रथ शीघ्र ही चला। तब सारथीने रथ चलाया। अर जैसें समुद्र गाजै ऐसे वादित्र बाजे। वादित्रों के नाद सुनकर योधा, विकट है चेष्टा जिनकी, लक्ष्मणके समीप आए। कोईयक रामके कटकका सुभट अपनी स्त्री को कहता भया–हे प्रिये ! तू शोक तज, पाछी जावहु, मैं लंकेश्वरकूं जीत तिहारे समीप आऊंगा। या भांति गर्वकर प्रचण्ड जे योधा वे अपनी अपनी स्त्रीनिकूं धैर्य बंधाय अन्तःपुर से निकसे, परस्पर स्पर्धा करते वेगसे प्रेरे हैं वाहन रथादिक जिन्होंने, ऐसे महायोधा शस्त्र के धारक युद्धकूं उद्यमी भए। भूतस्वननामा विद्याधरनिका अधिपति महा हाथियों के रथ चढ़ा निकस्या, गंभीर है शब्द जाका। या

विधि और भी विद्याधरनिके अधिपति हर्ष सहित रामके सुभट, क्रूर हैं आकार जिनके, क्षोभायमान होय रावणके योधानिसूं, जैसा समुद्र गाजै तैसें गाजते, गंगा की उतंग लहर समान उछलते, युद्ध के अभिलाषी भए। अर राम लक्ष्मण डेरानिसूं निकसे, कैसे हैं दोऊ भाई? पृथ्वी विषें व्याप्त हैं अनेक यश जिनके, क्रूर आकारकूं धरे, सिंहनिके रथ चढे, बक्तर पहिरे, महा बलवान उगते सूर्य समान श्रीराम शोभते भए। अर लक्ष्मण गरुड की है ध्वजा जाके अर गरुड के रथ चढ्या, कारी घटा समान है रंग जाका, अपनी श्यामताकर श्याम करी हैं दसों दिशा जाने, मुकुटकूं धरे, कुण्डल पहिरे, धनुष चढाय, बक्तर पहिरे बाण लिए जैसा साँझ के समय अंजनगिरि सोहै तैसें शोभता भया। गौतम स्वामी कहैं हैं—हे श्रेणिक बड़े बड़े विद्याधर नाना प्रकारके बाहन अर विमाननि पर चढे युद्ध करिवेकूं कटकसूं निकसे। जब श्रीराम चढे तब अनेक शुभ शकुन आनंद के उपजा-वनहारे भए। राम को चढ्या जान रावण शीघ्र ही, दावानल समान है आकार जाका, युद्धकूं उद्यमी भया। दोनों ही कटक के योधा जे महा सामंत तिन पर आकाश से गंधर्व अर अप्सरा पुष्पवृष्टि करती भईं। अंजनगिरि से हाथी महावतोंके प्रेरे मदोन्मत्त चले, पियादों कर बेढ़ अर सूर्यके रथ, समान रथ, चंचल हैं तुरंग जिनके, सारथीनिकर युक्त जिन पर महा योद्धा चढे युद्धको प्रवर्ते अर घोड़ों पर चढे सामंत, गंभीर हैं नाद जिनके, परम तेजकूं धरे गाजते भए अर अश्व हींसते भए, परम हर्ष के भरे देदीप्यमान हैं आयुध जिनके अर पियादे गर्व के भरे पृथ्वी विषें उछलते भए, खड्ग खेट बरछी है हाथविषें जिनके, युद्ध की पृथ्वी विषें प्रवेश करते भए। परस्पर स्पर्धा करे हैं, दौड़ें हैं, योधा-निविषें परस्पर अनेक आयुधनिकर तथा लाठी मूका लोहयष्टिनिकर युद्ध भया, परस्पर केशग्रहण भया, खड्ग कर विदारा गया है शरीर जिनका। कैयक बाणकर बींधे गए तथापि योधा युद्ध के आगे ही भए, मारें हैं, प्रहार करें हैं, गाजें हैं, घोड़े व्याकुल भए भ्रमै हैं। कैयक आसन खाली होय गए, असवार मारे गए, मुष्टियुद्ध गदा युद्ध भया। कैयक बाणनिकर बहुत मारे गए। कैयक खड्ग कर, कैयक सेलोंकर घाव खाए, बहुरि शत्रुकूं घायल करते भए। कैयक मनवांछित भोगनिकर इंद्रियनिकूं रमावते सो युद्ध-विषें इन्द्रियां उनको छोड़ती भई; जैसे कार्य परे कुमित्र तजै। कैयक के आंतनिके ढेर होय गए तथापि खेद न मानते भए, शत्रुनि पर जाय पड़े अर शत्रुसहित आप प्राणांत भए, डसे हैं होंठ जिन्होंने। जे राजकुमार, देवकुमार सारिखे, रत्ननि के महलों के शिखर विषें क्रीडा करते महा भोगी पुरुष स्त्रीनिके स्तनकर रमाए संते वे खड्ग चक्र कनक इत्यादि आयुधनिकर विदारे संते संग्राम की भूमिविषें पड़े, विरूप आकार तिनको गृद्ध पक्षी अर स्याल भखैं हैं। अर जैसें रंगमहल में रंग की रामा नखों कर चिह्न करतीं अर

निकट आवती तैसें स्याली नख दंतनिकर चिन्ह करें हैं अर समीप आवें हैं। बहुरि श्वास के प्रकाश कर जीवते जानि वे डर जाँय हैं जैसें डाकिनी मंत्रवादी से दूर जाँय। अर सामंतनिकूं जीवते जानि यक्षिणी डर कर उड़ जाती भई, जैसें दुष्ट नारी, चलायमान हैं नेत्र जिसके, पति के समीप से जाती रहै। जीवों के शुभाशुभ प्रकृति का उदय युद्ध विषैं लखिए है, दोनों बराबर अर कोई की हार होय, कोई की जीत होय। अर कबहूं अल्प सेना का स्वामी महा सेना के स्वामी को जीतै अर कोईयक सुकृत के सामर्थ्य से बहुतों को जीतै अर कोई बहुत भी पाप के उदय से हार जाय। जिन जीवों ने पूर्व भवविषैं तप किया वे राज्य के अधिकारी होय विजय को पावें हैं अर जिन्होंने तप न किया अथवा तप भंग किया तिनकी हार होय है। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं-हे श्रेणिक! यह धर्म मर्म की रक्षा करै है अर दुर्जय को जीतै है, धर्म ही बड़ा सहाई है, बड़ा पक्ष धर्म का है, धर्म सब ठौर रक्षा करै है। घोड़ों कर युक्त रथ, पर्वत समान हाथी, पवन समान तुरंग, असुर कुमार से पयादे इत्यादि सामग्री पूर्ण है परन्तु पूर्वपुण्य के उदय बिना कोई राखिवे समर्थ नाहीं, एक पुण्याधिकारी ही शत्रुओं को जीतै है। इस भाँति राम-रावण के युद्ध की प्रवृत्ति विषैं योधाओं कर योधा हते गए तिनकर रणक्षेत्र भर गया, अवकाश नाहीं। आयुधोंकर योधा उछलें हैं, परें हैं, सो आकाश ऐसा दृष्टि पड़ता भया मानों उत्पात के बादलों कर मंडित है।

अथानन्तर मारीच चन्द्रनिकर वज्राक्ष शुकसारण अर और भी राक्षसोंके अधीश तिन्होंने राम का कटक दबाया तब हनुमान चन्द्र मारीच नील मुकुन्द भूतस्वन इत्यादि राम पक्ष के योधा तिन्होंने राक्षसनिकी सेना दबाई। तब रावण के योधा कुन्द कुम्भ निकुम्भ विक्रम क्रमाण जंबूमाली काकबली सूर्यार मकरध्वज अशनिरथ इत्यादि राक्षसनिके बड़े २ राजा शीघ्र ही युद्धकूं उठे तब भूधर अचल सम्मेद निकाल कुटिल अंगद सुषेण कालचंद्र उर्मितरंग इत्यादि वानरवंशी योधा तिनके सन्मुख भए, उनही समान, तासमय कोई सुभट प्रतिपक्षी सुभट बिना दृष्टि न पड़या। भावार्थ-दोनों पक्ष के योधा परस्पर महायुद्ध करते भए। अर अंजनाका पुत्र हाथिनके रथपर चढ़कर रणमें क्रीड़ाकरता भया जैसें कमलनिकर भरे सरोवरमें महागज क्रीड़ा करें। गौतम गणधर कहै हैं-हे श्रेणिक! वा हनुमान शूरवीर ने राक्षसनिकी बड़ी सेना चलायमान करी, उसे रुचा सो किया। तब राजा मय विद्याधर दैत्यवंशी मंदोदरी का बाप, क्रोध के प्रसंगकर लाल हैं नेत्र जाके, सो हनुमान के सन्मुख आया। तब वह हनुमान, कमल समान हैं नेत्र जाके, बाणवृष्टि करता भया सो मयका रथ चकचूर किया। तब वह दूजे रथ चढ़कर युद्ध को उद्यमी भया। तब हनुमान ने बहुरि रथ तोड़ डाला। तब मयको विह्वल देख रावण ने बहुरूपिणी

विद्याकर प्रज्वलित उत्तम रथ शीघ्र ही भेजा सो राजा मयने वा रथपर चढ़कर हनुमान से युद्ध किया अर हनुमान का रथ तोड़ा। तब हनुमान को दबा देख भामंडल मदद को आया सो मयने बाण वर्षाकर भामंडल का भी रथ तोड़ा। तब राजा सुग्रीव इनकी मदद को आए सो मयने ताकूं शस्त्ररहित किया अर भूमि में डारा। तब इनकी मदद कूं विभीषण आया सो विभीषण के अर मय के अत्यन्त युद्ध भया, परस्पर बाण चले सो मयने विभीषण का बक्तर तोड़ा सो अशोकवृक्ष के पुष्प समान लाल होय तैसी लालरूप रुधिर की धारा विभीषण के पड़ी। तब वानरवंशियों की सेना चलायमान भई अर राम युद्धकूं उद्यमी भए, विद्यामई सिंहनिके रथ चढ़े शीघ्र ही मय पर आए अर वानरवंशीनि कूं कहते भए कि तुम भय मत करहु - रावणकी सेना बिजुरी सहित कारी घटा समान तामें उगते सूर्य समान श्रीराम प्रवेश करते भए अर परसेना का विध्वंस करवेकूं उद्यमी भए। तब हनुमान भामण्डल सुग्रीव विभीषणकूं धैर्य उपजा अर वानरवंशीनिकी सेना युद्ध करवेकूं उद्यमी भई। राम का बल पाय रामके सेवकनिका भय मिटा, परस्पर दोनों सेना के योधानि विषैं शस्त्रों का प्रहार भया सो देख २ देव आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर दोनों सेना विषैं अन्धकार होय गया, प्रकाशरहित लोक दृष्टि न पड़े, श्रीराम राजा मय को बाणनिकर अत्यन्त आच्छादते भए, थोड़े ही खेद कर मयकूं विह्वल किया, जैसें इन्द्र चमरेन्द्रकूं करे। तब राम के बाणों कर मयकूं विह्वल देख रावण काल-समान क्रोधकर राम पर धाया। तब लक्ष्मण राम की ओर रावणकूं आवता देख महातेज कर कहता भया—हो विद्याधर! तू किधर जाय है, मैं तोहि आज देख्या, खड़ा रहो। हे रंक! पापी चोर परस्त्री रूप दीपकके पतंग अधम पुरुष दुराचारी, आज मैं तोसों ऐसी करूं जैसी काल न करै। हे कुमानुष! श्रीराघवदेव समस्त पृथ्वी के पति तिन्होंने मोहि आज्ञा करी है जो या चोरकूं सजा देहु। तब दशमुख महाक्रोधकर लक्ष्मणसूं कहता भया—रे मूढ! तैंने कहा लोकप्रसिद्ध मेरा प्रताप न सुना? या पृथ्वी विषैं जे सुखकारी सार वस्तु हैं सो सब मेरी ही हैं, मैं राजा पृथ्वीपति, जो उत्कृष्ट वस्तु सो मेरी, घंटा गज के कंठ विषैं सोहै, स्वानके न सोहै है, तैसें योग्य वस्तु मेरे घर सोहै, और के नाहीं। तू मनुष्यमात्र वृथा विलाप करै, तेरी कहा शक्ति? तू दीन मेरे समान नाहीं, मैं रंकसे क्या युद्ध करूं? तू अशुभके उदयसे मोसे युद्ध किया चाहै है सो जीवनसे उदास भया मूवा चाहै है। तब लक्ष्मण बोले—तू जैसा पृथ्वीपति है तैसा मैं नीके जानूं हूं। आज तेरा गाजना पूर्ण करूं हूं। जब ऐसा लक्ष्मण ने कहा तब रावण ने अपने बाण लक्ष्मण पर चलाए अर लक्ष्मण ने रावण पर चलाए जैसें वर्षा के मेघ जलवृष्टिकर गिरिकूं आच्छादित करैं तैसें बाण वृष्टिकर वाने वाकूं बेध्या अर वाने वाकूं बेध्या। सो रावणके बाण लक्ष्मणने वज्रदंड

कर बीचमें ही तोड़ डारे, आपतक आवने न दिये,बाणोंके समूह छेद भेद तोड़ फोड़ चूरकर डारे,सो धरती आकाश बाणखंडनि कर भर गए। लक्ष्मणने रावणकूं सामान्य शस्त्रनिकरि विह्वल किया तब रावण ने जानी—यह सामान्य शस्त्रनिकर जीता न जाय। तब रावण ने लक्ष्मण पर मेघबाण चलाया सो धरती आकाश जलरूप होय गए। तब लक्ष्मण ने पवनबाण चलाया, क्षणमात्र में मेघबाण विलय किया। बहुरि दशमुखने अग्निबाण चलाया सो दसों दिशा प्रज्वलित भईं। तब लक्ष्मण ने वरुणशस्त्र चलाया सो एक निमिष में अग्निबाण नाशकूं प्राप्त भया। बहुरि लक्ष्मण ने पाप बाण चलाया सो धर्म बाण कर रावण ने निवारया। बहुरि लक्ष्मण ने ईंधन बाण चलाया सो रावण ने अग्निबाण कर भस्म किया। बहुरि लक्ष्मण ने तिमिरबाण चलाया सो अंधकार होय गया, आकाश वृक्षनिके समूह कर आच्छादित भया। कैसे हैं वृक्ष ? आसार फलनिकूं बरसावें हैं, आसार पुष्पनिके पटल छाय गए। तब रावण ने सूर्य बाण कर तिमिर बाण निवारया अर लक्ष्मण पर नागबाण चलाया, अनेक नाग चले, विकराल हैं फण जिनके। तब लक्ष्मण ने गरुड़ बाण कर नागबाण निवारया, गरुड़ की पांखों पर आकाश स्वर्ण की प्रभारूप प्रतिभासता भया। बहुरि राम के भाई ने रावण पर सर्प बाण चलाया, प्रलयकाल के मेघसमान है शब्द जाका अर विषरूप अग्निके कणनिकर महा विषम। तब रावणने मयूर बाण कर सर्प बाण निवारा अर लक्ष्मण पर विघ्नबाण चलाया सो विघ्नबाण दुर्निवार ताका उपाय सिद्धबाण सो लक्ष्मणकूं याद न आया तब वज्रदंड आदि अनेक शस्त्र चलाए। रावण हू सामान्य शस्त्रनिकर युद्ध करता भया। दोनों योधानिमें समान युद्ध भया, जैसा त्रिपृष्ठ और अश्वग्रीवके युद्ध भया हुता तैसा लक्ष्मण रावण के भया। जैसा पूर्वोपार्जित कर्मका उदय होय तैसा फल होय, तैसी क्रिया करै। जे महाक्रोधके वश में हैं अर जो कार्य आरम्भा ता विषें उद्यमी हैं ते नर तीव्र शस्त्रकूं न गिनें, अग्निकूं न गिनें, सूर्य को न गिनें अर वायु को न गिनें।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं रावण लक्ष्मण का युद्ध वर्णन करने वाला चौहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां पर्व

(रावण का लक्ष्मण पर चक्र चलाना और चक्र लक्ष्मण की प्रदक्षिणा कर उनके हाथ आना)

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे भव्योत्तम ! दोनों ही सेना विषैं तृषावंतनिकूं शीतल मिष्ट जल प्याइये है अर क्षुधावन्तों को अमृत-समान आहार दीजिए है अर खेदवन्तोंकूं मलयागिरि चंदन से छिड़किये है, ताड़वृक्ष के बीजने से पवन करिए है, बरफ के वारिसे छांटिये है तथा और हू उपचार अनेक कीजिए है, अथवा पराया

कोई होहु सबके यत्न कीजिए है, यही संग्राम की रीति है। दस दिन युद्ध करते भए, दोऊ ही महावीर अभंग चित्त रावण लक्ष्मण दोनों समान-जैसा वह तैसा वह, सो यक्ष गंधर्व किन्नर अप्सरा आश्चर्यकूं प्राप्त भए अर दोऊनिका यश गावते भए, दोऊनिपर पुष्पवर्षा करी। अर एक चंद्रवर्धन नामा विद्याधर ताकी आठ पुत्री सो आकाश विषैं विमान में बैठी देख तिनकूं कौतूहलसे अप्सरा पूछती भई—तुम देवियो सारिखी कौन हो? तिहारी लक्ष्मण विषैं विशेष भक्ति दीखै है अर तुम सुन्दर सुकुमार शरीर हो? तब वे लज्जा सहित कहती भई कि तुमको कौतूहल है तो सुनो। जब सीता का स्वयम्बर हुआ तब हमारा पिता हम सहित तहाँ आया था, तहाँ लक्ष्मण को देख हमकूं देवी करी। अर हमारा भी मन लक्ष्मणविषैं मोहित भया, सो अब यह संग्राम विषैं वर्तै है, न जानिए कहा होय? यह मनुष्यनिविषैं चन्द्रमा समान प्राणनाथ है, जो याकी दशा सो हमारी। ऐसे इनके मनोहर शब्द सुनकर लक्ष्मण ऊपरकूं चौंके तब वे आठों ही कन्या इनके देखबे कर परमहर्ष को प्राप्त भईं अर कहती भईं—हे नाथ! सर्वथा तिहारा कार्य सिद्ध होहु। तब लक्ष्मणकूं विघ्नबाण का उपाय सिद्ध बाण याद आया अर प्रसन्न वदन भया, सिद्ध बाण चलाय विघ्न बाण विलय किया अरआप महा प्रतापरूप युद्धकूं उद्यमी भया। जो २ शस्त्र रावण चलावै सो २ रामका वीर महाधीर शस्त्रनिविषैं प्रवीण छेद डारै अर आप बाणनि के समूहकर सर्वदिशा पूर्ण करी जैसें मेघपटलकर पर्वत आच्छादित होय। रावण बहुरूपिणी विद्याके बलकरि रणक्रीडा करता भया। लक्ष्मणने रावणका एक सीस छेदा तब दोय सीस भए, दोय छेदे तब चार भए अर दोय भुजा छेदी तब चार भई अर चार छेदी तब आठ भई। या भांति ज्यों २ छेदी त्यों २ दुगुणी भई अर सीस दुगुणे भए। हजारों सिर अर हजारों भुजा भईं। रावण के कर हाथी के सूंड समान भुजबन्धनकर शोभित अर सिर मुकुटों कर मंडित तिनकर रणक्षेत्र पूर्ण किया, मानों रावणरूप समुद्र महाभयंकर ताके हजारों सिर वेई भए ग्राह अर हजारों भुजा वेई भईं तरंग तिनकर बढ़ता भया। अर रावणरूप मेघ जाके बाहुरूप बिजुरी अर प्रचण्ड हैं शब्द अर सिर ही भए शिखर तिनकर सोहता भया। रावण अकेला ही महासेना समान भया, अनेक मस्तक तिनके समूह जिन पर छत्र फिरैं। लक्ष्मण ने मानों यह विचार कर याहि बहुरूप किया जो आगे मैं अकेले अनेकनिसूं युद्ध किया, अब या अकेले से कहा युद्ध करूँ, तातैं याहि बहुशरीर किया। रावण प्रज्वलित वनसमान भासता भया, रत्ननि के आभूषण अर शस्त्रनिकी किरणनिके समूहकर प्रदीप्त रावण लक्ष्मणकूं हजारों भुजानि कर बाण शक्ति खड्ग बरछी सामान्य चक्र इत्यादि शस्त्रनिकी वर्षा कर आच्छादता भया। सो सब बाण लक्ष्मण ने छेदे अर महाक्रोधरूप होय सूर्य समान तेजरूप बाणनि

कर रावणकूं आच्छादनेकूं उद्यमी भया। एक दोय तीन चार पाँच छह दस बीस शत सहस्र मायामई रावणके सिर लक्ष्मणने छेदे, हजारों सिर भुजा भूमि विषें पड़े,सो रणभूमि उनकर आच्छादित भई ऐसी सोहै मानों सर्पनिके फणनिसहित कमलनिके बन हैं। भुजोंसहित सिर पड़े वे उल्कापातसे भासें। जेते रावणके बहुरूपिणी विद्याकर सिर अर भुजा भए तेते सब सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने छेदे, जैसें महामुनि कर्मनिके समूह को छेदै। रुधिर की धारा निरन्तर पड़ी तिनकर आकाशविषें मानों सांझ फूली, दोय भुजाका धारक लक्ष्मण ताने रावणकी असंख्यात भुजा विफल करीं, कैसे हैं लक्ष्मण ? महाप्रभाव कर युक्त हैं। रावण, पसेव के समूह कर भर गया हैं अंग जाका, श्वास कर संयुक्त है मुख जाका, यद्यपि महाबलवान हुता तथापि व्याकुल चित्त भया। गौतमस्वामी कहै हैं-हे श्रेणिक ! बहुरूपिणीविद्या के बलपर रावण ने महा भंयकर युद्ध किया पर लक्ष्मण के आगे बहुरूपिणी विद्याका बल न चला। तब रावण मायाचार तज सहज रूप होय क्रोधका भरा युद्ध करता भया, अनेक दिव्यशस्त्रनिकर अर सामान्य शस्त्रनिकर युद्ध किया परन्तु वासुदेव को जीत न सक्या। तब प्रलय काल के सूर्य समान है प्रभा जाकी, परपक्षका क्षयकरणहारा जो चक्ररत्न ताहि चिन्तता भया। कैसा है चक्ररत्न ? अप्रमाण प्रभाव के समूहकूं धरे, मोतीनिकी झालरियों कर मंडित महा देदीप्यमान, दिव्य वज्रमई, महा अद्भुत नाना प्रकार के रत्ननिकर मंडित है अंग जाका, दिव्यमाला अर सुगन्धकर लिप्त, अग्नि के समूह तुल्य, धारानिके समूह कर महा प्रकाशवन्त, वैडूर्य मणि के सहस्र आरे तिन कर युक्त, जिसका दर्शन सहा न जाय, सदा हजार यक्ष जाकी रक्षा करें, महाक्रोधका भरा, जैसा काल का मुख होय ता समान वह चक्र चितवते ही करविषें आया, जाकी ज्योतिकर जोतिष देवों की प्रभा मन्द होय गई अर सूर्यकी कांति ऐसी होय गई मानों चित्राम का सूर्य है अर अप्सरा विश्वावसु तुंबरु नारद इत्यादि गंधर्वनिके भेद आकाशविषें रणका कौतुक देखते हुते सो भंयकर परे गए अर लक्ष्मणअत्यन्त धीर शत्रु को चक्र संयुक्त देख कहता भया-हे अधम नर ! याहि कहा ले रहा है जैसे कृपण कौड़ी को लेय है ? तेरी शक्ति है तो प्रहार कर। ऐसा कह्या तब वह महा क्रोधायमान होय, दांतनिकर डसे हैं होंठ जाने, लाल हैं नेत्र जाके, चक्र कूं फेर लक्ष्मण पर चलाया। कैसा है चक्र ? मेघमंडल समान है शब्द जाका अर महा शीघ्रताकूं लिए प्रलय काल के सूर्य समान मनुष्यनिकूं जीतव्य के संशयका कारण, ताहि सन्मुख आवता देख लक्ष्मण वज्रमई है मुख जिनका ऐसे बाणनिकर चक्रके निवारवेकूं उद्यमी भया अर श्रीराम वज्रावर्त धनुष चढ़ाय अमोघ बाणनिकर चक्रके निवारवेकूं उद्यमी भए अर हल मूसलनिकूं भ्रमावते चक्रके सन्मुख भए अर सुग्रीव गदाकूं फिराय चक्रके सन्मुख भए अर भामण्डल खड्गकूं लेकर निवारवेकूं

उद्यमी भए अर विभीषण त्रिशूल ले ठाढ़े भए अर हनुमान मुद्गर लांगूल कनकादि लेकर उद्यमी भए अर अंगद पारण नामा शस्त्र लेकर ठाढ़े भए अर अंगदका भाई अंग कुठार लेकर महा तेजरूप खड़े भए, और हू दूसरे श्रेष्ठ विद्याधर अनेक आयुधनिकर युक्त सब एक होयकर जीवने की आशा तज चक्र के निवारवेकूं उद्यमी भए परन्तु चक्रकूं निवार न सके। कैसा है चक्र ? देव करें हैं सेवा जाकी, ताने आयकर लक्ष्मणकूं तीन प्रदक्षिणा देय अपना स्वरूप विनयरूपकर लक्ष्मणके कर विषैं तिष्ठा,सुखदाई शांत है आकार जाका। यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं–हे मगधाधिपति ! राम लक्ष्मण का महाऋद्धिकूं धरे यह माहात्म्य तोहि संक्षेप से कहा। कैसा है इनका माहात्म्य ? जाहि सुने परम आश्चर्य उपजे अर लोक विषैं श्रेष्ठ है। कैयक के पुण्य के उदय कर परम विभूति होय है अर कैयक के पुण्य के क्षय कर नाश होय है, जैसें सूर्य का अस्त भए चंद्रमा का उदय होय है तैसें लक्ष्मण के पुण्य का उदय जानना।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं लक्ष्मण के चक्ररत्न की उत्पत्ति वर्णन करने वाला पचहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥७५॥

छिहत्तरवां पर्व

(राम-लक्ष्मण के साथ रावण का महा युद्ध और रावण का वध)

अथानंतर लक्ष्मण के हाथ विषैं महासुन्दर चक्ररत्न आया देख सुग्रीव भामंडलादि विद्याधरनिके अधिपति अति हर्षित भए अर परस्पर कहते भए–आगें भगवान अनंतवीर्य-केवलीने आज्ञा करी जो लक्ष्मण आठवां वासुदेव है अर राम आठवां बलदेव है, सो यह महाज्योति चक्रपाणि भया, अति उत्तम शरीर का धारक, याके बलका कौन वर्णन कर सके। अर यह श्रीराम बलदेव जाके रथकूं महातेजवंत सिंह चलावें, जाने राजा मयको पकड़ा अर हल मूसल महारत्न दैदीप्यमान जाके कर विषैं सोहैं। ये बलभद्र नारायण दोऊ भाई पुरुषोत्तम प्रगट भए, पुण्य के प्रभावकर परम प्रेमके भरे लक्ष्मण के हाथ विषैं सुदर्शनचक्रकूं देख राक्षसनिका अधिपति चित्तविषैं चितारै है जो भगवान् अनन्तवीर्यने आज्ञा करी हुती सोई भई, निश्चयसेती कर्मरूप पवन का प्रेरा यह समय आया। जाका छत्र देख विद्याधर डरते अर परकी महासेना भाग जाती, पर सेना की ध्वजा अर छत्र मेरे प्रताप से बहे २ फिरते अर हिमाचल विंध्याचल हैं स्तन जाके, समुद्र है वस्त्र जाके, ऐसी यह पृथ्वी मेरी दासी समान आज्ञाकारिणी हुती–ऐसा मैं रावण सो रण विषैं भूमि-गोचरिनिने जीत्या, यह अद्भुत बात है, कष्ट की अवस्था आय प्राप्त भई, धिक्कार या राज्यलक्ष्मीकूं, कुलटा स्त्री समान है चेष्टा जाकी, पूज्य पुरुष या पापिनीकूं तत्काल

तजैं। यह इन्द्रियनिके भोग इन्द्रायण के फल समान, इनका परिपाक विरस है, अनन्त दुःख सम्बन्ध के कारण साधुनिकर निंद्य हैं। पृथ्वी विषैं उत्तम पुरुष भरत चक्रवर्त्यादि भए ते धन्य हैं जिन्होंने निःकंटक छहखंड पृथ्वी का राज्य किया अर विषके मिले अन्नकी न्याईं राज्यकूं तज जिनेन्द्र व्रत धार रत्नत्रयकूं आराधन कर परमपदकूं प्राप्त भए हैं। मैं रंक विषयाभिलाषी मोह बलवान वे मोहि जीत्या। यह मोह संसार-भ्रमण का कारण, धिक्कार मोहि जो मोह के वश होय ऐसी चेष्टा करी। रावण तो यह चितवन करै है। अर आया है चक्र जाके ऐसा जो लक्ष्मण-महा तेज का धारक सो विभीषण की ओर निरख रावण से कहता भया—हे विद्याधर! अब हू कछु न गया है, जानकीकूं लाय श्रीरामदेवकूं सौंप दे अर यह वचन कह कि श्रीराम के प्रसाद कर जीवूं हूं, हमको तेरा कछु चाहिये नाहीं, तेरी राज्यलक्ष्मी तेरे ही रहो। तब रावण मंद हास्य कर कहता भया—हे रंक! तेरे वृथा गर्व उपजा है, अबार ही अपना पराक्रम तोहि दिखाऊं हूं। हे अधम नर! मैं तोहि जो अवस्था दिखाऊं सो भोग; मैं रावण पृथ्वीपति विद्याधर, तू भूमिगोचरी रंक? तब लक्षमण बोले—बहुत कहिवेकर कहा? नारायण सर्वथा तेरा मारण-हारा उपजा। तब रावण ने कहा—इच्छामात्रसे ही नारायण हूजिए है तो जो तू चाहे सो क्यों न हो, इन्द्र हो, तू कुपुत्र पिताने देश से बाहिर किया, महा दुःखी दरिद्री वनचारी भिखारी निर्लज्ज, तेरी वासुदेव पदवी हमने जानी, तेरे मन विषै मत्सर है सो मैं तेरे मनोरथ भंग करूंगा। यह घेघली समान चक्र है ताकर तू गर्वा है सो रंकोंकी यही रीति है खलि का टूंक पाय मन विषैं उत्सव करैं। बहुत कहिवे कर कहा? ये पापी विद्याधर तेसूं मिले हैं तिन सहित अर या चक्रसहित बाहनसहित तेरा नाशकर ताहि पातालकूं पहुंचाऊंगा। ये रावण के वचन सुनकर लक्षमण ने कोपकर चक्र को भ्रमाय रावण पर चलाया। वज्रपात के शब्द समान भयंकर है शब्द जाका अर प्रलयकाल के सूर्यसमान तेजकूं धरे चक्र रावण पर आया। तब रावण बाणनिकर चक्र को निवारवेकूं उद्यमी भया, बहुरि प्रचंड दंड अर शीघ्रगामी बज्रनागकर चक्रके निवारनेका यत्न किया तथापि रावण का पुण्य क्षीण भया सो चक्र न रुका, नजीक आया। तब रावण चन्द्रहास खड्ग लेकर चक्र के समीप आया, चक्रके खड्ग की दई सो अग्निके कणनिकर आकाश प्रज्वलित भया, खड्गका जोर चक्रपर न चला, सन्मुख तिष्ठता जो रावण महाशूरवीर राक्षसनिका इन्द्र ताका चक्र ने उरस्थल भेदा सो पुण्य क्षयकर अंजनगिरि समान रावण भूमि विषैं परचा मानों स्वर्गसे देव चया अथवा रति का पति पृथ्वीविषैं परचा ऐसा सोहता भया मानों वीररसका स्वरूप ही है, चढ रही हैं भौंह जाकी, डसे हैं होठ जाने। स्वामीकूं पड़ा देख समुद्र समान था शब्द जाका, ऐसी सेना भागवेकूं उद्यमी भई। ध्वजा छत्र बहे बहे

फिरै, समस्तलोक रावणके विह्वल भए, विलाप करते भागे जांय हैं। कोई कहै है--रथकूं दूरकर मार्ग देहु, पीछेसूं हाथी आवै है। कोई कहै है--विमानकूं एक तरफ कर। अब पृथ्वीका पति पड़ा, महा भयंकर अनर्थ भया, भयंकर कम्पायमान वह तापर पड़े वह तापर पड़े। तब सबको शरणरहित देखि भामंडल सुग्रीव हनुमान रामकी आज्ञा से कहते भए--भय मत करो, धैर्य बंधाया अर वस्त्र फेरया, काहूको भय नाहीं। तब अमृत समान कानोंको प्रिय ऐसे वचन सुन सेना कूं विश्वास उपज्या। यह कथा गौतम गणधर राजा श्रेणिक सूं कहै हैं--हे राजन्! रावण ऐसा महा विभूतिकूं भोग समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका राज्यकर पुण्य पूर्ण भए अन्तदशाकूं प्राप्त भया, तातैं ऐसी लक्ष्मीकूं धिक्कार है। यह राज्यलक्ष्मी महा चंचल, पापका स्वरूप, सुकृतके समागमके आशाकर वर्जित--ऐसा मनविषैं विचारकर हो बुद्धिजन हो! तप ही धन जिनके, ऐसे मुनि होवो। कैसे हैं मुनि? तपोधन सूर्यसे अधिक है तेज जिनका, मोहतिमिरकूं हरै हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं रावण का वध वर्णनकरने वाला छिहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥७६॥

सतहत्तरवां पर्व

(रावण के वियोग से रावण के परिवार और रणवास का विलाप करना)

अथानन्तर विभीषण वे बड़े भाईकूं पड़ा देख महा दुःखका भरया अपने घातके अर्थ छुरी विषैं हाथ लगाया सो याकूं मरण की हरणहारी मूर्च्छा आयगई, चेष्टा रहित शरीर होय गया। बहुरि सचेत होय महा दाहका भरया मरनेकूं उद्यमी भया। तब श्रीरामने रथसे उतर हाथ पकड़कर उरसे लगाया, धैर्य बंधाया। फिर मूर्च्छा खाय पड्या, अचेत होय गया। श्रीराम ने सचेत किया तब सचेत होय विलाप करता भया जिसका विलाप सुन करुणा उपजै, हाय भाई! उदार क्रियावन्त सामंतों के पति महाशूर रणधीर शरणागतपालक महा मनोहर ऐसी अवस्थाकूं क्यों प्राप्त भए? मैं हितके वचन कहे सो वाको न माने, यह क्या अवस्था भई जो मैं तुमकूं चक्रके विदारे पृथ्वी विषैं परे देखूं हूं। हे देव विद्याधरों के महेश्वर! हे लंकेश्वर! भोगों के भोक्ता पृथ्वीविषैं कहा पौढे? महाभोगोंकर लड़ाया है शरीर जिनका, यह सेज आपके शयन करने योग्य नाहीं। हे नाथ! उठो, सुन्दर वचनके वक्ता मैं तुम्हारा बालक मुझे कृपाके वचन कहो। हे गुणाकर कृपाधार! मैं शोकके समुद्रविषैं डूबूं हूं सो मुझे हस्तावलंबन कर क्यों न काढो। इस भाँति विभीषण विलाप करै है, डार दिये हैं शस्त्र अर बक्तर भूमि विषैं जाने।

अथानन्तर रावणके मरणके समाचार रणवासविषैं पहुँचे सो राणियां सब अश्रुपातकी धारा कर पृथ्वी तलको सींचती भई अर सर्व ही अन्तःपुर शोककर व्याकुल भया, सकल राणी--रण भूमि विषैं गिरती पड़ती गिरती पड़ती आईं, डिगे हैं चरण जिनके, वे नारी पतिकूं चेतना रहित देख शीघ्र ही पृथ्वीविषैं पड़ीं । कैसा है पृथ्वी पतिका चूडामणि ? मंदोदरी, रंभा, चन्द्रावनी, चन्द्रमण्डला, प्रवरा उर्वशी, महादेवी, सुन्दरी, कमलानना, रूपिणी, रुक्मिणी, शीला, रत्नमाला, तनूदरी, श्रीकांता, श्रीमती, भद्रा, कनकप्रभा, मृगावती, श्रीमाला, मानवी, लक्ष्मी, आनंदा, अनंगसुन्दरी, वसुन्धरा, तडिन्माला, पद्मा, पद्मावती, सुखादेवी, कांति, प्रीति, संध्यावली, सुभा, प्रभावती, मनोवेगा, रतिकांता, मनोवती इत्यादि अष्टादश सहस्र राणी अपने अपने परिवारसहित अर सखिनिसहित महाशोक की भरी रुदन करती भईं । कैयक मोहकी भरी मूर्च्छाकूं प्राप्त भई सो चन्दन के जलकर छांटी, कुमलाई कमलिनी समान भासती भई । कैयक पतिके अंग से अत्यन्त लिपटकर परी, अंजनगिरिसौं लगी संध्या की द्युतिको धरती भईं । कैयक मूर्च्छासे सचेत होय पति के समीप उरस्थल कूटती भई मानों मेघ के निकट बिजुरी ही चमकै है, कैयक पतिका वदन अपने अंग विषैं लेयकर विह्वल होय मूर्च्छाकूं प्राप्त भईं । कैयक विलाप करैं हैं--हाय नाथ ! मैं तिहारे विरहसे अतिकायर, मोहि तजकर तुम कहां गए, तिहारे जन दुःखसागर विषैं डूबे हैं सो क्यों न देखो, तुम महाबली महासुन्दर परम ज्योति के धारक विभूति कर इन्द्र-समान मानों भरतक्षेत्र के भूपति पुरुषोत्तम महाराजनिके राजा मनोरम विद्याधरनिके महेश्वर कौन अर्थ पृथ्वी में पौढे । उठो, हे कांत ! करुणानिधे ! स्वजन वत्सल ! एक अमृत-समान वचन हमसे कहो । हे प्राणेश्वर प्राणवल्लभ ! हम अपराध-रहित तुमसे अनुरक्त चित्त हम पर तुम क्यों कोप भए, हमसे बोलो ही नाहीं, जैसे पहिले परिहास कथा करते तैसे क्यों न करो, तिहारा मुखरूपी चन्द्र कांतिरूप चांदनी कर मनोहर प्रसन्नता रूप जैसे पूर्व हमें दिखावते हुते तैसें हमें दिखाओ अर यह तिहारा वक्षस्थल स्त्रियों की क्रीडा का स्थानक महासुन्दर ताविषैं चक्रकी धाराने कैसे पग धारा? अर विद्रुम समान तिहारे ये लाल अधर अब क्रीडारूप उत्तर के देनेको क्यों न स्फुरायमान होय हैं ? अब तक बहुत देर लगाई, क्रोध कबहूं न किया, अब प्रसन्न होवो, हम मान करती तो आप प्रसन्न करते मनावते । इन्द्रजीत मेघवाहन स्वर्गलोक से चयकर तिहारे उपजे सो यहां भी स्वर्गलोक कैसे भोग भोगे, अब दोऊ बन्धनविषैं हैं । अर कुम्भकर्ण बन्धन विषैं है सो महापुण्याधिकारी सुभट महागुणवन्त श्रीरामचन्द्र तिनसे प्रीतकर भाई पुत्रको छुड़ावहु । हे प्राणवल्लभ प्राणनाथ ! उठो, हम से हित की बात करो । हे देव ! बहुत बेर सोवना कहा ? राजानिकूं राजनीति विषैं सावधान रहना सो

आप राज्य कार्य विषैं प्रवर्तो। हे सुन्दर ! हे प्राणप्रिय ! हमारे अंग विरहरूप अग्निकर अत्यन्त जरे हैं सो स्नेहरूप जलकर बुझावो। हे स्नेहियोंके प्यारे! तिहारा यह वदनकमल और ही अवस्थाकूं प्राप्त भया है सो याहि देख हमारे हृदयके टूक क्यों न हो जावें, यह हमारा पापी हृदय वज्रका है, दुःखका भाजन जो तिहारी यह अवस्था जानकर विनस न जाय है। यह हृदय महा निर्दई है। हाय विधाता ! हम तेरा कहा बुरा किया जो तैनें निर्दई होयकर हमारे सिरपर ऐसा दुःख डारया। हे प्रीतम ! जब हम मान करतीं तब तुम उर से लगाय हमारा मान दूर करते अर वचनरूप अमृत हमको प्यावते, महा प्रेम जनवाते, हमारा प्रेमरूप कोप ताके दूर करवेके अर्थ हमारे पांयनि पड़ते, सो हमारा हृदय वशीभूत होय जाता, अत्यन्त मनोहर क्रीडा करते। हे राजेश्वर ! हमसे प्रीत करो, परम आनन्द की करणहारी वे क्रीडा हमको याद आवैं हैं सो हमारा हृदय अत्यन्त दाह को प्राप्त होय है। तातैं अब उठो, हम तिहारे पांयनि पड़ैं हैं, नमस्कार करैं हैं। जे अपने प्रियजन होंय तिनसे बहुत कोप न करिये, प्रीति विषैं कोप न सोहै। हे श्रेणिक ! या भांति रावण की राणी ये विलाप करती भई जिनका विलाप सुनकर कौनका हृदय द्रवीभूत न होय ?

(राम-लक्ष्मण आदिके द्वारा विभीषणका शोक-निवारण)

अथानंतर श्री राम लक्ष्मण भामण्डल सुग्रीवादिक सहित अति स्नेह के भरे विभीषण कूं उरसे लगाय आंसू डारते महाकरुणावंत, धैर्य बंधावने विषैं प्रवीण, ऐसे वचन कहते भए—लोक वृत्तांत से सहित हे राजन् ! बहुत रोयवे कर कहा ? अब विषाद तजहु, यह कर्म की चेष्टा तुम कहा प्रत्यक्ष नाहीं जानो हो ? पूर्व कर्म के प्रभावकरि प्रमोदकूं धरते जे प्राणी तिनके अवश्य कष्ट की प्राप्ति होय है ताका शोक कहा ? अर तुम्हारा भाई सदा जगतके हितविषैं सावधान, परम प्रीतिका भाजन, समाधान रूप बुद्धि जिसकी, राजकार्यविषैं प्रवीण, प्रजाका पालक, सर्व शास्त्रनि के अर्थकर धोया है चित्त जाने, सो बलवान् मोहकर दारुण अवस्थाकूं प्राप्त भया अर विनाशकूं प्राप्त भया। जब जीवनिका विनाशकाल आवै तब बुद्धि अज्ञानरूप होय जाय है। ऐसे शुभ वचन श्रीरामने कहे। बहुरि भामण्डल अति माधुर्यताकूं धरे वचन कहते भए। हे विभीषण महाराज ! तिहारा भाई रावण महा उदारचित्तकर रणविषैं युद्ध करता संता वीर मरणकर परलोककूं प्राप्त भया। जाका नाम न गया ताका कछु ही न गया। ते धन्य हैं जे सुभटता कर प्राण तजैं। ते महा पराक्रमके धारक वीर, तिनका कहा शोक ? एक राजा अरिंदम की कथा सुनो।

अक्षपुर नामा नगर तहां राजा अरिंदम जाके महाविभूति सो एक दिन काहू

तरफ से अपने मन्दिर शीघ्र गामी घोड़े चढ़ा अकस्मात् आया सो राणीकूं शृंगाररूप देख अर महल की अत्यन्त शोभा देख रानीकूं पूछया—तुम हमारा आगमन कैसे जाण्या। तब राणीने कही—कीर्तिधरनामा मुनि अवधिज्ञानी आज आहारको आए थे तिनको मैंने पूछ्या कि राजा कब आवेंगे सो तिन्होंने कह्या कि राजा आज अचानक आवेंगे। यह बात सुन राजा मुनिपै गया अर ईर्ष्याकर पूछता भया—हे मुनि ? तुमकूं ज्ञान है तो कहो मेरे चित्तमें क्या है ? तब मुनि ने कहा तेरे चित्तमें यह है कि मैं कब मरूंगा ? सो तू आजसे सातवें दिन वज्रपातसे मरेगा अर विष्टा में कीट होयगा। यह मुनिके वचन सुन राजा अरिंदम घर जाय अपने पुत्र प्रीतिंकर को कहता भया—मैं मरकर विष्टा के घर में स्थूल कीट होऊंगा, ऐसा मेरा रंगरूप होयगा, सो तू तत्काल मार डारियो। ये वचन पुत्रकूं कह आप सातवें दिन मरकर विष्टा में कीडा भया सो प्रीतिंकर कीट के हनिबेकूं गया सो कीट मरनेके भयकरि विष्टामें पैठ गया। तब प्रीतिंकर मुनिपै जाय पूछता भया—हे प्रभो ! मेरे पिताने कही थी जो मैं मल में कीट होऊंगा सो तू हनियो। अब वह कीट मरवेसूं डरै है अर भागै है। तब मुनि ने कही—तू विषाद मत कर। यह जीव जिस गतिमें जाय है वहां ही रम रहे है। इसलिए तू आत्मकल्याण कर जाकरि पापों से छूटै। अर यह जीव सब ही अपने अपने कर्मका फल भोगवैं हैं, कोई काहू का नाहीं। यह संसारका स्वरूप महादुःखका कारण जान प्रीतिंकर मुनि भया, सर्व वांछा तजी। तातैं हे विभीषण ! यह नाना प्रकार जगत् की अवस्था तुम कहा न जानो हो, तिहारा भाई महाशूरवीर दैवयोगसे नारायणने हता। संग्राममें अभिमुख महा प्रधान पुरुष ताका सोच कहा ? तुम अपना चित्त कल्याण में लगाओ, यह शोक दुःख का कारण ताको तजहु। यह वचन कर प्रीतिंकरकी कथा भामण्डल के मुखसे विभीषण ने सुनी। कैसी है प्रीतिंकर मुनिकी कथा, प्रतिबोध देने में प्रवीण अर नाना स्वभाव कर संयुक्त अर उत्तम पुरुषोंकर कहिवे योग्य; सर्व विद्याधरनिने प्रशंसा करी। सुनकर विभीषणरूप सूर्य शोकरूप मेघ पटलसे रहित भया, लोकोत्तर आचारका जाननेवाला।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै विभीषण का शोक निवारण वर्णन करने वाला सतहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥७७॥

अठहत्तरवां पर्व

(अनन्तवीर्य केवली के समीप इन्द्रजीत, मेघनाद तथा मन्दोदरी आदि का दीक्षा लेना)

अथानंतर श्रीरामचन्द्र भामण्डल सुग्रीवादि सबनिसूं कहते भए—जो पंडितों के वैर वैरी के मरण-पर्यन्त ही हैं। अब लंकेश्वर परलोककूं प्राप्त भए, सो यह महावर

हुते, इनके उत्तम शरीरका अग्नि संस्कार करिये। तब सबनि ने प्रमाण करी अर विभीषण सहित राम लक्ष्मण जहाँ मंदोदरी आदि अठारह हजार राणीनि सहित जैसे (मृगी) पुकारै तैसे विलाप करती हुतीं, सो वाहनसे उतर समस्त विद्याधरनि सहित योद्धा वीर तहाँ गए सो वे राम लक्ष्मणकूं देखि अति विलाप करती भईं, तोड़ डारे हैं सर्व-आभूषण जिन्होंने अर धूलकर धूसरा है अंग जिनका। तब श्रीराम महा दयावन्त नाना प्रकार के शुभ वचनविकर सर्व राणीनिकों दिलासा करी, धैर्य बंधाया अर आप सब विद्याधरनिकूं लेकर रावण के लोकाचार गए, कपूर अगर मलयागिरि चंदन इत्यादि नाना प्रकार के सुगन्ध द्रव्यनिकर पद्मसरोवर पर प्रतिहरिका दाह भया। बहुरि सरोवर के तीर श्रीराम तिष्ठे, कैसे हैं राम? महा कृपालु है चित्त जिनका, गृहस्थाश्रम विषै ऐसे परिणाम कोई विरले के होय हैं। बहुरि आज्ञा करी—कुम्भकर्ण इन्द्रजीत मेघनादकूं सब सामंतनि सहित छोडहु। तब कैयक विद्याधर कहते भए—वे महाक्रूर चित्त हैं अर शत्रु हैं, छोडवे योग्य नाहीं, बन्धन ही विषैं मरैं। तब श्रीराम कहते भए—यह क्षत्रियनिका धर्म नाहीं, जिनशासन विषै क्षत्रीनिकी कथा कहा तुमने नाहीं सुनी है। सूतेको, बंधेको, डरते को, शरणागतकूं, दन्त विषैं तृण लेते को, भागे को, बाल वृद्ध स्त्रीनिकूं न हनै, यह क्षत्रीका धर्म शास्त्रनिमें प्रसिद्ध है। तब सबनि कही—आप जो आज्ञा करी सो प्रमाण। राम की आज्ञा-प्रमाण बड़े बड़े योधा नाना प्रकारके आयुधनिकूं धरे तिनके ल्यायवेकूं गए, कुम्भकरण इन्द्रजीत मेघनाद मारीच तथा मन्दोदरीका पिता राजा मय इत्यादि पुरुषनिको स्थूल बन्धन सहित सावधान योधा लिए आवैं हैं सो मानो हाथी-समान चले आवैं हैं। तिनकूं देख वानरवंशी योधा परस्पर बात करते भए—जो कदाचित् इन्द्रजीत मेघनाद कुम्भकरण रावण की चिता जरती देख क्रोध करैं तो कपिवंशविषैं इनके सन्मुख लड़नेकूं कोई समर्थ नाहीं। जो कपिवंशी जहाँ बैठा था तहाँ से उठ न सका। अर भामंडलने अपने सब योधानिकूं कहा जो इन्द्रजीत मेघनादकूं यहाँ तक बन्धे ही अति यत्नसे लाइयो, अबार विभीषणका भी विश्वास नाहीं है, जो कदाचित भाई भतीजेनिको निर्धन देख भाई का वैर चितारै सो याकूं विकार उपजि आवै, भाई के दुःखकर बहुत तप्तायमान है। यह विचार भामंडलादिक तिनकूं अति यत्नकर राम-लक्ष्मण के निकट लाए। सो वे महा विरक्त राग द्वेष रहित, जिनके मुनि होयवेके भाव, महा सौम्य दृष्टिकर भूमि निरखते आए, शुभ हैं आनन जिनके। वे महा धीर यह विचारैं हैं कि या असार संसार सागर विषैं कोई सारताका लवलेश नाहीं, एक धर्मही सब जीवनिका बांधव है सोई सार है। ये मन में विचारैं हैं जो आज बन्धनसूं छूटैं तो दिगंबर होय पाणिपात्र मैं आहार करैं। यह प्रतिज्ञा धरते रामके समीप आए। इन्द्रजीत कुम्भकरणादिक

विभीषणकी ओर आय तिष्ठे, यथायोग्य परस्पर संभाषण भया। बहुरि कुम्भकर्णादिक श्रीराम लक्ष्मणसूं कहते भए—अहो तिहारा परम धैर्य, परम गंभीरता, अद्भुत चेष्टा, देवनिहू कर न जीता जाय ऐसा राक्षसनिका इन्द्र रावण मृत्यु कूं प्राप्त किया, पंडितनिके अति श्रेष्ठ गुणनिका धारक शत्रूहू प्रशंसा-योग्य है। तब श्रीराम लक्ष्मण इनकूं बहुत साता उपजाय अति मनोहर वचन कहते भए। तुम पहिले महा भोग रूप जैसे तिष्ठो थे तैसें तिष्ठो। तब वह महाविरक्त कहते भए—अब इन भोगनिसूं हमारे कछु प्रयोजन नाहीं। यह विष समान महादारुण महामोह के कारण महा भयंकर महा नरक निगोदादि दुःखदाई जिनकर कबहूं जीव के साता नाहीं। ते विचक्षण हैं जे भोग सम्बन्धकूं कबहूं न वांछें। लक्ष्मण ने घना ही कहा तथापि तिनका चित्त भोगासक्त न भया। जैसें रात्रि विषें दृष्टि अंधकाररूप होय अर सूर्य के प्रकाश कर वही दृष्टि प्रकाशरूप होय जाय, तैसे ही कुम्भकर्णादिककी दृष्टि पहिले भोगासक्त हुती सो ज्ञान के प्रकाश कर भोगनितैं विरक्त भई। श्रीराम ने तिनके बन्धन छुडाए अर इन सबनि सहित पद्मसरोवर विषें स्नान किया। कैसा है सरोवर? सुगंधित है जल जाका। ता सरोवर विषें स्नानकर कपि अर राक्षस सब अपने स्थानक गए।

अथानंतर कैयक सरोवर के तीर बैठे, विस्मयकर व्याप्त हैं चित्त जिनका, शूर-वीरों की कथा करते भए। कैयक क्रूर कर्मको उलाहना देते भए, कैयक हथियार डारते भए। कैयक रावण के गुणोंकर पूर्ण है चित्त जिनका सो पुकार कर रुदन करते भए। कैयक कर्मनिकी विचित्र गति का वर्णन करते भए अर कैयक संसार वनकूं निंदते भए। कैसा है संसार-वन? जा थकी निकसना अति कठिन है। कैयक मार्ग विषें अरुचि को प्राप्त भए, राज्य लक्ष्मीकूं महाचंचल निरर्थक जानते भए अर कैयक उत्तम बुद्धि अकार्य की निंदा करते भए। कैयक रावणको गर्व की भरी कथा करते भए, श्रीराम के गुण गावते भए, कैयक लक्ष्मण की शक्ति का गुण वर्णन करते भए, कैयक सुकृतके फल की प्रशंसा करते भए, निर्मल है चित्त जिनका। घर २ मृतकों को क्रिया होती भई, बाल वृद्ध सबके मुख यही कथा। लंका विषें सर्व लोक रावण के शोककरि अश्रुपात डारते चातुर्मास्य करते भए। शोक कर द्रवीभूत भया है हृदय जिनका, सकल लोकनि के नेत्रनिसूं जल के प्रवाह बहे सो पृथ्वी जलरूप होय गई अर तत्वोंकी गौणता दृष्टि पड़ी मानों नेत्रोंके जल के भय कर आताप छुपकर लोकोंके हृदय विषें पैठा। सर्व लोकों के मुख से यह शब्द निकसे-धिक्कार! धिक्कार! अहो बड़ा कष्ट भया, हाय हाय! यह क्या अद्भुत भया, या भांति लोक विलाप करैं हैं, आंसू डारै हैं। कैयक भूमि विषें शय्या करते भए, मौन धार मुख नीचा करते भए, निश्चल है

शरीर जिनका मानों काष्ठ के हैं। कैयक शस्त्रोंकूं तोड़ डारते भए, कैयकों नै आभूषण डार दिए अर स्त्री के मुख कमल से दृष्टि संकोची। कैयक अति दीर्घ उष्ण निस्वास नाखै हैं सो कलुष होय गए अधर जिनके मानों दुःख के अंकुर हैं अर कैयक संसार के भोगनि से विरक्त होय मन विषैं जिनदीक्षा का उद्यम करते भए।

अथानंतर पिछले पहर महासंघ सहित अनंतवीर्य नामा मुनि लंका के कुसुमायुध नामा वन विषैं छप्पन हजार मुनिसहित आए। जैसे तारनिकर मंडित चन्द्रमा सोहै तैसें मुनिनिकर मंडित सोहते भए। जो ये मुनि रावणके जीवते आते तो रावण मारा न जाता, लक्ष्मण के अर रावण के विशेष प्रीति होती। जहाँ ऋद्धिधारी मुनि तिष्ठैं तहाँ सर्व मंगल होवैं अर केवली विराजें वहां चारों ही दिशाओं में दोय सौ योजन पृथ्वी स्वर्ग तुल्य निरुपद्रव होय अर जीवनिके वैर भाव मिट जावें। जैसे आकाशविषैं अमूर्तत्व अवकाश-प्रदानता निर्लेपता, पवनविषैं सुवीर्यता निसंगता, अग्नि विषैं उष्णता, जल विषैं निर्मलता अर पृथ्वी विषैं सहनशीलता तैसे स्वतः स्वभाव महामुनि लोककूं आनन्ददायक होय हैं? अनेक अद्भुत गुणों के धारक महामुनि तिनसहित स्वामी विराजे। गौतम स्वामी कहै हैं-हे श्रेणिक! तिनके गुण कौन वर्णन कर सकै, जैसें स्वर्णका कुंभ अमृतका भरया अति सोहै तैसें महामुनि अनेक ऋद्धि के भरे सोहते भए। विजंतु स्थानक वहां एक शिला ता ऊपर शुक्लध्यान धर तिष्ठे सो ताही रात्रिविषै केवलज्ञान उपज्या, जिनके परम अद्भुत गुण वर्णन किए पापनिका नाश होय। तब भवनवासी-असुरकुमार नागकुमार गरुडकुमार विद्युतकुमार अग्निकुमार पवनकुमार मेघकुमार द्वीपकुमार उदधिकुमार दिक्कुमार ये दश प्रकार तथा अष्ट प्रकार व्यंतर-किन्नर किंपुरुष महोरग गंधर्व यक्ष राक्षस भूत पिशाच तथा पंच प्रकार ज्योतिषी—सूर्य चन्द्र नक्षत्र तारा अर सोलह स्वर्ग के सब ही स्वर्गवासी ये चतुरनिकाय के देव सौधर्म इन्द्रादिक धातुकीखंड द्वीप विषैं श्रीतीर्थंकर देव का जन्म भया हुता सो सुमेरुपर्वतविषैं क्षीरसागर के जलकरि स्नान कराय जन्मकल्याणक का उत्सवकर प्रभुकूं माता पिताकूं सौंपि तहाँ उत्सवसहित तांडव नृत्यकर प्रभुकी बारबार स्तुति करतें भए। कैसे हैं प्रभु? बाल अवस्थाकूं धरै हैं परन्तु बाल अवस्था की अज्ञान चेष्टासूं रहित हैं। तहाँ जन्मकल्याणक का समय साधकर सब देव लंकाविषैं अनंतवीर्य केवली के दर्शनकूं आए। कैयक विमान चढ़े आए, कैयक राज-हंसनिपर चढे आए अर कैयक अश्व सिंह व्याघ्रादिक अनेक वाहननि पर चढ़े आए। ढोल मृदंग नगारे वीण बांसुरी झांझ मंजीरे शंख इत्यादि नाना प्रकार के वादित्र बजावते, मनोहर गान करते, आकाश मंडलकूं आच्छादते, केवली के निकट महाभक्तिरूप अर्धरात्रि के समय आए। तिनके विमाननिकी ज्योतिकर प्रकाश होय गया अर वादित्रनिके शब्दकर

दसों दिशा व्याप्त होय गई, राम लक्ष्मण यह वृत्तांत जान हर्षकूं प्राप्त भए, समस्त वानरवंशी अर राक्षसवंशी विद्याधर इन्द्रजीत कुम्भकर्ण मेघनाद आदि सब राम लक्ष्मण के संग केवली के दर्शन के लिए जायवेकूं उद्यमी भए। श्रीराम लक्ष्मण हाथी पर चढ़े अर कैयक राजा रथ पर चढ़े, कैयक तुरंगनिपर चढे, छत्र चमर ध्वजा करि शोभायमान महाभक्तिकर संयुक्त, देवनि सारिखे महासुगंध हैं शरीर जिनके, अति उदार अपने वाहननितैं उतर महाभक्तिकर प्रणाम करते स्तोत्र पाठ पढ़ते केवली के निकट आए। अष्टांग दण्डवत कर भूमिविषैं तिष्ठे, धर्म श्रवणकी है अभिलाषा जिनके, केवली के मुखतैं धर्म श्रवण करते भए। दिव्यध्वनिमें यह व्याख्यान भया—जो ये प्राणी अष्ट कर्मसे बंधे महा दुःखके चक्रपर चढे चतुर्गति विषैं भ्रमण करै हैं, आर्त्त रौद्र ध्यानकर युक्त नाना प्रकारके शुभाशुभ कर्मनिकूं करैं हैं, महामोहनीय कर्म ने ये जीव बुद्धिरहित किए तातैं सदा हिंसा करै हैं, असत्य वचन कहै हैं, पराए मर्मभेदका वचन कहै हैं, परनिंदा करैं हैं, परद्रव्य हरैं हैं, परस्त्रीका सेवन करैं हैं, प्रमाणरहित परिग्रहकूं अंगीकार करै हैं, बढ्या है महालोभ जिनके। वे कैसे हैं? महाविद्य कर्मकर शरीर तज अधोलोक विषैं जाय हैं। तहाँ महा दुःखके कारण सप्त नरक तिनके नाम—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, महातमप्रभा, सदा महादुःखके कारण सप्त नरक अंधकार युक्त दुर्गन्ध, सूंघा न जाय, देख्या न जाय, स्पर्शा न जाय महाभयंकर महा विकराल है भूमि जिनकी, सदा दुर्वचन त्रास नाना प्रकार के छेदन भेदन तिनकर सदा पीडित नारकी खोटे कर्मनितैं पाप बन्धकर बहुत काल सागरनि पर्यंत महा तीव्र दुःख भोगवै हैं। ऐसा जानि पंडित विवेकी पापबन्धतैं रहित होय धर्म विषैं चित्त धरहु। कैसे हैं विवेकी? व्रत नियम के धरणहारे, निःकपट स्वभाव, अनेक गुणनिकर मंडित, वे नाना प्रकार के तपकर स्वर्गलोककूं प्राप्त होय हैं। बहुरि मनुष्यदेह पाय मोक्ष प्राप्त होय हैं अर जे धर्मकी अभिलाषा से रहित हैं, ते कल्याण के मार्गतैं रहित बारंबार जन्म मरण करते महादुःखी संसारविषैं भ्रमण करैं हैं। जे भव्यजीव सर्वज्ञ वीतरागके वचनकर धर्मविषैं तिष्ठै हैं ते मोक्षमार्गी शील सत्य शौच सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कर जब लग अष्ट कर्म का नाश न करैं तब लग इन्द्र अहमिंद्र पदके उत्तम सुखको भोगवै हैं। नाना प्रकार के अद्भुत सुख भोग वहाँसे चयकर महा राजाधिराज होय, बहुरि ज्ञान पाय जिनमुद्रा धर महा तपकर केवलज्ञान उपाय अष्ट कर्म रहित सिद्ध होय हैं, अनन्त अविनाशी आत्मिक स्वभावमई परम आनंद भोगवैं हैं। यह व्याख्यान सुन इन्द्रजीत मेघनाद अपने पूर्व भव पूछते भए। सो केवली कहै हैं—एक कौशाम्बी नामा नगरी तहाँ दो भाई दलिद्री-एक का नाम प्रथम, दूजेका नाम पश्चिम। एक दिन विहार करते भवदत्त नामा मुनि वहाँ आए सो यह दोनों भाई धर्म

श्रवणकर ग्यारमो प्रतिमा के धारक क्षुल्लक श्रावक भए। सो मुनिके दर्शनकू कौशांबी नगरी का इन्दु नामा राजा आया। सो महाज्ञानी मुनि राजाकूं देख जान्या-याके मिथ्यादर्शन दुर्निवार है। अर ताही समय नंदोनामा श्रेष्ठी महा जिनभक्त मुनिके दर्शनकूं आया, ताका राजा ने आदर किया। ताकूं देख प्रथम अर पश्चिम दोऊ भाईनिमें से छोटे भाई पश्चिम ने निदान किया जो मैं या धर्मके प्रसादकरि नंदी सेठ के पुत्र होऊं। सो बड़े भाईने अर गुरुने बहुत संबोध्या जो जिनशासन विषैं निदान महानिंद्य है, सो यह न समझा, कुबुद्धि निदानकर दुःखित भया, मरणकर नंदीके इंदुमुखी नामा स्त्री ताके गर्भ विषैं आया। सो गर्भविषैं आवते ही बड़े बड़े राजानिके स्थानकनि विषैं कोटका निपात, दरवाजेनिका निपात इत्यादि नानाप्रकार के चिन्ह होते भए। बड़े बड़े राजा याकूं नाना प्रकार के निमित्तकर महानर जान जन्महीसे अति आदर संयुक्त दूत भेज भेज कर द्रव्य पठाय सेवते भए। यह बड़ा भया, याका नाम रतिवर्धन, सो सब राजा याकूं सेवैं, कौशांबी नगरी का राजा इंदु भी सेवा करै, नित्य आय प्रणाम करै। या भाँति यह रतिवर्धन महाविभूति कर संयुक्त भया। अर बड़ा भाई प्रथम मरकर स्वर्गलोक गया सो छोटे भाई के जीवकूं संबोधवे के अर्थ क्षुल्लकका स्वरूप धर आया। सो यह मदोन्मत्तराजा मदकर अंधा होय रह्या सो क्षुल्लककूं दुष्ट लोकनिकर द्वारविषैं पैठने न दिया। तब देवने क्षुल्लकका रूप दूर कर रतिवर्धन का रूप किया, तत्काल ताका नगर उजाड़ उद्यान कर दिया अर कहता भया—अब तेरी कहा वार्ता? तब यह पांयनि परि स्तुति करता भया। तब ताकूं सकल वृत्तांत कह्या जो आपां दोऊ भाई हुते। मैं बड़ा तू छोटा सो क्षुल्लकके व्रत धारे, सो तैं नंदी सेठकूं देख निदान किया सो मरि नंदीके घर उपज्या, राज विभूति पाई अर मैं स्वर्गविषैं देव भया। यह सब वार्ता सुनि रतिवर्धनकूं सम्यक्त्व उपजा, मुनि भया अर नंदीकूं आदि दे अनेक राजा रतिवर्धन के संग मुनि भए। रतिवर्धन तप करि जहां भाई का जीव देव हुता तहां ही देव भया। बहुरि दोऊ भाई स्वर्गतैं चयकर राजकुमार भए। एकका नाम उर्व दूजे का नाम उर्वस, राजा नरेंद्र रानी विजया के पुत्र। बहुरि जिनधर्म का आराधन करि स्वर्गविषैं देव भए। वहांसे चयकरि तुम दोऊ भाई रावणके रानी मंदोदरी ताके इंद्रजीत मेघनाद पुत्र भए। अर नंदीसेठ की इंदुमुखी-रतिवर्धनकी माता सो जन्मांतरविषैं मंदोदरी भई। पूर्वजन्मविषैं स्नेह हुता सो अब हू माता का पुत्र से अति स्नेह भया। कैसी हैं मंदोदरी? जिन धर्म विषैं आसक्त है चित्त जाका। यह अपने पूर्व भव सुन दोऊ भाई संसार की मायातैं विरक्त भए, उपजा है महा वैराग्य जिनकूं, जैनेश्वरी दीक्षा आदरी। और कुम्भकर्ण मारीच राजा मय अर और हू बड़े २ राजा संसारतैं महाविरक्त होय मुनि भए, तजे हैं विषय कषाय जिन्होंने, विद्याधर राजकी

विभूति तृणवत तजी, महा योगीश्वर होय अनेक ऋद्धि के धारक भए, पृथ्वी विषैं विहार करते भव्यनिकूं प्रतिबोधते भए। श्रीमुनिसुव्रतनाथ के मुक्ति भए पीछे तिनके तीर्थविषैं यह बड़े बड़े महापुरुष भए, परम तप के धारक अनेक ऋद्धिसंयुक्त। ते भव्यजीवनिकूं बारंबार वंदिवे योग्य हैं। अर मंदोदरी पति अर पुत्र दोउनिके विरहकरि अति व्याकुल भई, महा शोक कर मूर्च्छाकूं प्राप्त भई। बहुरि सचेत होय कुररी (मृगी) की न्याईं विलाप करती भई। दु:खरूप समुद्र विषैं मग्न होय, हाय पुत्र! इंद्रजीत मेघनाद! यह क्या उद्यम किया, मैं तिहारी माता अतिदीन ताहि क्यों तजी? यह तुमको कहा योग्य जो दुःखकरि तप्तायमान माता ताका समाधान किए बगैर उठ गए। हाय पुत्र हो! तुम कैसें मुनिव्रत धारोगे? तुम देवनि सारिखे महा भोगी शरीरकूं लडावनहारे कठोर भूमि पर कैसे शयन करोगे? समस्त विभव तजा, समस्त विद्या तजी, केवल अध्यात्म विषैं तत्पर भए। अर राजा मय मुनि भया, ताका शोक करै है—हाय पिता! यह कहा किया? जगत् तजि मुनिव्रत धारया, तुम मोतैं तत्काल ऐसा स्नेह क्यों तज्या? मैं तिहारी बालिका, मोतैं दया क्यों न करी, बाल्यावस्थाविषैं मोपर तिहारी अति कृपा हुती। मैं पिता अर पुत्र अर पति सबसे रहित भई, स्त्रीके यही रक्षक हैं। अब मैं कौन के शरण जाऊं, मैं पुन्यहीन महा दुःखकूं प्राप्त भई? या भांति मंदोदरी रुदन करै, ताका रुदन सुन सब ही कूं दया उपजै, अश्रुपात करि चातुर्मास किया। ताहि शशिकांता आर्यिका उत्तम वचन करि उपदेश देती भई—हे मूर्खिणी! कहा रोवै? या संसारचक्रविषैं जीवनिने अनंत भव धारे, तिनमें नारकी अर देवनिके तो संतान नाहीं अर मनुष्य व तिर्यंचनिके है सो तैं चतुर्गति भ्रमण करते मनुष्य तिर्यंचनिके भी अनंत जन्म धारे, तिन विषैं तेरे अनेक पिता पुत्र बांधव भए, तिनकूं जन्म जन्म में रुदन किया, अब कहा विलाप करै है। निश्चलता भज, यह संसार असार है, एक जिनधर्म ही सार है। तू जिनधर्मका आराधन कर, दुःखसे निवृत होहु। ऐसे प्रतिबोध के कारण आर्यिका के मनोहर वचन सुन मंदोदरी महा विरक्त भई। उत्तम हैं गुण जा विषैं, समस्त परिग्रह तजकरि एक शुक्ल वस्त्र धारि आर्यिका भई। कैसी है मन्दोदरी? मन वचन कायकरि निर्मल जो जिनशासन ताविषैं अनुरागिणी है अर चन्द्रनखा रावण की बहिन हु याही आर्यिका के निकट दीक्षा धरि आर्यिका भई। जा दिन मन्दोदरी आर्यिका भई ता दिन अड़तालीस हजार आर्यिका भई।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं इन्द्रजीत मेघनाद कुम्भकरण का वैराग्य अर मन्दोदरी आदि रानीनिका वर्णन करनें वाला अठहत्तरवां पर्व पूर्ण भया ॥७८॥

उन्नासीवां पर्व

(राम सीता का मिलाप)

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे राजन् ! अब श्रीराम लक्ष्मण का महाविभूतिसों लंकाविषें प्रवेश भया सो सुन। महा विमाननिके समूह अर हाथीनिकी घटा अर श्रेष्ठ तुरंगनि के समूह अर मन्दिर समान रथ अर विद्याधरनि के समूह अर हजारों देव तिनकरि युक्त दोऊ भाई महाज्योतिकूं धरे लंकामें प्रवेश करते भए। तिनकूं लोक देखि अति हर्षित भए, जन्मान्तर के धर्म के फल प्रत्यक्ष देखते भए। राजमार्ग विषें जाते श्रीराम लक्ष्मण तिनकूं देख नगर के नर अर नारीनिको अपूर्व आनन्द भया। फूलि रहे हैं मुख जिनके, स्त्री झरोखानिविषें बैठी जालीनिमें होय देखे हैं। कमल समान हैं मुख जिनके, महा कौतुककरि युक्त परस्पर वार्ता करैं हैं—हे सखी ! देखहु—यह राम राजा दशरथका पुत्र, गुणरूप रत्ननिकी राशि, पूर्णिमा के चन्द्रमा समान है वदन जाका, कमल-समान हैं नेत्र जाके, अद्भुत पुण्यकर यह पद पाया है, अति प्रशंसा योग्य है आकार जाका, धन्य है वह कन्या जिन्होंने ऐसे वर पाए। जानें यह वर पाए तानें कीर्तिका थम्भ लोकविषें थाप्या, जानें जन्मान्तर विषें धर्म आचरया होय सो ही ऐसा नाथ पावै, ता समान अन्य नारी कौन ? राजा जनककी पुत्री महा कल्याणरूपिणी जन्मान्तर विषें महा पुण्य उपार्जे हैं तातैं ऐसे पति याहि जैसें शची इन्द्र के तैसें सीता राम के। अर यह लक्ष्मण वासुदेव चक्रपाणि सोभै है जाने असुरेन्द्र-समान रावण रण विषें हता, नीलकमल समान कांति जाकी अर गौर कांति कर संयुक्त जो बलदेव श्री रामचन्द्र तिन सहित ऐसे सोहै जैसे प्रयाग विषें गंगा यमुनाके प्रवाह का मिलाप सोहै। अर यह राजा चन्द्रोदय का पुत्र विराधित है जानें लक्ष्मणसूं प्रथम मिलापकर विस्तीर्ण विभूति पाई। अर यह राजा सुग्रीव किहकंधापुरका धनी महा पराक्रमी जाने श्रीरामदेवसूं परम प्रीति जनाई अर यह सीताका भाई भामण्डल-राजा जनकका पुत्र, चन्द्रगति विद्याधर के पल्या सो विद्याधरनि का इन्द्र है। अर यह अंगदकुमार राजा सुग्रीव का पुत्र जो रावणकूं बहुरूपिणी विद्या साधते विघ्नकूं उद्यमी भया। अर है सखी ! यह हनुमान महासुन्दर उत्तंग हाथीनिके रथ चढ़या पवनकरि हालै है, वानरके चिन्हकी ध्वजा जाके, जाहि देखि रणभूमि विषें शत्रु पलाय जांय सो राजा पवनका पुत्र अंजनीके उदरविषें उपज्या, जानै लंकाके कोट दरवाजे ढाहे। ऐसी वार्ता परस्पर स्त्रीजन करै हैं तिनके वचनरूप पुष्पनि की मालानिकरि पूजित जो राम सो राजमार्ग होय आगे आए। एक चमर ढारती जो स्त्री ताहि पूछया—हमारे विरह के दुःख करि तप्तायमान जो भामंडल की बहिन सो कहाँ

तिष्ठै है ? तब वह रत्वनिके चूडा की ज्योति करि प्रकाशरूप है भुजा जाकी सो अंगुरी की समस्याकरि स्थानक दिखावती भई—हे देव! यह पुष्प प्रकीर्णनामा गिरि वीझरनानिके जलकरि मानों हास्य ही करै है, तहाँ नन्दनवन-समान महा मनोहर वन, ताविषैं राजा जनककी पुत्री, कीर्ति शील है परिवार जाके सो तिष्ठै है ।

या भाँति रामजी से चमर ढारती स्त्री कहती भई । अर सीता के समीप जो ऊर्मिका नामा सखी सब सखिनिविषैं प्रीतिकी भजनहारी सो अंगुरी पसार सीताकूं कहती भई—हे देवी ! चन्द्रमा समान है छत्र जाका अर चाँद सूर्य समान हैं कुण्डल जाके अर शरदके वीझरने समान हार जाके सो पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र तिहारे वल्लभ आए । तिहारे वियोगकरि मुख विषैं अत्यन्त खेदकूं धरे, हे कमलनेत्र ! जैसे दिग्गज आवै तैसे आवैं हैं। यह वार्ता सुन सीता ने प्रथम तो स्वप्न समान वृतांत जाण्या । बहुरि आप अति आनन्द को धरे जैसैं मेघपटल से चन्द्र निकसै तैसैं हाथीतैं उतरि आए, जैसैं रोहिणी के निकट चन्द्रमा आवै तैसैं आए । तब सीता नाथकूं निकट आया जान अति हर्षकी भरी उठकरि सन्मुख आई । कैसी है सीता ? धूरकरि धूसर है अंग अर केश बिखर रहे हैं, श्याम परि गए हैं होंठ जाके, स्वभाव ही करि कृश हुती अर पति के वियोगकरि अत्यन्त कृश भई, अब पतिके दर्शनकरि, उपज्या है अति हर्ष जाकूं, प्राण की आश बँधी, मानो स्नेह की भरी शरीर की कांतिकरि पतिसूं मिलाप करै है अर मानो नेत्रनिकी ज्योतिरूप जलकरि पतिकूं स्नान करावै है अर क्षणमात्र विषैं बढ़ गई है शरीर की लावण्यतारूप सम्पदा अर हर्ष के भरे जे विश्वास तिनकरि मानों अनुराग का बीज बोवै है । कैसी है सीता ? रामके नेत्रनिकूं विश्राम की भूमि अर पल्लव-समान जे हस्त तिनकरि जीते हैं लक्ष्मी के कर कमल जानैं, सौभाग्यरूप रत्वनिकी खान, सम्पूर्ण चन्द्रमा-समान है वदन जाका, चन्द्र कलंकी यह निःकलंक, बिजुरी समान है कांति जाकी, वह चंचल यह निश्चल, प्रफुल्लित कमल-समान हैं नेत्र जाके, मुखरूप चन्द्र की चन्द्रिकाकरि अति शोभाकूं प्राप्त भई है । यह अद्भुत वार्ता है कि कमल तो चन्द्रकी ज्योतिकरि मुदित होय है अर याके नेत्र कमल मुख चन्द्र की ज्योतिकरि प्रकाशरूप हैं, कलुषतारहित उन्नत हैं स्तन जाके मानों कामके कलश ही हैं, सरल है चित्त जाका; सो कौशल्या का पुत्र रावी विदेह की पुत्रीकूं निकट आवती देखी, कथन विषैं न आवै ऐसे हर्षकूं प्राप्त भया । अर यह रति समान सुन्दरी रमणकूं आवता देख विनयकरि हाथ जोड़ खड़ी, अश्रुपात करि भरे हैं नेत्र जाके, जैसैं शची इन्द्र के निकट आवै, रति काम के निकट आवै, दया जिनधर्म के निकट आवै, सुभद्रा भरत के निकट आवै, तैसैं ही सीता सती राम के समीप आई, सो घने दिवसि का वियोग ताकरि खेदखिन्न रामने मनोरथ के सैकड़ानिकर पाया है नवीन

संगम आवे सो महाज्योतिका धरणहारा, सजल हैं नेत्र जाके, भुजबन्धनकरि शोभित हैं भुजा, तिनकरि प्राणप्रियासूं मिलता भया। ताहि उरसूं लगाय सुख के सागर विषैं मग्न भया, उरसूं जुदी न कर सके मानों विरह से डरै है। अर वह निर्मल चित्तकी धरणहारी प्रीति के कंठ विषै अपनी भुजपांसि डारि ऐसी सोहती भई जैसें कल्पवृक्षनिसूं लिपटि कल्पबेलि सोहै, दोउनिके अंग विषें रोमांच भया, परस्पर मिलापकरि दोउ ही अति सोहते भए। ते देवनिके युगल समान हैं जैसें देव देवांगना सोहैं तैसें सोहते भए। सीता अर राम का समागम देखि देव प्रसन्न भए सो वे आकाशतें दोनोंनिपर पुष्पनिकी वर्षा करते भए, सुगन्ध जल की वर्षा करते भए अर ऐसे वचन मुखतें उचारते भए--अहो अनुपम है शील जाका ऐसो शुभचित्त सीता धन्य है, याकी अचलता गंभीरता धन्य है, व्रत शील की मनोज्ञता भी धन्य है, जाका निर्मलपन धन्य है। सतीविविषै उत्कृष्ट यह सीता, जानें मनहूंकरि द्वितीय पुरुष न इच्छया, शुद्ध है नियम व्रत जाका। या भाँति देवनि ने प्रशंसा करी, ताही समय अति भक्तिका भरया लक्ष्मण आय सीता के पाँयनि परया, विनय करि संयुक्त सीता अश्रुपात डारती ताहि उरसूं लगाय कहती भई--हे वत्स! महाज्ञानी मुनि कहते हुते जो यह वासुदेव पद का धारक है सो प्रगट भया अर अर्धचक्री पदका राज तेरे आया, निर्ग्रंथके वचन अन्यथा न होंय। अर तेरे यह बड़े भाई पुरुषोत्तम बलदेव, जिन्होंने विरहरूप अग्निविषैं जरती जो मैं सो विकासी। बहुरि चंद्रमा समान है ज्योति जाकी ऐसा भाई भामण्डल बहिनके समीप आया, ताहि देखि अति मोह करि मिली। कैसा है भाई? महा विनयवान है अर रणमें भला दिखाया है पराक्रम जाने। अर सुग्रीव हनुमान नल नील अंगद विराधित चंद्र सुषेण जांबव इत्यादिक बड़े-बड़े विद्याधर अपना नाम सुनाय वंदना अर स्तुति करते भए, नाना प्रकारके वस्त्र आभूषण कल्पवृक्षनि के पुष्पनिकी माला सीता के चरण के समीप स्वर्ण के पात्र विषैं मेल भेंट करते भए अर स्तुति करते भए--हे देवी! तुम तीन लोकविषैं प्रसिद्ध हो, महा उदारताकूं धरो हो, गुण सम्पदाकर सबनिमें बड़ी हो, देवनिकरि स्तुति करने योग्य हो अर मंगलरूप है दर्शन तिहारा, जैसें सूर्यकी प्रभा सूर्यसहित प्रकाश करै तैसें तुम श्रीरामचंद्र सहित जयवंत होहु।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राम और सीता का मिलाप वर्णन करने वाला उन्यासीवां पर्व पूर्ण भया ॥७९॥

अस्सीवां पर्व

(विभीषण का अपने दादा आदि को सम्बोधन)

अथानंतर सीता के मिलापरूप सूर्यके उदयकरि फूल गया है मुख कमल जाका,

ऐसे जो राम सो अपने हाथकरि सीता का हाथ गह उठे, ऐरावत गजसमान जो गज तापर सीतासहित आरोहण किया, मेघ समान वह गज ताकी पीठपर जानकीरूप रोहणी करि युक्त रामरूप चंद्रमा सोहते भए, समाधान रूप है बुद्धि जिनकी, दोऊ अति प्रीतिके भरे प्राणिनिके समूहकूं आनंदके करता बड़े-बड़े अनुरागी विद्याधर लार, लक्ष्मण लार, स्वर्ग-विमान तुल्य रावण का महल तहां श्रीराम पधारे। रावणके महल के मध्य श्रीशांतिनाथ का मंदिर अति सुन्दर, तहां स्वर्णके हजारों थंभ नाना प्रकारके रत्नोंकरि मंडित मंदिरकी मनोहर भाँति जैसें महाविदेह के मध्य सुमेरुगिरि सोहै तैसें रावण के मंदिर विषै श्रीशांतिनाथका मंदिर सोहै। जाहि देखे नेत्र मोहित हो जाय, तहां घंटा बाजै है, ध्वजा फरहरें हैं, महा मनोहर वह शांतिनाथ का मंदिर वर्णन विषैं न आवै। श्रीराम हाथीतैं उतरे, नागेन्द्र समान है पराक्रम जाका, प्रसन्न नेत्र महालक्ष्मीवान जानकी सहित किंचित् काल कायोत्सर्गकी प्रतिज्ञा करी, प्रलंबित हैं भुजा जाकी, महा प्रशांत हृदय सामायिककूं अंगीकार करि हाथ जोड़ि शांतिनाथ स्वामीका स्तोत्र समस्त अशुभ कर्म का नाशक पढते भए—हे प्रभो! तिहारे गर्भावतारविषैं सर्वलोकविषैं शांति भई, महा कांतिकी करणहारी, सर्व रोग की हरणहारी, जाकरि सकल जीवनिकूं आनंद उपजै। अर जन्मकल्याणकविषैं इंद्रादिक देव महा हर्षित होय आए, क्षीरसागर के जलकरि सुमेरुके पर्वत पर तिहारा जन्माभिषेक भया अर तुमने चक्रवर्ती पद धर जगत् का राज्य किया, बाह्य शत्रु बाह्य चक्र से जीते अर मुनि होय माहिले मोह रागादिक शत्रु ध्यानकरि जीते, केवलबोध लह्या, जन्म जरा मरण से रहित जो शिवपुर कहिए मोक्ष ताका तुम अविनाशी राज्य लिया, कर्मरूप वैरी ज्ञान शास्त्रतै विराकरण किए। कैसे हैं कर्मशत्रु ? सदा भव-भ्रमणके कारण अर जन्म जरा मरण भयरूप आयुधनिकर युक्त सदा शिवपुर पंथ के निरोधक। कैसा है वह शिवपुर ? उपमारहित नित्य शुद्ध जहाँ परभाव का आश्रय नाहीं, केवल निजभावका आश्रय है अत्यन्त दुर्लभ सो तुम आप निर्वाणरूप औरनिकूं निर्वाणपद सुलभ करो हो, सर्व जगतकूं शान्ति के कारण हो। हे शान्तिनाथ ! मन वचन कायकरि नमस्कार तुमकूं। हे जिनेश ! हे महेश ! अत्यन्त शान्त दशाकूं प्राप्त भए हो, स्थावर जंगम सर्व जीवनि के नाथ हो, जो तिहारे शरण आवै तिनके रक्षक हो, समाधि-बोधि के देनहारे तुम एक परमेश्वर, सर्व के गुरु, सब के बान्धव हो। मोक्षमार्ग के प्ररूपणहारे, सर्व इन्द्रादिक देवनिकर पूज्य, धर्मतीर्थके कर्ता हो। तिहारे प्रसादकरि सर्व दुःखसे रहित जो परमस्थानक ताहि मुनि राज पावैं हैं। हे देवाधिदेव ! नमस्कार है तुमकूं, सर्व कर्म विलय किया है। हे कृतकृत्य ! नमस्कार है तुमकूं, पाया है परम शान्तिपद जिन्होंने, तीनलोककूं शान्ति के कारण, सकल स्थावर जंगम जीवनि के नाथ, शरणागतपालक,

समाधिबोधके दाता, महाकांतिके धारक हे प्रभो ! तुम ही गुरु, तुम ही बांधव, तुम ही मोक्षमार्गके नियन्ता परमेश्वर, इन्द्रादिक देवविकरि पूज्य, धर्मतीर्थके कर्ता जिनकरि भव्य जीवनिकूं सुख होय, सर्व दुःखके हरणहारे, कर्मनिके अन्तक नमस्कार तुमकूं । हे लब्धलम्य ! नमस्कार तुमकूं । लब्धलम्य कहिए—पाया है पायवे योग्य पद जिन्होंने, महाशान्त स्वभावविषें विराजमान, सर्व दोष रहित हे भगवान् ! कृपा करहु, वह अखंड अविनाशी पद हमें देवहु, इत्यादि महास्तोत्र पढ़ते कमल-नयन श्रीराम प्रदक्षिणा देकर वन्दना करते भए। महा विवेकी, पुण्य कर्मविषें सदा प्रवीण। अर रामके पीछे, नम्रीभूत है अंग जाका, दोऊ कर जोड़ महा समाधानरूप जानकी स्तुति करती भई। श्रीरामके शब्द महा दुंदुभी समान अर जानकी महा मिष्ट कोमल बीणा समान बोलती भई। अर विशल्या-सहित लक्ष्मण स्तुति करते भए अर भामण्डल सुग्रीव तथा हनुमान मंगल स्तोत्र पढ़ते भए, जोड़े हैं करकमल जिनने अर जिनराजविषें पूर्ण है भक्ति जिनकी, महा गान करते मृदंगादि बजावते महाध्वनि करते भए, सो मयूर मेघ की ध्वनि जानि नृत्य करते भए। बारम्बार स्तुति प्रणामकरि जिनमन्दिर विषें यथायोग्य तिष्ठे। ता समय राजा विभीषण अपने दादा सुमाली अर तिनके लघुवीर सुमाल्यवान अर सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा—रावणके पिता तिनकूं आदि दे अपने बड़े तिनका समाधान करता भया। कैसा है विभीषण ? संसार की अनित्यता के उपदेश विषें अत्यन्त प्रवीण सो बड़ेनिसूं कहता भया—हे तात ! ए सकल जीव अपने उपार्जे कर्मनिकूं भोगवें हैं, तातें शोक करना वृथा है। अर अपना चित्त समाधान करहु, आप जिन-आगम के वेत्ता महा शांत चित्त अर विचक्षण हो, औरनिकूं उपदेश देयवे योग्य, आपकूं हम कहा कहैं। जो प्राणी उपज्या है सो अवश्य मरणकूं प्राप्त होय है अर यौवन पुष्पनिकी सुगन्धता-समान क्षण-मात्र विषें और रूप होय है अर लक्ष्मी पल्लवनिकी शोभा समान शीघ्र ही और रूप होय है अर विजुरी के चमत्कार समान यह जीतव्य है अर पानी के बुदबुदा समान बंधुनि का समागम है अर सांझ के बादर के रंग समान यह भोग हैं अर यह जगत्‌की करणी स्वप्न की क्रिया समान है। जो यह जीव पर्यायार्थिक नयकरि मरण न करै तो हम भवांतरतें तिहारे वंशविषें कैसे आवते ? हे तात ! अपना ही शरीर विनाशीक है तो हितू जनका अत्यन्त शोक काहेकूं करिए, शोक करना मूढ़ता है। सत्पुरुषनिको शोकके दूर करिवे अर्थि संसार का स्वरूप विचारना योग्य है। देखे सुने अनुभवे जे पदार्थ वे उत्तम पुरुषनिकूं शोक उपजावें परन्तु विशेष शोक न करना। क्षणमात्र भया तो भया, शोककरि बांधवका मिलाप नाहीं, बुद्धि भ्रष्ट होय है, तातें शोक न करना। यह विचारना—या असार संसार

विषैं कौन-कौन सम्बन्ध भए, या जीव के कौन-कौन बांधव भए, ऐसा जानि शोक तजना, अपनी शक्ति-प्रमाण जिनधर्मका सेवन करना। यह वीतराग का मार्ग संसार सागर का पार करणहारा है सो जिनशासनविषैं चित्त धरि आत्मकल्याण करना इत्यादि मनोहर मधुर वचनकरि विभीषण ने अपने बड़ेनिका समाधान किया।

(राम का सर्व सेना सहित विभीषण के घर भोजन के लिए आमंत्रण)

अथानन्तर विभीषण अपने निवास गया अर अपनी विदग्धनामा पटरानी, समस्त व्यवहारविषैं प्रवीण, हजारों राणीनिमें मुख्य ताहि श्रीरामके नौतिवेकूं भेज्या, सो आय करि सीतासहित रामकूं अर लक्ष्मणकूं नमस्कारकरि कहती भई–हे देव ! मेरे पतिका घर आपके चरणारविन्दके प्रसंगकरि पवित्र करहु, आप अनुग्रह करिवे योग्य हो, या भांति रानी विनती करी। तब ही विभीषण आया,अति आदरतैं कहता भया–हे देव! उठिये, मेरा घर पवित्र करिए। तब आप याके लार ही याके घर जायवेकूं उद्यमी भए, नाना प्रकार के वाहन, कारी घटा समान अति उतंग गज अर पवन समान चंचल तुरंग अर मन्दिर-समान रथ इत्यादि नाना प्रकार के जे वाहन तिन पर आरूढ़ अनेक राजा तिन सहित विभीषणके घर पधारे, समस्त राजमार्ग सामंतनिकरि आच्छादित भया। विभीषण ने नगर उछाला, मेघकी ध्वनि समान वादित्र बाजते भए, शंखनिके शब्दकरि गिरिकी गुफा नाद करती भई, झंझा भेरी मृदंग ढोल हजारों बाजे बाजते भए, लपाक काहल धुंधु अनेक बाजे अर दुंदुभी बाजे, दसों दिशा वादित्रनिके नादकरि पूरी गई। ऐसे ही तो वादित्रनिके शब्द अर ऐसे ही नाना प्रकारके वाहननिके शब्द अर ऐसे ही सामंतनिके अट्टहास,तिनकर दसों दिशा पूरित भईं। कैयक सिंह शार्दूलपर चढ़े हैं,कैयक हाथीविपर, केयक तुरंगनिपर चढ़े हैं नाना प्रकार के विद्यामई तथा सामान्य वाहन तिन पर चढ़े चाले। नृत्यकारिणी नृत्य करैं हैं, नट भाट अनेक कला अनेक चेष्टा करे हैं, अति सुन्दर नृत्य होय है, वन्दीजन विरद बखानैं हैं, ऊंचे स्वरसे स्तुति करैं हैं अर शरदकी पूर्णमासीके चद्रमा समान उज्ज्वल छत्रनिके मंडल करि अंबर छाय रहा है, नाना प्रकार के आयुधनिकी कांति करि सूर्यकी कान्ति दब गई है, नगरके सकल नर नारीरूप कमलनिके वनकूं आनंद उपजावते भानु-समान श्रीराम विभीषण के घर आए। गौतम स्वामी कहैं हैं–हे श्रेणिक ! ता समय की विभूति कही न जाय, महा शुभ लक्षण जैसी देवनिके शोभा होय तैसी भई। विभीषणने अर्घपाद्य किए, अति शोभा करी। श्रीशांतिनाथ के मन्दिरतैं लेय अपने महलतक महामनोज्ञ तांडव किए, आप श्रीराम हाथीसे उतर सीता और लक्ष्मणसहित विभीषण के घरमें प्रवेश करते भए। विभीषण के महल के मध्य पद्मप्रभु जिनेन्द्र का मन्दिर, रत्ननि के तोरणनिकरि मंडित, कनक मई ताके चौगिर्द अनेक जिनमन्दिर, जैसे पर्वतनिके मध्य सुमेरु सोहै तैसें पद्मप्रभु

का मन्दिर सोहै, सुवर्ण के हजारा थभ तिनके ऊपर अति ऊंचे देदीप्यमान अति विस्तार संयुक्त जिनमन्दिर सोहैं, नाना प्रकार के मणिनिके समूहकरि मंडित अनेक रचनाकू धरे अति सुन्दर पद्मराग मणिमई। पद्मप्रभु जिनेन्द्र की प्रतिमा अति अनुपम विराजै, जाकी कांति करि मणिनिकी भूमि विषैं मानों कमलनिकर वन फूल रहे हैं। सो राम लक्ष्मण सीतासहित वंदनाकरि स्तुतिकरि यथायोग्य तिष्ठे।

अथानन्तर विद्याधरनिकी स्त्री राम लक्ष्मण सीता के स्नान की तैयारी करावती भई, अनेक प्रकार के सुगन्ध तेल तिनके उबटना किए, नासिकाकूं सुगन्ध अर देहकूं अनुकूल पूर्व दिशाकूं मुखकर स्नानकी चौकी पर विराजे, बड़ी ऋद्धिकरि स्नानकूं प्रवरते। सुवर्णके मरकत मणिके हीरानि के स्फटिकमणिके इन्द्रनीलमणिके कलश सुगन्ध जलके भरे तिनकर स्नान भया, नाना प्रकार के वादित्र बाजे, गीत गान भए। जब स्नान होय चुका तब महापवित्र वस्त्र आभूषण पहिरे, बहुरि पद्मप्रभुके चैत्यालय जाय वंदना करी, विभीषण ने रामकी खिजमती करी, ताके विस्तार कहां लग कहिए। दुग्ध दही घी शर्बतकी बावड़ी भरवाई अर अन्न के पर्वत किए अर जे अद्‌भुत वस्तु नन्दनादि वन विषैं पाइए ते मंगाई, मनकूं नासिकाकूं सुगन्ध, नेत्रोंकूं प्रिय, अति स्वादकूं धरैं, जिह्वाकूं वल्लभ षट्रस सहित भोजनकी तैयारी करी, सामग्री तो सर्व सुन्दर ही हुती अर सीता के मिलापकरि रामकूं अति प्रिय लागी। राम के चित्त की प्रसन्नता कथन विषैं न आवै, जब इष्ट का संयोग होय तब पाँचों इन्द्रियनि के सर्व ही भोग प्यारे लागैं, नातर नाहीं। जब अपने प्रीतमका संयोग होय तब भोजन भली भाँति रुचै, सुन्दर रुचै, सुन्दर वस्त्रका देखना रुचै, रागका सुनना रुचै, कोमल स्पर्श रुचै। मित्रके संयोगकर सर्व मनोहर लगै अर जब मित्र का वियोग होय तब सब स्वर्ग तुल्य भी नरक तुल्य भासै। अर प्रिय के समागम विषैं महाविषम वन स्वर्ग तुल्य भासै, महासुन्दर अमृत-सारिखे रस अर अनेक वर्ण के अद्‌भुत भक्ष्य तिनकर राम लक्ष्मण सीताकूं तृप्त किए, अद्‌भुत भोजन किया भई। विद्याधर भूमिगोचरी परिवारसहित अति सम्मानकर जिमाए, चन्दनादि सुगन्धके लेप किए, तिन-पर भ्रमर गुंजार करैं हैं अर भद्रसाल नन्दनादिक वन के पुष्पनि से शोभित किए अर महासुन्दर कोमल महीन वस्त्र पहिराए, नाना प्रकारके रत्ननि के आभूषण दिए। कैसे हैं आभूषण ? जिनके रत्ननिकी ज्योतिके समूहकरि दशों दिशाविषैं प्रकाश होय रहा है। जेते रामकी सेनाके लोक हुते ते सब विभीषणने सम्मानकर प्रसन्न किए, सबके मनोरथ पूर्ण किए, रात्रि अर दिवस सब विभीषण ही का यश गावैं। अहो यह विभीषण राक्षसवंश का आभूषण है जाने राम लक्ष्मणकी बड़ी सेवा करी, यह महा प्रशंसा योग्य है, मोटा पुरुष है, यह प्रभाव धारक जगतविषैं उत्तंगताकूं प्राप्त भया जाके मंदिर विषैं श्रीराम

लक्ष्मण पधारे। या भांति विभीषणके गुणग्रहणविषें तत्पर विद्याधर होते भए। सर्व लोक सुखसूं तिष्ठे, राम लक्ष्मण सीता अर विभीषण की कथा पृथ्वीविषें प्रवरती।

(रामलक्ष्मण का लंका में सुखपूर्वक ६ वर्ष बिताना)

अथानन्तर विभीषणादिक सकल विद्याधर राम लक्ष्मण का अभिषेक करवेकूं विनयकर उद्यमी भए। तब श्रीराम लक्ष्मण ने कहा—अयोध्या विषें हमारे पिता ने भाई भरतकूं अभिषेक कराया, सो भरत ही हमारे प्रभु हैं। तब सबने कही—आपकूं यही योग्य है। परन्तु अब आप त्रिखंडी भए तो यह मंगल स्नान योग्य ही है, यामें कहा दोष है। अर ऐसी सुनने विषें आवै है—भरत महा धीर है अब मन वचन कायकरि आपकी सेवा विषैं प्रवर्त्तै है, विक्रियाकूं नाहीं प्राप्त होय है—ऐसा कह सबने राम लक्ष्मण का अभिषेक किया, जगत् विषें बलभद्र नारायणकी अति प्रशंसा भई; जैसें स्वर्गविषे इन्द्र की महिमा होय तैसें लंका विषें रामलक्ष्मण की महिमा भई। इन्द्र के नगर समान वह नगर महा भोगनिकर पूर्ण तहाँ राम लक्ष्मण की आज्ञासूं विभीषण राज्य करै है। नदी सरोवरनि के तीर अर देश पुर ग्रामादिविषें विद्याधर राम लक्ष्मण ही का यश गावते भए। विद्याधर युक्त अद्भुत आभूषण पहिरे सुन्दर वस्त्र मनोहरहार सुगन्धादिकके विलेपन उन कर युक्त क्रीडा करते भए जैसें स्वर्ग विषें देव क्रीडा करैं अर श्रीरामचन्द्र सीता देखते तृप्तिकूं न प्राप्त भए। कैसा है सीता का मुख ? सूर्य के किरणकरि प्रफुल्लित भया जो कमल ता समान है प्रभा जाकी, अत्यन्त मनको हरणहारी जो सीता तासहित राम निरंतर रमणीय भूमिविषें रमते भए। अर लक्ष्मण विशल्या सहित रतिकूं प्राप्त भए। मनवांछित सकल वस्तुका है समागम जिनके, उन दोऊ भाईनि के बहुत दिन भोगोपभोग-युक्त सुख से एक दिवस समान गए।

एक दिन लक्ष्मण सुन्दर लक्षणनिका धरणहारा विराधितकूं अपनी जे स्त्री तिनके लेयवे अर्थ पत्र लिख बड़ी ऋद्धिसे पठावता भया सो जायकरि कन्यानि के पितानिकूं पत्र देता भया, माता पितानिने बहुत हर्षित होय कन्याकूं पठाई सो बड़ी विभूति सहित आईं, दशांग नगर के स्वामी वज्रकर्ण की पुत्री रूपवती महारूपकी धरणहारी अर कूबर स्थान के नाथ बालिखिल्य की पुत्री कल्याणमाला परमसुन्दरी अर पृथ्वीपुर नगरके राजा पृथ्वीधर की पुत्री वनमाला गुणरूपकर प्रसिद्ध अर खेमांजलि के राजा जितशत्रुकी पुत्री जितपद्मा अर उज्जैन नगरी के राजा सिंहोदर की पुत्री—ये सब लक्ष्मण के समीप आईं, विराधित ले आया। जन्मान्तर के पूर्ण पुण्य से अर दया दान मन-इन्द्रियोंको वश करना, शील संयम गुरुभक्ति महाउत्तम तप इन शुभ कर्मनिकर लक्ष्मणसा पति पाइए। इन पतिव्रतानि ने पूर्व महातप किये हुते, रात्रि-भोजन तज्या हुता, चतुर्विध संघकी सेवा करी

हुती, तातें वासुदेव पति पाए। उनको लक्ष्मण ही वर योग्य अर लक्ष्मणके ऐसे ही स्त्री योग्य, तिनकरि लक्ष्मणकूं अर लक्ष्मणकर तिनकूं अति सुख होता भया। परस्पर सुखी भए। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे श्रेणिक! जगत् विषैं ऐसी सम्पदा नाहीं, ऐसी शोभा नाहीं, ऐसी लीला नाहीं, ऐसी कला नाहीं, जो इनके न भई। राम लक्ष्मण अर इनकी रानी तिनकी कथा कहां लग कहैं। अर कहां कमल कहां चन्द्र इनके मुखकी उपमा पावै अर कहां लक्ष्मी अर कहां रति इनकी रानियोंकी उपमा पावै। राम लक्ष्मण की ऐसी सपदा देख विद्याधरनिके समूहकूं परम आश्चर्य होता भया। चंद्रवर्धनकी पुत्री अर अनेक राजानिकी कन्या तिनसूं श्रीराम लक्ष्मणका अति उत्सवसे विवाह होता भया। सर्व लोककूं आनन्द के करणहारे वे दोऊ भाई महा भोगनिके भोक्ता मनवांछित सुख भोगते भए। इन्द्र प्रतीन्द्र समान आनन्दकरि पूर्ण लंकाविषैं रमते भए, सीताविषैं है अत्यन्त राग जिनका ऐसे श्रीराम तिन्होंने छह वर्ष लंका विषैं व्यतीत किए, सुख के सागरविषैं मग्न सुन्दर चेष्टा के धरणहारे रामचन्द्र सकल दुःख भूल गए।

(इन्द्रजीत आदि का निर्वाण-गमन)

अथानन्तर इन्द्रजीत मुनि सर्व पापनिके हरनहारे अनेक ऋद्धि सहित विराजमान पृथ्वीविषैं विहार करते भए। वैराग्यरूप पवनकरि प्रेरी ध्यानरूप अग्निकरि कर्मरूप वन भस्म किए। कैसी है ध्यानरूप अग्नि? क्षायिक सम्यक्त्वरूप अरण्य की लकड़ी ताकरि करी है। अर मेघवाहन मुनि भी विषयरूप ईंधन को अग्नि समान आत्मध्यान कर भस्म करते भए, केवलज्ञानकूं प्राप्त भए, केवलज्ञान जीवका निजस्वभाव है। अर कुम्भकर्ण मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के धारक शुक्ल लेश्याकरि निर्मल जो शुक्लध्यान ताके प्रभावकरि केवलज्ञानकूं प्राप्त भए। लोक अर अलोक इनकूं अवलोकन करते मोह रज रहित इन्द्रजीत कुंभकर्ण केवली आयु पूर्णकरि अनेकमुनिनि सहित नर्मदाके तीर सिद्धपद कूं प्राप्त भए। सुर असुर मनुष्यनिके अधिपतिनिकरि गाइए है उत्तम कीर्ति जिनकी, शुद्ध शीलके धरणहारे, महा देदीप्यमान, जगद्बन्धु, समस्त ज्ञेयके ज्ञाता, जिनके ज्ञानसमुद्र विषैं लोकालोक गायके खुरसमान भासै, संसारका क्लेश महाविषम ताके जलसे निकसे ता स्थानक गए। बहुरि यत्न नाहीं तहां प्राप्त भए, उपमा रहित निर्विघ्न अखंड सुखकूं प्राप्त भए। जे कुंभकर्णादिक अनेक सिद्ध भए ते जिन शासनके श्रोतानिकूं आरोग्य पद देवैं। नाशकिए हैं कर्मशत्रु जिन्होंने ते जिन स्थानकोंसे सिद्ध भए हैं वे स्थानक आज भी देखिये हैं, वे तीर्थ भव्यनिकरि वन्दवे योग्य हैं, विन्ध्याचल की वनीविषैं इन्द्रजीत मेघनाद तिष्ठे सो तीर्थ मेघरव कहावै है अर जंबुमाली महा बलवान् तूणीमन्त नामा पर्वततैं

अहमिंद्र पदकूं प्राप्त भए सो पर्वत नाना प्रकार के वृक्ष अर लतानिकरि मंडित अनेक पक्षिनिके समूहकरि तथा नाना प्रकारके वनचरनिकर भरया। अहो भव्यजीव हो! जीव दया आदि अनेक गुणनिकर पूर्ण ऐसा जो जिनधर्म, ताके सेवनेसे कछु दुर्लभ नाहीं, जैनधर्म के प्रसाद से सिद्धपद अहमिंद्र पद इत्यादिके पद सर्व ही सुलभ हैं। जम्बूमाली का जीव अहमिंद्रपदसे ऐरावतक्षेत्र विषें मनुष्य होय, केवल उपाय सिद्धपदकूं प्राप्त होवेंगे। अर मन्दोदरीका पिता चारण मुनि होय महाज्योतिकूं धरे अढाई द्वीप विषें कैलाश आदि निर्वाण क्षेत्रनिकी अर चैत्यालयनिकी वन्दना करते भए, देवनिका है आगमन जहां, सो मय महा मुनि रत्नत्रयरूप आभूषण करि मंडित महाधैर्यधारी पृथ्वीविषें विहार करैं। अर मारीच मंत्री महामुनि स्वर्गविषें बड़ी ऋद्धि के धारी देव भए, जिनका जैसा तप तैसा फल पाया। सीता के दृढ व्रतकरि पतिका मिलाप भया, जाकूं रावण डिगाय सक्या नाहीं। सीता का अतुल धैर्य अद्भुत रूप निर्मल बुद्धि भरतार विषें अधिक स्नेह जो कहवे विषें न आवै। सीता महागुणनिकर पूर्णशील के प्रसादतें जगत् विषें प्रशंसा-योग्य भई। कैसी है सीता ? एक निजपति विषें है सन्तोष जाके, भवसागर की तरणहारी, परंपराय मोक्षकी पात्र जाकी साधु प्रशंसा करैं। गौतम स्वामी कहैं हैं–हे श्रेणिक ! जो स्त्री विवाह ही नाहीं करैं, बाल ब्रह्मचर्य धारै सो तो महाभाग्य है ही अर पतिव्रताका व्रत आदरै, मनवचनकायकरि पर पुरुषका त्याग करै तो यह व्रत भी परम रत्न है, स्त्रीकूं स्वर्ग अर परंपराय मोक्ष देवनेकूं समर्थ है। शीलव्रत समान और व्रत नाहीं, शीलभवसागरकी नाव है। राजा मय मंदोदरीका पिता राज्य अवस्था विषें मायाचारी हुता अर कठोर परिणामी हुता तथापि जिनधर्मके प्रसादकरि रागद्वेष रहित होय अनेक ऋद्धिका धारक मुनि भया।

(मय महामुनिका तपो वर्णन)

यह कथा सुन राजा श्रेणिक गौतम स्वामीकूं पूछते भए—हे नाथ। मैं इन्द्रजीतादिकका माहात्म्य सब सुन्या, अब राजा मयका माहात्म्य सुना चाहूं हूं। अर हे प्रभो! जो या पृथ्वी विषें पतिव्रता शीलवन्ती हैं, निज भरतारविषें अनुरक्त हैं, वे निश्चय से स्वर्ग मोक्षकी अधिकारिणी हैं तिनकी महिमा मोहि विस्तारसूं कहो। गणधर कहते भए—जे निश्चयकरि सीता समान पतिव्रता शीलकूं धारण करैं हैं, ते अल्प भव में मोक्ष को प्राप्त होय हैं। पतिव्रता स्वर्ग ही जांय, परंपराय मोक्ष पावैं, अनेकगुणनिकरि पूर्ण। हे राजन् ! जे मनवचनकायकरि शीलवन्ती हैं, चित्तकी वृत्ति जिन्होंने रोकी है ते धन्य हैं, घोड़ेनिमें हाथीनिमें लोहेनिविषें पाषाण विषें वस्त्रनि विषें जल विषें वृक्षनि विषें बेलनि विषें स्त्रीनिविषें पुरुषनिविषें बड़ा अन्तर है। सब ही नारियोंमें पतिव्रता न पाइए अर सब ही पुरुषनिमें विवेकी नाहीं। जे शीलरूप अंकुशकरि मन रूप माते हाथीकूं वश करैं

वे पतिव्रता हैं। पतिव्रता सब ही कुलविषें होय हैं अर वृथा पतिव्रताका अभिमान किया तौ कहा ? जे जिनधर्मसे बहिर्मुख हैं ते मनरूप माते हाथीकूं वश करिवे समर्थ नाहीं। वीतराग की वाणी करि निर्मल भया है चित्त जिनका वे ही मनरूप हस्तीकूं विवेकरूप अंकुश करि वशीभूत करि दया शील के मार्ग विषें चलायवे समर्थ हैं। हे श्रेणिक ! एक अभिमाना स्त्री ताकी संक्षेप से कथा कहिए है—सो सुन। यह प्राचीन कथा प्रसिद्ध है। एक धान्यग्राम नामा ग्राम तहां नोदन नामा ब्राह्मण, ताके अभिमाना नामा स्त्री, सो अग्निनामा ब्राह्मण की पुत्री मानिनी नामा माता के उदरविषें उपजी, सो अति अभिमान की धरणहारी, सो नोदन नामा ब्राह्मण क्षुधाकर पीड़ित होय अभिमानाकूं तज दई, सो गजवन विषें करूरुह नाम राजाकूं प्राप्त भई। वह राजा पुष्पप्रकीर्ण नगर का स्वामी लंपट सो ब्राह्मणीकूं रूपवती जान ले गया, स्नेहकर घर विषें राखी। एक समय रति विषें तानें राजा के मस्तकविषें चरणकी लात दई। प्रातः समय सभाविषें राजाने पंडितनि कूं पूछया—जानें मेरा सिर पांव कर हता होय ताका कहा करना ? तब मूर्ख पंडित कहते भए—हे देव ! ताका पांव छेदना अथवा प्राण हरना। ता समय एक हेमांक नामा ब्राह्मण राजा के अभिप्राय का वेत्ता कहता भया—ताके पांवकी आभूषणादिकरि पूजा करनी। तब राजा ने हेमांककूं पूछी—हे पंडित ! तुमने यह रहस्य कैसें जाना ? तब तानें कही—स्त्रीके दंतनिके तिहारे अधरनिविषें चिन्ह दीखे, तातें यह जानी-स्त्रीके पांवकी लात लागी। तब राजा ने हेमांक को अभिप्राय का वेत्ता जान अपना निकट कृपापात्र किया, बड़ी ऋद्धि दई सो हेमांक के घर के पास एक मित्रयशा नामा विधवा ब्राह्मणी महादुःखी अमोघसर नाम ब्राह्मणकी स्त्री रहै सो अपने पुत्रकूं शिक्षा देती भई। भरतार के गुण चितार २ कहती भई—हे पुत्र ! बाल अवस्थाविषें जो विद्याका अभ्यास करै सो हेमांककी न्याई महाविभूतिकूं प्राप्त होय। या हेमांकने बाल अवस्था विषें विद्या का अभ्यास किया सो अब याकी कीर्ति देख, अर तेरा बाप धनुष बाण विद्या विषें अति प्रवीण हुता ताके तुम मूर्ख पुत्र भए, आंसू डार माता ने ए वचन कहे। ताके वचन सुन माताकूं धैर्य बँधाया, महा अभिमान का धारक यह श्रीवर्धित नामा पुत्र विद्या सीखने के अर्थि व्याघ्रपुर नगर गया सो गुरु के निकट शस्त्र शास्त्र सर्व विद्या सीख्या। अर या नगर के राजा सुकांत की शीला नामा पुत्री ताहि ले निकस्या। तब कन्याका भाई सिंहचन्द्र या ऊपर चढ्या सो या अकेले ने शस्त्रविद्याके प्रभावकरि सिंहचन्द्रकूं जीत्या अर स्त्रीसहित माता के निकट आया। माताकूं हर्ष उपज्या, शस्त्रकलाकरि याकी पृथ्वी विषें प्रसिद्ध कीर्ति भई सो शस्त्र के बलकरि पोदनापुर के राजा करूरुहकूं जीत्या। अर व्याघ्रपुरका राजा शीला का पिता मरणकूं प्राप्त भया। ताका पुत्र सिंहचन्द्र शत्रुनिने दबाया सो सुरंग

के मार्ग होय अपनो रानीकूं ले निकस्या। राज्य भ्रष्ट भया पोदनापुर विषैं अपनी बहिन का निवास जान तंबोलीके लार पाननिकी झोली सिरपर धरे स्त्री सहित पोदनापुर के समीप आया। रात्रिकूं पोदनापुर के वन विषैं रह्या। ताकी स्त्री सर्प ने डसी, तब यह ताहि कांधे धर जहां मय महामुनि विराजे हुते, वे वज्रके थंभ समान महा निश्चल कायोत्सर्ग धरे हुते, अनेक ऋद्धिके धारक तिनकूं सर्व-औषधि ऋद्धि उपजी हुती, सो तिनके चरणारविंदके समीप सिंहचन्द्रने अपनी रानी डारी। सो तिनके ऋद्धिके प्रभावकरि रानी निर्विष भई। स्त्रीसहित मुनि के समीप तिष्ठै था, ता मुनिके दर्शनकूं विनयदत्त नाम श्रावक आया ताहि सिंहचन्द्र मिल्या अर अपना सर्व वृत्तान्त कह्या। तब ताने जायकरि पोदनापुर के राजा श्रीवर्धितकूं कह्या जो तिहारी स्त्री का भाई सिंहचंद्र आया है। तब वह शत्रु जान युद्धकूं उद्यमी भया। तब विनयदत्त ने यथावत् वृत्तांत कह्या जो तिहारे शरण आया है। तब ताहि बहुत प्रीति उपजी अर महा विभूतिसूं सिंहचन्द्र के सन्मुख आया, दोऊ मिले अति हर्ष उपज्या। बहुरि श्रीवर्धित मय मुनिकूं पूछता भया—हे भगवान्! मैं मेरे अर अपने स्वजनों के पूर्व भव सुना चाहूं हूं। तब मुनि कहते भए— एक शोभपुर नामा नगर वहां भद्राचार्य दिगम्बरने चौमासे विषैं निवास किया सो अमल नामा नगर का राजा निरन्तर आचार्य के दर्शन को आवै सो एक दिवस एक कोढिनी की स्त्री ताकी दुर्गंध आई, सो राजा पांव पयादा ही भाग अपने घर गया, ताकी दुर्गन्ध सह न सका। अर वह कोढनी चैत्यालय दर्शनकरि भद्राचार्य के समीप श्राविका के व्रत धारे, समाधिमरण करि देवलोक को गई। वहाँ से चयकर तेरी स्त्री शीला भई। अर वह राजा अमल अपने पुत्रकूं राज्य भार सौंप आप श्रावक के व्रत धारे, आठ ग्राम पुत्र पै ले सन्तोष धरया, शरीर तज देवलोक गया, वहां से चयकरि तू श्रीवर्धित भया।

अब तेरी माता के भव सुन—एक विदेशी क्षुधाकरि पीड़ित ग्राम विषैं आय भोजन मांगता भया सो जब भोजन न मिला तब महा कोपकरि कहता भया कि मैं तिहारा ग्राम बालूंगा, ऐसे कटुक शब्द कह निकस्या। दैवयोग से ग्राम विषैं आग लगी सो ग्राम के लोगनि ने जानी कि ताने लगाई। तब क्रोधायमान होय दौड़े अर ताहि ल्याय अग्नि विषैं जराया सो महा दुःखकरि राजा की रसोइणी भई। मर करि नरक विषैं घोर वेदना पाई। तहाँ से निकसि तेरी माता मित्रयशा भई। अर पोदनापुर विषैं एक गोवाणिज गृहस्थ ताकै भुजपत्रा स्त्री, सो गोवाणिज मर करि तेरी स्त्री का भाई सिंहचंद्र भया। अर वह भुजपत्रा ताकी स्त्री रतिवर्धना भई। पूर्व भव विषैं पशुओं पर बोझ लादे थे सो या भव विषैं भार वहै। ये सब के पूर्व जन्म कहकरि मय महामुनि आकाश मार्ग विहार कर गए अर पोदनापुर का राजा श्रीवर्धित सिंहचन्द्र सहित नगर विषैं गया।

गौतम स्वामी कहै हैं—हे श्रेणिक! यह संसार की विचित्र गति है। कोईयक तो निर्धन से राजा हो जाय अर कोईयक राजा से निर्धन हो जाय है। श्रीवर्धित ब्राह्मण का पुत्र सो राज्यभ्रष्ट होय राजा होय गया अर सिंहचंद्र राजा का पुत्र सो राज्य भ्रष्ट होय श्रीवर्धित के समीप आया। एक गुरुके निकट प्राणी धर्म का श्रवण करें तिन विषें कोई समाधिमरणकरि सुगति पावै, कोई कुमरण करि दुर्गति पावै। कोई रत्ननिके भरे जहाज सहित समुद्र उलंघि सुखसे स्थानक पहुँचे, कोई समुद्रविषें डूबै, कोईकूं चोर लूट लेय जावै; ऐसा जगत्का स्वरूप विचित्रगति जान जे विवेकी हैं ते दया दान विनय वैराग्य जप तप इन्द्रियोंका निरोध शांतता आत्म ध्यान तथा शास्त्राध्ययन करि आत्म कल्याण करैं। ऐसे मय मुनिके वचन सुन राजा श्रीवर्धित अर पोदनापुर के बहुत लोक शांत चित्त होय जिनधर्मका आराधन करते भए। यह मय महामुनि अवधिज्ञानी, महागुणवान, शान्तचित्त, समाधिमरण कर ईशान स्वर्ग विषें उत्कृष्ट देव भए। यह मय मुनिका माहात्म्य जे चित्त लगाय पढें सुनें, तिनकूं वैरियों की पीड़ा न होय, सिंह व्याघ्रादि न हतें, सर्पादि न डसें।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं मय मुनि का माहात्म्य वर्णन करने वाला अस्सीवां पर्व पूर्ण भया ॥८०॥

इक्यासीवां पर्व

(कौशल्या का राम-लक्ष्मण के बिना शोकाकुल होना और नारद का आकर समझाना)

अथानन्तर लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र स्वर्ग लोक समान लक्ष्मीकूं मध्य लोकविषें भोगते भए, चन्द्र सूर्य समान है कांति जिनकी। अर इनकी माता कौशल्या भरतार अर पुत्र के वियोगरूप अग्निकी ज्वालाकरि, शोककूं प्राप्त भया है शरीर जाका, महलके सातवें खण बैठी, सखियोंकरि मंडित, अतिउदास आंसुनिकर पूर्ण हैं नेत्र जाके, जैसे गायको बच्चेका वियोग होय अर वह व्याकुल होय ता समान पुत्र के स्नेह विषैं तत्पर, तीव्र शोकके सागर विषें मग्न, दसों दिशाकी ओर देखै। महल के शिखर विषें तिष्ठता जो काग ताहि कहै है—हे वायस! मेरा पुत्र राम आवै तो ताहि खीरका भोजन दूं ऐसे वचन कहकर विलाप करै, अश्रुपात करि किया है चातुर्मास जिसने, हाय वत्स! तू कहां गया, मैं तुझे निरन्तर सुखसे लड़ाया था, तेरे विदेश भ्रमणकी प्रीति कहांसे उपजी, कहा पल्लव समान तेरे कोमल चरण कठोर पंथ विषें पीड़ा न पावें? महा गहन वनविषैं कौन वृक्षके तले विश्राम करता होयगा? मैं मन्दभागिनी अत्यन्त दुःखी मुझे तजकर तू भाई लक्ष्मण सहित किस दिशा को गया? या भांति माता विलाप करै ता समय नारद ऋषि आकाश मार्ग विषैं आए, पृथ्वीमें प्रसिद्ध सदा अढ़ाई द्वीप विषैं भ्रमते ही रहैं, सिर

पर जटा शुक्ल वस्त्र पहिरे, ताकूं समीप आवता जान कौशल्या ने उठकर सन्मुख जाय नारदकूं आदर सहित सिंहासन बिछाय सन्मान किया। तब नारद उसे अश्रुपात सहित शोकवन्ती देख पूछते भए—हे कल्याणरूपिणी! तुम ऐसी दुःखरूप क्यों? तुमकूं दुःखका कारण कहा? सुकौशल महाराजकी पुत्री, लोकविषें प्रसिद्ध राजा दशरथकी रानी प्रशंसा योग्य, श्रीरामचन्द्र मनुष्यनिविषें रत्न तिनकी माता महासुन्दर लक्षण की धरणहारी तुमकूं कौनने रुसाई? जो तिहारी आज्ञा न माने सो दुरात्मा है, अबार ही ताका राजा दशरथ निग्रह करें। तब नारदकूं माता कहती भई—हे देवर्षि! तुम हमारे घरका वृत्तांत नाहीं जानो हो, तातें कहो हो। अर तिहारा जैसा वात्सल्य या घरसूं था सो तुम विस्मरण किया, कठोर चित्त होय गए, अब यहां आवना ही तज्या, अब तुम बात ही न बूझी। हे भ्रमणप्रिय! बहुत दिननि विषें आए। तब नारद ने कहा—हे माता! धातकी खंड द्वीप विषें पूर्व विदेहक्षेत्र वहां सुरेन्द्र रमण नामा नगर वहां भगवान् तीर्थंकर देवका जन्मकल्याणक भया। सो इन्द्रादिक देव आए, भगवान् को सुमेरु गिरि ले गए, अद्भुत विभूतिकर जन्माभिषेक किया। सो देवाधिदेव सर्व पाप के नाशनहारे तिनका अभिषेक मैं देख्या, जाहि देख धर्म की बढवारी होय, वहां देवनिने आनन्दसूं नृत्य किया। श्रीजिनेन्द्रके दर्शन विषें अनुरागरूप है बुद्धि मेरी सो महामनोहर धातकीखंडविषें तेईस वर्ष मैंने सुखसे व्यतीत किये। तुम मेरी माता समान सो तुमकूं चितार या जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र विषें आया। अब कैयक दिन इस मंडलविषें रहूंगा। अब मोहि सब वृत्तांत कहो, तिहारे दर्शनकूं आया हूं। तब कौशल्याने सर्व वृतांत कहा। भामंडलका वहां आवना अर विद्याधरनिका वहां आवना अर भामण्डलकूं विद्याधरनिका राज्य अर राजा दशरथका अनेक राजानि सहित वैराग्य अर रामचंद्रका सीतासहित अर लक्ष्मण के लार विदेशको गमन, बहुरि सीता का वियोग, सुग्रीवादिकका रामसूं मिलाप, रावणसे युद्ध, लकेशकी शक्तिका लक्ष्मणके लगना, बहुरि द्रोणमेघकी कन्याका तहां गमन, एती खबर तो हमकूं है। बहुरि क्या भया सो खबर नाहीं, ऐसा कह महादुःखित होय अश्रुपात डारती भई अर विलाप किया—हाय हाय! पुत्र तू कहां गया, शीघ्र अब मोसे वचन कह, मैं शोकके सागरविषें मग्न तासे निकास, मैं पुण्यहीन तेरे मुख देखे विना महा दुःखरूप अग्निसे दाह कूं प्राप्त भई, मोहि साता देवो। अर सीता बालक, पापी रावण ताहि बंदीगृह विषें डारी, दुःखसे तिष्ठती होयगी। निर्दई रावण ने लक्ष्मण के शक्ति लगाई सो न जानिए जीवे है कि नाहीं। हाय! दोनों दुर्लभ पुत्र हो। हाय सीता! तू पतिव्रता काहे दुःखकूं प्राप्त भई। यह वृत्तांत कौशल्या के मुख सुन नारद अति खेदखिन्न भया। वीणा धरती विषें डार दई अर अचेत होय गया। बहुरि सचेत होय कहता भया—हे माता! तुम शोक

तजहु, मैं शीघ्र ही तिहारे पुत्रनिकी वार्ता क्षेम कुशल लाऊँ हूँ। मेरे सब बात विषैं सामर्थ्य है। यह प्रतिज्ञा कर नारद बीणाकूं उठाय काँधे धरी, आकाश मार्ग गमन किया, पवन समान है बेग जाका, अनेक देश देखता लंकीकी ओर चाल्या। सो लंकाके समीप आय विचारी–राम लक्ष्मण की वार्ता कौन भाँति जानने विषैं आवै? जो राम लक्ष्मण की वार्ता पूछिये तो रावण के लोकनि से विरोध होय, तातैं रावण की वार्ता पूछिये तो योग्य है। रावण की वार्ता कर उनकी वार्ता जानी जायगी। यह विचार नारद पद्म सरोवर गया तहां अन्तःपुर सहित अंगद क्रीडा करता हुता ताके सेवकनिको रावण की कुशल पूछी। वे किंकर सुनकर क्रोधरूप होय कहते भए–यह दुष्ट तापस रावण का मिलापी है, याकूं अंगद के समीप ले गए जो यह रावण की कुशल पूछै है। नारद ने कहा–मेरा रावणसे कछु प्रयोजन नाहीं। तब किंकरनिने कही–तेरा कछू प्रयोजन नाहीं तो रावणकी कुशल क्यों पूछै था। तब अंगद ने हँसकर कहा कि इस तापसकूं पद्मनाभिके निकट ले जावो। सो नारदको खींचकर ले चले। नारद विचारै है, न जानिए कौन पद्मनाभि है? कौशल्याका पुत्र होय तो मोसे ऐसी क्यों होय; ये मोहि कहाँ ले जाय हैं, मैं संशय विषैं पड़ा हूँ, जिन शासनके भक्तदेव मेरी सहाय करो। अंगदके किंकर याहि विभीषण के मन्दिर जहाँ श्रीराम बिराजे हुते, तहां ले गए। श्रीराम दूर सें देख याहि नारद जान सिंहासन से उठे, अति आदर किया, किंकरनि से कहा–इनसे दूर जावो। नारद श्रीराम लक्ष्मणकूं देख हर्षित भया, आशीर्वाद देकर इनके समीप बैठा। तब राम बोले–अहो क्षुल्लक! कहाँसे आए? बहुत दिननि विषैं आए हो, नीके हो। तब नारदने कहा–तिहारी माता कष्ट के सागर विषैं मग्न है, सो यह वार्ता कहिवेकूं तिहारे निकट शीघ्र ही आया हूँ। कौशल्या माता महासती जिनमती निरन्तर अश्रुपात डारै है अर तुम बिना महादुःखी है, जैसे सिंही अपने बालक बिना व्याकुल होय तैसे अति व्याकुल भई विलाप करै है, जाका विलाप सुन पाषाण भी द्रवीभूत होय। तुम से पुत्र माता के आज्ञाकारी अर तुम होते माता ऐसी कष्टरूप रहै, यह कैसी आश्चर्य की बात? वह महागुणवन्ती साँझ सकारे विषैं प्राण रहित होयगी, जो तुम ताहि न देखोगे तो तिहारे वियोगरूप सूर्यकर सूक जायगी। तातैं मोपे कृपाकर उठहु, ताहि शीघ्र ही देखहु। या संसार विषैं माता समान पदार्थ नाहीं, तिहारी दोनों मातानिके दुःख कर केकई सुप्रभा सब ही दुःखी हैं। कौशल्या सुमित्रा दोनों मरणतुल्य होय रही हैं, आहार नींद सब गई, रात दिन आँसू डारै हैं, तिनकी स्थिरता तिहारे दर्शन हीसूं होय। जैसैं कुररी विलाप करै तैसैं विलाप करैं हैं अर सिर अर उर हाथों से कूटै हैं, दोनों ही माता तिहारे वियोगरूप अग्निकी ज्वाला कर जरै हैं, तिहारे दर्शनरूप अमृतकी धारकर उनका आताप निवारो। ऐसे नारद के वचन सुन दोनों भाई मातानिके दुःखकर अति दुःखी भए,

शस्त्र डार दिए अर रुदन करने लगे। तब सकल विद्याधरनिने धैर्य बंधाया। राम लक्ष्मण नारदसूं कहते भए—अहो नारद ! तुमने हमारा बड़ा उपकार किया, हम दुराचारी माता कूं भूल गए सो तुम स्मरण कराया, तुम समान हमारे और वल्लभ नाहीं। वही मनुष्य महा पुन्यवान है जो माताके विनय विषें तिष्ठें हैं, दास भए माता की सेवा करें हैं। जे माताका उपकार विस्मरण करें हैं वे महा कृतघ्नी हैं। या भांति माताके स्नेहकरि व्याकुल भया है चित्त जिनका, दोनों भाई नारद की अति प्रशंसा करते भए।

अथानन्तर श्रीराम लक्ष्मण ने ताहि समय अति विभ्रम चित्त होय विभीषणकूं बुलाया अर भामंडल सुग्रीवादि पास बैठे हैं। दोऊ भाई विभीषणकूं कहते भए—हे राजन्! इन्द्र के भवन समान तेरा भवन, तहाँ हम दिन जाते न जाने। अब हमारे माताके दर्शन की अति वांछा है, हमारे अंग अति तापरूप हैं सो माताके दर्शनरूप अमृतकर शीतताकूं प्राप्त होवें। अब अयोध्या नगरी के देखवेकूं हमारा चित्त प्रवर्त्या है, वह अयोध्या भी हमारी दूजी माता है। तब विभीषण कहता भया—हे स्वामिन् ! जो आज्ञा करोगे सो ही होयगा। अबार ही अयोध्याकूं दूत पठावें जो तिहारी शुभ वार्ता मातनिसूं कहे। अर तिहारे आगम की वार्ता कहे माताओंकूं सुख होय अर तुम कृपाकर षोडश दिन यहाँ ही विराजो। हे शरणागत प्रतिपालक, मोपे कृपा करो, ऐसा कह अपना मस्तक राम लक्ष्मण के चरण तले धरया; तब राम लक्ष्मण ने प्रमाण करी।

(राम लक्ष्मणका मातृ-दर्शनके लिए उत्कण्ठित होना और अयोध्याको जाने का विचार करना)

अथानन्तर भले भले विद्याधर अयोध्याकूं पठाए सो दोनों माता महलपर चढ़ी दक्षिण दिशाकी ओर देख रही हुतीं, सो दूर से विद्याधरनिकूं देख कौशल्या सुमित्रा से कहती भई—हे सुमित्रा ! देख। यह दोय विद्याधर पवन के प्रेरे मेघ तुल्य शीघ्र आवें हैं सो हे श्राविके ! अवश्य कल्याण की वार्ता कहेंगे। ये दोनों भाईयों के भेजे आवें हैं। तब सुमित्रा ने कहा—तुम जो कहो हो सो ही होय। यह वार्ता दोऊ मातानिमें होय है तब ही विद्याधर पुष्पनिकी वर्षा करते आकाशसे उतरे, अति हर्ष के भरे भरत के निकट आए। राजा भरत अति प्रमोद का भरया इनका बहुत सन्मान करता भया अर ये प्रणाम कर अपने योग्य आसन पर बैठे, अति सुन्दर है चित्त जिनका, यथावत् वृत्तांत कहते भए—

हे प्रभो ! राम लक्ष्मण ने रावणकूं हता, विभीषणकूं लंकाका राज्य दिया। श्रीरामकूं बलभद्रपद अर लक्ष्मणकूं नारायणपद प्राप्त भया, चक्ररत्न हाथमें आया, तिन दोनों भाइयों के तीन खंड का परम उत्कृष्ट स्वामित्व भया। रावण के पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद भाई कुंभकरण जो बन्दीगृह में थे सो श्रीरामने छोड़े। तिन्होंने जिनदीक्षा धर निर्वाणपद पाया। अर गरुड़ेंद्र श्री राम लक्ष्मण से देशभूषण कुलभूषण मुनि के उपसर्ग

विचारवेकरि प्रसन्न भए थे सो जब रावणतैं युद्ध भया उस ही समय सिंहविमान अर गरुडविमान दिए। इस भांति राम लक्ष्मणके प्रतापके समाचार सुन भरत भूप अति प्रसन्न भये, तांबूल सुगन्धादिक तिनको दिए। अर तिनकूं लेकर दोनों माताओं के समीप भरत गया, राम लक्ष्मणकी माता पुत्रों की विभूतिकी वार्ता विद्याधरों के मुखसे सुनि आनन्दकूं प्राप्त भई। ताही समय आकाश के मार्ग हजारों वाहन विद्यामई स्वर्ण रत्नादिकके भरे आए अर मेघमालाके समान विद्याधरनिके समूह अयोध्यामें आए, जैसे देवनिके समूह आवैं। ते आकाश विषें तिष्ठे, नगर विषें नाना रत्नमई वृष्टि करते भए, रत्ननिके उद्योत कर दसों दिशा विषें प्रकाश भया, अयोध्या विषें एक एक गृहस्थ के घर पर्वत समान सुवर्ण रत्ननिकी राशि करी, अयोध्याके निवासी समस्त लोक ऐसे लक्ष्मीवान् किए मानो स्वर्ग के देव ही हैं। अर नगर विषें यह घोषणा फेरी कि जाके जिस वस्तु की इच्छा हो सो लेवो। तब सब लोक आय कहते भए कि हमारे घर में अटूट भंडार भरे हैं, किसी वस्तु की वांछा नाहीं। अयोध्या विषें दरिद्रता का नाश भया। राम लक्ष्मण के प्रतापरूप सूर्यकरि फूल गए हैं मुख कमल जिनके, ऐसे अयोध्या के नर नारी प्रशंसा करते भए। अर अनेक सिलावट विद्याधर महा चतुर आय कर रत्न स्वर्णमई मंदिर बनावते भए अर भगवान् के अनेक महा मनोज्ञ चैत्यालय बनाए मानों विंध्याचलके शिखर ही हैं। हजारनि स्तम्भनिकर मंडित नाना प्रकार के मंडप रचे अर रत्ननिकरि जड़ित तिनके द्वार रचे, तिन मंदरनि पर ध्वजाविकी पंक्ति फरहरैं हैं, तोरणनि के समूह तिन कर शोभायमान जिनमंदिर रचे, गिरिनि के शिखर समान ऊँचे तिन विषें महाउत्सव होते भए, अनेक आश्चर्य कर भरी अयोध्या होती भई। लंका को शोभाकूं जीतनहारी संगतिकी ध्वनि कर दसों दिशा शब्दायमान भईं, कारी घटा समान वन उपवन सोहते भए, तिन विषें नाना प्रकारके फल फूल तिन पर भ्रमर गुंजार करें हैं, समस्त दिशानि विषें वन उपवन ऐसे सोहते भए मानों नन्दन वन ही हैं। अयोध्या नगरी बारह योजन लम्बी नव योजन चौड़ी अति शोभायमान भासती भई। सोलह दिनमें शिलावट विद्याधरनि ने ऐसी बनाई जाका सौ वर्ष तक भी वर्णन न किया जाय। तहाँ वापीनि के रत्न स्वर्ण के सिवान अर सरोवरनिके रत्नके तट तिन विषें कमल फूल रहे हैं, ग्रीष्म विषें सदा भरपूर ही रहैं, तिनके तट भगवान् के मंदिर अर वृक्षनिकी पंक्ति शोभाकूं धरे स्वर्गपुरी समान नगरी निरमापी सो बलभद्र नारायण लंकासूं अयोध्या की ओर गमनकूं उद्यमी भए। गौतमस्वामी कहे हैं–हे श्रेणिक जिस दिन से नारद के मुखसे राम लक्ष्मण ने माताविकी वार्ता सुनी ताही दिन से सब बात भूल गए, दोनों मातानिही का ध्यान करते भए। पूर्व जन्म के पुण्य करि ऐसे पुत्र पाइये, पुण्य के प्रभाव करि सर्व वस्तु की सिद्धि

होवै है, पुण्यकर क्या न होय ? इसलिये हे प्राणी हो ! पुण्यविषें तत्पर होहु जाकरि शोकरूप सूर्यका आताप न होय।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें अयोध्या नगरी का वर्णन करने वाला इक्यासीवां पर्व पूर्ण भया ॥८१॥

ब्यासीवां पर्व

(राम लक्ष्मण का अयोध्या में आगमन)

अथानन्तर सूर्य उदय होते ही बलभद्र नारायण पुष्पक नामा विमान विषें चढ़कर अयोध्याकूं गमन करते भए। नाना प्रकार के वाहननिपर आरूढ़ विद्याधरनिके अधिपति राम लक्ष्मणकी सेवा विषें तत्पर परिवार सहित संग चाले। छत्र अर ध्वजानिकर रोकी है सूर्य की प्रभा जिन्होंने, आकाशमें गमन करते दूरसे पृथ्वीकूं देखते जाय हैं, पृथ्वी गिरि नगर वन उपवनादि कर शोभित, लवण समुद्रकूं उलंघनकरि विद्याधर हर्ष के भरे लीला सहित गमन करते आगे आए। कैसा है लवण समुद्र ? नाना प्रकार के जलचर जीवनिके समूहकरि भरया है। राम के समीप सीता सती अनेक गुणनिकरि पूर्ण मानों साक्षात् लक्ष्मी ही है सो सुमेरु पर्वतकूं देखकरि रामकूं पूछती भई–हे नाथ! यह जम्बूद्वीपके मध्य अत्यन्त मनोज्ञ स्वर्ण कमल समान कहा दीखै है ? तब वे कहते भए–हे देवी ! यह सुमेरु पर्वत है, जहां देवाधिदेव श्रीमुनिसुव्रतनाथ का जन्माभिषेक इन्द्रादिक देवनिने किया। कैसे हैं देव ? भगवान् के पांचों कल्यानकविषें जिनके अति हर्ष है। यह सुमेरु रत्नमई ऊंचे शिखरनिकरि शोभित जगतविषें प्रसिद्ध है। अर बहुरि आगे आयकर कहते भए—यह दंडकवन है जहां लंकापति ने तुमकूं हरी अर अपना अकाज किया। या वन विषें चारण मुनिकूं हमने पारणा कराया था, याके मध्य यह सुन्दर नदी है। अर हे सुलोचने ! यह वंशस्थल पर्वत जहां देशभूषण कुलभूषण का दर्शन किया, ताहि समय मुनिनिकूं केवल उपज्या। अर हे सौभाग्यवती कल्याणरूपिणी ! यह बालखिल्यका नगर जहां लक्ष्मण ने कल्याणमाला पाई। अर यह दशांग नगर जहां रूपवती का पिता वज्रकर्ण परम श्रावक राज्य करै। बहुरि जानकी पृथ्वीपतिकूं पूछती भई–हे कांत ! यह नगरी कौन जहाँ विमान समान घर इन्द्रपुरी से अधिक शोभै है। अब तक यह पुरी मैंने कबहूं न देखी। ऐसे जानकीके वचन सुन जानकीनाथ अवलोकन कर कहते भए—हे प्रिये! यह अयोध्यापुरी विद्याधर सिलावटोंने बनाई है, लंकापुरीकी ज्योतिकी जीतनहारी।

बहुरि आगे आय तब रामका विमान सूर्यके विमान समान देख भरत बड़ा हस्तीपर चढ़े अति आनन्दके भरे इन्द्रसमान परम विभूतिकरि युक्त सन्मुख आए। सर्व दिशा विमान कर आच्छादित देखी। भरतकूं आवता देख राम लक्ष्मण ने पुष्पक विमान भूमिविषें उतारा।

भरत गज से उतर निकट आया, स्नेह का भरा दोऊ भाईनिकूं प्रणाम करि अर्घपाद्य करता। अर ये दोनों भाई विमानसे उतरि भरतसूं मिले, उरसे लगाय लिया, परस्पर कुशल वार्ता पूछी। बहुरि भरतकूं पुष्पक विमान विषें चढ़ाय लिया अर अयोध्या विषें प्रवेश किया। अयोध्या राम के आगमनकरि अति सिंगारी है अर नाना प्रकार की ध्वजा फरहरैं हैं, नाना प्रकार के विमान अर नाना प्रकार के रथ, अनेक हाथी, अनेक घोड़े तिन करि मार्ग में अवकाश नाहीं। अनेक प्रकार वादित्रनि के समूह बाजते भए; शंख, झांझ, भेरी, ढोल धूकल, इत्यादि वादित्रों का कहां लग वर्णन करिए। महा मधुर शब्द होते भए। ऐसे ही वादित्रों के शब्द, ऐसी ही तुरंगोंकी हींस, ऐसी गजों की गर्जना, सामन्तोंके अट्टहास, मायामई सिंह व्याघ्रादिक के शब्द, ऐसे ही वीणा बांसुरीनि के शब्द तिनकर दसों दिशा व्याप्त भईं, बन्दीजन विरद बखानै हैं, नृत्यकारिणी नृत्य करैं हैं, भांड नकल करैं हैं, नट कला करैं हैं, सूर्यके रथ समान रथ तिनके चित्राकार विद्याधर मनुष्य पशुनि के नाना शब्द सो कहां लग वर्णन करिए ? विद्याधरनि के अधिपतिने परम शोभा करी। दोनों भाई महामनोहर अयोध्याविषें प्रवेश करते भए। अयोध्या नगरी स्वर्गपुरी समान, राम लक्ष्मण इन्द्र प्रतीन्द्र समान, समस्त विद्याधर देव समान, तिनका कहां लग वर्णन करिए। श्रीरामचन्द्रकूं देख प्रजारूप समुद्र विषें आनन्द की ध्वनि बढ़ती भई, भले २ पुरुष अर्घपाद्य करते भए सोई तरंग भई, पैंड पैंड विषें जगतकरि पूज्यमान दोनों वीर महाधीर, तिनको समस्त जन आशीर्वाद देते भए—हे देव ! जयवंत होवो, वृद्धिकूं प्राप्त होवहु, चिरंजीव होवहु, नांदो विरधो; या भांति असीस देते भए। अर अति ऊंचे विमान समान मंदिर तिनके शिखरविषैं तिष्ठती सुन्दरी, फूल गए हैं नेत्रकमल जिनके, वे मोतिनि के अक्षत डारती भईं, सम्पूर्ण पूर्णमासी के चन्द्रमा-समान राम कमलनेत्र अर वर्षा की घटा-समान लक्ष्मण शुभ लक्षण, तिनके देखिवेकूं नर नारी अनुरागी भए अर समस्त कार्य तजि झरोखों विषें बैठी नारीजन निरखैं हैं सो मानों कमलों के वन फूल रहे हैं। अर स्त्रीनिके परस्पर संघट्ट कर मोतिनके हार टूटे सो मानों मोतिनकी वर्षा होय है। स्त्रीनिके मुखसे ऐसी ध्वनि निकसे कि ये श्रीराम जाके समीप जनक की पुत्री सीता बैठी जाकी माता रानी विदेहा है। अर श्रीरामने साहसगति विद्याधर मारा, वह सुग्रीवका आकार धर आया हुता, विद्याधरनि विषें दैत्य कहावै, राजा वृबका नाती। अर यह लक्ष्मण रामका लघुवीर इन्द्रतुल्य पराक्रमी, जाने लंकेश्वरकूं चक्रकर हता। अर यह सुग्रीव जाने रामसूं मित्रता करी अर यह सीता का भाई भामंडल जिसको जन्मसूं ही देव हर ले गया हुता बहुरि दयाकर छोड़या सो राजा चन्द्रगति के पल्या, आकाशसूं वन विषें गिरा, राजा ने लेकर रानी पुष्पवतीकूं सौंप्या, देवोंने कानविषैं कुंडल पहिराकर

आकाशसे डाल्या सो कुंडलकी ज्योति कर मुख चंद्रसमान भास्या, तातैं भामंडल नाम धरया। अर यह राजा चन्द्रोदयका पुत्र विराधित अर यह पवनका पुत्र हनुमान कपिध्वज या भाँति आश्चर्य युक्त नगर की नारी वार्ता करती भई।

अथानन्तर राम लक्ष्मण राजमहल विषें पधारे, सो मंदिरके शिखर तिष्ठती दोनों माता पुत्रनि के स्नेह विषें तत्पर, जिनके स्तन से दुग्ध झरे, महा गुणनि की धरणहारी कौशल्या सुमित्रा अर केकई सुप्रभा चारों माता मंगलविषें उद्यमी पुत्रों के समीप आईं। राम लक्ष्मण पुष्पक विमान से उतरि मातानिसूं मिले, माताओंकूं देख हर्षकूं प्राप्त भए, कमल-समान नेत्र दोनों भाई लोकपाल-समान हाथ जोड़ नम्रीभूत होय अपनी स्त्रियों सहित मातानिकूं प्रणाम करते भए। वे चारों ही अनेक प्रकार असीस देती भईं, तिनकी असीस कल्याण की करणहारी है। अर चारों ही माता राम लक्ष्मण को उरसे लगाय परम सुखकूं प्राप्त भईं, उनका सुख वे ही जानैं, कहिवे विषें न आवै। बारम्बार उर से लगाय सिर पर हाथ धरती भई, आनन्द के अश्रुपात करि पूर्ण हैं नेत्र जिनके, परस्पर माता पुत्र कुशल क्षेम सुख दुःखकी वार्ता पूछि परम संतोषकूं प्राप्त भए। माता मनोरथ करती हुती सो हे श्रेणिक ! वांछा से अधिक मनोरथ पूर्ण भए, वे माता योधाओं की जननहारी, साधुओं की भक्त, जिनधर्मविषें अनुरक्त, सुन्दर चित्त बेटाओं की सैंकड़ों बहू तिनको देखि चारों ही अति हर्षित भई। अपने योधा पुत्र तिनके प्रभावकरि पूर्व पुण्यके उदय करि अति महिमा संयुक्त जगत विषें पूज्य भईं। राम लक्ष्मण का सागरों पर्यन्त कंटक रहित पृथ्वीविषें एक छत्र राज्य भया, सब पर यथेष्ट आज्ञा करते भए। राम-लक्ष्मणका अयोध्या विषें आगमन अर माताओं से तथा भाइयों से मिलाप रूप यह अध्याय जो पढ़ै सुनै, शुद्ध है बुद्धि जाकी, सो पुरुष मनवांछित संपदाकूं पावै, पूर्ण पुण्य उपार्जे, शुभ मति एक ही नियम दृढ़ होय भावनिकी शुद्धता से करै तो अति प्रताप को प्राप्त होय, पृथ्वीमें सूर्य-समान प्रकाशकूं करै, तातैं अव्रत तज नियमादिक धारण करो।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं
राम-लक्ष्मण का आगमन वर्णन करने वाला ब्यासीवां पर्व पूर्ण भया ॥८२॥

तिरासीवां पर्व

[राम-लक्ष्मण की राज्य-विभूति का वर्णन]

अथानन्तर राजा श्रेणिक नमस्कार कर गौतम गणधरकूं पूछता भया—हे देव ! श्रीराम लक्ष्मण की लक्ष्मीका विस्तार सुनने की मेरे अभिलाषा है। तब गौतमस्वामी कहते भए—हे श्रेणिक ! राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न इनका वर्णन कौन करि सकै तथापि संक्षेप से कहूँ हूँ। राम लक्ष्मण के विभव का वर्णन—हाथी अर के ब्यालीस लाख अर

रथ एते ही, घोड़े नौ कोटि, प्यादे ब्यालीस कोटि अर तीन खंड के देव विद्याधर सेवक, राम के रत्न चार-हल मूशल रत्नमाला गदा अर लक्ष्मण के सात-शंख चक्र गदा खड्ग दंड नागशय्या कौस्तुभ मणि। राम लक्ष्मण दोनों ही वीर महावीर धनुषधारी अर तिनका घर लक्ष्मी का निवास इन्द्र के भवन तुल्य, ऊंचे दरवाजे अर चतुःशाल नामा कोट महापर्वत के शिखर समान ऊंचा अर वैजयन्ती नामा सभा महा मनोज्ञ अर प्रसादकूट नामा अत्यन्त उत्तंग दसों दिशा का अवलोकन का गृह अर विन्ध्याचल पर्वत सारिखा वर्धमानक नामा नृत्य देखिवेका गृह अर अनेक सामग्रीसहित कार्य करनेका गृह अर कूकडेके अंडे समान महा अद्भुत शीतकाल विषैं सोवने का गर्भगृह अर ग्रीष्म विषैं दुपहरी के विराजने का धारा मंडपगृह इकथंभा महामनोहर अर रानियों के घर रत्नमई महासुन्दर, दोनों भाइयोंकी सोयवेकी शैय्या जिनके सिंहोंके आकारके पाए पद्मरागमणिके अति सुन्दर अम्भोदकांड नामा विजुरीका सा चमत्कार धरे, वर्षा ऋतु विषैं पौढवे का महल अर महाश्रेष्ठ उगते सूर्य-समान सिंहासन अर चंद्रमा-तुल्य उज्ज्वल चमर अर निशाकर-समान उज्ज्वल छत्र अर महासुन्दर विषमोचक नाम पांवडी, तिनके प्रभाव से सुख से आकाश विषैं गमन करैं अर अमोलक वस्त्र अर महादिव्य आभरण, अभेद्य बक्तर, महामनोहर मणियों के कुंडल अर अमोघ गदा खड्ग कनक बाण अनेक शस्त्र महासुन्दर, महारण के जीतनहारे अर पचास लाख हल, कोटि से अधिक गाय, अक्षय भंडार अर अयोध्या आदि अनेक नगर जिनविषैं न्याय की प्रवृति, प्रजा सब सुखी संपदा कर पूर्ण अर महा मनोहर वन उपवन नाना प्रकार फल पुष्पों कर शोभित अर महा सुन्दर स्वर्ण रत्नमई सिवाणों कर शोभित, क्रीडा करिवे योग्य वापिका अर पुर तथा ग्रामों विषैं लोक अति सुखी, जहां महल अति सुन्दर अर किसानों को किसी भांति का दुःख नाहीं, जिनके गाय भैंसों के समूह अर सब भाँति के सुख अर लोकपालों जैसे सामंत अर इन्द्रतुल्य विभव के धरणहारे महातेजवंत अनेक राजा सेवक अर राम के स्त्री आठ हजार अर लक्ष्मणके स्त्री देवांगना समान सोलह हजार, जिनके समस्त सामग्री समस्त उपकरण मनवांछित सुखके देवहारे। श्रीराम ने भगवान के हजारों चैत्यालय कराए जैसे हरिषेण चक्रवर्ती ने कराए थे, वे भव्यजीव सदा पूजित, महाऋद्धि के निवास, देश ग्राम नगर वन गृह गली सर्व ठौर ठौर जिन मंदिर करावते भए। सदा सर्वत्र धर्म की कथा, लोक अति सुखी, सुकौशल देश के मध्य इन्द्रपुरी-तुल्य अयोध्या, जहां अति उत्तंग जिन मंदिर जिनका वर्णन किया न जाय। अर क्रीडा करवे के पर्वत मानों देवों के क्रीडा करिवेके पर्वत हैं, प्रकाशकर मंडित मानों शरदके बादल ही हैं, अयोध्या का कोट अति

उत्तंग समुद्र की वेदिका-तुल्य महा शिखर कर शोभित स्वर्ण रत्नों का समूह, अपनी किरणोंकर प्रकाश किया है आकाश विषैं जिसने, जिसकी शोभा मन से भी अगोचर। विश्वय सेती यह अयोध्या नगरी पवित्र मनुष्योंकरि भरी सदा ही मनोज्ञ हुती, अब श्रीरामचंद्र ने अति शोभित करी जैसे कोई स्वर्ग सुनिये है जहां महा संपदा है मानों राम लक्ष्मण स्वर्ग से आए सो मानों सर्व सपदा ले आए। आगे अयोध्या हुती तातैं राम के पधारे अति शोभायमान भई, पुण्यहीन जीवों को जहांका निवास दुर्लभ, अपने शरीर कर तथा शुभ लोकों कर तथा स्त्री धवादि कर रामचन्द्र ने स्वर्ग तुल्य करी। सर्व ठौर राम का यश परन्तु सीता के पूर्व कर्म के दोष कर मूढ लोग यह अपवाद करें—देखो विद्याधरों का नाथ रावण उसने सीता हरी सो राम बहुरि ल्याये अर गृह विषैं राखी, यह कहा योग्य ? राम महा ज्ञानी बड़े कुलीन चक्री महा शूरवीर तिनके घर विषैं जो यह रीति तो और लोकों की क्या बात ? इस भांति शठ जन वार्ता करैं।

(भरत का राज्य करते हुवे भी विरक्त चित्त रहना और दीक्षा के लिए उद्यमी होना)

अथानन्तर स्वर्ग लोककूं लज्जा उपजावैं ऐसी अयोध्यापुरी तहां भरत इन्द्र समान भोगनिकर भी रति न मानते भए, अनेक स्त्रीनिके प्राण वल्लभ सो निरन्तर राज्य-लक्ष्मीसे उदास सदा भोगोंकी निंदा ही करैं। भरतकामंदिर अनेक मंदिरनिकर मंडित,नाना प्रकार के रत्ननिकर निर्मापित, मोतीनि की माला कर शोभित, फूल रहे हैं वृक्ष जहीं, अनेक आश्चर्य का भरा, सब ऋतु के विलासकर युक्त, जहां बीण मृदंगादिक अनेक वादित्र बाजैं, देवांगना समान अति सुन्दर स्त्रीजनोंकर पूर्ण, जाके चौगिर्द मदोन्मत्त हाथी गाजैं, श्रेष्ठ तुरंग हींसैं, गीत नृत्य वादित्रनिकरि महामनोहर, रत्नों के उद्योतकरि प्रकाश रूप महारमणीक क्रीडा का स्थानक, जहां देवों को रुचि उपजै परन्तु भरत संसार से भयभीत अति उदास, उसे तहां रुचि नाहीं। जैसे पारधीकर भयभीत जो मृग सो किसी ठौर विश्राम न लहैं। भरत ऐसा विचार करैं कि मैं यह मनुष्य देह महाकष्ट से पाई सो पानी के बुदबुदावत क्षणभगुर अर यह यौवन झागों के पुंज समान अति असार दोषों का भरा अर ये भोग अति विरस इन विषैं सुख नाहीं, यह जीतव्य अर कुटुम्ब का सम्बन्ध स्वप्न समान जैसें वृक्षनि पर पक्षियों का मिलाप रात्रिकूं होय, प्रभात ही दसों दिशाकूं उड़ जावैं, ऐसा जानि जो मोक्ष का कारण धर्म न करैं सो जरा कर जर्जरा होय शोकरूप अग्नि कर जरैं। यह नवयौवन मूढोंकूं वल्लभ या विषैं कौन विवेकी राग करै, कदाचित न करै। यह अपवाद के समूह का निवास संध्या के उद्योत समान विनश्वर अर यह शरीररूपी यन्त्र नाना व्याधि के समूह का घर, पिता के वीर्य माता के रुधिर से उपजा, या विषैं कहा रति ? जैसे ईंधन कर अग्नि तृप्त न होय अर समुद्र जलसे तृप्त

न होय, तैसैं इन्द्रियनिके विषयनिकर तृप्ति न होय। यह विषय अनादिसे अनंतकाल सेए परन्तु तृप्तिकारी नाहीं। यह मूढ जीव कामविषैं आसक्त भला बुरा न जानै, पतंग-समान विषयरूप अग्नि विषैं पड़े पापी महा भयंकर दुःखकूं प्राप्त होंय। यह स्त्रीनि के कुच मांस के पिण्ड, महावीभत्स गलगंड-समान तिनविषैं कहा रति ? अर स्त्रीनिका मुखरूप बिल, दंतरूप कीड़ोंकर भरा, तांबूलके रसकरि लाल छुरीके घाव समान, ता विषैं कहा शोभा? अर स्त्रीनिकी चेष्टा वायुविकार समान विरूप उन्मादकर उपजी, उस विषैं कहा प्रीति अर भोग रोग समान हैं, महाखेदरूप दुःख के निवास, इन विषैं कहा विलास ? अर यह गीत वादित्रों के नाद रुदन-समान तिन विषैं कहा प्रीति ? रुदन कर भी महल का गुंमट गाजै अर गानकर भी गाजै। नारियों का शरीर मल-मूत्रादिककरि पूर्ण, चर्मकर वेष्टित, याके सेवन विषैं कहा सुख होय ? विष्टा के कुम्भ तिनका संयोग अतिवीभत्स, अति लज्जाकारी, महा दुःखरूप नारियों के भोग उन विषैं मूढ सुख मानै ? देवनिके भोग इच्छा उत्पन्न होते ही पूर्ण होंय, तिनकरि भी जीव तृप्त न भया तो मनुष्यों के भोगों करि कहा तृप्त होय ? जैसे दूब की अणी पर जो ओस की बूंद ताकर कहा तृष्णा बुझै ? अर जैसे ईंधन का बेचनहारा सिर पर भार लाय दुःखी होय तैसे राज्य के भार का धरणहारा दुःखी होय। हमारे बड़ेनिविषैं एक राजा सौदास उत्तम भोजन कर तृप्त न भया अर पापी अभक्ष्यका आहार करि राज्यभ्रष्ट भया। जैसे गंगा के प्रवाह विषैं मांस का लोभी काग मृतक हाथी का शरीर चूटता तृप्त न भया, समुद्रविषैं डूब मूवा, तैसे यह विषयाभिलाषी भवसमुद्र विषैं डूबै है। यह लोक मींडक समान मोहरूप कीच विषैं मग्न, लोभरूप सर्पके ग्रसे नरक विषैं पड़ै हैं। ऐसे चिन्तवन करते शांत चित्त भरत को कैयक दिवस अति विरस से बीते। जैसे सिंह महा समर्थ पींजरे विषै पड़ा खेदखिन्न रहै, ताके वन विषैं जायवेकी इच्छा तैसें भरत महाराज के महाव्रत धारवे की इच्छा सो घर विषैं सदा उदास ही रहैं, महाव्रत सर्व दुःखका नाशक। एक दिवस वह शांतचित्त घर तजिवेको उद्यमी भया तब केकईके कहेसे राम लक्ष्मण ने थांभा अर महा स्नेह करि कहते भए हे भाई! पिता वैराग्यकूं प्राप्त भए तब तोहि पृथ्वी का राज्य दिया, सिंहासन पर बैठाया, सो तू हमारा सर्व रघुवंशियों का स्वामी है, लोकका पालन कर, यह सुदर्शन चक्र यह देव अर विद्याधर तेरी आज्ञा विषैं हैं, या धराको नारी समान भोग, मैं तेरे सिर पर चन्द्रमा समान उज्ज्वल छत्र लिए खड़ा रहूं अर भाई शत्रुघ्न चमर ढारै अर लक्ष्मण सा सुन्दर तेरा मंत्री अर तू हमारा वचन न मानेगा तो मैं बहुरि विदेश चला जाऊंगा, मृगों की नाईं वन विषैं रहूंगा। मैं तो राक्षसों का तिलक जो रावण ताहि जीत तेरे दर्शनके अर्थ आया। अब तू निःकंटक राज्य कर, पीछे तेरे साथ मैं भी मुनिव्रत आदरूंगा,

इस भांति महा शुभचित्त श्रीराम भाई भरतसूं कहते भए।

तब भरत महा निस्पृह विषय रूप विष से अतिविरक्त कहता भया—हे देव ! मैं राज्य संपदा तुरत ही तजा चाहू हूं जिसको तजकरि शूरवीर पुरुष मोक्ष प्राप्त भए। हे नरेन्द्र ! अर्थ काम महा चंचल, महादुःख के कारण, जीवों के शत्रु, महापुरुष करि निंद्य हैं, तिनको मूढ जन सेवें हैं। हे हलायुध ! यह क्षण भंगुर भोग तिनमें मेरी तृष्णा नाहीं, यद्यपि स्वर्गलोक समान भोग तुम्हारे प्रसाद करि अपने घर में हैं तथापि मुझे रुचि नाहीं, यह संसार सागर महा भयानक है जहां मृत्युरूप पातालकुंड महाविषम है अर जन्मरूप कल्लोल उठै हैं अर राग द्वेषरूप नाना प्रकार के भयंकर जलचर हैं अर रति अरतिरूप क्षार जलकर पूर्ण हैं, जहां शुभ अशुभ रूप चोर विचरें हैं सो मैं मुनिव्रतरूप जहाज विषैं बैठकरि संसार समुद्रकूं तिरा चाहू हूं। हे राजेंद्र ! मैं नानाप्रकार योनि विषैं अनंत काल जन्म मरण किए, नरक निगोदविषैं अनंत कष्ट सहे, गर्भ वासादि विषैं खेदखिन्न भया। यह वचन भरत के सुन बड़े-बड़े राजा आंखनि विषैं आंसू डारते भए। महा आश्चर्यकूं प्राप्त होय गद्‌गद वाणी से कहते भए—हे महाराज ! पिता के वचन पालो, कैयक दिन राज्य करो। अर तुम इस राज्य लक्ष्मींकूं चंचल जान उदास भए हो तो कैयक दिन पीछे मुनि हूजियो, अवार तो तुम्हारे बड़े भाई आए हैं तिनको साता देहु। तब भरतने कही कि मैं तो पिताके वचन प्रमाण बहुत दिन राज्यसंपदा भोगी, प्रजा के दुःख हरे, पुत्र नाईं प्रजा का पालन किया, दान पूजा आदि गृहस्थके धर्म आदरे, साधुवों की सेवा करी। अब जो पिता ने किया सो मैं किया चाहूं हूँ। अब तुम इस वस्तुकी अनुमोदना क्यों न करो, प्रशंसा योग्य वस्तुविषैं कहा विवाद ? हे श्रीराम ! हे लक्ष्मण ! तुमने महा भयंकर युद्धमें शत्रुवों को जीत अगले बलभद्र वासुदेव की न्याईं लक्ष्मी उपार्जी सो तुम्हारे लक्ष्मी और मनुष्यों कैसी नाहीं तथापि राज लक्ष्मी मुझे न रुचै, तृप्ति न करै जैसे गंगादि नदियां समुद्रकूं तृप्त न करें। इसलिए मैं तत्वज्ञान के मार्ग विषैं प्रवरतूंगा। ऐसा कहकर अत्यन्त विरक्त होय राम लक्ष्मणकूं बिना पूछे ही वैराग्यकूं उठ्या, जैसे आगे भरत चक्रवर्ती उठे। यह मनोहर चाल का चलनहारा मुनिराज के निकट जायवेकूं उद्यमी भया। तब अति स्नेहकरि लक्ष्मण ने थांभा, भरत के करपल्लव ग्रहे लक्ष्मण खड़ा, ताही समय माता केकई आंसू डारती आई अर राम की आज्ञा से दोऊ भाईनिकी रानी सब ही आईं, लक्ष्मी समान है रूप जिनके अर पवन कर चंचल जो कमल ता समान हैं नेत्र जिन के, आय भरत को थांभती भईं। तिनके नाम- सीता, उर्वसी, भानुमती, विशल्या, सुन्दरी, ऐन्द्री रत्नवती, लक्ष्मी, गुणमती, बंधुमती, सुभद्रा, कुबेरा, नलकूबरा, कल्याणमाला, चंदिणी, मदमानसोत्सवा, मनोरमा, प्रियनंदा,

चन्द्रकांता, कलावती, रत्नस्थली, सरस्वती, श्रीकांता, गुणसागरी, पद्मावती इत्यादि सब आई जिनके रूप गुणका वर्णन किया न जाय, मनको हरें हैं आकार जिनके, दिव्य वस्त्र अर आभूषण पहिरे, बड़े कुल विषें उपजी, सत्यवादनी, शीलवन्ती, पुन्यकी भूमिका, समस्त कार्य विषें निपुण सो भरत के चौगिर्द खड़ी मानों चारों ओर कमलनिका बनही फूल रहा है। भरतका चित्त राजसंपदाविषें लगायवेकूं उद्यमी अति आदर करि भरतकूं मनोहर वचन कहती भईं कि हे देवर ! हमारा कहा मानों, कृपा करहु, आज सरोवरवि विषें जलक्रीडा करहु अर चिंता तजहु। जा बातकरि तिहारे भाईयोंकूं खेद न होय सो करहु अर तिहारी माताके खेद न होय सो करहु। अर हम तिहारी भावज हैं सो हमारी बिनती अवश्य मानिये, तुम विवेको विनयवान हो, ऐसा कहि भरतकूं सरोवर पर ले गईं। भरतका चित्त जलक्रीडासे विरक्त, यह सब सरोवर विषें पैठीं, वह विनयकरि संयुक्त सरोवर के तीर ऊभा ऐसा सोहै मानों गिरिराज ही है। अर वे स्निग्ध सुगंध सुन्दर वस्तुनिकरि याके शरीर का विलेपन करती भईं अर नाना प्रकार जलकेलि करती भईं, यह उत्तम चेष्टाका धारक काहूपर जल न डारता भया। बहुरि निर्मल जल से स्नानकरि सरोवर के तीर जे जिनमंदिर वहां भगवान की पूजा करता भया।

(त्रैलोक्यमंडन हाथी का उन्मत्त होना और भरतको देखकर जातिस्मरण होना)

उसी समय त्रैलोक्यमंडन हाथी, कारी घटा समान है आकार जाका, सो गज बन्धन तुड़ाय भयंकर शब्द करता निज आवास थकी निकसा। अपने मद झरिवेकरि चौमासे कैसा दिन करता सन्ता मेघ-गर्जना समान ताका गाज सुनकर अयोध्यापुरीके लोग भयकर कम्पायमान भए। अर अन्य हाथियों के महावत अपने-अपने हाथीको लेकर दूर भागे अर त्रैलोक्यमंडन गिरि समान नगर का दरवाजा भंगकर जहाँ भरत पूजा करते थे वहां आया। तब राम लक्ष्मण की समस्त रानियां भयकर कम्पायमान होय भरतके शरण आईं अर हाथी भरत के नजीक आया। तब समस्त लोक हाहाकार करते भए। अर इनकी माता अति बिह्वल भई विलाप करती भई, पुत्रके स्नेह विषें तत्पर महा शंकावान भई। अर राम लक्ष्मण गजबंधन विषें प्रवीण गज के पकड़नेकूं उद्यमी भए। गजराज महाप्रबल सामान्य जनोंसे देखा न जाय, महा भयंकर शब्द करता अति तेजवान नागफांसि कर भी रोका न जाय। अर महा शोभायमान कमल-नयन भरत निर्भय स्त्रियों के आगे तिनके बचायवेकूं खड़े, सो हाथी भरतकूं देखकर पूर्वभव विचार शान्त चित्त भया, अपनी सूण्ड शिथिल कर महा विनयवान भया भरत के आगे ऊभा। भरत याकूं मधुर-वाणी कर कहते भए—अहो गज ! तू कौन कारणकरि क्रोधकूं प्राप्त भया ? ऐसे भरतके वचन सुन अत्यन्त शान्तचित्त निश्चल खड़ा, सौम्य है मुख जाका, ऊभा भरत की ओर

देखे है। भरत महाशूरवीर शरणागतपालक ऐसे सोहैं जैसे स्वर्ग विषै देव सोहैं। हाथीकूं जन्मान्तर का ज्ञान भया सो समस्त विकार से रहित होय गया, दीर्घ निश्वास डारे। हाथी मन विषैं विचारै है—यह भरत मेरा परममित्र है, छठे स्वर्ग विषैं हम दोनों एकत्र थे, यह तो पुण्य के प्रसादकरि वहां से चयकर उत्तम पुरुष भया अर मैंने कर्म के योगसे तिर्यंचकी योनि पाई। कार्य-अकार्य के विवेक से रहित महानिंद्य पशु का जन्म है, मैं कौन योग से हाथी भया। धिक्कार इस जन्मको! अब वृथा क्या सोच? ऐसा उपाय करूं जिससे आत्मकल्याण होय अर बहुरि संसार भ्रमण न करूं। सोच किए कहा? अब सर्व प्रकार उद्यमी होय भवदुःखसे छूटिवेका उपाय करूं, चितारे हैं पूर्व भव जाने, गजेन्द्र अत्यन्त विरक्त पाप चेष्टासे पराङ्मुख होय पुण्य के उपार्जन विषैं एकाग्र चित्त भया। यह कथा गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे राजन्! पूर्व जीवने जे अशुभ कर्म किए वे संतापकूं उपजावैं। तातैं हे प्राणी हो! अशुभ कर्मको तजि दुर्गति के गमन से छूटहु। जैसे सूर्य होते नेत्रवान मार्गविषैं न अटकै, तैसे जिनधर्म के होते विवेकी कुमार्ग विषै न पड़ैं। प्रथम अधर्म को तज धर्मको आदरैं, बहुरि शुभ अशुभ से निवृत्त होय आत्म-धर्मसे निर्वाणकूं प्राप्त होवैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं त्रैलोक्यमंडन हाथीकूं जाति स्मरण होय उपशान्त होनेका वर्णन करने वाला तिरासीवां पर्व पूर्ण भया ॥८३॥

चौरासीवां पर्व

(त्रैलोक्य मंडन हाथीका आहार-विहार छोड़कर और निश्चल निश्चेष्ट होकर मौन ग्रहण करना)

अथानन्तर वह गजराज महा विनयवान धर्म ध्यानका चिंतवन करता राम लक्ष्मण ने देखा अर धीरे-धीरे इसके समीप आए, कारी घटा समान है आकार जाका सो मिष्ट वचन बोल पकड्या। अर निकटवर्ती लोकनिकूं आज्ञा करि गजकूं सर्व आभूषण पहिराए, हाथी शांत चित्त भया, तब नगरके लोगों की आकुलता मिटी। हाथी ऐसा प्रबल जाकी प्रचण्ड गति विद्याधरों के अधिपति से न रुकै। समस्त नगरविषै लोक हाथीकी वार्ता करैं हैं कि त्रैलोक्य-मंडन रावणका पाट हस्ती है, याके बल समान और नाहीं, राम लक्ष्मणने पकड़ा, विकार चेष्टाकूं प्राप्त भया था, अब शांत चित्त भया, सो लोकों के महापुण्य का उदय है अर घने जीवोंकी दीर्घ आयु। भरत अर सीता विशल्या हाथी पर चढ़े बड़ी विभूति से नगर विषैं आए। अर अद्भुत वस्त्राभरणसे शोभित समस्त रानी नाना प्रकार के वाहनों पर चढ़ी भरत को ले नगर विषैं आईं अर शत्रुघ्न भाई अश्व पर आरूढ़ महा विभूति सहित महातेजस्वी भरतके हाथीके आगे नाना प्रकार के वादित्रनिके शब्द होते नंदनवन समान वनसे नगरविषैं आए जैसे देव सुरपुरविषैं आवैं। भरत हाथीकूं उतारि

भोजनशाला विषैं गए, साधुवोंकूं भोजन देय मित्र बांधवादि सहित भोजन किया अर श्रावकोंकूं भोजन कराया, फिर लोक अपने अपने स्थानकूं गए। समस्त लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। हाथी रूठा फिर भरतके समीप खड़ा होय रह्या सो सबों को आश्चर्य उपजा। गौतम गणधर राजा श्रेणिक से कहै हैं कि हे राजन्! हाथी के समस्त महावत राम लक्ष्मणपै आय प्रणामकरि कहते भए कि हे देव! आज गजराज को चौथा दिन है—कछू खाय न पीवै, न निद्रा करै, सर्व चेष्टा तजि निश्चल ऊभा है। जिस दिन क्रोध किया था अर शान्त भया उस ही दिनसे ध्यानारूढ़ निश्चल बरतै है। हम नाना प्रकार के स्तोत्रों कर स्तुति करें हैं, अनेक प्रिय वचन कहैं हैं तथापि आहार पानी न लेय है। हमारे वचन कान न धरै, अपनी सूण्डको दांतों विषे लिए मुद्रित लोचन ऊभा है, मानों चित्रामका गज है। जिसे देखे लोकोंको ऐसा भ्रम होय है कि यह कृत्रिम गज है अथवा सांचा गज है। हम प्रिय वचन कह कर आहार दिया चाहे हैं सो न लेय, नाना प्रकार के गजों के योग्य सुन्दर आहार उसे न रुचै, चिन्तावान सा ऊभा है, निश्वास डारै है, समस्त शास्त्रों के वेत्ता, महा पंडित प्रसिद्ध गजवैद्यों के हाथ भी हाथी का रोग न आया। गंधर्व नाना प्रकार के गीत गावै हैं सो न सुनै अर नृत्यकारिणी नृत्य करैं हैं सो न देखै। पहिले नृत्य देखै था, गीत सुनै था, अनेक चेष्टा करै था सो सब तज्या। नाना प्रकार के कौतुक होय हैं सो दृष्टि न धरै। मन्त्र विद्या औषधादिक अनेक उपाय किए सो न लगे, आहार विहार निद्रा जल पानादिक सब तजे। हम अति विनती करे हैं सो न मानै, जैसे रूठे मित्र को अनेक प्रकार मनाइये सो न मानै। न जानिए इस हाथी के चित्त विषें कहा है? काहू वस्तु से काहू प्रकार रीझै नाहीं, काहू वस्तु पर लुभावै नाहीं, खिजाया संता क्रोध न करै, चित्राम का सा खड़ा है। यह त्रैलोक्यमंडन हाथी समस्त सेना का शृंगार है, जो आपकूं उपाय करना होय सो करो, हम हाथी का सब वृत्तांत आप से निवेदन किया। तब राम लक्ष्मण गजराजकी चेष्टा सुन अति चिंतावान भए। मन में विचारैं हैं कि यह गज बन्धन तुड़ाय निसरा, कौन प्रकार से क्षमाकूं प्राप्त भया अर आहार पानी क्यों न लेय? दोनों भाई हाथी का सोच करते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं त्रैलोक्यमंडन हाथी का वर्णन करने वाला चौरासीवां पर्व पूर्ण भया ॥८४॥

पचासीवां पर्व

(देशभूषण केवली के द्वारा भरत और त्रैलोक्यमंडन हाथी के पूर्व भव का वर्णन)

अथानन्तर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे नराधिप! ताही समय अनेक मुनिनि सहित देशभूषण कुलभूषण केवली जिनका वंशस्थल गिरि ऊपर राम लक्ष्मण ने

उपसर्ग निवारा हुता अर जिनकी सेवा करने करि गरुडेन्द्र ने राम लक्ष्मण से प्रसन्न होय उनको अनेक दिव्यशस्त्र दिए जिनकर युद्ध में विजय पाई, ते भगवान केवली सुर असुर-निकर पूज्य, लोकप्रसिद्ध अयोध्या के नन्दनवन समान महेन्द्रोदय नामा वन विषें महासंघ सहित आय विराजे। तब राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न दर्शन के अर्थ प्रभात ही हाथीनि पर चढि वायवेकूं उद्यमी भए। अर उपजा है जाति स्मरण जाको ऐसा जो त्रैलोक्यमण्डन हाथी सो आगे आगे चला जाय है। जहां वे दोनों केवली कल्याणके पर्वत तिष्ठे हैं, तहां देवनि समान शुभ चित्त नरोत्तम गए अर कौशल्या सुमित्रा केकई सुप्रभा यह चारों ही माता साधु भक्तिविषें तत्पर, जिनशासनकी सेवक, स्वर्गनिवासिनी देवीनि-समान सैंकड़ों राणीनिसे युक्त चाली। अर सुग्रीवादि समस्त विद्याधर महाविभूति संयुक्त चाले, केवली के स्थानक दूरही तें देख रामादिक हाथी तें उतर आगे गए, दोनों हाथ जोड़ प्रणाम कर पूजा करी, आप योग्य भूमि विषें विनयतें बैठे, तिनके वचन सावधान चित्त होय सुनते भए। ते वचन वैराग्य के मूल अर रागादिक के नाशक हैं क्योंकि रागादिक संसार के कारण अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्ष के कारण हैं। केवली की दिव्यध्वनि विषें यह व्याख्यान भया जो अणुव्रतरूप श्रावकका धर्म अर महाव्रत यतिका धर्म ये दोनों ही कल्याण के कारण हैं। यति का धर्म साक्षात् निर्वाणका कारण अर श्रावकका धर्म परंपराय मोक्षका का कारण है। गृहस्थ का धर्म अल्पारम्भ अल्प परिग्रह को लिए कछु सुगम है अर यति का धर्म निरारम्भ निष्परिग्रह अति कठिन महा शूरवीरनिही तें सधै है। यह लोक अनादिनिधन जाका आदि अन्त नाहीं, ता विषें यह प्राणी लोभकरि मोहित नाना प्रकार कुयोनि विषें महादुःखकूं पावै है, संसार का तारक धर्म ही है, यह धर्म नामा परम मित्र जीवों का महा हितु है। जिस धर्मके मूल जीवदयाकी महिमा कहिवे विषें न आवै ताके प्रसाद से प्राणी मनवांछित सुख पावै है, धर्म ही पूज्य है, जे धर्मका साधन करैं ते ही पंडित हैं। यह दयामूल धर्म महा कल्याण का कारण जिनशासन विना अन्यत्र नाहीं। जे प्राणी जिनप्रणीत धर्म में लगे ते त्रैलोक्य के अग्र जो परम धाम हैं वहां प्राप्त भए। यह जिनधर्म परम दुर्लभ है। या धर्म का मुख्य फल तो मोक्ष ही है अर गौण फल स्वर्ग विषें इन्द्र पद अर पातालविषें नागेन्द्रपद, पृथ्वी विषें चक्रवर्त्यादि नरेन्द्रपद ये फल हैं। इस भांति केवली ने धर्मका निरूपण किया। तब प्रस्ताव पाय लक्ष्मण पूछते भए—हे प्रभो! त्रैलोक्यमण्डन हाथी गज बन्धन उपाडि क्षोभकूं प्राप्त भया, बहुरि तत्काल शांत भावकूं प्राप्त भया सो कौन कारण? तब केवली देशभूषण कहते भए—प्रथम तो यह लोकनिकी भीड़ देख मदोन्मत्तता थकी क्षोभकूं प्राप्त भया। बहुरि भरतकूं देख पूर्वभव चितार शांत भावकूं प्राप्त भया। चतुर्थ कालके आदि में या अयोध्या विषें

नाभिराजाके मरुदेवीके गर्भ विषैं भगवान ऋषभ उपजे। पूर्व भव विषैं षोडशकारण भावना भाय त्रैलोक्यकूं आनंद का कारण तीर्थंकर पद उपार्ज्या, पृथ्वी विषैं प्रगट भए, इंद्रादिक देवनिने जिनके गर्भ अर जन्म कल्याणक किए सो भगवान पुरुषोत्तम तीन लोक करि नमस्कार करिवे योग्य पृथ्वीरूप पत्नी के पति भए। कैसी है पृथ्वी रूप पत्नी ? विन्ध्याचल गिरि वेई हैं स्तन जाके अर समुद्र है कटिमेखला जाकी, सो बहुत दिन पृथ्वी का राज्य किया। जिनका ऐश्वर्य देख इंद्रादिकदेव आश्चर्यकूं प्राप्त भए तिनके गुण केवली बिना कोई जानवे समर्थ नाहीं।

एक समय नीलांजना नामा अप्सरा नृत्य करती हुती सो विलाय गई, ताहि देख प्रतिबुद्ध भए, वे भगवान स्वयं बुद्ध महामहेश्वर तिनकी लौकांतिक देवनिने स्तुति करी, ते जगत गुरु भरत पुत्रकूं राजदेय वैरागी भए। इंद्रादिक देवनिने तपकल्याणक किया, तिलकनामा उद्यान विषैं महाव्रत धरे। तबसे यह स्थान प्रयाग कहाया। भगवान ने एक हजार वर्ष तप किया, सुमेरु समान अचल सर्वपरिग्रहके त्यागी तहातप करते भए। तिनके संग चार हजार राजा निकसे, ते परिषह न सह सकने कर व्रत-भ्रष्ट भए, स्वेच्छाविहारी होय वन फलादिक भखते भए। तिनके मध्य मारीच दण्डीका भेष धरता भया। ताके प्रसंग से सूर्योदय चन्द्रोदय राजा सुप्रभा के पुत्र रानी प्रह्लादना की कुक्षि विषै उपजे, ते भी चारित्र-भ्रष्ट भए मारीच के मार्ग लागे, कुधर्म के आचरणसूं चतुर्गति संसार में भ्रमे, अनेक भव विषैं जन्म मरण किए। बहुरि चन्द्रोदय का जीव कर्म के उदयसूं नागपुर नामा नगर विषैं राजा हरिपति ताके राणी मनोलता के गर्भविषैं उपज्या, कुलंकर नाम कहाया बहुरि राज्य पाया। अर सूर्योदय का जीव अनेक भव भ्रमण कर उस ही नगर विषैं विश्वनामा ब्राह्मण, जिसके अग्निकुंड नामा स्त्री, उसके श्रुतिरत नामा पुत्र भया। सो पुरोहित पूर्व जन्मके स्नेह से राजा कुलंकर को अति प्रिय भया। एक दिन राजा कुलंकर तापसियों के समीप जाय था सो मार्ग विषैं अभिनन्दन नामा मुनि का दर्शन भया। वे मुनि अवधिज्ञानी सर्व लोक के हितू तिन्होंने राजासे कही–तेरा दादा सर्प भया सो तपस्वियों के काष्ठमध्य तिष्ठै है, सो तापसी काष्ठ विदारेंगे सो तू रक्षा करियो। तब यह तहाँ गया, जो मुनिने कही थी त्योंही दृष्टि पड़ी, इसने सर्प बचाया अर तापसियों का मार्ग हिंसारूप जाण्या, तिनसे उदास भया, मुनिव्रत धारिवेकूं उद्यम किया। तब श्रुतिरत पुरोहित पापकर्मी ने कही–हे राजन्! तिहारे कुल विषैं वेदोक्त धर्म चला आया है अर तापस ही तिहारे गुरु हैं तातैं तू राजा हरिपति का पुत्र है तो वेद मार्ग का ही आचरण कर, जिनमार्ग मत आचरै। पुत्रकूं राज देय वेदोक्त विधि कर तू तापस का व्रत धर, मैं

तेरे साथ तप धरूंगा; या भांति पापी पुरोहित मूढमति ने कुलंकर का मन जिनशासन से फेरया। अर कुलंकर की स्त्री श्रीदामा सो पापिनी परपुरुषासक्त उसने विचारी कि मेरी कुक्रिया राजा ने जानी इसलिए तप धारै है सो न जानिए तप धरै के न धरै, कदाचित् मोहि मारै तातैं मैं ही उसे मारूं। तब उसने विष देयकर राजा अर पुरोहित दोनों मारे सो मर कर निकुंजिया नामा वन में पशुघातक पाप से दोनों सूआ भए। बहुरि मींडक भए, मूसा भए, मोर भए, सर्प भए, कूकर भए, कर्मरूप पवन के प्रेरे तिर्यंच-योनि विषैं भ्रमे। बहुरि पुरोहित श्रुतिरतका जीव हस्ती भया अर राजा कुलंकर का जीव मींडक भया सो हाथीके पग तले दबकर मूवा, बहुरि मींडक भया सो सूके सरोवर विषैं कागने भख्या सो कूकड़ा भया। हाथी मरकर मार्जार भया, उसने कुक्कट भखा। कुलंकरका जीव तीन जन्म कूकड़ा भया सो पुरोहित के जीव मार्जार ने भख्या। बहुरि ये दोनों मूसा मार्जार शिशुमार जाति के मच्छ भए सो धीवरने जाल विषै पकड़ कुहाडनि से काटे सो मूए। दोनों मरकर राजगृही नगर विषैं बह्वाश नामा ब्राह्मण उसकी उल्का नामा स्त्रीके पुत्र भए। पुरोहितके जीवका नाम विनोद, राजा कुलंकर के जीवका नाम रमण सो महा दरिद्री अर विद्या रहित। तब रमणने विचारी—देशांतर जाय विद्या पढ़ूं। तब घर से निकसा, पृथ्वीविषैं भ्रमता चारों वेद अर वेदो के अंग पढ़े। बहुरि राजगृही नगरी आय पहुंचा, भाई के दर्शन की अभिलाषा, सो नगर के बाहिर सूर्य अस्त होय गया, आकाश विषैं मेघपटल के योग से अति अन्धकार भया, सो जीर्ण उद्यान के मध्य एक यक्ष का मंदिर तहां बैठा। अर याके भाई विनोद की समिधा नामा स्त्री सो महा कुशीला, एक अशोकदत्त नामा पुरुष से आसक्त सो तासे यक्ष के मंदिर का संकेत किया हुता, सो अशोकदत्तकूं तो मार्ग विषे कोटपालके किंकरने पकड़या अर विनोद खड्ग हाथ विषैं लिए अशोकदत्त के मारवेकूं यक्ष के मंदिर आया सो जार समझि खडग से भाई रमणकूं मारा, अन्धकार विषैं दृष्टि न पडया सो रमण मूवा, विनोद घर गया। बहुरि विनोद भी मूवा सो दोनों अनेक भव धरते भए।

बहुरि विनोद का जीव तो सालवन विषैं आरण भैंसा भया अर रमण का जीव अंधा रीछ भया सो दोनों दावानल विषैं जरे, मरकर गिरि वन विषैं भील भए, बहुरि मर कर हिरण भए सो भीलने जीवते पकड़े। दोनों अति सुन्दर सो तीसरा नारायण स्वयंभूति श्रीविमलनाथजी के दर्शन करि पीछा आवै था, उसने दोनों हिरण लिए अर जिन मंदिरके समीप राखे, सो राजद्वारसे इनकूं मनवांछित आहार मिलै अर मुनिनि के दर्शन करें, जिनवाणी का श्रवण करें। कुछ दिन विषैं रमण का जीव जो मृग हुता सो समाधिमरण कर स्वर्ग लोक गया अर विनोद का जीव जो मृग हुता वह आर्तध्यान से

तिर्यंचगति विषैं भ्रम्या। बहुरि जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र विषैं कंपिल्यानगर तहां धनदत्त नामा वणिक बाईस कोटि दीनार का स्वामी भया। चार टोक स्वर्ण की एक दीनार होय है। ता वणिकके वारुणी नामा स्त्री उसके गर्भ विषैं दूजे भाई रमण का जीव मृग पर्याय से देव भया था सो भूषण नामा पुत्र भया, निमित्तज्ञानी ने इसके पिता से कहा कि यह सर्वथा जिन दीक्षा धरेगा। सुनकर पिता चितावान भया, पिता का पुत्र से अधिक प्रेम, इसको घर ही विषैं राखै, बाहिर निकसने न देय, सब सामग्री याके घर विषैं विद्यमान। यह भूषण सुन्दर स्त्रीनिकर सेव्यमान, वस्त्र आहार सुगन्धादि विलेपन कर घर विषैं सुखसे रहै, याकूं सूर्य के उदय अस्तकी गम्य नाहीं, याके पिताने सैंकड़ों मनोरथ कर यह पुत्र पाया अर एक ही पुत्र, सो पूर्व जन्म के स्नेह से पिताकूं प्राणसे भी प्यारा, पिता तो विनोद का जीव अर पुत्र रमण का जीव, आगे दोनों भाई हुते अर या जन्म विषैं पिता पुत्र भए। संसारकी विचित्रगति है—ये प्राणी नटवत् नृत्य करैं हैं, संसार का चरित्र स्वप्न के राज्य समान असार है। एक समय यह धनदत्त का पुत्र भूषण प्रभात समय दुंदुभी शब्द अर आकाश विषे देवनिका आगमन देख प्रतिबुद्ध भया। यह स्वभावही से कोमल चित्त धर्मके आचार विषे तत्पर महाहर्ष का भरया दोनों हाथ जोड़ नमस्कार करता श्रीधर केवली की वन्दनाकूं शीघ्र ही जाय था, सो सिवाण से उतरते सर्प ने डसा, देह तज महेन्द्र नामा जो चौथा स्वर्ग तहां देव भया। तहां तैं चयकर पुष्कर द्वीप विषैं चन्द्रादित्य नामा नगर तहां राजा प्रकाशयश ताके रानी माधवी, ताके जगद्युत नामा पुत्र भया। यौवन के उदय विषे राज्य लक्ष्मी पाई परन्तु संसार से अति उदास राज विषैं चित्त नाहीं, सो याके वृद्ध मंत्रीनि ने कही—यह राज तिहारे कुलक्रम से चला आवैं है सो पालहु, तिहारे राज्य में प्रजा सुख रूप होयगी, सो मंत्रीनिके हठ से यह राज्य करै, राज्य विषैं तिष्ठता यह साधुनिकी सेवा करै सो मुनि दान के प्रभाव से देवकुरु भोगभूमि गया। तहां से ईशान नाम दूजा स्वर्ग तहां देव भया। चार सागर दोय पल्य देवलोक के सुख भोग देवांगनानिकर मंडित नाना प्रकार के भोग भोगि तहां से चया सो जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह मध्य अचल नामा चक्रवर्तीके रत्नानामा रानी के अभिराम नामा पुत्र भया, सो महागुणनिका समूह अति सुन्दर जाहि देखि सर्व लोककूं आनन्द होय, सो बाल अवस्था ही से विरक्त जिनदीक्षा धारया चाहै अर पिता चाहै कि यह घरविषैं रहै। तीन हजार राणी इसे परणाई सो वे नाना प्रकार के चरित्र करैं परन्तु यह विषय सुखकूं विष समान गिनै, केवल मुनि होयबे की इच्छा, अति शान्त चित्त परन्तु पिता घरसे निकसने न देय। यह महाभाग्य महा शीलवान महा गुणवान महात्यागी, स्त्रियोंका अनुराग नाहीं, याकूं ते स्त्री अनेक भांतिके वचनकर अनुराग उपजावैं, अति यत्नकर सेवा करैं परन्तु याकूं संसार

की माया गर्त रूप भासै। जैसे गर्त में पड़या गज ताके पकड़बहारे मनुष्य नाना भांति ललचावें तथापि गज को गर्त न रुचै, ऐसे याहि जगत् की माया न रुचै। यह शान्त चित्त पिता के निरोध से अति उदास भया घर विषें रहै, तिन स्त्रीनिके मध्य प्राप्त हुवा तीव्र असिधारा व्रत पालै। स्त्रीनिके मध्य रहना अर शील पालना, तिनसे संसर्ग न करना, ताका नाम असिधारा व्रत कहिए। मोतिन के हार बाजूबन्द मुकुटादि अनेक आभूषण पहिरे तथापि आभूषणसूं अनुराग नाहीं। यह महाभाग्य सिंहासन पर बैठा निरन्तर स्त्रीनिको जिनधर्म की प्रशंसाका उपदेश देय, त्रैलोक्यविषें जिनधर्म समान और धर्म नाहीं। ये जीव अनादिकाल से संसार वन विषें भ्रमण करें हैं सो कोई पुन्य कर्म के योग से जीवोंकूं मनुष्य देह की प्राप्ति होय है, यह बात जानता संता कौन मनुष्य संसार कूप विषें पड़ै अथवा कौन विवेकी विषकूं पीवै अथवा गिरि के शिखर पर कौन बुद्धिमान निद्रा करै अथवा मणिकी वांछा कर कौन पंडित नागका मस्तक हाथसे स्पर्शै? विनाशीक ये काम भोग तिन विषें ज्ञानीकूं कैसे अनुराग उपजे, एक जिनधर्म का अनुराग ही महा प्रशंसा योग्य मोक्षके सुख का कारण है। यह जीवोंका जीतव्य अत्यंत चंचल, या विषें स्थिरता कहां? जो अवांछक विस्पृह, जिनके चित्त वश हैं तिनके राज्यकाल अर इन्द्रियों के भोगों से कौन काम? इत्यादिक परमार्थके उपदेशरूप ताकी वाणी सुनकर स्त्रियें भी शांत चित्त भईं, नाना प्रकार के नियम धरती भईं। यह शीलवान तिनकूं भी शील विषें दृढ़ चित्त करता भया। यह राजकुमार अपने शरीर विषें भी रागरहित एकांतर उपवास अथवा बेला तेला आदि अनेक उपवासों कर कर्म कलंक खिपावता भया, नाना प्रकार के तपकर शरीरकूं सोखता भया, जैसे ग्रीष्मका सूर्य जलकूं सोखै। समाधान रूप है मन जाका, मन इन्द्रियनिके जीतवेकूं समर्थ यह सम्यग्दृष्टि निश्चल चित्त महाधीर वीर चौंसठ हजार वर्ष लग दुर्धर तप करता भया। बहुरि समाधिमरण कर पंच णमोकार स्मरण करता देह त्यागकर छठा जो ब्रह्मोत्तर स्वर्ग तहां महा ऋद्धिका धारक देव भया। अर जो भूषण के भवविषें याका पिता धनदत्त सेठ था, विनोद ब्राह्मणका जीव सो मोहके योगतें अनेक कुयोनि विषें भ्रमणकरि जम्बूद्वीप भरत क्षेत्र तहां पोदनवाम नगर ताविषें अग्निमुख नामा ब्राह्मण ताके शकुना नामा स्त्री ताके मृदुमति नामा पुत्र भया सो नाम तो मृदुमति परन्तु कठोर चित्त अति दुष्ट महा जुवारी अविनयी अनेक अपराधों का भरा दुराचारी, सो लोकोंके उलाहनेसे माता पिताने घरसे निकास्या सो पृथ्वी विषें परिभ्रमण करता पोदनपुर गया, किसी के घर तृषातुर पानी पीवने को पैठा सो एक ब्राह्मणी आंसू डारती हुई इसे शीतल जल प्यावती भई, यह शीतल मिष्ट जलसे तृप्त हो ब्राह्मणीकूं पूछता भया—तू कौन कारण रुदन करै है? तब ताने कही—तेरे आकार एक मेरा पुत्र था सो मैं

कठोर चित्त होय कोधकर घरसे निकास्या सो तैने भ्रमण करते कहीं देख्या होय तो कह, नील कमल समान तो सारिखा ही है। तब यह आंसू डार कहता भया–हे मात ! तू रुदन तज, वह मैं ही हूं। तोहि देखे बहुत दिन भए तातैं मोहि नाहीं पहिचाने है। तू विश्वास गह, मैं तेरा पुत्र हूं। तब वह पुत्र जान रासती भई अर मोहके योगतैं ताके स्तनों से दुग्ध झरा। यह मृदुमति तेजस्वी रूपवान स्त्रीनिके मन का हरणहारा, धूर्तोंका शिरोमणि, जूवा विषैं सदा जीतै, बहुत चतुर, अनेक कला जानै, काम भोग विषैं आसक्त, एक वसंतमाला नामा वेश्या सो ताके अति वल्लभ अर याके माता पिताने यह काढा हुता सो इसके पीछे वे अति लक्ष्मीकूं प्राप्त भए। पिता कुंडलादिक अनेक भूषण करि मंडित अर माता कांचीदामादिक अनेक आभरणों कर शोभित सुखसूं तिष्ठै। अर एक दिन यह मृदुमति शशांक नगर विषैं राज मंदिर में चोरीकूं गया सो राजा नन्दिवर्धन शशांकमुख स्वामीके मुख धर्मोपदेश सुन विरक्त चित्त भया था सो अपनी रानी सूं कहै था कि हे देवी ! मैं मोक्ष सुख का देनेहारा मुनि के मुख परम धर्म सुना कि ये इन्द्रियनिके विषय विष-समान दारुण हैं, इनके फल नरक निगोद हैं, मैं जैनेश्वरी दीक्षा धरूंगा, तुम शोक मत करियो। या भांति स्त्रीकूं शिक्षा देता हुता सो मृदुमति चोर ने यह वचन सुन अपने मन विषैं विचारचा कि देखो यह राजऋद्धि तज मुनि व्रत धारै है अर मैं पापी चोरी कर पराया द्रव्य हरूं हूं, धिक्कार मोकूं ! ऐसा विचारकर निर्मल चित्त होय सांसारिक विषय भोगों से उदास चित्त भया, स्वामी चन्द्रमुख के समीप सर्व परिग्रह का त्यागकर जिनदीक्षा आदरी, शास्त्रोक्त महादुर्धर तप करता बहा क्षमावान् महाप्रासुक आहार लेता भया।

अथानंतर दुर्गनाम गिरि के शिखर एक गुणनिधि नामा मुनि चार महीने के उपवास धर तिष्ठे थे, वे सुर असुर मनुष्यनिकर स्तुति करिवे योग्य महा ऋद्धिधारी चारण मुनि थे सो चौमासे का नियम पूर्णकर आकाश के मार्ग होय किसी तरफ चले गए अर यह मृदुमति मुनि आहारके निमित्त दुर्गनामागिरिके समीप आलोक नामा नगर वहां आहारकूं आया, जूडाप्रमाण पृथ्वीकूं निरखता जाय था सो नगरके लोकोंने जानी कि ये वे मुनि हैं जो चार महीना गिरि के शिखर रहे, यह जानकर अति भक्ति करी अर इसे अति मनोहर आहार दिया, नगरके लोकोंने बहुत स्तुति करी। इसने जानी कि गिरिपर चार महीना रहे तिनके भरोसे मेरी अधिक प्रशंसा होय है सो मानका भरचा मौन पकड़ रहा, लोकोंसे यह न कही कि मैं और ही हूं अर वे मुनि और थे। अर गुरुके निकट माया शल्य दूर न करी, प्रायश्चित्त न लिया, तातैं तिर्यंच गतिका कारण भया। तप बहुत किये सो पर्याय पूरीकर छठे देव लोक जहां अभिरामका जीव देव भया था वहां ही यह गया, पूर्व जन्म के स्नेह

कर उसके माके प्रति स्नेह भया, दोनों ही समान ऋद्धि के धारक अनेक देवांगनाओंकर मंडित, सुखके सागर विषैं मग्न। दोनों ही सागरों पर्यन्त सुखसूं रमे सो अभिराम का जीव तो भरत भया अर यह मृदुमतिका जीव स्वर्गसे चय मायाचार के दोषसे इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र विषैं, उतंग है शिखर जिसके ऐसा जो निकुंज नामा गिरि उस विषैं महागहन शल्लकी नामा बन, वहां मेघकी घटा-समान श्याम अति सुन्दर गजराज भया, समुद्र की गाज समान है गर्जना जिसकी अर पवन समान है शीघ्र गमन जिनका, महा भयंकर आकारकूं धरे, अति मदोन्मत्त, चन्द्रमा-समान उज्ज्वल हैं दांत जिसके, गजराजोंके गुणों करि मंडित विजयादिक महाहस्त तिनके वंश विषैं उपज्या, महा कांतिका धारक के ऐरावत-समान अति स्वच्छन्द, सिंह व्याघ्रादिकका हननहारा, महावृक्षोंका उपारणहारा, पर्वतों के शिखरका ढाहनहारा, विद्याधरोंकर न ग्रहा जाय तो भूमिगोचरियों की क्या बात, जाके वाससे सिंहादिक निवास तजि भाग जावे ऐसा प्रबल गजराजगिरिके वन विषैं नाना प्रकार पल्लव का आहार करता मानसरोवर विषैं क्रीड़ा करता अनेक गजों सहित विचरै, कभी कैलाशविषैं विलास करै, कभी गंगाके मनोहर द्रहोंविषैं क्रीड़ा करै अर अनेक बनगिरि नदी सरोवर विषैं सुन्दर क्रीड़ा करै अर हजारों हथिनीनि सहित रमै, अनेक हाथियोंके समूह का शिरोमणि यथेष्ट विचरता ऐसा सोहै जैसा पक्षियों का समूहकर गरुड सोहै। मेघ समान गर्जता मद नीझरवे तिनके झरवेका पर्वत सो एक दिन लंकेश्वर ने देखा सो विद्या के पराक्रमकर महा उग्र उसने यह नीठि नीठि वश किया, इसका त्रैलोक्यमण्डन नाम धरया, सुन्दर हैं लक्षण जिसके, जैसें स्वर्ग विषैं चिरकाल अनेक अप्सराओं सहित क्रीड़ा करी तैसें हाथियों की पर्याय विषैं हजारों हथनियों से क्रीडा करता भया। यह कथा देशभूषण केवली राम लक्ष्मणसूं कहै हैं कि ये जीव सर्व योनि विषैं रति मान लेय है, निश्चय विचारिए तो सर्व ही गति दुःखरूप हैं। अभिराम का जीव भरत अर मृदुमति का जीव गज सूर्योदय चन्द्रोदय के जन्म से लेकर अनेक भव के मिलापी हैं तातैं भरतकूं देखि पूर्व भव चितारि गज उपशान्त चित्त भया। अर भरत भोगों से पराङ्मुख, दूर भया है मोह जिसका, अब मुनिपद लिया चाहै है, इस ही भवसूं निर्वाण प्राप्त होवेंगे, बहुरि भव न धरेंगे। श्रीऋषभदेव के समय यह दोनों सूर्योदय चन्द्रोदय नामा भाई थे, मारीच के भरमाए मिथ्यात्व का सेवन कर बहुत काल संसार विषैं भ्रमण किया, त्रस स्थावर योनि विषैं भ्रमे। चन्द्रोदयका जीव कैयक भव पीछे राजा कुलंकर बहुरि कैयक भव पीछे रमण ब्राह्मण, बहुरि कैयक भव धर समाधिमरण करणहारा मृग भया। बहुरि स्वर्ग विषैं देव, बहुरि भूषण नामा वैश्यका पुत्र, बहुरि स्वर्ग, बहुरि जगद्युति नाम राजा, वहांसे भोगभूमि बहुरि दूजे स्वर्ग देव, वहां से चयकर महाविदेह क्षेत्र विषैं चक्रवर्तीका पुत्र अभिराम भए।

वहां से छठे स्वर्ग देव, देवसे भरत नरेन्द्र सो चरमशरीरी हैं, बहुरि देह न धारेंगे। अर सूर्योदय का जीव बहुत काल भ्रमणकर राजा कुलंकर का श्रुतिरत नामा पुरोहित भया, बहुरि अनेक जन्म लेय विनोद नामा विप्र भया। बहुरि अनेक जन्म लेय आर्तध्यान से मरणहारा मृग भया। बहुरि अनेक जन्म भ्रमण कर भूषण का पिता धनदत्त नामा वणिक, बहुरि अनेक जन्म धर मृदुमति नामा मुनि, उसने अपनी प्रशंसा सुन राग किया, मायाचार से शल्य दूर न करी, तप के प्रभाव से छठे स्वर्ग देव भया। वहाँ से चयकरि त्रैलोक्यमंडन हाथी भव श्रावकके व्रत धर देव होयगा, ये भी निकट भव्य है। या भाँति जीवोंकी गति आगति जान अर इंद्रियों के सुख विनाशीक जान या विषम वनकूं तजकरि ज्ञानी जीव धर्म विषैं रमहु। जे प्राणी मनुष्य देह पाय जिन भाषित धर्म नाहीं करें हैं वे अनंतकाल संसार भ्रमण करेंगे, आत्मकल्याण से दूर हैं। तातैं जिनवरके मुख से विकस्या दयामई धर्म मोक्ष प्राप्त करनेकूं समर्थ है—याके तुल्य और नाहीं, मोहतिमिर का दूर करणहारा, जीती है सूर्य की कांति जाने सो मन वचन काय कर अंगीकार करो जातैं निर्मल पद पावो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं भरत के अर हाथी के पूर्व भव वर्णन करने वाला पिचासीवां पर्व पूर्ण भया ।।८५।।

छियासीवां पर्व

(भरत का और केकई का दीक्षा ग्रहण करना)

अथानन्तर श्रीदेशभूषण केवली के वचन महा पवित्र, मोह अन्धकार के हरणहारे, संसार सागर के तरणहारे, नाना प्रकार के दुःखके नाशक, उनविषैं भरत अर हाथी के अनेक भवका वर्णन सुनकर राम लक्ष्मण आदि सकल भव्यजन आश्चर्यकूं प्राप्त भए, सकल सभा चेष्टारहित चित्राम कैसी होय गई। अर भरत नरेंद्र, देवेंद्र-समान है प्रभा जाकी, अविनाशी पदके अर्थि, मुनि होयवे की है इच्छा जिसके, गुरुवोंके चरणविषैं नम्री-भूत है शीस जिसका, महाशांत चित्त परम वैराग्यकूं प्राप्त हुवा। तत्काल उठकरि हाथ जोड़ केवलीकूं प्रणाम करि महा मनोहर वचन कहता भया—हे नाथ ! मैं संसार विषैं अनन्त काल भ्रमण करता नाना प्रकार कुयोनियों विषैं संकट सहता दुःखी भया, अब मैं संसार भ्रमणसे थका, मुझे मुक्ति का कारण तिहारी दिगम्बरी दीक्षा देवहु। यह आकाश रूप नदी, मरणरूप उग्र तरंगकूं धरे, उस विषैं मैं डूबूं हूं, सो मुझे हस्तावलम्बन देकर निकासो। ऐसा कहकर केवली की आज्ञा-प्रमाण, तज्या है समस्त परिग्रह जिसने, अपने हाथों से सिर के केश लोंच किए, परम सम्यक्ती महाव्रतकूं अंगीकार कर जिन दीक्षा

अर दिगम्बर भया। तब आकाश विषे देव धन्य धन्य कहते भए अर कल्पवृक्ष के फूलोंकी वर्षा करते भए।

हजार से अधिक राजा भरत के अनुराग से राजऋद्धि तज जिनेन्द्री दीक्षा धरते भए अर कैयक अल्पशक्ति हुते, अणुव्रत धर श्रावक भए। अर माता केकई पुत्र के वैराग्य सुन आंसुनिकी वर्षा करती भई। व्याकुल चित्त होय दौड़ी सो भूमिविषें पड़ी, महामोहकूं प्राप्त भई, पुत्र की प्रीतिकर मृतक समान होय गया है शरीर जाका सो चन्दनादिकके जल से छांटी तो भी सचेत न भई, घनी बेर विषें सचेत भई, जैसें वत्स बिना गाय पुकारै तैसें विलाप करती भई। हाय पुत्र! महाविनयवान गुणनिकी खान, मनकूं आह्लाद का कारण, हाय तू कहां गया? हे अंगज! मेरा अंग शोक सागर विषें डूबै है सो थांभ। तो सारिखे पुत्र बिना मैं दुःखके सागर विषें मग्न शोककी भरी कैसे जीऊंगी। हाय, हाय! यह कहा भया? या भांति विलाप करती माता श्रीराम लक्ष्मणने संबोध करि विश्रामकूं प्राप्त करी, अति सुन्दर वचनकरि धैर्य बंधाया—हे मात! भरत महा विवेकी ज्ञानवान् है, तुम शोक तजहु, हम कहा तिहारे पुत्र नाहीं? आज्ञाकारी किंकर हैं। अर कौशल्या सुमित्रा सुप्रभा ने बहुत संबोधा तब शोक रहित होय प्रतिबोधकूं प्राप्त भई। शुद्ध है मन जाका, अपने अज्ञान की बहुत निंदा करती भई—धिक्कार या स्त्री पर्यायकूं! यह पर्याय महा दोषनिकी खानि है, अत्यंत अशुचि वीभत्स नगर की मोरी समान। अब ऐसा उपाय करूं जाकर स्त्री पर्याय न धरूं, संसार समुद्रकूं तिरूं। यह महा ज्ञानवान सदाही जिनशासन की भक्तिवंत हुती, अब महा वैराग्यकूं प्राप्त होय पृथ्वीमती आर्यिका के समीप आर्यिका भई। एक श्वेत वस्त्र धारया अर सर्व परिग्रह तज निर्मल सम्यक्तकूं धरती सर्व आरम्भ टारती भई। याके साथ तीनसौ आर्यिका भई, यह विवेकिवी परिग्रह तजकर वैराग्यधार ऐसी सोहती भई जैसी कलंक रहित चंद्रमा की कला मेघपटल रहित सोहै। श्रीदेशभूषण केवली का उपदेश सुन अनेक मुनि भए, अनेक आर्यिका भईं तिनकर पृथ्वी ऐसी सोहती भई जैसे कमलनिकर सरोवरी सोहै। अर अनेक नर नारी, पवित्र हैं चित्त जिनके, तिन्होंने नानाप्रकारके नियम धर्मरूप श्रावक श्राविकाके व्रत धारे, यह युक्त ही है जो सूर्य के प्रकाशकर नेत्रवान वस्तुका अवलोकन करें ही करें।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ ताकी भाषा वचनिका विषैं भरत अर केकई का वर्णन करने वाला छियासीवां पर्व पूर्ण भया ॥८६॥

सत्तासीवां पर्व

[त्रैलोक्य मंडन हाथी का स्वर्ग-गमन और भरत महामुनि का निर्वाण-गमन]

अथानन्तर त्रैलोक्यमंडन हाथी अति प्रशांत चित्त केवली के निकट श्रावक के

व्रत धरता भया। सम्यग्दर्शन संयुक्त महाज्ञानी, शुभ क्रिया विषैं उद्यमी हाथी धर्म विषैं तत्पर होता भया। पंद्रह दिन के उपवास तथा मासोपवास करता भया, सूके पत्रनिकरि पारणा करता भया। हाथी संसारसूं भयभीत उत्तम चेष्टा विषैं परायण लोकनिकर पूज्य महाविशुद्धताकूं धरे पृथ्वीविषैं विहार करता भया। कभी पक्षोपवास कभी मासोपवासके पारणा ग्रामादिक विषैं जाय तो श्रावक ताहि प्रति भक्तिकर शुद्ध अन्न शुद्ध जल कर पारणा करावते भए। क्षीण होय गया है शरीर जाका, वैराग्यरूप खूंटेसे बन्धा महा उग्र तप करता भया। यम नियमरूप है अंकुश जाके बहुरि महा उग्र तपका करणहारा गज शनैः शनैः आहारका त्यागकर अन्त संलेषणा धर शरीर तज छठे स्वर्ग देव होता भया। अनेक देवांगनाकरि युक्त, हार-कुण्डलादिक आभूषणनिकरि मंडित, पुन्यके प्रभावतैं देवगतिके सुख भोगता भया। छठे स्वर्ग होतैं आया हुता अर छठेही स्वर्ग गया, परम्पराय मोक्ष पावेगा। अर भरत महामुनि महातप के धारक पृथ्वी के गुरु निर्ग्रंथ जाके शरीर का भी ममत्व नाहीं, वे महाधीर जहाँ पिछला दिन रहै तहाँ ही बैठ रहैं, जिनकूं एक स्थान न रहना, पवन सारिखे असंगी, पृथ्वी समान क्षमाकूं धरे, जल समान निर्मल, अग्नि समान कर्म काष्ठके भस्म करनहारे अर आकाश समान अलेप, चार आराधना विषैं उद्यमी, तेरह प्रकार चारित्र पालते विहार करते भए। निर्ममत्व स्नेह के बंधनतैं रहित, मृगेन्द्र सारिखे निर्भय, समुद्र समान गम्भीर, सुमेरु समान निश्चल, यथाजात रूपके धारक, सत्यका वस्त्र पहिरे, क्षमारूप खडगकूं धरे, बाईस परिषह के जीतनहारे, महातपस्वी, समान हैं शत्रु मित्र जिन के अर समान हैं सुख दुःख जिनके अर समान हैं तृणरत्न जिनके, महा उत्कृष्ट मुनि शास्त्रोक्त मार्ग चलते भए। तप के प्रभाव करि अनेक ऋद्धि उपजी। सूई समान तीक्षण तृण की सली पाँवों में चुभै है परन्तु ताकी कछु सुध नाहीं। अर शत्रुनिके स्थानक विषैं उपसर्ग सहिवे निमित्त विहार करते भए, तप के संयम के प्रभावकरि शुक्लध्यान उपजा, शुक्ल ध्यान के बल कर मोहका नाशकर ज्ञानावर्ण दर्शनावर्ण अंतराय कर्म हर लोकालोककूं प्रकाश करणहारा केवलज्ञान प्रगट भया। बहुरि अघातिया कर्म भी दूरकर सिद्धपदकूं प्राप्त भए जहांतैं बहुरि संसारविषैं भ्रमण नाहीं। यह केकई के पुत्र भरतका चरित्र जो भक्ति कर पढ़ै सुनै सो सब क्लेश से रहित होय यश कीर्ति बल विभूति आरोग्यताकूं पावै अर स्वर्ग मोक्ष पावै। यह परम चरित्र महा उज्ज्वल श्रेष्ठगुणनिकर युक्त भव्य जीव सुनो जातैं शीघ्र ही सूर्य से अधिक तेजके धारक होहु।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं
भरत का निर्वाण गमन वर्णन करने वाला सतासीवाँ
पर्व पूर्ण भया ॥८७॥

अठासीवां पर्व

(राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक)

अथानन्तर भरतके साथ जे राजा महाधीर वीर, अपने शरीरविषैं भी जिनका अनुराग नाहीं, घरतैं निकसि जैनेश्वरी दीक्षाधरि दुर्लभ वस्तुकूं प्राप्त भए, तिन विषैं कैयकनिके नाम कहिए हैं-हे श्रेणिक तू सुन। सिद्धार्थ, रतिवर्धन, मेघरथ, जाम्बूनद, शल्य, शशांक, विरस, नंदन, नंद, आनंद, सुमति, सदाश्रय, महाबुद्धि, सूर्य, इन्द्रध्वज, जनवल्लभ, श्रुतिधर, सुचंद्र, पृथ्वीधर, अलंक, सुमति, अक्रोध, कुन्दर, सत्यवान्, हरि, सुमित्र, धर्ममित्र, पूर्णचंद्र, प्रभाकर, नघुष, सुन्दन, शांति, प्रियधर्मा इत्यादि एक हजारतैं अधिक राजा वैराग्य धारते भए। विशुद्ध कुल विषैं उपजे, सदा आचार विषैं तत्पर, पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध है शुभ चेष्टा जिनकी, यैं महाभाग्य हाथी घोड़े रथ पयादे स्वर्ण रत्न रणवास सर्व तजकरि पंच महाव्रत धारते भए। राज्यकूं जिनने जीर्ण तृणवत् तज्या, वे महाशांत योगीश्वर नाना प्रकार की ऋद्धिके धारक भए। सो आत्मध्यानके ध्याता कैयक तो मोक्ष गए, कैयक अहमिन्द्र भए, कैयक उत्कृष्ट देव भए। अथानन्तर भरत चक्रवर्ती सारिखे दशरथके पुत्र तिनकूं घर से निकसे पीछे लक्ष्मण तिनके गुण चितार २ अति शोकवन्त भया, अपना राज्य शून्य गिनता भया, शोक करि व्याकुल है चित्त जाका, अति दीर्घ आंसू डारता भया, दीर्घ निश्वास नाखता भया, नील कमल समान है कांति जाकी सो कुमलाय गया, विराधित की भुजानि पर हाथ धरे ताके सहारे बैठया मन्द मन्द वचन कहै, वे भरत महाराज गुण ही हैं आभूषण जिनके [illegible]हां गए ? जिन तरुण अवस्था विषैं शरीरसूं प्रीति छांडी, इन्द्र समान राजा अर हम सब उनके सेवक, वे रघुवंश के तिलक समस्त विभूति तजकरि मोक्ष के अर्थि महादु[illegible]निका धर्म धारते भए। शरीर तो अति कोमल, कैसे परीषह सहैंगे ? वे धन्य हैं। श्रीरा[illegible] महा ज्ञानवान् कहते भए-भरत की महिमा कही न जाय, जिनका चित्त कभी संसार विषैं न रच्या, जो शुद्ध बुद्धि है तो उनकी ही है अर जन्म कृतार्थ है तो उनका ही है, जे विष [illegible] भरे अन्नवी न्याई राज्यकूं तजकरि जिनदीक्षा धरते भए। वे पूज्य प्रशंसा योग्य परम [illegible]गी, उनका वर्णन देवेंद्र भी न कर सकै तो औरनिकी कहा शक्ति जो करै। वे राजा [illegible]रथ के पुत्र, केकई के नंदन तिनकी महिमा हमतैं न कही जाय। या भरत के गुण गावते एक मुहूर्त सभा विषैं तिष्ठे, समस्त राजा भरत ही के गुण गाया करैं। बहुरि श्रीराम लक्ष्मण दोऊ भाई भरत के अनुराग-करि अति उद्वेगरूप उठे, सब राजा अपने अपने स्थानकूं गए, घर घर भरत की चर्चा. सब ही लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए। यह तो उनकी यौवन अवस्था अर यह राज्य ऐसे भाई अर सब सामग्री पूर्ण ऐसे ही पुरुष तजैं सो ही परमपदकूं प्राप्त होवैं, या भांति सब ही प्रशंसा करते भए।

बहुरि दूजे दिन सब राजा मंत्र कर रामपै आए, नमस्कार करि अति प्रीति सें वचन कहते भए—हे नाथ ! जो हम असमर्थ हैं तो आपके अर [illegible] हैं जो आपक, हम पर कृपा कर एक विनती सुनो—हे प्रभो ! हम सब भूमिगोचरी अर विद्याधर आपका राज्याभिषेक करें जैसे स्वर्ग विषे इन्द्र का होय, हमारे नेत्र अर हृदय सफल होवें तिहारे अभिषेक के सुखकरि पृथ्वी सुखरूप होय। तब राम कहते भए—तुम लक्ष्मणका राज्याभिषेक करो, वह पृथ्वी का स्तंभ भूधर है, राजाधिका गुरु वासुदेव, राजाधिक राजा, सर्वगुण ऐश्वर्य का स्वामी, सदा मेरे चरणनिकू नमै या उपरांत मेरे राज्य कहा ? तब वे समस्त श्रीराम की प्रति प्रशंसा कर जय जयकार शब्द कर लक्ष्मण पै गए अर सब वृत्तांत कह्या। तब लक्ष्मण सबनिकू साथ लेय रामपै आया अर हाथ जोड़ नमस्कारकर कहता भया—हे वीर ! या राज्य के स्वामी आप ही हो, मैं तो आपका आज्ञाकारी अनुचर हूँ। तब राम ने कह्या—हे वत्स ! तुम चक्र के धारी नारायण हो तातैं राज्याभिषेक तुम्हारा ही योग्य है, सो इत्यादि वार्तालापसे दोनों का राज्याभिषेक [illegible] बहुरि जैसी मेघ की ध्वनि होय तैसी वादित्रनिकी ध्वनि होती [illegible] भी बाजे [illegible] ढोल मृदंग वीण तमूरे झालर झांझ मजीरे बांसुरी शंख इत्यादि [illegible] अर नाना प्रकार के मंगल गीत नृत्य होते भए, याचकनिकू मनवांछित दान दिए, सबनिकू अति हर्ष भया। दोऊ भाई एक सिंहासन पर विराजे, स्वर्ण रत्नके कलश जिनके मुख कमल से ढके, पवित्र जल मे भरे तिनकर विधिपूर्वक अभिषेक भया। दोऊ भाई मुकुट भुजबन्ध हार केयूर कुण्डलादिक कर मंडित मनोज्ञ वस्तु पहिरे सुगन्धकर चर्चित तिष्ठे। विद्याधर भूमिगोचरी तथा तीन खंड के देव जय जय शब्द कहते भए। यह बलभद्र श्रीराम हल मूसल के धारक अर यह वासुदेव श्रीलक्ष्मण चक्र का धारक जयवन्त होहु। दोऊ राजेन्द्रनिका अभिषेक करि विद्याधर बड़े उत्साह से सीता अर विशिल्या का अभिषेक करावते भए, सीता रामकी रानी अर विशिल्या लक्ष्मण की, तिनका अभिषेक विधिपूर्वक होता भया।

अथानन्तर विभीषण को लंका दई, सुग्रीवकू किहकंधापुर, हनुमानकू श्रीनगर अर हनूरुह द्वीप दिया, विराधितकू नागलोक समान अलंकापुरी दिया, नल नीलकू किहकधूपुर दिया, समुद्रकी लहरोंके समूहकरि महाकौतुकरूप अर भामंडलकू वैताड्यकी दक्षिण श्रेणी विषे रथनूपुर दिया, समस्त विद्याधरनिका अधिपति किया अर रत्नजटीकू देवोपुनीत नगर दिया अर और हू यथायोग्य सबनिकू स्थान दिए, अपने पुण्यके उदय योग्य सब ही राम-लक्ष्मण के प्रतापतैं राज्य पावते भए। राम की आज्ञाकरि यथायोग्य स्थानमें तिष्ठे। जे भव्य जीव पुन्य के प्रभावका जगतविषैं प्रसिद्ध फल जान धर्म विषे रति करैं हैं

वे मनुष्य सूर्य से अधिक ज्योति पावें।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक वर्णन करने वाला अठासीवां पर्व पूर्ण भया ।।८८।।

नवासीवां पर्व

(शत्रुघ्न का राजा मधु को जीतने के लिए मथुरा पर आक्रमण)

अथानन्तर रामलक्ष्मण महा प्रीतिकरि भाई शत्रुघ्नसूं कहते भए कि जो तुमको रुचै सो देश लेवहु। जो तुम आधी अयोध्या चाहो तो आधी अयोध्या लेवहु अथवा राजगृह अथवा पोदनापुर अथवा पौंड्रसुन्दर इत्यादि सैंकड़ों राजधानी हैं, तिन विषैं जो नीकी सो तिहारी। तब शत्रुघ्न कहता भया—मोहि मथुरा का राज्य देवो। तब राम बोले—हे भ्रात ! वहां राजा मधु का राज्य है अर वह रावण का जमाई है, अनेक युद्धनि का जीतनहारा, ताकूं चमरेन्द्र ने त्रिशूल रत्न दिया, ज्येष्ठ के सूर्य समान दुस्सह है अर देवनिसे दुर्निवार है ताकी चिंता हमारे भी निरन्तर रहै है। वह राजा मधु रघुवंशियों के कुलरूप आकाश विषैं सूर्य समान प्रतापी है, जाने वंश विषैं उद्योत किया है अर जाका लवणार्णव नामा पुत्र विद्याधरनिहूं कर असाध्य है। पिता पुत्र दोऊ महाशूरवीर हैं, तातैं मथुरा टार और राज्य चाहो सो ही लेवहु। तब शत्रुघ्न कहता भया—बहुत कहिवे करि कहा ? मोहि मथुरा ही देवहु, जो मधु के छत्ते की न्याईं मधुकूं रण संग्राम विषैं न तोड़ लूं तो दशरथ का पुत्र शत्रुघ्न नाहीं। जैसे सिंहनिके समूहकूं अष्टापद तोड़ डारै तैसैं वाके कटक सहित ताहि न चूर डारूं तो मैं तिहारा भाई नाहीं। जो मधुकूं मृत्यु प्राप्त न कराऊं तो मैं सुप्रभा की कुक्षि विषैं उपजा नहीं, या भांति प्रचण्ड तेजका धरणहारा शत्रुघ्न कहता भया। तब समस्त विद्याधरनि के अधिपति आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर शत्रुघ्नकी बहुत प्रशंसा करते भए। शत्रुघ्न मथुरा जायवेकूं उद्यमी भया। श्रीराम कहते भए—हे भाई ! मैं एक याचना करूं हूं सो मोहि दक्षिणा देहु। तब शत्रुघ्न कहता भया—सब के दाता आप हो, सब आपके याचक हैं, आप याचहु सो वस्तु कहा ? मेरे प्राण ही के नाथ आप हो तो और वस्तुकी कहा बात। एक मधुसे युद्ध तो मैं न तजूं अर जो कहो सो ही करूं। तब श्रीराम ने कही—हे वत्स ! तू मधु से युद्ध करै तो जा समय वाके हाथ त्रिशूलरत्न न होय तासमय करियो। तब शत्रुघ्न ने कही—जो आप आज्ञा करोगे सो ही होयगा। ऐसा कह भगवान् की पूजाकर, णमोकार मन्त्र जप, सिद्धनिकूं नमस्कार करि, भोजनशाला विषैं जाय भोजन करि, माताके निकट आय आज्ञा मांगी। तब माता अति स्नेहतैं याके मस्तक पर हाथ धर कहती भई—हे वत्स ! तू तीक्ष्ण बाणनिकर शत्रुनि के समूहकूं जीत। वह योधा की माता अपने योधा

पुत्रसे कहती भई—हे पुत्र ! अब तक संग्राम विषें शत्रुनिने तेरी पीठ नाहीं देखी है अर अबहूं न देखेंगे, तू रणजीत आवेगा तब मैं स्वर्ण के कमलनिकरि श्रीजिनेन्द्रकी पूजा कराऊंगी। वे भगवान त्रैलोक्य मंगल के कर्ता, महामंगलरूप सुर असुरनिकर नमस्कार करिवे योग्य रागादिक के जीतन हारे तोहि मंगल करें। वे परमेश्वर पुरुषोत्तम अरहन्त भगवन्त अत्यन्त दुर्जय मोहरिपु जीता। वे तोहि कल्याणके दायक होहु, सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी स्वयबुद्ध तिनके प्रसादतै तेरी विजय होहु। जे केवलज्ञानकरि लोकालोककूं हथेली विषें आंवले की न्याईं देखें हैं, ते तोहि मंगलरूप होहु। हे वत्स ! वे सिद्धपरमेष्ठी अष्टकर्म कर रहित अष्टगुण आदि अवन्त गुणनिकर विराजमान लोक के शिखर तिष्ठें, ते सिद्ध तोहि सिद्धिके कर्ता होहु। अर आचार्य भव्य जीविनिके परम आधार तेरे विघ्न हरै, जे कमल-समान अलिप्त, सूर्यसमान तिमिर हर्ता अर चन्द्रमा समान आह्लाद के कर्ता, भूमि-समान क्षमावान, सुमेरु समान अचल, समुद्र समान गम्भीर, आकाश समान अखंड इत्यादि अनेक गुणनिकर मंडित हैं। अर उपाध्याय जिनशासनके पारगामी तोहि कल्याणके कर्ता होहु अर कर्म शत्रुनिके जीतवेकूं महाशूरवीर, बारह प्रकार तपकरि जे निर्वाणको साधैं हैं, ते साधु तोहि महावीर्य के दाता होहु। या भांति विघ्नकी हरणहारी मंगलकी करणहारी मता ने आशीस दई सो शत्रुघ्न माथे चढ़ाय माताकूं प्रणामकरि बाहिर निकस्या। स्वर्ण की सांकलनिकर मंडित जो गज तापर चढ्या सो ऐसा सोहता भया जैसे मेघमालाके ऊपर चन्द्रमा सोहै। अर नाना प्रकार के वाहननिपर आरूढ़ अनेक राजा संग चाले सो तिनकर ऐसा सोहता भया जैसा देवनिकर मंडित देवेन्द्र सोहै। राम लक्ष्मण की भाईसूं अधिक प्रीति सो तीन मंजिल भाई के संग गए। तब भाई कहता भया—हे पूज्य पुरुषोत्तम ! पीछे अयोध्या जावहु, मेरी चिंता न करो, मैं आपके प्रसादतें शत्रुनिको निस्सदेह जीतूंगा। तब लक्ष्मण ने समुद्रावर्त नामा धनुष दिया, प्रज्वलित हैं मुख जिनके—पवन सारिखे वेगकूं धरे ऐसे बाण दिए अर कृतांतवक्रकूं लार दिया। अर लक्ष्मण-सहित राम पीछे अयोध्या आए परन्तु भाई की चिन्ता विशेष।

अथानन्तर शत्रुघ्न महा धीर-वीर बड़ी सेना कर संयुक्त मथुरा की तरफ गया, अनुक्रम से यमुना नदी के तीर जाय डेरे दिए, जहाँ मंत्री महा सूक्ष्म बुद्धि मन्त्र करते भए। देखो ! इस बालक शत्रुघ्न की बुद्धि जो मधुकूं जीतवे की वांछा करी है। यह नयवर्जित केवल अभिमान कर प्रवर्त्या है। जा मधुने पूर्वे राजा मांधाता रणविषें जीत्या, सो मधु देवनिकर विद्याधरनिकर न जीत्या जाय, ताहि यह कैसे जीतेगा ? राजा मधु सागर-समान है, उछलते पयादे तेई भए उतंग लहर, अर शत्रुनिके समूह तेई भए ग्राह, तिनकर पूर्ण ऐसे मधु-समुद्रकूं शत्रुघ्न भुजाविकर तिरया चाहै है सो कैसे तिरेगा ? तथा

वे मनुष्य सूर्य से अधिक ज्योति पावें।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक वर्णन करने वाला अठासीवां पर्व पूर्ण भया ॥८८॥

नवासीवां पर्व

(शत्रुघ्न का राजा मधु को जीतने के लिए मथुरा पर आक्रमण)

अथानन्तर रामलक्ष्मण महा प्रीतिकरि भाई शत्रुघ्नसूं कहते भए कि जो तुमको रुचै सो देश लेवहु। जो तुम आधी अयोध्या चाहो तो आधी अयोध्या लेवहु अथवा राजगृह अथवा पोदनापुर अथवा पोंड्रसुन्दर इत्यादि सैंकड़ों राजधानी हैं, तिन विषैं जो नीकी सो विहारी। तब शत्रुघ्न कहता भया—मोहि मथुरा का राज्य देवो। तब राम बोले—हे भ्रात! वहां राजा मधु का राज्य है अर वह रावण का जमाई है, अनेक युद्धनि का जीतनहारा, ताकूं चमरेन्द्र ने त्रिशूल रत्न दिया, ज्येष्ठ के सूर्य समान दुस्सह है अर देवनिसे दुर्निवार है ताकी चिंता हमारे भी निरन्तर रहै है। वह राजा मधु रघुवंशियों के कुलरूप आकाश विषैं सूर्य समान प्रतापी है, जाने वंश विषैं उद्योत किया है अर जाका लवणार्णव नामा पुत्र विद्याधरविहूं कर असाध्य है। पिता पुत्र दोऊ महाशूरवीर हैं, तातैं मथुरा टार और राज्य चाहो सो ही लेवहु। तब शत्रुघ्न कहता भया—बहुत कहिवे करि कहा? मोहि मथुरा ही देवहु, जो मधु के छत्ते की न्याईं मधुकूं रण संग्राम विषै न तोड़ लूं तो दशरथ का पुत्र शत्रुघ्न नाही। जैसे सिंहनिके समूहकूं अष्टापद तोड़ डारै तैसें वाके कटक सहित ताहि न चूर डारूं तो मैं तिहारा भाई नाही। जो मधुकूं मृत्यु प्राप्त न कराऊं तो मैं सुप्रभा की कुक्षि विषैं उपजा नहीं, या भांति प्रचण्ड तेजका धरणहारा शत्रुघ्न कहता भया। तब समस्त विद्याधरनि के अधिपति आश्चर्यकूं प्राप्त भए। अर शत्रुघ्नकी बहुत प्रशंसा करते भए। शत्रुघ्न मथुरा जायवेकूं उद्यमी भया। श्रीराम कहते भए—हे भाई! मैं एक याचना करूं हूं सो मोहि दक्षिणा देहु। तब शत्रुघ्न कहता भया—सब के दाता आप हो, सब आपके याचक हैं, आप याचहु सो वस्तु कहा? मेरे प्राण ही के नाथ आप हो तो और वस्तुकी कहा बात। एक मधुसे युद्ध तो मैं न तजूं अर जो कहो सो ही करूं। तब श्रीराम ने कही—हे वत्स! तू मधु से युद्ध करै तो जा समय वाके हाथ त्रिशूलरत्न न होय तासमय करियो। तब शत्रुघ्न ने कही—जो आप आज्ञा करोगे सो ही होयगा। ऐसा कह भगवान् की पूजाकर, णमोकार मन्त्र जप, सिद्धनिकूं नमस्कार करि, भोजनशाला विषैं जाय भोजन करि, माताके निकट जाय आज्ञा मांगी। तब माता अति स्नेहतैं याके मस्तक पर हाथ धर कहती भई—हे वत्स! तू तीक्षण बाणनिकर शत्रुनि के समूहकूं जीत। वह योधा की माता अपने योधा

पुत्रसे कहती भई—हे पुत्र ! अब तक संग्राम विषें शत्रुनिने तेरी पीठ नाहीं देखी है अर अबहूं न देखेंगे, तू रणजीत आवेगा तब मैं स्वर्ण के कमलनिकरि श्रीजिनेन्द्रकी पूजा कराऊंगी। वे भगवान त्रैलोक्य मंगल के कर्ता, महामंगलरूप सुर असुरनिकर नमस्कार करिवे योग्य रागादिक के जीतन हारे तोहि मंगल करें। वे परमेश्वर पुरुषोत्तम अरहन्त भगवन्त अत्यन्त दुर्जय मोहरिपु जीता। वे तोहि कल्याणके दायक होहु, सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी स्वयबुद्ध तिनके प्रसादतें तेरी विजय होहु। जे केवलज्ञानकरि लोकालोककूं हथेली विषें आंवले की न्याईं देखें हैं, ते तोहि मंगलरूप होहु। हे वत्स ! वे सिद्धपरमेष्ठी अष्टकर्म कर रहित अष्टगुण आदि अनन्त गुणनिकर विराजमान लोक के शिखर तिष्ठैं, ते सिद्ध तोहि सिद्धिके कर्ता होहु। अर आचार्य भव्य जीवनिके परम आधार तेरे विघ्न हरैं, जे कमल-समान अलिप्त, सूर्यसमान तिमिर हर्ता अर चन्द्रमा समान आह्लाद के कर्ता, भूमि-समान क्षमावान, सुमेरु समान अचल, समुद्र समान गम्भीर, आकाश समान अखड इत्यादि अनेक गुणनिकर मडित हैं। अर उपाध्याय जिनशासनके पारगामी तोहि कल्याणके कर्ता होहु अर कर्म शत्रुनिके जीतबेकूं महाशूरवीर, बारह प्रकार तपकरि जे निर्वाणको साधै हैं, ते साधु तोहि महावीर्य के दाता होहु। या भांति विघ्नकी हरणहारी मगलकी करणहारी मता ने आशीस दई सो शत्रुघ्न माथे चढ़ाय माताकूं प्रणामकरि बाहिर निकस्या। स्वर्ण की सांकलनिकर मंडित जो गज तापर चढ्या सो ऐसा सोहता भया जैसे मेघमालाके ऊपर चन्द्रमा सोहै। अर नाना प्रकार के वाहनविपर आरूढ़ अनेक राजा संग चाले सो तिनकर ऐसा सोहता भया जैसा देवनिकर मडित देवेन्द्र सोहै। राम लक्ष्मण की भाईसूं अधिक प्रीति सो तीन मंजिल भाई के संग गए। तब भाई कहता भया—हे पूज्य पुरुषोत्तम ! पीछे अयोध्या जावहु, मेरी चिंता न करो, मैं आपके प्रसादतें शत्रुनिको निस्सदेह जीतूंगा। तब लक्ष्मण ने समुद्रावर्त नामा धनुष दिया, प्रज्वलित हैं मुख जिनके—पवन सारिखे वेगकूं धरे ऐसे बाण दिए अर कृतांतवक्रकूं लार दिया। अर लक्ष्मण-सहित राम पीछे अयोध्या आए परन्तु भाई की चिन्ता विशेष।

अथानन्तर शत्रुघ्न महा धीर-वीर बड़ी सेना कर संयुक्त मथुरा की तरफ गया, अनुक्रम से यमुना नदी के तीर जाय डेरे दिए, जहां मंत्री महा सूक्ष्म बुद्धि मन्त्र करते भए। देखो ! इस बालक शत्रुघ्न की बुद्धि जो मधुकूं जीतवे की वांछा करी है। यह नयवर्जित केवल अभिमान कर प्रवर्त्या है। जा मधुने पूर्व राजा मांधाता रणविषें जीत्या, सो मधु देवनिकर विद्याधरनिकर न जीत्या जाय, ताहि यह कैसे जीतेगा ? राजा मधु सागर-समान है, उछलते पयादे तेई भए उतंग लहर अर शत्रुनिके समूह तेई भए ग्रह, तिनकर पूर्ण ऐसे मधु-समुद्रकूं शत्रुघ्न भुजानिकर तिरया चाहै है सो कैसे तिरेगा ? तथा

मधु भूपति भयानक वन समान है ता विषें प्रवेशकर कौन जीवता निसरै। कैसा है राजा मधुरूप वन ? पयादे के समूह तेई हैं वृक्ष जहां अर माते हाथिनिकर महा भयकर अर घोड़ेनिके समूह तेई हैं मृग जहां। ये वचन मंत्रीनि के सुन कृतांतवक्र कहता भया—तुम साहस छोड़ ऐसे कायरताके वचन क्यों कहो हो ? यद्यपि वह राजा मधु चमरेन्द्र कर दिया जो अमोघ त्रिशूल ताकर अति गर्वित है तथापि ता मधु को शत्रुघ्न अवश्य जीतेगा; जैसे हाथी महाबलवान् है अर सूंडकर वृक्षनिकूं उपाडै है, मद झरै है तथापि ताहि सिंह जीतै है। यह शत्रुघ्न लक्ष्मी अर प्रतापकरि मंडित है, महाबलवान है, शूरवीर है, महा पंडित है, प्रवीण है अर याके सहाई श्रीलक्ष्मण हैं अर आप सब ही भले मनुष्य याके संग हैं तातें यह शत्रुघ्न अवश्य शत्रुकूं जीतेगा। जब ऐसे वचन कृतांतवक्र ने कहे तब सब ही प्रसन्न भए। अर मंत्रीजननिने पहिले ही मथुरामें जो हलकारे पठाए हुते ते आयकर सर्व वृत्तान्त शत्रुघ्न सूं कहते भए। हे देव ! मथुरा नगरी की पूर्व दिशा की ओर अत्यन्त मनोज्ञ उपवन है तहां रणवास सहित राजा मधु रमै है। राजा के जयन्ती नाम पटरानी है ता सहित वनक्रीडा करै है। जैसे स्पर्शन इन्द्रियके वश भया गजराज बन्धन विषें पड़ै है, तैसें महाकामी राजा मोहित भया विषयनिके बन्धन विषै पड्या है। आज छठा दिन है जो कि सर्व राज्य काज तज प्रमादके वश भया वनविषै तिष्ठै है, कामान्ध मूर्ख तिहारे आगमनकूं नाहीं जानै है। अर तुम ताके जीतवेकूं वांछाकरी है ताकी ताहि सुध नाहीं। अर मंत्रीनिने बहुत समझाया सो काहू की बात धारै नाही, जैसे मूढ रोगी वैद्यकी औषध न धारै। इस समय मथुरा हाथ आवै तो आवै। अर कदाचित् मधु पुरीविषै धसा तो समुद्र समान अथाह है। ये वचन हलकारों के मुखसे सुनकर कार्य विषें प्रवीण शत्रुघ्न ताहि समय बलवान् योधानि के सहित दौड़कर मथुरा गया, अर्ध रात्रि के समय सर्व लोक प्रमादी हुते अर नगरी राजा रहित हुती, सो शत्रुघ्न नगर विषे जाय पैठा। जैसें योगी कर्मनाश कर सिद्धपुरीविषें प्रवेश करै, तैसें शत्रुघ्न द्वारकूं चूरकर मथुरा विषें प्रवेश करता भया, मथुरा मनोज्ञ है। तब वन्दीजननिके शब्द होते भए कि राजा दशरथका पुत्र शत्रुघ्न जयवंत होहु। ये शब्द सुनके नगरी के लोक परचक्र का आगमन जान अति व्याकुल भए। जैसें लंका अंगदके प्रवेशकर अति व्याकुल हुती तैसें मथुरा विषें व्याकुलता भई। कई एक कायर हृदयकी धरनहारी स्त्री हुतीं तिनके भयकर गर्भपात होय गए अर कैयक महाशूरवीर कलकलाट शब्द सुन तत्काल सिंहकी न्याईं उठे। शत्रुघ्न राजमंदिर गया, आयुधशाला अपने हाथ कर लीनी अर स्त्री बालक आदि जे नगरी के लोक अति त्रासकूं प्राप्त भए तिनकूं महामधुर वचनकर धैर्य बंधाया कि यह श्रीराम राज्य है, यहां काहूकूं

दुःख नाहीं। तब नगरी के लोक त्रास-रहित भए। अर शत्रुघ्नको मथुरा विषैं आया सुन राजा मधु महाकोपकर उपवनतें नगरकूं आया सो मथुरा विषैं शत्रुघ्न के सुभटोंकी रक्षा-कर प्रवेश न कर सक्या, जैसें मुनिके हृदय विषैं मोह प्रवेश न कर सकै। नाना प्रकार के उपायकर वह प्रवेश न पाया अर त्रिशूलहू ते रहित भया तथापि महाभिमानी मधु ने शत्रुघ्न से सन्धि न करी, युद्ध ही कूं उद्यमी भया। तब शत्रुघ्न के योधा युद्धकूं निकसे, दोनों सेना समुद्र-समान तिनविषैं परस्पर युद्ध भया, रथनिके तथा हाथिन के तथा घोड़नि के असवार परस्पर युद्ध करते भए, पयादे भिड़े, नाना प्रकार के आयुधनिके धारक महा-समर्थ नाना प्रकार आयुधनिकरि युद्ध करते भए। ता समय परसेना के गर्वकूं न सहता सन्ता कृतान्तवक्र सेनापति परसेनाविषैं प्रवेश करता भया, नाहीं निवारी जाय है गति जाकी, तहां रणक्रीडा करै है, जैसें स्वयंभू रमण उद्यान विषैं इन्द्रक्रीडा करै। तब मधु का पुत्र लवणार्णवकुमार याहि देख युद्धके अर्थि आया, अपने बाणनिरूप मेघकर कृतांतवक्र रूप पर्वतकूं आच्छादित करता भया। अर कृतांतवक्र भी आशीविष तुल्य बाणनिकर ताके बाण छेदता भया अर धरती आकाशकूं अपने बाणनिकर व्याप्त करता भया। दोऊ महायोधा सिंह समान बलवान गजनिपर चढे क्रोध सहित युद्ध करते भए, वानै वाकूं रथ रहित किया अर वाने वाकूं। बहुरि कृतांतवक्र ने लवणार्णव के वक्षस्थलविषैं बाण लगाया अर ताका बखतर भेदा। तब लवणार्णव कृतान्तवक्र उपर तोमर जातिका शस्त्र चलावता भया, क्रोधकर लाल हैं नेत्र जाके, दोनों घायल भए, रुधिर कर रंग रहे हैं वस्त्र जिनके, महा सुभटता के स्वरूप दोनों क्रोध कर उद्धत, फूले टेसूके वृक्ष समान सोहते भए, गदा खड्ग चक्र इत्यादि अनेक आयुधनिकर परस्पर दोऊ महा भयंकर युद्ध करते भए, बल उन्माद विषादके भरे। बहुत बेर लग युद्ध भया, कृतान्तवक्रने लवणार्णव के वक्षस्थल विषैं घाव किया सो पृथ्वीविषैं पड्या, जैसें पुण्यके क्षयतें स्वर्गवासी देव मध्य लोक विषैं आय पड़ै। लवणार्णव प्राणान्त भया। तब पुत्रकूं पड़ा देख मधु कृतान्तवक्र पर दौड़ा। तब शत्रुघ्नने मधुकूं रोक्या, जैसें नदीके प्रवाहकूं पर्वत रोकै। मधु महादुस्सह शोक अर कोपका भरा युद्ध करता भया सो आशीविष की दृष्टि समान मधुकी दृष्टि शत्रुघ्न की सेनाके लोक न सहार सके। जैसें उग्र पवनके योगतें पत्रनिके समूह चलायमान होंय तैसें लोक चलायमान भए। बहुरि शत्रुघ्नकूं मधुके सन्मुख जाता देख धैर्यकूं प्राप्त भए। शत्रु के भय कर लोक तब लग ही डरें जब लग अपने स्वामीकूं प्रबल न देखें अर स्वामीकूं प्रसन्न बदन देख धैर्यकूं प्राप्त होंय। शत्रुघ्न उत्तम रथ पर आरूढ़, मनोज्ञ धनुष हाथ विषैं, सुन्दर हारकर शोभै है वक्षस्थल जाका, सिरपर मुकुट धरे, मनोहर कुंडल पहिरे, शरदके सूर्यसमान महातेजस्वी, अखंडित है गति जाकी, शत्रु के सन्मुख जाता अति सोहता

भया जैसें गजराज पर जाता मृगराज सोहै। अर अग्नि जैसें सूके पत्रनिको जलावै, तैसें मधुके अनेक योद्धा क्षणमात्रविषें विध्वंस किए। शत्रुघ्नके सन्मुख मधुका कोई योधा न ठहर सका जैसें जिनशासन के पंडित स्याद्वादी तिनके सन्मुख एकांतवादी न ठहर सकें। जो मनुष्य शत्रुघ्नसूं युद्ध किया चाहै सो तत्काल विनाशकूं पावै जैसें सिंह के आगे मृग। मधु की समस्त सेना के लोक अति व्याकुल होय मधु के शरण आए सो मधु महा सुभट शत्रुघ्नकूं सन्मुख आवता देख शत्रुघ्न की ध्वजा छेदी अर शत्रुघ्न ने बाणनिकर ताके रथके अश्व हते। तब मधु पर्वत समान जो अरुणेन्द्र गज तापर चढ़्या, क्रोधकर प्रज्वलित है शरीर जाका, शत्रुघ्नकूं निरन्तर बाणनिकर आच्छादने लगा जैसें महामेघ सूर्यकूं आच्छादै। सो शत्रुघ्न महा शूरवीर ने ताके बाण छेद डारे, मधु का बखतर भेदा। जैसें अपने घर कोई पाहुना आवै अर ताकी भले मनुष्य भली-भाँति पाहुनगति करै तैसें शत्रुघ्न मधुकी रणविषें शस्त्रनिकर पाहुनगति करता भया।

(शत्रुघ्न को अजेय जान राजा मधु का संसार से विरक्त हो संन्यास धारण करना)

अथानन्तर मधु महा विवेकी शत्रुघ्नकूं दुर्जय जान अर आपकूं त्रिशूल आयुध से रहित जान पुत्र की मृत्यु देख अर आयु हू अल्प जान मुनि का वचन विचारता भया— अहो जगत् का समस्त ही आरंभ महा हिंसारूप दुःख का देनहारा सर्वथा त्याज्य है, यह क्षणभंगुर संसारका चरित्र तामें मूढजन रार्चे? या संसार विषें धर्म ही प्रशंसा योग्य है अर अधर्मका कारण अशुभ कर्म प्रशंसा योग्य नाहीं, महानिंद्य यह पाप कर्म नरक निगोद का कारण है। जो दुर्लभ मनुष्य देहकूं पाय धर्मविषें बुद्धि नाहीं धारै है सो प्राणी मोह कर्मकरि ठग्या अनन्त भव भ्रमण करै है, मुझ पापीने असार संसारकूं सार जाना, क्षणभंगुर शरीर कूं ध्रुव जाना, आत्महित न किया। प्रमादविषें प्रवरता रोग समान ये इन्द्रयनि के भोग भले जान भोगे, जब स्वाधीन हुता तब मोहि बुद्धि न आई। अब अन्तकाल आया, अब कहा करूं। घर में आग लागी ता समय तालाब खुदवाना कौन अर्थ? अर सर्प ने डसा ता समय देशांतरसे मंत्राधीश बुलवाने अर दूर देशसे मणि औषधि मँगवाना कौन अर्थ? तातें अब सब चिंता तज निराकुल होय अपना मन समाधान विषें ल्याऊं। यह विचार वह धीर-वीर घावकर पूर्ण हाथी चढ़्या ही भाव मुनि होता भया, अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधुनिकूं मनकरि वचनकरि बारंबार नमस्कार कर अरहंत सिद्ध साधु तथा केवल-प्रणीत धर्म येही मंगल हैं, ये ही उत्तम हैं, इन्हीं का मेरे शरण है, अढाई द्वीप विषें पंद्रह कर्म भूमि तिनविषें भगवान् अरहंत देव होय हैं वे त्रैलोक्यनाथ मेरे हृदय विषें तिष्ठो। मैं बारंबार नमस्कार करूं हूं, अब मैं यावज्जीव सब पाप-योग तजे, चारों आहार तजे, जे पूर्व पाप उपार्जे हुते तिनकी निन्दा करूं हूं अर सकल वस्तु का प्रत्याख्यान करूं

हूं, अनादि कालतैं या संसार वन विषैं जो कर्म उपार्जे हुते ते मेरे दुष्कृत मिथ्या होहु। भावार्थ—मुझे फल मत देहु। अब मैं तत्वज्ञान विषैं तिष्ठा, तजिबे योग्य जो रागादिक तिनकूं तजूं हूं अर लेयवे योग्य जो निज भाव तिनकूं लेऊँ हूं, ज्ञान दर्शन मेरे स्वभाव ही हैं सो मोसे अभेद्य हैं अर जे शरीरादिक समस्त पर पदार्थ कर्मके संयोग कर उपजे, ते मोसे न्यारे हैं, देह त्यागके समय संसारी लोक भूमिका तथा तृण सांथरा करें हैं सो सांथरा नाहीं। यह जीव ही पाप बुद्धिरहित होय तब अपना आप ही सांथरा है। ऐसा विचारकर राजा मधु वे दोवों प्रकार के परिग्रह भावोंसे तजे अर हाथीकी पीठ पर बैठा ही सिर के केश लोंच करता भया, शरीर घावनिकर अति व्याप्त है तथापि महा दुर्धर धैर्यकूं धर करि अध्यात्मयोग विषैं आरूढ होय काया का ममत्व तजता भया, विशुद्ध है बुद्धि जाकी। तब शत्रुघ्न मधु की परम शान्त दशा देखि नमस्कार करता भया अर कहता भया—हे साधो! मो अपराधी के अपराध क्षमा करहु। देवनिकी अप्सरा मधुका संग्राम देखनेकूं आई हुतीं, आकाशसे कल्पवृक्षनिके पुष्पोंकी वर्षा करती भई, मधु का वीररस अर शान्त-रस देख देव भी आश्चर्यकूं प्राप्त भए। बहुरि मधु महाधीर एक क्षणमात्र विषैं समाधि-मरण कर महासुख के सागर विषैं तीजे सनत्कुमार स्वर्गविषैं उत्कृष्ट देव भया। अर शत्रुघ्न मधुकी स्तुति करता महा विवेकी मथुराविषैं प्रवेश करता भया। जैसे हस्तिनागपुर विषैं जयकुमार प्रवेश करता सोहता भया तैसा शत्रुघ्न मधुपुरी विषैं प्रवेश करता सोहता भया। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहे हैं—हे नराधिपति श्रेणिक! प्राणियों के या संसार विषैं कर्मों के प्रसंगकरि नाना अवस्था होय हैं तातैं उत्तम जन सदा अशुभ कर्म तजकरि शुभ कर्म करो जाके प्रभाव कर सूर्य-समान कांतिकूं प्राप्त होहू।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ ताकी भाषा वचनिका विषैं मधु का युद्ध अर वैराग्य अर लवणार्णवका मरण वर्णन करने वाला नवासीवां पर्व पूर्ण भया ॥८९॥

नव्वैवां पर्व

(मथुरा में असुरेन्द्र-कृत उपद्रव से लोगों में व्याकुलता)

अथानन्तर असुरकुमारों के इन्द्र जो चमरेन्द्र महाप्रचण्ड तिनका दिया जो त्रिशूल-रत्न मधु के हुता ताके अधिष्ठाता देव त्रिशूलकूं लेकर चमरेन्द्र के पास गए, अति खेद-खिन्न महा लज्जावान होय मधु के मरण का वृत्तान्त असुरेन्द्रसूं कहते भए। तिनकी मधु सूं अतिमित्रता सो पाताल से निकसकरि महाक्रोधके भरे मथुरा आयवेकूं उद्यमी भए। ता समय गरुडेन्द्र असुरेन्द्र के निकट आए अर पूछते भए—हे दैत्येन्द्र! कौन तरफ गमनकूं उद्यमी भए हो? तब चमरेन्द्रने कही—जाने मेरा मित्र मधु मारया है ताहि कष्ट देवेकूं

उद्यमी भया हूं। तब गरुडेन्द्र ने कही—कहा विशल्या का माहात्म्य तुमने न सुण्या है? तब चमरेन्द्र ने कही—वह अद्भुत अवस्था विशल्याकी कुमारी अवस्था विषैं ही हुती अर अब तो निर्विष भुजंगी-समान है। जौं लग विशल्याने वासुदेवका आश्रय न किया हुता तौं-लग ब्रह्मचर्यके प्रसादतैं असाधारण शक्ति हुती, अब वह शक्ति विशल्या विषैं नाहीं। जे निरतिचार बालब्रह्मचर्य धारैं तिनके गुणनिकी महिमा कहिवे विषैं न आवै, शीलके प्रसाद करि सुर-असुर पिशाचादि सब डरैं। जौं लग शीलरूप खडगकूं धारैं तौं लग सब कर जीत्या न जाय, महादुर्जय है। अब विशल्या पतिव्रता है पर ब्रह्मचारिणी नाहीं, तातैं वह शक्ति नाहीं। मद्यमांस मैथुन यह महापाप है, इनके सेवनसे शक्ति का नाश होय। जिनका व्रत-शील नियमरूप कोट भग्न न भया, तिनकूं कोई विघ्न करवे समर्थ नाहीं। एक कालाग्नि नामा रुद्र महा भयंकर भया, सो हे गरुडेंद्र! तुम सुना ही होयगा। बहुरि वह स्त्रीसूं आसक्त होय नाशकूं प्राप्त भया तातैं विषय का सेवन विष से भी विषम है। परम आश्चर्य का कारण एक अखंड ब्रह्मचर्य है। अब मैं मित्र के शत्रुपै जाऊंगा, तुम तिहारे स्थानक जावहु। ऐसा गरुडेंद्रसूं कहकर चमरेन्द्र मथुरा आए। मित्र के मरणकरि कोपरूप मथुरा विषै वही उत्सव देख्या जो मधुके समय हुता। तब असुरेन्द्र ने विचारी-ये लोक महादुष्ट कृतघ्न हैं, देश का धनी पुत्र-सहित मर गया है अर अन्य आय बैठ्या है, इनकूं शोक चाहिए कि हर्ष? जाके भुजा की छाया पाय बहुत काल सुखसूं बसे ता मधु की मृत्यु का दुःख इनकूं क्यों न भया। ये महाकृतघ्न हैं सो कृतघ्न का मुख न देखिये। लोकनिकरि शूरवीर सेवा योग्य, शूरवीरनिकर पंडित सेवा योग्य हैं। सो पण्डित कौन जो पराया गुण जानै, सो ये कृतघ्न महामूर्ख हैं, ऐसा विचार कर मथुरा के लोकनिपर चमरेन्द्र कोप्या, इन लोकोंका नाश करूं, यह मथुरापुरी यह देश सहित क्षय करूं। महा-क्रोधके वश होय असुरेन्द्र लोकनिकूं दुस्सह उपसर्ग करता भया, अनेक रोग लोगनिकूं लगाए, प्रलय काल की अग्नि समान निर्दई होय लोकरूप वनकूं भस्म करवेकूं उद्यमी भया। जो जहां ऊभा हुता सो वहां ही मर गया अर बैठ्या हुता सो बैठा ही रह गया, सूता था सो सूता ही रह गया, मरी पड़ी। लोककूं उपसर्ग देख मित्र कुल-देवता के भय से शत्रुघ्न अयोध्या आया सो महा शूरवीर भाई जीतकर आया जान बलभद्र नारायण अति हर्षित भए। अर शत्रुघ्न की माता सुप्रभा भगवान् की अद्भुत पूजा करावती भई अर दुःखी जीवनिकूं करुणा कर अर धर्मात्मा जीवनिकूं अति विनय कर अनेक प्रकार दान देती भई। यद्यपि अयोध्या महासुन्दर है, स्वर्ण रत्ननिके मंदिरनिकर मंडित है, कामधेनु समान सर्व कामना पूरणहारी, देवपुरी समान पुरी है तथापि शत्रुघ्न का जीव मथुरा विषै अति आसक्त सो अयोध्या विषैं अनुरागी न होता भया। जैसैं कैयक दिन

सीता बिना राम उदास रहे, तैसें शत्रुघ्न मथुरा बिना अयोध्या विषें उदास रहै। जीवोंकूं सुन्दर वस्तु का संयोग स्वप्न-समान क्षण भंगुर है, परम दाहकूं उपजावै है, ज्येष्ठ के सूर्य तै हू अधिक आतापकारी है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें मथुरा के लोकनिकूं असुरेन्द्र कृत उपसर्ग का वर्णन करने वाला नव्वेवां पर्व पूर्ण भया ।।९०।।

इक्यानवैंवां पर्व

(शत्रुघ्न के पूर्व भव तथा मथुरा में अनेक जन्म धारण करने से अति अनुराग)

अथानन्तर राजा श्रेणिक गौतम स्वामीसूं पूछता भया—हे भगवन्! कौन कारण कर शत्रुघ्न मथुराहीकूं याचता भया? अयोध्याहूतें ताहि मथुराका निवास अधिक क्यों रुचा? अनेक राजधानी स्वर्गलोक-समान सो न वांछी अर मथुरा ही वांछी, ऐसो मथुरासूं कहा प्रीति? तब गौतमस्वामी ज्ञानके समुद्र सकल सभारूप नक्षत्रनि के चन्द्रमा कहते भए—हे श्रेणिक! इस शत्रुघ्न के अनेक भव मथुरा विषें भए, तातें याकूं मधुपुरीसूं अधिक स्नेह भया। यह जीव कर्मनि के संबंधतें अनादिकाल से संसार-सागर विषें बसै है सो अनन्त भव धरे। यह शत्रुघ्न का जीव अनन्त भव भ्रमण करि मथुरा विषें एक यमनदेव नामा मनुष्य भया, महाक्रूर धर्मसे विमुख सो मरकरि शूकर खर काग ये जन्म धरि अज-पुत्र भया सो अग्नि विषें जल मूवा फिर जल के लादने का भैंसा भया सो छे बार भैंसा होय दुःखसूं मूवा, नीच कुल विषें निर्धन मनुष्य भया। हे श्रेणिक! महा पापी तो नरककूं प्राप्त होय हैं अर पुण्यवान् जीव स्वर्ग विषें देव होय हैं अर शुभा-शुभ-मिश्रित करि मनुष्य होय हैं। बहुरि यह कुलंधर नामा ब्राह्मण भया, रूपवान् अर शील रहित। सो एक समय नगर का स्वामी दिग्विजयनिमित्त देशांतर गया, ताकी ललिता नामा रानी महल के झरोखा विषें तिष्ठी हुती सो वह पापिनी इस दुराचारी विप्रकूं देख कामबाणकर वेधी गई, सो याहि महल विषें बुलाया। एक आसन पर रानी अर यह बैठि रहे, ताही समय राजा दूर का चल्या अचानक आया अर याहि महल विषें देख्या सो रानी मायाचार कर कही—जो यह बन्दीजन है, भिक्षुक है तथापि राजा ने न मानी। राजा के किंकर ताहि पकड़ कर नृपकी आज्ञातें आठों अंग दूर करवेके अर्थी नगर के बाहर ले जाते हुते सो कल्याण नामा साधु ने कही—जो तू मुनि होय तो तोहि छुड़ावें। तब यानै मुनि होना कबूल किया तब साधु ने किंकरनिसे छुड़ाया। सो मुनि होय महा तप करि स्वर्गविषें ऋजु विमान का स्वामी देव भया। हे श्रेणिक! धर्म से कहा न होय?

अथानन्तर मथुरा विषें चन्द्रभद्र राजा, ताके रानी धरा, ताके भाई सूर्यदेव अग्नि-देव, यमुनादेव अर आठ पुत्र, तिनके नाम-श्रीमुख, संमुख, सुमुख, इन्द्रमुख, प्रमुख, उग्रमुख,

अर्कमुख अर परमुख। अर राजा चन्द्रप्रभके दूजी राणी कनकप्रभा ताकूं वह कुलंधर नामा ब्राह्मण का जीव, स्वर्ग विषें देव होय तहाँ तैं चयकर अचल नामा पुत्र भया सो कलावान् अर गुणनिकरपूर्ण सर्वलोक के मन का हरणहारा देवकुमार-तुल्य क्रीडा विषें उद्यमी होता भया।

अथानन्तर एक अंक नामा मनुष्य धर्म की अनुमोदना कर श्रावस्ती नगरी विषें एक कंप नामा पुरुष, ताके अंगिका नामा स्त्री, उसके अप नामा पुत्र भया सो अविनयी। तब कंप ने अपकूं घर से निकास दिया सो महा दुःखी भूमि विषें भ्रमण करै। अर अचल नामा कुमार, पिताकूं अतिवल्लभ सो अचलकुमार की बड़ी माता धरा, उसके तीन भाई अर आठ पुत्र, तिन्होंने एकान्तमें अचलके मारनेका मंत्र किया, सो यह वार्ता अचलकुमार की माता ने जानी। तब पुत्रकूं भगाय दिया सो तिलकवन विषें उसके पांव विषें कांटा लाग्या सो कंप का पुत्र अप काष्ठ का भार लेकर आवै था सो अचलकुमारकूं कांटे के दुःखसूं करुणावंत देख्या। तब अप ने काष्ठका भार मेल छुरी से कुमार का कांटा काढ़ कुमारकूं दिखाया सो कुमार अति प्रसन्न भया। अर अपकूं कहा—तू मेरा अचलकुमार नाम याद राखियो अर मोहि भूपति सुने वहां मेरे पास आइयो। इस भाँति कह अपकूं विदा किया सो अप गया। अर राजपुत्र महादुःखी कौशांबी नगरी के विषें आया, महा-पराक्रमी सो बाणविद्या का गुरु जो विशिषाचार्य उसे जीत कर प्रतिष्ठा पाई हुती सो राजा ने अचलकुमारकूं नगर विषें ल्यायकर अपनी इन्द्रदत्ता नामा पुत्री परणाई। अनुक्रमकरि पुण्यके प्रभावतैं राज्य पाया सो अंगदेश आदि अनेक देशनिकूं जीतकर महाप्रतापी मथुरा आया, नगर के बाहिर डेरा दिया, बड़ी सैना साथ। सब सामन्तों ने सुन्या कि यह राजा चन्द्रभद्र का पुत्र अचलकुमार है सो सब आय मिले, राजा चन्द्रभद्र अकेला रह गया। तब राणी धराके भाई सूर्यदेव, अग्निदेव, यमुनादेव इनकूं संधि करने ताईं भेजे, सो ये जायकर कुमारकूं देख बिलखे होय भागे अर धराके आठ पुत्र भाग गए। अचलकुमार की माता आय पुत्रकूं ले गई, पितासूं मिलाया, पिताने याकूं राज्य दिया। एक दिन राजा अचल-कुमार नटों का नृत्य देखे था ताही समय अप आया जाने इसका वन विषें कांटा काढा था सो ताहि दरबान धक्का देय काढ़े हुते सो राजा ने मनै किया, अपकूं बुलाया, बहुत कृपा करी अर जो याकी जन्मभूमि श्रावस्ती नगरी हुती सो ताहि दई अर ये दोनों परम मित्र भेले ही रहैं। एक दिवस महासंपदा के भरे उद्यान विषें क्रीडाकूं गए सो यशसमुद्र आचार्य को देखकरि दोनों मित्र मुनि भए, सम्यग्दृष्टि परम संयमकूं आराध समाधिमरण कर स्वर्ग विषें उत्कृष्ट देव भए। तहांसे चयकर अचलकुमार का जीव राजा दशरथ के यह शत्रुघ्न पुत्र भया। अनेक भव के संबन्धसूं याकी मथुरासूं अधिक प्रीति भई। गौतम

स्वामी कहै हैं—हे श्रेणिक ! वृक्षकी छाया जो प्राणी बैठया होय तो ता वृक्षसूं प्रीति होय है, जहां अनेक भव धरे तहांकी कहा बात ? संसारी जीवनिकी ऐसी अवस्था हैं। अर वह अगका जीव स्वर्गतें चयकर कृतांतवक्र सेनापति भया। या भांति धर्म के प्रसादतें ये दोनों मित्र संपदाकूं प्राप्त भए अर जे धर्म से रहित हैं तिनके कबहुं सुख नाहीं। अनेक भवके उपार्जे दु:खरूप मल तिनके धोयवेकूं धर्म का सेवन ही योग्य है अर जलके तीर्थनि विषें मन का मैल नाहीं धुवै है। धर्म के प्रसादतें शत्रुघ्नका जीव सुखी भया। ऐसा जानकर विवेकी जीव धर्म विषें उद्यमी होवो। धर्मकूं सुनकर जिनकी आत्म कल्याण विषै प्रीति नाहीं होय है तिनका श्रवण वृथा है, जैसें जो नेत्रवान सूर्य के उदय होते कूप विषें पड़ै तो ताके नेत्र वृथा हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं शत्रुघ्न के पूर्व भव का वर्णन करने वाला इक्याणवैवां पर्व पूर्ण भया ।।९१।।

बानवैवां पर्व

(मथुरा के असुरेन्द्र कृत उपद्रवका सप्त चारण ऋषीश्वरों के प्रभावसे दूर होना)

अथानन्तर आकाश विषें गमन करणहारे सप्त चारण ऋषि, सप्त सूर्य-समान है कान्ति जिनकी, सो विहार करते निर्ग्रंथ मुनीन्द्र मथुरापुरी आए। तिनके नाम—सुरमन्यु, श्रीनिचय, सर्वसुन्दर, जयवान, विनयलालस, जयमित्र। ये सब ही महाचरित्र के पात्र, अति सुन्दर, राजा श्रीनंदन व रानी धरणीसुन्दरीके पुत्र, पृथ्वीविषे प्रसिद्ध, पिता सहित प्रीतिकर स्वामी का केवलज्ञान देख प्रतिबोधकूं प्राप्त भए थे, पिता अर ये सातों पुत्र प्रीतिकर केवली के निकट मुनि भए थे। अर एक महीने का बालक डमर नामा पुत्र ताकूं राज्य दिया था। पिता श्रीनन्दन तो केवली भया अर सातों महामुनि चारण ऋद्धि आदि अनेक ऋद्धि के धारक श्रुतकेवली भए सो चातुर्मास विषें मथुरा के वनविषें वटके वृक्ष तलै आय विराजे। तिनके तपके प्रभावकरि चमरेन्द्रकी प्रेरी मरी दूर भई, जैसे श्वसुरकूं देखकर व्यभिचारिणी नारी दुर भागै। मथुरा का समस्त मण्डल सुखरूप भया, विना बाहे धान्य सहज ही उगै, समस्त रोगनिसूं रहित मथुरापुरी ऐसी शोभती भई जैसे नई वधू पतिकूं देखकर प्रसन्न होय। वह महामुनि रसपरित्यागादि तप अर बेला तेला पक्षोपवासादि के अनेक तप के धारक जिनकूं चार महीने चौमासे रहना। ये मथुरा के वन विषें अर चारणऋद्धि के प्रभावतें चाहे जहां आहारकर आवें, एक निमिष मात्रविषैं आकाशके मार्ग होय पोदनापुर पारणा कर आवें बहुरि विजयपुर कर आवें। उत्तम श्रावक के घर पात्र भोजन कर संयम-निमित्त शरीरकूं राखें। कर्म के खिपायवेकूं

कदाची एक दिन वे धीर महा शान्त भाव के धारक जूड़ा-प्रमाण धरती देख विहार कर ईर्यासमितिके पालनहारे आहार के समय अयोध्या आए। शुद्ध भिक्षा के लेनहारे, प्रलंबित हैं महा भुजा जिनकी, अर्हंदत्त सेठ के घर आय प्राप्त भए। तब अर्हंदत्त ने विचारी कि वर्षाकाल विषें मुनिका विहार नाहीं, ये चौमासा पहिले तो यहाँ आए नाहीं अर मैं यहाँ जे २ साधु विराजे हैं गुफा में, नदीके तीर, वृक्षतल, शून्य स्थानक विषे, वनके चैत्यालयनि विषें जहाँ चौमासा साधु तिष्ठै हैं वे मैं सर्व वन्दे। यह तो अब तक देखे नाहीं। ये आचारांग सूत्र की आज्ञा से पराम्मुख इच्छा विहारी हैं, वर्षा काल विषे भी भ्रमते फिरैं हैं, जिन-आज्ञा परान्मुख, ज्ञानरहित, निराचारी, आचार्य की आम्नाय से रहित हैं। जिन-आज्ञा पालक होय तो वर्षा विषें विहार क्यों करें सो यह तो उठ गया। अर याके पुत्र की वधू ने अति भक्ति कर प्रासुक आहार दिया सो मुनि आहार लेय भगवान के चैत्यालय आए जहाँ द्युतिभट्टारक विराजते हुते। ये सप्तर्षि ऋद्धि के प्रभाव कर धरती से चार अंगुल अलिप्त चले आए अर चैत्यालय विषे धरती पर पग धरते आए। आचार्य उठ खड़े भए, अति आदर से इनकूं नमस्कार किया अर जे द्युतिभट्टारक के शिष्य हुते तिन सब ने नमस्कार किया। बहुरि ये सप्त तो जिन वन्दना करि आकाश के मार्ग मथुरा गए। इनके गए पीछे अर्हंदत्त सेठ चैत्यालय विषे आया। तब द्युतिभट्टारक ने कही कि सप्तमहर्षि महायोगीश्वर चारणमुनि यहाँ आए हुते, तुमने हू वे वदे हैं? वे महा पुरुष महातप के धारक हैं, चार महीने मथुरा में निवास किया है अर चाहे जहाँ आहार ले जांय। आज अयोध्या विषें आहार लिया, चैत्यालय दर्शन कर गए, हमसे धर्म चर्चा करी, वे महा तपोधन गगनगामी शुभ चेष्टाके धरणहारे परम उदार ते मुनि वंदिवे योग्य हैं। तब वह श्रावकनिविषें अग्रणी आचार्य के मुखसूं चारण मुनिनिकी महिमा सुनकर खेद खिन्न होय पश्चाताप करता भया। धिक्कार मोहि! मैं सम्यग्दर्शन-रहित वस्तु का स्वरूप न पिछान्या, मैं अत्याचारी मिथ्यादृष्टि, मो समान और अधर्मी कौन। वे महामुनि मेरे मंदिर आहारकूं आए अर मैं नवधा भक्ति कर आहार न दिया। जो साधूकूं देख सन्मान न करै अर भक्ति कर अन्न जल न देय सो मिथ्यादृष्टि है। मैं पापी पापात्मापाप का भाजन, महा निंद्य, मो समान और अज्ञानी कौन। मैं जिन वाणी से विमुख, अब मैं जौं लग उनके दर्शन न करूं तौं लग मेरे मनका दाह न मिटै। चारण मुनिनि की यही रीति है कि चौमासे निवास तो एक स्थान करैं अर आहार अनेक नगरी विषें कर आवें। चारण ऋद्धि के प्रभाव करि उनके अंग से जीवनिकूं बाधा न होय।

अथानन्तर कार्त्तिकी पूनों नजीक जान सेठ अर्हंदत्त महासम्यग्दृष्टि, नृप तुल्य विभूति जाके, अयोध्यातें मथुराकूं सर्व कुटुम्ब सहित सप्तऋषि के पूजन-निमित्त चल्या।

जाना है मुनिनिका माहात्म्य जाने अर अपनी बारंबार निन्दा करै है, रथ हाथी पयादे तुरंगनि के असवार इत्यादि बड़ी सेना सहित योगीश्वरनिकी पूजाकूं शीघ्र ही चल्या। बड़ी विभूति कर युक्त शुभ ध्यान विषैं तत्पर कार्तिक सुदी सप्तमी के दिन मुनिनि के चरणनि विषैं जाय पहुंचा। वह उत्तम सम्यक्त का धारक विधिपूर्वक मुनि वन्दना कर मथुराविषैं अति शोभा करावता भया। मथुरा स्वर्ग समान सोहती भई। यह वृत्तान्त शत्रुघ्न सुन शीघ्र ही महा तुरंग चढ्या सप्तऋषि के निकट आया अर शत्रुघ्न की माता सुप्रभा भी मुनिनिकी भक्ति कर पुत्र के पीछे ही आई। अर शत्रुघ्न नमस्कार कर मुनिनि के मुख धर्म श्रवण करता भया। मुनि कहते भए—हे नृप ! यह संसार असार है, वीतराग का मार्ग सार है। जहां श्रावकके बारह व्रत कहे, मुनिके अठाईस मूल गुण कहे, मुनिनिकूं निर्दोष आहार लेना, अकृत अकारित, राग-रहित प्रासुक आहार विधिपूर्वक लिए योगीश्वरों के तप की बधवारी होय। तब वह शत्रुघ्न कहता भया—हे देव ! आपके आए या नगरतें मरी गई, रोग गए, दुर्भिक्ष गया, सब विघ्न गए, सुभिक्ष भया, सब साता भई, प्रजा के दुःख गए, सब समृद्धि भई जैसे सूर्य के उदयतैं कमलिनी फूलै; आप कई दिन यहां ही तिष्ठो।

तब मुनि कहते भए—हे शत्रुघ्न ! जिन आज्ञा सिवाय अधिक रहना उचित नाहीं, यह चतुर्थ काल धर्म के उद्योतका कारण है, या विषैं मुनींद्र का धर्म भव्य जीव धारैं हैं, जिन-आज्ञा पालैं हैं, महा मुनि के केवलज्ञान प्रगट होय है। मुनिसुव्रतनाथ सो मुक्त भए, अब नमि, नेमि, पार्श्व, महावीर ये चार तीर्थंकर और होवेंगे। बहुरि पंचमकाल जाहि दुखमाकाल कहिये सो धर्म की न्यूनतारूप प्रवरतेगा। ता समय पाखंडी जीवनिकर जिन-शासन अति ऊंचा है तोहू आच्छादित होयगा, जैसें रजकर सूर्यका बिंब आच्छादित होय। पाखंडी निर्दई दया धर्मकूं लोपकर हिंसाका मार्ग प्रवर्तन करेंगे। ता समय मसान-समान ग्राम अर प्रेत-समान लोक कुचेष्टा के करणहारे होवेंगे, महा कुधर्म विषैं प्रवीण क्रूर चोर पाखण्डी दुष्ट जीव तिनकर पृथ्वी पीड़ित होयगी, किसान दुःखी होवेंगे, प्रजा निर्धन होयगी, महा हिंसक जीव परजीवनिके घातक होवेंगे, निरन्तर हिंसा की बढवारी होयगी, पुत्र माता पिता की आज्ञा से विमुख होवेंगे अर माता पिता हू स्नेहरहित होवेंगे अर कलिकाल विषैं राजा लुटेरे होवेंगे, कोई सुखी नजर न आवेगा। कहिबे के सुखी, वे पाप चित्त दुर्गति की दायक कुकथा कर परस्पर पाप उपजावेंगे। हे शत्रुघ्न ! कलिकाल विषैं कषायकी बहुलता होवेगी अर अतिशय समस्त विलय जावेंगे, चारणमुनि देव विद्याधरनिका आवना न होयगा। अज्ञानी लोक नग्नमुद्राके धारक मुनिनिकूं देख निन्दा करेंगे, मलिन चित्त मूढजन अयोग्यको योग्य जानेंगे। जैसें पतंग दीपक की शिखाविषै पड़ै तैसें अज्ञानी

पापपंथ विषैं पड़ दुर्गतिके दुःख भोगेंगे। अर जे महाशांत स्वभाव तिनकी दुष्ट निंदा करेंगे, विषयी जीवनिकूं भक्तिकर पूजेंगे। दीन अनाथ जीवनिकूं दया भाव कर कोई न देवेगा सो वृथा जायगा। जैसे शिलाविषै बीज बोय निरन्तर सींचे तो हू कछु कार्यकारी नाहीं, तैसे कुशील पुरुषनिकूं विनय भक्तिकर दिया कल्याणकारी नाहीं। जो कोई मुनिवि की अवज्ञा करें हैं अर मिथ्यामार्गियोंकूं भक्तिकर पूजै हैं सो मलयागिरि चंदनकूं तजकर कंटक वृक्षकूं अंगीकार करें हैं, ऐसा जानकर हे वत्स ! तू दान पूजा कर जन्म कृतार्थ कर, गृहस्थीकूं दान पूजा ही कल्याणकारी हैं। अर समस्त मथुराके लोक धर्मविषैं तत्पर होवो, दया पालो, साधर्मियोंसे वात्सल्य धारो, जिनशासन की प्रभावना करहु, घर घर जिनबिंब थापहु, पूजा अभिषेक की प्रवृत्ति करहु, जाकरि सब शान्ति हो। जो जिनधर्मका आराधन न करेगा अर जाके घर विषै जिन-पूजा न होवेगी, दान न देवेगा ताहि आपदा पड़ेगी। जैसे मृगकूं व्याघ्री भखै तैसे धर्म रहितकूं मरी भखेगी। अंगुष्ठप्रमाण हू जिनेन्द्र की प्रतिमा जिसके विराजेगी उसके घरविषै मरी यूं भाजेगी जैसे गरुड़ के भय से नागिनी भागे। ये वचन मुनिनि के सुन शत्रुघ्न ने कही—हे प्रभो ! ज्यो आप आज्ञा करी त्यों ही लोक धर्म विषैं प्रवर्तेंगे।

अथानन्तर मुनि आकाश-मार्ग विहार कर अनेक निर्वाण-भूमि वंदकरि सीता के घर आहारकूं आए। कैसे हैं मुनि? तप ही है धन जिनके। सीता महाहर्षकूं प्राप्त होय श्रद्धा आदि गुणोंकरि मण्डित परम अन्नकर विधिपूर्वक पारणा करावती भई। मुनि आहार लेय आकाश के मार्ग विहार कर गए। शत्रुघ्नने नगरी के बाहिर अर भीतर अनेक जिनमंदिर कराए, घर-घर जिन प्रतिमा पधराई, नगरी सब उपद्रव रहित भई, वन उपवन फल-पुष्पादिकर शोभित भए, वापिका सरोवरी कमलों कर मंडित सोहती भई, पक्षी शब्द करते भए, कैलाश के तट समान उज्ज्वल मन्दिर नेत्रोंकूं आनन्दकारी विमान-तुल्य सोहते भए। अर सर्व किसान लोक संपदाकर भरे सुखसूं निवास करते भए, गिरिके शिखर समान ऊंचे अनाजोंके ढेर गांवों विषैं सोहते भए। स्वर्ण रत्नादिककी पृथ्वीविषैं विस्तीर्णता होती भई, सकल लोक राम के राज्य विषैं देवों समान अतुल विभूति के धारक सुखी अर धर्म अर्थ काम विषैं तत्पर होते भए। शत्रुघ्न मथुरा विषैं राज्य करै, राम के प्रताप से अनेक राजाओं पर आज्ञा करता सोहै जैसें देवों विषै वरुण सोहै। या भांति मथुरा पुरीका ऋद्धि के धारी मुनिनिके प्रतापकरि उपद्रव दूर होता भया। जो यह अध्याय बांचै सुनै सो पुरुष शुभ नाम शुभ गोत्र शुभ साता वेदनीय का बन्ध करै। जो साधुवों की भक्ति विषैं अनुरागी होय अर साधुवों का समागम चाहै, वह मनवांछित फलकूं प्राप्त होय। या साधुवों के संगकूं पायकरि धर्मकूं आराध कर प्राणी सूर्य से भी अधिक दीप्तिकूं

प्राप्त होहु।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं मथुराका उपसर्ग निवारण वर्णन करने वाला बानवैंवाँ पर्व पूर्ण भया ॥९२॥

तिरानवैंवां पर्व

(रामके श्रीदामा और लक्ष्मण के मनोरमा की प्राप्ति)

अथानन्तर विजयार्धकी दक्षिण-श्रेणी विषैं रत्नपुर नामा नगर वहाँ राजा रत्नरथ उसकी रानी पूर्णचन्द्रानना उसके पुत्री मनोरमा महा रूपवती उसे यौवनवती देख राजा वर ढूंढवे की बुद्धि कर व्याकुल भया, मंत्रियोंसूं मन्त्र किया कि यह कुमारी कौनकूं परणाऊँ ? या भाँति राजा के चिंतायुक्त कई एक दिन गए। एक दिन राजा की सभा विषैं नारद आया, राजा ने बहुत सन्मान किया। नारद सब ही लौकिक रीतियों विषैं प्रवीण उससे राजा ने पुत्री के विवाहने का वृत्तांत पूछया। तब नारद ने कही–राम का भाई लक्ष्मण महा सुन्दर है, जगत् विषैं मुख्य है, चक्र के प्रभाव कर नवाए हैं समस्त नरेंद्र जिसने, ऐसी कन्या उसके हृदयविषैं आनन्द दायिनी होवै जैसे कुमुदिनीके वनकूं चांदनी आनन्ददायिनी होय। जब या भांति नारदने कही तब रत्नरथ के पुत्र हरिवेग मनोवेग वायुवेगादि महामानी, स्वजनोंके घातकर उपज्या है वैर जिनके, प्रलयकाल की अग्नि समान प्रज्वलित होय कहते भए–जो हमारा शत्रु, जिसे हम मारा चाहैं, उसे कन्या कैसें देवें ? यह नारद दुराचारी है, इसे यहांसे काढहु। ऐसे वचन राजपुत्रों के सुन किकर नारद पर दौड़े। तब नारद आकाश मार्गसे विहारकर शीघ्र ही लक्ष्मण पै अयोध्या आया, अनेक देशान्तर वार्ता कह रत्नरथ की पुत्री मनोरमा का चित्राम दिखाया सो वह कन्या तीनलोक की सुन्दरियों का रूप एकत्र कर मानों बनाई है। सो लक्ष्मण चित्रपट देख अति मोहित होय काम के वश भया। यद्यपि महा धीर वीर है तथापि वशीभूत होय गया। मनविषै विचारता भया जो यह स्त्रीरत्न मुझे न प्राप्त होय तो मेरा राज्य निष्फल अर जीतव्य वृथा। लक्ष्मण नारदसूं कहता भया–हे भगवन् ! आपने मेरे गुणकीर्तन किए अर उन दुष्टोंने आपसूं विरोध किया सो वे पापी प्रचंड मानी महा क्षुद्र दुरात्मा कार्य के विचारसूं रहित हैं, उनका मान मैं दूर करूंगा। आप समाधान विषैं चित्त लावो, तिहारे चरण मेरे सिर पर हैं अर उन दुष्टनिकूं तिहारे पाँयनि पड़ाऊंगा। ऐसा कहकर विराधित विद्याधरकूं बुलाया अर कही कि रत्नपुर ऊपर हमारी शीघ्र ही तैयारी है, तातैं पत्र लिख सर्व विद्याधरनिकूं बुलावो, रण का सरंजाम करावो।

तब विराधित ने सबनिकूं पत्र पठाए। वे महासेना सहित शीघ्र ही आए। लक्ष्मण

राम-सहित सर्व नृपोंकूं लेकर रत्नपुर की तरफ चाले जैसे लोकपालों सहित इन्द्र चाले। जीत जिसके सन्मुख है, नाना प्रकारके शस्त्रोंके समूहकर आच्छादित करी हैं सूर्यकी किरण जाने सो रत्नपुर आय पहुंचे, उज्ज्वल छत्रकर शोभित। तब राजा रत्नरथ परचक्र आया जान अपनी समस्त सेना-सहित युद्धकूं महा तेजकर निकस्या, सो चक्र करोत कुठार बाण खड्ग बरछी पाश गदादि आयुधनिकर तिनके परस्पर महा युद्ध भया, अप्सराओं के समूह युद्ध देख योधाओं पर पुष्पवृष्टि करते भए। लक्ष्मण परसेनारूप समुद्र के सोखिवेकूं बडवानल समान आप युद्ध करनेकूं उद्यमी भया, परचक्रके योधारूप जलचरों के क्षय का कारण। सो लक्ष्मण के भयकर रथों के तुरंगों के हाथियों के असवार सब दसों दिशाओंकूं भाजे। अर इन्द्र समान है शक्ति जिनकी, ऐसे श्रीराम अर सुग्रीव हनुमान इत्यादि सब ही युद्धकूं प्रवरते। इन योधाओंकर विद्याधरोंकी सेना ऐसे भागी जैसे पवन कर मेघपटल विलाय जावें। तब रत्नरथ अर रत्नरथ के पुत्रोंकू भागते देख नारद ने परम हर्षित होय ताली देय हँसकर कहा—अरे रत्नरथके पुत्र हो ! तुम महा चपल दुराचारी मन्दबुद्धि लक्ष्मण के गुणों की उच्चता न सह सके तो अब अपमानकूं पाय क्यों भागो हो ? तब उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। उसी समय मनोरमा कन्या अनेक सखियों-सहित रथपर चढ़कर महा प्रेम की भरी लक्ष्मण के समीप आई जैसे इन्द्राणी इन्द्र के समीप आवै। उसे देखकर लक्ष्मण क्रोधरहित भए, भृकुटी चढ़ रही थी सो शीतलवदन भए, कन्या आनन्द की उपजावनहारी। तब राजा रत्नरथ अपने पुत्रो-सहित मान तज नाना प्रकार की भेंट लेकर श्रीराम-लक्ष्मणके समीप आया। राजा देश काल की विधिकूं जानै है अर देखा है अपना अर इनका पुरुषार्थ जिसने। तब नारद सब के बीच रत्नरथकूं कहते भए—हे रत्नरथ ! अब तेरी कहा वार्ता ? तू रत्नरथ है कि रजरथ है, वृथा मान करे हुता सो नारायण-बलदेवों से मान करके कहा ? अर ताली बजाय रत्नरथ के पुत्रों से हँसकर कहता भया—हो रत्नरथके पुत्र हो ! यह वासुदेव है जिनकूं तुम अपने घर विषै उद्धत चेष्टा रूप होय मन विषै आया सो ही कही, अब पांयनि क्यों पड़े हो ? तब वे कहते भए—हे नारद ! तिहारा कोप भी गुण करै, जो तुम हमसे कोप किया तो बड़े पुरुषों का सम्बन्ध भया, इनका सम्बन्ध दुर्लभ है, या भांति क्षणमात्र वार्ता करि सब नगर विषै गए। श्रीरामकूं श्रीदामा परणाई, रति समान है रूप जाका। उसे पायकर राम आनन्दसे रमते भए। अर मनोरमा लक्ष्मणकूं परणाई सो साक्षात् मनोरमा ही है। या भांति पुण्यके प्रभाव करि अद्भुत वस्तुकी प्राप्ति होय है। तातैं भव्य जीव सूर्यसे अधिक प्रकाशरूप जो वीतराग का मार्ग उसे जानकर दयाधर्म की आराधना करहु।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषै रामकूं श्रीदामा का लाभ अर लक्ष्मणकूं मनोरमा का लाभ वर्णन करने वाला तिरानवेवां पर्व पूर्ण भया ॥९३॥

चौरानवैंवां पर्व

(राम-लक्ष्मण के वैभव परिवार आदि का वर्णन)

अथानन्तर और भी विजयार्ध के दक्षिण श्रेणी विषै विद्याधर हुते, वे सब लक्ष्मण ने युद्धकर जीते। कैसा है युद्ध ? जहाँ नाना प्रकार के शस्त्रों के प्रहारकरि अर सेना के संघट कर अंधकार होय रहा है। गौतम स्वामी कहै हैं-हे श्रेणिक ! वे विद्याधर अत्यन्त दुस्सह महाविषधर समान हुते सो सब राम-लक्ष्मण के प्रतापकर मानरूप विष से रहित होय गए, इनके सेवक भए। तिनकी राजधानी देवोंको पुरी-समान तिनके कंयक नाम तुझ कहूँ हूँ—रविप्रभ, वह्निप्रभ, काचनप्रभ, मेघप्रभ, शिवमदिर, गधर्वगीति, अमृतपुर, लक्ष्मीधरपुर, किन्नरपुर, मेघकूट, मर्त्यगति, चक्रपुर, रथनूपुर, बहुरव, श्रीमलय, श्रीगृह, अरिंजय, भास्करप्रभ, ज्योतिपुर, चन्द्रपुर, गन्धार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, भद्रपुर, यक्षपुर, तिलकस्थानक इत्यादि बड़े २ नगर सो सब राम लक्ष्मणने वशमे किए। सब पृथ्वी कूं जीत सप्त रत्नकर सहित लक्ष्मण नारायणके पदका भोक्ता होता भया। सप्तरत्नोंके नाम—चक्र शंख धनुष शक्ति गदा खड्ग कौस्तुभमणि। अर राम के चार-हल मूसल रत्नमाला गदा। या भांति दोनों भाई अभेदभाव पृथ्वीका राज्य करें। तब श्रेणिक गौतम स्वामीकूं पूछता भया—हे भगवन् ! तिहारे प्रसाद से मैं राम—लक्ष्मणका माहात्म्य विधि पूर्वक सुन्या। अब लवण अंकुशकी उत्पत्ति अर लक्ष्मण के पुत्रों का वर्णन सुना चाहूं हूँ सो आप कहो। तब गौतम गणधर कहते भए—हे राजन् ! मैं कहूँ हूँ सो सुन—राम लक्ष्मण जगत् विषै प्रधान पुरुष निःकंटक राज्य भोगते भए, तिनके दिन पक्ष मास वर्ष महासुखसे व्यतीत होंय। जिनके बड़े कुल को उपजी देवांगना समान स्त्री लक्ष्मण के सोलह हजार, तिनविषैं आठ पटरानी कीर्ति समान लक्ष्मी समान रति समान गुणवती शीलवन्ती अनेक कलाविषैं निपुण, महा सौम्य सुन्दराकार तिनके नाम—प्रथम पटराणी राजा द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या, दूजी रूपवती जिस समान और रूपवान नाहीं, तीजी वनमाला, चौथी कल्याणमाला, पाँचमी रतिमाला, छठी जितपद्मा जिसने अपने मुखकी शोभाकर कमल जीते, सातमी भगवती, आठमी मनोरमा। अर रामके रानी आठ हजार देवाँगना समान, तिनविषै चार पटरानी जाकी जगत् विषै प्रसिद्ध कीर्ति, तिनविषै प्रथम जानकी, दूजी प्रभावती, तीजी रतिप्रभा, चौथी श्रीदामा। इन सबों के मध्य सीता सुन्दर लक्षण ऐसी सोहै ज्यों ताराविषैं चन्द्रकला। अर लक्ष्मण के पुत्र अढाईसै तिन विषैं कैयकों के नाम कहूँ हूँ सो सुन—

वृषभ, धरण, चन्द्र, शरभ, मकरध्वज, धारण, हरिनाग, श्रीधर, मदन, अच्युत—

ये महा प्रसिद्ध सुन्दर चेष्टा के धारक जिनके गुणनिकर सब लोकनि के मन अनुरागी। अर विशल्याका पुत्र श्रीधर अयोध्यामें ऐसा सोहै जैसा आकाशविषै चन्द्रमा। अर रूपवती का पुत्र पृथ्वी तिलक सो पृथ्वी विषैं प्रसिद्ध अर कल्याणमाला का पुत्र महाकल्याण का भाजन मंगल अर पद्मावती का पुत्र विमलप्रभ अर वनमाला का पुत्र अर्जुनवृक्ष अर अतिवीर्य की पुत्री का पुत्र श्रीकेशी अर भगवती का पुत्र सत्यकेशी अर मनोरमा का पुत्र सुपार्श्वकीर्ति ये सब ही महाबलवान पराक्रम के धारक शस्त्र शास्त्र विद्यामें प्रवीण। इन सब भाईनि में परस्पर अधिक प्रीति, जैसे नख माँसमें दृढ़ कभी भी जुदे न होवें, तैसें भाई जुदे नाहीं। योग्य है चेष्टा जिनकी, परस्पर प्रेम के भरे वह वाके हृदयमें तिष्ठै, वह वाके हृदय में तिष्ठै। जैसें स्वर्गविषैं देव रमैं तैसें ये कुमार अयोध्यापुरी में रमते भए। जे प्राणी पुण्याधिकारी हैं, पूर्व पुण्य उपार्जे हैं, महाशुभ चित्त हैं, तिनके जन्म से लेकर सकल मनोहर वस्तु आप ही आय मिलें हैं। रघुवंशनिके साढे चार कोटि कुमार महामनोज्ञ चेष्टा के धारक नगर के वन उपवनादि में महामनोज्ञ चेष्टासहित देवनि समान रमते भए। अर राम लक्ष्मण के सोलह हजार मुकुटबन्ध राजा सूर्यहू तैं अधिक तेज के धारक सेवक होते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राम-लक्ष्मण की ऋद्धि वर्णन करने वाला चौरानवेंवाँ पर्व पूर्ण भया ॥९४॥

पिचानवैंवां पर्व

(सीता को गर्भ-धारण करना और जिन पूजा का दोहला होना)

अथानन्तर राम लक्ष्मण के दिन अति आनन्दसूं व्यतीत होते भए, धर्म अर्थ काम ये तीनों इनके अविरुद्ध होते भए। एक समय सीता सुखसूं विमान-समान जो महल ताविषैं शरद के मेघ समान उज्ज्वल सेजपर सोवती थी सो पिछले पहर वह कमलनयनी दोय स्वप्न देखती भई। बहुरि दिव्य वादित्रनिके नाद सुन प्रतिबोधकूं प्राप्त भई। निर्मल प्रभात भए स्नानादि देहक्रिया कर सखिन सहित स्वामीपैं गई अर जायकर पूछती भई—हे नाथ ! मैं आज रात्रिविषै स्वप्न देखे तिनका फल कहो। दोय उत्कृष्ट अष्टापद शरद के चन्द्रमा समान उज्ज्वल अर क्षोभकूं प्राप्त भया जो समुद्र ताके शब्द-समान जिनके शब्द, कैलाश के शिखर समान सुन्दर, सर्व आभरणनिकरि मंडित, महामनोहर हैं केश जिनके अर उज्ज्वल हैं दाढ जिनकी, सो मेरे मुखमें पैठे। अर पुष्पक-विमान के शिखर से प्रबल पवन के झकोर कर मैं पृथ्वी विषैं पड़ी। तब श्रीरामचन्द्र कहते भए—हे सुन्दरी ! दो अष्टापद मुखमें पैठे देखे ताके फलकर तेरे दोय पुत्र होंयगे अर पुष्पक विमान से पृथ्वी विषैं पड़ना प्रशस्त नाहीं सो कछु चिंता न करो, दानके प्रभावसे क्रूर ग्रह शांत होवेंगे।

अथानन्तर वसन्तसमयरूपी राजा आया, तिलक जाति के वृक्ष फूले सोई उसके बखतर अर नीम जातिके वृक्ष फूले वेई गजराज तिनपर आरूढ अर आंब मौर आए सो मानों वसन्त का धनुष अर कमल फूले सो वसन्त के बाण अर केसरी फूले वेई रतिराज के तरकश अर भ्रमर गुंजार करै हैं सो मानों निर्मल श्लोकों कर वसत नृपका यश गावै हैं। अर कदम्ब फूले तिनकी सुगन्ध पवन आवै है सोई मानो वसन्त नृप के निश्वास भए अर मालती के फूल फूले सो मानों वसंत शीतकालादिक अपने शत्रूनिको हंसै है अर कोयल मिष्ट वाणी बोलै है सो मानो वसंत राजा के वचन हैं, या भांति वसंत समय नृपतिकीसी लीला धरे आया। वसंत की लीला लोकनिकूं कामका उद्वेग उपजावनहारी है। बहुरि यह वसत मानो सिंह ही है, आकोट जाति के वृक्षादि के फूल वेई हैं नख जाके अर कुरबक जाति के वृक्षनि के फूल आए तेई भए दाढ जाके अर महारक्त अशोक के पुष्प वेई हैं नेत्र जाके अर चंचल पल्लव वेई हैं जिह्वा जिसकी, ऐसा वसंत केसरी आय प्राप्त भया, लोकों के मन की वृत्ति सोई भई गुफा तिनमें पैठा। महेंद्र नामा उद्यान नंदनवन समान सदा ही सुन्दर है सो वसंत समय अति सुन्दर होता भया, नाना प्रकारके पुष्पनिकी पाखुडी पर नाना प्रकार की कूपल दक्षिण दिशाकी पवन कर हालती भई सो मानों उन्मत्त भई घूमै हैं। अर वापिका कमलादिककरि आच्छादित हैं अर पक्षिनिके समूह नाद करै हैं अर लोक सिवाणों पर तथा तीर पर वैठे हैं अर हंस सारस चकवा क्रौंच मनोहर शब्द करै है अर कारंड बोल रहे हैं, इत्यादि मनोहर पक्षिनिके मनोहर शब्दकरि रागी पुरुषनिकू राग उपजावै हैं, पक्षी जल विषै पड़े हैं अर उठै हैं तिनकर निर्मल जल कलोलरूप होय रहा है। जल तो कमलादिक कर भरया है अर स्थल जो है सो स्थलपद्मादिक पुष्पनिकर भरा है अर आकाश पुष्पनिकी मकरंदकर मंडित होय रहा है, फूलनिके गुच्छे अर लता वृक्ष अनेक प्रकार के फूल रहे हैं, वनस्पतिकी परम शोभा होय रही है, ता समय सीता कछु गर्भ के भारकर दुर्बल शरीर भई। तब राम पूछते भए—हे कांते! तेरे जो अभिलाषा होय सो पूर्ण करूं। तब सीता कहती भई—हे नाथ! अनेक चैत्यालनिके दर्शन करिवे की मेरे वाछा है, भगवान् के प्रतिबिंब पाँचों वर्ण के लोक विषें मंगलरूप तिनकूं नमस्कार करिवेकूं मेरा मनोरथ है, स्वर्ण रत्नमई पुष्पनिकर जिनेन्द्र कूं पूजूं—यह मेरे महा श्रद्धा है, और कहा वांछू? ये सीता के वचन सुनकर राम हर्षित भए, फूल गया है मुख कमल जिनका, राजलोक विषें विराजते हुते सो द्वारपालोको बुलाय आज्ञा करी कि हे भद्र! मंत्रिनिकूं आज्ञा पहुंचावो जो समस्त चैत्यालयनि विषै प्रभावना करैं अर महेंद्रोदय नामा उद्यान विषें जे चैत्यालय हैं तिनकी शोभा करावें अर सर्व लोककूं आज्ञा पहुंचावो कि जिनमंदिर विषें पूजा प्रभावना आदि अति उत्सव कर अर तोरण ध्वजा

घंटा झालरी चंदोवा सायवान महामनोहर वस्त्रनिके बनावें तथा सुन्दर समस्त उपकरण देहुरा चढ़ावें, लोक समस्त पृथ्वीविषे जिन पूजा करें अर कैलाश सम्मेदशिखर पावापुर चंपापुर गिरनार शत्रुंजय मांगीतुंगी आदि निर्वाण क्षेत्रनि विषें विशेष शोभा करावो, कल्याणरूप दोहला सीताकूं उपज्या है सो पृथ्वी विषे जिनपूजा की प्रवृत्ति करहु, हम सीतासहित धर्मक्षेत्रनि विषें विहार करेंगे।

यह राम की आज्ञा सुन वह द्वारपाली अपनी ठौर अन्यकूं राख कर मंत्रीनिकूं आज्ञा पहुंचावती भई अर वे स्वामी की आज्ञा-प्रमाण अपने किंकरनिकूं आज्ञा करते भए। सर्व चैत्यालयनि विषे शोभा कराई अर महा पर्वतों की गुफा के द्वार पूर्ण कलश थापे, मोतिनिके हारनिकर शोभित अर विशाल स्वर्ण की भीतिविषें मणिनिके चित्राम रचे, महेंद्रोदय नामा उद्यान की शोभा नंदन वनकी शोभा के समानकर अत्यन्त निर्मल शुद्ध-मणिनिके दर्पण थंभविषे थापे अर झरोखनिके मुख विषे निर्मल मोतिनिके हार लटकाए सो जल नीझरना समान सोहै अर पाच प्रकार के रत्ननिका चूर्णकरि भूमि मंडित करी अर सहसदल कमल तथा नाना प्रकार के कमल तिनकर शोभा करी अर पांच वर्णके मणिनिके दंड तिनविषें महासुन्दर वस्त्रनिकी ध्वजा लगाय मंदिरनि के शिखर पर चढाई अर नाना प्रकार के पुष्पनिकी माला जिनपर भ्रमर गुंजार करें, ठौर २ लुंबाई हैं अर विशाल वादित्रशाला नाट्यशाला अनेक रची हैं तिनकर वन अति शोभै है मानो नंदन वन ही है। तब श्रीरामचन्द्र इन्द्र समान नगर के लोकनिकर युक्त समस्त राजलोक-निसहित वन विषे पधारे। सीता अर आप गज पर आरूढ कैसे सोहैं जैसे शची सहित इन्द्र ऐरावत गज पर चढे सोहै अर लक्ष्मण भी परम ऋद्धिकूं धरे वन विषें जाते भए अर और हू सब लोक आनन्द सूं वनविषै गए अर सबनिकूं अन्न-पान वनहीविषें भया। जहाँ महामनोज्ञ लतानिके मंडप अर केलिके वृक्ष तहां रानी तिष्ठी अर और हू लोक यथायोग्य वन विषे तिष्ठे। राम हाथीतें उतरकर निर्मल जल का भरा जो सरोवर, नानाप्रकार के कमलनिकर संयुक्त, उसविषे रमते भए जैसे इन्द्र क्षीरसागर विषें रमैं, तहाँ क्रीड़ा कर जलतें बाहिर आए। दिव्य सामग्रीकर विधिपूर्वक सीता-सहित जिनेन्द्रकी पूजा करते भए, राम महा सुन्दर अर वनलक्ष्मी समान जे वल्लभा तिनकर मंडित ऐसे सोहते भए मानों मूर्तिवन्त वसन्त ही है। आठ हजार रानी देवांगना—समान तिनके सहित राम ऐसे सोहैं मानों ये तारानि कर मण्डित चन्द्र ही हैं। अमृत का आहार अर सुगंध का विलेपन, मनोहर सेज, मनोहर आसन, नाना प्रकार के सुगन्ध माल्यादिक, स्पर्श रस गन्ध रूप शब्द पांचों इंद्रियनिके विषय अति मनोहर रामकूं प्राप्त भए। जिनमन्दिरविषें भली विधिसे नृत्य पूजा करी। पूजा प्रभावना विषें राम के अति अनुराग होता भया। सूर्यहूतें

अधिक तेज के धारक राम देवांगना-समान सुन्दर जे दारा तिन सहित कैयक दिन सुख से वन विषें तिष्ठे।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ ताकी भाषा वचनिका विषें सीताकूं जिनेन्द्रपूजा की अभिलाषा अर गर्भका प्रादुर्भाव वर्णन करनेवाला पिचानवैंवां पर्व पूर्ण भया ।।९५।।

छियानवैंवां पर्व

(सीताका लोकापवाद और रामके चिन्ता)

अथानंतर प्रजाके लोक रामके दर्शनकी अभिलाषा कर वनही विषें आए जैसें तिसाए पुरुष सरोवरविषें आवें। तब बाहिरले दरबानने लोकों के आवनेका वृत्तांत द्वार-पालियोंसूं कह्या। वे द्वारपाली भीतर राजलोक में रामसूं जायकर कहती भई कि हे प्रभो! प्रजा के लोक आपके दर्शनकूं आए हैं। अर सीता के दाहिनी आंख फरकी, तब सीता विचारती भई कि यह आंख मुझे क्या कहै है? कछु दुःखका आगमन बतावै है। आगे अशुभके उदयकरि समुद्रके मध्यविषें दुःख पाए तौ हू दुष्ट कर्म संतुष्ट न भया, क्या और भी दुःख दिया चाहै है? जो इस जीव ने रागद्वेष के योगकर कर्म उपार्जे हैं तिनका फल ये प्राणी अवश्य पावै है, काहूकर निवारा न जाय। तब सीता चिंतावती होय और राणीनिसूं कहती भई–मेरी दाहिनी आंख फड़कनेका फल कहो। तब एक अनुमति नामा रानी महा प्रवीण कहती भई–हे देवी! या जीव ने जे कर्म शुभ अथवा अशुभ उपार्जे हैं वे या जीवके भले-बुरे फलके दाता हैं, कर्महीकूं काल कहिए अर विधि कहिए, ईश्वर भी कहिए। सब संसारी जीव कर्मनिके आधीन हैं, सिद्ध परमेष्ठी कर्मनिसूं रहित हैं।

बहुरि गुण-दोष की ज्ञाता रानी गुणमाला सीताकूं रुदन करती देख धैर्य बंधाय कहती भई–हे देवी! तुम पति के सबनिविषें श्रेष्ठ हो, तुमकूं काहू प्रकार का दुःख नाहीं। अर और रानी कहती भई कि बहुत विचार कर कहा? शांति कर्म करो, जिनेन्द्रका अभिषेक अर पूजा करावो अर किमिच्छक दान देवो–जाकी जो इच्छा होय सो ले जावो, दान पूजाकर अशुभ का निवारण होय है, तातैं शुभ कार्य कर अशुभकूं निवारो। या भांति इन्होंने कही। तब सीता प्रसन्न भई अर कही–योग्य है, दान पूजा अभिषेक अर तप ये अशुभ के नाशक हैं। दान धर्म विघ्नका नाशक अर वैरका नाशक है, पुण्यका अर यशका मूलकारण है, यह विचारकर भद्रकलश नामा भंडारीकूं बुलायकर कही–मेरे प्रसूति होय तौलग किमिच्छकदान निरंतर देवो। तब भद्रकलश ने कही–जो आज्ञा करोगी सो ही होयगा। यह कहकर भंडारी गया। अर यह जिनपूजादि शुभक्रियाविषें प्रवर्त्ती, जितने भगवान् के चैत्यालय हैं तिन विषें नाना प्रकार के उपकरण चढ़ाए अर सब चैत्या-लयनिविषें अनेक प्रकारके वादित्र बजवाए मानों मेघ ही गाजें हैं अर भगवान्के चरित्र

पुराण आदिक ग्रंथ जिनमदिर निविषे पधराए अर दूध दही घृत जल मिष्टान्नके भरे कलश अभिषेककूं पठाए। अर खोजाओं विषे प्रधान जो खोजा सो वस्त्राभूषण पहरे हाथी चढ़ा नगर विषे घोषणा फेरै कि जाकूं जो इच्छा होय सोही लेवो। या भाँति विधि पूर्वक दान पूजा उत्सव कराए, लोक पूजा दान तप आदि विषे प्रवर्ते, पाप बुद्धिरहित समाधान को प्राप्त भए। सीता शांतचित्त धर्मविषे अनुरक्त भई अर श्रीरामचन्द्र मण्डप विषे आय तिष्ठे। द्वारपाल ने जे नगरी के लोक आए हुते ते रामसे मिलाए। स्वर्ण रत्नकर निर्मापित अद्भुत सभाकूं देख प्रजा के लोक चकित होय गए, हृदयकूं आनन्द के उपजावनहारे राम तिनकूं देखकर नेत्र प्रसन्न भए। प्रजा के लोक हाथ जोड़ नमस्कार करते भए, कांपै है तन जिनका अर डरै है मन जिनका। तब राम कहते भए-हे लोको ! तिहारे आगमनका कारण कहो। तब विजय, सुराजि, मधुमान, वसुलो, धर, कश्यप, पिंगल, काल, क्षेम इत्यादि नगर के मुखिया मनुष्य निश्चल होय चरणनिकी तरफ चौके। गल गया है गर्व जिनका, राजतेज के प्रतापकरि कछु कह न सके। यद्यपि चिरकाल में सोच २ कहा चाहैं तथापि इनके मुखरूप मदिर से वाणीरूप वधू न निकसे। तब राम ने बहुत दिलासा कर कही-तुम कौन अर्थ आए हो सो कहो। या भाँति कही तो भी वे चित्राम कैसे होय रहे, कछु न कहैं, लज्जारूप फांसकर बन्धा है कंठ जिनका अर चलायमान हैं नेत्र जिनके, जैसे हिरणके बालक कूं व्याकुल चित्त देखें तैसे देखे। तब तिन विषे मुख्य विजयनामा पुरुष, चलायमान है शब्द जिस का सो कहता भया—हे देव ! अभयदान का प्रसाद होय। तब राम ने कही—तुम काहू बात का भय मत करहु, तिहारे चित्तविषै जो होय सो कहो, तिहारा दुःख दूर कर तुमको साता उपजाऊंगा, तिहारे औगुन न लूंगा, गुण ही लूंगा, जैसे मिले हुए दूध जल तिनमें हंस जल टार दूध ही पीवै है। श्रीराम ने अभयदान दिया तो भी अति कष्ट से विचार २ धीरे स्वरकर विजय हाथ जोड़ सिर नवाय कहता भया—हे नाथ नरोत्तम ! एक विनती सुनो। अब सकल प्रजा मर्यादा-रहित प्रवर्तें है। यह लोक स्वभाव ही से कुटिल हैं अर एक दृष्टांत प्रगट पावे तब इनकूं अकार्य करने विषै कहा भय ? जैसे वानर सहज ही चपल है अर महाचपल जो यन्त्रपिंजरा उसपर चढ़ा तब कहा कहना ? निर्बलो की यौवनवती स्त्री पापी बलवंत छिद्र पाय बलात्कार हरैं हैं अर कोई-यक शीलवंती विरह कर पराए घर अत्यन्त दुःखी होय हैं तिनकूं कैयक सहाय पाय अपने घर ले आवे हैं सो धर्मकी मर्यादा जाय है, यह न जाय सो यत्न करहु, प्रजाके हित की वांछा करहु, जिस विधि प्रजा का दुःख टरै सो करहु। या मनुष्य लोक विषैं तुम बड़े राजा हो, तुम समान और कौन ? तुम ही जो प्रजाकी रक्षा न करोगे तो कौन करेगा ? नदियों के तट तथा वन उपवन कूप वापिका सरोवर के तीर ग्राम ग्राम विषैं घर घर

विषें सभा विषें एक यही अपवाद की कथा है कि रावण सीता कूं हर ले गया, ताहि राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम सर्वशास्त्र विषें प्रवीण सो घर विषे ले आए तब औरनिकूं कहा दोष है। जो बड़े पुरुष करैं सो सब जगत्‌कूं प्रमाण है, जिस रीति राजा प्रवर्ते उसही रीति प्रजा प्रवर्ते। "यथा राजा तथा प्रजा" यह वचन है, या भांति दुष्टचित्त निरंकुश भए पृथ्वीविषे अपवाद करें हैं, तिनका निग्रह करहु। हे देव! आप मर्यादा के प्रवर्तक पुरुषोत्तम हो, एक यही अपवाद तिहारे राज्य विषें न होता तो तिहारा यह राज्य इन्द्र से भी अधिक होता। यह वचन विजयके सुनकर क्षणएक रामचन्द्र विषादरूप मुद्गरके मारे चलायमान चित्त होय गए, चित्त विषें चितवते भए–यह कौन कष्ट उपज्या, मेरा यशरूप कमलों का वन अपयशरूपी अग्नि कर जलने लाग्या है, जिस सीता के निमित्त मैं विरह का कष्ट सहा सो मेरे कुलरूप चन्द्रमाकूं मलिन करै है, अयोध्याविषें मैं सुख के निमित्त आया अर सुग्रीव हनुमानादिक से मेरे सुभट सो मेरे गोत्ररूप कुमुदनीकूं यह सीता मलिन करै है, जिसके निमित्त मैंने समुद्र तिर रण संग्राम कर रिपुकूं जीत्या सो जानकी मेरे कुलरूप दर्पण को कलुषित करै है अर लोक कहैं हैं सो सांच है, दुष्ट पुरुष के घर विषे तिष्ठी सीता मैं क्यों लाया अर सीता से मेरा अति प्रेम जिसे क्षणमात्र न देखूं तो विरह कर अकुलाता रहूं। अर वह पतिव्रता मोसे अनुरक्त उसे कैसे तजूं, जो सदा मेरे नेत्र अर उर विषे बसै ऐसी महा गुणवती निर्दोष सीता सती उसे कैसे तजूं? अथवा स्त्रियों के चित्तकी चेष्टा कौन जाने जिनविषें सब दोषों का नायक मन्मथ बसै है, धिक्कार स्त्री के जन्मकूं! सर्व दोषों की खान, आतापका कारण, निर्मल कुलविषें उपजे पुरुषोंकूं कर्दम-समान मलिनता का कारण है। अर जैसें कीच विषे फंसा मनुष्य तथा पशु निकल न सके तैसे स्त्री के रागरूप पंक विषे फसा प्राणी निकस न सके। यह स्त्री समस्त बल का नाश करणहारी है अर राग का आश्रय है अर बुद्धिकूं भ्रष्ट करै है अर सत्यतें पटकनेकूं खाई समान है, निर्वाण सुखकी विघ्न करणहारी, ज्ञान उत्पत्तिकूं निवारणहारी, भव भ्रमण का कारण है, भस्मसे दबी अग्निके समान दाहक है, डाभकी सूई समान तीक्ष्ण है, देखने मात्र मनोज्ञ परंतु अपवादका कारण ऐसी सीता उसे मैं दुःख दूर करिवे निमित्त तजूं जैसे सर्प कांचलीकूं तजै। फिर जिस कर मेरा हृदय तीव्र स्नेह के बन्धन कर वशीभूत सो कैसे तजी जाय? यद्यपि मैं स्थिर हूं तथापि यह जानकी निकटवर्तिनी अग्नि की ज्वाला-समान मेरे मनकूं आताप उपजावै है अर यह दूर रही भी मेरे मनकूं मोह उपजावै जैसें चन्द्ररेखा दूर ही से कुमुदनीकूं विकसित करै। एक ओर लोकापवाद का भय अर एक ओर सीताके दुर्निवार स्नेह का भय अर रागकर विकल्पके सागर विषें पड्या हूं। अर सीता सर्व प्रकार देवांगना से भी श्रेष्ठ महापतिव्रता सती शीलरूपणी मोसूं सदा

एकचित्त उसे कैसे तजूं ? अर जो न तजूं तो अपकीर्ति प्रगट होय है, इस पृथ्वी विषैं मोसमान और दीन नाहीं, स्नेह अर अपवाद का भय उस विषै लाग्या है मन जिसका, दोनों की मित्रता का तीव्र विस्तार वेगकर वशीभूत जो राम सो अपवादरूप तीव्रकष्टकूं प्राप्त भए, सिंह की है ध्वजा जिनके ऐसे राम तिनकूं दोनों बातों की प्रति आकुलतारूप चिंता असाताका कारण दुस्सह आताप उपजावती भई जैसे जेष्ठ के मध्यान्ह का सूर्य दुस्सह दाह उपजावै ।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिका विषैं रामकूं लोकापवाद की चिन्ता का वर्णन करने वाला छियानवेंवां पर्व पूर्ण भया ।।६६।।

सत्तानवौवां पर्व

(लोकापवाद के भय से सीता का परित्याग और सीता का वन मे विलाप)

अथानन्तर श्रीराम एकाग्र चित्त कर द्वारपालकूं लक्ष्मण के बुलवाने की आज्ञा करते भए सो द्वारपाल लक्ष्मणपै गया, आज्ञा-प्रमाण तिनकूं कहा । लक्ष्मण द्वारपाल के वचन सुनकर तत्काल तुरंगपर चढि रामके निकट आया । हाथ जोड़ नमस्कार कर सिंहासनके नीचे पृथ्वीपर बैठा, रामके चरणो की ओर है दृष्टि जाकी, राम उठकर आधे सिंहासन पर ले बैठे, शत्रुघ्न आदि सब ही राजा अर विराधित आदि सब ही विद्याधर यथायोग्य बैठे । पुरोहित श्रेष्ठी मन्त्री सेनापति सब ही सभा में तिष्ठे । तब क्षणएक विश्रामकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसूं लोकापवाद का वृत्तांत कहा, सुनकर लक्ष्मण के क्रोधकर लाल नेत्र भए अर योधाओंकूं आज्ञा करी कि अबार मैं उन दुर्जनो के अन्त करिवेकूं जाऊंगा, पृथ्वीकूं मृषावादरहित करूंगा । जे मिथ्या वचन कहै हैं तिनकी जिह्वा छेद करूंगा । उपमारहित जो शीलव्रत की धारणहारी सीता, वाकी जे निन्दा करैं हैं तिनका क्षय करूंगा । या भांति लक्ष्मण महा क्रोधरूप भए, नेत्र अरुण होय गए । तब श्रीराम इन वचनों से शांत करते भए- हे सौम्य ! यह पृथ्वी सागरां पर्यंत जाकी श्रीऋषभदेव ने रक्षा करी, बहुरि भरत ने प्रतिपालना करी अर इक्ष्वाकुवंश के तिलक बड़े बड़े राजा जिनकी पीठ रण में रिपुओं ने न देखी, जिनकी कीर्तिरूप चान्दनी से यह जगत् शोभित है सो अपने वंश विषैं अनेक यशके उपजावनहारे भए । अब मैं क्षणभंगुर पापरूप रागके निमित्त यशकूं कैसे मलिन करूं, अल्प भी अकीर्ति जो न टारिए तो वृद्धिकूं प्राप्त होय । अर उन नीतिवान् पुरुषों की कीर्ति इंद्रादिक देवोंसूं गाइए है । ये भोग विनाशीक तिनसे कहा जिनसे अकीर्तिरूप अग्नि कीर्तिरूप वनकूं बालै । यद्यपि सीता सती शीलवंती निर्मल चित्त है तथापि इसको घर विषै राखे मेरा अपवाद न मिटै । यह अपवाद शस्त्रादिक से हता न

जाय। यद्यपि सूर्य कमलों के वन का प्रफुल्लित करणहारा है, अति तिमिर का हरणहारा है तथापि रात्रि के होते सूर्य अस्त होय है तैसे अपवादरूप रज महा विस्तारकूं प्राप्त भई तेजस्वी पुरुषों की कांतिकी हानि करै है सो यह रज निवारनी चाहिए। हे भ्रात! चंद्रमा-समान निर्मल हमारा गोत्र अकीर्तिरूप मेघमालासूं आच्छादा जाय है सो न आच्छादा जाय यही मेरे यत्न है। जैसें सूके ईंधन के समूहविषै लगी आग जलसूं बुझाए बिना वृद्धिकूं प्राप्त होय है तैसे अकीर्तिरूप अग्नि पृथ्वी विषै विस्तरै है सो निवारे बिना न मिटै। यह तीर्थंकर देवों का कुल महा उज्ज्वल प्रकाशरूप है, याकूं कलंक न लगे सो उपाय करहु। यद्यपि सीता महा निर्दोष शीलवती है तथापि मैं तजूंगा, अपनी कीर्ति मलिन न करूंगा। तब लक्ष्मण कहता भया, कैसा है लक्ष्मण? राम के स्नेह विषैं तत्पर है बुद्धि जाकी। हे देव! सीताकूं शोक उपजावना योग्य नाही, लोक तो मुनियो का भी अपवाद करैं हैं, जिनधर्म का अपवाद करैं हैं, तो क्या लोकापवाद से धर्म तजिए है? तैसे लोकापवादमात्रसूं जानकी कैसे तजिए, जो सब सतियों के सीस विराजै है, काहू प्रकार निंदाके योग्य नाही। अर पापी जीव शीलवंत प्राणियोंको निन्दा करै हैं,क्या तिनके वचन से शीलवंतोंकूं दोष लागै है? वे निर्दोष ही हैं। ये लोक अविवेकी हैं, इनके वचन विषै परमार्थ नाही, विष कर दूषित हैं नेत्र जिनके वे चंद्रमाकूं श्यामरूप देखैं हैं परन्तु चन्द्रमा श्वेत ही है, श्याम नाही। तैसे लोकों के कहे निष्कलंकियोंकूं कलंक नाही लागै है। जे शीलसे पूर्ण हैं तिनकूं अपना आत्मा ही साक्षी है, पर जीवनिका प्रयोजन नाहीं। नीच जीवनि के अपवादकरि पण्डित विवेकी क्षोभकू न प्राप्त होय जैसे श्वानके भौंकनेतें गजेन्द्र कोप नाही करै है। ये लोक विचित्रगति हैं, तरंगसमान है चेष्टा जिनकी, परदोष कथिवे विषैआसक्त सो इन दुष्टों का स्वयमेव ही निग्रह होयगा। जैसें कोई अज्ञानी शिलाकूं उपाड कर चंद्रमा की ओर बगाय (फेंक) बहुरि मारा चाहै सो सहज ही आप नि:सन्देह नाशकूं प्राप्त होय है। जो दुष्ट पराए गुणनिकूं न सह सकै अर सदा पराई निंदा करै है सो पापकर्मी निश्चय सेती दुर्गतिकूं प्राप्त होय है। जब ऐसे वचन लक्ष्मण ने कहे तब श्रीरामचंद्र कहते भए—हे लक्ष्मण! तु कहै है सो सब सत्य है, तेरी बुद्धि रागद्वेष रहित अति मध्यस्थ महा शोभायमान् है परन्तु जे शुद्ध न्यायमार्गी मनुष्य हैं वे लोकविरुद्ध कार्यकूं तजै हैं। जाकी दसों दिशा में अकीर्तिरूप दावानल की ज्वाला प्रज्वलित है, ताकूं जगत् में कहा सुख अर ताका कहा जीतव्य? अर अनर्थ का करणहारा जो अर्थ ताकरि कहा? अर विषकर संयुक्त जो औषधि ताकरि कहा? अर जो बलवान् होय जीवनिकी रक्षा न करै, शरणागतपालक न होय ताके बलकर कहा? अर जाकर आत्मकल्याण न होय ता आचारणकर कहा? चारित्र सोई जो आत्महित करै। अर जो अध्यात्म-

गोचर आत्माकूं न जाने ताके ज्ञान कर कहा ? अर जाकी कीर्तिरूप वधू अपवादरूप बलवान् हरै ताका जन्म प्रशस्त नाहीं, ऐसे जीववतें मरण भला। लोकापवाद की बात दूर ही रहो, मोहि यह महा दोष है जो पर पुरुष ने हरी सीता मैं बहुरि घर में ल्याया। राक्षस के भवन में उद्यान तहां यह बहुत दिन रही अर ताने दूती पठाय मनवांछित प्रार्थना करी अर समीप आय दुष्ट दृष्टि कर देखी, अर मनमें आए सो वचन कहे, ऐसी सीता मैं घर मे ल्याया, या समान और लज्जा कहा ?सो मूढों से कहा न होय? या संसार की मायाविषें मैं हू मूढ़ भया। या भाँति कह कर आज्ञा करी जो शीघ्र ही कृतांतवक्र सेनापतिकूं बुलावो। यद्यपि दो बालकनिके गर्भसहित सीता है तौ हू याहि तत्काल मेरे घरतें निकासो। यह आज्ञा करी तब लक्ष्मण हाथ जोड़ नमस्कार कर कहता भया–हे देव! सीताकूं तजना योग्य नाहीं। यह राजा जनककी पुत्री, महा शीलवती, जिन धर्मिणी, कोमल चरण कमल जाके, महा सुकुमार भोरी सदा सुखिया अकेली कहां जायगी ? गर्भ के भारकर संयुक्त परम खेदकूं धरे यह राजपुत्री तिहारे तजे कौन के शरण जायगी ? अर आपने देखवेकी कही सो देखवेकर कहा दोष भया। जैसे जिनराज के निकट चढ़ाया द्रव्य निर्माल्य होय है, ताहि देखिए है परन्तु दोष नाहीं। अयोग्य अभक्ष्य वस्तु आंखनिसू देखिये है परन्तु देखे दोष नाही, अंगीकार किए दोष है। तातें हे नाथ! मोपर प्रसन्न होहु, मेरी विनती सुनहु, महा निर्दोष सीता सती, तुम विषे एकाग्र है चित जाका, ताहि न तजो। तब राम अत्यंत विरक्त होय क्रोध में आय गए अर अप्रसन्न होय कही–लक्ष्मण, अब कछू न कहना, मैं यह अवश्य निश्चय किया। शुभ होवै अथवा अशुभ होवै, निमानुष वन जहा मनुष्य का नाम नाही सुनिए वहाँ द्वितीय सहायरहित अकेली सीताकूं तजहू। अपने कर्म के योगकरि जीवो अथवा मरो, एक क्षणमात्र हू मेरे देशविषे अथवा नगरविषें काहूके मंदिर विषें मत रहो। वह मेरी अपकीर्तिकी करणहारी है। कृतांत-वक्रकूं बुलाया सो चार घोड़े का रथ चढ़ा, बड़ी सेनासहित जाका वंदीजन विरद बखानै हैं, लोक जय जयकार करे हैं सो राजमार्ग होय आया। जापर छत्र फिरता अर धनुष चढाय बखतर पहिरे कुण्डल पहिरे, ताहि या विधि आवता देख नगरके नर नारी अनेक विकल्पकी वार्ता करते भए। आज यह सेनापति शीघ्र दौड़ा जाय है सो कौन पर विदा होयगा, आप कौन पर कोप भए हैं, आज काहू का कछू बिगाड़ है, ज्येष्ठके सूर्य-समान ज्योति जाकी, काल-समान भयंकर शस्त्रनिके समूहके मध्य चला जाय है सो आज न जानिए कौन पर कोप है। या भांति नगर के नर-नारी वार्ता करे हैं। अर सेनापति राम के समीप आया, स्वामीकूं सीस नवाय नमस्कार कर कहता भया–हे देव ! जो आज्ञा होय सो ही करूं।

तब राम ने कही-शीघ्र ही सीताकूं ले जावो अर मार्ग विषैं जिनमंदिरविका दर्शन कराय सम्मेदशिखर अर विर्वाणभूमि तथा मार्ग के चैत्यालय तहाँ दर्शन कराय वाको आशा पूर्ण कर अर सिंहनाद नामा अटवी जहाँ मनुष्य का नाम नाहीं तहाँ अकेली मेल उठ आवो। तब ताने कही जो आज्ञा होयगी सोहो होयगा अर जानकीपै जाय कही—हे माता! उठो, रथ विषै चढ़ो, चैत्यालयनिकी वाछा है सो करो। या भांति सेनापति वे मधुर स्वर कर हर्ष उपजाया। तब सीता रथ चढ़ी, चढ़ते समय भगवानकूं नमस्कार किया अर यह शब्द कहा जो चतुर्विध संघ जयवंत होवै। श्रीरामचन्द्र महाजिनधर्मी, उत्तम आचरण विषैं तत्पर सो जयवत होहु। अर मेरे प्रसाद से असुन्दर चेष्टा भई होय सो जिनधर्म के अधिष्ठाता देव क्षमा करहु। अर सखीजन लार भए, तिनसूं कही तुम सुख से तिष्ठो, मैं शीघ्र ही जिनचैत्यालयनिके दर्शनकर आऊं हूं, या भांति तिनसे कही। अर सिद्धनिकूं नमस्कार कर सीता आनन्द से रथ चढ़ी। सो रत्न स्वर्णका रथ तापर चढी ऐसी सोहती भई जैसी विमान चढी देवांगना सोहै। वह रथ कृतांतवक्र ने चलाया सो ऐसा शीघ्र चलाया जैसा जयकुमार ने भरत चक्रवर्ती का चलाया सो चलते समय सीताकूं अपशकुन भए, सूके वृक्ष पर काग बैठा विरस शब्द करता भया अर माथा धुनता भया अर सन्मुख सुनता महाशोककी भरी स्त्री सिरके बाल बिखरे रुदन करती भई इत्यादि अनेक अपशकुन भए, तो पण सीता जिनभक्ति विषै अनुरागणी निश्चल चित्त चली गई, अपशकुन न गिने। पहाडनिके शिखर कदरा अनेक वन उपवन उलंघकर शीघ्र ही रथ दूर होगया, गरुडसमान बेग जाका ऐसे अश्वनिकर युक्त, सफेद ध्वजाकर विराजित सूर्य के रथ समान रथ शीघ्र चला। मनोरथ-समान वह रथ तापर चढी राम को रानी इन्द्राणीसमान सो अति सोहती भई। कृतांतवक्र सारथी ने मार्गविषै सीताकूं नाना प्रकार की भूमि दिखाई, ग्राम नगर वन अर कमल से फूल रहे हैं सरोवर अर नाना प्रकार के वृक्ष, कहूँ सघन वृक्षनिकर वन अन्धकार रूप है. जैसें अंधेरी रात्रि मेघमालाकर मंडित महा अंधकाररूप भासै, कछू नजर न आवै अर कहूँ विरले वृक्ष हैं, सघनता नाहीं तहां कैसा भासै जैसा पचम काल में भरत ऐरावत क्षेत्रनिकी पृथ्वी विरले सत्पुरुषनिकरि सोहै। अर कहुं बनी पतझर होय गई है सो पत्ररहित पुष्प-फलादिरहित छायारहित कैसी दीखै जैसें बड़े कुल की विधवा स्त्री। भावार्थ-विधवा हू पुत्ररूपी पुष्प-फलादि रहित है अर आभरण तथा सुन्दर वस्त्रादिरहित अर कांतिरहित है, शोभारहित है सो तैसी बनी दीखै है। अर कहुंइक वनविषैं सुन्दर माधुरी लता आम्रके वृक्षसे लगी ऐसी सोहै है जैसी चपल वेश्या, आम्रसूं लगि अशोककी बांछा करै हैं। अर कैयक दावानलकर वृक्ष जर गए हैं सो नाहीं सोहै हैं जैसें हृदय क्रोधरूप दावानल करि जरा न सोहै। अर कहुंइकसुन्दर पल्लवनिके समूह मंद

पवनकर हालते सोहै हैं मानों वसंतराजके आयवेकर वनपक्तिरूप नारी आनन्द से नृत्य ही करै हैं। अर कहुंइक भीलनिके समूह तिनके जे कलकलाट शब्द कर मृग दूर भाग गए हैं अर पक्षी उड़ गए हैं अर कहुइक बनी, अल्प है जल जिनमें ऐसी नदी, तिन कर कैसी भासै है जैसी संतापकी भरी विरह की नायिका आँसुवनकर भरे नेत्र संयुक्त भासै। अर कहुंइक बनी नाना पक्षीनिके नाद कर मनोहर शब्द करै है अर कहुंइक नीझरनों के नादकरि शब्द करती तीव्रहास्य करै है। अर कहूइक मकरद अति लुब्ध जे भ्रमर तिनके गुंजार-करि मानों बनी वसंत नृपकी स्तुति ही करै है अर कहुइक बनी फूलनिकर नम्रीभूत भई शोभाकूं धरै है जैसें सफल पुरुष दातार नम्रीभूत भए सोहै हैं। अर कहुइक वायु कर हालते जे वृक्ष तिनकी शाखा हालै है अर पल्लव हालै हैं अर पुष्प पड़ै हैं सो मानो पुष्प-वृष्टि ही करै हैं। इत्यादि रीतिकू धरे अनेक क्रूर जीवनिकर भरी बनी ताहि देखती सीता चली जाय है, राम विषै है चित्त जाका, मधुर शब्द सुनकर विचारती भई मानों रामके दुन्दुभीबाजे बाजै हैं। या भांति चितवती सीता आगे गगा को देखती भई। कैसी है गंगा ? अति सुन्दर हैं शब्द जाके अर जाके मध्य अनेक जलचर जीव मीन मकर ग्रहादिक विचरै हैं, तिनके विचरिवेकरि उद्धत लहर उठै है तातैं कंपायमान भए हैं कमल जाविषै अर मूल से उपाडे हैं तीर के उतग वृक्ष जाने अर उखाडे हैं पर्वतनिके पाषाणों के समूह जाने, समुद्रकी ओर चली जाय है, अति गम्भीर है, उज्ज्वल कल्लोलोंकर शोभै है, झागों के समूह उठै हैं। अर भ्रमते जे भवर तिनकर महा भयानक है अर दोनो ढाहावों पर बैठे पक्षी शब्द करै हैं सो परम तेजके धारक रथके तुरग ता नदीको तिर पार भए, पवन समान है वेग जिनका, जैसैं साधु ससार समुद्रके पार होय। पार जाय सेनापति यद्यपि मेरुसमान अचल चित्त हुता तथापि दया के योगकर अति विषादकूं प्राप्त भया, महा दुःखका भरया कछू न कहि सकै। आंखिवितैं आसू निकल आए। रथकूं थांभ ऊंचे स्वरकर रुदन करने लगा, ढीला होय गया है अंग जाका, जाती रही है कांति जाकी। तब सीता सती कहती भई-हे कृतांतवक्र ! तू काहेकूं महादुःखी की न्याईं रोवै है, आज जिनवन्दना के उत्सवका दिन, तू हर्ष में विषाद क्यों करै है ? या निर्जन वनमें क्यों रोवै है। तब वह अति रुदन कर यथावत् वृतांत कहता भया। जो वचन विष-समान अग्नि-समान शस्त्र-समान है। हे मातः ! दुर्जननिके वचनतैं राम अकीर्तिके भय से जो न तजा जाय तिहारा स्नेह ताहि तजकर चैत्यालयनिके दर्शनकी तिहारे अभिलाषा उपजी हुती सो तुमकूं चैत्यालयोंके अर निर्वाणक्षेत्रों के दर्शन कराय भयानक वनविषैं तजी है। हे देवी ! जैसें यति रागपरण-तिकूं तजै तैसें रामने तुमकूं तजी है। अर लक्ष्मण ने जो कहिवेकी हद थी सो कही, कछू कमी न राखी, तिहारे अर्थि अनेक न्यायके वचन कहे परन्तु रामने हठ न छोड़ी। हे

स्वामिनी! राम तुमसे नीराग भए, अब तुमकूं धर्मही शरण है। सो या संसारविषैं न माता, न पिता, न भ्राता, न कुटुम्ब, एक धर्म ही जीव का सहाई है। अब तुमकूं यह मृगों का भरा वन ही आश्रय है। ये वचन सीता सुनकर वज्रपातकी मारी जैसी होय गई, हृदय विषैं दुःख के भारकर मूर्च्छाकूं प्राप्त भई। बहुरि सचेत होय गदगद वाणीसूं कहती भई-शीघ्र ही मोहि प्राणनाथसूं मिलावो। तब वाने कही—हे मातः! नगरी दूर रही अर राम का दर्शन दूर। तब अश्रुपातरूप जल की धारासूं मुख कमल प्रक्षालती हुई कहती भई कि हे सेनापति! तू मेरे वचन रामसूं कहियो कि मेरे त्याग का विषाद आप न करना, परम धैर्यकूं अवलंबनकर सदा प्रजा की रक्षा करना जैसे पिता पुत्र की रक्षा करै, आप महान्यायवंत हो अर समस्त कला के पारगामी हो। राजाकूं प्रजा ही आनन्द का कारण है। राजा वही जाहि प्रजा शरद की पूनोके चंद्रमाकी न्याईं चाहै। अर यह संसार असार है, महा भयंकर दुःखरूप है। जा सम्यग्दर्शनकर भव्य जीव संसारसूं मुक्त होवैं हैं सो तिहारे आराधिवे योग्य है, तुम राजतै सम्यग्दर्शनकू विशेष भला जानियो। यह सम्यग्दर्शन अविनाशी सुखका दाता है सो अभव्य जीव निंदा करैं तो उनकी निंदा के भय से हे पुरुषोत्तम! सम्यग्दर्शनकू कदाचित् न तजना, यह अत्यंत दुर्लभ है। जैसैं हाथ विषैं आया रत्न समुद्र विषै डालिए तो बहुरि कौन उपायसूं हाथ आवै अर अमृतफल अंधकूप मैं डारचा कैसे मिलै। जैसे अमृत फलकूं डाल बालक पश्चाताप करै तैसे सम्यग्दर्शन से रहित हुवा जीव विषाद करै है। यह जगत् दुर्निवार है, जगत् का मुख बंद करवेकूं कौन समर्थ? जाके मुखमे जो आवै सो ही कहै है। तातैं जगत् की बात सुनकर जो योग्य होय सो करियो। लोक गडलिका प्रवाह है सो अपने हृदयविषैं हे गुणभूषण! लौकिक वार्ता न धरणो। अर दानसूं प्रीति के योगकरि प्रजाजनोकूं प्रसन्न रखना अर विमल स्वभाव कर मित्रोंकूं वश करना अर साधु तथा आर्यिका आहारकूं आवें तिनकूं प्राशुक अन्नसूं अति भक्ति कर निरतर आहार देना अर चतुर्विध संघ की सेवा करनी, मन वचन कायकरि मुनिकूं प्रणाम पूजन अर्चनादि करि शुभ कर्म उपार्जन करना अर क्रोधकूं क्षमाकरि, मनकूं निर्गर्वताकरि, मायाकूं निष्कपटताकरि, लोभकूं संतोषकरि जीतना। आप सर्व शास्त्र विषैं प्रवीण हो सो हम तुमकूं उपदेश देनेकूं समर्थ नाहीं, क्योंकि हम स्त्रीजन हैं। आपकी कृपा के योगकरि कभी कोई परिहास्य करि अविनय भरा वचन कहा हो तो क्षमा करियो। ऐसा कहकर रथसूं उतर अर तृण पाषाणकर भरी जो पृथ्वी उसमें अचेत होय मूर्च्छा खाय पड़ी सो जानकी भूमि विषैं पड़ी ऐसी सोहती भई मानों रत्नोंकी राशि ही पड़ी है। कृतांतवक्र सीताकूं चेष्टारहित मूर्च्छित देख महा दुःखी भया अर चित्त विषैं चितवता भया—हाय यह महा भयानक वन, अनेक दुष्ट जीवोंकरि भरचा, जहाँ जे महा धीर शूर-

वीर होंय तिनके भी जीवनेकी आशा नाहीं तो यह कैसे जीवेगी ? इसके प्राण बचना कठिन है, इस महासती माताकूं मैं अकेली वन विषे तजकर जाऊं हूं सो मुझ समान निर्दई कौन ? मुझे किसी प्रकार भी किसी ठौर शांति नहीं। एक तरफ स्वामी की आज्ञा अर एक तरफ ऐसी निर्दयता। मैं पापी दुःख के भंवर विषे पड़ा हूं, धिक्कार पराई सेवाकूं जगत् विषें पराधीनता निंद्य है, जो स्वामी कहे सो ही करना पड़े। जैसे यंत्रकूं यंत्री बजावै त्योंही बाजे सो पराया सेवक यंत्र तुल्य है अर चाकरसूं कूकर भला जो स्वाधीन आजीविका पूर्ण करै है। जैसें पिशाचके वश पुरुष ज्यों वह बकावै त्यों बकै, तैसें नरेन्द्रके वश नर वह जो आज्ञा करै सो करै, चाकर क्या न करै अर क्या न कहै। अर जैसें चित्राम का धनुष निष्प्रयोजन गुण कहिये फिणचकूं धरै है सदा नम्रीभूत है, तैसें पर किंकर निष्प्रयोजन गुणकूं धरै है,सदा नम्रीभूत है. धिक्कार है किंकरका जीवना. पराई सेवा करना तेज रहित होना है। जैसे निर्माल्य वस्तु निंद्य है तैसे परकिंकरता निंद्य है। धिक्‌धिक् पराधीन के प्राण धारणकूं, यह पराधीन पराया किंकर टीकलो समान है, जैसे टीकलो परतंत्र होय कूप का जीव कहिए जल हरै है तैसे यह परतंत्र होय पराए प्राण हरै है। कभी भी चाकर का जन्म मत होवै, पराया चाकर काठकी पुतली समान है, ज्यों स्वामी नचावै त्यों नाचै। उच्चता उज्ज्वलता लज्जा अर कांति तिनसे पर-किंकर रहित है, जैसें विमान पराए आधीन है, चलाया चालै, थमाया थमै, ऊंचा चलावै तो ऊंचा चढै, नीचा उतारै तो नीचा उतरै। धिक्कार पराधीन के जीतव्यकूं जो निर्मल अपने शीसकूं बेचनहारा महालघु अपने आधीन नाहीं, सदा परतंत्र। धिक्कार किंकरके प्राण धारणकूं, मैं पराई चाकरी करी अर परवश भया तो ऐसे पाप कर्मकूं करूं हूं जो इस निर्दोष महासतीकूं अकेली भयानक वन विषें तजकर जाऊं हूं। हे श्रेणिक ! जैसे कोई धर्मकी बुद्धिकूं तजै तैसे वह सीताकूं वन विषें तजकर अयोध्याकूं सन्मुख भया अति लज्जावान होकर चाल्या। सीता याके गए पाछे केतीक बार में मूर्च्छासे सचेत होय महादुःख की भरी यूथ-भ्रष्ट मृगी की न्याईं विलाप करती भई सो याके रुदनकर मानों सब ही वनस्पति रुदन करें हैं, वृक्षनिके पुष्प पड़े हैं सोई मानों आसू भए। स्वतः स्वभाव महारमणीक याके स्वर तिनकर महा शोक की भरी विलाप करती भई—हाय कमलनयन राम नरोत्तम, मेरी रक्षा करहु, मोहि वचनालाप करहु। अर तुम तो निरंतर उत्तम चेष्टाके धारक हो, महागुणवंत शांत चित्त हो, तिहारा लेशमात्र हू दोष नाही, तुम तो पुरुषोत्तम हो, मैं पूर्व भव विषें जो अशुभ कर्म किए थे तिनके फल पाए, जैसा करना तैसा भोगना ? कहा करे भर्तार अर कहा करै पुत्र तथा माता पिता बांधव कहा करे?अपना कर्म अपने उदय आवै सो अवश्य भोगना। मैं मन्दभागिनी पूर्व जन्म विषें अशुभ कर्म किए ताके फलतै या निर्जन वन विषें दुःखकूं प्राप्त

भई। मैं पूर्व भव विषें काहू का अपवाद किया, परनिंदा करी होगी, ताके पापकरि यह कष्ट पाया। तथा पूर्व भवविषें गुरुनिके समीप व्रत लेकर भग्न किया ताका यह फल पाया। अथवा विषफल समान जो दुर्वचन तिनकर काहूका अपमान किया तातें यह फल पाए। अथवा मैं परभवविषें कमलनिके वनविषें तिष्ठता चकवा-चकवी युगल विछोया किया तातें मोहि स्वामीका वियोग भया। अथवा मैं परभव विषें कुचेष्टाकर हंस-हंसिनी का युगल विछोड़ा। जे २ कमलनिकर मंडित सरोवरमें निवास करणहारे अर बड़े २ पुरुषनिकूं जिनकी चालकी उपमा दीजे अर जिनके वचन अति सुन्दर, जिनके चरण चोंच लोचन कमल समान अरुण सो मैं विछोड़े तिनके दोषकरि ऐसी दुःख अवस्थाकूं प्राप्त भई। अथवा मैं पापिनी कबूतर-कबूतरी के युगल विछोडे, तिनके लालनेत्र आधिचिरमें समान अर परस्पर जिन विषें अतिस्नेह अर कृष्णागुरु समान जिनका रंग अथवा श्याम घटा-समान अर धूम्र-समान धूसरे, आरंभी है मुख से क्रीडा जिन्होंने अर कंठविषें तिष्ठै है मनोहर शब्द जिनके सो मैं पापिनी जुदे किए अथवा भले स्थानसूं बुरे स्थान में मेले अथवा बांधे मारे, ताके पाप करि असंभाव्य दुःख मोहि प्राप्त भया। अथवा वसंत के समय फूले वृक्ष तिन विषें केलि करते कोकिली के युगल महामिष्ट शब्द के करणहारे परस्पर भिन्न भिन्न किए, ताका यह फल है। अथवा ज्ञानी जीवनिके वंदिवे योग्य महाव्रती जितेंद्रिय महा मुनि तिनकी निंदा करी अथवा पूजा दानविषें विघ्न किया अर परोपकार-विषें अंतराय किया, हिंसादिक पाप किए, ग्रामदाह, वनदाह, स्त्री बालक पशु घात इत्यादि पाप किए तिनका यह फल है। अनछाना पानी पीया, रात्रिकूं भोजन किया, बींधा अन्न भखा, अभक्ष्य वस्तु का भक्षण किया, न करिवे योग्य काम किए, तिनका यह फल है। मैं बलभद्र की पटरानी, स्वर्ग समान महल की निवासिनी, हजारां सहेली मेरी सेवाकी करणहारी, सो अब पापके उदयकरि निर्जन वन विषें दुःखके सागर विषें डूबी कैसें तिष्ठूं? रत्ननिके मंदिरविषें महा रमणीक वस्त्र तिनकर शोभित सुन्दर सेजपर शयन करणहारी मैं कहाँ पड़ी हूं, सब सामग्री करि पूर्ण महा रमणीक महलविषें रहनहारी मैं अब कैसे अकेली वनका निवास करूंगी? महा मनोहर बीण बांसुरी मृदंगादिके मधुर स्वर तिनकर सुख निद्रा की लेनहारी मैं कैसे भयंकर शब्दकर भयानक वन विषें अकेली तिष्ठूंगी। रामदेवकी पटराणी अपयशरूपी दावानल कर जरी महादुःखिनी एकाकिनी पापिनी कष्ट का कारण जो वन जहां अनेक जातिके कीट अर करकश डाभकी अणी अर कांकरनिसे भरी पृथ्वी याविषें कैसें शयन करूंगी? ऐसी अवस्था भी पायकर मेरे प्राण न जांय तो ये प्राण ही वज्रके हैं। अहो ऐसी अवस्था पायकरि मेरे हृदयके सौ टूक न होय हैं सो वह वज्र का हृदय है। कहा करूं, कहाँ जाऊं, कौनसूं कहा कहूँ, कौनके आश्रय तिष्ठूं? हाय

गुणसमुद्र राम ! मोहि क्यों तजी ? हे महाभक्त लक्ष्मण ! मेरी क्यों न सहाय करी। हाय पिता जनक ! हाय माता विदेही ! यह क्या भया ? अहो विद्याधरनिके स्वामी भामंडल ! दुःख के भंवर पड़ी कैसे तिष्ठूं ? मैं ऐसी पापिनी जो मो सहित पतिने परम संपदाकर जिनेंद्र का दर्शन अर्चन चित्या था सो मोहि इस बनी विषैं डारी।

हे श्रेणिक ! या भाँति सीता सती विलाप करै है। अर राजा वज्रजंघ पुंडरीकपुर का स्वामी हाथी पकड़िवे निमित्त वनमें आया था सो हाथी पकड़ बड़ी विभूतिसे पाछे जाय था सो ताकी सेनाके पियादे शूर वीर कटारी आदि नाना प्रकारके शस्त्र धरे कमर बांधे आय निकले सो याके रुदन के मनोहर शब्द सुनकर संशयकूं अर भयकूं प्राप्त भए, एक पैंड भी न जाय सके। अर तुरंगनीके सवार हू ताका रुदन सुन खड़े होय रहे, उनको यह आशंका उपजी जो या वन विषैं अनेक दुष्ट जीव तहाँ यह सुन्दर स्त्री के रुदन का नाद कहां होय है ? मृग सुसा रोझ सांप रीछ स्याली बघरा आरणे भैंसे चीता गेंडा शार्दूल अष्टापद वनशूकर गज तिनकर विकराल यह वन ताविषै यह चद्रकला-समान महामनोज्ञ कौन रोवै है ? यह कोई देवांगना सौधर्म स्वर्ग से पृथ्वी विषै आई है। यह विचारकर सेना के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त होय खड़े रहे। अर वह सेना समुद्र समान, जिसमें तुरंग ही मगर अर पियादे मीन अर हाथी ग्राह हैं। समुद्र भी गाजै अर सेना भी गाजै है अर समुद्र में लहर उठै हैं अर सेना में सूर्य की किरणकरि शस्त्रों की जोति उठै है, समुद्र भी भयंकर है अर सेना भी भयंकर है, सो सकल सेना निश्चल होय रही है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिकाविषैं सीता का वन विषैं विलाप अर वज्रजंघ का आगमन वर्णन करने वाला सत्तानवेंवां पर्वपूर्ण भया ॥९७॥

अट्ठानवैंवां पर्व

(वन में वज्रजंघ का आगमन और सीता को आश्वासन)

अथानन्तर जैसी महाविद्या की थांभी गंगा थभी रहै, तैसें सेनाकूं थंभा देख राजा वज्रजंघ निकटवर्ती पुरुषोंकूं पूछता भया कि सेनाके थंभने का कारण क्या है ? तब वे निश्चयकर राजपुत्रीके समाचार कहते भए। उससे पहले राजा ने भी रुदन के शब्द सुने, सुनकर कहता भया, जिसका यह मनोहर रुदनका शब्द सुनिये सो कहो कौन है ? तब कई एक अग्रेसर होय जायकर पूछते भए—हे देवी ! तू कौन है अर इस निर्जन वन विषैं क्यों रुदन करै है, तो समान कोऊ और नाहीं, तू देवी है अक नागकुमारी है अक कोई उत्तम नारी है ? तू महा कल्याणरूपिणी, उत्तम शरीरकी धरणहारी, तोहि यह शोक कहा ? हमकूं यह बड़ा कौतुक है। तब यह शस्त्रधारक पुरुषकूं देख त्रासकूं प्राप्त भई, कांपै है शरीर जाका, सो भयकरि उनको अपने आभरण उतार करि देने लगी। तब वे

स्वामी के भयकरि यह कहते भए—हे देवी ! तू क्यों डरै है, शोकक् तज, धीरता भज। आभूषण हमकूं काहेकूं देवै है, तेरे ये आभूषण तेरे ही रहो, ये तोहि योग्य हैं। हे माता! तू विह्वल क्यों होय है, विश्वास गह। यह राजा वज्रजंघ पृथ्वी विषे प्रसिद्ध महा नरोत्तम राजनीति कर युक्त है अर सम्यग्दर्शनरूप रत्नभूषणकरि शोभित है। कैसा है सम्यग्दर्शन ? जिस समान और रत्न नाहीं, अविनाशी है, अमोलिक है, काहूसे हरया न जाय, महासुखदायक शंकादिक मलरहित सुमेरु सारिखा निश्चल है। हे माता ! जाके सम्यग्दर्शन होवे उसके गुण हम कहां लग वर्णन करें। यह राजा जिनमार्ग के रहस्य का ज्ञाता शरणागत-प्रतिपालक है। परोपकारमें प्रवीण, महा दयावान, महा निर्मल पवित्रात्मा निंद्यकर्मसूं निवृत्त, लोकोंका पिता-समान रक्षक, महादातार, जीवों की रक्षा विषै सावधान, दीन अनाथ दुर्बल देहधारियोंकूं माता-समान पालै है। कार्य का करणहारा सिद्धि, शत्रुरूप पर्वतनिकू वज्रसमान है, शस्त्र विद्याका अभ्यासी, परधनका त्यागी, परस्त्रीकूं माता बहिन बेटी के समान मानै है, अन्यायमार्गकूं अजगरसहित अन्धकूप समान जानै है, धर्म विषे तत्पर अनुरागी, संसार के भ्रमणसे भयभीत, सत्यवादी जितेन्द्रिय है, याके समस्त गुण जो मुखसूं कहा चाहै सो भुजानिकर समुद्र कूं तिरा चाहै है। ये बात वज्रजंघके सेवक कहै हैं, इतने विषै ही राजा आप आया, हाथीसे उतरि बहुत विनय करि, सहज ही है सुन्दर दृष्टि जाकी, सो सीताते कहता भया—हे बहिन ! वह वज्रसमान कठोर महा असमझ है जो तोहि ऐसे बन में तजै अर तोहि तज के जाका हृदय न फट जाय। हे पुण्यरूपिणी ! अपनी अवस्था का कारण कह, विश्वासकूं भजि, भय मतकर अर गर्भ का खेद मत कर। तब यह शोककरि पीड़ित चित्त बहुरि रुदन करती भई। राजाने बहुत धैर्य बंधाया, तब यह हंस की न्याई आंसू डार गद्गद वाणीतें कहती भई—हे राजन् ! मो मन्दभागिनी की कथा अत्यन्त दीर्घ है, यदि तुम सुना चाहो हो तो चित्त लगाय सुनो। मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डल की बहिन, राजा दशरथ के पुत्रकी वधू, सीता मेरा नाम, राम की रानी। राजा दशरथ ने केकईकूं वरदान दिया हुता सो भरतकूं राज्य देकर राजा वैरागी भए। अर राम लक्ष्मण वनकूं गए सो मैं पतिके संग वनमें रही, रावण कपटसे मोहि हर ले गया, ग्यारवें दिन मैंने पतिकी वार्ता सुन भोजन किया। पति सुग्रीव के घर रहे बहुरि अनेक विद्याधरनिकूं एकत्रकर आकाशके मार्ग होय समुद्रकूं उलंघ लंका गए, रावणकूं जीत मोहि ल्याए। बहुरि राजरूप कीचकूं तज भरत तो वैरागी भए। कैसेहैं भरत ? जैसे ऋषभदेवके भरत चक्रवर्ती तिन समान हैं उपमा जिनकी, सो भरत तो कर्म कलंकरहित परमधामकूं प्राप्त भए। अर केकई शोकरूप अग्निकर आतापकूं प्राप्त भई, बहुरि वीतराग का मार्ग सार जानकर आर्यिका होय महातपसे स्त्रीलिंग छेद

स्वर्गविषैं देव भई, मनुष्य होय मोक्ष पावेगी। राम लक्ष्मण अयोध्याविषैं इन्द्रसमान राज्य करैं, सो लोक दुष्टचित्त निश्शंक होय अपवाद करते भए कि रावण हरकर सीताकूं ले गया, बहुरि राम ल्याय घरमें राखी। सो राम महाविवेकी धर्म शास्त्रके वेत्ता न्यायवन्त ऐसी रीति क्यों आचरैं, जिस रीति राजा प्रवर्ते उसी रीति प्रजा प्रवर्ते, सो लोक मर्यादा-रहित होय कहवे लगे–रामहीके घर यह रीति तो हमकूं कहा दोष ? अर मैं गर्भसहित दुर्बल शरीर यह चिंतवन करती हुती कि जिनेन्द्रके चैत्यालयों की अर्चना करूंगी अर भरतार भी मुझ सहित जिनेन्द्र के निर्वाण स्थानक अर अतिशय स्थानक तिनकूं वंदना करनेकूं भावसहित उद्यमी भए हुते अर मोहि ऐसे कहते थे कि प्रथम तो हम कैलाश जाय श्रीऋषभदेवके निर्वाणक्षेत्र बंदेंगे, बहुरि और निर्वाणक्षेत्रकूं बंदकरि अयोध्याविषैं ऋषभ आदि तीर्थंकर देवनिका जन्मकल्याणक है सो अयोध्या की यात्रा करेंगे, जेते भगवानके चैत्यालय हैं तिनका दर्शन करेंगे, कंपिल्या नगरी विषैं विमलनाथका दर्शन करेंगे अर रत्नपुर में धर्मनाथका दर्शन करेंगे। कैसे हैं धर्मनाथ ? धर्मका स्वरूप जीवनिकूं यथार्थ उपदेशैं हैं बहुरि श्रावस्ती नगरी संभवनाथका दर्शन करेंगे अर चम्पापुरमें वासुपूज्यका अर काकंदीपुरमें पुष्पदंतका, चंद्रपुरीविषैं चंद्रप्रभका, कौशांबीपुरी में पद्मप्रभका, भद्रलपुरमें शीतलनाथका अर मिथिलापुरीमें मल्लिनाथ स्वामीका दर्शन करेंगे अर वाणारसीमें सुपार्श्वनाथ स्वामीका दर्शन करेंगे अर सिंहपुरीमें श्रेयांसनाथका अर हस्तनागपुर में शांति कुन्थु अरनाथ का पूजन करेंगे। अर हे देवी ! कुशाग्रनगर में श्रीमुनिसुव्रतनाथका दर्शन करेंगे। जिनका धर्मचक्र अब प्रवर्ते है अर और हू जे भगवान् के अतिशय स्थानक महा पवित्र हैं, पृथ्वीमें प्रसिद्ध हैं तहां पूजा करेंगे, भगवानके चैत्यालय अर सुर असुर अर गंधर्वनिकर स्तुति करिवे योग्य हैं, नमस्कार योग्य हैं, तिन सबनिकी हम वंदना करेंगे अर पुष्पक विमान विषैं सुमेरु के शिखरपर जे चैत्यालय हैं तिनका दर्शनकरि भद्रशाल वन नंदन वन सौमनस वन तहाँ जिनेन्द्रकी अर्चाकरि अर कृत्रिम अकृत्रिम अढाई द्वीपविषैं जेते चैत्यालय हैं तिनकी वंदनाकरि हम अयोध्याकूं आवेंगे।

हे प्रिये ! श्रीअरहंतदेवकूं भावसहित एक बार हू नमस्कार करै तो अनेक जन्म पापनिसे छूटै है। हे कांते ! धन्य तेरा भाग्य जो धर्म के प्रादुर्भाव विषैं तेरे जिन वंदना की वांछा उपजी। मेरेहू मनमें यही है कि तो सहित महापवित्र जिनमंदिरका दर्शन करूं। हे प्रिये ! पहिलें भोगभूमिविषैं धर्मकी प्रवृत्ति न हुती, लोक असमझ थे सो भगवान् ऋषभदेवने भव्योंकूं मोक्षमार्गका उपदेश दिया। जिनकूं संसार भ्रमण का भय होय तिनको भव्य कहिये। कैसे हैं भगवान ऋषभ ? प्रजाके पति, जगत्विषैं श्रेष्ठ, त्रैलोक्य-करि वंदिवे योग्य, नाना प्रकार अतिशयकर संयुक्त, सुर नर असुरनिकूं आश्चर्यकारी, दे

भगवान् भव्यनिकूं जीवादिक तत्वोंका उपदेश देय अनेकनिकूं तारि निर्वाण पधारे, सम्यक्त्वादि अष्ट गुणमंडित सिद्ध भए, जिनका चैत्यालय सब रत्नमई भरत चक्रवर्तीने कैलाश पर कराया अर पांचसौ धनुष की रत्नमई प्रतिमा सूर्यहूतें अधिक तेजकूं धरे मंदिर विषैं पधराई सो विराजै है, जाकी अबहू देव विद्याधर गंधर्व किन्नर नाग दैत्य पूजा करैं हैं, जहां अप्सरा नृत्य करैं हैं, जो प्रभु स्वयंभू सर्वगति निर्मल त्रैलोक्यपूज्य, जाका अंत नाहीं, अनंत रूप अनन्त ज्ञान विराजमान परमात्मा सिद्ध शिव आदिनाथ ऋषभ तिनकी कैलाश पर्वत पर हम चलकर पूजा कर स्तुति करेंगे, वह दिन कब होयगा। या भाँति मोसूं कृपाकर वार्ता करते थे। अर ताहि समय नगरके लोक भेले होय आय लोकापवादकी दावानलसे दुस्सह वार्ता रामसूं कही सो राम बड़े विचार के कर्ता, चित्त में यह चितई कि ये लोक स्वभावही कर वक्र हैं सो और भांति अपवाद न मिटै, या लोकापवादसे प्रियजनकूं तजवा भला अथवा मरणा भला। लोकापवादतैं यश का नाश होय, कल्पांतकाल पर्यंत अपयश जगत् में रहे सो भला नाही। ऐसा विचार महाप्रवीण मेरा पति ताने लोकापवादके भयतैं मोहि महा अरण्यवन में तजा। मैं दोष-रहित सो पति नीके जानै अर लक्ष्मण ने बहुत कहा सो न माने, मेरे ऐसा ही कर्म का उदय। जे विशुद्ध कुलमें उपजे शुभ चित्त क्षत्री सर्व शास्त्रनिके ज्ञाता तिनकी यही रीति है जो काहूसे न डरैं, एक लोकापवाद से डरैं। यह अपने निकासनेका वृत्तांत कह बहुरि रुदन करने लगी, शोकरूप अग्निकर तप्तायमान है चित्त जाका। सो याकूं रुदन करती अर रजकर धूसरा है अंग जाका, महा दीन दुःखी देख राजा वज्रजंघ उत्तम धर्म का धरणहारा अति उद्वेगकूं प्राप्त भया अर याकूं जनककी पुत्री जान समीप आय बहुत आदरसे धैर्य बंधाया अर कहता भया—हे शुभमते! तू जिन शासन में प्रवीण है, शोक कर रुदन मत करै। यह आर्तध्यान दुःख का बढ़ावनहारा है। हे जानकी! या लोक की स्थिति तू जानै है, तू महा सुज्ञान अनित्य अशरण एकत्व अन्यत्व इत्यादि द्वादश अनुप्रेक्षाओं की चिंतवन करणहारी, तेरा पति सम्यग्दृष्टि अर तू सम्यक्त्वसहित विवेकवन्ती है, मिथ्यादृष्टि जीवनिकी न्याईं बारम्बार कहा शोक करै? तू जिनवाणीकी श्रोता अनेक बार महामुनिनिके मुख श्रुतिके अर्थ सुने, निरंतर ज्ञान भावकूं धरणहारी तोहि शोक उचित नाहीं। अहो या संसारमें भ्रमता यह मूढ प्राणी जाने मोक्षमार्गकूं न जाना, यातैं कहा २ दुःख न पाए। याकूं अनिष्टसंयोग इष्टवियोग अनेक बार भए। यह अनादिकालसूं भवसागरके मध्य क्लेशरूप भंवर में पड़ा है, या जीव ने तिर्यंच-योनिविषैं जलचर थलचर नभचरके शरीर धर वर्षा शीत आतापादि अनेक दुःख पाए अर मनुष्य देहविषैं अपवाद विरहरुदन क्लेशादि अनेक दुःख भोगे अर नरक विषैं शीतउष्ण छेदन भेदन शूलारोहण परस्पर घात महादुर्गन्ध क्षीरकुंड विषैं विपाक

अनेक रोग अनेक दुःख लहे अर कबहूं अज्ञाव तपकरि अल्प ऋद्धिका धारक देव हू भया वहांहू उत्कृष्ट ऋद्धिके धारक देवनिकूं देख दुःखी भया अर मरण समय महा दुःखी होय विलापकर मूवा अर कबहूं महा तपकर इन्द्रतुल्य उत्कृष्टदेव भया तोहू विषयानुराग करि दुःखी भया; या भांति चतुंर्गतिविषैं भ्रमण करते या जीवने भववनविषैं आदि-व्याधि, संयोग वियोग, रोग शोक, जन्म मृत्यु, दुःख-दाह, दरिद्र-हीनता, नाना प्रकारकी वांछा विकल्प ताकर शोच संतापरूप होय अनन्त दुःख पाए, अधोलोक मध्यलोक ऊर्ध्वलोक विषैं ऐसा स्थानक नाही जहां या जीव ने जन्ममरण न किए। अपने कर्मरूप पवनके प्रसंगकर भवसागर विषैं भ्रमण करता जो यह जीव ताने मनुष्य देह विषैं स्त्रीका शरीर पाया तहाँ अनेक दुःख भोगे। तेरे शुभ कर्मके उदयकरि राम सारिखे सुन्दर पति भए, जिनके सदा शुभका उपार्जन सो पुण्यके उदयकरि पति-सहित महा सुख भोगे। अर अशुभके उदयतैं दुस्सह दुःखकूं प्राप्त भई, लंकाद्वीपविषैं रावण हरकर ले गया तहां पति की वार्ता न सुन ग्यारह दिनतक भोजन विना रही अर जबतक पतिका दर्शन न भया तब तक आभूषण सुगंध लेपनादि-रहित रही। बहुरि शत्रुको हत पति ले आए तब पुण्यके उदयतैं सुखकूं प्राप्त भई। बहुरि अशुभका उदय आया तब विनादोष गर्भवतीकूं पतिने लोकापवादके भयतैं घरतैं निकासी, लोकापवादरूप सर्पके डसिवेकरि अति अचेत चित्त भया सो विना समझे भयंकर वनमें तजी। उत्तम प्राणी पुन्यरूप पुष्पनिका घर ताहि जो पापी दुर्वचनरूप अग्निकर बाले हैं सो आपही दोषरूप दहन करि दाहकूं प्राप्त होंय। हे देवी! तू परम उत्कृष्ट पतिव्रता महासती है, प्रशंसा योग्य है चेष्टा जाकी, जाके गर्भाधानविषैं चैत्यालयनिके दर्शनकी वांछा उपजी, अबहूं तेरे पुण्य ही का उदय है. तू महा शीलवती जिनमति है, तेरे शीलके प्रसादकरि या विजंन-वन विषैं हाथीके निमित्तमेरा आवना भया। मैं वज्रजंघ पुण्डरीकपुर का अधिपति राजा द्विरदवाह सोमवशी महाशुभ आचरणके धारक तिनके सुबन्धु महिषी नामा रानी ताका मैं पुत्र, तू मेरे धर्मके विधानकर बड़ी बहिन है। पुंडरीकपुर चालहु, शोक तज। हे बहिन! शोकसे कछू कार्यसिद्धि नाहीं, वहां पुण्डरीकपुरसे राम तोहि ढूंढ कृपाकर बुलावेंगे। राम हू तेरे वियोगसूं पश्चातापकरि अति व्याकुल हैं, अपने प्रमादकरि अमोलक महा गुणवान रत्न नष्ट भया, ताहि विवेकी महा आदर से ढूंढें ही। तातैं हे पतिव्रते! निसंदेह राम तुझे आदरसूं बुलावेंगे। या भांति वा धर्मात्माने सीताकूं शांतता उपजाई। तब सीता धैर्यकूं प्राप्त भई मानों भाई भामंडल ही मिला। तब वाकी अति प्रशंसा करती भई कि तू मेरा अति उत्कृष्ट भाई है, महायशवन्त शूरवीर बुद्धिमान् शांतचित्त साधर्मिनिपर वात्सल्यका करणहारा उत्तम जीव है। गौतम स्वामी कहै हैं—हे श्रेणिक राजा वज्रजंघ अधिगम सम्यग्दृष्टि, अधिगम कहिए गुरूपदेशकरि

पाया है सम्यक्त जाने अर ज्ञानी है परमतत्त्वका स्वरूप जाननहारा, पवित्र है आत्मा जाकी, साधु समान है। जाके व्रत गुण शीलकर संयुक्त मोक्षमार्गका उद्यमी सो ऐसे सत्पुरुषनिके चरित्र दोषरहित पर उपकार कर युक्त कौनका शोक न निवारै। कैसे हैं सत्पुरुष ? जिनमत विषैं अति निश्चल है चित्त जिनका। सीता कहै है—हे वज्रजंघ ! तू मेरे पूर्वभवका सहोदर है सो जो या भवविषैं तैनें सांचा भाईपना जनाया, मेरा शोक संतापरूप तिमिर हरा, सूर्यसमान तू पवित्र आत्मा है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं सीताकूं वज्रजंघ का धैर्य बंधावने का वर्णन करने वाला अट्ठानवैंवां पर्व पूर्ण भया ॥९८॥

निन्यानवैंवां पर्व

(सीता का वज्रजंघ के साथ जाना और मार्ग में सर्वत्र सम्मान पाना)

अथानंतर वज्रजंघने सीता के चढ़िवेकूं क्षणमात्रविषैं अद्भुत पालकी मंगाई सो सीता तापर आरूढ़ भई। पालकी विमान समान महा मनोज्ञ समीचीन प्रमाणकर युक्त, सुन्दर हैं थंभ जाके, श्रेष्ठ दर्पण थंभो विषैं जडे हैं अर मोतिनिकी झालरीकरि पालकी मंडित है अर चंद्रमा समान उज्ज्वल चमर तिनकर शोभित है, मोतिनके हार जल के बुदबुदे समान शोभै हैं अर विचित्र जे वस्त्र तिनकर मंडित है, चित्रामकर शोभित है, सुन्दर हैं झरोखा जाविषैं ऐसी सुखपालपर चढ़ परम ऋद्धि कर युक्त बड़ी सेना मध्य सीता चली जाय है, आश्चर्यकूं प्राप्त भई कर्मोंकी विचित्रताकूं चितवै है। तीन दिन विषैं भयंकर वनकूं उलंघ पुंडरीक देशविषै आई, उत्तम है चेष्टा जाकी। सर्व देश के लोक माताकूं आय मिले, ग्राम विषैं भेंट करैं। कैसा है वज्रजंघका देश ? समस्त जातिके अन्नकर जहाँ समस्त पृथ्वी आच्छादित होय रही है अर कूकड़ा उडान नजीक हैं ग्राम, जहाँ रत्ननिकी खान, रूपादिककी खान, सुरपुर जैसे पुर सो देखती थकी सीता हर्षकूं प्राप्त भई। वन उपवन की शोभा देखती चली जाय है, ग्रामके महंत भेंटकर नाना प्रकार स्तुति करै हैं—हे भगवती ! हे माता ! आपके दर्शनकर हम पाप-रहित भए, कृतार्थ भए अर बारबार वंदना करते भए, अर्घपाद्य किए। अर अनेक राजा देवनि-समान आय मिले सो नाना प्रकार भेंट करते भए अर बारबार वंदना करते भए। या भाँति सीता सती पैंड पैंड पर राजा प्रजानिकर पूजी संती चली जाय है। वज्रजंघका देश अतिसुखी, ठौर ठौर वन उपवनादिकरि शोभित, ठौर २ चैत्यालय देख अति हर्षित भई, मन विषैं विचारै है कि जहाँ राजा धर्मात्मा होय वहाँ प्रजा सुखी होय ही। अनुक्रमकर पुंडरीकपुर के समीप आए। राजाकी आज्ञातैं सीता का आगमन सुन नगरके सबलोक सन्मुख आए अर भेंट करते भए, नगर की अति शोभा करी, सुगंधकर पृथ्वी छांटी, गली बाजार सब सिंगारे अर

इन्द्र धनुष समान तोरण चढ़ाए अर द्वारनिविषैं पूर्ण कलश थापे, जिनके मुख सुन्दर पल्लव-युक्त हैं अर मंदिरनिपर ध्वजा चढ़ीं अर घर २ मंगल गावैं हैं मानों वह नगर आनन्द-कर नृत्य ही करै है। नगरके दरवाजे पर तथा कोट के कंगूरनिकर लोक खड़े देखैं हैं, हर्षकी वृद्धि होय रही है, नगर के बाहिर अर भीतर राजद्वार तक सीताके दर्शनकूं लोक खड़े हैं, चलायमान जे लोकनिके समूह तिनकर नगर यद्यपि स्थावर है तथापि जानिए जंगम होय रहा है। नाना प्रकार के वादित्र बाजै हैं तिनके नादकर दसों दिशा शब्दा-यमान होय रही हैं, शंख बाजै हैं, बंदीजन विरद बखानै हैं, समस्त नगर के लोक आश्चर्यकूं प्राप्त भए देखै हैं अर सीता ने नगर विषैं प्रवेश किया जैसें लक्ष्मी देवलोकविषैं प्रवेश करै। वज्रजंघके मंदिर विषैं अति सुन्दर जिनमंदिर हैं, सर्व राजलोक की स्त्रीजन सीता के सन्मुख आईं, सीता पालकीसूं उतर जिनमदिर विषैं गई। कैसा है जिनमंदिर ? बहुत सुन्दर उपवन कर वेष्टित है अर वापिका सरोवरी तिनकर शोभित है, सुमेरु शिखर समान सुन्दर स्वर्णमई है। जैसें भाई भामंडल सीता का सन्मान करै तैसें वज्रजंघ आदर करता भया। वज्रजंघ के समस्त परिवार के लोक अर राजलोक की समस्त रानी सीता की सेवा करैं अर ऐसे मनोहर शब्द निरंतर कहै हैं—हे देवते ! हे पूज्ये ! हे स्वामिनी ! हे ईशानने ! सदा जयवंत होहु, बहुत दिन जीवो, आनन्दकूं प्राप्त होहु, वृद्धिकूं प्राप्त होहु, आज्ञा करहु। या भाँति स्तुति करैं अर जो आज्ञा करै सो सीस चढ़ावै, अति हर्षसूं दौड़कर सेवा करैं अर हाथ जोड़ सीस नवाय नमस्कार करैं। वहाँ सीता अति आनन्दतैं जिनधर्म की कथा करती तिष्ठै। अर जो सामंतनिको भेंट आवै अर राजा भेंट करैं सो जानकी धर्म कार्य विषैं लगावै, यह तो यहां धर्म की आराधना करै है।

(सेनापति का अयोध्या वापिस लौटना और सीता का राम से सन्देश कहना)

अर वह कृतान्तवक्र सेनापति, तप्तायमान है चित्त जाका, रथके तुरंग खेदकूं प्राप्त भए हुते तिनकूं खेदरहित करता हुआ श्रीरामचन्द्र के समीप आया। याकूं आवता सुन अनेक राजा सन्मुख आए सो कृतान्तवक्र आयकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणनिकूं नमस्कार कर कहता भया—हे प्रभो ! मैं आज्ञा प्रमाण सीताकूं भयानक वन विषैं मेलकर आया हूं, वाकै गर्भपात ही सहाई है। हे देव ! वह वन नाना प्रकार के भयंकर जीवनिके अति घोर शब्दकर महाभयकारी है अर जैसा वैताल कहिए प्रेतनिका वन ताका आकार देखा न जाय तैसें सघन वृक्षनिके समूह कर अंधकाररूप है, जहाँ स्वतः स्वभाव आरणे भैंसे अर सिंह द्वेषकर सदा युद्ध करैं हैं अर जहां घूघू बसै हैं सो विरूप शब्द करै हैं अर गुफानि-विषैं सिंह गुंजार करै हैं सो गुफा गुंजार रही है अर महा भयंकर अजगर शब्द करै हैं अर चीतानिकर हते गए है मृग जहां, कालकूं भी विकराल ऐसा वन ता विषैं हे प्रभो !

सीता अश्रुपात करती महा दीनवदन आपकूं जो शब्द कहती भई सो सुनो—आप आत्म-कल्याण चाहो हो तो जैसें मोहि तजी तैसें जिनेन्द्र की भक्ति न तजनी। जैसें लोकनिके अपवाद कर मोसें अति अनुराग हुता तोहू तजी, तैसें काहूके कहिवेतें जिनशासन की श्रद्धा न तजनी। लोक विना विचारे निर्दोषनिकूं दोष लगावैं हैं जैसें मोहि लगाया सो आप न्याय करो सो अपनी बुद्धि से विचार यथार्थ करना, काहू के कहेतें काहूकूं झूठा दोष न लगावना। अर सम्यग्दर्शनतें विमुख मिथ्यादृष्टि जिनधर्मरूप रत्नका अपवाद करैं हैं सो उनके अपवाद के भयतें सम्यग्दर्शन की शुद्धता न तजनी, वीतराग का मार्ग उर विषैं दृढ़ धारणा। मेरे तजने का या भव विषैं किंचित्मात्र दुःख है अर सम्यग्दर्शनकी हानितें जन्म जन्म विषैं दुःख है। या जीवकूं लोक विषैं निधि रत्न स्त्री वाहन राज्य सबही सुलभ हैं, एक सम्यग्दर्शन रत्न ही महा दुर्लभ है। राजविषैं पापकर नरक विषैं पड़ना है, एक ऊर्ध्वगमन सम्यग्दर्शन के प्रतापसे ही होय। जाने अपना आत्मा सम्यग्दर्शनरूप आभूषण कर मंडित किया सो कृतार्थ भया। ये शब्द जानकीने कहे हैं जिनकूं सुनकर कौनके धर्मबुद्धि न उपजे? हे देव! एक तो वह सीता स्वभाव ही कर कायर अर दूजे महाभयंकर वन के दुष्ट जीवनितें कैसे जीवेगी? जहा महा भयानक सर्पनिके समूह अर अल्प जल ऐसे सरोवर तिन विषैं माते हाथी कर्दम करैं हैं अर जहां मृगनिके समूह मृगतृष्णा विषैं जल जानि वृथा दौड़कर व्याकुल होय हैं जैसें संसार की माया विषैं रागकर रागी जीव दुःखी होंय। अर जहां कौंछिकी रजके संगकर मर्कट अति चंचल होय रहे हैं अर जहां तृष्णासूं सिंह व्याघ्र ल्यालियों के समूह तिनकी रसनारूप पल्लव लहलहाट करैं हैं। अर चिरम समान लाल नेत्र जिनके ऐसे क्रोधायमान भुजंग फुंकार करैं हैं अर जहां तीव्र पवन के संचारकर क्षणमात्र विषैं वृक्षनिके पत्रोंके ढेर होय हैं अर महा अजगर तिनकी विषरूप अग्निकर अनेक वृक्ष भस्म होय गए हैं। अर माते हाथिनिकी महा भयंकर गर्जना ताकर वह वन अति विकराल है अर वन के शूकरनिकी सेनाकर सरोवर मलिन जल होय रहे हैं अर जहां ठौर ठौर भूमि विषैं कांटे अर सांठे अर सांपों की बांबी अर कंकर पत्थर तिनकर भूमि महा संकट रूप हैं अर डाभ की अणी सूई तैंहू अति पैनी हैं अर सूके पान फूल पवन कर उड़े उड़े फिरैं हैं। ऐसे महा अरण्य विषैं हे देव! जानकी कैसें जीवेगी, मैं ऐसा जानूं हूं कि वह क्षणमात्र हू प्राण राखिवेको समर्थ नाहीं।

(सीता का संदेश सुनकर राम का विलाप करना और लक्ष्मण का समझाना)

हे श्रेणिक! सेनापति के वचन सुन श्रीराम अति विषादकूं प्राप्त भए, कैसे हैं वचन? जिनकर निर्दई का भी मन द्रवीभूत होय। श्रीरामचन्द्र चिंतवते भए कि देखो मो मूढ चित्त ने दुष्टनिके वचन करि अत्यंत निंद्य कार्य किया। कहां वह राजपुत्री अर कहां

वह भयंकर वन ? यह विचार कर मूर्च्छाकूं प्राप्त भए । बहुरि शीतोपचारकर सचेत होय विलाप करते भए । सीता विषैं है चित्तजिनका, हाय श्वेत श्याम रक्त तीन वर्ण के कमल समान नेत्रनिकी धरणहारी, हाय निर्मल गुणनिकी खान, मुखकर जीता है चन्द्रमा जाने, कमल की किरण समान कोमल, हाय जानकी मोसूं वचनालाप कर, तू जानै ही है कि मेरा चित्त तो विना अति कायर है। हे उपमा रहित शीलव्रत की धारणहारी, मेरे मनकी हरणहारी, हितकारी हैं आलाप जिसके, हे पापवर्जिते निरपराध, मेरे मन की निवासनी तू कौन अवस्थाकूं प्राप्त भई होगी ? हे देवी ! वह महा भयकर वन क्रूर जीवोंकर भरघा उस विषैं सर्व सामग्री रहित कैसैं तिष्ठेगी ? हे मो विषैं आसक्त, चकोर नेत्र, लावण्यरूप जलकी सरोवरी, महालज्जावती विनयवती तू कहाँ गई ? तेरे श्वास की सुगंधकर मुख पर गुंजार करते जे भ्रमर तिनकूं हस्त कमलकर निवारती अति खेदकूं प्राप्त भई होगी । तू यूथ से बिछुरी मृगी की न्याईं अकेली भयंकर वनविषैं कहाँजाएगी ? जो वन चितवन करते भी दुस्सह उसविषैं तू अकेली कैसे तिष्ठेगी ? कमल के गर्भ समान कोमल तेरे चरण महा सुन्दर लक्षणके धरणहारे कर्कश भूमिका स्पर्श कैसैं सहेंगे ? अर वनके भील महा म्लेच्छ कृत्य अकृत्यके भेदसे रहित है मन जिनका सो तुझे पाकर भयंकर पल्ली विषैं ले गए होंगे सो पहिले दुःखसे भी यह अत्यंत दुःख है। तू भयानक वनविषैं मो बिना महादुःखकूं प्राप्त भई होगी अथवा खेदखिन्न महा अंधेरी रात्रिविषै वन की रजकर मलिन कहीं पड़ी होगी सो कदाचित् तुझे हाथियों ने दाबी होगी तो इस समान अनर्थ कहा ? अर गृद्ध रीछ सिंह व्याघ्र अष्टापद इत्यादि दुष्ट जीवों कर भरघा जो वन ताविषैं कैसे निवास करेगी ? जहां मार्ग नाहीं, विकराल दाढ़के धरणहारे व्याघ्र महा क्षुधातुर, तिनने कैसी अवस्थाकूं प्राप्त करी होगी जो कहिवे विषै न आवै ? अथवा अग्नि की ज्वाला के समूहकर जलता जो वन उसविषैं अशुभ स्थानककूं प्राप्त भई होगी अथवा सूर्य की अत्यन्त दुस्सह किरण तिनके आताप कर लाख की न्याईं पिघल गई होगी, छाया विषैं जायवेको नाहीं शक्ति जाकी । अथवा शोभायमान शील की धारणहारी मो निर्दई विषैं मनकर हृदय फटकर मृत्युकूं प्राप्त भई होगी ? पहिले जैसे रत्नजटी ने मोहि सीताके कुशल की वार्ता आय कही था तैसें कोई अब भी कहै ? हाय प्रिये ! पतिव्रते विवेकवती सुखरूपिणी तू कहां गई, कहां तिष्ठेगी, क्या करेगी ? अहो कृतांतवक्र ! कहु । क्या तैनें सचमुच वनही विषैं डारी ? जो कहूं शुभ ठौर मेली होय तो तेरे मुखरूप चन्द्र से अमृत रूप वचन खिरैं । जब ऐसा कहा तब सेनापति ने लज्जाके भारकर नीचा मुख किया, प्रभारहित होय गया, कछु कह न सक्या, अति व्याकुल भया, मौन गह रह्या । तब रामने जानी कि सत्य ही यह सीताकूं भयंकर वन विषैं डार आया तब मूर्च्छाकूं प्राप्त होय

राम गिरे। बहुरि बहुत देरविषें नीठि नीठि सचेत भए तब लक्ष्मण आए। अन्तःकरण विषें सोचकूं धरे कहते भए-हे देव ! क्यों व्याकुल भए हो ? धैर्य को अंगीकार करहु । जो पूर्वकर्म उपार्ज्या है उसका फल आय प्राप्त भया अर सकल लोककूं अशुभ के उदयकर दुःख प्राप्त भया। केवल सीताहीकूं दुःख न भया। सुख अथवा दुःख जो प्राप्त होना होय सो स्वयमेव ही किसी निमित्तसूं आय प्राप्त होय है। हे प्रभो ! जो कोई किसी कूं आकाश विषें ले जाय अथवा क्रूर जीवों के भरे वन विषें डारै अथवा गिरि के शिखर धरे तो भी पूर्व पुण्य कर प्राणी की रक्षा होय है, सब ही प्रजा दुःखकर तप्तायमान है, आंसुवों के प्रवाह कर मानों हृदय लग गया है सोई झरै है। यह वचन कह लक्ष्मण भी अत्यन्त व्याकुल होय रुदन करने लगा, जैसा दाह का मारया कमल होय तैसा होय गया है मुखकमल जाका। हाय माता ! तू कहां गई, दुष्टजीवोंके वचनरूप अग्निकर प्रज्वलित है शरीर जिसका, हे गुणरूप धान्य के उपजावने की भूमि बारह अनुप्रेक्षा के चितवन की करणहारी है, शील रूपपर्वत की पृथ्वी है, सीते ! सौम्य स्वभावकी धारक है, विवेकिनी दुष्टों के वचन सोई भए तुषार तिनकर दाहा गया है हृदय कमल जाका, राजहंस श्रीराम तिनके प्रसन्न करिवेकूं मान सरोवर समान सुभद्रा सारिखी कल्याणरूप, सर्व आचार विषें प्रवीण, लोककूं मूर्तिवन्त सुख की आशिखा, हे श्रेष्ठे ! तू कहाँ गई ? जैसें सूर्य विना आकाश की शोभा कहां अर चन्द्रमा विना निशा की शोभा कहां, तैसें हे माता तो विना अयोध्या की शोभा कहां ? इस भांति लक्ष्मण विलाप कर रामसूं कहै हैं-हे देव ! समस्त नगर बीण बांसुरी मृदंगादिका ध्वनिकर रहित भया है, अहर्निश रुदन की ध्वनि कर पूर्ण है। गली-गली विषें, नदियों के तट विषें, चौहटे विषें, हाट-हाट विषें, घर-घर विषें समस्त लोक रुदन करैं हैं, तिनके अश्रुपात की धाराकर कीच होय रही है, मानों अयोध्या विषें वर्षा काल फिर से आया है। समस्त लोक आंसू डारते गदगद वाणीकर कष्टसूं वचन उचारते, जानकी प्रत्यक्ष नहीं है परोक्ष हो है, तौ भी एकाग्रचित्त भए गुण कीर्तिरूप पुष्पों के समूह कर पूजैं हैं। वह सीता पतिव्रता समस्त सतियों के सिर पर विराजै है, गुणोंकर महा उज्ज्वल उसके यहाँ आवनेकी अभिलाषा सबकूं है, ये सर्व लोक माता ने ऐसे पाले हैं जैसे जननि पुत्रकूं पालै, सो सबही महा शोककर गुण चितार रुदन करैं हैं। ऐसा कौन है जाके जननीका शोक न होय ? तातें हे प्रभो ! तुम सब बातोंविषें प्रवीण हो, अब पश्चाताप तजहु। पश्चातापसूं कार्य की सिद्धि नाहीं, जो आपका चित्त प्रसन्न है तो सीताकूं हेर कर बुलाय लेंगे अर उनकूं पुण्यके प्रभावकरकोई विघ्न नाहीं, आप धैर्य अवलम्बन करिवे योग्य हो। या भांति लक्ष्मण के वचनकर रामचन्द्र प्रसन्न भए, कछु एक शोक तज कर्तव्य विषें मन धरया। भद्रकलश भण्डारीकूं बुलाय कर

कही—तुम सीता की आज्ञासूं जिस विधि किमिच्छा दान करते थे तैसे ही दिया करो, सीता के नामसूं दान बटे। तब भंडारीने कही जो आप आज्ञा करोगे सोही होयगा। नव महीने अर्थियोंकूं किमिच्छा दान बटिवो करै। राम के आठ हजार स्त्री तिनकर सेवमान तौ भी एक क्षणमात्र भी मनकर सीताकूं न विसारता भया। सीता सीता यह आलाप सदा होतौ भया, सीताके गुणोंकर मोहा है मन जाका, सर्व दिशा सीतामई देखता भया, स्वप्नविषें सीताकूं या भांति देखै, पर्वतकी गुफाविषें पड़ी है, पृथ्वी की रजकरि मंडित है अर देवनिके अश्रुपात कर चौमासा कर राख्या है, महाशोक कर व्याप्त है, या भांति स्वप्न विषे अवलोकन करता भया। सीताका शब्द करता राम ऐसा चितवन करै है-देखो सीता सुन्दर चेष्टा की धरणहारी दूर देशान्तरविषें है तौ भी मेरे चित्तसूं दूर न होय है। वह माधवी शीलवती मेरे हित विषें सदा उद्यमी। या भांति सदा चितारिवो करै। अर लक्ष्मण के उपदेश कर अर सूत्र सिद्धांतके श्रवण कर कछूइक रामका शोक क्षीण भया, धैर्यकूं धरि धर्म ध्यान विषें तत्पर भया। यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिक सूं कहै हैं। वे दोनों भाई महान्यायवंत अखण्ड प्रीति के धारक प्रशंसा योग्य गुणों के समुद्र, राम के हल मूसल का आयुध, लक्ष्मण के चक्रायुध, समुद्र पर्यंन्त पृथ्वीकूं भली भांति पालते सन्ते सौधर्म-ईशान इन्द्र सारिखे शोभते भए। वे दोनों धीरवीर स्वर्ग समान जो अयोध्या ताविषें देवों समान ऋद्धि भोगते महा कांतिके धारक पुरुषोत्तम पुरुषों के इन्द्र देवेन्द्र समान राज्य करते भए, सुकृत के उदयसें सकल प्राणियोंकूं आनंद देवे विषैं चतुर सुन्दर चरित्र जिनके, सुख सागर विषै मग्न सूर्य-समान तेजस्वी पृथ्वी विषें प्रकाश करते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें रामकूं सीता का शोक वर्णन करने वाला निन्यानवेंवाँ पर्व पूर्ण भया ॥९९॥

सौवां पर्व

(सीता के युगल पुत्रों की उत्पत्ति और उनके पराक्रम का वर्णन)

अथानन्तर गौतम स्वामी कहै हैं-हे नराधिप! राम लक्ष्मण तो अयोध्या विषें तिष्ठें हैं अर अब लवणांकुश का वृत्तांत कहै हैं सो सुन—अयोध्या के सब ही लोक सीता के शोकतें पांडुताकूं प्राप्त भए अर दुर्बल होय गए। अर पुण्डरीकपुर विषें सीता गर्भ के भारकर कछूएक पांडुताकूं प्राप्त अर दुर्बल भई मानो सकल प्रजा महा पवित्र उज्ज्वल इसके गुण वर्णन करै है सो गुणों की उज्ज्वलता कर श्वेत होय गई है। अर कुचों की बीटली श्यामताकूं प्राप्त भई सो मानो माता के कुच पुत्रोंके पान करिवेके पय के घट हैं सो मुद्रित कर राखे हैं। अर दृष्टि क्षीरसागर समान उज्ज्वल अत्यन्त मधुरताकूं प्राप्त

भई अर सर्वमंगलके समूह का आधार जिनका शरीर सर्वमंगलका स्थानक जो निर्मल रत्नमई आंगण ताविषैं मंद मंद विचरै सो चरणों के प्रतिबिंब ऐसे भासैं मानों पृथ्वी कमलनिसूं सीताकी सेवा ही करै है। अर रात्रिविषैं चंद्रमा याके मंदिर ऊपर आय निकसै सो ऐसा भासै मानो सुफेद छत्र ही है। अर सुगन्ध के महल विषैं सुन्दर सेज ऊपर सूती ऐसा स्वप्न देखती भई कि महागजेन्द्र कमलों के पुट विषै जल भरकर अभिषेक करावै है अर बारम्बार सखीजनों के मुख जय-जयकार शब्द सुनकर जाग्रत होय है, परिवार के लोक समस्त आज्ञारूप प्रवर्तें हैं, क्रीडा विषैं भी यह आज्ञाभंग न सह सकै-सब आज्ञाकारी भए शीघ्रही आज्ञाप्रमाण करै हैं तो भी सर्वोपर तेज करै है, काहेसूं कि तेजस्वी पुत्र गर्भविषैं तिष्ठै हैं। अर मणियों के दर्पण निकट हैं तो भी खड्ग विषैं मुख देखै है अर बीण बांसुरी मृदंगादि अनेक वादित्रों के नाद होय हैं सो न रुचे अर धनुषके चढायबे की ध्वनि रुचै है। अर सिंहों के पिंजरे देख जिनके नेत्र प्रसन्न होंय अर जिनका मस्तक जिनेंद्र टार औरकूं न नमैं।

अथानन्तर नव महीना पूर्ण भए श्रावण सुदी पूर्णमासी के दिन श्रवण नक्षत्र के विषैं वह मंगलरूपिणी सर्व लक्षण पूर्ण, शरद की पूनों के चंद्रमा-समान है वदन जिनका, सुखसूं पुत्र युगल जनती भई। पुत्रोंके जन्मविषैं पुंडरीकपुरकी सकल प्रजा अति हर्षित भई मानो नगरी नाच उठी, ढोल नगारे आदि अनेक प्रकार के वादित्र बाजने लगे, शंखों के शब्द भए। राजा वज्रजंघ ने अति उत्सव किया, बहुत संपदा याचकनिकूं दई अर एक का नाम अनंगलवण दूजे का नाम मदनांकुश ये यथार्थ नाम धरे। फिर ये बालक वृद्धिकूं प्राप्त भए, माताके हृदयकूं अति आनन्द के उपजावनहारे, महाधीर शूरवीरताके अंकुर उपजे। सरसोंके दाणे इनकी रक्षा के निमित्त इनके मस्तक डारे सो ऐसे सोहते भए मानो प्रतापरूप अग्निके कण ही हैं। जिनका शरीर ताए सुवर्ण समान अति देदीप्यमान सहजस्वभाव तेजकर अति सोहता भया अर जिनके नख दर्पण समान भासते भए। प्रथम बालअवस्था विषैं अव्यक्त शब्द बोले सो सर्वलोकके मनकूं हरैं। अर इनकी मन्द मुसकान महामनोज्ञ पुष्पोंके विकसने समान लोकनिके हृदयकूं मोहती भई। अर जैसें पुष्पनिकी सुगंधता भ्रमरोंके समूहकूं अनुरागी करै, तैसें इनकी वासना सबके मनकूं अनुराग रूप करती भई। ये दोनों माताका दूध पानकर पुष्ट भए। अर जिनका मुख महासुन्दर सुफेद दांतोंकर अति सोहता भया मानो यह दांत दुग्ध समान उज्ज्वल हास्यरस समान शोभायमान दीखै हैं। धाय की अंगुरी पकड़ आंगन विषैं पांव धरते कौन का मन न हरते भए? जानकी ऐसे सुन्दर क्रीड़ा के करणहारे कुमारोंकूं देखकर समस्त दुःख भूल गई। बालक बड़े भए, अति मनोहर सहज ही सुन्दर हैं नेत्र जिनके, विद्याके पढ़ने योग्य भए।

तब इनके पुण्य केयोगकर एक सिद्धार्थ नामा क्षुल्लक शुद्धात्मा पृथ्वीविषै प्रसिद्ध वज्रजंघ के मन्दिर आया सो महाविद्याके प्रभाव कर त्रिकाल संध्या विषैं सुमेरुगिरिके चैत्यालय वंदि आए, प्रशांत वदन साधु समान है भावना जाके, धीर, केश लुंच करनेसे रंजायमान है मस्तक जाका अर खंडित वस्त्र मात्र है परिग्रह जाके, उत्तम अणुव्रतका धारक नाना प्रकारके गुणनिकर शोभायमान, जिनशासन के रहस्यका वेत्ता, समस्त कलारूप समुद्रका पारगामी, तपकरि मंडित अति सोहै सो आहारके निमित्त भ्रमता संता जहां जानकी तिष्ठै थी वहां आया। सीता महासती मानों जिनशासन की देवी पद्मावती ही है सो क्षुल्लककूं देख अति आदर से उठकर सन्मुख जाय इच्छाकार करती भई अर उत्तम अन्नपान से तृप्त किया। सीता जिनधर्मियोंकूं अपने भाई-समान जानै है। सो क्षुल्लक अष्टांग निमित्त ज्ञान के वेत्ता दोनों कुमारनिकूं देखकर अति सन्तुष्ट होयकर सीता से कहता भया—हे देवी! तुम सोच न करो, जिसके ऐसे देवकुमार समान प्रशस्त पुत्र, उसे कहा चिंता?

अथानन्तर यद्यपि क्षुल्लक महा विरक्त चित्त है तथापि दोनों कुमारनिके अनुराग से कैयक दिन तिनके निकट रहा। थोड़े दिनोंमें कुमारनिकूं शस्त्र विद्या विषैं निपुण किया सो कुमार ज्ञान-विज्ञानविषैं पूर्ण, सर्वकलाके धारक, गुणनि के समूह, दिव्यास्त्र के चलायवे अर शत्रुओं के दिव्यास्त्र आवैं तिनके निराकरण करिवेकी विद्याविषैं प्रवीण होते भए। महापुण्यके प्रभावसूं परम शोभाकूं धरे महालक्ष्मीवान, दूर भए हैं मति श्रुति आवरण जिनके, मानों उघड़े निधि के कलश ही हैं। शिष्य बुद्धिमान होय तब गुरुकूं पढायवे का कछु खेद नाहीं, जैसें मंत्री बुद्धिमान होंय तब राजाकूं राज्यकार्यका कछु खेद नाहीं। अर जैसें नेत्रवान पुरुषनिकूं सूर्यके प्रभाव कर घट-पटादिक पदार्थ सुखसूं भासैं तैसें गुरुके प्रभाव कर बुद्धिवंतकूं शब्द अर्थ सुखसूं भासै। जैसें हंसनिकूं मानसरोवर विषैं आवते कछु खेद नाहीं तैसें विवेकवान विनयवान बुद्धिमानकूं गुरुभक्ति के प्रभावसूं ज्ञान आवते परिश्रम नाहीं, सुखसूं अति गुणनि की वृद्धि होय है। अर बुद्धिमान शिष्यनिकूं उपदेश देय गुरु कृतार्थ होय हैं अर कुबुद्धिकूं उपदेश देना वृथा है जैसें सूर्यका उद्योत घूघूओंकूं वृथा है। ये दोनों भाई, देदीप्यमान है यश जिनका, अति सुन्दर महा प्रतापी सूर्यकी न्याईं जिनकी ओर कोऊ विलोक न सकै, दोऊ भाई चन्द्र सूर्य समान, दोनों विषैं अग्नि अर पवन समान प्रीति, मानों वे दोनों ही हिमाचल-विंध्याचल समान हैं, वज्रवृषभ-नाराचसंहनन है जिनके, सर्वतेजस्वीनिके जीतवेकूं समर्थ, सब राजाओंका उदय अर अस्त जिनके आधीन होयगा, महा धर्मात्मा धर्म के धारी, अत्यन्त रमणीक, जगतकूं सुख के कारण, सब जिनकी आज्ञा विषैं, राजा ही आज्ञाकारी तो औरनिकी कहा बात? काहूकूं

आज्ञा-रहित न देख सकै, अपने पांवनिके नखनि विषैं अपना ही प्रतिबिम्ब देख न सकैं तो और कौनसे नम्रीभूत होंय। अर जिनकूं अपने वस्त्र अर केशों का भंग न रुचै तो अपनी आज्ञाका भंग कैसें रुचै ? अर अपने सिर पर चूड़ामणि धरिये अर सिर पर छत्र फिरै अर सूर्य ऊपर होय आय निकसै तो भी न सहार सकें तो औरनिकी ऊँचता कैसें सहारै। मेघ का धनुष चढ़ा देख कोप करै तो शत्रु के धनुष की प्रबलता कैसें देख सकै। चित्राम के नृप न नमैं तो भी सहार न सकै तो साक्षात् नृपों का गर्व कब देख सकै। अर सूर्य नित्य उदय अस्त होय उसे अल्प तेजस्वी गिनै अर पवन महा बलवान है परन्तु चंचल सो उसे बलवान न गिनै, जो चलायमान सो बलवान काहे का ? जो स्थिरभूत अचल सो बलवान। अर हिमवान पर्वत उच्च है, स्थिरीभूत है परन्तु जड़ अर कठोर कंटक सहित है तातैं प्रशंसा योग्य न गिनै अर समुद्र गम्भीर है, रत्नों की खान है परन्तु क्षार अर जलचर जीवोंको धरै अर शंखों कर युक्त तातैं समुद्रकूं तुच्छ गिनै, महा गुणनिके निवास अति अनुपम जेते प्रबल राजा हुते ते तेजरहित होय उनकी सेवा करते भए। ये महाराजाओ के राजा सदा प्रसन्न वदन मुखसूं अमृत वचन बोलें, सबनि कर सेवने योग्य, जे दूरवर्ती दुष्ट भूपाल हुते ते अपने तेजकर मलिन वदन किए, सब मुरझाय गए। इनका तेज ये जन्मे तबसे इनके साथ ही उपज्या है। शस्त्रनिके धारण कर जिनके कर अर उदर श्यामताकूं धरै सो मानो अनेक राजाओंके प्रतापरूप अग्निके बुझावने सूं श्याम हैं। समस्त दिशारूप स्त्री वशीभूत कर देनेवाली भई, महा धीर धनुष के धारक तिनके सब आज्ञाकारी भए। जैसा लवण तैसा ही अंकुश, दोनों भाईनिविषैं कोई कमी नाहीं, ऐसा शब्द पृथ्वी विषैं सबके मुख। ये दोनों नवयौवन महा सुन्दर अद्‌भुत चेष्टाके धरणहारे, पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध, समस्त लोकनिकर स्तुति करिवे योग्य, जिनके देखवेकी सबके अभिलाषा, पुण्य परमाणुनिकर रचा है पिंड जिनका, सुखका कारण है दर्श जिनका, स्त्रियोंके मुखरूप कुमुद तिनके प्रफुल्लित करने को शरद् की पूर्णमासी के चन्द्रमा समान सोहते भए। माता के हृदयकूं आनन्द के जंगम मन्दिर ये कुमार, सूर्य समान कमल नेत्र, देवकुमारसारिखे, श्रीवत्स लक्षणकर मंडित है वक्षस्थल जिनका, अनन्त पराक्रमके धारक, संसार-समुद्र के तट आए, चरम शरीरी, परस्पर महाप्रेम के पात्र सदा धर्म के मार्ग में तिष्ठे हैं, देवनिका अर मनुष्यनिका मन हरै हैं।

भावार्थ—जो धर्मात्मा होय सो काहूका कुछ न हरैं। ये धर्मात्मा परधन परस्त्री तो न हरैं परन्तु पराया मन हरैं। इनकूं देख सबनिका मन प्रसन्न होय, ये गुणनि की वृद्धकूं प्राप्त भए हैं। गुण नाम डोरे का भी है सो हृदपर गांठकूं प्राप्त होय है अर इनके उर विषैं गांठ नाहीं, महा निष्कपट हैं। अपने तेजकर सूर्यकूं जीते हैं अर कांति कर

चन्द्रमाकूं जीतें हैं अर पराक्रम कर इन्द्रकूं अर गंभीरताकर समुद्रकूं अर स्थिरताकर सुमेरुकूं अर क्षमाकर पृथ्वीकूं अर शूरवीरता कर सिंहकूं अर चालकर हंसकूं जीतें हैं। अर महाजल विषैं मकर ग्राह नक्रादिक जलचरनिसूं क्रीडा करै हैं अर माते हाथियोंसूं तथा सिंह अष्टापदोंसूं क्रीडा करते खेद न गिनै अर महा सम्यग्दृष्टि उत्तम स्वभाव, अति उदार उज्ज्वल भाव, जिनसूं कोई युद्ध न कर सकै, महायुद्ध विषैं उद्यमी जे कुमार सारिखे मधुकटभ सारिखे, इन्द्रजीत मेघनाद सारिखे योधा, जिनमार्गी गुरु सेवा विषैं तत्पर, जिनेश्वर की कथा विषैं रस, जिनका नाम सुन शत्रुओंको त्रास उपजै। यह कथा गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहते भए—हे राजन्! ते दोनों वीर महाधीर गुणरूप रत्नके पर्वत, महा ज्ञानवान् लक्ष्मीवान्, शोभा कांति कीर्ति के निवास, चित्तरूप माते हाथी के वश करिवेकूं अंकुश, महाराजरूप मन्दिर के दृढ स्तम्भ, पृथ्वी के सूर्य, उत्तम आचरण के धारक, लवण अंकुश नरपति विचित्रकार्य के करणहारे पुंडरीक नगर विषैं यथेष्ट देवनिकी न्याईं रमैं, महा उत्तम पुरुष जिनके निकट, जिनका तेज लख सूर्य भी लज्जावान होय, जैसे बलभद्र नारायण अयोध्या विषैं रमैं तैसे ये पुण्डरीकपुर विषैं रमैं हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिका विषैं लवणांकुश का पराक्रम वर्णन करने वाला सौवां पर्व पूर्ण भया ॥१००॥

एकसौ एकवां पर्व

(लवण और अंकुश का दिग्विजय करना)

अथानन्तर अति उदार क्रिया विषैं योग्य अति सुन्दर तिनकूं देख वज्रजंघ इनके परिणायवे विषैं उद्यमी भया तब अपनी शशिचूला नामा पुत्री लक्ष्मी रानी के उदर विषैं उपजी बत्तीस कन्या सहित लवणकुमारकूं देनी विचारी अर अंकुशकुमार का भी विवाह लारही करना विचारा सो अंकुश के योग्य कन्या ढूंढिवेकूं चिंतावान भया। फिर मन विषैं विचारी कि पृथ्वीपुर नगर का राजा पृथु, ताकी राणी अमृतवती ताकी पुत्री कनकमाला चन्द्रमा की किरण समान निर्मल अपने रूप कर लक्ष्मीकूं जीतै है, मेरी पुत्री शशिचूला समान है—यह विचार तापैं दूत भेज्या। सो दूत विचक्षण पृथ्वीपुर जाय पृथुसूं कही। जौ लग दूतने कन्या याचन के शब्द न कहे तौलग उसका अति सम्मान किया अर जब ताने याचने का वृत्तांत कहा तब वह क्रोधायमान भया अर कहता भया—तू पराधीन है अर पराई कहाई कहै है, तुम दूत जलके धारा समान हो, जा दिशा चलावै वाही दिशा चालो। तुम विषैं तेज नाहीं, बुद्धि नाहीं, जो ऐसे पापके वचन कहै ताकूं निग्रह करूं? पर तू पराया प्रेरा यन्त्र समान है, यन्त्री यन्त्र बजावै है त्यों बाजै तातैं तू हनिवे योग्य नाहीं। हे दूत! १कुल २ शील ३ धन ४ रूप ५ समानता ६ बल ७ वय ८ देश ९ विद्या

ये नव गुण वर के कहे हैं तिन विषे कुल मुख्य है सो जिनका कुल ही न जानिये तिनकूं कन्या कैसे दीजिये ? तातैं ऐसी निर्लज्ज बात कहै है सो राजा नीतिसूं प्रतिकूल है सो कुमारी तो मैं न द्यूं अर कु कहिये खोटी, मारी कहिये मृत्यु सो द्यूं । या भांति दूतकूं विदा किया सो दूत ने आयकर वज्रजंघकूं व्यौरा कह्या सो वज्रजंघ आप ही चढ़कर आधी दूर आय डेरा किए अर बड़े पुरुषनिकूं भेज बहुरि पृथुसूं कन्या याची, ताने न दई। तब राजा वज्रजघ पृथु का देश उजारने लगा अर देशका रक्षक राजा व्याघ्ररथ ताहि युद्ध विषैं जीति बांध लिया। तब राजा पृथु ने सुना कि व्याघ्ररथकूं राजा वज्रजंघ बांधा अर मेरा देश ऊजाडै है तब पृथु ने अपना परम मित्र पोदनापुर का पति परम सेनासूं बुलाया। तब वज्रजंघ पुण्डरीकपुरसूं अपने पुत्र बुलाए। तब पिता की आज्ञा पाय पुत्र शीघ्र ही चलिवेकूं उद्यमी भए। नगरविषैं राजपुत्रनिके कूचका नगारा बजा तब सामन्त बख्तर पहिरे आयुध सजकर युद्धके चलिवेकूं उद्यमी भए। नगर विषैं अति कोलाहल भया, पुण्डरीकपुर विषैं जैसा समुद्र गाजै तैसा शब्द भया। तब सामन्तनि के शब्द सुन लवण अर अंकुश निकटवर्तीनिकूं पूछते भए—यह कोलाहल शब्द काहे का है ? तब काहू ने कही—अंकुशकुमार के परणायवे निमित्त वज्रजघ राजा ने पृथुकी पुत्री याची हुती सो ताने न दई। तब राजा युद्धकूं चढ़े। अर अब राजा अपनी सहायताके अर्थ अपने पुत्रनिकूं बुलाया है अर सेना बुलाई है सो यह सेनाका शब्द है। यह समाचार सुनकर दोऊ भाई आप युद्धके अर्थ अति शीघ्र ही जायवेकूं उद्यमी भए। कैसे हैं कुमार ? आज्ञा भंगकूं नाही सह सकै हैं। तब राजा वज्रजंघ के पुत्र इनकूं मनै करते भए अर सर्व राजलोक मनै करते भए तो हू इनने न मानी। तब सीता, पुत्रनि के स्नेहकर द्रवीभूत हुवा है मन जाका, सो पुत्रनिकूं कहती भई—तुम बालक हो, तिहारा युद्ध का समय नाहीं। तब कुमार कहते भए—हे माता ! तू यह कहा कही, बड़ा भया अर कायर भया तो कहा ? यह पृथ्वी योधानिकर भोगवे योग्य है अर अग्निका कण छोटा ही होय है अर महा वनकूं भस्म करै है। या भांति कुमार ने कही तब माता इनकूं सुभट जान आंखों से हर्ष अर शोक के किंचिन्मात्र अश्रुपात करती भई। ये दोऊ वीर महाधीर स्नान भोजनकर आभूषण पहिरे मन वचन काय कर सिद्धनिकूं नमस्कार कर, बहुरि माताकूं प्रणामकर, समस्त विधिविषैं प्रवीण घरतें बाहिर आए तब भले शकुन भए। दोऊ रथ चढ़ सम्पूर्ण शस्त्रनिकर युक्त शीघ्रगामी तुरंग जोड़ पृथुपर चाले, महा सेनाकर मंडित धनुष-बाणही है सहाय जिनके, महा पराक्रमी परम उदारचित्त संग्राम के अग्रेसर पांच दिवस में वज्रजंघपै जाय पहुंचे। तब राजा पृथु शत्रुनि की बड़ी सेना आई सुन आप भी बड़ी सेना सहित नगर से निकस्या। याके भाई मित्र पुत्र माताके

पुत्र सब ही परम प्रीतिपात्र अर अंगदेश बंगदेश मगधदेश आदि अनेक देशनि के बड़े २ राजा तिन सहित रथ तुरंग हाथी पियादे बड़े कटक सहित वज्रजंघ पर आया। तब वज्रजंघके सामंत पर सेनाके शब्द सुन युद्धकूं उद्यमी भए। दोऊ सेना समीप भई तब दोऊ भाई लवणांकुश महा उत्साहरूप परसेनाविषैं प्रवेश करते भए। वे दोऊ योधा महा कोपकूं प्राप्त भए, अति शीघ्र है परावर्त जिनका, परसेनारूप समुद्रविषैं क्रीडा करते सब ओर पर सेनाका निपात करते भए। जैसैं बिजलीका चमत्कार जिस ओर चमके उस ओर चमक उठै तैसैं सब ओर मार मार करते भए, शत्रुनितैं न सहा जाय पराक्रम जिनका, धनुष पकड़ते बाण चलाते दृष्टि न पड़ैं। अर बाणनिकर हते अनेक दृष्टि पड़ैं, नाना प्रकार के क्रूर बाण तिनकरि वाहनसहित परसेना के अनेक घोड़ा पीड़े, पृथ्वी दुर्गम्य होय गई, एक निमिष में पृथु की सेना भागी जैसें सिंह के त्राससूं मदोन्मत्त गजनिके समूह भागैं। एक क्षणमात्र में पृथुको सेना रूप नदी लवणांकुशरूप सूर्य तिनके बाणरूप किरणनिकरि शोषकूं प्राप्त भई। कैयक मारे पड़े, कैयक भयतैं पीडित होय भागे जैसें आक के फूल उडे२ फिरैं। राजा पृथु सहाय रहित खिन्न होय भागनेकूं उद्यमी भया। तब दोऊ भाई कहते भए-हे पृथु! हम अज्ञातकुलशील, हमारा कुल कोऊ जाने नाहीं, तिनपै भागता तू लज्जावान् न होय है? तू खड़ा रह, हमारा कुल शील तोहि बाणनिकर बतावैं। तब पृथु भागता हुता सो पीछा फिर हाथ जोड़ नमस्कार कर स्तुति करता भया-तुम महा धोर वीर हो, मेरा अज्ञानता जनित दोष क्षमा करहु, मैं मूर्ख तिहारा माहात्म्य अब तक न जाना हुता, महा धीर वीरनिका कुल या सामंतता ही तैं जान्या जाय है, कछु वाणी के कहे न जान्या जाय है, सो अब मैं निःसदेह भया। वन दाहकूं समर्थ जो अग्नि सो तेज ही तैं जानी जाय है सो आप परम धीर महाकुल विषैं उपजे हमारे स्वामी हो, महा भाग्य के योग्य तिहारा दर्शन भया, तुम सबकूं मनवांछित सुख के दाता हो, या भांति पृथु ने प्रशंसा करी।

तब दोऊ भाई नीचे होय गए अर क्रोध मिट गया, शांत मन अर शांत मुख होय गए। वज्रजंघ कुमारनिके समीप आया अर सब राजा आए, कुमारनिके अर पृथु के प्रीति भई। जे उत्तम पुरुष हैं वे प्रणाममात्र ही करि प्रसन्नताकूं प्राप्त होय हैं। जैसें नदीका प्रवाह नम्रीभूत जे बेल तिनकूं न उपाडै अर जे महावृक्ष नम्रीभूत नाहीं तिनकूं उपाडै फिर पृथु राजा वज्रजंघकूं अर दोऊ कुमारनिकूं नगरविषैं लेगया, दोऊ कुमार आनंद के कारण। मदनांकुशकूं अपनी कन्या कनकमाला महाविभूति सहित पृथु ने परणाई, एक रात्री यहां रहे। फिर ये दोऊ भाई विचक्षण दिग्विजय करिवेकूं निकसे, सुह्मदेश मगध-देश अंगदेश बंगदेश जीति पोदनापुर के राजाकूं आदि दे अनेक राजा संग लेय लोकाक्ष नगर गए। वा तरफ के बहुत देश जीते। कुवेरकांत नामा राजा अतिमानी ताहि ऐसा बल

किया जैसें गरुड नागकूं जीतै। सत्यार्थपर्वतें दिन दिन इनके सेना बढ़ी, हजारों राजा वश भए अर सेवा करने लगे। फिर लंपाक देश गए, वहां करण नामा राजा अति प्रबल ताहि जीत कर विजयस्थलकूं गए, वहां के राजा सौ भाई तिनकूं अवलोकनमात्रतें ही जीति गंगा उतर कैलाश की उत्तर दिशा गए, वहांके राजा नानाप्रकार की भेंट ले आय मिले। भष कुन्तल नामा देश तथा कालांबु नंदि नंदन सिंहल शलभ अनल चल भीम भूतरव इत्यादि अनेक देशाधिपतिनिकूं वशकर सिंधु नदी के पार गए, समुद्र के तट के अनेक राजानिकूं नमाए, अनेक नगर अनेक खेट अनेक मटंब अनेक देश वश किए, भीरुदेश यवन कच्छ चारव त्रिजट नट शक करेल नेपाल मालव अरल शर्वर त्रिशिर वृषाण वैद्य काश्मीर हिंडिब अवष्ठ वर्वर पारशैल गोशाल कुसीनर सूर्यारक सनर्त खश विन्ध्य शिखापद मेखल शूरसेन बाल्हीक उलूक कौशल गांधार सावीर कौवीर कोहर अन्ध्र काल कलिंग इत्यादि अनेक देश वश किए। कैसे हैं देश ? जिन विषैं नाना प्रकार की भाषा अर वस्त्रनिका भिन्न२ पहराव अर जुदे २ गुण नाना प्रकार के रत्न अर अनेक जाति के वृक्ष जिन विषैं अर नाना प्रकार स्वर्ण आदि धन के भरे।

कैयक देशनिके राजा प्रताप हीतैं आय मिले, कैयक युद्ध विषैं जीति वश किए, कैयक भाग गए, बड़े २ राजा देशपति अति अनुरागी होय लवणांकुश के आज्ञाकारी होते भए, इनकी आज्ञा-प्रमाण पृथ्वी विषैं विचरैं। वे दोनों भाई पुरुषोत्तम पृथ्वीकूं जीत हजारों राजनिके शिरोमणि होते भए, सबनिकूं वशकर लार लिए। नाना प्रकार सुन्दर कथा करते, सब का मन हरते, पुण्डरीकपुरकूं उद्यमी भए, वज्रजंघ लार ही है। अति हर्षके भरे अनेक राजनिकी अनेक प्रकार भेंट आई सो महाविभूतिकूं लिए अति सेवा कर मंडित पुण्डरीकपुर के समीप आए। सीता सतखणे महल चढ़ी देखै है, राज लोक की अनेक रानी समीप हैं अर उत्तम सिंहासन पर तिष्ठै हैं, दूर से आती सेना की रजके पटल उठे देख सखीजनसूं पूछती भई-यह दिशा विषैं रजका उड़ाव कैसा है। तब तिनने कही-हे देवी ! सेनाकी रज है। जैसें जलविषैं मकर किलोल करै तैसें सेना विषैं अश्व उछलते आवैं हैं। हे स्वामिनि ! ये दोनों कुमार पृथ्वी वशकर आए, या भांति सखीजन कहै हैं। अर बधाई देनहारे आए, नगर की अति शोभा भई, लोकनिकूं अति आनन्द भया, निर्मल ध्वजा चढ़ाई, समस्त नगर सुगन्ध कर छांटा अर वस्त्र आभूषणनिकर शोभित किया, दरवाजे पर कलश थापे सो कलश पल्लवनिकरि ढके। अर ठौर २ वंदनमाला शोभायमान दिखती भई अर हाट बाजार पाटंबरादि वस्त्र कर शोभित भए। जैसी श्रीराम लक्ष्मण के आए अयोध्या की शोभा भई हुती तैसें ही पुण्डरीकपुरकी शोभा कुमारनिके आएसूं भई। जादिन महाविभूतिसूं प्रवेश किया तादिन नगर के लोकनिकूं जो हर्ष भया

सो कहिवेविषें न आवै। दोऊ पुत्र कृतकृत्य तिनकूं देखकर सीता आनन्द के सागर विषें मग्न भई, दोऊ वीर महा धीर आयकर हाथ जोड़ माताकूं नमस्कार करते भए, सेवाकी रजकर धूसरा है अंग जिनका, सीताने पुत्रनिकूं उरसूं लगाय माथे हाथ धरा, माताकूं अति आनन्द उपजाय दोऊ कुमार चांद सूर्य की न्याईं लोक विषें प्रकाश करते भए।

इति श्री रविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें लवणांकुश का दिग्विजय वर्णन करने वाला एकसौ एकवाँ पर्व पूर्ण भया ॥१०१॥

एकसौ दोवाँ पर्व

(लवण अंकुश का राम लक्ष्मण के साथ युद्ध)

अथानन्तर ये उत्तम मानव परम ऐश्वर्य धारक प्रबल राजानि पर आज्ञा करते सुखसूं तिष्ठैं। एक दिन नारद ने कृतांतवक्रकूं पूछी कि तू सीताकूं कहां मेल आया? तब ताने कही कि सिंहनाद अटवी विषें मेली। सो यह सुनकर अति व्याकुल होय ढूंढता फिरै था सो दोऊ कुमार वनक्रीडा करते देखे। तब नारद इनके समीप आया, कुमार उठकर सन्मान करते भए। नारद इनकूं विनयवान् देख बहुत हर्षित भया अर असीस दई जैसें राम लक्ष्मण नरनाथ के लक्ष्मी है तैसी तुम्हारे होहु। तब ये पूछने भए कि हे देव! राम लक्ष्मण कौन हैं अर कौन कुल विषें उपजे हैं अर कहा उन विषें गुण हैं अर कैसा तिनका आचरण है? तब नारद क्षण एक मौन पकड़ कहते भए–हे दोऊ कुमारो! कोई मनुष्य भुजानिकर पर्वतकूं उखाड़ै अथवा समुद्रकूं तिरै तौहू राम लक्ष्मण के गुण न कहि सकै, अनेक वदननिकर दीर्घ काल तक तिनके गुण वर्णन करै तौ भी राम लक्ष्मण के गुण कह न सकै तथापि मै तिहारे वचनसूं किंचित्मात्र वर्णन करूं हूं, तिनके गुण पुण्य के बढ़ावनहारे हैं।

अयोध्यापुरी विषें राजा दशरथ होते भए, दुराचाररूप ईंधन के भस्म करिवेकूं अग्नि समान अर इक्ष्वाकुवंशरूप आकाश विषे चन्द्रमा, महा तेजोमय सूर्य-समान सकल पृथ्वी विषें प्रकाश करते अयोध्या विषें तिष्ठै, वे पुरुषरूप पर्वत तिनकरि कीर्तिरूप नदी निकसी, सो सकल जगतकूं आनन्द उपजावती समुद्र पर्यन्त विस्तारकूं धरती भई। ता दशरथ भूपतिके राज्य भारके धुरन्धर चार पुत्र महा गुणवान भए, एक राम दूजा लक्ष्मण तीजा भरत चौथा शत्रुघ्न। तिन विषें राम अति मनोहर सर्वशास्त्र के ज्ञाता पृथ्वी विषें प्रसिद्ध सो छोटे भाई लक्ष्मण सहित अर जनककी पुत्री जो सीता ता सहित पिताकी आज्ञा पालवे निमित्त अयोध्याकूं तज पृथ्वी विषे विहार करते दंडकवन विषें प्रवेश करते भए। सो स्थानक महाविषम जहां विद्याधरनिके गम्यता नाहीं, खरदूषणतें संग्राम भया, रावण ने सिंहनाद किया, ताहि सुनकर लक्ष्मणकी सहाय करिवेकूं राम गया, पीछेसूं सीताकूं रावण हर

ले गया। तब रामसूं सुग्रीव हनुमान विराधित आदि अनेक विद्याधर मेले भए । राम के गुणनिके अनुराग करि वशीभूत है हृदय जिनका सो विद्याधरनिकूं लेयकरि राम लंकाकूं गए, रावणकूं जीत सीताकूं लेय अयोध्या आए। स्वर्गपुरी समान अयोध्या विद्याधरनिने बनाई तहाँ राम लक्ष्मण पुरुषोत्तम नागेंद्र समान सुखसूं राज्य करैं। रामकूं तुम अब तक कैसे न जाना ? जाके लक्ष्मणसा भाई ताके हाथ सुदर्शन चक्र सो आयुध जाके, एक २ रत्न की हजार देव सेवा करैं ऐसे सात रत्न लक्ष्मण के अर चार रत्न रामके। जाने प्रजाके हित-निमित्त जानकी तजी ता रामकूं सकल लोक जानै, ऐसा कोई पृथ्वी विषैं नाहीं जो रामकूं न जाने। या पृथ्वी की कहा बात ? स्वर्ग विषैं देवनिके समूह राम के गुण वर्णन करैं हैं।

तब अंकुश ने कही–हे प्रभो ! रामने जानकी काहे तजी सो वृत्तांत मैं सुना चाहूं हूँ। तब सीता के गुणनिकर धर्मानुराग में है चित्त जाका ऐसा नारद सो आंसू डार कहता भया--हे कुमार हो! वह सीता सती महा कुल विषै उपजी शीलवती गुणवति पतिव्रता श्रावक के आचार विषै प्रवीण राम की आठ हजार रानी तिनकी शिरोमणि, लक्ष्मी कीर्ति धृति लज्जा तिनकूं अपनी पवित्रतातैं जीतकर साक्षात् जिनवाणी तुल्य। सो कोई पूर्वोपार्जित पापके प्रभाव कर मूढ लोक अपवाद करते भए तातैं रामने दुःखित होय निर्जन वनविषैं तजी। खोटे लोक तिनकी वाणी सोई भई जेठ के सूर्य की किरण ताकर तप्तायमान वह सती कष्टकूं प्राप्त भई। महासुकुमार जा विषै अल्प भी खेद न सहार पड़े, मालती को माला दीप के आतापकरि मुरझाय सो दावानल का दाह कैसे सहार सकै, महा भाम वन जा विषै अनेक दुष्ट जीव तहा सीता कैसे प्राणनिकूं धरै, दुष्ट जीवनिकी जिह्वा भुजंग समान निरपराध प्राणनिकूं क्यों डसै ? शुभ जीवनिकी निन्दा करके दुष्टनिके जीभके सौ टूक क्यों न होवें। वह महा सती पतिव्रतानिकी शिरोमणि पटुता आदि अनेक गुणनिकर प्रशंसा योग्य अत्यंत निर्मल महासती, ताकी जो निंदा करैं सो या भव अर परभव विषैं दुःखकूं प्राप्त होंय। ऐसा कहकरि शोकके भार कर मौन गहि रहा, विशेष कछू कह न सक्या। यह सुनकर अंकुश बोले–हे स्वामी! भयंकर वन विषैं रामने सीताकूं तजते भला न किया, यह कुलवंतों की रीति नाहीं है, लोकापवाद निवारिवेके और अनेक उपाय हैं, ऐसा अविवेकका कार्य ज्ञानवंत क्यों करैं। अंकुशने तो यही कही अर अनंगलवण बोल्या कि यहांसूं अयोध्या के तीक दूर है ?

तब नारद कही–यहां से एकसौ साठ योजन है जहाँ राम विराजै हैं। तब दोऊ कुमार बोले–हम राम लक्ष्मणपर जावेंगे। या पृथ्वीविषैं ऐसा कौन जाकी हमारे आगे प्रबलता ? यह नारदसूं कही। अर वज्रजंघसूं कही–हे मामा ! सुह्मदेश सिंधदेश कलिंग-देश इत्यादि देशनिके राजानिकूं आज्ञापत्र पठावहु कि वे संग्राम का सब सरंजाम लेकर

शीघ्र ही आवें, हमारा अयोध्या की तरफ कूच है। अर हाथी समारो—मदोन्मत्त केते अर विमंद केते अर घोड़े वायु समान है वेग जिनका सो संग लेवहु अर जे योधा रणसंग्राम विषैं विख्यात कभी पीठ न दिखावें तिनकूं लार लेवहु, सब शस्त्र सम्हारो, बक्तरनिकी मरम्मत करावहु अर युद्धके नगाड़े दिवावहु, ढोल बजावहु, शंखनिके शब्द करावहु, सब सामंतनिकूं युद्धका विचार प्रगट करहु। यह आज्ञा कर दोऊ वीर मन विषैं युद्ध का निश्चय करि तिष्ठे मानो दोऊ भाई इन्द्र ही हैं। देवनि समान देशपति राजा तिनकूं एकत्र करिवेकूं उद्यमी भए। तब राम लक्ष्मण पर कुमारनिकी असवारी सुनि सीता रुदन करती भई। अर सीता के समीप नारदकूं सिद्धार्थ कहता भया—यह अशोभन कार्य तुम कहा आरंभा? रण विषैं उद्यम करिवे का है उत्साह जिनके ऐसे तुम सो पिता अर पुत्रविषैं क्यों विरोधका उद्यम किया? अब काहू भांति यह विरोध निवारो, कुटुम्बभेद करना उचित नाहीं। तब नारद कही-मैं तो ऐसा कछू जान्या नाहीं, इनने विनय किया, मैं आसीस दई कि तुम राम लक्ष्मण से होवहु। इनने सुनकर पूछी-राम लक्ष्मण कौन हैं? मैं सब वृत्तांत कहा, अब भी तुम भय न करहु, सब नीके ही होयगा, अपना मन निश्चल करहु। कुमारनि सुनी कि माता रुदन करै है तब दोनों पुत्र माताके पास आय कहते भए-हे मात! तुम रुदन क्यों करो हो सो कारण कहहु। तिहारी आज्ञाकूं कौन लोपै, असुन्दर वचन कौन कहै ता दुष्ट के प्राण हरें। ऐसा कौन है जो सर्प की जीभतें क्रीडा करै, ऐसा कौन मनुष्य अर देव है जो तुमकूं असाता उपजावै? हे मात! तुम कौनपर कोप किया है? जापर तुम कोप करहु ताकूं जानिए आयुका अन्त आया है। हम पर कृपाकर कोप का कारण कहहु। या भांति पुत्रनि विनती करी तब माता आंसू डार कहती भई-हे पुत्र मैं काहू पर कोप न किया, व मुझे काहू ने असाता दई, तिहारा पितासूं युद्धका आरंभ सुनि मैं दुःखित भई रुदन करूं हूं। गौतम स्वामी कहै हैं—हे श्रेणिक! तब पुत्र मातासूं पूछते भए कि हे माता! हमारा पिता कौन? तब सीता आदिसूं लेय सब वृत्तांत कहा। रामका वंश अर अपना वंश, विवाहका वृत्तांत अर वनका गमन, अपना रावणकर हरण अर आगमन, जो नारद ने वृत्तांत कह्या हुता सो सब विस्तारसूं कह्या, कछु छिपाय न राख्या। अर कही-तुम गर्भ विषैं आए तब ही तिहारे पिता ने लोकापवादका भय कर मुझे सिंहनाद अटवी विषैं तजी। तहां मैं रुदन करती सो राजा वज्रजंघ हाथी पकड़वे गया हुता सो हाथी पकड़ बाहुडे था, वोही रुदन करती देखी सो महा धर्मात्मा शीलवन्त श्रावक मोहि महा आदरसूं ल्याय बड़ी बहिन का आदर जनाया अर अति सन्मानतें यहां राखी। मैं भाई भामंडल समान याका घर जान्या। तिहारा यहाँ सन्मान भया, तुम श्रीराम के पुत्र हो, राम महाराजाधिराज हिमाचल पर्वतसूं लेय समुद्रांत पृथ्वी

का राज्य करैं हैं, जिनके लक्ष्मणसा भाई महा बलवान् संग्राम विषैं निपुण है। न जानिए नाथकी अशुभ वार्ता सुनूं अक तिहारी अथवा देवरकी, तातैं आर्तचित्त भई रुदन करूं हूं, और कोऊ कारण नाहीं। तब यह सुनकर पुत्र प्रसन्नवदन भए अर मातासूं कहते भए-हे माता! हमारा पिता महा धनुषधारी लोकविषैं श्रेष्ठ लक्ष्मीवान् विशालकीर्ति का धारक है अर अनेक अद्भुत कार्य किए हैं परन्तु तुमकूं वन विषैं तजी सो भला न किया, तातैं हम शीघ्र ही राम लक्ष्मणका मान भंग करेंगे, तुम विषाद मत करहु। तब सीता कहती भई-हे पुत्र हो! ये तिहारे गुरुजन हैं, उनसूं विरोध योग्य नाहीं, तुम चित्त सौम्य करहु। महा विनयवन्त होय जायकर पिताकूं प्रणाम करहु, यह ही नीति का मार्ग है।

तब पुत्र कहते भए-हे माता! हमारा पिता शत्रुभावकूं प्राप्त भया, हम कैसें जाय प्रणाम करैं अर दीनता के वचन कैसें कहैं? हम तो माता तिहारे पुत्र हैं, तातैं रणसंग्राम विषैं हमारा मरण होय तो होवो परन्तु योधानि से विन्द्य कायर वचन तो हम न कहैं। यह वचन पुत्रनिके सुन सीता मौन पकड़ रही परन्तु चित्तमें चिन्ता है। दोऊ कुमार स्नानकर, भगवान्की पूजाकरि, मंगलपाठ पढ़, सिद्धनिकूं नमस्कारकरि, सीताकूं धैर्य बंधाय प्रणामकरि दोऊ महामंगलरूप हाथी पर चढ़े मानों चांद सूर्य गिरिके शिखर तिष्ठे हैं, अयोध्या ऊपर युद्धकूं उद्यमी भए जैसे राम लक्ष्मण लंका ऊपर उद्यमी भए हुते। इनका कूच सुन हजारों योधा पुंडरीकपुरसूं निकसे, सबही योधा अपना २ हल्ला देते भए। वह जाने मेरी सेना अच्छी दीखै है, वह जाने मेरी, महाकटक संयुक्त नित्य एक योजन कूच करैं सो पृथ्वी की रक्षा करते चले जांय हैं, किसीका कछू उजाड़ैं नाहीं। पृथ्वी नाना प्रकार के धान्यकरि शोभायमान् है, कुमारनिका प्रताप आगे आगे बढ़ता जाय है, मार्ग के राजा भेंट दे मिलैं हैं, दस हजार बेलदार कुदाल लिए आगे आगे चले जाय हैं अर धरती ऊंची नीचीकूं सम करैं हैं अर कुल्हाड़े हैं हाथ विषैं जिनके वे भी आगे आगे चले जाय हैं अर हाथी ऊंट भैंस बलद खच्चर खजाने के लदे जाय हैं, मंत्री आगे आगे चले जाय हैं अर पियादे हिरण की न्याइं उछलते जाय हैं अर तुरंगनिके असवार अति तेजी से चले जाय हैं, तुरंगनिकी हींस होय रही है, अर गजराज चले जाय हैं, जिनके स्वर्ण की सांकल अर महा घंटानिका शब्द होय अर जिनके कानों पर चमर शोभैं हैं अर शंखनि की ध्वनि होय रही है अर मोतिनिकी झालरी पानी के बुदबुदा समान अत्यन्त सोहै है अर सुन्दर हैं आभूषण जिनके, महा उद्धत, जिनके उज्ज्वल दांतनिके स्वर्ण आदिक बंध बंधे हैं अर रत्न स्वर्ण आदिककी माला तिनकरि शोभायमान चलते पर्वत समान नाना प्रकार के रंगसूं रंगे अर जिनके मद झरै है अर कारी घटा समान श्याम प्रचंड वेगकूं धरैं, जिनपर पाखरपरी हैं, नाना प्रकार के शस्त्रनिकरि शोभित हैं अर गर्जना करैं हैं अर जिन पर महादीप्ति के

धारक सामन्त लोक चढ़े हैं अर महाव्रतनिने अति सिखाए हैं, अपनी सेना का अर पर सेना का शब्द पिछानैं हैं, सुन्दर है चेष्टा जिनकी। अर घोड़ानिके असवार बख्तर पहिरे खेट नामा आयुधनिकूं धरे, बरछी हैं जिनके हाथविषें, घोड़ानिके समूह तिनके खुरनिके घातकर उठी जो रज ताकरि आकाश व्याप्त होय रह्या है, ऐसा सोहै है मानों सुफेद बादलनिसूं मंडित है। अर पियादे शस्त्रनिके समूहकरि शोभित अनेक चेष्टा करते गर्व से चले जाय हैं, वह आवे मैं आगे चलूं वह जाने मैं। अर शयन आसन तांबूल सुगन्ध माला महामनोहर वस्त्र आहार विलेपन नाना प्रकार की सामग्री बटती जाय है ताकरि सबही सेना के लोक सुख-रूप हैं, काहूकूं काहू प्रकार का खेद नाहीं। अर मजल मंजलपै कुमारनिकी आज्ञाकरि भले २ मनुष्यनिकूं लोक नाना प्रकार की वस्तु देवै हैं, उनकूं यही कार्य सौंप्या है सो बहुत सावधान हैं, नाना प्रकार के अन्नजल मिष्टान लवण घृत दुग्ध दही अनेक रस भांति २ की खानेकी वस्तु आदरसूं देवें हैं, समस्त सेना विषें कोई दीन बुभुक्षित तृषातुर कुवस्त्र मलिन चितावान् दृष्टि नाहीं पड़ै है। सेनारूप समुद्र में नर नारी नाना प्रकारके आभरण पहिरे, सुन्दर वस्त्रनिकर शोभायमान, महा रूपवान अति हर्षित दीखैं। या भांति महा विभूति कर मण्डित सीता के पुत्र चले चले अयोध्याके देश विषै आए मानों स्वर्गलोक विषै इन्द्र आए। जो देश विषै यव गेहूँ चावल आदि अनेक धान्य फल रहे हैं अर पौंड़े सांठेनिके बाड़े ठौर ठौर शोभै हैं, पृथ्वी अन्न जल तृण कर पूर्ण है अर जहां नदीनिके तीर हू मुनि के समूह क्रीडा करैं हैं अर कमलनिके सरोवर शोभायमान हैं अर पर्वत नाना प्रकार के पुष्पनिकर सुगंधित होय रहे हैं अर गीतनिकी ध्वनि ठौर २ होय रही है अर गाय भैंस बलधनिके समूह विचर रहे हैं अर ग्वालणी विलोवणा विलोवै हैं, जहां नगरनि सारिखे नजीक नजीक ग्राम हैं अर नगर ऐसे शोभैं हैं मानों सुरपुर ही हैं। महा तेजकरि युक्त लवणांकुश देश को शोभा देखते अति नीतिसे आए, काहूकूं काहू ही प्रकारका खेद न भया, हाथिनिके मद झरिवेकरि पंथ विषैं रज दब गई, कीच होय गई। अर चंचल घोड़निके खुरनिके घातकरि पृथ्वी जर्जर होय गई। चले चले अयोध्याके समीप आए, दूरसे संध्याके बादलनिके रंग समान अति सुन्दर अयोध्या देख वज्रजंघकूं पूछी—हे माम! यह महा ज्योतिरूप कौनसी नगरी है। तब वज्रजंघ ने निश्चयकर कही—हे देव! यह अयोध्या नगरी है, जाके स्वर्णमई कोट तिनकी यह ज्योति भासै है, या नगरी विषैं तिहारा पिता बलदेव स्वामी विराजै है, जाके लक्ष्मण अर शत्रुघ्न भाई; या भांति वज्रजंघने कही। अर दोऊ कुमार शूरवीरता की कथा करते हुए सुखसूं आय पहुंचे। कटक के अर अयोध्या के बीच सरयू नदी रही। दोऊ भाईनिके यह इच्छा कि शीघ्र ही नदी को उतर नगरी लेवै। जैसे कोई मुनि शीघ्र ही मुक्त हुवा चाहै ताहि मोक्ष की

आशारूप नदी यथाख्यातचारित्र होने न देय। आशारूप नदीकूं तिरै तब मुनि मुक्त होय तैसे सरयू नदी के योगसे शीघ्र ही नदीतैं पार उतरि नगरी विषैं न पहुच सके। तब जैसे नन्दन वन विषैं देवनिकी सेना उतरै तैसे नदी के उपवनादि विषैं ही कटक डेरा कराए।

अथानन्तर परसेना निकट आई सुन राम लक्ष्मण आश्चर्यकूं प्राप्त भए अर दोनों भाई परस्पर बतलावैं कि ये कोई युद्ध के अर्थ हमारे निकट आए हैं सो मूवा चाहै हैं। वासुदेवने विराधितकूं आज्ञा करी—युद्ध के निमित्त शीघ्र ही सेना मेली करो, ढील न होय। जिन विद्याधरनिके कपियों की ध्वजा अर हाथिनिकी ध्वजा अर बैलनिकी ध्वजा, सिंहनिकी ध्वजा इत्यादि अनेक भांतिकी ध्वजा तिनकूं वेग बुलाओ। तब विराधितने कही—जो आज्ञा होयगी सोई होयगा। उसही समय सुग्रीवादिक अनेक राजाओं पर दूत पठाए सो दूतके देखवेमात्र ही सर्व विद्याधर बड़ी सेनासूं अयोध्या आए। भामंडल भी आया सो भामंडलकूं अत्यन्त आकुलित देख शीघ्र ही सिद्धार्थ अर नारद जायकर कहते भए—ये सीताके पुत्र हैं, सीता पुण्डरीकपुर विषै है। तब यह बात सुनकर वह बहुत दु:खित भया अर कुमारों के अयोध्या आयवे पर आश्चर्यकूं प्राप्त भया अर इनका प्रताप सुन हर्षित भया। मन के वेग समान जो विमान उसपर चढ़कर परिवारसहित पुंडरीकपुर गया, बहिनसूं मिला। सीता भामंडलकूं देख अति मोहित भई आंसू नाखती संती विलाप करती भई अर अपने ताईं घरसूं काढ़ने का अर पुण्डरीकपुर आवे का सब वृत्तांत कह्या। तब भामंडल बहिन को धैर्य बंधाय कहता भया—हे बहिन! तेरे पुण्य के प्रभावसूं सब भला होयगा। अर कुमार अयोध्या गए सो भला न किया, जायकर बलभद्र नारायण कूं क्रोध उपजाया। राम लक्ष्मण दोनों भाई पुरुषोत्तम देवों से भी न जीते जांय ऐसे महा योधा हैं अर कुमारों के अर उनके युद्ध न होय सो ऐसा उपाय करें, इसलिए तुमहू चलो।

तब सीता पुत्रों की बधूसंयुक्त भामंडल के विमान विषैं बैठी चली। राम-लक्ष्मण महा क्रोधकर रथ घोटक गज पियादे देव विद्याधर तिनकर मंडित समुद्र समान सेना लेय बाहिर निकसे अर घोड़ानिके रथ चढ़ा शत्रुघ्न महा प्रतापी, मोतिनके हारकर शोभायमान है वक्षस्थल जाका सो रामके संग भया। अर कृतांतवक्र सब सेना का अग्रेसर भया जैसैं इन्द्र की सेना का अग्रगामी हृदयकेशी नामा देव होय। उसका रथ अत्यंत सोहता भया, देवनिके विमान समान जिसका रथ सो सेनापति चतुरंग सेना लिए अतुलबली अतिप्रतापी महाज्योतिकूं धरे धनुष चढ़ाय बाण लिए चला जाय है, जिसकी श्याम ध्वजा शत्रुवों से देखी न जाय। उसके पीछे त्रिमूर्द्ध, वह्निशिख, सिंह विक्रम, दीर्घभुज, सिंहोदर, सुमेरु, बालखिल्य, रौद्रभूत, जिसके अष्टापदों के रथ, वज्रकर्ण, पृथु, मारदमन मृगेंद्रदमन इत्यादि पांच हजार नृपति कृतांतवक्र के संग अग्रगामी भए, बन्दीजन बखानै हैं विरद जिनके।

अर अनेक रघुवंशी कुमार, देखे हैं अनेक रण जिन्होंने, शस्त्रों पर है दृष्टि जिनकी, युद्ध का है उत्साह जिनके, स्वामिभक्ति विषैं तत्पर, महाबलवान्, धरतीकूं कंपाते शीघ्रही निकसे। कैयक नाना प्रकार के रथों पर चढ़े, कैयक पर्वत समान ऊंचे कारी घटा समान हाथिनि पर चढ़े, कैयक समुद्र की तरंग समान चंचल तुरंग तिनपर चढ़े, इत्यादि अनेक वाहनों पर चढ़े युद्धकूं निकसे। वादित्रों के शब्दोंकर करी है व्याप्त दसों दिशा जिन्होंने, बखतर पहिरे टोप धरे क्रोधकर संयुक्त है चित्त जिनका। तब लव अंकुश परसेना का शब्द सुन युद्धकूं उद्यमी भए। वज्रजंघकूं आज्ञा करी, कुमारकी सेना के लोक युद्ध के उद्यमी हुवे ही। प्रलयकालकी अग्नि समान महाप्रचंड अंग देश बंग देश नेपाल बर्बर देश पौंड्र मागध पारसेल सिंहल कलिंग इत्यादि अनेक देशनिके राजा रत्नांककूं आदि दे महाबलवंत ग्यारह हजार राजा उत्तम तेज के धारक युद्ध के उद्यमी भए। दोनों सेनानिका संघट्ट भया, दोनों सेनानिके संगमविषैं देवनिकूं असुरनिकूं आश्चर्य उपजै ऐसा महा भयंकर शब्द भया जैसा प्रलयकाल का समुद्र गाजै। परस्पर ये शब्द होते भए-क्या देख रह्या है, प्रथम प्रहार क्यों न करै, मेरा मन तोपर प्रथम प्रहार करिवेकूं नाहीं तातैं तू ही प्रथम प्रहार कर। अर कोई कहै है एक डिग आगे होवो जो शस्त्र चलाऊं। कोई अत्यंत समीप होय गए तब कहै हैं-खंजर तथा कटारी हाथ लेवो, निपट नजीक भए बाणका अवसर नाहीं। कोई कायरकूं देख कहैं हैं, तु क्यों कांपै है, मैं कायरकूं न मारूं, तू परे हो, आगैं महा-योधा खड़ा है उससे युद्ध करने दे। कोई वृथा गाजै है उसे सामंत कहै हैं–हे क्षुद्र ! कहा वृथा गाजै है, गाजने विषैं सामंतपना नाही, जो तो विषैं सामर्थ्य है तो आगे आ, तेरी रण की भूख भगाऊं। इस भांति योधानिविषैं परस्पर वचनालाप होय रहे हैं, तलवार वहै है, भूमि गोचरी विद्याधर सबही आए हैं, भामंडल पवनवेग वीर मृगांक विद्युद्ध्वज इत्यादि बड़े राजा विद्याधर बड़ी सेनाकर युक्त, महा रणविषैं प्रवीण। सो लवण अंकुशके समाचार सुन युद्ध से परान्मुख शिथिल होय गए अर सब बातों विषैं प्रवीण हनुमान सो भी सीता-पुत्र जान युद्धसूं शिथिल होय रहा। अर विमान के शिखरविषैं आरुढ़ जानकीकूं देख सब ही विद्याधर हाथ जोड़ शीस नवाय प्रणाम कर मध्यस्थ होय रहे। सीता दोनों सेना देख रोमांच होय आई, कांपै है अंग जाका। लवण अंकुश, लहलहाट करैं हैं ध्वजा जिनकी, राम-लक्ष्मणसूं युद्धकूं उद्यमी भए। रामके सिंहकी ध्वजा, लक्ष्मण के गरुड की सो दोनों कुमार महायोधा राम लक्ष्मणसूं युद्ध करते भए। लवण तो राम से लड़ैं अर अंकुश लक्ष्मण से लड़ैं। सो लवणने आवते ही श्रीराम की ध्वजा छेदी अर धनुष तोड़ा। तब राम हंसकर और धनुष लेयवेकूं उद्यमी भए। इतने विषैं लवण ने राम का रथ तोड़ा। तब राम और रथ चढ़े, प्रचंड है पराक्रम जिनका, क्रोधकर भृकुटी चढ़ाय ग्रीष्म के सूर्य-समान तेजस्वी

जैसें चमरेन्द्र पर इन्द्र जाय तैसें गए। तब जानकी का नन्दन लवण युद्ध की पाहुवयति करनेकूं राम के सन्मुख आया, रामके अर लवण के परस्पर महायुद्ध भया। वाने वाके शस्त्र छेदे वाने वाके, जैसा युद्ध राम अर लवण का भया तैसाही अंकुश अर लक्ष्मण का भया। या भाँति परस्पर दोवों युगल लड़े तब योधा भी परस्पर लड़े, घोड़ों के समूह रणरूप समुद्र की तरंग समान उछलते भए। कोई इक योधा प्रतिपक्षीकूं टूटे बखतर देख दयाकर मौन गह रह्या अर कईयक योधा घने करते पर सेना विषैं पैठे सो स्वामी का नाम उचारते परचक्र से लड़ते भए, कईयक महाभट माते हाथियों से भिड़ते भए, कईयक हाथियों के दांतरूप सेजपर रण-निद्रा सुखसूं लेते भए, काहूएक महाभट का तुरंग काम आया सो पियादा ही लड़ने लगा, काहूके शस्त्र टूट गए तो पीछे न होता भया, हाथों से मुष्टिप्रहार करता भया। अर कोई इक सामंत बाण चलाता चूक गया, उसे प्रतिपक्षी कहता भया कि चलाय सो लज्जाकर न चलावता भया। अर कोईइक निर्भय चित्त प्रतिपक्षीकूं शस्त्र रहित देख आप भी शस्त्र तज भुजाओं से युद्ध करता भया, ते योधा बड़े दाता रणसंग्रामविषैं प्राण देते भए परन्तु पीठ न देते भए। जहाँ रुधिर की कीच होय रही है सो रथों के पहिए डूब गए हैं, सारथी शीघ्र वाहीं चला सकें हैं। परस्पर शस्त्रों के संपात कर अग्नि पड़ रही है अर हाथियों की सूंड के छांटे उछलें हैं। सामन्तों ने हाथियों के कुम्भस्थल विदारे हैं अर सामंतनिके उरस्थल विदारे हैं, हाथी काम आय गए हैं तिन कर मार्ग रुक रहा है अर हाथियों के मोती बिखर रहे हैं। वह युद्ध महा भयंकर होता भया जहां सामंत अपना सिर देयकर यशरूप रत्न खरीदते भए, जहां मूर्च्छितपर कोई घात नहीं करै अर निर्बल पर घात न करै, सामंतों का है युद्धजहाँ, महायुद्ध के करणहारे योधा जिनके जीवनेकी आशा नाहीं, क्षोभकूं प्राप्त भया समुद्र गाजै तैसा होय रह्या है शब्द जहाँ सो वह संग्राम समरस कहिए समान रस होता भया।

भावार्थ—न वह सेना हटी, न वह सेना हटी, योधाविषैं न्यूनाधिकता परस्पर दृष्टि न पड़ी। कैसे हैं योधा? स्वामी विषैं है परम भक्ति जिनकी अर स्वामी ने आजीवि का दई थी उसके बदले वह जीवन दिया चाहैं हैं, प्रचण्ड रण की है खाज जिनके, सूर्य समान तेजकूं धरे संग्राम के धुरंधर होते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं लवणांकुश का लक्ष्मण से युद्ध वर्णन करने वाला एकसौ दोवां पर्व पूर्ण भया ॥१०२॥

एकसौ तीन वां पर्व

(राम लक्ष्मण का लवण अंकुश के साथ परिचय)

अथानन्तर गौतम स्वामी कहैं हैं—हे श्रेणिक! अब जो वृत्तांत भया सो सुनो।

अनंगलवण के तो सारथी राजा वज्रजंघ अर मदनांकुश के राजा पृथु अर लक्ष्मण के विराधित अर रामके कृतांतवक्र। तब श्रीराम वज्रावर्त धनुषकूं चढायकर कृतांतवक्रसूं कहते भए-अब तुम शीघ्र ही शत्रुओंपर रथ चलावो, ढील न करो। तब वह कहता भया-हे देव ! देखो यह घोड़े नरवीर के बाणनिकर जरजरे होय रहे हैं, इन विषैं तेज नाहीं मानो निद्राकूं प्राप्त भए हैं, ये तुरंग लोहूकी धाराकर धरतीकूं रंगें हैं मानों अपना अनुराग प्रभुकूं दिखावैं हैं अर मेरी भुजा इसके बाणनिकर भेदी गई है, बक्तर टूट गया है। तब श्रीराम कहते भए–मेरा भी धनुष युद्धकर्मरहित ऐसा होय गया है मानों चित्राम का धनुष है अर यह मूसल भी कार्यरहित होय गया है अर दुर्निवार जे शत्रुरूप गजराज तिनकूं अंकुश समान यह हल सो भी शिथिलताकूं भजै है, शत्रु के पक्षकूं भयंकर मेरे अमोघशस्त्र जिनकी सहस्र २ यक्ष रक्षा करें वे शिथिल होय गए हैं, शस्त्रोंकी सामर्थ्य नाहीं जो शत्रुपर चलै। गौतमस्वामी कहैं हैं–हे श्रेणिक ! जैसें अनंगलवण के आगे रामके शस्त्र निरर्थक होय गए तैसें ही मदनांकुशके आगे लक्ष्मण के शस्त्र कार्य रहित होय गए। वे दोनों भाई तो जानैं कि ये राम लक्ष्मण तो हमारे पिता अर पितृव्य (चचा) हैं सो वे तो इनका अंग बचाय शर चलावैं अर ये उनको जानैं नाहीं सो शत्रु जानकर शर चलावैं। लक्ष्मण दिव्यास्त्र की सामर्थ्य उनपर चलिवे की न जान शर शेल सामान्य चक्र खड्ग अंकुश चलावता भया सो अंकुशने वज्रदन्डकर लक्ष्मणके आयुध निराकरण किए अर राम के चलाए आयुध लवण ने निराकरण किए। फिर लवणने राम की ओर शेल चलाया अर अंकुशने लक्ष्मण पर चलाया सो ऐसी निपुणतासे जो दोनोंके मर्मकी ठौर न लागे, सामान्य चोट लगी सो लक्ष्मण के नेत्र घूमने लगे। विराधितने अयोध्या की ओर रथ फेरा तब लक्ष्मण सचेत होय कोपकर विराधितसूं कहता भया-हे विराधित ! तैंने क्या किया जो मेरा रथ फेरया। अब पीछे बहुरि शत्रु का सन्मुख लेवो, रण विषैं पीठ न दीजिये। जे शूरवीर हैं तिनकूं शत्रु के सन्मुख मरण भला परन्तु यह पीठ देना महानिन्द्य कर्म शूरवीरों कूं योग्य नाहीं। कैसे हैं शूरवीर ? युद्ध विषैं बाणनिकरि पूरित है अंग जिनका। जे देव मनुष्यनिकर प्रशंसा के योग्य, वे कायरता कैसें भजें ? मैं दशरथ का पुत्र राम का भाई वासुदेव पृथ्वीविषै प्रसिद्ध सो संग्राममें पीठ कैसे देऊं ? यह वचन लक्ष्मणने कहे तब विराधितने रथकूं युद्धके सन्मुख किया। सो लक्ष्मणके अर मदनांकुशके महायुद्ध भया। लक्ष्मणने क्रोधकर महाभयंकर चक्र हाथ विषें लिया, महा ज्वालारूप देख्या न जाय, ग्रीष्म के सूर्य समान सो अंकुश पर चलाया। सो अंकुश के समीप जाय प्रभावरहित होय गया अर उलटा लक्ष्मण के हाथ विषैं आया। बहुरि लक्ष्मणने चक्र चलाया सो पाछे आया। या भांति बार २ पाछे आया। बहुरि अंकुशने धनुष हाथ विषैं गह्या। तब अंकुशकूं

महातेजरूप देख लक्ष्मणके पक्ष के सब सामन्त आश्चर्यकूं प्राप्त भए। यह महापराक्रमी अर्धचक्री उपज्या ; लक्ष्मणने कोटिशिला उठाई ; तिनकूं यह बुद्धिउपजी कि मुनिके वचन जिनशासन का कथन और भांति कैसे होय ? अर लक्ष्मण भी मन विषें जानता भया कि ये बलभद्र नारायण उपजे, आप अति लज्जावान होय युद्ध की क्रिया से शिथिल भया।

अथानन्तर लक्ष्मणकूं शिथिल देख सिद्धार्थ नारद के कहेसूं लक्ष्मण के समीप आय कहता भया—वासुदेव तुम ही हो, जिनशासन के वचन सुमेरुसूं अति निश्चल हैं। यह कुमार जानकी के पुत्र हैं। गर्भ विषें थे तब जानकीकूं वन विषें तजी। यह तिहारे अंग हैं तातें इनपर चक्रादिक शस्त्र न चलैं। तब लक्ष्मणने दोवों कुमारों का वृत्तान्त सुन हर्षित होय हाथ से हथियार डार दिए, बक्तर दूर किया, सीता के दुःखकर अश्रुपात डारने लगा अर नेत्र घूमने लगे। राम शस्त्र डार बक्तर उतार मोहकर मूर्च्छित भए, चन्दनसे छाँटि सचेत किए। तब स्नेहके भरे पुत्रनिके समीप चाले। पुत्र रथ से उतर हाथ जोड़ शीस नवाय पिताके पायनि पड़े। श्रीराम, स्नेहकर द्रवीभूत भया है मन जिनका, पुत्रोंकूं उरसे लगाय विलाप करते भए, आँसुनिकर मेघका सा दिन किया। राम कहैं हैं—हाय पुत्र हो ! मैं मन्दबुद्धि गर्भ विषें तिष्ठते तुमकूं सीता-सहित भयंकर वनविषें तजे, तिहारी माता निर्दोष। हाय पुत्र हो ! मैं कोई विस्तीर्ण पुण्य करि तुम सारिखे पुत्र पाए सो उदर विषे तिष्ठते तुम भयकर वनविषें कष्टकूं प्राप्त भए ?हाय वत्स। यह वज्रजंघ वनविषें व आवता तो तिहारा मुखरूप चन्द्रमा मैं कैसे देखता ? हाय बालक हो ! इन अमोघ दिव्यास्त्रों कर तुम न हते गए सो पुण्य के उदयकर देवोंने सहाय करी। हाय मेरे अंगज हो ! मेरे बाणनिकर बीधे तुम रणक्षेत्र विषें पड़ते तो न जानूं जानकी क्या करती ? सब दुःखों विषैं घर से काढनेका बड़ा दुःख है सो तिहारी माता महा गुणवन्ती व्रतवन्ती पतिव्रता मैं वन विषैं तजी अर तुम से पुत्र गर्भ विषैं सो मैं यह काम बहुत बिना समझे किया। अर जो कदाचित् तिहारा युद्ध विषैं अन्यथा भाव भया होता तो मैं निश्चय से जानूं हूं कि शोकसे विह्वल जानकी न जीवती। या भाँति राम ने विलाप किया। बहुरि कुमार विनयकर लक्ष्मणकूं प्रणाम करते भए। लक्ष्मण सीताके शोकसे विह्वल, आंसु डारता स्नेहका भरया दोनों कुमारनिकूं उरसे लगावता भया। शत्रुघ्न आदि यह वृत्तांत सुन वहां आए, कुमार यथायोग्य विनय करते भए, वे उरसूं लगाय मिले, परस्पर अति प्रीति उपजी। दोनों सेना के लोक अतिहित कर परस्पर मिले क्योंकि जब स्वामीकूं स्नेह होय तब सेवकनिके भी होय। सीता पुत्रोंका माहात्म्य देख अति हर्षित होय विमानके मार्ग होय पीछे पुण्डरीकपुरविषैं गई। अर भामंडल विमान से उतर स्नेह

का भरया आंसू डारता भावजोंसे मिला, अति हर्षित भया। अर प्रीतिका भरया हनुमान उरसूं लगाय मिल्या अर बारंबार कहता भया-भली भई, भली भई। अर विभीषण सुग्रीव विराधित सब ही कुमारिनसूं मिले, परस्पर हित-संभाषण भया, भूमिगोचर विद्याधर सब ही मिले। अर देवनिका आगमन भया, सबोंकूं आनन्द उपज्या। राम पुत्रनिकूं पायकर अति आनंदकूं प्राप्त भए, सकल पृथ्वीके राज्यसे पुत्रनि का लाभ अधिक मानते भए। जो रामके हर्ष भया सो कहिवेविषें न आवै अर विद्याधरी आकाशविषें आनंदसूं नृत्य करती भईं। अर भूमिगोचरनिकी स्त्री पृथ्वी विषें नृत्य करती भईं अर लक्ष्मण आपकूं कृतार्थ मानता भया मानों सर्व लोक जीत्या, हर्षसूं फूल गए हैं लोचन जिनके। अर राम मनविषें जानता भया-मैं सगर चक्रवर्ती समान हू अर दोनों कुमार भीम अर भगीरथ समान हैं। राम वज्रजंघसे अति प्रीति करता भया जो तुम मेरे भामंडल समान हो। अयोध्यापुरी तो पहले ही स्वर्गपुरी समान थी अर बहुरि कुमारनिके आयवेकरि अति शोभायमान भई, जैसें सुन्दर स्त्री सहज ही शोभायमान होय अर शृंगारकरि अति शोभाकूं पावै। श्रीराम लक्ष्मणसहित अर दोऊ पुत्रोंसहित सूर्यकी ज्योति समान जो पुष्पक विमान उसविषें विराजे। सूर्यसमान है ज्योति जिनकी ऐसे राम लक्ष्मण अर दोऊ कुमार अद्भुत आभूषण पहिरे सो कैसी शोभा बनी है मानों सुमेरु के शिखरपर महा मेघ बिजुरीके चमत्कार सहित तिष्ठा है। भावार्थ-विमान तो सुमेरु का शिखर भया अर लक्ष्मण महामेघका स्वरूप भया अर राम तथा राम के पुत्र विद्युत समान भए सो ये चढ़कर नगरके बाह्य उद्यानविषें जिन मंदिर हैं तिनके दर्शनकूं चाले। नगर के कोटपर ठौर ठौर ध्वजा चढ़ी हैं तिनकूं देखते धीरे-धीरे जाय हैं, अनेक राजा लार, केई हाथियों पर चढ़े, केई घोड़ों पर, केई रथोपर चढे जाय हैं अर पियादोंके समूह जाय हैं। धनुप बाण इत्यादि अनेक आयुध अर ध्वजा छत्रनिकर सूर्य की किरण नजर नाहीं पड़ैं हैं अर स्त्रीनिके समूह झरोखनि विषें बैठे देखै हैं। लव अंकुश के देखिवेका सबनिकूं बहुत कौतूहल है, नेत्ररूप अंजुलिनिकर लवणांकुश के सुन्दरतारूप अमृतके पान करैं है सो तृप्त नाहीं होय है, एकाग्र चित्त भई इनकूं देखैं हैं। अर नगर विषें वरनारिनिकी ऐसी भीड़ भई जो काहूके हार कुंडल की गम्य नाहीं अर नारीजन परस्पर वार्ता करैं हैं। कोई कहै है—हे माता टुक मुख इधर कर, मोहि कुमारनिके देखिवे का कौतुक है। हे अखण्ड कौतुक तूने तो घनी बार लगि देखे अब हमें देखने देवो, अपना सिर नीचा कर ज्यों हमकूं दीखैं, कहा ऊंचा सिर कर रही है? कोई कहै है—तेरे सिरके केश बिखर रहे हैं सो नीके समार' अर कोई कहै है—हे क्षिप्तमानसे कहिये एक ठौर नाहीं चित्त जाका सो तू कहा हमारे प्राणनिकूं पीड़ै है? तू न देखै कि यह गर्भवती स्त्री खड़ी है, पीड़ित है। कोऊ कहै टुक

परे होहु, कहा अचेतन होय रहो है, कुमारनिकूं न देखने देहु । ये दोनों रामदेव के कुमार रामदेवके समीप बैठे, अष्टमीके चन्द्रमा समान हैं ललाट जिनका। कोई पूछे है-इन विषैं लवण कौन अर अंकुश कौन, यह तो दोनों तुल्यरूप भासें हैं । तब कोई कहै है-यह लाल वस्त्र पहिरे लवण है अर यह हरे वस्त्र पहिरे अंकुश है । अहो धन्य सीता महापुण्यवती, जिनने ऐसे पुत्र जने । अर कोई कहै है-धन्य है वह स्त्री, जिसने ऐसे वर पाए हैं । एकाग्र चित्त भई स्त्री इत्यादि वार्ता करती भई, इनके देखिवे विषैं है चित्त जिनका, अति भीड़ भई सो भीड़ विषैं कर्णाभरणरूप सर्पकी दाढ़कर डसे गए हैं कपोल जिनके सो न जानती भई, तद्‌गत है चित्त जिन का । काहूकी कांचीदाम जाती रही सो वाहि खबर नाहीं, काहूके मोतिनके हार टूटे सो मोती बिखर रहे हैं मानों कुमार आए सो ये पुष्पांजलि बरसै हैं । अर केईयकोंकूं नेत्रों की पलक नाहीं लागे हैं, असवारी दूर गई है तो भी उसी ओर देखें हैं । नगर की उत्तम स्त्री वेई भई बेल सो पुष्पवृष्टि करती भईं सो पुष्पनिकी मकरंद कर मार्ग सुगंध होय रह्या है । श्री राम अति शोभाकूं प्राप्त भए पुत्रनिसहित बनके चैत्यालयनिके दर्शन कर अपने मन्दिर आए । कैसा है मंदिर ? महा मंगलकर पूर्ण है ऐसे अपने प्यारे जनोंके आगमनका उत्साह सुखरूप ताकूं वर्णन कहाँ लग करिए, पुण्य-रूपी सूर्य का प्रकाश कर फूल्या है मन-कमल जिनका ऐसे मनुष्य वेई अद्‌भुत सुखकूं पावै हैं ।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राम लक्ष्मणसूं लवणांकुश का मिलाप वर्णन करने वाला एक सौ तीनवां पर्वपूर्ण भया ॥१०३॥

एकसौ चारवां पर्व

(राम का सीता की शील-परीक्षार्थ अग्निकुंड में प्रवेश की आज्ञा)

अथानंतर विभीषण सुग्रीव हनुमान मिलकर राम से विनती करते भए—हे नाथ ! हमपर कृपा करहु, हमारी विनती मानों, जानकी दुःखसूं तिष्ठै है इसलिए यहां लायवेकी आज्ञा करहु । तब राम दीर्घ उष्ण निश्वास नाख क्षणएक विचारकर बोले-मैं सीताकूं शील-दोष रहित जानूं हूँ, वह उत्तम चित्त है। परन्तु लोकापवादकर घरसे काढ़ा है, अब कैसे बुलाऊं ? इसलिए लोकनिकूं प्रतीति उपजाय कर जानकी आवै तब हमारा उसका सहवास होय, अन्यथा कैसे होय ? इसलिए सब देशनिके राजनिकूं बुलावो, समस्त विद्याधर अर भूमिगोचरी आवैं, सबनिके देखते सीता शपथ लेकर शुद्ध होय मेरे घरविषैं प्रवेश करै जैसे शची इन्द्रके घर विषैं प्रवेश करै । तब सबने कही जो आप आज्ञा करोगे सोही होयगा । तब सब देशनिके राजा बुलाए सो बाल वृद्ध स्त्री परिवार सहित अयोध्या नगरी आए, जे सूर्यकूं भी न देखें, घर ही विषैं रहैं, वे नारी भी आईं ।

अर लोकनिकी कहा बात ? जे वृद्ध बहुत वृत्तान्तके जाननहारे देशविषें मुखिया ते सब देशनिसूं आए। कैयक तुरंगनिपर चढे, कैयक रथनि पर चढे तथा पालकी अर अनेक प्रकार असवारिनि पर चढे बड़ी विभूतिसूं आए। विद्याधर आकाश के मार्ग होय विमान में बैठे आए अर भूमिगोचरी भूमिके मार्ग आए मानो जगत् जंगम होय गया, रामकी आज्ञा से जे अधिकारी हुते तिन्होंवे नगर के बाहिर लोकनिके रहने के लिए डेरे खडे कराए अर महा विस्तीर्ण अनेक महल बनवाए, तिनके दृढ स्तम्भ के ऊंचे मंडप उदार झरोखे सुन्दर जाली तिनविषे स्त्रियां और पुरुष भेले भए। पुरुष यथायोग्य बैठे, शपथकूं देखवे की है अभिलाषा जिनके। जेते मनुष्य आए तिनकी सर्व भांति पाहुनगति राजद्वार के अधिकारियों ने करी, सबनिकूं शय्या आसन भोजन तांबूल वस्त्र सुगन्ध मालादिक समस्त सामग्री राजद्वार में पहुँची, सबविकी स्थिरता करी। अर राम की आज्ञासूं भामंडल विभीषण हनुमान सुग्रीव विराधित रत्नजटी ये बड़े बड़े राजा आकाश के मार्ग क्षणमात्र विषें पुण्डरीकपुर गए सो सब सेना नगर के बाहिर राखि अपने समीप लोगनि सहित जहाँ जानकी थी वहाँ आए, जय जय शब्द कर पुष्पांजलि चढाय चरणनिकूं प्रणामकर अति विनय संयुक्त आंगन विषें बैठे। तब सीता आंसू डारती अपनी निंदा करती भई-दुर्जनों के वचनरूप दावानलकरि दग्ध भए हैं अंग मेरे सो क्षीरसागर के जलकर भी सींचे शीतल न होंय। तब वे कहते भए-हे देवी ! भगवती, सौम्य उत्तमे, अब शोक तजो अर अपना मन समाधान विषें लावो। या पृथ्वी विषें ऐसा कौन प्राणी है जो तुम्हारा अपवाद करै ? ऐसा कौन जो पृथ्वीकूं चलायमान करै अर अग्नि की शिखाकूं पावै अर सुमेरु के उठायवे का उद्यम करै अर जीभकर चांद सूर्यकूं चाटै ? ऐसा कोई नाही जो तुम्हारा गुण रूप रत्ननिका पर्वत कोई चलाय न सकै। अर जो तुम सारिखी महासतियों का अपवाद करै तिनकी जीभ के हजार टूक क्यों न होवें ? जो कोई भरतक्षेत्र विषें अपवाद करेंगे उन दुष्टों का हम सेवकों के समूहकूं भेज कर निपात करेंगे। अर जो विनयवान तुम्हारे गुण गायवे विषे अनुरागी हैं उनके गृहविषे रत्नवृष्टि करेंगे। यह पुष्पक विमान श्रीरामचन्द्र ने भेज्या है, उस विषें आनन्दरूप हो अयोध्याकी तरफ गमन करहु, सब देश अर नगर अर श्रीराम का घर तुम बिना न सोहै जैसें चन्द्रकला बिना आकाश न सोहै अर दीपक बिना मंदिर न सोहै अर शाख बिना वृक्ष न सोहै। हे राजा जनककी पुत्री ! आज रामका मुखचन्द्र देखो, हे पंडिते पतिव्रते ! तुमकूं अवश्य पतिका वचन मानना। जब ऐसा कहा तब सीता मुख्य सहलियों को लेकर पुष्पक विमान विषें आरूढ होय शीघ्र ही संध्या के समय आई, सूर्य अस्त होय गया सो महेंद्रोदय नामा उद्यान विषें रात्रि पूर्ण करी। आगे राम सहित अयोध्या यहाँ आवती हुती सो वन अति

मनोहर देखती हुती सो अब राम बिना रमणीक न भास्या।

अथानन्तर सूर्य उदय भया, कमल प्रफुल्लित भए। जैसें राजा के किंकर पृथ्वी विषैं विचरैं तैसें सूर्यकी किरणें पृथ्वी विषें विस्तरी। जैसें शपथ कर अपवाद नस जाय तैसें सूर्य के प्रताप कर अंधकार दूर भया। तब सीता उत्तम नारियों कर युक्त हथिनी पर चढ़ी राम के समीप चाली, मनकी उदासीनताकर हती गई है प्रभा जाकी, तो भी भद्र परिणाम की धरणहारी अत्यंत सोहती भई, जैसे चन्द्रमाकी कला ताराम्रों कर मंडित सोहै तैसे सीता सखियों कर मंडित सोहै। सब सभा विनय संयुक्त सीताकूं देख बंदना करती भई, यह पापरहित धीरता की धरणहारी रामको रमा सभा विषें आई, राम समुद्र समान क्षोभकूं प्राप्त भए। लोक सीता के आयवे कर विषाद के भरे थे अर कुमारों का प्रताप देख आश्चर्य के भरे भए, अब सीता के आयवेकर हर्षके भरे ऐसे शब्द करते भए-हे माता! सदा जयवंत होवो, नंदो वरधो फूलो फलो। धन्य यह रूप, धन्य यह धैर्य, धन्य यह सत्य, धन्य यह ज्योति, धन्य यह भावुकता, धन्य यह गंभीरता, धन्य यहनिर्मलता, ऐसे वचन समस्त ही नर नारीनिके मुखसे निकसे, आकाशविषें विद्याधर भूमिगोचरी महा कौतुक भरे पलक रहित सीता के दर्शन करते भए। अर परस्पर कहते भए कि पृथ्वीके पुण्यके उदयसे जनक सुता पीछे आई कैयक तो वहां श्रीराम की ओर निरखैं हैं जैसें इन्द्रकी ओर देव निरखैं। रामके समीप बैठे लव अर अंकुश तिनकूं देख परस्पर कहैं हैं—ये कुमार रामके सदृश ही हैं। अर केईयक लक्ष्मणको ओर देखें हैं। कैसे हैं लक्ष्मण! शत्रुओं के पक्षके क्षय करिवेकूं समर्थ। अर केई शत्रुघ्न की ओर, केईयक भामंडल की ओर, केईयक हनुमान की ओर, केईयक विभीषण की ओर, केईयक विराधित की ओर अर केईयक सुग्रोव की ओर निरखै हैं अर केईयक आश्चर्य प्राप्त भए सीता की ओर देखै हैं।

अथानन्तर जानकी जायकर रामकूं देख आपकूं वियोग-सागर के अन्तकूं प्राप्त भई मानती भई। जब सीता सभा विषैं आई तब लक्ष्मण अर्घ देय नमस्कार करता भया अर सब राजा प्रणाम करते भए। सीता शीघ्रता कर निकट आवने लगी तब राघव यद्यपि क्षोभित हैं तथापि सकोप होय मन में विचारते भए कि इसे वनविषैं मेली थी सो मेरे मनकी हरणहारी फिर आई। देखो यह महा ढीठ है, मैं तजो तो भी मोसे अनुराग नाहीं छांडै है? यह रामकी चेष्टा जान महासती उदास चित्त होय विचारती भई-मेरे वियोग का अन्त नहीं आया, मेरा मनरूप जहाज विरहरूप समुद्रके तीर आय फटा चाहै है ऐसी चिंता से व्याकुल चित्त भई पगके अंगूठे सूं पृथ्वी कुचरती भई। बलदेव के समीप भामं-

डलकी बहिन कैसी सोहै है जैसा इन्द्र के आगे सम्पदा सोहै। तब राम बोले—हे सीते ! मेरे आगे कहा तिष्ठै है, तू परे जा, मैं तेरे देखिवे का अनुरागी नाहीं, मेरी आंख मध्यान्ह के सूर्य अर आशीविष सर्प तिनकूं देख सकै परन्तु तेरे तन कूं न देख सकै है। तू बहुत मास दसमुखके मंदिर विषें रही, अब तोहि घरविषें राखना सोहि कहा उचित ? तब जानकी बोली—तुम महा निर्दई चित्त हो, तुमने महा पंडित होयकर भी मूढलोकविकी न्याईं मेरा तिरस्कार किया सो कहा उचित ? मुझ गर्भवतीकूं जिनदर्शन का अभिलाष उपजा हुता सो तुम कुटिलतासूं यात्रा का नाम लेय विषम वन विषें डारी, यह कहा उचित ? मेरा कुमरण होता अर मैं कुगति जाती, याविषें तुमकूं कहा सिद्ध होता ? जो तिहारे मनविषें तजिवेकी हुती तो आर्यिकाओंके समीप मेलो होती। जे अनाथ दीन दलिद्री कुटुम्ब रहित महा दुःखी तिनकूं दुःख हरवे का उपाय जिनशासन का शरण है, या समान और उत्कृष्ट नाहीं। हे पद्मनाभ ! तुम करिवे विषें तो कछू कमी न करी, अब प्रसन्न होवो, आज्ञा करो सो करूं। यह कहकर दुःख की भरी रुदन करती भई। तब राम बोले-मैं जानूं हूं कि तिहारा शील निर्दोष है अर तुम निष्पाप अणुव्रतकी धरणहारी मेरी आज्ञा-कारिणी हो, तिहारे भावनिकी शुद्धता मैं भली भाँति जानूं हूं परन्तु ये जगत के लोक कुटिल स्वभाव हैं, इन्होंने वृथा तेरा अपवाद उठाया सो इनकूं संदेह मिटै अर इनकूं यथावत् प्रतीति आवै सो करहु। तब सीता ने कहा—आप आज्ञा करो सो ही प्रमाण, जगत् विषें जेते प्रकार के दिव्य शपथ हैं सो सब करके पृथ्वी का संदेह हरूं। हे नाथ ! विष विषें महाविष कालकूट है जिसे सूंघकर आविष सर्प भी भस्म होय जाय सो मैं पीऊं अर अग्नि की विषम ज्वाला विषें प्रवेश करूं अर जो आप आज्ञा करो सो करूं। तब क्षणएक विचारकर राम बोले-अग्निकुण्ड विषें प्रवेश करो। सीता महाहर्ष की भरी कहती भई--यही प्रमाण। तब नारद मन विषें विचारते भए—यह तो महासती है परन्तु अग्नि का कहा विश्वास, याने मृत्यु आदरी। अर भामंडल हनुमानादिक महाकोप से पीड़ित भए अर लव अंकुश माताका अग्निविषें प्रवेश करिवेका निश्चय जान अति व्याकुल भए। अर सिद्धार्थ दोनों भुजा ऊंचीकर कहता भया हे राम ! देवों से भी सीता के शील की महिमा न कही जाय तो मनुष्य कहा कहै। कदाचित् सुमेरु पातालविषें प्रवेश करै अर समस्त समुद्र सूख जाय तौ भी सीता का शीलव्रत चलायमान न होय। जो कदाचित् चन्द्रकिरण ऊष्ण होंय अर सूर्य किरण शीतल होंय तो भी सीताकूं दूषण न लगै। मैं विद्याके बलसे पंच सुमेरुविषें तथा जे कृत्रिम अर अकृत्रिम चैत्यालय शास्वत वहाँ जिन वंदना करी। हे पद्मनाभ ! सीता के व्रतकी महिमा मैं ठौर २ मुनियों के मुखसे सुनी है। तातें तुम महा विचक्षण हो, महा सतीकूं अग्नि प्रवेश की आज्ञा न करो। अर आकाश

विषैं विद्याधर और पृथ्वी विषैं भूमिगोचरी सब यही कहते भए—हे देव ! प्रसन्न होय सौम्यता भजहु । हे नाथ ! अग्नि समान कठोर चित्त न करो । सीता सती है, सीता अन्यथा नाहीं, जे महापुरुषों की रानी होवें ते कभी विकार रूप न होवें । सब प्रजाके लोक यही वचन कहते भए अर व्याकुल भए मोटी मोटी आंसुओं की बूंद डारते भए ।

तब राम ने कही–तुम ऐसे दयावान हो तो पहिले अपवाद क्यों उठाया ? राम ने किंकरोंकूं आज्ञा करी–एक तीन सौ हाथ चौकोन वापी खोदहु अर सूके ईंधन चन्दन अर कृष्णागुरु तिनकर भरहु अर अग्निकर जाज्वल्यमान करहु, साक्षात् मृत्युका स्वरूप करहु । तब किंकरनिने आज्ञा प्रमाण कुदालनिसे खोद अग्नि वापिका बनाई अर ताही रात्रिकूं महेन्द्रोदय नामा उद्यान विषैं सकलभूषण मुनिकूं पूर्व वैर के योगकर महा रौद्र विद्युद्वक्र नामा राक्षसी ने उपसर्ग किया सो मुनि अत्यन्त उपसर्गकूं जीत केवल ज्ञानकूं प्राप्त भए ।

(सकलभूषण केवली के पूर्व भव और वैर का कारण)

यह कथा सुनि श्रेणिक ने गौतमस्वामी सूं पूछी—हे प्रभो ! राक्षसीके अर मुनिके पूर्व वैर कहा ? तब गौतमस्वामी कहते भए—हे श्रेणिक ! सुन । विजयार्द्धगिरिकी उत्तर श्रेणीविषैं महा शोभायमान गुंजनामा नगर तहाँ सिंहविक्रम राजा ताके पुत्र सकलभूषण, ताके स्त्री आठसै, तिन विषैं मुख्य किरणमण्डला सो एक दिन उसने अपनी सौतिनके कहेसूं अपने मामा के पुत्र हेमशिखका रूप चित्रपटविषैं लिखा सो सकलभूषणने देख कोप किया । तब सब स्त्रीनिने कही—यह हमने लिखवाया है, इसका कोई दोष नाहीं । तब सकलभूषण कोप तजि प्रसन्न भया । एक दिन यह किरणमण्डला पतिव्रता पति सहित सूती थी सो प्रमाद थकी बरडिकर हेमशिख ऐसा नाम कहा । सो यह तो निर्दोष, याके हेमशिख से भाई की बुद्धि अर सकलभूषण ने कछू और भाव विचारा, रानीसूं कोप करि वैराग्यकूं प्राप्त भए । अर रानी किरणमंडला भी आर्यिका भई परन्तु धनीसूं द्वेष भाव जो याने मोहि झूठा दोष लगाया सो मर कर विद्युद्वक्र नामा राक्षसी भई, सो पूर्व वैर थकी सकलभूषण स्वामी आहारकूं जांय तब यह अंतराय करै, कभी माते हाथियों के बन्धन तुड़ाय देय, हाथी ग्राम में उपद्रव करैं, इनकूं अन्तराय होय ? कभी ये आहारकूं जांय तब अग्नि लगाय देय, कभी यह रजोवृष्टि करै इत्यादि नाना प्रकार के अन्तराय करै, कभी अश्व का कभी वृषभ का रूपकरि इनके सन्मुख आवै, कभी मार्ग में कांटे बखेरै, यह पापिनी कुचेष्टा करै । एक दिन स्वामी कायोत्सर्ग धर तिष्ठे थे अर इसने शोर किया कि यह चोर है सो इसका शोर सुनकर दुष्टोंने पकड़ अपमान किया । बहुरि उत्तम पुरुषों ने छुड़ाय दिए । एक दिन यह आहार लेकर आते थे सो पापिनी राक्षसी ने काहू

स्त्रीका हार लेकर इनके गले में डार दिया अर शोर किया कि यह चोर है, हार लिए जाय है। तब लोग आय पहुंचे, इनको पीड़ा करि पकड़ लिया, भले पुरुषों ने छुड़ा दिया। या भाँति यह क्रूर चित्त दयारहित पूर्व विरोध से मुनिकूं उपद्रव करै, गई रात्रिकूं प्रतिमायोग धर महेन्द्रोदय नामा उद्यान विषैं विराजे हुते सो राक्षसी ने रौद्र उपसर्ग किया, वितर दिखाए अर हस्ती सिंह व्याघ्र सर्प दिखाए अर रूप गुण मंडित नाना प्रकार की नारी दिखाईं, भांति२ के उपद्रव किए परन्तु मुनि का मन न डिगा तब केवलज्ञान उपजा। सो केवलज्ञान की महिमाकर दर्शनकूं इन्द्रादिक देव कल्पवासी भवनवासी व्यंतर जोतिषी कैयक हाथिनि पर चढ़े, कैयक सिंहनि पर चढ़े, कैयक ऊंट खच्चर मीढा बघेरा अष्टापद इन पर चढ़े, कैयक पक्षियों पर चढ़े, कैयक विमान में बैठे, कैयक रथनिपर, कैयक पालकी चढ़े इत्यादि मनोहर वाहनोंपर चढे आए, देवों की असवारी के तिर्यंच नाहीं, देवों ही की माया है, देव ही विक्रियाकरि तिर्यंचका रूप धरें हैं। आकाशके मार्ग होय महाविभूति सहित सर्वदिशाविषैं उद्योत करते आए, मुकुटधरे हार कुण्डल पहिरे अनेक आभूषणनिकर शोभित सकलभूषण केवलीके दर्शनकूं आए। पवन से चंचल है ध्वजा जिनकी, अप्सरानिके समूह अयोध्या की ओर आए, महेन्द्रोदय उद्यानविषैं विराजें हैं तिनके चरणारविंद विषैं है मन जिनका, पृथ्वीकी शोभा देखते आकाशसे नीचे उतरे अर सीता के शपथ लेनेकूं अग्निकुण्ड तैयार होय रहा हुता सो देख कर एक मेघकेतु नामा देव इन्द्र से कहता भया—हे देवेंद्र ! हे नाथ ! सीता महा सतीकूं उपसर्ग आय प्राप्त भया है, यह महा श्राविका पतिव्रता शीलवंती अति निर्मल चित्त है, इसे ऐसा उपद्रव क्यों होय ? तब इन्द्र ने आज्ञा करी कि हे मेघकेतु ! मैं सकलभूषण केवलीके दर्शन कूं जाऊं हूं अर तू महासतीका उपसर्ग दूर करियो। या भांति आज्ञाकर इंद्र तो महेन्द्रोदय नामा उद्यानविषैं केवली के दर्शनकूं गया अर मेघकेतु सीता के अग्निकुंडके ऊपर आय आकाश विषैं विमान विषैं तिष्ठा। कैसा है विमान ? सुमेरु के शिखर समान है शोभा जाकी। वह देव आकाश विषैं सूर्य-सरीखा देदीप्यमान श्रीराम की ओर देखै, राम महासुन्दर सब जीवनिके मनकूं हरै हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं सकलभूषण केवलीके दर्शनकूं देवनिका आगमन वर्णन करने वाला एकसौ चारवाँ पर्व पूर्ण भया ॥१०४॥

एकसौ पाँचवाँ पर्व

(सीता का अग्निकुंड में प्रवेश और शील के माहात्म्य से सरोवररूप परिणत होना)

अथानंतर श्रीराम उस अग्निवापिकाकूं निरखकरि व्याकुल मन भया विचारै है कि अब इस कांताकूं कहां देखूंगा, यह गुणनिकी खान महा लावण्यताकरि युक्त कांति

की धरणहारी शीलरूप वस्त्रकरि मंडित मालतीकी माला-समान सुगंध सुकुमार शरीर अग्निके स्पर्शही से भस्म होय जायेगी। जो यह राजा जनकके घर न उपजती तो भला था, यह लोकापवाद अर अग्निविषें मरण तो न होता, इस विना मुझे क्षणमात्र भी सुख नाहीं, इस सहित वन विषें वास भला अर या बिना स्वर्ग का वास भी भला नाहीं। यह शीलवती परम श्राविका है, इसे मरण का भय नाहीं, इहलोक परलोक मरण वेदना अकस्मात् असहायता चोर ये सप्त भय तिनकर रहित सम्यग्दर्शन इसके दृढ है, यह अग्नि विषें प्रवेश करेगी। अर मैं रोकूं तो लोकनि विषें लज्जा उपजै। अर यह लोक सब मोहि कह रहे कि यह महासती है, याहि अग्नि कुंड विषें प्रवेश न कराओ सो मैं न मानी। अर सिद्धार्थ हाथ ऊंचे कर कर पुकारा सो मैं न मानी, सो वह भी चुप हो रहा। अब कौन मिसकर इसे अग्नि कुंड विषें प्रवेश न कराऊं अथवा जिसके जिस भांति मरण उदय होय है उसी भांति होय है, टारा टरे नाहीं तथापि इसका वियोग मुझ से सहा न जाय, या भांति राम चिंता करै है। अर वापी विषें अग्नि प्रज्वलित भई, समस्त नर नारियों के आंसुवो के प्रवाह चले, धूम करि अंधकार होय गया मानों मेघमाला आकाश विषें फैल गई। आकाश भ्रमर-समान श्याम होय गया अथवा कोकिलस्वरूप होय गया, अग्निके धूमकर सूर्य आच्छादित हुवा मानों सीता का उपसर्ग देख न सक्या सो दयाकर छिप गया। ऐसी अग्नि प्रज्वली जिसकी दूर तक ज्वाला विस्तरी मानों अनेक सूर्य ऊगे अथवा आकाश विषें प्रलयकालकी सांझ फूली, जानिये दसों दिशा स्वर्णमई होय गई हैं मानों जगत् विजुरीमय होय गया अथवा सुमेरुके जीतिवेकूं दूजा जगम सुमेरु और प्रगटा। तब सीता उठी, अत्यंत निश्चल चित्त होय कायोत्सर्गकरि, अपने हृदयविषें श्री ऋषभादि तीर्थंकरदेव विराजे हैं तिनकी स्तुतिकरि, सिद्धनिकूं साधुनिकूं नमस्कार-करि, श्रीमुनिसुव्रतनाथ हरिवंशके तिलक बीसवें तीर्थंकर जिनके तीर्थ विषें ये उपजे हैं तिनका ध्यान करि, सर्व प्राणियोंके हितू आचार्य तिनकूं प्रणाम करि, सर्व जीवनिसूं क्षमाभाव करि जानकी कहती भई—मनकरि वचनकरि कायकरि स्वप्न विषें भी राम बिना और पुरुष मैं न जाना, जो मैं झूठ कहती हूं तो यह अग्निकी ज्वाला क्षणमात्र विषें मुझे भस्म करियो। जो मेरे पतिव्रता-भावविषें अशुद्धता होय, राम सिवाय पर नर मन से भी अभिलाषा हो तो हे बैश्वानर ! मुझे भस्म करियो। जो मैं मिथ्यादर्शिनी पापिनी व्यभिचारिणी हूं तो इस अग्निसे मेरा देह दाहकूं प्राप्त होवै। अर जो मैं महासती पतिव्रता अणुव्रतधारिणी श्राविका हूं तो मुझे भस्म न करियो। ऐसा कहकर नमोकार मंत्र जप सीता सती अग्निवापिकामें प्रवेश करती भई सो याके शील के प्रभाव से अग्नि थी सो स्फटिक मणि सारिखा निर्मल शीतल जल होय गया मानों धरती को भेदकर यह

वापिका पातालसे निकसी। जल विषें कमल फूल रहे हैं, भ्रमर गुंजार करें हैं, अग्नि की सामग्री सब विलय गई, न ईंधन न अंगार, जल के झाग उठने लगे अर अति गोल गंभीर महा भयंकर भ्रमर उठने लगे, जैसे मृदंग की ध्वनि होय तैसे शब्द जल विषें होते भए, जैसा क्षोभकूं प्राप्त भया समुद्र गाजै तैसा शब्द वापीविषे होता भया। अर जल उछला, पहले गोडों तक आया, बहुरि कमर तक आया, निमिषमात्र विषें छाती तक आया। तब भूमिगोचरी डरे अर आकाश विषें जे विद्याधर हुते तिनकूं भी विकल्प उपजा, जानिए क्या होय? बहुरि वह जल लोगों के कण्ठ तक आया तब अति भय उपजा, सिरऊपर पानी चला तब लोग अति भयकूं प्राप्त भए, ऊंची भुजाकर वस्त्र अर बालकों को उठाय पुकार करते भए—हे देवी! हे लक्ष्मी! हे सरस्वती! हे कल्याण रूपिणी! हे धर्म धुरंधरे! हे मान्ये! हे प्राणी दयारूपिणी! हमारी रक्षा करो, हे महासाध्वी मुनि समान निर्मल मनकी धरणहारी! दया करो, हे माता! बचावो बचावो, प्रसन्न होवो। जब ऐसे वचन विह्वल जो लोक तिनके मुखसे निकसे तब माताकी दया से जल थभा, लोक बचे। जलविषे नाना जाति के ठौर २ कमल फूले, जल साम्यताकूं प्राप्त भया, जे भंवर उठे थे सो मिटे अर भयंकर शब्द मिटे। वह जल जो उछला था मानों वापीरूप वधू अपने तरंगरूप हस्तोंकर माताके चरणयुगल स्पर्शती हुती। कैसे हैं चरणयुगल? कमलके गर्भसे हू अति कोमल हैं अर नखोंकी ज्योतिकर देदीप्यमान हैं, जल विषें कमल फूले तिनकी सुगन्धताकरि भ्रमर गुंजार करें हैं सो मानों संगीत करें हैं अर क्रौंच चकवा हंस तिनके समूह शब्द करें हैं, अति शोभा होय रही है अर मणि स्वर्णके सिवाण बन गए हैं तिनकूं जल के तरंगों के समूह स्पर्शै हैं अर जिसके तट मरकत मणिकर निर्मापे अति सोहै हैं।

ऐसे सरोवर के मध्य एक सहस्रदल का कमल कोमल विमल विस्तीर्ण प्रफुल्लित महाशुभ उसके मध्य देवनिने रत्ननिकी किरणनिकर मंडित सिंहासन रच्या, चंद्र मंडल तुल्य निर्मल, उसमें देवांगनाओं ने सीता कूं पधराई अर सेवा करती भई, सो सीता सिंहासन विषें तिष्ठी, अति अद्भुत है उदय जाका, शची तुल्य सोहती भई, अनेक देव चरणनिके तले पुष्पांजलि चढ़ाय धन्य २ शब्द कहते भए, आकाशविषें कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वृष्टि करते भए अर नाना प्रकार के दुन्दुभी बाजे तिनके शब्दकर सब दिशा शब्दरूप होती भई, गुंज जातिके वादित्र महा मधुर गुंजार करते भए अर मृदंग बाजते भए, ढ़ोल दमामा बाजे, नादि जातिके वादित्र बाजे अर काहल जातिके वादित्र बाजे अर तुरही करनाल आदि अनेक वादित्र बाजे, शंखके समूह शब्द करते भए अर वीणा बाजा ताल झांझ मंजीर झालरी इत्यादि अनेक वादित्र बाजे, विद्याधरनिके समूह नाचते भए अर देवनिके ये शब्द भए कि श्रीमत् जनक राजाकी पुत्री परम उदयकी धरणहारी श्रीमत् रामकी रानी

अत्यन्त जयवंत होवे, अहो निर्मल शील जाका आश्चर्यकारी ऐसे शब्द सब दिशा विषें देवनिके होते भए। तब दोनों पुत्र लवण अंकुश, अकृत्रिम है मातासूं हित जिनका सो अब तिरकर अतिहर्ष के भरे माताके समीप गए। दोनों पुत्र दोनों तरफ जाय ठाढ़े भए, माताकूं नमस्कार किया सो माता ने दोनोंके शिर हाथ धरा। रामचन्द्र मिथिलापुरीके राजाकी पुत्री मैथिली कहिए सीता उसे कमलवासिनी लक्ष्मी-समान देख महान अनुरागके भरे समीप गए। कैसी है सीता ? मानो स्वर्णकी मूर्ति, अग्नि विषें शुद्ध भई है, अति उत्तम ज्योतिके समूहकर मंडित है शरीर जाका। राम कहें हैं, हे देवी ! कल्याणरूपिणी उत्तम जीवनिकर पूज्य महा अद्भुत चेष्टा की धरणहारी, शरदकी पूर्णमासीके चन्द्रमा समान है मुख जाका, ऐसी तुम सो हमपर प्रसन्न होहु, अब मैं कभी ऐसा दोष न करूंगा जिसमें तुमकूं दुःख होय। हे शीलरूपिणी मेरा अपराध क्षमा करहु। मेरे आठ हजार स्त्री हैं तिनकी सिरताज तुम हो, मोकूं आज्ञा करहु सो करूं। हे महासती ! मैं लोकापवादके भय से अज्ञानी होयकरि तुमकूं कष्ट उपजायो सो क्षमा करहु अर हे प्रिये ! पृथ्वीविषें मो सहित यथेष्ट विहार करहु। यह पृथ्वी अनेक बन उपवन गिरियों कर मंडित है, देव विद्याधरनिकर संयुक्त है। समस्त जगत्कर आदरसों पूजी थकी मो सहित लोकविषें स्वर्ग समान भोग भोगि। उगते सूर्य समान यह पुष्पकविमान ताविषें मेरे सहित आरूढ भई सुमेरु पर्वतके वनविषै जिनमदिर हैं तिनका दर्शन कर। अर जिन जिन स्थानविषैं तेरी इच्छा होय वहां क्रीडा कर। हे कांते ! तू जो कहै सो ही मैं करूं, तेरा वचन कदाचित् न उलंघूं, देवांगना समान वह विद्याधरी तिनकर मंडित हे बुद्धिवन्ती तू ऐश्वर्यकूं भज, जो तेरी अभिलाषा होयगी सो तत्काल सिद्ध होयगी। मैं विवेकरहित दोष के सागरविषैं मग्न तेरे समीप आया हूं सो साध्वी अब प्रसन्न होहु।

अथानंतर जानकी बोली—हे राजन् ! तिहारा कुछ दोष नाहीं अर लोकनिका दोष नाहीं, मेरे पूर्वोपार्जित अशुभ कर्म के उदय से यह दुःख भया। मेरा काहूपर कोप नाहीं, तुम क्यों विषादकूं प्राप्त भए ? हे बलदेव ! तिहारे प्रसाद से स्वर्ग-समान भोग भोगे, अब यह इच्छा है कि ऐसा उपाय करूं जिसकर स्त्रीलिंग का अभाव होय। ये महा क्षुद्र विनश्वर भयंकर इन्द्रियनि भोग मूढजनोंकरि सेव्य तिनकर कहा प्रयोजन ? मैं अनंत जन्म चौरासी लक्ष योनि विषें खेद पाया, अब समस्त दुःखके निवृत्तिके अर्थ जिनेश्वरी दीक्षा धरूंगी। ऐसा कहकर नवीन अशोक वृक्षके पल्लव समान अपने जे कर तिनकर सिर के केश उपाड राम के समीप डारे। सो इन्द्रनीलमणि समान श्याम सचिक्कण पातरे सुगंध वक्र लंबायमान महामृदु महामनोहर ऐसे केशनिकूं देख कर राम मोहित होय मूर्च्छा खाय पृथ्वी विषें पड़े। सो जौलग इनकूं सचेत करें तौलग सीता पृथ्वीमती आर्यि-

कापै जायकरि दीक्षा धरती भई, एक वस्त्रमात्र है परिग्रह जाके, सब परिग्रह तजकर आर्यिकाके व्रत धरे। महा पवित्रता युक्त परम वैराग्यकर दीक्षा धरती भई, व्रतकर शोभायमान जगत के वंदवे योग्य होती भई। अर राम अचेत भए थे सो मुक्ताफल अर मलयागिरि चंदनके छांटिवेकरि तथा ताड़ के बीजनों की पवनकरि सचेत भए तब दसों दिशाकी ओर देखें तो सीताकूं न देखकरि चित्त शून्य होय गया। शोक अर विषाद करि युक्त महा गजराजपर चढे सीता की ओर चाले। सिरपर छत्र फिरैं हैं, चमर ढुरैं हैं, जैसें देवनिकर मंडित इंद्र चाले तैसें नरेन्द्रनिकरि युक्त राम चाले। कमलसारिखे हैं नेत्र जिनके कषायके वचन कहते भए, अपने प्यारे जनका मरण भला परन्तु विरह भला नाहीं। देवनिने सीता का प्रातिहार्य किया सो भला किया पर उसने हमकूं तजना विचारा सो भला न किया। अब मेरी रानी जो यह देव न दें तो मेरे अर देवनिके युद्ध होयगा। ये देव न्यायवान होयकरि मेरी स्त्रीकूं हरैं। ऐसे अविचार के वचन कहे। लक्ष्मण समझावै सो समाधान न भया। अर क्रोध संयुक्त श्रीरामचन्द्र सकलभूषण केवली की गंधकुटीकूं चाले सो दूरसे सकलभूषण केवली की गंधकुटी देखी। केवली महाधीर सिंहासन पर विराजमान, अनेक सूर्य की दीप्ति धरे, केवली ऋद्धिकर युक्त, पापों के भस्म करिवेकूं साक्षात् अग्निरूप, जैसे मेघपटल रहित सूर्यका बिंब सोहै तैसे कर्मपटल रहित केवलज्ञानके तेजकर परम ज्योतिरूप भासै हैं, इन्द्रादिक समस्त देव सेवा करैं हैं दिव्यध्वनि खिरै है, धर्मका उपदेश होय है, सो श्रीराम गंधकुटीकूं देखकरि शांत चित्त होय हाथी से उतरि प्रभु के समीप गए, तीन प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ नमस्कार किया। केवलीके शरीरकी ज्योतिकी छटा रामपर आय पड़ी सो अति प्रकाशरूप होय गए, भाव सहित नमस्कार करि मनुष्यनिकी सभा विषैं बैठे। अर चतुर निकायके देवनिकी सभा नाना प्रकार के आभूषण पहिरे ऐसी भासै मानो केवलीरूप जे रवि तिनकी किरण ही हैं अर आजानिके राजा श्रीरामचन्द्र केवली के निकट ऐसे सो हैं मानो सुमेरुके शिखरके निकट कल्पवृक्ष ही हैं। अर लक्ष्मण नरेन्द्र मुकट कुंडल हारादिकर शोभित ऐसे सो हैं मानों बिजुरी सहित श्याम घटा ही है। अर शत्रुघ्न शत्रुनिके जीतनहारे ऐसे सो हैं मानों दूसरे कुबेर ही हैं। अर लव अंकुश दोऊ वीर महाधीर महा सुन्दर गुण सौभाग्य के स्थानक चांद सूर्य से सोहैं। अर सीता आर्यिका आभूषणादिरहित एक वस्त्रमात्र परिग्रह ऐसी सोहै मानो सूर्यकी मूर्ति शांतताकूं प्राप्त भई है। मनुष्य अर देव सब ही विनय संयुक्त भूमि विषैं बैठे, धर्म श्रवण की है अभिलाषा जिनके। तहां एक अभयघोष नामा मुनि सब मुनिन विषैं श्रेष्ठ संदेहरूप आतापकी शांतिके अर्थ केवलीकूं कहते भए—हे सर्वोत्कृष्ट सर्वज्ञदेव! ज्ञानरूप शुद्ध आत्मतत्वका स्वरूप नीके जानने से मुनिनिकूं केवलबोध होय उसका वर्णन करो। तब

सकलभूषण केवली योगीश्वरों के ईश्वर कर्मों के क्षय का कारण तत्व का उपदेश दिव्य-ध्वनिकर कहते भए। गौतम स्वामी कहैं हैं कि हे श्रेणिक केवलीने जो उपदेश दिया ताका रहस्य मैं तुझकूं कहूँ हूं, जैसें समुद्र में से एक बूंद कोई लेय तैसें केवलीकी वाणी प्रति प्रवाह उसके अनुसार संक्षेप व्याख्यान करूं हूं सो सुनो। हो भव्य जीव हो! आत्म तत्व जो अपना स्वरूप सो सम्यग्दर्शन ज्ञान आनंदरूप अर अमूर्तीक चिद्रूप लोकप्रमाण असंख्य प्रदेशी अतींद्रिय अखंड अव्याबाध निराकार निर्मल निरंजन परवस्तु से रहित निज गुण पर्याय स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावकर अस्तित्वरूप है जिसका ज्ञान निकट भव्यकूं होय। शरीरादिक पर वस्तु असार हैं, आत्मतत्व सार है सो अध्यात्म विद्या करि पाईये है। वह सबका देखनहारा जाननहारा अनुभवदृष्टिकर देखिए, आत्मज्ञान करि जानिये। अर जड पुद्गल धर्म अधर्म काल आकाश ज्ञेयरूप हैं, ज्ञाता नाहीं। अर यह लोक अनंत अलोकाकाशके मध्य अनंतवें भागविषें तिष्ठै है, अधोलोक मध्यलोक ऊर्ध्वलोक ये तीन लोक, तिन विषें सुमेरु पर्वत की जड हजार योजन, उसके तले पाताल लोक है। उसविषें सूक्ष्म स्थावर तो सर्वत्र हैं अर बादर स्थावर आधार विषें हैं। विकलत्रय अर पंचेंद्रिय तिर्यंच नाहीं, मनुष्य नाहीं। खरभाग पंकभागविषें भवनवासी देव तथा व्यंतरदेवनिके निवास हैं, तिनके तले सात नरक हैं तिनके नाम-रत्नप्रभा १ शर्करा २ बालुका ३ पंकप्रभा ४ धूमप्रभा ५ तमःप्रभा महातमःप्रभा ७ सो सात ही नरककी धरा महादुःखकी देनहारी सदा अन्धकाररूप हैं। चार नरकनिविषें तो उष्णकी बाधा है अर पांचवें नरक ऊपरले तीन भाग उष्ण अर नीचला चौथा भाग शीत अर छठा नरक शीत ही है अर सातवां महाशीत। ऊपरले नरक विषें उष्णता है सो महा विषम अर नीचले नरकविषें शीत है सो अति विषम। नरककी भूमि महा दुस्सह और परम दुर्गम है जहां राध रुधिरकी कीच है। महादुर्गंध है, श्वान सर्प मार्जार मनुष्य खर तुरंग ऊंट इनका मृतक शरीर सड़ जाय, उसकी महादुर्गंधसे असंख्यातगुणी दुर्गंध है, नानाप्रकार दुःखनिके सर्वकारण हैं। अर पवन महा प्रचण्ड विकराल चलै है, जाकरि भयंकर शब्द होय रह्या है। जे जीव विषय कषाय-संयुक्त हैं, कामी हैं, क्रोधी हैं, पंचइंद्रियोंके लोलुपी हैं, वे जैसें लोहे का गोला जलविषै डूबै तैसें नरकविषें डूबें हैं। जे जीवनिकी हिंसा करें, मृषा वाणी बोलें, परधन हरें, परस्त्री सेवें, महा आरम्भी परिग्रही, ते पापके भारकर नरकविषें पड़ें हैं। मनुष्यदेह पाय जे निरंतर भोगासक्त भए हैं, जिनके जीभ वश नाहीं, मन चंचल, ते प्रचंड कर्म के करणहारे नरक जाय हैं। जे पाप करें, करावें, पापकी अनुमोदना करें, ते आर्तरौद्रध्यानी नरक के पात्र हैं। वे वज्राग्निके कुंड में डारिये हैं, वज्राग्निके दाहकर जलते थके पुकारें हैं। अग्निकुन्ड

से छूटैं हैं तब वैतरणी नदी की ओर शीतल जल की वांछा कर जाय हैं, वहाँ जल महाक्षार दुर्गन्ध उसके स्पर्शसे ही शरीर गल जाय है। दुख:का भाजन वैक्रियकशरीर ताकर आयुपर्यंत नानाप्रकार दु:ख भोगवैं हैं। पहिले नरक आयु उत्कृष्ट सागर १ दूजे ३ तीजे ७ चौथे १० पांचवें १७ छठे २२ सातमें ३३ सो पूर्णकर मरैं हैं, मारे से मरैं नाहीं। वैतरणीके दु:ख से डरे छायाके अर्थ असिपत्र वनमें जाय हैं, तहां खड्ग बाण बरछी कटारी समीपत्र असराल पवनकर पड़ें हैं, तिनकर तिनका शरीर विदारा जाय है. पछाड़ खाय भूमिमें पडे। अर तिनकूं कभी कुंभीपाकमें पकावें हैं, कभी नीचा माथा ऊंचा पगकर लटकावें हैं, मुदगरनिसूं मारिए हैं, कुहाड़ों से काटिए हैं, करोतनसे विदारिए हैं, घानी में पेलिए हैं, नाना प्रकारके छेदन भेदन करैं हैं, ये नारकी जीव महा दीन महा तृषाकरि तृषित पीनेका पानी मांगें हैं तब तावादिक गाल प्यावें हैं। ते कहें हमको यहाँ तृषा नाहीं, हमारा पीछा छोड़ दो तब बलात्कार तिनकूं पछाड़ संडासियोंसे मुख फार मार मार प्यावें हैं. कंठ हृदय विदीर्ण होय जाय है, उदर फट जाय है। तीजे नरकतक तो परस्पर ही दु:ख हैं अर असुरकुमारनिकी प्रेरणा से भी दु:ख हैं अर चौथे से लेय सातवें तक असुरकुमारनि का गमन नाहीं, परस्पर ही पीड़ा उपजावें हैं। नरक विषे नीचलेसे नीचले बढ़ता दु:ख है। सातवीं नरक सबनिमें महा दु:खरूप है। नारकियोंकूं पहिला भव याद आवे है अर दूसरे नारकी तथा तीजे लग असुरकुमार पूर्वले कर्म याद करावें हैं कि तुम भले गुरुनिके वचन उलंघ कुगुरु कुशास्त्रके बलकर मांसकूं निर्दोष कहते हुते, नाना प्रकार के मांसकर अर मधु कर अर मदिराकरि कुदेवनिका आराधन करते हुते, सो मांसके दोषतें नरकविषें पड़े हो. ऐसा कहकरि इनही का शरीर काट काट इनके मुख विषे देय हैं अर लोहेके तथा तांबेके गोला बलते पछाड़ पछाड़, संडासियों से मुख फाड़ फाड़, छातीपर पांव देय देय तिनके मुख विषे घाले हैं अर मुदगरों से मारै हैं। अर मद्यपायीकूं मार मार ताता तांबा शीशा प्यावें हैं। अर परदारारत पापिनकूं वज्राग्निकर तप्तायमान लोहे की जे पूतली तिनसूं लिपटावैं हैं अर जे परदारारत फूलनिके सेज सूते तिनकूं सूलनिके सेज ऊपर सुवावें हैं अर स्वप्न की माया समान असार जो राज्य उसे पायकर जे गर्वे हैं, अनीति करैं हैं तिनकूं लोहे के कीलों पर बैठाय मुदगरोंसे मारैं हैं सो महा विलाप करैं हैं, इत्यादि पापी जीवनिकूं नरकके दु:ख होय हैं सो कहाँ लग कहे, एक निमिषमात्र भी नरकमें विश्राम नाहीं, आयुपर्यंत तिलमात्र आहार नाहीं अर बूंद मात्र जलपान नाहीं, केवल मारही का आहार है।

तातें यह दुस्सह दु:ख अधर्मका फल जान अधर्मकूं तजहु। ते अधर्म मधुमांसादिक अभक्ष्य भक्षण अन्याय वचन दुराचार रात्रि-आहार वेश्यासेवन परदारागमन स्वामीद्रोह मित्रद्रोह

विश्वासघात कृतघ्नता लंपटता ग्रामदाह वनदाह परधनहरण अमार्गसेवन परनिंदा परद्रोह प्राणघात बहुआरम्भ बहुपरिग्रह निर्दयता खोटी लेश्या रौद्रध्यान मृषावाद कृपणता कठोरता दुर्जनता मायाचार निर्माल्यका अंगीकार, माता पिता गुरुवोंकी अवज्ञा, बाल वृद्ध स्त्री दीन अनाथनिका पीडन इत्यादि दुष्ट कर्म नरक के कारण हैं, वे तज शांतभाव धर जिनशासनकूं सेवहु जाकर कल्याण होय। जीव छै कायके हैं—पृथ्वीकाय, अप (जल) काय, तेज (अग्नि) काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय तिनकी दया पालहु। अर जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल छै द्रव्य हैं अर सात तत्व नव पदार्थ पंचास्तिकाय तिनकी श्रद्धा करहु। अर चतुर्दश गुणस्थान स्वरूप अर सप्त भंगी वाणी का स्वरूप भली भाँति केवलीकी आज्ञा प्रमाण उरविषें धरो। स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यात्अस्ति-अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य ये सप्तभंग कहे। अर प्रमाण कहिए वस्तु का सर्वांग कथन अर नय कहिए वस्तु का एक अंग कथन अर निक्षेप कहिए नाम स्थापना द्रव्य भाव ये चार अर जीवनि विषैं एकेंद्री के दोय भेद सूक्ष्म बादर अर पंचेन्द्रीके दोय भेद सैनी असैनी अर बेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री ये कुल सात भेद जीवों के हैं सो पर्याप्त अपर्याप्तकर चौदह भेद जीवसमास होय हैं। अर जीव के दोय भेद एक संसारी दूजे सिद्ध, जिसमें संसारी के दोय भेद एक भव्य दूसरा अभव्य। जो मुक्ति होने योग्य सो भव्य अर मुक्ति न होने योग्य सो अभव्य। अर जीवका निजलक्षण उपयोग है ताके दोय भेद एक ज्ञान दूजे दर्शन। ज्ञान समस्त पदार्थकूं जानैं, दर्शन समस्त पदार्थकूं देखै। सो ज्ञान के आठ भेद-मति श्रुति अवधि मनःपर्यय केवल कुमति कुश्रुत कुअवधि। अर दर्शनके चार भेद—चक्षु अचक्षु अवधि केवल। अर जिनके एक स्पर्शन इन्द्री होय सो स्थावर कहिए तिनके भेद पाँच-पृथ्वी अप तेज वायु वनस्पति। अर त्रसके भेद चार-बेइन्द्री तेइन्द्री चौइन्द्री पंचेंद्री। जिनके स्पर्शन अर रसना वे बेइन्द्री, जिनके स्पर्शन रसना नासिका सो तेइन्द्री, जिनके स्पर्शन रसना नासिका चक्षु वे चौइन्द्री, जिनके स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र वे पंचेंद्री। चौइन्द्री तक तो संमूर्च्छन अर असैनी हैं अर पंचेन्द्री विषै केई समूर्च्छन केई गर्भज, तिन विषें केई सैनी केई असैनी। जिनके मन वे सैनी अर जिनके मन नाहीं वे असैनी। अर जे गर्भसे उपजें वे गर्भज अर जे गर्भ बिना उपजें, स्वतः स्वभाव उपजें वे संमूर्च्छन। गर्भज के भेद तीन—जरायुज, अंडज, पोतज। जे जराकर मंडित गर्भ से निकसे मनुष्य घोटकादिक वे जरायुज अर जे बिना जेरके सिंहादिक सो पोतज अर जे अंडों से उपजे पक्षी आदिक वे अंडज। अर देव नारकियों का उपपाद जन्म है, माता पिता के संयोग बिना ही पुण्य पाप के उदय से उपजैं हैं। देव तो उत्पाद शय्या विषें उपजें हैं अर नारकी बिलों

में उपजें हैं। देवयोनि पुण्य के उदय से है अर नरकयोनि पाप के उदयसे है। अर मनुष्य जन्म पुण्य पाप की मिश्रता से है अर तिर्यंच गति मायाचार के योग से है। देव नारकी मनुष्य इन बिना सब तिर्यंच जानने। जीवोंकी चौरासी लाख योनियां हैं, उनके भेद सुनो—पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय नित्य निगोद इतरनिगोद ये तो सात सात लाख योनि हैं, सा बयालीस लाख योनि भई अर प्रत्येक वनस्पति दस लाख, ये बावन लाख भेद स्थावर के भए। अर बेइन्द्री तेइन्द्री चौइन्द्री ये दोय दोय लाख योनि ऐसे छै लाख योनि भेद विकलत्रयके भए। अर पंचेंद्री तिर्यंचके भेद चार लाख योनियां ऐसे सब तिर्यंच योनिके बासठ लाख भेद भए। अर देवयोनिके भेद चार लाख, नरक योनिके भेद चार लाख अर मनुष्य योनि के चौदह लाख, ये सब चौरासी लाख योनि महा दुःखरूप हैं। इनसे रहित सिद्धपद ही अविनाशी सुखरूप है। संसारी जीव सब ही देहधारी हैं अर सिद्ध परमेष्ठी देहरहित निराकार हैं। शरीर के भेद पाँच—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण। तिन विषैं तेजस कार्माण तो अनादि कालसे सब जीवनिकूं लग रहे हैं तिनका अंतकरि महामुनि सिद्धपद पावैं हैं। औदारिक से असंख्यातगुणी अधिक वर्गणा वैक्रियक की हैं अर वैक्रियकतें असंख्यातगुणी आहारककी हैं अर आहारकतें अनंतगुणी तैजसकी हैं अर तैजसतें अनंतगुणी कार्माणकी हैं। जा समय संसारी जीव देहकूं तजकर दूसरी गतिकूं जाय है ता समय अनाहार कहिए। जितनी देर एक गति से दूसरी गतिविषैं जाते हुवे जीवको लगै है उस अवस्थामें जीवकूं अनाहारी कहिए। अर जितना समय एक गति से दूसरी गति में जाने में लगै सो वह एक समय तथा दो समय, अधिकतें अधिक तीन समय लगें हैं, सो ता समय जीवके तैजस अर कार्माण ये दो ही शरीर पाइये हैं। शरीरके बिना यह जीव सिवा सिद्ध अवस्था के और काहू अवस्था में काहू समय होता नाहीं। या जीवके हर समय अर हर गतिमें जन्मते मरते साथ ही रहैं हैं। जा समय यह जीव घातिया अघातिया दोऊ प्रकारके कर्म क्षय करके सिद्ध अवस्थाकूं जाता है ता समय तैजस अर कार्माण का क्षय होय है। अर जीवनिके शरीर के परमाणुनिकी सूक्ष्मता या प्रकार है—औदारिकतें वैक्रियक सूक्ष्म अर वैक्रियकतें आहारक सूक्ष्म, आहारकतें तैजस सूक्ष्म अर तैजसतें कार्माण सूक्ष्म है। सो मनुष्य अर तिर्यंचनिके तो औदारिक शरीर है अर देव नारकीनिके वैक्रियक है अर आहारक ऋद्धिधारी मुनिनि के सन्देह निवारिवेके अर्थ दसमें द्वार से निकसै सो केवली के निकट जाय संदेह निवारि पीछा आय दसमें द्वार में प्रवेश करै है। ये पांच प्रकार के शरीर कहे। तिनमें एक काल एक जीवके कबहूं चार शरीरहू पाइये ताका भेद सुनहु-तीन तो सब ही जीवनिके पाइए, नर अर तिर्यंचके औदारिक अर देव नारकीनिके वैक्रियक अर तैजस कार्माण सबके है। तिनमें कार्माण तो

दृष्टिगोचर नाहीं अर तैजस काहू मुनिके प्रगट होय है । ताके भेद दोय हैं—एक शुभ तैजस, एक अशुभ तैजस । सो शुभ तैजस तो लोकनिकूं दुःखी देख दाहिनी भुजातें निकसि लोकनि का दुःख निवारै है अर अशुभ तैजस क्रोधके योगकर बाम भुजातैं निकसि प्रजाकूं भस्म करै है अर मुनिकूं हू भस्म करै है अर काहू मुनिके विक्रियाऋद्धि प्रगट होय है तब शरीरकूं सूक्ष्म तथा स्थूल करै है सो मुनिके चार शरीरहू काहू समय पाइए, एक काल पाँचों शरीर काहू जीवके न होंय ।

अथानतर मध्यलोक में जंबूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप अर लवण समुद्र आदि असंख्यात समुद्र हैं, शुभ हैं नाम जिनके सो द्विगुण २ विस्तारकूं लिए वलायाकार तिष्ठै हैं, सबके मध्य जंबूद्वीप है ताके मध्य सुमेरु पर्वत तिष्ठै है सो लाख योजन ऊंचा है । अर जे द्वीप समुद्र कहे तिनमें जंबूद्वीप लाख योजन के विस्तार है अर प्रदक्षिणा तिगुणी से कछुइक अधिक है । जंबूद्वीप विषैं देवारण्य अर भूतारण्य दो वन हैं, तिन विषैं देवनिके निवास हैं । अर षट् कुलाचल हैं, पूर्व समुद्रसूं पश्चिमके समुद्र तक लांबे पड़े हैं, तिनके नाम-हिमवान् महाहिमवान् निषध नील रुक्मि शिखरी, समुद्र के जल का है स्पर्श जिनके । तिनमें हृद अर हृदनिमें कमल, तिनमें षट् कुमारिका देवी हैं, श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी । अर जबूद्वीप में सात क्षेत्र हैं—भरत हैमवत हरि विदेह रम्यक हैरण्यवत ऐरावत । अर षट् कुलाचलनिसूं गंगादिक चौदह नदी निकसी हैं, आदि के से तीन अर अंतके से तीन अर मध्य चारों से दोय-२ ऐसे चौदह हैं । अर दूजा द्वीप धातकी खण्ड सो लवण समुद्र तैं दूना है ता विषै दोय सुमेरु पर्वत हैं अर बारह कुलाचल अर चौदह क्षेत्र । यहाँ एक भरत वहाँ दोय, यहा एक हिमवान वहां दोय । याही भाँति सर्व दुगणे जानने । अर तीजा द्वीप पुष्कर ताके अर्ध भाग विषैं मानुषोत्तर पर्वत है सो अढाईद्वीप ही विषैं मनुष्य पाईये हैं, आगे नाहीं आधे पुष्कर विषैं दोय दोय मेरु, बारह कुलाचल, चौदह क्षेत्र, धातु की खंडद्वीप समान तहां जानने । अढाईद्वीप विषैं पाँच सुमेरु, तीस कुलाचल, पाँच भरत, पाँच ऐरावत, पांच महाविदेह तिनमें एकसौ साठ विजय, समस्त कर्मभूमि के क्षेत्र एक सौ सत्तर, एक एक क्षेत्र में छह छह खण्ड तिनमें पांच पांच म्लेच्छ खण्ड एक २ आर्य-खण्ड, आर्यखण्ड में धर्म की प्रवृत्ति, विदेहक्षेत्र अर भरत ऐरावत में इन विषैं कर्मभूमि, तिनमें विदेह में तो शाश्वती कर्म भूमि अर भरत ऐरावत में अठारा कोड़ाकोड़ी सागर भोगभूमि अर दोय कोड़ाकोड़ी सागर कर्मभूमि अर देवकुरु, उत्तरकुरु यह शाश्वती उत्कृष्ट भोगभूमि तिनमें तीन २ पल्य की आयु अर तीन तीन कोस की काय अर तीन तीन दिन पीछे अल्प आहार सो पांच मेरु संबंधी पाँच देवकुरु पाँच उत्तरकुरु अर हरि अर रम्यक ये मध्य भोगभूमि तिन विषैं दोय पल्य की आयु अर दोय कोस की काय, दोय दिन गए आहार सो

पांच मेरुसंबधी पांच हरि पांच रम्यक ये दस मध्यम भोगभूमि अर हैमवत हैरण्यवत ये जघन्य भोगभूमि, तिनमें एक पल्य की आयु अर एककोस की काय, एक दिनके अंतरे आहार सो पांच मेरु संबंधी पांच हैमवत पांच हैरण्यवत जघन्य भोगभूमि दस या भांति तीस भोगभूमि अढाईद्वीप में जाननी। अर पांच महाविदेह पांच भरत पांच ऐरावत ये पंद्रह कर्मभूमि हैं तिनमें मोक्षमार्ग प्रवरतै है।

अढाईद्वीप के आगे मानुषोत्तरके परे मनुष्य नाहीं, देव अर तिर्यंच ही हैं। तिन विषैं जलचर तो तीन ही समुद्रविषैं हैं लवणोदधि,कालोदधि तथा अंत का स्वयंभूरमण इन तीन बिना और समुद्रविविषैं जलचर नाहीं। अर विकलत्रयजीव अढाईद्वीप विषैं हैं अर स्वयंभूरमण द्वीप ताके अर्ध भागविषैं नागेन्द्र पर्वत है, ताके परे आधे स्वयंभूरमणद्वीपविषैं अर सारे स्वयंभूरमण समुद्रविषैं विकलत्रय हैं। मानुषोत्तरसूं लेय नागेन्द्र पर्वत पर्यंत जघन्य भोगभूमिकी रीति है। वहां तिर्यंचनिकी एक पल्यकी आयु है। अर सूक्ष्मस्थावर तो सर्वत्र तीन लोक में हैं अर बादर स्थावर आधारविषैं सर्वत्र नाहीं। एक राजूविषैं समस्त मध्यलोक है। मध्य लोक में अष्ट प्रकार व्यंतर अर दस प्रकार भवनपतिनिके निवास हैं अर ऊपर ज्योतिषी देवनिके विमान हैं तिनके पांच भेद-चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, तारा, नक्षत्र। सो अढाई द्वीपविषै ज्योतिषी चरहू हैं अर स्थिर हू हैं। आगे असंख्यात द्वीपनिमें ज्योतिषी देवनिके विमान स्थिर ही हैं। बहुरि सुमेरुके ऊपर स्वर्गलोक है तहां सोलह स्वर्ग तिनके नाम-सौधर्म ईशान सनत्कुमार माहेंद्र ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठ शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत ये सोलह स्वर्ग, तिनमें कल्पवासी देव देवी हैं अर सोलह स्वर्गनिके ऊपर नव ग्रैवेयक, तिनके ऊपर नव अनुत्तर, तिनके ऊपर पंच पंचोत्तर-विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित सर्वार्थसिद्धि। यह अहमिद्रनिके स्थानक हैं जहाँ देवांगना नाही अर स्वामी सेवक नाहीं, और ठौर गमन नाही। अर पांचवां स्वर्ग ब्रह्म ताके अन्त में लौकांतिक देव हैं तिनके देवांगना नाहीं, वे देवर्षि हैं, भगवान के तपकल्याणक में ही आवैं। ऊर्ध्वलोक में देव ही हैं अथवा पंच स्थावर ही हैं। हे श्रेणिक ! यह तीन लोक का व्याख्यान जो केवलीने कह्या ताका संक्षेपरूप जानना। तीन लोक के शिखर सिद्धलोक है ता समान देदीप्यमान और क्षेत्र नाहीं, जहां कर्मबंधन से रहित अनंत सिद्ध विराजै हैं मानो वह मोक्ष स्थानक तीन भवन का उज्ज्वल क्षेत्र ही है। वह मोक्ष स्थानक अष्टमी धरा है। अष्ट पृथ्वी के नाम-नारक १ भवनवासी २ मानुष ३ ज्योतिषी ४ स्वर्गवासी ५ ग्रैवेयक ६ अनुत्तर विमान ७ अर मोक्ष ८ ये आठ पृथ्वी हैं सो शुद्धोपयोगके प्रसादकरि जे सिद्ध भए हैं तिनकी महिमा कही न जाय, तिनका मरण नाहीं बहुरि जन्म नाहीं, महा सुखरूप हैं, अनेक शक्ति के धारक समस्त दुःख रहित महा निश्चल सर्वके ज्ञाता

द्रष्टा हैं।

यह कथन सुन रामचन्द्र सकल भूषण केवलीसूं पूछते भए-हे प्रभो ! अष्टकर्म-रहित अष्टगुण आदि अनंतगुण सहित सिद्धपरमेष्ठी संसारके भावनि से रहित हैं सो दुःख तो उनको काहूप्रकार का नाहीं अर सुख कैसा है? तब केवली दिव्य ध्वनिकर कहते भए-इस तीन लोक विषैं सुख नाहीं, दुःख ही है, अज्ञान से वृथा सुख मान रहे हैं। संसार का इन्द्रियजनित सुख बाधासंयुक्त क्षणभंगुर है, अष्टकर्म करि बंधे सदा पराधीन ये जीव जब तक रहें तिनके तुच्छ मात्रहू सुख नाही, जैसें स्वर्ण का पिंड लोहकरि संयुक्त होय तब स्वर्ण की कांति दब जाय है तैसें जीव की शक्ति कर्मनिकरि दब रही है सो सुखरूप दुःख को भोगवै है। ये प्राणी जन्म जरा मरण रोग शोक जे अनंत उपाधि तिनकरि महा पीड़ित हैं, तनका अर मनका दुःख मनुष्य तिर्यंच नारकीनिकूं है अर देवनिकूं दुःख मनही का सो मन का महा दुःख है ताकर पीड़ित हैं। या संसार विषैं सुख काहेका ? ये इंद्रियजनित विषय के सुख इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्तीनिकूं शहद की लपेटी खडग की धारा समान हैं अर विषमिश्रित अन्न समान हैं। अर सिद्धनिके मन इन्द्री नाहीं, शरीर नाहीं, केवल स्वाभाविक अविनाशी उत्कृष्ट निराबाध निरुपम सुख है, ताकी उपमा नाहीं। जैसें निद्रा रहित पुरुषकूं सोयवे करि कहा अर निरोगनिकूं औषधि कर कहा ? तैसें सर्वज्ञ वीतराग कृतार्थ सिद्ध भगवान तिनकू इन्द्रीनिके विषयनिकर कहा ? दीपकूं सूर्य चन्द्रादिककर कहा ? जे निर्भय, जिनके शत्रु नाहीं तिनके आयुधनिकरि कहा ? जे सबके अंतर्यामी सबकूं देखैं जानें, जिनके सकल अर्थ सिद्ध भए कछु करना नाहीं, वांछा काहू वस्तुकी नाहीं, ते सुख के सागर हैं। इच्छा मनसूं होय है सो मन नाहीं, परम आनंद-स्वरूप क्षुधा तृषादि बाधा-रहित हैं, तीर्थंकर देव जा सुख की इच्छा करै ताकी महिमा कहाँ लग कहिए, अहमिंद्र इन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्र चक्रवर्त्यादिक निरंतर ताही पदका ध्यान करैं हैं। अर लौकांतिक देव ताही सुखके अभिलाषी हैं ताकी उपमा कहाँ लग करैं। यद्यपि सिद्धपद का सुख उपमार-हित केवली गम्य है तथापि प्रतिबोध के अर्थ तुमकूं सिद्धनिके सुखका कछु इक वर्णन करैं हैं।

अतीत अनागत वर्तमान तीन कालके तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिक सर्व उत्कृष्ट भूमि के मनुष्यनिका सुख अर तीन काल का भोगभूमि का सुख अर इन्द्र अहमिंद्र आदि समस्त देवनिका सुख भूत भविष्यत् वर्तमानकाल का सकल एकत्र करिये अर ताही अनंत-गुणा फलाइए सो सिद्धनिके एक समय के सुख तुल्य नाहीं। काहेसे ? जो सिद्धनिका सुख निराकुल निर्मल अव्याबाध अखण्ड अतीन्द्रिय अविनाशी है अर देव मनुष्यनिका सुख उपाधिसंयुक्त बाधासहित विकल्परूप व्याकुलताकरि भरया विनाशीक है। अर एक दृष्टांत

और सुनहु-मनुष्यनितें राजा सुखी, राजानितें चक्रवर्ती सुखी अर चक्रवर्तीनितें व्यंतरदेव सुखी अर व्यंतरनिसे ज्योतिषी देव सुखी, तिनसे भवनवासी अधिक सुखी अर भवनवासीनितें कल्पवासी सुखी अर कल्पवासीनिते नव ग्रैवेयक के सुखी, नवग्रैवेयकतें नव अनुत्तर के सुखी, तिनतें पंचोत्तर के सुखी, पंचोत्तर में सर्वार्थसिद्धि समान और सुखी नाहीं। सो सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रनितें अनन्तानन्तगुणा सुख सिद्धपदमें है। सुखकी हद सिद्धपद का सुख है। अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य यह आत्मा का निज स्वरूप सिद्धनिमें प्रवर्ते है। अर संसारी जीवनिके दर्शन ज्ञान सुख वीर्य कर्मनिके क्षयोपशम से बाह्य वस्तु के निमित्त थकी विचित्रता लिए अल्परूप प्रवर्ते है। ये रूपादिक विषय सुखव्याधिरूप विकल्परूप मोह के कारण इनमें सुख नाहीं। जैसें फोड़ा राध रुधिरकरि भरया फूले ताहि में सुख कहां तैसें विकल्परूप फोड़ा महा व्याकुलतारूप राधि का भरया जिनके है तिनके सुख कहाँ ? सिद्ध भगवान् गतागतरहित समस्त लोकके शिखर विराजें हैं, तिनके सुख समान दूजा सुख नाहीं। जिनके दर्शन ज्ञान लोकालोककूं देखें जानें तिन समान सूर्य कहां ? सूर्य तो उदय अस्तकूं धरै है, सकल प्रकाशक नाहीं। वह भगवान् सिद्ध परमेष्ठी हथेलीविषें आंवलेकी नाईं सकल वस्तुकूं देखें जाने हैं, छद्मस्थ पुरुषका ज्ञान उन समान नाहीं। यद्यपि अवधिज्ञावी मनःपर्ययज्ञानी मुनि अविभागी परमाणु पर्यन्त देखे है अर जीवनिके असंख्यात जन्म जाने है तथापि अरूपी पदार्थनिकूं न जाने है अर अनन्तकाल की न जानै, केवली ही जानै, केवल ज्ञान केवल दर्शनकरि युक्त तिन समान और नाहीं। सिद्धनिके ज्ञान अनंत दर्शन अनंत अर संसारी जीवनि के अल्प ज्ञान अल्प दर्शन, सिद्धनि के अनंत सुख अनंत वीर्य अर संसारनिके अल्प सुख अल्पवीर्य। यह निश्चय जानो-सिद्धनिके सुख की महिमा केवलज्ञानी ही जानें अर चार ज्ञानके धारक हू पूर्ण न जानें। यह सिद्धपद अभव्योंकूं अप्राप्य है, इस पदकूं निकट भव्य ही पावें, अभव्य अनंत काल हू काय-क्लेश करि अनेक यत्न करें तौहू न पावें। अनादि काल की लगी जो अविद्या रूप स्त्री ताका विरह अभव्यनिके न होय, सदा अविद्याकूं लिए भव वनविषें शयन करें। अर मुक्तिरूप स्त्रीके मिलापकी वांछा विषें तत्पर जे भव्य जीव ते कैयक दिन संसारविषें रहैं हैं सो संसार में राजी नाहीं, तपविषें तिष्ठते मोक्ष ही के अभिलाषी हैं ? जिन विषें सिद्ध होने की शक्ति नाहीं उन्हें अभव्य कहिए अर जे सिद्ध होनहार हैं उन्हें भव्य कहिए। केवली कहैं हैं-हे रघुनंदन ! जिनशासन बिना और कोई मोक्ष का उपाय नाहीं। बिना सम्यक्त कर्मनिका क्षय न होय। अज्ञानी जीव कोटि भव विषें जे कर्म न खिपाय सकै सो ज्ञानी तीन गुप्तिकूं धरे एक मुहूर्त विषें खिपावै। सिद्ध भगवान् परमात्मा प्रसिद्ध हैं, सर्व जगत् के लोग उनकूं जानै हैं कि वे भगवान् हैं, केवली बिना उनकूं कोई प्रत्यक्ष देख जाय न सकै, केवलज्ञानी ही

सिद्धनिकूं देखै जानै है। संसार का कारण मिथ्यात्वका मार्ग या जीवने अनन्त भव विषें धारया। तुम निकट भव्य हो, परमार्थ की प्राप्तिके अर्थ जिनशासन की अखण्ड श्रद्धा धारहु। हे श्रेणिक! ये वचन सकलभूषण केवली के सुनि श्रीरामचन्द्र प्रणामकरि कहते भए–हे नाथ! या संसार समुद्रतें मोहि तारहु। हे भगवान्! यह प्राणी कौन उपायकरि संसार के वासतें छूटै है? तब केवली भगवान् कहते भए-हे राम! सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्ष का मार्ग है, जिनशासनविषें यह कहा है कि तत्वका जो श्रद्धान ताहि सम्यग्दर्शन कहिए। तत्व अनंत गुण पर्यायरूप है ताके दोय भेद हैं—एक चेतन दूसरा अचेतन। सो जीव चेतन है, और सर्व अचेतन हैं। अर सम्यग्दर्शन दोय प्रकारतें उपजै है-एक निसर्ग एक अधिगम। जो स्वतः स्वभाव उपजै सो निसर्ग अर गुरुके उपदेशतें उपजै सो अधिगम। सम्यग्दृष्टि जीव जिनधर्म विषें रत है। सम्यक्त के अतिचार पांच हैं—शंका कहिए जिन-धर्म विषै संदेह अर कांक्षा कहिए भोगनिकी अभिलाषा अर विचिकित्सा कहिए महामुनिकूं देख ग्लानि करनी अर अन्य दृष्टि प्रशंसा कहिए मिथ्यादृष्टिकूं मन विषें भला जानना अर संस्तव कहिए वचनकरि मिथ्यादृष्टिकी स्तुति करना इनकरि सम्यक्तविषें दूषण उपजै है। अर मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ ये चार भावना अथवा अनित्यादि बारह भावना अथवा प्रशम संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य अर शंकादि दोष रहितपना जिनप्रतिमा जिनमंदिर जिन-शास्त्र मुनिराजनिकी भक्ति इनकरि सम्यग्दर्शन निर्मल होय है अर सर्वज्ञके वचन प्रमाण वस्तुका जानना सो ज्ञान की निर्मलताका कारण है अर जो काहूतें न सधे ऐसी दुर्धरक्रिया आचरणी ताहि चारित्र कहिए, पांचों इन्द्रियनिका निरोध, मनका निरोध, वचन का निरोध, सर्व पाप क्रियानिका त्याग सो चारित्र कहिए, त्रस स्थावर सर्व जीवों की दया-सबकूं आप-समान जानै सो चारित्र कहिए अर सुनने वाले के मन अर काननिकूं आनंद-कारी स्निग्ध मधुर अर्थसंयुक्त कल्याणकारी वचन बोलना सो चारित्र कहिए अर मन वचन कायकरि परधन का त्याग करना, किसी का बिना दिया कछु न लेना अर दिया हुआ आहारमात्र लेना सो चारित्र कहिए अर जो देवनिकरि पूज्य महादुर्धर ब्रह्मचर्यव्रत का धारण सो चारित्र कहिए अर शिवमार्ग कहिए निर्वाण का मार्ग ताहि विघ्नकरणहारी मूर्च्छा कहिए मनकी अभिलाषा ताका त्याग सोई परिग्रह का त्याग सो हू चारित्र कहिए है। ये मुनिनिके धर्म कहे अर जो अणुव्रती श्रावक मुनिनिकूं श्रद्धा आदि गुणनिकरि युक्त नवधा भक्तिकर आहार देना सो एकदेशचारित्र कहिए अर परदारा परधनका परिहार, परपी-डाका निवारण, दयाधर्म का अंगीकार, दान शील पूजा प्रभावना पर्वोपवासादिक सो ये देशचारित्र कहिए। अर यम कहिए यावज्जीव पापका परिहार, नियम कहिए मर्यादारूप

व्रत तपका अंगीकार, वैराग्य विनय विवेक ज्ञान मन इन्द्रियों के निरोध ध्यान इत्यादि धर्म का आचरण सो एकदेश चारित्र कहिए। यह अनेकगुणकरि युक्त जिनभाषित चारित्र परम धामका कारण कल्याणकारी प्राप्तिके अर्थ सेवने योग्य है। जो सम्यग्दृष्टि जीव जिनशासन का श्रद्धानी, परनिंदा का त्यागी, अपनी अशुभ क्रिया का निंदक, जगत् के जीवोंसे व सधै ऐसे दुर्द्धर तपका धारक संयमका साधनहारा सोही दुर्लभ चारित्र धारिवेकूं समर्थ होय। अर जहाँ दया आदि समीचीन गुण नाहीं तहां चारित्र नाहीं। अर चारित्र बिना संसारसूं निवृत्ति नाहीं। जहाँ दया क्षमा ज्ञान वैराग्य तप संयम नाहीं तहाँ धर्म नाहीं। विषय कषायका त्याग सोई धर्म है, शम कहिए समता भाव परमशांत, दम कहिए मन इन्द्रियों का निरोध, संवर कहिए नवीनकर्म का निरोध, जहां ये नाहीं तहाँ चारित्र नाहीं। जे पापी जीव हिंसा करें हैं, झूठ बोलें हैं, चोरी करें है, परस्त्री सेवन करें हैं, महा आरम्भी है, परिग्रही हैं, तिनके धर्म नाहीं। जे धर्म के निमित्त हिंसा करे हैं ते अधर्मी अधमगति के पात्र हैं। जो मूढ जिनदीक्षा लेकर आरम्भ करें हैं सो यति नाहीं, यतिका धर्म आरम्भ परिग्रहसूं रहित है। परिग्रह धारियोंकूं मुक्ति नाहीं, हिंसा में धर्म जान षट् कायिक जीवों की हिंसा करे हैं ते पापी हैं। हिंसा विषै धर्म नाहो, हिंसकोंकूं या भव पर भव के सुख नाहीं, शिव कहिए मोक्ष नाहीं। जे सुख के अर्थ धर्म के अर्थ जीवघात करें हैं सो वृथा है। जे ग्राम क्षेत्रादिक विषैं आसक्त हे, गाय भैंस राखैं है, मारै है बांधै है, तोडैं हैं, दाहै हैं, उनके वैराग्य कहाँ ? जे क्रय विक्रय करें हैं, रसोई पर हैडा आदि आरम्भ राखें हैं, सुवर्णादिक राखें है, तिनकूं मुक्ति नाहीं। जिनदीक्षा निरारम्भ है, अतिदुर्लभ है, जे जिनदीक्षा धारि जगत्का धंधा करैं है वे दीर्घ संसारी हैं। जे साधु होय तैलादिकका मर्दन करें हैं, शरीरका संस्कार करें है, पुष्पादिककूं सूंघें हैं, सुगन्ध लगावें हैं, दीपक का उद्योत करै हे, धूप खेवैं है सो साधु नाही, मोक्षमार्ग सूं परान्मुख है। अपनी बुद्धि करि जे कहे हैं कि हिंसा विषै दोष नाहीं वे मूर्ख हैं, तिनकूं शास्त्रका ज्ञान नाहीं, चारित्र नाहीं।

जे मिथ्यादृष्टि तप करें हैं, ग्रामविषै एक रात्रि बसे हैं, नगरविषै पंच रात्रि अर सदा ऊर्ध्वबाहु राखे है, मास मासोपवास करे हैं अर वनविषै विचरें हैं, मौनी हैं, निःपरिग्रही हैं तथापि दयावान नाही, दुष्ट है हृदय जिनका, सम्यक्त बीज बिना धर्मरूप वृक्षकूं न उगाय सकें। अनेक कष्ट करें तो भी शिवालय कहिए मुक्ति उसे न लहैं। जे धर्मकी बुद्धिकर पर्वतसूं पडैं, अग्निविषैं जरैं, जलविषैं डूबैं, धरतीविषैं गडैं, वे कुमरणकर कुगतिकूं जावैं हैं। जे पापकर्मी कामना-परायण आर्त रौद्र ध्यानी विपरीत उपाय करें, वे नरक निगोद लहैं। मिथ्यादृष्टि जो कदाचित् दान दे, तप करै, सो पुण्यके उदयकरि

मनुष्य अर देव गतिके सुख भोगै है परन्तु श्रेष्ठ मनुष्य व होय। सम्यग्दृष्टियोंके फलके असंख्यातवें भाग भी फल नाहीं। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणठाण अव्रती हैं तौ हू नियम विषैं है प्रेम जिनके सो सम्यग्दर्शन के प्रसादसू ं देवलोकविषें उत्तम देव होवें। अर मिथ्यादृष्टि कुलिंगी महातप भी करैं तो देवनिके किंकर हीन देव होंय, बहुरि संसार भ्रमण करैं। अर सम्यग्दृष्टि भव धरैं तो उत्तम मनुष्य होंय, तिनमें देवनिके भव सात मनुष्यनिके भव आठ या भांति पंद्रह भव विषैं पंचमगति पावैं। वीतराग सर्वज्ञदेव ने मोक्ष का मार्ग प्रगट दिखाया है परन्तु यें विषयी जीव अंगीकार न करें हैं, आशारूपी फांसी से बंधे, मोहके वश पड़े, तृष्णाके भरे, पापरूप जंजीर से जकड़े कुगतिरूप बंदीगृहविषैं पड़े हैं। स्पर्श अर रसना आदि इन्द्रियोंके लोलुपी दुःखहीकूं सुख मानें हैं, ये जगत् के जीव एक जिनधर्म के शरण बिना क्लेश भोगे है। इन्द्रियों के सुख चाहें सो मिलै नाहीं अर मृत्युसूं डरैं सो मृत्यु छोड़ै नाहीं, विफल कामना विफल भयके वश भए जीव केवल तपहीकूं प्राप्त होय हैं। तापके हरिवेका और उपाय नाहीं, आशा अर शंका तजना यही सुखका उपाय है। यह जीव आशाकरि भरचा भोगनिका भोग किया चाहै है अर धर्म विषैं धैर्य नाहीं धरैं है, क्लेशरूप अग्नि कर उष्ण, महा आरम्भ विषैं उद्यमी कछु भी अर्थ नाहीं पावै है, उलटा गांठ का खोवै है। यह प्राणी पापके उदयसूं मनवांछित अर्थकूं नाहीं पावै है, उल्टा अनर्थ होय है सो अनर्थ अति दुर्जय है। यह मैं किया, यह मैं करूं हूं, यह करूंगा ऐसा विचार करते ही मरकर कुगति जाय है। ये चारों ही गति कुगति हैं, एक पंचमगति निर्वाण सोई सुगति है, जहां से बहुरि आवना नाहीं। अर जगत् विषैं मृत्यु ऐसा नाहीं देखै है जो याने यह किया, यह न किया, बाल अवस्था आदिसे सर्व अवस्थाविषैं आय दाबै है जैसे सिंह मृगकूं सर्व अवस्थाविषैं आय दाबै। अहो यह अज्ञानी जीव अहितविषैं हितकी वांछा धरै है अर दुःखविषैं सुखकी आशा करै है, अनित्य को नित्य जानै है, भय-विषैं शरण मानै है, इनके विपरीतबुद्धि है, यह सब मिथ्यात्वका दोष है। यह मनुष्यरूप माता हाथी मायारूप गर्तविषैं पड्या अनेक दुःखरूप बंधनकरि बंधै है। विषयरूप मांसका लोभी मत्स्यकी नाईं विकल्परूपी जाल में पडै है, यह प्राणी दुर्बल बलद की न्याईं कुटुं-बरूप कीच में फंसा खेदखिन्न होय है जैसें बैरियोंसे बंध्या अर अंधकूप में पड्या उसका निकसना अति कठिन है तैसें स्नेहरूप फाँसीकरि बंध्या संसाररूप अंधकूप विषैं पड़ा अज्ञानी जीव उसका निकलना अति कठिन है। कोई निकटभव्य जिनवाणीरूप रस्सेकूं गहै अर श्रीगुरु निकासने वाले होंय तो निकसै। अर अभव्य जीव जैनेंद्री आज्ञारूप अति दुर्लभ आनन्द का कारण जो आत्मज्ञान उसे पायवे समर्थ नाहीं, जिनराजका निश्चयमार्ग निकट भव्य ही पावै। अर अभव्य सदाकर्मनिकरि कलंकी भए अति क्लेशरूप संसारचक्रविषैं

धर्म है। हे श्रेणिक ! ये वचन श्री भगवान् सकलभूषण केवलीने कहे तब श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़ शीस नवाय कहते भए-हे भगवान् ! मैं कौन उपायकरि भवभ्रमणसूं छूटूं, मैं सकल रानी अर पृथ्वीका राज्य तजिवे समर्थ हूं परन्तु भाई लक्ष्मण का स्नेह तजिवे समर्थ नाहीं, स्नेह-समुद्रकी तरंगनि विषें डूबूं हूं, आप धर्मोपदेशरूप हस्तावलंबन कर काढहु। हे करुणानिधान ! मेरी रक्षा करहु। तब भगवान् कहते भए-हे राम ! शोक न कर, तू बलदेव है, कैयक दिन वासुदेव सहित इन्द्रकी न्याईं या पृथ्वीका राज्यकर जिनेश्वरका व्रत धरि केवलज्ञान पावेगा। ये केवली के वचन सुनि श्रीरामचन्द्र हर्षकरि रोमांचित भए, नयन कमल फूलि गए, वदनकमल विकसित भया, परम धैर्ययुक्त होते भए। अर रामकूं केवली के मुख से चरमशरीरी जान सुर नर असुर सब ही प्रशंसाकरि अति प्रीति करते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें रामकूं केवली के मुख धर्मश्रवण वर्णन करने वाला एक सौ पाँचवां पर्व पूर्ण भया ॥ १०५ ॥

एकसौ छहवां पर्व

(राम, लक्ष्मण, रावण, सीता आदि के पूर्वभव)

अथानंतर विद्याधरनिविषें श्रेष्ठ राजा विभीषण रावणका भाई सुन्दर शरीर का धारक रामकी भक्ति ही है आभूषण जाके सो दोऊ कर जोड़ि प्रणामकरि केवलीकूं पूछता भया—हे देवाधिदेव ! श्रीरामचन्द्र ने पूर्व भव विषें क्या सुकृत किया जाकरि ऐसी महिमा पाई ? अर इनकी स्त्री सीता दण्डकवनतें कौन प्रसंगकरि रावण हर ले गया, धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थका वेत्ता, अनेक शास्त्र का पाठी, कृत्य-अकृत्यकूं जाने, धर्म-अधर्मकूं पिछाने, प्रधान गुण सम्पन्न सो काहेसूं मोह के वश होय परस्त्रीकी अभिलाषारूप अग्नि विषें पतंग के भावकूं प्राप्त भया? अर लक्ष्मणने उसे संग्रामविषें हत्या, रावण ऐसा बलवान विद्याधरनिका महेश्वर अनेक अद्भुत कार्यनिका करणहारा ऐसे मरणकूं कैसे प्राप्त भया ? तब केवली अनेक जन्म की कथा विभीषणकूं कहते भए-हे लंकेश्वर ! राम लक्ष्मण दोनों अनेक भव के भाई हैं अर रावण के जीवसूं लक्ष्मणके जीवका बहुत भवसे वैर है सो सुन। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रविषें एक नगर तहाँ नयदत्त नामा वणिक् अल्प धनका धनी, उसकी सुनंदा स्त्री, उसके धनदत्तनामा पुत्र सो राम का जीव, दूजा वसुदत्त नामा पुत्र सो लक्ष्मणका जीव, एक यज्ञबलि नामा विप्र वसुदत्त का मित्र सो तेरा जीव अर उस ही नगरविषें एक और वणिक सागरदत्त जिसके स्त्री रत्नप्रभा पुत्री गुणवती सो सीताका जीव अर गुणवती का छोटा भाई जिसका नाम गुणवान सो भामण्डलका जीव अर गुणवती का रूप यौवन कला कांति लावण्यताकरि मंडित सो गुणवानने पिताका अभिप्राय जान धनदत्तसूं वहिनकी सगाई करी अर उसही नगरमें एक महा धनवान वणिक श्रीकांत सो रावणका

जीव जो निरंतर गुणवती के परिणवेकी अभिलाषा राखै अर गुणवती के रूप कर हरा गया है मन जाका सो गुणवतीका भाई लोभी धनदत्तकूं अल्प धनवंत जाव श्रीकांतकूं महाधनवंत देख परिणायवेकूं उद्यमी भया।

सो यह वृत्तांत यज्ञबलि ब्राह्मणने वसुदत्तसूं कह्या कि तेरे बड़े भाई की मांग कन्याका बड़ा भाई श्रीकांतकूं धनवान जाव परिणाया चाहै है तब वसुदत्त यह समाचार सुन श्रीकांत के मारिवेकूं उद्यमी भया, खड्ग पैनाय अंधेरी रात्रि विषैं श्याम वस्त्र पहिर शब्दरहित धीरे २ पग धरता जाय श्रीकांतके घर विषैं गया, सो वह असावधान बैठा हुता सो खड्गसूं मारया। तब पड़ते पड़ते श्रीकांतने भी वसुदत्तकूं खड्ग मारया सो दोऊ मरे सो विंध्याचलके वनमें हिरण भए। अर नगरके दुर्जन लोग हुते तिन्होंने गुणवती धनदत्तकूं न परिणायवे दीनी कि इसके भाईने अपराध किया, दुर्जन लोक बिना अपराध कोप करें सो यह तो एक बहाना पाया। तब धनदत्त अपने भाई का मरण अर अपना अपमान तथा मांग का अलाभ जान महा दुःखी होय घरसूं निकस विदेश गमन करता भया। अर वह कन्या धनदत्तकी अप्राप्तिकरि अति दुःखी भई, और भी किसीकूं न परिणती भई। अर कन्या मुनिनिकी निंदा अर जिनमार्गकी अश्रद्धा मिथ्यात्वके अनुराग करि पाप उपार्जे, काल पाय आर्तध्यानकरि मूई सो जिस वनविषैं दोनों मृग भए हुते तिस वनविषै यह मृगी भई सो पूर्वले विरोध करि इसी के अर्थ तै दोनों मृग परस्पर युद्धकरि मूए, सो वनसूकर भए, बहुरि हाथी भैंसा बैल वानर गैंडा ल्याली मींढा इत्यादि अनेक जन्म धरते भए अर यह वाही जाती की तिर्यंचनी होती भई, सो याके निमित्त परस्पर लड़कर मूए, जल के जीव थल के जीव होय होय प्राणतजते भए। अर धनदत्त मार्ग के खेदकरि अति दुःखी एक दिन सूर्य के अस्त समय मुनिनिके आश्रय गया, भोला कछु जानै नाहीं, साधुनिसूं कहता भया कि मैं तृषाकरि पीडित हूँ, मुझे जल पिलावहु, तुम धर्मात्मा हो। तब मुनि तो न बोले अर कोई जिनधर्मी मधुर वचनकरि इसे संतोष उपजायकरि कहता भया—हे मित्र रात्रिकूं अमृत भी न पीवना, जल की कहा बात? जिस समय आंखनिकरि कछू सूझै नाहीं, सूक्ष्मजीव दृष्टि न पड़ैं, ता समय हे वत्स! यदि तू अति आतुर भी होय तो भी खानपान न करना, रात्रि आहार विषैं मांस का दोष लागै है। इसलिए तू ऐसा न कर जाकरि भवसागर विषैं डूबिये। यह उपदेश सुन धनदत्त शांत चित्त भया, शक्ति अल्प थी इसलिए यति न होय सका, दयाकरि युक्त है चित्त जाका सो अणुव्रती श्रावक भया। बहुरि काल पाय समाधिमरण करि सौधर्म स्वर्ग विषैं बड़ी ऋद्धिका धारक देव भया, मुकुट हार भुज-बंधादिककरि शोभित पूर्व पुण्यके उदयसूं देवांगनादिकके सुख भोगे। बहुरि स्वर्गसूं चयकरि महापुरनामा नगर विषैं मेरुनामा

श्रेष्ठी ताकी धारिणी स्त्री के पद्मरुचि नामा पुत्र भया। अर ताही नगरविषै राजा छत्रच्छाय रानी श्रीदत्ता गुणनिकी मंजूषा हुती सो एक दिन सेठका पुत्र पद्मरुचि अपने गोकुलविषें अश्व चढा आया सो एक वृद्धिगति बलदकूं कंठगत प्राण देख्या तब यह सुगंध वस्त्र मालाके धारक ने तुरंगते उतरि अति दयाकरि बैलके कान विषें नमोकार मंत्र दिया सो बलद ने चित्तलगाय सुन्या अर प्राण तजि रानी श्रीदत्त के गर्भविषें आय उपज्या। राजा छत्रच्छाय के पुत्र न था सो पुत्रके जन्म विषै अतिहर्षित भया, नगरकी अतिशोभा करी, बहुत द्रव्य खरच्या, बड़ा उत्सव किया। वादित्रों के शब्द करि दसों दिशा शब्दायमान भईं। यह बालक पुण्य कर्म के प्रभाव करि पूर्व जन्म जानता भया। सो बलद के भवका शीत आताप आदि महादुःख अर मरण समय नमोकार मंत्र सुन्या ताके प्रभावकरि राजकुमार भया सो पूर्व अवस्था यादकरि बालक अवस्था विषै ही महा विवेकी होता भया। जब तरुण अवस्था भई तब एक दिन विहार करता बलदके मरण के स्थानक गया, अपना पूर्व चरित चितार यह वृषभध्वजकुमार हाथी सूं उतर पूर्व जन्मकी मरण भूमि देख दुखित भया, अपने मरणका सुधारणहारा नमोकारमंत्र का देनहारा उसके जानिवेके अर्थ एक कैलाशके शिखर समान ऊँचा चैत्यालय बनवाया और चैत्यालयके द्वारविषै एक बैलकी मूर्ति जिसके निकट बैठा एक पुरुष नमोकार मंत्र सुनावै ऐसा एक चित्रपट लिखाय मेल्या अर उसके समीप समझने को मनुष्य मेले। दर्शन करिवेकूं मेरुश्रेष्ठीका पुत्र पद्मरुचि आया सो देख अतिहर्षित भया अर दर्शन करि पीछे बैल के चित्रपटकी ओर निरखकरि मनविषै विचारै है कि बैलकूं नमोकार मंत्र मैंने सुनाया था सो वह खड़ा२ देखै। जे पुरुष रखवारे थे तिनने जाय राजकुमारकूं कही सो वह सुनते ही बड़ी ऋद्धिसूं युक्त हाथी चढ्या शीघ्र ही अपने परम मित्रसूं मिलने आया। हाथीसूं उतरि जिनमंदिरविषैं गया। बहुरि बाहिर आया, पद्मरुचिकूं बैलकी ओर निहारता देख्या। राजकुमार ने श्रेष्ठीके पुत्रकूं पूछी कि तुम बैलके चित्रपटकी ओर कहा निरखो हो? तब पद्मरुचिने कही कि एक मरते बैलको मैंने नमोकार मंत्र दिया था सो कहां उपज्या है यह जानिवेकी इच्छा है। तब वृषभध्वज बोले—वह मैं हूं। ऐसा कह पांयनि पड्या अर पद्मरुचि की स्तुति करी जैसे शिष्य गुरुकी करै। अर कहता भया—मैं पशु महाअविवेकी मृत्यु के कष्टकरि दुःखी था सो तुम मेरे महा मित्र नमोकारमंत्रके दाता समाधिमरणके कारण होते भए, तुम दयालु पर-भव के सुधारणहारे ने महा मंत्र मुझे दिया, उससे मैं राजकुमार भया। जैसा उपकार राजा देव माता सहोदर मित्र कुटुम्ब कोई न करै तैसा तुमने किया। जो तुमने नमोकार मंत्र दिया उस समान पदार्थ त्रैलोक्य में नाहीं, ताका बदला मैं क्या दूं, तुम से उऋण नाहीं तथापि तुम विषैं मेरी भक्ति अधिक उपजी है, जो आज्ञा देवो सो

करूं। हे पुरुषोत्तम ! तुम आज्ञा प्रदान करि मोकूं भक्त करो, यह सकल राज्य लेहु, मैं तुम्हारा दास, यह मेरा शरीर उस करि इच्छा होय सो सेवा कराओ; या भांति वृषभध्वजने कही। तब पद्मरुचिके अर याके प्रति प्रीति बढ़ी। दोनों सम्यग्दृष्टी राजविषैं श्रावक के व्रत पालते भए, ठौर ठौर भगवान के बड़े बड़े चैत्यालय कराए तिनमें जिनबिंब पधराए, यह पृथ्वी तिनकरि शोभायमान होती भई। बहुरि समाधिमरण करि वृषभध्वज पुण्यकर्म के प्रसादकरि दूजे स्वर्गविषैं देव भया। देवांगनानिके नेत्ररूप कमल तिनके प्रफुल्लित करनेकूं सूर्य समान होता भया तहां मन वांछित क्रीडा करता भया। अर पद्मरुचि सेठ भी समाधिमरण करि दूजे ही स्वर्ग देव भया, दोऊ वहाँ परम मित्र भए। वहां से चयकरि पद्मरुचि का जीव पश्चिम विदेह विषैं विजयार्धगिरि जहां नद्यावर्त नगर वहां राजा नदीश्वर उसकी रानी कनकप्रभा उसके नयनानंद नामा पुत्र भया सो विद्याधरनिके चक्रीपदकी संपदा भोगी। बहुरि महामुनिकी अवस्था धरि विषम तप किया, समाधिमरणकरि चौथे स्वर्ग देव भया। वहां पुण्य रूप बल के सुख रूप फल महा मनोज्ञ भोगे। बहुरि वहां से चयकरि सुमेरु पर्वत के पूर्वदिशा की ओर विदेह वहां क्षेमपुरी नगरी, राजा विपुलवाहन, रानी पद्मावती तिनके श्रीचंद्र नामा पुत्र भया। वहां स्वर्ग समान सुख भोगे। तिनके पुण्यके प्रभावसूं दिन२ राजकी वृद्धि भई, अटूट भंडार भया, समुद्रांत पृथ्वी एक ग्राम की न्याईं वश करी। अर जिसके स्त्री इन्द्राणी समान सो इन्द्र जैसे सुख भोगे, हजारों वर्ष सुखसूं राज्य किया। एक दिन महा संघ सहित तीन गुप्तिके धारक समाधिगुप्ति योगीश्वर नगर के बाहिर आय विराजे तिनकूं उद्यानविषैं आया जान नगरके लोक वन्दनाकू चले सो महा स्तुति करते वादित्र बजावते हर्ष से जाय हैं। श्रीचन्द्र समीपके लोकनिकूं पूछता भया कि यह हर्षका नाद जैसा समुद्र गाजै तैसा होय है सो कौन कारण है ? तब मंत्रियनिने किंकर दौड़ाए, निश्चय किया जो मुनि आए हैं तिनके दर्शनकूं लोक जाय हैं। यह समाचार सुनकर राजा फूले, कमल समान भए हैं नेत्र जाके अर शरीर विषैं हर्ष करि रोमाच होय आए, राजा समस्त लोक अर परिवार सहित मुनि के दर्शन कूं गया। प्रसन्न है मुख जिनका ऐसे मुनिराज तिनकूं राजा देखि प्रणामकरि महा विनयसंयुक्त पृथ्वी विषैं बैठा। भव्य जीव रूप कमल तिनके प्रफुल्लित करिवेकूं सूर्य समान ऋषिनाथ तिनके दर्शनसूं राजाकूं अति धर्मस्नेह उपज्या। वे महा तपोधर धर्म शास्त्र के वेत्ता परम गंभीर लोकनि कूं तत्व ज्ञानका उपदेश देते भए। यतिका धर्म अर श्रावकका धर्म संसार समुद्रका तारणहारा अनेक भेद संयुक्त कह्या। अर प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोग का स्वरूप कह्या। प्रथमानुयोग कहिए उत्तम पुरुषनिका कथन अर करणानुयोग कहिए तीन लोकका कथन अर चरणानुयोग कहिए मुनि

श्रावक का धर्म अर द्रव्यानुयोग कहिये षट द्रव्य सप्त तत्व नव पदार्थ पंचास्तिकायका निर्णय । कैसे हैं मुनिराज ? वक्तानिविषैं श्रेष्ठ हैं अर आक्षेपिणी कहिए जिनमार्ग उद्योतनी अर क्षेपिणी कहिए मिथ्यात्वखंडनी अर संवेगिनी कहिए धर्मानुरागिणी अर निर्वेदिनी कहिए वैराग्यकारिणी ये चार प्रकार की कथा कहते भए। इस संसार सागर विषैं कर्मके योगसूं भ्रमता जो यह प्राणी सो महा कष्टसूं मोक्षमार्गकूं प्राप्त होय है। संसार के ठाठ विनाशीक हैं जैसे संध्या समयका वर्ण अर जलका बुदबुदा तथा जलके झाग अर लहर अर बिजुरीका चमत्कार इन्द्र धनुष क्षण भंगुर हैं, असार हैं; ऐसा जगत्का चरित्र क्षणभंगुर जानना, यामें सार नाहीं। नरक तिर्यंचगति तो दुःखरूप ही हैं अर देव मनुष्यगति विषैं यह प्राणी सुख जानै है सो सुख नाहीं, दुःख ही है, जिससे तृप्ति नाहीं सो ही दुःख, जो महेंद्र स्वर्गके भोगनिकर तृप्त नाहीं भया सो मनुष्य भव के तुच्छ भोगनिकरि कैसें तृप्त होय ? यह मनुष्यभव भोग योग्य नाहीं, वैराग्य योग्य है। काहू एक प्रकारसूं दुर्लभ मनुष्य देह पाया जैसे दरिद्री निधान पावै सो विषयरसका लोभी होय वृथा खोया, मोहकूं प्राप्त भया। जैसे सूके ईंधनसूं अग्निकूं कहां तृप्ति अर नदीनिके जलकरि समुद्रकूं कहां तृप्ति? तैसें विषयसुखसूं जीवनिकूं तृप्ति न होय, चतुर भी विषयरूप मदकरि मोहित भया मदताकूं प्राप्त होय है। अज्ञानरूप तिमिरसूं मंद भया है मन जाका सो जलविषैं डूबता खेदखिन्न होय त्यों खेदखिन्न है। परन्तु अविवेकी तो विषय ही कूं भला जानै है। सूर्य तो दिनकूं ताप उपजावै है अर काम रात्रि दिन आताप उपजावै। सूर्यके आताप निवारवे के अनेक उपाय हैं अर कामके निवारवे का उपाय एक विवेक ही है। जन्म जरा मरणका दुःख संसार विषैं भयंकर है जिसका चितवन किए कष्ट उपजै। यह कर्म जनित जगत् का ठाठ अरहठके यंत्रकी घड़ी समान है—रीता भर जाय है, भरा रीता होय है, निचला ऊपर, उपरला नीचे। अर यह शरीर दुर्गन्ध है, यन्त्र समान चलाया चलै है, विनाशीक है, मोह कर्म के योगसू जीव का कायासूं स्नेह है, जल के बुदबुदा समान मनुष्य भव के उपजे सुख असार जानि बड़े कुलके उपजे पुरुष विरक्त होय जिनराजका भाषा मार्ग अंगीकार करें हैं। उत्साहरूप बख्तर पहिरे, निश्चय रूप तुरंग के असवार, ध्यानरूप खड्ग के धारक धीर, कर्म रूप शत्रुकूं विनाशि निर्वाणरूप नगर लेय हैं। यह शरीर भिन्न अर मैं भिन्न ऐसा चिंतवन करि शरीर का स्नेह तजकर हे मनुष्यो ! धर्मकूं करो, धर्म समान और नाहीं। अर धर्मनिमें मुनिका धर्म श्रेष्ठ है, जिन महामुनियोंके सुख दुःख दोनों तुल्य, अपना अर पराया तुल्य, जे राग द्वेषरहित महापुरुष हैं वे परम उत्कृष्ट शुक्ल ध्यानरूप अग्निसूं कर्मरूप वनी दुःखरूप वृक्षों से भरी भस्म करें हैं।

ये मुनि के वचन राजा श्रीचंद्र सुन बोधकूं प्राप्त भया, विषयानुराग तजकर वैराग्य

होय अपने ध्वजकांतिनामा पुत्रकूं राज्य देय समाधिगुप्त नामा मुनि के समीप मुनि भया। विरक्त है मन जाका, सम्यक्त्व की भावनाकरि तीनों योग मन वचन काय तिनकी शुद्धता धरता संता, पांच समिति तीन गुप्तिसूं मंडित, राग द्वेषसूं परान्मुख रत्नत्रयरूप आभूषणनिका धारक, उत्तम क्षमा आदि दसलक्षण धर्मकरि मंडित, जिनशासनका अनुरागी, समस्त अंग पूर्वांग का पाठक, समाधानरूप पंच महाव्रतका धारक, जीवनिका दयालु, सप्त भयरहित परमधैर्यका धारक, बाईस परीषहका सहनहारा, बेला तेला पक्ष मासादिक अनेक उपवास का करनहारा, शुद्ध आहार का लेनहारा, ध्यानाध्ययन में तत्पर, निर्ममत्व अतींद्रिय भोगनिकी वांछा का त्यागी, निदान-बंधन रहित महाशांत, जिनशासनमें है वात्सल्य जाको, यतिके आचारमें संघके अनुग्रह विषें तत्पर, बाल के अग्रभाग के कोटिवें भागहू नाहीं है परिग्रह जाके, स्नानका त्यागी, दिगंबर, संसारके प्रबंधतें रहित, ग्रामके वन विषें एक रात्रि अर नगर के वन विषें पांच रात्रि रहनहारा, गिरि गुफा गिरि शिखर नदीके पुलिन उद्यान इत्यादि प्रशस्त स्थानविषेंनिवास करणहारा, कायोत्सर्गका धारक, देहतें हू निर्ममत्व निश्चल मौनी पंडित महातपस्वी इत्यादि गुणनिकरि पूर्ण, कर्म पिंजरकूं जर्जरा करि काल पाय श्रीचन्द्र मुनि रामचंद्र का जीव पांचवें स्वर्ग इंद्र भया। तहां लक्ष्मी कीर्ति कांति प्रतापका धारक देवनिका चूड़ामणि तीन लोकविषें प्रसिद्ध परम ऋद्धिकर युक्त महा सुख भोगता भया। नंदनादिक वनविषें सौधर्मादिक इंद्र याकी संपदाकूं देख रहे हैं, याके अवलोकनकी वांछा रहै, महा सुन्दर विमान मणि हेममई मोतीनिकी झालरिनिकरि मंडित, वामें बैठा विहार करै, दिव्य स्त्रीनिके नेत्रोंकूं उत्सवरूप महासुखतें काल व्यतीत करता भया। श्री चंद्रका जीव ब्रह्मेंद्र ताकी महिमा, हे विभीषण ! वचन कर न कही जाय, केवलज्ञानगम्य है। यह जिनशासन अमोलक परमरत्न उपमारहित त्रैलोक्य विषें प्रगट है तथापि मूढ न जानें। श्रीजिनेंद्र मुनींद्र अर जिनधर्म इनकी महिमा जानकर हू मूर्ख मिथ्या अभिमानकरि गर्वित भए धर्म से परान्मुख रहैं। जो अज्ञानी या लोकके सुखविषें अनुरागी भया है सो बालक समान अविवेकी है। जैसे बालक बिना समझ अभक्ष्यका भक्षण करै है, विष पान करै है तैसे मूढ अयोग्य का आचरण करै है। जे विषयके अनुरागी हैं सो अपना बुरा करैं हैं। जीवों के कर्म बंधकी विचित्रता है, इसलिए सब ही ज्ञानके अधिकारी नाहीं, कैयक महाभाग्य ज्ञानकूं पावैं हैं अर कैयक ज्ञानकूं पाय और वस्तुकी वांछाकरि अज्ञान दशाकूं प्राप्त होय हैं। अर कैयक महा निंद्य जो यह संसारी जीवनिके मार्ग तिनमें रुचि करैं हैं। वे मार्ग महादोषके भरे हैं जिनमें विषय कषाय की बहुलता है। जिनशासन समान और कोई दुःखतें छुड़ायवेका मार्ग नाहीं, तातें हे विभीषण ! तुम आनन्द चित्त

होयकर जिनेश्वर देवका अर्चन करहु। इस भांति धनदत्तका जीव मनुष्यसे देव, देव से मनुष्य होय कर नवमें भव रामचंद्र भया। उसकी विगत--पहले भव धनदत्त १ दूजे भव पहले स्वर्गदेव २ तीजे भव पद्मरुचि सेठ ३ चौथे भव दूजे स्वर्ग देव ४ पांचवें भव नयवानंद राजा ५ छठे भव चौथे स्वर्ग देव ६ सातवें भव श्रीचंद्र राजा ७ आठवें भव पांचवें स्वर्ग देव ८ नवमें भव रामचंद्र ९ आगे मोक्ष। ये तो राम के भव कहे। अब हे लंकेश्वर! वसुदत्तादिक का वृत्तांत सुन--कर्मनिकी विचित्र गति, ताके योगकरि मृणालकुंड नामा नगर तहां राजा विजयसेन रानी रत्नचूला उसके वज्रकंबु नामा पुत्र उसके हेमवती रानी उसके शंभु नामा पुत्र पृथ्वी में प्रसिद्ध सो यह श्रीकांत का जीव रावण होनहार सो पृथ्वी में प्रसिद्ध अर वसुदत्तका जीव राजा का पुरोहित, उसका नाम श्रीभूति सो लक्ष्मण होवहार, महा जिनधर्मी सम्यग्दृष्टि उसके स्त्री सरस्वती उसके वेदवती नामा पुत्री भई सो गुणवतीका जीव सीता होनहार गुणवती के भवसूं पूर्व सम्यक्त बिना अनेक तिर्यंच योनि विषें भ्रमणकरि साधुनिकी निंदा के दोषकरि गंगा के तट मरकर हथिनी भई। एक दिन कीचमें फंसी, पराधीन होय गया है शरीर जाका, नेत्र तिरमिराट अर मंद-मंद सांस लेय सो एक तरंगवेग नामा विद्याधर महादयावान् उसने हथिनी के कानमें नमोकार मंत्र दिया सो नमोकार मंत्रके प्रभाव करि मंद कषाय भई अर विद्याधरने व्रत भी दिए सो जिनधर्म के प्रसाद से श्रीभूति पुरोहितके वेदवती पुत्री भई। एक दिन मुनि आहारकूं आए सो यह हंसने लगी। तब पिताने निवारी सो यह शांतचित्त होय श्राविका भई। अर कन्या परम-रूपवती सो अनेक राजानिके पुत्र याके परिणवेकूं अभिलाषी भए अर यह राजा विजयसेन का पोता शंभु जो रावण होनहार है सो विशेष अनुरागी भया। अर यह पुरोहित श्रीभूति जिनधर्मी सो उसने यह प्रतिज्ञा करी कि जो मिथ्यादृष्टि कुवेर समान धनवान् होय तो हू मैं पुत्री न दूं। तब शंभुकुमार ने रात्रि विषें पुरोहितकूं मारया सो पुरोहित जिनधर्म के प्रसादतें स्वर्ग लोकविषें देव भया अर पापी शंभुकुमार वेदवती साक्षात् देवी समान उसे न इच्छतीकूं बलात्कार परिणवेकूं उद्यमी भया। वेदवती के सर्वथा अभिलाषा नाहीं, तब कामकरि प्रज्वलित इस पापी ने जोरावरी कन्याकूं आलिंगनकरि मुख चूंब मैथुन किया। तब कन्या विरक्त हृदय, कांपे है शरीर जाका, अग्नि की शिखा समान प्रज्वलित अपने शील घातकरि अर पिताके घातकरि परम दुःखकूं धरती लाल नेत्र होय महा कोपकरि कहती भई-अरे पापी! तैंने मेरे पिताकूं मारा, अर कुमारीसूं बलात्कार विषय सेवन किया सो नीच! मैं तेरे नाशका कारण होऊंगी। मेरा पिता तैंने मारा सो बड़ा अनर्थ किया, मैं पिताका मनोरथ कभी भी न उलंघूं। मिथ्यादृष्टि सेवनसूं मरण भला, ऐसा कह वेदवती श्रीभूति पुरोहितकी कन्या हरिकांता आर्यिका के समीप जाय आर्यिका के व्रत लेय परम

दुर्धर तप करती भई, केशलुंच किए, महा तपकरि रुधिर मांस सुकाय दिया। प्रगट दीखै है अस्थि अर नसा जिसके, तपकर सुकाय दिया है देह जिसने, समाधिमरणकरि पांचवें स्वर्ग गई, पुण्यके उदयकरि स्वर्गके सुख भोगे। अर शंभु संसार विषैं अनीतिके योगकर अति निंदनीक भया, कुटुम्ब सेवक अर धनसे रहित भया, उन्मत्त होय गया अर जिनधर्म परान्मुख भया, साधुनिकूं देख हंसै, निंदा करै, मद्य मांस शहदका आहारी, पापक्रिया विषैं उद्यमी, अशुभ उदयकरि नरक तिर्यंच विषैं महा दुःख भोगता भया।

अथानंतर कछु इक पाप कर्म के उपशम से कुशध्वज नामा ब्राह्मण ताके सावित्री नामा स्त्री के प्रभासकुन्द नामा पुत्र भया सो दुर्लभ जिनधर्म का उपदेश पाय विचित्र मुनि के निकट मुनि भया। काम क्रोध मद मत्सर हरे, आरंभरहित भया, निर्विकार तपकरि दयावान् निस्पृही जितेन्द्री पक्ष मास उपवास करै, जहां सूर्य अस्त हो तहां शून्यवनविषैं बैठ रहै, मूलगुण उत्तरगुणका धारक बाईस परीषह का सहनहारा ग्रीष्म विषैं गिरिके शिखर रहै, वर्षा में वृक्ष तले बसै अर शीतकालविषैं नदी सरोवरीके तट निवास करै। या भांति उत्तम क्रिया कर युक्त श्री सम्मेदशिखर की वंदनाकूं गया। वह निर्वाण क्षेत्र कल्याण का मंदिर जाका चितवन किए पापनिका नाश होय, तहां कनकप्रभ नामा विद्याधर की विभूति आकाशविषैं देख मूर्खने निदान किया जो जिनधर्म के तपका महात्म्य सत्य है तो ऐसी विभूति मैं हूं पाऊं। यह कथा भगवान् केवली ने विभीषणकूं कही—देखो जीवनिकी मूढ़ता, तीनलोक जाका मोल नाहीं ऐसा अमोलक तपरूप रत्न भोगरूपी मूठी सागके अर्थ बेच्या, कर्म के प्रभाव करि जीवनिकी विपर्यय बुद्धि होय है, निदानकरि दुःखित विषम तपकरि वह तीजे स्वर्ग देव भया। तहांतैं चयकरि भोगनिविषैं है चित्त जाका सो राजा रत्नश्रवाके रानी केकसी ताके रावण नामा पुत्र भया, लंकामें महा विभूति पाई। अनेक हैं आश्चर्यकारी बात जाकी, प्रतापी पृथ्वीमें प्रसिद्ध। अर धनदत्त का जीव रात्रि-भोजन के त्यागकरि सुर नर गतिके सुख भोग श्रीचन्द्र राजा होय पचम स्वर्ग दस सागर सुख भोगि बलदेव भया, रूपकर बलकरि विभूतिकरि जा समान जगत् विषैं और दुर्लभ है, महामनोहर चंद्रमा समान उज्ज्वल यशका धारक। अर वसुदत्तका जीव अनुक्रमसे लक्ष्मी रूप लताके लिपटने का वृक्ष वासुदेव भया। ताके भवसुन-वसुदत्त १ मृग २ सूकर ३ हस्ती ४ महिष ५ वृषभ ६ बानर ७ चीता ८ ल्याली ९ मींढा १० अर जलचर स्थलचरके अनेक भव ११ श्रीभूति पुरोहित १२ देवराजा १३ पुनर्वसु विद्याधर १४ तीजे स्वर्गदेव १५ वासुदेव १६ मेघा १७ कुटुम्बी पुत्र १८ देव १९ वणिक् २० भोगभूमि २१ देव २२ चक्रवर्ती का पुत्र २३ बहुरि केइक उत्तमभव धर पुष्करार्द्ध के विदेहविषैं तीर्थंकर अर चक्रवर्ती दोय पदका धारी होय मोक्ष पावेगा। अर दशानन के भव—श्रीकांत १ मृग २ सूकर ३

गज ४ महिष ५ वृषभ ६ वानर ७ चीता ८ ल्याली ९ मींढ़ा १० अर जलचर स्थल-चरके अनेक भव ११ शंभु १२ प्रभासकुन्द १३ तीजे स्वर्ग देव १४ दशमुख १५ बालुका १६ कुटुम्बी पुत्र १७ देव १८ वणिक् १९ भोगभूमि २० देव २१ चक्रीपुत्र २२ बहुरि कैइक उत्तम भव धरि भरतक्षेत्र विषें जिनराज होय मोक्ष पावेगा बहुरि जगत् जाल विषें नाहीं। अर जानकीके भव-गुणवती १ मृगी २ शूकरी ३ हथिनी ४ महिषी ५ गो ६ वानरी ७ चीता ८ ल्याली ९ गारड १० जलचर थलचर के अनेक भव ११ चितोत्सवा १२ पुरोहित की पुत्री वेदवती १३ पांचवेंस्वर्ग देवी अमृतवती १४ बलदेवकी पटरानी १५ सोलहवें स्वर्ग प्रतीन्द्र १६ चक्रवर्ती १७ अहमिंद्र १८ रावण का जीव तीर्थंकर होयगा ताके प्रथम गणधरदेव होय मोक्ष प्राप्त होयगा। भगवान् सकलभूषण विभीषणसूं कहैं हैं-श्रीकांत का जीव कैयक भव में शंभु प्रभासकुन्द होय अनुक्रमसूं रावण भया जाने अर्द्ध भरतक्षेत्र में सकल पृथ्वी वश करी, एक अंगुल आज्ञा सिवाय न रही। अर गुणवतीका जीव श्रीभूति-की पुत्री होय अनुक्रमकरि सीता भई, राजा जनक की पुत्री श्रीरामचन्द्र की पटरानी विनयवती शीलवती पतिव्रतानि में अग्रेसर भई। जैसें इन्द्र के शची चन्द्रके रोहिणी रविके रेणा चक्रवर्ती के सुभद्रा तैसें रामके सीता, सुन्दर है चेष्टा जाकी। अर जो गुणवतीका भाई गुणवान सो भामण्डल भया, श्रीराम का मित्र, जनक राजाकी रानी विदेहाके गर्भविषें युगल बालक भए, भामण्डल भाई सीता बहिन, दोनों महामनोहर। अर यज्ञबलि ब्राह्मण का जीव तू विभीषण भया। अर बैलका जीव जो नमोकार मन्त्रके प्रभावतें स्वर्ग गति नर गति के सुख भोग यह सुग्रीव कपिध्वज भया। भामण्डल सुग्रीव अर तू पूर्व भव की प्रीति कर तथा पुण्य के प्रभावकरि महा पुण्याधिकारी श्रीराम ताके अनुरागी भए। यह कथा सुन विभीषण बाली के भव पूछता भया। तब केवली कहैं हैं—हे विभीषण! तू सुन, राग द्वेषादि दुःखनिके समूहकरि भरा यह संसार सागर चतुर्गतिमई ताविषें वृन्दावनविषें एक कालेरा मृग सो साधु स्वाध्याय करते हुते तिनका शब्द अंत काल में सुनकरि ऐरावतक्षेत्र विषें दित नाम नगर तहां बहित नामा मनुष्य सम्यग्दृष्टि सुन्दर चेष्टाका धारक ताकी स्त्री शिवमति ताके मेघदत्त नामा पुत्र भया; वह जिनपूजा-विषें उद्यमी भगवानका भक्त अणुव्रतका धारक सो समाधिमरण करि दूजे स्वर्ग देव भया। वहां से चयकरि जम्बूद्वीपविषें पूर्व विदेह विजयावतीपुरी ताके समीप महा उत्साह का भरया एक मत्तकोकिला नामा ग्राम ताका स्वामी कांतिशोक ताकी स्त्री रत्नांगिनी ताके स्वप्रभ नामा महा सुन्दर पुत्र भया जाकूं शुभ आचार भावें। सो जिनधर्म विषें निपुण संयतनामा मुनि होय हजारों वर्ष विधिपूर्वक बहुत भांतिके महातप किए, निर्मल है मन जाका। सो तपके प्रभावकरि अनेक ऋद्धि उपजी तथापि अति निर्मल संयोग संबंध

विषैं ममताकूं तजि उपशमश्रेणी धार शुक्लध्यान के पहिले पायके प्रभावतैं सर्वार्थसिद्धि गया सो तेतीस सागर अहमिंद्र पदके सुख भोगि राजा सूर्यरज ताके बाली नामा पुत्र भया, विद्याधरनिका अधिपति, किहकन्धपुरका धनी, जिसका भाई सुग्रीव सो महा गुणवान् सो जब रावण चढ़ आया तब जीव दया के अर्थ बालो ने युद्ध न किया, सुग्रीवकूं राज्य देय दिगम्बर भया। सो जब कैलाश विषैं तिष्ठै था अर रावण आय निकस्या, क्रोधकरि कैलाशके उठायवेकूं उद्यमी भया सो बाली मुनि चैत्यालय की भक्तिसूं ढीला सो अंगुष्ठे दाब्या सो रावण दबने लगा। तब राती ने साधु की स्तुति करि अभयदान दिवाया। रावण अपने स्थानक गया अर बाली महामुनि गुरु के निकट प्रायश्चित नामा तप लेय दोष निराकरणकरि क्षपकश्रेणी चढ़ कर्म दग्ध किए, लोकके शिखर सिद्धक्षेत्र हैं वहां गए, जीवका निज स्वभाव प्राप्त भया। अर वसुदत्तके अर श्रीकांतके गुणवतीके कारण महा बैर उपज्या था सो अनेक भवविषैं दोऊ परस्पर लड़-लड़ मूवे। अर गुणवतीसूं तथा वेदवतीसूं रावणके जीवके अभिलाषा उपजी हुती, इस कारण करि रावणने सीता हरी अर वेदवती का पिता श्रीभूति सम्यग्दृष्टि उत्तम ब्राह्मण सो वेदवतीके अर्थ शत्रुने हता सो स्वर्ग जाय वहांसे चयकर प्रतिष्ठित नाम नगरविषैं पुनर्वसु नामा विद्याधर भया सो निदान सहित तपकर तीजे स्वर्ग जाय रामका लघुभ्राता महा स्नेहवंत लक्ष्मण भया अर पूर्वले बैरके योगसूं रावणकूं मारया। अर वेदवतीसूं शंभूने विपर्यय करी, तातैं सीता रावणके नाश का कारण भई। जो जाकूं हतै सो ताकरि हत्या जाय। तीन खंड की लक्ष्मी सोई भई रात्रि ताका चन्द्रमा रावण ताहि हतकरि लक्ष्मण सागरांत पृथ्वी का अधिपति भया। रावणसा शूरवीर पराक्रमी या भांति मारया जाय, यह कर्मनिका दोष है। दुर्बल से सबल होय, सबल से दुर्बल होय अर घातक है सो हता जाय, हता होय सो घातक होय जाय। संसारके जीवनिकी यह गति है। कर्मकी चेष्टाकरि कभी स्वर्गके सुख पावै, कभी नरकके दुःख पावै। अर जैसे कोई महा स्वादरूप परम अन्न विषैं विष मिलाय दूषित करै, तैसे मूढ जीव उग्र तपकूं भोग विलास करि दूषित करै है। जैसे कोई कल्प वृक्षकूं काटि कोदूं की बाड करै अर विषके वृक्षकूं अमृत रसकरि सींचै अर भस्म के निमित्त रत्ननिकी राशिकूं जलावै अर कोयले के निमित्त मलयागिरि चन्दनकूं दग्ध करै, तैसे निदानबन्ध कर तपकूं यह अज्ञानी दूषित करै। या संसार विषैं सब दोष की खान स्त्री है, ताके अर्थ अज्ञानी कहा कुकर्म न करै? जो या जीवने कर्म उपार्जे हैं सो अवश्य फल देय हैं, कोऊ अन्यथा करिवे समर्थ नाहीं। जे धर्म विषैं प्रीति करैं बहुरि अधर्म उपार्जैं, वे कुगतिकूं प्राप्त होय हैं, तिन की भूल कहा कहिए? जे साधु होयकर भव धारण करैं हैं तिनकूं उग्र तपकरि मुक्ति नाहीं। अर जाके शांति भाव नाहीं, संयम

नाहीं तप नाहीं उस दुर्जन मिथ्यादृष्टि के संसार सागरके तिरवेका उपाय कहां ! अर जैसें असराल पवनकरि मदोन्मत्त गजेन्द्र उडें तो सुसाके उडिवेका कहा आश्चर्य तैसें संसार की झूठी माया विषें चक्रवर्त्यादिक बड़े पुरुष भूलें तो छोटे मनुष्यनिकी कहा बात । अर जगत्‌विषें परम दुःखका कारण वैर भाव है सो विवेकी न करें। आत्म कल्याणकी है भावना जिनके ते पापकी करणहारी वाणी कदापि न बोलें । गुणवतीके भवविषें मुनि का अपवाद किया था अर वेदवती के भव में एक मंडलिका नामा ग्राम, वहां सुदर्शननामा मुनि वनमें आए, लोक वंदना कर पीछे गए अर मुनिकी बहिन सुदर्शना नामा आर्यिका सो मुनि के निकट बैठी धर्म श्रवण करे थी सो वेदवती ने देखकर ग्राम के लोकनिके निकट मुनि की निंदा करी कि मैं मुनिकूं अकेली स्त्री के समीप बैठा देख्या । तब कैयकनिने बात मानी अर कैयक बुद्धिवंतनिने न मानी परन्तु ग्राम में मुनिका अपवाद भया । तब मुनि ने नियम किया कि यह झूठा अपवाद दूर होय तो आहारकूं उठना, अन्यथा नाहीं। तब नगरके देवताने वेदवतीके मुखकरि समस्त ग्रामके लोकनिकूं कहाई कि मैं झूठा अपवाद किया । ये बहिन भाई हैं अर मुनि के निकट जाय वेदवतीने क्षमा कराई कि हे प्रभो ! मैं पापिनी ने मिथ्यावचन कहे सो क्षमा करहु । या भांति मुनि की निंदाकरि सीता का झूठा अपवाद भया अर मुनिसूं क्षमा कराई उस करि अपवाद दूर भया । तातें जे जिनधर्मी हैं व कभी भी परनिंदा न करें, किसी मैं सांचा दोष है तोहू ज्ञानी न कहें । अर कोऊ कहता होय ताहि मने करें, सर्वथा प्रकार पराया दोष ढाकें । जे कोई परनिंदा करें हैं सो अनंतकाल संसार वन विषें दुःख भोगवें हैं। सम्यग्दर्शन रूप जो रत्न ताका बड़ा गुण यही है जो पराया अवगुण सर्वथा ढाकें, जो सांचा भी दोष पराया कहे सो अपराधी है। अर अज्ञानसूं मत्सर भाव से पराया झूठा दोष प्रकाशै उस समान और पापी नाहीं, अपने दोष गुरु के निकट प्रकाशने अर पराए दोष सर्वथा ढांकने, जो पराई निंदा करें सो जिनमार्ग से पराङ्मुख हैं ।

यह केवली के परम अद्भुत वचन सुनकरि सुर असुर नर सब ही आनन्दकूं प्राप्त भए । वैरभाव के दोष सुन सब सभाके लोग महा दुःख के भयकरि कंपायमान भए । मुनि जो सर्वजीवनिसूं निर्वैर हैं, वे तो अधिक शुद्ध भाव धारते भए । अर चतुर्निकायके सर्व ही देव क्षमाकूं प्राप्त होय वैर भाव तजते भए । अर अनेक राजा प्रतिबुद्ध होय शांति भाव धार गर्व का भार तजि मुनि अर श्रावक भए । अर जे मिथ्यावादी थे वे हू सम्यक्तकूं प्राप्त भए । सब ही कर्मनिकी विचित्रता जान निश्वास नाखते भए । धिक्कार या जगत् की मायाकूं, या भांति सब ही कहते भए । अर हाथ जोड़ शीस नवाय केवलीकूं प्रणाम करि सुर असुर मनुष्य विभीषण की प्रशंसा करते भए जो तिहारे प्रश्नयसूं हमने केवली

के मुख उत्तम पुरुषनिके चरित्र सुने, तुम धन्य हो। बहुरि देवेंद्र नरेन्द्र, नागेन्द्र सब ही आनन्दके भरे अपने परिवार वर्ग सहित सर्वज्ञदेवकी स्तुति करते भए—हे भगवान् पुरुषोत्तम ! यह सकल त्रैलोक्य तुम करि शोभै है तातैं तिहारा सकलभूषण नाम सत्यार्थ है, तिहारी केवलदर्शन केवलज्ञानमई निज विभूति सर्व जगत् की विभूतिकूं जीतकरि शोभै है, यह अत्यन्त चतुष्टय लक्ष्मी सर्व लोक का तिलक है, यह जगत् के जीव अनादि कालके कर्मवश होय रहे हैं, महा दुःखके सागर में पड़े हैं, तुम दीननिके नाथ दीनबंधु करुणानिधान जीवनिकूं जिनराजपद देहु। हे केवलि ! हम भव वनके मृग जन्म जरा मरण रोग शोक वियोग व्याधि अनेक प्रकार के दुःख भोक्ता अशुभ कर्मरूप जाल विषैं पड़े हैं तातैं छूटना अति कठिन है, सो तुम ही छुड़ायवे समर्थ हो, हमकूं निज बोध देवहु जाकरि कर्म का क्षय होय। हे नाथ ! यह विषय-वासनारूप गहन वन तामैं हम शिव-पुरीका का मार्ग भूल रहे हैं सो तुम जगत् के दीपक हमकूं शिवपुरीका पंथ दरसावो अर जे आत्मबोधरूप शांतरस के तिसाए तिनकूं तुम तृषा के हरणहारे महासरोवर हो अर कर्म-भर्मरूप वनके भस्म करिवेकूं साक्षात् दावानलरूप हो अर जे विकल्पजाल नाना प्रकार के तेई भए बरफ ताकरि कंपायमान जगत् के जीव तिनकी शीत व्यथा हरिवेकूं तुम साक्षात् सूर्य हो। हे सर्वेश्वर ! सर्वभूतेश्वर जिनेश्वर तिहारी स्तुति करिवेकूं चार ज्ञानके धारक गणधरदेव हू समर्थ नाहीं तो और कौन? हे प्रभो ! तुमकूं हम बारंबार नमस्कार करैं हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं राम लक्ष्मण विभीषण सुग्रीव सीता भामंडलके पूर्व भव वर्णन करने वाला एकसौ छैवाँ पर्व पूर्ण भया ॥१०६॥

एकसौ सातवां पर्व

(कृतान्तवक्र सेनापतिका जिन-दीक्षा लेना)

अथानंतर केवली के वचन सुन संसार भ्रमण का जो महा दुःख ताकरि खेदखिन्न होय, जिनदीक्षा की है अभिलाषा जाके ऐसा राम का सेनापति कृतांतवक्र रामसूं कहता भया—हे देव ! मैं या संसार असारविषैं अनादिकालका मिथ्या मार्गकर भ्रमता हुवा दुःखित भया, अब मेरे मुनिव्रत धरिवेकी इच्छा है। तब श्रीराम कहते भए—जिनदीक्षा अति दुर्धर है, तू जगत् का स्नेह तजि कैसें धारेगा, महा तीव्र शीत उष्ण आदि बाईस परीषह कैसें सहेगा अर दुर्जन जननि के दुष्ट वचन कंटक तुल्य कैसे सहेगा ? अर अब तक तैने कभी दुःख सहे नाहीं, कमलकी कर्णिका समान शरीर तेरा सो कैसें विषमभूमि के दुःख सहेगा, गहन वन विषैं कैसें रात्रि पूरी करेगा ? अर प्रगट दृष्टि पड़ैं हैं शरीर के हाड अर नसाजाल जहां ऐसे उग्र तप कैसें करेगा अर पक्ष मास उपवास दोष टार पर घर नीरस भोजन कैसें करेगा ? तू महा तेजस्वी शत्रुवों की सेना के शब्द न सहि सकै

सो कैसें नीच लोकनिके किए उपसर्ग सहेगा ? तब कृतांतवक्र बोला-हे देव ! मैं तिहारे स्नेहरूप अमृतकूं ही तजवेकूं समर्थ भया सो मुझे कहा विषम है ? जब तक मृत्युरूप वज्रकरि यह देहरूप स्तंभ न चिगै ता पहिले मैं महा दुःखरूप यह भव वन अंधकारमई वासरूं निकस्या चाहूं हूं। जो बलते घर में से विकसैं उसे दयावाव न रोकें, यह संसार असार महा निंद्य है, इसे तज कर आत्महित करूं। अवश्य इष्टका वियोग होयगा। या शरीरके योगकरि सर्व दुःख हैं सो हमारे शरीर बहुरि उदय न आवै—या उपाय विषें बुद्धि उद्यमी भई। ये वचन कृतांतवक्र के सुन श्रीरामके आंसू आए अर नीठे २ मोहकूं दाब कहते भए—मेरोसी विभूतिकूं तज तू तपके सन्मुख भया है सो धन्य है। जो तेरी कदाचित् या जन्म विषें मोक्ष न होय अर तू देव होय तो संकट विषें आय मोहि संबोधियो। हे मित्र ! जो तू मेरा उपकार जानै है तो देव गति में विस्मरण मत करियो।

तब कृतांतवक्र ने नमस्कार कर कही—हे देव ! जो आप आज्ञा करोगे सोही होयगा, ऐसा कह सर्व आभूषण उतारे। अर सकलभूषण केवलीकूं प्रणामकरि अन्तर बाहिर के परिग्रह तजे, कृतांतवक्र था सो सौम्यवक्र होय गया, सुन्दर है चेष्टा जाकी। इसको आदि दे अनेक महाराजा वैरागी भए, उपजी है जिनधर्म की रुचि जिनके, निर्ग्रंथ व्रत धारते भए। अर कैयक श्रावक व्रतकूं प्राप्त भए अर कैयक सम्यक्तकूं धारते भए। वह सभा हर्षित होय रत्नत्रय आभूषणकरि शोभित भई। समस्त सुर असुर नर सकलभूषण स्वामीकूं नमस्कारकरि अपने अपने स्थानक गए। अर कमल समान हैं नेत्र जिनके ऐसे श्रीराम सकलभूषण स्वामीकूं अर समस्त साधुविकूं प्रणामकरि महा विनयरूपी सीताके समीप आए। कैसी है सीता ? महानिर्मल तपकरि तेज धरे जैसी घृत की आहुतिकरि अग्नि की शिखा प्रज्वलित होय तैसी पापों के भस्म करिवेकूं साक्षात् अग्निरूप तिष्ठी है, आर्यिकाविके मध्य तिष्ठती देखी, देदीप्यमान है किरणनिका समूह जाके मानों अपूर्व चंद्रकांति तारानिके मध्य तिष्ठी है, आर्यिकाविके व्रत धरे अत्यंत निश्चल है। तजे हैं आभूषण जाने तथापि श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी लज्जा इनकी शिरोमणि सोहै है, श्वेत वस्त्रकं धरे कैसी सोहै है मानों मंद पवनकर चलायमान है, फेन कहिए झाग जाके ऐसी पवित्र नदी ही है अर मानों निर्मल शरद पूनों की चांदनी समान शोभाकूं धरै समस्त आर्यिका रूप कुमुदनियोंकूं प्रफुल्लित करणहारी भासै है, महा वैराग्यकूं धरै मूर्तिवंती जिनशासन की देवता ही है। सो ऐसी सीताकूं देख आश्चर्यकूं प्राप्त भया है मन जिनका ऐसे श्री राम कल्पवृक्ष समान क्षणएक निश्चल होय रहे, स्थिर हैं नेत्र भृकुटी जिनकी जैसे शरदकी मेघमालाके समीप कंचनगिरि सोहै तैसे श्रीराम आर्यिकानिके समीप सोहते भए। श्रीराम चित्तविषें चिंतवते भए-यह साक्षात् चंद्रकिरण भव्यजन कुमुदि-

वीकूं प्रफुल्लितकरणहारी सोहै है, बड़ा आश्चर्य है कि यह कायर स्वभाव मेघके शब्द से डरती सो अब महा तपस्विनी भयंकर वन विषैं कैसे भयकूं न प्राप्त होयगी ? नितंबहीके भारसूं आलस्यरूप गमन करणहारी महा कोमल शरीर तपसूं विलाय जायगी। कहां यह कोमल शरीर अर कहाँ यह दुर्धर जिनराज का तप ? सो अति कठिन है। जो दाह बड़े बड़े वृक्षनिकूं दाहै ताकरि कमलिनीकी कहा बात ? यह सदा मनवांछित मनोहर आहारकी करणहारी अब कैसे यथालाभ भिक्षाकरि कालक्षेप करेगी ? यह पुण्याधिकारिणी रात्रि विषैं स्वर्गके विमान समान सुन्दर महलमें मनोहर सेजपर पौढती अर बीन बांसुरी मृदंगादि मंगल शब्दकरि निद्रा लेती सो अब भयंकर वनविषैं कैसे रात्रि पूर्ण करेगी ? वन तो डाभ की तीक्षण अणियोंकर विषम अर सिंह व्याघ्रादिकके शब्दकरि डरावना, देखहु मेरी भूल जो मूढ लोकनिके अपवादसूं मैं महा सती पतिव्रता शीलवती सुन्दरी मधुर-भाषिणी घर से निकासी। या भांति चिंता के भारकरि पीड़ित श्रीराम पवनकरि कंपायमान कमल-समान कंपायमान होते भए। फिर केवलीके वचन चितार धैर्य धरि आंसू पोंछि शोक रहित होय महा विनयकरि सीताकूं नमस्कार किया। लक्ष्मण भी, सौम्य है चित्त जाका, हाथ जोड़ि नमस्कारकरि राम सहित स्तुति करता भया--हे भगवति! धन्य तू सती वंदनीक है, सुन्दर है चेष्टा जाकी, जैसे धरा सुमेरुकूं धारै तैसे तू जिनराजका धर्म धारै है। तैंने जिनवचनरूप अमृत पीया, उस करि भवरोग निवारेगी, सम्यक्त ज्ञानरूप जहाजकरि संसार समुद्रकूं तिरेगी। जे पतिव्रता निर्मल चित्त की धरणहारी हैं तिनकी यही गति है, अपनी आत्मा सुधारैं अर दोऊ लोक अर दोऊ कुल सुधारैं, पवित्र चित्तकरि ऐसी क्रिया आदरी। हे उत्तम नियमकी धरणहारी ! हम जो कोई अपराध किया होय सो क्षमा करियो। संसारी जीवनिके भाव अविवेकरूप होय हैं सो तू जिनमार्गविषैं प्रवरती, संसार की माया अनित्य जानी अर परम आनंदरूप यह दशा जीवनिकूं दुर्लभ है, या भाँति दोऊ भाई जानकी की स्तुतिकरि लव अंकुशकूं आगे धरे अनेक विद्याधर महिपाल तिनसहित अयोध्यामें प्रवेश करते भए जैसे देवनिसहित इंद्र अमरावती में प्रवेश करै। अर समस्त रानी नाना प्रकारके वाहननिपर चढी परिवारसहित नगरमें प्रवेश करती भईं। सो रामकूं नगरमें प्रवेश करता देखि मंदिर ऊपर बैठी स्त्री परस्पर वार्ता करैं हैं--यह श्रीरामचंद्र महा शूरवीर, शुद्धहै अंतःकरण जिनका, महा विवेकी मूढ़ लोकनिके अपवादसूं ऐसी पतिव्रता नारी खोई। तब कैयक कहती भईं--जे निर्मल कुल के जन्मे शूरवीर क्षत्री हैं तिनकी यही रीति है, किसी प्रकार कुलकूं कलंक न लगावैं। लोकनिके संदेह दूर करिवे निमित्त राम ने उसकूं दिव्य दई, वह निर्मल आत्मा दिव्यमें सांची होय लोकनिके

संदेह मेटि जिनदीक्षा धारती भई। अर कोई कहै– हे सखी। श्रावकी विना राम कैसे दीखें हैं जैसे बिना चांदनी चांद अर दीप्ति विना सूर्य। तब कोई कहती भई–यह आपही महा कांतिधारी हैं, इनकी कांति पराधीन नाहीं। अर कोई कहती भई– सीताका वज्र चित्त है जो ऐसे पुरुषोत्तम पतिकूं छोडि जिनदीक्षा धारी। तब कोई कहती भई–धन्य हे सीता! जो अनर्थरूप गृहवासकूं तजि आत्मकल्याण किया। अर कोई कहती भई-ऐसे सुकुमार दोऊ कुमार महा धीर लव अंकुश कैसे तजे गए? स्त्रीका प्रेम पतिसूं छूटै परन्तु अपने जाए पुत्रनिसूं न छूटै। तब कोई कहती भई-- ये दोऊ पुत्र परम प्रतापी हैं, इनका माता क्या करेगी, इनका सहाई पुण्य ही है अर सब ही जीव अपने कर्म के आधीन हैं। या भांति नगर की नारी वचनालाप करैं हैं। जानकीकी कथा कौनकूं आनन्दकारिणी न होय अर ये सब ही राम के दर्शन की अभिलाषिणी रामकूं देखती देखती तृप्त न भईं जैसे भ्रमर कमलके मकरंदसूं तृप्त न होय। अर कैयक लक्ष्मण की ओर देख कहती भईं– ये नरोत्तम नारायण लक्ष्मीवान, अपने प्रतापकरि वश करी है पृथ्वी जिन्होंने, चक्रके धारक, उत्तम राज्य लक्ष्मीके स्वामी, वैरीनिकी स्त्रीनिकूं विधवा करणहारे रामके आज्ञाकारी हैं। या भाँति दोनों भाई लोककरि प्रशंसा योग्य अपने मंदिर में प्रवेश करते भए जैसे देवेंद्र देवलोकमें करै। यह श्रीरामका चरित्र जो निरंतर धारण करैं सो अविनाशी लक्ष्मीकूं पावैं।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रंथ ताकी भाषा वचनिका विषें कृतांतवक्त्र के वैराग्य वर्णन करने वाला एकसौ सातवाँ पर्व पूर्ण भया ॥ १०७ ॥

एकसौ आठवां पर्व

[लवण अंकुश के पूर्व भव]

अथानंतर राजा श्रेणिक गौतम स्वामी के मुख श्रीरामका चरित्र सुन मन विषें विचारता भया कि सीता ने लव अंकुश पुत्रनिसूं मोह तज्या सो वह सुकुमार मृगनेत्र निरंतर सुखके भोक्ता कैसें माता का वियोग सहि सके? ऐसे पराक्रम के धारक उदार चित्त तिनकूं भी इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग होय है तो औरकी कहा बात? यह विचार करि गणधरदेव सूं पूछ्या-हे प्रभो! मैं तिहारे प्रसादकरि राम-लक्ष्मण का चरित्र सुण्या, अब लव-अंकुश का चरित्र भी सुण्या चाहूं हूं। तब इंद्रभूति कहिए गौतम स्वामी कहते भए–हे राजन्! काकंदी नामा नगरी, तामें राजा रतिवर्द्धन, रानी सुदर्शना, ताके पुत्र दोय एक प्रियंकर दूजा हितंकर अर सर्वगुप्त राज्यलक्ष्मीका धुरधर सो स्वामिद्रोही राजाके मारिवे का उपाय चिंतवै अर सर्वगुप्त की स्त्री विजयावली सो पापिनी राजासूं भोग किया चाहै। अर राजा शीलवान् परदारापराङ्मुख याकी मायाविषें न आया। तब

याने राजासूं कही-मंत्री तुमकूं मारया चाहै है सो राजा ने याकी बात न मानी। तब यह पतिकूं बरबावती भई जो राजा तोहि मार मोहि लिया चाहै है। तब मंत्री दुष्ट ने सब सामंत राजासूं फोरे अर राजा का जो सोवनेका महल तहां रात्रिकूं अग्नि लगाई सो राजा सदा सावधान हुता अर महल विषें गोप्य सुरंग रखाई थी सो सुरंग के मार्ग होय दोऊ पुत्र अर स्त्रीकूं लेय राजा निकस्या सो काशी का धनी राजा कश्यप महा न्यायवान उग्रवंशी राजा रतिवर्धनका सेवक था ताके नगरकूं राजा गोप्य चाल्या। अर सर्वगुप्त रतिवर्धनके सिंहासन पर बैठ्या, सबकूं आज्ञाकारी किए। अर राजा कश्यपकूं भी पत्र लिख दूत पठाया कि तुम भी आय मोहि प्रणामकरि सेवा करो। तब कश्यप ने कही--हे दूत ! सर्वगुप्त स्वामिद्रोही है सो दुर्गतिके दुःख भोगेगा। स्वामिद्रोहीका नाम न लीजे, मुख न देखिए अर सेवा तो कैसें कीजे ? ताने राजाकूं दोऊ पुत्र अर स्त्री सहित अग्नि में जलाया सो स्वामिघात स्त्रीघात अर बालघात ये महादोष उसने उपार्जे, तातैं ऐसे पापी का सेवन कैसे करिये ? उसका मुख न देखना अर सर्व लोकनिके देखते उसका शिर काटि धनी का वैर लूंगा। ये वचन कहि दूत फेरि दिया। दूत ने जाय सर्वगुप्तकूं सर्व वृत्तांत कहा सो अनेक राजानिकरि युक्त महासेना सहित कश्यप ऊपर आया। सो आयकरि कश्यप का देश घेरा, काशीके चौगिर्द सेना पड़ी तथापि कश्यपके सुलह की इच्छा नाहीं, युद्ध ही का निश्चय। अर राजा रतिवर्धन रात्री विषें काशी के वनविषें आया अर एक तरुण द्वारपाल कश्यप पर भेजा सो जाय कश्यपसूं राजाके आवने का वृत्तांत कहता भया। सो कश्यप अति प्रसन्न भया अर कहां महाराज, कहां महाराज, ऐसे वचन बारंबार कहता भया। तब द्वारपाल ने कहा—महाराज वनविषें तिष्ठै हैं तब यह धर्मी स्वामीभक्त अति हर्षित होय परिवार सहित राजापै गया अर उसकी आरती करी अर पांव पकड़करि जय जयकार करता नगर में लाया, नगर उछाला अर यह ध्वनि नगरविषें विस्तरी कि जो काहूसूं न जीत्या जाय ऐसा रतिवर्धन राजेंद्र जयवंत होहु। राजा कश्यप ने धनी के आवनेका अति उत्सव किया अर सब सेनाके सामंतनिकूं कहाय भेज्या जो स्वामी तो विद्यमान तिष्ठें हैं अर तुम स्वामिद्रोही के साथ होय स्वामीसूं लड़ोगे, यह तुमकूं कहा उचित है ?

तब वे सकल सामंत सर्वगुप्तकूं छोड़ि स्वामी पै आए अर युद्ध विषें सर्वगुप्तकूं जीवता पकडी काकंदी नगरी का राज्य रतिवर्धनके हाथ विषें आया। राजा जीवता बच्या सो बहुरि जन्मोत्सव किया, महा दान किए, सामंतनिके सन्मान किए, भगवान की विशेष पूजा की, कश्यप का बहुत सन्मान किया, अति बधाया अर घरकूं विदा किया। सो कश्यप काशी विषें लोकपालनिकी नाईं रमै अर सर्वगुप्त सर्वलोकनिंद्य मृतकके तुल्य

भया, कोई मीटै नाहीं, मुख देखै नाहीं। तब सर्वगुप्त ने अपनी स्त्री विजयावती का दोष सर्वत्र प्रकाशा जो याने राजा अर मो बीच अंतर डाल्या। यह वृत्तांत सुन विजयावती अति द्वेषकूं प्राप्त भई जो मैं न राजा की भई, न धनीकी भई। सो मिथ्या तपकरि राक्षसी भई अर राजा रतिवर्धन ने भोगनितें उदास होय सुभानुस्वामीके निकट मुनिव्रत धरे सो राक्षसीने रतिवर्धन मुनिकूं अत्यंत उपसर्ग किए। मुनि शुद्धोपयोग के प्रसादतें केवली भए। प्रियंकर हितंकर दोनों कुमार पहिले याही नगर विषैं वासदेव नामा विप्रके श्यामली स्त्रीके सुदेव वसुदेव नामा पुत्र हुते। सो वसुदेवकी स्त्री विश्वा अर सुदेव की स्त्री प्रियंगु इनका गृहस्थ पद प्रशंसा योग्य हुता। इनने श्रीतिलक नामा मुनिकूं आहारदान दिया सो दानके प्रभावकरि दोनों भाई स्त्रीसहित उत्तरकुरु भोगभूमिविषैं उपजे, तीन पल्यकी आयु भई, साधुका जो दान सोई भया वृक्ष ताके महाफल भोगभूमि विषैं भोगि दूजे स्वर्ग देव भए, वहां सुख भोगि चए सो सम्यग्ज्ञानरूप लक्ष्मीकरि मंडित पाप कर्मके क्षय करणहारे प्रियंकर हितंकर भए, मुनि होय ग्रैवेयक गए, तहांतैं चयकरि लवणांकुश भए, महाभव्य तद्भव मोक्षगामी। अर राजा रतिवर्धनकी रानी सुदर्शना प्रियंकर हितंकर की माता, पुत्रनि में वाका अत्यन्त अनुराग था सो भरतार अर पुत्रनिके वियोगतैं अत्यन्त आर्त्तरूप होय नाना योनि में भ्रमणकरि किसी एक जन्म विषैं पुण्य उपार्ज यह सिद्धार्थ भया, धर्म विषैं अनुरागी सर्व विद्याविषैं निपुण सो पूर्व भव के स्नेहसूं लव अंकुशकूं पढाए, ऐसे निपुण किए जो देवनिकरि भी न जीते जांय। यह कथा गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिकसूं कही अर कहा—हे नृप! यह संसार असार है अर इस जीव के कौन कौन माता पिता न भए, जगत् के सब ही संबंध झूठे हैं, एक धर्म हीका संबंध सत्य है, इसलिए विवेकिनिकूं धर्महीका यत्न करना जिसकरि संसार के दुःखनिसूं छूटै। समस्तकर्म महानिंद्य, दुःख की वृद्धिके कारण, तिनकूं तजकरि जैन का भाष्या तपकरि अनेक सूर्य की कांतिकूं जीत साधु शिवपुर कहिए मुक्ति तहां जाय हैं।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषावचनिकाविषैं लवणांकुशके पूर्वभव का वर्णन करनेवाला एक सौ आठवां पर्व पूर्ण भया ॥१०८॥

एक सौ नौवां पर्व

(सीता का महा उग्र तपश्चरण करना और समाधिमरणकर स्वर्ग जाना)

अथानंतर सीता पति अर पुत्रनिकूं तजकरि कहां कहां तप करती भई सो सुनहु। कैसी है सीता ? लोकविषैं प्रसिद्ध है यश जाका। जिस समय सीता भई वह श्रीमुनिसुव्रतनाथजीका समय था। ते बीसवें भगवान् महाशोभायमान भवभ्रमके निवारणहारे, जैसा अरहनाथ अर मल्लिनाथका समय तैसा मुनिसुव्रतनाथ का समय। ता विषैं श्रीसकलभूषण

केवली केवल ज्ञान करि लोकालोकके ज्ञाता विहार करैं हैं, अनेक जीव महाव्रती अणुव्रती किए, सकल अयोध्याके लोक जिनधर्मविषें निपुण विधिपूर्वक गृहस्थका धर्म आराधैं, सकल प्रजा भगवान् श्रीसकलभूषणके वचन विषें श्रद्धावान्, जैसें चक्रवर्तीकी आज्ञाकू पालैं तैसें भगवान् धर्म चक्री तिनकी आज्ञा भव्य जीव पालैं। रामका राज्य महाधर्मका उद्योतरूप, जा समय घने लोक विवेकी साधु सेवाविषें तत्पर। देखहु जो सीता अपनी मनोज्ञताकरि देवांगनानिकी शोभाकूं जीतती हुती सो तपकरि ऐसी होय गई मानों दग्ध भई माधुरी लता ही है। महा वैराग्यकरि मंडित अशुभ भावकरि रहित स्त्री पर्यायकूं अति निंदती महातप करती भई। धूरकर धूसर होय रहे हैं केश जाके अर स्नान रहित शरीर के संस्काररहित, पसेवकरि युक्त गात्र जाविषें रज आय पड़े सो शरीर मलिन होय रहा है, बेला तेला पक्ष उपवास अनेक उपवासकरि तन क्षीण किया, दोष टारि शास्त्रोक्त पारणा करै, शील व्रत गुणनिविषें अनुरागिणी, अध्यात्मके विचारकरि अत्यंत शांत होय गया है चित्त जाका, वश की हैं इन्द्रियां जाने, औरनितें न बनें ऐसा उग्र तप करती भई। मांस अर रुधिरकरि वर्जित भया है अंग जाका, प्रगट नजर आवैं हैं अस्ति अर नसाजाल ताके मानों काठ की पुतली ही है, सूकी नदी समान भासती भई। बैठ गए हैं कपोल जाके, जूड़ा प्रमाण धरती देखती चालै, महादयावन्ती सौम्य है दृष्टि जाकी, तपका कारण देह ताके समाधानके अर्थि विधिपूर्वक भिक्षा वृत्तिकरि आहार करै। ऐसा तप किया कि शरीर और ही होय गया। अपना पराया कोई न जानै। ऐसी जो यह सीता है इसे ऐसा तप करती देख सकल आर्या याहीकी कथा करैं, याहीकी रीति देखि और हू आदरैं, सबनिविषें यह मुख्य भई। या भांति बासठ वर्ष महा तप किया अर तैतीस दिन आयु के बाकी रहे तब अनशन व्रत धार परमआराधना आराधि जैसें पुष्पादिक उच्छिष्ट साथरेकूं तजिये तैसें शरीरकूं तजकरि अच्युत स्वर्ग विषें प्रतींद्र भई।

(शम्बु और प्रद्युम्नकुमार के पूर्वभव)

गौतम स्वामी कहै हैं—हे श्रेणिक ! जिनधर्मका महात्म्य देखो जो यह स्त्री पर्याय विषें उपजी हुती सो तप के प्रभावकरि देवों का प्रभु भया। सीता अच्युत स्वर्ग विषें प्रतींद्र भई, वहाँ मणिनिकी कांतिकरि उद्योत किया है आकाश विषें जाने ऐसे विमान विषें उपजी, मणि कांचनादि महाद्रव्यनिकरि मंडित, विचित्रता धरे परम अद्भुत सुमेरु के शिखर समान ऊंचा है वहाँ परम ईश्वरता करि सम्पन्न प्रतींद्र भई। हजारों देवांगना तिनके नेत्रों का आश्रय, जैसा ताराओंकरि मंडित चन्द्रमा सोहै तैसा सोहता भया। अर भगवान् की पूजा करता भया, मध्य लोकमें आय तीर्थोंकी यात्रा साधुवोंकी सेवा करता भया अर तीर्थंकरोंके समोशरण में गणधरों के मुखसूं धर्म श्रवण करता भया। यह कथा सुनि

गौतमस्वामीसूं राजा श्रेणिक ने पूछी-हे प्रभो ! सीता का जीव सोलहवें स्वर्ग प्रतींद्र भया उस समय वहां इन्द्र कौन था ? तब गौतमस्वामीने कहा कि उस समय वहां राजा मधुका जीव इन्द्र था। उसके निकट यह आया सो वह मधु का जीव नेमिनाथ स्वामी के समय अच्युतेंद्रपदसूं चयकरि वासुदेव की रुक्मणी रानी ताके प्रद्युम्न पुत्र भया और उसका भाई कैटभ जांबुवतीके शंबु नामा पुत्र भया। तब श्रेणिकने गौतमस्वामीसूं विनती करी-हे प्रभो ! मैं तुम्हारे वचनरूप अमृत पीवता तृप्त नाहीं जैसे लोभी जीव धनसूं तृप्त नाहीं। इसलिए मुझे मधुका अर उसके भाई कैटभका चरित्र कहो। तब गणधर कहते भए-एक मगध नामा देश सर्व धान्यकरि पूर्ण, जहां चारों वर्ण हर्षसूं बसे, धर्म अर्थ काम मोक्ष के साधन अनेक पुरुष पाइए अर भगवान के सुन्दर चैत्यालय अर अनेक नगर ग्राम तिनकरि वह देश शोभित, जहाँ नदियों के तट, गिरियों के शिखर, वनमें ठौर ठौर साधुवों के संघ विराजै हैं। राजा नित्योदित राज्य करै, उस देशमें एक शालि नामा ग्राम नगर-सारिखा शोभित, वहां एक ब्राह्मण सोमदेव उसके स्त्री अग्निला पुत्र अग्निभूति वायुभूति सो वे दोनों भाई लौकिक शास्त्र में प्रवीण अर पठन पाठन दान प्रतिग्रह में निपुण अर कुल के तथा विद्या के गर्वकरि पंडित मन विषें ऐसा जानें कि हमसे अधिक कोई नाहीं, जिनधर्मतें पराङ्मुख, रोग समान इन्द्रीनिके भोग तिनहीकूं भले जानें। एकदिन स्वामी नंदिवर्धन अनेक मुनिनिसहित वनविषें आय विराजे, बड़े आचार्य अवधिज्ञानकरि समस्त मूर्तिक पदार्थनिकूं जानें। सो मुनिनिका आगमन सुनि ग्राम के सब लोक दर्शनकूं जाते हुते अर अग्निभूति वायुभूति ने काहूसूं पूछी जो यह लोक कहाँ जाय हैं ? तब वाने कही कि नंदिवर्धन मुनि आए हैं तिनके दर्शनकूं जाय हैं। तब ये सुनकरि दोऊ भाई क्रोधायमान भए जो हम वादकरि साधुनिकूं जीतेंगे। तब इनकूं माता पिता ने मने किया जो तुम साधुनितें वाद न करो तथापि इन्होने न मानी, वादकूं गए। तब इनकूं आचार्य के निकट जाते देखि एक सात्विक नामा अवधिज्ञानी मुनि इनकूं पूछते भए-तुम कहां जाओ हो ? तब इन्होंने कही—तुम विषें श्रेष्ठ जो तुम्हारा गुरु है, उसकूं वादकरि जीतने जाय हैं। तब सात्विक मुनि ने कही—हमसूं चर्चा करो। तब ये क्रोध करि मुनि के समीप बैठे अर कही तू कहांतें आया है ? तब मुनिने कही कि तुम कहांतें आए हो ? तब वे क्रोधकरि कहते भए—यह तैं कहा पूछी ? हम ग्रामतें आए हैं, कोई शास्त्रकी चर्चा करहु। तब मुनि ने कही—यह हम जानें हैं तुम शालिग्रामसूं आए हो अर तिहारे बाप का नाम सोमदेव, माता का नाम अग्निला अर तिहारे नाम अग्निभूति वायुभूति, तुम विप्रकुल हो सो यह तो प्रगट है परंतु हम तुमसूं यह पूछें हैं कि अनादिकालके भववनविषें भ्रमण करो हो सो या जन्मविषें कौन जन्मसूं आए हो ? तब इनने कही-यह जन्मांतर की बात हमकूं पूछी

सो और कोई जानै है ? तब मुनि ने कही—हम जानैं हैं । तुम सुनो—पूर्वभवविषैं तुम दोऊ भाई या ग्राम के वन विषैं परस्पर स्नेह के धारक विरूपमुख स्याल हुते अर याही ग्राम विषैं एक बहुत दिनका वासी पामर नामा पितहड ब्राह्मण सो वह खेतविषैं सूर्य अस्त समय क्षुधाकरि पीडित नाडी आदि उपकरण तजकरि आया अर अंजनगिरि तुल्य मेघ माला उठी, सात दिन अहो रात्रि का झड़ भया सो पामर तो घर से आय न सक्या अर वे दोऊ स्याल अति क्षुधातुर अंधेरी रात्रि विषैं आहारकूं निकसे सो पामर के खेतविषैं भीजी माडी कर्दमकरि लिप्त पड़ी हुती सो उनने भक्षण करी, उसकरि विकराल उदर वेदना उपजी, स्याल मूए, अकामनिर्जराकरि तुम सोमदेव के पुत्र भए । अर वह पामर सात दिन पीछे खेत में आया सो दोऊ स्याल मूए देखि अर नाडी कटी देखि स्यालनिकी चर्म ले भाथडी करी सो अब तक पामर के घरविषैं टंगी है । अर पामर मरकरि पुत्र के घर पुत्र भया सो जाति स्मरण होय मौन पकड़या जो मैं कहा कहूं, पिता तो मेरा पूर्व भवका पुत्र अर माता पूर्व भवकी पुत्र की बधू, तातैं न बोलना ही भला, सो यह पामर का जीव मौनी यहाँ ही बैठा है, ऐसा कहि मुनि पामर के जीवसूं बोले—अहो तू पुत्र के पुत्र भया सो यह आश्चर्य नाहीं, संसार का ऐसा ही चरित्र है । जैसें नृत्य के अखाड़े में बहुरूपिया अनेक रूप बनाय नाचै, तैसें यह जीव नाना पर्यायरूप भेष धर नाचै है राजातैं रंक होय, रंकसूं राजा होय, स्वामीसूं सेवक, सेवकसूं स्वामी, पितासूं पुत्र, पुत्रसूं पिता, मातासूं भार्या, भार्यासूं माता,यह संसार अरहट की घड़ी है,ऊपरली नीचे नीचली ऊपर । ऐसा संसार का स्वरूप जान, हे वत्स ! अब तू गूंगापन तजि वचनालाप करहु । या जन्म का पिता है तासे पिता कहु, मातासूं माता कहु, पूर्वभव का कहा व्यवहार रहा ? यह वचन सुन वह विप्र हर्षकरि रोमांच होय, फूल गए हैं नेत्र जाके, मुनिकूं तीन प्रदक्षिणा देय नमस्कार करि जैसें वृक्ष की जड़ उखड़ जाय अर गिर पड़े तैसें पांयनि पड्या अर मुनिकूं कहता भया—हे प्रभो ! तुम सर्वज्ञ हो, सकल लोक की व्यवस्था जानो हो, या भयानक संसार सागर विषै मैं डूबूं था सो तुम दयाकरि निकास्या, आत्म बोध दिया, मेरे भवकी सब जानी, अब मोहि दीक्षा देवहु, ऐसा कहकरि समस्त कुटुम्ब का त्याग करि मुनि भया ।

यह पामर का चरित्र सुन अनेक मुनि भए, अनेक श्रावक भए अर इन दोनों भाईनिकी पूर्वभवकी खाल लोक ले आए सो इनने देखी, लोकों ने हास्य करी जो यह मांस के भक्षक स्याल थे सो ये दोऊ भाई द्विज बड़े मूर्ख जो मुनिनिसूं वाद करने आए । ये महामुनि तपोधन शुद्ध भाव सब के गुरु, अहिंसा महाव्रत के धारक,इन समान और नाहीं । ये महामुनि महाव्रतरूप दीक्षा के धारक क्षमारूप यज्ञोपवीत धरें, ध्यानरूप अग्निहोत्र के

कर्ता, महाशांत मुक्ति के साधनविषैं तत्पर । अर जे सर्व आरम्भ विषैं प्रवरतैं, ब्रह्मचर्य-रहित वे मुखसूं कहै हैं कि हम द्विज हैं परंतु क्रिया करैं नाहीं । जैसे कोई मनुष्य या लोक में सिंह कहावै, देव कहावै परंतु वह सिंह नाहीं, तैसे यह नाममात्र ब्राह्मण कहावैं परंतु इनमें ब्रह्मत्व नाहीं । अर मुनिराज धन्य हैं, परम संयमी महा क्षमावान् तपस्वी जितेंद्री, निश्चय थकी येही ब्राह्मण हैं । ये साधु महाभद्र परिणामी भगवत् के भक्त महा तपस्वी यति धीर वीर मूलगुण उत्तरगुण के पालक इन समान और कोऊ नाहीं । ये अलौकिक गुण लिए हैं । अर इनहोकूं परिव्राजक कहिये, काहेतैं जो वह संसारकूं तजि मुक्तिकूं प्राप्त होंय । ये निर्ग्रन्थ अज्ञान-तिमिरके हर्ता तपकरि कर्मनिकी निर्जरा करैं हैं, क्षीण किए हैं रागदिक जिन्होंने, महाक्षमावान् पापनिके नाशक, तातैं इनकूं क्षपणकहू कहिए । ये संयमी कषायरहित शरीरतैं निर्मोह दिगंबर योगीश्वर ध्यानी ज्ञानी पंडित निःस्पृह सो ही सदा वंदिवे योग्य हैं । ए निर्वाणकूं साधैं तातैं इनकूं साधु कहिए अर पंच आचारकूं आप आचरैं अर औरनिकूं आचरावैं तातैं आचार्य कहिए अर आगार कहिए घर ताके त्यागी तातैं अनगार कहिए, शुद्ध भिक्षाके ग्राहक तातैं भिक्षुक कहिए, अति कायक्लेशकरि अशुभ-कर्म के त्यागी, उज्ज्वल क्रिया के कर्ता, तप करते खेद न मानैं तातैं श्रमण कहिए, आत्म-स्वरूपकूं प्रत्यक्ष अनुभवैं तातैं मुनि कहिए, रागादिक रोगों के हरिवेका यत्न करैं तातैं यति कहिए,या भांति लोकनिने साधु की स्तुति करी अर इन दोनों भाईनिकी निंदा करी। तब ये मानरहित प्रभारहित बिलखे होय घर गए, रात्रि विषैं पापी मुनि के मारवेकूं आए अर वे सात्विक मुनि अपरिग्रही संघकूं तजि अकेले मसान भूमिविषैं अस्थ्यादिकसूं दूर एकांत पवित्र भूमि मैं विराजे थे । कैसी है भूमि ? जहाँ रीछ व्याघ्र आदि दुष्ट जीवोंका नाद होय रहा है अर राक्षस भूत पिशाचोंकरि जो भरया है, नागों का निवास है, अंध-काररूप भयंकर तहाँ शुद्ध शिला जीव-जंतुरहित उसपर कायोत्सर्ग धरि खड़े थे सो उन पपियोंने देखे । दोनों भाई खड्ग काढ़ि क्रोधायमान होय कहते भए कि जब तो तोहि लोकों ने बचाया, अब कौन बचावगा? हम पंडित पृथ्वी विषैं श्रेष्ट प्रत्यक्ष देवता तू निर्लज्ज हमकूं स्याल कहै। ये शब्द कहि दोनों अत्यंत प्रचंड होठ डसते लाल नेत्र दयारहित मुनिके मारिवेकूं उद्यमी भए । तब वनका रक्षक यक्ष उसने देखे, मन विषैं चिंतवता भया-देखो ऐसे निर्दोष साधु ध्यानी, कायासूं निर्ममत्व तिनके मारिवेकूं ये उद्यमी भए । तब यक्ष ने इन दोनों भाईकूं कीले सो हलचल सके नाहीं, दोनों पसवारे खड़े । प्रभात भया, सकल लोक आय देखैं तो ये दोनों मुनि के पसवारे कीले खड़े हैं अर इनके हाथ विषैं नंगी तलवार है । तब इनकूं सर्व लोक धिक्कार २ कहते भए कि ये दुराचारी पापी अन्या-यी ऐसा कर्म करनेकूं उद्यमी भए, इन समान और पापी नाहीं । और ये दोनों चित्त विषैं

चितवते भए- जो यह धर्मका प्रभाव है, हम पापी थे सो बलात्कार कीले, स्थावर सब करि डारे। अब या अवस्थासूं जीवते बचें तो श्रावकके व्रत आदरें। अर उस ही समय इनके माता पिता आए, बारंबार मुनिकूं प्रणाम करि विनती करते भए—हे देव ! ये कुपूत पुत्र हैं. इन्होंने बहुत बुरी करी, आप दयालु हो, जीवन दान देवो। तब साधू बोले—हमारे काहूसूं कोप नाहीं, हमारे सब मित्र बांधव हैं। तब यक्ष लाल नेत्रकरि अति गुंजारसूं बोल्या अर सबोंके समीप सब वृतांत कहा कि जो प्राणी साधुवोंकी निंदा करें सो अनर्थ कूं प्राप्त होवें; जैसे निर्मल कांच विषें बांका मुखकरि निरखें तो बांका ही दीखै, तैसे जो साधुवों कूं जैसा भावकरि देखें तैसाही फल पावै, जो मुनियोंकी हास्य करै सो बहुत दिन रुदन करै अर कठोर वचन कहै सो क्लेश भोगवै। अर मुनिका वध करै तो अनेक कुमरण पावै, द्वेष करै सो पाप उपार्जे, भव भव दुःख भोगवै अर जैसा करै तैसा फल पावै। यक्ष कहै है-हे विप्र ! तेरे पुत्रोंके दोषकरि मैं कीले हैं, विद्या के मानकरि गर्वित मायाचारी दुराचारी संयमियों के घातक हैं, ऐसे वचन यक्षने कहे। तब सोमदेव विप्र हाथ जोड़ि साधुकी स्तुति करता भया अर रुदन करता भया, आपकूं निंदता छाती कूटता उर्ध्व भुजाकरि स्त्री सहित विलाप करता भया। तब मुनि परम दयालु यक्षकूं कहते भए—हे सुन्दर ! हे कमलनेत्र ! ये बाल बुद्धि हैं, इनका अपराध तुम क्षमा करो, तुम जिनशासन के सेवक हो, सदा जिनशासनकी प्रभावना करो हो, तातैं मेरे कहेसूं इनकूं क्षमा करो। तब यक्ष ने कही-आप कही सो ही प्रमाण अर वे दोनों भाई छोड़े। तब ये दोनों भाई मुनिकूं प्रदक्षिणा देय नमस्कार करि साधु का व्रत धरिवेकूं असमर्थ तातैं सम्यक्त्वसहित श्रावक के व्रत आदरते भए, जिनधर्मकी श्रद्धा के धारक भए अर इनके माता पिता व्रत ले छोड़ते भए सो वे तो अव्रतके योगसूं पहिले नरक गए अर ये दोनों विप्र पुत्र निःसन्देह जिनशासनरूप अमृतका पानकरि हिंसाका मार्ग विषवत् तजते भए, समाधिमरणकरि पहिले स्वर्ग उत्कृष्ट देव भए। वहांसूं चयकरि अयोध्या विषें समुद्र सेठ उसके धारणी स्त्री उसकी कुक्षि विषें उपजे, नेत्रनिकूं अनंदकारी, एकका नाम पूर्णभद्र दूजेका नाम कांचनभद्र, सो श्रावकके व्रत धारि पहिले स्वर्ग गए अर ब्राह्मण के भवके इनके माता पिता पापके योगसूं नरक गए हुते ते नरकसूं निकसि चांडाल अर कूकरी भए, वे पूर्णभद्र अर कांचनभद्र के उपदेशसूं जिनधर्मका आराधन करते भए, समाधिमरणकरि सोमदेव द्विजका जीव चांडालसूं नंदीश्वर द्वीपका अधिपति देव भया अर अग्निला ब्राह्मणी का जीव कूकरीसूं अयोध्या के राजाकी पुत्री होय उस देवके उपदेशसूं विवाहका त्याग करि आर्यिका होय उत्तमगति गई; वे दोनों परंपराय मोक्ष पावेंगे।

अर पूर्णचन्द्र कांचनभद्रका जीव प्रथम स्वर्गसूं चयकरि अयोध्या का राजा हेम राणी अमरावती उसके मधु कैटभ नामा पुत्र जगत विख्यात भए, जिनकूं कोई जीत न सकै। महा प्रबल महा रूपवान् जिन्होंने यह समस्त पृथ्वी वश करी, सब राजा तिनके आधीन भए। भीम नामा राजा गढके बलकरि इनकी आज्ञा न मानै, जैसें चमरेंद्र असुरकुमारनि का इंद्र नंदनवनकूं पाय प्रफुल्लित होय है तैसें वह अपने स्थानकके बलकरि प्रफुल्लित रहै। अर एक वीरसेन नामा राजा वटपुरका धनी मधु कैटभका सेवक उसने मधु कैटभ कूं विनती पत्र लिख्या--हे प्रभो! भीमरूप अग्निने मेरा देशरूप वन भस्म किया। तब मधु क्रोधकरि बड़ी सेनासूं भीम ऊपर चढ्या सो मार्गविषैं वटपुर जाय डेरा किए, वीर-सेन ने संमुख आय अति भक्तिकरि महमानी करी। उसके स्त्री चन्द्राभा, चन्द्रमा समान है वदन जाका, सो वीरसेन मूर्ख ने उसके हाथ मधु का आरता कराया अर उसहीके हाथ जिमाया। चन्द्राभाने पतिसूं घनी ही कही जो अपने घरविषैं सुन्दर वस्तु होय सो राजा कूं न दिखाइए पर पतिने न मानी। राजा मधु चंद्राभाकूं देखि मोहित भया, मनविषैं विचारी कि इस सहित विंध्याचलके वनका वास भला अर या विना सब भूमिका राज्य भी भला नाहीं सो राजा अन्याय ऊपर आया। तब मंत्री ने समझाया-अबार यह बात करोगे तो कार्य सिद्ध न होयगा अर राज्य भ्रष्ट होयगा। तब मंत्रिग्रोंके कहेसूं राजा वीरसेनकूं लारलेय भीमपै गया, उसे युद्धविषैं जीत वशीभूत किया अर और सब राजा वश किए, बहुरि अयोध्या आय चंद्राभा के लेयवे का उपाय चितया। सर्व राजा वसंतकी क्रीडा के अर्थ स्त्री सहित बुलाए अर वीरसेनकूं चन्द्राभासहित बुलाया। तब हू चंद्राभाने कहा कि मुझे मत ले चलो सो न मानी, लेही आया। राजाने मास पर्यंत वनविषैं क्रीडा करी अर राजा आए थे तिनकूं दान सन्मानकरि स्त्रियोंसहित विदा किए। अर वीर-सेनकूं भी अतिदान सम्मान करि विदा किया अर चन्द्राभाके निमित्त कही--इनके निमित्त अद्भुत आभूषण बनवाए हैं सो अभी बन नहीं चुके हैं तातैं इनकूं तिहारे पीछे विदा करेंगे। सो वह भोला कुछ समझे नाहीं वह घर गया। वाके गए पीछे मधुने चन्द्राभाकूं महल विषैं बुलाया, अभिषेककरि पटरानीपद दिया, सब रानियों के ऊपर करी। भोगकरि अंध भया है मन जिसका, इसे राखि आपकूं इन्द्र समान मानता भया। अर वीरसेन ने सुना कि चंद्राभा मधुने राखी तब पागल होय कैयक दिन विषैं मंडवनामा तापसका शिष्य होय पंचाग्नि तप करता भया। अर एक दिन राजा मधु न्याय के आसन बैठ्या सो एक पर-दारारत का न्याय आया सो राजा न्यायविषैं बहुत वेरतक बैठे रहे। बहुरि मंदिर विषैं गए तब चंद्राभा ने हंसकरि कही--महाराज, आज घनी बेर क्यों लागी ? हम क्षुधाकरि खेद-खिन्न भई, आप भोजन करो तो पीछे भोजन करूं। तब राजा मधुने कही--आज एक

परनारीरतका न्याय भाय पड्या, तातैं वेर लागी। तब चंद्राभा ने हंसकरि कही जो पर-स्त्रीरत होय उसकी बहुत मानता करनी। तब राजा ने कोपकरि कहा—तुम यह क्या कही ? जे दुष्ट व्यभिचारी हैं तिनका निग्रह करना, जे परस्त्रीका स्पर्श करैं, संभाषण करैं ते पापी हैं, सेवन करैं तिनकी कहा बात ? ऐसे कर्म करैं तिनकूं महादण्ड दे नगरसूं काढ़ने। जे अन्यायमार्गी हैं वे महा पापी नरक विषें पड़ैं हैं अर राजाओं के दंड योग्य हैं तिनका मान कहा ? तब रानी चन्द्राभा राजकूं कहती भई हे—नृप ! यह परदारा सेवन महा दोष है तो तुम आपकूं दण्ड क्यों न देवो। तुम ही परदारारत हो तो औरोंकूं कहा दोष ? जैसा राजा तैसी प्रजा, जहां हिंसक होय अर व्यभिचारी होय तहां न्याय कैसा ? तातैं चुप होय रहो, जिस जलकरि बीज उगै अर जगत् जीवै सो जल ही जो जलाय मारै तो और सीतल करणहारा कौन ? ऐसे उलाहना के वचन चन्द्राभाके सुन राजा कहता भया—हे देवी ! तुम कहो हो सो ही सत्य है, बारंबार इसकी प्रशंसा करी अर कहा कि मैं पापी लक्ष्मीरूप पाशकरि वेढया विषयरूप कीचविषैं फंस्या, अब इस दोषसूं कैसे छूटूं। राजा ऐसा विचार करै है अर अयोध्याके सहस्राम्रवाना वनविषैं महासंघसहित सिंहपाद नामा मुनि आए। राजा सुनकरि रणवास सहित अर लोक सहित मुनिके दर्शनकूं गया, विधिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देय प्रणामकरि भूमि विषैं बैठया, जिनेन्द्रका धर्म श्रवणकरि भोगोंसूं विरक्त होय मुनि भया। अर रानी चन्द्राभा बड़े राजाकी बेटी रूपकरि अतुल्य सो राज विभूति तजि आर्यिका भई, दुर्गति की वेदनाका है अधिक भय जिसकूं। अर मधु का भाई कैटभ राजकूं विनाशीक जान महा व्रतधारी मुनि भया। दोऊ भाई महा तपस्वी पृथ्वी विषैं विहार करते भए अर सकल स्वजन परजनके नेत्रनिकूं आनन्दका कारण मधुका पुत्र कुलवर्धन अयोध्याका राज्य करता भया। अर मधु सैंकड़ों बरस व्रत पाल दर्शन ज्ञान चारित्र तप चार आराधना आराधि समाधिमरण करि सोलहवां अच्युत नामा स्वर्ग वहां अच्युतेंद्र भया अर कैटभ पंद्रवां आरण नामा स्वर्ग वहां आरणेंद्र भया। गौतम स्वामी कहै हैं—हे श्रेणिक ! यह जिनशासनका प्रभाव जानों जो ऐसे अनाचारी भी अपवाद का त्यागकरि अच्युतेंद्र पद पावैं तो इन्द्रपद का कहा आश्चर्य ? जिनधर्म के प्रसादसूं मोक्ष पावैं। मधु का जीव अच्युतेंद्र था, उसके समीप सीता का जीव प्रतींद्र भया। अर मधु का जीव स्वर्गसूं चयकरि श्रीकृष्णकी रुकमणी रानी के प्रद्युम्न नामा पुत्र कामदेव होय मोक्ष लहा। अर कैटभका जीव कृष्णकी जामवंती रानी के शंबु कुमार नामा होय परम धामकूं प्राप्त भया। यह मधुका व्याख्यान तुझे कहा। अब हे श्रेणिक बुद्धिवंतों के मनकूं प्रिय ऐसे लक्ष्मणके अष्ट पुत्र महा धीर वीर तिनका चरित्र पापों का नाश करणहारा चित्त लगाय सुनहु।

इतिश्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रंथ ताकी भाषा वचनिका विषैं राजा मधु का वैराग्य वर्णन करने वाला एकसौ नौवाँ पर्व पूर्ण भया ॥ १०९ ॥

एकसौ दसवां पर्व

(लक्ष्मण के आठ कुमारों का विरक्त होकर दीक्षा लेना और निर्वाण प्राप्त करना)

अथानंतर कांचनस्थान नामा नगर वहां राजा कांचनरथ उसकी रानी शतहृदा, ताके पुत्री दोय अति रूपवती रूप के गर्वकरि महा गर्वित, तिनके स्वयंबर के अर्थ अनेक राजा भूचर खेचर तिनके पुत्र कन्याके पिताने पत्र लिख दूत भेजि शीघ्र बुलाए। सो दूत प्रथम ही अयोध्या पठाया अर पत्रविषैं लिख्या कि मेरी पुत्रियोंका स्वयंबर है सो आप कृपाकरि कुमारोंकूं शीघ्र पठावो। तब राम-लक्ष्मणने प्रसन्न होय परम ऋद्धियुक्त सर्व सुत पठाए। दोनों भाइयों के सकल कुमार लव अंकुशकूं अग्रेसर करि परस्पर महा प्रेमके भरे कांचनस्थानपुरकूं चाले, सैंकड़ों विमानविषैं बैठे, अनेक विद्याधर लार, रूपकरि लक्ष्मीकरि देवनि सारिखे आकाश के मार्ग गमन करते भए। सो बड़ी सेना सहित आकाशसूं पृथ्वीकूं देखते जावैं। कांचनस्थानपुर पहुंचे, वहां दोनों श्रेणियोंके विद्याधर राजकुमार आए थे सो यथायोग्य तिष्ठे, जैसे इन्द्रकी सभाविषैं नानाप्रकारके आभूषण पहिरे देव तिष्ठैं अर जैसी नंदनवनविषे देव नानाप्रकारकी चेष्टा करैं तैसी चेष्टा करते भए। अर दोनों कन्या मंदाकिनी अर चन्द्रवक्त्रा मंगल स्नानकरि सर्व आभूषण पहिरे निज वाससूं रथ चढ निकसी मानों साक्षात् लक्ष्मी अर लज्जा ही हैं। महा गुणोंकरि पूर्ण तिनके खोजा लार था सो राजकुमारोंके देश कुल संपत्ति गुण नाम चेष्टा सब कहता भया। अर कही ए आए हैं तिन विषे कई वानरध्वज, कई सिंहध्वज, कई वृषभध्वज, कई गजध्वज, इत्यादि अनेक भांति की ध्वजाकूं धरे महा पराक्रमी हैं, इन विषैं इच्छा होय ताहि वरहु। तब सबनिकूं देखती भई अर ये सब राजकुमार उनकूं देखि संदेह की तुला विषैं आरूढ भए कि ये रूप गर्वित हैं, न जानिए कौनकूं वरें? ऐसी रूपवती हम देखी नाहीं मानों ये दोनों समस्त देवियोंका रूप एकत्रकरि बनाई हैं, यह काम की पताका लोकनिकूं उन्माद का कारण, इस भांति सब राजकुमार अपने अपने मन विषैं अभिलाषारूप भए। दोनों उत्तमकन्या लव अंकुशकूं देखि कामबाणकरि वेधी गई। उनमें मंदाकिनी नामा जो कन्या उसने लवके कंठविषै वरमाला डारी अर दूजी कन्या चंद्रवक्त्रा ने अंकुश के कंठ विषैं वरमाला डारी। तब समस्त राजकुमारों के मनरूप पक्षी तनुरूप पिंजरेसूं उड़ गए। अर जे उत्तम जन हुते तिन्होंने प्रशंसा करी कि इन दोनों कन्याओं ने राम के दोना पुत्र वरे सो नीके करी, ए कन्या इन ही के योग्य हैं। इस भांति सज्जनों के मुखसूं वाणी निकसी। जे भले पुरुष हैं तिनका चित्त योग्य संबंधसूं आनन्दकूं प्राप्त होय।

अथानंतर लक्ष्मणकी विशल्यादि आठ पटरानी तिनके पुत्र आठ महा सुन्दर उदार चित्त शूरवीर पृथ्वीविषैं प्रसिद्ध इन्द्रसमान सो अपने अढाईसैं भाइयोंसहित महाप्रीति युक्त तिष्ठते थे जैसे ताराओंमें ग्रह तिष्ठै। सो आठ कुमारनि बिना और सर्व ही भाई रामके पुत्रनिपर क्रोधित भए। जो हम नारायणके पुत्र कीर्तिधारी कलाधारी नवयौवन लक्ष्मीवान बलवान सेनावान कौन गुणकरि हीन जो इन कन्यानिने हमकूं न वरया अर सीताके पुत्र वरे? ऐसा विचारकरि कोपित भए। तब आठों बड़े भाईनिने इनकूं शांत चित्त किए जैसे मंत्रकरि सर्पकूं वश करिए। तिनके समझावनेतैं सब ही भाई लव अंकुशसूं शांतचित्त भए अर मन विषें विचारते भए जो इन कन्यानिने हमारे बाबा के बड़े बेटे के पुत्र वरे तब ए हमारी भावज सो माता समान हैं अर स्त्री पर्याय महानिंद्य है, स्त्रीनिकी अभिलाषा अविवेकी करें, स्त्रियें स्वभाव ही तैं कुटिल हैं, इनके अर्थ विवेकी विकारकूं न भजें। जिनकूं आत्म कल्याण करना होय सो स्त्रीनितैं अपना मन फेरें, या भांति विचार सबही भाई शांतचित्त भए, पहिले सब ही युद्धकूं उद्यमी भए हुते, रणके वादित्रनिका कोलाहल शंख झंझा भेरी झंझार इत्यादि अनेक जातिके वादित्र बाजने लगे अर जैसे इंद्रकी विभूति देखि छोटे देव अभिलाषी होंय तैसे ये सब स्वयंवर विषें कन्यानिके अभिलाषी भए हुते सो बड़े भाईनिके उपदेशतें विवेकी भए। अर उन आठों बड़े भाईनिकूं वैराग्य उपज्या सो विचारें हैं, कि ये स्थावर जंगमरूप जगत् के जीव कर्मनिकी विचित्रता के योगकरि नानारूप हैं, विनश्वर हैं, जैसा जीवनिके होनहार है तैसा ही होय है, जाके जो प्राप्ति होनी है सो अवश्य होय है, और भांति नाही। अर लक्ष्मण की रानी का पुत्र हंसकर कहता भया-हे भ्राताओ! स्त्री कहा पदार्थ है? स्त्रीनितैं प्रेम करना महा मूढता है, विवेकिनकूं हांसी आवै है जो यह कामी कहा जानि अनुराग करें हैं? इन दोऊ भाईनिने ये दोनों रानी पाईं तो कहा बड़ी वस्तु पाई? जे जिनेश्वरी दीक्षा धरैं वे धन्य हैं। केला के स्तंभ समान असार काम भोग आत्मा के शत्रु तिनके वश होय रति अरति मानना महा मूढता है, विवेकिनकूं शोक हू न करना अर हास्य हू न करना। ए सब ही संसारी जीव कर्म के वश भ्रमजाल विषें पड़े हैं, ऐसा वाहीं करें हैं जाकर कर्मों का नाश होय। कोई विवेकी करै सोई सिद्धपदकूं प्राप्त होय। या गहन संसार वनविषें ये प्राणी निज पुरका मार्ग भूल रहे हैं, ऐसा करहु जातें भवदुःख निवृत्त होय। हे भाई हो! यह कर्मभूमि आर्य क्षेत्र मनुष्य देह उत्तम कुल हमने पाया सो ऐसे दिन योंही खोए, अब वीतरागका धर्म आराधि मनुष्य देह सफल करो। एक दिन मैं बालक अवस्था विषें पिताकी गोद विषें बैठा हुता सो वे पुरुषोत्तम समस्त राजनिकूं उपदेश देते थे। वे वस्तुका स्वरूप सुन्दर स्वरसूं कहते भए सो मैं रुचिसूं सुन्या कि चारों गतिविषें मनुष्यगति दुर्लभ है। जो

मनुष्य भव पाय आत्म हित न करें सो ठगाए गए जान। दानकरि तो मिथ्यादृष्टि भोग-भूमि जावैं अर सम्यग्दृष्टि दान करि तप करि स्वर्ग जांय, परम्पराय मोक्ष जावैं अर शुद्धोपयोग रूप आत्मज्ञान करि ये जीव याही भव मोक्ष पावैं अर हिंसादिक पापनिकरि दुर्गति लहैं। जो तप न करें सो भव वन विषैं भटकैं, बारंबार दुर्गति के दुःख संकट पावैं। या भांति विचार वे अष्ट कुमार शूरवीर प्रतिबोधकूं प्राप्त भए, संसार सागरके दुःखरूप भवविसूं डरे, शीघ्र ही पितापै गए, प्रणामकरि विनयसूं खड़े रहे अर महा मधुर वचन हाथ जोड़ कहते भए—हे तात ! हमारी विनती सुनहु। हम जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार किया चाहैं हैं, आप आज्ञा देवहु। यह संसार विजुरीके चमत्कार समान अस्थिर है, केला के स्तंभ समान असार है, हमकूं अविनाशीपुर के पंथ चलते विघ्न न करहु। तुम दयालु हो, कोई महाभाग्यके उदयतैं हमकूं जिनमार्ग का ज्ञान भया, अब ऐसा करें जाकरि भव-सागर के पार पहुंचैं। ये काम भोग आशीविष सर्प के फण समान भयंकर हैं, परम दुःखके कारण हम दूर हीतैं छोड्या चाहैं हैं, या जीवके कोई माता पिता पुत्र बांधव नाहीं, कोई याका सहाई नाहीं, यह सदा कर्म के आधीन भव वन विषैं भ्रमण करै है, याके कौन २ जीव कौन २ संबंधी न भए। हे तात ! हमसूं तिहारा अर माताओं का अत्यन्त वात्सल्य है सो ये ही बंधन हैं। हमने तिहारे प्रसादतैं बहुत दिन नाना प्रकार संसार के सुख भोगे, निदान एक दिन हमारा तिहारा वियोग होयगा, यामें सन्देह नाहीं, या जीव ने अनेक भोग किए परन्तु तृप्त न भया। ये भोग रोग समान हैं, इन विषै अज्ञानी राचैं अर यहदेह कुमित्र समान है। जैसे कुमित्रकूं नाना प्रकार करि पोषिये परन्तु वह अपना नाहीं तैसे यह देह अपना नाहीं, याके अर्थ आत्मा का कार्य न करना यह विवेकिनका काम नाहीं, यह देह तो हमकूं तजेगी, हम इससूं प्रीति क्यों न तजैं। ये वचन पुत्रनिके सुन लक्ष्मण परम स्नेहकरि विह्वल होय गए, इनकूं उरसूं लगाय मस्तक चूंब बारम्बार इनकी ओर देखते भए अर गदगद वाणीकरि कहते भए—हे पुत्र हो ! ये कैलाश के शिखर समान हजारां कनक के स्तम्भ तिन विषै निवास करहु, नाना प्रकार रत्नों के निरमाए हैं आंगन जिनके, महासुन्दर सर्व किरणोंकरि मण्डित, मलयागिरि चंदन की आवै है सुगंध जहां, उसकरि भंवर गुंजार करैं हैं अर स्नानादिक की विधि जहां ऐसी मंजनशाला अर सब सम्पत्तिसूं भरे निर्मल है भूमि जिनकी, इन महलों विषैं देवों समान क्रीडा करहु अर तिहारे सुन्दर स्त्री देवांगना समान दिव्यरूपकूं धरे शरदके पूनोंके चंद्रमा समान प्रजा जिनकी, अनेक गुणनिकरि मंडित, वीन बांसुरी मृदंगादि अनेक वादित्र बजायवे विषैं निपुण, महासुकंठ सुन्दर गीत गायवे विषैं निपुण, नृत्यकी करणहारी, जिनेन्द्रकी कथाविषैं अनुरागिणी, महापतिव्रता पवित्र तिन सहित वन उपवन तथा गिरि नदियों के तट तिन

भवन के उपवन, तहां नाना विधि क्रीडा करते देवोंकी न्याईं रमो। हे वत्स! ऐसे मनोहर सुखोंकूं तजकरि जिनदीक्षा धरि कैसे विषम वन अर गिरि के शिखर कैसे रहोगे। मैं स्नेह का भरया अर तिहारी माता तिहारे शोककरि तप्तायमान तिनकूं तजकरि जाना तुमकूं योग्य नाहीं, कैयक दिन पृथ्वी का राज्य करहु। तब वे कुमार, स्नेहकी वासनासे रहित भया है चित्त जिनका, संसार से भयभीत, इन्द्रियों के सुखसूं परान्मुख, महा उदार महाशूरवीर श्रेष्ठ कुमार, आत्मतत्वविषैं लाग्या है चित्त जिनका, क्षणएक विचारकर कहते भए-हे पिता! इस संसार विषैं हमारे माता पिता अनंत भए, यह स्नेह का बन्धन नरक का कारण है, यह घर रूप पिंजरा पापारम्भका अर दुःखका बढावनहारा है; उसमें मूर्ख रति मानै है, ज्ञानी न मानै। अब कबहू देह सम्बन्धी तथा मन सम्बन्धी दुःख हमकूं न होय, निश्चयसे ऐसा ही उपाय करेंगे। जो आत्मकल्याण न करै सो आत्मघाती है, कदाचित् घर न तजे अर मन विषै ऐसा जाने कि मैं निर्दोष हूँ, मुझे पाप नाहीं तो वह मलिन है, पापी है। जैसे सुफेद वस्त्र अंगके संयोग से मलिन होय, तैसे घरके संयोग से गृहस्थी मलिन होय है। जे गृहस्थाश्रम विषैं निवास करै हैं तिनके निरंतर हिंसा आरम्भकर पाप उपजै तातैं सत्पुरुषों ने गृहस्थाश्रम तजें। अर तुम हमसूं कहो कि कैयक दिन राज्य भोगो पाप सोतुम ज्ञानवान होयकर हमकूं अंधकूप विषैं डारो हो, जैसे तृषाकर आतुर मृग जल पीवै अर उसे पारधी मारै, तैसे भोगनिकर अतृप्त जो पुरुष उसे मृत्यु मारै है, जगत् के जीव विषयकी अभिलाषा कर सदा आर्त्त ध्यानरूप पराधीन हैं। जे काम सेवैं हैं वे अज्ञानी विषहरणहारी जड़ी बिना आशीविष सर्प से क्रीडा करैं हैं सो कैसे जीवें? यह प्राणी मीन समान गृहरूप तालाब विषैं बसते विषयरूप मांस के अभिलाषी रोगरूप लोहेके आंकड़े के योगकर कालरूप धीवरके जाल विषैं पड़ैं हैं। भगवान श्रीतीर्थंकर देव तीन लोकके ईश्वर सुर नर विद्याधरनिकर वंदित यहही उपदेश देते भए कि ये जगत्के जीव अपने २ उपार्जे कर्मों के वश हैं अर जो या जगत्कूं तजै सो कर्मोंकूं हतै। तातैं हे तात! हमारे इष्ट संयोगके लोभकर पूर्णता न होवै। ये संयोग सम्बन्ध बिजुरी के चमत्कारवत् चंचल हैं, जे विचक्षण जन हैं वे इनसे अनुराग न करैं। अर निश्चय सेती इस तनसे अर तनके संबंधियोंसूं वियोग होयगा, इन विषैं कहा प्रीति? अर महाक्लेशरूप यह संसार वन उस विषैं कहा निवास? अर यह मेरा प्यारा, ऐसी बुद्धि जीवों के अज्ञान से है। यह जीव सदा अकेला भव विषैं भटकै है, गति गति विषै गमन करता महा दुःखी है।

हे पिता! हम संसार सागर विषैं झकोला खाते अति खेद खिन्न भए। कैसा है संसार सागर? मिथ्या शास्त्ररूप है दुःखदाई द्वीप जिस विषैं अर मोहरूप है मगर जिसमें अर शोक संतापरूप सिवालकर संयुक्त सो दुर्जयरूप नदियोंकर पूरित है अर भ्रमणरूप

भंवर के समूह कर भयंकर है अर अनेक आधि-व्याधि उपाधिरूप कल्लोलों कर युक्त है अर कुभावरूप पाताल कुण्डों कर अगम है अर क्रोधादिकर भावरूप जलचरों के समूहसे भरा है अर वृथा बकवादरूप होय है शब्द जहां अर ममत्वरूप पवनकर उठें हैं विकल्परूप तरंग जहां अर दुर्गतिरूप क्षार जल कर भरा है अर महा दुस्सह इष्ट वियोग अनिष्ट संयोगरूप आताप सोई है बडवानल जहां, ऐसे भव सागर विषें हम अनादिकालके खेदखिन्न पड़े हैं। नाना योनि विषें भ्रमण करते अति कष्टसूं मनुष्य देह उत्तम कुल पाया है सो अब ऐसा करेंगे जो बहुरि भवभ्रमण न होय। सो सबसे मोह छुड़ाय आठों कुमार महाशूरवीर घर रूप बन्दीखाने से निकसे। उन महाभाग्यों के ऐसी वैराग्य बुद्धि उपजी जो तीन खंड का ईश्वरपणा जीर्ण तृणवत् तजा। ते विवेकी महेन्द्रोदय नामा उद्यानविषें जायकर महाबल नामा मुनि के निकट दिगम्बर भए, सर्व आरम्भ रहित अंतर्बाह्य परिग्रह के त्यागी विधि पूर्वक ईर्यासमिति पालते विहार करते भए। महा क्षमावान् इन्द्रियों के वश करणहारे विकल्प रहित निस्पृही परम योगी महाध्यानी बारह प्रकार के तपकर कर्मोंकूं भस्म कर अध्यात्मयोग से शुभाशुभ भावों का निराकरण कर क्षीण कषाय होय केवलज्ञान लह अनंत सुखरूप सिद्ध पदकूं प्राप्त भए, जगत् के प्रपंच से छूटे। गौतम गणधर राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे नृप ! यह अष्ट कुमारों का मंगलरूप चरित्र जो विनयवान भक्ति कर पढ़ै सुनै उसके समस्त पाप क्षय हो जावें जैसें सूर्य की प्रभाकर तिमिर विलाय जाय।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ ताकी भाषा वचनिका विषें लक्ष्मण के आठ कुमारों का वैराग्य वर्णन करने वाला एकसौ दसवां पर्व पूर्ण भया ॥११०॥

एकसौ ग्यारहवां पर्व

(भामंडल का विद्युत्पात से मरण)

अथानंतर महावीर जिनेन्द्र के प्रथम गणधर मुनियों विषें मुख्य गौतम ऋषि श्रेणिकसूं भामंडल का चरित्र कहते भए—हे श्रेणिक ! विद्याधरनिकी जो ईश्वरता सोई भई कुटिल स्त्री, उसका विषयवासना रूप मिथ्या सुख सोई भया पुष्प, उसके अनुरागरूप मकरंद विषें भामंडलरूप भ्रमर आसक्त होता भया चित्तमें यह चितवै जो मैं जिनेंद्री दीक्षा धरूंगा तो मेरी स्त्रियों का सौभाग्यरूप कमलनिका वन सूक जाएगा, ये मेरे से आसक्त चित्त हैं अर इनके विरह कर मेरे प्राणनिका वियोग होयगा। मैं ये प्राण सुखसूं पाले हैं, इसलिए कैयक दिन राज्य के सुख भोग कल्याण का कारण जो तप सो करूंगा। ये कामभोग दुर्निवार हैं अर इन कर पाप उपजेगा सो ध्यान रूप अग्निकर क्षणमात्र विषें भस्म करूंगा, कैयक दिन राज्य करूंगा, बड़ी सेना राख जे मेरे शत्रु हैं तिनकूं राज्य-रहित करूंगा, वे खड्ग के धारी बड़े सामंत मुझ से पराङ्मुख ते भए अहयी कहिए मैंडा

तिनके मानरूप खड्गकूं भंग करूंगा। अर दक्षिण श्रेणी उत्तर श्रेणी विषैं अपनी अपनी आज्ञा मनाऊंगा अर सुमेरु पर्वत आदि पर्वतों विषैं मरकत मणि आदि नाना जातिके रत्ननिकी निर्मल शिला तिन विषैं स्त्रियों सहित क्रीडा करूंगा, इत्यादि मनके मनोरथ करता हुवा भामंडल सैंकड़ों वर्ष एक मुहूर्त न्याईं व्यतीत करता भया। यह किया, यह करूंगा, ऐसा चितवन करता आयु का अन्त न जानता भया। एक दिन सतखणे महल के ऊपर सुन्दर सेज पर पौढा हुता सो विजुरी पड़ी अर तत्काल कालकूं प्राप्त भया।

दीर्घसूत्री मनुष्य अनेक विकल्प करैं परन्तु आत्मा के उद्धार का उपाय न करैं। तृष्णाकर हता क्षणमात्रमें साता न पावैं, मृत्यु सिर पर फिरै ताकी सुध नाहीं, क्षणभंगुर सुखके निमित्त दुर्बुद्धि आत्म हित न करैं, विषय वासना कर लुब्ध भया अनेक भांति विकल्प करता रहै सो विकल्प कर्मबन्ध के कारण हैं। धन यौवन जीतव्य सब अस्थिर हैं, जो इनकूं अस्थिर जान सर्व परिग्रहका त्यागकर आत्म कल्याण करैं सो भवसागरमें न डूबैं। अर विषयाभिलाषी जीव भवविषैं कष्ट सहैं, हजारों शास्त्र पढ़ैं अर शांतता न उपजी तो क्या? अर एक ही पदकर शांत दशा होय तो प्रशंसा योग्य है। धर्म करिवे की इच्छा तो सदा करवो करै अर करै नाहीं सो कल्याणकूं न प्राप्त होय, जैसें कटी पक्ष का काग उड़कर आकाश विषैं पहुंचा चाहै पर जाय न सकै; जो निर्वाणके उद्यम कर रहित है सो निर्वाण न पावै। जो निरुद्यमी सिद्धपद पावै तो कौन काहेकूं मुनिव्रत आदरै। जो गुरुके उत्तम वचन उरविषैं धार धर्मकूं उद्यमी होय सो कभी खेद खिन्न न होय। जो गृहस्थ द्वारे आया साधु उसकी भक्ति न करै, आहार न दे सो अविवेकी है? अर गुरुके वचन सुन धर्मकूं न आदरै सो भवभ्रमण से न छूटै। जो घने प्रमादी हैं अर नाना प्रकार के अशुभ उद्यम कर व्याकुल हैं उनकी आयु वृथा जाय है जैसे हथेली में आया रत्न जाता रहै। ऐसा जान समस्त लौकिक कार्यकूं निरर्थक मान दुःख रूप इन्द्रियोंके सुख तिनकूं तज कर परलोक सुधारिवेके अर्थ जिनशासन विषैं श्रद्धा करहु। भामंडल मरकर पात्रदान के प्रभावसूं उत्तम भोगभूमि गया।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं भामंडलका मरणवर्णन करने वाला एकसौ ग्यारहवां पर्व पूर्ण भया ॥१११॥

एकसौ बारहवां पर्व

(हनुमान का संसार, देह और भोगों से विरक्त होना)

अथानन्तर राम लक्ष्मण परस्पर महा स्नेहके भरे प्रजाके पिता समान परम हितकारी तिनका राज्य विषैं सुखसूं समय व्यतीत होता भया। परम ईश्वरतारूप अति सुन्दर राज्य सोई भया कमलों का वन उस विषैं क्रीडा करते वे पुरुषोत्तम पृथ्वीकूं प्रमोद

उपजावते भए। इनके सुख का वर्णन कहां तक करें, ऋतुराज कहिए वसंत ऋतु उसमें सुगंध वायु वहै, कोयल बोलै, भ्रमर गुंजार करैं, समस्त वनस्पति फूलें, मदोन्मत्त होय समस्त लोक हर्ष के भरे शृंगार क्रीड़ा करैं, मुनिराज विषम वनविषें विराजें, आत्मस्वरूप का ध्यान करें, उस ऋतुविषें राम लक्ष्मण रणवाससहित अर समस्त लोकनि सहित रमणीक वनविषें तथा उपवनविषें नानाप्रकारके रंग क्रीड़ा रागक्रीड़ा जलक्रीडा वनक्रीडा करते भए। अर ग्रीष्म ऋतुविषें नदी सूकै, दावानल समान ज्वाला बरसै, महामुनि गिरिके शिखर सूर्यके सन्मुख कायोत्सर्ग धर तिष्ठैं, उस ऋतु विषें राम लक्ष्मण धारामंडप महलविषें अथवा महारमणीक वनविषें जहां अनेक जलयंत्र चंदन कपूर आदि शीतल सुगंध सामग्री वहां सुखसूं विराजें हैं, चमर ढुरें हैं, ताड़ के बीजना फिरें हैं, निर्मल स्फटिककी शिलापर तिष्ठें हैं, अगुरु चन्दन कर चर्चे जलकर आर्द्रतर ऐसे कमल दल तथा पुष्पों के साथरे पर तिष्ठे महामनोहर निर्मल शीतल जल जिस विषें लवंग इलायची कपूर अनेक सुगंधद्रव्य उनकर महासुगंध उसका पान करते लताओं के मण्डप विषें विराजते नाना प्रकार की सुन्दर कथा करते, सारंग आदि अनेक राग सुनते, सुन्दर स्त्रीनि सहित उष्ण ऋतुकूं बलात्कार शीतकाल सम करते सुखसूं पूर्ण करते भए। अर वर्षा ऋतु विषें योगीश्वर तरु तले तिष्टते महातपकर अशुभ कर्म का क्षय करें हैं, बिजरी चमकै है, मेघ कर अंधकार होय रहा है, मयूर बोलैं हैं। ढाहा उपाडतीं महाशब्द करती नदी बहै है, उस ऋतु विषें दोनों भाई सुमेरु के शिखर समान ऊंचे नाना मणिमई जे महल तिनविषें महा श्रेष्ठ रंगीले वस्त्र पहिरे केसरके रंगकर लिप्त है अंग जिनका अर कृष्णागुरुका धूप खे रहे हैं, महासुन्दर स्त्रियों के नेत्ररूप भ्रमरोंके कमलों सारिखे इन्द्र समान क्रोडा करते सुखसूं तिष्ठे अर शरदऋतुविषें जल निर्मल होय, चन्द्रमाकी किरण उज्ज्वल होय, कमल फूलें,हंस मनोहर शब्द करैं, मुनिराज वन पर्वत सरोवर नदोके तीर बैठे चिद्रूपका ध्यान करैं, उस ऋतु विषें राम लक्ष्मण राजलोकों सहित चांदनी से वस्त्र आभरण पहिरे सरिता सरोवरके तीर नाना विधि क्रीडा करते भए। अर शीतऋतुविषें योगीश्वर धर्मध्यान को ध्यावते रात्रिविषें नदी तालाबोंके तटपै जहां अति शीत पड़ै, बर्फ बरसै, महाठण्डो पवन बाजै तहां निश्चल तिष्ठै हैं, महाप्रचण्ड शीत पवन कर वृक्ष दाहे मारे हैं अर सूर्य का तेज मन्द होय गया है, ऐसी ऋतुविषें राम लक्ष्मण महलनिके भीतरले चौबारों विषै तिष्ठते मन वांछित विलास करते सुन्दर स्त्रीनिके समूह सहित बीण मृदंग बांसुरी आदि अनेक वादित्रनिके शब्द कानों को अमृत समान श्रवण कर मनकूं आह्लाद उपजावते दोनों वीर महाधीर देव समान अर जिनके स्त्री देवांगना समान, बीणाकर जीती है बीणाकी ध्वनि जिन्होंने, महापतिव्रता तिनकर आदरते संते

पुण्यके प्रभावसे सुखसूं शीतकाल व्यतीत करते भए। अद्भुत भोगों की सम्पदाकर मण्डित वे पुरुषोत्तम प्रजाकूं आनन्दकारी दोनों भाई सुखसूं तिष्ठते भए।

अथानंतर गौतमस्वामी कहैं हैं—हे श्रेणिक ! अब तू हनुमानका वृत्तांत सुन। हनुमान पवनका पुत्र कर्णकुण्डल नगरविषैं पुण्यके प्रभावसूं देवनिके सुख भोगवै, जिसकी हजारों विद्याधर सेवा करैं अर उत्तम क्रियाका धारक स्त्रियोंसहित परिवारसहित अपनी इच्छाकरि पृथ्वीमें विहार करै, श्रेष्ठ विमानविषैं आरूढ परम ऋद्धिकर मंडित महा शोभायमान सुन्दरवनों में देवनि समान क्रीडा करै। सो वसंतका समय आया, कामी जीवनिकूं उन्मादका कारण अर समस्त वृक्ष कूं प्रफुल्लित करणहारी प्रिया अर प्रीतमके प्रेम का बढ़ावनहारा, सुगंध चलै है पवन जिसमें ऐसे समयमें अंजनाका पुत्र जिनेंद्र की भक्तिमें आरूढचित्त अति हर्ष कर पूर्ण हजारों स्त्रीनि सहित सुमेरु पर्वतकी ओर चाल्या, हजारों विद्याधर हैं संग जिसके, श्रेष्ठ विमानविषैं चढे परम ऋद्धि करि संयुक्त मार्गविषैं वनविषैं क्रीड़ा करते भए। कैसे हैं वन ? शीतल मद सुगंध चलै है पवन जहां, नाना प्रकार के पुष्प अर फलोंकरि शोभित वृक्ष हैं जहां, देवांगना रमैं हैं अर कुलाचलों के विषै सुंदर सरोवरों करि युक्त अनेक मनोहर वन जिनविषैं भ्रमर गुंजार करैं हैं अर कोयल बोल रही हैं अर नाना प्रकारके पशु पक्षियोंके युगल विचरैं हैं, जहां सर्व जाति के पत्र पुष्प फल शोभै हैं अर रत्ननिकी ज्योतिकर उद्योतरूप हैं पर्वत जहां अर नदी निर्मल जलकी भरी, सुन्दर हैं तट जिनके अर सरोवर अति रमणीक, नाना प्रकारके कमलों के मकरंदकरि रंगरूप होय रहा है सुगंध जल जिनका अर वापिका अति मनोहर जिनके रत्नोंके सिवान अर तटों के निकट बड़े बड़े वृक्ष हैं अर नदी में तरंग उठै हैं, झागों के समूहसहित महा शब्द करती बहै हैं, जिनमें मगर मच्छ आदि जलचर क्रीडा करैं अर दोनों तट विषैं लहलहाट करते अनेक वन उपवन महा मनोहर विचित्रगति लिए शोभै हैं, जिनमें क्रीडा करिबे के सुन्दर महल अर नाना प्रकार रत्ननिकरि निर्मापे जिनेश्वरके मन्दिर पापोंके हरणहारे अनेक हैं। पवनपुत्र सुन्दर स्त्रियोंकरि सेवित परम उदयकरि युक्त अनेक गिरियों विषैं अकृत्रिम चैत्यालयोंका दर्शनकरि विमान विषैं चढ्या स्त्रियोंकूं पृथ्वी की शोभा दिखावता अति प्रसन्नतासूं कहै है—हे प्रिये ! सुमेरु विषैं अति रमणीक जिन मंदिर स्वर्णमई भासै हैं अर इनका शिखर सूर्य समान देदीप्यमान महामनोहर भासै है अर गिरि की गुफा तिनके मनोहर द्वार रत्नजडित शोभा नाना रंग की ज्योति परस्पर मिल रही हैं, वहां अरति उपजै ही नाहीं। सुमेरुकी भूमितल विषैं अतिरमणीक भद्रशालवन है अर सुमेरुकी कटि मेखला विषैं विस्तीर्ण नंदन वन अर सुमेरु के वक्षस्थल विषैं सौमनस वन है जहां कल्पवृक्ष कल्पलताओंसे वेढे सोहै हैं अर नानाप्रकार रत्नोंकी शिला शोभित

हैं। अर सुमेरु के शिखर में पांडुक वन है जहाँ जिनेश्वर देव का जन्मोत्सव होय है। इन चारों ही वन विषें चार चार चैत्यालय हैं जहां निरंतर देव देवियोंका आगमन है, यक्ष किन्नर गंधर्वों के संगीतकरि नाद होय रहा है, अप्सरा नृत्य करें हैं, कल्पवृक्षों के पुष्प मनोहर हैं, नाना प्रकार के मंगल द्रव्यकरि पूर्ण यह भगवान् के अकृत्रिम चैत्यालय अनादि-निधन हैं। हे प्रिये ! पांडुक वनविषे परम अद्भुत जिन मंदिर सोहै हैं जिनके देखे मन हरा जाय, महा प्रज्वलित निर्धूम अग्नि समान संध्या के बादरों के रंग समान, उगते सूर्य समान स्वर्णमई शोभैं हैं, समस्त उत्तम रत्नविकरि शोभित सुन्दराकार हजारों मोतियोंकी माला तिनकरि मंडित महामनोहर हैं। मालाओंके मोती कैसे सोहै हैं मानों जलके बुदबुदा ही हैं अर घंटा झांझ मजीरा मृदंग चमर तिनकरि शोभित हैं। चौगिरद कोट ऊंचे दरवाजे इत्यादि परम विभूति करि विराजमान हैं। नानारंग की फहराती हुई ध्वजा स्वर्णके स्तंभनि करि देदीप्यमान इन अकृत्रिम चैत्यालयों की शोभा कहाँ लग कहैं जिनका सम्पूर्ण वर्णन इन्द्रादिक देव भी न कर सकैं। हे कांते ! पाण्डुक वन के चैत्यालय मानों सुमेरु के मुकुट ही हैं, अति रमणीक हैं।

या भांति महारानी पटरानियों से हनुमान बात करते जिनमंदिर की प्रशंसा करते मंदिर के समीप आए। विमानसूं उतरि महा हर्षित होय प्रदक्षिणा दई। वहां श्रीभगवान् के अकृत्रिम प्रतिबिंब सर्व अतिशय विराजमान महा ऐश्वर्यकरि मंडित महा तेज पुंज देदीप्यमान शरदके उज्ज्वल बादर तिनमें जैसे चन्द्रमा सोहै तैसे सर्व लक्षण मंडित हनुमान हाथ जोड़ रणवास सहित नमस्कार करता भया। कैसा है हनुमान ? जैसे ग्रह ताराओं के मध्य चन्द्रमा सोहै तैसे राज-लोक के मध्य सोहै है, जिनेंद्रके दर्शन करि उपज्या है अतिहर्ष जिनकूं सो संपूर्ण स्त्रीजन अति आनंदकूं प्राप्त भईं, रोमांच होय आए, नेत्र प्रफुल्लित भए; विद्याधरी परम भक्तिकर युक्त सर्व उपकरणों सहित परम चेष्टा को धरणहारी, महापवित्र कुलविषें उपजी देवांगनाओं की न्याईं अति अनुरागसे देवाधिदेवकी विधिपूर्वक पूजा करती भईं, महा पवित्र पद्महृद आदिका जल अर महा सुगंध चन्दन मुक्ताफलनिके अक्षत स्वर्णमई कमल तथा पद्मराग मणिमई तथा चन्द्रकांति मणिमई तिनकर पूजा करती भईं। अर कल्पवृक्षनिके पुष्प अर अमृतरूप नैवेद्य अर महा ज्योति रूप रत्नोंके दीप चढाए। अर मलयागिरि चन्दन आदि महासुगंध जिनकरि दशोंदिशा सुगंधमई होय रही हैं अर परम उज्ज्वल महाशीतल जल अर अगुरु आदि महापवित्र द्रव्योंकरि उपज्या जो धूप सो खेवती भई अर महा पवित्र अमृत फल चढावती भईं अर रत्नोंके चूर्णकरि मांडला मांडती भईं, महामनोहर अष्ट द्रव्यों से भक्ति सहित पूजा करती भईं। हनुमान राणीनि सहित भगवान् की पूजा करता कैसे सोहै है जैसा

सौधर्म इन्द्र पूजा करता सोहै। कैसा है हनुमान ? अनेक पहिरे, सर्व आभूषण पहिरे, महीन वस्त्र पहिरे, महा पवित्र पापरहित वानरके चिन्हका है दैदीप्यमान रत्नमई मुकुट जिसके, महा प्रमोदका भरया, फूल रहे हैं नेत्रकमल जिसके, सुन्दर है वदन जिसका, पूजाकरि पापनिके नाश करणहारे स्तोत्र तिनकरि सुर असुरों के गुरु जिनेश्वर तिन के प्रतिबिंबकी स्तुति करता भया। सो पूजा करता अर स्तुति करता इंद्रकी अप्सराओंने देख्या सो अति प्रशंसा करती भईं। अर यह प्रवीण वीण लेयकर जिनेंद्रचन्द्रके यश गावता भया, जे शुद्ध चित्त जिनेन्द्रकी पूजाविषैं अनुरागी हैं, सर्व कल्याण तिनके समीप हैं तिनकूं कुछ ही दुर्लभ नाहीं, तिनका दर्शन मंगलरूप है। उन जीवोंने अपना जन्म सुफल किया जिन्होंने उत्तम मनुष्य देह पाय श्रावकके व्रतधरि जिनवरविषैं दृढ भक्ति धारी; अपने करविषैं कल्याणकूं धरैं हैं, जन्मका फल तिनहीने पाया। हनुमानने पूजास्तुति-वंदनाकरि वीण बजाय अनेक राग गाय अद्‌भुत स्तुति करी। यद्यपि भगवान्‌के दर्शन से बिछुरवेका नहीं है मन जिसका तथापि चैत्यालय विषैं अधिक न रहहु-मति कोऊ आसादना लागै, तातैं जिनराजके चरण उर विषैं धरि मंदिरसूं बाहिर निकस्या, विमानों में चढे हजारों स्त्रियोंकरि संयुक्त सुमेरुकी प्रदक्षिणा दी। जैसे सूर्य देव तैसे श्रीशैल कहिए हनुमान, सुन्दर हैं क्रिया जिसकी सो शैलराज कहिए सुमेरु उसकी प्रदक्षिणा देय समस्त चैत्यालयों-विषैं दर्शन करि भरतक्षेत्रकी ओर सन्मुख भया सो मार्ग विषैं सूर्य अस्त होय गया अर संध्या भी सूर्य के पीछे विलय गई, कृष्णपक्षकी रात्रि सो तारारूप बंधुओंकर मंडित चंद्रमारूप पति विना न सोहती भई। हनुमान ने तले उतर एक सुरदुन्दुभी नामा पर्वत वहाँ सेनासहित रात्रि व्यतीत करी, कमल आदि अनेक सुगंध पुष्पोंसे स्पर्श करि पवन आई, उसकरि सेनाके लोक सुखसूं रहे, जिनेश्वरदेव की कथा करते भए, रात्रिकूं आकाशसूं दैदीप्यमान एक तारा टूटया सो हनुमान ने देखकरि मन विषैं विचारी, हाय२ ! इस असार संसार वनविषैं देव भी कालवश हैं, ऐसा कोई नाहीं जो कालसूं बचै, विजुरीका चमत्कार अर जलकी तरंग जैसें क्षण-भंगुर हैं तैसें शरीर विनश्वर है। इस संसार विषैं इस जीवने अनंत भव विषैं दुःख ही भोगे, जीव विषय सुखकूं सुख मानै है सो सुख नाहीं, दुःख ही है, पराधीन है, विषम क्षणभंगुर संसारविषैं दुःख ही है, सुख नाहीं होय है। मोहका माहात्म्य है जो अनन्तकाल जीव दुःख भोगता भ्रमण करै है, अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल भ्रमणकरि मनुष्य देह कभी कोई पावै है सो पायकरि धर्मके साधन वृथा खोवै है, यह विनाशीक सुखविषैं आसक्त होय महासंकट पावै है, यह जीव रागादिकके वश भया वीतराग भावकूं नाहीं जानै है, यह इन्द्रिय जैनमार्ग के आश्रय बिना न जीते जांय, ये इन्द्री चंचल कुमार्ग विषैं लगाय करि इस जीवकूं इस भव परभव विषैं दुःख-

दाई हैं। जैसे मृग मीन अर पक्षी लोभ के वशसूं वधिक के जाल में पड़ें हैं तैसें यह कामी क्रोधी लोभी जीव जिनमार्गकूं पाए बिना अज्ञान के वशसूं प्रपचरूप पारधी के बिछाए-विषयरूप जाल विषें पड़ें हैं। जो जीव आशीविष सर्प समान यह मन इन्द्री तिनके विषयों में रमैं हैं सो मूढ़ दुःखरूप अग्नि विषे जरें हैं। जैसे कोई एक दिन राज्यकरि बहुत दिन त्रास भोगवै तैसे यह मूढ जीव अल्पदिन विषयों के सुख भोगि अनन्तकाल पर्यंत निगोद के दुःख भोगवै है। जो विषय सुखका अभिलाषी है सो दुःखों का अधिकारी है, नरक निगोद के मूल ये विषय तिनकूं ज्ञानी न चाहै, मोहरूप ठगका ठगा जो आत्मकल्याण न करै सो महा कष्टकूं पावै। जो पूर्व भव विषें धर्म उपार्ज मनुष्य देह पाय धर्म का आदर न करै सो जैसे धन ठगाय कोई दुःखी होय तैसें दुःखी होय है। अर देवों के भी भोग भोगि यह जीव मरकरि देव सूं एकेंद्री होय है, इस जीव के पाप शत्रु हैं, और कोऊ शत्रु मित्र नाहीं। अर ये भोग ही पापके मूल हैं, इनसूं तृप्ति न होय, ये महा भयंकर हैं। अर इनका निश्चय वियोग होगा, ये रहने के नाहीं। जो मैं इस राज्यकूं अर यह जो प्रियजन हैं तिनकूं तजकरि तप न करूं तो अतृप्त भया सुभूम चक्रवर्ती की नाईं मर कर दुर्गति को जाऊंगा। अर ये मेरी स्त्री शोभायमान मृगनयनी सर्व मनोरथ की पूर्णहारी पतिव्रता स्त्रियों के गुण-निकर मंडित नवयौवन हैं सो अबतक मैं अज्ञानसूं तज न सका सो मैं अपनी भूल को कहां तक उलाहना दूं। देखो! मैं सागरों पर्यंत स्वर्गविषें अनेक देवांगना सहित रम्या अर देवसूं मनुष्य होय इस क्षेत्र विषें भया, सुन्दर स्त्रियों सहित रम्या परन्तु तृप्त न भया। जैसे ईंधनसूं अग्नि तृप्त न होय अर नदियोंसूं समुद्र तृप्त न होय तैसे यह प्राणी नाना प्रकार के विषयसुख तिनकरि तृप्त न होय। मैं नाना प्रकार के जन्म तिनविषें भ्रमणकरि खेद खिन्न भया। रे मन! अब तू शांतताकूं प्राप्त हाहु, कहा व्याकुल होय रहा है, क्या तैंने भयकर नरकों के दुःख न सुने, जहां रौद्रध्यान हिंसक जीव जाय हैं तिन नरकनि विषें महा तीव्र वेदना असिपत्र वन वैतरणी नदी, संकटरूप है सकल भूमि जहां, रे मन तू नरकसूं न डरै है, राग द्वेष करि उपजे जे कर्म कलंक तिनकूं तपकरि नाहीं खिपावै है, तेरे एते दिन यों ही वृथा गए, विषय सुखरूप कूप विषे पड़ा अपने आत्माकूं अब पिंजरेसूं निकासि, पाया है जिन मार्ग विषें बुद्धि का प्रकाश तैंने, तू अनादि काल का संसार भ्रमणसूं खेदखिन्न भया, अब अनादिके बंधे आत्माकूं छुड़ाय। हनुमान ऐसा निश्चयकरि संसार शरीर भोगोंसूं उदास भया, जाना है यथार्थ जिनशासन का रहस्य जिसने। जैसे सूर्य मेघरूप पटल से रहित महा तेजरूप भासै तैसें मोह पटलसूं रहित भासता भया, जिस मार्गहोय जिनवर सिद्ध पदकूं सिधारे उस मार्ग विषें चलिवेकूं उद्यमी भया।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ ताकी भाषा वचनिका विषैं हनुमानका वैराग्य चिंतवन वर्णन करने वाला एक सौ बारहवां पर्व पूर्ण भया ॥११२॥

एकसौ तेरहवाँ पर्व

(हनुमान का दीक्षा लेना और उग्र तपकर निर्वाण प्राप्त करना)

अथानन्तर रात्रि व्यतीत भई, सोला वानी के स्वर्ण समान सूर्य अपनी दीप्ति करि जगतविषैं उद्योत करता भया. जैसैं साधु मोक्षमार्ग का उद्योत करैं। नक्षत्रों के गण अस्त भए अर सूर्य के उदय करि कमल फूले जैसे जिनराज के उद्योतकरि भव्य जीवरूप कमल फूलैं। हनुमान महा वैराग्यका भरया जगत के भोगोंसूं विरक्त मंत्रियोंसूं कहता भया कि जैसे भरत चक्रवर्ती पूर्व तपोवनकूं गए तैसे हम जावेंगे। तब मंत्री प्रेम के भरे परम उद्वेगकूं प्राप्त होय नाथसूं विनती करते भए कि हे देव ! हमकूं अनाथ न करो, प्रसन्न होवो, हम तिहारे भक्त हैं, हमारा प्रतिपालन करो। तब हनुमानने कही—तुम यद्यपि निश्चयकर मेरे आज्ञाकारी हो तथापि अनर्थ के कारण हो, हितके कारण नाहीं, जो संसार समुद्रसूं उतरै अर उसे पीछे सागर में डारै ते हितू कैसे ? निश्चय थकी उन कूं शत्रु ही कहिए। जब या जीवने नरक के निवास विषैं महादुःख भोगे तब माता पिता मित्र भाई कोई ही सहाई न भया। यह दुर्लभ मनुष्य देह अर जिनशासन का ज्ञान पाय बुद्धिमानोंकूं प्रमाद करना उचित नाहीं। अर जैसें राज्यके भोगसूं मेरे अप्रीति भई तैसे तुमकूं भई। यह कर्म जनित ठाठ सर्व विनाशीक हैं, निःसन्देह हमारा तिहारा वियोग होयगा। जहां संयोग है वहां वियोग है, सुर नर अर इनके अधिपति इन्द्र नरेन्द्र ये सब ही अपने २ कर्मों के आधीन हैं, कालरूप दावानल करि कौन कौन भस्म न भए, मैं सागरों पर्यंत अनेक भव देवों के सुख भोगे परन्तु तृप्त न भया जैसे सूके ईंधनकरि अग्नि तृप्त न होय। गति जाति शरीर इनका कारण नाम कर्म है जाकरि ये जीव गति गति विषैं भ्रमण करै है सो मोह का बल महा बलवान है, जाके उदय करि यह शरीर उपज्या है सो न रहेगा, यह संसार वन महा विषम है, जा विषैं ये प्राणी मोहकूं प्राप्त भव संकट भोगैं हैं, उसे उलंघ करि मैं जन्म जरा मृत्यु रहित जो पद तहां गया चाहूं हूं। यह बात हनुमानने मंत्रियोंसूं कही सो रणवास की स्त्रियोंने सुनी, उसकरि खेदखिन्न होय महारुदन करती भईं। जे समझाने विषैं समर्थ ते उनकूं शांत चित्त करी। कैसे हैं समझावन हारे ? नाना प्रकार के वृत्तांत विषैं प्रवीण। अर हनुमान निश्चल है चित्त जाका सो अपने बडे पुत्रकूं राज्य देय अर सबनिकूं यथायोग्य विभूति देय रत्नों के समूहकरि युक्त देवों के विमान समान जो अपना मन्दिर उसे तजकरि निकस्या। स्वर्ण रत्नमई दैदोप्यमान जो पालकी तापर चढि चैत्यवान नामा वन तहां गया, सो नगर के लोक हनुमान की पालकी देख सजल नेत्र भए। पालकीपर ध्वजा फरहरै है, चमरोंकरि शोभित है, मोतियोंकी झालरियोंकरि मनोहर है। हनुमान वनविषैं आया सो वन नाना प्रकार के वृक्षोंकरि मंडित अर जहाँ सूवा मैना मयूर हंस

कोयल भ्रमर सुन्दर शब्द करैं हैं अर नाना प्रकार के पुष्पोंकरि सुगंध है, वहां स्वामी धर्म रत्न संयमी धर्मरूप रत्नकी राशि उत्तम योगीश्वर, जिनके दर्शनसूं पाप विलाय जावें, ऐसे सन्त चारण मुनि अनेक चारण ऋद्धियोंकरि मंडित तिष्ठते थे। आकाशविषें है गमन जिनका सो दूरसूं उनकूं देख हनुमान पालकीसूं उतरचा। तहां भक्तिकरयुक्त नमस्कार करि हाथ जोडि कहता भया—हे नाथ ! मैं शरीरादिक परद्रव्योंसूं निर्ममत्व भया, यह परमेश्वरी दीक्षा आप मुझे कृपाकर देवहु। तब मुनि कहते भए—अहो भव्य ! तैंने भली विचारी, तू उत्तम जन है, जिनदीक्षा लेहु। यह जगत् असार है, शरीर विनश्वर है, शीघ्र आत्मकल्याण करो। अविनश्वर पद लेवेकी परमकल्याणकारिणी बुद्धि तुम्हारे उपजी है, यह बुद्धि विवेकी जीवके ही उपजे है। ऐसी मुनिकी आज्ञा पाय मुनिकूं प्रणामकरि पद्मासनधर तिष्ठा, मुकुट कुण्डल हार आदि सर्व आभूषण डारे, जगत्सूं मनका राग निवारचा, स्त्रीरूप बंधन तुड़ाय, ममता मोह मिटाय, आपकूं स्नेहरूप पाशसे छुड़ाय, विष समान विषय सुख तजकरि वैराग्यरूप दीपकी शिखाकरि रागरूप अंधकार निवारकरि शरीर अर संसारकूं असार जान कमलोंकूं जीतै ऐसे सुकमार जे कर तिनकरि सिर के केश लौंच करता भया। समस्त परिग्रहसूं रहित होय मोक्षलक्ष्मीकूं उद्यमी भया, महाव्रत धर असंयम परिहरे। हनुमान की लार साढ़े सातसौ बड़े राजा विद्याधर शुद्ध चित्तविद्युद्गतिकूं आदि दे हनुमान के परम मित्र अपने पुत्रोंकूं राज्य देय अठाईस मूलगुण धार योगीन्द्र भए अर हनुमानकी रानी अर इन राजाओं की रानी प्रथमतो वियोगरूप अग्निकरि तप्तायमान विलाप करती भई, फिर वैराग्यकूं प्राप्त होय बंधुमतीनामा आर्यिकाके समीप जाय महा भक्तिकर संयुक्त नमस्कारकरि आर्यिकाके व्रत धारती भई। वे महाबुद्धिवंती शीलवंती भवभ्रमण के भयसूं आभूषण डार एक सफेद वस्त्र राखती भई, शील ही है आभूषण जिनके, तिनकूं राज्यविभूति जीर्ण तृण समान भासती भई अर हनुमान महाबुद्धिमान महातपोधन महापुरुष संसारसूं अत्यंत विरक्त पंच महाव्रत पंचसमिति, तीन गुप्ति धार, शैल कहिए पर्वत उस से भी अधिक, श्री शैल कहिए हनुमान राजा पवन के पुत्र चारित्रविषें अचल होते भए, तिनका यश निर्मल इन्द्रादिकदेव गावैं, बारंबार वन्दना करैं अर बड़े बड़े कीर्ति करैं। निर्मल है आचरण जिनका, ऐसा सर्वज्ञ वीतराग देवका भाख्या निर्मल धर्म आचरचा सो भवसागर के पार भए। वे हनुमान महामुनि पुरुषों विषैं सूर्य समान तेजस्वी जिनेंद्रदेवका धर्म आराधि ध्यान अग्निकरि अष्टकर्मकी समस्त प्रकृति ईंधन रूप तिनकूं भस्मकरि तुंगी गिरिके शिखरसूं सिद्ध भए। केवल ज्ञान दर्शन आदि अनन्त गुणमई सदा सिद्ध लोक विषैं रहेंगे।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिकाविषैं हनुमान का निर्वाण गमन वर्णन करनेवाला एकसौ तेरहवां पर्व पूर्ण भया ॥ ११३ ॥

एकसौ चौदहवां पर्व

(इन्द्र का अपनी सभा में धर्मोपदेश और श्री रामचन्द्रके भ्रातृ-स्नेह की चर्चा)

अथानंतर राम सिंहासन पर विराजे थे, लक्ष्मणके आठों पुत्रोंका अर हनुमानका मुनि होना मनुष्योंके मुखसूं सुनकरि हंसे अर कहते भए-इन्होंने मनुष्य भव के क्या सुख भोगे ? ये छोटी अवस्थामें ऐसे भोग तजकरि योग धारण करें हैं सो बड़ा आश्चर्य है, ये हठरूप ग्राहकर ग्रहे हैं, देखो ऐसे मनोहर काम भोग तजि विरक्त होय बैठे हैं, या भांति कही। यद्यपि श्रीराम सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हैं तथापि चारित्रमोहके वश कई एक दिन लोकों की न्याईं जगतविषें रहते भए, संसारके अल्प सुख तिन विषे रमते राम लक्ष्मण न्याय सहित राज्य करते भए। एक दिन महा ज्योतिका धारक सौधर्म इन्द्र परम ऋद्धिकर युक्त महाधैर्य अर गम्भीरताकरि मंडित नाना अलंकार धरे सामानिक जातिके देव जे गुरुजन तुल्य अर लोकपाल जातिके देव देशपाल तुल्य अर त्रायस्त्रिंशत् जातिके देव मन्त्री समान, तिनकर मंडित तथा अन्य सकल देव सहित इन्द्रासन विषें बैठे कैसे सोहैं जैसे सुमेरु पर्वत और पर्वतो क मध्य सोहै। महातेज पुंज अद्भुत रत्नों का सिंहासन उस पर सुखसूं विराजता ऐसा भासै जैसे सुमेरुके ऊपर जिनराज भासैं। चन्द्रमा अर सूर्यकी ज्योतिकूं जीतै ऐसे रत्नोंके आभूषण पहिरे, सुन्दर शरीर मनोहररूप नेत्रोंकूं आनन्दकारी, जैसी जलकी तरँग निर्मल तैसी प्रभाकर युक्त हार पहिरे ऐसा सोहै मानों सीतोदा नदीके प्रवाह करि युक्त निषधाचल पर्वत ही है, मुकुट कंठाभरण कुण्डल केयूर आदि उत्तम आभूषण पहिरे देवों करि मंडित जैसा नक्षत्रोंकरि चन्द्रमा सोहै तैसा सोहै है। अपने मनुष्य लोक विषें चन्द्रमा नक्षत्र ही भासैं तातैं चन्द्रमा नक्षत्रो का दृष्टांत दिया है। चन्द्रमा नक्षत्र जोतिषी देव हैं तिनसूं स्वर्गवासी देवोंको अति अधिक ज्योति है अर सब देवोंसूं इन्द्रकी ही अधिक है। अपने तेजकरि दसों दिशाविषें उद्योत करता सिंहासनविषे तिष्ठता जैसा जिनेश्वर भासै तैसा भासै। इन्द्रके इन्द्रासनका अर सभाका जो समस्त मनुष्य जिह्वाकरि सैंकड़ों वर्ष लग वर्णन करें तौभी न कर सकें। सभा विषें इन्द्रके निकट लोकपाल सब देवनि विषें मुख्य हैं, सुन्दर है चित्तजिनके, स्वर्गसूं चयकरि मनुष्य होय मुक्ति जावै हैं। सोलह-स्वर्गके बारह इंद्र हैं, एक एक इंद्रके चार चार लोकपाल एक भवधारी हैं। अर इन्द्र-निविषें सौधर्म सनत्कुमार महेंद्र लांतवेंद्र शतारेंद्र आरणेंद्र यह षट् एक भवधारी हैं अर शची इन्द्राणी, पंचम स्वर्गके लौकांतिक देव तथा सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्र मनुष्य होय मोक्ष जावैं हैं सो सौधर्म इन्द्र अपनी सभाविषें अपने समस्त देवनिकरि युक्त बैठे, लोकपालादिक अपने अपने स्थानक बैठे। सो इन्द्रशास्त्रका व्याख्यान करते भए, वहां प्रसंग पाय यह

कथन किया—अहो देवो ! तुम अपने भावरूप पुष्प निरन्तर महा भक्तिकरि अर्हंत देवकूं चढावो, अर्हंतदेव जगत् का नाथ है, समस्त दोषरूप वनके भस्म करिवेकूं दावानल समान है, जिसने संसारका कारण महा असुर अत्यन्त दुर्जय ज्ञानकरि मारा, वह असुर जीवों का बड़ा वैरी निर्विकल्प सुख का नाशक है। अर भगवान् वीतराग भव्य जीवोंकूं संसार समुद्र से तारिवे समर्थ हैं, संसार समुद्र कषायरूप उग्र तरंगकरि व्याकुल है, कामरूप ग्राहकरि चंचलतारूप, मोहरूप मगरकरि मृत्युरूप है, ऐसे भवसागरसूं भगवान् बिना कोई तारिवे समर्थ नाहीं। कैसे हैं भगवान् ? जिनके जन्म कल्याणकविषैं इन्द्रादिक देव सुमेरुगिरि ऊपर क्षीरसागरके जलकरि अभिषेक करावै हैं अर महा भक्तिकरि एकाग्र-चित्त होय परिवार सहित पूजा करैं है अर धर्म अर्थ काम अर मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ हैं तिन विषैं लगा है चित्त जिनका, जिनेंद्रदेव पृथ्वीरूप स्त्रीकूं तजकरि सिद्धरूप वनिताकूं वरते भए। कैसी है पृथ्वीरूप स्त्री ? विंध्याचल अर कैलाश हैं कुच जिसके अर समुद्र की तरंग हैं कटिमेखला जिसके। ये जीव अनाथ महा मोहरूप अन्धकार कर आच्छादित तिनकूं वे प्रभु स्वर्ग लोक से मनुष्य लोक विषैं जन्म धरि भवसागरसूं पार करते भए। अपने अद्भुत अनन्तवीर्य कर आठों कर्मरूप वैरीं क्षणमात्रविषैं खिपाए, जैसे सिंह मदोन्मत्त हस्तियोंकूं नसावै। भगवान् सर्वज्ञदेवकूं अनेक नामकरि भव्यजीव गावे हैं, जिनेंद्र भगवान् अर्हंत स्वयंभू शंभु स्वयंप्रभु सुगत शिवस्थान महादेव कालंजर हिरण्यगर्भ देवाधिदेव ईश्वर महेश्वर ब्रह्माविष्णु बुद्ध वीतराग विमल विपुल प्रबल धर्म चक्री प्रभु विभु परमेश्वर परमज्योति परमात्मा तीर्थंकर कृतकृत्य कृपालु संसारसूदन सुर ज्ञानचक्षु भवांतक इत्यादि अपार नाम योगीश्वर गावे हैं। अर इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्ती भक्तिकरि स्तुति करैं हैं, जो गोप्य हैं अर प्रगट हैं। जिनके नाम सकल अर्थ संयुक्त हैं, जिसके प्रसादकरि यह जीव कर्मसे छूटकरि परम धामकूं प्राप्त होय है। जैसा जीव का स्वभाव है तैसा वहां रहै है, जो स्मरण करै उसके पाप विलाय जाय। वह भगवान पुराणपुरुषोत्तम परम उत्कृष्ट आनंद की उत्पत्तिका कारण महा कल्याणका मूल देवनिके देव उसके तुम भक्त होवो, अपना कल्याण चाहो तो अपने हृदय कमलविषैं जिनराजकूं पधरावो। यह जीव अनादि निधन है, कर्मोंका प्रेरया भव वन विषै भटकै है, सर्व जन्म विषैं मनुष्य भव दुर्लभ है सो मनुष्य-जन्म पायकर जे भूलें हैं तिनकूं धिक्कार है। चतुर्गतिरूप है भ्रमण जिस विषैं ऐसा संसाररूप समुद्र उसमें बहुरि कब बोध पावोगे। जे अरहंत का ध्यान नाहीं करैं हैं, अहो धिक्कार उनकूं जे मनुष्यदेह पाकर जिनेंद्रकूं न जपैं हैं। जिनेंद्र कर्मरूप वैरी का नाशकरणहारा उसे भूल पापी नाना योनि विषैं भ्रमण करैं हैं। कभी मिथ्या तपकरि क्षुद्र देव होय हैं, बहुरि मरकरि स्थावरयोनिविषैं जाय महा कष्ट भोवैं हैं। यह

जीव कुमार्गके आश्रयकरि महा मोहके वश भए इंद्रों का इन्द्र जो जिनेंद्र उसे नाहीं ध्यावें हैं। देखो मनुष्य होय करि मूर्ख विषरूप मांसके लोभी मोहकी कर्मके योगकरि अहंकार ममकारकूं प्राप्त होय हैं, जिनदीक्षा नाहीं धरें हैं, मंदभागियोंके जिनदीक्षा दुर्लभ है, कभी कुतपकरि मिथ्यादृष्टि स्वर्ग में प्रान उपजें हैं सो हीन देव होय पश्चाताप करें हैं कि हम मध्यलोक रत्नद्वीप विषें मनुष्य भए थे सो अरहंतका मार्ग न जान्या, अपना कल्याण न किया, मिथ्या तपकरि कुदेव भए। हाय हाय ! धिक्कार उन पापियोंकूं जो कुशास्त्र की प्ररूपणाकरि मिथ्या उपदेश देय महा मानके भरे जीवोंकूं कुमार्गविषें डारै हैं। मूढोंकूं जिनधर्म दुर्लभ है, तातें भव भव विषें दुःखी होय हैं। अर नारकी तिर्यंच तो दुःखी ही हैं अर हीन देव भी दुःखी ही हैं। अर बड़ी ऋद्धि के धारी देव भी स्वर्गसूं चए हैं सो मरणका बड़ा दुःख है अर इष्ट वियोग का बड़ा दुःख है, बड़े देवों की भी यह दशा तो और क्षुद्रोंकी क्या बात ? जो मनुष्य देवविषें ज्ञान पाय आत्म कल्याण करें हैं सो धन्य हैं, इंद्र या भांति कहकर बहुरि कहता भया—ऐसा दिन कब होय जो मेरी स्वर्गलोकविषें स्थिति पूर्ण होय अर मैं मनुष्य देह पाय विषयरूप वैरियोंकूं जीत कर्मों का नाशकरि तप के प्रभावसूं मुक्ति पाऊं। तब एक देव कहता भया—यहाँ स्वर्गविषें तो अपनी यही बुद्धि होय है परन्तु मनुष्य देह पाय भूल जाय हैं। जो कदाचित् मेरे कहे की प्रतीति न करो तो पंचम स्वर्ग का ब्रह्मेंद्र नामा इन्द्र अब रामचन्द्र भया है सो यहां तो यों ही कहते थे अर अब वैराग्यका विचार ही नाहीं। तब शचीका पति सौधर्म इंद्र कहता भया--सब बंधनमें स्नेह का बड़ा बंधन है, जो हाथ पग कंठ आदि अंग २ बंधा होय सो तो छूटै परन्तु स्नेहरूप बंधनकरि बंध्या कैसे छूटै। स्नेह का बंध्या एक अंगुल न जाय सकै। रामचन्द्र के लक्ष्मणसूं अति अनुराग है, लक्ष्मणके देखे बिना तृप्ति नाहीं, अपने जीवसूं भी उसे अधिक जानै है, एक निमिषमात्र भी लक्ष्मणकूं न देखै तो रामका मन विकल होय जाय सो लक्ष्मणकूं तजकरि कैसें वैराग्यकूं प्राप्त होय ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है जो बुद्धिमान भी मूर्ख होय जाय है। देखो, सुनें हैं अपने सर्व भव जिसने ऐसा विवेकी राम भी आत्महित न करै। अहो देव हो ! जीवों के स्नेह का बड़ा बंधन है, या समान और नाहीं। तातें सुबुद्धियोंकूं स्नेह तजि संसार सागर तरिवेका यत्न करना चाहिए। या भांति इंद्र के मुखका उपदेश तत्वज्ञानरूप अर जिनवर के गुणों के अनुरागसूं अत्यंत पवित्र उसे सुनकर देव चित्त की विशुद्धताकूं पाय जन्म जरा मरण के भयसूं कंपायमान भए, मनुष्य होय मुक्ति पायवे की अभिलाषा करते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्यविरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिका विषें इन्द्र का देवनिकूं उपदेश वर्णन करने वाला एकसौ चौदहवां पर्व पूर्ण भया ॥ ११४ ॥

एक सौ पन्द्रहवां पर्व

(लक्ष्मण का मरण और लवण-अंकुश का दीक्षा लेना)

अथानंतर इंद्र सभा से उठे, तब सुर कहिए कल्पवासी देव अर असुर कहिए भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देव इंद्रकूं नमस्कार करि उत्तम भाव धरि अपने २ स्थानक गए। पहिले दूजे स्वर्ग लग भवनवासी व्यंतर ज्योतिषीदेव कल्पवासी देवोंकरि ले गए जाय हैं। सो सभा में से दो स्वर्गवासी देव रत्नचूल अर मृगचूल बलभद्र नारायणके स्नेह परखिवेकूं उद्यमी भए, मनविषैं यह धारण करी—वे दोनों भाई परस्पर प्रेमके भरे कहिए हैं, देखें उन दोनों की प्रीति। राम के लक्ष्मणसूं एता स्नेह है जाके देखे बिना न रहैं सो राम का मरण सुनि लक्ष्मण की क्या चेष्टा होय? लक्ष्मण शोककरि विह्वल भया क्या चेष्टा करै सो क्षण एक देखकरि आवेंगे। शोककरि लक्ष्मण का कैसा मुख हो जाय, कौनसूं कोप करै, क्या कहै, ऐसी धारणा करि दोनों दुराचारी देव अयोध्या आए। सो राम के महल विषैं विक्रियाकरि समस्त अंतःपुर की स्त्रीनिका रुदन शब्द कराय अर ऐसी विक्रिया करी कि द्वारपाल उमरावमन्त्री पुरोहित आदि नीचा मुखकरि लक्ष्मणपै आए अर राम का मरण कहते भए कि हे नाथ! राम परलोक पधारे। ऐसे वचन सुनकरि लक्ष्मण ने, मंद पवन करि चपल जो नील कमल ता समान सुन्दर हैं नेत्र जाके, सो हाय यह शब्द हू आधासा कह तत्काल ही प्राण तजे, सिंहासनपर ऊपर बैठ्या हुता सो वचनरूप वज्रपातका मारया जीवरहित होय गया, आंख की पलक ज्यो थी त्यों ही रह गई, जीव जाता रह्या, शरीर अचेतन रह गया, लक्ष्मणकूं भ्राताकी मिथ्या मृत्यु के वचनरूप अग्निकरि जरा देखि दोनों देव व्याकुल भए, लक्ष्मण के जिवायवेकूं असमर्थ। तब विचारी—याकी मृत्यु इसही विधि कही हुती, मन विषैं अति पछताए, विषाद अर आश्चर्य के भरे अपने स्थानक गए, शोकरूप अग्निकरि तप्तायमान है चित्त जिनका। लक्ष्मण की वह मनोहर मूर्ति मृतक भई, देव देखि न सके, तहाँ खड़े न रहे, निंद्य है उद्यम जिनका। गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे राजन्! बिना विचारे जे पापी कार्य करैं तिनकूं पश्चात्ताप ही होय। देवता गए अर लक्ष्मणकी स्त्री पतिकूं अचेतनरूप देखि प्रसन्न करनेकूं उद्यमी भई कहैं हैं—हे नाथ! किस अविवेकनी सौभाग्य के गर्वकरि गर्वितने आपका मान न किया सो उचित न करी। हे देव! आप प्रसन्न होहु, तिहारी अप्रसन्नता हमकूं दुःख का कारण है, ऐसा कहकरि वे परम प्रेमकी भरी लक्ष्मण के अंगसूं आलिंगनकरि पाँयनि पड़ीं। वे रानी चतुराईके वचन कहिवे विषैं तत्पर कोई तो बीण लेय बजावती भई, कोई मृदंग बजावती भई, कोई पति के गुण अत्यंत मधुर स्वरसूं गावती भई, पतिके प्रसन्न करिवेविषैं उद्यम है चित्त जिनका कोई एक पतिका मुख देखै है अर पतिके वचन सुनिवेकी है अभिलाषा जिनके। कोई एक

निर्मल स्नेहकी धरणहारी पतिके तनसूं लिपटकरि कुंडलकरि मंडित महासुन्दर कांतिके कपोलोंकूं स्पर्शती भई अर कोई एक मधुरभाषिणी पति के चरणकमल अपने सिरपर मेलती भई अर कोई मृगनयनी उन्मादकी भरी विभ्रमकरि कटाक्षरूप जे कमल पुष्प तिनका सेहरा रचती भई, जम्भाई लेती पति का वदन निरखि अनेक चेष्टा करती भई।

या भांति ये उत्तम स्त्रियें पति के प्रसन्न करिवेकूं अनेक यत्न करें हैं परंतु उनके यत्न अचेतन शरीर विषैं निरर्थक भए। वे समस्त रानी लक्ष्मण की स्त्री ऐसी कंपायमान हैं जैसें कमलों का वन पवनकरि कंपायमान होय। नाथकी यह दशा होते संते स्त्रियों का मन अति व्याकुल भया, संशयकूं प्राप्त भई कि क्षणमात्र में यह क्या भया, चितवन में न आवै अर कथन में न आवै, ऐसा खेदका कारण शोक उसे मनमें धरकरि वे मुग्धा मोह की मारी पसर गईं, इंद्रकी इंद्राणी समान है चेष्टा जिनकी ऐसी वे रानी तापकरि तप्तायमान सूक गईं, न जानिए तिनकी सुन्दरता कहाँ जाती रही। यह वृत्तांत भीतर के लोकों के मुखसूं सुनि श्री रामचन्द्र मंत्रियोंकरि मंडित महा संभ्रम के भरे भाईपै आए, भीतर राजलोक में गए। लक्ष्मण का मुख प्रभात के चंद्रमा समान मंदकांति देख्या, जैसा तत्काल का वृक्ष मूलसूं उखड पड़ा होय तैसा भाई को देख्या। मनमें चिंतते भए—बिना कारण भाई आज मोसूं रूस्या है, यह सदा आनंद रूप आज क्यों विषादरूप होय रहा है? स्नेहके भरे शीघ्र ही भाई के निकट जाय ताकूं उठाय उरसूं लगाय मस्तक चूमते भए। दाह का मार्या जो वृक्ष उस समान हरिकूं निरखि हलधर अंग से लिपट गया। यद्यपि जीतव्यता के चिन्ह रहित लक्ष्मणकूं देख्या तथापि स्नेहके भरे राम उसे मूवा न जानते भए। वक्र होय गई है ग्रीवा जिसकी, शीतल होय गया है अंग जिसका, जगत्की आगल ऐसी भुजा सो शिथिल होय गई, सांसोस्वास नाहीं, नेत्रों की पलक लगे न विघटै। लक्ष्मण की यह अवस्था देखि राम खेदखिन्न होयकरि पसेवसूं भर गए। यह दीनों के नाथ राम दीन होय गए, बारंबार मूर्च्छा खाय पड़े, आँसुवोंकरि भर गए हैं नेत्र जिनके, भाईके अंग निरखे, इसके एक नख की भी रेखा न आई। ऐसा यह महाबली कौन कारणकरि ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भया, यह विचार करते संते भया है कंपायमान शरीर जिनका, यद्यपि आप सर्व विद्याके निधान तथापि भाई के मोहकरि विद्या बिसर गई। मूर्च्छा का यत्न जानें ऐसे वैद्य बुलाए, मंत्र औषधिविषैं प्रवीण कलाके पारगामी ऐसे वैद्य आए। सो जीवता होय तो कछु यत्न करें, वे माथा धुन नीचे होय रहे। तब राम निराश होय मूर्च्छा खाय पड़े, जैसे वृक्ष की जड़ उखड़ जाय अर वृक्ष गिर पड़े तैसें आप पड़े, मोतियों के हार चंदन करि मिश्रित जल ताड़ के बीजनाओं की पवन करि रामकूं सचेत किया। तब महाविह्वल होय विलाप करते भए, शोक अर विषादकरि महापीड़ित राम आंसुवोंके प्रवाहकरि अपना मुख

आच्छादित करते भए। आंसुवों करि आच्छादित राम का मुख ऐसा भासै जैसा जलधाराकरि आच्छादित चंद्रमा भासै, अत्यंत विह्वल रामकूं देखि सर्व राजलोकरूप समुद्रसूं रुदनरूप ध्वनी होती भई, दुःखरूप सागर विषैं मग्न सकल स्त्रीजन अत्यर्थपणे रुदन करती भईं, तिनके शब्दकरि दसों दिशा पूर्ण भईं। कैसें विलाप करैं हैं—हाय नाथ ! पृथ्वीकूं आनंदके कारण, सर्व सुन्दर हमकूं वचनरूप दान देवहु। तुमवे बिना अर्थ क्यों मौन पकड़ी, हमारा अपराध क्या ? बिना अपराध हमकूं क्यों तजो हो, तुम तो ऐसे दयालु हो जो अनेक चूक पड़ै तो क्षमा करो।

अथानंतर इस प्रस्ताव विषैं लव अर अंकुश परम विषादकूं प्राप्त होय विचारते भए कि धिक्कार इस संसार असारकूं। अर इस शरीर-समान और क्षणभंगुर कौन जो एक निमिष मात्र में मरणकूं प्राप्त होय। जो वासुदेव विद्याधरोंकरि न जीत्या जाय सो भी कालके जालमें आय पडया, इसलिए यह विनश्वर शरीर यह विनश्वर राज्य संपदा उसकरि हमारे क्या सिद्धि ? यह विचार सीताके पुत्र फिर गर्भ में आयवेका है भय जिनकूं, पिताके चरणारविंदकूं नमस्कार कर महेंद्रोदयनामा उद्यानविषैं जाय अमृतेश्वर मुनिकी शरण लेय दोनों भाई महाभाग्य मुनि भए। जब इन दोनों भाइयोंने दीक्षा धरी, तब लोक अतिव्याकुल भए कि हमारा रक्षक कौन ? रामकूं भाई के मरणका बड़ा दुःख सो शोकरूप भंवर में पड़े, जिनकूं पुत्र निकसनेकी कुछ सुधि नाही। रामकूं राज्यसूं पुत्रोंसूं प्रियाओंसूं अपने प्राणसूं लक्ष्मण अति प्यारा, यह कर्मोंकी विचित्रता, जिसकरि ऐसे जीवोंकी ऐसी अशुभ अवस्था होय। ऐसा संसार का चरित्र देखि ज्ञानी जीव वैराग्यकूं प्राप्त होय हैं। जे उत्तम जन हैं तिनके कछु इक निमित्त मात्र बाह्य कारण देखि अंतरंग के विकारभाव दूर होय ज्ञानरूप सूर्य का उदय होय है, पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षयोपशम होय तब वैराग्य उपजै है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ ताकी भाषा वचनिका विषैं लक्ष्मण का मरण अर लवणांकुश का वैराग्य वर्णन करने वाला एकसौ पन्द्रहवां पर्व पूर्ण भया ॥११५॥

एकसौ सोलहवां पर्व

(लक्ष्मण की मृत्यु से दुःखी होकर श्रीराम का विलाप करना)

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहै हैं—हे भव्योत्तम ! लक्ष्मण के काल प्राप्त भए समस्त लोक व्याकुल भए। अर युग प्रधान जे राम सो अति व्याकुल होय सब बातोंसूं रहित भए, कछु सुध नाहीं। लक्ष्मणका शरीर स्वभावही करि महासुरूप कोमल सुगंध, मृतक भया तो जैसाका तैसा, सो श्रीराम लक्ष्मणकूं एक क्षण न तजैं, कबहूं उरसे लगाय लेंय, कभी पपोलैं, कभी चूमैं, कबहूं इसे लेकर आप बैठ जावैं,

कभी लेकर उठ चलैं, एकक्षण काहूका विश्वास न करैं, एक क्षण न तजैं, जैसे बालकके हाथ अमृत आवै अर वह गाढ़ा २ गहै तैसे राम महाप्रिय जो लक्ष्मण उसकूं गाढ़ा २ गहैं अर दीनोंकी नाईं विलाप करैं–हाय भाई ! यह तोहि कहा योग्य जो मुझे तजकरि तैंने अकेले भाजिवेकी बुद्धि करी । मैं तेरा विरह एकक्षण सहारिवे समर्थ नाहीं–यह बात तू कहा न जानै है, तू तो सब बातोंविषै प्रवीण है, अब मोहि दुःखके सागरविषैं डारकरि ऐसी चेष्टा करै है । हाय भ्रात ! यह क्या क्रूर उद्यम किया जो मेरे बिना जाने मेरे बिना पूछे कूचका नगारा बजाय दिया । हे वत्स ! हे बालक ! एक बार मुझे वचनरूप अमृत पिला, तू तो अति विनयवान हुता, बिना अपराध मोसूं क्यों कोप किया ? हे मनोहर ! अब तक कभी मोसूं ऐसा मान न किया, अब कछु और ही होय गया । कहु मैं क्या किया जो तू रूसा । तू सदा ऐसा विनय करता, मुझे दूरसूं आता देखि उठ खड़ा होय सन्मुख आवता, मोहि सिंहासन ऊपर बैठावता, आप भूमिमें बैठता । अब कहा दशा भई, मैं अपना सिर तेरे पांयनिमें दूं तौभी नहीं बोलै है, तेरे चरणकमल चंद्रकांत मणिसूं अधिक ज्योतिकूं धरे जे नखोंकरि शोभित देव विद्याधर सेवैं हैं ? हे देव ! अब शीघ्र ही उठो, मेरे पुत्र वनकूं गए सो दूर न गए हैं, तिनकूं हम तुरन्त ही उलटा लावैं अर तुम बिना यह तिहारी रानी आर्त्तध्यान की भरी कुरचीकी नाईं कलकलाट करैं हैं, तुम्हारे गुणरूप पाशसूं बंधी पृथ्वीमें लोटी फिरैं हैं । तिनके हार बिखर गए हैं अर शीशफूल चूड़ामणि कटिमेखला कर्णाभरण बिखरे फिरैं हैं, यह महा विलापकरि रुदन करैं हैं, अति आकुल हैं, इनकूं रुदनसूं क्यों न निवारो । अब मैं तुम बिना कहा करूं, कहां जाऊं, ऐसा स्थानक नाहीं जहां मोहि विश्राम उपजै अर यह तिहारा चक्र तुमसूं अनुरक्त इसे तजना तुमकूं कहा उचित । अर तिहारे वियोग में मोहि अकेला जानि यह शोकरूप शत्रु दबावैं हैं, अब मैं हीनपुण्यी कहा करूं ? मोहि अग्नि ऐसे न दहै अर ऐसा विष कंठकूं न सोखै जैसा तिहारा विरह सोखै है । अहो लक्ष्मीधर ! क्रोध तजि, घनी बेर भई । अर तुम ऐसे धर्मात्मा त्रिकाल सामायिकके करणहारे जिनराज की पूजा में निपुण सो सामायिक का समय टल पूजा का समय टल्या, अब मुनिनिके आहार देयवे की बेला है सो उठो । तुम सदा साधुनिके सेवक ऐसा प्रमाद क्यों करो हो ? अब यह सूर्य भी पश्चिम दिशाकूं आया, कमल सरोवर में मुद्रित होय गए, तैसे तिहारे दर्शन बिना लोकों के मन मुद्रित होय गए । या प्रकार विलाप करते करते दिन व्यतीत भया, निशा भई, तब राम सुन्दर सेज बिछाय भाईकूं भुजाओं में लेय सूते भए, किसी का विश्वास नाहीं, राम ने सब उद्यम तजा, एक लक्ष्मण में मन, रात्रिकूं कानों विषें कहैं हैं–हे देव ! अब तो मैं अकेला हूं, तिहारे मन की बात मोहि कहो, तुम कौन कारण ऐसी अवस्थाकूं प्राप्त भए

हो, तिहारा वदन चंद्रमाहूतैं अतिमनोहर अब कांति-रहित क्यों भासै है। अर तिहारे नेत्र मंद पवनकरि चंचल जो नील कमल तिस समान अब और रूप क्यों भासैं हैं। अहो तुमकूं कहा चाहिए सो ल्याऊं ? हे लक्ष्मण ! ऐसी चेष्टा करनी तुमकूं सोहै नाहीं, जो मन विषैं होय सो मुखकरि आज्ञा करो अथवा सीता तुमकूं याद आई होय तो वह पतिव्रता अपने दुःख विषैं सहाय थी सो तो अब परलोक गई, तुमकूं खेद करना नाहीं। हे धीर ! विषाद तजो, विद्याधर अपने शत्रु हैं सो छिद्र देख आए, अब अयोध्या लुटेगी, तातैं यत्न करना होय सो करो। अर हे मनोहर ! तुम काहूसूं क्रोध हू करते तब ही ऐसे अप्रसन्न देखे नाहीं, अब ऐसे अप्रसन्न क्यों भासो हो। हे वत्स ! अब ये चेष्टा तजो, प्रसन्न होवो, मैं तिहारे पांयनि परूं हूं, नमस्कार करूं हूं, तुम तो महा विनयवंत हो, सकल पृथ्वीविषैं यह बात प्रसिद्ध है कि लक्ष्मण रामका आज्ञाकारी है, सदा सन्मुख है, कभी पराङ्मुख नाहीं, तुम अतुल प्रकाश जगत्के दीपक हो, मत कभी ऐसा हो जो कालरूप वायुकरि बुझ जावो। हे राजनिके राजन् ! तुमने या लोककूं अति आनन्दरूप किया, तिहारे राज्यमें अचैन किसी ने न पाया। भरतक्षेत्रके तुम नाथ हो, अब लोकनिकूं अनाथकरि गमन करना उचित नाहीं, तुमने चक्रकरि शत्रुनिके सकल चक्र जीते, अब कालचक्र का पराभव कैसे सहो हो ? तिहारा यह सुन्दर शरीर राज्यलक्ष्मीकरि जैसा सोहता था वैसा ही मूर्च्छित भया सोहै है। हे राजेन्द्र ! अब रात्रि भी पूर्ण भई, सन्ध्या फूली, सूर्य उदय होय गया, अब तुम निद्रा तजो, तुम जैसे ज्ञाता श्रीमुनिसुव्रतनाथके भक्त, प्रभात का समय क्यों चूको हो ? जो भगवान् वीतरागदेव मोहरूप रात्रिकूं हर लोकालोकका प्रगट करणहारा केवल ज्ञानरूप प्रताप प्रगट करते भए, वे त्रैलोक्य के सूर्य भव्य जीवरूप कमलोंकूं प्रगट करनहारे तिनका शरण क्यों न सेवो। अर यद्यपि प्रभात समय भया परन्तु मुझे अंधकार ही भासै है क्योंकि मैं तिहारा मुख प्रसन्न नाहीं देखूं हूं। तातैं हे विचक्षण ! अब निद्रा तजो, जिनपूजाकरि सभाविषैं तिष्ठो, सब सामंत तिहारे दर्शनकूं खड़े हैं। बड़ा आश्चर्य है कि सरोवरविषै तो कमल फूले पर तिहारा वदन-कमल मैं फूला नाहीं देखूं हूं, ऐसी विपरीत चेष्टा तुमने अबतक कभी भी नाहीं करी, उठो राज्यकार्य विषैं चित्त लगाओ। हे भ्रात ! तिहारी दीर्घ निद्रासूं जिनमंदिर की सेवाविषैं कमी पड़ै है, सम्पूर्ण नगर विषैं मंगल शब्द मिट गए, गीत नृत्य वादित्रादि बन्द हो गए हैं। औरों की कहा बात ? जे महा विरक्त मुनिराज हैं तिनकूं भी तिहारी यह दशा सुनि उद्वेग उपजै है। तुम जिनधर्म के धारी हो, सब ही साधर्मी जन तिहारी शुभ दशा चाहैं हैं। बीण बांसुरी मृदंगादिकके शब्दरहित यह नगरी तिहारे वियोगकरि व्याकुल भई नाहीं सोहै है, कोई अपने पूर्व भव में महाअशुभ कर्म उपार्जे तिनके उदयकरि तुम सारिखे भाईकी अप्र-

सम्यक्त्वासूं महाकष्टकूं प्राप्त भया हूं। हे मनुष्यों के सूर्य ! जैसे युद्ध विषैं शक्तिके घात-करि अचेत होय गए थे अर आनंदसूं उठे, मेरा दुःख दूर किया तैसे ही उठकरि मेरा खेद निवारो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं रामदेवका विलाप वर्णन करने वाला एकसौ सोलहवाँ पर्व पूर्ण भया ॥ ११६॥

एकसौ सतरहवां पर्व

(शोक-सन्तप्त रामको विभीषणका संबोधन)

अथानंतर यह वृत्तांत सुन विभीषण अपने पुत्रनिसहित अर विराधित सकल परिवार सहित अर सुग्रीव आदि विद्याधरनिके अधिपति अपनी स्त्रियोंसहित शीघ्र अयोध्यापुरी आए। आंसुनिके भरे हैं नेत्र जिनके, हाथ जोडि शीस नवाय रामके समीप आए, महा शोकरूप है चित्त जिनके, अति विषादके भरे रामकूं प्रणामकरि भूमिविषैं बैठे, क्षणएक तिष्ठकरि मंद मंद वाणी करि विनती करते भए–हे देव ! यद्यपि यह शोक दुर्निवार है तथापि आप जिनवाणी के ज्ञाता हो, सकल संसारका स्वरूप जानो हो, तातैं आप शोक तजिवे योग्य हो, ऐसा कहि सबही चुप होय रहे। बहुरि विभीषण सब बात विषैं महा विलक्षण सो कहता भया–हे महाराज ! यह अनादि कालकी रीति है जो जन्मा सो मूवा, सब संसार विषैं यही रीति है, इनहीकी नाहीं भई, जन्म का साथी मरण है, मृत्यु अवश्य है, काहूसूं न टरी अर न काहूसूं टरै। या संसार पिंजरे विषैं पड़े ये जीवरूप पक्षी सब ही दुःखी हैं, काल के वश हैं, मृत्यु का उपाय नाहीं अर सबके उपाय हैं। यह देह निःसंदेह विनाशीक है तातैं शोक करना वृथा है। जे प्रवीण पुरुष हैं वे आत्मकल्याणका उपाय करैं हैं, रुदन किएसूं मरा न जीवै अर न वचनालाप करै, तातैं हे नाथ ! शोक न करो। यह मनुष्यका शरीर तो स्त्री पुरुषनिके संयोगसूं उपजै है सो पानी के बुदबुदावत् विलाय जाय, इसका आश्चर्य कहा, अहमिंद्र इन्द्र लोकपालादि देव आयु के क्षय भए स्वर्गसूं चए हैं, जिनकी सागरोंकी आयु अर किसीके मारे न मरैं, वे भी काल पाय मरैं। मनुष्यनिकी कहा बात ! यह तो गर्भके खेदकरि पीडित अर रोगनिकरि पूर्ण डाभकी अणी के ऊपर जो ओस की बूंद आय पड़ै उस समान पड़नेकूं सन्मुख है, महा मलिन हाडोंके पिंजरे ऐसे शरीरके रहिवेकी कहा आशा ? यह प्राणी अपने सुजनोंका सोच करै सो आप क्या अजर अमर है ? आप ही कालकी दाढमें बैठे हैं, उसका सोच क्यों न करैं? जो इनहीकी मृत्यु आई होय अर और अमर हैं तो रुदन करना। जब सबकी यही दशा है तो रुदन काहेका। जेते देहधारी हैं तेते सब कालके आधीन हैं, सिद्ध भगवान् के देह

नाहीं तातें मरण नाहीं। यह देह जिस दिन उपज्या उसही दिनसूं काल इसके लेयबेके उद्यम में है। यह सब संसारी जीवों की रीति है, तातें संतोष अंगीकार करो, इष्ट के वियोगसूं शोक करै सो वृथा है, शोककरि मरै तो भी वह वस्तु पाछे न आवै तातें शोक क्यों करिये। देखो काल तो वज्रदंड लिए सिर पर खड़ा है अर संसारी जीव निर्भय भए तिष्ठें हैं। जैसे सिंह तो सिरपर खड़्या है अर हिरण हरा तृण चरै है। त्रिलोकयनाथ परमेष्ठी अर सिद्ध परमेश्वर तिन सिवाय कोई तीन लोक विषें मृत्युसूं बच्या सुण्या नाहीं, वे ही अमर हैं अर सब जन्म मरण करैं हैं। यह संसार विन्ध्याचल के वन समान कालरूप दावानल समान बलै है सो तुम क्या न देखो हो ? यह जीव संसार वन में भ्रमणकरि अति कष्टसूं मनुष्य देह पावै है सो वृथा खोवै है। काम भोगके अभिलाषी होय माते हाथी की न्याईं बंधन विषें पड़ें हैं, नरक निगोदके दुःख भोगवें हैं। कभी एक व्यवहार धर्मकरि स्वर्गविषें देव भी होय हैं, आयुके अन्त में वहांसूं पड़ें हैं। जैसे नदी के ढाहेका वृक्ष कभी उखड़ै ही तैसें चारों गति के शरीर मृत्युरूप नदीके ढाहेके वृक्ष हैं, इनके उखडिवेका कहा आश्चर्य है, इन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्ती आदि अनंत नाशकूं प्राप्त भए। जैसे मेघकरि दावानल बुझै तैसे शान्ति रूप मेघकरि कालरूप दावानल बुझै, और उपाय नाहीं। पाताल विषें, भूतलविषें अर स्वर्गविषें ऐसा कोई स्थान नाहीं जहां कालसूं बचै। अर छठे कालके अन्त इस भरतक्षेत्र में प्रलय होयगी, पहाड़ विलय होजांयगे तो मनुष्यनिकी कहा बात ? जे भगवान् तीर्थंकर देव वज्रवृषभनाराचसंहनन के धारक, जिनके समचतुरस्रसंस्थानक, सुर असुर नरों करि पूज्य, जो किसी कर जीते न जांय तिनका भी शरीर अनित्य, वे भी देह तजि सिद्धलोक विषे निज भावरूप रहैं तो औरों की देह कैसे नित्य होय ? सुर नर नारक तिर्यंचों का शरीर केले के गर्भ समान असार है। जीव तो देह का यत्न करै है अर काल प्राण हरै है; जैसें बिलके भीतरसूं गरुड सर्पकूं ले जाय तैसें देहके भीतरसूं जीवकूं काल ले जाय है। यह प्राणी अनेक मूवोंकूं रोवै है—हाय भाई ! हाय पुत्र ! हाय मित्र ! या भांति शोक करै है अर कालरूप सर्प सबोंकूं निगलै है, जैसे सर्प मींडककूं निगलै। यह मूढ बुद्धि झूठे विकल्प करै है—यह मैं किया, यह मैं करूं हूं, यह करूंगा सो ऐसे विकल्प करता कालके मुखविषें जाय है, जैसें टूटा जहाज समुद्र के तले जाय। परलोककूं गया जो सज्जन उसके लार कोई जाय सकै तो इष्ट का वियोग कभी न होय। जो शरीरादिक पर वस्तुसूं स्नेह करैं हैं सो क्लेशरूप अग्निविषें प्रवेश करैं हैं अर इन जीवों के इस संसार विषें एते स्वजनों के समूह भए जिसकी संख्या नाहीं, जे समुद्रकी रेणुकाके कण तिनसूं भी अपार हैं अर निश्चयकरि देखिए तो या जीव के न कोई शत्रु है न कोई मित्र है। शत्रु तो रागादिक हैं अर मित्र ज्ञानादिक हैं। जिनकूं अनेक प्रकारकरि लडाइये

अर बिन जानिए सो भी वैरकूं प्राप्त भया ताहीकूं महा रोषकरि हणै। जिसके स्तनोंका दुग्ध पीया, जिसकरि शरीर वृद्ध भया ऐसी माताकूं भी हनै है। धिक्कार है इस संसारकी चेष्टाकूं जो पहिले स्वामी था अर बार बार नमस्कार करावता सो भी दास होय जाय है तब पावोंकी लातोंसूं मारिये है। हे प्रभो! मोहकी शक्ति देखो-इसके वश भया यह जीव आपकूं नाहीं जानै है, परकूं आप मानै है, जैसे कोई हाथकरि कारे नागकूं गहै तैसे कनक कामिनीकूं गहै है। इस लोकाकाशविषैं ऐसा तिलमात्र क्षेत्र नाहीं जहां जीवने जन्म मरण न किए। अर नरकविषैं इसकूं प्रज्वलित ताम्बा प्याया अर एती बार यह नरककूं गया जो उसका प्रज्वलित ताम्रपात्र जोडिए तो समुद्रके जलसूं अधिक होय। अर सूकर कूकर गर्दभ होय इस जीवने एता मलका आहार किया जो अनंत जन्मका जोडिये तो हजारों विंध्याचल को राशिसूं अधिक होय अर या अज्ञानी जीवने क्रोधके वशसूं एते पराए सिर छेदे अर उन्होंने इसके छेदे जो एकत्र करिये तो ज्योतिषचक्रकूं उलंघ ये सिर अधिक होवैं। यह जीव नरक प्राप्त भया वहां अधिक दुःख पाया, निगोद गया वहां अनंत काल जन्म मरण किए। यह कथा सुनकरि कौन मित्रसूं मोह मानै, एक निमिषमात्र विषय का सुख उसके अर्थ कौन अपार दुःख सहै। यह जीव मोहरूप पिशाचके वश पड्या संसार वन विषैं भटकै है। हे श्रेणिक! विभीषण रामसूं कहैं हैं—हे प्रभो! यह लक्ष्मणका मृतक शरीर तजिवे योग्य है अर शोक करना योग्य नाहीं, यह कलेवर उरसूं लगाए रहना योग्य नाहीं, या भांति विद्याधरनिका सूर्य जो विभीषण उसने श्रीरामसूं विनती करी। अर राम महाविवेकी जिनसूं और प्रतिबुद्ध होंय तथापि मोहके योगसूं लक्ष्मणकी मूर्तिकूं न तजी, जैसैं विनयवान् गुरु की आज्ञा न तजै।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रन्थ, ताकी भाषावचनिका विषैं लक्ष्मण का वियोग, रामका विलाप अर विभीषणका संसार स्वरूप वर्णन करने वाला एकसौ सतरहवां पर्व पूर्ण भया ॥११७॥

एकसौ अठारहवां पर्व

(देवों द्वारा संबोधने पर राम का शोक रहित होना और लक्ष्मण के देह का दाह संस्कार करना)

अथानंतर सुग्रीवादिक सब राजा रामचंद्रसूं विनती करते भए कि अब वासुदेवकी दग्ध क्रिया करो। तब श्रीरामकूं यह वचन अतिअनिष्ट लाया अर क्रोधकरि कहते भए-तुम अपने माता पिता पुत्र पौत्र सबों की दग्धक्रिया करो, मेरे भाई की दग्धक्रिया क्यों होय? जो तुम्हारा पापियों का मित्र बंधु कुटुम्ब सो सब नाशकूं प्राप्त होय, मेरा भाई क्यों मरै? उठो लक्ष्मण इन दुष्टनि के संयोगतैं और ठौर चलैं, वहां इन पापीनि के कटुक वचन न सुनिये। ऐसा कहि भाईकूं उरसूं लगाय कांधे धरि उठ चले। विभीषण सुग्रीवादिक अनेक राजा इनकी लार पीछे पीछे चले आवैं। राम काहू का विश्वास न करैं, भाईकूं कांधे धरे फिरैं। जैसे

बालक के हाथ विषफल आया अर हितू छुड़ाया चाहैं अर वह न छोड़े तैसें राम लक्ष्मणके शरीरकूं न छोडैं । आंसुवनि करि भीज रहे हैं नेत्र जिनके, भाईसूं कहते भए—हे भ्राता! अब उठो, बहुत देर भई, ऐसे कहा सोचो हो, अब स्नान की बेला भई, स्नान के सिंहासन विराजो । ऐसा कहि मृतक शरीरकूं स्नान के सिंहासन पर बैठाया अर मोह का भरया राम मणि स्वर्ण के कलशोंसूं स्नान करावता भया अर मुकुट आदि सर्व आभूषण पहिराए अर भोजन की तैयारी कराई, सेवकोंकूं कही—नाना प्रकार रत्न स्वर्णके भाजनमें नाना प्रकार का भोजन ल्यावो जाकरि भाई का शरीर पुष्ट होय । सुन्दर भात दाल फुलका नाना प्रकारके व्यंजन नाना प्रकारके रस शीघ्रही ल्यावो । यह आज्ञा पाय सेवक सब सामग्री ले आए, नाथके सब आज्ञाकारी । तब आप रघुनाथ लक्ष्मणके मुखमें ग्रास देवें सो न ग्रसै, जैसें अभव्य जिनराजका उपदेश न ग्रहै । तब आप कहते भए—जो तैंने मोसूं कोप किया तो आहारसूं कहा कोप ? आहार तो करो, मोसूं मति बोलो । जैसें जिनवाणी अमृतरूप है परन्तु दीर्घ संसारीकूं न रुचै तैसे अमृतमई आहार लक्ष्मणके मृतक शरीरकूं न रुच्या । बहुरि रामचन्द्र कहै हैं—हे लक्ष्मीधर ! यह नाना प्रकार की दुग्धादि पीवने योग्य वस्तु सो पीवो, ऐसा कहकरि भाईकूं दुग्धादि प्याया चाहैं सो कहा पीवै । यह कथा गौतमस्वामी श्रेणिकसूं कहै हैं—यह विवेकी राम स्नेहकरि जैसे जीवतेकी सेवा करिये तैसे मृतक भाई की करता भया । अर नाना प्रकार के मनोहर गीत बीण बांसुरी आदि नानाप्रकारके नाद करता भया सो मृतककूं कहा रुचै ? मानो मरा हुवा लक्ष्मण रामका संग न तजता भया । भाईकूं चंदनसूं चर्चा, भुजाओंसूं उठाय लेय, उरसूं लगायले, सिर चूंबै, मुख चूंबै, हाथ चूंबै अर कहै है—हे लक्ष्मण ! यह कहा भया—तू तो ऐसा कभी न सोवता, अब तो विशेष सोवने लगा—अब निद्रा तजो । या भांति स्नेहरूप ग्रह का ग्रहा बलदेव नानाप्रकारकी चेष्टा करै । यह वृत्तांत सब पृथ्वीमें प्रगट भया कि लक्ष्मण मूवा, लव अंकुश मुनि भए अर राम मोह का मारया मूढ होय रहा है । तब बैरी क्षोभकूं प्राप्त भए जैसें वर्षाऋतुका समय पाय मेघ गाजै । शंबूकका भाई सुन्दर ताका नंदन, विरोधरूप है चित्त जिसका सो इन्द्रजीतके पुत्र वज्रमाली पै आया अर कहा—मेरा बाबा अर दादा दोनों लक्ष्मण ने मारे सो मेरा रघुवंशिनिसूं बैर है अर हमारा पाताल लंका का राज्य खोस लिया अर विराधितकूं दिया अर वानर वंशियों का शिरोमणि सुग्रीव स्वामी द्रोही होय रामसूं मिला सो राम समुद्र उलंघ लंका आए, राक्षसद्वीप उजाडया, रावकूं सीताका अति दुःख सो लंका लेयवे का अभिलाषी भया । अर सिंहवाहिनी अर गरुडवाहिनी दोय महाविद्या राम लक्ष्मणकूं प्राप्त भई तिन करि इन्द्रजीत कुंभकर्ण बंदी में किए । अर लक्ष्मण के चक्र हाथ आया उसकरि रावणकूं हत्या । अब कालचक्रकरि लक्ष्मण मूवा सो आयुर-

वंशियों का पक्ष टूटा, वानरवंशी लक्ष्मण की भुजाओं के आश्रयसूं उन्मत्त होय रहे थे, अब क्या करेंगे, वे निरपक्ष भए। अर रामकूं ग्यारह पक्ष हो चुके, बारहवां पक्ष लगा है सो गहला होय रहा है, भाई के मृतक शरीरकूं लिए फिरै है, ऐसा मोह कौनकूं होय ? यद्यपि राम समान योधा पृथ्वी में और नाहीं, वह हल मूसल का धरणहारा अद्वितीय मल्ल है तथापि भाई के शोकरूप कीच में फंस्या निकसवे समर्थ नाहीं। सो अब रामसूं बैर भाव लेने का दाव है, जिसके भाई ने हमारे वंश के बहुत मारे। शंबूकके भाईके पुत्र ने जब इन्द्रजीत के बेटेकूं यह कह्या सो क्रोधकरि प्रज्वलित भया, मंत्रियोंकूं आज्ञा देय रण-भेरी दिवाय सेना भेलीकर शंबूकके भाईके पुत्रसहित अयोध्या की ओर चाल्या। सेनारूप समुद्रकूं लिए प्रथम तो सुग्रीवपर कोप किया कि सुग्रीवकूं मार अथवा पकड़ उसके देश खोसलें, बहुरि रामसूं लड़ें, यह विचार इन्द्रजीतके पुत्र वज्रमाली ने किया, सुन्दरके पुत्र सहित चढ्या। तब ये समाचार सुनकरि सब विद्याधर जे रामके सेवक थे वे रामचन्द्रके निकट अयोध्यामें आय भेले भए, जैसी भीड़ अयोध्यामें लव अंकुशके आयवेके दिन भई थी तैसी भई। वैरियों की सेना अयोध्याके समीप आई सुनकरि रामचंद्र लक्ष्मणकूं कांधे लिए ही धनुष बाण हाथविषैं सम्हारे विद्याधरनिकूं संग लेय आप बाहिर निकसे। उस समय कृतांतवक्र का जीव अर जटायु पक्षीका जीव चौथे स्वर्ग देव भए थे तिनके आसन कंपायमान भए। कृतांतवक्रका जीव स्वामी अर जटायु पक्षीका जीव सेवक सो कृतांतवक्र का जीव जटायु-के जीवसूं कहता भया—हे मित्र ! आज तुम क्रोधरूप क्यों भए हो ? तब वह कहता भया-जब मैं गृद्ध पक्षी था तो रामने मुझे प्यारे पुत्रकी न्याईं पाल्या अर जिनधर्म का उपदेश दिया, मरण समय णमोकार मंत्र दिया, उसकरि मैं देव भया। अब वह तो भाईके शोककरि तप्तायमान है अर शत्रुकी सेना उस पर आई है। तब कृतांतवक्र का जीव जो देव था उसने अवधि जोड़करि कही—हे मित्र ! मेरा वह स्वामी था, मैं उसका सेनापति था, मुझे बहुत लड़ाया, भ्रात अर पुत्रों से भी अधिक गिण्या। मेरे उनके वचन है कि जब तुमकूं खेद उपजेगा तब तिहारे पास मैं आऊंगा, सो ऐसा परस्पर कहकरि वे दोनों देव चौथे स्वर्गके वासी सुन्दर आभूषण पहिर, मनोहर हैं केश जिनके, सो अयोध्या की ओर आए, दोनों विचक्षण परस्पर बतराए। कृतांतवक्रके जीवने जटायु के जीवसे कहा—तुमतो शत्रुओं की सेनाकी ओर जाओ, उनकी बुद्धि हरो अर मैं रघुनाथ के समीप जाऊं हूं। तब जटायुका जीव शत्रुओंकी ओर गया, कामदेवका रूपकरि उनको मोहित किया अर उनको ऐसी माया दिखाई जो अयोध्या के आगे अर पीछे दुर्गम पहाड़ पड़े हैं अर अयोध्या अपार है, यह अयोध्या काहूसूं जीती न जाय। यह कौशल पुरी सुभटोंकरि भरी है, कोट आकाशलों लग रहे हैं

अर नगरके बाहिर भीतर देव विद्याधर भरे हैं, हमने न जानी जो यह नगरी महा विषम है, धरतीविषैं देखिए अर आकाशमें देखिए तो देव विद्याधर भर रहे हैं। अब कौन प्रकार हमारे प्राण बचें, कैसे जीवते घर जावें, जहां श्रीरामदेव विराजैं सो नगरी हमसूं कैसे लई जाय, ऐसी विक्रियाशक्ति विद्याधरनि विषें कहां? हम बिना विचारे ये काम किया। जो पटबीजना सूर्यसूं वैर विचारै तो क्या कर सकै, अब जो भागो तो कौन राह होयकरि भागो, मार्ग नाहीं। या भांति परस्पर वार्ता करि कांपवे लगे, समस्त शत्रुओंकी सेना विह्वल भई। तब जटायुके जीवने देव विक्रियाकी क्रीडा कर उनकूं दक्षिण की ओर भागवे का मार्ग दिया, वे सब प्राणरहित होय कांपते भागे जैसें सिचान आगे परें वे भागैं। आगे जायकरि इन्द्रजीतके पुत्रने विचारी जो हम विभीषणकूं कहा उत्तर देंगे अर लोकोंकूं क्या मुख दिखावेंगे, ऐसा विचार लज्जावान होय सुन्दर के पुत्र चारों रत्नसहित अर विद्याधरनि सहित इन्द्रजीतके पुत्र वज्रमाली रतिवेग नामा मुनिके निकट मुनि भए। तब यह जटायुका जीव देव उन साधुओं का दर्शनकरि अपना सकल वृत्तांत कहि क्षमा कराय अयोध्या आया जहां राम भाई के शोककरि बालककीसी चेष्टा कर रहे थे, तिनके संबोधवेके अर्थ वे दोनों देव चेष्टा करते भए। कृतांतवक्रका जीव तो सूके वृक्षकूं सींचने लगा अर जटायुका जीव मृतक युगल बैल तिनकरि हल बाहवेका उद्यमी भया अर शिला ऊपर बीज बोने लगा सो ये भी दृष्टांत रामके मनमें न आया। बहुरि कृतांतवक्रका जीव रामके आगे जलकूं घृतके अर्थ बिलोवता भया अर जटायुका जीव बालू रेतकूं घानीमें तेलके निमित्त पेलता भया सो इन दृष्टांतनिकरि रामकूं प्रतिबोध न भया। और भी अनेक कार्य इसी भांति देवों ने किए तब राम ने पूछी—तुम बड़े मूढ हो, सूका वृक्ष सींचा सो कहा अर मूवे बैलोंसूं हल बाहना करो सो कहा अर शिला ऊपर बीज बोवना सो कहा अर जल का बिलोवना अर बालू पेलना इत्यादि कार्य तुम किए सो कौन अर्थ? तब वे दोनों कहते भए-तुम भाईके मृतक शरीरकूं वृथा लिए फिरो हो, उस विषैं क्या? यह वचन सुनिकरि लक्ष्मणकूं गाढा उरसूं लगाय पृथ्वी का पति जो राम सो क्रोधकरि उनसूं कहता भया—हे कुबुद्धि हो! मेरा भाई पुरुषोत्तम उसे अमंगलके शब्द क्यों कहो हो, ऐसे शब्द बोलते तुमकूं दोष उपजेगा। या भांति कृतांतवक्र के जीव के और रामके विवाद होय है उसही समय जटायुका जीव मूवे मनुष्यका कलेवर लेय रामके आगे आया। उसे देख राम बोले-मरेका कलेवर काहेकूं कांधे लिए फिरो हो? तब उसने कही-तुम प्रवीण होय प्राणरहित लक्ष्मणके शरीरकूं क्यों लिए फिरो हो। पराया अणुमात्र भी दोष देखो हो अर अपना मेरु प्रमाण दोष नाहीं देखो हो, सारिखेकी सारिखेसूं प्रीति होय है सो तुमकूं मूढ देखि हमारे अधिक प्रीति उपजी है, हम वृथा कार्यके करनहारे

तिन विषें तुम मुख्य हो, हम उन्मत्ता ताकी ध्वजा लिए फिरैं हैं सो तुमकूं अति उन्मत्त देखि तुम्हारे निकट आए हैं ।

या भांति उन दोनों मित्रों के वचन सुनि राम मोह रहित भए, शास्त्रनिके वचन चितार सचेत भए । जैसे सूर्य मेघ पटलसूं निकसि अपनी किरणकरि देदीप्यमान भासै तैसे भरतक्षेत्रका पति राम सोई भया भानु सो मोहरूप मेघपटलसूं निकसि ज्ञानरूपी किरणनिकरि भासता भया । जैसे शरदऋतु में कारी घटासूं रहित आकाश निर्मल सोहै तैसें राम का मन शोकरूप कर्दमसूं रहित निर्मल भासता भया । राम समस्त शास्त्रनि में प्रवीण अमृत समान जिन वचन चितार खेदरहित भए, धीरताके अवलंबनकरि ऐसे सोहैं जैसा भगवान का जन्माभिषेक विषें सुमेरु सोहै । जैसें महा दाहकी शीतल पवनके स्पर्शसूं रहित कमलोंका वन सोहै अर फूलै, तैसें शोकरूप कलुषतारहित रामका चित्त विकसता भया । जैसे कोई रात्रिके अन्धकारमें मार्ग भूल गया होय अर सूर्य के उदय भए मार्ग पाय प्रसन्न होय, महाक्षुधाकरि पीड़ित मनवांछित भोजन खाय अत्यंत आनन्दकूं प्राप्त होय अर जैसे कोई समुद्र के तिरवे का अभिलाषी जहाजकूं पाय हर्षरूप होय अर वन में मार्ग भूल नगरका मार्ग पाय खुशी होय अर तृषाकरि पीड़ित महा सरोवरकूं पाय सुखी होय, रोगकरि पीड़ित रोग-हरण औषधिकूं पाय अत्यन्त आनंदकूं पावै अर अपने देश गया चाहै अर साथी देख प्रसन्न होय अर बन्दीगृहसूं छूट्या चाहै अर बेडी कटे जैसें हर्षित होय, तैसे रामचन्द्र प्रतिबोधकूं पाय प्रसन्न भए । प्रफुल्लित भया है हृदय कमल जिनका, परम कांतिकूं धारते आपकूं संसार अंधकूपसूं निकस्या मानते भए । मन मैं जानी—मैं नया जन्म पाया । श्रीराम विचारैं हैं—अहो डाभ की अणी पर पड़ी ओस की बूंद ता समान चंचल मनुष्यका जीतव्य एक क्षण मात्र में नाशकूं प्राप्त होय है । चतुर्गति संसार में भ्रमण करते मैंने अत्यन्त कष्टसूं मनुष्य शरीरकूं पाया सो वृथा खोया । कौनके भाई, कौनके पुत्र, कौनका परिवार, कौनका धन, कौनकी स्त्री ? या संसार में या जीव ने अनंत सम्बन्धी पाए, एक ज्ञान दुर्लभ है । या भांति श्रीराम प्रतिबुद्ध भए तब वे दोनों देव अपनी माया दूरकरि लोकोंकूं आश्चर्यकी करणहारी स्वर्ग की विभूति प्रगट दिखावते भए । शीतल मंद सुगंध पवन बाजी अर आकाश में देवोंके विमानही विमान होय गए अर देवांगना गावती भईं, वीणा बांसुरी मृदंगादि बाजते भए । वे दोनों देव रामसूं पूछते भए—आप इतने दिवस राज्य किया सो कहा सुख पाया ? तब राम कहते भए—राज्यविषें काहेका सुख ? जहां अनेक व्याधि हैं सो याहि तज मुनि भए वे सुखी । अर मैं तुमकूं पूछूं हूं—तुम महा सौम्य वदन कौन हो अर कौन कारण करि मोसूं एता हित बताया ? तब जटायु का जीव कहता भया—हे प्रभो ! मैं वह गृध

पक्षी हूं जब आप मुनिनिकूं आहार दिया, वहां मैं प्रतिबुद्ध भया अर आप मोहि निकट राख्या, पुत्र की न्याईं पाल्या अर लक्ष्मण सीता मोसूं अधिक कृपा करते, सीता हरी गई ता दिन मैं रावणसूं युद्धकरि कंठगत प्राण भया, आपने आय मोहि पंच नमोकार मंत्र दिया, मैं तिहारे प्रसादकरि चौथे स्वर्ग देव भया, स्वर्ग के सुखकरि मोहित भया। अबतक आपके निकट न आया। अब अवधिज्ञानकरि तुमकूं लक्ष्मणके शोककरि व्याकुल जान तिहारे निकट आया हूं। अर कृतांतवक के जीव ने कही—हे नाथ ! मैं कृतांतवक आपका सेनापति हुता, आप मोहि भ्रात पुत्रनितें हू अधिक जान्या अर वैराग्य होते मोहि आप आज्ञा करी हुती कि जो तुम देव होवो तो जब हमकूं चिंता उपजै तब चितारियो सो आपके लक्ष्मण के मरण की चिंता जानि हम तुमपै आए। तब राम दोनों देवनिसूं कहते भए—तुम मेरे परममित्र हो, महाप्रभावके धारक चौथे स्वर्ग के महाऋद्धिधारी देव मेरे संबोधिवेकूं आए, तुमकूं यही योग्य, ऐसा कहकरि राम ने लक्ष्मण के शोकसूं रहित होय लक्ष्मण के शरीरकूं सरयू नदीके ढाहे दग्ध किया। श्रीराम आत्मस्वभाव के ज्ञाता धर्मकी मर्यादा पालने के अर्थ शत्रुघ्न भाईकूं कहते भए—हे शत्रुघ्न ! मैं मुनि के व्रतधरि सिद्धपदकूं प्राप्त हुआ चाहूं हूं, तू पृथ्वीका राज्यकरि। तब शत्रुघ्न कहते भए—हे देव ! मैं भोगनिका लोभी नाहीं, जाके राग होय सो राज्य करै, मैं तिहारे संग जिनराजके व्रत धारूंगा, अन्य अभिलाषा नाहीं है। मनुष्यनिके शत्रु ये काम भोग मित्र बांधव जीतव्य इनसूं कौन तृप्त भया ? कोई ही तृप्त न भया। तातैं इन सबनिका त्याग ही जीवकूं कल्याणकारी है।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृतग्रंथ, ताकी भाषावचनिका विषैं लक्ष्मणकी दग्धक्रिया अर मित्र देवनिका आगमन वर्णन करनेवाला एकसौ अठारहवां पर्व पूर्ण भया ॥११८॥

एकसौ उन्नीसवां पर्व

(श्री रामका सुव्रत स्वामीके पास आकर दीक्षा लेना)

अथानंतर श्रीरामचन्द्र ने शत्रुघ्न के वैराग्यरूप वचन सुनि ताहि निश्चयसूं राज्यसूं परान्मुख जानि क्षण एक विचारि अनंगलवण के पुत्रकूं राज्य दिया। सो पिता तुल्य गुणनिकी खानि, कुलकी धुराका धरणहारा, नमस्कार करैं हैं समस्त सामंत जाकूं सो राज्यविषैं तिष्ठया, प्रजा का अति अनुराग है जासूं, महाप्रतापी पृथ्वी विषैं आज्ञा प्रवर्तावता भया। अर विभीषण लंका का राज्य अपने पुत्र सुभूषणकूं देय वैराग्यकूं उद्यमी भया अर सुग्रीव हू अपना राज्य अंगदकूं देयकरि संसार शरीर भोगसूं उदास भया, ये सब रामके मित्र रामकी लार भवसागर तरिवेकूं उद्यमी भए। राजा दशरथ का पुत्र राम भरतचक्रवर्तीकी न्याईं राज्य का भार तजता भया। कैसा है राम ? विषसहित अन्न

समान जाने हैं विषय सुख जाने अर कुलटा स्त्री समान जानी है समस्त विभूति जाने, एक कल्याण का कारण मुनिनिके सेयवे योग्य सुर असुरोकरि पूज्य श्री मुनि सुव्रतनाथका भाख्या मार्ग ताहि उरविषें धारता भया। जन्म मरणके भयसूं कंपायमान भया है हृदय जाका, ढीले किए हैं कर्मबंध जाने, धोय डाले हैं रागादिक कलंक जाने, महावैराग्यरूप चित्त है जाका, क्लेश भावसूं निवृत्त, जैसा मेघपटलसूं रहित भानु भासै तैसा भासता भया। मुनिव्रत धारिवेका है अभिप्राय जाके, ता समय अरहदास सेठ आया। तब ताहि श्रीराम चतुर्विध संघकी कुशल पूछते भए। तब वह कहता भया—हे देव! तिहारे कष्टकरि मुनि-निका हू मन अनिष्ट-संयोगकू प्राप्त भया, ये बात करे हैं अर खबर आई कि मुनिसुव्रत-नाथ के वंश में उपजे चार ऋद्धिके धारक स्वामी सुव्रत, महाव्रत के धारक, काम-क्रोध के नाशक आए हैं। यह वार्ता सुनकरि महा आनंद के भरे राम, रोमांच होय गया है शरीर जिनका, फूल गए हैं नेत्रकमल जिनके, अनेक भूचर खेचर नृपनिसहित जैसैं प्रथम बलभद्र विजय स्वर्णकुंभ स्वामी के समीप जाय मुनि भए हुते तैसे मुनि होनेकू सुव्रत मुनि के निकट गए। ते महा श्रेष्ठगुणो के धारक, हजारां मुनि मानैं हैं आज्ञा जिनकी, तिनपै जाय प्रदक्षिणा देय हाथ जोड़ि सिर नवाय नमस्कार किया। साक्षात् मुक्ति के कारण महामुनि तिनका दर्शन करि अमृतके सागरविषें मग्न भए। परम श्रद्धाकरि मुनिराजतें रामचन्द्रने जिनच-न्द्रकी दीक्षा धारिवेकी विनती करी—हे योगीश्वरनिके इन्द्र! मैं भव-प्रपंचसूं विरक्त भया तिहारी शरण गृहा चाहूं हूं, तिहारे प्रसादसूं योगीश्वरनिके मार्गविषें विहार करूं, या भांति राम ने प्रार्थना करी। कैसे हैं राम? धोए हैं समस्त रागद्वेषादिक कलंक जिन्होंने। तब मुनीन्द्र कहते भए-हे नरेन्द्र! तुम या बात के योग्य ही हो, यह संसार कहा पदार्थ है, यह तजकरि तुम जिनधर्म रूप समुद्र का अवगाह करो, यह मार्ग अनादि सिद्ध बाधारहित अविनाशी सुखका देनहारा तुमसे बुद्धिमान ही आदरैं, ऐसा मुनिने कहा तब राम संसारसूं विरक्त महा प्रवीण जैसैं सूर्य सुमेरु की प्रदक्षिणा करै तैसैं मुनीन्द्र की प्रदक्षिणा करते भए। उपज्या है महाज्ञान जिनकू, वैराग्यरूप वस्त्र पहिरे, बांधी है कर्मों के नाशकू कमर जिन्होंने, आशारूप पाश तोड़ि, स्नेहका पींजरा दग्धकरि, स्त्रीरूप बंधनसूं छूटि, मोहका मान मारि, हार कुंडल मुकुट केयूर कटिमेखलादि सर्व आभूषण डारि तत्काल वस्त्र तजे। परम तत्त्व विषे लगा है मन जिनका, वस्त्राभरण यूं तजे ज्यो शरीर तजिए, महासुकुमार अपने कर तिनकरि केशलोंच किए, पद्मासन धरि विराजे, शील के मंदिर अष्टम बलभद्र समस्त परिग्रहकू तजकरि ऐसे सोहते भए जैसा राहुसूं रहित सूर्य सोहै। पंचमहाव्रत आदरे, पंचसमिति अंगीकार करि तीन गुप्तिरूप गढविषें विराजे, मनोदंड वचनदंड कायदंडके दूर करनहारे षट्कायके मित्र सप्त भयरहित आठ कर्मों के रिपु नवधा ब्रह्मचर्य के धारक,

शुभलक्षण धर्मके धारक, श्रीवत्स लक्षणकरि शोभित है उरस्थल जिनका, गुणभूषण सकल दूषणरहित तत्वज्ञावविषैं दृढ रामचन्द्र महामुनि भए। देवनि ने पंचाश्चर्य किए, सुन्दर दुंदुभी बाजे। अर दोनों देव कृतांतवक्र का जीव अर जटायु का जीव तिनने परम उत्सव किए। जब पृथ्वीका पति राम पृथ्वीकूं तजि निकस्या तब भूमिगोचरी विद्याधर सब ही राजा आश्चर्यकूं प्राप्त भए अर विचारते भए-जो ऐसी विभूति ऐसे रत्न यह प्रताप तजकरि रामदेव मुनि भए तो और हमारे कहा परिग्रह जाके लोभतैं घर में तिष्ठें अन बिना हम ऐते दिन योंही खोए, ऐसा विचारकरि अनेक राजा गृह बंधनसूं निकसे अर रागमई पाशी काटि द्वेषरूप वैरीकूं विनाशि सर्व परिग्रहका त्यागकरि भाई शत्रुघ्न मुनि भए। अर बिभीषण सुग्रीव नल नील चंद्रनख विराधित इत्यादि अनेक राजा मुनि भए, विद्याधर सर्व विद्याका त्याग करि ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त भए। कैयकनिकूं चारणऋद्धि उपजी। या भांति रामके वैराग्य भए सोलह हजार कछु अधिक महोपति मुनि भए अर सत्ताईस हजार रानी श्रीमती आर्यिका के समीप आर्यिका भईं।

अथानन्तर श्रीराम गुरुकी आज्ञा लेय एकलविहारी भए, तजे हैं समस्त विकल्प जिन्होंने, गिरिनिकी गुफा अर गिरिनिके शिखर अर विषमवन जिनविषैं दुष्टजीव विचरैं, वहां श्रीराम जिनकल्पी होय ध्यान करते भए। अवधिज्ञान उपज्या जाकरि परमाणु पर्यंत देखते भए अर जगतके सकल पदार्थ मूर्तीक भासे। लक्ष्मणके अनेक भव जाने, मोहका सम्बन्ध नाहीं, तातैं मन ममत्व कूं न प्राप्त भया। अब राम की आयु का व्याख्यान सुनो-कुमार काल वर्ष सौ १०० मंडलीक पद वर्ष तीन सौ ३०० दिग्विजय वर्ष चालीस ४० अर ग्यारह हजार पांचसौ साठ वर्ष ११५६० तीन खंडका राज्य करि बहुरि मुनि भए। लक्ष्मणका मरण याही भांति था, देवनिका दोष नाहीं अर भाई के मरण निमित्ततैं रामके वैराग्यका उदय था। अवधिज्ञानके प्रतापकरि राम ने अपने अनेक भव जाने। महा धैर्यकूं धरे,व्रत शीलके पहाड़, शुक्ल लेश्याकरि युक्त, महागंभीर गुणनिके सागर, समाधान-चित्त मोक्ष लक्ष्मी विषै तत्पर शुद्धोपयोगके मार्गविषैं प्रवरते। सो गौतम स्वामी राजा श्रेणिक आदि सकल श्रोताओंसूं कहैं हैं कि जैसे रामचन्द्र जिनेन्द्रके मार्गविषैं प्रवरते तैसे तुमहू प्रवरतो, अपनी शक्ति प्रमाण महा भक्तिकरि जिनशासनविषैं तत्पर होवो, जिन नामके अक्षर महारत्नोंकूं पायकरि हो प्राणी खोटा आचरण तजहु, दुराचार महा दुःखका दाता खोटे ग्रन्थनिकर मोहित है आत्मा जिनका अर पाखंड क्रियाकरि मलिन है चित्त जिनका, वे कल्याणके मार्गकूं तजि जन्मके आंधे की न्याईं खोटे पन्थमें प्रवरते हैं। कैयक मूर्ख साधु का धर्म नाहीं जानै हैं अर नाना प्रकारके उपकरण साधुके बतावैं हैं अर निर्दोष जान ग्रहैं हैं, वे वाचाल हैं। जे कुलिंग कहिये खोटे भेष मूढनिने आचरे हैं ते वृथा हैं, तिनसूं मोक्ष नाहीं। जैसे कोई मूर्ख मृतकके भारकूं वहै सो वृथा

खेद करै हैं। जिनके परिग्रह नाहीं अर काहूसूं याचना नाहीं, वे ऋषि हैं, निर्ग्रंथ उत्तम गुणनिकरि मंडित पंडितोंकरि सेयवे योग्य हैं। यह महाबली बलदेवके वैराग्यका वर्णन सुनि संसारसूं विरक्त होवो जाकरि भवतापरूप सूर्य का आताप न पावो।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राम का वैराग्य वर्णन करने वाला एकसौ उन्नीसवां पर्व पूर्ण भया ॥११९॥

एकसौ बीसवां पर्व

(श्रीरामका आहार निमित्त नगरमें आगमन और अन्तराय होनेके कारण वनमें वापिस गमन)

अथानंतर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे भव्योत्तम ! रामचंद्रके अनेक गुण धरणेंद्रहू अनेक जीभकरि गायवे समर्थ नाहीं, वे महामुनीश्वर जगतके त्यागी महाधीर, पंचोपवासकी है प्रतिज्ञा जिनके सो ईर्यासमिति पालते नंदस्थलीनामा नगरी तहां पारणाके अर्थ गए, उगते सूर्य समान है दीप्ति जिनकी मानों चालते पहाड ही हैं, महा स्फटिकमणि समान शुद्ध हृदय जिनका, वे पुरुषोत्तम मानों मूर्तिवंत धर्म ही हैं, मानों तीन लोकका आनन्द एकत्र होय राम की मूर्ति निपजी है। महा कांतिके प्रवाहकरि पृथ्वीकूं पवित्र करते मानों आकाशविषैं अनेक रंग करि कमलोंका वन लगावते नगरविषैं प्रवेश करते भए। तिनके रूपकूं देखि नगर के सब लोक क्षोभकूं प्राप्त भए। लोक परस्पर बतरावैं हैं—अहो देखो ! यह अद्भुतरूप ऐसा आकार जगत विषैं दुर्लभ कबहूं देखिवे विषैं न आवै। यह कोई महापुरुष महासुन्दर शोभायमान अपूर्व नर दोनों बाहू लंबाए आवै हैं। धन्य यह धैर्य, धन्य यह पराक्रम, धन्य यह रूप, धन्य यह कांति, धन्य यह दीप्ति, धन्य यह शांति, धन्य यह निर्ममत्वता। यह कोई मनोहर पुराण पुरुष है, ऐसा और नाहीं, जूड़े प्रमाण धरती देखता जीव दया पालता शांत दृष्टि समाधान चित्त जैनका यति चाल्या आवै है। ऐसा कौन का भाग्य जाके घर ये पुण्याधिकारी आहारकरि कौनकूं पवित्र करे ? ताके बड़े भाग्य जाके घर ये आहार लेंय, ये इन्द्र समान रघुकुल के तिलक अक्षोभ पराक्रमी शील के पहाड रामचंद्र पुरुषोत्तम हैं, इनके दर्शन करि नेत्र सफल होंय, मन निर्मल होय, जन्म सफल होय। देही पायका यह फल जो चरित्र पालिए। या भांति नगरके लोक रामके दर्शनकरि आश्चर्यकूं प्राप्त भए। नगर में रमणीक ध्वनि भई, श्रीराम नगर विषैं पैठे अर समस्त गली अर मार्ग स्त्री पुरुषनिके समूहकरि भरि गया। नरनारी, नाना प्रकार के भोजन हैं घर विषैं जिनके, प्रासुक जलकी झारी भरे द्वारा-पेखन करैं हैं। निर्मल जल दिखावते पवित्र धोती पहिरे नमस्कार करैं हैं। हे स्वामी ! अत्र तिष्ठो, अन्न जल शुद्ध है, या भांतिके शब्द करैं हैं, नाहीं समावै है हृदयविषैं हर्ष जिनके। हे मुनींद्र ! जयवंत होवो, हे पुण्यके पहाड ! नादो, विरदो, इन वचनोंकरि दसोंदिशा पूरित भई, घर घर विषैं लोय परस्पर बात करैं हैं, स्वर्ण के भाजन में दुग्ध

दधि ईख रस दाल भात क्षीर शीघ्र ही तैयार करि राखो, मिश्री मोदक कपूरकरि युक्त शीतल जल सुन्दर पूरी शिखिरणी भली भांति विधिसे राखो । या भांति नर-नारीनिके वचनालाप तिनकरि समस्त नगर शब्दरूप होय गया, महाम भ्रमके भरे जन अपने बालकों को न विलोकते भए । मार्ग में लोक दौड़े सो काहूके धक्केसूं कई गिर पड़े, या भांति लोकनिके कोलाहल करि हाथी खूंटा उपाडते भए अर ग्रामविषें दौडते भए, तिनके कपोलोंसूं मद झरिवे करि मार्ग विषें जल का प्रवाह होय गया, हाथीनिके भयसूं घोड़े घास तजि बंधन तुडाय भाजे अर हींसते भए, सो हाथी घोड़ेनिकी घमसाण करि लोक व्याकुल भए। तब दानविषें तत्पर राजा कोलाहल शब्द सुनि मंदिरके ऊपर आय खडया रह्या, दूरसूं मुनि का रूप देखि मोहित भया । राजा के मुनिसूं राग विशेष परन्तु विवेक नाहीं, सो अनेक सामंत दौड़ाए अर आज्ञा करी कि स्वामी पधारे हैं सो तुम जाय प्रणामकरि बहुत भक्ति विनती करि यहां आहारकूं ल्यावो । सो सामंत भी मूर्ख, वे जाय पाँयनिपर पडि कहते भए—हे प्रभो ! राजाके घर भोजन करहु, वहां महा पवित्र सुन्दर भोजन है अर सामान्य लोकनिके घर आहार विरस आपके लेयवे योग्य नाहीं । अर लोकोंकूं मनै किए कि तुम कहा दे जावो हो ? यह वचन सुनकरि महामुनि आपकूं अंतराय जानि नगरसूं पीछे चाल्ये तब सब लोग व्याकुल भए । महापुरुष जिन-आज्ञाके प्रतिपालक, आचारांग सूत्र-प्रमाण है आचरण जिनका, आहार के निमित्त नगर विषें विहार करि अंतराय जानि नगरसूं पीछे वन विषें गए । चिद्रूपध्यान विषें मग्न कायोत्सर्ग धरि तिष्ठे । वे अद्भुत अद्वितीय सूर्य, मन अर नेत्रकूं प्यारा लागे रूप जिनका, नगरसूं बिना आहार गए तब सब ही खेद-खिन्न भए ।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषें राम मुनिका आहार के अर्थि नगरमें आगमन बहुरि लोकनिके कोलाहलतें अन्तराय होनेसे पाछा वनमें आना वर्णन करने वाला एक सौ बीसवां पर्व पूर्ण भया ॥१२०॥

एकसौ इक्कीसवां पर्व

(श्रीराम के वनचर्या का अभिग्रह और वन में ही आहार का योग मिलना)

अथानंतर राम मुनियोंमें श्रेष्ठ बहुरि पंचोपवासका प्रत्याख्यान करि यह अवग्रह धारते भए कि वनविषें कोई श्रावक शुद्ध आहार देय तो लेना, नगर में न जाना । या भांति कांतारचर्याकी प्रतिज्ञा करी। सो एक राजा प्रतिनंद ताकूं दुष्ट तुरंग लेय भागा सो लोकनिकी दृष्टिसूं दूर गया तब राजाकी पटरानी प्रभवा अति चिंतातुर शीघ्रगामी तुरंग पर आरूढ़ राजाके पीछे ही सुभटनिके समूह करि चाली । अर राजाकूं तुरंग हर लेगया था सो वनके सरोवरनिविषें कीच में फँस गया, इतने में ही पटरानी जाय पहुंची । राजा रानी पै आया । तब रानी राजासूं हास्यके वचन कहती भई—हे महाराज ! जो यह अश्व आपकूं न हरता तो यह नंदनवनसा वन अर मानसरोवरसा सर कैसे देखते ?

तब राजा ने कही—हे रानी ! वनयात्रा अब सुफल भई जो तिहारा दर्शन भया। या भांति दम्पति परस्पर प्रीतिकी बातकरि सखीजन सहित सरोवर के तीर बैठि नाना प्रकार जल-क्रीडा करि दोनों भोजनके अर्थ उद्यमी भए । ता समय श्रीराम मुनि कांतार-चर्याके करणहारे या तरफ आहारकूं आए। साधुकी क्रियामें प्रवीण तिनकूं देखि राजा हर्षकरि रोमांच भया, रानी सहित संमुख आय नमस्कार करि ऐसे शब्द कहता भया—हे भगवन् ! यहाँ तिष्ठो, अन्न जल पवित्र है, प्रासुक जलकरि राजा ने मुनिके पग धोए, नवधा भक्ति करि सप्त गुण सहित मुनिकूं महापवित्र क्षीर आहार दिया, स्वर्णके पात्रमें लेयकरि महापात्र जे मुनि तिनके करपात्र में पवित्र अन्न देता भया। निरंतराय आहार भया तब देव हर्षित होय पंचाश्चर्य करते भए। अर आप अक्षीण महाऋद्धिके धारक सो वा दिन रसोई का अन्न अटूट होय गया। पंचाश्चर्य के नाम-पंच वर्ण रत्नों की वर्षा अर महा सुगंध कल्पवृक्षों के पुष्प की वर्षा, शीतल मन्द सुगन्ध पवन, दुंदुभी नाद, जय जय शब्द, धन्य यह दान धन्य यह पात्र धन्य यह विधि धन्य यह दाता, नीके करी नीके करी, नादो विरधो फूलो फलो—या भांति के शब्द आकाशमें देव करते भए। अथ नवधा भक्ति के नाम—मुनिको पडगाहना, ऊंचे स्थानक राखना, चरणारविंद धोवना, चरणोदक माथे चढ़ावना, पूजा करनी, मन शुद्ध, वचन शुद्ध, काय शुद्ध, आहार शुद्ध, यह नवधा भक्ति। अर श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभता, दया, क्षमा, अदेखसखापणो नाहीं, हर्षसंयुक्त—यह दातार के सात गुण। वह राजा प्रतिनंदी मुनिदानसूं देवोंकरि पूज्य भया अर श्रावक के व्रत धारता भया, निर्मल है सम्यक्त जाके, पृथ्वी में प्रसिद्ध होता भया, बहुत महिमा पाई। अर पंचाश्चर्य में नाना प्रकार के रत्न स्वर्ण की वर्षा भई सो दसों दिशा में उद्योत भया अर पृथ्वीका दरिद्र गया, राजा रानी सहित महाविनयवान भक्तिकरि नम्रीभूत महामुनिकूं विधि पूर्वक निरंतराय आहार देय प्रबोधकूं प्राप्त भया, अपना मनुष्य जन्म सफल जानता भया। अर राम महामुनि तप के अर्थ एकांत रहैं। बारह प्रकार तप के करणहारे तप ऋद्धि करि अद्वितीय, पृथ्वी में अद्वितीय सूर्य विहार करते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ, ताकी भाषा वचनिका विषैं राममुनिकूं निरंतराय आहार वर्णन करने वाला एकसौ इक्कीसवां पर्व पूर्ण भया ॥ १२१ ॥

एकसौ बाईसवां पर्व

(सीता के जीव का स्वर्ग से आकर राम को मोहित करने के लिए उपसर्ग करना और रामके कैवल्यकी उत्पत्ति होना)

अथानंतर गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसूं कहैं हैं—हे श्रेणिक ! वह आत्माराम महा मुनि बलदेव स्वामी, शांत किए हैं राग द्वेष जानैं, जो और मनुष्योंसूं न बन आवै ऐसा तप करते भए। महा वन विषैं विहार करते, पंचमहाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति पालते, शास्त्रके वेत्ता जितेंद्री, जिन धर्ममें है अनुराग जिनका, स्वाध्याय ध्यान में सावधान, अनेक

ऋद्धि उपजी परंतु ऋद्धिनिकी खबर नाहीं। महा विरक्त निर्विकार बाईस परिषहके जीतनहारे, तिनके तपके प्रभावतैं वनके सिंह व्याघ्र मृगादिकके समूह निकट आय बैठे, जीवोंका जातिविरोध मिट गया, रामका शांतरूप निरखि शांतरूप भए। श्रीराम महाव्रती, चिदानंदविषैं है चित्त जिनका, परवस्तुकी वांछारहित, विरक्त, कर्मकलंक हरिवेकूं है यत्न जिनका, निर्मल शिलापर तिष्ठते पद्मासन धरे आत्मध्यानविषैं प्रवेश करते भए जैसे रवि मेघमालाविषैं प्रवेश करै। वे प्रभु, सुमेरु सारिखा अचल है चित्त जिनका, अचल पवित्र स्थान विषैं कायोत्सर्ग धरे निज स्वरूपका ध्यान करते भए, कबहु विहार करैं सो ईर्यासमिति पालते जूड़ा प्रमाण पृथ्वी निरखते महाशांत जीवदया प्रतिपालक देव देवांगनादिक करि पूजित भए। वे आत्मज्ञानी जिन आज्ञा के पालक जैनके योगी ऐसा तप करते भए जो पंचम कालविषैं काहू के चितवनविषैं न आवै। एक दिन विहार करते कोटिशिला आए जो लक्ष्मणने नमोकार मंत्र जपकर उठाई हुती सो आप कोटि शिलापर ध्यान धरि तिष्ठे, कर्मोंके खिपायवेविषैं उद्यमी, क्षपकश्रेणी चढ़िवेका है मन जिनका।

अथानंतर अच्युत स्वर्गका स्वयंप्रभ नामा प्रतींद्र सीता का जीव अवधिकरि विचारता भया, रामका अर आपका परम स्नेह, अपने अनेक भव अर जिनशासनका महात्म्य अर रामका मुनि होना अर कोटिशिला पर ध्यान धरि तिष्ठना; बहुरि मनविषै विचारी कि वे मनुष्यनिके इन्द्र पृथ्वी के आभूषण मनुष्यलोक विषै पति हुते, मैं उनकी स्त्री सीता हुती। देखो कर्मकी विचित्रता—मैं तो व्रतके प्रभावतै स्वर्गलोक पाया अर लक्ष्मण रामका भाई प्राणहू तैं प्रिय सो परलोक गया, राम अकेले रह गए, जगतके आश्चर्यके करणहारे दोनों भाई बलभद्र नारायण कर्मके उदयतै बिछुरे। श्रीराम, कमल सारिखे नेत्र जिनके, शोभायमान हल मूसलके धारक, बलदेव महाबली सो वासुदेवके वियोगकरि जिनदेवकी दीक्षा अंगीकार करते भए। राज अवस्था विषैं तो शस्त्रोंकरि सर्व शत्रू जीते बहुरि मुनि होय मन इन्द्रिय जीते। अब शुक्ल ध्यान धरकरि कर्म शत्रूकूं जीतया चाहे हैं, ऐसा होय जो मेरी देव मायाकरि कछुइक इनका मन मोह में आवै, वे शुद्धोपयोगसूं च्युत होय शुभोपयोग विषैं आय यहाँ अच्युतस्वर्गविषैं आवैं, मेरे इनके महाप्रीति है, मैं अर वे मेरु नंदीश्वरादिककी यात्रा करैं अर बाईस सागर पर्यंत भेले रहैं। मित्रता बढ़ावैं अर दोनों मिल लक्ष्मणकूं देखें। यह विचारकरि सीता का जीव प्रतींद्र जहाँ राम ध्यानारूढ़ थे तहाँ आया, इनको ध्यानसूं च्युत करवे अर्थ देवमाया रची। बसन्त ऋतु वनविषैं प्रगट करी, नाना प्रकार के फूल फूले अर सुगंध वायु बाजने लगी, पक्षी मनोहर शब्द करने लगे अर भ्रमर गुंजार करैं हैं, कोयल बोलैं हैं, मैना सूवा नाना प्रकार की ध्वनि कर रहे हैं, आंब मौर आए, भ्रमरोंकर मंडित सोहैं हैं, कामके बाण जे पुष्प तिनकी सुगन्धता फैल रही है अर कर्णिकार वानिके वृक्ष फूले हैं तिनकरि वन पीत हो रहा है सो मानों बसंत रूप राजा

पातांबरकरि क्रीडा कर रहा है अर मौलश्री की वर्षा होय रही है। ऐसी बसंत की लीला करि आप वह प्रतींद्र जानकीका रूप धरि रामके समीप आया, वह मनोहर वन जहां और कोई जन नाहीं। अर नाना प्रकार के वृक्ष सब ऋतुके फूल रहे हैं, तासमय रामके समीप सीता सुन्दरी कहती भई—हे नाथ ! पृथ्वीविषैं भ्रमण करते कोई पुण्यके योगतैं तुमकूं देखे, वियोगरूप लहरका भरया जो स्नेहरूप समुद्र ताविषैं मैं डूबूं हूं सो मोहि थांभो, अनेक प्रकार रागके वचन कहे परन्तु मुनि अकंप। सो वह सीता का जीव मोहके उदयकरि कभी दाहिने कभी बाएँ भ्रमै, कामरूप ज्वर के योगकरि कंपित है शरीर अर महा सुन्दर अरुण हैं अधर जाके सो या भांति कहती भई—हे देव ! मैं बिना विचारे तिहारी आज्ञा बिना दीक्षा लीनी, मोहि विद्याधरनिने बहकाया, अब मेरा मन तुम विषैं है। यह दीक्षा अत्यत वृद्धनिकूं योग्य है। कहाँ यह यौवन अवस्था अर कहां यह दुर्द्धर व्रत ? महाकोमल फूल दावानल की ज्वाला कैसे सहार सकै ? अर हजारां विद्याधरनिकी कन्या तुमकूं वरया चाहै हैं, मोहि आगे धार ल्याई हैं। कहैं हैं तिहारे आश्रय हम बलदेवकूं वरैं, यह कहैं हैं। अर हजारां दिव्य कन्या नाना प्रकार के आभूषण पहरे, राजहंसनी समान है चाल जिनकी सो प्रतींद्रकी विक्रियाकरि मुनींद्रके समीप आईं, कोयलतैं हू अधिक मधुर बोलै, ऐसी सोहैं मानो साक्षात् लक्ष्मी ही हैं। मनकूं आह्लाद उपजावे, कानोंकूं अमृत समान ऐसा दिव्य गीत गावती भईं अर बीण बांसुरी मृदंग बजावती भईं। भ्रमरसारिखे श्याम केश, बिजुरी समान चमत्कार महासुकुमार पातरी कटि, अति कठोर उन्नत हैं कुच जिनके, सुदंर शृंगार करे नाना वर्णके वस्त्र पहिरे, हाव भाव विलास विभ्रमकूं धरती मुलकती, अपनी कांतिकरि व्याप्त किया है आकाश जिन्होंने, मुनिके चौगिर्द बैठी प्रार्थना करती भईं—हे देव ! हमारी रक्षा करो। अर कोई एक पूछती भई–हे देव ! यह कौन वनस्पति है ? अर कोई एक माधवी लताके पुष्पके ग्रहण के मिस बाहु ऊंची करती अपना अंग दिखावती भई, अर कई एक भेली होयकरि ताली देती रासमण्डल रचती भईं, पल्लव समान हैं कर जिनके अर कोई परस्पर जलकेलि करती भईं। या प्रकार नाना भांति की क्रीडाकरि मुनि के मन डिगायवेका उद्यम करती भईं सो हे श्रेणिक ! जैसें पवनकरि सुमेरु न डिगै तैसें श्रीरामचन्द्र मुनिका मन न डिगा। आत्मस्वरूपके अनुभवी रामदेव, सरल है दृष्टि जिनकी, शुद्ध है आत्मा जिनका, परीषहरूप वज्रपातसूं न डिगे, क्षपक श्रेणी चढ शुक्लध्यानके प्रथम पाए विषैं प्रवेश किया, रामचंद्रका भाव आत्मविषैं लगि अत्यंत निर्मल भया सो उनका जोर न पहुंच्या। मूढजन अनेक उपाय करैं परन्तु ज्ञानी पुरुषनिका चित्त न चलै। वे आत्मस्वरूपविषैं ऐसे दृढ भए जो काहू प्रकार न चिगे, प्रतींद्रदेवने मायाकरि राम का ध्यान डिगायवेकूं अनेक यत्न किए परन्तु कछु ही उपाय न चल्या। वे भगवान् पुरुषोत्तम अनादि काल के कर्मोंकी वर्गणाके भस्म करवेकूं उद्यमी भए। पहिले पापके

प्रसादसूं मोहका नाश करि बारहवें गुणस्थान चढे। तहां शुक्लध्यान के दूजे पाए के प्रसादतें ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायका अंत किया, माघ शुक्ल द्वादशीकी पिछली रात्रिको केवलज्ञानकूं प्राप्त भए। केवलज्ञानविषें सर्व द्रव्य समस्त पर्याय प्रतिभासैं, ज्ञानरूप दर्पण में लोकालोक सब भासैं। तब इन्द्रादिक देवनिके आसन कम्पायमान भए। अवधिज्ञानकरि भगवान् रामकूं केवल उपज्या जानकरि केवल कल्याणक की पूजाकूं आए, महा विभूति संयुक्त देवनिके समूह सहित बड़े श्रद्धावान् सब ही इंद्र आए। घातिया कर्म के नाशक अर्हंत परमेष्टी तिनकूं चारणमुनि अर चतुरनिकाय के देव सब ही प्रणाम करते भए। वे भगवान् छत्र चमर सिंहासन आदिकर शोभित त्रैलोक्यकरि वन्दिवे योग्य सयोगकेवली तिनकी गंधकुटी देव रचते भए, दिव्यध्वनि खिरती भई, सब ही श्रवण करते भए अर बार-बार स्तुति करते भए। सीता का जीव स्वयंप्रभ नामा प्रतींद्र केवली की पूजाकरि तीन प्रदक्षिणा देय बारंबार क्षमा करावता भया—हे भगवान्! मैं दुर्बुद्धि ने जो दोष किए सो क्षमा करहु। गौतम स्वामी कहैं हैं—हे श्रेणिक! वे भगवान् बलदेव अनंत लक्ष्मी कांति-करि संयुक्त आनंद-मूर्ति केवली तिनकी इन्द्रादिक देव महाहर्ष के भरे अनादि रीति-प्रमाण पूजा स्तुतिकर विनती करते भए। केवली विहार किया तब देवहू विहार करते भए।

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषा वचनिका विषैं रामकूं केवलज्ञान की उत्पत्ति वर्णन करने वाला एकसौ बाईसवां पर्व पूर्ण भया॥१२२॥

एकसौ तेईसवाँ पर्व

(सीता के जीव का नरक में जाकर लक्ष्मण और रावण को संबोधना)

अथानंतर सीताका जीव प्रतींद्र लक्ष्मणके गुण चितारि जहाँ लक्ष्मणका जीव हुता अर खरदूषणका पुत्र शम्बूक असुरकुमार जातिका देव हुता, तहाँ जायकरि ताकूं सम्यग्ज्ञान का ग्रहण कराया सो तीजे नरक तक नारकीनिकूं बाधा करावैं, हिंसानंद रौद्रध्यान विषैं तत्पर, पापी नारकीनिकूं परस्पर लडावैं। पापके उदयकरि जीव अधोगति जाय। सो तीजे तक तो असुरकुमारहू लडावैं, आगे असुरकुमार न जांय, नारकी ही परस्पर लडैं। जहां कैयकनिकूं अग्निकुण्ड विषैं डारैं हैं सो पुकारै हैं। कैयकनिकूं कांटनिकर युक्त शाल्मलीवृक्ष तिनपर चढ़ाय घसीटैं हैं, कैयकनिकूं लोहमई मुग्दरनिकरि कूटैं हैं। अर जे मांस आहारी पापी तिनकूं उनहीका-मांस काट खवावैं हैं अर प्रज्वलित लोहके गोला तिनकूं मुखमें मारि मारि दे हैं। अर कैयक मारके मारे भूमिविषैं लोटैं हैं अर मायामई श्वान मार्जार सिंह व्याघ्र दुष्ट पक्षी भखैं हैं, तहाँ तिर्यंच नाहीं, नरककी विक्रिया है। कैयकनिकूं सूली चढ़ावैं हैं अर वज्रके मुग्दरनितैं मारैं हैं, कैयकनिकूं ताता तांबा गालि गालि प्यावैं हैं अर कहैं हैं कि ये मदिरापानके फल हैं। कैयकों को काठमें बांधकरि करोंतोंसूं चीरैं हैं अर कैयकोंको कुठारनिसूं काटैं हैं, कैयकोंकूं घानी में पेलैं हैं, कैयकों को

आँख काढे हैं, कैयकोंको जीभ काढे हैं, वे क्रूर कैयकों के दाँत तोडे हैं इत्यादि नारकीनिकूं अनेक दुःख हैं। सो अवधि ज्ञानकरि प्रतींद्र नारकीनिकी पीडा देखि शंबूकके समझायवेकूं तीजी भूमि गया। सो असुरकुमार जातिके देव क्रीडा करते हुते, वे तो इनके तेजसूं डर गए। अर शम्बूककूं प्रतींद्र कहते भए—अरे पापी निर्दई तैंने यह क्या आरम्भा जो जीवोंकूं दुःख देवै है। हे नीच देव ! क्रूर कर्म तज, क्षमा पकड़, ये अनर्थ के कारण कर्म तिन-करि कहा ? अर ये नरक के दुःख सुनकरि भय उपजै है, तू प्रत्यक्ष नारकीनिकूं पीडा करै है, करावै है, सो तुझे त्रास नाहीं। ये वचन प्रतींद्रके सुन शंबूक प्रशांत भया। दूसरे नारकी तेज न सह सके, रोवते भए अर भागते भए। तब प्रतींद्रने कही—हो नारकी हो ! मुझसूं मत डरहु, जिन पापनिकरि नरक में आए हो तिनसूं डरो। जब या भांति प्रतीं-द्रने कही तब उनमें कैयक मन में विचारते भए—जो हम हिंसा मृषावाद परधन हरण परनारी रमण बहु आरम्भ बहु परिग्रहमें प्रवर्ते रौद्र ध्यानी भए, उसका यह फल है। भोगनिविषें आसक्त भए, क्रोधादिककी तीव्रता भई, खोटे कर्म किए उनसूं ऐसा दुःख पाया। देखहु यह स्वर्गलोक के देव पुण्य के उदयसूं नाना प्रकार के विलास करें हैं, रम-णीक विमान चढें, जहाँ इच्छा होय वहाँ ही जांय, या भांति नारकी विचारते भए। अर शम्बूक का जीव जो असुरकुमार उसकूं ज्ञान उपज्या। फिर रावणके जीवने प्रतींद्रकूं पूछा—तुम कौन हो ? तब वाने सकल वृतांत कहा—मैं सीता का जीव तप के प्रभावकरि सोलहवें स्वर्ग में प्रतींद्र भया अर श्रीरामचन्द्र महामुनींद्र होय ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनी अंतराय कर्म का नाशकरि केवली भए सो धर्मोपदेश देते जगतकूं तारते भरत-क्षेत्र विषें तिष्ठें हैं, नाम गोत्र वेदनी आयु का अन्तकरि परमधाम पधारेंगे। अर तू विषयवासना करि विषम भूमि विषें पड्या, अब भी चेत जो कृतार्थ होय। तब रावणका जीव प्रतिबोधकूं प्राप्त भया, अपने स्वरूप का ज्ञान उपज्या। अशुभ कर्म बुरे जाने, मन में विचारता भया—मैं मनुष्य भव पाय अणुव्रत महाव्रत न आराधे तातें इस अवस्थाकूं प्राप्त भया। हाय हाय ! मैं कहा किया जो आपकूं दुःख समुद्रमें डारया। यह मोह का महात्म्य है जो जीव आत्म हित न कर सकै। रावण प्रतींद्रकूं कहै है—हे देव ! तुम धन्य हो, विषयकी वासना तजी, जिनवचनरूप अमृतकूं पीकर देवोंके नाथ भए। तब प्रतींद्र वे दयालु होयकर कही-तुम भय मत करो, चलो हमारे स्थानकूं चलो, ऐसा कहि याके उठा-यवेकूं उद्यमी भया। तब रावणके जीवके शरीरके परमाणू बिखर गए जैसें अग्नि करि माखन पिघल जाय। काहु उपायकरि याहि लेजायवे समर्थ न भया जैसें दर्पण में तिष्ठती छाया न ग्रही जाय। तब रावण का जीव कहता भया—हे प्रभो ! तुम दयालु हो सो मुझकूं दया उपजै ही परन्तु इन जीवनिने पूर्वें जे कर्म उपार्जे हैं तिनका फल अवश्य भोगैं

हैं। विषयरूप मांस का लोभी दुर्गतिकी आयु बांधै है सो आयु पर्यंत दुःख भोगवै है, यह जीव कर्मों के आधीन इसका देव क्या करैं। हमने अज्ञानके योगसूं अशुभ कर्म उपार्जे हैं, इनका फल अवश्य भोगेंगे, आप छुडायवे समर्थ नाहीं। तासूं कृपाकरि वह उपदेश कहो जिसकरि फिर दुर्गति के दुःख न पावैं। हे दयानिधे! तुम परम उपकारी हो। तब देवने कही—परमकल्याण का मूल सम्यग्ज्ञान है सो जिन शासन का रहस्य है, अविवेकियोंकूं अगम्य है, तीन लोक में प्रसिद्ध है। आत्मा अमूर्तिक सिद्ध समान उसे समस्त परद्रव्योंसूं जुदा जानो, जिनधर्मका निश्चयकर यह सम्यग्दर्शन कर्मों का नाशक शुद्ध पवित्र परमार्थ का मूल जीवों ने न पाया तातैं अनन्त भव भ्रहे। यह सम्यग्दर्शन अभव्योंकूं अप्राप्य है, भव्योंको कल्याणरूप है, जगत में दुर्लभ है, सकल में श्रेष्ठ है। सो जो तू आत्म कल्याण चाहै है तो उसे अंगीकार करहु जिसकरि मोक्ष पावै, उससूं श्रेष्ठ और नाहीं, न हुआ, न होयगा, याही करि सिद्ध भए हैं अर होंयगे। जे अर्हंत भगवानने जीवादिक नव पदार्थ भाखे हैं तिनकी दृढ श्रद्धा करनी, उसे सम्यग्दर्शन कहिए। इत्यादि वचनोंकरि रावण के जीवकूं सुरेंद्र ने सम्यक्त्व ग्रहण कराया। अर याकी दशा देखि विचारता भया--जो देखो रावणके भव में याकी कहा कांति थी, महासुन्दर लावण्यरूप शरीर था सो अब ऐसा होय गया जैसा नवीन वन अग्निकरि दग्ध होजाय। जिसे देखि सकल लोक आश्चर्यकूं प्राप्त होते सो ज्योति कहां गई? बहुरि ताहि कहता भया-कर्मभूमिमें तुम मनुष्य भए थे सो इन्द्रियोंके क्षुद्र सुखके कारण दुराचार करि ऐसे दुःख रूप समुद्रमें डूबे। इत्यादि प्रतींद्रने उपदेश के वचन कहे, तिनकूं सुनकरि उसके सम्यग्दर्शन दृढ़ भया अर मन में विचारता भया कि कर्मों के उदयकरि दुर्गतिके दुःख प्राप्त भए तिनकूं भोगि यहांसे छूट मनुष्यदेह पाय जिनराजका शरण गहूंगा। प्रतींद्रसूं कही--अहो देव! तुम मेरा बड़ा हित किया जो सम्यग्दर्शन में मोहि लगाया। हे प्रतींद्र महाभाग्य! अब तुम जावो, वहां अच्युतस्वर्ग में धर्मके फलसूं सुख भोगि मनुष्य होय शिवपुरकूं प्राप्त होवो। जब ऐसा कहा तब प्रतींद्र उसे समाधानरूपकरि कर्मोंके उदयकूं सोचते संते सम्यग्दृष्टि वहांसूं ऊपर आया। संसार की मायासूं शंकित है आत्मा जाका, अर्हंत सिद्ध साधु जिनधर्म के शरण विषै तत्पर है मन जाका, तीन बेर पंचमेरुकी प्रदक्षिणाकरि चैत्यालयोंका दर्शनकरि, नारकीनिके दुःखसूं कंपायमान है चित्त जाका, स्वर्गलोकमेंहू भोगाभिलाषी न भया मानों नारकीनिकी ध्वनि सुनै है। सोलहवें स्वर्ग के देवकूं छठे नरक लग अवधिज्ञानकरि दीखे, तीजे नरक विषैं रावण के जीवकूं अर शंबूकका जीव जो असुरकुमार देव था ताहि संबोधि सम्यक्त्व प्राप्त कराया। हे श्रेणिक! उत्तम जीवोंकूं पर-उपकार बनै। बहुरि स्वर्गलोकसूं भरतक्षेत्रमें श्रीराम के दर्शनकूं आए, पवनसूं हू शीघ्रगामी जो विमान तामें आरूढ अनेक देवनिकूं संग लिए नाना प्रकार के वस्त्र पहिरे हार माला मुकुटादिकरि मंडित अनिय

गदा खड्ग धनुष बरछी शतघ्नी इत्यादि अनेक आयुधोंकू धरे गज तुरंग सिंह इत्यादि अनेक वाहनोंपर चढे मृदंग बांसुरी वीण इत्यादि अनेक वादित्रनिके शब्द तिनकरि दशों दिशा पूर्ण करते केवली के निकट आए। देवों के वाहन गज तुरंग सिंहादिक तिर्यंच नाहीं, देवोंकी विक्रिया है। सीता का जीव प्रतींद्र श्रीरामकूं हाथ जोड़ि शीश नवाय बारंबार प्रणामकरि स्तुति करता भया-हे संसार सागर के तारक ! तुमने ध्यानरूप पवनकरि ज्ञानरूप अग्नि दीप्त करी, संसाररूप वन भस्म किया अर शुद्ध लेश्यारूप त्रिशूलकरि मोहरिपु हता, वैराग्य रूप वज्रकरि दृढ स्नेहरूप पिंजरा चूर्ण किया। हे नाथ ! हे भवसूदन ! संसाररूप वनसूं जे डरें हैं तिनकूं तुम शरण हो। हे सर्वज्ञ ! कृतकृत्य, जगतगुरु, पाया है पायवे योग्य पद जिन्होंने, हे प्रभो ! मेरी रक्षा करो, संसार के भ्रमणसूं अति व्याकुल है मन मेरा, तुम अनादिनिधन जिनशासनका रहस्य जानि प्रबल तपकरि संसारसागरसूं पार भए। हे देवाधिदेव ! यह तुमकूं कहा युक्त ? जो मुझे भव वन में तजि आप अकेले विमलपदकूं पधारे। तब भगवान कहते भए-हे प्रतींद्र ! तू राग तजि, जे वैराग्यमें तत्पर हैं तिनहीकूं मुक्ति है। रागी जीव संसार में डूबें हैं। जैसें कोई शिलाकूं कंठ में बांधि भुजाओं करि नदीकूं नाहीं तिर सके तैसें रागादिके भारकरि चतुर्गतिरूप नदी न तिरी जाय। जे ज्ञान वैराग्य शील संतोष के धारक हैं वेई संसारकूं तिरें हैं। जे श्रीगुरुके वचनकरि आत्मानुभवके मार्ग लगे वेई भव भ्रमणसूं छूटें, और उपाय नाहीं, काहू का भी ले जाया लोकशिखर न जाय, एक वीतराग भावहीसूं जाय। इस भांति श्रीराम भगवान सीताके जीवकूं कहते भए। सो यह वार्ता गौतमस्वामी ने राजा श्रेणिकसूं कही। बहुरि कहते भए-हे नृप ! सीताके जीव प्रतींद्रने जो केवलीसूं पूछी अर इनने कहा सो सुन। प्रतींद्र ने पूछी-हे नाथ ! दशरथादिक कहाँ गए अर लव अंकुश कहाँ जावेंगे ? तब भगवान ने कही—दशरथ कौशल्या सुमित्रा केकई सुप्रभा अर जनक का भाई कनक ये सब तप के प्रभावकरि तेरहवें देवलोक गए हैं, ये सब ही समान ऋद्धि के धारी देव हैं। अर लव अंकुश महाभाग्य कर्मरूप रजसूं रहित होय विमल पदकूं इस ही जन्मसूं पावेंगे। इस भांति केवली की ध्वनि सुनि भामंडलकी गति पूछी-हे प्रभो ! भामंडल कहां गया ? तब आप कहते भए-हे प्रतींद्र ! तेरा भाई रानी सुन्दरमालिनी सहित मुनिदानके प्रभावकरि देवकुरु भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयुके भोक्ता भोगभूमियां भए। तिनके दान की वार्ता सुनि—अयोध्या में एक बहुकोटि धन का धनी सेठ कुलपति उसके मकरावाना स्त्री जिसके पुत्र राजाओंके तुल्य पराक्रमी सो कुलपतिने सुनी कि सीताकूं वनमें निकासी तब उसने विचारी-वह महागुणवती शीलवती सुकुमार अंग निर्जन वनमें कैसें अकेली रहेगी। धिक्कार है संसारकी चेष्टाकूं ! यह विचारि दयालुचित्त होय द्युति भट्टारकके समीप मुनि भया। अर उसके दोय पुत्र एक अशोक दूजा तिलक ये दोनों मुनि भए सो

द्युति भट्टारक तो समाधिमरणकरि नवमग्रैवेयकमें अहमिंद्र भए। अर ये पिता पुत्र तीनों मुनि नाग्रचूर्ण नामा नगर वहाँ केवली की बंदनाकूं गए सो मार्गमें पचास योजन की एक अटवी वहाँ चातुर्मासिक आय पड्या तब एक वृक्षके तले तीनों साधू विराजे मानों साक्षात् रत्नत्रय ही हैं। वहां भामंडल आय निकस्या, अयोध्या आवै था सो विषमवनमें मुनिनकूं देखि विचार किया कि ये महापुरुष जिनसूत्रकी आज्ञा प्रमाण विर्जनवन में विराजे, चौमासे मुनियों का गमन नाहीं, अब ये आहार कैसे करें? तब विद्याकी प्रबल शक्तिकरि निकट एक नगर बनाया जहाँ सब सामग्री पूर्ण, बाहिर नाना प्रकारके उपवन सरोवर अर धावके क्षेत्र अर नगरके भीतर बड़ी बस्ती महासंपत्ति, चार महीना आप भी परिवार सहित उस नगर में रह्या अर मुनियोंके वैयाव्रत किए। वह बन ऐसा था जिसमें जल नाहीं, सो अद्भुत नगर बसाया, जहाँ अन्न जलकी बाहुल्यता सो नगरमें मुनियों का आहार भया और भी दुःखित भुखित जीवोंकूं भांति भांतिके दान दिए। अर सुन्दर मालिनी रानी सहित आप मुनियोंकूं अनेकबार निरंतराय आहार दिया। चातुर्मास पूर्ण भए मुनि विहार करते भए। अर भामंडल अयोध्या आय फिर अपने स्थानक गया। एक दिन सुन्दर मालिनी रानी सहित सुखसूं शयन करै था सो महलपर बिजुरी पड़ी, राजा रानी दोनों मरकरि मुनिदानके प्रभावसूं सुमेरु पर्वतकी दाहिनी ओर देवकुरु भोगभूमि वहां तीन पल्य की आयु के भोक्ता युगल उपजे सो दान के प्रभावसूं सुख भोगवें हैं, जे सम्यक्त्व रहित हैं अर दान करें हैं सो सुपात्रदानके प्रभावसूं उत्तमगतिके सुख पावें हैं सो यह पात्रदान महासुख का दाता है। यह बात सुनि फिर प्रतींद्रने पूछी कि हे नाथ! रावण तीजी भूमिसूं निकसि कहां उपजेगा अर मैं स्वर्गसूं चयकरि कहाँ उपजूंगा। मेरे अर लक्ष्मणके अर रावणके केते भव बाकी हैं सो कहो।

तब सर्वज्ञदेवने कही—हे प्रतींद्र सुन! वे दोनों विजयावती नगरी में सुनंदनामा कुटुम्बी सम्यग्दृष्टि उसके रोहिणीनामा भार्या उसके गर्भ विषें अरहदास ऋषिदास नामा पुत्र होवेंगे। दोनों भाई महा गुणवान निर्मलचित्त उत्तम क्रिया के पालक श्रावक के व्रत आराधि समाधि मरण करि जिन राजाका ध्यान धरि स्वर्ग विषे देव होवेंगे। तहां सागरां पर्यंत सुख भोग स्वर्गसूं चयकरि बहुरि वाही नगरीविषें बड़े कुलविषें उपजेंगे सो मुनिनिकूं दान देकर हरिक्षेत्र जो मध्यम भोगभूमि वहाँ युगलिया होय दोय पल्यकी आयु भोगि स्वर्ग जावेंगे। बहुरि उस ही नगरीविषें राजा कुमार कीर्ति रानी लक्ष्मी तिनके महायोधा जयकांत जयप्रभ नामा पुत्र होवेंगे। बहुरि तपकरि सातवें स्वर्ग उत्कृष्ट देव होवेंगे, देवलोकके महासुख भोगेंगे। अर तू सोलहवां अच्युत स्वर्ग वहांसूं चयकरि या भरतक्षेत्र विषें रत्नस्थलपुर नामा नगर वहाँ चौदह रत्न का स्वामी षट्खण्ड पृथ्वी का धनी चक्रनामा चक्रवर्ती होयगा। तब वे सातवें स्वर्गसूं चयकरि तेरे पुत्र होवेंगे। रावण के जीव का नाम तो इन्द्ररथ

अर वासुदेव के जीव का नाम मेघरथ दोनों महा धर्मात्मा होवेंगे, परस्पर उनमें अति स्नेह होयगा अर तेरा उनसूं अति स्नेह होयगा। जिस रावण ने नीतिसूं तीन खंड पृथ्वी का अखंड राज्य किया अर ये प्रतिज्ञा जन्मपर्यंत निबाही जो परस्त्री मोहि न इच्छै ताहि मैं न सेऊँ, सो रावण का जीव इन्द्ररथ धर्मात्मा कैयक श्रेष्ठ भव धरि तीर्थंकर देव होयगा, तीनलोक उसकूं पूजैगा। अर तू चक्रवर्ती राज्य पद तजि मुनिव्रतधारी होय पंचोत्तरोंविषें वैजयंतनामाविमाव तहां तपके प्रभावसूं अहमिंद्र होवेगा। तहांसूं चयकरि रावण का जीव तीर्थंकर उसके प्रथम गणधर होय निर्वाण पद पावेगा। प्रतींद्र यह कथा श्री भगवान् राम केवली तिनके मुख सुनकरि अति हर्षित भया। बहुरि सर्वज्ञदेवने कही—हे प्रतींद्र! तेरा चक्रवर्ती पदका दूजा पुत्र मेघरथ सो कैयक महा उत्तम भवधरि धर्मात्मा पुष्करद्वीप के महा विदेह क्षेत्रविषें शतपत्रनामा नगर तहां पंचकल्याणकका धारक तीर्थंकर देव चक्रवर्ती पदकूं धरे होयगा, संसार का त्यागकरि केवल उपजाय अनेकोंकूं तारेगा अर आप परमधाम पधारेगा। ये वासुदेवके भव तोहि कहे। अर मैं अब सात वर्ष विषें आयु पूर्णकरि लोक शिखर जाऊंगा, जहांसूं बहुरि आवना नाहीं अर जहां अनंत तीर्थंकर गए अर जावेंगे, अनंत केवली तहां पहुंचे जहां ऋषभादि भरतादि विराजें हैं, अविनाशीपुर त्रैलोक्यके शिखर हैं, जहाँ अनंत सिद्ध हैं वहाँ मैं तिष्ठूंगा। ये वचन सुनि प्रतींद्र पद्मनाभ जे श्रीरामचन्द्र सर्वज्ञ वीतराग तिनकूं बार-बार नमस्कार करता भया। अर मध्यलोकके सर्व तीर्थ बन्दे, भगवान् के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय अर निर्वाणक्षेत्र वहाँ सर्वत्र पूजाकरि अर नंदीश्वरद्वीप विषे अंजनगिरि दधिमुख रतिकर तहां बड़े विधानसूं अष्टाह्निकाकी पूजा करी। देवाधिदेव जे अरहंत सिद्ध तिनका ध्यान करता भया अर केवली के वचन सुन ऐसा निश्चय भया जो मैं केवली होय चुका, अल्प भव हैं। अर भाईके स्नेहसूं भोगभूमि विषें जहाँ भामण्डल का जीव है तहाँ उसे देखा अर उसकूं कल्याणका उपदेश दिया। बहुरि अपना स्थान सोलहवाँ स्वर्ग वहां गया जहाँ हजारों देवांगना तिनसहित मानसिक भोग भोगता भया। श्रीरामचंद्रकी सत्रह हजार वर्ष की आयु सोलह धनुषकी ऊंची काया कैयक जन्मके पापोंसे रहित होय सिद्ध भए। वे प्रभु भव्यजीवों का कल्याण करो, जन्म जरा मरण महारिपु जीत परमात्मा भए। जिनशासनविषें प्रगट है महिमा जिनकी, जन्म जरा मरणका विच्छेदकरि अखंड अविनाशी परम अतींद्रिय सुख पाया, सुर असुर मुनिवर तिनके जे अधिपति तिनकर सेयवे योग्य नमस्कार करवे योग्य दोषोंके विनाशक पच्चीस वर्ष तपकरि मुनिव्रत पालि केवली भए सो आयुपर्यंत केवलीदशाविषें भव्योंकूं धर्मोपदेश देय तीन भवनका शिखर जो सिद्धपद वहाँ सिधारे।

सिद्धपद सकल जीवोंका तिलक है, राम सिद्ध भए, तुम रामकूं शीस नवाय नमस्कार करो, राम सुर नर मुनियोंकरि आराधिवे योग्य हैं, शुद्ध हैं भाव जिनके, संसार

के कारण जे रागद्वेष मोहादिक तिनसूं रहित हैं, परम समाधि के कारण हैं अर महामनोहर हैं, प्रतापकरि जीत्या है तरुण सूर्य का तेज जिनने अर उन जैसी शरदकी पूर्णमासीके चंद्रमा में कांति नाहीं, सर्व उपमारहित अनुपम वस्तु है। अर स्वरूप जो आत्मरूप उसमें आरूढ, श्रेष्ठ है चरित्र जिनका ऐसे श्रीराम यतीश्वरोंके ईश्वर, देवोंके अधिपति प्रतींद्रकी मायासूं मोहित न भए, जीवोंके हितू, परम ऋद्धिकरि युक्त, अष्टम बलदेव, पवित्र शरीर शोभायमान, अनंत वीर्यके धारी, अतुल महिमाकरि मंडित, निर्विकार, अठारह दोषकरि रहित, अष्टादश सहस्र शीलके भेद तिनकरि पूर्ण, अति उदार अति गभीर ज्ञान के दीपक, तीन लोक में प्रगट है प्रकाश तिनका, अष्ट कर्म दग्ध करणहारे, गुणों के सागर, क्षोभरहित, सुमेरुसे अचल, धर्मके मूल, कषायरूप रिपुके नाशक, समस्त विकल्परहित, महानिर्द्वंद, जिनेंद्रके शासनका रहस्य पाय अंतरात्मासूं परमात्मा भए, उनने त्रैलोक्य पूज्य परमेश्वरपद पाया तिनकूं तुम पूजो। धोय डारे हैं कर्मरूप मल जिनने, केवलज्ञान केवल दर्शनमय, योगीश्वरों के नाथ, सब दुःख के दूर करणहारे, मन्मथके मथनहारे तिनकूं प्रणाम करो। यह श्रीबलदेव का चरित्र महामनोज्ञ जो भावधर निरंतर बांचे सुनें पढ़ें पढावे, शंकारहित होय महा हर्ष के भरे रामकी कथा का अभ्यास करें तिनके पुण्य की वृद्धि होय अर बैरी खडग हाथ में लिए मारिवेकूं आया होय सो शांत होय जाय। या ग्रंथके श्रवणसूं धर्म के अर्थी इष्ट धर्मकूं लहैं, यशका अर्थी यशकूं पावै, राज्य भ्रष्ट हुआ हो अर राज्य-कामना होय तो राज्य पावै, यामें संदेह नाहीं। इष्ट संयोगका अर्थी इष्टसंयोग लहै, धन का अर्थी धन पावे, जीत का अर्थी जीत पावै, स्त्रीका अर्थी सुन्दर स्त्री पावै, लाभका अर्थी लाभ पावै, सुखका अर्थी सुख पावै अर काहू का कोई वल्लभ विदेश गया होय अर उसके आयवेकी आकुलता होय सो वह सुखसूं घर आवै। जो मन विषै अभिलाषा होय, सो ही सिद्ध होय सर्व व्याधि शांत होय, ग्राम के नगरके वनके देव जलके देव प्रसन्न होंय अर नवग्रहों की बाधा न होय, क्रूर ग्रह सौम्य होय जांय। अर जे पाप चितवनमें न आवैं वे विलाय जांय अर सकल अकल्याण राम कथाकरि क्षय होय जाय। अर जितने मनोरथ हैं वे सब राम कथा के प्रसादतें पावें अर वीतराग भाव दृढ होय, उसकरि हजारों भवके उपार्जे पापोंकूं प्राणी दूर करै, कष्टरूप समुद्रकूं तिर सिद्धपद शीघ्र ही पावै। यह ग्रन्थ महापवित्र है, जीवोंको समाधि उपजायवे का कारण है, नाना जन्ममें जीव ने महाक्लेश के कारण पाप उपार्जे तिनका नाशक है अर नाना प्रकारके व्याख्यान तिनकरि संयुक्त है। जिस में बड़े बड़े पुरुषोंकी कथा है, भव्यजीवरूप कमलों को प्रफुल्लित करणहारा है, सकल लोककरि नमस्कार करिबे योग्य है। श्रीवर्धमान भगवान् उनने गौतमसूं कहा अर गौतमने श्रेणिकसूं कहा, याही भांति केवली श्रुतकेवली कहते भए। रामचन्द्रका चरित्र साधुओंकी वृद्धिका कारण सर्वोत्तम महामंगलरूप

सो मुनिनिकी परिपाटीकरि प्रगट होता भया। सुन्दर हैं वचन जिसमें, समीचीन अर्थकूं धरे अति अद्भुत, इन्द्रगुरुनामा मुनि तिनके शिष्य दिवाकरसेन, तिनके शिष्य लक्ष्मणसेन, तिनके शिष्य रविषेण, तिनने जिन-आज्ञानुसार कहा। यह रामका पुराण सम्यग्दर्शनकी सिद्धिका कारण, महा कल्याणका कर्ता, निर्मल ज्ञानका दायक, विचक्षण जीवोंके निरंतर सुनिवे योग्य है। अतुल पराक्रमी अद्भुत आचरणके धारक महासुकृती जे दशरथके नंदन तिनकी महिमा कहां लग कहूं। इस ग्रंथ में बलभद्र नारायण प्रतिनारायण तिनका विस्ताररूप चरित्र है। जो यामें बुद्धि लगावै तो अकल्याणरूप पापोंकूं तजकरि शिव कहिये मुक्ति उसे अपनी करै। जीव विषय की वांछाकरि अकल्याणको प्राप्त होय हैं। विषयाभिलाष कदाचित् शांतिके अर्थ नाहीं, देखो विद्याधरनिका अधिपति रावण परस्त्रीकी अभिलाषाकरि कष्टकूं प्राप्त भया, कामके रागकरि हता गया। ऐसे पुरुषों की यह दशा है तो और प्राणी विषय वासनाकरि कैसे सुख पावें? रावण हजारों स्त्रियोंकरि मण्डित निरन्तर सुख सेवै था सो तृप्त न भया, परदाराकी कामनाकर विनाशकूं प्राप्त भया। इन व्यसनोंकरि जीव कैसें सुखी होय? जो पापी परदारा का सेवन करै सो कष्ट सागर में पड़ै। अर श्रीरामचंद्र महा शीलवान परदारा-परान्मुख जिनशासनके भक्त धर्मानुरागी वे बहुत काल राज्य भोग संसारकूं असार जानि वीतराग के मार्ग में प्रवर्ते, परमपदकूं प्राप्त भए। और भी जे वीतराग के मार्ग में प्रवर्तेंगे वे शिवपुर पहुंचेंगे। इसलिए जे भव्य जीव हैं वे जिनमार्ग की दृढ प्रतीति कर अपनी शक्ति-प्रमाण व्रतका आचरण करो। जो पूर्ण शक्ति होय तो मुनि होवो अर न्यून शक्ति होय तो अणुव्रत के धारक श्रावक होवो। ये प्राणी धर्मके फलकरि स्वर्ग मोक्षके सुख पावें हैं अर पापके फलसूं नरक निगोदके फल पावैं हैं, यह निःसंदेह जानो। अनादि काल की यही रीति है–धर्म सुखदाई, अधर्म दुखदाई। पाप किसे कहिए अर पुण्य किसे कहिए सो उरविषें धारो। जेते धर्म के भेद हैं तिन विषें सम्यक्त्व मुख्य है अर जितने पापके भेद हैं तिनमें मिथ्यात्व मुख्य है। सो मिथ्यात्व कहा? अतत्वकी श्रद्धा अर कुगुरु कुदेव कुधर्मका आराधन। परजीवकूं पीड़ा उपजावना अर क्रोध मान माया लोभ की तीव्रता अर पांच इंद्रियों के विषय, सप्तव्यसन का सेवन अर मित्रद्रोह, कृतघ्न, विश्वासघात, अभक्ष्य का भक्षण, अगम्यविषें गमन, मर्म का छेदक वचन, दुर्जनता इत्यादि पाप के अनेक भेद हैं वे सब तजने अर दया पालना, सत्य बोलना, चोरी न करना, शील पालना, तृष्णा तजनी, काम लोभ तजने। शास्त्र पढ़ना, काहूकूं कुवचन न कहना, धर्म न करना, प्रपंच न करना, अदेखसका न होना, शांतभाव धरना, पर उपकार करना, परदारा परधन परद्रोह तजना, परपीड़ा का वचन न कहना, बहु आरंभ बहु परिग्रह का त्याग करना, दान देना, तप करना, परदुःखहरण इत्यादि जो अनेक भेद पुण्यके हैं वे अंगीकार करने। अहो प्राणी हो! सुखदाता शुभ है अर दुखदाता अशुभ है, दारिद्र दुःख रोग पीड़ा

अपमान दुर्गति ये सब अशुभके उदयसूं होय हैं अर सुख संपत्ति सुगति ये सब शुभ के उदयसूं होय हैं। शुभ अशुभ ही सुख दुःखके कारण हैं अर कोई देव दानव मानव सुख दुःख का दाता नाहीं, अपने अपने उपार्जे कर्मका फल सब भोगवें हैं । सब जीवोंसूं मित्रता करना, किसी से वैर न करना, किसी को दुःख न देना, सब ही सुखी हों यह भावना मनमें धरनी। प्रथम अशुभ को तज शुभ में आवना, बहुरि शुभाशुभतें रहित होय शुद्ध पदकूं प्राप्त होना। बहुत कहिवे कर क्या ? इस पुराणके श्रवणकर एक शुद्ध सिद्धपद में आरूढ़ होना, उसके भेद कर्मनिका विलयकरि आनंदरूप रहना। हो पंडित हो ! परम पद के उपाय निश्चय थकी जिनशासन में कहे हैं, वे अपनी शक्ति प्रमाण धारण करो जिसकर भवसागर से पार होवो। यह शास्त्र अति मनोहर जीवों को शुद्धताका देनहारा रविसमान सकल वस्तुका प्रकाशक है सो सुनकर परमानंद स्वरूप में मग्न होवो, संसार असार है, जिनधर्म सार है जाकरि सिद्ध पदको पाईये है, सिद्धपद समान और पदार्थ नाहीं। जब श्रीभगवान त्रैलोक्य के सूर्य वर्द्धमान देवाधिदेव सिद्ध लोकको सिधारे तब चतुर्थ कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महीना शेष थे सो भगवान् को मुक्त भए पीछे पंचमकाल में तीन केवली अर पांच श्रुतकेवली भए सो वहां लग तो पुराण पूरा रह्या। जैसा भगवान्ने गौतम गणधरसूं कह्या अर गौतम ने श्रेणिकसूं कहा वैसा श्रुतकेवली ने कह्या। श्रीमहावीर पीछे बासठ वर्ष लग केवलज्ञान रह्या अर केवली पीछे सौ वर्ष तक श्रुतकेवली रहे। पंचम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामी तिनके पीछे कालके दोषसूं ज्ञान घटता गया तब पुराण का विस्तार न्यून होता भया। श्रीभगवान् महावीरकूं मुक्ति पधारे बारह सौ साढे तीन वर्ष भए तब रविषेणाचार्यने अठारह हजार अनुष्टुप् श्लोकों में व्याख्यान किया। यह रामका चरित्र सम्यक्त्व चारित्र का कारण केवली श्रुतकेवली प्रणीत सदा पृथ्वी में प्रकाश करो। जिन शासन के सेवक देव जिनभक्तिविषैं परायण जिनधर्मी जीवों की सेवा करैं हैं। जे जिनमार्ग के भक्त हैं तिनके सभी सम्यग्दृष्टि देव आवें हैं, नानाविध सेवा करैं हैं, महा आदर संयुक्त सर्व उपायकर आपदा में सहाय करैं हैं, अनादिकालसूं सम्यग्दृष्टि देवों की ऐसी ही रीति है। जैनशास्त्र अनादि है, काहू का किया नाहीं, व्यंजन स्वर ये सब अनादि सिद्ध रविषेणाचार्य कहे हैं, मैं कछु किया नाहीं। शब्द अर्थ अकृत्रिम हैं, अलंकार छन्द आगम निर्मल चित्त होय नीके जानने। या ग्रन्थविषैं धर्म अर्थ काम मोक्ष सर्व हैं। अठारह हजार तेईस श्लोक प्रमाण पद्मपुराण संस्कृत ग्रंथ है, इस पर यह भाषा भई सो जयवंत होवै, जिनधर्म की वृद्धि होवै, राजा प्रजा सुखी होवैं ॥

इति श्रीरविषेणाचार्य विरचित महापद्मपुराण संस्कृत ग्रन्थ, ताकी भाषावचनिकाविषैं श्रीराम के मोक्ष प्राप्तिका वर्णन करने वाला एकसौ तेईसवां पर्व पूर्ण भया ॥१२३॥

०:०:०

भाषाकारका परिचय--

चौपाई—जम्बूद्वीप सदा शुभथान, भरतक्षेत्र ता मांहि प्रमाण। उसमें आरज-खंड पुनीत, बसें ताहिमें लोक विनीत ॥ १ ॥ तिनके मध्य ढुंढार जु देश, निवसें जैनी लोक विशेष। नगर सवाई जयपुर महा, तासकी उपमा जाय न कहा ॥ २ ॥ राज्य करै माधव नृप जहां, कामदार जैनी जन तहां। ठौर ठौर जिन मंदिर बने, पूजैं तिनकूं भवि-जन घने ॥ ३ ॥ बसैं महाजन नाना जाति, सेवैं जिनमारग बहु न्याति। रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घटमें स्वपर विवेक ॥ ४ ॥ दयावंत गुणवंत सुजान, पर उपकारी परम निधान। दौलतराम सु ताको मित्र, तासों भाष्यो वचन पवित्र ॥ ५ ॥ पद्मपुराण महाशुभ ग्रंथ, तामें लोकशिखर को पन्थ। भाषारूप होय जो येह, बहुजन बांच करें अति नेह ॥ ६ ॥ ताके वचन हिये में धार, भाषा कीनी मति अनुसार। रविषेणाचारज—कृत सार, जाहि पढें बुधजन गुणधार ॥ ७ ॥ जिनधर्मिनकी आज्ञा लेय, जिनशासन मांहो चित्त देय। आनंदसुतने भाषा करी, नंदो विरदो अति रस भरी ॥ ८ ॥ सुखी होहु राजा अर लोक, मिटो सबनिके दुःख अरु शोक। वरतो सदा मंगलाचार, उतरो बहुजन भवजल पार ॥ ९ ॥ सम्वत अष्टादश शत जान, ता ऊपर तेईस बखान (१८२३)। शुक्लपक्ष नवमी शनिवार, माघ मास रोहिणि ऋख सार ॥१०॥

दोहा—ता दिन सम्पूरण भयो, यहै ग्रन्थ सुखदाय।
चतुरसंघ मंगल करो, बढै धर्म्म जिनराय ॥ ११ ॥

या श्रीरामपुरानके, छंद अनूपम जान।
सहस बीस द्वय पांचसौ, भाषा ग्रंथ प्रमान ॥ १२ ॥

इति श्री पद्मपुराण भाषा समाप्तं।

सस्ती ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. पद्मपुराण	१६'००	१०. वैराग्य प्रकाश	००'२५
२. मोक्षमार्ग प्रकाशक	३'००	११. दशधर्म लावनी	००'२५
३. कल्याण गुटका	३'००	१२. ब्रह्मचर्य रहस्य	००'२५
४. मानवधर्म	००'७५	१३. रहस्य पूर्ण चिट्ठी, छह ढाला (मूल) व उपादान निमित्त संवाद आदि	००'२०
५. सरल जैन धर्म	००'६२		
६. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर प्र० भाग	००'६२		
७. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर द्वि० भाग	००'६२		
८. स्वास्थ्य विधान	००'५०	१४. परमार्थ वचनिका	००'२०
९. बृहत् समाधिमरण	००'३७	१५. मेरी भावना	००'०५

१० पुस्तकों का सैट १७ रुपये ५० पैसे में

१. पद्मपुराण	१६.००
२. मानव धर्म	००'७५
३. सरल जैन धर्म	००'६२
४. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर प्र० भाग	००'६२
५. प्रश्नोत्तर ज्ञान सागर द्वि० भाग	००'६२
६. स्वास्थ्य विधान	००'५०
७. बृहत् समाधिमरण	००'३७
८. ब्रह्मचर्य रहस्य	००'२५
९. रहस्यपूर्ण चिट्ठी, छह ढाला (मूल) व उपादान निमित्त संवाद आदि	००'२०
१०. परमार्थ वचनिका	००'२०
	२०'१३